

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

ब्रह्मपुराणम्

मूल तथा भाषानुवाद

भाषाभाष्यकार

एस. एन. खण्डेलवाल

(श्री नाथ खण्डेलवाल)

(पूर्वभागः)

चौखम्बा संस्कृत सीरीज
१६२
****

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

ब्रह्मपुराणम्

मूल तथा भाषानुवाद

भाषाभाष्यकार
एस. एन. खण्डेलवाल
(श्री नाथ खण्डेलवाल)

पूर्वभागः



चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०७३, सन् २०१६

ISBN : 978-81-7080-467-3 (पूर्वभाग)

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी—२२१००१ (भारत)
फोन : (आफिस) (०५४२) २३३३४५८
(आवास) (०५४२) २३३५०२०, २३३४०३२
Fax : 0542 - 2333458
e-mail : cssoffice01@gmail.com
web-site : www.chowkhambasanskritseries.com

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १११८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३५०२०

आदिब्राह्म महापुराण : महत्ता और स्वरूप

– डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू', फैलो इण्डोलॉजी

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥

भारतीय संस्कृति के स्वरूप के संयोजन में पुराणों ने व्यावहारिक योगदान किया है। देववाद के विकास के साथ-साथ विकसित हुई गाथाओं और आख्यानों-उपाख्यानों से पाठक-हृदय के आह्लाद का अभिवर्धन करने की दिशा में पुराणों का अवदान सर्वाधिक है और इन पुराणों का विकास भी इसी का एक समानान्तर क्रम भी है, क्योंकि महापुराण, पुराण, उप और औपपुराण ही नहीं, स्थल पुराणों की निरन्तर विद्यमानता संस्कृति के विविध चरणों-सोपानों के साथ-साथ बौद्धिक स्तर पर धर्म-मत-सम्प्रदायों के परीक्षण और प्रसार का भी एक स्वरूप है। पुराण किसी भी धार्मिक-आनुष्ठानिक विचार के लिए यदि आरम्भ है, तो उसके लिए प्रमाणभूत भी। दरअसल पुराणों का स्वरूप लोक का श्लोकान्तरण है और उनमें वैदिक, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् और स्मृतियों के अनेकानेक स्तम्भ आधार प्रदान करते द्रष्टव्य हैं। इसलिए पुराणों को प्रारम्भिक प्रमाण भी स्वीकारा गया है और इस रूप में उनका पञ्चलक्षणात्मक होना बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। ये राजकीय उपयोग के तो थे ही, जैसा कि चाणक्य संकेत देता है कि शासनकर्ता को नियमित रूप से इतिहास का श्रवण करना चाहिए और यह इतिहास पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, वीरोपाख्यानमूलक उदाहरण, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र से संयुक्त होगा— पूर्वमहर्भागं हस्त्यश्वरथप्रहरण विद्यासु विनयं गच्छेत्, पश्चिममितिहासश्रवणे। पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतीतिहासः। *(अर्थशास्त्र 1, 5)* साथ ही इनका लोकोपयोग भी कम नहीं था। मनु, औशनस आदि ने इस व्यवस्था का प्रतिपादन किया है और नियमित पाठ की आवश्यकता बताई है। इसलिए अनेक पुराणों का प्रणयन हुआ और निरन्तर उनका विकास भी हुआ।

महापुराणों में ब्रह्मपुराण का विशिष्ट महत्व रहा है और प्राचीन पुराणों में परिगणित विष्णुपुराण, मत्स्य एवं वायुपुराण प्रभृति में पुराणों की जो सूचियाँ मिलती हैं, उनमें इस पुराण को कहीं प्रथम तो कहीं अन्य स्थान पर दिया गया है। विष्णु के विवरण से यह तो स्पष्ट है कि यह प्रथम या आद्यपुराण रहा है— चतुष्टयेनाप्येतेन संहितानामिदं मुने। आद्यं सर्वपुराणानां पुराणं ब्राह्ममुच्यते॥ अष्टादश पुराणानि पुराणज्ञाः प्रचक्षते॥ किन्तु वायुपुराण (104, 3) और देवीभागवतपुराण (1, 3, 3) ने पुराणों का क्रम मत्स्यपुराण से निर्धारित किया है और इसको पाँचवें क्रम पर रखा है। यह स्वीकार्य है कि ब्रह्मपुराण अपने स्वरूप में अमरकोश द्वारा निर्धारित पञ्चलक्षणात्मक कोटि का प्रतिनिधित्व करता है, किन्तु वह स्वयमेव पुराण और आख्यान दोनों ही संज्ञाएँ देता है और लोमहर्षण वचन से स्वयं को वैष्णव कोटि का पुराण कहता है— पुराणं वैष्णवं त्वेतत्सर्व किल्विषनाशनम्। विशिष्टं सर्वशास्त्रेभ्यः पुरुषार्थोपपादकम्॥ *(ब्रह्मपुराण 246, 20)* इस प्रकार यह पुराण का अपना मत है जिसे वह स्वयं के अर्थ में देता है, यह बिल्कुल वैसे ही है जैसे वायुप्रोक्त पुराण अपने को इतिहास के साथ ही पुराण भी सिद्ध करता है— इमं यो ब्राह्मणो विद्वानितिहासं पुरातनम्। शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि तथाध्यापयतेऽपि च। *(वायु. 103, 48; अन्य तुलनीय 103, 56 तथा 58)*

ब्रह्मपुराण का पाठ और पुराणों का मत

ब्रह्म या ब्राह्म नाम से आभास होता है कि यह ब्रह्मा से सम्बन्धित पुराण होगा, किन्तु पुराणकार पहले श्लोक से ही यह सिद्ध करता है कि वह उस पुरुषोत्तम संज्ञक ब्रह्म हरि के प्रति प्रणतिभाव लिए है, जिससे विस्तारपूर्वक रचा हुआ यह मायामय सम्पूर्ण चराचर उत्पन्न होता है और जिसमें स्थित रहता है तथा जिसमें अन्ततः विलीन होता है, जिसका ध्यान करने से मुनिवरों का समुदाय सर्वथा प्रपञ्चशून्य मोक्ष को प्राप्त करते हैं, वह ब्रह्म मल रहित, सनातन, व्यापक और अचल है— यस्मात् सर्व्वमिदं प्रपञ्चरचितं मायाजगज्जायते, यस्मिंस्तिष्ठति याति चान्तसमये कल्पानुकल्पे पुनः ॥ यं ध्यात्वा मुनयः प्रपञ्चरहितं विन्दन्ति मोक्षं ध्रुवम्, तं वन्दे पुरुषोत्तमाख्यममलं नित्यं विभुं निश्चलम् ॥ *(पूर्व. 1, 1)*

ब्रह्मपुराण के वर्तमान पाठ में 13 हजार 783 श्लोक मिलते हैं। बृहन्नारदीयपुराण (92, 31) के अनुसार इसमें 10 हजार श्लोक हैं। यही मान्यता भागवतपुराण (द्वादश स्कन्ध 13, 4) की भी है; जबकि अग्निपुराण (272, 1) इसमें 25 हजार श्लोक होने की मान्यता का प्रतिपादन करता है। मत्स्यपुराण, लिंग, वराह, कूर्म और पद्मपुराण का मत उचित लगता है, क्योंकि वे 13 हजार श्लोकों की गणना प्रतिपादित करते हैं जो वर्तमान पाठ में लगभग मिल जाती है। यह पाठ पुणे के आनन्दाश्रम प्रकाशन द्वारा प्रथमतः तैयार किया गया है। गणनाओं के आधार पर यह संख्या क्षेपकों के कारण विस्तृत होती रही या पुराणपाठ निरन्तर विकसिनशील रहा होगा, ऐसा माना जा सकता है, क्योंकि भविष्यपुराण के ब्राह्मपर्व में यह विचार दिया गया है कि प्रारम्भ में लगभग सभी पुराणों का प्रमाण बारह-बारह हजार श्लोक का था। धीरे-धीरे ये विस्तृत भी हुए तो संक्षिप्त भी। कुछ पुराणों ने उप और औप पुराणों को विलोपन करते हुए अपनी पीठिका को सुदृढ़ किया, तो कुछ नवीन पुराण भी इसी रूप में सामने आए और महत्वपूर्ण हो गए। शिवपुराण इसका उदाहरण है जिसमें शिवधर्मोत्तरपुराण, नन्दिकेश्वरपुराण आदि का समावेश किया गया है। यही बात स्कन्दपुराण पर भी लागू होती है, जिसके नाम से हेमाद्रि द्वारा उद्धृत कई श्लोक वर्तमान पाठ में नहीं मिलते। यों तो इसको आदिपुराण कहा गया है, किन्तु आद्यपुराण और आद्युपपुराण नाम से पृथक् से ग्रन्थ भी मिलते हैं।

ब्रह्मपुराण : दो पाठ और और कालक्रम

ब्रह्मपुराण के दो पाठ मिलते हैं, जैसा कि बंगाल नरेश बल्लालसेन ने दानसागर में स्वीकार किया है। दानसागर में जिन तेरह पुराणों के वचनों को महत्त्व दिया है, उनमें ब्रह्मपुराण प्रथम स्थान पर है, तदोपरान्त वराह, आग्नेय, भविष्य, मत्स्य, वामन, वायवीय, मार्कण्डेय, वैष्णव, शैव, स्कान्द, पद्म और कूर्मपुराण को गिनाया है। *(दानसागर : सम्पादक भवतोष भट्टाचार्य, बी. आई. सीरीज, 1953-56) वह यह भी स्वीकारते हैं कि उस काल में* ब्राह्मपुराण के नाम से दो पाठ उपलब्ध थे और उनमें से एक पाठ को उन्होंने दान विषयक वचन न होने से स्वीकार नहीं किया था। ब्राह्मपुराण नाम से एक उपपुराण भी उपलब्ध था। कई श्लोक जो निबन्ध ग्रन्थों में प्रमाण रूप में उद्धृत किए गए हैं, वर्तमान पाठ में नहीं मिलते। ये श्लोक जीमूतवाहन, अपरार्क, बल्लालसेन, देवण्णभट्ट और हरदत्त आदि ने उद्धृत किए हैं और ब्रह्मपुराण के वर्तमान संस्करणों में कहीं उपलब्ध नहीं होते हैं। इसी कारण प्रो. राजेन्द्रचन्द्र हाजरा का मत है कि पुराण का वर्तमान पाठ 10वीं और 12वीं शताब्दी के बीच का सम्पादन हो सकता है। हालांकि इसमें विष्णुपुराण के भी कतिपय श्लोक मिलते हैं और नारदीयपुराण में

इसके श्लोक उद्धृत किए गए हैं। यह पुराणों की अन्योन्याश्रिता है और ऐसा अन्य पुराणों में भी देखा जा सकता है।

वर्तमान ब्रह्मपुराण में गरुडपुराण की तरह दो भाग हैं— पूर्ववर्तीभाग और उत्तरवर्तीभाग। इन दोनों भागों में 246 अध्याय प्राप्त होते हैं। पूर्ववर्ती भाग में उपलब्ध होने वाले विषयों में मुख्य हैं— देवताओं और असुरों सहित प्रजापतियों एवं दक्ष इत्यादि की उत्पत्ति, जो अन्यान्य पुराणों में भी प्रतिपाद्य है। इसके बाद, वाल्मीकि रामायण की तरह सूर्यवंश का वर्णन करते हुए श्रीराम के चतुर्व्यूहावतारों का विवरण है, जो इस नाम से महाभारतादि में उल्लिखित पाञ्चरात्र सम्प्रदाय को अभीष्ट था। चन्द्रवंश के क्रम में श्रीकृष्ण के चरित्र का वर्णन आगे आया है और फिर भूगोल वर्णन के क्रम में पृथ्वी के द्वीपों, वर्षों, पर्वतोत्पन्न नदियों, स्वर्ग-पातालादि लोकों के साथ ही नरक वर्णन इस पुराण की भी शिव, गरुड आदि पुराणों की तरह ही विशेषता है। मूलत: चौथी शताब्दी से भारत में यमपट्ट वाचन की जो परम्परा थी, वह व्यक्ति के कर्मानुसार लोकालोक की प्राप्ति को परिभाषित करती थी और बाद में यह वर्णन न केवल पुराणों का प्रतिपाद्य बना, बल्कि सुदूरवर्ती द्वीपों में प्रतिमा फलकों में भी चित्रित हुआ है। सूर्य की स्तुति है जो भविष्य और साम्बपुराण की भी विशेषता रही है। पार्वती के जन्म तथा विवाह का वर्णन लोक रुचि के प्रसंग के क्रमानुसार मिलती है, जिस पर मध्यकाल में पार्वती मंगल नाम से ब्याहुला और मंगलकाव्यों का प्रणयन हुआ है। इसी क्रम में दक्ष का आख्यान तथा एकाम्र क्षेत्र का माहात्म्य भी इस भाग में मिलता है। एकाम्र क्षेत्र के आधार पर ही इसके प्रणयन क्षेत्र पर भी विचार किया जा सकता है। इस माहात्म्य पर कालान्तर में एकाम्रपुराण जैसे उपपुराण का भी प्रणयन हुआ है। वैसे यह विचार भी किया जा सकता है कि जिस गोदावरी के प्रवाह क्षेत्रस्थ दण्डकारण्य का पुराणकार ने आँखों देखा जैसा वर्णन किया है, वह इसके प्रणयन का स्थान रहा हो।

ब्रह्मपुराण का उत्तरभाग पुरुषोत्तम क्षेत्र की महत्ता के प्रतिपादन के साथ आरम्भ होता है और उसका पर्याप्त विस्तार देखने को मिलता है। यह पुरुषोत्तम क्षेत्र की उस काल में बढ़ते महत्त्व का परिचायक है, क्योंकि इसमें तीर्थयात्रा का स्वरूप और महत्ता को भी दिया गया है। इसी क्रम में लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का चरित्र पुन: वर्णित है। आगे ब्रह्मलोक, पितृश्राद्ध, वर्णाश्रमों के धर्म और आचार का विवरण है। हरिवंश, विष्णुपुराण, भागवत आदि की तरह मन्वतन्तर-युगों का आख्यानात्मक वर्णन, प्रलय का विवरण दिया गया है और अन्तत: योग और सांख्यदर्शन की महत्ता बताते हुए ब्रह्मवाद का निरूपण और इस पुराण को सुनने-पढ़ने का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। यह पुराण भी वायु, मत्स्य और ब्रह्माण्डपुराण की तरह अनुवंश श्लोक अथवा गाथाओं को उद्धृत करता है, जो पुराणों की एक विशेषता प्रतीत होती है और जिसकी ओर पार्जिटर सहित प्रो. काणे ने संकेत किया है।

यह पुराण अपनी अनेक विशिष्टताओं को लिए है और अपने कलेवर में अनेकानेक पूर्ववर्ती ग्रन्थों का ऋणि है। सांख्य और योग के सम्बन्ध में जो वर्णन इसमें है, वह महाभारत से अनुप्राणित है, जैसा कि एच. ओट्टो श्रोडर का विचार है। वायु और ब्रह्माण्डपुराण के श्लोक भी इसके लिए उपजीव्य रहे हैं, जो मत्स्यादि अन्य पुराणों के लिए आधार रहे। वैष्णव पुराणों में यह विशेषता देखने में भी आती है। फिर, गीता भी सांख्यादि के विवरण से अलग नहीं है। गीता जो महाभारत का अंग है, ब्रह्मसूत्र का उल्लेख तक करती है। सांख्य और योग

का प्रभाव विष्णु, पद्म, भागवतादि पुराणों पर भी देखा जा सकता है। यह लगता है कि पाञ्चरात्र की बुनियाद पर वैष्णव मत को यह दार्शनिक विचारधारा अभीष्ट भी थी और वह इनकी छाया में अपना पल्लवन देखता था। यों तो ब्रह्मपुराण 175वें अध्याय तक आते-आते अपना स्वरूप पूर्ण कर लेता है। जहाँ तक लगभग 4 हजार 640 श्लोक पूरे होते हैं और ब्रह्मा को वर्णनकर्ता कहा गया है, किन्तु व्यास वचनों का ही यह प्रभाव है कि पुनः वासुदेव का माहात्म्य आरम्भ होता है और पुराण का उत्तरार्ध संगृहीत या रचित होता है। यह पुराण अनेकानेक सुभाषितों और जीवनोपयोगी विषयों से परिपूर्ण रहा है।

चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ आफिस, वाराणसी ने अपने पुराण प्रकाशन के महत्त्वपूर्ण ध्येय के क्रम में ब्रह्ममहापुराण के प्रकाशन का जो दायित्व उठाया है, उसके लिए कोटि-कोटि धन्यवादार्ह है। भारतीय मनीषा जो पुराणों के प्रति अतिशय श्रद्धा का भाव रखती है, इस उपक्रम से निश्चित ही सन्तुष्ट होगी, यह आशा की जानी चाहिए। चौखम्बा परिवार का इस हेतु भी आभार कि मुझे इस पुराणयज्ञ में अग्रकथन कहने का अवसर दिया। पुनश्च आभार, पुराण के इन वचनों के साथ— धर्मे मतिर्भवतु वः पुरुषोत्तमानां स ह्येक एव परलोकगतस्य बन्धुः। अर्थाः स्त्रियश्च निपुणैरपि सेव्यमाना नैव प्रभावमुपयान्ति न च स्थिरत्वम्॥

उदयपुर (राजस्थान),
होलीकोत्सव, 2016 ई.



निवेदन

अथर्ववेद (११।७।२४) में पुराण का वर्णन एकवचन के रूप में है। अर्थात् पहले मात्र एक ही पुराण था। तथापि तैत्तरीय आरण्यक (२।१०) में पुराण का उल्लेख बहुवचन रूप में किया गया है। अर्थात् तब तक उस एक पुराण के कई विभाग हो गये अथवा कई पुराणों का प्रणयन हो गया था। कहा जाता है कि 'पुराण' का अर्थ है—प्राचीन। यहां यह शंका होती है, जब पुराण का अर्थ प्राचीन है, तब 'भविष्यत् पुराण' का उल्लेख इस सिद्धान्त का विरोधाभास रूप है; क्योंकि 'भविष्यत् पुराण' में भविष्यत् तथा पुराण दोनों परस्परत: विरोधाभास प्रकट करते हैं। यह विद्वानों के लिये विचारणीय है।

अनेक पुराण ब्रह्म को प्रथम महापुराण मानते हैं, तथापि वायुपुराण तथा देवीभागवत ने मत्स्य को प्रथम महापुराण माना है। स्कन्द के प्रभासखण्ड में ब्रह्माण्डपुराण को प्रथम महापुराण कहा गया है। यह क्रम भिन्नता सर्वत्र सभी पुराणों के सम्बन्ध में दृष्टिगोचर होती है, परन्तु चाहे इसे प्रथम महापुराण गिना जाये अथवा क्रम में और आगे का माना जाये, इससे इसके महत्व का आकलन यथावत ही रहेगा, उसमें न्यूनता नहीं आती। इण्डियन कल्चर, जिल्द २, पृ० २३५-२४५ में तथा पुराणिक रेकर्डस पृष्ठ १४५-१५७ में ब्रह्मपुराण को १०वीं से १२वीं शती के बीच का लिखा माना गया है। तथापि यह रचनाकाल सर्वमान्य नहीं है। इसके १७६वें अध्याय से २१३वें अध्याय तक को वासुदेव माहात्म्य कहा गया है। इस वासुदेव माहात्म्य के व्याख्याता ब्रह्मा न होकर व्यासदेव हैं। ब्रह्मा प्रथम अध्याय से लेकर १७५वें अध्याय तक के व्याख्याता हैं। आजकल जो ब्रह्मपुराण प्राप्त है, उसके अनेक श्लोक ब्रह्माण्डपुराण तथा वायुपुराण में अंकित हैं। विद्वान् श्रेडर कहते हैं कि प्राप्त ब्रह्मपुराण के २२६ से २४४ अध्याय तक की सांख्य-योगात्मक विषयवस्तु महाभारत से ली गई है (इण्डियन कल्चर जिल्द ६, पृ० ५९२-५९३)। दानसागर में ब्रह्मपुराण की दो प्रतियों की चर्चा की गयी है। कल्पतरु में ब्रह्मपुराण के १५०० श्लोकों को यथावत उद्धरण के तौर पर ग्रहण किया गया है।

विद्वानों का कथन है कि आज जो ब्रह्मपुराण प्राप्त है, वह ऐसे भूभाग पर संकलित किया गया था, जहां से गौतमी गोदावरी दण्डकारण्य में प्रवहमान है। ब्रह्मपुराण में वर्णित जनस्थान में अनेकवंश के राजा ने यज्ञानुष्ठान किया था। इसके अध्याय ७० से १७५ अध्याय तक में प्रचुर तीर्थों का वर्णन मिलता है। अध्याय २८ से ६९ तक भी तीर्थों का ही वर्णन अंकित है। यह पुराण भक्ति, योग, सांख्य, तीर्थ तथा श्राद्धादि सभी प्रकरणों से युक्त है। इसमें वर्णाश्रम व्यवस्था आदि का भी सम्यक् वर्णन है। तथापि इसकी भौगोलिक वर्णना के सम्बन्ध में अनेक भ्रान्तियां उपस्थित हो जाती हैं। उनका यथार्थ सन्धान नहीं मिलता। अत: वह विद्वानों के लिये गवेषण का विषय है।

महाशिवरात्रि, सन् २०१६ ई.

निवेदक

एस. एन. खण्डेलवाल

પુણા, ૨/૧૦-૫૨
પુસ્તક - 72
પૃષ્ઠસંખ્યા - 179

विषयानुक्रमणिका



॥ श्रीगणेशायनमः॥

॥ॐ नमो भगवते वासुदेवाय॥

श्रीमन्महर्षिवेदव्यासप्रणीतम्

ब्रह्मपुराणम्

पूर्वभागः

अथ प्रथमोऽध्यायः

नैमिषारण्य में सूत का आगमन, उनसे ऋषिगण का पुराण विषयक प्रश्न तथा सृष्टि कथन

यस्मात् सर्व्वमिदं प्रपञ्चरचितं मायाजगज्जायते,
यस्मिंस्तिष्ठति याति चान्तसमये कल्पानुकल्पे पुनः।
यं ध्यात्वा मुनयः प्रपञ्चरहितं विन्दन्ति मोक्षं ध्रुवं,
तं वन्दे पुरुषोत्तमाख्यममलं नित्यं विभुं निश्चलम्॥१॥

जिनके द्वारा यह विस्तृत मायामय जगत् उत्पन्न किया गया है, जो उनके ही प्रपंच से रहित है, वह जिसमें स्थित है तथा प्रति कल्पान्त काल में उनमें ही यह सब प्रपंच लीन भी हो जाता है, ऐसे नित्य, विभु, निश्चल, निर्मल, पुरुषोत्तम नाम वाले प्रभु की मैं वन्दना करता हूं।।१।।

यं ध्यायन्ति बुधाः समाधिसमये शुद्धं वियत्सन्निभं,
नित्यानन्दमयं प्रसन्नममलं सर्व्वेश्वरं निर्गुणम्।
व्यक्ताव्यक्तपरं प्रपञ्चरहितं ध्यानैकगम्यं विभुं,
तं संसारविनाशहेतुमजरं वन्दे हरिं मुक्तिदम्॥२॥

बुधजन समाधि काल में शुद्ध आकाश के समान, प्रसन्न रूप, निर्मल, सर्वेश्वर, निर्गुण, व्यक्त-अव्यक्त, पर, प्रपंचरहित, ध्यान से ही प्राप्त होने वाले, सर्वत्र व्यापक (विभु), संसार के विनाश के हेतु रूप (प्रलय रूप) अजर तथा मुक्ति देने वाले हरि का ध्यान करते हैं, मैं उन प्रभु की वन्दना करता हूं।।२।।

सुपुण्ये नैमिषारण्ये पवित्रे सुमनोहरे। नानामुनिजनाकीर्णे नानापुष्पोपशोभिते॥३॥
सरलैः कर्णिकारैश्च पनसैर्धवखादिरैः। आम्रजम्बूकपित्थैश्च न्यग्रोधैर्देवदारुभिः॥४॥
अश्वत्थैः पारिजातैश्च चन्दनागुरुपाटलैः। बकुलैः सप्तपर्णैश्च पुन्नागैर्नागकेशरैः॥५॥

शालैस्तालैस्तमालैश्च नारिकेलैस्तथार्ज्जुनैः। अन्यैश्च बहुभिर्वृक्षैश्चम्पकाद्यैश्च शोभिते।।६।।
नानापक्षिगणाकीर्णे नानामृगगणैर्युते। नानाजलाशयैः पुण्यैर्दीर्घिकाद्यैरलङ्कृते।।७।।
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चान्यैश्च जातिभिः। वानप्रस्थैर्गृहस्थैश्च यतिभिर्ब्रह्मचारिभिः।।८।।

नैमिषारण्य की भूमि मुनियों से व्याप्त, नाना पुष्पों से शोभित, पावन, पवित्र, मनोहर थी। वहां सरल, आमड़ा, कटहल, धव, खदिर (कत्था), आम, जामुन, कठबेल, बरगद, देवदारु, पीपल, पारिजात, चन्दन, अगुरु, पाटल, बकुल (मौलश्री), सप्तपर्णी, पुन्नाग, नागकेशर, साखू, ताल, तमाल, नारियल, अर्जुन तथा नाना प्रकार के अन्य वृक्षों तथा चम्पा आदि से शोभायमान हो रही थी। वह स्थान नाना प्रकार के पशुओं, पक्षियों तथा पुण्यमय जलाशयों तथा बावली आदि से अलंकृत प्रतीत हो रहा था। वहां पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जाति वाले तथा वानप्रस्थ, गृहस्थ, यतिगण एवं ब्रह्मचारीगण (चारों आश्रम तथा चारों वर्ण वाले) निवास करते थे।।३-८।।

सम्पन्नैर्गोकुलैश्चैव सर्वत्र समलङ्कृते। यवगोधूमचणकैर्माषमुद्गतिलेक्षुभिः।।९।।
चीनकाद्यैस्तथा मेध्यैः शस्यैश्चान्यैश्च शोभिते। तत्र दीप्ते हुतवहे हूयमाने महामखे।।१०।।
यजतां नैमिषेयाणां सत्रे द्वादशवार्षिके। आजग्मुस्तत्र मुनयस्तथाऽन्येऽपि द्विजातयः।।११।।

वह स्थान सर्वत्र गोकुल से सम्पन्न था। वहां पर जौ, गेहूं, चना, उर्द, मूंग, तिल, ईख, चीनी आदि उत्तम अन्न-शस्य से परिपूर्ण था। वहां पर दीप्त अग्नि में होम हो रहा था। उस महायज्ञ की दीप्त अग्नि में वहां के निवासी मुनिजन आहुति प्रदान करते हुये बारह वर्ष में समाप्त होने वाले महायज्ञ का अनुष्ठान कर रहे थे। उस यज्ञ में भाग लेने तथा देखने के लिये अनेक ब्राह्मण तथा मुनिगण भी (दूर-दूर से) वहां आये थे।।९-११।।

तानागतान् द्विजांस्ते तु पूजां चक्रुर्यथोचिताम्।
तेषु तत्रोपविष्टेषु ऋत्विग्भिः सहितेषु च।।१२।।
तत्राजगाम सूतस्तु मतिमाँल्लोमहर्षणः। तं दृष्ट्वा ते मुनिवराः पूजां चक्रुर्मुदान्विताः।।१३।।
सोऽपि तान् प्रतिपूज्यैव संविवेश वरासने।
कथां चक्रुस्तदान्योन्यं सूतेन सहिता द्विजाः।।१४।।
कथान्ते व्यासशिष्यं ते पप्रच्छुः संशयं मुदा।
ऋत्विग्भिः सहिताः सर्व्वे सदस्यैः सह दीक्षिताः।।१५।।

उन मुनिगण तथा ब्राह्मणों को वहां आया देखकर नैमिष के निवासी लोगों ने उनका यथायोग्य स्वागत भी किया। जब वहां ऋत्विक्गण तथा अतिथि मुनिगण एवं ब्राह्मण आसनासीन हो गये, तभी वहां मतिमान सूत लोमहर्षण का आगमन हुआ। उनको आया देखकर सभी मुनिगण प्रसन्न हो गये। सभी ने लोमहर्षण का यथोचित स्वागत कार्य सम्पन्न किया। लोमहर्षण सूत ने भी उन सभी मुनियों तथा ब्राह्मणों का यथोचित आदर किया तथा वे वहां स्थित उत्तम आसन पर आसीन हो गये। वे आसनासीन होकर ब्राह्मणों से अनेक कथा प्रसंग कहने-सुनने लगे। यह बातचीत समाप्त होने पर ऋत्विकगण तथा सभी दीक्षित लोग जो

यज्ञ के सदस्य थे, अपने संशयों को मुदित मन से सूत लोमहर्षण से कह कर उन व्यास शिष्य से पूछने लगे।।१२-१५।।

मुनय ऊचुः

पुराणागमशास्त्राणि सेतिहासानि सत्तम।
जानासि देवदैत्यानां चरितं जन्म कर्म्म च॥१६॥
न तेऽस्त्यविदितं किञ्चिद्वेदे शास्त्रे च भारते।
पुराणे मोक्षशास्त्रे च सर्व्वज्ञोऽसि महामते॥१७॥

यथापूर्व्वमिदं सर्व्वमुत्पन्नं सचराचरम्। ससुरासुरगन्धर्व्वं सयक्षोरगराक्षसम्॥१८॥
श्रोतुमिच्छामहे सूत ब्रूहि सर्व्वं यथा जगत्। बभूव भूयश्च यथा महाभाग भविष्यति॥१९॥
यतश्चैव जगत् सूत यतश्चैव चराचरम्। लीनमासीत्तथा यत्र लयमेष्यति यत्र च॥२०॥

मुनिगण कहते हैं—हे सत्तम! आप पुराण, आगम, शास्त्र, इतिहास, देवता तथा दैत्यों के चरित्र-जन्म-कर्म के ज्ञाता हैं। हे महामति! वेद, शास्त्र, महाभारत, पुराण, मोक्षशास्त्र में ऐसा कुछ नहीं है, जो आपको ज्ञात न हो! आप तो सर्वज्ञ हैं। पूर्वकाल में यह सचराचर जगत् जो सुर, असुर, सर्प, गन्धर्व, यक्ष, राक्षसों से व्याप्त है, कैसे उत्पन्न हुआ था? हे सूत! यह सृष्टि की उत्पत्ति कैसे संभव हो सकी? हे महाभाग! तदनन्तर इसकी उत्पत्ति (प्रलय के पश्चात्) कैसे होगी? यह चराचर जगत् जिनमें (प्रलय में) लीन होगा तथा पुनः उत्पन्न होगा, वह सब लयरूपी एवं सृष्टिरूपी घटना का वर्णन करिये। उस क्रम को कहिये।।१६-२०।।

लोमहर्षण उवाच

अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने। सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्व्वजिष्णवे॥२१॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शङ्कराय च। वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकर्म्मणे॥२२॥

लोमहर्षण कहते हैं—जो विकार रहित, शुद्ध-बुद्ध, नित्य, परमात्मा सदा एक रूप-अनेक रूप रहते हैं, उन हिरण्यगर्भ, सर्वजिष्णु (सर्व विजयी), हिरण्यगर्भ, हरि, शंकर, वासुदेव; सब को तारने वाले, सृष्टि, स्थिति तथा अनेक कर्म करने वाले को प्रणाम!।।२१-२२।।

एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः। अव्यक्ताव्यक्तभूताय विष्णवे मुक्तिहेतवे॥२३॥

वे प्रभु एक होकर भी अनेक रूपधारी, स्थूल तथा सूक्ष्म द्विविध आत्मायुक्त, अव्यक्त तथा व्यक्त भूतरूप विष्णु तथा मुक्ति-हेतु हैं। उनको प्रणाम!।।२३।।

सर्गस्थितिविनाशाय जगतो योऽजरामरः। मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने॥२४॥

वे प्रभु जगत् की सृष्टि-स्थिति तथा विनाश के हेतु एवं अजर-अमर हैं। उन मूल कारण, मुक्ति के हेतु रूप परमात्मा विष्णु को प्रणाम!।।२४।।

आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयांसमणीयसाम्। प्रणम्य सर्व्वभूतस्थमच्युतं पुरुषोत्तमम्॥२५॥
ज्ञानस्वरूपमत्यन्तं निर्म्मलं परमार्थतः। तमेवार्थस्वरूपेण भ्रान्तिदर्शनतः स्थितम्॥२६॥

विष्णुं ग्रसिष्णुं विश्वस्य स्थितौ सर्गे तथा प्रभुम्।
सर्व्वज्ञं जगतामीशमजमक्षयमव्ययम्॥२७॥

आद्यं सुसूक्ष्मं विश्वेशं ब्रह्मादीन् प्रणिपत्य च। इतिहासपुराणज्ञं वेदवेदाङ्गपारगम्॥२८॥
सर्व्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञं पराशरसुतं प्रभुम्। गुरुं प्रणम्य वक्ष्यामि पुराणं वेदसम्मितम्॥२९॥

वे विश्व के आधार हैं। वे अणु से भी अणुरूप (सूक्ष्मातिसूक्ष्म) हैं। वे पुरुषोत्तम अच्युत देव सभी प्राणीसमूह में स्थित रहते हैं। वे मेरे प्रणम्य हैं। वे प्रभु परमार्थतः (वास्तव में) अत्यन्त ज्ञानस्वरूप निर्मल हैं। तथापि भ्रम के कारण वे सभी को अर्थ स्वरूप में (पदार्थ रूप में) प्रतिभासित होते रहते हैं। वे सब कुछ को अन्त में (प्रलय काल में) ग्रस लेते हैं। वे विश्व की स्थिति तथा सृष्टि करने वाले प्रभु भी हैं। वे सर्वज्ञ, जगत् के ईश्वर, अजन्मा, क्षयरहित तथा अव्यय रूप हैं। सबके आदि, अत्यन्त सूक्ष्म, विश्व के ईश ब्रह्मा आदि को मैं प्रणाम करता हूं! तदनन्तर इतिहास-पुराणवेत्ता, वेद-वेदाङ्ग पारंगत, सर्व शास्त्रों के अर्थ एवं तत्व के ज्ञाता पराशर पुत्र प्रभु व्यासदेवरूपी गुरुदेव को प्रणाम करके वेद सम्मत पुराण को कहता हूं।।२५-२९।।

कथयामि यथापूर्व्वं दक्षाद्यैर्मुनिसत्तमैः। पृष्टः प्रोवाच भगवानब्जयोनिः पितामहः॥३०॥

शृणुध्वं सम्प्रवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम्।
कथ्यमानां मया चित्रां बह्वर्थां श्रुतिविस्तराम्॥३१॥
यस्त्विमां धारयेन्नित्यं शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः।
स्ववंशधारणं कृत्वा स्वर्गलोके महीयते॥३२॥

मैं पुराण का वर्णन उसी प्रकार से करूंगा, जिस प्रकार से कमल योनि भगवान् पितामह ब्रह्मा ने दक्ष आदि मुनिगण द्वारा पूछे जाने पर उनसे कहा था। मैं वह पापनाशिनी कथा कहता हूं। उसका आप सब श्रवण करिये। मैं यह अनेक अर्थ वाली विचित्र तथा विस्तृत कथा कहता हूं। इस कथा को जो बारम्बार सुनेगा, किंवा इसे चित्त में धारण करेगा, वह स्वर्गलोक में भी पूज्य एवं महिमान्वित होगा।।३०-३२।।

अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम्। प्रधानं पुरुषस्तस्मान्निर्म्ममे विश्वमीश्वरः॥३३॥
तं बुध्यध्वं मुनिश्रेष्ठा ब्रह्माणममितौजसम्। स्रष्टारं सर्व्वभूतानां नारायणपरायणम्॥३४॥
अहङ्कारस्तु महतस्तस्माद्भूतानि जज्ञिरे। भूतभेदाश्च भूतेभ्य इति सर्गः सनातनः॥३५॥

विस्तरावयवं चैव यथाप्रज्ञं यथाश्रुति।
कीर्त्त्यमानं शृणुध्वं वः सर्व्वेषां कीर्त्तिवर्द्धनम्॥३६॥
कीर्त्तितं स्थिरकीर्त्तीनां सर्व्वेषां पुण्यवर्द्धनम्।
ततः स्वयम्भूर्भगवान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः॥३७॥

ईश्वर ने विश्वरचना अव्यक्त कारण, सत्-असत्, नित्य प्रकृति-पुरुष से किया है। हे मुनिप्रवरगण! आप उन्हें अमित तेजस्वी, सबके सृष्टिकर्त्ता, नारायण-परायण ब्रह्मा समझें। महत् तत्व से अहंकार, उससे पंचमहाभूत की उत्पत्ति कही गयी है। पंचमहाभूत से भेदों की उत्पत्ति हो गई। यही सनातन सृष्टि है। मैंने इसे जिस प्रकार

से सुना था तथा जो मेरी प्रज्ञा तथा मति की शक्ति है, उसी के अनुसार इस सबकी कीर्त्ति का वर्द्धन करने वाली विस्तृत कथा को कहता हूं। स्थिर कीर्त्ति वाले यशस्वी लोगों की कीर्त्ति को सुनना सबके पुण्यों की वृद्धि करता है। यह सृष्टि आदि का प्रसंग सुनने से सभी की तथा आप लोगों की कीर्त्ति का वर्द्धन होगा। स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा ने विविध प्रजा की सृष्टि हेतु इच्छा किया था।।३३-३७।।

अप एव ससर्ज्जादौ तासु वीर्य्यमथासृजत्।
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः॥३८॥
अयनं तस्य ताः पूर्व्वं तेन नारायणः स्मृतः। हिरण्यवर्णमभवत्तदण्डमुदकेशयम्॥३९॥
तत्र जज्ञे स्वयं ब्रह्मा स्वयम्भूरिति नः श्रुतम्।
हिरण्यवर्णो भगवानुषित्वा परिवत्सरम्॥४०॥
तदण्डमकरोद्द्वैधं दिवं भुवमथापि च। तयोः शकलयोर्म्मध्य आकाशमकरोत्प्रभुः॥४१॥

ब्रह्मा ने पहले जल की सृष्टि किया था। तदनन्तर उन्होंने उसमें बीज छोड़ा। नर शब्द का प्रयोग जल तथा नर सन्तान के लिये होता है। उनका निवास (आश्रय) पहले जल ही था। तभी वे नारायण कहे गये। उन परम पुरुष की नाभि से पहले एक हिरण्यवर्ण का अण्ड उत्पन्न हुआ। यह सुना गया है कि उसी से स्वयम्भु ब्रह्मा की उत्पत्ति हो गयी। हिरण्यगर्भ प्रभु ने उस अण्ड में दीर्घकाल तक निवास किया था। तदनन्तर उन्होंने उस अण्ड को दो भाग में विभक्त कर दिया, जो स्वर्ग एवं पृथिवी हो गया। परमात्मा ने इन दोनों के मध्य में आकाश का निर्माण किया।।३८-४१।।

अप्सु पारिप्लवां पृथ्वीं दिशश्च दशधा दधे।
तत्र कालं मनो वाचं कामं क्रोधमथो रतिम्॥४२॥
ससर्ज सृष्टिं तद्रूपां स्त्रष्टुमिच्छन् प्रजापतीन्।
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्॥४३॥
वसिष्ठं च महातेजाः सोऽसृजत्सप्त मानसान्।
सप्त ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः॥४४॥
नारायणात्मकानां तु सप्तानां ब्रह्मजन्मनाम्।
ततोऽसृजत् पुरा ब्रह्मा रुद्रं रोषात्मसम्भवम्॥४५॥
सनत्कुमारं च विभुं पूर्व्वेषामपि पूर्व्वजम्।
सप्तस्वेता अजायन्त प्रजा रुद्राश्च भो द्विजाः॥४६॥
स्कन्दः सनत्कुमारश्च तेजः संक्षिप्य तिष्ठतः।
तेषां सप्त महावंशा दिव्या देवगणान्विताः॥४७॥

उन प्रभु ने स्वयं जल में प्लावित पृथिवी को तथा दसों दिशाओं को धारण किया। तब काल, मन, वाणी, काम, क्रोध, रति की उन्होंने सृष्टि किया। तदनन्तर उन्होंने प्रजापतिगण की सृष्टि करने की इच्छा करके

मरीचि, अंगीरस, पुलत्स्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ नामक महा तेजस्वी सात ऋषिगण की सृष्टि किया। पुराणों में इनको सात ब्रह्मा निश्चित किया गया है। ये सातों नारायणात्मक ब्रह्मा से जन्मे हैं। इनसे पहले ब्रह्मा ने क्रोध द्वारा रुद्र को उत्पन्न किया। तदनन्तर समस्त पूर्वजों के भी पूर्वज विभु सनत्कुमार को उन्होंने उत्पन्न किया। इन सप्तर्षिगण से ही प्रजा तथा रुद्र उत्पन्न हुये। हे द्विजगण! स्कन्द तथा ये सनत्कुमार अपने तेज को संक्षिप्त करके रहते हैं। इनके दिव्य तथा देवगण समन्वित सात महावंश भी हैं।।४२-४७।।

क्रियावन्तः प्रजावन्तो महर्षिभिरलङ्कृताः।
विद्युतोऽशनिमेघाश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च॥४८॥

वयांसि च ससर्जादौ पर्जन्यञ्च ससर्ज ह। ऋचो यजूंषि सामानि निर्म्ममे यज्ञसिद्धये॥४९॥

साध्यानजनयद् देवानित्येवमनुसञ्जगुः। उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे॥५०॥

आपवस्य प्रजासर्गं सृजतो हि प्रजापतेः। सृज्यमानाः प्रजा नैव विवर्द्धन्ते यदा तदा॥५१॥

ये सभी क्रियावान्-प्रजावान् महर्षिगण से अलंकृत रहते हैं। आदिकाल में ब्रह्मा ने ही विद्युत्, वज्र, मेघ, रोहित इन्द्रधनुष, पर्जन्य का सृजन किया था। उन्होंने यज्ञसिद्धि के लिये ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद को निर्मित किया था। उन्होंने तत्पश्चात् साध्यगण, देवगण को भी उत्पन्न किया था। समस्त उच्च एवं निम्न प्राणीवर्ग ब्रह्मा के ही अंग से उत्पन्न हैं। जब आपव प्रजापति प्रजासृष्टि करते थे, तब यदा-तदा प्रजा वर्द्धित नहीं होती थी।।४८-५१।।

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्द्धेन नारी तस्यां तु सोऽसृजद्विविधाः प्रजाः॥५२॥
दिवञ्च पृथिवीं चैव महिम्ना व्याप्य तिष्ठति।
विराजमसृजद्विष्णुः सोऽसृजत् पुरुषं विराट्॥५३॥

तब ब्रह्मा ने अपने देह को द्विधा विभक्त किया था। एक भाग नारी बना तथा दूसरा भाग पुरुष बन गया। नारी से पुरुष ने विविध प्रजा की सृष्टि किया था। वे अपनी महिमा से पृथिवी तथा स्वर्ग को व्याप्त किये रहते हैं। विष्णु द्वारा विराट् की सृष्टि की गयी। विराट् ने पुरुष का सृजन किया।।५२-५३।।

पुरुषं तं मनुं विद्यात्तस्य मन्वन्तरं स्मृतम्। द्वितीयं मानसस्यैतन्मनोरन्तरमुच्यते॥५४॥

स वैराजः प्रजासर्गं ससर्ज पुरुषः प्रभुः। नारायणविसर्गस्य प्रजास्तस्याप्ययोनिजाः॥५५॥

ये पुरुष ही मनु हैं। उनका कालमान ही मन्वन्तर है। यही मानस मनु का अन्य अन्तर कहा गया है। इन विराट् से उत्पन्न प्रभु पुरुष ने प्रजासृष्टि किया। नारायणांश से उत्पन्न इन पुरुष की प्रजासृष्टि अयोनिज थी (योनि से उत्पत्ति नहीं हुई थी)।।५४-५५।।

आयुष्मान् कीर्त्तिमान् पुण्यप्रजावांश्च भवेन्नरः।
आदिसर्गं विदित्वेमं यथेष्टां चाप्नुयाद् गतिम्॥५६॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे आदिसर्गवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः।।१।।

जो इस आदिसर्ग का प्रसंग समझ लेता है, वह आयुष्मान्-कीर्त्तिमान्- पुण्यवान्-प्रजावान् हो जाता है। उसे इच्छित उत्तम गति का लाभ होता है।।५६।।

।।प्रथम अध्याय समाप्त।।



अथ द्वितीयोऽध्यायः

स्वायम्भुव मनु के साथ शतरूपा का विवाह, उत्तानपाद का वंश कथन, पृथु जन्म वृत्तान्त, प्रचेतागण के साथ वृक्षकन्या का विवाह तथा उससे दक्ष का जन्म

लोमहर्षण उवाच

स सृष्ट्वा तु प्रजास्त्वेवमापवो वै प्रजापतिः। लेभे वै पुरुषः पत्नीं शतरूपामयोनिजाम्॥१॥
आपवस्य महिम्ना तु दिवमावृत्य तिष्ठतः। धर्मेणैव मुनिश्रेष्ठाः शतरूपा व्यजायत॥२॥
सा तु वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम्। भर्त्तारं दीप्ततपसं पुरुषं प्रत्यपद्यत॥३॥

लोमहर्षण कहते हैं—एवंविध आपव प्रजापति ने प्रजासृष्टि करके अयोनिजा कन्या शतरूपा को पत्नी बनाया। हे मुनिश्रेष्ठवृन्द! आपव ने अपनी महिमा से स्वर्ग को आवृत करके अपने धर्म से ही शतरूपा की सृष्टि किया था। शतरूपा ने दस हजार वर्ष पर्यन्त अतीव दुश्चर तप करके अमित तेजवान् पुरुष को पतिरूपेण प्राप्त किया था।।१-३।।

स वै स्वायम्भुवो विप्राः पुरुषो मनुरुच्यते। तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते॥४॥
वैराजात् पुरुषाद्वीरं शतरूपा व्यजायत। प्रियव्रतोत्तानपादौ वीरात् काम्या व्यजायत॥५॥

हे ब्राह्मणगण! ये ही तेजवान् पुरुष ही स्वायम्भुव मनु कहे जाते हैं। इकहत्तर युगों का उनका एक मन्वन्तर होता है। उन पुरुष (मनु) द्वारा शतरूपा से वीर नामक पुत्र जन्मा। वीर की स्त्री थी कर्दम प्रजापति की ज्येष्ठ कन्या काम्या। इसने प्रियव्रत तथा उत्तानपाद को जन्म दिया था।।४-५।।

काम्या नाम सुता श्रेष्ठा कर्दमस्य प्रजापतेः।
काम्यापुत्रास्तु चत्वारः सम्राट् कुक्षिर्विराट्प्रभुः॥६॥

उत्तानपादं जग्राह पुत्रमत्रिः प्रजापतिः। उत्तानपादाच्चतुरः सूनृता सुषुवे सुतान्॥७॥
धर्म्मस्य कन्या सुश्रोणी सूनृता नाम विश्रुता। उत्पन्ना वाजिमेधेन ध्रुवस्य जननी शुभा॥८॥

काम्या के चार पुत्र उत्पन्न हुये, सम्राट, कुक्षि, विराट्, प्रभु। उत्तानपाद को अत्रि प्रजापति ने ग्रहण

किया था। सुनृता ने उत्तानपाद के चार पुत्रों को जन्म दिया था। यह सुनृता अश्वमेध यज्ञाग्नि से उत्पन्न हुई थी। यह सुन्दर कटि वाली धर्म की कन्या सुनृता ही ध्रुव की शुभा कल्याणमयी माता थी।।६-८।।

ध्रुवञ्च कीर्त्तिमन्तञ्च आयुष्मन्तं वसुं तथा। उत्तानपादोजनयत् सूनृतायां प्रजापतिः॥९॥

ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि दिव्यानि भो द्विजाः।
तपस्तेपे महाभागः प्रार्थयन् सुमहद्यशः॥१०॥

तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतः स्थानमात्मसमं प्रभुः। अचलञ्चैव पुरतः सप्तर्षीणां प्रजापतिः॥११॥

प्रजापति उत्तानपाद के सुनृता से जन्मे चार पुत्र थे ध्रुव, कीर्त्तिमान्, आयुष्मान् एवं वसु। हे द्विजवृन्द! महाभाग ध्रुव ने तीन हजार दिव्य वर्ष तक (३६० मनुष्य वर्ष = १ दिव्य वर्ष) महान् यश लाभार्थ तप किया था। इससे ब्रह्मा ध्रुव के प्रति प्रसन्न हो गये तथा उन्होंने ध्रुव को अपनी ही तरह का अचल आसन सप्तर्षियों के आगे प्रदान किया था।।९-११।।

तस्याभिमानमृद्धिञ्च महिमानं निरीक्ष्य च।
देवासुराणामाचार्य्यः श्लोकं प्रागुशना जगौ॥१२॥
अहोऽस्य तपसो वीर्य्यमहो श्रुतमहोऽद्भुतम्।
यमद्य पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः॥१३॥
तस्माच्छ्लिष्टिं च भव्यं च ध्रुवाच्छम्भुर्व्यजायत।
शिलष्टेराधत्त सुच्छाया पञ्च पुत्रानकल्मषान्॥१४॥

ध्रुव के इस महान् अभिमान (उच्च स्थान), समृद्धि एवं महिमा को देखकर देवता लोग तथा दैत्यों के आचार्य शुक्र उनकी प्रशंसा करने लगे। उन्होंने इस सम्बन्ध में एक श्लोक कहा—"अहो! ध्रुव की तपोशक्ति अद्भुद् है। इनका श्रुत आश्चर्यमय है, क्योंकि अब सप्तर्षिगण भी इनको अपने आगे करके स्थित रहते हैं। शंभु ने ध्रुव से शिलष्टि एवं भव्य को उत्पन्न किया। शिलष्टि से सुच्छाया नामक पत्नी ने पांच पापरहित पुत्रों को जन्म दिया।।१२-१४।।

रिपुं रिपुञ्जयं वीरं वृकलं वृकतेजसम्। रिपोराधत्त बृहती चक्षुषं सर्व्वतेजसम्॥१५॥

अजीजनत् पुष्करिण्यां वैरिण्यां चाक्षुषं मनुम्।
प्रजापतेरात्मजायां वीरणस्य महात्मनः॥१६॥

वे पुत्र थे रिपु, रिपुंजय, वीर, वृकल एवं वृकलतेजा। रिपु से उनकी पत्नी वृहती ने अमित तेजवान् चक्षुष को जन्म दिया। चक्षुष की पत्नी वैरिणी पुष्करिणी ने चाक्षुष मनु को जन्म दिया था। प्रजापति महात्मा वीरण की कन्या थी पुष्करिणी। (वैरिणी = वीरण की पुत्री)।।१५-१६।।

मनोरजायन्त दश नड्वलायां महौजसः। कन्यायां मुनिशार्दूला वैराजस्य प्रजापतेः॥१७॥

कुत्सः पुरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक्कविः।
अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव॥१८॥

अभिमन्युश्च दशमो नड्वलायां महौजसः।
पुरीरजनयत् पुत्रान् षडाग्नेयी महाप्रभान्॥१९॥
अङ्गं सुमनसं स्वाति क्रतुमङ्गिरसं मयम्। अङ्गात् सुनीथापत्यं वै वेनमेकं व्यजायत॥२०॥

नड्वला नामक पत्नी से चाक्षुष मनु के दस महातेजवान् पुत्र जन्मे। यह नड्वला वैराज नामक प्रजापति की कन्या थी। नड्वला के पुत्र थे—कुत्स, पुरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवाक्, कवि, अग्निष्टुत्, अतिरात्र, सुद्युम्न तथा अभिमन्यु। आग्नेयी ने अपने पति पुरु से महातेजवान् छः पुत्रों को जन्म दिया। यथा—अंग, सुमनस, स्वाति, क्रतु, अंगीरस एवं मय। सुनीथ ने अपने पति अंग से वेन नामक एक ही पुत्र उत्पन्न किया।।१७-२०।।

अपचारेण वेनस्य प्रकोपः सुमहानभूत्। प्रजार्थमृषयो यस्य ममन्थुर्दक्षिणं करम्॥२१॥
वेनस्य मथिते पाणौ सम्बभूव महान्नृपः। तं दृष्ट्वा मुनयः प्राहुरेष वै मुदिताः प्रजाः॥२२॥
करिष्यति महातेजा यशश्च प्राप्स्यते महत्।
स धन्वी कवची जातो ज्वलज्ज्वलनसन्निभः॥२३॥
पृथुर्वैन्यस्तथा चेमां ररक्ष क्षत्रपूर्व्वजः। राजसूयाभिषिक्तानामाद्यः स वसुधाधिपः॥२४॥

वेन के अपकृत्यों से ऋषिगण को महान् क्रोध हो गया। उन ऋषियों ने सन्तान के लिये उस वेन की दाहिनी भुजा का मन्थन किया था। उस दाहिनी भुजा के मन्थन से एक महान् राजा उत्पन्न हो गया। उसे देखकर मुनिगण कहने लगे—"यह राजा प्रजा को मुदित करेगा। यह महातेजस्वी तथा महान् यश पाने वाला होगा।" वह राजा धनुष तथा कवच धारण किये ही उत्पन्न एवं प्रज्वलित अग्निवत् तेजवान् था। उसका नाम वैन्यपुत्र पृथु पड़ा। वह पृथिवी की रक्षा करने वाला था। वह वसुधाधिप क्षत्रियों का पूर्वज तथा राजसूय यज्ञ का पहला कर्त्ता था।।२१-२४।।

तस्माच्चैव समुत्पन्नौ निपुणौ सूतमागधौ। तेनेयं गौर्म्मुनिश्रेष्ठा दुग्धा शस्यानि भूभृता॥२५॥
प्रजानां वृत्तिकामेन देवैः सर्षिगणैः सह। पितृभिर्दानवैश्चैव गन्धर्वैरप्सरोगणैः॥२६॥
सर्पैः पुण्यजनैश्चैव वीरुद्भिः पर्व्वतैस्तस्था। तेषु तेषु च पात्रेषु दुह्यमाना वसुन्धरा॥२७॥
प्रादाद्यथेप्सितं क्षीरं तेन प्राणानधारयन्।
पृथोस्तु पुत्रौ धर्म्मज्ञौ जज्ञातेऽन्तर्धिपातिनौ॥२८॥
शिखण्डिनी हविर्धानमन्तर्धानाद्व्यजायत। हविर्धानात् षडाग्नेयी धिषणाजनयत् सुतान्॥२९॥
प्राचीनबर्हिषं शुक्रं गयं कृष्णं गजाजिनौ। प्राचीनबर्हिर्भगवान्महानासीत् प्रजापतिः॥३०॥
हविर्धानान्मुनिश्रेष्ठा येन संवर्द्धिताः प्रजाः। प्राचीनबर्हिर्भगवान् पृथिवीतलचारिणीः॥३१॥
समुद्रतनयायां तु कृतदारोऽभवत् प्रभुः। महतस्तपसःपारे सवर्णायां प्रजापतिः॥३२॥

उस राजा पृथु से ही निपुण सूत तथा मागध जन्मे थे। हे मुनिप्रवरगण! उन राजा ने ही गौ रूपी पृथिवी से अन्न का दोहन कार्य किया था। यह कार्य राजा पृथु ने प्रजा को वृति देने के लिये किया था। राजा पृथु के

इस कार्य में पितर, दानव, गन्धर्व, अप्सरागण, सर्प, पुण्यात्मा लोग, लता, पर्वत भी युक्त थे। उनके तद्रूप पात्रों में दूहे जाने पर वसुन्धरा ने सबके इच्छानुरूप दुग्ध प्रदान किया था। इसी दुग्ध द्वारा प्रजा ने प्राणों को धारण किया था। जब यज्ञ का अन्त हो गया, तब पृथु ने दो धर्मज्ञ पुत्र उत्पन्न किये, जिनका नाम था अन्तर्द्धि तथा पातिन। अन्तर्द्धि (अन्तर्ध्यान) की पत्नी शिखण्डिनी से हविर्धान पुत्र जन्मा। हविर्धान की पत्नी थी अग्निसुता धिषणा। इसके छः पुत्र थे। यथा—प्राचीनबर्हिष, शुक्र, गय, कृष्ण, गज, अजिन। भगवान् प्राचीनबर्हिष महान् प्रजापति थे। हे मुनिप्रवर! हविर्धान ने प्रजा की वृद्धि किया था। भगवान् प्राचीनबर्हिष पृथिवी तल में गये। उन्होंने दीर्घकाल तप के उपरान्त समुद्रतनया सवर्णा से विवाह किया।।२५-३२।।

सवर्णाधत्त सामुद्री दश प्राचीनबर्हिषः। सर्व्वान् प्राचेतसो नाम धनुर्व्वेदस्य पारगान्॥३३॥
अपृथग्धर्म्माचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः। दश वर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः॥३४॥
तपश्चरत्सु पृथिवीं प्रचेतासु महीरुहाः। अरक्ष्यमाणामावव्रुर्बभूवाथ प्रजाक्षयः॥३५॥

समुद्रतनया सवर्णा से प्राचीनबर्हिष ने दस पुत्र उत्पन्न किये। वे सभी धनुर्वेद में पारंगत थे तथा वे सभी प्राचेतस कहलाये। वे सभी एक ही धर्म का आचरण करने वाले थे। उन्होंने दस हजार वर्ष पर्यन्त समुद्रजल में शयन तथा कठोर तप किया। जब वे प्रचेता तप कर रहे थे, उस समय पृथिवी असुरक्षित हो गई। ऐसी स्थिति में समस्त पृथिवी वृक्षों से ढंक सी गई। इससे प्रजाक्षय होने लगा।।३३-३५।।

नाशकन्मारुतो वातुं वृतं खमभवद्द्रुमैः। दश वर्षसहस्राणि न शेकुश्चेष्टितुं प्रजाः॥३६॥
तदुपश्रुत्य तपसा युक्ता सर्व्वे प्रचेतसः। मुखेभ्यो वायुमग्निं च ससृजुर्जातमन्यवः॥३७॥
उन्मूलानथ वृक्षांस्तु कृत्वा वायुरशोषयत्। तानग्निरदहद्घोर एवमासीद् द्रुमक्षयः॥३८॥

इस कारण वृक्ष से आच्छादित आकाश में भी वायु का प्रवाह अवरुद्ध हो गया, जिससे प्रजा चेष्टारहित हो गई। यह सुनकर तपः से युक्त प्रचेताओं ने अपने मुख से वायु तथा अग्नि को उत्पन्न किया। उस समय वायु ने अपने प्रवाह से वृक्षों को उनके स्थान से उखाड़ कर शुष्क कर दिया। उस महाघोर अग्नि ने इन शुष्क वृक्षों को दग्ध भी कर दिया। इस प्रकार से वृक्षों का नाश हो गया।।३६-३८।।

द्रुमक्षयमथो बुद्ध्वा किञ्चिच्छिष्टेषु शाखिषु।
उपगम्याब्रवीदेतांस्तदा सोमः प्रजापतीन्॥३९॥
कोपं यच्छत राजानः सर्व्वे प्राचीनबर्हिषः।
वृक्षशून्या कृता पृथ्वी शाम्येतामग्निमारुतौ॥४०॥
रत्नभूता च कन्येयं वृक्षाणां वरवर्णिनी। भविष्यं जानता तात धृता गर्भेण वै मया॥४१॥
मारिषा नाम नाम्नैषा वृक्षाणामिति निर्म्मिता।
भार्य्या वोऽस्तु महाभागाः सोमवंशविवर्द्धिनी॥४२॥
युष्माकं तेजसोऽर्द्धेन मम चार्द्धेन तेजसः।
अस्यामुत्पत्स्यते विद्वान् दक्षो नाम प्रजापतिः॥४३॥

स इमां दग्धभूयिष्ठां युष्मत्तेजोमयेन वै।
अग्निनाग्निसमो भूयः प्रजाः संवर्द्धयिष्यति॥४४॥

जब पृथिवी पर कुछ ही वृक्ष शेष रह गये, तब सोम वृक्षों को निर्मूल होते देखकर प्रचेताओं के पास पहुंचे। वे प्रचेतागण से कहने लगे—"हे प्राचीनबर्हिष नृपतिवृन्द! क्रोध का त्याग करिये। यह धरती वृक्षों से शून्य हो रही है। अब आप अग्नि एवं मरुत् को शान्त करिये। यह वृक्ष की परम सुन्दरी कन्या है। इसके भविष्य को जानने के कारण मैंने इसे गर्भ में रखा था। यह कन्या मारिषा वृक्षों द्वारा निर्मित है। हे प्रचेताओं! यह महाभागा कन्या मारिषा आपकी पत्नी रहे। यह सोमवंश की वृद्धि करने वाली है। आप लोगों का आधा तेज तथा मेरा आधा तेज मिलकर दक्ष नामक विद्वान् प्रजापति के रूप में जन्म लेगा। यही आप लोगों के तेज की अग्नि से दग्ध हो गई इस वसुन्धरा पर प्रजावृद्धि करेगा"।।३९-४४।।

ततः सोमस्य वचनाज्जगृहुस्ते प्रचेतसः।
संहृत्य कोपं वृक्षेभ्यः पत्नीं धर्म्मेण मारिषाम्॥४५॥
दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापतिः।
दक्षो जज्ञे महातेजाः सोमस्यांशेन भो द्विजाः॥४६॥
अचरांश्च चरांश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदः। स सृष्ट्वा मनसा दक्षः पश्चादसृजत स्त्रियः॥४७॥

सोम का यह कथन सुनकर प्रचेताओं ने अपने क्रोध का उपसंहार किया तथा उन्होंने वृक्षों से उनकी कन्या मारिषा को धर्मानुसार पत्नीरूपेण ग्रहण कर लिया। उन दस प्रचेताओं से मारिषा ने सोम के अंशभूत दक्ष को जन्म दिया, जो महा तेजस्वी थे। हे द्विजगण! उन दक्ष ने सर्वप्रथम स्थावर सृष्टि करने के उपरान्त दो पैरों एवं चार पैरों वाले प्राणियों की सृष्टि मन से किया। यह उनकी मानसी सृष्टि थी। तत्पश्चात् दक्ष ने मानसी सृष्टि द्वारा स्त्रियों की रचना किया।।४५-४७।।

ददौ दश स धर्म्माय कश्यपाय त्रयोदश।
शिष्टाः सोमाय राज्ञे च नक्षत्राख्या ददौ प्रभुः॥४८॥
तासु देवाः खगा गावो नागा दितिजदानवाः। गन्धर्व्वाप्सरसश्चैव जज्ञिरेऽन्याश्च जातयः॥४९॥
ततः प्रभृति विप्रेन्द्राः प्रजा मैथुनसम्भवाः।
सङ्कल्पाद्दर्शनात्स्पर्शात्पूर्व्वेषां प्रोच्यते प्रजा॥५०॥

प्रभु दक्ष ने दस कन्या धर्म को, तेरह कन्या कश्यप ऋषि को प्रदान किया। बाकी सत्ताईस नक्षत्ररूपा (सत्ताईस संख्यक) कन्या दक्ष ने सोम राजा को प्रदान किया। उन कन्याओं ने देवता, पक्षी, गौ, नाग, दैत्य, दानव, गन्धर्व तथा अप्सराओं एवं अन्य जातियों को उत्पन्न किया। हे विप्रप्रवरगण! उसी काल से मैथुनी सृष्टि संभव हो सकी। अन्यथा इतिपूर्व केवल संकल्प, दर्शन, स्पर्श से ही प्रजासृष्टि होती थी।।४८-५०।।

मुनय ऊचुः

देवानां दानवानाञ्च गन्धर्व्वोरगरक्षसाम्।
सम्भवस्तु श्रुताऽस्माभिर्दक्षस्य च महात्मनः॥५१॥

अङ्गुष्ठाद्ब्रह्मणो जज्ञे दक्षः किल शुभव्रतः।
वामाङ्गुष्ठात्तथा चैव तस्य पत्नी व्यजायत॥५२॥
कथं प्राचेतसत्वं स पुनर्लेभे महातपाः। एतन्नः संशयं सूत व्याख्यातुं त्वमिहार्हसि।
दौहित्रश्चैव सोमस्य कथं श्वशुरतां गतः॥५३॥

मुनिगण कहते हैं—आपके द्वारा हमने देवता, दानव, गन्धर्व, नाग, राक्षस योनि का वृत्तान्त सुना तथा महात्मा दक्ष के जन्म को भी सुन लिया। कहते हैं कि ब्रह्मा के दाहिने अंगुष्ठ से शुभव्रती दक्ष का तथा बायें अंगुष्ठ से उनकी पत्नी का जन्म हुआ था। ऐसी स्थिति में वे महातपस्वी दक्ष प्रचेताओं के पुत्र कैसे हो गये। हे सूत! आप हमारे इस संशय के उत्तर को कहिये कि चन्द्रमा के जो दौहित्र दक्ष थे, वे चन्द्रमा के श्वसुर किस प्रकार हो गये?।।५१-५३।।

लोमहर्षण उवाच

उत्पत्तिश्च निरोधश्च नित्यं भूतेषु भो द्विजाः।
ऋषयोऽत्र न मुह्यन्ति विद्यावन्तश्च ये जनाः॥५४॥
युगे युगे भवन्त्येते पुनर्दक्षादयो नृपाः। पुनश्चैव निरुध्यन्ते विद्वांस्तत्र न मुह्यति॥५५॥
ज्यैष्ठ्यं कानिष्ठ्यमप्येषां पूर्वं नासीद्द्विजोत्तमाः। तप एव गरीयोऽभूत्प्रभावश्चैव कारणम्॥५६॥
इमां विसृष्टिं दक्षस्य यो विद्यात् सचराचराम्। प्रजावानायुरुत्तीर्णः स्वर्गलोके महीयते॥५७॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सृष्टिकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः।।२।।



लोमहर्षण सूत कहते हैं—हे द्विजों! प्राणीगण की उत्पत्ति तथा मृत्यु तो नित्य होती रहती है। जो ऋषि तथा विद्वान् लोग हैं, वे इस जन्म-मृत्यु से मोहित नहीं होते। हे द्विजों! पूर्वकाल में यहां ज्येष्ठ-कनिष्ठ भेद था ही नहीं। इसके विपरीत तप एवं उसका प्रभाव ही ज्येष्ठत्व एवं कनिष्ठत्व का कारण माना जाता था। जो व्यक्ति दक्षकृत इस सृष्टि का रहस्य जान लेता है, वह प्रजावान् तथा दीर्घायुयुक्त होकर सर्वान्त में स्वर्गलोक गमन करता है।।५४-५७।।

।।द्वितीय अध्याय समाप्त।।



अथ तृतीयोऽध्यायः

देवगण की उत्पत्ति

मुनय ऊचुः

देवानां दानवानां च गन्धर्व्वोरगरक्षसाम्। उत्पत्तिं विस्तरेणैव लोमहर्षण कीर्त्तय॥१॥

मुनिगण कहते हैं—हे लोमहर्षण! अब आप विस्तृत रूप से देवता, दानव, गन्धर्व, राक्षस तथा नागों की उत्पत्ति-प्रसंग का वर्णन करिये।।१।।

लोमहर्षण उवाच

प्रजाः सृजति व्यादिष्टः पूर्व्वं दक्षः स्वयम्भुवा।
यथा ससर्ज भूतानि तथा श्रृणुत भो द्विजाः॥२॥

मानसान्येव भूतानि पूर्व्वमेवासृजत् प्रभुः। ऋषीन्देवान् सगन्धर्व्वानसुरान्यक्षराक्षसान्॥३॥

यदास्य मानसी विप्रा न व्यवर्द्धत वै प्रजा।
तदा सञ्चिन्त्य धर्म्मात्मा प्रजाहेतोः प्रजापतिः॥४॥

स मैथुनेन धर्म्मेण सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः। असिक्नीमावहत् पत्नीं वीरणस्य प्रजापतेः॥५॥

लोमहर्षण कहते हैं—हे ब्राह्मणगण! जब दक्ष ने ब्रह्मा द्वारा प्रजासृष्टि का आदेश प्राप्त किया था तब उन्होंने जिस क्रम से प्राणीगण की सृष्टि किया, वह श्रवण करें। इन प्रभु दक्ष ने सर्वप्रथम मानसी सृष्टि की रचना करके (स्त्रियों की रचना करके) तब मुनि, देवता, गन्धर्व, दैत्य, यक्ष तथा राक्षसों की रचना किया। लेकिन इस मानसी सृष्टि के द्वारा प्रजा की संख्या वृद्धि न होते देखकर इन धर्मात्मा प्रजापति ने प्रजा वृद्धि हेतु विचार किया। तत्पश्चात् दक्ष प्रजापति ने मैथुन धर्म से विविध प्रजासृष्टि का निश्चय करके वीरण नामक प्रजापति की पुत्री अक्सिनी को अपनी पत्नी के रूप में ग्रहण किया।।२-५।।

सुतां सुतपसा युक्तां महतीं लोकधारिणीम्।
अथ पुत्रसहस्त्राणि वैरण्यां पञ्च वीर्य्यवान्॥६॥
असिक्न्यां जनयामास दक्ष एव प्रजापतिः।
तांस्तु दृष्ट्वा महाभागान् संविवर्द्धयिषुन् प्रजाः॥७॥

देवर्षिः प्रियसंवादो नारदः प्राब्रवीदिदम्। नाशाय वचनं तेषां शापायैवात्मनस्तथा॥८॥

यं कश्यपः सुतवरं परमेष्ठी व्यजीजनत्। दक्षस्य वै दुहितरि दक्षशापभयान्मुनिः॥९॥

पूर्व्वं स हि समुत्पन्नो नारदः परमेष्ठिनः। असिक्न्यामथ वैरण्यां भूयो देवर्षिसत्तमः॥१०॥

यह अक्सिनी महातपस्विनी तथा लोकधारिणी थी। इस प्रजापति वीरण की पुत्री से दक्ष ने पांच हजार पुत्र उत्पन्न किये। जब नारद ने प्रजा की वृद्धि करने की इच्छा वाले इन महाभाग दक्षपुत्रों को देखा, तब प्रियवक्ता

नारद ने उन दक्षपुत्रों के नाशार्थ तथा स्वयं शाप पाने की भवितव्यता के कारण उनसे कुछ कहा। पितामह कश्यप ने जिस पुत्रश्रेष्ठ को उत्पन्न किया था, वे मुनि नारद दक्ष के शापभय के कारण दक्ष की कन्या के पुत्ररूप में पहले उत्पन्न हो गये। तदनन्तर देवर्षिगण में प्रमुख तथा श्रेष्ठ कश्यप ने मुनिप्रवर नारद को वीरण प्रजापति की कन्या वैरिणी से पितारूपेण उत्पन्न किया।।६-१०।।

तं भूयो जनयामास पितेव मुनिपुङ्गवम्। तेन दक्षस्य वै पुत्रा हर्यश्वा इति विश्रुताः॥११॥

निर्म्मथ्य नाशिताः सर्व्वे विधिना च न संशयः।
तस्योद्यतस्तदा दक्षो नाशायामितविक्रमः॥१२॥

ब्रह्मर्षीन् पुरतः कृत्वा याचितः परमेष्ठिना। ततोऽभिसन्धिश्चक्रे वै दक्षस्य परमेष्ठिना॥१३॥
कन्यायां नारदो मह्यं तव पुत्रो भवेदिति। ततो दक्षः सुतां प्रादात् प्रियां वै परमेष्ठिने।
स तस्यां नारदो जज्ञे भूयः शापभयादृषिः॥१४॥

नारद ने ही इन पांच हजार हर्यश्व नामक दक्षपुत्रों को निःसंदिग्ध रूप से मथित करके नष्ट किया था। यह देखकर प्रबल पराक्रमी दक्ष नारद के नाशार्थ उद्यत हो गये। उस समय कश्यप भी ब्रह्मर्षिगण को आगे करके आये तथा दक्ष से याचना भी किया। कश्यप ने दक्ष से यह प्रतिज्ञा किया कि मेरा पुत्र नारद आपकी कन्या से उत्पन्न होगा। यह सुनकर दक्ष ने अपनी प्रिय कन्या कश्यप को प्रदान किया। उससे नारद शापभय के कारण पुनः उत्पन्न हुये।।११-१४।।

मुनय ऊचुः

कथं प्रणाशिताः पुत्रा नारदेन महर्षिणा। प्रजापतेः सूतवर्य्य श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः॥१५॥

मुनिगण कहते हैं—हे सूत! नारद ऋषि ने किस प्रकार से प्रजापति दक्ष के पुत्रों का नाश किया? यह हम तत्वतः सुनने के इच्छुक हैं।।१५।।

लोमहर्षण उवाच

दक्षस्य पुत्रा हर्य्यश्वा विवर्द्धयिषवः प्रजाः। समागता महावीर्य्या नारदस्तानुवाच ह॥१६॥

लोमहर्षण कहते हैं—प्रजावृद्धि करने की इच्छा के साथ जब महावीर्यवान् दक्षपुत्र नारद के पास आये, तब नारद ने उनसे कहा—।।१६।।

बालिशा बत यूयं वै नास्या जानीत वै भुवः।
प्रमाणं स्त्रष्टुकामा वै प्रजाः प्राचेतसात्मजाः॥१७॥
अन्तरूद्ध्र्वमधश्चैव कथं सृजथ वै प्रजाः।
ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्व्वतो दिशः॥१८॥

देवर्षि नारद कहते हैं—"हे प्राचेतस दक्ष के पुत्रों! तुम सभी मूर्ख ही हो। यद्यपि तुम प्रजासृष्टि करना चाहते हो, तथापि तुम लोगों को पृथिवी का प्रमाण, ऊर्ध्व-अधः-मध्य ज्ञात ही नहीं है। ऐसी स्थिति में तुम लोग प्रजासृष्टि किस प्रकार कर सकोगे?" नारद का वचन सुनकर वे सभी हर्यश्वगण दसों दिशाओं की ओर चले गये।।१७-१८।।

अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः। हर्यश्वेष्वथ नष्टेषु दक्षः प्राचेतसः पुनः॥१९॥
वैरण्यामथ पुत्राणां सहस्रमसृजत् प्रभुः। विवर्द्धयिषवस्ते तु शवलाश्वास्तथा प्रजाः॥२०॥
पूर्व्वोक्तं वचनं ते तु नारदेन प्रचोदिताः। अन्योन्यमूचुस्ते सर्व्वे सम्यगाह महानृषिः॥२१॥

जिस प्रकार से नदियां समुद्र में मिल जाने के उपरान्त कदापि वापस नहीं आतीं, वे आज तक वापस नहीं आये। जब हर्यश्व पुत्रगण नष्ट हो गये, तब प्रभु प्राचेतस दक्ष ने पुनः वैरिणी द्वारा एक हजार पुत्रों को उत्पन्न किया। ये सहस्र पुत्र शबलाश्व कहलाये तथा इन लोगों ने भी प्रजावृद्धि करनी चाही। लेकिन नारद ने उनको भी पूर्वोक्त वचन कह कर प्रेरित किया (जो उन्होंने हर्यश्वों से कहा था) वे शबलाश्व आपस में कहने लगे कि "मुनिप्रवर नारद का कथन उचित है"।।१९-२१।।

भ्रातृणां पदवीं ज्ञातुं गन्तव्यं नात्र संशयः।
ज्ञात्वा प्रमाणं पृथ्व्याश्च सुखं स्त्रक्ष्यामहे प्रजाः॥२२॥

"अतएव भाईयों की स्थिति जानने हेतु हमारा जाना उचित है। हम सभी पृथिवी का प्रमाण जानकर तब सुख पूर्वक प्रजा उत्पन्न करेंगे"।।२२।।

तेऽपि तेनैव मार्गेण प्रयाताः सर्व्वतो दिशम्।
अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः॥२३॥
तदा प्रभृति वै भ्राता भ्रातुरन्वेषणे द्विजाः।
प्रयातो नश्यति क्षिप्रं तत्र कार्य्यं विपश्चिता॥२४॥

वे शबलाश्वगण भी उसी मार्ग पर निकल पड़े तथा विभिन्न दिशाओं की ओर चले गये। जैसे समुद्र में मिल कर नदियां वापस नहीं आतीं, उसी तरह वे शबलाश्वगण भी आज तक वापस नहीं आये। हे द्विजगण! तब से यह कहा गया कि भाई को खोजने गया अन्य भ्राता शीघ्र नष्ट हो जाता है। अतः बुद्धिमान् यह न करे।।२३-२४।।

तांश्चैव नष्टान् विज्ञाय पुत्रान् दक्षः प्रजापतिः।
षष्टिं ततोऽसृजत् कन्या वैरण्यामिति नः श्रुतम्॥२५॥
तास्तदा प्रतिजग्राह भार्य्यार्थं कश्यपः प्रभुः।
सोमो धर्म्मश्च भो विप्रास्तथैवान्ये महर्षयः॥२६॥

ददौ स दश धर्म्माय कश्यपाय त्रयोदश। सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने॥२७॥
द्वे चैव बहुपुत्राय चैवाङ्गिरसे तथा। द्वे कृथाश्वाय विदुषे तासां नामानि मे शृणु॥२८॥

ऐसा सुना जाता है कि दक्ष प्रजापति ने पुत्रों को नष्ट हो गया जानकर वैरिणी से साठ कन्याओं को उत्पन्न किया। उन कन्याओं को महान् ऋषि कश्यप, सोम, धर्म तथा अन्य महर्षियों ने पत्नी हेतु ग्रहण किया। दक्ष ने दस कन्या धर्म को, तेरह कश्यप को, सत्ताईस सोम को, चार अरिष्टनेमि को, दो बहुपुत्र को, दो अंगीरा को, दो विद्वान् कृशाश्व को प्रदान किया। इन कन्याओं का नाम श्रवण करिये।।२५-२८।।

अरुन्धती वसुर्यामी लम्बा भानुर्मरुत्वती।
सङ्कल्या च मुहूर्त्ता च साध्या विश्वा च भो द्विजाः॥२९॥
धर्म्मपत्न्यो दश त्वेतास्तास्वपत्यानि बोधत।
विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यान् व्यजायत॥३०॥
मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवः सुताः।
भानोस्तु भानवः पुत्रा मुहूर्त्तास्तु मुहूर्त्तजाः॥३१॥
लम्बायाश्चैव घोषोऽथ नागवीथी च यामिजा। पृथिवीविषयं सर्व्वमरुन्धत्यां व्यजायत॥३२॥
सङ्कल्पायास्तु विश्वात्मा जज्ञे सङ्कल्प एव हि।
नागवीथ्याञ्च यामिन्यां वृषलश्च व्यजायत॥३३॥
परा याः सोमपत्नीश्च दक्षः प्राचेतसो ददौ।
सर्व्वा नक्षत्रनाम्न्यस्ता ज्योतिषे परिकीर्त्तिताः॥३४॥
ये त्वन्ये ख्यातिमन्तो वै देवा ज्योतिष्पुरोगमाः।
वसवोऽष्टौ समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि विस्तरम्॥३५॥

हे ब्राह्मणगण! दक्ष की दस कन्या धर्म की पत्नी थीं। उनके नाम हैं अरुन्धती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरुत्वती, संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या तथा विश्वा। अब इनके सन्तानों का वर्णन सुनिये। विश्वा से विश्वेदेवगण, साध्या से साध्यगण, मरुत्वती से मरुत्मान्, वसु से अष्ट वसु, भानु से भानुदेव, मुहूर्ता से सभी मुहूर्त तथा लम्बा से घोष, यामि से नागवीथि का जन्म हुआ था। पृथिवी के सभी विषयों की उत्पत्ति अरुन्धती से हुई थी। संकल्पा से सभी संकल्पों का जन्म हुआ। ये सभी संकल्प संसार के हैं। नागवीथि यामिनी से वृषल की उत्पत्ति कही गयी है। प्रचेतस् दक्ष ने तदनन्तर जितनी कन्यायें सोम को दिया था, वे सभी ज्योतिष शास्त्रोक्त नक्षत्र के नामों वाली हैं। अन्य प्रसिद्ध तथा ज्योति के आगे चलने वाले देवता ही आठ वसु कहे गये। उनका विस्तृत वर्णन कर रहा हूं।।२९-३५।।

आपो ध्रुवश्च सोमश्च धवश्चैवानिलोऽनलः।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो नामभिः स्मृताः॥३६॥
आपस्य पुत्रो वैतण्ड्यः श्रमः श्रान्तो मुनिस्तथा।
ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् कालो लोकप्रकालनः॥३७॥
सोमस्य भगवान् वर्च्चा वर्च्चस्वी येन जायते।
धवस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा॥३८॥
मनोहरायाः शिशिरः प्राणोऽथ रमणस्तथा।
अनिलस्य शिवा भार्य्याः तस्याः पुत्रो मनोजवः।
अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य च॥३९॥

अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे श्रिया वृतः।
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजः॥४०॥
अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्त्तिकेय इति स्मृतः।
प्रत्यूषस्य विदुः पुत्रमृषिं नाम्नाथ देवलम्॥४१॥

इन वसुगण के नाम हैं आप, ध्रुव, सोम, धव, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभास। वसु 'आप' के चार पुत्रों का नाम है वैतण्ड्य, श्रम, श्रान्त तथा मुनि। वसु ध्रुव के पुत्र हैं शक्तिमान्, लोकों का संहार करने वाले भगवान् काल। वसु सोम के पुत्र हैं भगवान् वर्चा, जिससे प्राणीगण तेजवान् बन जाते हैं। वसु धव के पुत्र हैं द्रविण तथा हुत हव्यवह। मनोहरा से उत्पन्न इनके पुत्रों का नाम है शिशिर, प्राण तथा रमण। वसु अनिल की पत्नी का नाम है शिवा। इनके पुत्र हैं मनोजव एवं अविज्ञातगति। अनल वसु के पुत्र सुषमा सम्पन्न (स्कन्द) कुमार सरपत के गुच्छों में जन्मे। इनके पुत्र थे शाख-विशाख तथा पीठ (पृष्ठ) से उत्पन्न नैगमेय। कृत्तिका से उत्पन्न सन्तान कार्त्तिकेय कहलाई (स्कन्द ही कृत्तिका पुत्र कार्त्तिकेय हैं)। वसु प्रत्यूष के पुत्र का नाम है ऋषिप्रवर देवल।।३६-४१।।

द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि क्षमावन्तौ मनीषिणौ। बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मवादिनी॥४२॥
योगसिद्धा जगत् कृत्स्नमसक्ता विचचार ह।
प्रभासस्य तु सा भार्य्या वसूनामष्टमस्य तु॥४३॥
विश्वकर्म्मा महाभागो यस्यां जज्ञे प्रजापतिः।
कर्त्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानाञ्च वार्द्धकिः॥४४॥
भूषणानाञ्च सर्व्वेषां कर्त्ता शिल्पवतां वरः।
यः सर्व्वेषां विमानानि देवतानां चकार ह॥४५॥

देवल के दो पुत्रों का नाम है क्षमावान् एवं मनीषी। ऋषि बृहस्पति की बहन ब्रह्मवादिनी उत्तम स्त्री थीं, वे विचरण करती हैं। वे योगसिद्धा हैं। अष्टम वसु प्रभास की यही पत्नी थीं। इनसे महाभाग प्रजापति विश्वकर्मा जन्मे। ये देवशिल्पी तथा हजारों शिल्पविधि के निर्माता हैं। इन्हीं के द्वारा सभी देवगण का उत्तम आभूषण बनाया गया। इन्होंने ही सभी देवगण के विमानों का भी निर्माण किया।।४२-४५।।

मानुषाश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्पं महात्मनः। सुरभी कश्यपाद्रुद्रानेकादश विनिर्म्ममे॥४६॥
महादेवप्रसादेन तपसा भाविता सती। अजैकपादहिर्बुध्न्यस्त्वष्टा रुद्रश्च वीर्य्यवान्॥४७॥
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः। वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा॥४८॥
मृगव्याधश्च शर्व्वश्च कपाली च द्विजोत्तमाः।
एकादशैते विख्याता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः॥४९॥

इन महात्मा द्वारा प्रचलित किये गये शिल्प द्वारा ही मनुष्यगण जीविकोपार्जन करते हैं। महादेव की कृपा से तपस्विनी कश्यपपत्नी सुरभी ने कश्यप से एकादश रुद्रों को उत्पन्न किया था। हे ब्राह्मणसत्तमों! ये

ग्यारह रुद्र तीनों लोकों के ईश्वर कहे गये हैं। इनके नाम हैं अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, त्वष्टा, बलशाली रुद्र, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शंभु, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, शर्व तथा कपाली।।४६-४९।।

शतं त्वेवं समाख्यातं रुद्राणाममितौजसाम्।
पुराणे मुनिशादर्दूला यैर्व्याप्तं सचराचरम्।।५०।।
दारान् शृणुध्वं विप्रेन्द्राः कश्यपस्य प्रजापतेः।
अदितिर्दितिर्दनुश्चैव अरिष्टा सुरसा खसा।।५१।।
सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इरा। कद्रुर्मुनिश्च भो विप्रास्तास्वपत्यानि बोधत।।५२।।

हे मुनिशार्दूल! पुराणों में एवंविध सौ रुद्र कहे गये हैं, जो अति तेजस्वी हैं। वे सचराचर में व्याप्त हैं। हे विप्रेन्द्रों! अब प्रजापति कश्यप की पत्नियों का वर्णन श्रवण करें। वे हैं अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, खसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रु तथा मुनि। अब हे मुनिगण! इनकी सन्तति का विवरण सुनें।।५०-५२।।

पूर्व्वमन्वन्तरे श्रेष्ठा द्वादशासन् सुरोत्तमाः। तुषिता नाम तेऽन्योन्यमूचुर्वैवस्वतेऽन्तरे।।५३।।
उपस्थितेऽतियशसश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः। हितार्थं सर्व्वलोकानां समागम्य परस्परम्।।५४।।
आगच्छत द्रुतं देवा अदितिं सम्प्रविश्य वै। मन्वन्तरे प्रसूयामस्तन्नः श्रेयो भविष्यति।।५५।।

पूर्व वाले मन्वन्तर में बारह उत्तम श्रेष्ठ देवगण थे। उनका नाम था तुषित। वैवस्वत मन्वन्तर के समय वे परस्परतः कहने लगे "हे देवताओं! चाक्षुष मन्वन्तर का काल आने पर हम सब सभी लोकों के हितार्थ परस्परतः शीघ्रता से अदिति देवी के गर्भ में प्रविष्ट होकर जन्म ग्रहण करें। यह हमारे लिये श्रेयस्कर होगा।।५३-५५।।

लोमहर्षण उवाच

एवमुक्त्वा तु ते सर्व्वे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः।
मारीचात् कश्यपाज्जातास्त्वदित्या दक्षकन्यया।।५६।।
तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञाते पुनरेव हि। अर्य्यमा चैव धाता च त्वष्टा पूषा तथैव च।।५७।।
विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च।
अंशो भगश्चातितेजा आदित्या द्वादश स्मृताः।।५८।।

लोमहर्षण कहते हैं—ये सभी तुषित देवता चाक्षुष मन्वन्तर में मरीचिपुत्र कश्यप के औरस से तथा दक्ष की कन्या अदिति के गर्भ से उत्पन्न हो गये। कश्यप से ही विष्णु तथा इन्द्र का जन्म हुआ। ये द्वादश तुषित देवता ही अदिति के गर्भ से द्वादश आदित्य रूप से जन्म लेकर अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, अंश तथा अमित तेजस्वी भग कहलाये।।५६-५८।।

सप्तविंशतिर्याः प्रोक्ताः सोमपत्न्यो महाव्रताः।
तासामपत्यान्यभवन् दीप्तान्यमिततेजसः।।५९।।

अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश। बहुपुत्रस्य विदुषश्चतंस्त्रो विद्युतः स्मृताः॥६०॥
चाक्षुषस्यान्तरे पूर्व्वे ऋचो ब्रह्मर्षिसत्कृताः। कृशाश्वस्य च देवर्षेदेवप्रहरणाः स्मृताः॥६१॥

सोमदेव की महाव्रत तत्परा सत्ताईस पत्नियों की सन्तान दीप्त तथा अमित तेजस्वी थीं। अरिष्टनेमि की पत्नियों से (चार पत्नियों से) सोलह पुत्र जन्मे। विदुष (विद्वान्) बहुपुत्र के चार विद्युत् नामक संतान जन्मे। पूर्व चाक्षुष मन्वन्तर में ब्रह्मर्षिगण द्वारा ऋचायें कही गयीं। देवर्षि कृशाश्व ने देवप्रहरण नामक गणों को उत्पन्न किया।।५९-६१।।

एते युगसहस्त्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि। सर्व्वे देवगणाश्चात्र त्रयस्त्रिंशत्तु कामजाः॥६२॥
तेषामपि च भो विप्रा निरोधोत्पत्तिरुच्यते। यथा सूर्य्यस्य गगन उदयास्तमयाविह॥६३॥
एवं देवनिकायास्ते सम्भवन्ति युगे युगे।
दित्याः पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम्॥६४॥

ये देवप्रहरणगण सहस्त्र युगों के अन्त में पुनः उत्पन्न होते हैं। ये जो सब देवगण हैं, इनमें से तैंतीस काम से (कामदेव से) जन्म लेते हैं। हे ब्राह्मणगण! जैसे सूर्य का उदय तथा अस्त होता है, तदनुरूप इन देवगण की भी उत्पत्ति तथा लय होता है। यह सुना गया है कि कश्यप के औरस से दिति के दो बलवान् पुत्र जन्मे।।६२-६४।।

हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च वीर्य्यवान्। सिंहिका चाभवत् कन्या विप्रचित्तेः परिग्रहः॥६५॥
सैंहिकेया इति ख्याता यस्याः पुत्रा महाबलाः। हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथितौजसः॥६६॥

इन दो पुत्रों का नाम था हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष। दिति की एक कन्या भी थी। उसका नाम था सिंहिका। सिंहिका का विवाह विप्रचित्ति से हुआ। उसके महाबली पुत्र सैंहिकेयगण कहे गये हैं। हिरण्यकशिपु के चार महान् तेजस्वी पुत्र थे।।६५-६६।।

ह्लादश्च अनुह्लादश्च प्रह्लादश्चैव वीर्य्यवान्। संह्लादश्य चतुर्थोऽभूद्ह्लादपुत्रो ह्रदस्तथा॥६७॥
ह्रदस्य पुत्रौ द्वौ वीरौ शिवः कालस्तथैव च।
विरोचनस्तु प्राह्लादिर्बलिर्जज्ञे विरोचनात्॥६८॥
बलेः पुत्रशतं त्वासीद्बाणज्येष्ठं तपोधनाः। धृतराष्ट्रश्च सूर्यश्च चन्द्रमाश्चन्द्रतापनः॥६९॥
कुम्भनाभो गर्द्दभाक्षः कुक्षिरित्येवमादयः।
बाणस्तेषामतिबलो ज्येष्ठः पशुपतेः प्रियः॥७०॥
पुरा कल्पे तु बाणेन प्रसाद्योमापतिं प्रभुम्। पार्श्वतो विहरिष्यामि इत्येवं याचितो वरः॥७१॥

इनके नाम हैं ह्लाद, अनुह्लाद, प्रह्लाद तथा महाबली संह्लाद। ह्लाद का पुत्र था ह्रद। ह्रद के दो वीर पुत्र थे शिव तथा काल। प्रह्लाद का पुत्र था विरोचन। विरोचन का पुत्र था बलि। बलि के सौ पुत्रों में प्रधान थे धृतराष्ट्र, सूर्य, चन्द्र, चन्द्रतापन, कुम्भनाभ, गर्दभाक्ष, कुक्षि आदि। इन सौ पुत्रों में से बाणासुर सबसे बली ज्येष्ठ तथा भगवान् पशुपति को प्रिय था। पूर्व कल्प में बाण ने उमापति प्रभु को प्रसन्न करके यह वर मांगा कि मैं आपके ही पार्श्व में विहार करता रहूं।।६७-७१।।

हिरण्याक्षसुताश्चैव विद्वांसश्च महाबलाः। भर्भरः शकुनिश्चैव भूतसन्तापनस्तथा॥७२॥
महानाभश्च विक्रान्तः कालनाभस्तथैव च। अभवन् दनुपुत्राश्च शतं तीव्रपराक्रमाः॥७३॥
तपस्विनो महावीर्य्याः प्राधान्येन ब्रवीमि तान्।
द्विमूर्ध्दा शङ्कुकर्णश्च तथा हयशिरा विभुः॥७४॥
अयोमुखः शम्बरश्च कपिलो वामनस्तथा। मारीचिर्मघवांश्चैव इल्वलः स्वसृमस्तथा॥७५॥
विक्षोभणश्च केतुश्च केतुवीर्य्यशतह्रदौ। इन्द्रजित्सर्व्वजिच्चैव वज्रनाभस्तथैव च॥७६॥
एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबलः। वैश्वानरः पुलोमा च विद्रावणमहाशिराः॥७७॥
स्वर्भानुर्वृषपर्व्वा च विप्रचित्तिश्च वीर्य्यवान्। सर्व्व एते दनोः पुत्राः कश्यपादभिजज्ञिरे॥७८॥

हिरण्याक्ष के पुत्र थे भर्भर, शकुनि, भूतसन्तापन, महानाभ, विक्रान्त तथा कालनाभ। ये सभी बली तथा विद्वान् थे। दनु के सौ पुत्र अत्यन्त तीव्र पराक्रमी तपस्वी थे। उनमें से जो प्रमुख (प्रधान) थे, उनका नाम कहता हूं। यथा—द्विमूर्द्धा, शंकुकर्णा, महान् हयशिरा, अधोमुख, शम्बर, कपिल, वामन, मरीचि, मघवान्, इल्वल, स्वसुम, विक्षोभण, केतु, केतुवीर्य, शतह्रद, इन्द्रजित्, सर्वजित्, वज्रनाभ, एकचक्र, महाबाहु, महाबली तारक, वैश्वानर, पुलोमा, विद्रावण, महाशिरा, स्वर्भानु, वृषपर्वा, महाबली विप्रचित्ति। ये सब कश्यप के औरस से तथा दनु के गर्भ से उत्पन्न हैं।।७२-७८।।

विप्रचित्तिप्रधानास्ते दानवाः सुमहाबलाः। एतेषां पुत्रपौत्रन्तु न तच्छक्यं द्विजोत्तमाः॥७९॥
प्रसंख्यातुं बहुत्वाच्च पुत्रपौत्रमनन्तकम्।
स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या पुलोम्नस्तु शची सुता॥८०॥
उपदीप्तिर्हयशिराः शर्मिष्ठा वार्षपर्व्वणी। पुलोमा कालिका चैव वैश्वानरसुते उभे॥८१॥
बह्वपत्ये महापत्ये मरीचेस्तु परिग्रहः। तयोः पुत्रसहस्राणि षष्टिर्दानवनन्दनाः॥८२॥

इन दानवों में से महाबली विप्रचित्ति प्रधान था। हे द्विजोत्तमों! इसके पुत्र-पौत्रों की संख्या अनन्त तथा बहुत है। उनकी गणना कर सकना संभव ही नहीं है। स्वर्भानु दानव की कन्या थी प्रभा। पुलोमा की कन्या थी शची। हयशिरा की कन्या थी उपदानवी तथा वृषपर्वा की कन्या थी शर्मिष्ठा। वैश्वानर की दो कन्या थीं पुलोमा तथा कालिका। ये सन्तान बहुल थीं। ये दोनों मरीचि की पत्नी थीं तथा इनके पुत्र थे साठ हजार दानवराज।।७९-८२।।

चतुर्दशशतानन्यान् हिरण्यपुरवासिनः। मारीचिर्जनयामास महता तपसान्वितः॥८३॥
पौलोमाः कालकेयाश्च दानवास्ते महाबलाः। अवध्या देवतानां हि हिरण्यपुरवासिनः॥८४॥
पितामहप्रसादेन ये हताः सव्यसाचिना। ततोऽपरे महावीर्य्या दानवास्त्वतिदारुणाः॥८५॥
सिंहिकायामथोत्पन्ना विप्रचित्तेः सुतास्तथा। दैत्यदानवसंयोगाज्जातास्तीव्रपराक्रमाः॥८६॥
सैंहिकेया इति ख्यातास्त्रयोदश महाबलाः।
वंशः शल्यश्च बलिनौ नलश्चैव तथा बलः॥८७॥

वातापिर्नमुचिश्चैव इल्वलः स्वसृमस्तथा। अञ्जिको नरकश्चैव कालनाभस्तथैव च॥८८॥
सरमानस्तथा चैव स्वरकल्पश्च वीर्य्यवान्। एते वै दानवाः श्रेष्ठा दनोर्वंशविवर्धनाः॥८९॥

महातपोधन मरीचि ने अन्य चौदह सौ पौलोम तथा कालकेय नामक चौदह सौ हिरण्यपुर निवासीगण को उत्पन्न किया। ये सभी भगवान् ब्रह्मा से प्राप्त वर के कारण देवताओं से भी अवध्य थे, तथापि पाण्डुपुत्र अर्जुन द्वारा इनका वध कर दिया गया था। तदनन्तर अन्य महाबली अत्यन्त दारुण दानव भी थे। इनको विप्रचित्ति दानव ने सिंहिका से उत्पन्न किया था। इस दानव के तेरह पुत्र जो इस प्रकार दैत्य-दानव के संयोग से जन्मे थे, वे महान् बली, पराक्रमी तथा सैंहिकेय के नाम से प्रसिद्ध थे। ऐसे इन तेरह का नाम है बली, वंश, शल्य, नल, बल, वातापि, नमुचि, इल्वल, स्वसुम, अंजिक, नरक, कालनाभ, सरमान तथा महाबली स्वरकल्प। इन श्रेष्ठ दानवों द्वारा दनु के वंश की वृद्धि की गयी।।८३-८९।।

तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः।
संह्लादस्य तु दैत्यस्य निवातकवचाः कुले॥९०॥
समुत्पन्नाः सुमहता तपसा भावितात्मनः।
तिस्रः कोट्यः सुतास्तेषां मणिवत्यां निवासिनः॥९१॥
अवध्यास्तेऽपि देवानामर्ज्जुनेन निपातिताः।
षट्सुताः सुमहाभागास्ताम्रायाः परिकीर्त्तिताः॥९२॥
क्रौञ्ची श्येनी च भासी च सुग्रीवी शुचिगृध्रिका।
क्रौञ्ची तु जनयामास उलूकप्रत्यलूककान्॥९३॥

इनके पुत्र-पौत्र सैकड़ों-हजारों की संख्या में जन्मे थे। संह्लाद दैत्य के कुल में निवातकवच नामक महान् तपस्वी भावितात्मा पुत्रगण जन्मे थे। इनके सन्तान तीस करोड़ थे, जो मणिवति में रहते थे। ये देवताओं से अवध्य थे। इनका वध अर्जुन ने किया था। ताम्रा की महाभागा छः पुत्रियां थीं। उनके नाम हैं क्रौञ्ची, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, शुचि तथा गृध्रिका। क्रौंची से उलूक तथा प्रत्यलूकक पक्षी जन्मे।।९०-९३।।

श्येनी श्येनांस्तथा भासीभासान्गृध्रांश्च गृध्र्यरपि।
शुचिरौदकान्पक्षिगणान्सुग्रीवी तु द्विजोत्तमाः॥९४॥
अश्वानुष्ट्रान गर्द्दभांश्च ताम्रावंशः प्रकीर्त्तितः।
विनतायास्तु द्वौ पुत्रौ विख्यातौ गरुडारुणौ॥९५॥

गरुडः पततां श्रेष्ठो दारुणः स्वेन कर्म्मणा। सुरसायाः सहस्रन्तु सर्पाणाममितौजसाम्॥९६॥
अनेकशिरसां विप्राः खचराणां महात्मनाम्। काद्रवेयास्तु बलिनः सहस्रममितौजसः॥९७॥
सुपर्णवशगा नागा जज्ञिरे नैकमस्तकाः। येषां प्रधानाः सततं शेषवासुकितक्षकाः॥९८॥

श्येनी से बाज (श्येन पक्षी), भासी से भास, गृध्री से गिद्ध, शुचि से जलपक्षीगण, सुग्रीवी से घोड़े, ऊंट एवं गर्दभ जन्मे। यह ताम्रावंश कहा गया। विनता के दो प्रख्यात पुत्र थे गरुड़ एवं अरुण। श्रेष्ठ गरुड़

अपने कर्म से अत्यन्त भयानक हो गये। हे द्विजप्रवरगण! सुरसा ने आकाशचारी तेजस्वी, अनेक शिर वाले महात्मा एक सहस्र सर्पों को जन्म दिया। कद्रु ने महाबली, अति तेजस्वी अनेक मस्तक वाले नागों को जन्म दिया, जो सभी गरुड़ के वश में रहते थे। इनमें प्रधान थे शेष, वासुकि एवं तक्षक।।९४-९८।।

ऐरावतो महापद्मः कम्बलाश्वतरावुभौ। एलापत्रश्च शङ्खश्च कर्कोटकधनञ्जयौ॥९९॥
महानीलमहाकर्णौ धृतराष्ट्रबलाहकौ। कुहरः पुष्पदंष्ट्रश्च दुर्म्मुखः सुमुखस्तथा॥१००॥
शङ्खश्च शङ्खपालश्च कपिलो वामनस्तथा। नहुषः शङ्खरोमा च मणिरित्येवमादयः॥१०१॥

नागों के नाम इस प्रकार हैं। यथा—ऐरावत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, एलापत्र, शंख, कर्कोटक, महानील, महाकर्ण, धृतराष्ट्र, बलाहक, कुहर, पुष्पदंष्ट्र, दुर्मुख, सुमुख, शंख, शंखपाल, कपिल, वामन, नहुष, शंखरोमा, मणि आदि।।९९-१०१।।

तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः। चतुर्दशसहस्राणि क्रूराणामनिलाशिनाम्॥१०२॥
गणं क्रोधवशं विप्रास्तस्य सर्व्वे च दंष्ट्रिणः।
स्थलजाः पक्षिणोऽब्जाश्च धरायाः प्रसवाः स्मृताः॥१०३॥
गास्तु वै जनयामास सुरभिर्महिषीस्तथा।
इरा वृक्षलता वल्लीस्तृणजातीश्च सर्व्वशः॥१०४॥

हे द्विजों! इनके पुत्र-पौत्रों की संख्या सैकड़ों-हजारों कही गयी है। क्रूर सर्पगण चौदह सहस्र थे। ये क्रूर, क्रोधी तथा बड़े विषदन्तों वाले थे। हे विप्रगण! जलज तथा स्थलज सभी पक्षीगण धरा के सन्तान हैं। सुरभि ने गौ तथा भैसों को जन्म दिया। इरा से वृक्ष-लता-वल्ली-तृण जाति की उत्पत्ति हुई है।।१०२-१०४।।

खसा तु यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा। अरिष्टा तु महासिद्धा गन्धर्व्वानमितौजसः॥१०५॥
एते कश्यपदायादाः कीर्त्तिताः स्थाणुजङ्गमाः।
येषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः॥१०६॥
एष मन्वन्तरे विप्राः सर्गः स्वारोचिषे स्मृतः।
वैवस्वतेऽतिमहति वारुणे वितते क्रतौ॥१०७॥

खसा से यक्ष तथा राक्षसों, मुनि से अप्सराओं, महासिद्धा अरिष्टा से अत्यन्त तेजस्वी गन्धर्वों का जन्म हुआ। ये सभी स्थावर तथा जंगम कश्यप वंशी हैं। इनके पुत्रों-पौत्रों की संख्या शत-सहस्र है। हे द्विजप्रवरगण! यह सृष्टि स्वारोचिष मन्वन्तर की घटना है। अब मैं वैवस्वत मन्वन्तर में हुई सृष्टि का वर्णन करता हूं। यह प्रजासृष्टि वरुण के यज्ञ में ब्रह्मदेव द्वारा विस्तृत आहुति देने पर हो गई थी, वह भी मैं वर्णन करूंगा।।१०५-१०७।।

जुह्वानस्य ब्रह्मणो वै प्रजासर्ग इहोच्यते। पूर्व्वं यत्र समुत्पन्नान् ब्रह्मर्षीन् सप्त मानसान्॥१०८॥
पुत्रत्वे कल्पयामास स्वयमेव पितामहः।
ततो विरोधे देवानां दानवानां च भो द्विजाः॥१०९॥

दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम्। कश्यपस्तु प्रसन्नात्मा सम्यगाराधितस्तया॥११०॥
वरेण च्छन्दयामास सा च वव्रे वरं तदा। पुत्रमिन्द्रवधार्थाय समर्थममितौजसम्॥१११॥

यह ब्रह्मा का प्रजासर्ग है। पूर्व में ब्रह्मा ने सात ब्रह्मर्षिगण को पुत्र रूप से मानसी सृष्टि से उत्पन्न किया था। हे द्विजों! देव-दानव में विरोध होने पर (युद्ध होने पर) जब दिति के दैत्य पुत्रों का वध हो गया, तब दिति ने कश्यप को प्रसन्न किया था। उस समय दिति द्वारा सम्यक् रूप से आराधित होकर कश्यप प्रसन्न हो गये। प्रसन्नात्मा कश्यप ने उस समय दिति से कहा कि वर मांगो। उस समय दिति ने इन्द्र का वध कर सकने में अत्यन्त समर्थ तथा अमित तेजस्वी पुत्र का वर मांगा।।१०८-१११।।

स च तस्मै वरं प्रादात् प्रार्थितः सुमहातपाः।
दत्त्वा च वरमत्युग्रो मारीचः समभाषत॥११२॥

इन्द्रं पुत्रो निहन्ता ते गर्भं वै शरदां शतम्। यदि धारयसे शौचतत्परा व्रतमास्थिता॥११३॥

उन महातपस्वी मरीचिपुत्र कश्यप ने दिति को मनोवांछित वर प्रदान करके अत्यन्त उग्र भंगिमा के साथ दिति से कहा कि "तुम्हारा पुत्र तभी इन्द्र का वध करने वाला होगा यदि तुम पवित्रता के साथ व्रती रहकर सौ वर्ष तक इस गर्भ को धारण कर सकोगी"।।११२-११३।।

तथेत्यभिहितो भर्त्ता तया देव्या महातपाः।
धारयामास गर्भं तु शुचिः सा मुनिसत्तमाः॥११४॥
ततोऽभ्युपागमद्दित्यां गर्भमाधाय कश्यपः।
रोधयन् वै गणं श्रेष्ठं देवानाममितौजसम्॥११५॥

तेजः संहृत्य दुर्धर्षमवध्यममरैरपि। जगाम पर्व्वतायैव तपसे संशितव्रता॥११६॥

हे मुनिश्रेष्ठगण! दिति ने कहा—"ऐसा ही हो" महातपस्वी कश्यप से यह कहकर दिति पवित्रता पूर्वक गर्भ को धारण करने लगीं। उस समय कश्यप ने अमित तेजस्वी तथा देवताओं का भी रोध कर सकने वाले, देवगण के लिये भी अवध्य दुर्धर्ष तेज को दिति के गर्भ में स्थापित तपस्यार्थ कर पर्वत की ओर प्रस्थान किया।।११४-११६।।

तस्याश्चैवान्तरप्रेप्सुरभवत् पाकशासनः। जाते वर्षशते चास्या ददर्शान्तरमच्युतः॥११७॥

अकृत्वा पादयोः शौचं दितिः शयनमाविशत्।
निद्रां चाहारयामास तस्यां कुक्षिं प्रविश्य सः॥११८॥
वज्रपाणिस्ततो गर्भं सप्तधा तं न्यकृन्तयत्।
स पाट्यमानो गर्भोऽथ वज्रेण प्ररुरोद ह॥११९॥
मा रोदीरिति तं शक्रः पुनःपुनरथाब्रवीत्।
सोऽभवत् सप्तधा गर्भस्तमिन्द्रो रुषितः पुनः॥१२०॥

एकैकं सप्तधा चक्रे वज्रेणैवारिकर्षणः। मरुतो नाम ते देवा बभूवुर्द्विजसत्तमाः॥१२१॥

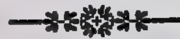
अब इन्द्र उस गर्भ में प्रवेश करने का अवसर खोजने लगे। जब इस प्रकार अवसर खोजते हुये इन्द्र ने देखा कि दिति बिना पैरों को प्रक्षालित किये ही शय्या पर निद्रित हो गयीं, तभी उन्होंने दिति के गर्भ में (इस त्रुटि को देखकर) प्रवेश कर लिया। तत्पश्चात् वज्रपाणि इन्द्र ने गर्भ में जाकर वहां स्थित गर्भ का सात खण्ड अपने वज्र से कर दिया। तभी गर्भस्थ शिशु रुदन करने लगा। इस पर इन्द्र ने उससे कहा—"मत रोओ"। अब वह गर्भ सात खण्ड हो गया था। इन्द्र ने पुनः क्रोधित होकर गर्भ के एक-एक खण्ड के सात-सात टुकड़े कर दिये। हे द्विजसत्तम! इन्द्र के द्वारा मत रोओ कहे जाने के कारण वे उनचास गर्भखण्ड "मारुत्" मरुत् नामक देवता हो गये।।११७-१२१।।

यथोक्तं वै मघवता तथैव मरुतोऽभवन्। देवाश्चैकोनपञ्चाशत्सहाया वज्रपाणिनः॥१२२॥

तेषामेवं प्रवृत्तानां भूतानां द्विजसत्तमाः।
रोचयन् वै गणश्रेष्ठान् देवानाममितौजसाम्॥१२३॥
निकायेषु निकायेषु हरि प्रादात् प्रजापतीन्।
क्रमशस्तानि राज्यानि पृथुपूर्व्वाणि भो द्विजाः॥१२४॥
स हरिः पुरुषो वीरः कृष्णो जिष्णुः प्रजापतिः।
पर्जन्यस्तपनोऽनन्तस्तस्य सर्व्वमिदं जगत्॥१२५॥

भूतसर्गमिमं सम्यग् जानतो द्विजसत्तमाः। नावृत्तिभयमस्तीह परलोकभयं कुतः॥१२६॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे देवासुराणामुत्पत्तिकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः।।३।।



इन्द्र के कहे जाने पर वे मरुत् देवता कहलाये। वे उनचास देवता (वायु देवता) इन्द्र के सहायक हो गये। हे द्विजप्रवर! समस्त उत्पन्न प्राणीगण को तथा अमित तेजस्वी देवसमूह को प्रसन्नता प्रदाता हरि ने क्रमशः पृथु के पश्चात् काल में राज्यों के सभी समूहों को प्रजापतियों को प्रदान कर दिया। हे द्विजवरगण! ये हरि ही पुरुष, वीर, कृष्ण, जिष्णु, प्रजापति, मेघतपन (सूर्य) तथा अनन्त कहे जाते हैं। यह प्राणीमयी सृष्टि उनके ही द्वारा उत्पन्न होती है। हे द्विजसत्तमों! इस प्राणीसृष्टि को जो अच्छी तरह से जान लेता है, उसको इस संसार में पुनः आना नहीं पड़ता। ऐसे व्यक्ति को परलोक का भय क्या?।।१२२-१२६।।

।।तृतीय अध्याय समाप्त।।



अथ चतुर्थोऽध्यायः

ब्रह्मा द्वारा देवतागण का राज्याभिषेक, पृथु का चरित्र कथन

लोमहर्षण उवाच

अभिषिच्याधिराजेन्द्रं पृथुं वैन्यं पितामहः। ततः क्रमेण राज्यानि व्यादेष्टुमुपचक्रमे॥१॥
द्विजानां वीरुधां चैव नक्षत्रग्रहयोस्तथा। यज्ञानां तपसां चैव सोमं राज्येऽभ्यषेचयत्॥२॥
अपां तु वरुणं राज्ये राज्ञां वैश्रवणं पतिम्।
आदित्यानां तथा विष्णुं वसूनामथ पावकम्॥३॥

लोमहर्षण कहते हैं—ब्रह्मा वेन के पुत्र पृथु का राज्याभिषेक करने के पश्चात् क्रमशः राज्यों में घूमने लगे। उन्होंने सोमराजा को ब्राह्मण, लता, नक्षत्र, ग्रह, यज्ञ तथा तप के राजा के रूप में अभिषिक्त किया था। उन्होंने जल का राज्य वरुणदेव को प्रदान किया था। उन्होंने कुबेर को राजाओं का स्वामित्व ग्रहण किया। उन्होंने आदित्यों का राजा विष्णु को बनाया तथा अग्नि को वसुओं का राजा बनाया।।१-३।।

प्रजापतीनां दक्षं तु मरुतामथ वासवम्। दैत्यानां दानवानां वै प्रह्लादममितौजसम्॥४॥
वैवस्वतं पितृणाञ्च यमं राज्येऽभ्यषेचयत्। यक्षाणां राक्षसानाञ्च पार्थिवानां तथैव च॥५॥
सर्व्वभूतपिशाचानां गिरीशं शूलपाणिनम्। शैलानां हिमवन्तञ्च नदीनामथ सागरम्॥६॥

उन्होंने दक्ष को प्रजापतियों का, इन्द्र को मरुतों का तथा दैत्य-दानवों का अधिपति अमित तेजस्वी प्रह्लाद को बनाया। ब्रह्मा ने सूर्यतनय यम को पितृगण का स्वामी बनाकर सभी भूत, पिशाच, यक्ष, राक्षसों का अधिपति शूलपाणि महादेव को बनाया। उन्होंने पर्वतों का स्वामी हिमवान् को तथा नदियों का स्वामी सागर को बनाया।।४-६।।

गन्धर्व्वाणामधिपतिं चक्रे चित्ररथं प्रभुम्। नागानां वासुकिं चक्रे सर्पाणामथ तक्षकम्॥७॥
वारणानां तु राजानमैरावतमथादिशत्। उच्चैःश्रवसमश्वानां गरुडञ्चैव पक्षिणाम्॥८॥
मृगाणामथ शार्दूलं गोवृषन्तु गवां पतिम्। वनस्पतीनां राजानं प्लक्षमेवाभ्यषेचयत्॥९॥

उन प्रभु ने गन्धर्वों का अधिपति चित्ररथ को, नागों का वासुकि को तथा सर्पों का अधिपति तक्षक सर्प को बनाया। उन्होंने ऐरावत को गजों का, उच्चैःश्रवा को अश्वों का, गरुड़ को पक्षियों का, व्याघ्र को मृगों (वनपशुओं) का, वृषभ को गोगण का, वटवृक्ष को वनस्पतियों का अधिपति बनाया।।७-९।।

एवं विभज्य राज्यानि क्रमेणैव पितामहः।
दिशां पालानथ ततः स्थापयामास स प्रभुः॥१०॥

पूर्व्वस्यां दिशि पुत्रं तु वैराजस्य प्रजापतेः। दिशः पालं सुधन्वानं राजानं सोऽभ्यषेचयत्॥११॥
दक्षिणस्यां दिशि तथा कदर्दमस्य प्रजापतेः। पुत्रं शङ्खपदं नाम राजानं सोऽभ्यषेचयत्॥१२॥
पश्चिमस्यां दिशि तथा रजसः पुत्रमच्युतम्। केतुमन्तं महात्मानं राजानं सोऽभ्यषेचयत्॥१३॥

तथा हिरण्यरोमाणं पर्ज्जन्यस्य प्रजापतेः। उदीच्यां दिशि दुर्द्धर्षं राजानं सोऽभ्यषेचयत्॥१४॥

प्रभु पितामह ने इस प्रकार क्रम से राज्यों को विभक्त किया तथा उन्होंने दिशाओं को स्थापित किया। प्रजापति वैराज के पुत्र सुधन्वा को पूर्व दिशा का, प्रजापति कर्दम के पुत्र शंखपद को दक्षिण का, राजा रजस् के पुत्र महात्मा केतुमान् को पश्चिम दिशा का तथा प्रजापति पर्जन्य के पुत्र महातेजस्वी दुर्द्धर्ष हिरण्यरोमा को उत्तर दिशा का राजा नियुक्त किया।।१०-१४।।

तैरियं पृथिवी सर्व्वा सप्तद्वीपा सपत्तना। यथाप्रदेशमद्यापि धर्म्मेण प्रतिपाल्यते॥१५॥
राजसूयाभिषिक्तस्तु पृथुरेतैर्नराधिपैः। वेददृष्टेन विधिना राजा राज्ये नराधिपः॥१६॥

ये राजा सप्तद्वीपवती, नगरों, प्रदेशों वाली इस पृथिवी का धर्मतः पालन करने लगे। इन राजाओं ने राजाओं के अधिपति पद पर राजसूय यज्ञ में अभिषिक्त पृथु को स्थापित किया। यह वेदोक्त विधि-विधान से सम्पन्न किया गया।।१५-१६।।

ततो मन्वन्तरेऽतीते चाक्षुषेऽमिततेजसि। वैवस्वताय मनवे पृथिव्यां राज्यमादिशत्॥१७॥
तस्य विस्तरमाख्यास्ये मनोर्वैवस्वतस्य ह। भवतां चानुकूल्याय यदि श्रोतुमिहेच्छथ।
महदेतदधिष्ठानं पुराणे तदधिष्ठितम्॥१८॥

इस प्रकार अमित तेजयुक्त चाक्षुष मन्वन्तर जब व्यतीत हो गया, उस समय ब्रह्मा ने वैवस्वत मनु को पृथिवी के राज्य को संचालित करने का आदेश प्रदान किया। आप लोगों की यदि उनका विस्तृत विवरण सुनने की इच्छा होगी, तब मैं आप लोगों की अनुकूलता के लिये (प्रसन्नता के लिये) उसे कहूंगा। उन वैवस्वत मनु का महान् चरित् पुराणों में वर्णित है।।१७-१८।।

मुनय ऊचुः

विस्तरेण पृथोर्जन्म लोमहर्षण कीर्त्तय। यथा महात्मना तेन दुग्धा वेयं वसुन्धरा॥१९॥
यथा वापि नृभिर्दुग्धा यथा देवैर्महर्षिभिः। यथा दैत्यैश्च नागैश्च यथा यक्षैर्यथा द्रुमैः॥२०॥
यथा शैलैः पिशाचैश्च गन्धर्व्वैश्च द्विजोत्तमैः।
राक्षसैश्च महासत्त्वैर्यथा दुग्धा वसुन्धरा॥२१॥
तेषां पात्रविशेषांश्च वक्तुमर्हसि सुव्रत। वत्सक्षीरविशेषांश्च दोग्धारं चानुपूर्व्वशः॥२२॥
यस्माच्च कारणात् पाणिर्वेणस्य मथितः पुरा।
क्रुद्धैर्महर्षिभिस्तात कारणं तच्च कीर्त्तय॥२३॥

मुनिगण कहते हैं—हे आर्य लोमहर्षण! आप कृपा पूर्वक पृथु के जन्म का प्रसंग विस्तार पूर्वक कहिये। किस प्रकार से महात्मा पृथु ने धरती का दोहनकार्य किया था, किस प्रकार राजाओं, देवताओं, महर्षिगण, दैत्य-नाग-यक्ष-वृक्ष-पर्वत-पिशाच-गन्धर्व-श्रेष्ठ ब्राह्मणगण तथा महाबली राक्षसों ने पृथिवी का दोहन किया, वह कहिये। दोहन कार्य में प्रयुक्त विभिन्न पात्रों, विभिन्न वत्सों (बछड़ों) का वर्णन करते हुये विभिन्न दुग्ध तथा दोग्धा (दुहने वालों) का भी क्रमिक वर्णन करिये। हे लोमहर्षण! पूर्वकाल में क्रोधित ब्राह्मणगण ने जिस कारण से वेण के बाहु का मन्थनकार्य किया था, वह भी कहिये।।१९-२३।।

लोमहर्षण उवाच

शृणुध्वं कीर्त्तयिष्यामि पृथोर्वैण्यस्य विस्तरम्। एकाग्राः प्रयताश्चैव पुण्यार्थं वै द्विजर्षभाः॥२४॥
नाशुचेः क्षुद्रमनसो नाशिष्यस्याव्रतस्य च। कीर्त्तयेयमिदं विप्राः कृतघ्नायाहिताय च॥२५॥
स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं धन्यं वेदैश्च सम्मितम्। रहस्यमृषिभिः प्रोक्तं शृणुध्वं वै यथातथम्॥२६॥
यश्चेमं कीर्त्तयेन्नित्यं पृथोर्वैण्यस्य विस्तरम्। ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य न स शोचेत्कृताकृतम्॥२७॥

लोमहर्षण कहते हैं—हे ब्राह्मणप्रवरगण! मैं सविस्तार वेणपुत्र पृथु का वर्णन करता हूं। आप सभी लोग पुण्य पाने के लिये उसे एकाग्रता पूर्वक तथा सप्रयत्न श्रवण करिये। अपवित्र, क्षुद्र मन वाले, जो शिष्य नहीं हैं, जो व्रती नहीं हैं, जो कृतघ्न हैं, जिसने शत्रुता रखी हो, ऐसे कुपात्रों से यह रहस्य कहना वर्जित है। ऋषिगण इस परम रहस्य को स्वर्ग-यश-धन-आयुप्रद एवं वेदविहित बताते हैं। अब आप लोग इसे यथावत् श्रवण करिये। जो मानव वेणपुत्र पृथु के इस उपाख्यान के विस्तृत प्रसंग का श्रवण ब्राह्मणगण को प्रणाम करके सुनेगा, उसे अपने किये विहित किंवा अविहित कर्म से दुःख प्राप्त ही नहीं होगा।।२४-२७।।

आसीद्धर्मस्य सङ्गोप्ता पूर्व्वमत्रिसमः प्रभुः। अत्रिवंशे समुत्पन्नस्त्वङ्गो नाम प्रजापतिः॥२८॥
तस्य पुत्रोऽभवद्वेणो नात्यर्थं धर्म्मकोविदः। जातो मृत्युसुतायां वै सुनीथायां प्रजापतिः॥२९॥
स मातामहदोषेण तेन कालात्मजात्मजः। स्वधर्म्मं पृष्ठतः कृत्वा कामलोभेष्ववर्त्तत॥३०॥
मर्य्यादां भेदयामास धर्म्मोपेतां स पार्थिवः। वेदधर्म्मानतिक्रम्य सोऽधर्म्मनिरतोऽभवत्॥३१॥

पूर्वकाल में धर्म का रक्षण करने वाले, ऋषि अत्रि के समान प्रभुत्वपूर्ण प्रजापति अंग अत्रिवंश में जन्मे थे। उनका पुत्र वेण उनकी पत्नी मृत्युपुत्री सुनीथा के गर्भ से जन्मा था, जो धर्मज्ञ प्रजापति था, लेकिन अपने नाना मृत्यु के दोष के कारण उसने स्वधर्म की अनदेखी करके काम एवं क्रोधादि को अपना लिया। उसने धर्म की मर्यादा को छोड़ दिया। वह वेदधर्म का अतिक्रमण करता अधर्मनिरत हो गया।।२८-३१।।

निःस्वाध्यायवषट्काराः प्रजास्तस्मिन् प्रजापतौ।
प्रवृत्तं न पपुः सोमं हुतं यज्ञेषु देवताः॥३२॥
न यष्टव्यं न होतव्यमिति तस्य प्रजापतेः।
आसीत् प्रतिज्ञा क्रूरेयं विनाशं प्रत्युपस्थिते॥३३॥

उसके राजत्वकाल में समस्त प्रजा स्वाध्याय तथा वषट्कार (वैदिक मन्त्रादि) से रहित हो गयी। उस समय होम में आहुति दिये जाने पर भी देवता उस सोम का पान ही नहीं करते थे। इस प्रकार से विनाश उपस्थित होने पर उस प्रजापति ने क्रूरतापूर्ण आदेश प्रजा हेतु दिया।।३२-३३।।

अहमिज्यश्च यष्टा च यज्ञश्चेति भृगूद्वह। मयि यज्ञो विधातव्यो मयि होतव्यमित्यपि॥३४॥
तमतिक्रान्तमर्य्यादमाददानमसाम्प्रतम्। ऊचुर्महर्षयः सर्व्वे मरीचिप्रमुखास्तदा॥३५॥
वयं दीक्षां प्रवेक्ष्यामः संवत्सरगणान् बहून्।
अधर्म्मं कुरु मा वेण एष धर्म्मः सनातनः॥३६॥

वेण का यह क्रूर आदेश था कि अब मैं ही यज्ञ, यज्ञ के लिये उपयुक्त तथा याज्ञिक हूं। मेरे लिये ही यज्ञ तथा हवन करो (अर्थात् अन्य किसी देवता हेतु आहुति इत्यादि न देकर मेरे लिये ही प्रदान करो)। जब वह इस प्रकार मर्यादा लंघन करने लगा तथा यज्ञ में वह उपयुक्त हविभोक्ता न होकर भी यज्ञ भाग ग्रहण हेतु कहने लगा, तब उससे मरीचि आदि प्रधान ऋषिगण ने कहा कि "हे वेण! हम अनेक संवत्सर तक यज्ञों हेतु दीक्षित होते रहेंगे। यह सनातन धर्म है। तुम अधर्माचरण मत करो"।।३४-३६।।

निधनेऽत्रेः प्रसूतस्त्वं प्रजापतिरसंशयम्। प्रजाश्च पालयिष्येऽहमितीह समयः कृतः॥३७॥
तांस्तथा ब्रुवतः सर्व्वान्महर्षीनब्रवीत्तदा। वेणः प्रहस्य दुर्ब्बुद्धिरिममर्थमनर्थवित्॥३८॥

"तुम निःसंदिग्ध रूप से अत्रिवंश में जन्मे हो। अत्रि का देहान्त हो जाने पर तुम्हारी प्रतिज्ञा थी कि मैं प्रजाओं का पालन करूंगा।" महर्षिगण का यह कथन सुनकर दुर्बुद्धियुक्त तथा यथार्थ अर्थ को न समझ सकने वाले वेण ने (उपेक्षा पूर्वक) हंसते हुये कहा—।।३७-३८।।

वेण उवाच

स्रष्टा धर्म्मस्य कश्चान्यः श्रोतव्यं कस्य वा मया।
श्रुतवीर्य्यतपःसत्यैर्मया वा कः समो भुवि॥३९॥
प्रभवं सर्व्वभूतानां धर्म्माणां च विशेषतः। सम्मूढा न विदुर्नूनं भवन्तो मां विचेतसः॥४०॥
इच्छन् दहेयं पृथिवीं प्लावयेयं जलैस्तथा।
द्यां वै भुवं च रुन्धेयं नात्र कार्य्या विचारणा॥४१॥

वेण कहता है—मैं किसका उपदेश सुनूंगा? क्योंकि अन्य कौन धर्म का स्रष्टा है? श्रुत (ज्ञान) में, शक्ति-तप-सत्य में धरती पर मेरे समान अन्य कौन है? मैं विशेष रूप से धर्म का तथा सभी प्राणीगण की उत्पत्ति का स्थान हूं। आप सभी मूढ़ हैं, जो मुझे नहीं जान सके। मैं अपनी इच्छा मात्र से समस्त पृथिवी को दग्ध, जल से प्लावित करने में सक्षम हूं। मैं इच्छामात्र से जब चाहूं पृथिवी तथा आकाश को रुद्ध कर सकता हूं। इसमें अन्यथा सन्देह न करें।।३९-४१।।

यदा न शक्यते मोहादवलेपाच्च पार्थिवः। अपनेतुं तदा वेणस्ततः क्रुद्धा महर्षयः॥४२॥
तं निगृह्य महात्मानो विस्फुरन्तं महाबलम्। ततोऽस्य सव्यमूरुं ते ममन्थुर्जातमन्यवः॥४३॥
तस्मिन्निर्मथ्यमाने वै राज्ञ ऊरौ तु जज्ञिवान्।
ह्रस्वोऽतिमात्रः पुरुषः कृष्णश्चेति बभूव ह॥४४॥
स भीतः प्राञ्जलिर्भूत्वा तस्थिवान् द्विजसत्तमाः। तमत्रिर्विह्वलं दृष्ट्वा निषीदेत्यब्रवीत्तदा॥४५॥
निषादवंशकर्त्तासौ बभूव वदतां वराः। धीवरानसृजच्चापि वेणकल्मषसम्भवान्॥४६॥

जब मुनिगण राजा वेण को उसके मोह एवं इस प्रकार के विचार से मुक्त नहीं कर सके, तब वे सभी महर्षि वेण के प्रति अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। उन्होंने उस महाबली राजा को पकड़ा तथा उसकी बांयी जांघ का वे मंथन करने लगे। उस मन्थन से उस बांयी जांघ से एक अत्यन्त नाटा तथा काले वर्ण का पुरुष उत्पन्न हो गया

तथा वह हाथ जोड़कर डरता हुआ वहीं खड़ा हो गया। हे द्विजसत्तमगण! उस विह्वल पुरुष को देख कर ऋषि अत्रि ने उससे कहा—"निषीद!" (अर्थात् बैठ जाओ)। अतः वह निषाद कहलाया तथा निषाद वंश का आदिपुरुष और वेण के पापों से जन्मे धीवरों का स्रष्टा भी कहलाया।।४२-४६।।

ये चान्ये विन्ध्यनिलयास्तथा पर्व्वतसंश्रयाः।
अधर्म्मरुचयो विप्रास्ते तु वै वेणकल्मषाः॥४७॥

ततः पुनर्महात्मानः पाणिं वेणस्य दक्षिणम्। अरणीमिव संरब्धा ममन्थुर्जातमन्यवः॥४८॥

पृथुस्तस्मात् समुत्पन्नः कराज्ज्वलनसन्निभः।
दीप्यमानः स्ववपुषा साक्षादग्निरिव ज्वलन्॥४९॥

हे विप्रों! वेण के पापों से जन्मे सभी अधार्मिक बुद्धि वाले धीवरों ने विन्ध्यपर्वत को अपना निवास बनाया। वे अधर्म में रुचि रखने वाले थे। इसके पश्चात् मुनियों ने वेण की दाहिनी भुजा को यज्ञ की अरणि की तरह मथा। इससे वेण के दक्षिण बाहु से साक्षात् अग्निवत् ज्वलन्त अपने शरीर से दीप्त पृथु उत्पन्न हो गये।।४७-४९।।

अथ सोऽजगवं नाम धनुर्गृह्य महारवम्। शरांश्च दिव्यान् रक्षार्थं कवचं च महाप्रभम्॥५०॥

तस्मिन् जातेऽथ भूतानि सम्प्रहृष्टानि सर्व्वशः।
समापेतुर्महाभागा वेणस्तु त्रिदिवं ययौ॥५१॥

वे जन्म से ही प्रजा के रक्षणार्थ महान् शब्दयुक्त आजगव धनुष तथा दिव्य बाण एवं देहरक्षार्थ महाप्रभायुक्त दिव्य कवचधारी थे। हे महाभागगण! पृथु को जन्मा देखकर सभी प्राणीगण हर्षित हो गये तथा वे सभी पृथु के पास पहुंचे। उधर वेण मृत्यु के उपरान्त स्वर्ग चला गया।।५०-५१।।

समुत्पन्नेन भो विप्राः सत्पुत्रेण महात्मना। त्रातः स पुरुषव्याघ्रः पुन्नाम्नो नरकात्तदा॥५२॥
तं समुद्राश्च नद्यश्च रत्नान्यादाय सर्व्वशः। तोयानि चाभिषेकार्थं सर्व्व एवोपतस्थिरे॥५३॥
पितामहश्च भगवान् देवैराङ्गिरसैः सह। स्थावराणि च भूतानि जङ्गमानि च सर्व्वशः॥५४॥
समागम्य तदा वैण्यमभ्यषिञ्चन्नराधिपम्। महता राजराजेन प्रजास्तेनानुरञ्जिताः॥५५॥

हे विप्रगण! महात्मा सत्पुत्र का जन्म हो जाने के कारण पुरुषव्याघ्र वेण पुन्नाम नरक जाने से बच गया। उस समय राजा पृथु का अभिषेक करने के लिये समस्त समुद्र तथा नदियां अपने रत्नों तथा जल के साथ वहां उपस्थित हो गये। उस समय भगवान् पितामह ब्रह्मा आंगीरस ब्राह्मणों तथा देवता लोगों के साथ वहां आ गये और स्थावर-जंगम सभी प्राणीगण भी वहां आकर राजा वैण्य पृथु का अभिषेक कार्य करने लगे। उस महान् राजराजेश्वर ने प्रजा को अनुरंजित कर दिया।।५२-५५।।

सोऽभिषिक्तो महातेजा विधिवद्धर्म्मकोविदैः।
आधिराज्ये तदा राज्ञां पृथुर्वैण्यः प्रतापवान्॥५६॥

पित्रापरञ्जितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिताः। अनुरागात्ततस्तस्य नाम राजाभ्यजायत॥५७॥

उस समय धर्म के ज्ञाता लोगों ने महातेजस्वी पृथु वैण्य का सविधि अभिषेक किया। ये पृथु अत्यन्त प्रतापी थे। उनके पिता वेण की दुष्प्रवृत्ति के कारण वेण की प्रजा उससे दुःखी रहती थी। उस प्रजा को पृथु ने अपने प्रति अनुरक्त कर लिया। प्रजा पृथु की अनुरागिणी हो गयी, अतः उनका नाम पृथु कहा जाने लगा।।५६-५७।।

आपस्तस्तम्भिरे तस्य समुद्रमभियास्यतः। पर्व्वताश्च ददुर्म्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाभवत्॥५८॥

अकृष्टपच्या पृथिवी सिध्यन्त्यन्नानि चिन्तनात्।
सर्व्वकामदुघा गावः पुटके पुटके मधु॥५९॥

एतस्मिन्नेव काले तु यज्ञे पैतामहे शुभे। सूतः सूत्यां समुत्पन्नः सौत्येऽहनि महामतिः॥६०॥

राजा पृथु का ऐसा प्रभाव था कि जब वे समुद्र की ओर जाते, तब समुद्र स्तम्भित हो जाता। पर्वत उसके लिये मार्ग छोड़ देते थे। उसके रथ की पताका कभी भी नत नहीं होती थी। उसके द्वारा चिन्तन मात्र से बिना बीज वपन किये ही पृथिवी अन्न उत्पन्न कर देती थी। गौयें इच्छा करते ही दुग्ध प्रदान करतीं। वृक्ष के प्रत्येक पत्र पुटक में मधु भरा रहता था। ऐसे समय में ब्रह्मा के शुभ महायज्ञ के सूत से महामति सूत सौत्य नामक दिन में उत्पन्न हो गये।।५८-६०।।

तस्मिन्नेव महायज्ञे जज्ञे प्राज्ञोऽथ मागधः।
पृथोः स्तवार्थं तौ तत्र समाहूतौ महर्षिभिः॥६१॥

तावूचुर्ऋषयः सर्व्वे स्तूयतामेष पार्थिवः। कर्म्मैतदनुरूपं वां पात्रं चायं नराधिपः॥६२॥

इसी महायज्ञ के समय प्राज्ञबुद्धि मागध भी उत्पन्न हो गया। उस समय मुनियों ने सूत तथा मागध को वहां पृथु का स्तव करने हेतु बुलाया। ऋषिगण ने उनसे कहा कि "तुम लोग राजा की स्तुति करो। यह कार्य तुम्हारे अनुरूप है तथा राजा इसका उत्तम पात्र भी है"।।६१-६२।।

तावूचतुस्तदा सर्व्वांस्तानृषीन् सूतमागधौ।
आवां देवानृषींश्चैव प्रीणयावः स्वकर्म्मभिः॥६३॥
न चास्य विद्मो वै कर्म्म नाम वा लक्षणं यशः।
स्तोत्रं येनास्य कुर्य्याव राज्ञस्तेजस्विनो द्विजाः॥६४॥

सूत-मागध कहते हैं—हे द्विजगण! हम देवता तथा ऋषियों को अपने कार्य से प्रसन्न करेंगे, तथापि हम दोनों इन तेजस्वी राजा के कर्म-नाम-लक्षण-यश को नहीं जानते। अतः इनकी स्तुति हम किस प्रकार कर सकेंगे?।।६३-६४।।

ऋषिभिस्तौ नियुक्तौ तु भविष्यैः स्तूयतामिति।
यानि कर्म्माणि कृतवान् पृथुः पश्चान्महाबलः॥६५॥
ततः प्रभृति वै लोके स्तवेषु मुनिसत्तमाः।
आशीर्वादाः प्रयुज्यन्ते सूतमागधवन्दिभिः॥६६॥

तयोः स्तवान्ते सुप्रीतः पृथुः प्रादात्प्रजेश्वरः। अनूपदेशं सूताय मगधं मागधाय च॥६७॥

ऋषिगण कहते हैं—"तुम लोग इनके भविष्य के कर्मों को जानकर उससे स्तुति करो।" हे मुनिश्रेष्ठ! उस समय से महाबली पृथु जो-जो कर्म करते, उन सबसे वे सूत-मागध-बन्दी लोग राजा को आशीर्वाद देते हुये उनका वर्णन करने लगे। स्तव के अन्त में प्रसन्न होकर प्रजा के ईश्वर पृथुराज ने अनूप देश सूत को प्रदान किया तथा मगध देश मागध को प्रदान किया।।६५-६७।।

तं दृष्ट्वा परमप्रीताः प्रजाः प्रोचुर्मनीषिणः।
वृत्तीनामेष वो दाता भविष्यति नराधिपः॥६८॥

ततो वैण्यं महात्मानं प्रजाः समभिदुद्रुवुः। त्वं नो वृत्तिं विधत्स्वेति महर्षिवचनात्तदा॥६९॥

सोऽभिद्रुतः प्रजाभिस्तु प्रजाहितचिकीर्षया। धनुर्गृह्य पृषत्कांश्च पृथिवीमाद्रवद्बली॥७०॥

मनीषी लोगों ने ऐसे पृथु को देख कर परम प्रसन्नता के साथ प्रजा से कहा—"ये राजा तुम सबको वृत्ति देने वाले होंगे।" यह सुनकर महात्मा वेणपुत्र पृथु के पास प्रजावर्ग जाकर कहने लगे "आप हमें जीविका दीजिये।" उस समय महर्षियों के उपरोक्त आदेश के कारण प्रजा से आवेष्ठित राजा पृथु ने प्रजा के हित की कामना के साथ धनुष तथा बाण लेकर पृथिवी के पीछे दौड़ना प्रारंभ किया।।६८-७०।।

ततो वैण्यभयत्रस्ता गौर्भूत्वा प्राद्रवन्मही। तां पृथुर्धनुरादाय द्रवन्तीमन्वधावत॥७१॥

सा लोकान् ब्रह्मलोकादीन् गत्वा वैण्यभयात्तदा। प्रददर्शाग्रतो वैण्यं प्रगृहीतशरासनम्॥७२॥

ज्वलद्भिर्निशितैर्बाणैर्दीप्ततेजसमन्ततः। महायोगं महात्मानं दुर्द्धर्षममरैरपि॥७३॥

यह देखकर पृथु के भय से भयग्रस्त पृथिवी कांपने लगी। वह गोरूप धारण करके भागने लगी। धनुष-बाणधारी राजा पृथु भी पृथिवी का पीछा करने लगे। राजा वैण्य पृथु के भय से ग्रस्त पृथिवी भागते-भागते ब्रह्मलोकादि समस्त लोकों में गयी, तथापि उसने सर्वत्र दीप्त एवं तीक्ष्ण बाण की द्युति से कान्तिमान, महायोगी, महात्मा, देवगण के लिये भी दुर्द्धर्ष पृथु को पीछा करते ही देखा!।।७१-७३।।

अलभन्ती तु सा त्राणं वैण्यमेवान्वपद्यत। कृताञ्जलिपुटा भूत्वा पूज्या लोकैस्त्रिभिस्तदा॥७४॥

उवाच वैण्यं नाधर्म्मं स्त्रीवधे परिपश्यसि।
कथं धारयिता चासि प्रजा राजन् विना मया॥७५॥
मयि लोकाः स्थिता राजन्मयेदं धार्य्यते जगत्।
मद्विनाशे विनश्येयुः प्रजाः पार्थिवः विद्धि तत्॥७६॥

न मामर्हसि हन्तुं वै श्रेयश्चेत्त्वं चिकीर्षसि। प्रजानां पृथिवीपाल शृणु चेदं वचो मम॥७७॥

उपायतः समारब्धाः सर्व्वे सिध्यन्त्युपक्रमाः।
उपायं पश्य येन त्वं धारयेथाः प्रजामिमाम्॥७८॥

इस प्रकार जब पृथिवी ने कहीं भी त्राण नहीं पाया, तब वह राजा वैण्य पृथु की शरण में गई। वह तीनों लोकों में पूजिता वसुन्धरा हाथ जोड़कर राजा पृथु से कहने लगी—"हे राजन्! क्या आप स्त्रीवध जनित

अधर्म को नहीं देख रहे हैं? हे राजन्! मेरा वध हो जाने पर आप मेरे बिना प्रजा धारण कार्य किस प्रकार कर सकेंगे? हे राजन्! समस्त लोकों की स्थिति मुझमें ही है। मैं ही जगत् को धारण करती हूं। हे राजन्! यह जान लीजिये कि मेरा नाश होते ही प्रजा का भी नाश हो जायेगा। यदि आप प्रजा का हित तथा श्रेय चाहते हैं, तब मेरा वध न करें। हे पृथिवीपालक! आप मेरा कथन सुनिये। उपाय का अवलम्बन लेने से सभी कार्य सम्पन्न हो सकते हैं। आप वह उपाय करिये, जिससे प्रजा को धारण किया जा सके"।।७४-७८।।

हत्वापि मां न शक्तस्त्वं प्रजानां पोषणं नृप।
अनुकूला भविष्यामि यच्छ कोपं महामते॥७९॥
अवध्यां च स्त्रियं प्राहुस्तिर्य्यग्योनिगतेष्वपि। यद्येवं पृथिवीपाल न धर्म्मं त्यक्तुमर्हसि॥८०॥
एवं बहुविधं वाक्यं श्रुत्वा राजा महामनाः। कोपं निगृह्य धर्म्मात्मा वसुधामिदमब्रवीत्॥८१॥

"हे नृप! मेरी हत्या करके प्रजा का पोषण कर सकना संभव ही नहीं है। हे महामति! आप कोप त्यागें। मैं आपके अनुकूल कार्य करूंगी। स्त्रियां पक्षीयोनि तक में अवध्य कही गयी हैं। हे पृथिवीपाल! इस नियम के कारण आप धर्म का त्याग मत करिये।" इस प्रकार के पृथिवी के वाक्यों को सुनकर महामना राजा का क्रोध शान्त हो गया। वे धर्मात्मा राजा पृथिवी से कहने लगे।।७९-८१।।

पृथुरुवाच

एकस्यार्थे तु यो हन्यादात्मनो वा परस्य वा।
बहून् वा प्राणिनोऽनन्तं भवेत्तस्येह पातकम्॥८२॥
सुखमेधन्ति बहवो यस्मिंस्तु निहतेऽशुभे। तस्मिन् हते नास्ति भद्रे पातकं चोपपातकम्॥८३॥
सोऽहं प्रजानिमित्तं त्वां हनिष्यामि वसुन्धरे। यदि मे वचनान्नाद्य करिष्यसि जगद्धितम्॥८४॥
त्वां निहत्याद्य बाणेन मच्छासनपराङ्मुखीम्।
आत्मानं प्रथयित्वाहं प्रजा धारयिता स्वयम्॥८५॥

राजा पृथु कहते हैं—जो स्वयं के लिये किसी एक का अथवा अनेक प्राणियों का वध करता है, वह प्रचुर पाप का (अनन्त पातकों का) भागी हो जाता है। लेकिन यदि किसी एक पातकी का वध कर देने से अनेक सुखी हो जायें, ऐसे का वध करने पर न तो पाप लगता है, न उपपातक ही लगता है। (जिस पापी के वध से अनेक सुखी हों, वह पाप नहीं है)। हे भद्र, पृथिवी! वसुन्धरे! यदि तुम मेरा वचन मानकर जगत् का हित नहीं करती, तब मैं प्रजा के हितार्थ तुम्हारा वध कर दूंगा। मेरे आदेश तथा शासन से विमुख तुम्हारा बाणों से वध करके मैं स्वयं आत्मविस्तार करके प्रजा को स्वयं धारण करूंगा।।८२-८५।।

सा त्वं शासनमास्थाय मम धर्म्मभृतां वरे।
सञ्जीवय प्रजाः सर्व्वाः समर्था ह्यसि धारणे॥८६॥
दुहितृत्वं च मे गच्छ तत एनमहं शरम्। नियच्छेयं त्वद्वधार्थमुद्यन्तं घोरदर्शनम्॥८७॥

हे उत्तमधर्म वाली! यदि तुम मेरा शासन मानती हो, तब तुम प्रजा का पालन करो। इनको धारण कर

सकने में तुम पूर्ण समर्थ हो। यदि तुम मेरी पुत्री होना स्वीकार करो, तभी तुम्हारे वधार्थ धनुष पर चढ़ाया गया यह घोर प्रतीत होने वाला बाण मैं उतार लूंगा।।८६-८७।।

वसुधोवाच

सर्व्वमेतदहं वीर विधास्यामि न संशयः। वत्सं तु मम सम्पश्य क्षरेयं येन वत्सला॥८८॥
समाञ्च कुरु सर्व्वत्र मां त्वं धर्मभृतां वर। यथा विस्यन्दमानं मे क्षीरं सर्व्वत्र भावयेत्॥८९॥

धरती कहती हैं—हे वीर! आपने जो कुछ कहा है, मैं उसको शिरोधार्य करती हूं। इसमें संशय नहीं है। आप मेरे लिये ऐसा बछड़ा खोजिये, जिसके कारण मैं वात्सल्य पूर्वक दुग्ध प्रदान करूं। हे धर्मात्मा! आप मुझे सर्वत्र समतल कर दीजिये। इस प्रकार मेरे स्तनों से गिरता दुग्ध सर्वत्र जा सके।।८८-८९।।

लोमहर्षण उवाच

तत उत्सारयामास शैलाञ्शतसहस्रशः। धनुष्कोट्या तदा वैण्यस्तेन शैला विवर्द्धिताः॥९०॥
न हि पूर्व्वविसर्गे वै विषमे पृथिवीतले। संविभागःपुराणां वा ग्रामाणां वाभवत्तदा॥९१॥

न शस्यानि न गोरक्ष्यं न कृषिर्न वणिक्पथः।
नैव सत्यानृतं चासीन्न लोभो न च मत्सरः॥९२॥
वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन् साम्प्रतं समुपस्थिते।
वैण्यात्प्रभृति वै विप्राः सर्व्वस्यैतस्य सम्भवः॥९३॥

लोमहर्षण कहते हैं—यह सुनकर राजा पृथु ने शत-सहस्र पर्वतों को धनुष की कोटि (अग्रभाग) से उखाड़ दिया। इससे शैल बिखर गये। पूर्व सृष्टि में पृथिवीतल समतल न होकर विषम था। पुर तथा ग्राम विभाग तब नहीं थे। उस समय अन्न, गोरक्षणकार्य, कृषि, वणिक् मार्ग, सत्य-मिथ्या, लोभ-मत्सर (ईर्ष्या) आदि नहीं थे। हे द्विजप्रवर! जब वैवस्वत मन्वन्तर आया था, तभी यह सब उत्पन्न हुये। तब पृथु के राज्यकाल में इनकी वृद्धि हो गयी।।९०-९३।।

यत्र यत्र समं त्वस्या भूमेरासीत्तदा द्विजाः। तत्र तत्र प्रजाः सर्व्वा विवासं समरोचयन्॥९४॥
आहारः फलमूलानि प्रजानामभवत्तदा। कृच्छ्रेण महता युक्त इत्येवमनुशुश्रुम॥९५॥

सा कल्पयित्वा वत्सं तु मनुं स्वायम्भुवं प्रभुम्।
स्वपाणौ पुरुषव्याघ्रो दुदोह पृथिवीं ततः॥९६॥
शस्यजातानि सर्व्वाणि पृथुर्वैण्यः प्रतापवान्।
तेनान्नेन प्रजाः सर्व्वा वर्त्तन्तेऽद्यापि सर्व्वशः॥९७॥

हे विप्रगण! जहां-जहां की भूमि समतल थी, वहां सभी प्रजा निवास करने लगी। उस काल में महान् श्रम से प्रजावर्ग को फल-मूल का भोजन प्राप्त होता था, यह सुना गया है। पुरुषव्याघ्र पृथु ने अपने हाथों से उस समय समर्थ स्वायम्भुव मनु को बछड़ा बनाया। उस दोहन से सभी अन्न धरती से उत्पन्न हो गये। उन अन्नादि से ही सर्वदा प्रजा का पोषण होता रहता है।।९४-९७।।

ऋषयश्च तदा देवाः पितरोऽथ सरीसृपाः।
दैत्या यक्षाः पुण्यजना गन्धर्व्वाः पर्व्वता नगाः॥९८॥
एते पुरा द्विजश्रेष्ठा दुदुहुर्धरणीं किल। क्षीरं वत्सश्च पात्रं च तेषां दोग्धा पृथक्पृथक्॥९९॥

हे द्विजसत्तमगण! तब ऋषि, देवता, पितर, सरीसृप, दैत्य, यक्ष, पुण्यात्मा गन्धर्व, पर्वत, वृक्षादि ने भी पृथिवी का दोहन किया। हे ब्राह्मणगण! इनके दुहते समय प्रत्येक वर्ग हेतु बछड़ा, दोहन पात्र, दोग्धा (दुहने वाला) तथा दुग्ध पृथक्-पृथक् होते थे।।९८-९९।।

ऋषीणामभवत्सोमो वत्सो दोग्धा बृहस्पतिः।
क्षीरं तेषां तपो ब्रह्म पात्रं छन्दांसि भो द्विजाः॥१००॥

ऋषिगण द्वारा दुहते समय सोम थे बछड़ा, दोग्धा बृहस्पति तथा दोहनपात्र वेद थे। उसमें तपरूपी दुग्ध का दोहन किया गया।।१००।।

देवानां काञ्चनं पात्रं वत्सस्तेषां शतक्रतुः। क्षीरमोजस्करं चैव दोग्धा च भगवान्रविः॥१०१॥
पितॄणां राजतं पात्रं यमो वत्सः प्रतापवान्।
अन्तकश्चाभवद्दोग्धा क्षीरं तेषां सुधा स्मृता॥१०२॥

देवगण ने स्वर्णपात्र में दुग्ध दोहन किया। दोग्धा थे भगवान् सूर्य, गोवत्स थे इन्द्र तथा ओजरूपी दुग्ध का उन्होंने दोहन किया। पितृगण ने रजतपात्र में अमृतरूपी दुग्ध दोहन किया। इसमें दोग्धा थे काल, बछड़ा थे यम।।१०१-१०२।।

नागानां तक्षको वत्सः पात्रं चालाबुसंज्ञकम्।
दोग्धा त्वैरावतो नागस्तेषां क्षीरं विषं स्मृतम्॥१०३॥

नागगण ने तक्षक को बछड़ा, लौकी भी तूबी को दोहन पात्र, ऐरावत नाग को दोग्धा बनाया तथा विषरूपी दुग्ध का दोहन किया।।१०३।।

असुराणां मधुर्दोग्धा क्षीरं मायामयं स्मृतम्।
विरोचनस्तु वत्सोऽभूदायसं पात्रमेव च॥१०४॥

दैत्यों ने मधु दैत्य को दोग्धा, विरोचन को बछड़ा बनाया। उन्होंने लौह पात्र में मायारूपी दुग्ध का दोहन किया।।१०४।।

यक्षाणामामपात्रं तु वत्सो वैश्रवणः प्रभुः।
दोग्धा रजतनाभस्तु क्षीरान्तर्धानमेव च॥१०५॥

यक्षगण ने कुबेर को वत्स, रजतनाभ यक्ष को दोग्धा बनाया तथा कांच के पात्र में अन्तर्ध्यान विद्यारूपी दुग्ध का दोहन किया।।१०५।।

सुमाली राक्षसेन्द्राणां वत्सं क्षीरं च शोणितम्।
दोग्धा रजतनाभस्तु कपालं पात्रमेव च॥१०६॥

राक्षसगण ने सुमाली को वत्स, रजतनाभ को दोग्धा बनाकर कपाल पात्र में रक्तरूपी दुग्ध का दोहन किया।।१०६।।

गन्धर्व्वाणां चित्ररथो वत्सः पात्रं च पङ्कजम्।
दोग्धा च सुरुचिः क्षीरं तेषां गन्धः शुचिः स्मृतः॥१०७॥

गन्धर्वों ने चित्ररथ को वत्स, सुरुचि को दोग्धा बनाकर कमल पात्र में पवित्र गन्धमय दुग्ध को दुहा।।१०७।।

शैलं पात्रं पर्व्वतानां क्षीरं रत्नौषधीस्तथा। वत्सस्तु हिमवानासीद्दोग्धा मेरुर्महागिरिः॥१०८॥

पर्वतों ने शिला के पात्र में रत्न-औषधिरूप दुग्ध का दोहन किया। इसमें दोग्धा थे सुमेरु, वत्स थे हिमालय।।१०८।।

प्लक्षो वत्सस्तु वृक्षाणां दोग्धा शालस्तु पुष्पितः।
पालाशपात्रं क्षीरञ्च छिन्नदग्धप्ररोहणम्॥१०९॥

वृक्षों ने पाकड़ वृक्ष को वत्स, पुष्पित साखू को दोग्धा बनाकर पलाश पात्र में यत्र-तत्र कटे-जले प्ररोहों से निकला कोपलरूप दुग्ध दुहा।।१०९।।

सेयं धात्री विधात्री च पावनी च वसुन्धरा।
चराचरस्य सर्व्वस्य प्रतिष्ठा योनिरेव च॥११०॥

सर्व्वकामदुघा दोग्ध्री सर्व्वशस्यप्ररोहणी। आसीदियं समुद्रान्ता मेदिनी परिविश्रुता॥१११॥
मधुकैटभयोः कृत्स्ना मेदसा समभिप्लुता। तेनेयं मेदिनी देवी उच्यते ब्रह्मवादिभिः॥११२॥

यह पृथिवी विधात्री, पावनी, वसुन्धरा, जननी, सर्वकामदुधा, सर्वशस्यप्ररोहिणी तथा मेदिनी कहलाती है। यह समुद्र तक विस्तृत है, जो मधु-कैटभ की मेद (चर्बी) से व्याप्त होने के कारण ब्रह्मवादीगणों द्वारा मेदिनी कही जाती है।।११०-११२।।

ततोऽभ्युपगमाद्राज्ञः पृथोर्वैण्यस्य भो द्विजाः। दुहितृत्वमनुप्राप्ता देवी पृथ्वीति चोच्यते॥११३॥
पृथुना प्रविभक्ता च शोधिता च वसुन्धरा। शस्याकरवती स्फीता पुरपत्तनशालिनी॥११४॥

इस पृथिवी को राजा पृथु ने पुत्रीरूप से अपनाया था। अतः ये पृथिवी कही गयी हैं। पृथु द्वारा इस धरती को विभक्त करके इसका संस्कार कार्य किया गया। उसी से यह धन-धान्य-ग्राम-नगर आदि प्रसिद्ध हो गये। इससे पृथिवी समृद्ध हो गयी।।११३-११४।।

एवम्प्रभावो वैण्यः स राजासीद्राजसत्तमः। नमस्यश्चैव पूज्यश्च भूतग्रामैर्न संशयः॥११५॥

तभी यह निःसंदिग्ध है कि इसी प्रकार प्रतापी श्रेष्ठ राजा पृथु जीवों में पूज्य तथा प्रणम्य बने, इसमें सन्देह नहीं है।।११५।।

ब्राह्मणैश्च महाभागैर्वेदवेदाङ्गपारगैः। पृथुरेव नमस्कार्य्यो ब्रह्मयोनिः सनातनः॥११६॥

पार्थिवैश्च महाभागैः पार्थिवत्वमिहेच्छुभिः।
आदिराजो नमस्कार्य्यः पृथुर्वैण्यः प्रतापवान्॥११७॥

योधैरपि च विक्रान्तैः प्राप्तुकामैर्जयं युधि।
आदिराजो नमस्कार्य्यो योधानां प्रथमो नृपः॥११८॥
यो हि योद्धा रणं याति कीर्त्तयित्वा पृथुं नृपम्।
सघोररूपात्संग्रामात् क्षेमी भवति कीर्तिमान्॥११९॥
वैश्यैरपि च वित्ताढ्यैर्वैश्यवृत्तिविधायिभिः। पृथुरेव नमस्कार्य्यो वृत्तिदाता महायशाः॥१२०॥
तथैव शूद्रैः शुचिभिस्त्रिवर्णपरिचारिभिः। पृथुरेव नमस्कार्य्यः श्रेयः परमिहेप्सुभिः॥१२१॥
एते वत्सविशेषाश्च दोग्धारः क्षीरमेव च।
पात्राणि च मयोक्तानि किं भूयो वर्णयामि वः॥१२२॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे पृथोर्जन्ममाहात्म्यकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥४॥



महाभाग वेद-वेदाङ्ग पारंगत ब्राह्मण सनातन ब्रह्मयोनि पृथु को प्रणाम किया करें। जो राजा लोग राज्यलाभ करना चाहते हैं, वे प्रतापवान् आदिराजा वेणपुत्र पृथु को नित्य नमस्कार करें। विक्रान्त योद्धा लोग की इच्छा युद्ध में जय पाने की होती है। ऐसे योद्धागण भी राजा पृथु को प्रणाम करें। जो योद्धा रण में पृथुराज का नाम कीर्त्तन करता जाता है, वह महाघोर संग्राम में भी कीर्त्तिलाभ करता है। महाधनी वैश्य भी वृत्तिप्रद राजा महायशयुक्त राजा पृथु को प्रणाम करें। इसी प्रकार से वर्णत्रय का सेवक पवित्र भाव वाला शूद्र भी परमफल प्राप्ति हेतु पृथुराज को प्रणाम करें। मैंने इस प्रकार से सभी वत्सों, दोग्धागण, दुग्धपात्र तथा दुग्ध का वर्णन कर दिया। अब आप क्या सुनना चाहते हैं?॥११६-१२२॥

॥चतुर्थ अध्याय समाप्त॥



अथ पञ्चमोऽध्यायः

मन्वन्तर कथा का आरंभ, महाप्रलय वर्णन

मुनय ऊचुः

मन्वन्तराणि सर्व्वाणि विस्तरेण महामते। तेषां पूर्व्वविसृष्टिं च लोमहर्षण कीर्त्तय॥१॥
यावन्तो मनवश्चैव यावन्तं कालमेव च। मन्वन्तराणि भो सूत श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः॥२॥

मुनिगण कहते हैं—हे महामति लोमहर्षण! सभी मन्वन्तर तथा उनकी पूर्वसृष्टि का विस्तार पूर्वक वर्णन करिये। हम सभी यह सुनना चाहते हैं कि अब तक कितने मनु तथा मन्वन्तर हो गये हैं? आप कृपया तत्वतः कहिये॥१-२॥

लोमहर्षण उवाच

न शक्यो विस्तरो विप्रा वक्तुं वर्षशतैरपि। मन्वन्तराणां सर्व्वेषां संक्षेपाच्छृणुत द्विजाः॥३॥
स्वायम्भुवो मनुः पूर्व्वं मनुः स्वारोचिषस्तथा। उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा॥४॥
वैवस्वतश्च भो विप्राः साम्प्रतं मनुरुच्यते। सावर्णिश्च मनुस्तद्वद्रैभ्यो रौच्यस्तथैव च॥५॥
तथैव मेरुसावर्ण्यश्चत्वारो मनवः स्मृताः। अतीता वर्त्तमानश्च तथैवानागता द्विजाः॥६॥
कीर्त्तिता मनवस्तुभ्यं मयैवैते यथाश्रुताः। ऋषींस्त्वेषां प्रवक्ष्यामि पुत्रान् देवगणांस्तथा॥७॥

लोमहर्षण कहते हैं—हे ऋषिगण! मैं सौ वर्षों में भी यह वर्णन विस्तार पूर्वक नहीं कह सकता। हे द्विजगण! सभी मन्वन्तरों का वर्णन संक्षेप में सुनिये। सर्वप्रथम स्वायम्भुव मनु उत्पन्न हुये। तदनन्तर एक के बाद एक करके स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत एवं चाक्षुष मनु उत्पन्न हुये। हे द्विजों! इस समय के मनु हैं वैवस्वत मनु। अन्य चार सावर्णि, रैम्य, रौच्य तथा मेरुसावर्ण्य भी मनु कहे गये हैं। हे द्विजों! अतीत, अनागत तथा वर्तमान मनुओं के सम्बन्ध में मैंने जो सुना था, वह मैंने आप सबसे कह दिया। अब इन मन्वन्तरों के ऋषि, इन मनुगण के पुत्र तथा उन मन्वन्तरों के देवताओं का वर्णन करता हूं।।३-७।।

मरीचिरत्रिर्भगवानङ्गिराः पुलहः क्रतुः। पुलस्त्यश्च वशिष्ठश्च सप्तैते ब्रह्मणः सुताः॥८॥
उत्तरस्यां दिशि तथा द्विजाः सप्तर्षयस्तथा। आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च मेध्यो मेधातिथिर्वसुः॥९॥
ज्योतिष्मान्द्युतिमान्हव्यः सबलः पुत्रसंज्ञकः।
मनोः स्वायंभुवस्यैते दश पुत्रा महौजसः॥१०॥

ब्रह्मा के सात पुत्र (मानस पुत्र) मरीचि, अत्रि, भगवान् अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलत्स्य, वसिष्ठ हैं। हे ब्राह्मणगण! ये सातों सप्तर्षि उत्तर में रहते हैं। स्वायम्भुव मनु के महातेजस्वी दस पुत्र थे। उनके नाम हैं आग्नीध्र, अग्निबाहु, मेध्य, मेधातिथि, वसु, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य, सबल तथा पुत्र।।८-१०।।

एतद्वै प्रथमं विप्रा मन्वन्तरमुदाहृतम्। और्व्वो वसिष्ठपुत्रश्च स्तम्बः कश्यप एव च॥११॥
प्राणो बृहस्पतिश्चैव दत्तोऽत्रिश्च्यवनस्तथा। एते महर्षयो विप्रा वायुप्रोक्ता महाव्रताः॥१२॥
देवाश्च तुषिता नाम स्मृताः स्वारोचिषेऽन्तरे।
हविघ्नः सुकृतिर्ज्योतिरापोमूर्त्तिरपि स्मृतः॥१३॥
प्रतीतश्च नभस्यश्च नभ ऊर्जस्तथैव च। स्वारोचिषस्य पुत्रास्ते मनोर्विप्रा महात्मनः॥१४॥
कीर्त्तिताः पृथिवीपाला महावीर्य्यपराक्रमाः। द्वितीयमेतत्कथितं विप्रा मन्वन्तरं मया॥१५॥

हे ब्राह्मणों! यह प्रथम मन्वन्तर का प्रसंग कहा गया। स्वारोचिष मन्वन्तर में वसिष्ठ के पुत्र और्व, स्तम्ब, कश्यप, प्राण, बृहस्पति, दत्त, अत्रि तथा च्यवन ये ऋषि इस मन्वन्तर में हुये। इनका वर्णन महाव्रती वायु ने किया है। तुषित नामक देवता भी इसी मन्वन्तर में उत्पन्न हुये। इन स्वारोचिष मनु के महात्मा पुत्र पृथिवी पर प्रसिद्ध पृथिवीपालक तथा महावीर्य पराक्रमी थे। यथा—हविघ्न, सुकृति, ज्योति, आप, मूर्त्ति, प्रतीत, नभस्य, नभ तथा उर्ज। हे विप्रगण! यह मैंने द्वितीय मन्वन्तर का वर्णन किया है।।११-१५।।

इदं तृतीयं वक्ष्यामि तदबुध्यध्वं द्विजोत्तमाः।
वसिष्ठपुत्राः सप्तासन् वासिष्ठा इति विश्रुताः॥१६॥

हिरण्यगर्भस्य सुता ऊर्जा जाताः सुतेजसः। ऋषयोऽत्र मया प्रोक्ताः कीर्त्त्यमानान्निबोधत॥१७॥

हे द्विजोत्तमगण! अब मैं तृतीय मन्वन्तर को कहता हूं। आप सभी उसका श्रवण करें। वसिष्ठ के सात पुत्र वासिष्ठ कहे गये थे। हिरण्यगर्भ के पुत्र महातेजस्वी ऊर्ज नाम से विख्यात थे। ऋषियों का नाम मैंने पहले कह दिया (वे वासिष्ठ नामक सात ऋषि थे)।।१६-१७।।

औत्तमेयान्मुनिश्रेष्ठा दश पुत्रान्मनोरिमान्। इष ऊर्जस्तनूर्जस्तु मधुर्माधव एव च॥१८॥

शुचिः शुक्रः सहश्चैव नभस्यो नभ एव च। भानवस्तत्र देवाश्च मन्वन्तरमुदाहृतम्॥१९॥

हे मुनिश्रेष्ठगण! अब औत्तमी के दस पुत्रों का नाम कहता हूं। उसे सुनें। वे हैं इष, ऊर्ज, तनूर्ज, मधु, माधव, शुचि, शुक्र, सहनभस्य एवं नभ। इस मन्वन्तर के देवता थे भानु। यह तृतीय मन्वन्तर का मैंने वर्णन कर दिया।।१८-१९।।

मन्वन्तरं चतुर्थं वः कथयिष्यामि साम्प्रतम्।
काव्यः पृथुस्तथैवाग्निर्जह्नुर्धाता द्विजोत्तमाः॥२०॥
कपीवानकपीवांश्च तत्र सप्तर्षयो द्विजाः।
पुराणे कीर्त्तिता विप्राः पुत्राः पौत्राश्च भो द्विजाः॥२१॥

तथा देवगणाश्चैव तामसस्यान्तरे मनोः। द्युतिस्तपस्यः सुतपास्तपोभूतः सनातनः॥२२॥

तपोरतिरकल्माषस्तन्वी धन्वी परन्तपः। तामसस्य मनोरेते दश पुत्राः प्रकीर्त्तिताः॥२३॥

वायुप्रोक्ता मुनिश्रेष्ठाश्चतुर्थं चैतदन्तरम्। देवबाहुर्यदुध्रश्च मुनिर्व्वेदशिरास्तथा॥२४॥

हिरण्यरोमा पर्ज्जन्य ऊर्ध्वबाहुश्च सोमजः। सत्यनेत्रस्तथात्रेय एते सप्तर्षयोऽपरे॥२५॥

अब चतुर्थ मन्वन्तर का वर्णन सुनिये। हे द्विजोत्तमों! इस चतुर्थ मन्वन्तर में जो ऋषि हुये थे उनके नाम हैं काण्व, पृथु, अग्नि, जह्नु, धाता, कपीवान्, अकपीवान्। इस तामस मन्वन्तर के मनुपुत्रों एवं पौत्रों एवं देवगण का वर्णन पुराणों में अंकित है। तामस मनु के दस पुत्रों के नाम हैं द्युति, तपस्य, सुतपस, तपोभूत, सनातन, तप, अतिकल्माष, तन्वी, धन्वी, परन्तप। यह चतुर्थ मन्वन्तर का वर्णन है। यह वायुदेव का कथन है। तत्पश्चात् पंचम मन्वन्तर में देवबाहु, यदुध्र, ऋषि वेदशिरा, हिरण्यरोमा, पर्जन्य, सोमपुत्र ऊर्ध्वबाहु, अत्रिपुत्र सत्यनेत्र ही सप्तर्षि थे।।२०-२५।।

देवाश्चाभूतरजसस्तथा प्रकृतयः स्मृताः। वारिप्लवश्च रैभ्यश्च मनोरन्तरमुच्यते॥२६॥

अथ पुत्रानिमांस्तस्य बुध्यध्वं गदतो मम। धृतिमानव्ययो युक्तस्तत्त्वदर्शी निरुत्सुकः॥२७॥

आरण्यश्च प्रकाशश्च निर्म्मोहः सत्यवाक्कृती। रैवतस्य मनोः पुत्राः पञ्चमं चैतदन्तरम्॥२८॥

इस मन्वन्तर के देवता थे रज रहित प्रकृति। वारिप्लव तथा रैभ्य भी मनु कहे जाते हैं। अर्थात् उनके अन्तर रूप हैं। अब मनुपुत्रों के नाम सुनिये। यथा—धृतिमान्, अव्यय, युक्त, तत्वदर्शी, निरुत्सुक, आरण्य,

प्रकाश, निर्मोह, सत्यवाक् तथा कृति। ये सभी रैवत मनु के पुत्र हैं। यह पंचम मन्वन्तर का वर्णन मेरे द्वारा किया गया।।२६-२८।।

षष्ठं तु सम्प्रवक्ष्यामि तद्बुध्यध्वं द्विजोत्तमाः। भृगुर्नभो विवस्वांश्च सुधामा विरजास्तथा।।२९।।

अतिनामा सहिष्णुश्च सप्तैते च महर्षयः।
चाक्षुषस्यान्तरे विप्रा मनोर्देवास्त्विमे स्मृताः।।३०।।
आबालप्रथितास्ते वै पृथक्त्वेन दिवौकसः।
लेखाश्च नामतो विप्राः पञ्च देवगणाः स्मृताः।।३१।।

ऋषेरङ्गिरसः पुत्राः महात्मानो महौजसः। नाड्वलेयाः मुनिश्रेष्ठा दश पुत्रास्तु विश्रुताः।।३२।।

रुरुप्रभृतयो विप्राश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः। षष्ठं मन्वन्तरं प्रोक्तं सप्तमं तु निबोधत।।३३।।

हे ब्राह्मणप्रवरगण! अब षष्ठ मन्वन्तर कहता हूं। भृगु-नभ-विवस्वान्-सुधामा, विरजा, अतिनामा तथा सहिष्णु नामक सप्तम चाक्षुष मन्वन्तर के ऋषि थे। उस मन्वन्तर में लेखा नामक पांच देवता थे। उनके नामों को सभी जानते हैं। बालक से लगाकर वृद्धों तक को उनका नाम याद है। हे मुनिवर! अंगीरा मुनि के दस महापराक्रमी रुरु आदि पुत्र थे, जो नाड्वलेय कहे गये। चाक्षुष मन्वन्तर षष्ठ मन्वन्तर कहा गया है। उसका वर्णन करने के पश्चात् सप्तम मन्वन्तर कहता हूं, उसे श्रवण करें।।२९-३३।।

अत्रिर्वसिष्ठो भगवान् कश्यपश्च महानृषिः।
गौतमोऽथ भरद्वाजो विश्वामित्रस्तथैव च।।३४।।

तथैव पुत्रो भगवानृचीकस्य महात्मनः। सप्तमो जमदग्निश्च ऋषयः साम्प्रतं दिवि।।३५।।

साध्या रुद्राश्च विश्वे च वसवो मरुतस्तथा।
आदित्याश्चाश्विनौ चापि देवौ वैवस्वतौ स्मृतौ।।३६।।

मनोर्व्वैवस्वतस्यैते वर्त्तन्ते साम्प्रतेऽन्तरे। इक्ष्वाकुप्रमुखाश्चैव दश पुत्रा महात्मनः।।३७।।

एतेषां कीर्त्तितानान्तु महर्षीणां महौजसाम्।
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च दिक्षु सर्व्वासु भो द्विजाः।।३८।।
मन्वन्तरेषु सर्व्वेषु प्रागासन् सप्त सप्तकाः।
लोके धर्म्मव्यवस्थार्थं लोकसंरक्षणाय च।।३९।।

इस वैवस्वत मन्वन्तर काल में अत्रि, वसिष्ठ, प्रभु कश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र तथा ऋचीक महात्मा के पुत्र जमदग्नि ही सप्तर्षि हैं। वैवस्वत मन्वन्तर के देवगण हैं साध्य, रुद्र, विश्वेदेव, वसु, मरुत्, आदित्य तथा अश्विनीकुमार द्वय। इन वैवस्वत मनु के दस पुत्र कहे गये हैं, जो इक्ष्वाकु प्रभृति हैं। हे द्विजगण! इस प्रकार से सभी पूर्ववर्त्ती मन्वन्तरों में इन महान् तेजस्वी महर्षिगण का वर्णन मिलता है। साथ ही धर्म व्यवस्था एवं लोक संरक्षण हेतु इन महान् महर्षिगण के पुत्र-पौत्रों के सभी दिशाओं में सात-सात के सप्तक थे।।३४-३९।।

मन्वन्तरे व्यतिक्रान्ते चत्वारः सप्तका गणाः।
कृत्वा कर्म्म दिवं यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम्॥४०॥
ततोऽन्ये तपसा युक्ताः स्थानं तत्पूरयन्त्युत। अतीता वर्त्तमानाश्च क्रमेणैतेन भो द्विजाः॥४१॥
अनागताश्च सप्तैते स्मृताः दिवि महर्षयः। मनोरन्तरमासाद्य सावर्णस्येह भो द्विजाः॥४२॥
रामो व्यासस्तथात्रेयो दीप्तिमन्तो बहुश्रुताः। भारद्वाजस्तथा द्रौणिरश्वत्थामा महाद्युतिः॥४३॥
गौतमश्चाजरश्चैव शरद्वान्नाम गौतमः। कौशिको गालवश्चैव और्व्वः काश्यप एव च॥४४॥
एते सप्त महात्मानो भविष्या मुनिसत्तमाः।
वैरी चैवाध्वरीवांश्च शमनो धृतिमान् वसुः॥४५॥
अरिष्टश्चाप्यधृष्टश्च वाजी सुमतिरेव च। सावर्णस्य मनोः पुत्रा भविष्या मुनिसत्तमाः॥४६॥
एतेषां कल्यमुत्थाय कीर्त्तनात् सुखमेधते। यशश्चाप्नोति सुमहदायुष्मांश्च भवेन्नरः॥४७॥

जब मन्वन्तर व्यतीत हो जाता था, तब इन चारों सप्तकों के लोग अपने कर्म की समाप्ति हो जाने के कारण अनामय ब्रह्मलोक प्रस्थान करते थे। इसके पश्चात् अगले मन्वन्तर में अन्य तपयुक्त लोग उनके रिक्त स्थान की पूर्त्ति किया करते थे। हे द्विजों! अतीत-अनागत एवं भविष्य क्रम से यह कहा गया। इस प्रकार इसी क्रम से सप्तर्षिगण की स्थिति प्रत्येक मन्वन्तर में स्वर्ग में कही गयी है। हे द्विजों! सावर्णि मन्वन्तर में राम, वेदव्यास, आत्रेय, दीप्तिमान् बहुश्रुत भारद्वाज, महाद्युति द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, गौतम, अजर शरद्वानगौतम, कौशिक, गालव, और्व, काश्यप, ये महात्मा होंगे। हे मुनिप्रवरगण! वैरी, अध्वरीवान्, शमन, धृतिमान्, वसु, अरिष्ट, अधृष्ट, बाजी, सुमति ये महर्षि सावर्णि मनु के पुत्र होंगे। जो प्रातः उठकर इनका नाम स्मरण करता है, उस व्यक्ति को सुख, यश तथा दीर्घ आयु प्राप्त होती है।।४०-४७।।

एतान्युक्तानि भो विप्राः सप्तसप्त च तत्त्वतः।
मन्वन्तराणि संक्षेपाच्छृणु तानागतान्यपि॥४८॥
सावर्णा मनवो विप्राः पञ्च तांश्च निबोधत। एको वैवस्वतस्तेषां चत्वारस्तु प्रजापतेः॥४९॥
परमेष्ठिसुता विप्रा मेरुसावर्ण्यतां गताः। दक्षस्यैते हि दौहित्राः प्रियायास्तनया नृपाः॥५०॥
महता तपसा युक्ता मेरुपृष्ठे महौजसः। रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नाम मुनः स्मृतः॥५१॥

हे ब्राह्मणगण! मैंने तत्वतः इन सप्तकों का वर्णन कर दिया। अब आगामी मन्वन्तरों के सम्बन्ध में भी संक्षेप में कहा जा रहा है। श्रवण करें। हे ब्राह्मणप्रवरगण! सावर्णि मनु की संख्या पांच है। एक हैं वैवस्वत मनु तथा अन्य चार को प्रजापति परमेष्ठी का पुत्र कहा गया है। इन्होंने मेरुसावर्ण्य लाभ किया है। इन राजाओं ने सुमेरु पर्वत पर महान् तप किया था। ये सभी दक्ष के दौहित्र तथा प्रिया के तनय (पुत्र) हैं। रुचि नामक प्रजापति के पुत्र को रौच्य मनु कहा गया।।४८-५१।।

भूत्यां चोत्पादितो देव्यां भौत्यो नाम रुचे सुतः।
अनागताश्च सप्तैते कल्पेऽस्मिन्मनवः स्मृताः॥५२॥

रौच्य का जन्म भूति के गर्भ से हुआ था। वे भौत्य कहे गये। ये सभी इस कल्प के सात मनु होंगे।।५२।।

तैरियं पृथिवी सर्व्वा सप्तद्वीपा सपत्तना। पूर्णयुगसहस्रन्तु परिपाल्या द्विजोत्तमाः।।५३।।

प्रजापति (ते) श्च तपसा संहारं तेषु नित्यशः।
युगानि सप्ततिस्तानि साग्राणि कथितानि च।।५४।।

कृतत्रेतादियुक्तानि मनोरन्तरमुच्यते। चतुर्दशैते मनवः कथिताः कीर्त्तिवर्द्धनाः।।५५।।
वेदेषु सपुराणेषु सर्व्वेषु प्रभविष्णवः। प्रजानां पतयो विप्रा धन्यमेषां प्रकीर्त्तनम्।।५६।।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठवृन्द! ये मनु सप्तद्वीपा नगर-ग्रामों से भरी सम्पूर्ण धरती का सहस्रों युग तक पालन करते रहते हैं। इसी प्रकार प्रजापति अपने तप से इनका नित्य संहार भी करते हैं। सत्ययुग से लेकर सत्तर युग तक का काल मन्वन्तर कहलाता है। ये चौदह कर्त्तिवर्द्धन करने वाले मनुगण वेद-पुराण में सर्वत्र प्रजा के प्रभु कहे गये हैं। हे विप्रगण! इनकी कीर्त्ति का वर्णन करना व्यक्ति के लिये धन्यतम तथा कल्याण देने वाला है।।५३-५६।।

मन्वन्तरेषु संहाराः संहारान्तेषु सम्भवाः। न शक्यतेऽन्तस्तेषां वै वक्तुं वर्षशतैरपि।।५७।।
विसर्गस्य प्रजानां वै संहारस्य च भो द्विजाः। मन्वन्तरेषु संहाराः श्रूयन्ते द्विजसत्तमाः।।५८।।

मन्वन्तरों का संहार (अन्त) होता है। तदनन्तर पुनः उनका आविर्भाव (उत्पत्ति) होता है। इनका सम्पूर्ण वर्णन कर सकना सौ वर्षों में भी संभव नहीं है। हे विप्रगण! इन मन्वन्तरों में प्रजा की सृष्टि होना तथा पुनः संहार होते रहना सुना जाता है।।५७-५८।।

सशेषास्तत्र तिष्ठन्ति देवाः सप्तर्षिभिः सह। तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रुतेन च समन्विताः।।५९।।
पूर्णे युगसहस्रे तु कल्पो निःशेष उच्यते। तत्र भूतानि सर्व्वाणि दग्धान्यादित्यरश्मिभिः।।६०।।

तथापि तप, ब्रह्मचर्य तथा वेदों के प्रभाव के कारण ही सप्तर्षि तथा देवता भी इस संहार में त्राण पाकर बच जाते हैं। एक सहस्र युगों के व्यतीत होने पर कल्प निःशेष हो जाता है। उस समय आदित्य की रश्मियों के ताप से समस्त प्राणीसमूह दग्ध हो जाते हैं।।५९-६०।।

ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा सहादित्यगणैर्द्विजाः। प्रविशन्ति सुरश्रेष्ठं हरिनारायणं प्रभुम्।।६१।।

स्रष्टारं सर्व्वभूतानां कल्पान्तेषु पुनःपुनः।
अव्यक्तं शाश्वतो देवस्तस्य सर्व्वमिदं जगत्।।६२।।
अत्र वः कीर्त्तयिष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य वै।
विसर्गं मुनिशार्दूलाः साम्प्रतस्य महाद्युतेः।।६३।।

अत्र वंशप्रसङ्गेन कथ्यमानं पुरातनम्। यत्रोत्पन्नो महात्मा स हरिर्वृष्णिकुले प्रभुः।।६४।।

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे मन्वन्तरकीर्त्तनं नाम पञ्चमोऽध्यायः।।५।।



हे द्विजों! उस समय ब्रह्मा को आगे करके सभी प्राणी आदित्यों के साथ कल्पान्त काल में प्राणीगण की सृष्टि करने वाले देवप्रवर सर्वव्यापक श्रीहरि-नारायण में प्रविष्ट हो जाते हैं। ये प्रभु हरि भगवान् एवं अव्यक्त तथा सनातन हैं। समस्त संसार भी वे ही हैं। हे मुनिप्रवरगण! अब मैं महाद्युति वैवस्वत मनु द्वारा कृत सृष्टि का वर्णन करने जा रहा हूं। साथ ही वंशक्रम प्रसंगान्तर्गत् प्राचीन वृष्णिकुल का भी आख्यान कहने जा रहा हूं। इसी कुल में प्रभु हरि उत्पन्न हो गये थे।।६१-६४।।

।।पञ्चम अध्याय समाप्त।।



अथ षष्ठोऽध्यायः

सूर्यवंश वर्णन, संज्ञा का घोड़ी रूप धारण, अश्विनीकुमारद्वय का जन्म, यमुना-शनि प्रभृति सूर्यपुत्रगण का विवरण

लोमहर्षण उवाच

विवस्वान् कश्यपाज्जज्ञे दाक्षायण्यां द्विजोत्तमाः।
तस्य भार्य्याभवत्संज्ञा त्वाष्ट्री देवी विवस्वतः।।१।।
सुरेश्वरीति विख्याता त्रिषु लोकेषु भाविनी।
सा वै भार्य्या भगवतो मार्त्तण्डस्य महात्मनः।।२।।
भर्तृरूपेण नातुष्यद्रूपयौवनशालिनी। संज्ञा नाम सुतपसा सुदीप्तेन समन्विता।।३।।
आदित्यस्य हि तद्रूपं मण्डलस्य सुतेजसा। गात्रेषु परिदग्धं वै नातिकान्तमिवाभवत्।।४।।
न खल्वयं मृतोऽण्डस्थ इति स्नेहादभाषत।
अजानन् काश्यपस्तस्मान्मार्त्तण्ड इति चोच्यते।।५।।
तेजस्त्वभ्यधिकं तस्य नित्यमेव विवस्वतः।
येनातितापयामास त्रींल्लोकान् कश्यपात्मजः।।६।।

लोमहर्षण कहते हैं—हे विप्रप्रवरगण! कश्यप एवं दक्षकन्या के मिलन से विवस्वान् (सूर्यदेव) उत्पन्न हुये थे। उनकी पत्नी थी त्वष्टा की कन्या संज्ञा। ये संज्ञा तीनों लोक में सुरेश्वरी के नाम से प्रख्यात हैं। वे संज्ञा उत्तम तप की दीप्ति से समन्वित थीं। उन यौवनशालिनी सुन्दरी को पति का अर्थात् सूर्य का वह ज्वलन्त रूप रुचिकर नहीं लगता था। वह उस रूप से सन्तुष्ट नहीं थी। सूर्यमण्डल के उस तेजमय रूप से संज्ञा के अंग जलने लगते थे। पूर्वकाल में आदित्य के जन्म काल में माता ने स्नेह पूर्वक कहा था कि यह अण्डस्थ मृत नहीं है। तभी कश्यप पुत्र मार्त्तण्ड कहे गये। वे विवस्वान् अपने तेज की अधिकता के कारण अपने तेज से त्रैलोक्य को तप्त करने लगे।।१-६।।

त्रीण्यपत्यानि भो विप्राः संज्ञाया तपतां वरः।
आदित्यो जनयामास कन्यां द्वौ च प्रजापती॥७॥
मनुर्वैवस्वतः पूर्व्वं श्राद्धदेवः प्रजापतिः। यमश्च यमुना चैव यमजौ सम्बभूवतुः॥८॥
श्यामवर्णन्तु तद्रूपं संज्ञा दृष्ट्वा विवस्वतः।
असहन्ती तु स्वां छायां सवर्णां निर्म्ममे ततः॥९॥
मायामयी तु सा संज्ञा तस्यां छायासमुत्थिताम्।
प्राञ्जलिः प्रणता भूत्वा छाया संज्ञां द्विजोत्तमाः॥१०॥

हे विप्रगण! अमित तेजस्वी सूर्य ने संज्ञा से एक कन्या तथा दो प्रजापति पुत्रों को उत्पन्न किया था। सर्वप्रथम प्रजापति श्राद्धदेव मनु का जन्म हुआ था। तत्पश्चात् यम एवं यमुना जुड़वां जन्मे। विवस्वान् का श्याम वर्ण रूप सहन न हो सकने के कारण सूर्यभार्या संज्ञा ने अपनी सवर्णा छाया का निर्माण किया। हे ब्राह्मणवृन्द! वह मायारचित छाया संज्ञा के सामने करबद्ध हो खड़ी हो गई।।७-१०।।

उवाच किं मया कार्य्यं कथयस्व शुचिस्मिते।
स्थितास्मि तव निर्देशे शाधि मां वरवर्णिनि॥११॥

छाया कहती है—हे शुचिस्मिते! मैं आपकी आज्ञा का पालन करने वाली हूं। मुझे क्या करना है, कहिये।।११।।

संज्ञोवाच

अहं यास्यामि भद्रं ते स्वमेव भवनं पितुः। त्वयैव भवने मह्यं वस्तव्यं निर्विशङ्कया॥१२॥
इमौ च बालकौ मह्यं कन्या चेयं सुमध्यमा।
सम्भाव्यास्ते न चाख्येयमिदं भगवते क्वचित्॥१३॥

संज्ञादेवी कहती हैं—हे भद्रे! मैं पितृगृह जाऊंगी। तुम निःशंक होकर यहां निवास करो। तुम इन दोनों बालकों का तथा इस सुमध्यमा कन्या का यथावत् पालन करना, तथापि यह रहस्य (कि तुम मेरी छाया हो तथा मैं यहां से पितृगृह चली गई हूं) कदापि भगवान् सूर्य से नहीं कहना।।१२-१३।।

सवर्णोवाच

आ कचग्रहणाद्देवि आ शापान्नैव कर्हिचित्।
आख्यास्यामि नमस्तुभ्यं गच्छ देवि यथासुखम्॥१४॥

सवर्णा छाया कहती है—जब तक मेरी चोटी पकड़कर शापित नहीं किया जायेगा, मैं यह रहस्य अप्रकट रखूंगी। आपको प्रणाम है। आप सुख पूर्वक जायें।।१४।।

लोमहर्षण उवाच

समादिश्य सवर्णान्तु तथेत्युक्ता तया च सा।
त्वष्टुः समीपमगमद्व्रीडितेव तपस्विनी॥१५॥

पितुः समीपगा सा तु पित्रा निर्भर्त्सिता शुभा।
भर्त्तुः समीपं गच्छेति नियुक्ता च पुनः पुनः॥१६॥
आगच्छद्वडवा भूत्वाच्छाद्य रूपमनिन्दिता।
कुरूनथोत्तरान् गत्वा तृणान्यथ चचार ह॥१७॥

लोमहर्षण कहते हैं—तपस्विनी संज्ञा ने छाया का कथन सुनकर उसको आदेश देकर विदा लिया और कुछ लज्जित सी पितृगृह गयी। लेकिन पिता ने शुभा संज्ञा को आया देखकर उसकी भर्त्सना किया और उससे कहा—"तुम पतिगृह जाओ" तदनन्तर त्वष्टा नामक पिता ने बारम्बार उसे पतिगृह जाने हेतु प्रेरित किया। इस स्थिति में संज्ञा पतिगृह न जाकर अपने स्वरूप को गोपित करती अश्विनी का रूप धारण करके उत्तरस्थ कुरुदेश गयी तथा वहां तृण का भोजन करते विचरने लगी।।१५-१७।।

द्वितीयायान्तु संज्ञायां संज्ञेयमिति चिन्तयन्।
आदित्यो जनयामास पुत्रामत्मसमं तदा॥१८॥
पूर्व्वजस्य मनोर्विप्राः सदृशोऽयमिति प्रभुः। मनुरेवाभवन्नाम्ना सावर्ण इति चोच्यते॥१९॥
द्वितीयो यः सुतास्तस्याः स विज्ञेयः शनैश्चरः।
संज्ञा तु पार्थिवी विप्राः स्वस्य पुत्रस्य वै तदा॥२०॥
चकाराभ्यधिकं स्नेहं न तथा पूर्व्वजेषु वै। मनुस्तस्याः क्षमत्तत्तु यमस्तस्या न चक्षमे॥२१॥

तदनन्तर सूर्य ने छाया को ही संज्ञा मानकर इस द्वितीया संज्ञा से अपने ही समान पुत्र उत्पन्न किया। यह बालक अपने पूर्वज (बड़े भाई) मनु के ही सदृश था, तभी इसे मनु एवं सावर्ण कहा गया। द्वितीय पुत्र शनैश्चर थे। वह सवर्णा छाया संज्ञा के पुत्रों से अधिक अपने पुत्रों को चाहती थी। श्राद्धदेव मनु ने तो छाया का यह व्यवहार सहन कर लिया था, तथापि यम इस व्यवहार को सहन ही नहीं कर सके।।१८-२१।।

स वै रोषाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वानघ।
पदा सन्तर्ज्जयामास संज्ञां वैवस्वतो यमः॥२२॥
तं शशाप ततः क्रोधात् सावर्णजननी तदा। चरणः पततामेष तवेति भृशदुःखिता॥२३॥
यमस्तु तत्पितुः सर्व्वं प्राञ्जलिः प्रत्यवेदयत्।
भृशं शापभयोद्विग्नः संज्ञावाक्यैर्विशङ्कितः॥२४॥

सूर्यपुत्र यम ने क्रोध पूर्वक बाल्यभाव से किंवा भवितव्यता के वशीभूत होकर सवर्णा पर अपने पदप्रहार से आघात किया। उस समय अतीव दुःखमिश्रित क्रोध के कारण सवर्णा छाया ने यम को शाप दिया "तुम्हारे चरण गिर जायें।" यह सुनकर यम अत्यन्त दुःखी हो गये। वे अपने पिता के पास गये तथा शाप के भय से उद्विग्न होकर तथा संज्ञा (छाया) के वाक्य से आशंकित होकर करबद्ध मुद्रा में पिता से समस्त वृत्तान्त कहा—।।२२-२४।।

शापोऽयं विनिवर्त्तेत प्रोवाच पितरं द्विजाः। मात्रा स्नेहेन सर्व्वेषु वर्त्तितव्यं सुतेषु वै॥२५॥

सेयमस्मानपास्येह विवस्वन् सम्बुभूषति। तस्यां मयोद्यतः पादो न तु देहे निपातितः॥२६॥

बाल्याद्वा यदि वा लौल्यान्मोहात्तत्क्षन्तुमर्हसि।
शप्तोऽहमस्मि लोकेश जनन्या तपतां वर।
तव प्रसादाच्चरणो न पतेन्मम गोपते॥२७॥

यम कहते हैं—आप मुझे शापमुक्त करिये। माता का कर्त्तव्य है कि वह अपने सभी पुत्रों के प्रति समान भाव रखे तथा समान व्यवहार करे, तथापि माता मेरे अतिरिक्त मेरे अनुजगण के प्रति अधिक प्रेम करती है। मैंने केवल आघात हेतु पैर उठाया ही था। उनके शरीर पर आघात नहीं किया था। यह बालक भाव या मेरी मूर्खता ही थी। हे लोकपति! गोपति! माता के शाप से रक्षा करिये। आपकी कृपा होने पर मेरा पैर पतित न हो।।२५-२७।।

विवस्वानुवाच

असंशयं पुत्र महद्भविष्यत्यत्र कारणम्।
येन त्वामाविशत् क्रोधो धर्म्मज्ञं सत्यवादिनम्॥२८॥

न शक्यमेतन्मिथ्या तु कर्त्तुं मातृवचस्तव। कृमयो मांसमादाय यास्यन्त्यवनिमेव च॥२९॥

कृतमेवं वचस्तथ्यं मातुस्तव भविष्यति। शापस्य परिहारेण त्वं च त्रातो भविष्यसि॥३०॥

सूर्यदेव कहते हैं—हे पुत्र! निःसंदिग्ध रूप से इसका अवश्य कोई महान् कारण हो सकता है, तभी तुम धर्मात्मा तथा सत्यवादी में क्रोधोत्पत्ति हो गयी। मैं मातृशाप को टाल नहीं सकता। अब कृमि तुम्हारे पैरों से मांस लेकर पृथिवी पर गिर जायेंगे। तुम्हारी माता का वचन भी सत्य होगा। तुम भी शाप से निवृत्त होकर रक्षित हो जाओगे।।२८-३०।।

आदित्यश्चाब्रवीत् संज्ञां किमर्थं तनयेषु वै।
तुल्येष्वभ्यधिकः स्नेह एकस्मिन् क्रियते त्वया॥३१॥

सा तत् परिहरन्ती तु नाचचक्षे विवस्वते। स चात्मानं समाधाय योगात्तथ्यमपश्यत॥३२॥

तदनन्तर सूर्यदेव ने छाया संज्ञा से कहा—"तुम सभी पुत्रों की तुलना में एक पर अधिक स्नेह क्यों करती हो?" तथापि छाया ने रहस्य व्यक्त नहीं किया। उसने सूर्य को कोई उत्तर ही प्रदान नहीं किया। ऐसी स्थिति में विवस्वान् सूर्य ने आत्मसमाधि द्वारा सब कुछ जान लिया।।३१-३२।।

तां शप्तुकामो भगवान्नाशपन्मुनिसत्तमाः। मूर्द्धजेषु निजग्राह स तु तां मुनिसत्तमाः॥३३॥

ततः सर्व्वं यथावृत्तमाचचक्षे विवस्वते। विवस्वानाथ तच्छ्रुत्वा क्रुद्धस्त्वष्टारमभ्यगात्॥३४॥

दृष्ट्वा तु तं यथान्यायमर्च्चयित्वा विभावसुम्।
निर्दग्धुकामं रोषेण सान्त्वयामास वै तदा॥३५॥

हे मुनिवृन्द! ऐसी स्थिति में प्रभु सूर्य ने छाया संज्ञा को कोई शाप न देकर उसके केश पकड़ लिये। ऐसी स्थिति देखकर छाया को सभी वृत्तान्त सूर्य से कहना पड़ा। सूर्य यह सुनकर रोष में भर गये तथा त्वष्टा

के यहां गये। त्वष्टा ने उन सूर्य को जब रोषपूर्ण तथा सब दग्ध करने की इच्छा से समागत देखा, तब उन्होंने सूर्य को उचित सत्कारादि से शान्त किया।।३३-३५।।

त्वष्टोवाच

तवातितेजसाविष्टमिदं रूपं न शोभते। असहन्ती च संज्ञा सा वने चरति शाद्वले।।३६।।

द्रष्टा हि तां भवानद्य स्वां भार्य्यां शुभचारिणीम्।

श्लाघ्यां योगबलोपेतां योगमास्थाय गोपते।।३७।।

अनुकूलं तु ते देव यदि स्यान्मम सम्मतम्। रूपं निर्वर्त्तयाम्यद्य तव कान्तमरिन्दम।।३८।।

त्वष्टा (विश्वकर्मा) कहते हैं—आपके इस महान् तेज को सहन न कर सकने के कारण संज्ञा घोड़ी के रूप में वन में हरीतिमा चर रही है। हे सूर्य! आप अपनी शुभचारिणी, प्रशंसित, योगस्थ एवं योगबल समन्वित पत्नी को देख सकेंगे। हे देव! यदि आपकी सहमति मिले, तब मैं आज आपको सुन्दर रूपसम्पन्न कर सकता हूं। हे अरिन्दम! आदेश दीजिये।।३६-३८।।

ततोऽभ्युपागमत्त्वष्टा मार्त्तण्डस्य विवस्वतः।

भ्रमिमारोप्य तत्तेजः सातयामास भो द्विजाः।।३९।।

ततो निर्भासितं रूपं तेजसा संहतेन वै। कान्तात् कान्ततरं द्रष्टुमधिकं शुशुभे तदा।।४०।।

ददर्श योगमास्थाय स्वां भार्य्यां वडवां ततः।

अधृष्यां सर्व्वभूतानां तेजसा नियमेन च।।४१।।

वडवावपुषा विप्राश्चरन्तीमकुतोभयाम्। सोऽश्वरूपेण भगवांस्तां मुखे समभावयत्।।४२।।

मैथुनाय विचेष्टन्तीं परपुंसोऽवशङ्कया। सा तन्निरवमच्छुक्रं नासिकाभ्यां विवस्वतः।।४३।।

देवौ तस्यामजायेतामश्विनौ भिषजां वरौ। नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनाविति।।४४।।

हे ब्राह्मणवृन्द! सूर्यदेव की अनुमति पाकर त्वष्टा ने भ्रामण यन्त्र (खराद) द्वारा सूर्यदेव के तेज को छांट दिया (उसे कम कर दिया)। इससे सूर्य का रूप उत्तम हो गया। उनका अति सुन्दर रूप पूर्वरूप से भी अधिक शोभायमान होने लगा। हे ब्राह्मणगण! तदनन्तर सूर्यदेव ने योगस्थ होकर अपनी अश्वरूपिणी पत्नी को देखा। वह अपनी दीप्ति तथा सत्ता में समस्त प्राणीगण से उत्कृष्ट थी। संज्ञा वहां अश्वरूपा होकर तृण भोजन कर रही थी। तब सूर्य ने भी अश्व का रूप धरकर उससे मैथुन का प्रयत्न किया तथा इस प्रयत्न के कारण वे उस अश्विनी के मुख में ही मैथुन कर सके, तथापि उस घोड़ी ने अन्य पुरुष का संदेह करके सूर्य के वीर्य को अपने नथुनों से बहिर्गत् कर दिया। इसी से दिव्यरूपधारी अश्विनीकुमारद्वय वैद्यों में प्रधान रूप से उत्पन्न हो गये। इनका नाम क्रमशः नासत्य एवं दस्र था।।३९-४४।।

मार्त्तण्डस्यात्मजावेतावष्टमस्य प्रजापतेः। तां तु रूपेण कान्तेन दर्शयामास भास्करः।।४५।।

सा तु दृष्ट्वैव भर्त्तारं तुतोष मुनिसत्तमाः।

यमस्तु कर्म्मणा येन भृशं पीडितमानसः।।४६।।

धर्मेण रञ्जयामास धर्म्मराज इमाः प्रजाः। स लेभे कर्म्मणा तेन शुभेन परमद्युतिः॥४७॥

पितृणामाधिपत्यं च लोकपालत्वमेव च।
मनुः प्रजापतिस्त्वासीत् सावर्णिः स तपोधनाः॥४८॥

भाव्यः समागते तस्मिन्मनुः सावर्णिकेऽन्तरे। मेरुपृष्ठे तपो नित्यमद्यापि स चरत्युत॥४९॥

ये अष्टम प्रजापति मार्त्तण्ड के पुत्र थे। तदनन्तर सूर्यदेव ने अपनी पत्नी को अपने दिव्य रूप को दिखलाते हुये उसे भी देखा। हे ब्राह्मणप्रवरगण! संज्ञा अपने स्वामी का रूप देख कर सन्तुष्ट हो गई। यम भी अपने कर्म से अत्यन्त दुःखी होकर धर्मराज के नाम से प्रसिद्ध हो गये तथा धर्मतः प्रजापालन करने लगे। उन्होंने प्रजापालन के अतीव शुभ कर्म से कान्तिमान् होकर पितृगण का आधिपत्य तथा लोकपालत्व लाभ किया। तपस्वी सवर्णा पुत्र सावर्णि अगले सावर्णि मन्वन्तर में प्रजापति मनु हो गये। वे अभी भी मेरुपृष्ठ में नित्य तपःश्चरण रत हैं।।४५-४९।।

भ्राता शनैश्चरस्तस्य ग्रहत्वं स तु लब्धवान्।
त्वष्टा तु तेजसा तेन विष्णोश्चक्रमकल्पयत्॥५०॥
तदप्रतिहतं युद्धे दानवान्तचिकीर्षया।
यवीयसी तु साप्यासीद्यामि कन्या यशस्विनी॥५१॥

अभवच्च सरिच्छ्रेष्ठा यमुना लोकपावनी। मनुरित्युच्यते लोके सावर्ण इति चोच्यते॥५२॥

द्वितीयो यः सुतस्तस्य मनोर्भ्राता शनैश्चरः।
ग्रहत्वं स च लेभे वै सर्व्वलोकाभिपूजितः॥५३॥

य इदं जन्म देवानां शृणुयान्नरसत्तमः। आपदं प्राप्य मुच्येत प्राप्नुयाच्च महद्यशः॥५४॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे आदित्योत्पत्तिकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥



उनके भाई शनैश्चर ग्रह हो गये। भ्रमियन्त्र द्वारा सूर्य का जो तेज त्वष्टा ने काटा था, उससे उन्होंने दैत्यों के नाशार्थ युद्ध में कभी नष्ट न होने वाले चक्र का निर्माण किया था। यम की छोटी भगिनी यशस्विनी यमुना नदियों में प्रमुख, सभी लोगों को पावन करने वाली कहलाई। इन मनु को लोग मनु तथा सावर्ण दोनों कहते हैं। सूर्य के द्वितीय पुत्र मनु के भ्राता शनैश्चर सबके पूज्य ग्रह हो गये। जो मानव देवगण के इस जन्म का श्रवण करेगा, उसे सभी विपत्तियों से छुटकारा तथा महद् यश लाभ होगा।।५०-५४।।

।।षष्ठ अध्याय समाप्त।।



अथ सप्तमोऽध्यायः

वैवस्वत मनु के वंश में इला की उत्पत्ति, बुध के साथ उसका संगम, सुद्युम्न आदि का जन्म, कुवलयाश्व चरित्र का वर्णन

लोमहर्षण उवाच

मनोर्वैवस्वतस्यासन् पुत्रा वै नव तत्समाः। इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो धृष्टः शर्यातिरेव च॥१॥
नरिष्यन्तश्च षष्ठो वै प्रांशू रिष्टश्च सप्तमः। करूषश्च पृषध्रश्च नवैते मुनिसत्तमाः॥२॥
अकरोत् पुत्रेकामस्तु मनुरिष्टिं प्रजापतिः। मित्रावरुणयोर्विप्राः पूर्व्वमेव महामतिः॥३॥
अनुत्पन्नेषु बहुषु पुत्रष्वेतेषु भो द्विजाः। तस्यां च वर्त्तमानायामिष्ट्यां च द्विजसत्तमाः॥४॥
मित्रावरुणयोरंशे मनुराहुतिमावहत्। तत्र दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता॥५॥
दिव्यसंहनना चैव इला जज्ञ इति श्रुतिः। तामिलेत्येव होवाच मनुर्दण्डधरस्तदा॥६॥
अनुगच्छस्व मां भद्रे तमिला प्रत्युवाच ह।
धर्म्मयुक्तमिदं वाक्यं पुत्रकामं प्रजापतिम्॥७॥

लोमहर्षण कहते हैं—वैवस्वत मनु के उनके ही समान नौ पुत्र थे। उनके नाम हैं इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, रिष्ट, करूष, पृषध्र। हे विप्रगण! जब इन पुत्रों का जन्म नहीं हुआ था, तभी पुत्रेच्छा से प्रजापति धीमान् मनु ने मित्रावरुण का यज्ञानुष्ठान किया था। हे द्विजप्रवरगण! उस यज्ञ में मनु ने मित्रावरुण के अंश में अनेक आहुति प्रदान किया। तब यज्ञ से दिव्यवस्त्रधारिणी, दिव्याभरण भूषिता, दिव्यरूपसमन्विता कन्या की उत्पत्ति होने पर दण्डधारी मनु ने उस कन्या का नाम इला रख कर उसे सम्बोधित किया "हे पुत्री! तुम साथ चलो।" यह सुनकर पुत्रकामी प्रजापति मनु से इला कहने लगी।।१-७।।

इलोवाच

मित्रावरुणयोरंशे जातास्मि वदतां वर। तयोः सकाशं यास्यामि न मां धर्म्महतां कुरु॥८॥
सैवमुक्त्वा मनुं देवं मित्रावरुणयोरिला। गत्वान्तिकं वरारोहा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्॥९॥

इला कहती है—"हे उत्तम वक्ता! मेरा जन्म मित्रावरुण के अंश से हुआ है। अतः मैं उनके ही निकट जाऊंगी। आप मेरे धर्म का हनन न करें।" यह कहने के अनन्तर इला मित्रावरुण के यहां गई तथा उनको प्रणाम करके कहने लगी।।८-९।।

इलोवाच

अशंऽस्मि युवयोर्जाता देवौ किं करवाणि वाम्।
मनुना चाहमुक्ता वा अनुगच्छस्व मामिति॥१०॥

तौ तथावादिनीं साध्वीमिलां धर्म्मपरायणाम्।
मित्रश्च वरुणश्चोभावूचतुस्तां द्विजोत्तमाः॥११॥

इला कहती है—"हे देवद्वय! मैं आप दोनों के अंश से जन्मी कन्या हूं। तथापि मनु मुझे साथ चलने के लिये कह रहे हैं। अब मुझे क्या करना उचित है, उसी की आज्ञा प्रदान करिये।" जब उस धर्मपरायण साध्वी इला ने ऐसा वाक्य कहा, हे द्विजोत्तमगण! तब मित्रावरुण कहने लगे।।१०-११।।

मित्रावरुणावूचतुः

अनेन तव धर्म्मेण प्रश्रयेण दमेन च। सत्येन चैव सुश्रोणि प्रीतौ स्वो वरवर्णिनि॥१२॥

आवयोस्त्वं महाभागे ख्यातिं कन्येति यास्यसि।
मनोर्व्वंशकरः पुत्रस्त्वमेव च भविष्यसि॥१३॥
सुद्युम्न इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु शोभने।
जगत्प्रियो धर्म्मशीलो मनोर्व्वंशविवर्द्धनः॥१४॥
निवृत्ता सा तु तच्छ्रुत्वा गच्छन्ती पितुरन्तिकात्॥१५॥

मित्रावरुण कहते हैं—"हे सुश्रोणी, वरवर्णिनी! महाभागे! तुम्हारे धर्म, विनय, शान्ति तथा सत्य से हम लोग प्रसन्न हैं। तुम संसार में हम लोगों की पुत्रीरूप से प्रख्यात रहोगी। तुम ही मनु वंश को बढ़ाने वाली होगी। हे शोभने! जगत् में तुम जगत्प्रिय, धर्मशील, मनु वंश बढ़ाने वाली सुद्युम्न नाम से प्रख्यात हो जाओगी।" यह मित्रावरुण का वचन सुनकर वह पिता के यहां वापस चली गयी।।१२-१५।।

बुधेनान्तरमासाद्य मैथुनायोपमन्त्रिता। सोमपुत्राद्बुधाद्विप्रास्तस्यां जज्ञे पुरूरवाः॥१६॥

जनयित्वा ततः सा तमिला सुद्युम्नतां गता।
सुद्युम्नस्य तु दायादास्त्रयः परमधार्म्मिकाः॥१७॥
उत्कलश्च गयश्चैव विनताश्वश्च भो द्विजाः।
उत्कलस्योत्कला विप्रा विनताश्वस्य पश्चिमाः॥१८॥
दिक्पूर्व्वा मुनिशार्द्दूला गयस्य तु गया स्मृता।
प्रविष्टे तु मनौ विप्रा दिवाकरमरिन्दमम्॥१९॥

उस समय अवसर भांप कर चन्द्र के पुत्र बुध ने उसे मैथुन के लिये निमन्त्रित किया। बुध ने इला के गर्भ से पुरूरवा नामक पुत्र को उत्पन्न किया। पुरूरवा को उत्पन्न करके इला सुद्युम्न नामक पुरुष बन गई। हे ब्राह्मणगण! सुद्युम्न के तीन धार्मिक पुत्र थे। यथा—उत्कल, गय तथा विनताश्व। हे मुनिश्रेष्ठगण! उत्कल की उत्कला नगरी बनी। विनताश्व की पश्चिमा नगरी तथा गय की पूर्व में गया नगरी बनी। जब मनु ने शत्रुनाशक सूर्य गृह में प्रवेश किया था।।१६-१९।।

दशधा तत्पुनः क्षत्रमकरोत् पृथिवीमिमाम्।
इक्ष्वाकुर्ज्येष्ठदायादो मध्यदेशमवाप्तवान्॥२०॥

कन्याभावात्तु सुद्युम्नो नैतद्राज्यमवाप्तवान्।
वसिष्ठवचनात्त्वासीत् प्रतिष्ठाने महात्मनः॥२१॥

प्रतिष्ठा धर्म्मराजस्य सुद्युम्नस्य द्विजोत्तमाः। तत्पुरूरवसे प्रादाद्राज्यं प्राप्य महायशाः॥२२॥

उस समय मनु के पुत्रों ने इस पृथिवी को दस भागों में विभक्त कर दिया। सबसे बड़े मनुपुत्र इक्ष्वाकु को मध्यदेश मिला। सुद्युम्न में कन्याभाव था (वह पहले इला नामक युवती थी) अतः उसे राज्य नहीं मिला। हे ब्राह्मणगण! वसिष्ठ के आदेश के कारण धर्मराज सुद्युम्न प्रतिष्ठान नगरी मिली। उस समय महायशस्वी सुद्युम्न ने राज्य पुरूरवा को प्रदान कर दिया।।२०-२२।।

मानवेयो मुनिश्रेष्ठाः स्त्रीपुंसोर्लक्षणैर्युतः। धृतवांस्तामिलेत्येवं सुद्युम्नेति च विश्रुतः॥२३॥

नारिष्यन्ताः शकाः पुत्रा नाभागस्य तु भो द्विजाः।
अम्बरीषोऽभवत् पुत्रः पार्थिवर्षभसत्तमः॥२४॥

धृष्टस्य धार्ष्टिकं क्षत्रं रणदृप्तं बभूव ह। करूषस्य च कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्म्मदाः॥२५॥

हे मुनिप्रवरगण! सुद्युम्न स्त्री तथा पुरुष उभय लक्षण वाले थे। अतः प्रजावर्ग उनको इला तथा सुद्युम्न, इन दोनों नामों से सम्बोधित करते थे। हे विप्रों! नरिष्यन्त के पुत्र थे शकजाति वाले। नाभाग के पुत्र थे नृपतिश्रेष्ठ अम्बरीष। धृष्ट का युद्धदुर्मद क्षत्रिय पुत्र था धार्ष्टक। करूष के युद्धाभिमानी कारुष नामक पुत्र क्षत्रिय थे।।२३-२५।।

नाभागधृष्टपुत्राश्च क्षत्रिया वैश्यतां गताः।
प्रांशोरेकोऽभवत्पुत्रः प्रजापतिरिति स्मृतः॥२६॥
नरिष्यन्तस्य दायादो राजा दण्डधरो यमः।
शर्यातेर्मिथुनं त्वासीदानर्त्तो नाम विश्रुतः॥२७॥
पुत्रः कन्या सुकन्या च या पत्नी च्यवनस्य ह।
आनर्त्तस्य तु दायादो रैवो नाम महाद्युतिः॥२८॥

नाभाग तथा धृष्ट के क्षत्रिय सन्तान वैश्य हो गये। प्रांशु का एकमात्र पुत्र प्रजापति कहलाया। नरिष्यन्त का पुत्र यमदण्डधारी राजा हो गया था। शर्याति का पुत्र था आनर्त्त। उसकी कन्या का नाम था सुकन्या। यही सुकन्या च्यवन ऋषि की पत्नी बनी। आनर्त्त के पुत्र का नाम था महातेजस्वी रैव।।२६-२८।।

आनर्त्तविषयश्चैव पुरी चास्य कुशस्थली।
रैवस्य रैवतः पुत्रः ककुद्मी नाम धार्म्मिकः॥२९॥
ज्येष्ठः पुत्रः स तस्यासीद्राज्यं प्राप्यं कुशस्थलीम्।
स कन्यासहितः श्रुत्वा गान्धर्व्वं ब्रह्मणोऽन्तिके॥३०॥

यह आनर्त्तदेश का राजा था। कुशस्थली इसके राज्य की पुरी (राजधानी) थी। इसका धार्मिक पुत्र रैवत अन्य नाम ककुद्मी से भी जाना जाता था। यह ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण द्वारका का (कुशस्थली) का राजा बना। यह गान्धर्ववेद को सुनकर अपनी कन्या के साथ ब्रह्मलोक गया था।।२९-३०।।

मुहूर्त्तभूतं देवस्य तस्थौ बहुयुगं द्विजाः। आजगाम स चैवाथ स्वां पुरी यादवैर्वृताम्॥३१॥
कृतां द्वारवतीं नाम बहुद्वारां मनोरमाम्। भोजवृष्ण्यन्धकैर्गुप्तां वसुदेवपुरोगमैः॥३२॥

तत्रैव रैवतो ज्ञात्वा यथातत्त्वं द्विजोत्तमाः।
कन्यां तां बलदेवाय सुभद्रां नाम रेवतीम्॥३३॥
दत्त्वा जगाम शिखरं मेरोस्तपसि संस्थितः।
रेमे रामोऽपि धर्मात्मा रेवत्या सहितः सुखी॥३४॥

वे राजा मुहूर्त्त मात्र वहां ठहरे थे, लेकिन इतने में पृथिवी पर अनेक युग व्यतीत हो गये। तदनन्तर वे यादवों से पूर्ण द्वारका आये। वह द्वारवती अनेक द्वारों वाली मनोरम नगरी थी। वहां भोज, वृष्णि तथा अन्धक लोग रहते थे। इनके प्रमुख थे वसुदेव। हे विप्रवरों! उस नगर में श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम के यथार्थ स्वरूप से अवगत होकर रैवत ने अपनी रेवती नाम वाली सुरूपा कन्या बलदेव को प्रदान किया तथा वे स्वयं तप हेतु सुमेरु पर्वत चले गये। इधर धर्मात्मा बलराम भी रेवती के साथ सुख पूर्वक विहार करने लगे।।३१-३४।।

मुनय ऊचुः

कथं बहुयुगे काले समतीते महामते। न जरा रेवतीं प्राप्ता रैवतं च ककुद्मिनम्॥३५॥

मेरुं गतस्य वा तस्य शर्यातेः सन्ततिः कथम्।
स्थिता पृथिव्यामद्यापि श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः॥३६॥

मुनिगण कहते हैं—हे महामति! अनेक युग व्यतीत हो जाने पर भी रेवती तथा रैवत ककुद्मी वृद्ध तथा जराग्रस्त क्यों नहीं हुये? जब वे मेरु पर्वत पर तप हेतु चले गये, तब से उनकी सन्तान आज भी पृथिवी पर कैसे रह रही है? यह तत्वतः सुनने की इच्छा है।।३५-३६।।

लोमहर्षण उवाच

न जरा क्षुत्पिपासा वा न मृत्युर्मुनिसत्तमाः। ऋतुचक्रं प्रभवति ब्रह्मलोके सदानघाः।

ककुद्मिनः स्वर्लोकं तु रैवतस्य गतस्य ह॥३७॥
हृता पुण्यजनैर्विप्राः राक्षसैः सा कुशस्थली।
तस्य भ्रातृशतं त्वासीद्धार्म्मिकस्य महात्मनः॥३८॥
तद्वध्यमानं रक्षोभिर्दिशः प्राक्रामदच्युताः।
विद्रुतस्य च विप्रेन्द्रास्तस्य भ्रातृशतस्य वै॥३९॥
अन्ववायस्तु सुमहांस्तत्र तत्र द्विजोत्तमाः।
तेषां ह्येते मुनिश्रेष्ठाः शर्याता इति विश्रुताः॥४०॥

क्षत्रिया गुणसम्पन्ना दिक्षु सर्व्वासु विश्रुताः। सर्व्वशः सर्व्वगहनं प्रविष्टास्ते महौजसः॥४१॥

लोमहर्षण कहते हैं—हे अनघ मुनिगण! ब्रह्मलोक में क्षुधा-पिपासा, जरा-मरण, ऋतु चक्र का प्रभाव

नहीं होता। जब राजा रैवत ब्रह्मलोक चले गये, तब द्वारका पर राक्षसों का आधिपत्य हो गया। उस धर्मात्मा राजा के सौ भ्राता थे। वे कुशस्थली का राक्षसों द्वारा हरण होने के कारण व्यथित होकर दसों दिशाओं में भाग गये। हे विप्रेन्द्रगण! उन पलायित भ्रातागण का वंश अत्यन्त अधिक विस्तृत था। हे मुनिश्रेष्ठगण! वे शर्यात् नाम से सभी दिशाओं में प्रसिद्ध सर्वगुणसम्पन्न क्षत्रिय थे। वे महान् तेजस्वी क्षत्रिय सभी गहन वन में प्रविष्ट हो गये।।३७-४१।।

नाभागरिष्टपुत्रौ द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणतां गतौ।
करूषस्य तु कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्म्मुदाः॥४२॥
पृषध्रो हिंसयित्वा तु गुरोर्गां द्विजसत्तमाः। शापाच्छूद्रत्वमापन्नो नवैते परिकीर्त्तिताः॥४३॥
वैवस्वतस्य तनया मुनेर्व्वै मुनिसत्तमाः। क्षुवतस्तु मनोर्व्विप्रा इक्ष्वाकुरभवत् सुतः॥४४॥
तस्य पुत्रशतं त्वासीदिक्ष्वाकोर्भूरिदक्षिणम्।
तेषां विकुक्षिर्ज्येष्ठस्तु विकुक्षित्वादयोधताम्॥४५॥

नाभागारिष्ट के दो वैश्य वंशज ब्राह्मण हो गये। करूष के वंशज कारूष नामक प्रख्यात युद्धदुर्मद क्षत्रिय उत्पन्न हुये। हे विप्रवृन्द! पृषध्र ने गुरु की गौ की हत्या किया था, अतः विप्रशाप के कारण वह शूद्र हो गया। हे मुनिवृन्द! ये नौ पुत्र वैवस्वत मनु के थे। हे ब्राह्मणगण! मनु के छींकने से इक्ष्वाकु उत्पन्न हुये थे। इक्ष्वाकु के सौ पुत्र जन्मे, जो प्रभूत दक्षिणादाता थे। विकुक्षि सबसे बड़ा पुत्र था, तथापि वह उदर व्याधि के कारण युद्ध नहीं करता था।।४२-४५।।

प्राप्तः परमधर्म्मज्ञः सोऽयोध्याधिपतिः प्रभुः।
शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्राः पञ्चशतं स्मृताः॥४६॥
उत्तरापथदेशस्य रक्षितारो महाबलाः। चत्वारिंशद्दशाष्टौ च दक्षिणस्यां तथा दिशि॥४७॥
वशातिप्रमुखाश्चान्ये रक्षितारो द्विजोत्तमाः।
इक्ष्वाकुस्तु विकुक्षिं वा अष्टकायामथादिशत्॥४८॥
मांसमानय श्राद्धार्थं मृगान् हत्वा महाबल।
श्राद्धकर्म्मणि चोद्दिष्टो अकृते श्राद्धकर्म्मणि॥४९॥
भक्षयित्वा शशं विप्रा शशादो मृगयां गतः।
इक्ष्वाकुणा परित्यक्तो वसिष्ठवचनात् प्रभुः॥५०॥
इक्ष्वाकौ संस्थिते विप्राः शशादस्तु नृपोऽभवत्।
शशादस्य तु दायादः ककुत्स्थो नाम वीर्य्यवान्॥५१॥
अनेनास्तु ककुत्स्थस्य पृथुश्चानेनसः स्मृतः।
विष्टराश्वः पृथोः पुत्रस्तस्मादार्द्रस्त्वजायत॥५२॥

तथापि यह विकुक्षि परम धार्मिक होने के कारण अयोध्या का शासक बना। उसके शकुनि प्रभृति

महाबली पांच सौ पुत्र जन्मे। इनमें से चालीस उत्तर दिशा के तथा अट्ठारह दक्षिण के रक्षक थे। हे ब्राह्मणवृन्द! वशाति आदि अन्य रक्षक भी थे। अष्टका काल में (अष्टका पितृगण तथा देवगण के लिये कार्य करने का दिन कहा गया है) इक्ष्वाकु ने इस विकुक्षि से कहा—"हे महाबली! श्राद्ध हेतु मृगमांस ले आओ।" हे ब्राह्मणगण! विकुक्षि तो श्राद्ध कार्य में नियोजित किया गया था, तथापि उसने श्राद्धकृत्य सम्पन्न होने के पहले ही एक खरगोश का मांस खाया, तब शिकार में हिरणों का वध करने गया। यह जान कर वसिष्ठ के आदेशानुसार इक्ष्वाकु ने शशाद (शशक मांसभक्षी) विकुक्षि को त्यागा। तथापि इक्ष्वाकु के देहान्तोपरान्त शशाद राजा बनाया गया। इसका पुत्र वीर्यवान् ककुत्स्थ जन्मा। ककुत्स्थ का पुत्र था अनेनस। अनेनस का पुत्र था पृथु। पृथु का पुत्र विष्टराश्व तथा इसका पुत्र था आर्द्र।।४६-५२।।

आर्द्रस्य युवनाश्वस्तु श्रावस्तस्तत्सुतो द्विजाः।
जज्ञे श्रावस्तको राजा श्रावस्ती येन निर्म्मिता॥५३॥
श्रावस्तस्य तु दायादो बृहदश्वो महीपतिः।
कुवलाश्वः सुतस्तस्य राजा परमधार्म्मिकः॥५४॥
यः स धुन्धुवधाद्राजा धुन्धुमारत्वमागतः॥५५॥

हे विप्रगण! आर्द्र का पुत्र था युवनाश्व, युवनाश्व का पुत्र था श्राव, जिसके पुत्र का नाम था श्रावस्तक। इसी श्रावस्तक ने श्रावस्ती नगरी का निर्माण किया था। श्रावस्तक का पुत्र था महीपति बृहदश्व। उसके पुत्र का नाम था परम धार्मिक कुवलाश्व। इसने धुन्धु दैत्य का वध किया था, अतः उसका नाम धुन्धुमार कहा जाने लगा।।५३-५५।।

मुनय ऊचुः

धुन्धोर्व्वधः महाप्राज्ञ श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः।
यद्वधात्कुवलाश्वोऽसौ धुन्धुमारत्वमागतः॥५६॥

मुनिगण कहते हैं—हे महाप्राज्ञ! हम धुन्धुवध प्रसंग को तत्वतः सुनना चाहते हैं? क्योंकि इसका वध करने के कारण ही कुवलाश्व धुन्धुमार कहलाया।।५६।।

लोमहर्षण उवाच

कुवलाश्वस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम्।
सर्व्वे विद्यासु निष्णाता बलवन्तो दुरासदाः॥५७॥
बभूवुर्धार्म्मिकाः सर्व्वे यज्वानो भूरिदक्षिणाः।
कुवलाश्वं पिता राज्ये बृहदश्वो न्ययोजयत्॥५८॥
पुत्रसंक्रामितश्रीस्तु वनं राजा विवेश ह। तमुत्तङ्कोऽथ विप्रर्षिः प्रयान्तं प्रत्यवारयत्॥५९॥

लोमहर्षण कहते हैं—कुवलाश्व के सौ पुत्र जन्मे। वे सभी श्रेष्ठ धनुर्धर, सर्वविद्या विशारद, बलवान्, दुरासद, अत्यन्त धर्मात्मा, यज्ञ अनुष्ठाता तथा प्रभूत दक्षिणादाता थे। अतः बृहदश्व ने इसी पुत्र कुवलाश्व को

राज्य दिया था। एवंविध बृहदश्व ने अपने राज्य की लक्ष्मी पुत्र को प्रदान करके वन में गमन किया, तथापि विप्रर्षि उत्तंक ने उनको वनगमन से रोक कर कहा—।।५७-५९।।

उत्तङ्क उवाच

भवता रक्षणं कार्य्यं तच्च कर्त्तुं त्वमर्हसि।
निरुद्विग्नस्तपश्चर्त्तुं नहि शक्नोमि पार्थिव॥६०॥
ममाश्रमसमीपे वै समेषु मरुधन्वसु। समुद्रो बालुकापूर्ण उद्दालक इति स्मृतः॥६१॥
देवतानामवध्यश्च महाकायो महाबलः। अन्तर्भूमिगतस्तत्र बालुकान्तर्हितो महान्॥६२॥
राक्षसस्य मधोः पुत्रो धुन्धुर्नाम महासुरः।
शेते लोकविनाशाय तप आस्थाय दारुणम्॥६३॥

उत्तङ्क कहते हैं—हे राजन्! तुम राज्य-प्रजा के रक्षण का कार्य करो। मैं निरुद्विग्न रूप से तप नहीं कर पा रहा हूं, क्योंकि आश्रम के निकट मरुधन्वा देश है, वहां जो बालू युक्त समुद्र है, उसका नाम है उद्दालक। उसी के बीच रेत से ढंका, देवगण के लिये अवध्य महाकाय, महाबली मधुपुत्र धुन्धु भूमिगत होकर तथा बालुका में अन्तर्हित् होकर महान् कठोर तप करने के पश्चात् लोकनाशार्थ शयनरत है।।६०-६३।।

संवत्सरस्य पर्य्यन्ते निश्वासं विमुञ्चति। यदा तदा मही तत्र चलति स्म नराधिप॥६४॥
तस्य निःश्वासवातेन रज उद्धूयते महत्। आदित्यपथमावृत्य सप्ताहं भूमिकम्पनम्॥६५॥

हे पृथिवीपालक! जब वर्षान्त में वह निःश्वास त्याग करता है, तब यहां की धरती चलायमान होने लगती है। उसके इस निःश्वास से इतनी अधिक बालुका उड़ती है, जो सूर्य के मार्ग को भी आवरित कर देती है। तदनन्तर एक सप्ताह पर्यन्त भूमि कम्प होने लगता है।।६४-६५।।

सविस्फुलिङ्गं साङ्गारं सधूममतिदारुणम्।
तेन तात न शक्नोमि तस्मिन् स्थातुं स्व आश्रमे॥६६॥
तं मारय महाकायं लोकानां हितकाम्यया।
लोकाः स्वस्था भवन्त्यद्य तस्मिन् विनिहते त्वया॥६७॥
त्वं हि तस्य वधायैकः समर्थः पृथिवीपते। विष्णुना च वरो दत्तो मह्यं पूर्व्वयुगे नृप॥६८॥
यस्तं महासुरं रौद्रं हनिष्यति महाबलम्। तस्य त्वं वरदानेन तेजश्चाख्यापयिष्यसि॥६९॥

दारुण धूम्र से युक्त अग्नि भयानक विस्फुलिंगमय हो जाती है। हे तात! तब मैं आश्रम में नहीं रह पाता। लोक के कल्याणार्थ तुम उस राक्षस का वध करो। जो महाकाय है। तुम्हारे द्वारा जब वह निहत हो जायेगा, तब लोग स्वस्थ हो जायेंगे (सन्तोष प्राप्त करेंगे)। हे राजन्! तुम्हारे द्वारा ही उसका वध संभव है। पूर्वकाल में मुझे विष्णु का वर मिला था कि उस रौद्ररूप महासुर का जो वध करेगा, विष्णु के वरदान के फलस्वरूप मैं उसका तेजवर्द्धन कर सकूंगा।।६६-६९।।

न हि धुन्धुर्महातेजास्तेजसाल्पेन शक्यते। निर्दग्धुं पृथिवीपाल चिरं युगशतैरपि॥७०॥

वीर्य्यञ्च सुमहत्तस्य देवैरपि दुरासदम्। स एवमुक्तो राजर्षिरुत्तङ्केन महात्मना।
कुवलाश्वं सुतं प्रादात्तस्मै धुन्धुनिबर्हणे।।७१।।

"हे पृथिवीपाल! इस महातेजा धुन्धु का दहन अल्प तेज वाले सैकड़ों युगकाल में भी नहीं कर पायेंगे। उसका महान् बल-वीर्य देवगण के लिये भी दुरासद है।" जब राजा बृहदश्व ने ऋषि का यह कथन सुना, तब उसने अपने पुत्र कुवलाश्व को मुनि को इस इच्छा से प्रदान किया कि वह धुन्धु दैत्य का वध करे।।७०-७१।।

बृहदश्व उवाच

भगवन्न्यस्तशस्त्रोऽहमयं तु तनयो मम। भविष्यति द्विजश्रेष्ठ धुन्धुमारो न संशयः।।७२।।
स तं व्यादिश्य तनयं राजर्षिर्धुन्धुमारणे। जगाम पर्व्वतायैव नृपतिः संशितव्रतः।।७३।।

राजा बृहदश्व कहते हैं—"हे प्रभो! मैंने शस्त्र त्याग कर दिया है। तथापि हे द्विजश्रेष्ठ! यह पुत्र अवश्य धुन्धु का वध कर देगा।" राजा बृहदश्व ने अपने पुत्र को धुन्धु वधार्थ आज्ञा देने के पश्चात् तप हेतु पर्वत के लिये प्रस्थान कर दिया।।७२-७३।।

लोमहर्षण उवाच

कुवलाश्वस्तु पुत्राणां शतेन सह भो द्विजाः।
प्रायादुत्तङ्कसहितो धुन्धोस्तस्य निबर्हणे।।७४।।
तमाविशत्तदा विष्णुस्तेजसा भगवान् प्रभुः।
उत्तङ्कस्य नियोगाद्वै लोकानां हितकाम्यया।।७५।।
तस्मिन् प्रयाते दुर्द्धर्षे दिवि शब्दो महानभूत्।
एष श्रीमानवध्योऽद्य धुन्धुमारो भविष्यति।।७६।।

लोमहर्षण कहते हैं—हे विप्रगण! राजा कुवलाश्व अपने सौ पुत्रों को साथ लेकर धुन्धु वधार्थ जब जाने लगे, उसी समय उनके शरीर में भगवान् विष्णु ने प्रवेश कर लिया। राजा के प्रस्थानकाल में अन्तरिक्ष से महान् शब्द श्रुतिगोचर हुआ कि "राजा कुवलाश्व अवध्य हैं। यह धुन्धुवध अवश्य करेंगे"।।७४-७६।।

दिव्यैर्गन्धैश्च माल्यैश्च तं देवाः समवाकिरन्। देवदुन्दुभयश्चैव प्रणेदुर्द्विजसत्तमाः।।७७।।
स गत्वा जयतां श्रेष्ठस्तनयैः सह वीर्य्यवान्। समुद्रं खानयामास बालुकान्तरमव्ययम्।।७८।।
तस्य पुत्रैः खनद्भिश्च बालुकान्तर्हितस्तदा।
धुन्धुरासादितो विप्रा दिशमावृत्य पश्चिमाम्।।७९।।
मुखजेनाग्निना क्रोधाल्लोकानुद्वर्त्तयन्निव। वारि सुस्राव वेगेन महोदधिरिवोदये।।८०।।
सोमस्य मुनिशार्दूला वरोर्म्मिकलिलो महान्।
तस्य पुत्रशतं दग्धं त्रिभिरूनन्तु रक्षसा।।८१।।

उस समय देवता उनके ऊपर दिव्य सुरभित पुष्प बरसाने लगे। तब दुन्दुभि नाद भी होने लगा। हे

द्विजसत्तमगण! विजयी लोगों में प्रमुख पराक्रमशील राजा पुत्रगण के साथ वहां मरुप्रदेश में गया। बालू से भरे उस समुद्र को, (सागर को, जहां केवल बालुका ही थी) खनन कराने लगा। हे ब्राह्मणगण! राजपुत्रों द्वारा खनन होने के कारण बालू में गुप्त रूप से स्थित राक्षस पश्चिम दिशा को अपने महान् शरीर से आच्छादित सा करता खड़ा हो गया। हे ब्राह्मणों! तब उस राजा ने देखा कि वह राक्षस अपने क्रोध के कारण अपने मुख से अग्नि जैसी फूत्कार छोड़ते हुये तरंगित महासागर का जल इस प्रकार वर्द्धित करने लगा, जिससे वह जल ऐसे बढ़ने लगा, जिस प्रकार चन्द्रोदय के प्रभाव से ज्वार में बढ़ता है। हे मुनिगण! अपने मुख से निकली अग्नि द्वारा उस राक्षस ने राजा के तीन पुत्रों को छोड़ कर बाकी सभी पुत्रों को दग्ध कर दिया।।७७-८१।।

ततः स राजा द्युतिमान् राक्षसं तं महाबलम्।
आससाद महातेजा धुन्धुं धुन्धुविनाशनः।।८२।।
तस्य वारिमयं वेगमापीय स नराधिपः। योगी योगेन वह्निञ्च शमयामास वारिणा।।८३।।
निहत्य तं महाकायं बलेनोदकराक्षसम्। उत्तङ्कं दर्शयामास कृतकर्म्मा नराधिपः।।८४।।

ऐसी स्थिति में वह महातेजस्वी द्युतिमान धुन्धु के नाशार्थ उद्यत राजा उस महाबली राक्षस के निकट आया। उस योगी राजा ने अपने योग द्वारा धुन्धु के जलमय वेग का पान किया तथा उसी के द्वारा अग्नि का शमन भी कर दिया। तदनन्तर राजा ने उस महाकाय जलराक्षस को अपने बल-पराक्रम से निहत कर दिया। तत्पश्चात् राजा ने ऋषि उत्तङ्क को वह मृत राक्षस प्रदर्शित किया तथा उसने स्वयं को कृतार्थ माना।।८२-८४।।

उत्तङ्कस्तु वरं प्रादात्तस्मै राज्ञे महात्मने। ददौ तस्याक्षयं वित्तं शत्रुभिश्चापराजितम्।।८५।।
धर्म्मे रतिञ्च सततं स्वर्गे वासं तथाक्षयम्।
पुत्राणां चाक्षयाँल्लोकान् स्वर्गे ये रक्षसा हताः।।८६।।

यह देखकर उत्तङ्क ने राजर्षि कुवलाश्व धुन्धुमार को यह वर प्रदान किया। उत्तङ्क ने कहा—"तुम अक्षय धन के स्वामी, शत्रुगण से अजेय, धर्मानुरागी रहोगे। तुम्हारा अक्षय रूप से स्वर्ग में निवास होगा। तुम्हारे जिन ९७ पुत्रों का वध राक्षस ने किया है, उनको अक्षय लोकों की प्राप्ति होगी"।।८५-८६।।

तस्य पुत्रास्त्रयः शिष्टा दृढाश्वो ज्येष्ठ उच्यते।
चन्द्राश्वकपिलाश्वौ तु कनीयांसौ कुमारकौ।।८७।।
धौन्धुमारेर्दृढाश्वस्य हर्य्यश्वश्चात्मजः स्मृतः।
हर्य्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत् क्षत्रधर्म्मरतः सदा।।८८।।
संहताश्वो निकुम्भस्य सुतो रणविशारदः। अकृशाश्वकृशाश्वौ तु संहताश्वसुतौ द्विजाः।।८९।।
तस्य हैमवती कन्या सतां मता दृषद्वती।
विख्याता त्रिषु लोकेषु पुत्रश्चास्याः प्रसेनजित्।।९०।।

राजा कुवलाश्व के जो तीन पुत्र जीवित बचे थे, उनमें से दृढाश्व ज्येष्ठ था। इससे क्रमशः छोटे थे चन्द्राश्व एवं कपिलाश्व। दृढाश्व का पुत्र हर्यश्व था। उसका क्षत्रियधर्म तत्पर निकुम्भ नामक पुत्र जन्मा। निकुम्भ का युद्ध तत्पर तथा कुशल पुत्र था संहताश्व। हे ब्राह्मणों! संहताश्व के पुत्रद्वय थे अकृशाश्व एवं कृशाश्व। संहताश्व

की कन्या भी थी। वह सत्पुरुषों द्वारा आदर योग्य एवं हैमवती नाम वाली थी। वह त्रैलोक्य में दृशद्वती कहलाती थी। इस कन्या के पुत्र का नाम था प्रसेनजित्।।८७-९०।।

लेभे प्रसेनजिद्भार्य्यां गौरीं नाम पतिव्रताम्।
अभिशस्ता तु सा भर्त्रा नदी वै बाहुदाभवत्॥९१॥

तस्य पुत्रो महानासीद्युवनाश्वो नराधिपः। मान्धाता युवनाश्वस्य त्रिलोकविजयी सुतः॥९२॥

तस्य चैत्ररथी भार्य्या शशविन्दोः सुताभवत्।
साध्वी विन्दुमती नाम रूपेणासदृशी भुवि॥९३॥
पतिव्रता च ज्येष्ठा च भ्रातृणामयुतस्य वै।
तस्यामुत्पादयामास मान्धाता द्वौ सुतौ द्विजाः॥९४॥

पुरुकुत्सं च धर्म्मज्ञं मुचुकुन्दं च पार्थिवम्। पुरुकुत्ससुतस्त्वासीत्त्रसदस्युर्महीपतिः॥९५॥

प्रसेनजित् की भार्या थी पतिव्रता गौरी। पति के शाप के कारण गौरी बाहुदा नामक नदी हो गयी। प्रसेनजित् का पुत्र युवनाश्व महान् राजा था। युवनाश्व का त्रिलोक विजयी पुत्र था मान्धाता। उसकी पत्नी चैत्ररथी शशविन्दु की कन्या थी। चैत्ररथी अपने दस सहस्र भ्राताओं में ज्येष्ठा, विन्दुमती नाम से प्रसिद्ध अलौकिक सुन्दर रूपवान् थी। हे ब्राह्मणगण! मान्धाता ने चैत्ररथी विन्दुमती से दो पुत्र उत्पन्न किये। उनका नाम है धर्मात्मा पुरुकुत्स तथा राजा मुचकुन्द। यही पुरुकुत्स ही राजा त्रसदस्यु कहलाया।।९१-९५।।

नर्म्मदायामथोत्पन्नः सम्भूतस्तस्य चात्मजः।
सम्भूतस्य तु दायादस्त्रिधन्वा रिपुमर्दनः॥९६॥

राज्ञस्त्रिधन्वनस्त्वासीद्विद्वांस्त्रय्यारुणः प्रभुः। तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः॥९७॥

परिग्रहणमन्त्राणां विघ्नं चक्रे सुदुर्म्मतिः। येन भार्य्या कृतोद्वाहा हृता चैव परस्य ह॥९८॥

बाल्यात् कामाच्च मोहाच्च साहसाच्चापलेन च।
जहार कन्यां कामार्त्तः कस्यचित् पुरवासिनः॥९९॥
अधर्म्मशङ्कुना तेन तं स त्रय्यारुणोऽत्यजत्।
अपध्वंसेति बहुशो वदन् क्रोधसमन्वितः॥१००॥

त्रसदस्यु ने नर्मदा से सम्भूत नामक पुत्र उत्पन्न किया। उसका पुत्र त्रिधन्वा शत्रुमर्दन वीर था। राजा त्रिधन्वा का विद्वान् पुत्र था त्रय्यारुण। उसका महाबली पुत्र था कुमार। कुमार दुर्मति था। वह लोगों में पाणिग्रहण के समय विघ्नोत्पत्ति करता था। तभी विवाहिता स्त्रियों का हरण कर लेता था। उसने बाल्यपन के काम-मोह-साहस-चपलता के कारण एक नगरवासी की पुत्री का हरण कर लिया। यह अधर्माचरण देखकर क्रोधित राजा त्रय्यारुण ने कुमार का त्याग नाना अपशब्दों की बौछार करते हुये कर दिया।।९६-१००।।

सोऽब्रवीत् पितरं त्यक्तः क्व गच्छामीति वै मुहुः।
पिता च तमथोवाच श्वपाकैः सह वर्त्तयः॥१०१॥

नाहं पुत्रेण पुत्रार्थी त्वयाद्य कुलपांसन। इत्युक्तः स निराक्रामन्नगराद्वचनात् पितुः॥१०२॥

न च तं वारयामास वसिष्ठो भगवानृषिः।
स तु सत्यव्रतो विप्राः श्वपाकावसथान्तिके॥१०३॥
पित्रा त्यक्तोऽवसद्वीरः पिताप्यस्य वनं ययौ।
ततस्तस्मिंस्तु विषये नावर्षत् पाकशासनः॥१०४॥
समा द्वादश भो विप्रास्तेनाधर्म्मेण वै तदा।
दारांस्तु तस्य विषये विश्वामित्रो महातपाः॥१०५॥
संन्यस्य सागरान्ते तु चकार विपुलं तपः।
तस्य पत्नी गले बद्ध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम्॥१०६॥

कुमार इस प्रकार परित्यक्त होकर पिता से पुनः-पुनः कहने लगा "अब मैं कहां जाऊं?" पिता ने कहा— "तुम चाण्डालों के साथ रहो। ऐसे कुलांगार पुत्र का मुझे प्रयोजन नहीं है।" पिता के द्वारा इस प्रकार की भर्त्सना पाकर वह नगर से निकल पड़ा। भगवान् ऋषि वसिष्ठ ने भी उसे नहीं रोका। वह वीर कुमार सत्यव्रत पिता से त्यक्त होने के पश्चात् चाण्डालों के साथ रहने लगा। उस समय त्रय्यारुण राजा भी तपार्थ वन चले गये। हे ब्राह्मणगण! उस समय इन्द्रदेव ने द्वादश वर्ष पर्यन्त घोर अवर्षण किया। सर्वत्र वर्षा न होने के कारण महातपस्वी विश्वामित्र अपनी पत्नी को उसी राज्य में छोड़कर समुद्र तट पर गये तथा वहां विपुल तपःश्चरण करने लगे। उस समय उनकी पत्नी ने मध्यम वाले अपने पुत्र के गले में रस्सी बांधा।।१०१-१०६।।

शेषस्य भरणार्थाय व्यक्रीणाद्गोशतेन वै। तं च बद्धं गले दृष्ट्वा विक्रयार्थं नृपात्मजः॥१०७॥
महर्षिपुत्रं धर्म्मात्मा मोक्षयामास भो द्विजाः। सत्यव्रतो महाबाहुर्भरणं तस्य चाकरोत्॥१०८॥

वह विश्वामित्र भार्या बाकी लोगों के भरण-पोषणार्थ उस मध्यम पुत्र को सौ गौओं के बदले विक्रय करने निकल पड़ी। तभी चाण्डाल गृहवासी सत्यव्रत कुमार ने उस मध्यम पुत्र को मुक्त कराया तथा उसने विश्वामित्र की कृपा पाने हेतु उसका पालन-पोषण किया था।।१०७-१०८।।

विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुकम्पार्थमेव च।
सोऽभवद्गालवो नाम गले बन्धान्महातपाः।
महर्षिः कौशिको धीमांस्तेन वीरेण मोक्षितः॥१०९॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सूर्य्यवंशनिरूपणं नाम सप्तमोऽध्यायः।।७।।



वह मध्यम पुत्र गले में रस्सी से बांधा गया था, अतः वह ऋषिपुत्र महातपस्वी प्रसिद्ध ग़ालव ऋषि के नाम से विख्यात हो गया। यह महर्षि कौशिक गालव वीर सत्यव्रत द्वारा छुड़ाये गये थे।।१०९।।

।।सप्तम अध्याय समाप्त।।



अथ अष्टमोऽध्यायः

सत्यव्रत द्वारा त्रिशंकु नाम प्राप्ति का कारण, उसका सशरीर स्वर्गगमन, सगर जन्म वृत्तान्त, सगर पुत्रों को कपिल का शाप तथा भगीरथ का जन्म

लोमहर्षण उवाच

सत्यव्रतस्तु भक्त्या च कृपया च प्रतिज्ञया। विश्वामित्रकलत्रं तु वभूव विनये स्थितः॥१॥

हत्वा मृगान् वराहांश्च महिषांश्च वनेचरान्। विश्वामित्राश्रमाभ्यासे मांसं वृक्षे बबन्ध च॥२॥

उपांशुव्रतमास्थाय दीक्षां द्वादशवार्षिकीम्। पितुर्नियोगादवसत्तस्मिन् वनगते नृपे॥३॥

लोमहर्षण कहते हैं—यही कुमार सत्यव्रत भक्ति, कृपा, विनय एवं प्रतिज्ञाबद्ध होकर विश्वामित्र की पत्नी का भी पालन करता। वह आखेट में मृग, शूकर, भैंसा तथा वनपशुओं का वध करके उनके मांस को विश्वामित्र के आश्रम में स्थित वृक्षों पर लटका देता। जब राजा त्रय्यारुण वन चले गये, तभी से सत्यव्रत ने ऐसा नियम धारण किया कि उसके व्रत को कोई व्यक्ति न जान सके। ऐसे उपांशु व्रत का संकल्प लेकर उसने द्वादश वर्ष की दीक्षा लिया तथा पिता के आदेश के अनुसार चाण्डालों में निवास करने लगा।।१-३।।

अयोध्यां चैव राज्यं च तथैवान्तःपुरं मुनिः।
याज्योपाध्यायसंयोगाद्वसिष्ठः पर्य्यरक्षत॥४॥
सत्यव्रतस्तु बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात्।
वसिष्ठेऽभ्यधिकं मन्युं धारयामास नित्यशः॥५॥

पित्रा हि तं तदा राष्ट्रात्त्यज्यमानं प्रियं सुतम्। निवारयामास मुनिर्बहुना कारणेन च॥६॥

पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात् सप्तमे पदे।
न च सत्यव्रतस्तस्माद्धृतवान् सप्तमे पदे॥७॥
जानन् धर्म्मं वसिष्ठस्तु न मां त्रातीति भो द्विजाः।
सत्यव्रतस्तदा रोषं वसिष्ठे मनसाकरोत्॥८॥

गुणबुद्ध्या तु भगवान् वसिष्ठः कृतवांस्तथा। न च सत्यव्रतस्तस्य तमुपांशुमबुध्यत॥९॥

उधर त्रय्यारुण के साथ यजमान एवं पुरोहित का सम्बन्ध होने के कारण महर्षि वसिष्ठदेव ही अयोध्या राज्य, अन्तःपुर आदि का रक्षण करने लगे। सत्यव्रत कुमार के मन में अपने लड़कपन तथा भवितव्यता के कारण ऋषि वसिष्ठ के प्रति अत्यधिक क्रोध था, क्योंकि जब त्रय्यारुण राजा कुमार सत्यव्रत को राज्य से निष्कासित कर रहे थे, उस समय नाना कारण से वसिष्ठ ने इस निष्कासन को रोका ही नहीं था। विवाह का समापन सप्तपदी सम्पन्न होने पर होता है। अतः सत्यव्रत यह सोचता था कि उसने कन्या का अपहरण सप्तपदी

के पूर्व किया था (अतः वह अधर्म नहीं था)। हे विप्रगण! सत्यव्रत का यह मत था कि "ऋषि वसिष्ठ ने धर्म का ज्ञाता होकर भी मुझे नहीं बचाया।" यद्यपि न्यायतः वसिष्ठ ने भावी हित देखकर ही सत्यव्रत को निष्कासित होने से नहीं रोका था, तथापि इस अन्तर्निहित सत्य का ज्ञान सत्यव्रत को नहीं हो सका।।४-९।।

तस्मिन्नपरितोषश्च पितुरासीन्महात्मनः। तेन द्वादश वर्षाणि नावर्षत् पाकशासनः॥१०॥

तेन त्विदानीं विहितां दीक्षां तां दुर्वहां भुवि।
कुलस्य निष्कृतिर्विप्राः कृता सा वै भवेदिति॥११॥
न तं वसिष्ठो भगवान् पित्रा त्यक्तं न्यवारयत्।
अभिषेक्ष्याम्यहं पुत्रमस्येत्येवंमतिर्म्मुनिः॥१२॥

सत्यव्रत के प्रति पिता राजा त्रय्यारुण पूर्णतः असन्तुष्ट रहते थे। अतः इन्द्र ने भी राज्य में द्वादश वर्षीय अवर्षण किया था। हे द्विजों! वसिष्ठदेव ने उस समय यह चिन्तन किया कि बारह वर्षीय कठिन व्रतदीक्षा के कारण इसका प्रायश्चित्त सम्पन्न हो जायेगा, तब मैं इसके पुत्र का अभिषेक कर दूंगा। यह विचार करने के कारण महर्षि वसिष्ठ ने सत्यव्रत का राज्य से निष्कासन नहीं रोका। उस समय पिता ने सत्यव्रत का त्याग कर दिया था।।१०-१२।।

स तु द्वादश वर्षाणि तां दीक्षामवहद्बली। अविद्यमाने मांसे तु वसिष्ठस्य महात्मनः॥१३॥

सर्व्वकामदुधां दोग्ध्रीं स ददर्श नृपात्मजः।
तां वै क्रोधाच्च मोहाच्च श्रमाच्चैव क्षुधान्वितः॥१४॥
देशधर्म्मगतो राजा जघान मुनिसत्तमाः।
तन्मांसं स स्वयं चैव विश्वामित्रस्य चात्मजान्॥१५॥
भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठोऽप्यस्य चुक्रुधे॥१६॥

वह इस प्रकार द्वादश वर्ष पर्यन्त दीक्षित (व्रती) था। एक दिन मांस न मिलने पर उस राजपुत्र ने महात्मा वसिष्ठ की सर्व कामनारूप दुग्धप्रदा कामधेनु को देखा। हे मुनिप्रवरगण! वह उस समय भूखा था। वह क्रोध, मतिभ्रम (मोह) तथा श्रम से पीड़ित था। अतः देशधर्मानुसार राजा ने उन मुनिप्रवर की गौ का वध किया तथा उसका मांस स्वयं खाकर विश्वामित्र के पुत्रगण को भी खिलाया। यह संवाद सुनकर वसिष्ठ क्रोधित हो गये।।१३-१६।।

वसिष्ठ उवाच

पातयेयमहं क्रूर तव शङ्कुमसंशयम्।
यदि ते द्वाविमौ शङ्कू न स्यातां वै कृतौ पुनः॥१७॥

पितुश्चापरितोषेण गुरुदोग्ध्रीवधेन च। अप्रोक्षितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रमः॥१८॥

एवं त्रीण्यस्य शङ्कूनि तानि दृष्ट्वा महातपाः।
त्रिशङ्कुरिति होवाच त्रिशङ्कुस्तेन स स्मृतः॥१९॥

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—हे क्रूर! यदि तुमने दो शंकु दोष न किये होते (अपराध न किये होते), तब मैं तुम्हारे पातक को दूर कर देता। तुमने तीन प्रतिकूल कार्य किया है। यथा—"पिता की असंतुष्टि, गुरु की गौ का वध तथा अप्रोक्षित (बिना धुले) मांस का भक्षण।" इन तीन शंकुओं को देख कर वसिष्ठ देव ने उसे त्रिशंकु कहा। तभी से वह राजा त्रिशंकु कहलाया। इसी कारण उसे सब त्रिशंकु कहने लगे। सत्यव्रत के तीन शंकुओं का अवलोकन करके मुनि वसिष्ठ ने उसे त्रिशंकु कहा। तभी से लोग उसे त्रिशंकु कहने लगे।।१७-१९।।

विश्वामित्रस्य दाराणामनेन भरणं कृतम्। तेन तस्मै वरं प्रादान्मुनिःप्रीतस्त्रिशङ्कवे॥२०॥
छन्द्यमानो वरेणाथ वरं वव्रे नृपात्मजः। सशरीरो व्रजे स्वर्गमित्येवं याचितो वरः॥२१॥

अनावृष्टिभये तस्मिन् गते द्वादशवार्षिके।
पित्र्ये राज्येऽभिषिच्याथ याजयामास पार्थिवम्॥२२॥

मिषतां देवतानां च वसिष्ठस्य च कौशिकः। दिवमारोपयामास सशरीरं महातपाः॥२३॥

तदनन्तर विश्वामित्र ने यह देखा कि उनकी स्त्री तथा सन्तान का भरण-पोषण त्रिशंकु ने किया था। अतः उन्होंने प्रसन्न होकर त्रिशंकु को वर प्रदान किया। उसने वर मांगने रूपी कृपा पाने पर यह वर मांगा कि मैं सशरीर स्वर्ग जाऊंगा। जब द्वादशवर्षीय अनावृष्टि के भय का उच्छेद हो गया, तब विश्वामित्र ने त्रिशंकु को उसके पिता के राज्य पर अभिषिक्त किया तथा उसके लिये यज्ञ कराने लगे। महातपा विश्वामित्र ने देवगण के सामने, उनके देखते-देखते राजपुत्र त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग भेज दिया।।२०-२३।।

तस्य सत्यरथा नाम पत्नी कैकेयवंशजा। कुमारं जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम्॥२४॥

त्रिशंकु की कैकयवंशी पत्नी सत्यरथा ने त्रिशंकु के पुत्र हरिश्चन्द्र को उत्पन्न किया, जो निष्पाप था।।२४।।

स वै राजा हरिश्चन्द्रस्त्रैशङ्कव इति स्मृतः। आहर्त्ता राजसूयस्य सम्राडिति ह विश्रुतः॥२५॥
हरिश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूद्रोहितो नाम पार्थिवः। हरितो रोहितस्याथ चञ्चुर्हारित उच्यते॥२६॥
विजयश्च मुनिश्रेष्ठाश्चञ्चुपुत्रो बभूव ह। जेता स सर्व्वपृथिवीं विजयस्तेन स स्मृतः॥२७॥

रुरुकस्तनयस्तस्य राजा धर्म्मार्थकोविदः।
रुरुकस्य वृकः पुत्रो वृकाद्बाहुस्तु जज्ञिवान्॥२८॥
हैहयास्तालजङ्घाश्च निरस्यन्ति स्म तं नृपम्।
तत्पत्नी गर्भमादाय और्व्वस्याश्रममाविशत्॥२९॥

यह राजा हरिश्चन्द्र त्रैशंकेय भी कहलाये। इन्होंने राजसूय यज्ञ किया तथा चक्रवर्त्ती राजा कहे गये। इनका पुत्र राजा रोहित था। उसका पुत्र था हरित। हरित का पुत्र था चंचु, चंचु का पुत्र था विजय। उसने सम्पूर्ण वसुन्धरा को जीत कर विजय नाम प्राप्त किया। उसका पुत्र था धर्मज्ञ तथा अर्थज्ञ राजा रुरुक। इसका पुत्र था वृक। उसका पुत्र था बाहु, जिसे हैहय तथा तालजंघ लोगों ने राज्य से च्युत कर दिया। बाहु की भार्या गर्भिणी थी। वह और्व ऋषि के आश्रम में शरणागत हो गयी।।२५-२९।।

नासत्यो धार्म्मिकश्चैव स हि धर्मयुगेऽभवत्। सगरस्तु सुतो बाहोर्यज्ञे सह गरेण वै॥३०॥

और्व्वस्याश्रममासाद्य भार्गवेणाभिरक्षितः।
आग्नेयमस्त्रं लब्ध्वा च भार्गवात् सगरो नृपः॥३१॥
जिगाय पृथिवीं हत्वा तालजङ्घान् सहैहयान्।
शकानां पह्लवानां च धर्मं निरसदच्युतः।
क्षत्रियाणां मुनिश्रेष्ठाः पारदानां च धर्म्मवित्॥३२॥

बाहु सत्यात्मा तथा धार्मिक था। वही धर्मयुग कहा गया। उसका पुत्र सगर विष के साथ जन्मा था। वह और्व मुनि के आश्रम में भार्गवों द्वारा रक्षित किया गया था। उन भार्गवों से सगर राजा ने आग्नेयास्त्र प्राप्त किया था। हे मुनिवर! धर्मज्ञ सगर ने शत्रु तालजंघों तथा हैहयों का वध करके वसुन्धरा को जीत कर उस पर अधिकार करने के पश्चात् शक, पह्लव, पारद जाति वाले क्षत्रियों को धर्मच्युत कर दिया।।३०-३२।।

मुनय ऊचुः

कथं स सगरो जातो गरेणैव सहाच्युतः।
किमर्थं च शकादीनां क्षत्रियाणां महौजसाम्॥३३॥
धर्म्मान्कुलोचितान् राजा क्रुद्धो निरसदच्युतः।
एतन्नः सर्व्वमाचक्ष्व विस्तरेण महामते॥३४॥

मुनिगण कहते हैं—सगर का जन्म विष के साथ क्यों हुआ? राजा सगर ने किस कारण क्रोधान्वित होकर महातेजस्वी शक क्षत्रियों को धर्म एवं कुल से च्युत कर दिया? हे महामति! यह सब कहने की कृपा करें।।३३-३४।।

लोमहर्षण उवाच

बाहोर्व्यसनिनः पूर्वं हृतं राज्यमभूत् किल।
हैहयैस्तालजङ्घैश्च शकैः सार्द्धं द्विजोत्तमाः॥३५॥
यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पह्लवास्तथा।
एते ह्यपि गणाः पञ्च हैहयार्थे पराक्रमम्॥३६॥
हतराज्यस्तदा राजा स वै बाहुर्वनं ययौ। पत्न्या चानुगतो दुःखी तत्र प्राणानवासृजत्॥३७॥
पत्नी तु यादवी तस्य सगर्भा पृष्ठतोऽन्वगात्।
सपत्न्या च गरस्तस्यै दत्तः पूर्व्वं किलानघाः॥३८॥
सा तु भर्त्तुश्चितां कृत्वा वने तामभ्यरोहत।
और्व्वस्तां भार्गवो विप्राः कारुण्यात् समवारयत्॥३९॥

लोमहर्षण कहते हैं—हे द्विजोत्तमवृन्द! पूर्वकाल में हैहय, तालजंघ तथा शकगण ने व्यसनी राजा बाहु के राज्य का हरण कर लिया था। हैहयों के सहायकगण थे शक, यवन, पारद, काम्बोज एवं पह्लव। वह राज्य से वंचित होकर वन चले गये। वहां दुःखी बाहु ने प्राणों का त्याग कर दिया। उनकी पत्नी भी उनके पीछे वन

में गयी थी। उसकी सौत ने उस यादवी को विष दिया था, जो गर्भावस्था में थी। वह पति के शव के साथ सती होने जा ही रही थी, तथापि भृगुवंशी और्व ने उसे रोक दिया।।३५-३९।।

तस्यांश्रमे च गर्भः स गरेणैव सहाच्युतः। व्यजायत महाबाहुः सगरो नाम पार्थिवः॥४०॥

और्व्वस्तु जातकर्म्मादींस्तस्य कृत्वा महात्मनः।
अध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽस्त्रं प्रत्यपादयत्॥४१॥

आग्नेयं तु महाभागा अमरैरपि दुःसहम्। स तेनास्त्रबलेनाजौ बलेन च समन्वितः॥४२॥

तत्पश्चात् और्व के आश्रम में वह गर्भ विष (गरल) के साथ उत्पन्न हो गया। वह महाबाहु ग़रल के साथ उत्पन्न होने के कारण सगर कहा गया। महात्मा और्व ने ही बालक का जातकर्मादि संस्कार किया तथा उसे वेद-शास्त्रादि का अध्ययन कराया और उसे अस्त्र प्रदान किया। उन ऋषि ने सगर को देवगण के लिये भी असहनीय आग्नेयास्त्र प्रदान किया। उन अस्त्र के बल से वह सेना एकत्र करके बली हो गया।।४०-४२।।

हैहयान् विजघानाशु क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव।
आजहार च लोकेषु कीर्त्ति कीर्त्तिमतां वरः॥४३॥
ततः शकांश्च यवनान् काम्बोजान् पारदांस्तथा।
पह्लवांश्चैव निःशेषान् कर्त्तुं व्यवसितो नृपः॥४४॥

उस राजा सगर ने क्रोधित होकर मुनि द्वारा प्रदान किये अस्त्रों से उन हैहयगण का उस प्रकार वध किया, जिस प्रकार क्रोधित रुद्र ने पशुवध किया था। संसार में इस प्रकार वह कीर्तिमानों में श्रेष्ठ राजा अपनी कीर्त्ति प्रसारित करने लगा। तदनन्तर वह शक, यवन, काम्बोज, पारद एवं पह्लवों को समाप्त करने लगा।।४३-४४।।

ते वध्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना। वसिष्ठं शरणं गत्वा प्रणिपेतुर्मनीषिणम्॥४५॥

वसिष्ठस्त्वथ तान् दृष्ट्वा समयेन महाद्युतिः। सगरं वारयामास तेषां दत्त्वाभयं तदा॥४६॥

सगरः स्वां प्रतिज्ञां तु गुरोर्वाक्यं निशम्य च।
धर्म्मं जघान तेषां वै वेशानन्यांश्चकार ह॥४७॥

महात्मा सगर द्वारा मारे जा रहे वे वीर वसिष्ठ की शरण में गये तथा उन मनीषी को उन लोगों ने प्रणाम किया। तब महातेजा वसिष्ठ ने सगर को इस हत्या से रोका और इन पीड़ितों को अभयदान दे दिया। सगर ने गुरु का आदेश शिरोधार्य किया तथा अपने प्रण को याद करके उन सभी के धर्म को नष्ट करके उनके लिये अलग वेष का विधान किया।।४५-४७।।

अर्द्धं शकानां शिरसो मुण्डयित्वा व्यसर्जयत्।
यवनानां शिरः सर्व्वं काम्बोजानां तथैव च॥४८॥
पारदा मुक्तकेशाश्च पह्लवाः श्मश्रुधारिणः।
निःस्वाध्यायवषट्काराः कृतास्तेन महात्मना॥४९॥

शका यवनकाम्बोजाः पारदाश्च द्विजोत्तमाः।
कोणिसर्पा माहिषका दर्व्वाश्चोलाः सकेरलाः॥५०॥

सर्व्वे ते क्षत्रिया विप्रा धर्म्मस्तेषां निराकृतः। वसिष्ठवचनाद्राज्ञा सगरेण महात्मना॥५१॥

सगर ने शकों के आधे शिर को तथा यवन एवं काम्बोजों के पूर्ण शिर को मुण्डित कर दिया। सगर ने पारदगण को खुले केशों वाला तथा पह्लवों को दाढ़ी-मूंछधारी बनाकर मुक्त कर दिया। शक, यवन, काम्बोज, पारद, कोणिसर्प, माहिषिक, दर्व, चोल, केरल क्षत्रियों को वेद पढ़ने आदि धर्म से बहिष्कृत कर दिया। वसिष्ठ की आज्ञा से महात्मा सगर ने यह कार्य किया था।।४८-५१।।

स धर्म्मविजयी राजा विजित्येमां वसुन्धराम्।
अश्वं प्रचारयामास वाजिमेधाय दीक्षितः॥५२॥

तस्य चारयतः सोऽश्वः समुद्रे पूर्व्वदक्षिणे। वेलासमीपेऽपहृतो भूमिं चैव प्रवेशितः॥५३॥

स तं देशं तदा पुत्रैः खानयामास पार्थिवः। आसेदुस्ते तदा तत्र खन्यमाने महार्णवे॥५४॥

तमादिपुरुषं देवं हरिं कृष्णं प्रजापतिम्। विष्णुं कपिलरूपेण स्वपन्तं पुरुषं तदा॥५५॥

उस धर्म विजयी राजा ने समग्र पृथिवी पर विजय पाने के पश्चात् अश्वमेध यज्ञदीक्षा ग्रहण किया। तदनन्तर राजा ने अश्व छोड़ा। उस अश्व को पूर्व-दक्षिण सागर के पास अपहरण करके पृथिवी में छिपाया गया। उसके अन्वेषणार्थ सगरपुत्रों ने वहां उस स्थान की खुदाई की। तदनन्तर महासमुद्र का खनन करते वे सभी राजकुमार वहां तक पहुंच गये, जहां आदिपुरुष देव-हरि-कृष्ण-प्रजापति-विष्णु कपिल रूप से शयन कर रहे थे।।५२-५५।।

तस्य चक्षुःसमुत्थेन तेजसा प्रतिबुध्यतः। दग्धाः सर्व्वे मुनिश्रेष्ठाश्चत्वारस्त्ववशेषिताः॥५६॥

बर्हिकेतुः सुकेतुश्च तथा धर्म्मरथो नृपः। शूरः पञ्चनदश्चैव तस्य वंशकरा नृपाः॥५७॥

प्रादाच्च तस्मै भगवान् हरिर्नारायणो वरम्।
अक्षयं वंश्यमिक्ष्वाकोः कीर्त्तिं चाप्यनिवर्त्तिनीम्॥५८॥

पुत्रं समुद्रं च विभुः स्वर्गे वासं तथा क्षयम्। समुद्रश्चार्घ्यमादाय ववन्दे तं महीपतिम्॥५९॥

सागरत्वं च लेभे स कर्म्मणा तेन तस्य ह।
तं चाश्वमेधिकं सोऽश्वं समुद्रादुपलब्धवान्॥६०॥
आजहाराश्वमेधानां शतं च सुमहातपाः।
पुत्राणां च सहस्राणि षष्टिस्तस्येति नः श्रुतम्॥६१॥

जब भगवान् कपिल जाग्रत हुये, तब उनके नेत्रों के तेज से समस्त सगरपुत्र (६००००) दग्ध हो गये। केवल चार राजपुत्र ही जीवित बचे। यथा—बर्हिकेतु, सुकेतु, राजा धर्मरथ एवं वीर पंचनद। ये ही वंश बढ़ाने वाले थे। अन्ततः भगवान् हरिनारायण ने राजा सगर को वर प्रदान किया "इक्ष्वाकु वंश अक्षय रहेगा। तुम्हारी कीर्ति बढ़ती रहेगी। तुमको समुद्रपुत्र की प्राप्ति होगी। तुमको अक्षय स्वर्ग प्राप्त होगा।" उस समय समुद्र भी

अर्घ्य द्वारा राजा की वन्दना करने लगे। तभी से यह कर्म करने से समुद्र सागर कहलाया जाने लगा। अश्वमेध यज्ञ के उस खोये अश्व को राजा सगर ने समुद्र से प्राप्त करके सौ अश्वमेध यज्ञानुष्ठान सम्पन्न किया था। उसके साठ हजार पुत्र थे, यह हमने सुना है।।५६-६१।।

मुनय ऊचुः

सगरास्यात्मजा धीराः कथं जाता महाबलाः।
विक्रान्ताः षष्टिसाहस्राः विधिना केन सत्तम॥६२॥

मुनिगण कहते हैं—हे सत्तम, हे सूत! सगर के महाबली, विक्रान्त साठ हजार पुत्र कैसे उत्पन्न हुये थे?।।६२।।

लोमहर्षण उवाच

द्वे भार्य्ये सगरस्यास्तां तपसा दग्धकिल्विषे।
ज्येष्ठा विदर्भदुहिता केशिनी नाम नामतः॥६३॥
कनीयसी तु महती पत्नी परमधर्म्मिणी। अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि॥६४॥
और्व्वस्ताभ्यां वरं प्रादात्तद्बुध्यध्वं द्विजोत्तमाः।
षष्टिं पुत्रसहस्राणि गृह्णात्वेका नितम्बिनी॥६५॥

लोमहर्षण कहते हैं—सगरराज की दो पत्नियां थीं। उन्होंने तप द्वारा अपने कल्मष का नाश किया था। उनमें ज्येष्ठ पत्नी थी विदर्भराज कन्या केशिनी। कनिष्ठा रानी थी अरिष्टनेमि की अनुपम सुन्दरी तथा धार्मिक कन्या। हे ब्राह्मणगण! और्व मुनि द्वारा उनको प्रदत्त वर का वर्णन कहता हूं। सुनें। और्व ने वर प्रदान किया था कि "एक रानी साठ हजार पुत्रों को जन्म देगी। दूसरी रानी केवल एक ही पुत्र को जन्म देगी। वही वंश धारण करेगा। जिस रानी को जो वर रुचिकर हो, वह मांगे"।।६३-६५।।

एकं वंशधरं त्वेका यथेष्टं वरयत्विति। तत्रैका जगृहे पुत्रान् षष्टिसाहस्रसम्मितान्॥६६॥
एकं वंशधरं त्वेका तथेत्याह ततो मुनिः। राजा पञ्चजनो नाम बभूव स महाद्युतिः॥६७॥
इतरा सुषुवे तुम्बीं बीजपूर्णामिति श्रुतिः। तत्र षष्टिसहस्राणि गर्भास्ते तिलसम्मिताः॥६८॥
संबभूवुर्यथाकालं ववृधुश्च यथासुखम्। घृतपूर्णेषु कुम्भेषु तान् गर्भान्निदधे ततः॥६९॥
धात्रीश्चैकैकशः प्रादात्तावतीः पोषणे नृपः। ततो दशसु मासेषु समुत्तस्थुर्यथाक्रमम्॥७०॥
कुमारास्ते यथाकालं सगरप्रीतिवर्द्धनाः। षष्टिपुत्रसहस्राणि तस्यैवमभवन् द्विजाः॥७१॥
गर्भादलाबुमध्याद्वै जातानि पृथिवीपतेः। तेषां नारायणं तेजः प्रविष्टानां महात्मनाम्॥७२॥

उस स्थिति में एक रानी ने साठ हजार सन्तान तथा दूसरी ने मात्र एक वंशधर सन्तान का वर मांगा। जो वंशधर पुत्र था, वह पंचजन नामक महान् द्युतिशाली राजा हो गया। यह कहा जाता है कि एक स्त्री ने गर्भ से एक तुम्बी को उत्पन्न किया। उससे एक-एक तिल परिमाण के साठ सहस्र गर्भ उत्पन्न हुये। उनको एक-एक करके साठ हजार घृतपूर्ण घटों में स्थापित किया गया। वे सुख पूर्वक यथाकाल बढ़ने लगे। राजा ने प्रत्येक गर्भ

की देख-रेख के लिये एक-एक धात्री (दाई) नियुक्त किया था। दस मास अतिवाहित होने पर वे साठ हजार कुमार वर्धित होने लगे। वे सभी राजा सगर को प्रसन्न करने वाले साठ हजार पुत्र हो गये। वे सभी तुम्बी से उत्पन्न हुये थे। उन महात्माओं में नारायण का तेज प्रविष्ट था।।६६-७२।।

एकः पञ्चजनो नाम पुत्रो राजा बभूव ह। शूरः पञ्चजनस्यासीदंशुमान्नाम वीर्य्यवान्।।७३।।

दिलीपस्तस्य तनयः खट्वाङ्ग इति विश्रुतः।
येन स्वर्गादिहागत्य मुहूर्त्तं प्राप्य जीवितम्।।७४।।
त्रयोऽभिसन्धिता लोका बुद्ध्या सत्येन चानघाः।
दिलीपस्य तु दायादो महाराजो भगीरथः।।७५।।

यः स गङ्गां सरिच्छ्रेष्ठामवातारयत प्रभुः। समुद्रमानयच्चैनां दुहितृत्वेऽप्यकल्पयत्।।७६।।

पंचजन नामक पुत्र राजा बना था। उसका पुत्र था अतीव वीर अंशुमान्। उसका पुत्र था दिलीप। उसका अन्य नाम था षट्वांग। वह स्वर्ग से लौट कर दो घड़ी जीवित रहा था। उस निष्पाप ने अपनी बुद्धि तथा सत्य द्वारा तीनों लोकों को जोड़ दिया था। इन दिलीप का पुत्र था महाराज भगीरथ। इस राजा ने नदीश्रेष्ठ भागीरथी को पृथिवी पर अवतीर्ण कराया था। उसने भागीरथी को पुत्री मान कर उसको समुद्र में मिलाया था।।७३-७६।।

तस्माद्भागीरथी गङ्गा कथ्यते वंशचिन्तकैः। भगीरथसुतो राजा श्रुत इत्यभिविश्रुतः।।७७।।

नाभागस्तु श्रुतस्यासीत् पुत्रः परमधार्म्मिकः।
अम्बरीषस्तु नाभागिः सिन्धुद्वीपपिताभवत्।।७८।।
अयुताजित्तु दायादः सिन्धुद्वीपस्य वीर्य्यवान्।
अयुताजित्सुतस्त्वासीदृतुपर्णो महायशाः।।७९।।

दिव्याक्षहृदयज्ञो वै राजा नलसखो बली। ऋतुपर्णसुतस्त्वासीदात्तपर्णिर्महायशाः।।८०।।

सुदासस्तस्य तनयो राजा इन्द्रसखोऽभवत्।
सुदासस्य सुतः प्रोक्तः सौदासो नाम पार्थिवः।।८१।।

इसी कारण वंशचिन्तक लोग गंगा नदी को भागीरथी ही कहते हैं। भगीरथ का पुत्र था राजा श्रुत, ऐसा कहा जाता है। इसका पुत्र था परम धार्मिक नाभाग। उसका पुत्र था अम्बरीष जो सिन्धुद्वीप का पिता था। सिन्धुद्वीप का शक्तिमान् पुत्र था अयुताजित्। उसका पुत्र था महायशस्वी ऋतुपर्ण। वह अक्षक्रीड़ा (द्यूतक्रीड़ा) का महान् ज्ञाता था तथा राजा नल का मित्र था। राजा ऋतुपर्ण का पुत्र आत्तपर्णि भी अत्यधिक यश वाला था। उसका पुत्र था सुदास, जो देवराज इन्द्र का मित्र था। सुदास का पुत्र था राजा सौदास।।७७-८१।।

ख्यातः कल्माषपादो वै राजा मित्रसहोऽभवत्।
कल्माषपादस्य सुतः सर्व्वकर्म्मेति विश्रुतः।।८२।।

अनरण्यस्तु पुत्रोऽभूद्विश्रुतः सर्व्वकर्म्मणः। अनरण्यसुतो निघ्नो निघ्नतो द्वौ बभूवतुः।।८३।।

अनमित्रो रघुश्चैव पार्थिवर्षभसत्तमौ। अनमित्रसुतो राजा विद्वान् दुलिदुहोऽभवत्॥८४॥
दिलीपस्तनयस्तस्य रामस्य प्रपितामहः। दीर्घबाहुर्दिलीपस्य रघुर्नाम्ना सुतोऽभवत्॥८५॥

अयोध्यायां महाराजो यः पुरासीन्महाबलः।
अजस्तु राघवो जज्ञे तथा दशरथोऽप्यजात्॥८६॥

रामो दशरथाज्जज्ञे धर्म्मात्मा सुमहायशाः। रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिसंज्ञितः॥८७॥

अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे धर्म्मात्मा सुमहायशाः।
अतिथेस्त्वभवत्पुत्रो निषधो नाम वीर्य्यवान्॥८८॥
निषधस्य नलः पुत्रो नभः पुत्रो नलस्य तु।
नभस्य पुण्डरीकस्तु क्षेमधन्वा ततः स्मृतः॥८९॥

इसका नाम सौदास, कल्माषपाद तथा मित्रसह था। कल्माषपाद का पुत्र था सर्वकर्मा। उसका पुत्र था अनरण्य। इसका पुत्र था निघ्न। निघ्न के दो श्रेष्ठ पुत्र राजा थे। यथा—अनमित्र एवं रघु। अनमित्र का पुत्र था दुलिदुह। यह राजा होने के साथ विद्वान् भी था। उसका पुत्र था दिलीप। यही रामचन्द्र का प्रपितामह था। दिलीप का पुत्र दीर्घबाहु रघु था। यही पूर्वकाल में अयोध्या का राजा था। रघु का पुत्र था अज। अज के पुत्र थे दशरथ। दशरथ के पुत्र महायशस्वी धर्मात्मा रामचन्द्र थे। राम का पुत्र था कुश। कुश का पुत्र था अत्यन्त यशस्वी तथा धार्मिक अतिथि। अतिथि का पुत्र था निषध। यह पराक्रमी था। निषध का पुत्र था नल, जिसके पुत्र का नाम था नभ। नभ का पुत्र था पुण्डरीक। उसका पुत्र था क्षेमधन्वा।।८२-८९।।

क्षेमधन्वसुतस्त्वासीद्देवानीकः प्रतापवान्।
आसीदहीनगुर्नाम देवानीकात्मज प्रभुः॥९०॥
अहीनगोस्तु दायादः सुधन्वा नाम पार्थिवः।
सुधन्वनः सुतश्चापि ततो जज्ञे शलो नृपः॥९१॥
उक्यो नाम स धर्म्मात्मा शलपुत्रो बभूव ह।
वज्रनाभः सुतस्तस्य नलस्तस्य महात्मनः॥९२॥

नलौ द्वावेव विख्यातौ पुराणे मुनिसत्तमाः। वीरसेनात्मजश्चैव यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्वहः॥९३॥
इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः प्राधान्येन प्रकीर्त्तिताः। एते विवस्वतो वंशे राजानो भूरितेजसः॥९४॥

पठन् सम्यगिमां सृष्टिमादित्यस्य विवस्वतः।
श्राद्धदेवस्य देवस्य प्रजानां पुष्टिदस्य च।
प्रजावानेति सायुज्यमादित्यस्य विवस्वतः॥९५॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे आदित्यवंशानुकीर्त्तनं नामाष्टमोऽध्यायः॥८॥



क्षेमधन्वा का पुत्र था प्रबल प्रतापी देवानीक। उसका पुत्र था अहीनगु। उसका पुत्र था राजा सुधन्वा। सुधन्वा ने पुत्ररूपेण राजा शल को उत्पन्न किया, जिसका पुत्र था धर्मात्मा उक्य। उसका पुत्र था वज्रनाभ। महात्मा वज्रनाभ का पुत्र था नल। पुराणशास्त्र में दो नल विख्यात हैं। हे मुनिसत्तमगण! प्रथम है वीरसेन का पुत्र नल। द्वितीय है इक्ष्वाकु वंशोत्पन्न नल। इस प्रकार से मैंने इक्ष्वाकु वंश के प्रधान राजाओं का वर्णन कर दिया। ये सभी सूर्यवंश के अत्यन्त तेजस्वी राजा हैं। जो आदित्य विवस्वान् श्राद्धदेव सूर्य के वंश की सृष्टि का वर्णन पढ़ता है, वह प्रजापोषक भगवान् सूर्य का सायुज्य लाभ करता है।।९०-९५।।

।।अष्टम अध्याय समाप्त।।



अथ नवमोऽध्यायः

सोम की उत्पत्ति, उनके द्वारा वृहस्पति की भार्या का हरण तथा बुधोत्पत्ति

लोमहर्षण उवाच

पिता सोमस्य भो विप्रा जज्ञेऽत्रिर्भगवानृषिः।
ब्रह्मणो मानसात्पूर्व्वं प्रजासर्गं विधित्सतः।।१।।
अनुत्तरं नाम तपो येन तप्तं हि तत्पुरा। त्रीणि वर्षसहस्राणि दिव्यानीति हि नः श्रुतम्।।२।।
ऊद्र्ध्वमाचक्रमे तस्य रेतः सोमत्वमीयिवान्।
नेत्राभ्यां वारि सुस्राव दशधा द्योतयन् दिशः।।३।।
तं गर्भं विधिनादिष्टा दश देव्यो दधुस्ततः। समेत्य धारयामासुर्न च ताः समशक्नुवन्।।४।।

लोमहर्षण कहते हैं—हे विप्रगण! पूर्वकाल में प्रजासृष्टि हेतु ब्रह्मा के मन से भगवान् ऋषि अत्रि उत्पन्न हुये थे। मुनि ने तीन सहस्र देववर्ष पर्यन्त (१ देववर्ष = ३६० मानव वर्ष) कठोर तप किया था। यह हमने सुना था। उन महर्षि का वीर्य शरीर के ऊर्ध्व स्थान में जाकर सोमत्व प्राप्त कर गया। दशों दिशाओं को द्योतित करता हुआ उनके नेत्रों का जल प्रवाहित होने लगा। ब्रह्मदेव के आदेश से उस तेजयुक्त जलरूप गर्भ को दसों दिशाओं ने धारण करना चाहा, परन्तु दिशाएं उसे धारण नहीं कर सकीं।।१-४।।

यदा न धारणे शक्तास्तस्य गर्भस्य ता दिशः।
ततस्ताभिः स त्यक्तस्तु निपपात वसुन्धराम्।।५।।
पतितं सोममालोक्य ब्रह्मा लोकपितामहः। रथमारोपयामास लोकानां हितकाम्यया।।६।।

तस्मिन्निपतिते देवाः पुत्रेऽत्रेः परमात्मनि। तुष्टुवुर्ब्रह्मणः पुत्रास्तथान्ये मुनिसत्तमाः॥७॥

तस्य संस्तूयमानस्य तेजः सोमस्य भास्वतः।
आप्यायनाय लोकानां भावयामास सर्व्वतः॥८॥

इस कारण से दिशाओं ने उस गर्भ का त्याग किया। उस भूपतित सोम को देखकर लोकपितामह ब्रह्मा ने लोककल्याणार्थ रथ पर स्थापित कर दिया। हे मुनिप्रवरगण! अत्रि ऋषि के उस परमात्म पुत्र के भूपतित हो जाने पर देवगण एवं ब्रह्मदेव के अन्य पुत्र उसकी स्तुति करने लगे। जब उस तेज की इस प्रकार से स्तुति की गई, उस समय वह भास्वर सोमतेज समस्त लोकों को आप्यायित करने के लिये सर्वत्र फैल गया।।५-८।।

स तेन रथमुख्येन सागरान्तां वसुन्धराम्। त्रिःसप्तकृत्वोऽतियशाश्चकाराभिप्रदक्षिणाम्॥९॥

तस्य यच्चरितं तेजः पृथिवीमन्वपद्यत।
ओषध्यस्ताः समुद्भूता याभिः सन्धार्यते जगत्॥१०॥
स लब्धतेजा भगवान् संस्तवैश्च स्वकर्म्मभिः।
तपस्तेपे महाभागः पद्मानां दर्शनाय सः॥११॥
ततस्तस्मै ददौ राज्यं ब्रह्मा ब्रह्मविदांवरः।
बीजौषधीनां विप्राणामपां च मुनिसत्तमाः॥१२॥

स तत्प्राप्य महाराज्यं सोमः सौम्यवतांवरः। समाजह्रे राजसूयं सहस्त्रशतदक्षिणम्॥१३॥

वह तेज रथ पर था। अतः उसने (चन्द्रदेव ने) रथ से लगाकर समुद्र पर्यन्त वसुन्धरा की प्रदक्षिणा २१ बार किया। तब चन्द्र का जो तेज पृथिवी पर फैल गया था, उसी से समस्त औषधियों की उत्पत्ति हो गई। वे ही जगत् को धारण करती हैं। उन सोम ने स्वकर्म से तेज प्राप्त किया था। तदनन्तर चन्द्रदेव ने पद्म (ब्रह्मदेव) के दर्शनार्थ तप किया। इससे सन्तुष्ट होकर ब्रह्मज्ञों में ब्रह्मा ने चन्द्रदेव को बीज, औषधि, ब्राह्मणों का तथा जल का राज्य प्रदान किया। सौम्यों में श्रेष्ठ सोम ने उस महाराज्य का लाभ करके सहस्त्रशत दक्षिणायुक्त राजसूय यज्ञ सम्पन्न किया।।९-१३।।

दक्षिणामददात् सोमस्त्रींल्लोकानिति नः श्रुतम्।
तेभ्यो ब्रह्मर्षिमुख्येभ्यः सदस्येभ्यश्च भो द्विजाः॥१४॥
हिरण्यगर्भो ब्रह्मात्रिर्भृगुश्च ऋत्विजोऽभवत्।
सदस्योऽभूद्धरिस्तत्र मुनिभिर्बहुभिर्वृतः॥१५॥
तं सिनीश्च कुहूश्चैव द्युतिः पुष्टिः प्रभा वसुः।
कीर्त्तिर्धृतिश्च लक्ष्मीश्च नव देव्यः सिषेविरे॥१६॥

उस यज्ञ के ब्रह्मा स्वयं साक्षात् हिरण्यगर्भ ब्रह्मदेव बने। उस यज्ञ में सोम ने जो दक्षिणा दिया, उसमें त्रैलोक्य ही दक्षिणारूपेण दिया। ऐसा सुना गया है। उस यज्ञ में ब्रह्मर्षिगण सदस्य थे, जिनको यही त्रैलोक्य दक्षिणा दी गई। इस यज्ञ के ऋत्विक् थे अत्रि एवं भृगु। अनेक मुनियों के साथ साक्षात् हरि उस यज्ञ के सदस्य

थे। पूर्व अमावस्या (सिनिवाली), कुहू (उत्तरी अमावस्या), द्युति, पुष्टि, प्रभा, वसु, कीर्त्ति, धृति तथा लक्ष्मी नामक नौ देवीगण चन्द्रमा की सेवा करती रहती थीं।।१४-१६।।

प्राप्यावभृथमप्यग्र्यं सर्व्वदेवर्षिपूजितः। विरराजाधिराजेन्द्रो दशधा भासयन् दिशः॥१७॥
तस्य तत्प्राप्य दुष्प्राप्यमैश्वर्य्यमृषिसत्कृतम्। विबभ्राम मतिस्ताताविनयादनयाहृता॥१८॥
बृहस्पतेः स वै भार्य्यामैश्वर्य्यमदमोहितः। जहार तरसा सोमो विमत्याङ्गिरसः सुतम्॥१९॥
स याच्यमानो देवैश्च तथा देवर्षिभिर्मुहुः। नैव व्यसर्ज्जयत्तारां तस्मा अङ्गिरसे तदा॥२०॥

उस यज्ञ को सम्पन्न करके तथा देवगण तथा ऋषियों से पूजित राजाधिराज चन्द्रदेव दसों दिशाओं को प्रभासित करते हुये शोभित होने लगे। जब चन्द्रमा ऋषिगण से सत्कृत होने लगे, तब उस दुष्प्राप्य ऐश्वर्य की प्राप्ति के कारण चन्द्रमा की मति को गर्व हो गया। वह ऐश्वर्य से मदमत्त हो गये। ऐसी मत्तता के कारण चन्द्रमा ने बृहस्पति की पत्नी का हरण कर लिया। यद्यपि देवताओं एवं देवर्षिगण ने चन्द्रमा को पुनः-पुनः समझाया था, तथापि चन्द्रमा ने तारा को बृहस्पति को वापस नहीं किया।।१७-२०।।

उशना तस्य जग्राह पार्ष्णिमङ्गिरसस्तथा। रुद्रश्च पार्ष्णिं जग्राह गृहीत्वाजगवं धनुः॥२१॥
तेन ब्रह्मशिरो नाम परमास्त्रं महात्मना। उद्दिश्य देवानुत्सृष्टं येनैषां नाशितं यशः॥२२॥
तत्र तद्युद्धमभवत् प्रख्यातं तारकामयम्। देवानां दानवानाञ्च लोकक्षयकरं महत्॥२३॥
तत्र शिष्टाश्च ये देवास्तुषिताश्चैव ये द्विजाः। ब्रह्माणं शरणं जग्मुरादिदेवं सनातनम्॥२४॥

उस स्थिति में शुक्र ने चन्द्रमा का साथ दिया तथा आजगव नामक धनुष धारण करने वाले महादेव ने आंगीरस बृहस्पति का साथ दिया। महात्मा शिव ने ब्रह्मशिर नामक परमास्त्र दैत्यों पर छोड़ा। इससे दैत्यों का यश नष्ट हो गया। तभी वहां लोकक्षयकारी देव-दानव युद्ध प्रारम्भ हो गया, जो तारकामय कहलाया। हे ब्राह्मणगण! उस युद्ध में जो तुषित नामक देवगण शेष थे, वे सभी आदिदेवता सनातन ब्रह्मदेव की शरण में गये।।२१-२४।।

तदा निवार्य्योशनसं तं वै रुद्रञ्च शङ्करम्। ददावाङ्गिरसे तारां स्वयमेव पितामहः॥२५॥

तामन्तःप्रसवां दृष्ट्वा क्रुद्धः प्राह बृहस्पतिः।
मदीयायां न ते योनौ गर्भो धार्य्यः कथञ्चन॥२६॥
इषीकास्तम्बमासाद्य गर्भं सा चोत्ससर्ज्ज ह।
जातमात्रः स भगवान् देवानामाक्षिपद्वपुः॥२७॥

तब रुद्रशंकर तथा शुक्राचार्य को युद्ध से निवारित करके स्वयं ब्रह्मा ने तारा को बृहस्पति के हाथों समर्पित कर दिया। बृहस्पति ने जब तारा को गर्भयुक्त देखा, तब क्रोधित बृहस्पति कहने लगे—"मेरे लिये जो योनि है, उसमें तुम अन्य के गर्भ को कदापि धारण नहीं कर सकती।" यह सुनकर तारा ने उस गर्भ को ईषिका स्तम्ब (मूंज के गुच्छों पर) पर त्याग दिया। लेकिन वह बालक जन्म के साथ ही देवताओं के समान रूप वाला हो गया।।२५-२७।।

ततः संशयमापन्नास्तारामूचुः सुरोत्तमाः। सत्यं ब्रूहि सुतः कस्य सोमस्याथ बृहस्पतेः॥२८॥

पृच्छ्यमाना यदा देवैर्नाह सा विबुधान् किल।
तदा तां शप्तुमारब्धः कुमारो दस्युहन्तमः॥२९॥

उस समय प्रधान देवताओं ने संशय में भरकर तारा से प्रश्न किया "यह सत्य कहो कि यह पुत्र सोम (चन्द्र) का है, किंवा बृहस्पति का है।" जब देवगण के इस प्रश्न का तारा ने कोई उत्तर नहीं दिया, तब वह दस्युहन्ता कुमार माता को शाप देने हेतु उद्यत हो गया।।२८-२९।।

तं निवार्य्य ततो ब्रह्मा तारां प्रपच्छ संशयम्।
यदत्र तद्ब्रूहि तारे कस्य सुतस्त्वयम्॥३०॥
उवाच प्राञ्जलिः सा तं सोमस्येति पितामहम्।
तदा तं मूर्ध्नि चाघ्राय सोमो राजा सुतं प्रति॥३१॥
बुध इत्यकरोन्नाम तस्य बालस्य धीमतः। प्रतिकूलञ्च गगने समभ्युत्तिष्ठते बुधः॥३२॥

यह देखकर ब्रह्मा ने उस बालक को रोक कर तारा से अपना संशय पूछा "हे तारा! यह सत्य बतलाओ, यह किसका पुत्र है?" तब तारा ने अंजलिबद्ध होकर ब्रह्मदेव को उत्तर दिया कि यह सोम का पुत्र है। उस समय राजा सोम ने वात्सल्य से सोम का मस्तक सूंघ कर उस धीमान् बालक का नाम "बुध" रखा। तभी यह बुध आकाश में प्रतिकूलतः उदित होता है।।३०-३२।।

उत्पादयामास तदा पुत्रं वै राजपुत्रिकम्। तस्यापत्यं महातेजाः बभूवैलः पुरूरवाः॥३३॥
उर्व्वश्यां जज्ञिरे यस्य पुत्राः सप्त महात्मनः।
एतत् सोमस्य वो जन्म कीर्त्तितं कीर्त्तिवर्द्धनम्॥३४॥
वंशमस्य मुनिश्रेष्ठाः कीर्त्त्यमानं निबोधत। धन्यमायुष्यमारोग्यं पुण्यं सङ्कल्पसाधनम्॥३५॥
सोमस्य जन्म श्रुत्वैव पापेभ्यो विप्रमुच्यते॥३६॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमोत्पत्तिकथनं नाम नवमोऽध्यायः॥९॥



बुध ने राजपुत्री (इला) से पुत्र उत्पन्न किया। यह महातेजस्वी पुत्र पुरूरवा नामक था। पुरूरवा ने उर्वशी से सात महात्मा पुत्र उत्पन्न किये। यह चन्द्रमा की कीर्त्ति है, जो व्यक्ति की कीर्त्तिवृद्धि करती है। इसका मैंने आपसे वर्णन कर दिया। अब हे मुनिप्रवरगण! आप लोग इनके वंशों का प्रसंग श्रवण करें। जो धन्यता, आयु, आरोग्य, पुण्य, संकल्पपूर्ति को प्रदान करने वाले चन्द्रदेव का जन्म प्रसंग श्रवण करते हैं, उनके समस्त पाप दूरीभूत हो जाते हैं।।३३-३६।।

।।नवम अध्याय समाप्त।।



अथ दशमोऽध्यायः

पुरूरवा जन्म, गाधिराज का जन्म, जमदग्नि जन्म वृत्तान्त, रेणुका-जमदग्नि का विवाह

लोमहर्षण उवाच

बुधस्य तु मुनिश्रेष्ठा विद्वान् पुत्रः पुरूरवाः। तेजस्वी दानशीलश्च यज्वा विपुलदक्षिणः॥१॥
ब्रह्मवादी पराक्रान्तः शत्रुभिर्युधि दुर्दमः। आहर्त्ता चाग्निहोत्रस्य यज्ञानाञ्च महीपतिः॥२॥
सत्यवादी पुण्यमतिः सम्यक् संवृत्तमैथुनः। अतीव त्रिषु लोकेषु यशसाप्रतिमः सदा॥३॥

लोमहर्षण कहते हैं—हे मुनिप्रवरगण! बुध का पुत्र पुरूरवा विद्वान्, तेजस्वी, दानशील, यज्ञकर्त्ता, विपुल दक्षिणा देने वाला, ब्रह्मवादी, पराक्रमी, शत्रुगण से विजयी होने वाला, दुर्दम, अग्निहोत्री, राजा, सत्यवादी, पुण्यमति, मैथुन में संयमी, यश में लोकों में अप्रतिम था।।१-३।।

तं ब्रह्मवादिनं शान्तं धर्म्मज्ञं सत्यवादिनम्। उर्व्वशी वरयामास हित्वा मानं यशस्विनी॥४॥
तया सहावसद्राजा दश वर्षाणि पञ्च च।
षट्पञ्च सप्त चाष्टौ च दश वाष्टौ च भो द्विजाः॥५॥
वने चैत्ररथे रम्ये तथा मन्दाकिनीतटे। अलकायां विशालायां नन्दने च वनोत्तमे॥६॥
उत्तरान् स कुरून् प्राप्य मनोरमफलद्रुमान्। गन्धमादनपादेषु मेरुशृङ्गे तथोत्तरे॥७॥

पुरूरवा जो ब्रह्मज्ञ, सत्यवक्ता, शान्त, धर्मज्ञ था, उसका यशस्विनी उर्वशी ने मान को छोड़ कर वरण किया था। हे ब्राह्मणगण! उस राजा पुरूरवा ने उर्वशी के साथ सुन्दर मनोरम चैत्ररथ वन में दस वर्ष, मन्दाकिनी के तट पर पांच वर्ष, अलका नगरी में छः वर्ष, विशाला में पांच वर्ष, नन्दन वन में सात वर्ष, मनोहर फलों के वृक्षों से भरे उत्तर कुरु देश में आठ वर्ष, गन्धमादन पर्वत पर दस वर्ष, सुमेरु पर्वत के उत्तर भाग में आठ वर्ष निवास किया था।।४-७।।

एतेषु वनमुख्येषु सुरैराचरितेषु च। उर्व्वश्या सहितो राजा रेमे परमया मुदा॥८॥
देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरभिष्टुते। राज्यं स कारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः॥९॥
एवम्प्रभावो राजासीदैलस्तु नरसत्तमः॥१०॥

इन प्रमुख वनों में तथा देवगण के क्रीड़ास्थल में राजा पुरूरवा उर्वशी के साथ अत्यन्त मुदित होकर रमण करता रहता था। राजा पुरूरवा ने पुण्यतम तथा महर्षियों द्वारा प्रशंसित प्रयाग में अपना राज्य स्थापित किया। इस प्रकार वह नरश्रेष्ठ प्रभावशाली, यशस्वी पुरूरवा गंगा के उत्तर तट का निवासी था।।८-१०।।

लोमहर्षण उवाच

ऐलपुत्रा बभूवुस्ते सप्त देवसुतोत्तमाः। गन्धर्व्वलोके विदिता आयुर्धीमानमावसुः॥११॥

विश्वायुश्चैव धर्म्मात्मा श्रुतायुश्च तथापरः। दृढायुश्च वनायुश्च बह्वायुश्चोर्व्वशीसुताः॥१२॥
अमावसोस्तु दायादो भीमो राजाथ राजराट्।
श्रीमान् भीमस्य दायादो राजासीत्काञ्चनप्रभः॥१३॥
विद्वांस्तु काञ्चनस्यापि सुहोत्रोऽभून्महाबलः।
सुहोत्रस्याभवज्जह्नुः केशिन्या गर्भसम्भवः॥१४॥
आजह्ने यो महत् सत्रं सर्पमेधं महामखम्। मतिलोभेन यं गङ्गा पतित्वेन ससार ह॥१५॥

लोमहर्षण कहते हैं—ऐलपुत्र पुरूरवा के देवपुत्रों जैसे सात पुत्र जन्मे। पुरूरवा तथा उर्वशी के पुत्र थे— आयु, विद्वान् अमावसु, विश्वादु, धर्मात्मा, श्रुतायु, दृढ़ायु, वनायु एवं बह्वायु। अमावसु का राजराजेश्वर भीम नामक पुत्र था। भीम का पुत्र था कांचनप्रभ। इसका पुत्र था महाबली सुहोत्र, जिसके पुत्र का नाम था जह्नु जो सुहोत्र की पत्नी केशिनी से जन्मा था। इसने सर्पमेध तथा महामख नामक महायज्ञ किया था। इसी के पास (जह्नु के पास) उसे पति बनाने हेतु गंगा गयी थीं।।११-१५।।

नेच्छतः प्लावयामास तस्य गङ्गा तदा सदः।
स तया प्लावितं दृष्ट्वा यज्ञवाटं समन्ततः॥१६॥
सौहोत्रिरशपद्गङ्गां क्रुद्धो राजा द्विजोत्तमाः।
एष ते विफलं यत्नं पिबन्नम्भः करोम्यहम्॥१७॥
अस्य गङ्गेऽवलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि। जह्नुराजर्षिणा पीतां गङ्गां दृष्ट्वा महर्षयः॥१८॥
उपनिन्युर्महाभागां दुहितृत्वेन जाह्नवीम्। युवनाश्वस्य पुत्रीं तु कावेरीं जह्नुरावहत्॥१९॥
युवनाश्वस्य शापेन गङ्गार्द्धेन विनिर्गता। कावेरीं सरितां श्रेष्ठां जह्नोर्भार्य्यामनिन्दिताम्॥२०॥

जह्नु गंगा से विरक्त थे, अतएव गंगा ने जह्नु के यज्ञस्थल को जल से प्लावित कर दिया। जब जह्नु ने चतुर्दिक् यज्ञभूमि को जल से प्लावित देखा, तब उन राजा जह्नु ने क्रोधित होकर गंगा को शाप देते कहा—"हे नदी गंगा! मैं तुम्हारे समस्त जल का पान करके तुम्हारे प्रयास को विफल कर देता हूं। तुमको अपने किये का फल तत्काल प्राप्त होगा।" जब राजर्षि जह्नु को गंगा पान किये हुये महर्षिगण ने देखा, तब सभी ने गंगा को जह्नु की पुत्री कह दिया। इसके अनन्तर जह्नु ने युवनाश्व तनया कावेरी से विवाह किया था। युवनाश्व के शाप द्वारा अपने आधे अंश से नदियों में श्रेष्ठ तथा अनिन्दित जन्हुपत्नी कावेरी नदी में मिलित हो गयीं।।१६-२०।।

जह्नुस्तु दयितं पुत्रं सुनद्यं नाम धार्म्मिकम्।
कावेर्य्यां जनयामास अजकस्तस्य चात्मजः॥२१॥
अजकस्य तु दायादो बलाकाश्वो महीपतिः।
बभूव मृगयाशीलः कुशस्तस्यात्मजोऽभवत्॥२२॥
कुशपुत्रा बभूवुर्हि चत्वारो देववर्च्चसः। कुशिकः कुशनाभश्च कुशाम्बो मूर्त्तिमांस्तथा॥२३॥

वल्लवैः सह संवृद्धो राजा वनचरः सदा। कुशिकस्तु तपस्तेपे पुत्रमिन्द्रसमं प्रभुः॥२४॥
लभेयमिति तं शक्रस्त्रासादभ्येत्य जज्ञिवान्। पूर्णे वर्षसहस्रे वै ततः शक्रो ह्यपश्यत॥२५॥

राजा जह्नु ने पत्नी कावेरी से सुनद्य नामक धार्मिक पुत्र उत्पन्न किया। उसका पुत्र था अजक, जिसका पुत्र महीपति बलाकाश्व मृगया (आखेट) में कुशल था। बलाकाश्व का पुत्र था कुश। इसके देवताओं के समान द्युतिमान चार पुत्र हुये। उनके नाम हैं कुशिक, कुशनाभ, कुशाम्ब तथा मूर्त्तिमान्। राजा कुशिक को वन में अहीरों द्वारा पालित किया गया था। वह तप करने लगा। उसका संकल्प था कि "मैं इन्द्र जैसा पुत्र प्राप्त करूं।" उसका मन्तव्य जान कर इन्द्र उसके पास गये। तब सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर इन्द्र ने उस तपस्वी को देखा।।२१-२५।।

अत्युग्रतपसं दृष्ट्वा सहस्राक्षः पुरन्दरः। समर्थः पुत्रजनने स्वयमेवास्य शाश्वतः॥२६॥
पुत्रार्थं कल्पयामास देवेन्द्रः सुरसत्तमः।
स गाधिरभवद्राजा मघवान् कौशिकः स्वयम्॥२७॥

सहस्राक्ष पुरन्दर इन्द्र ने जब उसे उग्रतम तप करते देखा तथा उसे पुत्रोत्पादन में समर्थ, तब इन्द्र उसके पुत्र बन गये। कुशिक पुत्र (इन्द्र) ही गाधि नामक राजा हुये थे।।२६-२७।।

पौरा यस्याभवद्भार्य्या गाधिस्तस्यामजायत।
गाधेः कन्या महाभागा नाम्ना सत्यवती शुभा॥२८॥
तां गाधिः काव्यपुत्राय ऋचीकाय ददौ प्रभुः।
तस्याः प्रीतः स वै भर्त्ता भार्गवो भृगुनन्दनः॥२९॥
पुत्रार्थं साधयामास चरुं गाधेस्तथैव च। उवाचाहूय तां भार्य्यामृचीको भार्गवस्तदा॥३०॥

गाधि की उत्पत्ति कुशिक की भार्या पौरा के गर्भ से हुई थी। गाधि की महाभागा शुभा कन्या का नाम था सत्यवती। गाधि ने अपनी उस पुत्री को भृगुपुत्र ऋचीक को अर्पित किया। ऋचीक गाधिकन्या से प्रसन्न हो गये। उन्होंने अपने यहां तथा गाधि का पुत्र हो जाये, इस संकल्प से चरु बनाया तथा अपनी पत्नी से कहा—।।२८-३०।।

उपयोज्यश्चरुरयं त्वया मात्रा स्वयं शुभे। तस्यां जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमान्क्षत्रियर्षभः॥३१॥
अजेयः क्षत्रियैर्लोके क्षत्रियर्षभसूदनः। तवापि पुत्रं कल्याणि धृतिमन्तं तपोधनम्॥३२॥
शमात्मकं द्विजश्रेष्ठं चरुरेष विधास्यति। एवमुक्त्वा तु तां भार्य्यामृचीको भृगुनन्दनः॥३३॥
तपस्यभिरतो नित्यमरण्यं प्रविवेश ह। गाधिः सदारस्तु तदा ऋचीकाश्रममभ्यगात्॥३४॥
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन सुतां द्रष्टुं नरेश्वरः। चरुद्वयं गृहीत्वा सा ऋषेः सत्यवती तदा॥३५॥

ऋषि ऋचीक कहते हैं—हे प्रिये! यह चरु अपनी माता को प्रदान करना। इसके भक्षण से उनको दीप्तिमान् क्षत्रियप्रवर पुत्र उत्पन्न होगा। वह पुत्र राजाओं से अजेय होगा। वह क्षत्रियों को सन्तप्त करेगा। हे कल्याणी! इस दूसरे चरु का तुम भक्षण करना। इससे तुमको महान् तपस्वी, धीर, शान्त तथा द्विजप्रवर पुत्र

होगा। पत्नी से यह कहकर भृगुवंशी ऋचीक तपस्यारत होने के लिये वन में चले गये। तदनन्तर अपनी पुत्री ऋचीक पत्नी को देखने हेतु राजा गाधि सपत्नीक ऋचीक के आश्रम पहुंचे। वे तीर्थयात्रा करते वहां आये थे। सत्यवती ने दोनों चरु लाकर अपनी माता के सामने रख दिया।।३१-३५।।

चरुमादाय यत्नेन सा तु मात्रे न्यवेदयत्। माता तु तस्या दैवेन दुहित्रे स्वं चरुं ददौ॥३६॥
तस्याश्चरुमथाज्ञानादात्मसंस्थं चकार ह। अथ सत्यवती सर्व्वं क्षत्रियान्तकरं तदा॥३७॥
धारयामास दीप्तेन वपुषा घोरदर्शना। तामृचीकस्ततो दृष्ट्वा योगेनाभ्युपसृत्य च॥३८॥
ततोऽब्रवीद्द्विजश्रेष्ठः स्वां भार्य्यां वरवर्णिनीम्।
मात्रासि वञ्चिता भद्रे चरुव्यत्यासहेतुना॥३९॥
जनिष्यति हि पुत्रस्ते क्रूरकर्म्मातिदारुणः। भ्राता जनिष्यते चापि ब्रह्मभूतस्तपोधनः॥४०॥

उस समय सत्यवती ने चरु लाकर यत्न पूर्वक माता को दिया था, तथापि माता ने दैवजनित भवितव्यता के कारण अपने लिये मन्त्रित चरु अनजाने में सत्यवती को दे दिया तथा सत्यवती के लिये मन्त्रित चरु का स्वयं भक्षण कर लिया, तब सत्यवती ने क्षत्रियों का नाशक गर्भ धारण किया था। उस समय सत्यवती दीप्त शरीर वाली होने पर भी भयप्रद प्रतीत होती थी। लेकिन ऋचीक ने यह विपर्यय योग बल से जान लिया। उस समय उन द्विजश्रेष्ठ ने अपनी वरवर्णिनी भार्या से कहा—"हे वरवर्णिनी! तुम्हारी माता ने तुमको ठग लिया। तुम अति दारुण क्रूरकर्मा पुत्र को जन्म दोगी। लेकिन तुम्हारा भ्राता ब्रह्मज्ञ एवं तपोधन होगा"।।३६-४०।।

विश्वं हि ब्रह्म तपसा मया तस्मिन् समर्पितम्।
एवमुक्ता महाभागा भर्त्रा सत्यवती तदा॥४१॥
प्रसादयामास पतिं पुत्रो मे नेदृशो भवेत्। ब्राह्मणापसदस्त्वत्त इत्युक्तो मुनिरब्रवीत्॥४२॥

"मैंने उस चरु में जिसे तुम्हारी माता ने खाया है, तप-बल से उसमें ब्रह्म को अर्पित कर दिया था।" पतिदेव का कथन सुनकर महाभागा सत्यवती ने पति से प्रार्थना किया "आप के समान पति से मुझे ऐसा पुत्र उत्पन्न न हो। प्रसन्न होकर यह करिये।" यह सुनकर मुनि कहने लगे।।४१-४२।।

ऋचीक उवाच

नैष सङ्कल्पतः कामो मया भद्रे तथास्त्विवति।
उग्रकर्म्मा भवेत् पुत्रः पितुर्म्मातुश्च कारणात्॥४३॥

ऋषि ऋचीक कहते हैं—हे भद्रे! मेरा संकल्प यह नहीं था कि तुमको ऐसा पुत्र प्राप्त हो। पिता-माता के कारण वह उग्र पुत्र होगा।।४३।।

पुनः सत्यवती वाक्यमेवमुक्त्वाब्रवीदिदम्। इच्छंल्लोकानपि मुने सृजेथाः किं पुनः सुतम्॥४४॥
शमात्मकमृजुं त्वं मे पुत्रं दातुमिहार्हसि। काममेवंविधः पौत्रो मम स्यात्तव च प्रभो॥४५॥
यद्यन्यथा न शक्यं वै कर्त्तुमेतद्द्विजोत्तम।
ततः प्रसादमकरोत् स तस्यास्तपसो बलात्॥४६।

पुत्रे नास्ति विशेषो मे पौत्रे वा वरवर्णिनि। त्वया यथोक्तं वचनं तथा भद्रे भविष्यति।।४७।।
ततः सत्यवती पुत्रं जनयामास भार्गवम्। तपस्यभिरतं दान्तं जमदग्निं शमात्मकम्।।४८।।
भृगोर्जगत्यां वंशेऽस्मिञ्जमदग्निरजायत। सा हि सत्यवती पुण्या सत्यधर्म्मपरायणा।।४९।।
कौशिकीति समाख्याता प्रवृत्तेयं महानदी। इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रेणुर्नाम नराधिपः।।५०।।

सत्यवती कहती हैं—"हे मुनिवर! आप तो लोकों की सृष्टि इच्छा होने पर कर सकते हैं। पुत्र की तो बात ही क्या? हे प्रभु! मुझे आप शान्त एवं मधुर स्वभाव वाली सन्तान प्रदान करिये। यदि ऐसा न हो, तब मेरा पुत्र शान्त एवं कोमल स्वभाव का हो तथा पौत्र जैसा आपने कहा है, भले ही उसी प्रकार का हो जाये।" यह सुनकर ऋषि ने अपने तपबल द्वारा सत्यवती पर कृपा करते हुये कहा—"हे सुन्दरी! हे वरवर्णिनी! पुत्र-पौत्र में तो कोई भेद नहीं है। हे भद्रे! जैसा तुमने कहा है, वही होगा।" तब सत्यवती के गर्भ से तपरत, दान्त, शमगुण युक्त जमदग्नि नामक भृगुवंशी पुत्र जन्मा। सत्यधर्मपरायणा पुण्यमयी सत्यवती कौशिकी नामक महानदी हो गयी। इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न रेणु नामक एक राजा था।।४४-५०।।

तस्य कन्या महाभागा कामली नाम रेणुका।
रेणुकायां तु कामल्यां तपोविद्यासमन्वितः।।५१।।
आर्चीको जनयामास जामदग्न्यं सुदारुणम्। सर्व्वविद्यान्तगं श्रेष्ठं धनुर्वेदस्य पारगम्।।५२।।
रामं क्षत्रियहन्तारं प्रदीप्तमिव पावकम्। और्वस्यैवमृचीकस्य सत्यवत्यां महायशाः।।५३।।
जमदग्निस्तपोवीर्य्याज्जज्ञे ब्रह्मविदाम्वरः। मध्यमश्च शुनःशेपः शुनःपुच्छः कनिष्ठकः।।५४।।

उसकी कन्या कामली तथा रेणुका नाम से विख्यात थी। उस रेणुका से जमदग्नि ने तप-विद्या समन्वित, दारुण, सभी विद्वानों में श्रेष्ठ, धनुर्विद्या में पारंगत, क्षत्रियहन्ता, अग्निवत् प्रदीप्त परशुराम नामक पुत्र को उत्पन्न किया। ब्रह्मविदों में श्रेष्ठ महान् यशस्वी ऋषि जमदग्नि सत्यवती के पुत्र थे। मध्यम पुत्र शुनःशेप तथा सबसे छोटे शुनःपुच्छ थे।।५१-५४।।

विश्वामित्रं तु दायादं गाधिः कुशिकनन्दनः।
जनयामास पुत्रं तु तपोविद्याशमात्मकम्।।५५।।
प्राप्य ब्रह्मर्षिसमतां योऽयं ब्रह्मर्षितां गतः।
विश्वामित्रस्तु धर्म्मात्मा नाम्ना विश्वरथः स्मृतः।।५६।।
जज्ञे भृगुप्रसादेन कौशिकाद्वंशवर्द्धनः। विश्वामित्रस्य च सुता देवरातादयः स्मृताः।।५७।।
प्रख्यातास्त्रिषु लोकेषु तेषां नामान्यतः परम्।
देवरातः कतिश्चैव यस्मात् कात्यायनाः स्मृताः।।५८।।
शालावत्यां हिरण्याक्षो रेणुर्जज्ञेऽथ रेणुकः। सांकृतिर्गालवश्चैव मुद्गलश्चैव विश्रुतः।।५९।।
मधुच्छन्दो जयश्चैव देवलश्च तथाष्टमः। कच्छपो हारितश्चैव विश्वामित्रस्य ते सुताः।।६०।।

उधर कुशिकनन्दन राजा गाधि ने तप-विद्या तथा शम गुणयुक्त पुत्र विश्वामित्र को उत्पन्न किया था।

इनका नाम विश्वरथ भी था। ये ब्रह्मर्षिगण के समान ही ब्रह्मर्षि बन गये। ये भृगु ऋषि की कृपा से कौशिक वंश की वृद्धि करने वाले हो गये। विश्वामित्र के पुत्र देवरात आदि थे। अब त्रैलोक्य प्रसिद्ध विश्वामित्र के पुत्रों का विवरण सुनें। उनके दो पुत्र थे। देवरात तथा कति। कति के पुत्रों का नाम कात्यायन था। शालावती का पुत्र था हिरण्याक्ष। विश्वामित्र के पुत्रों का नाम था रेणु, रेणुक, सांकृति, गालव, मुद्गल, मधुच्छन्द, जय, देवल, अष्टक, कच्छप तथा हारीत।।५५-६०।।

तेषां ख्यातानि गोत्राणि कौशिकानां महात्मनाम्।
पाणिनो बभ्रवश्चैव ध्यानजप्यास्तथैव च॥६१॥
पार्थिवा देवराताश्च शालङ्कायनवाष्कलाः। लोहिता यमदूताश्च तथा कारूषकाः स्मृताः॥६२॥
पौरवस्य मुनिश्रेष्ठा ब्रह्मर्षेः कौशिकस्य च।
सम्बन्धोऽप्यस्य वंशेऽस्मिन् ब्रह्मक्षत्रस्य विश्रुतः॥६३॥

इन सभी कौशिकों के गोत्र प्रसिद्ध हैं। हे मुनिप्रवरों! पाणिन, बभ्रव, ध्यान, जप्य, पार्थिव, देवरात, वाष्कल, शालंकायन, लोहित, यमदूत, कारूषक, पौरवस्य ब्रह्मर्षिगण कौशिक ही हैं। इस वंश का यह विशेषत्व है कि इसमें ब्राह्मण-क्षत्रिय का आपसी सम्बन्ध होना प्रसिद्ध है।।६१-६३।।

विश्वामित्रात्मजानां तु शुनःशेपोऽग्रजः स्मृतः।
भार्गवः कौशिकत्वं हि प्राप्तः स मुनिसत्तमः॥६४॥
विश्वामित्रस्य पुत्रस्तु शुनःशेपोऽभवत् किल। हरिदश्वस्य यज्ञे तु पशुत्वे विनियोजितः॥६५॥
देवैर्दत्तः शुनःशेपो विश्वामित्राय वै पुनः। देवैर्दत्तः स वै यस्माद्देवरातस्ततोऽभवत्॥६६॥
देवरातादयः सप्त विश्वामित्रस्य वै सुताः। दृषद्वतीसुतश्चापि वैश्वामित्रस्तथाष्टकः॥६७॥
अष्टकस्य सुतो लौहिः प्रोक्तो जह्नुगणो मया।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वंशमायोर्महात्मनः॥६८॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमवंशेऽमावसुवंशानुकीर्त्तनं नाम दशमोऽध्यायः॥१०॥



विश्वामित्र के पुत्रगण में शुनःशेप ज्येष्ठ पुत्र था। मुनिसत्तम भार्गव ने भी कौशिकत्व की प्राप्ति किया था। विश्वामित्र के पुत्र शुनःशेप को हरिदश्व के यज्ञ में पशु की जगह रखा गया था, जिसे (मुक्त कराकर) देवगण ने पुनः विश्वामित्र को प्रदान कर दिया। उसे देवगण द्वारा लौटा कर लाया गया था, तभी वह देवरात भी कहलाया। विश्वामित्र के देवरात आदि सात पुत्र हुये थे। दृषद्वति से विश्वामित्र ने अष्टक को उत्पन्न किया था। अष्टक का पुत्र था लौहि। इस प्रकार मैंने जह्नु वंश के लोगों का प्रसंग कहा। अब मैं महात्मा राजा आयु के वंश का वर्णन करूंगा।।६४-६८।।

।।दशम अध्याय समाप्त।।



अथ एकादशोऽध्यायः

रति चरित वर्णन, धन्वन्तरि का जन्म तथा भारद्वाज से उनको आयुर्वेद लाभ

लोमहर्षण उवाच

आयोः पुत्राश्च ते पञ्च सर्व्वे वीरा महारथाः।
स्वर्भानुतनयायां च प्रभायां जज्ञिरे नृपाः॥१॥
नहुषः प्रथमं जज्ञे वृद्धशर्म्मा ततः परम्। रम्भो रजिरनेनाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः॥२॥
रजिः पुत्रशतानीह जनयामास पञ्च वै। राजेयमिति विख्यातं क्षत्रमिन्द्रभयावहम्॥३॥
यत्र दैवासुरे युद्धे समुत्पन्ने सुदारुणे। देवाश्चैवासुराश्चैव पितामहमथाब्रुवन्॥४॥

लोमहर्षण कहते हैं—स्वर्भानु की कन्या प्रभा से आयु ने पांच पराक्रमी तथा महारथी पुत्रों को उत्पन्न किया था। सबसे ज्येष्ठ नहुष थे। तत्पश्चात् क्रमशः त्रैलोक्यप्रसिद्ध वृद्धशर्मा, रम्भ, रजि तथा अनेना जन्मे। रजि के पांच सौ पुत्र थे। ये इन्द्र को भी भयभीत करने वाले प्रसिद्ध राजेय कहे गये। जब भयानक देवासुर युद्ध हो रहा था, तब देवता एवं राक्षस ब्रह्मा के निकट आये और कहने लगे।।१-४।।

देवासुरा ऊचुः

आवयोर्भगवन् युद्धे को विजेता भविष्यति।
ब्रूहि नः सर्व्वभूतेश श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः॥५॥

देवता तथा असुर कहते हैं—हे भगवान्! आप सभी प्राणीगण के ईश्वर हैं। हमें यह तत्वतः जानने की इच्छा है कि हममें से कौन विजयी होगा?।।५।।

ब्रह्मोवाच

येषामर्थाय सङ्ग्रामे रजिरात्तायुधः प्रभुः।
योत्स्यते ते विजेष्यन्ति त्रींल्लोकान्नात्र संशयः॥६॥
यतो रजिर्धृतिस्तत्र श्रीश्च तत्र यतो धृतिः। यतो धृतिश्च श्रीश्चैव धर्म्मस्तत्र जयस्तथा॥७॥

ब्रह्मदेव कहते हैं—जिस युद्धरत पक्ष के साथ रहकर शस्त्र लेकर रजि युद्ध करेगा, वही त्रैलोक्य विजेता होगा, इसमें संशय नहीं है। जिस पक्ष के साथ रजि रहेगा, वहीं धैर्य है। लक्ष्मी भी वहीं है, जहां धैर्य है, जहां लक्ष्मी है, वहीं धर्म है। जहां धर्म है, वहीं जय है। यह निश्चित है।।६-७।।

ते देवा दानवाः प्रीता देवेनोक्ता रजिं तदा। अभ्ययुर्जयमिच्छन्तो वृण्वानास्तं नरर्षभम्॥८॥
स हि स्वर्भानुदौहित्रः प्रभायां समपद्यत। राजा परमतेजस्वी सोमवंशविवर्द्धनः॥९॥
ते हृष्टमनसः सर्व्वे रजिं वै देवदानवाः। ऊचुरस्मज्जयाय त्वं गृहाण वरकार्म्मुकम्॥१०॥

अथोवाच रजिस्तत्र तयोर्वै देवदैत्ययोः।
अर्थज्ञः स्वार्थमुद्दिश्य यशः स्वं च प्रकाशयन्॥११॥

ब्रह्म वचन सुनकर देवता तथा दैत्य प्रसन्न हो गये। दोनों पक्ष जयेच्छा के साथ रजि को अपने पक्ष में करने हेतु उसके यहां गये। वह स्वर्भानु का दौहित्र प्रभावान् था। वह सोमवंश की वृद्धि करने वाला राजा परम तेजस्वी था। दोनों पक्ष वाले (देवता-दानव) हर्षित मन से रजि से निवेदन करने लगे कि आप हमारे लिये धनुष धारण करिये। उस समय राजा रजि ने, जो सबका मन्तव्य जानने वाले थे, उन्होंने अपने स्वार्थ को सामने रख कर अपनी कीर्त्ति को व्यक्त करते हुये उनसे कहा—।।८-११।।

रजिरुवाच

यदि दैत्यगणान् सर्व्वान् जित्वा वीर्य्येण वासवः।
इन्द्रो भवामि धर्म्मेण ततो योत्स्यामि संयुगे॥१२॥

रजि कहते हैं—यदि मैं दैत्यों पर विजय पाकर धर्मतः इन्द्रपद पर आसीन हो सकूं, तभी मैं युद्ध में देवगण का पक्ष लूंगा।।१२।।

देवाः प्रथमतो विप्राः प्रतीयुर्हृष्टमानसाः। एवं यथेष्टं नृपते कामः सम्पद्यतां तव॥१३॥

प्रथमतः देवताओं ने प्रसन्न मन से कहा—"यह यथेष्ट है। हे नृप! आपकी कामना पूर्ण होगी"।।१३।।

श्रुत्वा सुरगणानान्तु वाक्यं राजा रजिस्तदा। पप्रच्छासुरमुख्यांस्तु यथा देवानपृच्छत॥१४॥
दानवा दर्पसम्पूर्णाः स्वार्थमेवावगम्य ह। प्रत्यूचुस्तं नृपवरं साभिमानमिदं वचः॥१५॥

देवगण का कथन सुनकर राजा रजि ने यही प्रश्न राक्षसों से पूछा। दर्प से भरे दानवों ने केवल अपने ही स्वार्थ को सामने रखते हुये उस राजा से अभिमान पूर्वक यह कहा—।।१४-१५।।

दानवा ऊचुः

अस्माकमिन्द्रः प्रह्लादो यस्यार्थे विजयामहे। अस्मिंस्तु समरे राजंस्तिष्ठ त्वं राजसत्तम॥१६॥

दानवगण कहते हैं—हम अपने ही इन्द्र प्रह्लाद के लिये विजयाभिलाषी हैं। हे राजन्! यदि आप हम लोगों के इन्द्र (प्रभु) बनने की कामना रखते हैं, तब (आप हमारे पक्ष में न रहकर) आप विपक्ष में ही रहें।।१६।।

स तथेति ब्रुवन्नेव देवैरप्यतिचोदितः। भविष्यसीन्द्रो जित्वैनं देवैरुक्तस्तु पार्थिवः॥१७॥

यह सुन कर राजा ने कहा—"ऐसा ही हो"। तभी देवगण ने राजा से कहा—"आप दैत्यों का हनन करने पर इन्द्र हो जायेंगे"।।१७।।

जघान दानवान् सर्व्वान् येऽवध्या वज्रपाणिनः।
स विप्रनष्टां देवानां परमश्रीः श्रियं वशी॥१८॥

यह सुन कर राजा ने उन दैत्यों का वध कर दिया, जो इन्द्र के लिये अवध्य थे। इस प्रकार राजा ने देवताओं की श्री, जो राक्षसों के अधिकार में थी राक्षसों से छीन लिया।।१८।।

निहत्य दानवान् सर्व्वानाजहार रजिः प्रभुः। ततो रजिं महावीर्य्यं देवैः सह शतक्रतुः॥१९॥
रजिपुत्रोऽहमित्युक्त्वा पुनरेवाब्रवीद्वचः।
इन्द्रोऽसि तात देवानां सर्व्वेषां नात्र संशयः॥२०॥
यस्याहमिन्द्रः पुत्रस्ते ख्यातिं यास्यामि कर्म्मभिः।
स तु शत्रुवचः श्रुत्वा वञ्चितस्तेन मायया॥२१॥

सभी दैत्यों के मृत हो जाने पर तत्पश्चात् इन्द्र वहां देवगण के साथ आये तथा राजा रजि से कहने लगे—"मैं आपका पुत्र हूं। मैं कर्मों से यह प्रसिद्धि प्राप्त करूंगा। आप निःसंदिग्ध रूप से देवताओं के इन्द्र हैं।" राजा रजि माया मोहित हो गये।।१९-२१।।

तथैवेत्यब्रवीद्राजा प्रीयमाणः शतक्रतुम्। तस्मिंस्तु देवैः सदृशे दिवं प्राप्ते महीपतौ॥२२॥
दायाद्यमिन्द्रादाजह्रुः राज्यं तत्तनया रजेः। पञ्च पुत्रशतान्यस्य तद्वै स्थानं शतक्रतोः॥२३॥
समाक्रामन्त बहुधा स्वर्गलोकं त्रिविष्टपम्।
ते यदा तु स्वसम्मूढा रागोन्मत्ता विधर्म्मिणः॥२४॥
ब्रह्मद्विषश्च संवृत्ता हतवीर्य्यपराक्रमाः। ततो लेभे स्वमैश्वर्य्यमिन्द्रः स्थानं तथोत्तमम्॥२५॥

उसने इन्द्र से कहा—'ऐसा ही हो' और देवताओं के समान उस रजि के स्वर्गगमन करने के पश्चात् रजि के पुत्रगण ने इन्द्र का राज्य छीन लिया। उन रजिपुत्रों ने जो पांच सौ थे, अनेक बार स्वर्गलोक पर आक्रमण भी किया। तदनन्तर (अधर्माचरण के कारण) मूर्ख, राग से उन्मत्त, विधर्मी, ब्राह्मणद्वेषी रजिपुत्रों का पराक्रम तथा बल नष्ट हो जाने पर इन्द्र ने इन काम-क्रोध परायण सभी रजिपुत्रों का वध करके पुनः स्वयं को अपने स्वर्गराज्य पर प्रतिष्ठित किया और अपने ऐश्वर्य को पुनः प्राप्त कर लिया।।२२-२५।।

हत्वा रजिसुतान् सर्व्वान् कामक्रोधपरायणान्।
य इदं च्यावनं स्थानात्प्रतिष्ठानं शतक्रतो।
शृणुयाद्धारयेद्वापि न स दौर्गत्यमाप्नुयात्॥२६॥

जो मनुष्य इन्द्र के इस प्रसंग का श्रवण करेगा, अथवा इसे धारण करेगा, उसे कदापि अधोगति नहीं मिलेगी।।२६।।

लोमहर्षण उवाच

रम्भोऽनपत्यस्त्वासीच्च वंशं वक्ष्याम्यनेनसः। अनेनसः सुतो राजा प्रतिक्षत्रो महायशाः॥२७॥
प्रतिक्षत्रसुतश्चासीत् सञ्जयो नाम विश्रुतः।
सञ्जयस्य जयः पुत्रो विजयस्तस्य चात्मजः॥२८॥
विजयस्य कृतिः पुत्रस्तस्य हर्य्यत्वतः सुतः। हर्य्यत्वतसुतो राजा सहदेवः प्रतापवान्॥२९॥
सहदेवस्य धर्म्मात्मा नदीन इति विश्रुतः।
नदीनस्य जयत्सेनो जयत्सेनस्य सङ्कृतिः॥३०॥

सङ्कृतेरपि धर्म्मात्मा क्षत्रवृद्धो महायशाः।
अनेनसः समाख्याताः क्षत्रवृद्धस्य चापरः॥३१॥

लोमहर्षण कहते हैं—रम्भ तो निःसन्तान था। इस कारण अब अनेना के वंश का प्रसंग कहूंगा। अनेना का पुत्र था महायशस्वी नरपति प्रतिक्षत्र। उसका पुत्र संजय सुप्रसिद्ध था। उसका पुत्र था जय। जय का पुत्र था विजय। उसका पुत्र था कृति जिसका पुत्र था हर्यत्वत्। इसका पुत्र प्रतापी नृप सहदेव था। जिसका धार्मिक पुत्र नदीन कहलाया। नदीन का पुत्र था जयत्सेन, उसने संकृति नामक पुत्र को उत्पन्न किया। संकृति का महायशस्वी धार्मिक पुत्र था क्षत्रवृद्ध। एवंविध मैंने अनेना के वंश को कह दिया। अब क्षत्रवृद्ध का वंश प्रसंग सुनें।।२७-३१।।

क्षत्रवृद्धात्मजस्तत्र सुनहोत्रो महायशाः। सुनहोत्रस्य दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः॥३२॥
काशः शलश्च द्वावेतौ तथा गृत्समदः प्रभुः।
पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकः॥३३॥
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च।
शलात्मज आर्ष्टिसेनस्तनयस्तस्य काश्यपः॥३४॥
काशस्य काशिपो राजा पुत्रो दीर्घतपास्तथा।
धनुस्तु दीर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरिस्ततः॥३५॥

क्षत्रवृद्ध का महायशयुक्त पुत्र था सुनहोत्र, जिसके पुत्रों का नाम था काश, शल तथा गृत्समद, जो सभी धार्मिक थे। गृत्समद का पुत्र शुनक था, उसका पुत्र था शौनक, जिससे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों की उत्पत्ति कही गयी। शल का पुत्र था आर्ष्टिसेन। उसका पुत्र था काश्यप। काश के पुत्र थे राजा काशिप तथा दीर्घतपा। दीर्घतपा का पुत्र था धनु, जिसके विद्वान् पुत्र थे धन्वन्तरि।।३२-३५।।

तपसोऽन्ते सुमहतो जातो वृद्धस्य धीमतः। पुनर्धन्वन्तरिर्देवो मानुषेष्विह जन्मनि॥३६॥
तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा। काशिराजो महाराजः सर्व्वरोगप्रणाशनः॥३७॥
आयुर्व्वेदं भरद्वाजात् प्राप्येह स भिषक्क्रियः।
तमष्टधा पुनर्व्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत्॥३८॥
धन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विश्रुतः। अथ केतुमतः पुत्रो वीरो भीमरथः स्मृतः॥३९॥

वृद्ध तथा धीमान् धनु के कठोर तप के फलस्वरूप ही उनके यहां देवता धन्वन्तरि का यह मनुष्य योनिगत जन्म हुआ था। ये देव धन्वन्तरि ही सर्वरोगनाशक काशीराज थे। इन्होंने भरद्वाज ऋषि से आयुर्वेद शास्त्र प्राप्त किया तथा उसको आठ भाग में विभक्त करके शिष्यों को उसे प्रदान किया। धन्वन्तरि के पुत्र थे केतुमान। इनका पुत्र भीमरथ कहा गया है।।३६-३९।।

पुत्रो भीमरथस्यापि दिवोदासः प्रजेश्वरः।
दिवोदासस्तु धर्म्मात्मा वाराणस्यधिपोऽभवत्॥४०॥

एतस्मिनेव काले तु पुरीं वाराणसीं द्विजाः।
शून्यां निवेशयामास क्षेमको नाम राक्षसः॥४१॥
शप्ता हि सा मतिमता निकुम्भेन महात्मना।
शून्यां वर्षसहस्रं वै भवित्री तु न संशयः॥४२॥
तस्यां हि शप्तमात्रायां दिवोदासः प्रजेश्वरः।
विषयान्ते पुरीं रम्यां गोमत्यां संन्यवेशयत्॥४३॥
भद्रश्रेण्यस्य पूर्व्वं तु पुरी वाराणसी ह्यभूत्।
भद्रश्रेण्यस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम्॥४४॥
हत्वा निवेशयामास दिवोदासो नराधिप। भद्रश्रेण्यस्य तद्राज्यं हृतं येन बलीयसा॥४५॥

भीमरथ का पुत्र दिवोदास प्रजाओं का स्वामी था। यह भी काशीराज था। हे विप्रों! तभी क्षेमक राक्षस ने शून्य पड़ी काशीपुरी में आगमन किया था। इसका कारण यह था कि महात्मा निकुम्भ का काशीपुरी को शाप था कि तुमको सहस्र वर्ष पर्यन्त शून्य रहना होगा। काशी के शापग्रस्त हो जाने पर राजा दिवोदास द्वारा गोमती तट पर रम्य पुरी बसाई गई, जहां उन्होंने प्रजा को स्थान दिया था। पहले काशीपुरी भद्रश्रेण्य की थी, जिसके श्रेष्ठ सौ धनुर्धर पुत्रों का वध करके राजा दिवोदास ने बलात् भद्रश्रेण्य का राज्य अपहरण करके उसे ले लिया था।।४०-४५।।

भद्रश्रेण्यस्य पुत्रस्तु दुर्दमो नाम विश्रुतः। दिवोदासेन बालेति घृणया स विसर्जितः॥४६॥
हैहयस्य तु दायाद्यं हृतवान् वै महीपतिः। आजह्ने पितृदायाद्यं दिवोदासहृतं बलात्॥४७॥
भद्रश्रेण्यस्य पुत्रेण दुर्दमेन महात्मना। वैरस्यान्तो महाभागाः कृतश्चात्मीयतेजसा॥४८॥

उस समय भद्रश्रेण्य का विख्यात पुत्र दुर्दम भी था, जिसे बालक जानकर दया के कारण दिवोदास ने मुक्त कर दिया था। राजा ने हैहय की वंशगत संपत्ति का हरण कर लिया था। हे महाभाग! भद्रश्रेण्यनन्दन महात्मा दुर्दम ने कालान्तर में दिवोदास द्वारा बलात् हो गयी अपनी पैतृक सम्पत्ति पर पुनः अधिकार करके अपने विक्रम से शत्रु का नाश कर दिया था।।४६-४८।।

दिवोदासाद्दृषद्वत्यां वीरो जज्ञे प्रतर्दनः। तेन बालेन पुत्रेण प्रहृतं तु पुनर्बलम्॥४९॥
प्रतर्दनस्य पुत्रो द्वौ वत्सभर्गौ सुविश्रुतौ। वत्सपुत्रो ह्यलर्कस्तु सन्नतिस्तस्य चात्मजः॥५०॥
अलर्कस्तस्य पुत्रस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः।
अलर्कं प्रति राजर्षिं श्लोको गीतः पुरातनैः॥५१॥
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च। युवा रूपेण सम्पन्नः प्रागासीच्च कुलोद्वहः॥५२॥
लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप्तवान्। तस्यासीत् सुमहद्राज्यं रूपयौवनशालिनः॥५३॥
शापस्यान्ते महाबाहुर्हत्वा क्षेमकराक्षसम्। रम्यां निवेशयामास पुरीं वाराणसीं पुनः॥५४॥

दिवोदास की पत्नी दृषद्वती से प्रतर्दन का जन्म हुआ था। राजा प्रतर्दन ने पुनः अपने राज्य पर

अधिकार जमा लिया। प्रतर्दन को पुत्र थे वत्स तथा भर्ग। वत्स का पुत्र था अलर्क, जिसके पुत्र का नाम था संनति। अलर्क ब्रह्मज्ञ तथा सत्यवक्ता था। अलर्क के सम्बन्ध में प्राचीन श्लोक गाये गये हैं कि वह छाछठ हजार वर्ष (६६०००) पर्यन्त युवावस्था में ही था। यह परमायु उसे सती लोपामुद्रा की कृपा से मिली थी। रूप यौवन सम्पन्न उसका राज्य अत्यन्त विस्तृत था। जब काशी को मिले शाप का एक हजार वर्ष व्यतीत हो गया, तब शापान्त में प्रतर्दन राजा ने क्षेमक राक्षस का वध कर दिया तथा रम्य काशीपुरी की पुनः स्थापना किया (बसाया)।।४९-५४।।

सन्नतेरपि दायादः सुनीथो नाम धार्मिकः।
सुनीथस्य तु दायादः क्षेमो नाम महायशाः॥५५॥
क्षेमस्य केतुमान् पुत्रः सुकेतुस्तस्य चात्मजः।
सुकेतोस्तनयश्चापि धर्म्मकेतुरिति स्मृतः॥५६॥
धर्म्मकेतोस्तु दायादः सत्यकेतुर्महारथः। सत्यकेतुसुतश्चापि विभुर्नाम प्रजेश्वरः॥५७॥
आनर्त्तस्तु विभोः पुत्रः सुकुमारश्च तत्सुतः। सुकुमारस्य पुत्रस्तु धृष्टकेतुः सुधार्मिकः॥५८॥
धृष्टकेतोस्तु दायादो वेणुहोत्रः प्रजेश्वरः। वेणुहोत्रसुतश्चापि भार्गो नाम प्रजेश्वरः॥५९॥
वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भार्गभूमिस्तु भार्गजः।
एते त्वङ्गिरसः पुत्रा जाता वंशेऽथ भार्गवे॥६०॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्त्रयः पुत्राः सहस्रशः।
इत्येते काश्यपाः प्रोक्ता नहुषस्य निबोधत॥६१॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमवंशे वृद्धक्षत्रप्रसूतिनिरूपणं नामैकादशोऽध्यायः।।११।।



सन्नति का पुत्र था सुनीथ। यह धार्मिक था। इसका पुत्र था महायशस्वी क्षेम। क्षेम का पुत्र केतुमान्। उसका पुत्र था वसुकेतु, जिसके पुत्र का नाम था धर्मकेतु। उसका पुत्र था महारथी सत्यकेतु। उसका पुत्र था प्रजाओं का स्वामी विभु। विभु का पुत्र था आनर्त्त, जिसके पुत्र का नाम था सुकुमार। इसका पुत्र धृष्टकेतु परम धर्मात्मा था। इसंका पुत्र वेणुहोत्र प्रजाओं का स्वामी बना। वेणुहोत्र का पुत्र था राजा भार्ग। वत्स का पुत्र था वत्सभूमि। भार्ग का पुत्र था भार्गभूमि। ये सभी अंगीरापुत्र भृगुवंशी थे। कश्यप वंश से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जाति के पुत्र सहस्त्रों की संख्या में उत्पन्न हुये। अब नहुषवंश का प्रसंग सुनिये।।५५-६१।।

।।एकादश अध्याय समाप्त।।



अथ द्वादशोऽध्यायः

नहुष से ययाति आदि की उत्पत्ति, उनकी जरा को ग्रहण करने से अनिच्छुक यदु आदि को ययाति द्वारा शाप देना

लोमहर्षण उवाच

उत्पन्नाः पितृकन्यायां विरजायां महौजसः। नहुषस्य तु दायादाः षडिन्द्रोपमतेजसः॥१॥
यतिर्ययातिः संयातिरायातिर्यातिरेव च। सुयातिः षष्ठस्तेषां वै ययातिः पार्थिवोऽभवत्॥२॥

ककुत्स्थकन्यां गां नाम लेभे परमधार्मिकः।
यतिस्तु मोक्षमास्थाय ब्रह्मभूतोऽभवन् मुनिः॥३॥
तेषां ययातिः पञ्चानां विजित्य वसुधामिमाम्।
देवयानीमुशनसः सुतां भार्य्यामवाप सः॥४॥

लोमहर्षण कहते हैं—विरजा नामक पितृगण की कन्या से नहुष ने इन्द्र के समान तेजस्वी छः पुत्रों को उत्पन्न किया। इनके नाम हैं यति, ययाति, संयाति, आयाति, याति तथा सुयाति। इनमें से ययाति को ही राज्य मिला। उस परम धर्मात्मा ययाति ने ककुत्स्थ्य की 'गां' नामक कन्या को प्राप्त किया। यति ने मोक्ष हेतु ब्रह्मभूत मुनित्व लाभ किया। ययाति ने शेष पांचों भ्राताओं की पृथिवी पर विजय पाकर शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी से विवाह किया था।।१-४।।

शर्म्मिष्ठामासुरीं चैव तनयां वृषपर्व्वणः। यदुञ्च तुर्व्वसुञ्चैव देवयानी व्यजायत॥५॥
द्रुह्युं चानुं च पुरुं च शर्म्मिष्ठा वार्षपर्व्वणी। तस्मै शक्रो ददौ प्रीतो रथं परमभास्वरम्॥६॥
अङ्गदं काञ्चनं दिव्यं दिव्यैः परमवाजिभिः। युक्तं मनोजवैः शुभ्रैर्येन कार्य्यं समुद्वहन्॥७॥
स तेन रथमुख्येन षड्रात्रेणाजयन्महीम्। ययातिर्युधि दुर्द्धर्षस्तथा देवान् सदानवान्॥८॥
स रथः कौरवाणां तु सर्व्वेषामभवत्तदा। संवर्त्तवसुनामस्तु कौरवाज्जनमेजयात्॥९॥
कुरोः पुत्रस्य राजेन्द्रराज्ञः पारिक्षितस्य ह। जगाम स रथो नाशं शापाद्गर्गस्य धीमतः॥१०॥

तत्पश्चात् ययाति ने राक्षस वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा को पत्नीरूपेण वरण किया। देवयानी के दो पुत्र थे यदु तथा तुर्वसु। शर्मिष्ठा के पुत्र थे द्रुह्य, अनु तथा पुरु। इन्द्र ययाति के प्रति प्रसन्न हो गये थे। उन्होंने ययाति को मन के समान वेगवान् श्वेत दिव्य अश्वों से जुते स्वर्ण से बने परमप्रकाश युक्त रथ को प्रदान किया। ययाति ने युद्ध में विजयी होने के लिये उस रथ पर आरोहण किया तथा छः रात्रि में ही देवताओं-राक्षसों से युक्त समग्र पृथिवी पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। वह रथ संवर्त्तवसु नाम का था। वह कुरुवंशियों के राजा परीक्षित के पुत्र जनमेजय के पास था। पहले वह कुरुवंश के अधिकार में था। तथापि जनमेजय के काल में वह ऋषि गर्ग के शाप से नष्ट हो गया।।५-१०।।

गर्गस्य हि सुतं बालं स राजा जनमेजयः। कालेन हिंसयामास ब्रह्महत्यामवाप सः॥११॥

स लोहगन्धो राजर्षिः परिधावन्नितस्ततः।
पौरजानपदैस्त्यक्तो न लेभे शर्म्म कर्हिचित्॥१२॥
ततः स दुःखसन्तप्तो नालभत्संविदं क्वचित्।
विप्रेन्द्रं शौनकं राजा शरणं प्रत्यपद्यत॥१३॥

राजा जनमेजय द्वारा गर्ग के बालक पुत्र की हिंसा हो जाने के कारण राजा को ब्रह्महत्या दोष लग गया था। राजा के शरीर से लौहगन्ध निकलने लगी थी। वह राजा सन्त्रस्त होकर यतःस्ततः भागने लगा। पौरजन (नगरवासियों) ने उसका त्याग कर दिया था। वह कहीं भी शान्ति नहीं पा रहा था। अन्ततः वह त्रस्त राजा ऋषिश्रेष्ठ शौनक की शरण में गया।।११-१३।।

याजयामास च ज्ञानी शौनको जनमेजयम्। अश्वमेधेन राजानं पावनार्थं द्विजोत्तमाः॥१४॥
स लोहगन्धो व्यनशत्तस्यावभृथमेत्य ह। स च दिव्यरथो राज्ञो वशश्चेदिपतेस्तदा॥१५॥
दत्तः शक्रेण तुष्टेन लेभे तस्माद्बृहद्रथः। बृहद्रथात्क्रमेणैव गतो बार्हद्रथं नृपम्॥१६॥
ततो हत्वा जरासन्धं भीमस्तं रथमुत्तमम्। प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनन्दनः॥१७॥

द्विजप्रवर ज्ञानी शौनक ने जनमेजय से अश्वमेध यज्ञ कराया, जिससे वह पुनः पवित्र हो सके। यज्ञ के अन्त में अवभृथ स्नान सम्पन्न होने से उसके देह की लौहगन्ध नष्ट हो गई। पूर्वकाल में इन्द्र ने सन्तुष्ट होकर दिव्य रथ चेदिराज को दे दिया था। उससे राजा बृहद्रथ ने पाया था। यह रथ बृहद्रथ से जरासन्ध ने पाया। तत्पश्चात् कुरुवंशी भीम ने जरासन्ध का वध करके यह दिव्य रथ वासुदेव को प्रेम पूर्वक प्रदान किया।।१४-१७।।

सप्तद्वीपां ययातिस्तु जित्वा पृथ्वीं ससागराम्।
विभज्य पञ्चधा राज्यं पुत्राणां नाहुषस्तदा॥१८॥
ययातिर्दिशि पूर्व्वस्यां यदुं ज्येष्ठं न्ययोजयत्।
मध्ये पुरुं च राजानमभ्यषिञ्चत् स नाहुषः॥१९॥

दिशि दक्षिणपूर्व्वस्यां तुर्व्वसुं मतिमान्नृपः। तैरियं पृथिवी सर्व्वा सप्तद्वीपा सपत्तना॥२०॥
यथाप्रदेशमद्यापि धर्म्मेण प्रतिपाल्यते। प्रजास्तेषां पुरस्तात्तु वक्ष्यामि मुनिसत्तमाः॥२१॥

ययाति ने सप्तद्वीपा पृथिवी को जीत कर इसे पांच भाग में बांटकर पुत्रों को दिया था। नहुषनन्दन ययाति ने पूर्व दिशा में ज्येष्ठ पुत्र यदु को नियुक्त करके मध्य देश में पुरु का राज्याभिषेक किया। उन्होंने दक्षिण-पूर्व का राज्य तुर्वसु को प्रदान किया। ये लोग अद्यतन सप्तद्वीपा नगर-ग्रामयुक्त पृथिवी स्थित अपने प्रदेशों का पालन धर्म के अनुसार कर रहे हैं। हे मुनिप्रवर! इनकी प्रजा का वर्णन आगे किया जायेगा।।१८-२१।।

धनुर्न्यस्य पृषत्कांश्च पञ्चभिः पुरुषर्षभैः। जरावानभवद्राजा भारमावेश्य बन्धुषु॥२२॥
विक्षिप्तशस्त्रः पृथिवीं चचार पृथिवीपतिः। प्रतिमानभवद्राजा ययातिरपराजितः॥२३॥
एवं विभज्य पृथिवीं ययातिर्यदुमब्रवीत्। जरां मे प्रतिगृह्णीष्व पुत्र कृत्यान्तरेण वै॥२४॥

तरुणस्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम्। जरां त्वयि समाधाय तं यदुः प्रत्युवाच ह॥२५॥

राजा ययाति ने वृद्धावस्था के कारण अपने पांचों उत्तम श्रेष्ठ पुत्रगण को राज्यभार सौंप दिया तथा शस्त्रों को छोड़कर वे पृथिवीपति अपराजित राजा पृथिवी का भ्रमण करने लगे। अन्ततः पृथिवी को बांटने के पश्चात् उन्होंने ज्येष्ठ पुत्र यदु से कहा—"हे पुत्र! मेरी जरावस्था को तुम ग्रहण करो। मैं तुमको जरावस्था देकर तुम्हारा यौवन ग्रहण करके अन्य कार्य से पृथिवी भ्रमण करूंगा।" यह सुनकर यदु कहने लगा।।२२-२५।।

यदुरुवाच

अनिर्दिष्टा मया भिक्षा ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुता।
अनपाकृत्य तां राजन्न ग्रहीष्यामि ते जराम्॥२६॥

जरायां बहवो दोषाः पानभोजनकारिताः। तस्माज्जरां न ते राजन् ग्रहीतुमुहमुत्सहे॥२७॥

सन्ति मे बहवः पुत्रा मत्तः प्रियतरा नृप। प्रतिग्रहीतुं धर्म्मज्ञ पुत्रमन्यं वृणीष्व वै॥२८॥

स एवमुक्तो यदुना राजा कोपसमन्वित। उवाच वदतां श्रेष्ठो ययातिर्गर्हयन् सुतम्॥२९॥

यदु कहता है—"मैंने एक ब्राह्मण को अप्रकाश्य (गुप्त) भिक्षा प्रदान करने हेतु प्रण किया था। अतः जब तक वह कार्य पूर्ण नहीं कर देता, तब तक आपकी वृद्धावस्था नहीं ले सकता। दूसरी बात यह है कि हे राजन्! वृद्धावस्था में पेय-खाद्य जनित अनेक व्याधि हो जाती है। अतः वृद्धावस्था ग्रहण करने हेतु मुझे कोई उत्साह प्रतीत नहीं हो रहा है। आपको मुझसे भी अधिक प्रिय अनेक पुत्र हैं। हे धर्मात्मा! आप उनमें से अन्य पुत्र को चुन लीजिये। वे आपकी वृद्धावस्था ग्रहण कर लेंगे।" यदु के यह कहने पर राजा ययाति क्रोधित हो गये। तब वक्तागण में श्रेष्ठ ययाति ने पुत्र को बुरा-भला कहते हुये कहा—।।२६-२९।।

ययातिरुवाच

क आश्रमस्तवान्योऽस्ति को वा धर्म्मो विधीयते।
मामनादृत्य दुर्ब्बुद्धे यदहं तव देशिकः॥३०॥

ययाति कहते हैं—"हे दुर्बुद्धि! मेरा अनादर करके तुम किस धर्म का अथवा आश्रम का निर्वाह कर सकोगे"।।३०।।

एवमुक्त्वा यदुं विप्राः शशापैनं स मन्युमान्।
अराज्या ते प्रजा मूढ भवित्रीति न संशयः॥३१॥

हे विप्रों! यह कहने के पश्चात् राजा ने रोष पूर्वक यदु को शाप दिया—"हे मूर्ख! तुम्हारी प्रजा राज्य रहित हो जायेगी। यह संशय रहित बात है"।।३१।।

द्रुह्युं च तुर्व्वसुं चैवाप्यनुं च द्विजसत्तमाः। एवमेवाब्रवीद्राजा प्रत्याख्यातश्च तैरपि॥३२॥

शशाप तानतिक्रुद्धो ययातिरपराजितः। यथावत् कथितं सर्व्वं मयास्य द्विजसत्तमाः॥३३॥

तदनन्तर राजा ययाति ने द्रुह्यु, तुर्वसु तथा अनु से यथावत् भी यही तथ्य कहा—हे द्विजसत्तमगण! उन सबने भी ययाति की वृद्धावस्था ग्रहण कर सकने से स्पष्टतः अस्वीकार कर दिया। हे द्विजप्रवर! अपराजित राजा ने उनको भी वही शाप प्रदान कर दिया। इस प्रसंग को मैंने आप सभी लोगों से यथार्थतः कहा है।।३२-३३।।

एवं शप्त्वा सुतान् सर्व्वांश्चतुरः पुरुपूर्व्वजान्।
तदेव वचनं राजा पुरुमप्याह भो द्विजाः॥३४॥
तरुणस्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम्। जरां त्वयि समाधाय त्वं पुरो यदि मन्यसे॥३५॥

हे द्विजों! तदनन्तर पुरु से ज्येष्ठ चारों पुत्रों को शाप देकर राजा ने अपने सबसे कनिष्ठ पुत्र पुरु से कहा—"हे पुत्र! यदि तुम मेरी जरावस्था को ग्रहण करना चाहो, तब मैं तुम्हारी युवावस्था ग्रहण करके पृथिवी मण्डल का भ्रमण कर सकूं"।।३४-३५।।

स जरां प्रतिजग्राह पितु पुरुः प्रतापवान्। ययातिरपि रूपेण पुरोः पर्य्यचरन् महीम्॥३६॥
स मार्गमाणः कामानामन्तं नृपतिसत्तमः। विश्वाच्या सहितो रेमे वने चैत्ररथे प्रभु॥३७॥
यदा स तृप्तः कामेषु भोगेषुं च नराधिपः। तदा पुरो सकाशाद्वै स्वां जरां प्रत्यपद्यत॥३८॥

तब प्रतापवान् पुरु ने पिता की जरावस्था को स्वयं ग्रहण कर लिया। राजा ययाति पुरु का यौवन तथा रूप ग्रहण करने के पश्चात् पृथिवी पर विचरने लगे। वे कामना (कामवासना) का अन्त करने के विचार से चैत्ररथ वन में विश्वाची के साथ दीर्घकाल तक रमण किया, तथापि जब ययाति ने देखा कि भोग से काम की कदापि तृप्ति नहीं होती, तब ययाति ने पुरु से अपनी वृद्धावस्था को पुनः ग्रहण करके उसकी युवावस्था को उसे वापस दे दिया।।३६-३८।।

यत्र गाथा मुनिश्रेष्ठा गीताः किल ययातिना।
याभिः प्रत्याहरेत्कामान् सर्वशोऽङ्गानि कूर्म्मवत्॥३९॥
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥४०॥
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत्सर्व्वमिति कृत्वा न मुह्यति॥४१॥

हे मुनिप्रवरगण! उस समय ययाति ने गाथा का गायन किया था। तदनुसार "जिस प्रकार से कच्छप अपने अंगों को सभी ओर से समेट लेता है, उसी प्रकार मनुष्य को चाहिये कि वह अपनी कामनाओं को तदनुरूप समेट ले। इसका कारण है कि कामोपभोग से काम नहीं नष्ट होता। वह उसी प्रकार से बढ़ जाता है, जिस प्रकार आग में घृत छोड़ने से उसकी और भी वृद्धि हो जाती है। एक ही आदमी की कामना इतनी अधिक होती है कि भले ही उसे पृथिवी का समस्त अन्न-स्वर्ण-पशु-स्त्रियां प्राप्त हो जायें, तथापि उतने से भी उसे सन्तोष नहीं होगा। अतः मनुष्य मोह में न पड़े"।।३९-४१।।

यदा भावं न कुरुते सर्व्वभूतेषु पापकम्। कर्म्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥४२॥
यदा तेभ्यो न बिभेति यदा चास्मान्न बिभ्यति।
यदि नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥४३॥
या दुस्त्यजा दुर्म्मतिभिर्या न जीर्य्यति जीर्य्यतः।
योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम्॥४४॥

जीर्य्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्य्यन्ति जीर्य्यतः।
धनाशा जीविताशा च जीर्य्यतोऽपि न जीर्य्यति॥४५॥

"जिस व्यक्ति में मनसा-वाचा-कर्मणा सभी प्राणीगण के प्रति पापयुक्त भावना नहीं होती, उसी को ब्रह्म की प्राप्ति होती है। जो किसी से भयभीत नहीं होता तथा अन्य को जिससे भय नहीं होता, जिसे कोई इच्छा, द्वेष नहीं है, वही ब्रह्म में लीन हो जाता है। तृष्णा तो दुर्मति वालों द्वारा त्यागी ही नहीं जा सकती। उनके लिये तृष्णा दुस्त्याज्य ही रहती है। तृष्णा शरीर के वृद्ध होने पर भी वृद्ध नहीं होती, यह प्राणान्तक रोगरूपी है। अतः तृष्णा का त्याग कर देना ही सुख है। शरीर वृद्धावस्था में जीर्ण होता है, केश-दांत भी जीर्ण हो जाते हैं, तथापि उस समय की स्थिति में भी तृष्णा रूपी धन पाने की आशा, प्राणों की आशा जीर्ण नहीं होती। यह आशा युवा बनी रहती है"।।४२-४५।।

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हन्ति षोडशीं कलाम्॥४६॥

"इस संसार में जितना भी काम से प्राप्त होने वाला सुख है, किंवा जो स्वर्ग का महान् सुख है, वे सभी सुख तृष्णाक्षय रूपी सुख की तुलना में १/१६ भाग भी नहीं है"।।४६।।

एवमुक्त्वा स राजर्षिः सदारः प्राविशद्वनम्। कालेन महता चायं चचार विपुलं तपः॥४७॥

भृगुतुङ्गे गतिं प्राप तपसोऽन्ते महायशाः।
अनश्नन् देहमुत्सृज्य सदारः स्वर्गमाप्तवान्॥४८॥

यह कहने के अनन्तर राजर्षि ययाति सपत्नीक वन में प्रविष्ट हो गये। उन्होंने दीर्घकाल पर्यन्त अत्यन्त महान् तप किया। तप के अन्तिम चरण में उन राजर्षि ने उस उत्तुङ्ग पर्वतशिखर पर अनशन द्वारा देहत्याग कर दिया तथा वे सपत्नीक स्वर्ग चले गये।।४७-४८।।

तस्य वंशे मुनिश्रेष्ठाः पञ्च राजर्षिसत्तमाः।
यैर्व्याप्ता पृथिवी सर्व्वा सूर्य्यस्येव गभस्तिभिः॥४९॥

यदोस्तु वंशं वक्ष्यामि शृणुध्वं राजसत्कृतम्। यत्र नारायणो जज्ञे हरिर्वृष्णिकुलोद्वहः॥५०॥

सुस्थः प्रजावानायुष्मान् कीर्त्तिमांश्च भवेन्नरः। ययातिचरितं नित्यमिदं शृण्वन् द्विजोत्तमाः॥५१॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमवंशे ययातिचरितनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः॥१२॥



हे मुनिप्रवरगण! उनके वंश में पांच उत्तम राजर्षि जन्मे। उनके यश से पृथिवी उस प्रकार व्याप्त हो गई, जिस प्रकार पृथिवी सूर्यरश्मि से व्याप्त हो जाती है। अब मैं राजाओं द्वारा सम्मानित यदुवंश का वर्णन करूंगा। वहां वृष्णि कुलान्तर्गत् साक्षात् नारायण का अवतार हुआ था। हे द्विजप्रवरगण! जो मनुष्य इस ययाति चरित का श्रवण नित्य करेगा, वह स्वास्थ्य, प्रजा, सन्तति लाभ करके कीर्त्ति लाभ भी करेगा।।४९-५१।।

।।द्वादश अध्याय समाप्त।।



अथ त्रयोदशोऽध्यायः

पुरुवंश वर्णन, कार्त्तवीर्य अर्जुन वृत्तान्त तथा उससे आपव ऋषि का शाप

ब्राह्मणा ऊचुः

पुरोर्वंशं वयं सूत श्रोतुमिच्छाम तत्त्वतः। द्रुह्यस्यानोर्यदोश्चैव तुर्वसोश्च पृथक् पृथक्॥१॥

ब्राह्मणगण कहते हैं—हे सूत! हम लोग अलग-अलग पुरु, दुह्यु, अनु, यदु तथा तुर्वसु के वंशों का वर्णन सुनना चाहते हैं।।१।।

लोमहर्षण उवाच

श्रृणुध्वं मुनिशार्दूलाः पुरोर्वंशं महात्मनः। विस्तरेणानुपूर्व्या च प्रथमं वदतो मम॥२॥
पुरोः पुत्रः सुवीरोऽभून्मनस्युस्तस्य चात्मजः। राजा चाभयदो नाम मनस्योरभवत् सुतः॥३॥
तथैवाभयदस्यासीत् सुधन्वा नाम पार्थिवः। सुधन्वनः सुबाहुश्च रौद्रश्वस्तस्य चात्मजः॥४॥
रौद्राश्वस्य दशार्णेयुः कृकणेयुस्तथैव च। कक्षेयुस्थण्डिलेयुश्च सन्नतेयुस्तथैव च॥५॥
ऋचेयुश्च जलेयुश्च स्थलेयुश्च महाबलः। धनेयुश्च वनेयुश्च पुत्रकाश्च दश स्त्रियः॥६॥
भद्रा शूद्रा च मद्रा च शलदा मलदा तथा। खलदा च ततो विप्रा नलदा सुरसापि च॥७॥
तथा गोचपला च स्त्रीरत्नकूटा च ता दश। ऋषिर्जातोऽत्रिवंशे च तासां भर्त्ता प्रभाकरः॥८॥

लोमहर्षण कहते हैं—हे मुनिश्रेष्ठवृन्द! सर्वाग्र में मैं विस्तृत रूप से पुरुवंश के महात्माओं का वर्णन करता हूं। राजा पुरु का पुत्र था सुवीर, उसका पुत्र था मनस्यु, जिसके पुत्र का नाम राजा अभयद था। अभयद का पुत्र था सुधन्वा राजा, उसका पुत्र था सुबाहु, उसका भी पुत्र था रौद्राश्व। उसके दस पुत्र थे—दशार्णेयु, कृकणेयु, कक्षेयु, स्थण्डिलेयु, सन्ततेयु, ऋचेयु, जलेयु, महाबली स्थलेयु, धनेयु तथा वनेयु। इन राजा की दस कन्या भी थीं। यथा—भद्रा, शूला, मद्रा, शलदा, मलदा, खलदा, नलदा, सुरसा, गोचपला तथा स्त्रीरत्नकूटा। इनके पति थे अत्रि वंशोत्पन्न ऋषि प्रभाकर।।२-८।।

भद्रायां जनयामास सुतं सोमं यशस्विनम्। स्वर्भानुना हते सूर्य्ये पतमाने दिवो महीम्॥९॥

तमोऽभिभूते लोके च प्रभा येन प्रवर्त्तिता।
स्वस्ति तेऽस्त्विति चोक्त्वा वै पतमानो दिवाकरः॥१०॥

भद्रा से यशस्वी सोम जन्मे। राहु द्वारा जब सूर्य को ग्रसा गया, तब सूर्य आकाश से भूपतित होने लगे। उस समय प्रभाकर द्वारा अन्धकारयुक्त लोकों को प्रकाशित किया गया था। उन्होंने सूर्य से कहा था "तुम्हारा कल्याण हो"।।९-१०।।

वचनात्तस्य विप्रर्षेर्न पपात दिवो महीम्। अत्रिश्रेष्ठानि गोत्राणि यश्चकार महातपाः॥११॥

यज्ञेष्वत्रेर्बलञ्चैव देवैर्यस्य प्रतिष्ठितम्। स तासु जनयामास पुत्रिकास्वात्मकामजान्॥१२॥
दश पुत्रान् महासत्त्वांस्तपस्युग्रे रतांस्तथा। ते तु गोत्रकरा विप्रा ऋषयो वेदपारगाः॥१३॥
स्वस्त्यात्रेय इति ख्याताः किञ्च त्रिधनवर्जिताः।
कक्षेयोस्तनयास्त्वासंस्त्रय एव महारथाः॥१४॥

प्रभाकर के वचन के प्रभाव से सूर्य पृथिवी पर पतित नहीं हुये। इन तपस्वी प्रभाकर ने अत्रि के आत्रेय नामक प्रसिद्ध गोत्रों की वृद्धि किया तथा यज्ञ में देवगण के साथ ही अग्नि को यज्ञभाग मिले, इस व्यवस्था को किया था। प्रभाकर ने उपरोक्त कन्यागण से महासत्व सम्पन्न तपःशील दस पुत्रों को उत्पन्न किया था। ये सभी दसों पुत्र विद्वान् गोत्रवृद्धि करने वाले ऋषि तथा वेदज्ञ थे। ये त्रिधन रहित थे। कक्षेयु के तीन पुत्र थे, जो महारथी थे।।११-१४।।

सभानरश्चाक्षुषश्च परमन्युस्तथैव च। सभानरस्य पुत्रस्तु विद्वान् कालानलो नृपः॥१५॥
कालानलस्य धर्म्मज्ञः सृञ्जयो नाम वै सुतः।
सृञ्जयस्याभवत् पुत्रो वीरो राजा पुरञ्जयः॥१६॥
जनमेजयो मुनिश्रेष्ठाः पुरञ्जयसुतोऽभवत्। जनमेजयस्य राजर्षेर्महाशालोऽभवत् सुतः॥१७॥
देवेषु स परिज्ञातः प्रतिष्ठितयशा भुवि। महामना नाम सुतो महाशालस्य विश्रुतः॥१८॥
जज्ञे वीरः सुरगणैः पूजितः सुमहामनाः। महामनास्तु पुत्रौ द्वौ जनयामास भो द्विजाः॥१९॥
उशीनरञ्च धर्म्मज्ञं तितिक्षुञ्च महाबलम्। उशीनरस्य पत्न्यस्तु पञ्च राजर्षिवंशजाः॥२०॥

इन तीन पुत्रों का नाम था सभानर, चाक्षुष तथा परमन्यु। सभानर का पुत्र था कालानल जो महान् विद्वान् तथा राजा था। कालानल का धर्मात्मा पुत्र था सृञ्जय। यह राजा धर्मज्ञ था। सृंजय का पुत्र था पुरंजय। इसका जनमेजय नामक पुत्र हुआ। हे मुनिवर! सृंजय का पुत्र पुरंजय राजा बना। पुरंजय का पुत्र था जनमेजय। इन राजर्षि जनमेजय का पुत्र था महाशाल। यह देवगण में प्रसिद्ध तथा संसार में महायशस्वी कहलाया। महाशाल का पुत्र था महामना, यह देवगण में प्रसिद्ध तथा संसार में महान् यशस्वी कहलाया। यह देवगण द्वारा पूजित था। हे ब्राह्मणों! महामना के भी दो पुत्र थे। यथा—धार्मिक उशीनर तथा महाबली तितिक्षु। उशीनर की पांच पत्नियां राजर्षि वंशोत्पन्न थीं।।१५-२०।।

नृगा कृमिर्नवा दर्व्वा पञ्चमी च दृषद्वती। उशीनरस्य पुत्रास्तु पञ्च तासु कुलोद्वहाः॥२१॥
तपसा चैव महता जाता वृद्धस्य चात्मजाः।
नृगायास्तु नृगः पुत्रः कृम्यां कृमिरजायत॥२२॥
नवायास्तु नवः पुत्रो दर्व्वायाः सुव्रतोऽभवत्। दृषद्वत्यास्तु सञ्जज्ञे शिविरौशीनरो नृपः॥२३॥
शिवेस्तु शिबयो विप्रा यौधेयास्तु नृगस्य ह। नवस्य नवराष्ट्रन्तु कृमेस्तु कृमिला पुरी॥२४॥

उनके नाम थे नृगा, कृमि, नवा, दर्वा एवं दृषद्वती। नृगा के गर्भ से नृग, कृमि से कृमि, नवा से नव तथा दर्वा से सुव्रत जन्मा। दृषद्वती से शिवि नामक औशीनर राजा का जन्म हुआ। शिवि के पुत्र शिवि नामक ही थे। नृग से यौधेयगण का जन्म हुआ। नव का पुत्र था नवराष्ट्र। कृमि की पुरी थी कृमिला।।२१-२४।।

सुव्रतस्य तथाम्बष्ठाः शिबिपुत्रान्निबोधत। शिबेस्तु शिबयः पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुताः॥२५॥
वृषदर्भः सुवीरश्च केकयो मद्रकस्तथा। तेषां जनपदाः स्फीताः केकया मद्रकास्तथा॥२६॥

वृषदर्भाः सुवीराश्च तितिक्षोस्तु प्रजास्त्विमाः।
तितिक्षुरभवद्राजा पूर्व्वस्यां दिशि भो द्विजाः॥२७॥
उषद्रथो महावीर्य्यः फेनस्तस्य सुतोऽभवत्।
फेनस्य सुतपा जज्ञे ततः सुतपसो बलिः॥२८॥

जातो मानुषयोनौ तु स राजा काञ्चनेषुधिः। महायोगी स तु बलिर्बभूव नृपतिः पुरा॥२९॥

सुव्रत का अम्बष्ट नामक प्रख्यात पुत्र। शिवि के पुत्रों का नाम श्रवण करिये। शिवि के शिवि नामक ही चार पुत्र प्रख्यात हैं। उन शिवियों का नाम है वृषदर्भ, सुवीर, केकय तथा भद्रक। वृषदर्भ का धन-धान्य सम्पन्न देश था वृषदर्भ, सुवीर का देश था सुवीर, केकय का देश केकय तथा भद्रक का देश था भद्रक नामक। ये सभी प्रजा तितिक्षु की है, हे द्विजों! वह पूर्व दिशा का राजा था। उसका महावीर पुत्र था उषद्रथ, जिसका पुत्र था फेन। उसका पुत्र था सुतपसा, जिसके पुत्र का नाम था महायोगी बलि।।२५-२९।।

पुत्रानुत्पादयामास पञ्च वंशकरान् भुवि। अङ्गः प्रथमतो जज्ञे बङ्गः सुह्मस्तथैव च॥३०॥

पुण्ड्रः कलिङ्गश्च तथा बालेयं क्षत्रमुच्यते।
बालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकरा भुवि॥३१॥

यह महायोगी बलि सुवर्ण का तरकश धारण किये रहता था। यह मनुष्य योनि में जन्मा था। उसकी वंशवृद्धि करने वाले पांच पुत्र थे। उनके नाम हैं अंग, बंग, कलिंग, सुह्म एवं पुण्ड्र। यह विख्यात क्षत्रिय वंश बलि का बालेयवंश कहा जाता है। इस वंश में बालेय ब्राह्मणों का भी जन्म हुआ था, जो प्रख्यात थे।।३०-३१।।

बलेश्च ब्रह्मणा दत्तो वरः प्रीतेन भो द्विजाः।
महायोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणतः॥३२॥

बले चाप्रतिमत्वं वै धर्म्मतत्त्वार्थदर्शनम्। संग्रामे चाप्यजेयत्वं धर्म्मे चैव प्रधानताम्॥३३॥

त्रैलोक्यदर्शनञ्चापि प्राधान्यं प्रसवे तथा।
चतुरो नियतान् वर्णांस्त्वञ्च स्थापयितेति च॥३४॥

हे ब्राह्मणगण! ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर वर दिया था कि "तुम महायोगी होगे तथा तुम्हारी आयु एक कल्प की होगी। तुम बल में अप्रतिम होगे। तुम धर्मतत्त्वज्ञ होगे। युद्ध में तुम अविजित रहोगे। तुम धार्मिकों में प्रधान रहोगे। तुम त्रैलोक्य का दर्शन लाभ प्राप्त कर सकोगे। पुत्रगण प्रसिद्धि लाभ करेंगे। तुम्हारे द्वारा चारों वर्णों की स्थापना की जायेगी"।।३२-३४।।

इत्युक्तो विभुना राजा बलिः शान्तिं परां ययौ।
कालेन महता विप्राः स्वञ्च स्थानमुपागमत्॥३५॥

तेषां जनपदाः पञ्च अङ्गा बङ्गाः ससुह्मकाः।
कलिङ्गाः पुण्ड्रकाश्चैव प्रजास्त्वङ्गस्य साम्प्रतम्॥३६॥

इस प्रकार ब्रह्मा से वर पाकर बलि ने परम शान्ति का लाभ किया। हे ब्राह्मणवृन्द! तदनन्तर दीर्घकाल के पश्चात् राजा बलि स्वस्थान पर लौट आये। उसके पांचों पुत्रों के नाम से उन-उन पुत्रों के देश प्रसिद्ध हैं। यथा—अंग, बंग, कलिंग, सुह्म तथा पुण्ड्रक। जिस पुत्र का जो नाम है, उसके देश का भी वही नाम है। अब मैं अंग की सन्तति को कहता हूं।।३५-३६।।

अङ्गपुत्रो महानासीद्राजेन्द्रो दधिवाहनः। दधिवाहनपुत्रस्तु राजा दिविरथोऽभवत्॥३७॥
पुत्रो दिविरथस्यासीच्छक्रतुल्यपराक्रमः।
विद्वान् धर्म्मरथो नाम तस्य चित्ररथः सुतः॥३८॥
तेन धर्म्मरथेनाथ तदा कालञ्जरे गिरौ। यजता सह शक्रेण सोमः पीतो महात्मना॥३९॥
अथ चित्ररथस्यापि पुत्रो दशरथोऽभवत्।
लोमपादः इति ख्यातो यस्य शान्ता सुताभवत्॥४०॥
तस्य दाशरथिर्वीरश्चतुरङ्गो महायशाः। ऋष्यशृङ्गप्रसादेन जज्ञे वंशविवर्द्धनः॥४१॥
चतुरङ्गस्य पुत्रस्तु पृथुलाक्ष इति स्मृतः। पृथुलाक्षसुतो राजा चम्पो नाम महायशाः॥४२॥
चम्पस्य तु पुरी चम्पा या मालिन्यभवत् पुरा।
पूर्णभद्रप्रसादेन हर्य्यङ्गोऽस्य सुतोऽभवत्॥४३॥

अंग पुत्र महाराज दधिवाहन। उसका पुत्र था राजा दिवीरथ। उसका पुत्र इन्द्रतुल्य पराक्रमी विद्वान् धर्मरथ था, जिसके पुत्र का नाम था राजा दिविरथ। इसका इन्द्रतुल्य पराक्रमी पुत्र था विद्वान् धर्मरथ। उसका पुत्र था चित्ररथ। धर्मरथ ने कालंजर पर्वत पर इन्द्र के साथ यज्ञकाल में सोमपान किया था। धर्मरथ के पुत्र चित्ररथ के पुत्र का नाम था दशरथ। यह दशरथ लोमपाद नाम से भी प्रसिद्ध था। उसकी कन्या थी शान्ता। ऋष्यशृङ्ग ऋषि की कृपा द्वारा दशरथ ने महायशस्वी वंशवर्द्धक चतुरंग नामक पुत्र प्राप्त किया, जिसका पुत्र था पृथुलाक्ष। उसका पुत्र था महायशस्वी राजा चम्प। इसी चम्प ने मालिनी पुरी का नाम चम्पापुरी रखा। इस चम्प को पूर्णभद्र ऋषि की कृपा से हर्यङ्ग नामक पुत्र का लाभ हुआ।।३७-४३।।

ततो वैभाण्डकिस्तस्य वारणं शक्रवारणम्। अवतारयामास महीं मन्त्रैर्वाहनमुत्तमम्॥४४॥
हर्य्यङ्गस्य सुतस्तत्र राजा भद्ररथः स्मृतः। पुत्रो भद्ररथस्यासीद्बृहत्कर्म्मा प्रजेश्वरः॥४५॥
बृहद्दर्भः सुतस्तस्य यस्माज्जज्ञे बृहन्मनाः। बृहन्मनास्तु राजेन्द्रो जनयामास वै सुतम्॥४६॥
नाम्ना जयद्रथं नाम यस्माद्दृढरथो नृपः। आसीद्दृढरथस्यापि विश्वजिज्जनमेजयी॥४७॥

इसी राजा चम्प के राजत्व काल में ही ऋषि वैभाण्डिकी ने अपने मन्त्रबल के प्रभाव से इन्द्रगज ऐरावत का पृथिवी पर आवाहन किया था। हर्यङ्ग का पुत्र था राजा भद्ररथ, उसका पुत्र था प्रजा का स्वामी बृहद्कर्मा, उसका पुत्र था बृहद्दर्भ। इसके पुत्र का नाम था बृहन्मना। राजा बृहन्मना का पुत्र था जयद्रथ। इसी से राजा दृढ़रथ का जन्म हुआ था। दृढ़रथ का पुत्र था विश्वजित्। उसके नाम से लोग कम्पित हो जाते थे।।४४-४७।।

दायादस्तस्य वैकर्णो विकर्णस्तस्य चात्मजः।
तस्य पुत्रशतं त्वासीदङ्गानां कुलवर्द्धनम्॥४८॥
एतेऽङ्गवंशजाः सर्व्वे राजानः कीर्त्तिता मया।
सत्यव्रता महात्मानः प्रजावन्तो महारथाः॥४९॥

उसका पुत्र था वैकर्ण। वैकर्ण का पुत्र था विकर्ण। इसके सौ पुत्र थे, जो अंगवंश का वर्द्धन करने वाले थे। मैंने अंगवंशीय सभी सत्यरत, महात्मा, प्रजावान्, कुलवर्द्धन राजागण का वर्णन कर दिया।।४८-४९।।

ऋचेयोस्तु मुनिश्रेष्ठा रौद्राश्वतनयस्य वै।
शृणुध्वं सम्प्रवक्ष्यामि वंशं राज्ञस्तु भो द्विजाः॥५०॥
ऋचेयोस्तनयो राज मतिनारो महीपतिः। मतिनारसुतास्त्वासंस्त्रयः परधार्म्मिकाः॥५१॥
वसुरोधः प्रतिरथः सुबाहुश्चैव धार्म्मिकः। सर्व्वे वेदविदश्चैव ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः॥५२॥

हे मुनिप्रवरगण! अब मैं रौद्राश्व के पुत्र ऋचेयु का वंश वर्णन कर रहा हूं। ऋचेयु का पुत्र था राजा मतिनार, जिसके अत्यन्त धार्मिक तीन पुत्र थे। यथा—वसुरोध, प्रतिरथ, सुबाहु। ये सभी वेदज्ञ, ब्रह्मण्य एवं सत्यवक्ता थे।।५०-५२।।

इला नाम तु यस्यासीत् कन्या वै मुनिसत्तमाः।
ब्रह्मवादिन्यधिस्त्री सा तंसुस्तामभ्यगच्छत॥५३॥
तंसोः सुतोऽथ राजर्षिर्धर्म्मनेत्रः प्रतापवान्। ब्रह्मवादी पराक्रान्तस्तस्य भार्य्योपदानवी॥५४॥
उपदानवी ततः पुत्रांश्चतुरोऽजनयच्छुभान्। दुष्यन्तमथ सुष्मन्तं प्रवीरमनघं तथा॥५५॥
दुष्यन्तस्य तु दायादो भरतो नाम वीर्य्यवान्।
स सर्व्वदमनो नाम नागायुतबलो महान्॥५६॥

हे मुनिवृन्द! राजा मतिनार की एक कन्या भी थी। वह परम ब्रह्मवादिनी इला थी। उसने तंसु से पाणिग्रहण किया। तंसु का पुत्र था राजर्षि प्रतापी ब्रह्मज्ञ पराक्रमी धर्मनेत्र। उसकी पत्नी का नाम था उपदानवी। ब्रह्मदत्त के औरस से उपदानवी के चार पुत्र जन्मे थे। उनका नाम था दुष्यन्त, सुष्मन्त, प्रवीर तथा अनघ। ये चारों पवित्र थे। दुष्यन्त का परम बली पुत्र था भरत। यह सभी प्राणियों का दमन करने वाला होने के कारण सर्वदमन भी कहलाया। उसे दस हजार हाथियों का महान् बल प्राप्त था।।५३-५६।।

चक्रवर्ती सुतो जज्ञे दुष्यन्तस्य महात्मनः।
शकुन्तलायां भरतो यस्य नाम्ना तु भारताः॥५७॥
भरतस्य विनष्टेषु तनयेषु महीपतेः। मातृणां तु प्रकोपेण मया तत्कथितं पुरा॥५८॥
बृहस्पतेरङ्गिरसः पुत्रो विप्रो महामुनिः। अयाजयद्भरद्वाजो महद्भिः क्रतुभिर्विभुः॥५९॥

यह चक्रवर्त्ती राजा शकुन्तला के गर्भ से जन्मा था। उसी के नाम के कारण उस वंश के जन्मे सभी लोग भारत कहे गये हैं। मातृकोपवशात् राजा भरत के सभी पुत्रों का नाश हो गया था, यह प्रसंग मैं पूर्व में

कह चुका हूं (?)। इस कारण बृहस्पतिनन्दन महामुनि भरद्वाज ने राजा भरत द्वारा अनेक महायज्ञों का अनुष्ठान सम्पन्न कराया।।५७-५९।।

पूर्व्वं तु वितथे तस्य कृते वै पुत्रजन्मनि।
ततोऽथ वितथो नाम भरद्वाजात्सुतोऽभवत्॥६०॥

तथोऽथ वितथे जाते भरतस्तु दिवं ययौ। वितथं चाभिषिच्याथ भरद्वाजो वनं ययौ॥६१॥
स चापि वितथः पुत्रान् जनयामास पञ्च वै। सुहोत्रञ्च सुहोतारं गयं गर्गं तथैव च॥६२॥
कपिलञ्च महात्मानं सुहोत्रस्य सुतद्वयम्। काशिकञ्च महासत्यं तथा गृत्समतिं नृपम्॥६३॥

पूर्व में तो पुत्र जन्म नहीं हो सका, अतः भरद्वाज के नियोग से वितथ नामक पुत्र जन्मा। इसका जन्म होते ही भरत की मृत्यु हो गयी। अतः भरद्वाज ने वितथ का राज्याभिषेक करके वनगमन किया। वितथ के पांच पुत्र थे। यथा—सुहोत्र, सुहोतार, गर्य, गर्ग तथा महात्मा कपिल। सुहोत् के पुत्र थे सत्यवादी काशिक तथा राजा गृत्समति।।६०-६३।।

तथा गृत्समतेः पुत्रा ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः।
काशिकस्य तु काशेयः पुत्रो दीर्घतपास्तथा॥६४॥

बभूव दीर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरिः सुतः। धन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विश्रुतः॥६५॥

तथा केतुमतः पुत्रो विद्वान् भीमरथः स्मृतः।
पुत्रो भीमरथस्यापि वाराणस्यधिपोऽभवत्॥६६॥

दिवादास इति ख्यातः सर्व्वशत्रुप्रणाशनः। दिवोदासस्य पुत्रस्तु वीरो राजा प्रतर्दनः॥६७॥

गृत्समत के पुत्र ब्राह्मण-क्षत्रिय तथा वैश्य हुये थे। काशिक का पुत्र था दीर्घतपा। उसका पुत्र था विद्वान् धन्वन्तरी। उसका पुत्र केतुमान नाम से विख्यात था। इसका पुत्र था भीमरथ। भीमरथ का पुत्र दिवोदास नाम से प्रसिद्ध था और वाराणसी पुरी का स्वामी था। वह सर्वशत्रुहन्ता भी था। उसका पुत्र था वीर राजा प्रतर्दन।।६४-६७।।

प्रतर्दनस्य पुत्रो द्वौ वत्सो भार्गव एव च।
अलर्को राजपुत्रस्तु राजा सन्मतिमान् भुवि॥६८॥

हैहयस्य तु दायाद्यं हृतवान् वै महीपतिः। आजह्रे पितृदायाद्यं दिवोदास हृतं बलात्॥६९॥
भद्रश्रेण्यस्य पुत्रेण दुर्दमेन महात्मना। दिवोदासेन बालेति घृणयासौ विसर्ज्जितः॥७०॥

प्रतर्दन के पुत्रद्वय थे वत्स-भार्गव। वत्स का पुत्र अलर्क पूर्ण सन्मति युक्त था। राजा दिवोदास द्वारा हैहय की पैतृक सम्पत्ति का हरण कर लिया गया था। भद्रश्रेण्य के दुर्दम नाम से प्रसिद्ध पुत्र को दिवोदास ने बालक समझ कर मुक्त कर दिया था।, उसने दिवोदास द्वारा हरण की गई अपनी पैतृक सम्पत्ति को पुनः हस्तगत कर लिया।।६८-७०।।

अष्टारथो नाम नृपः सुतो भीमरथस्य वै। तेन पुत्रेण बालस्य प्रहृतं तस्य भो द्विजाः॥७१॥

वैरस्यान्तं मुनिश्रेष्ठाः क्षत्रियेण विधित्सता।
अलर्कः काशिराजस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः॥७२॥

षष्टिं वर्षसहस्राणि षष्टिं वर्षशतानि च। युवा रूपेण सम्पन्न आसीत्काशिकुलोद्वहः॥७३॥
लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप सः। वयसोऽन्ते मुनिश्रेष्ठा हंत्वा क्षेमकराक्षसम्॥७४॥

रम्यां निवेशयामास पुरीं वाराणसीं नृपः।
अलर्कस्य तु दायादः क्षेमको नाम पार्थिवः॥७५॥

क्षेमकस्य तु पुत्रो वै वर्षकेतुस्ततोऽभवत्। वर्षकेतोश्च दायादो विभुर्नाम प्रजेश्वरः॥७६॥
आनर्त्तस्तु विभोः पुत्रः सुकुमारस्ततोऽभवत्। सुकुमारस्य पुत्रस्तु सत्यकेतुर्महारथः॥७७॥

भीमरथ का पुत्र था, अष्टारथ (यही दिवोदास नाम वाला भी था)।। अष्टारथ (दिवोदास) के पुत्र प्रतर्दन ने शत्रु का नाश कर दिया तथा पुनः दिवोदास से हरा गया धन प्राप्त कर लिया। काशीराज अलर्क ब्रह्मवादी तथा सत्यपरायण राजा था। वह ६६००० वर्ष पर्यन्त युवक बना रहा। यह परमायु उसे सती लोपामुद्रा की कृपा से मिली थी। हे मुनिवर! अपनी आयु के अन्तिम भाग में प्रतर्दन ने काशीस्थ राक्षस वध किया तथा काशी को पुनः बसाया। अलर्क का पुत्र था प्रजापति विभु। विभु का पुत्र था आनर्त्त, उसका पुत्र था सुकुमार, जिसका पुत्र था महारथी, महातेजयुक्त, परम धार्मिक, राजा सत्यकेतु।।७१-७७।।

सुतोऽभवन्महातेजा राजा परमधार्म्मिकः।
वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भर्गभूमिस्तु भार्गवात्॥७८॥
एते त्वङ्गिरसः पुत्रा जाता वंशेऽथ भार्गवे।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च मुनिसत्तमाः॥७९॥

आजमीढोऽपरो वंशः श्रूयतां द्विजसत्तमाः। सुहोत्रस्य बृहत्पुत्रो बृहतस्तनयास्त्रयः॥८०॥

अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च वीर्य्यवान्।
अजमीढस्य पत्नयस्तु तिस्रो वै यशसान्विताः॥८१॥
नीली च केशिनी चैव धूमिनी च वराङ्गनाः।
अजमीढस्य केशिन्यां जज्ञे जह्नुः प्रतापवान्॥८२॥

आजह्ने यो महासत्रं सर्व्वमेधमखं विभुम्। पतिलोभेन यं गङ्गा विनीतेव ससार ह॥८३॥

वत्सभूमि का पुत्र था वत्स। भार्गव का पुत्र था भर्गभूमि। हे मुनिप्रवरगण! भार्गव वंशोत्पन्न ये सभी अंगीरापुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र हो गये। हे द्विजप्रवरगण! अब अजामीढ़ नामक अन्य वंश का वृत्तान्त सुने। सुहोत्र का पुत्र था बृहद्। उसके तीन पुत्रों का नाम था अजमीढ़, द्विमीढ़ था महाबल पुरुमीढ़। अजमीढ़ की तीन यशस्वी पत्नियां थीं उनके नाम थे नीली, केशिनी तथा धूमिनी। केशिनी ने प्रतापी जह्नु को जन्म दिया। उसने महायज्ञ सर्वमेध किया था। उसे पति बनाने के लोभ से गंगा विनीत होकर उसके पास आई थीं।।७८-८३।।

नेच्छतः प्लावयामास तस्य गङ्गा च तत्सदः।
तत्तया प्लावितं दृष्ट्वा यज्ञवाटं समन्ततः॥८४॥
जह्नुरप्यब्रवीद् गङ्गां क्रुद्धो विप्रास्तदा नृपः।
एष ते त्रिषु लोकेषु संक्षिप्यापः पिबाम्यहम्॥८५॥
अस्य गङ्गेऽवलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि।
ततः पीतां महात्मानो दृष्ट्वा गङ्गां महर्षयः॥८६॥
उपनिन्युर्महाभागा दुहितृत्वेन जाह्नवीम्। युवनाश्वस्य पुत्रीं तु कावेरीं जह्नुरावहत्॥८७॥

जब जह्नु ने गंगा को पत्नी रूप में स्वीकार नहीं किया, तब गंगा ने जह्नु के यज्ञस्थल को जल से प्लावित कर दिया। तब क्रुद्ध होकर तथा चतुर्दिक् यज्ञवाट को जलमग्न देखकर जह्नु ने गंगा से कहा—"मैं तीनों लोकों के तुम्हारे जल को संक्षिप्त करके पी जाता हूं। हे गंगे! तुम अपने कृत्य का फल तत्काल पाओ।" उस समय महर्षिगण ने गंगा को जह्नु द्वारा पान किया गया देखकर उसे जह्नु की पुत्री जाह्नवी बना दिया। उस समय जह्नु ने युवनाश्व की कन्या कावेरी से विवाह कर लिया।।८४-८७।।

गङ्गाशापेन देहार्द्धं यस्याः पश्चान्नदीकृतम्।
जह्नोस्तु दयितः पुत्रो अजको नाम वीर्य्यवान्।
अजकस्य तु दायादो बलाकाश्वो महीपतिः॥८८॥
बभूव मृगयाशीलः कुशिकस्तस्य चात्मजः। पह्लवैः सह संवृद्धो राजा वनचरैः सह॥८९॥

गंगा के शाप के कारण कावेरी का अर्द्धाङ्ग नदी हो गया। जह्नु का बलशाली पुत्र था अजक। उसका पुत्र था बलाकाश्व, जो मृगयासक्त रहा करता था। उसका पुत्र था राजा कुशीक। वह पह्लव जाति कि वनवासियों से पालित-पोषित हुआ था।।८८-८९।।

कुशिकस्तु तपस्तेपे पुत्रमिन्द्रसमं विभुम्।
लभेयमिति तं शक्रस्त्रासादभ्येत्य जज्ञिवान्॥९०॥
स गाधिरभवद्राजा मघवा कौशिकः स्वयम्।
विश्वामित्रस्तु गाधेयो विश्वामित्रात्तथाष्टकः॥९१॥
अष्टकस्य सुतो लौहिः प्रोक्तो जह्नुगणो मया।
आजमीढोऽपरो वंशः श्रूयतां मुनिसत्तमाः॥९२॥

कुशिक ने इन्द्र के समान पुत्र लाभार्थ तप किया। इन्द्र उसके ताप से भयभीत होकर स्वयं कुशिक के पुत्र होकर जन्मे तथा वे गाधि के नाम से प्रसिद्ध हो गये। गाधि के पुत्र थे विश्वामित्र। उनका पुत्र था अष्टम। उसका पुत्र प्रख्यात् लौहि था। हे श्रेष्ठ मुनियों! मैंने आप लोगों से जह्नु-गण का वर्णन कर दिया। अब आप लोग अजामीढ़ का अन्य वंश सुनिये।।९०-९२।।

अजमीढात्तु नील्यां वै सुशान्तिरुदपद्यत। पुरुजातिः सुशान्तश्च बाह्याश्वः पुरुजातितः॥९३॥

बाह्याश्वतनयाः पञ्च स्फीता जनपदावृताः। मुद्गलः सृञ्जयश्चैव राजा बृहदिषुस्तथा॥९४॥
यवीनरश्च विक्रान्तः कृमिलाश्वश्च पञ्चमः। पञ्चैते रक्षणायालं देशानामिति विश्रुताः॥९५॥

अजामीढ़ की पत्नी नीली ने सुशान्ति को जन्म दिया। उसका पुत्र था पुरुजाति, जिसके पुत्र का नाम था बाह्याश्व। इसके पांच पुत्रों का नाम था मुद्‌गल, सृञ्जय, राजा बृहदिषु, पराक्रमी यवीनर तथा कृमिलाश्व। ये पांचों देश रक्षा करने में प्रसिद्ध थे।।९३-९५।।

पञ्चानां ते तु पञ्चालाः स्फीता जनपदावृताः।
अलं संरक्षणे तेषां पञ्चाला इति विश्रुताः॥९६॥
मुद्गलस्य तु दायादो मौद्गल्या सुमहायशाः। इन्द्रसेना यतो गर्भं ब्रध्नश्वं प्रत्यपद्यत॥९७॥
आसीत् पञ्चजनः पुत्रः सृञ्जयस्य महात्मनः।
सुतः पञ्चजनस्यापि सोमदत्तो महीपतिः॥९८॥
सोमदत्तस्य दायादः सहदेवो महायशाः। सहदेवसुतश्चापि सोमको नाम विश्रुतः॥९९॥
अजमीढसुतो जातः क्षीणे वंशे तु सोमकः।
सोमकस्य सुतो जन्तुर्यस्य पुत्रशतं बभौ॥१००॥
तेषां यवीयान् पृषतो द्रुपदस्य पिता प्रभुः।
आजमीढाः स्मृताश्चैते महात्मास्तु सोमकाः॥१०१॥

इनका पाञ्चाल प्रदेश जनपदों से घिरा तथा ऐश्वर्य सम्पन्न था। ये उसके रक्षण में समर्थ थे अतएव वह पाञ्चाल देश महातपा मुद्‌गल का पुत्र मौद्‌गल्य महायशस्वी था। इसकी पत्नी इन्द्र सेना के ब्रध्नश्व नामक पुत्र को उत्पन्न किया। महात्मा सृञ्जय का पुत्र था पञ्चजन। उसका पुत्र था राजा सोमदत्त। उसका पुत्र था महायशस्वी सहदेव। सहदेव का पुत्र सोमक नाम से प्रसिद्ध था।।९६-१०१।।

महिषी त्वजमीढस्य धूमिनी पुत्रगृद्धिनी।
पतिव्रता महाभागा कुलजा मुनिसत्तमाः॥१०२॥
सा च पुत्रार्थिनी देवी व्रतचर्य्यसमन्विता। ततो वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम्॥१०३॥
हुत्वाग्निं विधिवत्सा तु पवित्रामितभोजना।
अग्निहोत्रकुशेष्वेव सुष्वाप मुनिसत्तमाः॥१०४॥
धूमिन्या स तया देव्या त्वजमीढः समीयिवान्।
ऋक्षं सञ्जनयामास धूम्रवर्णं सुदर्शनम्॥१०५॥

हे मुनिवरगण! अजमीढ़ की पत्नी धूमिनी पतिव्रता, कुलीना तथा महासौभाग्यवती थी। वह पुत्र की कामना से व्रतचारिणी हो गयी तथा उसने दस हजार वर्ष तक अत्यन्त कठोर तप किया। वह विधिवत् होम करती, पवित्र रह कर परिमित भोजन करती थी। वह अग्निहोत्र के कुशों पर ही शयन करती थी। उस देवी से राजा ने संगम किया। परिणामतः सुदर्शन धूम्रवर्ण ऋक्ष नामक पुत्र जन्मा।।१०२-१०५।।

ऋक्षात् संवरणो जज्ञे कुरुः संवरणात्तथा। यः प्रयागादतिक्रम्य कुरुक्षेत्रं चकार ह॥१०६॥

पुण्यं च रमणीयं च पुण्यकृद्भिर्निषेवितम्।
तस्यान्ववाय सुमहान् यस्य नाम्नाथ कौरवाः॥१०७॥

इस ऋक्ष का पुत्र था संवरण। उसका पुत्र था कुरु। कुरु ने प्रयाग से लौट कर पुण्यमय रमणीय तथा पुण्यात्मा लोगों से सेवित कुरुक्षेत्र का निर्माण किया था। उसके पुत्र सुमहान् वंश में जन्मी सन्तति कौरव कही गयी॥१०६-१०७॥

कुरोश्च पुत्राश्चत्वारः सुधन्वा सुधनुस्तथा। परीक्षिच्च महाबाहुः प्रवरश्चारिमेजयः॥१०८॥
परीक्षितस्तु दायादो धार्म्मिको जनमेजयः। श्रुतसेनोऽग्रसेनश्च भीमसेनश्च नामतः॥१०९॥

एते सर्व्वे महाभागा विक्रान्ताः बलशालिनः।
जनमेजयस्य पुत्रस्तु सुरथो मतिमांस्तथा॥११०॥

सुरथस्य तु विक्रान्तः पुत्रो जज्ञे विदूरथः। विदूरथस्य दायाद ऋक्ष एव महारथः॥१११॥

कुरु के चार पुत्रों का नाम था सुधन्वा, सुधनु, परीक्षित् तथा अरिमेजय। परीक्षित का धर्मात्मा पुत्र था जनमेजय, तथापि श्रुतसेना अग्रसेन तथा भीमसेन भी उसके पुत्रगण थे। ये सभी महाभाग्यवान् पराक्रमी तथा बली थे। जनमेजय का मतिमान पुत्र था सुरथ उसका पराक्रमी पुत्र था विदूरथ। विदूरथ का पुत्र महारथी ऋक्ष था॥१०८-१११॥

द्वितीयस्तु भरद्वाजान्नाम्ना तेनैव विश्रुतः।
द्वावृक्षौ सोमवंशेऽस्मिन् द्वावेव च परीक्षितौ॥११२॥
भीमसेनास्त्रयो विप्रा द्वौ चापि जनमेजयौ।
ऋक्षस्य तु द्वितीयस्य भीमसेनोऽभवत्सुतः॥११३॥

प्रतीपो भीमसेनात्तु प्रतीपस्य तु शान्तनुः। देवापिर्बाह्लिकश्चैव त्रय एव महारथाः॥११४॥

शान्तनोस्त्वभवद् भीष्मस्तास्मिन् वंशे द्विजोत्तमाः।
बाह्लिकस्य तु राजर्षेर्व्वंशं श्रृणुत भो द्विजाः॥११५॥

वृक्ष नामक अन्य पुत्र भरद्वाज से जन्मा था। अतः सोमवंश में दो ऋक्ष तथा दो परीक्षित जन्मे थे। इस वंश में तीन भीमसेन तथा दो जनमेजय का जन्म हुआ था। द्वितीय ऋक्ष का पुत्र था भीमसेन। भीमसेन का पुत्र प्रतीप, जिसके पुत्रों का नाम था शान्तनु, देवापि तथा बाह्लीक। हे विप्रगण! इस सोमवंश में शान्तनु के पुत्ररूपेण भीम उत्पन्न हुये थे। हे द्विजों! अब राजा बाह्लीक का वंश सुनें॥११२-११५॥

बाह्लिकस्य सुतश्चैव सोमदत्तो महायशाः। जज्ञिरे सोमदत्तात्तु भूरिर्भूरिश्रवाः शलः॥११६॥
उपाध्यायस्तु देवानां देवापिरभवन्मुनिः। च्यवनपुत्रः कृतक इष्ट आसीन्महात्मनः॥११७॥

शान्तनुस्त्वभवद्राजा कौरवाणां धुरन्धरः।
शान्तनोः सम्प्रवक्ष्यामि वंशं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥११८॥

गाङ्गं देवव्रतं नाम पुत्रं सोऽजनयत् प्रभुः।
स तु भीष्म इति ख्यातः पाण्डवानां पितामहः॥११९॥

बाह्लीक का पुत्र था महान् यशस्वी सोमदत्त, उसका पुत्र था भूरि। भूरि के साथ भूरिश्रवा तथा शल्य जन्मे थे। मुनि देवापि देवगण के उपाध्याय बनाये गये। ये च्यवनपुत्र कृतक के मित्र थे। कौरववंशीय शान्तनु अतीव प्रतापी थे। अब मैं उसके त्रैलोक्य प्रसिद्ध वंश का प्रसंग कहता हूं। शान्तनु ने गंगा नदी से पुत्र देवव्रत को उत्पन्न किया, जो पाण्डवों के पितामह भीष्म ही थे।।११६-११९।।

काली विचित्रवीर्य्यं तु जनयामास भो द्विजाः।
शान्तनोर्दयितं पुत्रं धर्म्मात्मानमकल्मषम्॥१२०॥
कृष्णद्वैपायनाच्चैव क्षेत्रे वैचित्रवीर्य्यके।
धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत्॥१२१॥
धृतराष्ट्रस्तु गान्धार्य्यां पुत्रानुत्पादयच्छतम्।
तेषां दुर्य्योधनः श्रेष्ठः सर्व्वेषामपि स प्रभुः॥१२२॥

हे द्विजप्रवरगण! शान्तनु ने काली से धर्मशील निष्पाप तथा प्रिय पुत्र विचित्रवीर्य को उत्पन्न किया था। वेदव्यास ने हीं विचित्रवीर्य की पत्नी से नियोग द्वारा धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा विदुर को उत्पन्न किया था। धृतराष्ट्र को पत्नी गान्धारी से सौ पुत्र जन्मे थे। उनमें सभी का प्रभु दुर्योधन सबसे ज्येष्ठ था।।१२०-१२२।।

पाण्डोर्धनञ्जयः पुत्र सौभद्रस्तस्य चात्मजः।
अभिमन्योः परीक्षित्तु पिता पारीक्षितस्य ह॥१२३॥
पारीक्षितस्य काश्यायां द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतुः।
चन्द्रापीडस्तु नृपतिः सूर्य्यापीडश्च मोक्षवित्॥१२४॥
चन्द्रापीडस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम्।
जानमेजयमित्येवं क्षात्रं भुवि परिश्रुतम्॥१२५॥
तेषां ज्येष्ठस्तु तत्रासीत् पुरे वाराणसीह्वये।
सत्यकर्णो महाबाहुर्यज्वा विपुलदक्षिणः॥१२६॥
सत्यकर्णस्य दायादः श्वेतकर्णः प्रतापवान्।
अपुत्रः स तु धर्म्मात्मा प्रविवेश तपोवनम्॥१२७॥
तस्माद्वनगता गर्भं यादवी प्रत्यपद्यत। सुचारोर्दुहिता सुभ्रूर्मालिनी ग्राहमालिनी॥१२८॥
सम्भूते स च गर्भे च श्वेतकर्णः प्रजेश्वरः।
अन्वगच्छत् कृतं पूर्व्वं महाप्रस्थानमच्युतम्॥१२९॥
सा तु दृष्ट्वा प्रियं तं च मालिनी पृष्ठतोऽन्वगात्।
सुचारोर्दुहिता साध्वी वने राजीवलोचना॥१३०॥

पथि सा सुषुवे बाला सुकुमारं कुमारकम्। तमपास्याथ तत्रैव राजानं सान्वगच्छत॥१३१॥
पतिव्रता महाभागा द्रौपदीव पुरा सती। कुमारः सुमारोऽसौ गिरिपृष्ठे रुरोद ह॥१३२॥

पाण्डुपुत्र थे अर्जुन, उसके पुत्र थे सौभद्र अभिमन्यु। उसका पुत्र था परीक्षित्, जिसका पुत्र था जनमेजय। पारीक्षित् ने पत्नी काश्या से राजा चन्द्रापीड़ तथा मोक्षज सूर्यापीड़ को उत्पन्न किया। चन्द्रपीड़ के सौ पुत्र उत्तम धनुर्धर थे। उनका जनमेजय नामक प्रख्यात् क्षत्रियवंश संसार में चला। सर्वज्येष्ठ थे बहुदक्षिणादाता, यज्ञकर्त्ता विक्रमी सत्यकर्ण। यह वाराणसी निवासी थे। इनका प्रतापी पुत्र था श्वेतकर्ण। वह पुत्रहीन था। धर्मात्मा श्वेतकर्ण उत्तम पुत्र प्राप्ति हेतु सपत्नीक तपोवन में गये थे। वन में ही यदुवंशोत्पन्ना तथा सुचारु की मालिनी नाम्नी सुन्दरी कन्या ने श्वेतकर्ण का गर्भ धारण किया। गर्भ व्यक्त होते ही श्वेतकर्ण स्वर्गगामी हो गये। मालिनी ने भी पति का अनुगमन किया। तभी उसने वहां प्रसव कर दिया। मालिनी ने नवजात बालक को वहीं छोड़ा तथा राजा के पीछे वैसे ही चली गयी जैसे द्रौपदी पतियों के पीछे स्वर्ग चली गई थी। वह सुकुमार शिशु वही पर्वत पर पड़ा रोने लगा।।१२३-१३२।।

दयार्थं तस्य मेघास्तु प्रादुरासन्महात्मनः।
श्रविष्ठायास्तु पुत्रौ द्वौ पैप्पलादिश्च कौशिकः॥१३३॥
दृष्ट्वा कृपान्वितौ गृह्य तौ प्राक्षालयतां जले।
निघृष्टौ तस्य पार्श्वौ तु शिलायां रुधिरप्लुतौ॥१३४॥
अजश्यामः स पार्श्वाभ्यां घृष्टाभ्यां सुसमाहितः।
अजश्यामौ तु तत्पार्शौ देवेन सम्बभूवतुः॥१३५॥

उस पर करुणा करते हुये महात्मा मेघगण वहां प्रकट हो गये थे। श्रविष्ठा के दो पुत्र पैप्पलादि तथा कौशिक थे। उन दोनों ने उस नवजात शिशु को वहां पड़ा देखा तथा दयापरवश होकर उसे जल द्वारा प्रक्षालित किया। बालक के दोनों पार्श्व (हाथ-पैर चलने-हिलने के कारण) शिला पर घिसकर रक्ताप्लुत हो गये थे। पार्श्व शिला पर रगड़ खाकर वहां का अंग बकरे जैसा काला हो गया था।।१३३-१३५।।

अथाजपार्श्व इति वै चक्राते नाम तस्य तौ।
स तु रेमकशालायां द्विजाभ्यामभिवर्द्धितः॥१३६॥
रेमकस्य तु भार्य्या तमुद्वहत् पुत्रकारणात्।
रेमत्याः स तु पुत्रोऽभूद्ब्राह्मणौ सचिवौ तु तौ॥१३७॥

यह देखकर उन दोनों महात्मा ने बालक का नाम "अजपार्श्व" रख दिया। उस शिशु का पालन-पोषण उन ब्राह्मणद्वय ने रेमक ऋषि के आश्रम में किया। रेमक मुनि की भार्या ने भी उसे अपना पुत्र मानकर उसे पाल लिया था। वह बालक रेमती का पुत्र कहा गया तथा वे दोनों ब्राह्मण उस बालक के (कालान्तर में) सचिव बन गये।।१३६-१३७।।

तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च युगपत्तुल्यजीविनः।
स एष पौरवो वंशः पाण्डवानां महात्मनाम्॥१३८॥

श्लोकोऽपि चात्र गीतोऽयं नाहुषेन ययातिना।
जरासंक्रमणे पूर्व्वं तदा प्रीतेन धीमता॥१३९॥
अचन्द्रार्कग्रहा भूमिर्भवेदियमसंशयम्। अपौरवा मही नैव भविष्यति कदाचन॥१४०॥

उनके पुत्र-पौत्र भी ऐसा ही जीवन धारण करने वाले थे। यह पाण्डवगण का पौरव वंश है। इस वंश के सम्बन्ध में अपनी वृद्धावस्था के पहले नहुष के पुत्र ययाति ने एक गाथा का गायन किया था कि "भले ही पृथिवी, सूर्य-चन्द्र रहित हो जाये, तथापि वह पौरव वंश से रहित नहीं हो सकती"।।१३८-१४०।।

एष वः पौरवो वंशो विख्यातः कथितो मया।
तुर्व्वसोस्तु प्रवक्ष्यामि द्रुह्योश्चानोर्यदोस्तथा॥१४१॥
तुर्व्वसोऽस्तु सुतो वह्निर्गोभानुस्तस्य चात्मजः।
गोभानोस्तु सुतो राजा ऐशानुरपराजितः॥१४२॥
करन्धमस्तु ऐशानोर्मरुत्तस्तस्य चात्मजः।
अन्यस्त्वाविक्षितो राजा मरुत्तः कथितो मया॥१४३॥
अनपत्योऽभवद्राजा यज्वा विपुलदक्षिणः।
दुहिता संयुता नाम तस्यासीत् पृथिवीपतेः॥१४४॥
दक्षिणार्थं तु सा दत्ता संवर्त्ताय महात्मने।
दुष्यन्तं पौरवं चापि लेभे पुत्रमकल्मषम्॥१४५॥

इस प्रकार मैंने पौरववंश (पुरुवंश) का वृत्तान्त कह दिया। अब मैं तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु, तथा यदुवंश का वर्णन करूंगा। तुर्वसु का पुत्र था वह्नि। उसका पुत्र था गोभानु। उसका पुत्र था अजेय राजा ऐशानु। उसका पुत्र था करंधम, जिसके पुत्र का नाम था मरुत्। एक अन्य अवीक्षित राजा के पुत्र अन्य मरुत्त का वर्णन मैंने पहले ही किया था। इस मरुत्त को सन्तान नहीं थी। अतः उसने प्रभूत दक्षिणा वाले अनेक महायज्ञों को अनुष्ठित किया था। इसके फलस्वरूप उसे संयता नामक कन्या जन्मी। संयता को मरुत्त ने संवर्त्त महात्मा को दक्षिणास्वरूप प्रदान कर दिया था। संयता के गर्भ से पौरववंशी निष्पाप पुत्र दुष्यन्त जन्मा।।१४१-१४५।।

एवं ययातिशापेन जरासंक्रमणे तदा। पौरवं तुर्व्वसोर्वंशं प्रविवेश द्विजोत्तमाः॥१४६॥

हे द्विजप्रवरवृन्द! वृद्धावस्थाक्लान्त राजा ययाति के शाप के कारण तुर्वसु का वंश पौरववंश में मिलित हो गया था।।१४६।।

दुष्यन्तस्य तु दायादः करूरोमः प्रजेश्वरः।
करूरोमादथाह्लीदश्चत्वारस्तस्य चात्मजाः॥१४७॥
पाण्ड्यश्च केरलश्चैव कालश्चोलश्च पार्थिवः।
द्रुह्योश्च तनयो राजन् बभ्रुसेतुश्च पार्थिवः॥१४८॥
अङ्गारसेतुस्तत्पुत्रो मरुतां पतिरुच्यते। यौवनाश्वेन समरे कृच्छ्रेण निहतो बली॥१४९॥

दुष्यन्त का पुत्र करूरोम प्रजेश्वर हुआ। उसका पुत्र था अथाह्लीद जिसके चार पुत्र थे। यथा—पाण्ड्य, केरल, काल एवं चोल। द्रुह्यु का पुत्र था राजा बभ्रुसेतु। उसका पुत्र था अंगारसेतु। वह मरुतों का स्वामी कहा गया है। इसे यौवनाश्व ने युद्ध में अत्यन्त कठिनता से निहत किया था।।१४७-१४९।।

युद्धं सुमहदप्यासीन्मासान् परिचतुर्दश।
अङ्गारसेतोर्दायादो गान्धारो नाम पार्थिवः॥१५०॥
ख्यायते यस्य नाम्ना वै गान्धारविषयो महान्।
गान्धारदेशजाश्चैव तुरगा वाजिनां वराः॥१५१॥
अनोस्तु पुत्रो धर्म्मोऽभूद्द्युतस्तस्यात्मजोऽभवत्।
द्युताद्वनदुहो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मजः॥१५२॥

इन दोनों पक्षों के मध्य चतुर्दश मास पर्यन्त घोर युद्ध छिड़ा था। अंगारसेतु का पुत्र था राजा गान्धार। इसी के नाम से गान्धारदेश की ख्याति है। वहां के अश्व अत्युत्तम कहे गये हैं। अनु का पुत्र था धर्म, जिसके पुत्र का नाम था द्युत। द्युत का पुत्र था वनदुह। उसका पुत्र था प्रचेता।।१५०-१५२।।

प्रचेतसः सुचेतास्तु कीर्त्तितास्तुर्वसोर्मया।
बभूवुस्ते यदोः पुत्राः पञ्च देवसुतोपमाः॥१५३॥
सहस्त्रादः पयोदश्च क्रोष्टा नीलोऽञ्जिकस्तथा।
सहस्त्रादस्य दायादास्त्रयः परमधार्म्मिकाः॥१५४॥
हैहयश्च हयश्चैव राजा वेणुहयस्तथा। हैहयस्याभवत् पुत्रो धर्म्मनेत्र इति श्रुतः॥१५५॥
धर्म्मनेत्रस्य कार्त्तस्तु साहञ्जस्तस्य चात्मजः।
साहञ्जनी नाम पुरी तेन राज्ञा निवेशिता॥१५६॥

प्रचेता का पुत्र था सुचेता। यह तुर्वसु का वंश मैंने कह दिया। यदु के पांच पुत्र देवपुत्रों जैसे थे। उनका नाम था सहस्त्राद, पयोद, क्रोष्टा, नील तथा अञ्जिक। सहस्त्राद के परमधार्मिक पुत्रत्रय का नाम है हैहय, हय, वेणुहय। हैहय का पुत्र था धर्मनेत्र। उसका पुत्र था कार्त्त, जिसके पुत्र का नाम था साहञ्ज। इसी ने साहञ्जनी नगरी की स्थापना किया था।।१५३-१५६।।

आसीन्महिष्मतः पुत्रो भद्रश्रेण्यः प्रतापवान्।
भद्रश्रेण्यस्य दायादो दुर्दमो नाम विश्रुतः॥१५७॥
दुर्दमस्य सुतो धीमान् कनको नाम नामतः।
कनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकविश्रुताः॥१५८॥
कृतवीर्य्यः कृतौजाश्च कृतधन्वा तथैव च।
कृताग्निस्तु चतुर्थोऽभूत् कृतवीर्य्यादथार्ज्जुनः॥१५९॥
योऽसौ बाहुसहस्त्रेण सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत्। जिगाय पृथिवीमेको रथेनादित्यवर्च्चसा॥१६०॥

स हि वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम्।
दत्तमाराधयामास कार्त्तवीर्य्योऽत्रिसम्भवम्॥१६१॥

महिष्मान् का पुत्र था भद्रश्रेण्य। यह प्रतापी राजा था। इसके पुत्र का नाम दुर्दम प्रसिद्ध है। इसका पुत्र था धीमान् कनक। इसके प्रसिद्धि प्राप्त चार पुत्र थे। यथा—कृतवीर्य, कृतौजा, कृतधन्वा, कृतान्ति। कृतवीर्य से कार्त्तिवीर्य अर्जुन जन्मा। यह सहस्रबाहु था, जो अपने प्रताप से सप्तद्वीपों का स्वामी हो गया। वह आदित्यवत् तेज वाले रथ के द्वारा एकाकी ही समग्र पृथिवी का अधिपति हो गया था। उस कार्त्तिवीर्य ने दस हजार वर्ष पर्यन्त कठोर तप द्वारा अत्रिपुत्र भगवान् दत्त को प्रसन्न किया था।।१५७-१६१।।

तस्मै दत्तो वरान् प्रादाच्चतुरो भूरितेजसः। पूर्व्वं बाहुसहस्रं तु प्रार्थितं सुमहद्वरम्॥१६२॥
अधर्म्मेऽधीयमानस्य सद्भिस्तत्र निवारणम्।
उग्रेण पृथिवीं जित्वा धर्म्मेणैवानुरञ्जनम्॥१६३॥
संग्रामान् सुबहून् जित्वा हत्वा चारीन् सहस्रशः।
संग्रामे वर्त्तमानस्य वधं चाभ्यधिकाद्रणे॥१६४॥

दत्त द्वारा कृतवीर्य पुत्र अर्जुन को चार वर मिले थे। अर्जुन ने प्रार्थना किया था "मुझे सहस्र बाहु मिले, सत्पुरुषगण मुझे अधर्म से बचाते रहें। मैं उग्रता पूर्वक पृथिवी जीत लूं तथा सर्वान्त में धर्मतः प्रजा को प्रसन्न रखूं। मैं अनेक संग्राम जीतकर हजारों शत्रुओं का संहार करने के पश्चात् अपने से अधिक बलशाली द्वारा मारा जाऊं।।१६२-१६४।।

तस्य बाहुसहस्रं तु युध्यतः किल भो द्विजाः।
योगाद्योगीश्वरस्येव प्रादुर्भवति मायया॥१६५॥
तनेयं पृथिवी सर्व्वा सप्तद्वीपा सपत्तना। ससमुद्रा सनगरा उग्रेण विधिना जिता॥१६६॥
तेन सप्तसु द्वीपेषु सप्त यज्ञशतानि वै।
प्राप्तानि विधिना राज्ञा श्रूयन्ते मुनिसत्तमाः॥१६७॥

हे द्विजगण! जिस प्रकार योगीगण योग से माया को उत्पन्न कर देते हैं, तदनुरूप युद्धकाल में सहस्रार्जुन की सहस्र भुजायें प्रकट हो जाती थीं। यह सुना गया है कि उसने उग्रता पूर्वक सातों द्वीप, पर्वत, समुद्र, नगर-ग्राम के साथ पृथिवी पर विजय पा लिया था। उसने सप्त द्वीपों में से प्रत्येक पर सौ-सौ यज्ञों को सम्पन्न किया था।।१६५-१६७।।

सर्व्वे यज्ञा मुनिश्रेष्ठाः सहस्रशतदक्षिणाः।
सर्व्वे काञ्चनयूपाश्च सर्व्वे काञ्चनवेदयः॥१६८॥
सर्व्वे देवैर्म्मुनिश्रेष्ठाः विमानस्थैरलङ्कृतैः। गन्धर्व्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिताः॥१६९॥
यस्य यज्ञे जगौ गाथां गन्धर्व्वो नारदस्तथा।
वरीदासात्मजो विद्वान्महिम्ना तस्य विस्मितः॥१७०॥

हे मुनिप्रवरगण! उसने प्रतियज्ञ में एक-एक लक्ष दक्षिणा दिया था। उसने सभी यज्ञों में स्वर्णवेदी तथा स्वर्ण के यज्ञ स्तम्भों को निर्मित कराया था। उस समय उसकी यज्ञस्थली को विमानस्थ देवता, गन्धर्व तथा अप्सरायें अपनी उपस्थिति से अलंकृत तथा शोभायमान करती थीं। अर्जुन का यज्ञ देखकर वरीदास के पुत्र गन्धर्व विद्वान् नारद ने विस्मय पूर्वक इस गाथा का गायन किया था।।१६८-१७०।।

नारद उवाच

न नूनं कार्तवीर्य्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः।
यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च विक्रमेण श्रुतेन च॥१७१॥
स हि सप्तसु द्वीपेषु चर्मी खड्गी शरासनी।
रथी द्वीपाननुचरन् योगी संदृश्यते नृभिः॥१७२॥
अनष्टद्रव्यता चैव न शोको न च विभ्रमः।
प्रभावेण मया राज्ञः प्रजा धर्म्मेण रक्षतः॥१७३॥

गन्धर्व नारद कहते हैं—यज्ञ, दान, तप, विक्रम, शास्त्रज्ञान में कोई भी राजा कृतवीर्यनन्दन अर्जुन की बराबरी नहीं कर सकता। ढाल, तलवार, धनुष-बाणधारी होकर तथा एक रथ में बैठा विचरण करता यह योगी अर्जुन एक साथ सातों द्वीपों में वहां के लोगों को प्रत्यक्षगोचर होता है। धर्मतः प्रजापालन करते इस राजा का द्रव्य कभी समाप्त नहीं होता। इसको शोक तथा भ्रम विचलित नहीं करते न इसे प्रभावित ही करते हैं।।१७१-१७३।।

स सर्व्वरत्नभाक् सम्राट् चक्रवर्ती बभूव ह।
स एव पशुपालोऽभूत् क्षेत्रपालः स एव च॥१७४॥
स एव वृष्ट्या पर्जन्यो योगित्वादर्ज्जुनोऽभवत्।
स वै बाहुसहस्रेण ज्याघातकठिनत्वचा॥१७५॥
भाति रश्मिसहस्रेण शरदीव च भास्करः।
स हि नागान्मनुष्येषु माहिष्मत्यां महाद्युतिः॥१७६॥
कर्कोटकसुतान् जित्वा पुर्य्यां तस्यां न्यवेशयत्।
स वै वेगं समुद्रस्य प्रावृट्कालेऽम्बुजेक्षणः॥१७७॥
क्रीडन्निव भुजोद्भिन्नं प्रतिस्रोतश्चकार ह।
लुण्ठिता क्रीडता तेन नदी तद्ग्राममालिनी॥१७८॥
चलदूर्म्मिसहस्रेण शङ्किताभ्येति नर्म्मदा। तस्य बाहुसहस्रेण क्षिप्यमाणे महोदधौ॥१७९॥
भयान्निलीना निश्चेष्टा पातालस्था महासुराः।
चूर्णीकृतमहावीचिं चलन्मीनमहातिमिम्॥१८०॥

अर्जुन के कोष में समस्त प्रकार के रत्नों का भंडार था। वह सम्राट् तथा चक्रवर्ती था। वही पशुपालक

तथा क्षेत्रपाल भी था। वह अपने योग के द्वारा स्वयं मेघरूप होकर वर्षा करता। ज्या की रगड़ से उसकी त्वचा कठोर हो गयी थी। वह सूर्य की किरणों के समान द्योतित तथा धनुष की रगड़ से कठोर हो गयी त्वचायुक्त सहस्र भुजाओं में शोभित रहता था। उसने कर्कोटक नाग के पुत्रों को जीत कर उनको पुरी में बसाया। उसमें माहिष्मती नगरी में मनुष्यों के साथ नागों को भी रहने दिया। वह वर्षाकाल में वेगवान् समुद्र में क्रीड़ा करता तथा उसने अपनी भुजा से छिन्न-भिन्न करके समुद्र के अनेक स्रोतों को बना दिया था। उसकी क्रीड़ा के समय नदी नर्मदा स्वयं में अर्जुन के आघात से उठ रही हजारों लहरों को देख कर शंकित होकर राजा के समक्ष आ गयीं। जब राजा ने अपनी सहस्र बाहुओं के आघात से समुद्र जल को क्षुब्ध कर दिया, तब पातालस्थ महाराक्षस भी भयभीत होकर यत्र-तत्र छिप गये। उसने लहरों को चूर्णीकृत कर दिया। इस प्रकार इस स्थिति में मछलियां तथा महान् आकृति वाले जलजन्तु कम्पित हो उठे।।१७४-१८०।।

मारुताविद्धफेनौघमावर्त्तक्षोभसङ्कुलम्। प्रावर्त्तयत्तदा राजा सहस्रेण च बाहुना॥१८१॥
देवासुरसमाक्षिप्तः क्षीरोदमिव मन्दरः। मन्दरक्षोभचकिता अमृतोत्पादशङ्किताः॥१८२॥

उसकी सहस्रों भुजाओं के आघात से उठे पवन वेग के कारण सागर में फेन ही फेन उत्पन्न हो गया। जल में आवर्त्त (भंवर) बनने लगे। जिस प्रकार पूर्वकाल में देवता-असुरों ने मन्दराचल पर्वत द्वारा सागर मन्थन किया था, तदनुरूप राजा कार्तिवीर्य अर्जुन ने अपनी सहस्र भुजाओं से सागर मन्थन किया। महासागर वासी महासर्पों को प्रतीत होने लगा मानों मन्दराचल से समुद्र मन्थन हो रहा है तथा अमृत उत्पन्न होने वाला है। इसी शंका में वे महासर्प हठात् चतुर्दिक् उठकर देखने लगे।।१८१-१८२।।

सहसोत्पतिता भीता भीमं दृष्ट्वा नृपोत्तमम्।
नता निश्चलमूर्द्धानो बभूवुस्ते महोरगाः॥१८३॥
सायाह्ने कदलीखण्डाः कम्पिता इव वायुना।
स वै बद्ध्वा धनुर्ज्याभिरुत्सिक्तं पञ्चभिः शरैः॥१८४॥
लङ्केशं मोहयित्वा तु सबलं रावणं बलात्।
निर्जित्य वशमानीय माहिष्मत्यां बबन्ध तम्॥१८५॥

जब उन्होंने जब उस भयानक राजा को देखा, तब वे सभी भय से स्थिर शिर वाले हो गये, तथापि सायंकालीन वायु के कारण क़दलीपत्र जिस प्रकार हिलता है, उसी तरह वे कंपित होने लगे। इस राजा ने धनुष से छोड़े गये बाणों से लंकापति रावण को ससैन्य मोहित करके बांधकर माहिष्मती पुरी में रखा था।।१८३-१८५।।

श्रुत्वा तु बद्धं पौलस्त्यं रावणं त्वर्जुनेन च।
ततो गत्वा पुलस्त्यस्तमर्ज्जुनं ददृशे स्वयम्॥१८६॥
मुमोच रक्षः पौलस्त्यं पुलस्त्येनाभियाचितः।
यस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलस्वनः॥१८७॥
युगान्ते तोयदस्येव स्फुटतो ह्यशनेरिव। अहो बत मृधे वीर्य्यं भार्गवस्य यदच्छिनत्॥१८८॥

राज्ञो बाहुसहस्रस्य हैमं तालवनं यथा।
तृषितेन कदाचित् स भिक्षितश्चित्रभानुना॥१८९॥

जब महर्षि पुलत्स्य ने यह सुना कि पौलत्स्य रावण को अर्जुन ने बांध लिया है, तब ऋषि पुलत्स्य स्वयं अर्जुन के पास आये। पुलत्स्य के कहने पर उस अर्जुन ने रावण को मुक्त कर दिया। जिन अर्जुन की सहस्र भुजाओं से की गई धनुष की टंकार प्रलयकाल के मेघगर्जन के समान और आकाशीय विद्युत् की कड़कड़ ध्वनि के समान होती थी, लेकिन यही महान् विस्मय की बात यह है कि उन राजा अर्जुन की सहस्रों भुजाओं को महर्षि परशुराम ने युद्ध के समय उसी प्रकार काट दिया, जैसे ताल के वन को काट दिया जाता है। कभी अग्नि ने तृषित होकर अर्जुन से भिक्षा मांगा था।।१८६-१८९।।

स भिक्षामददाद्वीरः सप्त द्वीपान् विभावसोः।
पुराणि ग्रामघोषांश्च विषयांश्चैव सर्व्वशः॥१९०॥
जज्वाल तस्य सर्व्वाणि चित्रभानुर्दिदृक्षया।
स तस्य पुरुषेन्द्रस्य प्रभावेण महात्मनः॥१९१॥
ददाह कार्त्तवीर्य्यस्तु शैलांश्चैव वनानि च।
सशून्यमाश्रमं रम्यं वरुणस्यात्मजस्य वै॥१९२॥
ददाह बलवद्भीतश्चित्रभानुः सहैहयः। यं लेभे वरुणः पुत्रं पुरा भास्वन्तमुत्तमम्॥१९३॥

उस समय वीर अर्जुन ने अग्नि को सप्तद्वीप भिक्षा में प्रदान कर दिया था। उस समय अग्नि ने पुर-ग्राम, देश के सभी ओर से दग्ध करना प्रारम्भ कर दिया। उस समय इन पुरुषेन्द्र अर्जुन के प्रभाव से अग्नि ने पर्वत-वन सब जला दिया। तभी हैहय अर्जुन के ही साथ भयग्रस्त अग्नि ने वरुण पुत्र के शून्य आश्रम को भी जला दिया था। पूर्वकाल में जिस अत्यन्त उत्तम भास्वर पुत्र को वरुण ने प्राप्त किया था।।१९०-१९३।।

वशिष्ठं नाम स मुनिः ख्यात आपव इत्युत।
तत्रापवस्तु तं क्रोधाच्छप्तवानर्ज्जुनं विभुः॥१९४॥
यस्मान्न वर्ज्जितमिदं वनं ते मम हैहय। तस्मात्ते दुष्करं कर्म्म कृतमन्यो हनिष्यति॥१९५॥

वे ही वसिष्ठ मुनि आपव नाम से प्रसिद्ध थे। तब महा तेजस्वी आपव ने क्रोध में भरकर अर्जुन को शाप दिया था—"हे हैहय! तुमने मेरे आश्रम की रक्षा नहीं किया। तुम्हारे उस उद्देश्य का तथा तुम्हारे दुष्कर्म का नाशक कोई और ही होगा।।१९४-१९५।।

रामो नाम महाबाहुर्जामदग्न्यः प्रतापवान्।
छित्त्वा बाहुसहस्रन्ते प्रमथ्य तरसा बली॥१९६॥
तपस्वी ब्राह्मणस्त्वां तु हनिष्यति स भार्गवः।
अनष्टद्रव्यता यस्य बभूवामित्रकर्षिणः॥१९७॥

प्रतापेन नरेन्द्रस्य प्रजा धर्म्मेण रक्षतः।
प्राप्तस्ततोऽस्य मृत्युर्वै यस्य शापान्महामुनेः॥१९८॥

"महाबाहु प्रतापी शक्तिमान् जमदग्निनन्दन परशुराम तुम्हारी सहस्त्रों भुजाओं को छिन्न करके तुमको वेग से मथित करेगा।" तदनन्तर जिस राजा का द्रव्य नष्ट नहीं होता था, जो अमित्रों (शत्रुगण) का संहारक था तथा धर्मतः प्रजापालन कार्य करता था, वह महामुनि के शाप से निहत हो गया!।।१९६-१९८।।

वरस्तथैव भो विप्राः स्वयमेव वृतः पुरा।
तस्य पुत्रशतं त्वासीत् पञ्च शेषा महात्मनः॥१९९॥
कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्म्मात्मानो यशस्विनः।
शूरसेनश्च शूरश्च वृषणो मधुपध्वजः॥२००॥
जयध्वजश्च नाम्नासीदावन्त्यो नृपतिर्महान्।
कार्त्तवीर्य्यस्य तनया वीर्य्यवन्तो महाबलाः॥२०१॥

हे विप्रगण! सत्य तो यह है कि स्वयं अर्जुन ने ऐसा ही वर मांगा था। अर्जुन के सौ पुत्रों में से मात्र पांच बलवान्, अस्त्र-शस्त्रधारी, धार्मिक, यशवान् तथा महात्मा पुत्र जीवित रह गये। उनका नाम है—शूरसेन, शूर, वृषण, मधुपहवज, जयध्वज। जयध्वज अवन्ती का राजा था। कार्तवीर्य अर्जुन के पुत्र वीर्यवान् तथा महाबली थे।।१९९-२०१।।

जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः।
तस्य पुत्रशतं ख्यातास्तालजङ्घा इति स्मृताः॥२०२॥
तेषां कुले मुनिश्रेष्ठा हैहयानां महात्मनाम्।
वीतिहोत्राःसुजाताश्च भोजाश्चावन्तयःस्मृताः॥२०३॥
तौण्डिकेराश्च विख्यातास्तालजङ्घास्तथैव च।
भरताश्च सुजाताश्च बहुत्वान्नानुकीर्तिताः॥२०४॥

जयध्वज का महाबली पुत्र था तालजंघ, जिसके सौ पुत्र जन्मे थे। वे सभी तालजंघ ही कहे गये। हे मुनिप्रवरगण! उन महात्मा हैहयगण के कुल में वीतिहोत्र, सुजात, भोज, अवन्ति, तौण्डिकेर, तालजंघ एवं भरत आदि विख्यात सन्तान जन्मे थे। उनका विवरण यहां विस्तार से नहीं कहा जा सकेगा।।२०२-२०४।।

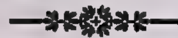
वृषप्रभृतयो विप्रा यादवाः पुण्यकर्म्मिणः।
वृषो वंशधरस्तत्र तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः॥२०५॥
मधोः पुत्रशतं त्वासीद्वृषणस्तस्य वंशकृत्।
वृषणाद्वृष्णयः सर्व्वे मधोस्तु माधवाः स्मृताः॥२०६॥
यादवा यदुनाम्ना ते निरुच्यन्ते च हैहयाः।
न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टं प्रतिलभेच्च सः॥२०७॥

कार्त्तवीर्य्यस्य यो जन्म कथयेदिह नित्यशः।
एते ययातिपुत्राणां पञ्च वंशा द्विजोत्तमाः॥२०८॥
कीर्त्तिता लोकवीराणां ये लोकान् धारयन्ति वै।
भूतानीव मुनिश्रेष्ठाः पञ्च स्थावरजङ्गमान्॥२०९॥

हे विप्रगण! वृष प्रभृति राजा यदुवंशो तथा पुण्यकर्मा थे। राजा वृष वंशधर (वंश आगे चलाने वाला) था। उसका पुत्र था मधु, जिसके सौ पुत्र थे। उसका वंशधर था वृषण। वृषण के वंशज वृष्णि कहे गये। मधु के वंशज माधव कहलाये। यदुवंशोत्पन्न हैहय भी यादव कहे गये हैं। जो व्यक्ति कार्तिवीर्य अर्जुन के जन्म के प्रसंग को नित्य पढ़ेगा, उसका कदापि धन नाश नहीं होगा। नष्ट धन भी पुनः मिल जायेगा। हे द्विजप्रवर! ये पांचों वंश ययाति पुत्रों से ही प्रवर्त्तित हुये हैं। वे ही पंचमहाभूत के समान स्थावर-जंगम को धारण करते हैं।।२०५-२०९।।

श्रुत्वा पञ्च विसर्गांस्तु राजा धर्म्मार्थकोविदः।
वशीभवति पञ्चानामात्मजानां तथेश्वरः॥२१०॥
लभेत् पञ्च वरांश्चैव दुर्लभानिह लौकिकान्।
आयुः कीर्त्तिं तथा पुत्रानैश्वर्य्यं भूतिमेव च॥२११॥
धारणाच्छ्रवणाच्चैव पञ्चवर्गस्य भो द्विजाः।
क्रोष्टोर्व्वंशं मुनिश्रेष्ठाः शृणुध्वं गदतो मम॥२१२॥
यदोर्व्वंशधरस्याथ यज्विनः पुण्यकर्म्मिणः।
क्रोष्टोर्व्वंशं हि श्रुत्वैव सर्व्वपापैः प्रमुच्यते।
यस्यान्ववायजो विष्णुर्हरिर्वृष्णिकुलोद्वहः॥२१३॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे ययातिवंशानुकीर्त्तनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः।।१३।।



इन पांचों वंश का प्रसंग सुनने वाला धर्म-अर्थ का ज्ञाता राजा इन पांचों का वशी हो जाता है। वह ईश्वर हो जाता है। इन पाचों वंशों के प्रसंग को श्रवण करने वाला तथा धारण करने वाला व्यक्ति संसार में जो दुर्लभ है, ऐसी आयु, कीर्त्ति, पुत्र, ऐश्वर्य तथा विभूति का लाभ कर लेता है। हे मुनीश्वरगण! अब मैं क्रौष्टु वंश का वर्णन करूंगा। इस वंश में विष्णु हरि का जन्म हुआ था, जो वृष्णि वंश के उद्धारकर्त्ता थे। यज्ञकर्त्ता, धार्मिक एवं वंशधारक यदु तथा क्रौष्टु के वंशप्रसंग को जो सुनता है, वह मानव सर्वपाप रहित हो जाता है।।२१०-२१३।।

।।त्रयोदश अध्याय समाप्त।।



अथ चतुर्दशोऽध्यायः

वसुदेव का जन्म वर्णन तथा उनसे कृष्णोत्पत्ति आदि का वर्णन

लोमहर्षण उवाच

गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टोर्भार्य्ये बभूवतुः।
गान्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम्॥१॥

माद्री युधाजितं पुत्रं ततोऽन्यं देवमीढुषम्। तेषां वंशस्त्रिधा भूतो वृष्णीनां कुलवर्द्धनः॥२॥

माद्र्याः पुत्रौ तु जज्ञाते श्रुतौ वृष्ण्यन्धकावुभौ।
जज्ञाते तनयौ वृष्णे श्वफल्कश्चित्रकस्तथा॥३॥

श्वफल्कस्तु मुनिश्रेष्ठा धर्म्मात्मा यत्र वर्तते। नास्ति व्याधिभयं तत्र नावर्षस्तपमेव च॥४॥

लोमहर्षण करते हैं— क्रोष्टु की दो पत्नी थी। उनका नाम था गान्धारी तथा माद्री। गान्धारी ने महाबली अनमित्र को जन्म दिया। माद्री के पुत्रद्वय थे युधाजित् तथा देवमीढुष। इस प्रकार वृष्णिवंश वर्द्धक तीन वंश प्रवर्त्तित हो गये। ये वृष्णिवंश बढ़ाने वाले थे। माद्री ने दो अन्य पुत्रों को जन्म दिया था। उनका नाम था वृष्णि तथा अन्धक। वृष्णि के दो पुत्र थे श्वफल्क तथा चित्रक। हे मुनिप्रवरगण! धर्मात्मा श्वफल्क जहां निवास करते थे, वहां व्याधि का तथा अवर्षण का भय नहीं होता था।।१-४।।

कदाचित् काशिराजस्य विषये मुनिसत्तमाः।
त्रीणि वर्षाणि पूर्णानि नावर्षत् पाकशासनः॥५॥

स तत्र चानयामास श्वफल्कं परमार्च्चितम्। श्वफल्कपरिवर्त्तेन ववर्ष हरिवाहनः॥६॥

श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्य्यामविन्दत।
गान्दिनीं नाम गां सा च ददौ विप्राय नित्यशः॥७॥

दाता यज्वा च वीरश्च श्रुतवानतिथिप्रियः।
अक्रूरः सुषुवे तस्माच्छ्वफल्काद्भूरिदक्षिणः॥८॥

हे मुनिगण! यह सुना गया था कि कभी काशिराज के राज्य में तीन वर्ष से वर्षा नहीं हो रही थी। अतः काशिराज अपने राज्य में ससम्मान श्वफल्क को लाये। उनके राज्य में प्रविष्ट होते ही वृष्टि होने लगी। इससे काशिराज प्रसन्न हो गये। उन्होंने अपनी पुत्री गान्दिनी का विवाह श्वफल्क के साथ सम्पन्न कर दिया। गान्दिनी नित्य ब्राह्मणों को गोदान देती थी। श्वफल्क का पुत्र था अक्रूर, जो दाता, यज्ञकर्त्ता, वीर, विद्वान्, अतिथि सेवक तथा प्रभूत दक्षिणा देने वाला दाता था।।५-८।।

उपमद् गुस्तथा मद्गुर्मेदुरश्चारिमेजयः। अविक्षितस्तथाक्षेपः शत्रुघ्नचारिमर्दनः॥९॥

धर्म्मधृग् यतिधर्म्मा च धर्म्मोक्षान्धकरुस्तथा।
आवाहप्रतिवाहा च सुन्दरी च वराङ्गना॥१०॥

श्वफल्क के अन्य पुत्र थे उपमद्गु, मदगु, मेंदुर, अरिमेजय, अविक्षित, अक्षेप, शत्रुघ्न, अरिमर्दन, धर्मधृक्, यतिधर्मा, धर्मोक्ष, अन्धकरु, आवाह, प्रतिवाह तथा एक कन्या सुन्दरी भी उत्पन्न हुई थी।।९-१०।।

अक्रूरेणोग्रसेनायां सुगात्र्यां द्विजसत्तमाः। प्रसेनश्चोपदेवश्च जज्ञाते देववर्च्चसौ॥११॥
चित्रकस्याभवन् पुत्रा पृथुर्व्विपृथुरेव च। अश्वग्रीवोऽश्वबाहुश्च स्वपार्श्वक गवेषणौ॥१२॥
अरिष्टनेमिरश्वश्च सुधर्मा धर्म्मभृत्तथा। सुबाहुर्बहुबाहुश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ॥१३॥

हे विप्रप्रवरगण! अक्रूर की सुन्दर अंगों वाली पत्नी उग्रसेना से उनके देवगण के समान प्रसेन तथा उपदेव नामक पुत्रद्वय उत्पन्न हुये थे। ये परम तेजस्वी थे। चित्रक के पुत्र थे पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, अश्वबाहु, स्वपार्श्वक, गवेषण, अरिष्टनेमि, अश्व, सुधर्मा, धर्मभृत्, सुबाहु, बहुबाहु। साथ ही उसकी दो कन्यायें भी थीं। उनके नाम थे श्रविष्ठा तथा श्रवणा।।११-१३।।

असिक्न्यां जनयामास शूरं वै देवमीढुषम्।
महिष्यां जज्ञिरे शूरा भोज्यायां पुरुषा दश॥१४॥
वसुदेवो महाबाहुः पूर्व्वमानकदुन्दुभिः। जज्ञे यस्य प्रसूतस्य दुन्दुभ्यः प्राणदन् दिवि॥१५॥
आनकानां च संह्लादः सुमहानभवद्दिवि। पपात पुष्पवर्षश्च शूरस्य जननी महान्॥१६॥

देवमीढुषं ने अपनी पत्नी अक्सिनी से शूर नामक पुत्र उत्पन्न किया। शूर की भोज्या नामक स्त्री थी। उससे शूरनामधारी दस पुत्र जन्मे। इनमें ज्येष्ठ थे वसुदेव। वसुदेव का जब जन्म हुआ था, तब उनके जन्म काल में आकाश से दुन्दुभि बजने लगी। तभी उनका अन्य नाम आनकदुन्दुभि भी प्रसिद्ध है। उस समय शूर के गृह में पुष्प वर्षा तथा अन्तरिक्ष में बज रहे ढोल की ध्वनि भी सबने सुनी।।१४-१६।।

मनुष्यलोके कृत्स्नेऽपि रूपे नास्ति समो भुवि।
यस्यासीत्पुरुषाग्र्यस्य कान्तिश्चन्द्रमसो यथा॥१७॥
देवभागस्ततो जज्ञे तथा देवश्रवाः पुनः। अनाधृष्टिः कनवको वत्सवानथ गृञ्जमः॥१८॥
श्यामः शमीको गण्डूषः पञ्च चास्य वराङ्गनाः।
पृथुकीर्त्तिः पृथा चैव श्रुतदेवा श्रुतश्रवा॥१९॥
राजाधिदेवी च तथा पञ्चैता वीरमातरः। श्रुतश्रवायां चैद्यस्तु शिशुपालोऽभवन्नृपः॥२०॥
हिरण्यकशिपुपर्योऽसौ दैत्यराजोऽभवत्पुरा।
पृथुकीर्त्त्यां तु सञ्जज्ञे तनयो वृद्धशर्म्मणः॥२१॥
करूषाधिपतिर्वीरो दन्तवक्रो महाबलः। पृथां दुहितरं चक्रे कुन्तिस्तां पाण्डुरावहत्॥२२॥

इस मानव लोक में वसुदेव के समान रूपवान् कोई नहीं था। उनकी प्रभा चांदनी जैसी कान्तिमान थी। वसुदेव के जन्म के उपरान्त शूर के जो अन्य पुत्र जन्मे, उनके नाम हैं देवभाग, देवश्रवा, अनाधृष्टि, कनवक, वत्सवान्, गृञ्जम, श्याम, शमीक तथा गण्डूष। इनके अतिरिक्त पृथुकीर्ति, पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतश्रवा, राजाधिदेवी नामक चार पुत्रियां भी जन्मीं। ये पाचों कन्या वीरमाता थीं। चेदिराज शिशुपाल पूर्वजन्म में दैत्यराज

हिरण्यकशिपु था। उसका जन्मदाता श्रुतश्रवा था। वृद्धशर्मा का महाबली वीर करूष देश का स्वामी दन्तवक्त्रा पृथुकीर्ति से जन्मा। कुन्तिभोज राजा ने पृथा को अपनी पुत्री माना। उसका विवाह पाण्डु से सम्पन्न हुआ था।।१७-२२।।

यस्यां स धर्म्मविद्राजा धर्म्मो जज्ञे युधिष्ठिरः।
भीमसेनस्तथा वातादिन्द्राच्चैव धनञ्जयः॥२३॥
लोकेऽप्रतिरथो वीरः शत्रुतुल्यपराक्रमः।
अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठाद्वृष्णिनन्दनात्॥२४॥
शैनेयः सत्यकस्तस्माद्युयुधानश्च सात्यकिः।
उद्धघो देवभागस्य महाभागः सुतोऽभवत्॥२५॥

कुन्ती ने (पृथा ने) धर्म से धर्मराज युधिष्ठिर को, वायु से भीमसेन को तथा इन्द्र से इन्द्र के समान पराक्रमी महायोद्धा अर्जुन को उत्पन्न किया। सबसे कनिष्ठ वृष्णिपुत्र अनमित्र का पुत्र था शिनि। इसका पुत्र था सत्यक। सत्यक का पुत्र था महारथी सात्यकी। देवभाग का पुत्र था महाभाग उद्धव।।२३-२५।।

पण्डितानां परं प्राहुर्देवश्रवसमुत्तमम्। अश्मक्यं प्राप्तवान् पुत्रमनाधृष्टिर्यशस्विनम्॥२६॥
निवृत्तशत्रुं शत्रुघ्नं श्रुतदेवा त्वजायत। श्रुतदेवात्मजास्ते तु नैषादिर्यः परिश्रुतः॥२७॥
एकलव्यो मुनिश्रेष्ठा निषादैः परिवर्द्धितः। वत्सवते त्वपुत्राय वसुदेवः प्रतापवान्।
अद्भिर्ददौ सुतं वीरं शौरिः कौशिकमौरसम्॥२८॥

महाविद्वान् देवश्रवा का पुत्र था अश्मक्य। अनाधृष्टि का पुत्र था निवृत्तशत्रु। श्रुतदेवा ने शत्रुघ्न को उत्पन्न किया। हे मुनिश्रेष्ठवृन्द! श्रुतदेवा का एक पुत्र था एकलव्य। उसे निषादगणों से पालन-पोषण प्राप्त हुआ था। अतः वह नैषादि कहलाया। वत्सवान् पुत्रहीन था। अतः प्रतापी वसुदेव ने अपने पुत्र कौषिक को जल से संकल्प करके वत्सवान् को प्रदान किया।।२६-२८।।

गण्डूषाय ह्यपुत्राय विष्वक्सेनो ददौ सुतान्।
चारुदेष्णं सुदेष्णञ्च पञ्चालं कृतलक्षणम्॥२९॥
असंग्रामेण यो वीरो नावर्त्तत कदाचन।
रौक्मिणेयो महाबाहुः कनीयान् द्विजसत्तमाः॥३०॥
वायसानां सहस्राणि यं यान्तुं पृष्ठतोऽन्वयुः। चारुनद्योपभोक्ष्यामश्चारुदेष्णहतानिति॥३१॥

गण्डूष भी पुत्रहीन था। उसे विष्वक्सेन ने चारुदेष्ण, सुदेष्ण, पञ्चाल तथा कृतलक्षण नामक पुत्र प्रदान कर दिया। हे ब्राह्मणप्रवरगण! रुक्मिणी का कनिष्ठ पुत्र था चारुदेष्ण। वह निरन्तर युद्धरत रहता था। उसका पीछा करते सहस्रों कौयें चलते थे, जो यह सोचते थे कि आज हम चारुदेष्ण द्वारा निहत किये गये वीरों के मांस का स्वादिष्ट भोजन प्राप्त करेंगे।।२९-३१।।

तन्त्रिजस्तन्त्रिपालश्च सुतौ कनवकस्य तौ। वीरुश्चाश्वहनुश्चैव वीरौ तावथ गृञ्जिमौ॥३२॥

श्यामपुत्रः शमीकस्तु शमीको राज्यमावहत्।
जुगुप्समानो भोजत्वाद्राजसूयमवाप सः॥३३॥
अजातशत्रुः शत्रूणां जज्ञे तस्य विनाशनः।
वसुदेवसुतान् वीरान् कीर्त्तयिष्याम्यतःपरम्॥३४॥

कनवक के पुत्रद्वय का नाम था तन्त्रिज तथा तन्त्रिपाल। गुञ्जिम के पुत्रद्वय थे वीरु तथा अश्वहनु। श्याम के पुत्र का नाम था शमीक। शमीक अपने को भोज संज्ञा से पुकारे जाने के कारण निन्दित मानता था। उसने राज्य लाभ करके राजसूय यज्ञ सम्पन्न किया था। उसका पुत्र था शत्रुनाशक अजातशत्रु। अब आप लोग वसुदेव के वीर पुत्रों का प्रसंग श्रवण करिये।।३२-३४।।

वृष्णेस्त्रिविधमेवन्तु बहुशाखं महौजसम्। धारयन् विपुलं वंशं नानर्थैरिह युज्यते॥३५॥
याः पत्न्यो वसुदेवस्य चतुर्द्दश वराङ्गना। पौरवी रोहिणी नाम मदिरादिस्तथापरा॥३६॥
वैशाखी च तथा भद्रा सुनाम्नी चैव पञ्चमी। सहदेवा शान्तिदेवा श्रीदेवी देवरक्षिता॥३७॥
वृकदेव्युपदेवी च देवकी चैव सप्तमी। सुतनुर्वडवा चैव द्वे एते परिचारिके॥३८॥

वसुदेव अपने शाखाओं में बंटे विस्तारपूर्ण वृष्णि-अन्धक-भोज नामक त्रिवर्ग में विभक्त महातेजस्वी वंश शाखा को धारण करने पर भी किसी अनर्थ के भागी नहीं थे। उनकी पुरुवंशी रोहिणी, मदिरा, वैशाखी, भद्रा, सुनाम्नी, सहदेवा, शान्तिदेवा, श्री देवी, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी तथा देवकी नामक चतुर्दश भार्या थीं। दो सेविकायें थी सुतनु तथा बड़वा।।३५-३८।।

पौरवी रोहिणी नाम वाह्लिकस्यात्मजाभवत्।
ज्येष्ठा पत्नी मुनिश्रेष्ठा दयितानकदुन्दुभेः॥३९॥
लेभे ज्येष्ठं सुतं रामं शरण्यं शठमेव च। दुर्द्दमं दमनं शुभ्रं पिण्डारकमुशीनरम्॥४०॥
चित्रा नाम कुमारी च रोहिणीतनया नव। चित्रा सुभद्रेति पुनर्विख्याता मुनिसत्तमाः॥४१॥
वसुदेवाच्च देवक्यां जज्ञे शौरिर्महायशाः।
रामाच्च निशठो जज्ञे रेवत्यां दयितः सुतः॥४२॥
सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत। अक्रूरात्काशिकन्यायां सत्यकेतुरजायत॥४३॥

पुरुवंश में जन्मी रोहिणी वाह्लीक की कन्या थी। हे मुनिवरगण! इन वसुदेव की ज्येष्ठ पत्नी से राम तथा शरण्य, शठ, दुर्दम, दमन, शुभ्र, पिण्डारक एवं उशीनर नामक पुत्र जन्मे। रोहिणी की नौ कन्यायें उत्पन्न हो गयी थीं। वे चित्रा, सुभद्रा आदि नामों वाली थीं। वसुदेव की कनिष्ठा पत्नी देवकी के गर्भ से महायशस्वी कृष्ण (शौरि) का जन्म हुआ था। बलराम की पत्नी रेवती से निशठ नामक पुत्र जन्मा। अर्जुन की पत्नी सुभद्रा से रथी अभिमन्यु का जन्म हुआ था। अक्रूर की भार्या काशिकन्या से सत्यकेतु का जन्म हुआ था।।३९-४३।।

वसुदेवस्य भार्य्यासु महाभागासु सप्तसु। ये पुत्रा जज्ञिरे शूराः समस्तांस्तान्निबोधत॥४४॥
भोजश्च विजयश्चैव शान्तिदेवासुतावुभौ। वृकदेवः सुनामायां गदश्चास्तां सुतावुभौ॥४५॥

अगावहं महात्मानं वृकदेवी व्यजायत। कन्या त्रिगर्त्तराजस्य भर्य्यां वै शिशिरायणेः॥४६॥
जिज्ञासां पौरुषे चक्रे न चस्कन्दे च पौरुषम्।
कृष्णायससमप्रख्यो वर्षे द्वादशमे तथा॥४७॥
मिथ्याभिशस्तो गार्ग्यस्तु मन्युनातिसमीरितः। घोषकन्यामुपादाय मैथुनायोपचक्रमे॥४८॥
गोपाली चाप्सरास्तस्य गोपस्त्रीवेशधारिणी।
धारयामास गार्ग्यस्य गर्भं दुर्द्धरमच्युतम्॥४९॥

वसुदेव की महाभाग्यवान् सप्त भार्याओं से जो शूर नामक पुत्र उत्पन्न हुये थे, उनका नाम सुनें। शान्तिदेवा के पुत्रद्वय थे, भोज एवं विजय। सुनामा के पुत्रद्वय थे वृकदेव तथा गद। भार्या वृकदेवी ने महात्मा अगावह को जन्म दिया था। कभी त्रिगर्त्तनरेश की कन्या ने गार्ग्य ऋषि के वीर्य की परीक्षा किया था। यह कन्या शिशिरायणी की पत्नी थी। तथापि ऋषि का वीर्य स्खलित नहीं हो सका। तब यादवों ने ऋषि का उपहास करते उनको नपुंसक कहा था। क्रोधित ऋषि काले पड़ गये। उन मुनि का शरीर लौह के तवे के समान काला पड़ गया था। जब द्वादश वर्ष व्यतीत हो गये, तब उन्होंने गोपकन्या से समागम करने का विचार किया। उस समय गार्ग्य ऋषि से गोपीवेशधारिणी गोपाली अप्सरा ने गार्ग्य से समागम किया। उसने दुर्द्धर तथा न स्खलित होने वाले गर्भ को धारण किया था।।४४-४९।।

मानुष्यां गर्गभार्य्यायां नियोगाच्छूलपाणिनः।
स कालयवनो नाम यज्ञे राजा महाबलः॥५०॥
वृत्तपूर्व्वार्द्धकायस्तु सिंहसंहननो युवा। अपुत्रस्य स राज्ञस्तु ववृधेऽन्तःपुरे शिशुः॥५१॥
यवनस्य मुनिश्रेष्ठाः स कालयवनोऽभवत्।
आयुध्यमानो नृपतिः पर्य्यपृच्छद्द्विजोत्तमम्॥५२॥
वृष्ण्यन्धककुलं तस्य नारदोऽकथयद्विभुः।
अक्षौहिण्या तु सैन्यस्य मथुरामभ्ययात्तदा॥५३॥

गार्ग्य ऋषि की उस मनुष्य रूपधारिणी भार्या के गर्भ से कालयवन नामक महाबली राजा जन्मा। यह संयोग भगवान् शूलपाणि की इच्छा से हुआ था। इस कालयवन का शरीर सिंह जैसा तथा देह का पूवार्द्ध वृत्ताकार था। यवनराज के अन्तःपुर में उसका पालन हुआ था, जो स्वयं पुत्रहीन था। हे मुनिप्रवरगण! इसीलिये उसका नाम कालयवन पड़ गया। जब उसे युद्ध की इच्छा होने लगी तब उसने मुनिप्रवर नारद से पूछा कि मैं किसके साथ युद्ध करूं? तब देवर्षि नारद ने उससे कहा कि "तुम वृष्णि तथा अन्धकों से युद्ध करो।" यह सुनकर वह एक अक्षौहिणी सैन्य लेकर मथुरा आ गया।।५०-५३।।

दूतं सम्प्रेषयामास वृष्ण्यन्धकनिवेशनम्।
तो वृष्ण्यन्धकाः कृष्णं पुरस्कृत्य महामतिम्॥५४॥
समेता मन्त्रयामासुर्यवनस्य भयात्तदा। कृत्वा विनिश्चयं सर्व्वे पलायनमरोचयन्॥५५॥

मथुरा पहुंच कर उसने अपना दूत वृष्णि तथा अन्धकों के यहां भेजा। दूत का कथन सुनकर वृष्णियों एवं अन्धकों ने महामति कृष्ण को अग्रणी मान कर उनसे मन्त्रणा किया। तत्पश्चात् कालयवन के भय से मथुरा त्यागने का निर्णय किया गया।।५४-५५।।

विहाय मथुरां रम्यां मानयन्तः पिनाकिनम्। कुशस्थलीं द्वारवतीं निवेशयितुमीप्सवः।।५६।।

इति कृष्णस्य जन्मेदं यः शुचिर्नियतेन्द्रियः।
पर्व्वसु श्रावयेद्विद्वाननृणः स सुखी भवेत्।।५७।।

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे कृष्णजन्मानुकीर्त्तनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः।।१४।।



शंकर को मान्यता देने वाले उन सब वृष्णि-अन्धकों ने रमणीक मथुरा को त्याग कर कुशस्थली द्वारावती में रहने का निर्णय लिया। जो कृष्ण के इस जन्म वृत्तान्त को पर्व के दिन पवित्रता पूर्वक तथा जितेन्द्रिय होकर सुनता है, वह व्यक्ति सभी ऋणों से मुक्त होकर सुखी हो जाता है।।५६-५७।।

।।चतुर्दश अध्याय समाप्त।।



अथ पञ्चदशोऽध्यायः

ज्यामघ के चरित्र का वर्णन, कंस की उत्पत्ति

लोमहर्षण उवाच

क्रोष्टोरथाभवत् पुत्रो वृजिनीवान्महायशाः।
वार्जिनीवतमिच्छन्ति स्वाहिं स्वाहाकृतां वरम्।।१।।

स्वाहिपुत्रोऽभवद्राजा उषद्गुर्वदतां वरः। महाक्रतुभिरीजे यो विविधैर्भूरिदक्षिणैः।।२।।

ततः प्रसूतिमिच्छन् वै उषद्गुःसोऽग्र्यमात्मजम्।
जज्ञे चित्ररथतस्य पुत्रः कर्म्मभिरन्वितः।।३।।

आसीच्चैत्ररथिर्वीरो यज्वा विपुलदक्षिणः। शशविन्दुः परं वृत्तं राजर्षीणामनुष्ठितः।।४।।

पृथुश्रवाः पृथुयशाः राजासीच्छाशविन्दवः। शंसन्ति च पुराणज्ञाः पार्थश्रवसमन्तरम्।।५।।

अन्तरस्य सुयज्ञस्तु सुयज्ञतनयोऽभवत्। उषतो यज्ञमखिलं स्वधर्म्मे च कृतादरः।।६।।

शिनेयुरभवत् पुत्र उषतः शत्रुतापनः। मरुतस्तस्य तनयो राजर्षिरभवन्नृपः।।७।।

लोमहर्षण कहते हैं—क्रोष्ट का पुत्र वृजिनी महायशस्वी था। उसका पुत्र स्वाही उत्तम यज्ञ करने वाला

तथा ख्याति प्राप्त था। उसका पुत्र था राजा उषद्गु। इसने प्रभूत दक्षिणायुक्त महायज्ञ सम्पन्न किये थे। इस राजा ने चित्ररथ नामक कर्मी पुत्र को उत्पन्न किया। इसका पुत्र शशविन्दु उत्तम यज्ञकर्ता, प्रचुर दक्षिणा देने वाला, कर्मी तथा राजर्षियों में प्रमुख था। उसका पुत्र था महान् यशस्वी पृथुश्रवा। पुराणविद् लोगों के मत से इसके पुत्र का नाम था अन्तर। उसका पुत्र था सुयज्ञ, जिसके पुत्र का नाम था उषत्। उषत् समस्त यज्ञों को करने वाला तथा एकनिष्ठ धर्मात्मा था। उसका पुत्र था परन्तप शिनेयु, जिसका पुत्र था राजर्षि मरुत्।।१-७।।

मरुतोऽलभत ज्येष्ठं सुतं कम्बलबर्हिषम्। चचार विपुलं धर्म्ममममर्षात् प्रत्यभागपि॥८॥
स सत्प्रसूतिमिच्छन् वै सुतं कम्बलबर्हिषः। बभूव रुक्मकवचः शतप्रसवतः सुतः॥९॥
निहत्य रुक्मकवचः शतं कवचिनां रणे। धन्विनां निशितैर्बाणैरवाप श्रियमुत्तमाम्॥१०॥
जज्ञे च रुक्मकवचात् परजित्परवीरहा। जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महावीर्य्याः पराजिताः॥११॥
रुक्मेषुः पृथुरुक्मश्च ज्यामघः पालितो हरिः।
पातितं च हरिं चैव विदेहेभ्यः पिता ददौ॥१२॥

शिनेयु का पुत्र कम्बलबर्हिष यद्यपि मूलतः पापात्मा था, तथापि वह अमर्ष के कारण महान् धार्मिक हो गया। उसका पुत्र था शतप्रसव, जिसके पुत्र रुक्मकवच ने युद्धभूमि में सौ कवचधारी एवं धनुर्धरों का वध अपने तेज नोक वाले बाणों से किया था तथा उत्तम श्री की प्राप्ति किया था। इसका पुत्र था परजित। वह शत्रु संहारक था। उसके पुत्रगण थे रुक्मेषु, पृथुरुक्म, ज्यामघ, पालित तथा हरि। ये पांचों पुत्र महाशक्तिमान् थे। पिता परजित ने पालित एवं हरि को विदेहगण को दे दिया था।।८-१२।।

रुक्मेषुरभवद्राजा पृथुरुक्मस्य संश्रयात्।
ताभ्यां प्रव्राजितो राजा ज्यामघोऽवसदाश्रमे॥१३॥
प्रशान्तश्च तदा राजा ब्राह्मणैश्चावबोधितः। जगाम धनुरादाय देशमन्यं ध्वजी रथी॥१४॥
नर्म्मदाकूलमेकाकीमेकलां मृत्तिकावतीम्।
ऋक्षवन्तं गिरिं जित्वा शुक्तिमत्यामुवासस॥१५॥

रुक्मेषु ने पृथुरुक्म का सहारा लिया तथा राजा बन गया। इन दोनों ने एकत्र होकर राजा ज्यामघ को निकाल दिया। ज्यामघ शान्ति पूर्वक आश्रम में निवास करने लगा। वहां वह ब्राह्मणों द्वारा प्रबोधित किया गया। इससे उसने रथ-पताका एवं धनुष ग्रहण करके अन्य देश के लिये प्रस्थान किया। वह नर्मदा तट पर एकाकी विचरण करता हुआ मेकला, मृत्तिकावती एवं ऋक्षवान् पर्वतों को विजित करके शुक्तिमती पुरी में निवास करने लगा।।१३-१५।।

ज्यामघस्याभवद्भार्य्या शैब्या बलवती सती।
अपुत्रोऽपि स राजा वै नान्यां भार्य्यामविन्दत॥१६॥
तस्यासीद्विजयो युद्धे तत्र कन्यामवाप सः।
भार्य्यामुवाच सन्त्रस्तः स्नुषेति स जनेश्वरः॥१७॥

एतच्छ्रुत्वाब्रवीद्देवी कस्य देव स्नुषेति वै। अब्रवीत्तदुपश्रुत्य ज्यामघो राजसत्तमः॥१८॥

राजा ज्यामघ की भार्या शैव्या अत्यन्त पतिव्रता थी। सन्तानरहित ज्यामघ ने अन्य विवाह नहीं किया। ज्यामघ ने एक युद्ध में विजयश्री का लाभ किया था। वहीं उसे एक कन्या भी मिली। युद्ध में विजय पाकर राजा कन्या को लेकर पत्नी शैव्या के पास पहुंचा। राजा ने पत्नी से कहा—"यह कन्या तुम्हारी पुत्रवधू होगी।" रानी कहने लगीं—"अभी तो पुत्र ही नहीं है, हे राजन्! यह पुत्रवधू कैसे होगी?" तब राजसत्तम ज्यामघ ने कहा—।।१६-१८।।

राजोवाच

यस्ते जनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्य्योपपादिता॥१९॥

राजा ज्यामघ कहते हैं—तुम्हारा पुत्र उत्पन्न होने पर यह उसकी पत्नी होगी।।१९।।

लोमहर्षण उवाच

उग्रेण तपसा तस्याः कन्यायाः सा व्यजायत।
पुत्रं विदर्भं सुभगा शैब्या परिणता सती॥२०॥
राजपुत्र्यां तु विद्वांसौ स्नुषायां क्रथकैशिकौ।
पश्चाद्विदर्भोऽजनयच्छूरौ रणविशारदौ॥२१॥
भीमो विदर्भस्य सुतः कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत्।
कुन्तेर्धृष्टः सुतो जज्ञे रणधृष्टः प्रतापवान्॥२२॥
धृष्टस्य जज्ञिरे शूरास्त्रयः परमधार्मिकाः। आवन्तश्च दशार्हश्च बली विषहरश्च सः॥२३॥
दशार्हस्य सुतो व्योमा व्योम्नो जीमूत उच्यते।
जीमूतपुत्रो विकृतिस्तस्य भीमरथः स्मृतः॥२४॥

लोमहर्षण कहते हैं—उस कन्या ने तदनन्तर अतीव उग्र तपःश्चरण किया। इसके फलस्वरूप सती सौभाग्यशालिनी शैव्या ने विदर्भ नामक पुत्र को जन्म दिया था। विदर्भ ने इस कन्या का वरण करके उससे विद्वान् वीर युद्धविशारद पुत्रद्वय उत्पन्न किये। उनका नाम था क्रथ एवं कैशिक। भीम विदर्भ का ही पुत्र था। उसका पुत्र था कुन्ति। उसका पुत्र धृष्ट प्रतापवान् तथा रणभूमि में कुशलता से युद्ध करता था। राजा धृष्ण के पुत्रत्रय थे, जो परम वीर एवं धार्मिक भी थे। उनका नाम है आवन्त, दशार्ह तथा विषहर। दशार्ह का पुत्र व्योमा। उसका पुत्र था जीमूत, जिसका पुत्र था विकृति। विकृति का पुत्र था भीमरथ।।२०-२४।।

अथ भीमरथस्यासीत् पुत्रो नवरथस्तथा।
तस्य चासीद्दशरथः शकुनिस्तस्य चात्मजः॥२५॥
तस्मात्करम्भः कारम्भिर्देवरातोऽभवन्नृपः। देवक्षत्रोऽभवत्तस्य वृद्धक्षत्रो महायशाः॥२६॥
देवगर्भसमो जज्ञे देवक्षत्रस्य नन्दनः। मधूनां वंशकृद्राजा मधुर्मधुरवागपि॥२७॥

भीमरथ का पुत्र था नवरथ। उसका पुत्र था दशरथ, जिसके पुत्र का नाम था शकुनि। शकुनि से करम्भ

तथा करम्भ से राजा देवरात जन्मा। इसका पुत्र था देवक्षत्र। देवक्षत्र का पुत्र महायशवान् तथा देवताओं के पुत्र से समान तेजस्वी बृद्धक्षत्र जन्मा। इसके देवकुमार जैसा मधुर वाणी बोलने वाला मधुवंश का स्थापक मधु नामक पुत्र उत्पन्न हो गया।।२५-२७।।

मधोर्जज्ञेऽथ वेदर्भ्यां पुरुद्वान्पुरुषोत्तमः।
ऐक्ष्वाकी चाभवद्भार्य्या मधोस्तस्यां व्यजायत॥२८॥
सत्त्वान् सर्व्वगुणोपेतः सत्वतां कीर्त्तिवर्द्धनः।
इमां विसृष्टिं विज्ञाय ज्यामघस्य महात्मनः।
युज्यते परमप्रीत्या प्रजावांश्च भवेत् सदा॥२९॥

मधु की पत्नी वैदर्भी ने पुरुषोत्तम पुरुद्वान को जन्म दिया था। इसकी ऐक्ष्वाकी नाम वाली पत्नी से सर्वगुणसमन्वित सात्वतजन के यश की वृद्धि करने वाला सत्वान् जन्मा। जो महात्मा ज्यामघ की इस वंश सृष्टि को जानता है, वह अतीव प्रसन्न तथा सदैव प्रजायुक्त रहता है।।२८-२९।।

लोमहर्षण उवाच

सत्त्वतः सत्त्वसम्पन्नान् कौशल्या सुषुवे सुतान्।
भागिनं भजमानं च दिव्यं देवावृधं नृपम्॥३०॥
अन्धकं च महाबाहुं वृष्णिं च यदुनन्दनम्।
तेषां विसर्गाश्चत्वारो विस्तरेणेह कीर्त्तिताः॥३१॥
भजमानस्य सृञ्जय्यौ बाह्यकाथोपबाह्यका।
आस्तां भार्य्ये तयोस्तस्माज्जज्ञिरे बहवः सुताः॥३२॥
क्रिमिश्च क्रमणश्चैव धृष्टः शूरः पुरञ्जयः। एते बाह्यकसृञ्जय्यां भजमानाद्विजज्ञिरे॥३३॥
अयुताजित् सहस्राजिच्छताजित्त्वथ दासकः। उपाबाह्यकसृञ्जय्यां भजमानाद्विजज्ञिरे॥३४॥

लोमहर्षण कहते हैं—सत्वान् की पत्नी कौशल्या ने भागी, भजमान, दिव्य, राजा देवावृष, महाबली अन्धक तथा यदुनन्दन वृष्णि को जन्म दिया। इनके चार वंशों का विस्तार से वर्णन हो चुका है। भजमान की दो भार्या थीं। यथा—सृञ्जय की पुत्री बाह्यका तथा उपबाह्यका। इनके अनेक पुत्र थे। भजमान के औरस से बाह्यका ने क्रिमी, क्रमण, धृष्ट, शूर तथा पुरंजय को जन्म दिया। उपबाह्यका ने भजमान के औरस से अयुताजित्, सहस्राजित्, शताजित् तथा दासक नामक पुत्रों को उत्पन्न किया।।३०-३४।।

यज्वा देवावृधो राजा चचार विपुलं तपः।
पुत्र सर्व्वगुणोपेतो मम स्यादिति निश्चितः॥३५॥
संयुज्यमानस्तपसा पर्णाशाया जलं स्पृशन्। सदोपस्पृशतस्तस्य चकार प्रियमापगा॥३६॥
चिन्तयाभिपरीता सा न जगामैव निश्चयम्।
कल्याणत्वान्नरपतेस्तस्य सा निम्नगोत्तमा॥३७॥

नाध्यगच्छत्तु तां नारीं यस्यामेवंविधः सुतः।
भवेत्तस्मात् स्वयं गत्वा भवाम्यस्य सहानुगा॥३८॥

राजा देववृष ने संकल्प किया कि मुझे सर्वगुणान्वित पुत्र हो। तदनन्तर वह यज्ञ करने वाला राजा उग्र तपःश्चरण करने लगा। वह संयमी रहकर तपःश्चरण काल में पर्णाशा नदी के जल का स्पर्श करता था। इस सदैव स्पर्श करते रहने से पर्णाशा नदी राजा से प्रेमरत हो गई। तथापि वह किसी निश्चय को दृढ़ नहीं कर पा रही थी। तत्पश्चात् नदी ने यह निश्चय किया कि "जैसा संकल्प राजा का है, वैसा पुत्र अपनी पत्नी से वह प्राप्त नहीं कर सकता। अतः मैं स्वयं राजा की पत्नी हो जाऊंगी"।।३५-३८।।

अथ भूत्वा कुमारी सा बिभ्रती परमं वपुः। वरयामास नृपतिं तामियेष च स प्रभुः॥३९॥
तस्यामाधत्त गर्भं स तेजस्विनमुदारधीः। अथ सा दशमे मासि सुषुवे सरितां वरा॥४०॥
पुत्रं सर्व्वगुणोपेतं बभ्रुं देवावृधं द्विजाः। अत्र वंशे पुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम्॥४१॥

इस विचार के साथ वह संकल्प से परम सुन्दरी कुमारी रूपधारिणी हो गयी। उसने राजा का वरण करना चाहा, जिस पर राजा ने अपनी स्वीकृति भी प्रदान कर दिया। उस नदीप्रवर पर्णाशा ने उस उदार राजा द्वारा श्रेष्ठ गर्भ को धारण किया। दशम मास में पर्णाशा ने बभ्रुदेवावृध नामक प्रसिद्ध पुत्र का प्रसव किया। हे विप्रगण! इस वंश के सम्बन्ध में पुराणज्ञ की उक्ति इस प्रकार की है।।३९-४१।।

गुणान् देवावृधस्यापि कीर्त्तयन्तो महात्मनः। यथैवाग्रे तथा दूरात्पश्यामस्तावदन्तिकात्॥४२॥

यथा—महात्मा बभ्रु देवावृध के गुणों का वर्णन करते हुये जिस प्रकार का उसे सामने से पाते हैं, उसी प्रकार के गुणों वाला वह दूर से भी प्रतीत होता है। निकट से देखने पर भी वह उसी प्रकार का गुणी लगता है।।४२।।

बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः।
षष्टिश्च षट् च पुरुषाः सहस्राणि च सप्त च॥४३॥
एतेऽमृतत्वं प्राप्ता वै बभ्रोर्देवावृधादपि। यज्वा दानपतिर्धीमान् ब्रह्मण्यः सुदृढायुधः॥४४॥
तस्यान्ववायः सुमहान्भोजा ये सार्त्तिकावताः।
अन्धकात्काश्यदुहिता चतुरोऽलभतात्मजान्॥४५॥
कुकुरं भजमानं च ससकं बलबर्हिषम्। कुकुरस्य सुतो वृष्टिर्वृष्टेस्तु तनयस्तथा॥४६॥
कपोतरोमा तस्याथ तिलिरिस्तनयोऽभवत्।
जज्ञे पुनर्व्वसुस्तस्मादभिजिच्च पुनर्व्वसोः॥४७॥
तथा वै पुत्रमिथुनं बभूवाभिजितः किल।
आहुकः श्राहुकश्चैव ख्यातौ ख्यातिमतां वरौ॥४८॥
इमां चोदाहरन्त्यत्र गाथां प्रति तमाहुकम्। श्वेतेन परिवारेण किशोरप्रतिमो महान्॥४९॥
अशीतिवर्म्मणा युक्त आहुकः प्रथमं व्रजेत्। नापुत्रवान्नाशतदो नासहस्रशतायुषः॥५०॥

नाशुद्धकर्म्मा नायज्वा यो भोजमभितो व्रजेत्।
पूर्व्वस्यां दिशि नागानां भोजस्य प्रययुः किल॥५१॥

"मनुष्य में प्रधान बभ्रुदेवावृध राजा देवता जैसा था सात हजार छाछठ पुरुषों को इससे अमृत की प्राप्ति कही गयी है। बभ्रु का विस्तृत वंश यज्ञ करने वाला, महादानी, ब्रह्मवादी तथा महापराक्रमी था। इसी वंश में सार्तिकावत आदि भोजगण उत्पन्न हुये थे। अन्धक के औरस से काश्यपुत्री ने भजमान, कुकुर, ससक तथा बलबर्हिष नामक चार पुत्र उत्पन्न किया था। कुकुर का पुत्र था वृष्टि, उसका पुत्र था कपोतरोमा। उसका पुत्र था तिलिरि। उसका पुत्र था पुनर्वसु। उसका पुत्र था अभिजित्। उसके पुत्र थे आहुक एवं श्राहुक। आहुक के सम्बन्ध में एक गाथा प्रसिद्ध है। यथा—श्वेत परिवार से युक्त आहुक किशोर के समान महान् था। वह अस्सी कवचों से रक्षित आगे चलता था। उसके चतुर्दिक् पुत्रवान्, याज्ञिक, शत संख्यक दानी, सैकड़ों-हजारों वर्ष जीवित रहने वाले दीर्घजीवी तथा शुद्ध लोग चलते थे। भोज के साथ पूर्व दिशा में दस हजार हाथी चला करते थे।।४३-५१।।

सोमत्सङ्गानुकर्षाणां ध्वजिनां सवरूथिनाम्। रथानां मेघघोषणां सहस्राणि दशैव तु॥५२॥
रौप्यकाञ्चनकक्षाणां सहस्राण्येकविंशतिः। तावत्येव सहस्राणि उत्तरस्यां तथा दिशि॥५३॥

दस हजार सैन्य, उतने ही मेघ निर्घोष करने वाले रथ, इकतीस हजार स्वर्ण चांदी के कक्ष साथ रहते थे। उत्तर की ओर भी उसके साथ इतनी ही संख्या में यही सब रहा करता था।।५२-५३।।

आभूमिपालाभोजास्तु सन्ति ज्याकिङ्किणीकिनः।
आहुः किञ्चाप्यवन्तिभ्यःस्वसारं ददुरन्धकाः॥५४॥
आहुकस्य तु काश्यायां द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतुः। देवकश्चोग्रसेनश्च देवगर्भसमावुभौ॥५५॥
देवकस्याभवन् पुत्राश्चत्वारस्त्रिदशोपमाः। देववानुपदेवश्च संदेवो देवरक्षितः॥५६॥

भोजवंशीय सभी राजागण प्रत्यञ्चा शब्द से युक्त रहते थे (अर्थात् सभी धनुर्धारी योद्धा थे) यह भी उक्ति कही जाती है कि अन्धकों ने अपनी भगिनी अवन्ति वालों को प्रदान किया था। आहुक की पत्नी काश्या ने देवपुत्रों जैसे पुत्रद्वय देवक तथा उग्रसेन को जन्म दिया था। देवक के भी देवपुत्रों जैसे चार पुत्र थे। इनके नाम थे देवान्, उपदेव, संदेव तथा देवरक्षित।।५४-५६।।

कुमार्य्यः सप्त चास्याथ वासुदेवाय ता ददौ।
देवकी शान्तिदेवा च सुदेवा देवरक्षिता॥५७॥
वृकदेव्यपदेवी च सुनाम्नी चैव सप्तमी। नवोग्रसेनस्य सुतास्तेषां कंसस्तु पूर्व्वजः॥५८॥
न्याग्रोधश्च सुनामा च तथा कङ्कः सुभूषणः।
राष्ट्रपालोऽथ सुतनुरनावृष्टिस्तु पुष्टिमान्॥५९॥

इसकी सात कन्यायें (देवक की) देवकी, शान्तिदेव, सुदेवा, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी, सुनाम्नी वसुदेव की पत्नी बनी। राजा उग्रसेन के नौ पुत्र थे। उनके नाम हैं कंस, न्यग्रोध, सुनामा, कंक, सुभूषण, राष्ट्रपाल, सुतनु, अनावृष्टि तथा पुष्टिमान्। कंस सबमें बड़ा था।।५७-५९।।

तेषां स्वसारः पञ्चासन् कंसा कंसवती तथा।
सुतनू राष्ट्रपाली च कङ्का चैव वराङ्गना॥६०॥
उग्रसेनः सहापत्यो व्याख्यातः कुकुरोद्भवः। कुकुराणामिमं वंशं धारयन्नमितौजसाम्॥६१॥
आत्मनो विपुलं वंशं प्रजावानाप्नुयान्नरः॥६२॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे वृष्णिवंशनिरूपणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः।।१५।।



कंस की कंसा, कंसवती, सुतनु, राष्ट्रपाली एवं कंका नामक उत्तम रूपवती पांच बहनें भी थीं। उग्रसेन को इन सन्तानों सहित कुकुरवंश से उत्पन्न कहा गया। कुकुरगण के अमित तेजस्वी वंश का प्रसंग श्रवण करने वाला महान् प्रजायुक्त होता है।।६०-६२।।

।।पंचदश अध्याय समाप्त।।



अथ षोडशोऽध्यायः

स्यमन्तक मणि का उपाख्यान, कृष्ण का जाम्बवती से विवाह, कृष्ण सत्यवती विवाह वर्णन

लोमहर्षण उवाच

भजमानस्य पुत्रोऽथ रथमुख्यो विदूरथः। राजाधिदेवः शूरस्तु विदूरथसुतोऽभवत्॥१॥
राजाधिदेवस्य सुता जज्ञिरे वीर्य्यवत्तराः। दत्तातिदत्तौ बलिनौ शोणाश्वः श्वेतवाहनः॥२॥
शमी च दण्डशर्म्मा च दन्तशत्रुश्च शत्रुजित्।
श्रवणा च श्रविष्ठा च स्वसारौ सम्बभूवतुः॥३॥

लोमहर्षण कहते हैं—भजमान का महारथी पुत्र था विदूरथ। विदूरथ का वीर पुत्र था राजाधिदेव। इसके पुत्र थे दत्त, अतिदत्त, शोणाश्व, श्वेतवाहन, शमी, दण्डशर्मा, दण्डशत्रु, शत्रुजित्। ये सभी अत्यन्त महाबली पराक्रमी थे। इसकी दो कन्यायें थीं श्रवणा तथा श्रविष्ठा।।१-३।।

शमिपुत्रः प्रतिक्षत्रः प्रतिक्षत्रस्य चात्मजः।
स्वयम्भोजः स्वयम्भोजाद्धदिकः सम्बभूव ह॥४॥
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि सर्व्वे भीमपराक्रमाः। कृतवर्म्माग्रजस्तेषां शतधन्वा तु मध्यमः॥५॥
देवान्तश्च नरान्तश्च भिषग्वैतरणश्च यः। सुदान्तश्चातिदान्तश्च निकाश्यः कामदम्भकः॥६॥

देवान्तस्याभवत् पुत्रो विद्वान् कम्बलबर्हिषः।
असमौजाः सुतस्तस्य नासमौजाश्च तावुभौ॥७॥
अजातपुत्राय सुतान् प्रददावसमौजसे। सुदंष्ट्रश्च सुचारुश्च कृष्ण इत्यन्धकाः स्मृताः॥८॥

शमी का पुत्र था प्रतिक्षत्र। उसका पुत्र था स्वयम्भोज। उसका पुत्र था भदिक। इसके महापराक्रमी पुत्रों में सबसे बड़ा कृतवर्मा था। मध्यम पुत्र था शतधन्वा। उससे कनिष्ठ थे देवान्त, नरान्त, सुदान्त, अतिदान्त, भिषग्वैतरण, निकाश्य तथा कामदम्भक। देवान्त का पुत्र था विद्वान् कम्बलबर्हिष। उसके पुत्रद्वय का नाम था असमौजा एवं नासमौजा। असमौजा पुत्ररहित था। अन्धक ने उसे अपने पुत्र सुदंष्ट्र, सुचारु तथा कृष्ण नामक पुत्र प्रदान किया। वे भी अन्धक कहलाये।।४-८।।

गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टुभार्य्ये बभूवतुः। गान्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम्॥९॥
माद्री युधाजितं पुत्रं ततो वै देवमीढुषम्। अनमित्रममित्राणां जेतारमपराजितम्॥१०॥
अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नतो द्वौ बभूवतुः। प्रसेनश्चाथ सत्राजिच्छत्रुसेनाजितावुभौ॥११॥

क्रोष्टु की दो पत्नियों का नाम था गान्धारी तथा माद्री। गान्धारी का पुत्र था महापराक्रमी अनमित्र। माद्री के दो पुत्र थे, युधाजित् तथा देवमीढुष। यह देवमीढुष शत्रुगण का मित्र था। यह सर्वदा विजयी रहता था। अनमित्र का पुत्र था निघ्न। इसके दो पुत्रों का नाम था प्रसेन तथा सत्राजित्। ये दोनों शत्रु को विजित करने वाले थे।।९-११।।

प्रसेनो द्वारवत्यां तु निवसन् यो महामणिम्।
दिव्यं स्यमन्तकं नाम स सूर्यादुपलब्धवान्॥१२॥
तस्य सत्राजितः सूर्य्यः यथा प्राणसमोऽभवत्।
स कदाचन्निशापाये रथेन रथिनां वरः॥१३॥
तोयकूलमपः स्प्रष्टुमुपस्थातुं ययौ रविम्। तस्योपतिष्ठतः सूर्य्यं विवस्वानग्रतः स्थितः॥१४॥
विस्पष्टमूर्त्तिर्भगवांस्तेजोमण्डलवान् विभुः। अथ राजा विवस्वन्तमुवाच स्थितमग्रतः॥१५॥

प्रसेन द्वारका में रहने लगा और सत्राजित् ने सूर्य को प्रसन्न करके उनसे स्यमन्तक नामक दिव्य महामणि को प्राप्त किया था। सत्राजित् सूर्य को प्राण के समान चाहते थे। एक बार रात्रि व्यतीत होने पर महारथी सत्राजित् रथारूढ़ होकर सूर्योपासना करने के लिये नदी तट पर गये। सूर्योपस्थान काल में ही स्पष्ट मूर्त्ति, तेजोमण्डलस्थ, विभु भगवान् सूर्य सत्राजित् के समक्ष आये। उनको समक्ष देख कर राजा ने उन भगवान् सूर्य से निवेदन किया।।१२-१५।।

यथैव व्योम्नि पश्यामि सदा त्वां ज्योतिषां पते।
तेजोमण्डलिनं देवं तथैव पुरतः स्थितम्॥१६॥
को विशेषोऽस्ति मे त्वत्तः सख्येनोपगतस्य वै।
एतच्छ्रुत्वा तु भगवान्मणिरत्नं स्यमन्तकम्॥१७॥

स्वकण्ठादवमुच्च्याथ एकान्ते न्यस्तवान् विभुः।
ततो विग्रहवन्तं तं ददर्श नृपतिस्तदा॥१८॥

राजा कहता है—"हे ज्योतिष्पति! मैं आपको जिस प्रकार आपको व्योम में तेजोमण्डल युक्त देखता रहता है, तदनुरूप अपने समक्ष ही आपका दर्शन कर रहा हूं। अतः आपसे मेरा जो सखाभाव था, उसमें कोई विशेष अन्तर नहीं है। (अर्थात् आपको आपके तेज के कारण स्पष्ट नहीं देख पा रहा हूं)।" राजा का कथन सुनकर भगवान् आदित्य ने उस स्यमन्तकमणि को ग्रीवा से उतारा तथा उसे एकान्त में रख दिया। अब राजा ने उन सूर्यदेव को विग्रहवान् देखा।।१६-१८।।

प्रीतिमानथ तं दृष्ट्वा मुहूर्त्तं कृतवान् कथाम्।
तमभिप्रस्थितं भूयो विवस्वन्तं स सत्रजित्॥१९॥
लोकान् भासयसे सर्व्वान् येन त्वं सततं प्रभो।
तदेतन्मणिरत्नं मे भगवन् दातुमर्हसि॥२०॥

अब राजा ने दो घड़ी पर्यन्त उनसे वार्त्ता किया। जब सूर्य प्रस्थान करने लगे, तब सत्राजित् ने उनसे याचना करते कहा—"हे प्रभो! आप जिस श्रेष्ठ मणि द्वारा त्रैलोक्य को सदा प्रकाशित करते रहते हैं, कृपया वह मुझे प्रदान करिये"।१९-२०।।

ततः स्यमन्तकमणिं दत्तवान् भास्करस्तदा। स तमाबध्य नगरीं प्रविवेश महीपतिः॥२१॥
तं जनाः पर्य्यधावन्तः सूर्य्योऽयं गच्छतीति ह।
स्वां पुरीं स विसिष्माय राजा त्वन्तःपुरं तथा॥२२॥
तं प्रसेनजितं दिव्यं मणिरत्नं स्यमन्तकम्। ददौ भ्रात्रे नरपतिः प्रेम्णा सत्राजिदुत्तमम्॥२३॥

उनकी याचना सुनकर सूर्य ने वह मणि सत्राजित् को प्रदान कर दिया। राजा सत्राजित् ने उस मणि को बांधकर (गले में बांधकर) नगर में प्रवेश किया। उस समय नागरिकों ने उनको सूर्य समझा तथा यह कहकर भागने लगे कि सूर्य चले आ रहे हैं। एवंविध अपनी पुरी को विस्मयापन्न करते हुये राजा सत्राजित् अपने अन्तःपुर में आये। तब सत्राजित् ने अपने भ्राता प्रसेन को वह दिव्य मणिरत्न स्नेह से प्रदान किया।।२१-२३।।

स मणिः स्यन्दते रुक्मं वृष्ण्यन्धकनिवेशने।
कालवर्षी च पर्जन्यो न च व्याधिभयं ह्यभूत्॥२४॥
लिप्सां चक्रे प्रसेनस्य मणिरत्ने स्यमन्तके।
गोविन्दो न च तं लेभे भक्तोऽपि न जहार सः॥२५॥
कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूषितः। स्यमन्तककृते सिंहाद्वधं प्राप वनेचरात्॥२६॥
अथ सिंहं प्रधावन्तमृक्षराजो महाबलः। निहत्य मणिरत्नं तदादाय प्राविशद्गुहाम्॥२७॥

उस मणि से वृष्णि-अन्धकों के गृह में स्वर्ण निकलता था। राज्य में वर्षा समय-समय पर होती थी। वहां व्याधि का भय ही नहीं था। इस मणि को पाने की कृष्ण को इच्छा थी, लेकिन वह उन्हें प्राप्त न हो सकी।

वे भक्त से उसका हरण नहीं कर सकते हैं। एक बार प्रसेन मणि धारण करके मृगया (आखेट) हेतु गया था। जब प्रसेन वन में विचर रहा था, तब एक सिंह ने उसका वध किया तथा मणि लेकर पलायन करने लगा। उस सिंह को मणि के साथ भागते देखकर महाबली ऋक्षराज ने उसका वध कर दिया तथा मणि ग्रहण गुहा में चला गया।।२४-२७।।

ततो वृष्ण्यन्धकाः कृष्णं प्रसेनवधकारणात्।
प्रार्थनां तां मणेर्बद्ध्वा सर्व्व एव शशङ्किरे॥२८॥
स शङ्क्यमानो धर्म्मात्मा अकारी सत्य कर्म्मणः।
आहरिष्ये मणिमिति प्रतिज्ञाय वनं ययौ॥२९॥

उस समय वृष्णि-अंधक वंश वालों ने कृष्ण को ही प्रसेन के वध का कारण माना। उनका मत था कि कृष्ण मणि लेना चाहते थे, यह शंका उनको हो गई। यद्यपि धर्मप्राण कृष्ण निर्दोष थे, तथापि उन सत्यकर्मा ने अकारण लगे इस आरोप से मुक्त होने के लिये मणि ले आने की प्रतिज्ञा किया तथा वन में चले गये।।२८-२९।।

यत्र प्रसेनो मृगयां व्याचरत्तत्र चाप्यथ। प्रसेनस्य पदं गृह्य पुरुषैराप्तकारिभिः॥३०॥
ऋक्षवन्तं गिरिवरं विन्ध्यं च गिरिमुत्तमम्।
अन्वेषयन् परिश्रान्तः स ददर्श महामनाः॥३१॥
साश्वं हतं प्रसेनं तु नाविन्दत च तन्मणिम्। अथ सिंहः प्रसेनस्य शरीरस्याविदूरतः॥३२॥
ऋक्षेण निहतो दृष्टः पदैर्ऋक्षस्तु सूचितः। पदैस्तैरन्वियायाथ गुहामृक्षस्य माधवः॥३३॥

उन्होंने यह जानकर योग्य लोगों से पता चलवाया कि प्रसेन कहां मृगयार्थ गया था। तदनन्तर सिंह के पदचिह्नों का पीछा करते कृष्ण आगे बढ़ने लगे। जब कृष्ण उत्तम ऋक्षवन्त पर्वत तथा विन्ध्य पर्वत पर खोजते थक गये, तभी उनको अश्व सहित मारे गये प्रसेन का शव परिलक्षित हो गया, तथापि वहां मणि नहीं थी। अन्वेषण करने पर उनको निकट में ही ऋक्ष द्वारा हत सिंह परिलक्षित हो गया। जिसके पास में ही ऋक्ष का भी पदचिह्न था। भगवान् श्रीकृष्ण ऋक्ष के पदचिह्नों का पीछा करते उसकी गुहा तक जा पहुंचे।।३०-३३।।

स हि ऋक्षविले वाणीं शुश्राव प्रमदेरिताम्।
धात्र्या कुमारमादाय सुतं जाम्बवतो द्विजाः॥३४॥
क्रीडयन्त्या च मणिना मा रोदीरित्यथेरिताम्॥३५॥

गुहा में श्रीकृष्ण ने जाम्बवान् ऋक्षराज के बालक को उस स्यमन्तक मणि से क्रीड़ा कराती धात्री को देखा, जो बालक से कह रही थी "मत रुदन करो"।।३४-३५।।

धात्र्युवाच

सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः। सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः॥३६॥
व्यक्तिस्तस्य शब्दस्य तूर्णमेव बिलं ययौ। प्रविश्य तत्र भगवांस्तदृक्षबिलमञ्जसा॥३७॥

स्थापयित्वा बिलद्वारे यदूँल्लाङ्गलिना सह।
शार्ङ्गधन्वा बिलस्थं तु जाम्बवन्तं ददर्श सः॥३८॥

धात्री बालक से कहने लगी—"सिंह ने प्रसेन को मारा, जाम्बवान् ने सिंह का वध किया। हे सुपुत्र! रुदन मत करो। यह मणि तुम्हारी ही है।" श्रीकृष्ण ने धात्री का कथन सुनकर उस गुहा के द्वार पर ही बलभद्र तथा अपने साथ आये यदुवंशियों को प्रतीक्षा करने को कहा। तदनन्तर शार्ङ्गधनुषधारी कृष्ण ने खोह में प्रविष्ट होकर वहां स्थित जाम्बवान को देखा।।३६-३८।।

युयुधे वासुदेवस्तु बिले जाम्बवता सह। बाहुभ्यामेव गोविन्दो दिवसानेकविंशतिम्॥३९॥
प्रविष्टेऽथ बिले कृष्णे बलदेवपुरःसराः। पुरीं द्वारवतीमेत्य हतं कृष्णं न्यवेदयन्॥४०॥

वासुदेवोऽपि निर्जित्य जाम्बवन्तं महाबलम्।
लेभे जाम्बवतीं कन्यामृक्षराजस्य सम्मताम्॥४१॥
मणिं स्यमन्तकं चैव जग्राहात्मविशुद्धये।
अनुनीयर्क्षराजं तु निर्ययौ च ततो बिलात्॥४२॥

उस गुहाबिल में जाम्बवान् के साथ वासुदेव युद्ध करने लगे। इक्कीस दिन तक गोविन्द ने जाम्बवान् के साथ बाहुयुद्ध किया था। उस गुहाबिल में प्रविष्ट कृष्ण के सम्बन्ध में बलदेव आदि ने द्वारावती में आकर यह कह दिया कि कृष्ण का वध हो गया। इधर कृष्ण ने महाबली जाम्बवन्त को जीत कर उस ऋक्षराज की प्रार्थना पर उसकी पुत्री जाम्बवती से विवाह किया तथा वे जाम्बवान् से उसकी आत्मशुद्धि हेतु स्यमन्तक मणि लेकर तथा ऋक्षराज से सान्त्वना वाक्य कहने के पश्चात् गुहाबिल से बाहर आये।।३९-४२।।

उपायाद्द्वारकां कृष्णः सविनीतैः पुरःसरैः। एवं स मणिराहृत्य विशोध्यात्मानमच्युतः॥४३॥
ददौ सत्राजिते तं वै सर्वसात्त्वतसंसदि। एवं मिथ्याभिशस्तेन कृष्णेनामित्रघातिना॥४४॥

आत्मा विशोधितः पापाद्विनिर्जित्य स्यमन्तकम्।
सत्राजितो दश त्वासन् भार्य्यास्तासां शतं सुताः॥४५॥

ख्यातिमन्तस्त्रयस्तेषां भङ्गकारस्तु पूर्व्वजः। वीरो वातपतिश्चैव वसुमेधस्तथैव च॥४६॥

उस समय कृष्ण अपने सविनीत साथियों के साथ द्वारका आये। तत्पश्चात् वह मणि वासुदेव ने यादवों की सभा में सत्राजित् को दे दिया, जिससे उन पर जो झूठा अपवाद लगा था, उसे शत्रुनाशक कृष्ण ने स्यमन्तक मणि को जीत कर तथा उसे सत्राजित् को देकर उस मिथ्यापवाद रूप पातक से अपनी शुद्धि कर लिया। सत्राजित् की दस पत्नियां थीं तथा उन पत्नियों से उत्पन्न सौ पुत्र थे। इन पुत्रों में से तीन ही उत्तम एवं प्रशस्त थे। इन पुत्रों में से भङ्गकार सबसे बड़ा था। वीर वातपति एवं वसुमेध कनिष्ठ थे।।४३-४६।।

कुमार्य्यश्चापि तिस्रो वै दिक्षु ख्याता द्विजोत्तमाः।
सत्यभामोत्तमा तासां व्रतिनी च दृढव्रता॥४७॥
तथा प्रस्वापिनी चैव भार्य्याः कृष्णाय ता ददौ।
सभाक्षो भङ्गकारिस्तु नावेयश्च नरोत्तमौ॥४८॥

हे विप्रप्रवर! सर्वत्र प्रसिद्ध सत्यभामा, दृढ़व्रता एवं प्रस्वापिनी नामक उसकी तीन कन्यायें भी थीं। सत्राजित् ने इन तीनों पुत्रियों का पाणिग्रहण कृष्ण के साथ सम्पन्न करा दिया था। भंगाक्ष के रूप-गुणयुक्त पुत्र थे सभाक्ष एवं नावेय। माद्री का पुत्र युधाजित् भी जन्मा था।।४७-४८।।

जज्ञाते गुणसम्पन्नौ विश्रुतौ रूपसम्पदा। माद्र्याः पुत्रोऽथ जज्ञेऽथ वृष्णिपुत्रो युधाजितः।।४९।।

जज्ञाते तनयौ वृष्णेः श्वफल्कश्चित्रकस्तथा।
श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्य्यामविन्दत।।५०।।

गान्दिनीं नाम तस्याश्च गाः सदा प्रददौ पिता। तस्यां जज्ञे महाबाहुः श्रुतवानतिथिप्रियः।।५१।।

अक्रूरोऽथ महाभागो जज्ञे विपुलदक्षिणः। उपमद्गुस्तथा मद्गुर्म्मुदरश्चारिमर्दनः।।५२।।

अरिक्षेपस्तथोपेक्षः शत्रुहा चारिमेजयः। धर्म्मभृच्चापि धर्म्मा च गृध्रभोजान्धकस्तथा।।५३।।

आवाहप्रतिवाहौ च सुन्दरी च वराङ्गना।
विश्रुताश्वस्य महिषी कन्या चास्य वसुन्धरा।।५४।।

रूपयौवनसम्पन्ना सर्व्वसत्त्वमनोहरा। अक्रूरेणोग्रसेनायां सुतौ वै कुलनन्दनौ।।५५।।

वसुदेवश्चोपदेवश्च जज्ञाते देववर्च्चसौ। चित्रकस्याभवन् पुत्राः पृथुर्व्विपृथुरेव च।।५६।।

माद्री का पुत्र युधाजित् था। वृष्णि के दो पुत्र थे यथा—श्वफल्क एवं चित्रक। श्वफल्क का विवाह काशीराज की कन्या गान्दिनी से सम्पन्न किया गया था। पिता सर्वदा गौयें दान देता रहता था। गान्दिनी का पुत्र अक्रूर वीर, विद्वान्, अतिथि सेवक, महाभाग एवं प्रचुर दक्षिणा देने वाला था। अक्रूर के पुत्रों का नाम था उपमद्‌गु, मद्‌गु, मुदर, अरिमर्दन, अरिक्षेप, उपेक्ष, शत्रुहा, अरिमेजय, धर्मभृत्, धर्मा, गृध्रभोजान्धक, आवाह, प्रतिवाह। उसकी रूपयौवनसम्पन्ना सुन्दरी कन्या वसुन्धरा राजा अश्व की पत्नी थी। अक्रूर की पत्नी उग्रसेना ने वसुदेव तथा उपदेव को उत्पन्न किया। ये देवता के समान तेजवान् तथा कुलवर्द्धक थे। चित्रक के पुत्र थे पृथु, विपृथु तथा।।४९-५६।।

अश्वग्रीवोऽश्वबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ। अरिष्टनेमिश्च सुता धर्म्मो धर्म्मभृदेव च।।५७।।

सुबाहुर्बहुबाहुश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ। इमां मिथ्याभिशस्तिं यः कृष्णस्य समुदाहृताम्।।५८।।

वेद मिथ्याभिशापास्तं न स्पृशन्ति कदाचन।।५९।।

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे स्यमन्तकप्रत्यानयननिरूपणं नाम षोडशोऽध्यायः।।१६।।



अश्वग्रीव, अश्वबाहु, सुपार्श्वक, गवेषण, धर्म, धर्मभृत्, सुबाहु एवं बहुबाहु। चित्रक की दो पुत्रियां श्रविष्ठा एवं श्रवणा भी थीं। जो कोई यहां कहे गये कृष्ण पर लगे झूठे अपवाद का वृन्तात जान लेता है, उसे कदापि मिथ्या अपवाद नहीं लगता।।५७-५९।।

।।षोडश अध्याय समाप्त।।



अथ सप्तदशोऽध्यायः

शतधन्वा द्वारा सत्राजित् वध तथा अक्रूर को स्यमन्तक मणि देना

लोमहर्षण उवाच

यत्तु सत्राजिते कृष्णो मणिरत्नं स्यमन्तकम्। ददावहारयद्बभ्रुर्भोजेन शतधन्वना॥१॥

सदा हि प्रार्थयामास सत्यभामामनिन्दिताम्।
अक्रूरोऽन्तरमन्विष्यन्मणिं चैव स्यमन्तकम्॥२॥

सत्राजितं ततो हत्वा शतधन्वा महाबलः। रात्रौ तं मणिमादाय ततोऽक्रूराय दत्तवान्॥३॥

लोमहर्षण कहते हैं— कृष्ण द्वारा प्रदत्त स्यमन्तकमणि सत्राजित् के पास थी। उसे भोजवंशोत्पन्न शतधन्वा ने हरण कर लिया था। अक्रूर सदैव जब भी अवसर पाते, वे अनिन्दिता सत्यभामा से उसे पाने हेतु प्रार्थना करते रहते थे। एक समय रात्रि में शतधन्वा ने सत्राजित् का वध कर दिया तथा स्यमन्तक मणि अक्रूर को प्रदान कर दिया।।१-३।।

अक्रूरस्तु तदा विप्रा रत्नमादाय चोत्तमम्।
समयं कारयाञ्चक्रे नावेद्योऽहं त्वयेत्युत॥४॥
वयमभ्युत्प्रपत्स्यामः कृष्णेन त्वां प्रधर्षितम्।
ममाद्य द्वारका सर्व्वा वशे तिष्ठत्यसंशयम्॥५॥

हते पितरि दुःखार्त्ता सत्यभामा मनस्विनी। प्रययौ रथमारुह्य नगरं वारणावतम्॥६॥

हे विप्रगण! अक्रूर से उस उत्तम रत्न को पाकर यह प्रण शतधन्वा से कराया कि "वह किसी प्रकार से भी यह रहस्य उजागर न करे कि मणि अक्रूर के पास है। यदि कृष्ण शतधन्वा का अनिष्ट करने का प्रयास करेंगे, तब वह (अक्रूर) उसकी सहायता करेगा। द्वारिका तो मेरे अधीन समझो, इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं करना।" सत्राजित् का वध हो जाने पर दुःखित हृदया मनस्विनी सत्यभामा ने रथ से वारणावत नगर प्रस्थान किया।।४-६।।

सत्यभामा तु तद्वृत्तं भोजस्य शतधन्वनः।
भर्त्तुर्निवेद्य दुःखार्त्ता पार्श्वस्थाश्रूण्यवर्त्तयत्॥७॥
पाण्डवानां च दग्धानां हरिः कृत्वोदकक्रियाम्।
कुल्यार्थे चापि पाण्डूनां न्ययोजयत सात्यकिम्॥८॥

ततस्त्वरितमागम्य द्वारकां मधुसूदनः। पूर्व्वजं हलिनं श्रीमानिदं वचनमब्रवीत्॥९॥

वहां सत्यभामा ने भोजवंशी शतधन्वा के कृत्य का समस्त वृत्तान्त पति श्रीकृष्ण से कहा तथा दुःखार्त्त

होकर उनके पार्श्व में स्थित होकर रुदन करने लगी। उस समय दग्ध पाण्डवों[१] को जलांजलि दिया तथा उनके अस्थि संस्कार आदि कार्य हेतु सात्यकि से कहकर द्वारिका जाकर बलभद्र से कहने लगे।।७-९।।

श्रीकृष्ण उवाच

हतः प्रसेनः सिंहेन सत्राजिच्छतधन्वना। स्यमन्तकस्तु मद्गामी तस्य प्रभुरहं विभो॥१०॥
तदारोह रथं शीघ्रं भोजं हत्वा महारथम्।
स्यमन्तको महाबाहो अस्माकं स भविष्यति॥११॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे विभु! सिंह ने पहले प्रसेन का वध कर दिया, इधर शतधन्वा ने सत्राजित् को मार दिया। अब उस मणि का स्वामी मैं हूं। अतः हम शीघ्र रथ पर बैठ कर शतधन्वा का वध करें तथा मणि ग्रहण करें।।१०-११।।

लोमहर्षण उवाच

ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं भोजकृष्णयोः। शतधन्वा ततोऽक्रूरं सर्व्वतोदिशमैक्षत॥१२॥
संरब्धौ तावुभौ तत्र दृष्ट्वा भोजजनार्दनौ। शक्तोऽपि शापाद्धार्दिक्यमक्रूरो नान्वपद्यत॥१३॥
अपयाने ततो बुद्धिं भोजश्चक्रे भयार्दितः। योजनानां शतं साग्रं हृदया प्रत्यपद्यत॥१४॥
विख्याता हृदया नाम शतयोजनगामिनी। भोजस्य वडवा विप्रा यया कृष्णमयोधयत्॥१५॥
क्षीणां जवेन हृदयामध्वनः शतयोजने। दृष्ट्वा रथस्य स्वां वृद्धिं शतधन्वानमर्द्दयत्॥१६॥
ततस्तस्या हतायास्तु श्रमात् खेदाच्च भो द्विजाः।
खमुत्पेतुरथ प्राणाः कृष्णो राममथाब्रवीत्॥१७॥

लोमहर्षण कहते हैं—हे ऋषिगण! इसके पश्चात् कृष्ण एवं शतधन्वा के बीच घोर युद्ध होने लगा। उधर शतधन्वा यह अपेक्षा कर रहा था कि अक्रूर उसकी सहायता करेंगे। तथापि युद्ध में प्रवृत्त होने पर भी अक्रूर नहीं आये, तब शतधन्वा चतुर्दिक् उनको खोजने लगा। अन्ततः वह भयग्रस्त होकर भागने लगा। उस शतधन्वा की हृदया नामक घोड़ी चार सौ कोस भागी। उसी पर बैठा शतधन्वा युद्धरत था। चार सौ कोस दौड़ने से घोड़ी का वेग थक जाने से मन्द हो गया। अब कृष्ण अपना रथ ले जाकर शतधन्वा का मर्दन करने लगे। तभी श्रम से वह घोड़ी मृत हो गई। उस समय कृष्ण बलराम से कहने लगे।।१२-१७।।

श्रीकृष्ण उवाच

तिष्ठेह त्वं महाबाहो दृष्टदोषा हया मया। पद्भ्यां गत्वा हरिष्यामि मणिरत्नं स्यमन्तकम्॥१८॥

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे महाबाहु! आप यहीं रुकिये। वह घोड़ी मर गई है। मैं भाग रहे शतधन्वा को पीछा पैदल ही करके मणि ग्रहण कर लूंगा।।१८।।

१. यहां जो दग्ध पाण्डव कहा गया है, वह लाक्षागृह दहन प्रसंग है। दुर्योधन द्वारा वारणावतस्थ लाक्षागृह में पाण्डवों को रात्रि में जलाने का उपक्रम किया गया था, परन्तु विदुर ने उनको बचा लिया था, तथापि सबने यही समझा कि पाण्डव लाक्षागृह में दग्ध हो गये।

पद्भ्यामेव ततो गत्वा शतधन्वानमच्युतः।
मिथिलामभितो विप्रा जघान परमास्त्रवित्॥१९॥
स्यमन्तकं च नापश्यद्धत्वा भोजं महाबलम्।
निवृत्तं चाब्रवीत् कृष्णं मणिं देहीति लाङ्गली॥२०॥
नास्तीति कृष्णश्चोवाच ततो रामो रुषान्वितः।
धिक्शब्दपूर्व्वमसकृत् प्रत्युवाच जनार्द्दनम्॥२१॥

तब श्रीकृष्ण ने शतधन्वा का पीछा पैदल ही किया तथा मिथिला के निकट उसका वध कर दिया। तथापि उनको शतधन्वा के पास मणि न मिल सकी। जब कृष्ण वापस आये, तब बलराम ने मणि को मांगा। कृष्ण के यह कहने पर कि मणि नहीं मिली, बलराम क्रोधित होकर कृष्ण को धिक्कारते कहने लगे।।१९-२१।।

बलराम उवाच

भ्रातृत्वान्मर्षयाम्येष स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम्।
कृत्यं न मे द्वारकया न त्वया न च वृष्णिभिः॥२२॥

बलराम कहते हैं—मैं भ्रातृ सम्बन्ध के कारण तुम्हारा अपराध क्षमा करता हूं। तुम्हारा भला हो। अब मैं अन्यत्र जा रहा हूं। मुझे द्वारका से, तुमसे, वृष्णिगण से कोई भी मतलब नहीं है।।२२।।

प्रविवेश ततो रामो मिथिलामरिमर्द्दनः। सर्व्वकामैरुपहृतैर्मिथिलेनाभिपूजितः॥२३॥
एतस्मिन्नेव काले तु बभ्रुर्मतिमतां वरः। नानारूपान् क्रतून् सर्व्वानाजहार निरर्गलान्॥२४॥
दीक्षामयं स कवचं रक्षार्थं प्रविवेश ह। स्यमन्तककृते प्राज्ञो गान्दीपुत्रो महायशाः॥२५॥
अथ रत्नानि चान्यानि धनानि विविधानि च।
षष्टिं वर्षाणि धर्म्मात्मा यज्ञेष्वेव न्ययोजयत्॥२६॥

तत्पश्चात् शत्रुहन्ता बलराम ने मिथिलापुरी में प्रवेश किया, जहां मिथिलापति ने अनेक सर्वकामरूप उपहारों से उनका स्वागत-पूजनादि किया। इस बीच मतिमान् लोगों में श्रेष्ठ अक्रूर ने अनेक यज्ञ सम्पन्न करने के पश्चात् रक्षार्थ दीक्षामय कवच भी पहना। स्यमन्तक से प्राप्त स्वर्ण से प्राज्ञ गान्दिनीनन्दन महायशस्वी अक्रूर ने साठ वर्ष पर्यन्त अनेक रत्नों से यज्ञ किया।।२३-२६।।

अक्रूरयज्ञा इति ते ख्यातास्तस्य महात्मनः। बह्वन्नदक्षिणाः सर्वे सर्व्वकामप्रदायिनः॥२७॥
अथ दुर्य्योधनो राजा गत्वा स मिथिलां प्रभुः।
गदाशिक्षां ततो दिव्यां बलदेवादवाप्तवान्॥२८॥
सम्प्रसाद्य ततो रामो वृष्ण्यन्धकमहारथैः। आनीतो द्वारकामेव कृष्णेन च महात्मना॥२९॥

उन महात्मा अक्रूर ने अन्न तथा दक्षिणायुक्त जितने यज्ञ सम्पन्न किये थे, वे सभी "अक्रूर यज्ञ" कहलाये। इधर राजा दुर्योधन मिथिला गया तथा वहां उसने बलदेव से दिव्य गदायुद्ध की शिक्षा प्राप्त किया।

कुछ कालोपरान्त कृष्ण महारथी अन्धकों तथा वृष्णिवंशियों के साथ मिथिला गये और वहां से बलराम को मनाकर द्वारिका ले आये।।२७-२९।।

अक्रूरश्चान्धकैः सार्द्धमायातः पुरुषर्षभः। हत्वा सत्राजितं सुप्तं सहबन्धुं महाबलः।।३०।।
ज्ञातिभेदभयात् कृष्णस्तमुपेक्षितवांस्तदा। अपयाते तदाक्रूरे नावर्षत्पाकशासनः।।३१।।

महाबली अक्रूर भी आये थे, जिन्होंने बन्धु के साथ निद्रित सत्राजित् का वध कराया था। वे अन्धकों के साथ आये थे। ज्ञातिजन के बीच भेद उत्पन्न न हो, इस कारण कृष्ण ने उनको त्याग दिया था। जब अक्रूर द्वारका से चले गये, तब पाकशासन देवराज इन्द्र ने वर्षा करना बन्द कर दिया।।३०-३१।।

अनावृष्ट्या तदा राष्ट्रमभवद्बहुधा कृशम्। ततः प्रसादयामासुरक्रूरं कुकुरान्धकाः।।३२।।
पुनर्द्वारवतीं प्राप्ते तस्मिन् दानपतौ ततः। प्रववर्ष सहस्राक्षः कक्षे जलनिधेस्तदा।।३३।।

अनावृष्टि के कारण राष्ट्र अत्यन्त दुःखी एवं कृश हो चला। ऐसी स्थिति में कुकुट एवं अन्धकवंशी लोग अक्रूर को प्रसन्न करके राज्य में ले आये। पुनः जब दानपति अक्रूर द्वारवती लौटे, तब उनके आगमन के कारण इन्द्र द्वारा द्वारका में वृष्टि कर दी गयी।।३२-३३।।

कन्यां च वासुदेवाय स्वसारं शीलसम्मताम्। अक्रूर प्रददौ धीमान् प्रीत्यर्थं मुनिसत्तमाः।।३४।।
अथ विज्ञाय योगेन कृष्णो बभ्रुगतं मणिम्। सभामध्यगतः प्राह तमक्रूरं जनार्द्दनः।।३५।।

हे मुनिवरगण! धीमान् अक्रूर ने कृष्ण को प्रसन्न करने के लिये उनको अपनी शीलवान् कन्या स्वसा प्रदान कर दिया। तभी कृष्ण ने योग बल से यह जान लिया कि अक्रूर के पास ही स्यमन्तक मणि है। तब वे सभा के बीच आकर अक्रूर से कहने लगे।।३४-३५।।

श्रीकृष्ण उवाच

यत्तद्रत्नं मणिवरं तव हस्तगतं विभो। तत्प्रयच्छ च मानार्ह मयि मानार्य्यकं कृथाः।।३६।।
षष्टिवर्षगते काले यो रोषोऽभून्ममानघ।
स संरूढोऽसकृत् प्राप्तस्ततः कालात्ययो महान्।।३७।।

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे विभु! आपने जिस मणिरत्न को हस्तगत किया था, वह मेरे मान के रक्षार्थ मुझे दे दीजिये। आप मेरे साथ अनार्यवत् व्यवहार न करें। हे अनघ! साठ वर्ष का दीर्घकाल व्यतीत हो जाने के कारण मेरा क्रोध शान्त पड़ गया है।।३६-३७।।

स ततः कृष्णवचनात् सर्व्वसात्त्वतसंसदि। प्रददौ तं मणिं बभ्रूरक्लेशेन मामतिः।।३८।।
ततस्तमार्जवात् प्राप्तं बभ्रोर्हस्तादरिन्दमः। ददौ हृष्टमनाः कृष्णस्तं मणिं बभ्रवे पुनः।।३९।।
स कृष्णहस्तात् सम्प्राप्तं मणिरत्नं स्यमन्तकम्। आबध्य गान्दिनीपुत्रो विरराजांशुमानिव।।४०।।

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सोमवंशकथनं नाम सप्तदशोऽध्यायः।।१७।।

कृष्ण का यह कथन सुनकर अक्रूर ने समस्त सांसदों के (सभासदों के) समक्ष प्रसन्नता के साथ वह

मणि कृष्ण को दे दिया। लेकिन अक्रूर के हाथों से वह मणि पाकर भी अरिन्दम कृष्ण ने हर्षित मन से वह मणि पुनः अक्रूर को ही दे दिया। गान्दिनीनन्दन अक्रूर ने कृष्ण के हाथों स्यमन्तक मणि पाकर उसे अपनी ग्रीवा में धारण कर लिया। उस मणि की दीप्ति से अक्रूर सूर्यवत् प्रकाशित होने लगे।।३८-४०।।

।।सप्तदश अध्याय समाप्त।।



अथ अष्टादशोऽध्यायः

भूगोल तथा सातों द्वीपों का वर्णन

मुनय ऊचुः

अहो सुमहदाख्यानं भवता परिकीर्त्तितम्। भारतानां च सर्व्वेषां पार्थिवानां तथैव च॥१॥
देवानां दानवानां च गन्धर्व्वोरगरक्षसाम्। दैत्यानामथ सिद्धानां गुह्यकानां तथैव च॥२॥
अत्यद्भुतानि कर्म्माणि विक्रमा धर्म्मनिश्चयाः।
विविधाश्च कथा दिव्या जन्म चाग्र्यमनुत्तमम्॥३॥

मुनिगण कहते हैं—आपने भरतवंशीय नृपतियों का महान् आख्यान कहा है। देवता, दानव, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, दैत्य, सिद्ध, गुह्यक के अत्यद्भुद कर्म, विक्रम का भी वर्णन किया तथा धर्मनिश्चय, दिव्य कथाओं का भी कीर्त्तन किया है। आपने उत्तम जन्मों का भी वर्णन किया है।।१-३।।

सृष्टिः प्रजापते सम्यक्त्वया प्रोक्ता महामते। प्रजापतीनां सर्वेषां गुह्यकाप्सरसां तथा॥४॥
स्थावरं जङ्गमं सर्व्वमुत्पन्नं विविधं जगत्। त्वया प्रोक्तं महाभाग श्रुतं चैतन्मनोहरम्॥५॥
कथितं पुण्यफलदं पुराणं श्लक्ष्णया गिरा। मनः कर्णसुखं सम्यक् प्राणत्यमृतसम्मितम्॥६॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामः सकलं मण्डलं भुवः। वक्तुमर्हसि सर्व्वज्ञ परं कौतूहलं हि नः॥७॥
यावन्तः सागरा द्वीपास्तथा वर्षाणि पर्व्वताः। वनानि सरितः पुण्यदेवादीनां महामते॥८॥
यत्प्रमाणमिदं सर्व्वं यदाधारं यदात्मकम्। संस्थानमस्य जगतो यथावद्वक्तुमर्हसि॥९॥

हे महामति! आपने सम्यक्‌रूपेण प्रजापति की सृष्टि का वर्णन, प्रजापतिगण-गुह्यकगण-अप्सराओं, स्थावर-जंगमात्मक नानाविध जगत्प्रपंच का भी आपने सजीव वर्णन किया है। हमने मनोहर, पुण्यफलप्रद पुराण आपकी मधुर वाणी से सुना। अब हम समस्त मण्डल का वर्णन सुनने के लिये लालायित हैं। हमें इसे सुनने हेतु अत्यन्त कुतूहल हो रहा है। हे महामति! जगत् में जितने समुद्र, द्वीप, पर्वत, वन, नदी, पवित्र देवस्थलादि हैं, उनका प्रमाण, आधार तथा स्वरूप मिलाकर जो यह जगत् संस्थान है, उसका सम्यक् वर्णन करें।।४-९।।

लोमहर्षण उवाच

मुनयः श्रूयतामेतत् संक्षेपाद्वदतो मम। नास्य वर्षशतेनापि वक्तुं शक्योऽतिविस्तरः॥१०॥
जम्बूप्लक्षाह्वयौ द्वीपौ शाल्मलश्चापरो द्विजाः।
कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः॥११॥
एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्तसप्तभिरावृताः। लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलैः समम्॥१२॥
जम्बूद्वीपः समस्तानामेतेषां मध्यसंस्थितः। तस्यापि मध्ये विप्रेन्द्र मेरुः कनकपर्व्वतः॥१३॥
चतुरशीतिसाहस्रैर्योजनैस्तस्य चोच्छ्रयः। प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः॥१४॥
मूले षोडशसाहस्रैर्विस्तारस्तस्य सर्व्वतः। भूपद्मस्यास्य शैलोऽसौ कर्णिकाकारसंस्थितः॥१५॥
हिमवान् हेमकूटश्च निषधस्तस्य दक्षिणे।
नीलः श्वेतश्च शृंङ्गी च उत्तरे वर्षपर्व्वताः॥१६॥

लोमहर्षण कहते हैं—हे मुनिप्रवरगण! आपके प्रश्नों का उत्तर सौ वर्ष में भी संभव नहीं हो सकता। अतः मैं संक्षेप में ही कहूंगा। हे द्विजों! धरती पर सप्तद्वीप हैं, यथा—जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक, पुष्कर। इनके मध्य में जम्बूद्वीप अवस्थित है। हे द्विजश्रेष्ठगण! उसके भी मध्य में स्वर्णमय सुमेरु है। यह मेरु पर्वत उच्चता में चौरासी सहस्र योजन है। इसका मूल भाग सोलह हजार योजन विस्तृत है। पृथिवी रूपी कमल की कर्णिका है मेरु। इसके दक्षिण में हिमालय, हेमकूट तथा निषध पर्वत है। इसके उत्तर की ओर नील-श्वेत-शृंगवान पर्वत स्थित हैं।।१०-१६।।

लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्ये दशहीनास्तथापरे। सहस्रद्वितयोच्छ्रायास्तावद्विस्तारिणश्च ते॥१७॥
भारतं प्रथमं वर्षं ततः किंपुरुषं स्मृतम्। हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरोर्द्दक्षिणतो द्विजाः॥१८॥
रम्यकं चोत्तरं वर्षं तस्यैव तु हिरणमयम्। उत्तराः कुरवश्चैव यथा वै भारतं तथा॥१९॥
नवसाहस्रमेकैकमेतेषां द्विजसत्तमाः। इलावृतं च तन्मध्ये सौवर्णो मेरुरुच्छ्रितः॥२०॥

मध्य में एक-एक लाख योजन विस्तृत दो पर्वत तथा नब्बे हजार योजन विस्तार वाले अन्य पर्वत भी स्थित हैं। जिनकी उच्चता एवं चौड़ाई दो हजार योजन कही गयी है। हे द्विजों! भारत प्रथम वर्ष है, जो मेरु के दक्षिण है। तदनन्तर किम्पुरुष वर्ष, हरि वर्ष तथा अन्य वर्ष हैं। उत्तर में रम्यक वर्ष, हिरणमय वर्ष तथा उत्तर कुरुवर्ष हैं, जो भारतवर्ष की तरह ही स्थित हैं। हे द्विजप्रवरगण! जो इलावृत वर्ष तथा उपरोक्त सभी वर्ष हैं, इनका परिमाण प्रत्येक का नौ हजार योजन है। मध्य में स्वर्णिम तथा उच्च मेरु पर्वत अवस्थित है।।१७-२०।।

मेरोश्चतुर्दिशं तत्र नवसाहस्रविस्तृतम्। इलावृतं महाभागाश्चत्वारश्चात्र पर्व्वताः॥२१॥
विष्कम्भा वितता मेरोर्योजनायुतविस्तृताः। पूर्व्वेण मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः॥२२॥

हे महाभाग ऋषियों! मेरु पर्वत के चतुर्दिक् फैला नौ हजार योजन विस्तार वाला इलावृत वर्ष है। इस इलावृत वर्ष में मेरु तक विस्तार वाले तथा दस हजार योजन विस्तार वाले चार अन्य पर्वत भी हैं। इसके पूर्व में मन्दर पर्वत तथा दक्षिण में गन्धमादन है।।२१-२२।।

विपुलः पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्थितः।
कदम्बस्तेषु जम्बूश्च पिप्पलो वट एव च॥२३॥
एकादशशतायामाः पादपा गिरिकेतवः। जम्बूद्वीपस्य सा जम्बूर्नामहेतुर्द्विजोत्तमाः॥२४॥
महागजप्रमाणानि जम्ब्वास्तस्याः फलानि वै।
पतन्ति भूभृतः पृष्ठे शीर्यमाणानि सर्व्वतः॥२५॥

पश्चिम में विपुल पर्वत तथा उत्तर में सुपार्श्व पर्वत स्थित है। इन ऊपर कहे गये चारों पर्वतों पर क्रमशः कदम्ब, जामुन (जम्बू), पीपल तथा वटवृक्ष ग्यारह सौ योजन पर्यन्त लम्बी पताकावत् स्थित हैं, तभी इस जामुन के वृक्षों के कारण यह द्वीप जम्बू द्वीप है। इस जामुन के वृक्ष से हाथी इतने बड़े पके जामुन के फल पर्वत पृष्ठ पर गिरते रहते हैं।।२३-२५।।

रसेन तेषां विख्याता तत्र जम्बूनदीति वै। सरित्प्रवर्तते सा च पीयते तन्निवासिभिः॥२६॥
न खेदो न च दौर्गन्ध्यं न जरा नेन्द्रियक्षयः। तत्पानस्वस्थमनसां जनानां तत्र जायते॥२७॥
तीरमृत्तद्रसं प्राप्य सुखवायुविशोषिता। जाम्बूनदाख्यं भवति सुवर्णं सिद्धभूषणम्॥२८॥
भद्राश्वं पूर्व्वतो मेरोः केतुमालञ्च पश्चिमे। वर्षे द्वे तु मुनिश्रेष्ठास्तयोर्मध्ये त्विलावृतम्॥२९॥
वनं चैत्ररथं पूर्व्वे दक्षिणे गन्धमादनम्। वैभ्राजं पश्चिमे तद्वदुत्तरे नन्दनं स्मृतम्॥३०॥

उसका रस वहां जम्बूनदी के रूप में विख्यात है। उस जम्बूवृक्ष से प्रवर्त्तित नदी का जल वहां के निवासी पीते हैं। इससे उनमें खेद, दुर्गन्ध, जरा एवं इन्द्रियों का क्षय नहीं होता। इस जल के पान के प्रभाव से वहां स्वस्थ मन तथा शरीर वाले लोग जन्म लेते हैं। वहां के तट की मिट्टी इस रस को पाकर तथा वायु से शुष्क होकर सुवर्ण के समान शोभित होती है। मेरु के पूर्व में भद्राश्व है, मेरु के पश्चिम में केतुमाल है। हे मुनिप्रवर! इन दोनों वर्ष के बीच में इलावृत वर्ष है। वहां पूर्व में चैत्ररथवन, दक्षिण में गन्धमादन है। पश्चिम में वैभ्राज तथा उत्तर में नन्दन वन है।।२६-३०।।

अरुणोदं महाभद्रमसितोदं समानसम्। सरांस्येतानि चत्वारि देवभोग्यानि सर्व्वदा॥३१॥
शान्तवांश्चक्रकुञ्जश्च कुररी माल्यवांस्तथा। वैकङ्कप्रमुखा मेरोः पूर्व्वतः केसराचलाः॥३२॥
त्रिकूटः शिशिरश्चैव पतङ्गो रुचकस्तथा। निषधादयो दक्षिणतस्तस्य केसरपर्व्वताः॥३३॥
शिखिवासः सवैदूर्य्यः कपिलो गन्धमादनः। जानुधिप्रमुखास्तद्वत् पश्चिमे केसराचलाः॥३४॥
मेरोरनन्तरास्ते च जठरादिष्ववस्थिता। शङ्खकूटोऽथ ऋषभो हंसो नागस्तथापराः॥३५॥

वहां सदा देवगण द्वारा उपभोग्य चार सरोवर हैं, अरुणोद, महाभद्र, असितोद तथा मानस। शान्तवान्, चक्रकुंज, कुररी, माल्यवान्, वैकंक आदि प्रमुख पर्वत हैं। मेरु के पूर्व में केसराचल है। वहां त्रिकूट, शिशिर पतंग, रुचक, निषध हैं, जो केसर पर्वत के दक्षिण में हैं। शिखिवास, वैदूर्य, कपिल, गन्धमादन, जानुधि प्रमुख पर्वत केसराचल के पश्चिम में हैं। मेरु के अनन्तर जठरादि स्थित हैं। शंखकूट, ऋषभ, हंस तथा नागपर्वत इसके पश्चात् हैं।।३१-३५।।

क्रालञ्जराद्याश्च तथा उत्तरे केसराचलाः। चतुर्दश सहस्राणि योजनानां महापुरी॥३६॥
मेरोरुपरि विप्रेन्द्रा ब्रह्मणः कथिता दिवि।
तस्यां समन्ततश्चाष्टौ दिशासु विदिशासु च॥३७॥
इन्द्रादिलोकपालानां प्रख्याताः प्रवराः पुरः।
विष्णुपादविनिष्क्रान्ता प्लावयन्तीन्दुमण्डलम्॥३८॥
समन्ताद्ब्रह्मणः पुर्य्यां गङ्गा पतति वै दिवि। सा तत्र पतिता दिक्षु चतुर्धा प्रत्यपद्यत॥३९॥
सीता चालकनन्दा च चक्षुर्भद्रा च वै क्रमात्।

कालञ्जर नामक केसर-पर्वत उत्तर में स्थित हैं। विप्रवर! मेरु पर ब्रह्मा की चौदह हजार योजन विस्तृत महापुरी स्थित है। उसके चारों ओर दिशाओं और कोणों में इन्द्र आदि लोकपालों की आठ नगरियाँ प्रख्यात हैं। विष्णु के पैर से समुद्भूत आकाश-गंगा चन्द्र-मण्डल को प्लावित करती हुई, ब्रह्मा की नगरी के चारों तरफ गिरती है। वहां से गंगा चार दिशाओं में क्रमशः सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा नाम से निकलती हैं।।३६-३९।।

पूर्व्वेण सीता शैलाच्च शैलं यान्त्यन्तरिक्षगाः॥४०॥
ततश्च पूर्व्ववर्षेण भद्राश्वेनेति सार्णवम्। तथैवालकनन्दा च दक्षिणेनैत्य भारतम्॥४१॥
प्रयाति सागरं भूत्वा सप्तभेदा द्विजोत्तमाः। चक्षुश्च पश्चिमगिरीनतीत्य सकलांस्ततः॥४२॥
पश्चिमं केतुमालाख्यं वर्षमन्वेति सार्णवम्।

सीता नामक आकाश गंगा पर्वत से पूर्व की ओर जाकर पर्वत में ही मिलती है। फिर वही गंगा भद्राश्व नामक वर्ष पर्वत से मिलकर समुद्र में मिल जाती है। द्विजगणश्रेष्ठ! उसी तरह अलकनन्दा सात भागों में विभक्त होकर दक्षिण की ओर भारतखण्ड होते हुए समुद्र में मिल जाती है। चक्षु नामक गंगा पश्चिम दिशा के समस्त पर्वतों का अतिक्रमण कर केतुमाल नामक वर्ष पर्वत होते हुए समुद्र में मिल जाती है।।४०-४१।।

भद्रा तथोत्तरगिरीनुत्तरांश्च तथा कुरून्॥४३॥
अतीत्योत्तरमम्भोधिं समभ्येति द्विजोत्तमाः। आनीलनिषधायामौ माल्यवद्गन्धमादनौ॥४४॥
तयोर्मध्यगतो मेरुः कर्णिकाकारसंस्थितः।
भारताः केतुमालाश्च भद्राश्वाः कुरवस्तथा॥४५॥
पत्राणि लोकशैलस्य मर्य्यादाशैलबाह्यतः। जठरो देवटकूटश्च मर्य्यादापर्व्वतावुभौ॥४६॥

भद्रा नामक आकाशगंगा उत्तर के पर्वतों तथा कुरु देशों का अतिक्रमण कर उत्तर समुद्र में मिल जाती है। द्विजवर! नील से निषध तक एवं माल्यवान् से गन्धमादन पर्यन्त मेरु पर्वत कनैल के आकार में स्थित है। मर्यादा पर्वत के बाहर लोकपर्वत के भारत, केतुमाल, भद्राश्व और कुरु यत्र हैं। जठर और देवकूट दो मर्यादा पर्वत हैं।।४३-४६।।

तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिषधायतौ। गन्धमादनकैलासौ पूर्व्वपश्चात्तु तावुभौ॥४७॥

अशीतियोजनायामावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ। निषधः पारियात्रश्च मर्य्यादापर्व्वतावुभौ॥४८॥

तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिषधायतौ।
मेरोः पश्चिमदिग्भागे यथा पूर्व्वौ तथा स्थितौ॥४९॥

ये दोनों दक्षिण-उत्तर में नील और निषध तक विस्तृत हैं। पूर्व-पश्चिम की ओर गन्धमादन और कैलास अस्सी योजन लम्बे तथा समुद्र तक विस्तृत हैं। निषध और पारियात्र दोनों मर्यादा पर्वत कहे जाते हैं। ये दोनों भी दक्षिण-उत्तर में नील निषध तक विस्तृत हैं तथा मेरु के पश्चिम दिग्भाग में वे दोनों पूर्व की तरह ही अवस्थित हैं।।४७-४९।।

त्रिशृङ्गो जारुधिश्चैव उत्तरौ वर्षपर्व्वतौ। पूर्व्वपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ॥५०॥

इत्येते हि मया प्रोक्ता मर्य्यादापर्व्वता द्विजाः।
जठरावस्थिता मेरोर्य्येषां द्वौ द्वौ चतुर्द्दिशम्॥५१॥
मेरोश्चतुर्द्दिशं ये तु प्रोक्ताः केसरपर्व्वताः।
सीतान्ताद्या द्विजास्तेषामतीव हि मनोहराः॥५२॥

त्रिशृङ्ग और जारुधि नामक वर्ष पर्वत पूर्व-पश्चिम की ओर विस्तृत होकर समुद्र तक चला गया है। द्विजगण! उन मर्यादा पर्वतों के बारे में मैंने कह दिया, जो दो-दो करके मेरु पर्वत की चारों दिशाओं में स्थित हैं। मेरु के चारों ओर स्थित केसर पर्वत के विषय में भी मैंने कह दिया, जिसके आदि-अन्त शीतल एवं मनोहर हैं।।५०-५२।।

शैलानामन्तरद्रोण्यः सिद्धचारणसेविताः। सुरम्याणि तथा तासु काननानि पुराणि च॥५३॥

लक्ष्मीविष्ण्वग्निसूर्य्येन्द्रदेवानां मुनिसत्तमाः। तास्वायतनवर्षाणि जुष्टानि नरकिन्नरैः॥५४॥

गन्धर्व्वयक्षरक्षांसि तथा दैतेयदानवाः। क्रीडन्ति तासु रम्यासु शैलद्रोणीष्वहर्निशम्॥५५॥

हे विप्रवृन्द! इन पर्वतों के बीच में सिद्ध चारणों से सेवित अन्तर द्रोणियां हैं, जहां लक्ष्मी, विष्णु, अग्नि, सूर्य, इन्द्र आदि देवताओं के रमणीय वन तथा नगर हैं। मुनिवर! नर-किन्नरों से सुसेवित उन उत्तम स्थानों में गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, दैत्य और दानव निवास करते हुए उन रमणीय पर्वत-द्रोणियों में दिन-रात क्रीड़ा करते रहते हैं।।५३-५५।।

भौमा ह्येते स्मृताः सर्गा धर्म्मिणामालया द्विजाः।
नैतेषु पापकर्त्तारो यान्ति जन्मशतैरपि॥५६॥

भद्राश्वे भगवान् विष्णुरास्ते हयशिरा द्विजाः। वाराहः केतुमाले तु भारते कूर्म्मरूपधृक्॥५७॥

मत्स्यरूपश्च गोविन्दः कुरुष्वास्ते सनातनः।
विश्वरूपेण सर्व्वत्र सर्व्वः सर्व्वेश्वरो हरिः॥५८॥

हे द्विजगण! धर्मात्माओं हेतु उस भूमि के गृह स्वर्गीय गृह हैं। पापात्मा लोग सैकड़ों जन्म के पश्चात् भी वहाँ नहीं जा सकते। भद्राश्व वर्ष में हयशिरा तथा केतुमाल में वाराह नाम से प्रसिद्ध विष्णु रहते हैं। भारत

में कूर्म तथा मत्स्य रूप को धारण करने वाले विष्णु रहते हैं। सनातन गोविन्द कुरु देशों में निवास करते हैं। सर्वेश्वर श्रीहरि विश्वरूप में प्रत्येक जगह विद्यमान रहते हैं।।५६-५८।।

सर्व्वस्याधारभूतोऽसौ द्विजा आस्तेऽखिलात्मकः।
यानि किम्पुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ द्विजोत्तमाः॥५९॥
न तेषु शोको नायासो नोद्वेगः क्षुद्भयादिकम्।
सुस्थाः प्रजा निरातङ्काः सर्व्वदुःखविवर्ज्जिताः॥६०॥

हे विप्रवर्य! अखिलात्मा विष्णु सबके आधार हैं। किंपुरुष आदि आठ वर्ष जो पूर्व कथित हैं, उनमें शोक, परिश्रम, उद्वेग और क्षुधा-भय का लेख भी नहीं है। वहां की प्रजा स्वस्थ, आतंक अर्थात् रोग रहित और समस्त प्रकार के दुःखों से विवर्जित रहती है।।५९-६०।।

दशद्वादशवर्षाणां सहस्राणि स्थिरायुषः।
नैतेषु भौमान्यन्यानि क्षुत्पिपासादि नो द्विजाः॥६१॥
कृतत्रेतादिका नैव तेषु स्थानेषु कल्पना। सर्व्वेष्वेतेषु वर्षेषु सप्त सप्त कुलाचलाः।
नद्यश्च शतशस्तेभ्यः प्रसूता या द्विजोत्तमाः॥६२॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे भुवनकोशद्वीपवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥१८॥



वहां के मनुष्यों की आयु दस से बारह हजार वर्षों तक की होती है। यहां की लोगों की भांति उन्हें क्षुधा एवं पिपासा व्यग्र नहीं करती। उन स्थानों में कृतयुग, त्रेता आदि युगों की कल्पना नहीं होती। हे विप्रवर! इन सभी वर्षो में सात-सात पर्वत स्थित हैं, और इन पर्वतों से सैकड़ों नदियां निकलती हैं।।

।।अष्टादश अध्याय समाप्त।।



अथ एकोनविंशोऽध्यायः

भारतवर्ष के प्रसंग में उसके नौ भेद, नदी तथा उपनदी वर्णन, जम्बूद्वीप प्रशंसा

लोमहर्षण उवाच

उत्तरेण समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणे। वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः॥१॥
नवयोजनसाहस्रो विस्तारश्च द्विजोत्तमाः। कर्म्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गञ्च इच्छताम्॥२॥

लोमहर्षण कहते हैं—समुद्र से उत्तर की ओर हिमाद्रि पर्वत है। उससे दक्षिण में भी जो देश है, दोनों मिलाकर भारतवर्ष है। यह भारती प्रजा की निवासभूमि ही भारतवर्ष है। हे द्विजगण! भारतवर्ष का विस्तार परिमाण नौ हजार योजन है। जो स्वर्ग तथा अपवर्ग की इच्छा करते हैं, यह भारतवर्ष ही उनकी कर्मभूमि है।।१-२।।

महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्व्वतः। विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्व्वताः॥३॥

अतः सम्प्राप्यते स्वर्गो मुक्तिमस्मात् प्रयाति वै।
तिर्य्यक्त्वं नरकं चापि यान्त्यतः पुरुषा द्विजाः॥४॥
इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यं चान्ते च गच्छति।
न खल्वन्यत्र मर्त्त्यानां कर्म्मभूमौ विधीयते॥५॥

यहां महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य तथा परियात्र नामक सात कुल पर्वत स्थित हैं। यहीं से स्वर्ग तथा मोक्ष, दोनों मिलता है। यहीं से पुरुष कर्मानुसार तिर्यक् योनि अथवा नरकगति भी प्राप्त करते हैं। मर्त्यलोक वासी लोग स्वर्ग, मोक्ष किंवा मध्यम एवं अन्त्यगति भी यहीं से प्राप्त करते हैं। अन्य किसी भी कर्मभूमि में यह होने की सम्भावना ही नहीं है।।३-५।।

भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान्निशामय। इन्द्रद्वीपः कसेतुमांस्ताम्रपर्णो गभस्तिमान्॥६॥
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्व्वस्त्वथ वारुणः। अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः॥७॥

योजनानां सहस्रं च द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरात्।
पूर्व्वे किरातास्तिष्ठन्ति पश्चिमे यवनाः स्थिताः॥८॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः।
इज्यायुद्धवणिज्याद्यवृत्तिमन्तो व्यवस्थिताः॥९॥

इस भारतवर्ष में नौ विभिन्न द्वीप विद्यमान हैं। उन सबका नाम सुनिये। वे हैं इन्द्रद्वीप, कसेरुमान्, ताम्रपर्व, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व तथा वारुण। नवम द्वीप सागर संवृत है। इस द्वीप का परिमाण दक्षिण तथा उत्तर की ओर क्रम से सहस्र योजन है। भारत के पूर्व में किरातों का तथा पश्चिम में यवनों का निवास है। इस वर्ष में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रगण यथायथ विभाग क्रम से रहते हैं। इज्या, युद्ध, वाणिज्य आदि उक्त ब्राह्मणादि चार वर्णों की वृत्ति व्यवस्थित है।।६-९।।

शतद्रुचन्द्रभागाद्या हिमवत्पादनिःसृताः। वेदस्मृतिमुखाश्चान्याः परियात्रोद्भवा मुने॥१०॥

नर्म्मदासुरमाद्याश्च नद्यो विन्ध्यविनिःसृताः।
तापीपयोष्णीनिर्व्विन्ध्याकावेरीप्रमुखा नदीः॥११॥

ऋक्षपादोद्भवा ह्येताः श्रुताः पापं हरन्ति याः। गोदावरीभीमरथीकृष्णवेण्यादिकास्तथा॥१२॥

शतद्रु तथा चन्द्रभागा प्रभृति नदियां हिमालय के पाददेश से निकली हैं। हे मुनिगण! वेद, स्मृति आदि नदियां पारियात्र से, नर्मदा तथा सुरभा आदि प्रमुख सरितायें विन्ध्याचल से, तापी-पयोष्णि, निर्विन्ध्या एवं

कावेरी आदि नदियां ऋक्षपर्वत के पाददेश से सम्भूत हैं। इन नदियों का नाम सुनने से पापनाश होता है। गोदावरी, भीमरथी तथा कृष्णवेण्यादि नदियां भी हैं।।१०-१२।।

सह्यपादोद्भवा नद्यः स्मृताः पापभयापहाः। कृतमालाताम्रपर्णीप्रमुखा मलयोद्भवाः॥१३॥

त्रिसान्ध्यऋषिकुल्याद्याः महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः।
ऋषिकुल्याकुमाराद्याः शुक्तिमत्पादसम्भवाः॥१४॥

आसां नद्युपनद्यश्च सन्त्यन्यास्तु सहस्रशः। तास्विमे कुरुपञ्चालमध्यदेशादयो जनाः॥१५॥

ये सभी सह्याद्रि पर्वत के पाददेश से निकली हैं। ये भी पापभय से परित्राण प्रदान करती हैं। मलय पर्वत से कृतमाला तथा ताम्रपर्णी आदि। महेन्द्राचल से त्रिसन्ध्यानद एवं ऋषिकुल्यादि नदी, शुक्तिमान पर्वत के पाददेश से ऋषिकुल्या[1] तथा कुमारादि नाना नदी-नद निर्गत हुये हैं। इनके अतिरिक्त और भी हजारों-हजार नदियां एवं उपनदियां हैं। इन सभी नदियों के तट पर कुरु, पाञ्चाल तथा मध्यदेशादि जनपद हैं।।१३-१५।।

पूर्व्वदेशादिकाश्चैव कामरूपनिवासिनः। पौण्ड्राः कलिङ्गा मगधा दाक्षिणात्याश्च सर्व्वशः॥१६॥

तथापरान्त्याः सौराष्ट्राः शूद्राभीरास्तथाऽर्व्वुदाः।
मारुका मालवाश्चैव पारियात्रनिवासिनः॥१७॥
सौवीराः सैन्धवापन्नाः शाल्वाः शाकलवासिनः।
मद्रा रामास्तथाम्बष्ठाः पारसीकादयस्तथा॥१८॥

आसां पिबन्ति सलिलं वसन्ति सरितां सदा। समोपेता महाभागा हृष्टपुष्टजनाकुलाः॥१९॥

कामरूपनिवासी पूर्वदेशीगण, पौण्ड्र, कलिंग, मगध, दाक्षिणात्य, अपरान्त्य, सौराष्ट्र, शूद्र, आभीर, अर्बुद, मारुक तथा पारियात्र निवासी मालवगण के अतिरिक्त सौवीर, सैन्धव, शाल्व, शाकलवासी भद्र, आराम, अम्बष्ट तथा पारसीकादि नाना जातीय जनपद उल्लिखित नदियों का जल पान करते हैं तथा इन नदियों के तट पर निवास करते हैं। हे महाभागगण! भारतवासी लोग शान्तिप्रिय हैं एवं हृष्ट-पुष्ट लोगों से यह भरा देश है।।१६-१९।।

वसन्ति भारते वर्षे युगान्यत्र महामुने। कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चाप्यत्र न क्वचित्॥२०॥

तपस्तप्यन्ति यतयो जुह्वते चात्र यज्विनः। दानानि चात्र दीयन्ते परलोकार्थमादरात्॥२१॥

पूरुषैर्यज्ञपुरुषो जम्बूद्वीपे सदेज्यते। यज्ञैर्यज्ञमयो विष्णुरन्यद्वीपेषु चान्यथा॥२२॥

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने। यतो हि कर्म्मभूरेषा यतोऽन्या भोगभूमयः॥२३॥

सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलिरूप चतुर्युग केवल यहां विद्यमान रहता है। अन्य कहीं भी युगचतुष्टय का अस्तित्व नहीं है। यहीं तापसगण तपश्चर्या करते हैं तथा यज्वा लोग आहुति प्रदान करते हैं। पारलौकिक मंगल के लिये पुरुष यहीं सश्रद्ध भाव से धन दान करते हैं। जम्बूद्वीप के अन्तर्गत् भारत में यज्ञपुरुष विष्णुदेव सर्वदा पूजित रहते हैं तथा अन्य द्वीपों में भी यज्ञानुष्ठान के साथ विष्णु की अर्चना की जाती है।।२०-२३।।

---

१. यहां महेन्द्राचल से भी ऋषिकुल्या तथा शुक्तिमान से भी ऋषिकुल्या का निकलना कहा गया है।

अत्र जन्मसहस्त्राणां सहस्त्रैरपि सत्तम। कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसञ्चयात्॥२४॥

गायन्ति देवाः किल गीतकानि, धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते, भवन्ति भूयः पुरुषा मनुष्याः॥२५॥

हे द्विजों! जम्बूद्वीपान्तर्गत भारतवर्ष ही श्रेष्ठ है। हे महामुनि! यही कर्मभूमि है। अन्य सभी वर्ष भोगभूमि कहे जाते हैं। यहां हजारों-हजार जन्मों के पश्चात् कोई जीव पुण्यार्जन द्वारा मनुष्य योनि में जन्म लेता है। देवता भी यही गायन करते हैं कि जो स्वर्ग तथा अपवर्ग की हेतुभूत भारतभूमि में जन्म लेते हैं, जवात् में वे ही मनुष्य धन्य हैं।।२४-२५।।

कर्म्माण्यसङ्कल्पिततत्फलानि, सन्यस्य विष्णौ परमात्मरूपे।
अवाप्य तां कर्म्ममहीमनन्ते, तस्मिँल्लयं ये त्वमलाः प्रयान्ति॥२६॥
जानीम नो तत्तु वयं विलीने, स्वर्गप्रदे कर्म्मणि देहबन्धम्।
प्राप्स्यन्ति धन्याः खलु ते मनुष्या, ये भारते नेन्द्रियविप्रहीनाः॥२७॥

जो समस्त कर्मों को तथा संकल्पित कर्म समूह को परमात्मस्वरूप विष्णु को अर्पित कर देते हैं, वे ही कर्मभूमि भारत में आकर पुनः विष्णु में लीन हो जाते हैं। जो इन्द्रियजयी लोग स्वर्गप्रद कर्म समूह के विष्णु में विलीन हो जाने पर पुनः भारत में देहलाभ करते हैं, वे धन्य पुरुष हैं। हम उनका तत्व नहीं जान पाते।।२६-२७।।

नववर्षञ्च भो विप्रा जम्बूद्वीपमिदं मया।
लक्षयोजनविस्तारं संक्षेपात् कथितं द्विजाः॥२८॥

जम्बूद्वीपं समावृत्य लक्षयोजनविस्तरः। भो द्विजा वलयाकारः स्थितः क्षीरोदधिर्बहिः॥२९॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे जम्बूद्वीपनिरूपणं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥



यह जम्बूद्वीप नवखण्ड में विभाजित है तथा एक लाख योजन विस्तार वाला है। मैंने इस द्वीप का विवरण संक्षेप में कह दिया। इसके बहिर्भाग में एक लाख योजन विस्तृत क्षीरसागर इसको वलयाकार घेरे हुये है।।२८-२९।।

।।एकोनविंश अध्याय समाप्त।।



अथ विंशोऽध्यायः

प्लक्षद्वीप तथा वहां के निवासियों की परमायु का परिमाण तथा अन्य द्वीपपुञ्ज का वर्णन

लोमहर्षण उवाच

क्षारोदेन यथा द्वीपो जम्बूसंज्ञोऽभिवेष्टितः। संवेष्ट्य क्षारमुदधिं प्लक्षद्वीपस्तथा स्थितः॥१॥
जम्बूद्वीपस्य विस्तारः शतसाहस्रसम्मितः। स एव द्विगुणो विप्राः प्लक्षद्वीपेऽप्युदाहृतः॥२॥
सप्त मेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरस्य वै। श्रेष्ठः शान्तमयो नाम शिशिरस्तदनन्तरम्॥३॥
सुखोदयस्तथानन्दः शिवः क्षेमक एव च। ध्रुवश्च सप्तमस्तेषां प्लक्षद्वीपेश्वरा हि ते॥४॥
पूर्व्वं शान्तमयं वर्षं शिशिरं सुखदं तथा। आनन्दञ्च शिवञ्चैव क्षेमकं ध्रुवमेव च॥५॥
मर्य्यादाकारकास्तेषां तथान्ये वर्षपर्व्वताः। सप्तैव तेषां नामानि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः॥६॥

लोमहर्षण कहते हैं—जैसे क्षार समुद्र से जम्बू नामक पर्वत द्वीप घिरा है, उसी प्रकार प्लक्ष द्वीप इस क्षार समुद्र को घेर कर स्थित है। हे विप्रों! जम्बूद्वीप एक लाख योजन विस्तार वाला है। प्लक्षद्वीप उससे दूना है। प्लक्षद्वीप के अधिपति थे मेधातिथि। उनके सात पुत्र थे शान्तमय, शिशिरा, सुखोदय, आनन्द, शिव, क्षेमक, ध्रुव। पिता मेधातिथि के मृत होने पर ये ही प्लक्षद्वीप के स्वामी हो गये। प्लक्षद्वीप में मेधातिथि के इन सात पुत्रों के नाम से सात वर्ष विद्यमान हैं। इन वर्षों की सीमा स्वरूप सात मर्यादा पर्वत हैं। हे मुनिसत्तमवृन्द! उनके नामों को सुनें।।१-६।।

गोमेदश्चैव चन्द्रश्च नारदो दुन्दुभिस्तथा। सोमकः सुमनाः शैलो वैभ्राजश्चैव सप्तमः॥७॥
वर्षाचलेषु रम्येषु वर्षेष्वेतेषु चानघाः। वसन्ति देवगन्धर्व्वसहिताः सहितं प्रजाः॥८॥

तेषु पुण्या जनपदा वीरा न म्रियते जनः।
नाधयो व्याधयो वापि सर्व्वकालसुखं हि तत्॥९॥
तेषां नद्यश्च सप्तैव वर्षाणान्तु समुद्रगाः।
नामतस्ताः प्रवक्ष्यामि श्रुताः पापं हरन्ति याः॥१०॥
अनुतप्ता शिखा चैव विप्राशा त्रिदिवा क्रमुः।
अमृता सुकृता चैव सप्तैतास्तत्र निम्नगाः॥११॥

उनके नाम हैं गोमेद, चन्द्र, नारद, दुन्दुभि, सोमक, सुमना, वैभ्राज। इन सात वर्षों तथा पर्वतों पर प्रजाजन देव एवं गन्धर्वों के साथ सुख से रहते हैं। वहां के जनपद पुण्यप्रद तथा वीरों के आश्रयस्थलरूप हैं। वहां लोगों में मृत्यु नहीं है। वहां आधि-व्याधि रूप उपद्रव भी नहीं है। वहां लोग सदा सुख पूर्वक रहते हैं। इन सात वर्षों में सात समुद्रगामिनी नदियां हैं। उनके नाम सुनने से पापक्षय होता है। इनके नाम हैं अनुतप्ता, शिखा, विप्राशा, त्रिदिवा, अमृता, सुकृता तथा क्रमु।।७-११।।

एते शैलास्तथा नद्यः प्रधानाः कथिता द्विजाः।
क्षुद्रनद्यस्तथा शैलास्तत्र सन्ति सहस्त्रशः॥१२॥
ताः पिबन्ति सदा हृष्टा नदीर्जनपदास्तु ते।
अवसर्पिणी नदी तेषां न चैवोत्सर्पिणी द्विजाः॥१३॥
न तेष्वस्ति युगावस्था तेषु स्थानेषु सप्तषु।
तेत्रायुगसमः कालः सर्व्वदैव द्विजोत्तमाः॥१४॥

प्लक्षद्वीपादिके विप्राः शाकद्वीपान्तिकेषु वै। पञ्चवर्षसहस्त्राणि जना जीवन्त्यनामयाः॥१५॥
धर्म्मश्चतुर्व्विधस्तेषु वर्णाश्रमविभागजः। वर्णाश्च तत्र चत्वारस्तान् बुधाः प्रवदामि वः॥१६॥

हे द्विजवृन्द! ये सात नदियां प्लक्षद्वीप के सात वर्षों में बहती हैं। प्लक्षद्वीप के प्रधान पर्वतों तथा नदियों का वर्णन मैंने कर दिया। इसके अतिरिक्त भी वहां और हजारों छोटी-छोटी नद नदी तथा छोटे पर्वत हैं। वहां के जनपदों में रहने वाले सदा प्रसन्नचित्त हैं तथा इन नदियों का जल पीते हैं। सभी नदियां समान जलवाली रहती हैं। घटती अथवा बढ़ती नहीं हैं। वहां के सातों वर्षों में युगावस्था (चार युग) नहीं हैं। हे द्विजोत्तमवृन्द! वहां सदा त्रेतायुग जैसी अवस्था बनी रहती है। प्लक्षद्वीप तथा शाकद्वीप के निवासी लोग पांच हजार वर्ष की आयु तक निरोग जीवन व्यतीत करते हैं। उनमें वर्णाश्रम विभाग से चार प्रकार का धर्म विद्यमान है। आपसे मैं अब उनका विवरण कहता हूं।।१२-१६।।

आर्य्यकाः कुरवश्चैव विविश्वा भाविनश्च ये। विप्रक्षत्रियवैश्यास्ते शूद्राश्च मुनिसत्तमाः॥१७॥
जम्बूवृक्षप्रमाणन्तु तन्मध्ये सुमहातरुः। प्लक्षस्तन्नामसंज्ञोऽयं प्लक्षद्वीपो द्विजोत्तमाः॥१८॥
इज्यते तत्र भगवांस्तैर्व्वर्णैराय्यकादिभिः।
सोमरूपी जगत्स्त्रष्टा सर्व्वः सर्व्वेश्वरो हरिः॥१९॥

प्लक्षद्वीपप्रमाणेन प्लक्षद्वीपः समावृतः। तथैवेक्षुरसोदेन परिवेषानुकारिणा॥२०॥
इत्येतद् वो मुनिश्रेष्ठाः प्लक्षद्वीप उदाहृतः। संक्षेपेण मया भूयः शाल्मलं तं निबोधत॥२१॥
शाल्मलस्येश्वरो वीरो वपुष्मांस्तत्सुता द्विजाः।
तेषान्तु नाम संज्ञानि सप्त वर्षाणि तानि वै॥२२॥

वहां का आर्यक ही ब्राह्मण है। कुरु क्षत्रिय है। विविश्व ही वैश्य तथा भावी ही शूद्र है। पूर्वोक्त जम्बूद्वीपस्थ वृक्ष के ही समान यहां एक पाकड़ का वृक्ष है। इसी वृक्ष के नामानुसार इस द्वीप को प्लक्ष द्वीप कहा गया है। हे द्विजप्रवरगण! यहां आर्यकादि चारों वर्ण द्वारा भगवान् सोमरूपी सर्वेश्वर श्रीहरि ही पूजित होते हैं। प्लक्षद्वीप के ही माप के इक्षु समुद्र से यह प्लक्षद्वीप घिरा है। हे मुनिश्रेष्ठवृन्द! यह प्लक्षद्वीप वृत्तान्त मैंने संक्षिप्त रूप से कह दिया। अब आप लोग शाल्मलि द्वीप वर्णन सुनें।।१७-२२।।

श्वेतोऽथ हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा। वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभश्च द्विजोत्तमाः॥२३॥
शाल्मलश्च समुद्रोऽसौ द्वीपेनेक्षुरसोदकः। विस्ताराद्द्विगुणेनाथ सर्व्वतः संवृतः स्थितः॥२४॥

तत्रापि पर्व्वताः सप्त विज्ञेया रत्नयोनयः।
वर्षाभिव्यञ्जकास्ते तु तथा सप्तैव निम्नगाः॥२५॥
कुमुदश्चोन्नतश्चैव तृतीयस्तु बलाहकः। द्रोणो यत्र महौषध्यः स चतुर्थो महीधरः॥२६॥
कङ्कस्तु पञ्चमः षष्ठो महिषः सप्तमस्तथा।
ककुद्मान् पर्व्वतवरः सरिन्नामान्यतो द्विजाः॥२७॥
श्रोणीतोया वितृष्णा च चन्द्रा शुक्रा विमोचनी।
निवृत्तिः सप्तमी तासां स्मृतास्ताः पापशान्तिदाः॥२८॥

शाल्मलि द्वीपाधिपति का नाम था वपुष्मान। उनके सात पुत्र थे—श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत तथा मानस एवं सुप्रभ। शाल्मलि द्वीप अपने से द्विगुणाकृति इक्षुसागर से ही घिरा है। इस द्वीप के सप्त रत्नाकर वर्ष पर्वत हैं। यहां भी सात नदियां बहती हैं। सातों वर्ष पर्वत का नाम है (जो रत्नगर्भित हैं) कुमुद, उन्नत, ब्लाहक, महान् औषधियों वाला द्रोण, कङ्क, महिष तथा ककुद्मान। इन पर्वतों से ही यह द्वीप जाना जाता है। यहां की सात नदियां हैं श्रोणी, तोया, वितृष्णा, चन्द्रा, शुक्रा, विमोचनी, निवृत्ता। इनके नाम स्मरण से पाप शान्त होता है।।२३-२८।।

श्वेतञ्च लोहितञ्चैव जीमूतं हरितं तथा। वैद्युतं मानसञ्चैवं सुप्रभं नाम सप्तमम्॥२९॥
सप्तैतानि तु वर्षाणि चातुर्व्वर्ण्ययुतानि च।
वर्णाश्च शाल्मले ये च वसन्त्येषु द्विजोत्तमाः॥३०॥
कपिलाश्चारुणाः पीताः कृष्णाश्चैव पृथक् पृथक्।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव यजन्ति तम्॥३१॥
भगवन्तं समस्तस्य विष्णुमात्मानमव्ययम्। वायुभूतं मखश्रेष्ठैर्यज्वानो यज्ञसंस्थितम्॥३२॥
देवानामत्र सान्निध्यमतीव सुमनोहरे। शाल्मलिश्च महावृक्षो नामनिवृत्तिकारकः॥३३॥
एष द्वीपः समुद्रेण सुरोदेन समावृतः। विस्ताराच्छाल्मलेश्चैव समेन तु समन्ततः॥३४॥
सुरोदकः परिवृतः कुशद्वीपेन सर्व्वतः। शाल्मलस्य तु विस्ताराद्द्विगुणेन समन्ततः॥३५॥
ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे शृणुध्वं तस्य पुत्रकान्।
उद्भिदो वेणुमांश्चैव स्वैरथो रन्धनो धृतिः॥३६॥
प्रभाकरोऽथ कपिलस्तन्नाम्ना वर्षपद्धतिः। तस्यां वसन्ति मनुजैः सह दैतेयदानवाः॥३७॥

यहां के सात वर्ष हैं श्वेत, लोहित, जीमूत, हरित, वैद्युत, मानस, सुप्रभ। इनमें ही चार वर्णों के लोग निवास करते हैं। यहां के कपिल वर्ण हैं ब्राह्मण, अरुण वर्ण हैं क्षत्रिय, पीत वर्ण हैं वैश्य तथा कृष्ण वर्ण हैं शूद्र। ये लोग इन विभिन्न रूप से यहां विराजित हैं। ये सभी सर्वेश्वर, सर्वात्मा, वायुभूत, यज्ञपति विष्णु की अर्चना महायज्ञों से करते हैं। यहां इस मनोहर द्वीप पर सदा देवता लोग सन्निहित रहते हैं। यहां शाल्मलि नामक महाविशाल वृक्ष विराजित है। इसी वृक्ष से इस द्वीप का नाम शाल्मलि पड़ा है। यह द्वीप सुरा समुद्र से घिरा

है। इस समुद्र का विस्तार शाल्मलि द्वीप से द्विगुण कुशद्वीप है। इसके स्वामी हैं (थे) ज्योतिष्मान। इनके पुत्रों का नाम सुनिये। उद्भिद्, वेणुमान्, स्वैरथ, रन्धन, घृति, प्रभाकर, कपिल। इनके नाम से ही उस द्वीप के सात वर्ष विख्यात हैं। यहां पर मानवों के साथ दैत्य, दानव रहते हैं।।२९-३७।।

तथैव देवगन्धर्व्वा यक्षकिम्पुरुषादयः। वर्णास्तत्रापि चत्वारो निजानुष्ठानतत्पराः॥३८॥

दमिनः शुष्मिणः स्नेहा मान्दहाश्च द्विजोत्तमाः।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चानुक्रमोदिताः॥३९॥

यथोक्तकर्म्मकर्त्तृत्वात् स्वाधिकारक्षयाय ते। तत्र ते तु कुशद्वीपे ब्रह्मरूपं जनार्द्दनम्॥४०॥

यजन्तः क्षपयन्त्युग्रमधिकारफलप्रदम्। विद्रुमो हेमशैलश्च द्युतिमान् पुष्टिमांस्तथा॥४१॥

कुशेशयो हरिश्चैव सप्तमो मन्दराचलः। वर्षाचलास्तु सप्तैते द्वीपे तत्र द्विजोत्तमाः॥४२॥

नद्यश्च सप्त तासां तु वक्ष्ये नामान्यनुक्रमात्।

धूतपापा शिवा चैव पवित्रा सम्मतिस्तथा॥४३॥

विद्युदम्भो मही चान्या सर्व्वपापहरास्त्विमाः। अन्याः सहस्रशस्तत्र क्षुद्रनद्यस्तथाचलाः॥४४॥

यहां पर इनके अतिरिक्त देव, गन्धर्व, यक्ष तथा किम्पुरुष भी निवास करते हैं। यहां के चारों वर्ण अपने-अपने कर्मों को करते रहते हैं। यहां ब्राह्मण का दमी, क्षत्रिय का शुष्मी, वैश्य का स्नेह तथा शूद्र का मान्दह नाम है। कुशद्वीप में सभी लोग अपने-अपने कर्त्तव्य कर्म को सम्पन्न करते रहते हैं तथा भूलोक पर अधिकार (कर्म) क्षय हेतु अधिकार फलदाता भगवान् जनार्दन की अर्चना करते हुये कठोर काल का कर्त्तन करते रहते हैं। हे द्विजवृन्द! इस कुशद्वीप में विद्रुम, हेम (स्वर्ण) द्युतिमान्, पुष्टिमान्, कुशेशय, हरि तथा मन्दराचल नामक सात प्रमुख पर्वत हैं। यहां की सात नदियों का नाम सुनिये। वे हैं धूतपापा, शिवा, पवित्रा, संमति, विद्युदम्भ, मही एवं कन्या। इनके अतिरिक्त यहां पर और भी सहस्रों छोटी-छोटी नदियां एवं पर्वत हैं। उक्त सातों नदियां पापहारिणी हैं।।३८-४४।।

कुशद्वीपे कुशस्तम्बः संज्ञया तस्य तत्स्मृतम्। तत्प्रमाणेन स द्वीपो घृतोदेन समावृतः॥४५॥

घृतोदश्च समुद्रो वै क्रौञ्चद्वीपेन संवृतः। क्रौञ्चद्वीपो मुनिश्रेष्ठाः श्रूयतां चापरो महान्॥४६॥

कुशद्वीपस्य विस्ताराद्द्विगुणो यस्य विस्तरः।

क्रौञ्चद्वीपे द्युतिमतः पुत्राः सप्त महात्मनः॥४७॥

तन्नामानि च वर्षाणि तेषां चक्रे महामनाः।

कुशगो मन्दगश्चोष्णः पीवरोऽथान्धकारकः॥४८॥

मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सप्तैते तत्सुता द्विजाः। तत्रापि देवगन्धर्व्वसेविताः सुमनोरमाः॥४९॥

कुशद्वीप में कुशों की झाड़ियां भरी होने के कारण इसका नाम कुशद्वीप पड़ा है। यह द्वीप उतने हीं माप वाले घृत सागर से घिरा है। हे मुनिप्रवरगण! यह क्रौञ्च द्वीप अन्यतम महाद्वीप है। आप लोग इसका विवरण सुनें। यह कुशद्वीप की तुलना में दूना है। इसके अधिपति का नाम है राजा द्युतिमान। इनके सात पुत्रों

का नाम है कुशग, मन्दग, उष्ण, पीवर, अन्धकारक, मुनि, दुन्दुभि। इनके नाम से ही यहां का द्वीप सात वर्षों में बंटा है। यह द्वीप पर्वतीय है और मनोरम है। यह देवगन्धर्व से सेवित भी है।।४५-४९।।

वर्षाचला मुनिश्रेष्ठास्तेषां नामानि भो द्विजाः। क्रौञ्चश्च वामनश्चैव तृतीयश्चान्धकारकः।।५०।।
देवव्रतो धमश्चैव तथान्यः पुण्डरीकवान्। दुन्दुभिश्च महाशैलो द्विगुणास्ते परस्परम्।।५१।।
द्वीपाद्द्वीपेषु ये शैलास्तथा द्वीपानि ते तथा। वर्षेष्वेतेषु रम्येषु वर्षशैलवरेषु च।।५२।।
निवसन्ति निरातङ्काः सह देवगणैः प्रजाः।
पुष्कला पुष्करा धन्यास्ते ख्याताश्च द्विजोत्तमाः।।५३।।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चानुक्रमोदिताः।
तत्र नद्यो मुनिश्रेष्ठा याः पिबन्ति तु ते सदा।।५४।।
सप्त प्रधानाः शतशस्तथान्याः क्षुद्रनिम्नगाः।
गौरी कुमुद्वती चैव सन्ध्या रात्रिर्मनोजवा।।५५।।
ख्यातिश्च पुण्डरीका च सप्तैता वर्षनिम्नगाः।
तत्रापि वर्णैर्भगवान् पुष्कराद्यैर्ज्जनार्द्दनः।।५६।।
ध्यानयोगै रुद्ररूप इज्यते यज्ञसन्निधौ। क्रौञ्चद्वीपः समुद्रेण दधिमण्डोदकेन तु।।५७।।
आवृतः सर्व्वतः क्रौञ्चद्वीपतुल्येन मानतः। दधिमण्डोदकश्चापि शाकद्वीपेन संवृतः।।५८।।

यहां के देवगन्धर्व सेवित रम्य पर्वत के नाम हैं क्रौञ्च, वामन, अन्धकारक, देवव्रत, धर्म्य, पुण्डरीकवान् तथा महापर्वत दुन्दुभि। ये पर्वत पहले वाले से दूने हैं अर्थात् क्रौञ्च से वामन दूना है, वामन से अन्धकारक दूना है इत्यादि। द्वीप-द्वीपान्तर में जो सब पर्वत तथा द्वीप हैं, वे सभी उल्लिखित रम्य-रम्य वर्ष तथा वर्षशैलों के अन्तर्गत हैं। इन पर देवता आदि तथा मनुष्य निरातंक रूप से रहते हैं। यहां ब्राह्मण का नाम है पुष्कल, क्षत्रिय का पुष्कर, वैश्य का धन्य तथा शूद्र का नाम है ख्यात। यहां के निवासी हृष्ट-पुष्ट, धन्य तथा यशस्वी हैं। हे मुनिप्रवरगण! यहां की नदियों का जल प्रजावर्ग पीते हैं। इनमें सात नदियां श्रेष्ठ हैं, बड़ी हैं। अन्य छोटी हैं। सात प्रधान नदियां हैं कुमुद्वती, सन्ध्या, रात्रि, मनोजवा, ख्याति, पुण्डरीका तथा गौरी। ये पूर्वोक्त सात वर्षों में एक-एक प्रवाहित हैं। यहां के लोग पुष्कर आदि वर्ण वाले रुद्ररूपी जनार्दन के उद्देश्य से ध्यानयोग द्वारा यज्ञ करके उनकी अर्चना करते हैं। यह क्रौञ्चद्वीप अपने ही बराबर दधिसमुद्र से चतुर्दिक् घिरा है। यह दधिसागर शाकद्वीप से घिरा है।।५०-५८।।

क्रौञ्चद्वीपस्य विस्ताद्द्विगुणेन द्विजोत्तमाः। शाकद्वीपेश्वरस्यापि भव्यस्य सुमहात्मनः।।५९।।
सप्तैव तनयास्तेषां ददौ वर्षाणि सप्त सः। जलदश्य कुमारश्च सुकुमारो मनीरकः।।६०।।
कुसमोदश्च मोदाकिः सप्तमश्च महाद्रुमः।
तत्संज्ञान्येव तत्रापि सप्त वर्षाण्यनुक्रमात्।।६१।।

यह शाकद्वीप भी क्रौञ्चद्वीप से दूना है। इसके स्वामी महात्मा भव्य के सात पुत्रों का नाम है—जलद,

कुमार, सुकुमार, मनीरक, कुसमोद, मोदाकि, महाद्रुम। इन पुत्रों के नामानुसार शाकद्वीप में सात वर्ष हैं। उनमें एक-एक पुत्र को महात्मा भव्य ने नियुक्त किया था।।५९-६१।।

तत्रापि पर्व्वताः सप्त वर्षविच्छेदकारकाः। पूर्व्वस्तत्रोदयगिरिर्ज्जलधारस्तथापरः।।६२।।

तथा रैवतकः श्यामस्तथैवाम्भोगिरिर्द्विजाः।
आस्तिकेयस्तथा रम्यः केसरी पर्व्वतोत्तमः।।६३।।

शाकश्चात्र महावृक्षः सिद्धगन्धर्व्वसेवितः। यत्पत्रवातसंस्पर्शादाह्लादो जायते परः।।६४।।

तत्र पुण्या जनपदाश्चातुर्वर्ण्यसमन्विताः। निवसन्ति महात्मानो निरातङ्का निरामयाः।।६५।।

नद्यश्चात्र महापुण्याः सर्व्वपापभयापहाः। सुकुमारी कुमारी च नलिनी रेणुका च या।६६।।

इक्षुश्च धेनुका चैव गभस्ती सप्तमी तथा। अन्यास्त्वयुतशस्तत्र क्षुद्रनद्यो द्विजोत्तमाः।।६७।।

महीधरास्तथा सन्ति शतशोऽथ सहस्रशः।
ताः पिबन्ति मुदा युक्ता जलदादिषु ये स्थिताः।।६८।।

हे द्विजों! इस सात वर्ष में सीमा निरूपणार्थ सात वर्ष पर्वत हैं। उनके नाम हैं उदयाचल, जलधर, रैवतक, श्याम अम्भोगिरी, रमणीय आस्तिकेय पर्वत तथा पर्वोत्तम केसरी। यहां इस द्वीप में शाक नाम वाला सिद्ध-गन्धर्व सेवित महावृक्ष है। इस महावृक्ष के पत्तों के हिलने वाला वायु पत्तों के संस्पर्श से अपूर्व आमोद उत्पन्न करता है। यहां चार वर्णों वाले मनुष्य रहते हैं। इन-इन जनपदवासी लोगों का और प्रजा का चित्त सदा महाभाव से अनुप्राणित रहता है। वे सदा आतंकरहित तथा स्वस्थ रहते हैं। यहां के सात वर्षों की सात पावन नदियां पापनाश करने वाली हैं। उनके नाम हैं—सुकुमारी, कुमारी, नलिनी, रेणुका, इक्षु, धेनुका, गभस्ती। हे द्विजों! इसके अतिरिक्त यहां छोटी-छोटी दस हजार नदियां हैं। पूर्वोक्त सात वर्ष पर्वत के अतिरिक्त भी यहां हजारों-हजार अन्य पर्वत भी हैं। शाकद्वीपस्थ वर्ष समूह के रहने वाले इन नदियों का पानी पीते हैं। वे प्रेम पूर्वक इनका जलपान करते हैं।।६२-६८।।

वर्षेषु ये जनपदाश्चतुर्धार्थसमन्विताः। नद्यश्चात्र महापुण्याः स्वर्गादभ्येत्य मेदिनीम्।।६९।।

धर्म्महानिर्न तेष्वस्ति न संहर्षो न शुक् तथा।
मर्य्यादाव्युत्क्रमश्चापि तेषु देशेषु सप्तसु।।७०।।
मगाश्च मागधाश्चैव मानसा मन्दगास्तथा।
मगा ब्राह्मणभूयिष्ठा मागधाः क्षत्रियास्तु ते।।७१।।
वैश्यास्तु मानसास्तेषां शूद्रा ज्ञेयास्तु मन्दगाः।
शाकद्वीपे स्थितैर्विष्णुः सूर्य्यरूपधरो हरिः।।७२।।

यथोक्तैरिज्यते सम्यक्कर्म्मभिर्नियतात्मभिः। शाकद्वीपस्ततो विप्राः क्षीरोदेन समन्ततः।।७३।।

शाकद्वीपप्रमाणेन बलयेनेव वेष्टितः। क्षीराब्धिः सर्व्वतो विप्राः पुष्कराख्येन वेष्टितः।।७४।।

यहां की सभी नदियां अति पुण्यप्रदा हैं। वे सभी स्वर्ग से पृथिवी पर उतरी हैं। यहां के नागरिकों में

अधर्म, संघर्ष अथवा शोक नहीं हैं। वे परस्पर अपनी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करते। यहां ब्राह्मण है मग, क्षत्रिय हैं मागध, वैश्य है मानस तथा शूद्र है मन्दग। भगवान् विष्णु सूर्यरूप से शाकद्वीप में विराजमान रहते हैं। ये चारों वर्ण नित्य एकाग्रता के साथ सूर्याराधन तत्पर रहते हैं। हे ब्राह्मणगण! शाक द्वीप अपने ही बराबर क्षीरोद सागर से बलयाकार घिरा है। यह शाकद्वीप तथा क्षीरसागर चतुर्दिक् पुष्कर द्वीप से घिरा है।।६९-७४।।

द्वीपेन शाकद्वीपात्तु द्विगुणेन समन्ततः। पुष्करे सवनस्यापि महावीतोऽभवत् सुतः।।७५।।
धातकिश्च तयोस्तद्वद्द्वे वर्षे नामसंज्ञिते। महावीतं तथैवान्यद्धातकीखण्डसंज्ञितम्।।७६।।
एकश्चात्र महाभागाः प्रख्यातो वर्षपर्व्वतः। मानसोत्तरसंज्ञो वै मध्यतो वलयाकृतिः।।७७।।
योजनानां सहस्राणि ऊर्ध्वं पञ्चाशदुच्छ्रितः।
तावदेव च विस्तीर्णः सर्व्वतः परिमण्डलः।।७८।।
पुष्करद्वीपवलयं मध्येन विभजन्निव। स्थितोऽसौ तेन विच्छिन्नं जातं वर्षद्वयं हि तत्।।७९।।
वलयाकारमेकैकं तयोर्म्मध्ये महागिरिः। दशवर्षसहस्राणि तत्र जीवन्ति मानवाः।।८०।।
निरामया विशोकाश्च रागद्वेषविवर्ज्जिताः।
अधमोत्तमो न तेष्वास्तां न वध्यवधकौ द्विजाः।।८१।।
नेर्ष्यासूया भयं रोषो दोषो लोभादिकं न च।
महावीतं बहिर्व्वर्षं धातकीखण्डमन्ततः।।८२।।

इस द्वीप के अधिपति सवन के दो पुत्र हैं। उनका नाम है महावीत एवं धातकि। इन दोनों पुत्रों के नाम से यहां के दो वर्ष हैं। इनका भी नाम है महावीत एवं धातकि खण्ड। हे महाभागवृन्द! इस द्वीप में मात्र एक ही वर्ष पर्वत है। उसका नाम है मानसोत्तर। यह वर्ष पर्वत इस द्वीप में वलयाकृति से स्थित है। यह एक हजार योजन विस्तार वाला तथा पचास योजन उच्च है। इसका परिमण्डल सभी ओर से इसी परिमाणानुरूप है। यह वर्षगिरि पुष्करद्वीप को मानों बांटकर बीच में विराज रहा है। इससे यह पुष्कर द्वीप भागद्वय वाला हो गया। ये वर्ष वलयाकृति में स्थित हैं। इन दोनों के बीच में महागिरी मानसोत्तर विराज रहा है। यहां के निवासी एक हजार वर्ष जीवित रहते हैं। वे निरोग, शोकरहित, राग-द्वेषादि विनिर्मुक्त हैं। हे द्विजगण! उनमें अधमोत्तम अथवा वध्य-वधक विभाग नहीं हैं। उनमें ईर्ष्या, असूया, रोष, भय, दोष, लोभादि नहीं हैं। मानसोत्तर पर्वत के अन्तः तथा बहिः में महावीत एवं धातकि खण्ड की स्थिति है।।७५-८२।।

मानसोत्तरशैलस्य देवदैत्यादिसेवितम्। सत्यानृते न तत्रास्तां द्वीपे पुष्करसंज्ञिते।।८३।।
न तत्र नद्यः शैला वा द्वीपे वर्षद्वयान्विते। तुल्यवेषास्तु मनुजा देवैस्तत्रैकरूपिणः।।८४।।
वर्णाश्रमाचारहीनं धर्म्माहरणवर्ज्जितम्। त्रयीवार्त्तादण्डनीतिशुश्रूषारहितं च तत्।।८५।।
वर्षद्वयं ततो विप्रा भौमस्वर्गोऽयमुत्तमः। सर्व्वस्य सुखदः कालो जरारोगविवर्ज्जितः।।८६।।

मानसोत्तर पर्वत देव-चैत्यादि से सेवित है। इस द्वीप पर (पुष्कर द्वीप में) सत्य-झूठ कुछ भी नहीं है। यहां के इन दो वर्षों में कहीं भी अन्य कोई नदी तथा पर्वत नहीं है। यहां के देवता तथा मनुष्य समान आकार तथा वेष वाले हैं। यहां वर्णाश्रमोचित आचार, व्यवहार, धर्मोक्त अनुष्ठान, त्रयी, वार्त्ता, दण्डनीति, गुरुसेवा

आदि कुछ भी नहीं है। तथापि यह दोनों वर्ष उत्तम तथा पृथिवी का स्वर्ग कहा गया है। यहां का काल सबको सुख देने वाला तथा जरा एवं रोग रहित है।।८३-८६।।

पुष्करे धातकीखण्डे महावीते च वै द्विजाः।
न्यग्रोधः पुष्करद्वीपे ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम्॥८७॥

तस्मिन्निवसति ब्रह्मा पूज्यमानः सुरासुरैः। स्वादूदकेनोदधिना पुष्करः परिवेष्टितः॥८८॥
समेन पुष्करस्यैव विस्तारान्मण्डलात्तथा। एवं द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः॥८९॥
द्वीपश्चैव समुद्रश्च समानौ द्विगुणौ परौ। पयांसि सर्व्वदा सर्व्वसमुद्रेषु समानि वै॥९०॥
न्यूनातिरिक्तता तेषां कदाचिन्नैव जायते। स्थालीस्थमग्निसंयोगादुद्रेकि सलिलं यथा॥९१॥

तथेन्दुवृद्धौ सलिलमम्भोधौ मुनिसत्तमाः।
अन्यूनानतिरिक्ताश्च वर्द्धन्त्यापो ह्रसन्ति च॥९२॥
उदयास्तमने त्विन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः।
दशोत्तराणि पञ्चैव अङ्गुलानां शतानि च॥९३॥

हे ब्राह्मणवृन्द! धातकि खण्ड तथा महावीत नाम वाले दोनों वर्ष युक्त पुष्कर द्वीप में एक वटवृक्ष है। यह ब्रह्मा का अत्यन्त उत्कृष्ट निवासस्थल है। ब्रह्मदेव सुर-असुरगण से पूजित होकर इस वृक्ष में रहते हैं। पुष्कर द्वीप अपने बराबर माप वाले स्वादु जल के सागर से घिरा है। इस प्रकार ये सातों द्वीप एक के बाद एक करके सागरों से घिरे हैं। द्वीप तथा सागर परस्परतः एक दूसरे के द्विगुण हैं। (जैसा ऊपर दिखाया गया है)। सातों सागरों की जलराशि परस्परतः समान है। इनमें कमी अथवा अधिक कभी नहीं होता। अग्निताप से जैसे थाली में रखा जल उफनता है, तदनुरूप चन्द्रमा की वृद्धि (पूर्णिमा) होने पर समुद्र जल भले ही उफनने लगता है, लेकिन उसकी जलमात्रा में कोई अधिकता अथवा कमी नहीं होती। हे महामुनि! शुक्ल-कृष्ण दोनों पक्षों में चन्द्रमा के उदय तथा अस्त में समुद्र का जल ११५ अंगुल बढ़ता तथा घटता है।।८७-९३।।

अपां वृद्धिक्षयौ दृष्टौ सामुद्रीणां द्विजोत्तमाः। भोजनं पुष्करद्वीपे तत्र स्वयमुपस्थितम्॥९४॥

भुञ्जन्ति षड्रसं विप्राः प्रजाः सर्व्वाः सदैव हि।
स्वादूदकस्य परितो दृश्यते लोकसंस्थितिः॥९५॥

द्विगुणा काञ्चनी भूमिः सर्व्वजन्तुविवर्जिता। लोकालोकस्ततः शैलो योजनायुतविस्तृतः॥९६॥
उच्छ्रयेणापि तावन्ति सहस्राण्यावलोहि सः। ततस्तमः समावृत्य तं शैलं सर्व्वतः स्थितम्॥९७॥
तमश्चाण्डकटाहेन समन्तात् परिवेष्टितम्। पञ्चाशत्कोटिविस्तारा सेयमुर्व्वी द्विजोत्तमाः॥९८॥
सहैवाण्डकटाहेन सद्वीपा समहीधरा। सेयं धात्री विधात्री च सर्व्वभूतगुणाधिका।

आधारभूता जगतां सर्व्वेषां सा द्विजोत्तमाः॥९९॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे समुद्रद्वीपपरिमाणवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः॥२०॥

—❋—

हे विप्रवर! समुद्र का जल एवंविध ही घटता तथा बढ़ता है। पुष्कर द्वीप में भोज्य वस्तु स्वयं आ जाती है। हे विप्रगण! इस द्वीप की सभी प्रजा षट्रसमय पान भोजन प्राप्त करती है। इस स्वादु सागर के पार लोगों का निवास नहीं दिखलाई देता है। वहां की भूमि स्वर्ण की है। उसका विस्तार पुष्कर की तुलना में दूना है। वहां कोई भी जीव-जन्तु नहीं है। तत्पश्चात् दस हजार योजन का लोकालोक पर्वत है। इसकी ऊंचाई उसके फैलाव इतनी है। घोर तमोमय अन्धकार इस पर्वत को ढंक कर सभी ओर से अवस्थित है। यह तमस्तोम चतुर्दिक् अण्डकटाह से घिरा है। हे समस्त ब्राह्मणवृन्द! इस प्रकार यह पृथिवी, द्वीप, पर्वत, अण्डकटाह पचास करोड़ योजन है। यही धात्री, विधात्री, सर्वभूत गुणाधिका तथा समस्त जगदाधारभूता है।।९४-९९।।

।।विंश अध्याय समाप्त।।



अथ एकविंशोऽध्यायः

पातालादि सात लोक तथा अनन्त का वर्णन

लोमहर्षण उवाच

विस्तार एष कथितः पृथिव्या मुनिसत्तमाः।
सप्ततिस्तु सहस्राणि तदुच्छ्रायोऽपि कथ्यते॥१॥
दशसाहस्रमेकैकं पातालं मुनिसत्तमाः। अतलं वितलञ्चैव नितलं सुतलं तथा॥२॥
तलातलं रसातलं पातालञ्चापि सप्तमम्।
कृष्णा शुक्लारुणा पीता शर्करा शैलकाञ्चनी॥३॥
भूमयो यत्र विप्रेन्द्रा वरप्रासादशोभिताः। तेषु दानवदैतेयजातयः शतशः स्थिताः॥४॥
नागानाञ्च महाङ्गानां ज्ञातयश्च द्विजोत्तमाः। स्वर्लोकादपि रम्याणि पातालानीति नारद॥५॥
प्राह स्वर्गसदोर्मध्ये पातालेभ्यो गतो दिवम्।
आह्लादकारिणः शुभ्रा मणयो यत्र सुप्रभाः॥६॥
नागाभरणभूषाश्च पातालं केन तत्समम्। दैत्यदानवकन्याभिरितश्चेतश्च शोभिते॥७॥
पाताले कस्य न प्रीतिर्विमुक्तस्यापि जायते।
दिवार्करश्मयो यत्र प्रभास्तन्वन्ति नातपम्॥८॥

लोमहर्षण कहते हैं—हे मुनिप्रवरगण! मैंने पृथिवी का विस्तार परिमाण कह दिया। उसकी ऊंचाई सत्तर हजार योजन कही गयी है। हे मुनिवरगण! अतल-वितल-नितल-सुतल-तलातल-रसातल-पाताल—ये सात पाताल हैं। अतल में कृष्णा, वितल में शुक्ला, नितल में अरुणा, सुतल में पीता, तलातल में शर्करा, रसातल

में शैलकाञ्चनी भूमि है। ये सभी उच्च-उच्च महलों तथा हवेलियों से शोभित हैं। यहां प्रासादों में सैकड़ों दैत्य-दानव तथा विपुल देह नाग रहते हैं। हे द्विजप्रवरगण! एक बार महर्षि नारद ने पाताल भ्रमण करने के उपरान्त स्वर्ग की सभा में जाकर कहा कि "मैं पाताल देखकर आया हूं। वह स्वर्ग से भी रमणीय है। वहां चित्त को आह्लादित करने वाली शुभ्र-सुप्रभ अनन्त मणियां विराजित हैं। ये सभी मणियां नागराजों की देहभूषण हैं। अतः पाताल की तुलना किससे की जाये? जहां नाना स्थानों पर दैत्य एवं दानव कन्यायें विचरती हैं, ऐसे पाताल के प्रति किस मुक्त पुरुष को प्रीति नहीं होगी? वहां नित्य सूर्यरश्मि से सब प्रकाशित होता है, तथापि धूप का ताप वहां नहीं होता।।१-८।।

शशिनश्च न शीताय निशि द्योताय केवलम्। भक्ष्यभोज्यमहापानमदमत्तैश्च भोगिभिः॥९॥

यत्र न ज्ञायते कालो गतोऽपि दनुजादिभिः।
वनानि नद्यो रम्याणि सरांसि कमलाकराः॥१०॥

पुंस्कोकिलादिलापाश्च मनोज्ञान्यम्बराणि च। भूषणान्यतिरम्याणि गन्धाद्यञ्चानुलेपनम्॥११॥

वीणावेणुमृदङ्गानां निःस्वनाश्च सदा द्विजाः।
एतान्यन्यानि रम्याणि भाग्यभोग्यानि दानवैः॥१२॥
दैत्योरगैश्च भुज्यन्ते पातालान्तरगोचरैः।
पातालानामधश्चास्ते विष्णोर्या तामसी तनुः॥१३॥
शेषाख्या यद्गुणान् वक्तुं न शक्ता दैत्यदानवाः।
योऽनन्तः पठ्यते सिद्धैर्देवदेवर्षिपूजितः॥१४॥

जहां प्रत्येक रात्रि में शशिधर केवल शोभा हेतु उदित होते हैं, तथापि अधिक शीत को नहीं फैलाते, जहां पर सुखभोग-परायण दनुजपुत्रगण भक्ष्य, भोज्य तथा उत्तमोत्तम पेय के पीने से मदमत्त होकर काल की गति का अनुभव नहीं कर पाते, यहां पर रम्य-रम्य वन, रम्य-रम्य नदियां तथा कमलकुल से उल्लसित सरोवर विद्यमान हैं, जहां पर नर कोकिलादि पक्षीगण की कलरव ध्वनि श्रुति गोचर होती रहती हैं। जहां अम्बरतल मनोहर है, भूषण रमणीय है तथा अनुलेपनादि सौरभमय है, जहां वीणा, वेणु तथा मृदंगादि विविध वाद्यध्वनि सदा उठती रहती है, उस पाताल तल के प्रति किसे प्रीति नहीं होगी? हे द्विजों! पाताल-तलादि निवासी दानव, दैत्य तथा उरग (सर्प) इनके अतिरिक्त भी अन्य रमणीक भोगयुक्त समस्त विषयों को सदा भोगते रहते हैं। पाताल तल के भी नीचे विष्णु का जो शेष नामक तामस तनु है, दैत्य-दानव कोई भी जिनका वर्णन कर सकने में समर्थ नहीं है, जो अनन्त कहे जाते हैं, जिनकी सिद्ध देवता, देवर्षिगण पूजा करते रहते हैं।।९-१४।।

सहस्रशिरसा व्यक्तः स्वस्तिकामलभूषणः।
फणामणिसहस्रेण यः स विद्योतयन् दिशः॥१५॥
सर्व्वान् करोति निर्वीर्य्यान् हिताय जगतोऽसुरान्।
मदाघूर्णितनेत्रोऽसौ यः सदैवैककुण्डलः॥१६॥

किरीटी स्रग्धरो भाति साग्निश्वेत इवाचलः। नीलवासा मदोत्सिक्तः श्वेतहारोपशोभितः॥१७॥

साभ्रगङ्गाप्रपातोऽसौ कैलासाद्रिरिवोत्तमः। लाङ्गलासक्तहस्ताग्रो बिभ्रन्मुशलमुत्तमम्॥१८॥

उपास्यते स्वयं कान्त्या यो वारुण्या च मूर्त्तया।
कल्पान्ते यस्य वक्त्रेभ्यो विषानलशिखोज्ज्वलः॥१९॥
संकर्षणात्मको रुद्रो निष्क्रम्यात्ति जगत्त्रयम्।
स बिभ्रच्छिखरीभूतमशेषं क्षितिमण्डलम्॥२०॥
आस्ते पातालमूलस्थः शेषोऽशेषसुरार्च्चितः।
तस्य वीर्य्यं प्रभावश्च स्वरूपं रूपमेव च॥२१॥

न हि वर्णयितुं शक्यं ज्ञातुं वा त्रिदशैरपि। यस्यैषा सकला पृथ्वी फणामणिशिखारुणा॥२२॥
आस्ते कुसुममालेव कस्तद्वीर्यं वदिष्यति। यदा विजृम्भतेऽनन्तो मदाघूर्णितलोचनः॥२३॥

जो सहस्र शिर वाले, व्यक्त मूर्त्ति, नाना मांगलिक भूषणों से भूषित होकर सहस्र फण की मणियों से दिशाओं को उद्भासित करते हैं, जगत् के हितार्थ जो असुरों को बलवीर्य रहित कर देते हैं, जिनके नेत्र मद के आवेश से घूर्णित से रहते हैं, जो सर्वदा एक ही कुण्डली में स्थित हैं, जो माला-मुकुट युक्त होकर अग्नियुक्त श्वेत पर्वत की तरह प्रतिभात होते हैं, जिनके वस्त्र नील वर्ण के हैं, जो मदपूर्ण होने से गर्वित हैं, जो श्वेत हार से सुशोभित हैं, जो सुरशैवालिनी (सुरनदी) के प्रपात से युक्त कैलाश शिखर की तरह विराजमान हैं, जिनकी उंगलियों में हल है, जो भीषण मूसलधारी हैं, मूर्त्तिमती कान्ति तथा वारुणी जिनकी सतत् उपासना करती रहती हैं, कल्पान्त काल में जिनके मुख समूह से विषाग्नि के समान समुज्ज्वल संकर्षण नामक रुद्रदेव निकल कर तीनों लोकों का ग्रास करते हैं, वे अशेष देवसमूह पूजित शेषदेव शिखरीभूत (अपने शिर पर) अशेष भूमण्डल को धारण करके पाताल मूल में अवस्थान करते हैं। उनके वीर्य, प्रभाव, स्वरूप तथा रूप को कौन जानता है? तथा उसका वर्णन तो देवता भी नहीं कर सकते। यह समस्त पृथिवी उनके ही फणों की मणि की शिखा पर अरुणवर्ण की कुसुम माला ऐसी विराजित है। उनके वीर्य तेज को कौन कह सकेगा? जब वे अनन्त मद से घूर्णित हो रहे नेत्रों से जंभाई लेते हैं।।१५-२३।।

तदा चलति भूरेषा साद्रितोयाधिकानना। गन्धर्व्वाप्सरसः सिद्धाः किन्नरोरगवारणाः॥२४॥
नान्तं गुणानां गच्छन्ति ततोऽनन्तोऽयमव्ययः। यस्य नागवधूहस्तैर्लापितं हरिचन्दनम्॥२५॥

मुहुः श्वासानिलायस्तं याति दिक्पटवासताम्।
यमाराध्य पुराणर्षिर्गर्गो ज्योतींषि तत्त्वतः॥२६॥

ज्ञातवान् सकलं चैव निमित्तपठितं फलम्। तेनेयं नागवर्य्येण शिरसा विधृता मही।

बिभर्त्ति सकलाँल्लोकान् स देवासुरमानुषान्॥२७॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे पातालप्रमाणकीर्त्तनं नामैकविंशोऽध्यायः।।२१।।



तब यह सशैल वन कानन पृथिवी विचलित हो जाती है। गन्धर्व, सिद्ध, अप्सरा, किन्नर, सर्पगण

उनके गुणों का पार नहीं पा सकते। तभी उन अव्यय पुरुष को अनन्त कहा गया है। नागवधुयें जिनके अंगों पर अपने हाथों से हरिचन्दन का लेप करती हैं, मानों किसी ने दिशाओं को वस्त्र पहना दिया। पुराण ऋषि गर्ग ने जिनकी उपासना द्वारा सभी ज्योतिष्क तत्व (नक्षत्र विद्या) को जान लिया, वे नागश्रेष्ठ मस्तक पर पृथिवी (ब्रह्माण्ड) धारण करते हैं। वे ही सुर-असुर-नर युक्त समस्त लोकों का पालन करते हैं।।२४-२७।।

।।एकविंश अध्याय समाप्त।।



अथ द्वाविंशोऽध्यायः

पाप, नरक वर्णन, पापों के अनुसार नरक प्राप्ति वर्णन, श्रीहरि के स्मरण से पापक्षय, स्वर्ग-नरक स्वरूप कथन

लोमहर्षण उवाच

ततश्चानन्तरं विप्रा नरका रौरवादयः। पापिनो येषु पात्यन्ते ताञ्छृणुध्वं द्विजोत्तमाः।।१।।
रौरवः शौकरो रोधस्तानो विशसनस्तथा। महाज्वालस्तप्तकुड्यो महालोभो विमोहनः।।२।।
रुधिरान्धो वसातप्तः कृमीशः कृमिभोजनः।
असिपत्रवनं कृष्णो लालाभक्षश्च दारुणः।।३।।
तथा पूयवहः पापो वह्निज्वालो ह्यधःशिराः। सदंशः कृष्णसूत्रश्च तमश्चावीचिरेव च।।४।।
श्वभोजनोऽथाप्रतिष्ठोमावीचिश्च तथापरः। इत्येवमादयश्चान्ये नरका भृशदारुणाः।।५।।

लोमहर्षण कहते हैं—हे विप्रवृन्द! पापीगण जिन नरकों में गिरते हैं, अब मैं उन रौरवादि नरक का विवरण कहता हूं। आप श्रवण करिये। रौरव, शौकर, रोध, ताल, विशसन्, महाज्वाल, तप्तकुड्य, महालोभ, विमोहन, रुधिरान्ध, वसातप्त, कृमीश, कृमिभोजन, असिपत्रवन, कृष्ण, लालाभक्ष, दारुण, यूपवह, पाप, वह्निजाल, अधःशिराः, सन्दंश, कृष्णसूत्र, तम, अवीचि, स्वभोजन, अप्रतिष्ठ, मरीचि इन सब तथा अन्यान्य और अति दारुण नरक-निकर में यमराज का अधिकार वर्त्तमान रहता है। यम के राज्य के इन सब घोर नरकों में शस्त्र, अग्नि तथा विष का प्रयोग करने वाले भयानक लोग जाते दिखलाई देते हैं। ऐसे पापी लोग इन नरकों में पतित हो जाते हैं।।१-५।।

यमस्य विषये घोराः शस्त्राग्निविषदर्शिनः। पतन्ति येषु पुरुषाः पापकर्म्मरताश्च ये।।६।।
कूटसाक्षी तथा सम्यक् पक्षपातेन यो वदेत्।
यश्चान्यदनृतं वक्ति स नरो याति रौरवम्।।७।।
भ्रूणहा पुरहन्ता च गोघ्नश्च मुनिसत्तमाः। यान्ति ते रौरवं घोरं यश्चोच्छ्‌वासनिरोधकः।।८।।

सुरापो ब्रह्महा हर्त्ता सुवर्णस्य च शूकरे। प्रयाति नरके यश्च तैः संसर्गमुपैति वै॥९॥
राजन्यवैश्यहा चैव तथैव गुरुतल्पगः। तप्तकुम्भे स्वसृगामी हन्ति राजभटञ्च यः॥१०॥
माध्वीविक्रयकृद्वध्यपालः केसरविक्रयी। तप्तलोहे पतन्त्येते यश्च भक्तं परित्यजेत्॥११॥

झूठी गवाही, पक्षपात, झूठ बोलना रौरव नरक में पतित करता है। हे मुनिवर! गर्भपात, नगरध्वंस, भ्रूणहत्या, पुर विध्वंसी, गोवधकारी, गला घोंट कर श्वास बन्द करने वाले रौरव नरक में जाते हैं। मद्यप, ब्रह्महत्यारे, स्वर्ण चोर शौकर नरक में जाते हैं। जो इन पतितों के संसर्ग में रहता है, वह भी उसी नरक में जाता है। क्षत्रिय, वैश्य के हत्यारे, गुरुपत्नीगामी, भगिनीगामी तप्तकुंभ नरक प्राप्त करते हैं। जो शहद बेचते हैं, वध करने वाले पशु पालते हैं, केसर बेचते हैं अथवा भक्तों-आश्रितों का त्याग करते हैं, वे तप्तलौह नरक जाते हैं।।६-११।।

सुतां स्नुषाञ्चापि गत्वा महाज्वाले निपात्यते।
अवमन्ता गुरूणां यो यश्चाक्रोष्टा नराधमः॥१२॥
वेददूषयिता यश्च वेदविक्रयकश्च यः।
अगम्यगामी यश्च स्यात् ते यान्ति शबलं द्विजाः॥१३॥
चौरो विमोहे पतति मर्य्यादादूषकस्तथा। देवद्विजपितृद्वेष्टा रत्नदूषयिता च यः॥१४॥
स याति कृमिभक्ष्ये वै कृमीशे तु दुरिष्टिकृत्।
पितृदेवातिथीन् यस्तु पर्य्यश्नाति नराधमः॥१५॥
लालाभक्ष्ये स यात्युग्रे शरकर्त्ता च वेधके।
करोति कर्णिनो यश्च यश्च खड्गादिकृन्नरः॥१६॥
प्रयान्त्येते विशसने नरके भृशदारुणे। असत्प्रतिग्रहीता च नरके यात्यधोमुखे॥१७॥
अयाज्ययाजकस्तत्र तथा नक्षत्रसूचकः। कृमिपूये नरश्चैको याति मिष्टान्नभुक् सदा॥१८॥
लाक्षामांसरसानाञ्च तिलानां लवणस्य च।
विक्रेता ब्राह्मणो याति तमेव नरकं द्विजाः॥१९॥

जो पुत्री अथवा पुत्रवधू से गमन करते हैं, वे महाज्वाल नरक जाते हैं। गुरुओं की अवमानना करने वाला अथवा उनके प्रति आक्रोश दिखाने वाला, वेददूषक, वेदविक्रेता, अगम्या स्त्री से गमन करने वाला विविध मिश्र नरकों में जाता है। चोर अथवा अपनी मर्यादा का उल्लंघन करने वाला विमोह नरक जाता है। देव, द्विज तथा पिता से द्वेष करने वाला, रत्नदूषक कृमिभक्ष्य नरक में, दूषित यज्ञकर्त्ता कृमीश नरक में, पितर, अतिथि परिभावक व्यक्ति लालाभक्ष्य नरक में, शर निर्माण करने वाला उत्कट वेधक नरक में, चुगलखोर, खड्ग आदि शस्त्र निर्माता अति भीषण विशासन नरक में, असत् दान लेने वाला अधोमुख नरक में, अयाज्य को (अनाधिकारी) को यज्ञ कराने वाले, नक्षत्रों के सूचक, अकेले मिठाई भक्षण करने वाले कृमिपूय नरक में, लाख-मांस-रस-तिल तथा लवण विक्रेता ब्राह्मण भी उसी नरक में जाता है।।१२-१९।।

मार्ज्जारकुक्कुटच्छागश्ववराहविहङ्गमान्। पोषयन्नरकं याति तमेव द्विजसत्तमाः॥२०॥

रङ्गोपजीवी कैवर्त्तः कुण्डाशी गरदस्तथा।
सूची माहिषिकश्चैव पर्व्वगामी च यो द्विजः॥२१॥

अगारदाही मित्रघ्नः शकुनिग्रामयाजकः। रुधिरान्धे पतन्त्येते सोमं विक्रीणते च ये॥२२॥

मधुहा ग्रामहन्ता च याति वैतरणीं नरः। रेतःपानादिकर्त्तारो मर्य्यादाभेदिनश्च ये॥२३॥

ते कृच्छ्रे यान्त्यशौचाश्च कुहकाजीविनश्च ये।
असिपत्रवनं याति वनच्छदी वृथैव यः॥२४॥

बिड़ाल, मुर्गा, बकरा, अश्व, वराह, पक्षी को पालने वाला भी उसी नरक में जाता है। रंग से जीविका चलाने वाले, केवट, जारपुत्र के अन्न को खाने वाला, विष देने वाला, दर्जी, भैंस से जीविका चलाने वाला, गृहदाह करने वाला, मित्रघाती, ग्रामयाजी, सोमविक्रेता, शकुन ज्ञाता, रुधिरान्ध नरक में जाता है। मधु हरण करने वाला, ग्राम दग्ध करने वाला वैतरणी में जाता है। वीर्य पीने वाला, मर्यादा भंग करने वाला, अपवित्र, छल से जीवन निर्वाह करने वाला कृच्छ्र नरक जाता है। वृथा वृक्षों को काटने वाला असिपत्र नरक जाता है।।२०-२४।।

औरभ्रिका मृगव्याधा वह्निज्वाले पतन्ति वै।
यान्ति तत्रैव ते विप्रा यश्चापाकेषु वह्निदः॥२५॥

व्रतोपलोपको यश्च स्वाश्रमाद्विच्युतश्च यः। सन्दंशयातनामध्ये पततस्तावुभावपि॥२६॥

दिवा स्वप्नेषु स्यन्दन्ते ये नरा ब्रह्मचारिणः। पुत्रैरध्यापिता ये तु ते पतन्ति श्वभोजने॥२७॥

भेड़ पालकर जीविका चलाने वाला, मृगव्याध वह्निज्वाल नरक में जाता है। अपाक में (जो बीज अग्नि में डालना अविहित है) अग्नि देने वाला ब्राह्मण पूर्वोक्त वह्निज्वाल में जाता है। व्रतलोपी अथवा आश्रम मर्यादा से भ्रष्ट सन्दंश नरक यातना भोगता है। दिन में वीर्यपात करने वाला ब्रह्मचारी तथा पुत्र से पढ़ने वाला पिता, ये दोनों ही स्वभोजन नरक में गिरते हैं।।२५-२७।।

एते चान्ये च नरकाः शतशोऽथ सहस्रशः।
येषु दुष्कृतकर्म्माणः पच्यन्ते यातनागताः॥२८॥

तथैव पापान्येतानि तथान्यानि सहस्रशः। भुज्यन्ते जातिपुरुषैर्नरकान्तरगोचरैः॥२९॥

वर्णाश्रमविरुद्धञ्च कर्म्म कुर्व्वन्ति ये नराः।
कर्म्मणा मनसा वाचा निरयेषु पतन्ति ते॥३०॥

अधःशिरोभिर्दृश्यन्ते नारकैर्दिवि देवताः। देवाश्चाधोमुखान् सर्व्वानधः पश्यन्ति नारकान्॥३१॥

स्थावराः कृमयोऽब्जाश्च पक्षिणः पशवो नराः।
धार्म्मिकास्त्रिदशास्तद्वन्मोक्षिणश्च यथाक्रमम्॥३२॥

सहस्रभागः प्रथमाद्द्वितीयोऽनुक्रमात्तथा। सर्व्वे ह्येते महाभागा यावन्मुक्तिसमाश्रयाः॥३३॥

यावन्तो जन्तवः स्वर्गे तावन्तो नरकौकसः।
पापकृद्याति नरकं प्रायश्चित्तपराङ्मुखः॥३४॥
पापानामनुरूपाणि प्रायश्चित्तानि यद्यथा। तथा तथैव संस्मृत्य प्रोक्तानि परमर्षिभिः॥३५॥
पापे गुरूणि गुरूणि स्वल्पान्यल्पे च तद्विदः।
प्रायश्चित्तानि विप्रेन्द्रा जगुः स्वायम्भुवादयः॥३६॥
प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपःकर्म्मात्मकानि वै।
यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम्॥३७॥
कृते पापेऽनुतापो वै यस्य पुंसः प्रजायते। प्रायश्चित्तन्तु तस्यैकं हरिसंस्मरणं परम्॥३८॥

इस प्रकार के तथा अन्य कई प्रकार के अनेक भयानक नरक हैं। दुष्कृत करने वाले उन नरकों में जाकर विषम यातना पाते हैं। पूर्व में जितने प्रकार के पातक कहे गये हैं, ऐसे हजारों-हजार पातक हैं। नरक में डूबे स्त्री-पुरुष-लोभी इन सब पापों का फल भोग करते हैं। जो वाणी-कर्म-मन द्वारा वर्णाश्रम के विरुद्ध कर्म करते हैं, वे लोग नरक में डूब जाते हैं। नारकी लोग नीचे सिर वाले होते हैं। वे स्वर्गगत देवगण को देखते हैं। देवता अधोमुख होकर नारकीयों को देखते हैं।

हे महाभागगण! स्थावर, जंगम, कृमि, जलज, स्थलज, पशु, पक्षी, मनुष्य कर्मानुरूप धार्मिक हो सकते हैं। यहां तक कि देवत्व भी तथा मुक्ति भी कर्म से उनको प्राप्त हो सकेगी। जितने जीव स्वर्ग में हैं, नरक में भी उसी संख्या में जीव रहते हैं। जो पापी प्रायश्चित्त का अनुष्ठान नहीं करते, वे ही नरक भोग करते हैं। परमर्षियों में अनेक विचार करके पाप के ही अनुरूप प्रायश्चित्त की व्यवस्था किया है। गुरुतर पाप का प्रायश्चित्त गुरुतर तथा स्वल्प पाप स्वल्प प्रायश्चित्त कहा गया है। हे विप्रेन्द्रगण! स्वायम्भुव आदि ने तप तथा कर्मात्मक अनेक प्रायश्चित्त विधि कहा है। इन सब प्रायश्चित्त में कृष्णा का स्मरण प्रधान प्रायश्चित्त है। पाप करने के पश्चात् जिसको अनुताप होता है, उसके ही लिये प्रायश्चित्त का विधान है। इसमें जो प्रायश्चित्त है, उसमें एकमात्र हरिस्मरण ही श्रेष्ठ है।।२८-३८।।

प्रातर्निशि तथा सन्ध्यामध्याह्लादिषु संस्मरन्।
नारायणमवाप्नोति सद्यः पापक्षयान्नरः॥३९॥
विष्णुसंस्मरणात् क्षीणसमस्तक्लेशसञ्चयः।
मुक्तिं प्रयाति भो विप्रा विष्णोस्तस्यानुकीर्त्तनात्॥४०॥
वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्च्चनादिषु।
तस्यान्तरायो विप्रेन्द्रा देवेन्द्रत्वादिकं फलम्॥४१॥

पापी मनुष्य प्रातः, मध्याह्न, सायाह्न तथा रात्रि को नारायण का नाम स्मरण करने से सद्यः उनको ही प्राप्त करते हैं। यहां तक कि विष्णु स्मरण से उसके सभी पाप तथा पापजनित क्लेश क्षयीभूत होते हैं तथा विष्णुनाम कीर्त्तन द्वारा वह मुक्ति पर्यन्त प्राप्त कर लेता है। हे विप्रवृन्द! जप, होम तथा अर्चनादि व्यापार में वासुदेव जिसके मन में हैं, उसके लिये देवेन्द्रत्व लाभरूपी फल भी मुक्तिलाभ में विघ्न ही है।।३९-४१।।

क्व नाकपृष्ठगमनं पुनरावृत्तिलक्षणम्। क्व जपो वासुदेवेति मुक्तिबीजमनुत्तमम्॥४२॥
तस्मादहर्निशं विष्णु संस्मरन् पुरुषो द्विजः।
न याति नरकं शुद्धः संक्षीणाखिलपातकः॥४३॥
मनःप्रीतिकरः स्वर्गो नरकस्तद्विपर्य्ययः। नरकस्वर्गसंज्ञे वै पापपुण्ये द्विजोत्तमाः॥४४॥
वस्त्वेकमेव दुःखाय सुखायेर्ष्योदयाय च।
कोपाय च यतस्तस्माद्वस्तु दुःखात्मकं कुतः॥४५॥
तदेव प्रीतये भूत्वा पुनर्दुःखाय जायते। तदेव कोपाय यतः प्रसादाय च जायते॥४६॥
तस्माद्दुःखात्मकं नास्ति न च किञ्चित्सुखात्मकम्।
मनसः परिणामोऽयं सुखदुःखादिलक्षणः॥४७॥

कहां संसार में पुनः पतन रूपी स्वर्गगमन! कहां मुक्तिनिदान वासुदेव का मन्त्ररूप! फलस्वरूप इन दोनों में अनेक भेद हैं। अतः द्विजगण दिन-रात विष्णु स्मरण करें। विष्णु स्मरण द्वारा व्यक्ति निष्पाप तथा विशुद्ध हो जाता है। उसे नरक नहीं जाना पड़ता। हे ब्राह्मणगण! स्वर्ग मनुष्य का मन प्रसन्न करने वाला है। नरक इससे ठीक उल्टा है। पाप को स्वर्ग तथा पुण्य को नरक संज्ञा से अभिहित किया गया है। एक ही वस्तु एक बार सुख है, वही एक बार दुःख है। यही कोप, ईर्ष्या, दया तथा प्रीति एवं प्रसन्नता का निमित्त हो सकता है। अतः तत्त्वतः कुछ भी दुःखरूप तथा सुखरूप नहीं है। सुख-दुःख केवल मन की ही परिणति है। यह सब मन का परिणाम है।।४२-४७।।

ज्ञानमेव परं ब्रह्मज्ञानं बन्धाय चेष्यते। ज्ञानात्मकमिदं विश्वं न ज्ञानाद्विद्यते परम्॥४८॥
विद्याविद्ये हि भो विप्रा ज्ञानमेवावधार्य्यताम्।
एवमेतन्मयाख्यातं भवतां मण्डलं भुवः॥४९॥
पातालानि च सर्व्वाणि तथैव नरका द्विजाः।
समुद्राः पर्व्वताश्चैव द्वीपा वर्षाणि निम्नगाः।
संक्षेपात् सर्व्वमाख्यातं किं भूयः श्रोतुमिच्छथ॥५०॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे पातालनरककीर्त्तनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः।।२२।।



ज्ञान ही परम ब्रह्म है। अज्ञान बंधन का कारण है। यह विश्व ज्ञानात्मक है। ज्ञान से बड़ा मित्र कोई नहीं है। हे ब्राह्मणवृन्द! ज्ञान को ही विद्या से जानकर धारण करें। हे विप्रगण! यह मैंने आप लोगों से समस्त पाताल, भूमण्डल, सर्व नरक समूह, समस्त सागर, शैल, द्वीप, वर्ष तथा सरिता आदि का वर्णन कर दिया। यह सब मैंने संक्षेप में कहा। अब आप क्या जानना चाहते हैं?।।४८-५०।।

।।द्वाविंश अध्याय समाप्त।।



अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

भूः, भुवः स्वः आदि का वर्णन, आकाश तथा पृथिवी का परिमाण वर्णन

मुनय ऊचुः

कथितं भवता सर्व्वमस्माकं सकलं तथा।
भुवर्लोकादिकाँल्लोकान् श्रोतुमिच्छामहे वयम्॥१॥
तथैव ग्रहसंस्थानं प्रमाणानि यथा तथा। समाचक्ष्व महाभाग यथावल्लोमहर्षण॥२॥

मुनिगण कहते हैं—हे महाभाग! लोमहर्षण! आपने हमसे सब कुछ कहा है। अब भुवर्लोकादि लोकों का वर्णन, ग्रह संस्थान तथा प्रमाण आदि यथायथ रूप से सुनने की इच्छा है।।१-२।।

लोमहर्षण उवाच

रविचन्द्रमसोर्यावन्मयूखैरवभास्यते। ससमुद्रसरिच्छैला तावती पृथिवी स्मृता॥३॥
यावत्प्रमाणा पृथिवी विस्तारपरिमण्डला। नभस्तावत्प्रमाणं हि विस्तारपरिमण्डलम्॥४॥
भूमेर्योजनलक्षे तु सौरं विप्रास्तु मण्डलम्।
लक्षे दिवाकराच्चापि मण्डलं शशिनः स्थितम्॥५॥
पूर्णे शतसहस्रे तु योजनानां निशाकरात्। नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नमुपरिष्टात् प्रकाशते॥६॥

लोमहर्षण कहते हैं—रवि तथा चन्द्र की किरणों से जहां तक यह सरिता, समुद्र, पर्वत समन्विता पृथिवी अवभासित होती हैं, वहीं तक पृथिवी कही गयी है। पृथिवी का विस्तार जितना है, यह आकाश भी उतना विस्तृत है। हे विप्रों! पृथिवी से एक लाख योजन दूर सूर्यमण्डल अवस्थित है। चन्द्रमण्डल दिवाकर से भी एक लाख योजन की दूरी पर अवस्थित है। चन्द्रमा से सैकड़ों, हजार योजन (एक लाख योजन ऊर्ध्व में) ऊर्ध्वस्थ है नक्षत्र मंडल।।३-६।।

द्विलक्षे चोत्तरे विप्रा बुधो नक्षत्रमण्डलात्।
तावत् प्रमाणभागे तु बुधस्याप्युशना स्थितः॥७॥
अङ्गारकोऽपि शुक्रस्य तत्प्रमाणे व्यवस्थितः। लक्षद्वयेन भौमस्य स्थितो देवपुरोहितः॥८॥
सौरिर्बृहस्पतेरूद्ध्वं द्विलक्षे समवस्थितः। सप्तर्षिमण्डलं तस्माल्लक्षमेकं द्विजोत्तमाः॥९॥
ऋषिभ्यस्तु सहस्राणां शतादूद्ध्वं व्यवस्थितः।
मेढीभूतः समस्तस्य ज्योतिश्चक्रस्यवैध्रवः॥१०॥
त्रैलोक्यमेत् कथितं संक्षेपेण द्विजोत्तमा।
इज्याफलस्य भूरेषा इज्या चात्र प्रतिष्ठिता॥११॥

ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोको यत्र ते कल्पवासिनः। एकयोजनकोटी तु महर्लोको विधीयते॥१२॥

चन्द्र से ऊर्ध्व नक्षत्रमण्डल से दो लाख योजन ऊपर में बुध ग्रह स्थित है। बुध ग्रह से दो लाख योजन ऊर्ध्व में शुक्र है, उससे दो लाख योजन ऊर्ध्वस्थ है मंगल। मंगल से दो लाख योजन ऊर्ध्व में बृहस्पति है। उससे दो लाख योजन ऊर्ध्व में शनैश्चर है। हे द्विजप्रवरगण! शनैश्चर से एक लाख योजन ऊर्ध्व में सप्तर्षिमण्डल है। इससे एक लाख योजन ऊर्ध्व में समस्त ज्योतिश्चक्र का केन्द्र ध्रुवमण्डल स्थित है। हे द्विजोत्तमों! यह मैंने संक्षेप में त्रैलोक्यवार्त्ता कही। यह भूमि यज्ञफल की आधार रूप है। यहां यज्ञ अधिष्ठित है। ध्रुवस्थान के ऊर्ध्व में महर्लोक है। वहां कल्पवासी रहते हैं। महर्लोक का परिमाण है एक करोड़ योजन।।७-१२।।

द्वे कोट्यौ तु जनो लोको यत्र ते ब्रह्मणः सुताः।
सनन्दनाद्याः कथिता विप्राश्चामलचेतसः॥१३॥
चतुर्गुणोत्तरं चोद्ध्वंजनलोकात्तपः स्मृतम्।
वैराजा यत्र ते देवाः स्थिता देहविवर्ज्जिताः॥१४॥

षड्गुणेन तपोलोकात् सत्यलोको विराजते। अपुनर्मारकं यत्र सिद्धादिमुनिसेवितम्॥१५॥

पादगम्यं तु यत् किञ्चिद्वस्त्वस्ति पृथिवीमयम्।
स भूर्लोकः समाख्यातो विस्तारोऽस्य मयोदितः॥१६॥

जनलोक दो कोटि योजन वाला है। यहां सनन्दन आदि विमल मति ब्रह्मा के पुत्रगण रहते हैं। यह उनकी निवास भूमि है। जनलोक से चौगुनी ऊंचाई पर तपोलोक है। यहां वैराज नामक देह रहित देवता विराजित हैं। तपोलोक से छः गुना ऊपर सत्यलोक है। यहां सिद्ध मुनिगण रहते हैं। यहां आने वाला पुनः मृत्यु यन्त्रणा नहीं भोगता। पैरों से जाने योग्य जो कुछ पार्थिव वस्तु है, वह भूर्लोक है। इसका विस्तार इतिपूर्व मैंने कहा था।।१३-१६।।

भूमिसूर्य्यान्तरं यत्तु सिद्धादिमुनिसेवितम्।
भुवर्लोकस्तु सोऽप्युक्तो द्वितीयो मुनिसत्तमाः॥१७॥
ध्रुवसूर्य्यान्तरं यत्तु नियुतानि चतुर्द्दश।
स्वर्लोकः सोऽपि कथितो लोकसंस्थानचिन्तकैः॥१८॥

त्रैलोक्यमेतत् कृतकं विप्रैश्च परिपठ्यते। जनस्तपस्तथा सत्यमिति चाकृतकं त्रयम्॥१९॥

कृतकाकृतको मध्ये महर्लोक इति स्मृतः।
शून्यो भवति कल्पान्ते योऽन्तं न च विनश्यति॥२०॥
एते सप्त महालोका मया वः कथिता द्विजाः।
पातालानि च सप्तैव ब्रह्माण्डस्यैष विस्तरः॥२१॥

एतदण्डकटाहेन तिर्य्यगूद्ध्वंमधस्तथा। कपित्थस्य यथा बीजं सर्व्वतो वै समावृतम्॥२२॥

हे मुनिश्रेष्ठगण! भूमि तथा सूर्य के मध्य भाग में जो सिद्ध-मुनि सेवित स्थान है, वह भुवर्लोक है। ध्रुव तथा सूर्य के अन्तराल में जो चौदह नियुत (एक कोटि चालीस लाख योजन) स्थान है, लोकस्थिति ज्ञाताओं के मत से वह स्वर्लोक है। विप्रगण इस त्रैलोक्य को कृतक कहते हैं तथा जन, तपः एवं सत्यलोक को अकृतक कहते हैं। यह त्रैलोक्य तथा जो जन तपः प्रभृति है, इसी का मध्य भाग महर्लोक कृतकाकृतक कहा गया है। यह लोक कल्पान्त में शून्य होता है, तथापि कल्पान्त में इसका नाश नहीं होता। हे द्विजों! इन सात महालोक, सात पाताल तथा ब्रह्माण्ड का विस्तार आपसे कहा। जैसे कठबेल का बीज सर्वत्र ढंका रहता है, तदनुरूप ब्रह्माण्ड (तिरछे) तिर्यक् एवं ऊर्ध्व-अधः रूप से अण्डकटाह द्वारा घिरा रहता है।।१७-२२।।

दशोत्तरेण पयसा द्विजाश्चाण्डञ्च तद्वृतम्। स चाम्बुपरिवारोऽसौ वह्निना वेष्टितो बहिः॥२३॥
वह्निस्तु वायुना वायुर्विप्रास्तु नभसावृतः। आकाशोऽपि मुनिश्रेष्ठा महता परिवेष्टितः॥२४॥
दशोत्तराण्यशेषाणि विप्राश्चैतानि सप्त वै। महान्तञ्च समावृत्य प्रधानं समवस्थितम्॥२५॥
अनन्तस्य न तस्यान्तः संख्यानं चापि विद्यते। तदनन्तमसंख्यातं प्रमाणेनापि वै यतः॥२६॥

यह अण्डकटाह अपने से दस गुणित जल से घिरा है। वह जल अपने से दस गुनी अग्नि से तथा अग्नि अपने से दस गुने वायु से तथा वायु अपने से दस गुने आकाश से घिरा है। यह आकाश अपने से दस गुने महत्तत्त्व से घिरा है। इस महत्तत्त्व को आवेष्ठित किये हुये प्रकृति (प्रधान) स्थित है। यह अनन्त है। इसका अन्त किंवा संख्या नहीं की जा सकती। यह प्रमाण द्वारा भी असंख्येय है। अनन्त की क्या संख्या?।।२३-२६।।

हेतूभूतमशेषस्य प्रकृतिः सा परा द्विजाः। अण्डानान्तु सहस्राणां सहस्राण्ययुतानि च॥२७॥
ईदृशानां तथा तत्र कोटिकोटिशतानि च। दारुण्यग्निर्यथा तैलं तिले तद्वत् पुमानिह॥२८॥
प्रधानेऽवस्थितो व्यापी चेतनात्मनिवेदनः। प्रधानञ्च पुमांश्चैव सर्व्वभूतानुभूतया॥२९॥

विष्णुशक्त्या द्विजश्रेष्ठा धृतौ संश्रयधर्म्मिणौ।
तयोः सैव पृथग्भावे कारणं संश्रयस्य च॥३०॥

क्षोभकारणभूता च सर्गकाले द्विजोत्तमाः।
यथा शैत्यं जले वातो बिभर्त्ति कणिकागतम्॥३१॥

जगच्छक्तिस्तथा विष्णोः प्रधानपुरुषात्मकम्। यथा च पादपो मूलस्कन्धशाखादिसंयुतः॥३२॥

आद्यबीजात् प्रभवति बीजान्यन्यानि वै ततः।
प्रभवन्ति ततस्तेभ्यो भवन्त्यन्ये परे द्रुमाः॥३३॥

तेऽपि तल्लक्षणद्रव्यकारणानुगता द्विजाः। एवमव्याकृतात् पूर्व्वं जायन्ते महदादयः॥३४॥

विशेषान्तास्ततस्तेभ्यः सम्भवन्ति सुरादयः।
तेभ्यश्च पुत्रास्तेषां तु पुत्राणां परमे सुताः॥३५॥

हे ब्राह्मणवृन्द! यह परमा प्रकृति समस्त ब्रह्माण्ड की हेतुरूपा है। हजारों-हजार, सैकड़ों-करोड़ ब्रह्माण्ड

इस प्रकृति में अधिष्ठित हैं। जैसे काष्ठ में अग्नि तथा तिल में तैल रहता है, वैसे ही चैतन्यात्मा सर्वव्यापक पुरुष इस प्रकृति में व्याप्त, स्थित रहता है। इसी प्रकार परस्परतः संश्रयधर्मी प्रधान (प्रकृति) तथा पुरुष सर्वभूतानुभूत विष्णुशक्ति द्वारा विधृत (धारण किये गये) हैं। उक्त प्रकृति तथा पुरुष में से प्रकृति ही पुरुष से पृथक् भावेन सब का कारण हो जाती है। सृष्टि के आरम्भ में यह प्रकृति ही सृष्टिकालीन क्षुब्धावस्था का कारण हो जाती है। हे द्विजोत्तमवृन्द! जैसे वायु जलकण से प्राप्त शैत्य को धारण करता है, तदनुरूप सृष्टिकाल में उक्त विष्णुशक्ति प्रकृति-पुरुषात्मक जगत् को धारण करती है। जैसे—मूल, स्कन्ध तथा शाखा आदि समन्वित पौधे से बीज का ढेर उत्पन्न हो जाता है, उन बीजों से पुनः वृक्षराशि प्रादुर्भूत होती है तथा वह पादप श्रेणी (वृक्षराशि) पुनः उसी प्रकार के लक्षण वाले द्रव्यों तथा कारण के अनुगत हो जाती है, वैसे ही अविकृत मूला प्रकृति से महद् आदि विशेषान्त प्रादुर्भूत होते हैं तथा इन सबसे ही देव आदि उत्पन्न हो जाते हैं। इन सुर आदि से ही उनके पुत्र, पौत्रादि उत्पन्न होते हैं।।२७-३५।।

वीजाद्वृक्षप्ररोहेण यथा नापचयस्तरोः। भूतानां भूतसर्गेण नैवास्त्यपचयस्तथा॥३६॥

सन्निधानाद्यथाकाशकालाद्याः कारणं तरोः।
तथैवापरिणामेन विश्वस्य भगवान् हरिः॥३७॥

वृक्ष के बीजों से वृक्षप्ररोह प्रादुर्भूत होने पर जैसे बीज को उत्पन्न करने वाले वृक्ष का नाश नहीं होता, वैसे ही भूत से भूतसृष्टि होने पर भूत (प्राणीगण) का अभाव नहीं होता। जिस प्रकार से बीज सन्निधान के कारण आकाश तथा कालादि (ऋतु आदि) वृक्ष के कारण होते हैं, तदनुरूप भगवान् श्रीहरि विश्व का अपरिणाम होने के क्रम द्वारा इस दृश्य विश्व के कारण हैं।।३६-३७।।

व्रीहिबीजे यथा मूलं नालं पत्राङ्कुरौ तथा।
काण्डकोषास्तथा पुष्पं क्षीरं तद्वच्च तण्डुलः॥३८॥

तुषाः कणाश्च सन्तो वै यान्त्याविर्भावमात्मनः। प्ररोहहेतुसामग्र्यमासाद्य मुनिसत्तमाः॥३९॥

तथा कर्म्मस्वनेकेषु देवाद्यास्तनवः स्थिताः।
विष्णुशक्तिं समासाद्य प्ररोहमुपयान्ति वै॥४०॥

स च विष्णुः परं ब्रह्म यतः सर्व्वमिदं जगत्।
जगच्च यो यत्र चेदं यस्मिन् विलयमेष्यति॥४१॥

तद्ब्रह्म परमं धाम सदसत् परमं पदम्। यस्य सर्व्वमभेदेन जगदेतच्चराचरम्॥४२॥

स एव मूलप्रकृतिर्व्यक्तरूपी जगच्च सः। तस्मिन्नेव लयं सर्वं याति तत्र च तिष्ठति॥४३॥

कर्त्ता क्रियाणां स च इज्यते क्रतुः, स एव तत् कर्म्मफलञ्च तस्य यत्।
युगादि यस्माच्च भवेदशेषतो हरेर्न किञ्चिद्व्यतिरिक्तमस्ति तत्॥४४॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे भूर्भुवःस्वरादिकीर्त्तनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः।।२३।।

जिस प्रकार से एकमात्र धान के बीज से ही मूल, नाल, पत्र, अंकुर, काण्ड, कोश, पुष्प, क्षीर, तण्डुल, तुष तथा चावल के कण की उत्पत्ति होती है, वैसे ही आत्मा से समस्त दृश्य विश्व आविर्भूत होता है। हे मुनिश्रेष्ठवृन्द! विविध कर्मों की परम्परा के ही कारण से देवादि देह विराजमान रहता है, जैसे प्ररोह ही पौधे में समष्टि रूप से पत्र-अंकुरादिरूपेण व्यक्त होता है। ये सभी देह विष्णुशक्ति से ही व्यक्त होते हैं। ये विष्णु परमब्रह्म हैं। उनसे ही समस्त जगत् उत्पन्न होता है। वे जगन्मय हैं। उनमें समस्त जगत् अवस्थान करता है तथा उनमें ही लीन हो जाता है। वे ब्रह्म ही सत्-असत्रूपी परम ब्रह्म हैं। यह समस्त चराचर जगत् उनमें अभिन्न रूप से विराजित रहता है। वे ही मूला प्रकृति भी हैं। यह जगत् उनकी व्यक्त आकृति है। सब कुछ उन प्रभु में ही लीन होता है तथा उनमें ही अवस्थान करता है। वे सभी क्रिया के कर्त्ता हैं। वे यज्ञरूपेण पूज्य हैं। वे ही यज्ञरूपी कर्म के फल भी हैं। यज्ञ का, कर्म का फल भी वे हैं। युग आदि जो कुछ है, वह सब उन अनन्त हरि से ही आविर्भूत है। उनसे अलग कुछ भी नहीं है।।३८-४४।।

।।त्रयोविंश अध्याय समाप्त।।



अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

शिशुमार चक्र तथा ध्रुव की स्थिति का वर्णन

लोमहर्षण उवाच

तारामयं भगवतः शिशुमाराकृतिः प्रभो। दिवि रूपं हरेर्यत्तु तस्य पुच्छे स्थितो ध्रुवः।।१।।

सैष भ्रमन् भ्रामयति चन्द्रादित्यादिकान् ग्रहान्।
भ्रमन्तमनु तं यान्ति नक्षत्राणि च चक्रवत्।।२।।

सूर्य्याचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहैः सह। वातानीकमयैर्बन्धैर्ध्रुवे बद्धानि तानि वै।।३।।

शिशुमाराकृतिः प्रोक्तं यद्रूपं ज्योतिषां दिवि। नारायणः परं धाम तस्याधारः स्वयं हृदि।।४।।

लोमहर्षण कहते हैं—भगवान् विभु हरि का जो तारकमय स्वर्गीय शिशुमार आकृति वाला रूप है, उसकी पूंछ में ध्रुव स्थित हैं। उनके भ्रमण करते रहने से ही सूर्य-चन्द्र तथा ग्रह भी भ्रमण कर पाते हैं। उनके भ्रमणकाल में नक्षत्रपुंज चक्रवत् उनका अनुसरण करते हैं। सूर्य, चन्द्र, तारा तथा नक्षत्र, अन्य ग्रहगण वायुरूपी बन्धन से ध्रुव आबद्ध रहते हैं। स्वर्ग में जो शिशुमार (सुईस) की आकृति का ज्योतिष्क वर्णित है, परम धाम नारायण ही उसके आधार हैं।।१-४।।

उत्तानपादतनयस्तमाराध्य प्रजापतिम्। स ताराशिशुमारस्य ध्रुवः पुच्छे व्यवस्थितः।।५।।

आधारः शिशुमारस्य सर्व्वाध्यक्षो जनार्द्दनः।
ध्रुवस्य शिशुमारस्य ध्रुवे भानुर्व्यवस्थितः।।६।।

तदाधारं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम्। येन विप्रा विधानेन तन्मे शृणुत साम्प्रतम्॥७॥
विवस्वानष्टभिर्मासैर्ग्रसत्यापो रसात्मिकाः। वर्षत्यम्बु ततश्चान्नमन्नादमखिलं जगत्॥८॥

ध्रुव का आधार है शिशुमार तथा सूर्य के आधार हैं ध्रुव। उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव ने प्रजापति नारायण की आराधना किया था, जिसके परिणाम से इस तारामय शिशुमार की पूंछ में उनको स्थान मिला। ध्रुव का आधार है शिशुमार तथा सूर्य के आधार हैं ध्रुव तथा वे ही सूर्य के अवस्थान (स्थान) हैं। हे ब्राह्मणवृन्द! जिस क्रम से सूर्यदेव देवता-मनुष्य तथा असुरों से परिवृत हैं तथा जगत् जिस तरह इन सूर्य में विद्यमान है, वह मुझसे श्रवण करें। विवस्वान् सूर्य क्रमशः आठ महीने रस (जल) ग्रहण करते हैं, तत्पश्चात् इस रसात्मक जल की वर्षा करतें हैं। इस जल से अन्नोत्पत्ति होती है तथा अन्न से समस्त जगत् परिचालित होता रहता है।।५-८।।

विवस्वानंशुभिस्तीक्ष्णैरादाय जगतो जलम्। सोमं पुष्यत्यथेन्दुश्च वायुनाड़ीमयैर्दिवि॥९॥

जलैर्विक्षिप्यतेऽभ्रेषु धूमाग्न्यनिलमूर्त्तिषु।
न भ्रश्यन्ति यतस्तेभ्यो जलान्यभ्राणि तान् यतः॥१०॥
अभ्रस्थाः प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः।
संस्कारं कालजनितं विप्राश्चासाद्य निर्म्मलाः॥११॥
सरित्समुद्रा भौमास्तु तथापः प्राणिसम्भवाः।
चतुष्प्रकारा भगवानादत्ते सविता द्विजाः॥१२॥

विवस्वान् सूर्य अपनी तीक्ष्ण किरणों से जगत् से जल खींच कर उससे चन्द्रमा को परिपुष्ट करते हैं। ये चन्द्र वायुमय अपनी नाड़ियों से जल को धूआं, ज्योति तथा वायुमूर्त्तिमय बादलों में (मेघ में) विकीर्ण कर देता है। इन मेघों से जलराशि भ्रष्ट (गिरती नहीं) नहीं होती, तभी इसे अभ्र कहा है। अभ्रवृन्द में जो जल अवस्थित है, वह कालजनित संस्कार से निर्मल होकर वायु से परिचालित होता है और भूमि पर गिरता है। हे ब्राह्मणगण! जल चार प्रकार का कहा जाता है। यथा—सरिता में पड़ा जल, समुद्र में पड़ा जल, पृथिवी का जल (भूगर्भस्थ) तथा प्राणी से उत्पन्न जल। इसे ही प्रभु आदित्य ग्रहण करते हैं।।९-१२।।

आकाशगङ्गासलिलं तथाहृत्य गभस्तिमान्।
अनभ्रगतमेवोर्व्यां सद्यः क्षिपति रश्मिभिः॥१३॥
तस्य संस्पर्शनिर्धूतपापपङ्को द्विजोत्तमाः।
न याति नरकं मर्त्यो दिव्यं स्नानं हि तत्स्मृतम्॥१४॥

दृष्टसूर्य्यं हि तद्वारि पतत्यभ्रैर्विना दिवः। आकाशगङ्गासलिलं तद्गोभिः क्षिप्यते रवेः॥१५॥
कृत्तिकादिषु ऋक्षेषु विषमेष्वम्बु यद्दिवः। दृष्ट्वार्कं पतितं ज्ञेयं तद्गाङ्गं दिग्गजोद्धृतम्॥१६॥
युग्मर्क्षेषु तु यत्तोयं पतत्यर्कोद्धृतं दिवः। तत्सूर्य्यरश्मिभिः सद्यः समादाय निरस्यते॥१७॥

उभयं पुण्यमत्यर्थं नृणां पापहरं द्विजाः।
आकाशगङ्गासलिलं दिव्यं स्नानं द्विजोत्तमाः॥१८॥

यत्तु मेघैः समुत्सृष्टं वारि तत् प्राणिनां द्विजाः।
पुष्णात्योषधयः सर्व्वा जीवनायामृतं हि तत्॥१९॥

तेन वृद्धिं परां नीतः सकलश्चौषधीगणः। साधकः फलपाकान्तः प्रजानान्तु प्रजायते॥२०॥

सूर्यदेव तो आकाशगंगा का जल लेकर अपनी किरणों के द्वारा बिना मेघ के ही पृथिवी पर बरसा देते हैं। हे ब्राह्मणों! इस जल के संस्पर्श से मानव का पाप रूपी कीचड़ धुल जाता है। हे द्विजोत्तमगण! वह नरक में नहीं जाता, यह दिव्य स्नान है। इस आकाशगंगा का जल सूर्य किरणों से स्पृष्ट होकर बिना मेघ से ही स्वर्ग से बरसता है। फलतः सूर्य किरणों की सहायता से वह भूतल पर गिरता है। कृत्तिका आदि विषम नक्षत्र में आकाश से जो जल गिरता है, वह दिग्गजों द्वारा फेंका गया सूर्य से स्पृष्ट स्वर्गगंगा का जल है। युग्म नक्षत्रों में आकाश से जो सूर्य द्वारा लाया जल गिरता है, वह सूर्य रश्मि द्वारा तत्काल बरसाया जल जाने। हे द्विजप्रवरगण! आकाशगंगा में उल्लिखित दोनों जल (आकाशगंगा तथा स्वर्गगंगा का जल) अत्यन्त पवित्र तथा पापहर होता है। इस जल का स्पर्श ही दिव्य स्नान स्वरूप है। इसके अतिरिक्त जो जल मेघ बरसाता है, उससे सभी औषधियां पुष्ट होती हैं तथा वह अमृत रूप हो जाता है। सभी औषधियां उसके द्वारा पुष्ट होती हैं। प्राणीगण के जीवनधारणार्थ वे सब तथा वह जल अमृत हो जाता है। सभी औषधियों को वह जल बढ़ाता है। फल पकने पर औषधि (अन्न) ही प्रजावर्ग के जीवन धारण का प्रधान उपाय है।।१३-२०।।

तेन यज्ञान् यथाप्रोक्तान्मानवाः शास्त्रचक्षुषः। कुर्व्वतेऽहरहश्चैव देवानाप्याययन्ति ते॥२१॥

एवं यज्ञाश्च वेदाश्च वर्णाश्च द्विजपूर्व्वकाः। सर्व्वदेवनिकायाश्च पशुभूतगणाश्च ये॥२२॥

वृष्ट्या धृतमिदं सर्व्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्। सापि निष्पाद्यते वृष्टिः सवित्रा मुनिसत्तमाः॥२३॥

आधारभूतः सवितुर्ध्रुवो मुनिवरोत्तमाः। ध्रुवस्य शिशुमारोऽसौ सोऽपि नारायणाश्रयः॥२४॥

हृदि नारायणस्तस्य शिशुमारस्य संस्थितः। विभर्त्ता सर्व्वभूतानामादिभूतः सनातनः॥२५॥

एवं मया मुनिश्रेष्ठा ब्रह्माण्डं समुदाहृतम्। भूसमुद्रादिभिर्युक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ॥२६॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे ध्रुवसंस्थितिनिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥२४॥



शास्त्रद्रष्टा मनुष्य लोग औषधि (अन्न) से ही सभी यज्ञकृत्य सम्पन्न करके अट्ठारह देवताओं को तृप्त करते हैं। औषधि से ही यज्ञ, वेद, द्विजाति, चारों वर्ण, देवता, पशु, भूत आदि तृप्त होते हैं। अतएव यह सचराचर समग्र जगत् एकमात्र वृष्टि से ही धारण किया गया है। यह वृष्टि सूर्य द्वारा ही सम्पन्न होती है। हे मुनिश्रेष्ठगण! वे सूर्य ध्रुव के आधार पर अधिष्ठित रहते हैं। ध्रुव का आधार है शिशुमार तथा उसके भी आधार हैं नारायण। नारायण शिशुमार के हृदय में अवस्थान करते हैं। वे ही सभी प्राणीगण के विधाता तथा आदिभूत सनातन हैं। हे मुनिप्रवरगण! मैंने भूमि-सागर समन्वित ब्रह्माण्ड का विवरण कहा। अब आप क्या सुनना चाहते हैं?।।२१-२६।।

।।चतुर्विंश अध्याय समाप्त।।



अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

शारीरतीर्थ का वर्णन तथा तीर्थ माहात्म्य पाठफल

मुनय ऊचुः

पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च।
वक्तुमर्हसि धर्मज्ञ श्रोतुं नो वर्त्तते मनः॥१॥

मुनिगण कहते हैं—हे धर्मज्ञ! पृथिवी पर जितने भी तीर्थ तथा पुण्यायतन हैं, उनका विवरण सुनने हेतु मन व्यग्र हो रहा है, आप उन सबका वर्णन करें।।१।।

लोमहर्षण उवाच

यस्त हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्। विद्या तपश्च कीर्त्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥२॥
मनो विशुद्धं पुरुषस्य तीर्थं, वाचां तथा चेन्द्रियनिग्रहश्च।
एतानि तीर्थानि शरीरजानि, स्वर्गस्य मार्गं प्रतिबोधयन्ति॥३॥
चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानैर्न शुध्यति। शतशोऽपि जलैर्धौतं सुराभाण्डमिवाशुचि॥४॥
न तीर्थानि न दानानि न व्रतानि न चाश्रमाः।
दुष्टाशयं दम्भरुचिं पुनन्ति व्युत्थितेन्द्रियम्॥५॥
इन्द्रियाणि वशे कृत्वा यत्र यत्र वसेन्नरः। तत्र तत्र कुरुक्षेत्रं प्रयागं पुष्करं तथा॥६॥

लोमहर्षण कहते हैं—जिनमें विद्या कीर्त्ति तथा तप की स्थिति है, उनका हाथ, पैर तथा मन संयत रहता है। वे ही तीर्थफल लाभ करते हैं। विशुद्ध मन, वाक्यसंयम तथा इन्द्रियनिग्रह, ये सभी पुरुष के शरीर के तीर्थ हैं। ये सभी तीर्थ स्वर्गमार्ग का निर्देश करते हैं। जिनका चित्त शुद्ध नहीं है, दुष्ट चित्त है, जल द्वारा धोये मदिरापात्र के समान तीर्थ स्नान का फल उनको नहीं मिलता। वे कभी शुद्ध नहीं होते। तीर्थ, दान, व्रत, आश्रम द्वारा इन्द्रियों में आसक्त दंभी को कभी शुद्धि नहीं मिलती। इन्द्रियों को वश में करके मनुष्य चाहे जहां क्यों न रहे, वही स्थान उसके लिये कुरुक्षेत्र तथा प्रयाग एवं पुष्कर है। वहीं उसे इन तीर्थों का फल प्राप्त होगा।।२-६।।

तस्माच्छृणुध्वं वक्ष्यामि तीर्थान्यायतनानि च।
संक्षेपेण मुनिश्रेष्ठाः पृथिव्यां यानि कानि वै॥७॥
विस्तरेण न शक्यन्ते वक्तुं वर्षशतैरपि प्रथमं पुष्करं तीर्थं नैमिषारण्यमेव च॥८॥
प्रयागञ्च प्रवक्ष्यामि धर्म्मारण्यं द्विजोत्तमाः। धेनुकं चम्पकारण्यं सैन्धवारण्यमेव च॥९॥
पुण्यञ्च मगधारण्यं दण्डकारण्यमेव च। गया प्रभासं श्रीतीर्थं दिव्यं कनखलं तथा॥१०॥
भृगुतुङ्गं हिरण्याक्षं भीमारण्यं कुशस्थलीम्। लोहाकुलं सकेदारं मन्दरारण्यमेव च॥११॥

महाबलं कोटितीर्थं सर्व्वपापहरं तथा। रूपतीर्थं शूकरवं चक्रतीर्थं महाफलम्॥१२॥
योगतीर्थं सोमतीर्थं तीर्थं साहोटकं तथा। तीर्थं कोकामुखं पुण्यं बदरीशैलमेव च॥१३॥
सोमतीर्थं तुङ्गकूटं तीर्थं स्कन्दाश्रमं तथा। कोटितीर्थञ्चाग्निपदं तीर्थं पञ्चशिखं तथा॥१४॥
धर्म्मोद्भवं कोटितीर्थं तीर्थं बाधप्रमोचनम्। गङ्गाद्वारं पञ्चकूटं मध्यकेसरमेव च॥१५॥
चक्रप्रभं मतङ्गञ्च क्रुशदण्डञ्च विश्रुतम्। दंष्ट्राकुण्डं विष्णुतीर्थं सार्व्वकामिकमेव च॥१६॥
तीर्थं मत्स्यतिलञ्चैव वदरी सुप्रभं तथा। ब्रह्मकुण्डं वह्निकुण्डं तीर्थं सत्यपदं तथा॥१७॥

हे मुनिप्रवर! अतएव पृथिवी पर स्थित तीर्थ तथा पुण्यमय आयतनों का नाम सुनें। पृथिवी के सभी तीर्थों का विवरण तो सौ वर्षों में भी कोई नहीं कह सकता। अतः संक्षेप में कहता हूं। श्रवण करें। विस्तार से तो सौ वर्षों में भी नहीं कहा जा सकता है। द्विजवर्य! प्रथम तीर्थ पुष्कर है। तब नैमिषारण्य, प्रयाग, धर्मारण्य, धेनुक, चम्पकारण्य, सैन्धवारण्य, पवित्र मगधारण्य, दण्डकारम्य, गया, प्रभास, श्रीतीर्थ, दिव्य कनखल, भृगुतुंग, हिरण्याक्ष, भीमारण्य, द्वारकापुरी, लोहाकुल, केदार, मन्दरारण्य, महाबल, कोटितीर्थ, सर्वपापहार, रूपतीर्थ, शूकरव, महाफलदायक चक्रतीर्थ, योगतीर्थ, सोमतीर्थ, साहोटक तीर्थ, कोकामुख, पवित्र बदरीशैल, सोमतीर्थ, तुंगकूट, स्कन्दाश्रम, कोटितीर्थ, अग्निपद तीर्थ, पञ्चशिख, धर्मोद्भव कोटितीर्थ, बाधप्रमोचन तीर्थ, गंगाद्वार, पञ्चकूट, मध्यकेसर, चक्रप्रभ, मतंग, प्रसिद्ध क्रुशदण्ड, दंष्ट्राकुण्ड, विष्णुतीर्थ, सार्वकामिक तीर्थ, मत्स्यतिल, बदरी, सुप्रभ, ब्रह्मकुण्ड, वह्निकुण्ड, सत्यपदतीर्थ।।७-१७।।

चतुःस्त्रोतश्चतुःशृङ्गं शैलं द्वादशधारकम्। मानसं स्थूलशृङ्गञ्च स्थूलदण्डं तथोर्व्वशी॥१८॥
लोकपालं मनुवरं सोमाह्वं शैलमेव च। सदाप्रभं मेरुकुण्डं तीर्थं सोमाभिषेचनम्॥१९॥
महास्त्रोतं कोटरकं पञ्चधारं त्रिधारकम्। सप्तधारैकधारञ्च तीर्थं चामरकण्टकम्॥२०॥
शालग्रामं चक्रतीर्थं कोटिद्रुममनुत्तमम्। विल्वप्रभं देवह्रदं तीर्थं विष्णुह्रदं तथा॥२१॥
शङ्खप्रभं देवकुण्डं तीर्थं वज्रायुधं तथा। अग्निप्रभञ्च पुन्नागं देवप्रभमनुत्तमम्॥२२॥

विद्याधरं सगान्धर्व्वं श्रीतीर्थं ब्रह्मणो ह्रदम्।
सातीर्थं लोकपालाख्यं मणिपूरगिरिं तथा॥२३॥

तीर्थं पञ्चह्रदञ्चैव पुण्यं पिण्डारकं तथा। मलव्यं गोप्रभावञ्च गोवरं वटमूलकम्॥२४॥

स्नानदण्डं प्रयागञ्च गुह्यं विष्णुपदं तथा।
कन्याश्रमं वायुकुण्डं जम्बूमार्गं तथोत्तमम्॥२५॥

गभस्तितीर्थञ्च तथा ययातिपतनं शुचि। कोटितीर्थं भद्रवटं महाकालवनं तथा॥२६॥
नर्म्मदातीर्थमपरं तीर्थवज्रं तथार्व्वुदम्। पिङ्गुतीर्थं सवासिष्ठं तीर्थञ्च पृथुसङ्गमम्॥२७॥

तीर्थं दौर्व्वासिकं नाम तथा पिञ्जरकं शुभम्।
ऋषितीर्थं ब्रह्मतुङ्गं वसुतीर्थं कुमारिकम्॥२८॥

शत्रुतीर्थं पञ्चनदं रेणुकातीर्थमेव च। पैतामहञ्च विमलं रुद्रपादं तथोत्तमम्॥२९॥

मणिमत्तञ्च कामाख्यं कृष्णातीर्थं कुशाविलम्।
यजनं याजनञ्चैव तथैव ब्रह्मवालुकम्॥३०॥

पुष्पन्यासं पुण्डरीकं मणिपूरं तथोत्तरम्। दीर्घसत्रं हयपदं तीर्थं चानशनं तथा॥३१॥
गङ्गोद्भेदं शिवोद्भेदं नर्म्मदोद्भेदमेव च। वस्त्रापदं दारुबलं छायारोहणमेव च॥३२॥
सिद्धेश्वरं मित्रबलं कालिकाश्रममेव च। वटावटं भद्रवटं कौशाम्बी च दिवाकरम्॥३३॥
द्वीपं सारस्वतञ्चैव विजयं कामदं तथा। रुद्रकोटिं सुमनसं तीर्थं सद्भावनामितम्॥३४॥
स्यमन्तपञ्चकं तीर्थं ब्रह्मतीर्थं सुदर्शनम्। सततं पृथिवीसर्व्वं पारिप्लवपृथूदकौ॥३५॥
दशाश्वमेधिकं तीर्थं सर्पिजं विषयान्तिकम्। कोटितीर्थं पञ्चनदं वाराहं यक्षिणीह्रदम्॥३६॥
पुण्डरीकं सोमतीर्थं मुञ्जवाटं तथोत्तमम्। बदरीवनमासीनं रत्नमूलकमेव च॥३७॥
लोकद्वारं पञ्चतीर्थं कपिलातीर्थमेव च। सूर्य्यतीर्थं शङ्खिनी च गवां भवनमेव च॥३८॥
तीर्थञ्च यक्षराजस्य ब्रह्मावर्त्तं सुतीर्थकम्। कामेश्वरं मातृतीर्थं तीर्थं शीतवनं तथा॥३९॥
स्नानलोमापहञ्चैव माससंसरकं तथा। दशाश्वमेधं केदारं ब्रह्मोदुम्बरमेव च॥४०॥

सप्तर्षिकुण्डञ्च तथा तीर्थं देव्याः सुजम्बुकम्।
ईहास्पदं कोटिकूटं किन्दानं किञ्जपं तथा॥४१॥

कारण्डवं चावेध्यञ्च त्रिविष्टपमथापरम्। पाणिखातं मिश्रकञ्च मधूवटमनोजवौ॥४२॥

कौशिकी देवतीर्थञ्च तीर्थञ्च ऋणमोचनम्।
दिव्यञ्च नृगधूमाख्यं तीर्थं विष्णुपदं तथा॥४३॥
अमराणां ह्रदं पुण्यं कोटितीर्थं तथापरम्।
श्रीकुञ्जं शालितीर्थञ्च नैमिषेयञ्च विश्रुतम्॥४४॥

ब्रह्मस्थानं सोमतीर्थं कन्यातीर्थं तथैव च। ब्रह्मतीर्थं मनस्तीर्थं तीर्थं वै कारुपावनम्॥४५॥
सौगन्धिकवनञ्चैव मणितीर्थं सरस्वती। ईशानतीर्थं प्रवरं पावनं पाञ्चयज्ञिकम्॥४६॥
त्रिशूलधारं मांहेन्द्रं देवस्थानं कृतालयम्। शाकम्भरी देवतीर्थं सुवर्णाक्षं कलिं ह्रदम्॥४७॥
क्षीरस्रवं विरूपाक्षं भृगुतीर्थं कुशोद्भवम्। ब्रह्मतीर्थं ब्रह्मयोनिं नीलपर्व्वतमेव च॥४८॥
कुब्जाम्बकं भद्रवटं वसिष्ठपदमेव च। स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं कालिकाश्रममेव च॥४९॥
रुद्रावर्त्तं सुगन्धाश्वं कपिलावनमेव च। भद्रकर्णह्रदञ्चैव शङ्कुकर्णह्रदं तथा॥५०॥
सप्तसारस्वतञ्चैव तीर्थमौशनसं तथा। कपालमोचनञ्चैव अवकीर्णञ्च काम्यकम्॥५१॥
चतुःसामुद्रिकञ्चैव शतिकञ्च सहस्त्रिकम्। रेणुकं पञ्चवटकं विमोचनमथौजसम्॥५२॥
स्थाणुतीर्थं कुरोस्तीर्थं स्वर्गद्वारं कुशध्वजम्। विश्वेश्वरं मानवकं कूपं नारायणाश्रयम्॥५३॥

चतुःश्रोत, चतुःशृंग, शैल, द्वादशधारक, उर्वशि तथा लोकपाल, मनुवर, सोमाह्वशैल, सदाप्रभ,

मेरुकुण्ड, सोमाभिषेचन तीर्थ, महास्रोत, कोटरक, पञ्चधार, त्रिधार, एकाधार, सप्तधार, चामरकंटक तीर्थ, शालग्राम, चक्रतीर्थ, कोटिद्रुम, बिल्वप्रभ, देवह्रद, विष्णुह्रद, शंखप्रभ, देवकुण्ड, वज्रायुध, अग्निप्रभ, पुंनाग, देवप्रभ, विद्याधर, गान्धर्व, श्रीतीर्थ, ब्रह्महद, सातीर्थ, लोकपाल, मणिपूरगिरि, पञ्चह्रद, पिण्डारक, मलव्य, गोप्रभाव, गोवर, वटमूलक, स्नानदण्ड, गुह्य, विष्णुपद, प्रयाग, कन्याश्रम, वायुकुण्ड, जम्बूमार्ग, गभस्तितीर्थ, ययातिपतन, कोटितीर्थ, भद्रवट, महाकालवन, नर्मदातीर्थ, तीर्थव्रज्र, अर्बुद, पिंगुतीर्थ, वासिष्ठ, पृथसंगम, दौर्वासिक, पिञ्जरक, ऋषितीर्थ, ब्रह्मतुंग, वसुतीर्थ, कुमारिक, शक्रतीर्थ, पञ्चनद, रेणुकातीर्थ, पैतामह, विमल, रुद्रपाद, मणिमत्त, कामाख्य, कृष्णतीर्थ, कुशाविल, यजन, याजन, ब्रह्मवालुक, पुष्पन्यास, पुण्डरीक, मणिपूर, दीर्घसत्र, हयपद, अनशन, गंगोद्भेद, शिवोद्भेद, नर्मदोद्भेद, वस्त्रापद, दारुवल, छायारोहण, सिद्धेश्वर, मित्रबल, कालिकाश्रम, वटावट, भद्रवट, कौशाम्बी, दिवाकर, द्वीप, सारस्वत, विजय, कामद, रुद्रकोटि, सुमनस, सद्रावनामित, स्यमन्तपञ्चक, ब्रह्मतीर्थ, सुदर्शन, सतत, पृथिवीसर्व, पारिप्लव, पृथूदक, दशाश्वमेधिक, सर्पिज, विषयान्तिक, कोटितीर्थ, पञ्चनद, वाराह, यक्षिणीह्रद, पुण्डरीक, सोमतीर्थ, मुञ्जवाट, बदरीवन, रत्नमूलक, लोकद्वार, पञ्चतीर्थ, कपिलातीर्थ; सूर्यतीर्थ, शंखिनी, गर्वा भवन, यक्षराजतीर्थ, ब्रह्मावर्त्त, सुतीर्थक, कामेश्वर, मातृतीर्थ, शीतवन, स्नानलोमापह, माससंसरक, दशाश्वमेध, केदार, ब्रह्मोदुम्बर, सप्तर्षिकुण्ड, सुजम्बुक, ईहास्पद, कोटिकूट, किंदान, किंजप, कारण्डव, अवेध्य, त्रिविष्टप, पाणिखात, मिश्रक, मधूवट, मनोजव, कौशिकी, देवतीर्थ, ऋणमोचन, नृगधूम, विष्णुपद, देवताओं का पवित्र ह्रद कोटितीर्थ, श्रीकुञ्ज, शालितीर्थ, प्रसिद्ध नैमिषेय, ब्रह्मस्थान, सोमतीर्थ, कन्यातीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, मनस्तीर्थ, कारुपावन, सौगन्धिकवन, मणितीर्थ, सरस्वती, ईशानतीर्थ, प्रवर, पावन, पाञ्चयज्ञिक, त्रिशूलधार, माहेन्द्र, देवस्थान, कृतालय, शाकम्भरी, देवतीर्थ, सुवर्णा, कलि, ह्रद, क्षीरश्रव, विरूपाक्ष, भृगुतीर्थ, कुशोद्भव, ब्रह्मतीर्थ, ब्रह्मयोनि, नीलपर्वत, कुब्जाम्बक, भद्रवट, वसिष्ठपद, स्वर्गद्वार, प्रजाद्वार, कालिकाश्रम, रुद्रावर्त, सुगन्धाश्व, कपिलावन, भद्रकर्णह्रद, शंकुकर्णह्रद, सप्तसारस्वत, औशनस, कपालमोचन, अवकीर्ण, काम्यक, चतुःसामुद्रिक, शतिक, सहस्रिक, रेणुक, पञ्चवट, विमोचन, औजस, स्थाणुतीर्थ, कुरुतीर्थ, स्वर्गद्वार, कुशध्वज, विश्वेश्वर, मानवक, कूप तथा नारायणाश्रय।।१८-५३।।

गङ्गाह्रदं वटञ्चैव वदरीपाटनं तथा। इन्द्रमार्गमेकरात्रं क्षीरकावासमेव च।।५४।।
सोमतीर्थं दधीचञ्च श्रुततीर्थञ्च भो द्विजाः। कोटितीर्थस्थलीञ्चैव भद्राकालीह्रदं तथा।।५५।।
अरुन्धतीवनञ्चैव ब्रह्मावर्त्तं तथोत्तमम्। अश्ववेदी कुब्जावनं यमुनाप्रभवं तथा।।५६।।
वीरं प्रमोक्षं सिन्धूत्थमृषिकुल्या सकृत्तिकम्।
उर्व्वीसङ्क्रमणञ्चैव मायाविद्योद्भवं तथा।।५७।।
महाश्रमो वैतसिकारूपं सुन्दरिकाश्रमम्। बाहुतीर्थं चारुनदीं विमलाशोकमेव च।।५८।।
तीर्थं पञ्चनदञ्चैव मार्कण्डेयस्य धीमतः। सोमतीर्थं सितोदञ्च तीर्थं मत्स्योदरी तथा।।५९।।
सूर्य्यप्रभं सूर्यतीर्थमशोकवनमेव च। अरुणास्पदं कामदञ्च शुक्रतीर्थं सवालुकम्।।६०।।
पिशाचमोनचञ्चैव सुभद्राह्रदमेव च। कुण्डं विमलदण्डस्य तीर्थं चण्डेश्वरस्य च।।६१।।
ज्येष्ठस्थानह्रदञ्चैव पुण्यं ब्रह्मसरं तथा। जैगीषव्यगुहा चैव हरिकेशवनं तथा।।६२।।

अजामुखसरश्चैव घण्टाकर्णह्रदं तथा। पुण्डरीकह्रदश्चैव वापी कर्कोटकस्य च॥६३॥
सुवर्णास्योदपानञ्च श्वेततीर्थह्रदं तथा। कुण्डं घर्घरिकायाश्च श्यामाकूपञ्च चन्द्रिका॥६४॥
श्मशानस्तम्भकूपञ्च विनायकह्रदं तथा। कूपं सिन्धूद्भवञ्चैव पुण्यं ब्रह्मसरं तथा॥६५॥
रुद्रावासं तथा तीर्थं नागतीर्थं पुलोमकम्। भक्तह्रदं क्षीरसरः प्रेताधारं कुमारकम्॥६६॥
ब्रह्मावर्त्तं कुशावर्त्तं दधिकर्णोदपानकम्। शृङ्गतीर्थं महातीर्थं तीर्थश्रेष्ठा महानदी॥६७॥
दिव्यं ब्रह्मसरं पुण्यं गयाशीर्षाक्षयं वटम्। दक्षिणं चोत्तरञ्चैव गोमयं रूपशीतिकम्॥६८॥
कपिलाह्रदं गृध्रवटं सावित्रीह्रदमेव च। प्रभासनं सीतवनं योनिद्वारञ्च धेनुकम्॥६९॥
धन्यकं कोकिलाख्यञ्च मतङ्गह्रदमेव च। पितृकूपं रुद्रतीर्थं शक्रतीर्थं सुमालिनम्॥७०॥

ब्रह्मस्थानं सप्तकुण्डं मणिरत्नह्रदं तथा।
कौशिक्यं भरतञ्चैव तीर्थं ज्येष्ठालिका तथा॥७१॥

विश्वेश्वरं कल्पसरः कन्यासंवेद्यमेव च। निश्चीवाप्रभवश्चैव वसिष्ठाश्रममेव च॥७२॥
देवकूटञ्च कूपञ्च वसिष्ठाश्रममेव च। वीराश्रमं ब्रह्मसरो ब्रह्मवीरावकापिली॥७३॥

कुमारधारा श्रीधारा गौरीशिखरमेव च।
शनुः कुण्डोऽथ तीर्थञ्च नन्दितीर्थं तथैव च॥७४॥

कुमारवासं श्रीवासमौर्वीशीतीर्थमेव च। कुम्भकर्णह्रदश्चैव कौशिकीह्रदमेव च॥७५॥

धर्म्मतीर्थं कामतीर्थं तीर्थमुद्दालकं तथा।
सन्ध्यातीर्थं कारतोयं कपिलं लोहितार्णवम्॥७६॥

शोणोद्भवं वंशगुल्ममृषभं कलतीर्थकम्। पुण्यावतीह्रदं तीर्थं तीर्थं बदरिकाश्रमम्॥७७॥
रामतीर्थं पितृवनं विरजातीर्थमेव च। मार्कण्डेयवनश्चैव कृष्णतीर्थं तथा वटम्॥७८॥
रोहिणीकूपप्रवरमिन्द्रद्युम्नसरञ्च यत्। सानुगर्त्तं समाहेन्द्रं श्रीतीर्थं श्रीनदं तथा॥७९॥
इषुतीर्थं वार्षभञ्च कावेरीह्रदमेव च। कन्यातीर्थञ्च गोकर्णं गायत्रीस्थानमेव च॥८०॥
बदरीह्रदमन्यच्च मध्यस्थानं विकर्णकम्। जातीह्रदं देवकूपं कुशप्रवणमेव च॥८१॥
वर्व्वदेवव्रतश्चैव कन्याश्रमह्रदं तथा। तथान्यद्वालखिल्यानां सपूर्व्वाणां तथापरम्॥८२॥

ताथान्यच्च महर्षीणामखण्डितह्रदं तथा।
तीर्थेष्वेतेषु विधिवत् सम्यक् श्रद्धासमन्वितः॥८३॥
स्नानं करोति यो मर्त्त्यः सोपवासो जितेन्द्रियः।
देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितृन् सन्तर्प्य च क्रमात्॥८४॥
अभ्यर्च्य देवतास्तत्र स्थित्वा च रजनीत्रयम्।
पृथक् पृथक् फलं तेषु प्रतितीर्थेषु भो द्विजाः॥८५॥

प्राप्नोति हयमेधस्य नरो नास्त्यत्र संशयः।
यस्त्विदं शृणुयान्नित्यं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम्।
पठेच्च श्रावयेद्वापि सर्व्वपापैः प्रमुच्यते॥८६॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे तीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥२५॥

गंगाह्रद, वट, बदरीपाटन, इन्द्रमार्ग, एकरात्र, क्षीरकावास, सोमतीर्थ, दधीच, श्रुततीर्थ, कोटितीर्थस्थली, भद्रकालीह्रद, अरुन्धतीवन, ब्रह्मावर्त्त, अश्ववेदी, कुब्जावन, यमुनाप्रभव, वीर, प्रमोक्ष, सिन्धूत्थ, ऋषिकुल्या, सकृत्तिक, उर्वीसंक्रमण, मायाविद्योद्भव, महाश्रम, वैतासिकारूप, सुन्दरिकाश्रम, बाहुतीर्थ, चारुनदी, विमलाशोक, विद्वान् मार्कण्डेय का पञ्चनदतीर्थ, सोमतीर्थ, सितोद, मत्स्योदरी, सूर्यप्रभ, सूर्यतीर्थ, अशोकवन, अरुणास्पद, कामद, शुक्रतीर्थ, सवालुक, पिशाचमोचन, सुभद्राह्रद, विमलदण्ड-कुण्ड, चण्डेश्वर-तीर्थ, ज्येष्ठस्थानह्रद, पवित्र ब्रह्मसर, जैगीषव्यगुहा, हरिकेशवन, अजामुखसर, घण्टाकर्णह्रद, पुण्डरीकह्रद, कर्कोटक-वापी, सुवर्णास्योदपान, श्वेततीर्थह्रद, घर्घरिकाकुण्ड, श्यामाकूप, चन्द्रिका, श्मशानस्तम्भकूप, विनायकह्रद, सिन्धूद्भवकूप, पवित्र ब्रह्मसर, रुद्रावास, नागतीर्थ, पुलोमक भक्तह्रद, क्षीरसर, प्रेताधार, कुमारक, ब्रह्मावर्त्त, कुशावर्त्त, दधिकर्णोदपान, शृंगतीर्थ, महातीर्थ, तीर्थस्रेष्ठा, महानदा, गयाशीर्षाक्षयवट, दक्षिण, उत्तर, गोमय, रूपशीतिक, कपिलाह्रद, गृध्रवट, सावित्रीह्रद, प्रभासन, सीतवन, योनिद्वार, धेनुक, धन्यक, कोकिलाख्य, मतंगह्रद, पितृकूप, रुद्रतीर्थ, शक्रतीर्थ, सुमाली, ब्रह्मस्थान, सप्तकुण्ड, मणिरत्नह्रद, कौशिक्य, भरत, ज्येष्ठालिका, विश्वेश्वर, कल्पसर, कन्यासंवेद्य, निश्चीवाप्रभव, वसिष्ठाश्रम, देवकूट, कूप, वीराश्रम, ब्रह्मवीरावकापिली, कुमारधारा, श्रीधारा, गौरीशिखर, शुनःकुण्ड, शुनस्तीर्थ, नन्दितीर्थ, कुमारवास, श्रीवास, और्वीशीतीर्थ, कुम्भकर्णह्रद, धर्मतीर्थ, कामतीर्थ, उद्दालकतीर्थ, सन्ध्यातीर्थ, कारतोय, कपिल, लोहितार्णव, शोणोद्भव, वंशगुल्म, ऋषभ, कलतीर्थक, पुण्यावतीह्रद, बदरिकाश्रम, रामतीर्थ, पितृवन, विरजातीर्थ, मार्कण्डेयवन, कृष्णतीर्थ, वटतीर्थ, रोहिणीकूपप्रवर, इन्द्रद्युम्नसर, सानुगर्त, समाहेन्द्र, श्रीतीर्थ, श्रीनद, इषुतीर्थ, ऋषभतीर्थ, कावेरीह्रद, कन्यातीर्थ, गोकर्ण, गायत्रीस्थान, बदरीह्रद, मध्यस्थान, विकर्णक, जातीह्रद, देवकूप, कुशप्रवण, सर्वदेवव्रत, कन्याश्रमह्रद—ये तीर्थ और आश्रम हैं। इसी प्रकार वालखिल्यों और दूसरे महर्षियों के भी अखण्डित ह्रद अर्थात् तीर्थस्थान हैं। द्विजगण! जो मनुष्य जितेन्द्रिय, उपवासी तथा पूर्ण श्रद्धालु होकर इन तीर्थों में स्नान करता है और क्रमशः देव, ऋषि, मनुष्य तथा पितरों का तर्पण कर देव-पूजन करते हुये तीन रात वहां वास करता है, वह प्रत्येक तीर्थ में पृथक्-पृथक् अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त करता है। जो इस उत्तम तीर्थ-माहात्म्य का श्रवण-पाठ करेगा या करायेगा, वह सब पापों से मुक्त हो जायेगा।।५४-८६।।

।।पञ्चविंश अध्याय समाप्त।।



अथ षड्विंशोऽध्यायः

ब्रह्मा से ब्राह्मणों द्वारा मोक्ष सम्बन्धित प्रश्न

मुनय ऊचुः

पृथिव्यामुत्तमां भूमिं धर्म्मकामार्थमोक्षदाम्। तीर्थानामुत्तमं तीर्थं ब्रूहि नो वदतांवर॥१॥

मुनिगण कहते हैं—हे वाग्मी लोगों में प्रधान! पृथिवी पर जो धर्म, काम तथा मोक्षप्रद उत्तम भूमि है तथा तीर्थों में से जो श्रेष्ठ स्थान है, आप उसका वर्णन हमसे कहिये।।१।।

लोमहर्षण उवाच

इमं प्रश्नं मम गुरुं पप्रच्छुर्म्मुनयः पुरा। तमहं सम्प्रक्ष्यामि यत्पृच्छध्वं द्विजोत्तमाः॥२॥
स्वाश्रमे सुमहापुण्ये नानापुष्पोपशोभिते। नानाद्रुमलताकीर्णे नानामृगगणैर्युते॥३॥
पुन्नागैः कर्णिकारैश्च सरलैर्देवदारुभिः। शालैस्तालैस्तमालैश्च पनसैर्धवखादिरैः॥४॥
पाटलाशोकबकुलैः करवीरैः सचम्पकैः। अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैर्नानापुष्पोपशोभितैः॥५॥
कुरुक्षेत्रे समासीनं व्यासं मतिमतां वरम्। महाभारतकर्त्तारं सर्व्वशास्त्रविशारदम्॥६॥
अध्यात्मनिष्ठं सर्व्वज्ञं सर्व्वभूतहिते रतम्। पुराणागमवक्तारं वेदवेदाङ्गपारगम्॥७॥

लोमहर्षण कहते हैं—हे द्विजप्रवरगण! आपने जो प्रश्न पूछा है, पूर्वकाल में मुनियों ने एक साथ आकर मेरे गुरु व्यास से वही पूछा था। आप श्रवण करिये। मैं वह वृत्तान्त कहता हूं। एक बार महर्षि वेदव्यास कुरुक्षेत्रस्थ अपने आश्रम में आये थे। उनका महान् पुण्यप्रद आश्रम नाना वृक्ष-लता से समाकीर्ण था। वहां नाना जाति के मृग विचरण कर रहे थे। वहां पुन्नाग, कर्णिका, सरल, देवदारु, शाल, ताल, तमाल, पनस, धव, खदिर, पाटल, अशोक, बकुल, कनेर, चम्पा तथा अन्य अनेक वृक्ष शोभायमान थे। मेरे गुरु वेदव्यास मतिमानों में वरेण्य, महाभारत प्रणेता, सर्वशास्त्र विशारद, अध्यात्मज्ञानतत्पर, सभी विषयों के ज्ञाता, सभी प्राणीगण के हित में लगे हुये, पुराण तथा आगम के प्रवक्ता तथा वेद-वेदान्त पारदर्शी थे।।२-७।।

पराशरसुतं शान्तं पद्मपत्रायतेक्षणम्। द्रष्टुमभ्याययुः प्रीत्या मुनयः संशितव्रताः॥८॥

कश्यपो जमदग्निश्च भरद्वाजोऽथ गौतमः।
वसिष्ठो जैमिनिर्धौम्यो मार्कण्डेयोऽथ वाल्मिकिः॥९॥
विश्वामित्रः शतानन्दो वात्स्यो गार्ग्योऽथ आसुरिः।
सुमन्तुर्भार्गवो नाम कण्वो मेधातिथिर्गुरुः॥१०॥

माण्डव्यश्च्यवनो धूम्रो ह्यसितो देवलस्तथा। माद्गल्यस्तृणयज्ञश्च पिप्पलादोऽकृतव्रणः॥११॥

संवर्तः कौशिको रैभ्यो मैत्रेयो हरितस्तथा।
शाण्डिल्यश्च विभाण्डश्च दुर्व्वासा लोमशस्तथा॥१२॥

नारदः पर्व्वतश्चैव वैशम्पायनगालवौ। भास्करिः पूरणः सूतः पुलस्त्यः कपिलस्तथा॥१३॥
उलूकः पुलहो वायुर्देवस्थानश्चतुर्भुजः। सनत्कुमारः पैलश्च कृष्णः कृष्णानुभौतिकः॥१४॥

उन समस्त गुणयुक्त, पद्मपलाश नेत्र वाले पराशरनन्दन को प्रेम पूर्वक प्रणाम करके देखने हेतु एक बार तपस्वी व्रतशील मुनिगण वहां आये। इन मुनियों में थे कश्यप, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, वसिष्ठ, जैमिनी, धौम्य, मार्कण्डेय, वाल्मीकि, विश्वामित्र, शतानन्द, वात्स्य, गार्ग्य, असुरी, सुमन्तु, भार्गव, कण्व, मेधातिथि, माण्डव्य, च्यवन, धूम्र, असित, देवल, मौद्गल्य, तृणयज्ञ, पिप्पलाद, अकृतव्रण, संवर्त्त, कौशिक, रैम्य, मैत्रेय, हरित, शाण्डिल्य, विभांड, दुर्वासा, लोमश, नारद, पर्वत, वैशम्पायन, गालव, भास्करी, पूरण, सूत, पुलत्स्य, कपिल, उलूक, पुलह, वायु, देवस्थान, चतुर्भुज, सनतकुमार, पैला, कृष्ण, कृष्णानुभौतिक आदि सभी मुनियों का नाम विशेष उल्लेखनीय है।।८-१४।।

एतैर्म्मुनिवरैश्चान्यैर्वृतः सत्यवतीसुतः। रराज स मुनिः श्रीमान् नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः॥१५॥

तानागतान्मुनीन् सर्व्वान् पूजयामास वेदवित्।
तेऽपि तं प्रतिपूज्यैव कथां चक्रुः परस्परम्॥१६॥
कथान्ते ते मुनिश्रेष्ठाः कृष्णं सत्यवतीसुतम्।
पप्रच्छुः संशयं सर्व्वे तपोवननिवासिनः॥१७॥

इन सभी मुनिगण तथा अन्य मुनिश्रेष्ठ लोगों से घिरे पराशरनन्दन व्यासदेव नक्षत्रों से घिरे चन्द्रदेव के समान वहां विराजमान थे। वेदविद व्यासदेव ने इन आये मुनियों का यथायोग्य सत्कार किया तथा मुनिगण ने भी उनको प्रतिपूजित करने के पश्चात् आपस में उनसे वार्त्तालाप आरम्भ कर दिया। वार्त्तालाप समाप्त होने पर उन सभी तपोवन निवासी मुनियों ने सत्यवतीनन्दन कृष्णद्वैपायन से अपने संशय के बारे में पूछा।।१५-१७।।

मुनय ऊचुः

मुने वेदांश्च शास्त्राणि पुराणागमभारतम्।
भूतं भव्यं भविष्यञ्च सर्व्वं जानासि वाङ्मयम्॥१८॥

कष्टेऽस्मिन् दुःखबहुले निःसारे भवसागरे। रागग्राहाकुले रौद्रे विषयोदकसम्प्लवे॥१९॥
इन्द्रियावर्त्तकलिले दृष्टोर्म्मिशतसङ्कुले। मोहपङ्कविले दुर्गे लोभगम्भीरदुस्तरे॥२०॥

निमज्जज्जगदालोक्य निरालम्बमचेतनम्।
पृच्छामस्त्वां महाभागं ब्रूहि नो मुनिसत्तम॥२१॥

श्रेयः किमत्र संसारे भैरवे लोमहर्षणे। उपदेशप्रदानेन लोकानुद्धर्त्तुमर्हसि॥२२॥
दुर्लभं परमं क्षेत्रं वक्तुमर्हसि मोक्षदम्। पृथिव्यां कर्म्मभूमिञ्च श्रोतुमिच्छामहे वयम्॥२३॥

कृत्वा किल नरः सम्यक् कर्म्मभूमौ यथोदितम्।
प्राप्नोति परमां सिद्धिं नरकञ्च विकर्म्मतः॥२४॥

मोक्षक्षेत्रे तथा मोक्षं प्राप्नोति पुरुषः सुधीः।
तस्माद् ब्रूहि महाप्राज्ञ यत्पृष्टोऽसि द्विजोत्तम॥२५॥

मुनिगण कहते हैं—हे मुनिवर! आप समस्त वेदशास्त्र, पुराण, आगम तथा समस्त भूत-भविष्यत्-वर्त्तमान के ज्ञाता हैं। यह संसार दुःखमय है। इस भवसागर में कुछ भी सार नहीं है। यह विषयजल से भरा हुआ है। रागरूप ग्राहों से समाकुल है। इसमें इन्द्रिय रूपी आवर्त्त है। समस्त दृश्य प्रपंच इसकी लहरें हैं। मोहरूपी कीचड़ से यह कलुषित है। लोभरूपी गांभीर्य के कारण यह पार करने में दुर्गम है। हम इस भीषण भवसागर में निराश्रय जड़ जगत् को निमग्न देख रहे हैं। हे मुनिसत्तम! इसलिये आपके समान महापुरुष से यह प्रश्न पूछना है कि इस भीषण लोमहर्षण संसार में प्रकृत मंगल क्या है? आप इस सम्बन्ध में उपदेश प्रदान करें तथा लोगों का उद्धार करें। पृथिवी में मोक्षप्रद, अथच कर्मभूमि में ऐसा दुर्लभ क्षेत्र कौन है? वह आप कहिये। हम वह जानने हेतु उत्सुक हैं। हे महाप्राज्ञ व्यास! इहलोक वासी जिस क्षेत्र में विहित अनुष्ठान करके परम सिद्धिलाभ करते हैं तथा जिस क्षेत्र में अनुष्ठान न करने पर नरकगामी होते हैं तथा सुधी लोग जिस मोक्षक्षेत्र में मोक्षलाभ करते हैं, वह आप व्यक्त क़रके कहिये। हे द्विजोत्तम! हम आपसे इसी सम्बन्ध में प्रश्न करते हैं।।१८-२५।।

श्रुत्वा तु वचनं तेषां मुनीनां भावितात्मनाम्।
व्यासः प्रोवाच भगवान् भूतभव्यभविष्यवित्॥२६॥

भूत, भविष्य तथा वर्त्तमान के ज्ञाता भगवान् वेदव्यास ने इन सभी भावितात्मा मुनिगण का वचन सुनकर कहा—।।२६।।

व्यास उवाच

श्रृणुध्वं मुनयः सर्व्वे वक्ष्यामि यदि पृच्छथ।
यः संवादोऽभवत् पूर्व्वमृषीणां ब्रह्मणा सह॥२७॥
मेरुपृष्ठे तु विस्तीर्णे नानारत्नविभूषिते। नानाद्रुमलताकीर्णे नानापुष्पोपशोभिते॥२८॥
नानापक्षिरुते रम्ये नानाप्रसवनाकुले। नानासत्त्वसमाकीर्णे नानाश्चर्य्यसमन्विते॥२९॥
नानावर्णशिलाकीर्णे नानाधातुविभूषिते। नानामुनिजनाकीर्णे नानाश्रमसमन्विते॥३०॥
तत्रासीनं जगन्नाथं जगद्योनिं चतुर्मुखम्। जगत्पतिं जगद्वन्द्यं जगदाधारमीश्वरम्॥३१॥
देवदानवगन्धर्व्वैर्यक्षविद्याधरोरगैः। मुनिसिद्धाप्सरोभिश्च वृतमन्यैर्दिवालयैः॥३२॥
केचित् स्तुवन्ति तं देवं केचिद्गायन्ति चाग्रतः।
केचिद्वाद्यानि वाद्यन्ते केचिन्नृत्यन्ति चापरे॥३३॥
एवं प्रमुदिते काले सर्व्वभूतसमागमे। नानाकुसुमगन्धाढ्ये दक्षिणानिलसेविते॥३४॥
भृग्वाद्यास्तं तदा देवं प्रणिपत्य पितामहम्। इममर्थमृषिवराः प्रपच्छुः पितरं द्विजाः॥३५॥

व्यासदेव कहते हैं—हे मुनिगण! आप सबने जो कुछ प्रश्न किया है, मैं उस विषय में आपसे वह

कथनोपकथन कहता हूं, जो ब्रह्मा तथा ऋषिगण के बीच हुआ था। जो स्थान नाना रत्न से भूषित, नाना द्रुमलता से समाकीर्ण, नाना पुष्पों से उपशोभित, विविध पक्षियों के कलरव से निनादित; अनेक जीव-जन्तुओं से भरा, नाना आश्चर्य घटनाओं से परिपूर्ण, नाना शिलाखण्डों से समलंकृत तथा अनेक मुनि तथा नाना आश्रमों से व्याप्त था, ऐसे विस्तीर्ण रमणीय मेरु पर्वत पर जगद्योनि, जगन्नाथ चतुर्मुख ब्रह्मा एक बार आसन पर बैठे थे। वे जगत्पति, जगद्वन्द्य जगदाधार ईश्वर वहां विराजमान थे। उन ब्रह्मा को देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर, सर्प, मुनि, सिद्ध, अप्सरा तथा अन्य देवता घेर कर खड़े थे। कोई उनका स्तव कर रहा था। कोई उनका गुणगान कर रहा था। कोई-कोई भाव में भर कर विविध वाद्य बजा रहा था, कोई नृत्यरत था। इस प्रकार उस रमणीय अवसर पर वह स्थान सभी प्राणियों का समागम होने से तथा नाना पुष्पों की गंध के कारण सुगन्धित था। दक्षिणवाही वायु वहां प्रवहमान थी। भृगु आदि महर्षिगण ने तब पितामह देव को प्रणाम करके उनसे इस विषय में पूछा!।।२७-३५।।

ऋषय ऊचुः

भगवञ्श्रोतुमिच्छामः कर्म्मभूमिं महीतले। वक्तुमर्हसि देवेश मोक्षक्षेत्रञ्च दुर्लभम्॥३६॥

ऋषिगण कहते हैं—हे भगवान्, देवेश! पृथिवी पर जो कर्मभूमि दुर्लभ मोक्षक्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध है, हम उसे सुनने हेतु उत्सुक हैं।।३६।।

व्यास उवाच

तेषां वचनमाकर्ण्य प्राह ब्रह्मा सुरेश्वरः। पप्रच्छुस्ते यथा प्रश्नं तत्सर्व्वं मुनिसत्तमाः॥३७॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भूब्रह्मर्षिसंवादे प्रश्ननिरूपणं नाम षड्विंशोऽध्यायः।।२६।।

व्यासजी कहते हैं—हे मुनिसत्तमगण! सुरेश्वर ब्रह्मा ऋषियों का यह वाक्य सुनकर उस समय उनके प्रश्न के अनुरूप उत्तर देने लगे।।३७।।

।।षड्विंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

भरतखण्ड तथा वहां स्थित गिरि नदी का वर्णन

ब्रह्मोवाच

श्रृणुध्वं मुनयः सर्व्वे यद्वो वक्ष्यामि साम्प्रतम्।
पुराणं वेदसम्बद्धं भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम्॥१॥

पृथिव्यां भारतं वर्षं कर्म्मभूमिरुदाहृता। कर्म्मणः फलभूमिश्च स्वर्गञ्च नरकं तथा॥२॥
तस्मिन् वर्षे नरः पापं कृत्वा धर्म्मञ्च भो द्विजाः।
अवश्यं फलमाप्नोति अशुभस्य शुभस्य च॥३॥
ब्राह्मणाद्याः स्वकं कर्म्म कृत्वा सम्यक्सुसंयताः।
प्राप्नुवन्ति परां सिद्धिं तस्मिन्वर्षे न संशयः॥४॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे मुनियों! आप लोगों ने जो पूछा है, अब मैं उस भुक्ति-मुक्तिप्रद वेदमतानुगत मंगलकारी पुराण प्रस्ताव को कहता हूं। पृथिवी में भारतवर्ष ही कर्मभूमि कही गयी है। केवल कर्मभूमि ही नहीं, भारत में कर्म द्वारा स्वर्ग तथा नरक आदि का फल प्राप्त होता है। इसीलिये इसे कर्मफल भूमि कहते हैं। हे द्विजगण! इस वर्ष में मनुष्यगण पाप अथवा पुण्य करके अवश्य उसका शुभाशुभ फल पाते हैं। भारतवर्ष में जो सब ब्राह्मण हैं, वे संयत होकर अपने-अपने विहित कर्म का अनुष्ठान करके निश्चित रूप से परमसिद्धि लाभ करते हैं। इसमें तनिक सन्देह नहीं है।।१-४।।

धर्म्मञ्चार्थञ्च कामञ्च मोक्षञ्च द्विजसत्तमाः।
प्राप्नोति पुरुषः सर्व्वं तस्मिन् वर्षे सुसंयतः॥५॥
इन्द्राद्याश्च सुराः सर्व्वे तस्मिन् वर्षे द्विजोत्तमाः।
कृत्वा सुशोभनं कर्म्म देवत्वं प्रतिपेदिरे॥६॥
अन्येऽपि लेभिरे मोक्षं पुरुषाः संयतेन्द्रियाः।
तस्मिन् वर्षे बुधाः शान्ता वीतरागा विमत्सराः॥७॥
ये चापि स्वर्गे तिष्ठन्ति विमानेन गतज्वराः।
तेऽपि कृत्वा शुभं कर्म्म तस्मिन् वर्षे दिवं गताः॥८॥
निवासं भारते वर्षे आकाङ्क्षन्ति सदा सुराः। स्वर्गापवर्गफलदे तत्पश्यामः कदा वयम्॥९॥

हे द्विजश्रेष्ठगण! इस भारतवर्ष में पुरुष सुसंयत रहकर धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्षरूपी चतुर्विध फल पाते हैं। किम्बहुना, अन्य और जो कोई जितेन्द्रिय, शान्त, वीतराग, विमत्सर बुधजन इस भारत में मोक्षलाभ करते हैं, उनकी संख्या की कोई सीमा ही नहीं है। स्वर्गभूमि में जो विगतदुःख विमान पर विचरण कर रहे हैं, उन्होंने भी भारतवर्ष में शुभ कर्म करके स्वर्गलाभ किया था। देवता लोग सर्वदा स्वर्ग तथा अपवर्ग फलप्रद भारत में निवास करने की आकांक्षा रखते हैं। वे मन ही मन यह कामना करते हैं कि "हम भारतवर्ष का दर्शन कब करेंगे?"।।५-९।।

मुनय ऊचुः

यदेतद्भवता प्रोक्तं कर्म्म नान्यत्र पुण्यदम्। पापाय वा सुरश्रेष्ठ वर्ज्जयित्वा च भारतम्॥१०॥
ततः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यमं तच्च गम्यते।
न खल्वन्यत्र मर्त्त्यानां भूमौ कर्म्म विधीयते॥११॥

तस्माद्विस्तरतो ब्रह्मन्नस्माकं भारतं वद। यदि तेऽस्ति दयास्मासु यथावस्थितिरेव च॥१२॥
तस्माद्वर्षमिदं नाथ ये वास्मिन् वर्षपर्व्वताः।
भेदाश्च तस्य वर्षस्य ब्रूहि सर्व्वानशेषतः॥१३॥

मुनिगण कहते हैं—हे सुरश्रेष्ठ! आपने जो कहा है कि भारतवर्ष के अतिरिक्त कहीं भी पाप तथा पुण्य का अनुष्ठान नहीं होता तथा भारत में ही स्वर्ग-मोक्ष अथवा मध्यगति मिलती है, अन्य किसी भूमि में मर्त्यलोक के लोगों के शुभ-अशुभ कर्म विहित मानकर निर्णय नहीं होता। हे ब्रह्मन्! आप अब इस कारण विस्तार के साथ भारत कथा ही कहिये। यदि हमारे प्रति आपका अनुग्रह हो, तब हे नाथ! भारत का अवस्थान, वहां के वर्ष, पर्वत तथा इन वर्षों का जितने प्रकार का भेद है, वह सब निःशेषरूपेण कहिये।।१०-१३।।

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं भारतं वर्षं नवभेदेन भो द्विजाः। समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते समाश्च परस्परम्॥१४॥
इन्द्रद्वीपः कशेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान्।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्व्वो वारुणस्तथा॥१५॥
अयन्तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः। योजनानां सहस्रं वै द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः॥१६॥
पूर्व्वे किराता यस्यासन् पश्चिमे यवनास्तथा।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्ते स्थिता द्विजाः॥१७॥
इज्यायुद्धवणिज्याद्यैः कर्म्मभिः कृतपावनाः। तेषां संव्यवहारश्च एभिः कर्म्मभिरिष्यते॥१८॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे द्विजवृन्द! भारतवर्ष के नौ द्वीपों का वर्णन सुनिये। ये सभी द्वीप सागर से घिरे हैं तथा परस्परतः समभाव से विराजमान हैं। इनके नाम हैं इन्द्रद्वीप, कशेरु, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गान्धर्व, वारुण तथा सागर संवृत। सागर संवृत द्वीप दक्षिणोत्तर दिक् में स्थित है तथा एक हजार योजन विस्तार वाला है। भारत के पूर्व में किरातों का तथा पश्चिम में यवनों का वास है। उसके मध्य भाग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र रहते हैं। ब्राह्मण यज्ञ से, क्षत्रिय युद्ध से तथा वैश्य वाणिज्य कर्म से, शूद्र सेवा से सर्वदा पवित्र रहते हैं। इन कर्मों में ही उनकी व्यवहार परम्परा विहित है। यही इन चार वर्ण का कर्म है।।१४-१८।।

स्वर्गापवर्गहेतुश्च पुण्यं पापञ्च वै तथा। महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्व्वतः॥१९॥
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैवात्र कुलाचलाः। तेषां सहस्रशश्चान्ये भूधरा ये समीपगाः॥२०॥
विस्तारोच्छ्रयिणो रम्या विपुलाश्चित्रसानवः।
कोलाहलः स वैभ्राजो मन्दरो दर्दुराचलः॥२१॥
वातन्धयो वैद्युतश्च मैनाकः सुरसस्तथा। तुङ्गप्रस्थो नागगिरिर्गोधनः पाण्डराचलः॥२२॥
पुष्पगिरिर्वैजयन्तो रैवतोऽर्ब्बुद एव च। ऋष्यमूकः स गोमन्थः कृतशैलः कृताचलः॥२३॥
श्रीपार्व्वतश्चकोरश्च शतोशोऽन्ये च पर्व्वताः।
तैर्विमिश्रा जनपदा म्लेच्छाद्याश्चैव भागशः॥२४॥

तैः पीयन्ते सरिच्छ्रेष्ठास्ता बुध्यध्वं द्विजोत्तमाः।
गङ्गा सरस्वती सिन्धुश्चन्द्रभागा तथा परा॥२५॥

भारतवर्ष स्वर्ग-अपवर्ग का हेतु है तथा पुण्य-पापफल की उत्पत्ति का स्थान है। महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य तथा पारियात्र—ये भारत के कुलपर्वत हैं। इन कुलाचलों के पास अन्य और भी हजारों-हजार पर्वत विराजित हैं। ये सभी पर्वत भी विस्तृत हैं। ये ऊंचे, रम्य, विपुल तथा विचित्र शिखरों वाले हैं। कोलाहल, मन्दर, दर्दुर, वातंधय, कृतशैल, वैद्युत, मैनाक, सुरस, तुंगप्रस्थ, नागगिरि, गोवर्द्धन, गोमन्थ, पाण्डराचल, पुष्पगिरि, वैजयन्त, कृताचल, श्रीपर्वत, वैभ्राज, चकोर इत्यादि सैकड़ों पर्वत हैं। इन पर्वतों के पार्श्व में, अन्त में, कहीं तो मध्य में असंख्य जनपद की स्थिति है। इन सभी में म्लेच्छादि जाति पृथक्-पृथक् निवास करती है। हे द्विजप्रवरगण! सभी जनपद निवासी इन नदियों का जल पीते हैं, नाम सुनिये। वे हैं गंगा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा।।१९-२५।।

यमुना शतद्रुर्विपाशा वितस्तैरावती कुहूः। गोमती धूतपापा च बाहुदा च दृषद्वती॥२६॥
विपाशा देविका चक्षुर्निष्ठीवा गण्डकी तथा।
कौशिकी चापगा चैव हिमवत्पादनिःसृताः॥२७॥
देवस्मृतिर्देववती वातघ्नी सिन्धुरेव च। वेण्या तु चन्दना चैव सदानीरा मही तथा॥२८॥
चर्म्मण्वती वृषी वैव विदिशा वेदवत्यपि।
सिप्रा हवन्ती च तथा पारियात्रानुगाः स्मृताः॥२९॥
शोणा महानदी चैव नर्म्मदा सुरथा क्रिया।
मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथापरा॥३०॥
चित्रोत्पला वेत्रवती करमोदा पिशाचिका।
तथान्यातिलघुश्रोणी विपाप्मा शैवला नदी॥३१॥
सधेरुजा शक्तिमती शकुनी त्रिदिवा क्रमुः। ऋक्षपादप्रसूता वै तथान्या वेगवाहिनी॥३२॥

यमुना, शतद्रु, विपाशा, वितस्ता, इरावती, कुहु, गोमती, धूतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, विपाशा (दूसरी बार नाम आया है), देविका, चक्षु, निष्ठीवा, गण्डकी, कौशिकी नामक नदियां हिमालय से निर्गत हैं। देवस्मृति, देववती, वातघ्नी, सिन्धु (यह द्वितीय बार नाम आया है), वेण्या, चन्दना, सदानीरा, मही, चर्मण्वती, वृषी, विदिशा, वेदवती, शिप्रा, अवन्ती परियात्र से निर्गत हैं। शोणा, महानदी, नर्मदा, सुरथा, क्रिया, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, चित्रोत्पला, वेत्रवती, करमोदा, पिशाचिका, अतिलघुश्रोणी, विपाप्मा, शैवला, सधेरुजा, शक्तिमती, शकुनी, त्रिदिवा तथा क्रमु ऋक्ष पर्वत से निकली हैं।।२६-३२।।

सिप्रा पयोष्णी निर्व्विन्ध्या तापी चैव सरिद्वरा।
वेणा वैतरणी चैव सिनीवाली कुमुद्वती॥३३॥
तोया चैव महागौरी दुर्गा चान्तःशिला तथा।
विन्ध्यपादप्रसूतास्ता नद्यः पुण्यजलाः शुभाः॥३४॥

गोदावरी भीमरथी कृष्णवेणा तथापगा। तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा तथान्या पापनाशिनी॥३५॥

सह्यपादविनिष्क्रान्ता इत्येताः सरितां वराः।
कृतमाला ताम्रपर्णी पुष्यजा प्रत्यलावती॥३६॥
मलयाद्रिसमुद्भूताः पुण्याः शीतजलास्त्विमा।
पितृसोमर्षिकुल्या च वञ्जुला त्रिदिवा च या॥३७॥
लाङ्गुलिनी वंशकरा महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः।
सुविकाला कुमारी च मनूगा मन्दगामिनी॥३८॥
क्षयापलासिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः।
सर्व्वाः पुण्याः सरस्वत्यः सर्व्वा गङ्गा समुद्रगाः॥३९॥

शिप्रा, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, श्रेष्ठ नदी तापी, वेणा, वैतरणी, सिनिवाली, कुमुद्वती, तोया, महागौरी, दुर्गा, अन्तःशिला ये पवित्र जलमयी नदियां विन्ध्य से निर्गत हैं। गोदावरी, भीमरथी, कृष्णवेणा, तुंगभद्रा, सुप्रयोगा तथा अन्य अनेक नदियां सह्याद्रि पर्वत से निर्गत हैं। कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुष्यजा, प्रत्यलावती, ये शीतजला पावन नदियां मलयाचल से निकली हैं। पितृसोमर्षिकुल्या, वञ्जुला, त्रिदिवा, लाङ्गुलिनि, वंशकरा महेन्द्र पर्वत से निर्गत हैं। सुविकाला, कुमारी, भनूगा, मन्दगामिनी, क्षयापलासिनी शुक्तिमान् पर्वत से निकली हैं। ये सभी पावन नदियां हैं और पापनाशिनी एवं विश्वमाता हैं। ये सभी सरस्वती तथा गंगा के समान तथा समुद्र में जाती हैं।।३३-३९।।

विश्वस्य मातरः सर्व्वाः सर्व्वाः पापहराः स्मृताः।
अन्याः सहस्त्रशः प्रोक्ताः क्षुद्रनद्यो द्विजोत्तमाः॥४०॥
प्रावृट्कालवहाः सन्ति सदाकालवहाश्च याः।
मत्स्या मुकुटकुल्याश्च कुन्तलाः काशिकोशलाः॥४१॥
अन्धकाश्च कलिङ्गाश्च शमकाश्च वृकैः सह।
मध्यदेशा जनपदाः प्रायशोऽमी प्रकीर्त्तिताः॥४२॥
सह्यस्य चोत्तरे यस्तु यत्र गोदावरी नदी।
पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः॥४३॥

ये सभी नदियां जगत् की माता के समान हैं तथा सभी पाप हरने वाली हैं। हे द्विजप्रवर! ये सभी नदियां हैं तथा अन्य और भी छोटी-छोटी हजारों नदियां विराजमान हैं। कतिपय नदियां मात्र वर्षा के समय प्रवाहित होती हैं, तब कुछ सदा बहती रहती हैं। मत्स्य, मुकुटकुल्य, कुन्तल, काशिकोशल, अन्ध्रक, कलिंग, शमक वृक् ये सभी जनपद मध्यदेश कहे गये हैं। सह्याद्रि पर्वत के उत्तर में जो देश हैं, जहां गोदावरी नदी बहती है, समस्त धरती में वह देश अतीव मनोहर है।।४०-४३।।

गोवर्द्धनपुरं रम्यं भार्गवस्य महात्मनः। वाहीका वाटधानाश्च सुतीराः कालतोयदाः॥४४॥

अपरान्ताश्च शूद्राश्च वाह्लिकाश्च सकेरलाः। गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रकाः॥४५॥

शतद्रुहाः कलिङ्गाश्च पारदा हारभूषिकाः।
माठराश्चैव कनकाः कैकेया दम्भमालिकाः॥४६॥

क्षत्रियोपमदेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च। काम्बोजाश्चैव विप्रेन्द्रा बर्ब्बराश्च सलौकिकाः॥४७॥

वीराश्चैव तुषाराश्च पह्लवाधायता नराः। आत्रेयाश्च भरद्वाजाः पुष्कलाश्च दशेरकाः॥४८॥

लम्पकाः शुनःशोकाश्च कुलिका जाङ्गलैः सह।
ओषध्यश्चलचन्द्रा च किरातानाञ्च जातयः॥४९॥
तोमरा हंसमार्गाश्च काश्मीरा करुणास्तथा।
शूलिकाः कुहकाश्चैव मागधाश्च तथैव च॥५०॥
ऐते देशाउदीच्यास्तु प्राच्यान्देशान्निबोधत।
अन्धा वामङ्कुराकाश्चवल्लकाश्चमखान्तकाः॥५१॥

वहां पर महात्मा भार्गव का रमणीय गोवर्द्धनपुर विद्यमान है। वाहीकर, वाटधान, सुतीर, कालतोयद, अपरास्त, शूद्र, वाल्हिक, केरल, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, भद्रक, शतद्रुह, कलिंग, पारद, हारमूषिक, माठर, कनक, कैकेय, दण्डमालिक ये क्षत्रियोपम देश हैं। वैश्य तथा शूद्रकुल यहां भी हैं। हे द्विजेन्द्रवृन्द! काम्बोज, बर्बर, लौकिक, वीर, तुषार, पह्लव, आधायत, नरा, आत्रेय, भारद्वाज, पुष्कल, दशेरुक, लम्पक, शुन-शोक, कुलिक, जांगल, ओषधि, चलचन्द्र, किरातजाति, तोमर, हंसमार्ग, काश्मीर, करुण, शूलिक, कुहक, मागध उत्तर दिशा वाले देश हैं। अब प्राच्यदिशा के देश कहता हूं। अन्ध, वामकुरकि, वल्लक, मखान्तक।।४४-५१।।

तथापरेऽङ्गा वङ्गाश्च मलदा मालवर्त्तिकाः। भद्रतुङ्गा प्रतिजया भार्य्याङ्गाश्चापमर्द्दकाः॥५२॥

प्राग्ज्योतिषाश्च मद्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः।
मल्ला मगधका नन्दाः प्राच्या जनपदास्तथा॥५३॥

तथापरे जनपदा दक्षिणापथवासिनः। पूर्णाश्च केवलाश्चैव गोलाङ्गूलास्तथैव च॥५४॥

ऋषिका मुषिकाश्चैव कुमारा रामठाः शकाः।
महाराष्ट्रा माहिषका कलिङ्गाश्चैव सर्व्वशः॥५५॥
आभीराः सह वैशिक्या अटव्याः सरवाश्च ये।
पुलिन्दाश्चैव मौलेया वैदर्भा दण्डकैः सह॥५६॥
पौलिका मौलिकाश्चैव अश्मका भोजवर्द्धनाः।
कौलिकाः कुन्तलाश्चैव दम्भका नीलकालकाः॥५७॥
दाक्षिणात्यास्त्वमी देशा अपरान्तान्निबोधत।
शूर्पारकाः कालिधना लोलास्तालकटैः सह॥५८॥

अंग, बंग, मलद, मालवर्तिक, भद्रतुंग, प्रतिजय, भार्याङ्ग, अपमर्दक, प्राग्ज्योतिष, मद्र, विदेह, ताम्रलिप्ति, मल्ल, मगधक तथा नन्द—ये प्राच्य देश हैं। अन्य जनपद दक्षिणापथ वाले हैं। उनके नाम हैं पूर्ण, केवल, गोलांगूल, ऋषिक, मुषिक, कुमार, रामठ, शक, महाराष्ट्र, माहिषक, कलिंग, आभीर, वैशिक्य, अटव्य, सरव, पुलिन्द, मौलेय, वैदर्भ, दण्डक, पौलिक, मौलिक, अश्मक, भोजवर्द्धन, कौलिक, कुन्तल, दम्भक, नीलक, अलक दक्षिण के देश हैं। शूर्पारक, कालिधन, लोल, तालकट अपरान्त देश हैं।।५२-५८।।

इत्येते ह्यपरान्ताश्च शृणुध्वं विन्ध्यवासिनः।
मलजाः कर्कशाश्चैव मेलकाश्चोलकैः सह॥५९॥
उत्तमार्णा दशार्णाश्च भोजाः किष्किन्ध्यकैः सह।
तोषलाः कोशलाश्चैव त्रैपुरा वैदिशास्तथा॥६०॥
तुम्बुरास्तु चराश्चैव यवनाः पवनैः सह। अभया रुण्डिकेराश्च चर्च्चरा होत्रधर्त्तयः॥६१॥
एते जनपदाः सर्व्वे तत्र विन्ध्यनिवासिनः।
अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्व्वताश्रयिणश्च ये॥६२॥

अब विन्ध्याचलस्थ देशों का नाम सुनें। मलज, कर्कश, मेलक, चोलक, उत्तमार्ण, दशार्ण, भोज, किष्किन्ध्य, तोषल, कोशल, त्रैपुर, वैदिश, तुम्बुर, चर, यवन, पवन, अभय, रुण्डिकेर, चर्चर, होत्रधार्त्ति, विन्ध्यस्थ देश हैं। अब पर्वतों के आश्रित देशों का नाम सुनिये।।५९-६२।।

नीहारास्तुषमार्गाश्च कुरवस्तङ्गणाः खसाः। कर्णप्रावरणाश्चैव ऊर्णा दर्घाः सकुन्तकाः॥६३॥
चित्रमार्गा मालवाश्च किरातास्तोमरैः सह। कृतत्रेतादिकश्चात्र चतुर्युगकृतो विधिः॥६४॥
एवं तु भारतं वर्ष नवसंस्थानसंस्थितम्। दक्षिणे परतो यस्य पूर्व्वे चैव महोदधिः॥६५॥
हिमवानुत्तरेणास्य कार्मुकस्य यथा गुणः। तदेतद्भारतं वर्षं सर्व्वबीजं द्विजोत्तमाः॥६६॥

नीहार, तुषमार्ग, कुरव, तङ्कण, खस, कर्ण प्रावरण, उर्ण, दर्घ, कुम्भक, चित्रमार्ग, मालव, किरात, तोमर पर्वताश्रित देश हैं। यहां भारतवर्ष में सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि—यह चार युग की व्यवस्था प्रख्यात है। इस प्रकार भारतवर्ष नौ खण्डों में संस्थित है। इसके दक्षिण तथा पूर्व में महासागर है। उत्तर में धनुष की प्रत्यंचा की तरह हिमवान् है। हे द्विजोत्तमवृन्द! यह सर्वोच्च तथा सभी वस्तु का बीजरूप है।।६३-६६।।

ब्रह्मत्वममरेशत्वं देवत्वं मरुतां तथा। मृगयक्षाप्सरोयोनिं तद्वत् सर्पसरीसृपाः॥६७॥
स्थावराणाञ्च सर्व्वेषामितो विप्राः शुभाशुभैः।
प्रयान्ति कर्म्मभूर्विप्रा नान्या लोकेषु विद्यते॥६८॥
देवानामपि भो विप्राः सदैवैष मनोरथः।
अपि मानुष्यमाप्स्यामो देवत्वात् प्रत्युताः क्षितौ॥६९॥

यहां पर प्राणीगण स्वकर्मानुरूप ब्रह्मत्व, देवत्व, अमरेशत्व इस भारतभूमि में मिलता है। यहां शुभाशुभ कर्मानुरूप जीवगण मृग, यक्ष, अप्सरा, सर्प तथा स्थावर योनिलाभ करते हैं। हे ब्राह्मणों! जगत् में इसके

अतिरिक्त अन्य कहीं कर्मभूमि नहीं है। हे ब्राह्मणगण! देवगण की यह अभिलाषा दीर्घकाल से रहती है कि "जब हमारा पतन देवत्व से हो, तब हमें भारत में ही मनुष्ययोनि मिले"।।६७-६९।।

मनुष्यः कुरुते यत्तु तन्न शक्यं सुरासुरैः। तत्कर्म्मनिगडग्रस्तैस्तत्कर्म्मक्षपणोन्मुखैः।।७०।।

न भारतसमं वर्षं पृथिव्यामस्ति भो द्विजाः।
यत्र विप्रादयो वर्णाः प्राप्नुवन्त्यभिवाञ्छितम्।।७१।।
धन्यास्ते भारते वर्षे जायन्ते ये नरोत्तमाः।
धर्म्मार्थकाममोक्षाणां प्राप्नुवन्ति महाफलम्।।७२।।

प्राप्यते यत्र तपसः फलं परमदुर्लभम्। सर्व्वदानफलञ्चैव सर्व्वयज्ञफलं तथा।।७३।।
तीर्थयात्राफलञ्चैव गुरुसेवाफलं तथा। देवताराधनफलं स्वाध्यायस्य फलं द्विजाः।।७४।।
यत्र देवाः सदा हृष्टा जन्म वाञ्छन्ति शोभनम्। नानाव्रतफलञ्चैव नानाशास्त्रफलं तथा।।७५।।
अहिंसादिफलं सम्यक्फलं सर्व्वाभिवाञ्छितम्। ब्रह्मचर्य्यफलञ्चैव गार्हस्थ्येन च यत्फलम्।।७६।।
यत् फलं वनवासेन संन्यासेन च यत्फलम्। इष्टापूर्त्तफलञ्चैव तथान्यच्छुभकर्म्मणाम्।।७७।।

भारत के मनुष्य जो कर पाते हैं, कर्म शृंखला में बद्ध तथा कर्मक्षय के कारण पतनोन्मुख सुर-असुरगण भी वह नहीं कर सकते। हे ब्राह्मणगण! पृथिवी में जितने भी वर्ष (देश) हैं, उनमें भारत के समतुल्य कोई नहीं है। यहां ब्राह्मणादि चारों वर्ण वांछितलाभ करते हैं। जो नरश्रेष्ठ भारत में जन्म लेते हैं, वे ही धन्य हैं। वे ही धर्म-काम-मोक्ष का चरम उत्कर्ष प्राप्त कर पाते हैं। भारत में ही परम तप, समस्त दान, सर्व यज्ञ, तीर्थाटन, गुरु सेवा, देवता की आराधना तथा स्वाध्याय फल मिलता है। देवता प्रसन्न होकर भारत में ही अपने शुभ जन्म की कामना करते हैं। हे द्विजप्रवरवृन्द! विविध व्रत, नाना शास्त्रों का अध्ययन, अहिंसा, समस्त अभीष्ट, ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य सेवा, वनवास, सन्यास, ईष्टापूर्त समस्त शुभ कर्म का यहां फल मिलता है।।७०-७७।।

प्राप्यते भारते वर्षे न चान्यत्र द्विजोत्तमाः।
कः शक्नोति गुणान् वक्तुं भारतस्याखिलान् द्विजाः।।७८।।

एवं सम्यङ्मया प्रोक्तं भारतं वर्षमुत्तमम्। सर्व्वपापहरं पुण्यं धन्यं बुद्धिविवर्द्धनम्।।७९।।
य इदं शृणुयान्नित्यं पठेद्वा नियतेन्द्रियः। सर्व्वपापैर्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति।।८०।।

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे भारतवर्षानुकीर्त्तनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः।।२७।।



भारत के अतिरिक्त किसी भी वर्ष में यह सब फल नहीं मिलता। हे ब्राह्मणगण! भारत में जितने गुण हैं, उनके वर्णन की क्षमता किसी में नहीं है। मैंने सम्यक्तः भारत के गुणों को कहा है। यह भारताख्यान सर्वपापहारी, पवित्र, बुद्धिवर्द्धक, धन्य है। जो संयतेन्द्रिय होकर नित्य यह सुनता है, वह सर्व पापरहित होकर मुक्त होता है और विष्णुलोक जाता है।।७८-८०।।

।।सप्तविंश अध्याय समाप्त।।



अथ अष्टाविंशोऽध्यायः

ओड्र देश में स्थित कोणादित्य का माहात्म्य कथन, सूर्यपूजा वर्णन

ब्रह्मोवाच

तत्रास्ते भारते वर्षे दक्षिणोदधिसंस्थितः। ओण्ड्रदेश इति ख्यातः स्वर्गमोक्षप्रदायकः॥१॥
समुद्रादुत्तरं तावद्यावद्विरजमण्डलम्। देशोऽसौ पुण्यशीलानां गुणैः सर्व्वैरलङ्कृतः॥२॥

तत्र देशप्रसूता ये ब्राह्मणाः संयतेन्द्रियाः।
तपःस्वाध्यायनिरता वन्द्याः पूज्याश्च ते सदा॥३॥
श्राद्धे दाने विवाहे च यज्ञे वाचार्य्यकर्म्मणि।
प्रशस्ताः सर्व्वकार्य्येषु तत्रदेशोद्भवा द्विजाः॥४॥

ब्रह्मा कहते हैं—भारतवर्ष में दक्षिण सागर के पास ओड्र देश एक पवित्र देश है। यह देश स्वर्गप्रद तथा मोक्षप्रद है। समुद्र से उत्तर भाग में विरजमण्डल तक जो भूभाग विस्तृत है, वहां पुण्यात्मा तथा सर्वगुणसम्पन्न लोगों का निवास है। यहां जो जितेन्द्रिय तप-स्वाध्यायरत ब्राह्मण जन्म लेते हैं, वे सदा सर्वसाधारण के वन्द्य तथा पूज्य हैं। वे श्राद्ध, दान, विवाह, यज्ञ के आचार्यत्व हेतु सदा प्रशस्त हैं।।१-४।।

षट्कर्म्मनिरतास्तत्र ब्राह्मणा वेदपारगाः। इतिहासविदश्चैव पुराणार्थविशारदाः॥५॥

सर्व्वशास्त्रार्थकुशला यज्वानो वीतमत्सराः।
अग्निहोत्ररताः केचित् केचित् स्मार्त्ताग्नितत्पराः॥६॥

पुत्रदारधनैर्युक्ता दातारः सत्यवादिनः। निवसन्त्युत्कले पुण्ये यज्ञोत्सवविभूषिते॥७॥

इतरेऽपि त्रयो वर्णाः क्षत्रियाद्याः सुसंयताः।
स्वकर्म्मनिरताः शान्तास्तत्र तिष्ठन्ति धार्म्मिकाः॥८॥
कोणादित्य इति ख्यातस्तस्मिन् देशे व्यवस्थितः।
यं दृष्ट्वा भास्करं मर्त्त्यः सर्व्वपापैः प्रमुच्यते॥९॥

वहां के ब्राह्मण षट्कर्म में निरत, वेदज्ञ, इतिहासविद्, पुराण के अर्थ के विशारद, सर्व शास्त्रों के अर्थ को जानने वाले, यज्ञशील तथा मात्सर्य रहित हैं। उनमें से अनेक लोग अग्निहोत्ररत तथा अनेक स्मार्त्ताग्नि (स्मृति विहित कर्म करने वाले) तत्पर हैं। वहां के ब्राह्मण दाता, सत्यवक्ता तथा स्त्री-पुत्र-धन युक्त होकर यज्ञोत्सवमय उत्कल देश में रहते हैं। ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य तीन वर्णों वाले भी अपने-अपने कर्म तथा धर्मानुष्ठान में लगे रहकर वहां रहते हैं। उस देश में कोणादित्य नामक एक भास्कर मूर्त्ति भी स्थापित है। मर्त्यलोकवासी उनके दर्शन से सर्वपापरहित हो जाते हैं।।५-९।।

मुनय ऊचुः

श्रोतुमिच्छाम तद्ब्रूहि क्षेत्रं सूर्य्यस्य साम्प्रतम्।
तस्मिन् देशे सुरश्रेष्ठ यत्रास्ते स दिवाकरः॥१०॥

मुनिगण कहते हैं—हे सूतश्रेष्ठ! इस देश में जहां भास्करदेव अवस्थान करते हैं, वह कौन क्षेत्र है? हम सुनना चाहते हैं। कृपया कहिये।।१०।।

ब्रह्मोवाच

लवणस्योदधेस्तीरे पवित्रे सुमनोहरे। सर्व्वत्र वालुकाकीर्णे देशे सर्व्वगुणान्विते॥११॥
चम्पकाशोकबकुलैः करवीरैः सपाटलैः। पुन्नागैः कर्णिकारैश्च वकुलैर्नागकेसरैः॥१२॥
तगरैर्धवबाणैश्च अतिमुक्तैः सकुब्जकैः। मालतीकुन्दपुष्पैश्च तथान्यैर्मल्लिकादिभिः॥१३॥
केतकीवनखण्डैश्च सर्व्वर्त्तुकुसुमोज्ज्वलैः। कदम्बैर्लकुचैः शालैः पनसैर्देवदारुभिः॥१४॥
सरलैर्मुचुकुन्दैश्च चन्दनैश्च सितेतरैः। अश्वत्थैः सप्त पर्णैश्च आम्रै राम्रातकैस्तथा॥१५॥

तालैः पूगफलैश्चैव नारिकेलैः कपित्थकैः।
अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः सर्व्वतः समलङ्कृतम्॥१६॥
क्षेत्रं तत्र रवेः पुण्यमास्ते जगति विश्रुतम्।
समन्ताद्योजनं साग्रं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥१७॥

ब्रह्मा कहते हैं—लवणसमुद्र के पवित्र तट पर दिवाकर का पवित्र मनोहर क्षेत्र है। यह क्षेत्र सभी दिशाओं से बालू के स्तूप से भरा है। वह सर्वगुणान्वित स्थान है। चम्पक, अशोक, बकुल, कनेर, पाटल, पुन्नाग, कर्णिकार, बकुल, नागकेशर (बकुल दो बार लिखा है), तगर, धव, अतिमुक्त, कुब्जक, मालती, कुन्द, मल्लिका, केवड़ा, कदम्ब, बड़हर, साखू, कटहल, देवदारु, सरल, मुचकुन्द, चन्दन, पीपल, सप्तपर्ण, आम, इमली, ताल, आमड़ा, सुपारी, नारियल, कैंथा तथा नाना प्रकार के पुष्पों से भूषित पवित्र तथा जगत् विख्यात सूर्यक्षेत्र है। उसका चतुर्दिक् परिमाण एक योजन है। यह भुक्ति-मुक्ति फलदायक है।।११-१७।।

आस्ते तत्र स्वयं देवः सहस्रांशुर्दिवाकरः।
कोणादित्य इति ख्यातो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः॥१८॥
माघे मासि सिते पक्षे सप्तम्यां संयतेन्द्रियः।
कृतोपवासो यत्रैत्य स्नात्वा तु मकरालये॥१९॥
कृतशौचो विशुद्धात्मा स्मरन् देवं दिवाकरम्।
सागरे विधिवत् स्नात्वा शर्व्वर्य्यन्ते समाहितः॥२०॥
देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितॄन् सन्तर्प्य च द्विजाः।
उत्तीर्य्य वाससी धौते परिधाय सुनिर्म्मले॥२१॥

आचम्य प्रयतो भूत्वा तीरे तस्य महोदधेः।
उपविश्योदये काले प्राङ्मुखः सवितुस्तदा॥२२॥
विलिख्य पद्मं मेधावी रक्तचन्दनवारिणा। अष्टपत्रं केसराढ्यं वर्त्तुलं चोर्ध्वकर्णिकम्॥२३॥
तिलतण्डुलतोयञ्च रक्तचन्दनसंयुतम्। रक्तपुष्पं सदर्भञ्च प्रक्षिपेत्ताम्रभाजने॥२४॥
ताम्राभावेऽर्कपत्रस्य पुटैः कृत्वा तिलादिकम्।
पिधाय तन्मुनिश्रेष्ठाः पात्रं पात्रेण विन्यसेत्॥२५॥
करन्यासाङ्गविन्यासं कृत्वाङ्गैर्हृदयादिभिः।
आत्मानं भास्करं ध्यात्वा सम्यक् श्रद्धासमन्वितः॥२६॥
मध्ये चाग्निदले धीमान्नैर्ऋते श्वसने दले। कामारिगोचरे चैव पुनर्मध्ये च पूजयेत्॥२७॥

यह भोग-मोक्ष दायक स्थान है। स्वयं सहस्र किरण वाले दिवाकर यहां कोणादित्य नाम से प्रसिद्ध होकर विराजमान हैं। वे साधकों को भोग तथा मोक्षफल देते हैं। माघ शुक्ल सप्तमी को उपवासी रहकर सविधि समुद्र में स्नान करे। शौचाचरण से शुद्ध होकर दो वस्त्र पहने तथा आचमन करके उस महासमुद्र के तट पर बैठे तथा सूर्योदय काल में पूर्वमुख होकर रक्तचन्दन से लिखे। एक सूर्य पद्म पर एक ताम्रपात्र रखकर उसमें तिल, चावल, जल, लाल चन्दन, लाल पुष्प तथा कुश छोड़े। हे मुनिप्रवर वृन्द! यदि ताम्रपात्र न हो, तब मदार के पत्ते के दोने में तिल प्रभृति रख कर अन्य दोने से उसे ढांके। इसे एक स्थान में रहने देना चाहिये। अब विशेष श्रद्धा के साथ अंगन्यास तथा करन्यास करके तब आत्मा में सूर्य मूर्त्ति का ध्यान करके बुद्धिमान साधक अग्निकोण, नैर्ऋत् कोण, वायुकोण तथा ईशान कोण में तथा मध्य में भास्कर की पूजा करे।।१८-२७।।

प्रभूतं विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम्। सम्पूज्य पद्ममावाह्य गगनातत्र भास्करम्॥२८॥
कर्णिकोपरि संस्थाप्य ततो मुद्रां प्रदर्शयेत्।
कृत्वा स्नानादिकं सर्व्वं ध्यात्वा तं सुसमाहितः॥२९॥
सितपद्मोपरि रविं तेजोबिम्बे व्यवस्थितम्।
पिङ्गाक्षं द्विभुजं रक्तं पद्मपत्रारुणाम्बरम्॥३०॥
सर्व्वलक्षणसंयुक्तं सर्व्वाभरणभूषितम्। सुरूपं वरदं शान्तं प्रभामण्डलमण्डितम्॥३१॥
उद्यन्तं भास्करं दृष्ट्वा सान्द्रसिन्दूरसन्निभम्।
ततस्तत्पात्रमादाय जानुभ्यां धरणीं गतः॥३२॥
कृत्वा शिरसि तत्पात्रमेकचित्तस्तु वाग्यतः।
त्र्यक्षरेण तु मन्त्रेण सूर्य्यायार्घ्यं निवेदयेत्॥३३॥

परम सुखरूप, परमाराध्य, विमल भास्कर का आवाहन आकाश से उस पद्म पर करके पूजा करे। तत्पश्चात् कर्णिका पर स्थापना करने के अनन्तर मुद्रा प्रदर्शन कराये। इसके पश्चात् स्नानादि कार्य समापन करके समाहित होकर सूर्य का ध्यान करे। यथा—तेजोमण्डल में शुक्लपद्म पर सूर्य स्थित हैं। वे पिङ्गाक्ष, द्विभुज,

रक्तवर्ण, पद्मपत्र के समान अरुणवर्ण हैं। अम्बर ही उनका वस्त्र है। वे सभी उत्तम लक्षणों वाले हैं। वे सभी आभूषणों से भूषित, सुरूप, वर देने वाले, शान्त एवं प्रभामण्डल मण्डित हैं। तत्पश्चात् सान्द्र सिन्दूर के समान भास्कर को समुन्नत (उदित) देख कर पूर्वोक्त पात्र को लेना चाहिये और भूमि पर घुटने टेक कर उस पात्र को मस्तक पर धारण करे। तत्पश्चात् वाक् का संयम करके सावधानी पूर्वक त्र्यक्षर मन्त्र से सूर्य को अर्घ्य प्रदान करे।।२८-३३।।

अदीक्षितस्तु तस्यैव नाम्नैवार्घ्यं प्रयच्छति।
श्रद्धया भावयुक्तेन भक्तिग्राह्यो रविर्यतः॥३४॥

यदि अर्घ्यप्रदाता अदीक्षित है, तब वह श्रद्धा के साथ भावयुक्त स्थिति में सूर्यदेव का नाम लेते हुये अर्घ्य प्रदान कर सकता है। इसी से उसकी पूजा सम्पन्न मानी जायेगी। भक्तिग्राह्य होगी।।३४।।

अग्निनिर्ऋतिवाय्वीशमध्यपूर्व्वादिदिक्षु च। हृच्छिरश्च शिखावर्मनेत्राण्यस्त्रञ्च पूजयेत्॥३५॥
दत्त्वार्घ्यं गन्धधूपञ्च दीपं नैवेद्यमेव च।
जप्त्वा स्तुत्वा नमस्कृत्वा मुद्रां बद्ध्वा विसर्ज्जयेत्॥३६॥

इसके अनन्तर अग्निकोण, नैर्ऋति कोण, वायुकोण एवं ईशान कोण तथा मध्य में और पूर्व आदि चारों दिशाओं के दल में, हृदय, शिर, शिखा, कवच और नेत्रादि में पूजा करे (न्यास करे)। तदनन्तर गन्ध, धूप, दीप, नैवेद्य निवेदित करके जप, स्तव, प्रणाम तथा मुद्रा प्रदर्शन के साथ विसर्जन करे।।३५-३६।।

ये वार्घ्यं सम्प्रयच्छन्ति सूर्य्याय नियतेन्द्रियाः।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियाः शूद्राश्च संयताः॥३७॥
भक्तिभावेन सततं विशुद्धेनान्तरात्मना।
ते भुक्त्वाभिमतान् कामान् प्राप्नुवन्ति परां गतिम्॥३८॥
त्रैलोक्यदीपकं देवं भास्करं गगनेचरम्।
ये संश्रयन्ति मनुजास्ते स्युः सुखस्य भाजनम्॥३९॥
यावन्न दीयते चार्घ्यं भास्कराय यथोदितम्। तावन्न पूजयेद्विष्णुं शङ्करं वा सुरेश्वरम्॥४०॥

एवंविध ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री जो कोई क्यों न हो, वह यदि विशुद्ध चित्त एवं भक्ति के साथ संयतेन्द्रिय होकर सूर्य को अर्घ्य देता है, तब वह इहलोक में अत्यन्त सुख भोग कर अंत में परमगति लाभ करता है। जो त्रैलोक्य के दीपक स्वरूप गगन में विचरण करने वाले सूर्य हैं, सभी मनुष्य उनका आश्रय ग्रहण करें। ऐसे लोग अत्यन्त सुख के भागी हो जाते हैं। जब तक सूर्य को सविधि अर्घ्य प्रदान नहीं किया जाता, तब तक विष्णु, शंकर किंवा सुरेश्वर श्रीहरि की पूजा विहित ही नहीं होती।।३७-४०।।

तस्मात् प्रयत्नमास्थाय दद्यादर्घ्यं दिने दिने।
आदित्याय शुचिर्भूत्वा पुष्पैर्गन्धैर्मनोरमैः॥४१॥
एवं ददाति यश्चार्घ्यं सप्तम्यां सुसमाहितः।
आदित्याय शुचिः स्नातः स लभेदीप्सितं फलम्॥४२॥

रोगाद्विमुच्यते रोगी वित्तार्थी लभते धनम्।
विद्यां प्राप्नोति विद्यार्थी सुतार्थी पुत्रवान् भवेत्॥४३॥
यं यं काममभिध्यायन् सूर्य्यायार्घ्यं प्रयच्छति।
तस्य तस्य फलं सम्यक् प्राप्नोति पुरुषः सुधीः॥४४॥
स्नात्वा वै सागरे दत्त्वा सूर्य्यायार्घ्यं प्रणम्य च।
नरो वा यदि वा नारी सर्व्वकामफलं लभेत्॥४५॥

अतएव प्रयत्नतः नित्यप्रति मनोहर पुष्प तथा गन्धादि उपचारों से आदित्यदेव को अर्घ्य देना चाहिये। जो व्यक्ति सप्तमी के दिन समाहित होकर स्नानान्त में इस प्रकार से पवित्रता पूर्वक आदित्य को अर्घ्य देता है, उसे वांछित फललाभ होता है। इस अर्घ्यदान द्वारा रोगी रोगमुक्त होता है। धनार्थी वित्तलाभ करता है। विद्यार्थी विद्यालाभ करता है तथा पुत्रार्थी को पुत्रलाभ होता है। सुख चाहने वाला विद्वान् व्यक्ति जो-जो कामना करके सूर्य को अर्घ्य देता है, उसे अपनी कामना का फल सम्यक्तः प्राप्त होता है। नर अथवा नारी सागर में नहा कर सूर्य को अर्घ्यदान के उपरान्त प्रणाम करें। इससे सभी कामना का फल मिलेगा।।४१-४५।।

ततः सूर्य्यालयं गच्छेत् पुष्पमादाय वाग्यतः।
प्रविश्य पूजयेद्भानुं कृत्व तु त्रिः प्रदक्षिणम्॥४६॥
पूजयेत् परया भक्त्या कोणार्कं मुनिसत्तमाः। गन्धैः पुष्पैस्तथा दीपैर्धूपै नैवेद्यकै रपि॥४७॥
दण्डवत् प्रणिपातैश्च जयशब्दैस्तथा स्तवैः। एवं सम्पूज्य तं देवं सहस्रांशुं जगत्पतिम्॥४८॥
दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः। सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तो युवा दिव्यवपुर्नरः॥४९॥
सप्तावरान् सप्त परान् वंशानुद्धृत्य भो द्विजाः।
विमानेनार्कवर्णेन कामगेन सुवर्च्चसा॥५०॥
उपगीयमानो गन्धर्व्वैः सूर्य्यलोकं स गच्छति।
भुक्त्वा तत्र वरान् भोगान् यावदाभूतसम्प्लवम्॥५१॥
पुण्यक्षयादिहायातः प्रवरे योगिनां कुले। चतुर्व्वेदो भवेद्विप्रः स्वधर्म्मनिरतः शुचिः॥५२॥
योगं विवस्वतः प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात्।
चैत्रे मासि सिते पक्षे यात्रां मदनभञ्जिकाम्॥५३॥

इसके पश्चात् मौनी स्थिति में अंजलि में पुष्प लेकर सूर्य की तीन प्रदक्षिणा तथा पूजा करे। हे मुनिप्रवरगण! गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, दण्डवत् प्रणाम तथा जय-जयकार एवं स्तव से इन सहस्रकिरण सूर्य की पूजा करने वाला सर्वपाप रहित होकर दिव्य युवादेह धारण करता है तथा उसे दस अश्वमेध यज्ञफल लाभ होता है। हे द्विजों! मानव कोणादित्य की अर्चना के फल से अपनी सात पूर्व एवं आगामी पीढ़ी का उद्धार करके सूर्य के समान इच्छागामी होकर उज्ज्वल विमान पर बैठा हुआ गन्धर्वों द्वारा पूजित होकर सूर्यलोक को प्राप्त करता है। वह वहां जाकर प्रलय तक विविध दिव्य भोग्य वस्तुओं का उपभोग करने के पश्चात् पुण्यक्षय

होने पर मर्त्यलोक में आकर योगियों के उत्तम कुल में जन्म लेता है। वह चतुर्वेदज्ञ, स्वधर्म तत्पर, पवित्र ब्राह्मण कुल में जन्म लेता है। तदनन्तर सूर्य में लीन होकर मोक्षलाभ कर लेता है। चैत्रमासीय शुक्लपक्ष में मदनभंजिका यात्रा होती है। (बंगभाषा संस्करण में दमनभंजिका यात्रा अंकित है)।।४६-५३।।

यः करोति नरस्तत्र पूर्व्वोक्तं स फलं लभेत्।
शयनोत्थापने भानोः संक्रान्त्यां विषुवायने॥५४॥
वारे रवेस्तिथौ चैव पर्व्वकालेऽथवा द्विजाः।
ये तत्र यात्रां कुर्व्वन्ति श्रद्धया संयतेन्द्रियाः॥५५॥
विमानेनार्कवर्णेन सूर्य्यलोकं व्रजन्ति ते। आस्ते तत्र महादेवस्तीरे नदनदीपतेः॥५६॥
रामेश्वर इति ख्यातः सर्व्वकामफलप्रदः।
ये तं पश्यन्ति कामारिं स्नात्वा सम्यङ्महोदधौ॥५७॥
गन्धैः पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यकैर्व्वरैः। प्रणिपातैस्तथा स्तोत्रैर्गीतैर्वाद्यैर्मनोहरैः॥५८॥
राजसूयफलं सम्यग्वाजिमेधफलं तथा। प्राप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां तथा॥५९॥

जो मानव इस यात्रा का अनुष्ठान करता है, उसे पूर्वोक्त सभी फलों की प्राप्ति होती है। सूर्य का शयन, उत्थान, विषुव संक्रान्ति (देवशयनी तथा देवोत्थान एकादशी), रविवार, सप्तमी तिथि अथवा किसी भी पर्व दिन में जो व्यक्ति जितेन्द्रिय होकर सश्रद्ध भाव से यह यात्रा अनुष्ठित करता है, वह सूर्यवर्ग विमान पर बैठ कर सूर्यलोक जाता है। उस समुद्र तट पर जो महादेव हैं, वे सर्वकामप्रद रामेश्वर शिव के नाम से प्रसिद्ध हैं। जो लोग सविधि सागर में स्नानोपरान्त इन कामारि महादेव का दर्शन करते तथा गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, प्रणाम, स्तोत्र, गीत, मनोहर वाद्य से उनकी अर्चना करते हैं, वे सभी महात्मा अश्वमेध तथा वाजपेय यज्ञलाभ करते हैं। यहां तक कि उनको परम सिद्धि का लाभ हो जाता है।।५४-५९।।

कामगेन विमानेन किङ्किणीजालमालिना। उपगीयमाना गन्धर्व्वैः शिवलोकं व्रजन्ति ते॥६०॥
आभूतसम्प्लवं यावद्भुक्त्वा भोगान्मनोरमान्।
पुण्यक्षयादिहागत्य चातुर्व्वेदा भवन्ति ते॥६१॥
शाङ्करं योगमास्थाय ततो मोक्षं वज्रन्ति ते।
यस्तत्र सवितुः क्षेत्रे प्राणांस्त्यजति मानवः॥६२॥
स सूर्य्यलोकमास्थाय देववन्मोदते दिवि।
पुनर्मानुषतां प्राप्य राजा भवति धार्म्मिकः॥६३॥
योगं रवेः समासाद्य ततो मोक्षमवाप्नुयात्। एवं मया मुनिश्रेष्ठाः प्रोक्तं क्षेत्रं सुदुर्लभम्॥६४॥
कोणार्कस्योदधेस्तीरे भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥६५॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भुऋषिसंवादे कोणादित्यमाहात्म्यकीर्तनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः।।२८।।

वे छोटी-छोटी घंटियों से शोभित इच्छा के अनुसार चलने वाले कामगामी विमान पर बैठ कर गन्धर्वों से स्तुत होते हुये शिवलोक जाते हैं। वहां प्रलय तक सभी भोगों को भोग कर पुनः मृत्युलोक में जन्म लेकर चतुर्वेदज्ञ विद्वान् के रूप में जन्म लेते हैं। तदनन्तर शैवयोग का अवलम्बन लेने के कारण उनको मोक्षलाभ होता है। जो मानव उस सूर्यक्षेत्र में प्राण त्याग करता है, उसे सूर्यलोक में गति मिलती है। वह स्वर्गभूमि में देववत् विहार करता है। तदनन्तर मनुष्यत्व पाकर धर्मात्मा राजा होता है। वह अन्त में सूर्य में लीन होकर मुक्तिलाभ करता है। हे मुनिप्रवरगण! मैंने सागर तट पर स्थित भोग-मोक्ष फल देने वाले कोणार्क के दुर्लभ क्षेत्र का वर्णन कर दिया।।६०-६५।।

।।अष्टाविंश अध्याय समाप्त।।



अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायः

सूर्यपूजा माहात्म्य, शुक्लपक्षीय अर्क सप्तमी को सूर्याराधन की विशेषता का वर्णन

मुनय ऊचुः

श्रुतोऽस्माभिः सुरश्रेष्ठ भवता यदुदाहृतम्। भास्करस्य परं क्षेत्रं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥१॥

न तृप्तिमधिगच्छामः शृण्वन्तः सुखदां कथाम्।
तव वक्त्रोद्भवां पुण्यामादित्यस्याघनाशिनीम्॥२॥

अतः परं सुरश्रेष्ठ ब्रूहि नो वदतांवर। देवपूजाफलं यच्च यच्च दानफलं प्रभो॥३॥

प्रणिपाते नमस्कारे तथा चैव प्रदक्षिणे। दीपधूपप्रदाने च सम्मार्ज्जनविधौ च यत्॥४॥

उपवासे च यत् पुण्यं यत् पुण्यं नक्तभोजने।
अर्घ्यश्च कीदृशः प्रोक्तः कुत्र वा सम्प्रदीयते॥५॥

कथञ्च क्रियते भक्तिः कथं देवः प्रसीदति। एतत् सर्व्वं सुरश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामहे वयम्॥६॥

मुनिगण कहते हैं—हे सुरप्रवर! आपने जो भुक्ति-मुक्तिदायक भास्करक्षेत्र का प्रसंग कहा है, वह सुखप्रद, पापनाशक आपके मुख से निर्गत पवित्र कथा हम जितना सुनते जाते हैं, उससे हमें कदापि तृप्ति नहीं हो रही है। हे वाग्विदों में श्रेष्ठ प्रभु! अब कृपया यह कहिये कि उन देवता के पूजन का फल क्या है, उनके उद्देश्य से प्रदत्त दान का फल क्या है? उनको प्रणाम-नमस्कार करने, उनकी प्रदक्षिणा करने, उनके लिये दीप-धूप प्रदान करने, वहां स्थान तथा मूर्त्ति मार्जन करने, उपवासी रहने, रात्रि भोजन करने का क्या पुण्य है? हे देवप्रवर! अर्घ्यदान का स्वरूप क्या है, उसे कहां प्रदान किया जाये? भक्ति कैसे की जाये, वे देव भास्कर कैसे प्रसन्न हों, यह सब कहने की कृपा कीजिये।।१-६।।

ब्रह्मोवाच

अर्घ्यं पूजादिकं सर्व्वं भास्करस्य द्विजोत्तमाः।
भक्तिं श्रद्धा समाधिञ्च कथ्यमानं निबोधत॥७॥
मनसा भावना भक्तिरिष्टा श्रद्धा च कीर्त्त्यते।
ध्यानं समाधिरित्युक्तं शृणुध्वं सुसमाहिताः॥८॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे द्विजप्रवर! भगवान् सूर्य हेतु अर्घ्य प्रदान, पूजादि विधान, भक्ति, श्रद्धा तथा समाधि का प्रसंग श्रवण करिये। मन से भगवद् विषय की जो भावना है, वही भक्ति है। उस विषय के प्रति जो मानसिक इच्छा-रुचि है, वही श्रद्धा है। इसके अतिरिक्त जो ध्यान की गाढ़ता है, वही समाधिपद वाच्य है। इसे समाहित होकर सुनें।।७-८।।

तत्कथां श्रावयेद् यस्तु तद्भक्तान् पूजयेत वा।
अग्निशुश्रूषकश्चैव स वै भक्तः सनातनः॥९॥
तच्चित्तस्तन्मनाश्चैव देवपूजारतः सदा।
तत्कर्म्मकृद्भवेद् यस्तु स वै भक्तः सनातनः॥१०॥
देवार्थे क्रियमाणानि यः कर्म्माण्यनुमन्यते।
कीर्त्तनाद्वा परो विप्राः स वै भक्ततरो नरः॥११॥
नाभ्यसूयेत तद्भक्तान् न निन्द्याच्चान्यदेवताम्।
आदित्यव्रतचारी च स वै भक्ततरो नरः॥१२॥
गच्छन्स्तिष्ठन् स्वपञ्जिघ्रन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि।
यः स्मरेद्भास्करं नित्यं स वै भक्ततरो नरः॥१३॥
एवं विधा त्वियं भक्तिः सदा कार्य्या विजानता।
भक्त्या समाधिना चैव स्तवेन मनसा तथा॥१४॥
क्रियते नियमो यस्तु दानं विप्राय दीयते। प्रतिगृह्णन्ति तं देवा मनुष्याः पितरस्तथा॥१५॥

जो (सूर्यदेव की) भगवत् कथा सुनते तथा सुनाते हैं, उनके भक्तों की पूजा करते हैं, अग्निहोत्र करते हैं, वे ही सनातन भक्त कहे जाते हैं। जिनका चित्त तथा मन भगवान् सूर्य में लगा है, जो सदा देवपूजा तथा देवकर्म में निरत रहते हैं, वे ही प्रकृत भक्त हैं। जो देवता के उद्देश्य से अनुष्ठित कर्मों का अनुमोदन करते हैं, अथवा सतत् भगवत् कीर्त्तन करते हैं, वे ही भक्त नर हैं। जो भगवद् भक्तों के प्रति असूया नहीं रखते अथवा अन्य देवों की निन्दा नहीं करते, जो आदित्य व्रत का अनुष्ठान करते हैं, वे ही उत्तम भक्त हैं। जो चलते, बैठते, सोते, सूंघते (श्वास लेते), उन्मेष-निमेष आदि सभी काल में भास्करदेव का स्मरण रखते हैं, वे ही वास्तव में भक्त हैं। विज्ञ लोग भगवान् की इसी प्रकार की भक्ति करते हैं। भक्ति-ध्यान-स्तव से नियमानुष्ठान के साथ देवता एवं पितरों की प्रीति हेतु जो ब्राह्मणों को दान देते हैं, देवता तथा पितर उसे स्वीकार कर लेते हैं।।९-१५।।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यद्भक्त्या समुपाहृतम्।
प्रतिगृह्णन्ति तद्देवा नास्तिकान् वर्ज्जयन्ति च॥१६॥
भावशुद्धिः प्रयोक्तव्या नियमाचारसंयुता।
भावशुद्ध्या क्रियते यत्तत् सर्व्वं सफलं भवेत्॥१७॥

भक्ति पूर्वक पत्र, पुष्प, फल, जल अथवा जो कुछ देवता के उद्देश्य से उपहार प्रदान किया जाता है, देवगण उसे ग्रहण करते हैं। लेकिन वे नास्तिकों द्वारा प्रदत्त कुछ भी नहीं लेते। नियम तथा आचार के साथ भावशुद्धि करे। जो कुछ भावशुद्धि के साथ किया जाता है, वही सफल है।।१६-१७।।

स्तुतिजप्योपहारेण पूजयापि विवस्वतः। उपवासेन भक्त्या वै सर्व्वपापैः प्रमुच्यते॥१८॥
प्रणिधाय शिरो भूम्यां नमस्कारं करोति यः।
तत्क्षणात् सर्व्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥१९॥
भक्तियुक्तो नरो योऽसौ रवेः कुर्यात् प्रदक्षिणाम्।
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा॥२०॥
सूर्य्यं मनसि यः कृत्वा कुर्य्याद्व्योमप्रदक्षिणाम्।
प्रदक्षिणीकृतास्तेन सर्व्वे देवा भवन्ति हि॥२१॥
एकाहारो नरो भूत्वा षष्ठ्यां योऽर्च्चयते रविम्। नियमव्रतचारी च भवेद्भक्तिसमन्वितः॥२२॥
सप्तम्यां वा महाभागाः सोऽश्वमेधफलं लभेत्। अहोरात्रोपवासेन पूजयेद् यस्तु भास्करम्॥२३॥

भक्ति के साथ उपवासी रहकर स्तुति, जप, पूजोपहार से भास्करार्चन करने से व्यक्ति सर्वपापविनिर्मुक्त हो जाता है। जो व्यक्ति भूतल पर मस्तक झुका कर सूर्य के उद्देश्य से प्रणाम करता है, वह तत्क्षण सर्वपाप विनिर्मुक्त हो जाता है। जो मानव भक्तिभाव के साथ सूर्य प्रदक्षिणा करता है, यह सात द्वीपों वाली धरती उसके द्वारा प्रदक्षणीकृत हो गई। मन ही मन सूर्य का ध्यान करके जो मानव व्योममंडल की प्रदक्षिणा करता है, उसके द्वारा तो सभी देवगण की प्रदक्षिणा सम्पन्न कर ली गयी। जो मनुष्य भक्ति के साथ एक समय भोजन करके षष्ठी के दिन सूर्यार्चन करता है तथा सदा व्रतानुष्ठान में तत्पर रहता है, किंवा जो मनुष्य अष्टमी के दिन रात्रि-दिन उपवासी रहता सूर्यपूजा करता है, हे महाभाग मुनिगण! वह मनुष्य अश्वमेध यज्ञ के फल की प्राप्ति करता है।।१८-२३।।

सप्तम्यामथवा षष्ठ्यां सा याति परमां गतिम्।
कृष्णपक्षस्य सप्तम्यां सोपवासो जितेन्द्रियः॥२४॥
सर्व्वरत्नोपहारेण पूजयेद् यस्तु भास्करम्।
पद्मप्रभेण यानेन सूर्य्यलोकं स गच्छति॥२५॥
शुक्लपक्षस्य सप्तम्यामुपवासपरो नरः। सर्व्वशुक्लोपहारेण पूजयेद् यस्तु भास्करम्॥२६॥
सर्व्वपापविनिर्म्मुक्तः सूर्य्यलोकं स गच्छति। अर्कसम्पुटसंयुक्तमुदकं प्रसृतं पिबेत्॥२७॥

क्रमवृद्ध्या चतुर्व्विंशमेकैकं क्षपयेत् पुनः।
द्वाभ्यां संवत्सराभ्यान्तु समाप्तनियमो भवेत्॥२८॥

सप्तमी हो अथवा षष्ठी हो, सूर्यार्चन से परम गति की प्राप्ति होती है। जो इन्द्रियजित् मनुष्य कृष्णपक्ष की सप्तमी के दिन उपवासी रहकर सर्वविध रत्नों के उपहार से सूर्यपूजा करता है, वह पद्मपत्र की प्रभा वाले यान में बैठ कर सूर्यलोक जाता है। जो मनुष्य शुक्ला सप्तमी को उपवासी रहकर सर्वविध श्वेत उपहार से भास्कर आराधना करता है, वह सर्वपाप रहित होकर सूर्यलोक जाता है तथा मुक्तिलाभ करता है। मदार के पत्ते का सम्पुट बनाकर (दोना बनाकर) प्रति सप्तमी के दिन से प्रारम्भ करके चौबीस दिनों तक एक-एक दोना पानी बढ़ाता हुआ पानी पीये (अर्थात् सप्तमी को १, अष्टमी को २, नवमी को ३ इस प्रकार नित्य एक दोना पानी बढ़ाते हुये) तब पचीसवें दिन से एक-एक दोना कम करके २४ दिन तक कम करे। (अंतिम दिन एक ही दोना पीना होगा), ऐसा दो वर्ष तक करे। इस प्रकार वह इस व्रत समाप्ति को करे। यह अर्क सप्तमी समस्त कामना प्रदात्री है। जिस शुक्लपक्षीय सप्तमी को रविवार हो।।२४-२८।।

सर्व्वकामप्रदा ह्येषा प्रशस्ता ह्यर्कसप्तमी। शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां यदादित्यदिनं भवेत्॥२९॥
सप्तमी विजया नाम तत्र दत्तं महत् फलम्। स्नानं दानं तपो होम उपवासस्तथैव च॥३०॥
सर्व्वं विजयसप्तम्यां महापातकनाशनम्। ये चादित्यदिने प्राप्ते श्राद्धं कुर्व्वन्ति मानवाः॥३१॥
यजन्ति च महाश्वेतं ते लभन्ते यथेप्सितम्।
येषां धर्म्याः क्रियाःसर्व्वाः सदैवोद्दिश्य भास्करम्॥३२॥
न कुले जायते तेषां दरिद्रो व्याधितोऽपि वा। श्वेतया रक्त्या वापि पीतमृत्तिकयापि वा॥३३॥
उपलेपनकर्त्ता तु चिन्तितं लभते फलम्। चित्रभानुं विचित्रैस्तु कुसुमैश्च सुगन्धिभिः॥३४॥
पूजयेत् सोपवासो यः स कामानीप्सितांल्लभेत्।
घृतेन दीपं प्रज्वाल्य तिलतैलेन वा पुनः॥३५॥
आदित्यं पूजयेद्यस्तु चक्षुषा न स हीयते। दीपदाता नरो नित्यं ज्ञानदीपेन दीप्यते॥३६॥

वह विजया सप्तमी कही जाती है। इस विजया सप्तमी के दिन स्नान, दान, तप, होम, उपवास, जो कुछ भी किया जाता है, उसका महान् फल होगा। यहां तक कि महापातक भी दूर हो जाते हैं। जो मानव रविवार को श्राद्ध अथवा देवार्चना करते हैं, उनको वांछित फल मिलता है। जो सब धर्म-कर्म आदित्य के उद्देश्य से करते हैं, उनके कुल में कोई भी दरिद्र तथा व्याधिग्रस्त नहीं होता। श्वेत-रक्त-पीत मिट्टी द्वारा जो सूर्य के स्थान को लीपते हैं, वे भी अभीष्टफल लाभ करते हैं। जो उपवासी रहकर विचित्र पुष्पों (विचित्र अर्थात् नाना वर्ण वाले) तथा गन्ध से चित्रभानु (सूर्य) की पूजा करता है, उसे इच्छित कामना फल की प्राप्ति होती है। जो मनुष्य घृत अथवा तिल तैल का दीप जलाकर आदित्य की पूजा करते हैं, उनके नेत्र कभी नष्ट नहीं होते। दीप प्रदान करने वाला व्यक्ति सर्वदा ज्ञान की दीप्ति से उद्भासित रहता है।।२९-३६।।

तिलाः पवित्रं तैलं वा तिलगोदानमुत्तमम्।
अग्निकार्य्ये च दीपे च महापातकनाशनम्॥३७॥

दीपं ददाति यो नित्यं देवतायतनेषु च। चतुष्पथेषु रथ्यासु रूपवान् सुभगो भवेत्॥३८॥

हविर्भिः प्रथमः कल्पो द्वितीयश्चोषधीरसैः।
वसामेदोस्थिनिर्य्यासैर्न तु देयः कथञ्चन॥३९॥

भवेदूर्ध्वगतिर्दीपो न कदाचिदधोगतिः। दाता दीप्यति चाप्येवं न तिर्य्यग्गतिमाप्नुयात्॥४०॥

तिल राशि, पवित्र तैल तथा तिलधेनु—ये तीन दान उत्तम माने गये हैं। तिल से अग्नि में आहुति देने से तथा तिल तैल का दीपक जलाकर देवगृह में अर्पित करने से महापातकों का नाश हो जाता है। मानव चौराहा तथा देवगृह आदि में नित्य दीपक जलाये। वह रूपवान् तथा सुभग हो जाता है। घृत से दीपदान प्रथम कल्प है। औषधि रस का दीपदान द्वितीय कल्प है। परन्तु वसा-मेद-अस्थि प्रभृति से दीपक प्रदान करके रखना अविधि है। दीप ऊर्ध्वगति होता है (ज्वाला ऊर्ध्व उठती है), उसकी ज्वाला नीचे नहीं होती, ऊर्ध्व में ही जलती है, तदनुरूप दीपक देने वाला सदा ऊर्ध्वगति पाता है। तिर्यक् योनि नहीं पाता।।३७-४०।।

ज्वलमानं सदा दीपं न हरेन्नापि नाशयेत्।
दीपहर्त्ता नरो बन्धं नाशं क्रोधं तमो व्रजेत्॥४१॥

दीपदाता स्वर्गलोके दीपमालेव राजते। यः समालभते नित्यं कुङ्कुमागुरुचन्दनैः॥४२॥

सम्पद्यते नरः प्रेत्य धनेन यशसा श्रिया। रक्तचन्दनसम्मिश्रै रक्तपुष्पैः शुचिर्नरः॥४३॥

उदयेऽर्घ्यं सदा दत्त्वा सिद्धिं संवत्सराँल्लभेत्।
उदयात् परिवर्त्तेत यावदस्तमने स्थितः॥४४॥

जपन्नभिमुखः किञ्चिन्मन्त्रं स्तोत्रमथापि वा। आदित्यव्रतमेतत्तु महापातकनाशनम्॥४५॥

जलते दीपक को न तो बुझाये, न उसका हरण ही करे। दीपक का हरण करने वाला मानव वध, बन्धन, क्रोध तथा तमःभाव को प्राप्त होता है। लेकिन दीपक दान करने वाला स्वर्ग जाकर दीपमालावत् रहता है। जो मानव नित्य कुंकुम तथा अगुरु, चन्दन लेपन करते हैं, ऐसे मनुष्य अगले जन्म में यशस्वी तथा धनी हो जाते हैं। जो मानव पवित्र होकर सूर्योदय के समय रक्तचन्दन लिप्त रक्तपुष्प से सर्वदा अर्घ्य देता है, वह एक वर्ष के अन्त में सिद्धि पाता है। सूर्योदय से लेकर अस्त तक व्यक्ति सूर्य की ओर रहते हुये किसी भी मन्त्र अथवा स्तोत्र का पाठ करे। यही आदित्य व्रत है। यह महापातक नाशक व्रत है।।४१-४५।।

अर्घ्येण सहितञ्चैव सर्व्वं साङ्गं प्रदापयेत्। उदये श्रद्धया युक्तः सर्व्वपापैः प्रमुच्यते॥४६॥

सुवर्णधेन्वनडुहवसुधावस्त्रसंयुतम्। अर्घ्यप्रदाता लभते सप्तजन्मानुगं फलम्॥४७॥

सूर्योदय काल में सश्रद्ध भाव से अर्घ्यदान करने वाला सभी पापों से रहित हो जाता है। सूर्यार्घ्य प्रदाता स्वर्ण, गौ, बैल, वसुधा तथा विविध वस्त्र देकर सात जन्मों तक फल का लाभ करता रहता है।।४६-४७।।

अग्नौ तोयेऽन्तरिक्षे च शुचौ भूम्यां तथैव च।
प्रतिमायां तथा पिण्ड्यां देयमर्घ्यं प्रयत्नतः॥४८॥

नापसव्यं न सव्यञ्च दद्यादभिमुखः सदा। सघृतं गुग्गुलं वापि रवेर्भक्तिसमन्वितः॥४९॥

तत्क्षणात् सर्व्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः। श्रीवासं चतुरस्त्रञ्च देवदारुं तथैव च॥५०॥
कर्पूरागरुधूपानि दत्त्वा वै स्वर्गगामिनः। अयने तूत्तरे सूर्य्यमथवा दक्षिणायने॥५१॥
पूजयित्वा विशेषेण सर्व्वपापैः प्रमुच्यते। विषुवेषूपरागेषु षडशीतिमुखेषु च॥५२॥
पूजयित्वा विशेषेण सर्व्वपापैः प्रमुच्यते। एवं वेलासु सर्व्वासु सर्व्वकालञ्च मानवः॥५३॥

भक्त्या पूजयते योऽर्कं सोऽर्कलोके महीयते।
कृसरैः पायसैः पूपैः फलमूलघृतौदनैः॥५४॥
वलिं कृत्वा तु सूर्य्याय सर्व्वान् कामानवाप्नुयात्।
घृतेन तर्पणं कृत्वा सर्व्वसिद्धो भवेन्नरः॥५५॥

अग्नि, जल, अन्तरिक्ष, पुण्यतीर्थ तथा प्रतिमा आदि में यत्नतः सूर्य अर्घ्य प्रदान करे। सव्य किंवा अवसव्य क्रम से न देकर इसे सूर्य के अभिमुख होकर भक्ति से घृत-गुग्गुलादि मिश्रित करके प्रदान करे। यह अर्घ्य देने से तत्क्षण सर्व पाप से निवृत्ति होती है। सूर्य को श्रीवास, देवदारु, कपूर, अगुरु तथा धूपादि देने से स्वर्ग मिलेगा। उत्तर तथा दक्षिण उभय अयन में सूर्यपूजा द्वारा सर्व पाप नष्ट हो जाते हैं। विषुव संक्रान्ति तथा उपवासादि के समय विशेष रूप से सूर्य पूजा करने वाला सभी पापों से मुक्त हो जाता है। जो मानव सभी बेला में सभी समय भक्ति से सूर्य की पूजा करता है, उसकी सूर्यलोक में गति होती है। खिचड़ी, पायस, अपूप, फल, मूल तथा घृतमिश्रित भात से सूर्य को उपहार प्रदान करने वाला सभी कामनाओं को पाता है। घृत से तर्पण करने वाला नर सर्वसिद्धि लाभ करता है।।४८-५५।।

क्षीरेण तर्पणं कृत्वा मनस्तापैर्न युज्यते। दध्ना तु तर्पणं कृत्वा कार्य्यसिद्धिं लभेन्नरः॥५६॥

स्नानार्थमाहरेद् यस्तु जलं भानोः समाहितः।
तीर्थेषु शुचितापन्नः स याति परमां गतिम्॥५७॥
छत्रं ध्वजं वितानं वा पताकां चामराणि च।
श्रद्धया भानवे दत्त्वा गतिमिष्टामवाप्नुयात्॥५८॥

क्षीर से तर्पण करने पर मन का ताप नहीं होता। दधि से तर्पण करने वाला कार्यसिद्धि लाभ करता है। जो समाहित चित्त से सूर्य स्नानार्थ पवित्रता के साथ तीर्थ जल लाता है, उसे परमगति मिलती है। सूर्य को छत्र, चंदोवा, ध्वज, पताका, चामर जो कोई सश्रद्धभावेन अर्पित करता है, उसे इच्छित गति मिलती है।।५६-५८।।

यद्यद्द्रव्यं नरो भक्त्या आदित्याय प्रयच्छति। तत्तस्य शतसाहस्त्रमुत्पादयति भास्करः॥५९॥
मानसं वाचिकं वापि कायजं यच्च दुष्कृतम्। सर्व्वं सूर्य्यप्रसादेन तदशेषं व्यपोहति॥६०॥

एकाहेनापि यद्भानोः पूजायाः प्राप्यते फलम्।
यथोक्तदक्षिणैर्विप्रैर्न तत् क्रतुशतैरपि॥६१॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे सूर्य्यपूजादि नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः।।२९।।

भक्तिभाव के साथ मनुष्य सूर्य को जो कुछ भी प्रदान करता है, उसका प्रदत्त वह सब द्रव्य एक लाख गुना होकर दाता के पास लौट आता है। उसने मन-वाणी-कर्म से चाहे कितना दुष्कृत किया हो, सूर्य की कृपा से वह सब नष्ट होगा। मात्र एक दिन ही सूर्यपूजा का जो फल है, वह फल यथायोग्य दक्षिणा वाले सैकड़ों यज्ञ द्वारा भी नहीं मिलता।।५९-६१।।

।।एकोनत्रिंश अध्याय समाप्त।।



अथ त्रिंशोऽध्यायः

आदित्य माहात्म्य तथा सूर्य से समस्त जगत् की उत्पत्ति का वर्णन

मुनय ऊचुः

अहो देवस्य माहात्म्यं श्रुतमेवं जगत्पते। भास्करस्य सुरश्रेष्ठ वदतस्तेषु दुर्लभम्॥१॥
भूयः प्रब्रूहि देवेश यत् पृच्छामो जगत्पते। श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन् परं कौतूहलं हि नः॥२॥
गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः।
य इच्छेन्मोक्षमास्थातुं देवतां कां यजेत सः॥३॥
कुतो ह्यस्याक्षयः स्वर्गः कुतो निःश्रेयसं परम्।
स्वर्गतश्चैव किं कुर्य्याद् येन न च्यवते पुनः॥४॥
देवानां चात्र को देवः पितृणाञ्चैव कः पिता। यस्मात् परतरं नास्ति तन्मे ब्रूहि सुरेश्वर॥५॥
कुतः सृष्टमिदं विश्वं सर्व्वं स्थावरजङ्गमम्। प्रलये च कमभ्येति तद्भवान् वक्तुमर्हति॥६॥

मुनिगण कहते हैं—हे जगत्पति! हे देवप्रवर! आपने भास्करदेव के दुर्लभ माहात्म्य को कहा है। हमने वह सब श्रवण कर लिया। लेकिन हे ब्रह्मन्! हमें यह सुनने का अत्यन्त कुतूहल अभी भी शान्त नहीं हो सका कि जो गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ अथवा सन्यासी भिक्षु मोक्ष चाहते हैं, तब वे किस देवता की आराधना करें? आप इस पर प्रकाश करिये। किस प्रकार से वे लोग अक्षय स्वर्गलाभ कर सकेंगे? अथवा कैसे उनको परम मंगल की प्राप्ति होगी? साथ ही स्वर्गगत् व्यक्ति ऐसा कौन सा कार्य करें, ताकि-उनको पुण्य क्षय होने पर वहां से स्वर्गपतित न होना पड़े। जो देवताओं के भी देव तथा पितरों के भी पितृ हैं, जिनसे बढ़ कर और कोई भी नहीं है, हे सुरेश्वर! वे कौन हैं? वह कहिये। साथ ही यह स्थावर-जंगमात्मक विश्व जिनके द्वारा सृष्ट है, प्रलयकाल में जिनके आश्रय में यह जगत् लीन होता है? वह कहिये।।१-६।।

ब्रह्मोवाच

उद्यन्नेवैष कुरुते जगद्वितिमिरं करैः। नातः परतरो देवः कश्चिदन्यो द्विजोत्तमाः॥७॥
अनादिनिधनो ह्येष पुरुषः शाश्वतोऽव्ययः। तापयत्येष त्रीँल्लोकान् भवन्रश्मिभिरुल्वणः॥८॥
सर्व्वदेवमयो ह्येष तपतां तपनो वरः। सर्व्वस्य जगतो नाथः सर्व्वसाक्षी जगत्पतिः॥९॥
संक्षिपत्येष भूतानि तथा विसृजते पुनः। एष भाति तपत्येष वर्षत्येष गभस्तिभिः॥१०॥
एष धाता विधाता च भूतादिर्भूतभावनः। न ह्येष क्षयमायाति नित्यमक्षयमण्डलः॥११॥

पितॄणां च पिता ह्येष देवतानां हि देवता।
ध्रुवं स्थानं स्मृतं ह्येतद् यस्मान्न च्यवते पुनः॥१२॥
सर्गकाले जगत् कृत्स्नमादित्यात् सम्प्रसूयते।
प्रलये च तमभ्येति भास्करं दीप्ततेजसम्॥१३॥
योगिनश्चाप्यसंख्यातास्त्यक्त्वा गृहकलेवरम्।
वायुर्भूत्वा विशन्त्यस्मिंस्तेजोराशौ दिवाकरे॥१४॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे द्विजगण! जो देवता उदित होकर अपनी किरणों द्वारा जगत् के अन्धकार को हटा देते हैं, उनकी अपेक्षा श्रेष्ठ देवता कोई नहीं है। उनका आदि-अन्त नहीं है। वे ही अव्यय शाश्वत पुरुष हैं। ये ही प्रवररूपी होकर रश्मियों से तीनों लोकों को ताप पहुंचाते हैं। ये सर्वदेवात्मक, सर्वश्रेष्ठ तापदाता, जगत् के नाथ, सर्वलोक साक्षी, सर्व जगत्पति हैं। ये ही प्राणीवर्ग का सृजन करते हैं। ये पुनः उसका संहार करते हैं। ये अपनी किरणों का विस्तार करके प्रतिभात होते हैं तथा तपन एवं वर्षण करते हैं। ये धाता-विधाता-भूतादि तथा भूतभावन हैं। ये कभी भी क्षयीभूत नहीं होते। इनका मण्डल निश्चित रूप से अक्षय है। ये ही पितरों के पिता हैं। ये ही देवगण के भी देवता हैं। ये ही प्रख्यात ध्रुवस्थान हैं। वहां से पुनः पतन नहीं होता। सृष्टि के समय समस्त जगत् आदित्य से ही प्रसृत होता है। प्रलयकाल में यह पुनः दीप्ततेजा भास्कर सूर्य में ही लयीभूत हो जाता है। असंख्य योगी लोग अपने शरीर का त्याग करके वायु होकर तेजोराशि दिवाकर में ही प्रविष्ट होते हैं।।७-१४।।

अस्य रश्मिसहस्राणि शाखा इव विहङ्गमाः।
वसन्त्याश्रित्य मुनयः संसिद्धा दैवतैः सह॥१५॥
गृहस्था जनकाद्याश्च राजानो योगधर्म्मिणः।
बालखिल्यादयश्चैव ऋषयो ब्रह्मवादिनः॥१६॥
वानप्रस्थाश्च ये चान्ये व्यासाद्या भिक्षवस्तथा।
योगमास्थाय सर्व्वे ते प्रविष्टाः सूर्य्यमण्डलम्॥१७॥
शुको व्याससुतः श्रीमान्योगधर्म्मभवाप्य सः।
आदित्यकिरणान् गत्वा ह्यपुनर्भावमास्थितः॥१८॥

आकाश में प्रसारित वृक्ष की शाखाओं की ही तरह इनकी हजारों रश्मियों का आश्रय लेकर देवताओं के साथ सिद्धगण, मुनिगण वहां वास करते हैं। गृहस्थ योगमार्गी जनकादि राजा, बालखिल्य आदि ब्रह्मवादी ऋषि, अन्य वानप्रस्थावलम्बी मुनिगण, व्यासादि प्रमुख सर्वत्यागी साधु पुरुषवृन्द, सभी योगपथ से सौर मण्डल में प्रवेश करते हैं। व्यासनन्दन शुक ने भी योगधर्माश्रय लेकर आदित्य किरण को प्राप्त करके पुनर्जन्म पर विजय पा लिया था।।१५-१८।।

शब्दमात्रश्रुतिमुखा ब्रह्मविष्णुशिवादयः। प्रत्यक्षोऽयं परो देवः सूर्य्यस्तिमिरनाशनः॥१९॥

तस्मादन्यत्र भक्तिर्हि न कार्य्या शुभमिच्छता।
यस्माद्दृष्टेरगम्यास्ते देवा विष्णुपुरोगमाः॥२०॥
अतो भवद्भिः सततमभ्यच्चर्यो भगवान् रविः।
स हि माता पिता चैव कृत्स्नस्य जगतो गुरुः॥२१॥
अनाद्यो लोकनाथोऽसौ रश्मिमाली जगत्पतिः।
मित्रत्वे च स्थितो यस्मात्तपस्तेपे द्विजोत्तमाः॥२२॥
अनादिनिधनो ब्रह्मा नित्यश्चाक्षय एव च।
सृष्ट्वा ससागरान् द्वीपान् भुवनानि चतुर्दश॥२३॥
लोकानां स हितार्थाय स्थितश्चन्द्रसरित्तटे।
सृष्ट्वा प्रजापतीन् सर्व्वानसृष्ट्वा च विविधाः प्रजाः॥२४॥

ततः शतसहस्रांशुरव्यक्तश्च पुनः स्वयम्। कृत्वा द्वादशधात्मानमादित्यमुपपद्यते॥२५॥

वेदमूर्त्ति ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि देवता ये सभी प्रत्यक्ष परमदेव तिमिरध्वंसी सूर्य के अतिरिक्त अन्य नहीं हैं। अतएव शुभाकांक्षी व्यक्ति का अन्यत्र भक्ति करना उचित नहीं है। इसका कारण यह है कि इनमें से कोई दृष्टिगोचर नहीं हैं। इसी कारण आप सब लोग सदा भगवान् सूर्य की ही अर्चना करें। ये ही माता-पिता तथा जगत् के गुरु हैं। वे ही अनादि, लोकनाथ, रश्मिमाली तथा जगत्पति हैं। वे सबके मित्र रूप में विद्यमान रहते हैं। जो अनादिनिधन, नित्य अव्यय ब्रह्मा हैं, वे भी सूर्य के अतिरिक्त अन्य नहीं हैं। ये सूर्यदेव ही सागर, द्वीप आदि के साथ चौदहों भुवनों की सृष्टि करते हैं। ये अव्यक्त मूर्त्ति भगवान् सहस्ररश्मि ही पुनः समस्त प्रजापतियों तथा विविध प्रजावर्ग की सृष्टि करते हैं। ये ही स्वयं को बारह रूपों में विभक्त करके आदित्यरूपेण प्रतिभात हो रहे हैं।।१९-२५।।

इन्द्रो धाताथ पर्जन्यस्त्वष्टा पूषार्य्यमा भगः।
विवस्वान् विष्णुरंशश्च वरुणो मित्र एव च॥२६॥
आभिर्द्वादशभिस्तेन सूर्य्येण परमात्मना।
कृत्स्नं जगदिदं व्याप्तं मूर्त्तिभिश्च द्विजोत्तमाः॥२७॥
तस्य या प्रथमा मूर्तिरादित्यस्येन्द्रसंज्ञिता।
स्थिता सा देवराजत्वे देवानां रिपुनाशिनी॥२८॥

द्वितीया तस्य या मूर्त्तिर्नाम्ना धातेति कीर्तिता।
स्थिता प्रजापतित्वेन विविधाः सृजते प्रजाः॥२९॥
तृतीयार्कस्य या मूर्तिः पर्जन्य इति विश्रुता।
मेघेष्वेव स्थिता सा तु वर्षते च गभस्तिभिः॥३०॥
चतुर्थी तस्य या मूर्त्तिर्नाम्ना त्वष्टेति विश्रुता।
स्थिता वनस्पतौ सा तु ओषधीषु च सर्व्वतः॥३१॥
पञ्चमी तस्य या मूर्त्तिर्नाम्ना पूषेति विश्रुता।
अन्ने व्यवस्थिता सा तु प्रजां पुष्णाति नित्यशः॥३२॥

हे द्विजप्रवरवृन्द! इन्द्र, धाता, पर्जन्य, त्वष्टा, पूषा, अर्यमा, भग, विवस्वान्, विष्णु, अंश, वरुण तथा मित्र रूपी द्वादश मूर्त्ति द्वारा परमात्मा सूर्यदेव ही जगत् में व्याप्त होकर विराजमान हैं। इन आदित्य की जो इन्द्र नामक **प्रथम मूर्त्ति** है, वे ही देवताओं के शत्रुओं का वध करके देवराजत्व रूप में विराजमान हैं। उनकी **द्वितीय मूर्त्ति धाता** प्रजापतिरूपेण स्थापित होकर विविध प्रजा सृजन करती है। उनकी **तृतीय मूर्त्ति है प्रसिद्ध पर्जन्य।** यह मेघरूपिणी होकर वारिधारा की वर्षा करती है। उनकी **त्वष्टा नामक चतुर्थ मूर्त्ति** वनस्पति तथा औषधि (अन्न) में विराजित है। **पंचमी पूषामूर्त्ति** अन्न में स्थापित होकर सदा प्रजाओं का पोषण करती रहती है।।२६-३२।।

मूर्त्तिः षष्ठी रवेर्या अर्य्यमा इति विश्रुता।
वायोः संसरणा सा तु देवेष्वेव समाश्रिता॥३३॥
भानोर्या सप्तमी मूर्त्तिर्नाम्ना भगेति विश्रुता।
भूतिष्ववस्थिता सा तु शरीरेषु च देहिनाम्॥३४॥
मूर्त्तिर्या त्वष्टमी तस्य विवस्वानिति विश्रुता।
अग्नौ प्रतिष्ठिता सा तु पचत्यन्नं शरीरिणाम्॥३५॥
नवमी चित्रभानोर्या मूर्त्तिर्विष्णुश्च नामतः। प्रादुर्भवति सा नित्यं देवनामरिसूदनी॥३६॥
दशमी तस्य या मूर्त्तिरंशुमानिति विश्रुता।
वायौ प्रतिष्ठिता सा तु प्रह्लादयति वै प्रजाः॥३७॥
मूर्त्तिस्त्वेकादशी भानोर्नाम्ना वरुणसंज्ञिता।
जलेष्ववस्थिता सा तु प्रजां पुष्णाति नित्यशः॥३८॥
मूर्त्तिर्या द्वादशी भानोर्नाम्ना मित्रेति संज्ञिता।
लोकानां सा हितार्थाय स्थिता चन्द्रसरित्तटे॥३९॥
वायुभक्षस्तपस्तेपे स्थित्वा मैत्रेण चक्षुषा।
अनुगृह्णन् सदा भक्तान् वरैर्नानाविधैस्तु सः॥४०॥

एवं सा जगतां मूर्त्तिर्हिताय विहिता पुरा।
तत्र मित्रः स्थितो यस्मात्तस्मान्मित्रं परं स्मृतम्॥४१॥

इनकी **अर्यमा नामक षष्ठ मूर्त्ति** वायु के आकार में संचरण करती देवदेह का आश्रय लेती है। सूर्य की **भानु नामक सप्तम मूर्त्ति** भूतल पर तथा देहधारियों के देह में विराजित रहती है। **विवस्वान् नामक अष्टम मूर्त्ति** अग्नि में प्रतिष्ठापित होकर देहधारियों द्वारा खाये अन्न का पाक करती है। **विष्णु नामक नवम मूर्त्ति** देवगण के शत्रु हननार्थ नित्य प्रादुर्भूत होती है। **अंशुमान नामक दशम मूर्त्ति** वायु में स्थित होकर प्रजाओं को आह्लादित करती है। सूर्य की **वरुण नामक ग्यारहवीं मूर्त्ति** जल में रहकर नित्य प्रजापोषण करती है। इनकी **मित्र नामक द्वादश मूर्त्ति** लोकहितार्थ चन्द्रसरिता तट पर अवस्थान करती है। मित्र सूर्य देवता मात्र वायु का आहार करके तप करते थे। उन्होंने मित्रतापूर्ण दृष्टि से भक्तों को अनेक वर देकर कृतार्थ किया था। इस प्रकार वह मित्रमूर्त्ति जगत् में विहित कही गयी। वे मित्र नाम से स्थित होकर सबके परम मित्र हैं।।३३-४१।।

आभिर्द्वादशभिस्तेन सवित्रा परमात्मना।
कृत्स्नं जगदिदं व्याप्तं मूर्त्तिभिश्च द्विजोत्तमाः॥४२॥
तस्माद्ध्येयो नमस्यश्च द्वादशस्थासु मूर्त्तिषु। भक्तिमद्भिर्नरैर्नित्यं तद्गतेनान्तरात्मना॥४३॥
इत्येवं द्वादशादित्यान्नमस्कृत्वा तु मानवः।
नित्यं श्रुत्वा पठित्वा च सूर्य्यलोके महीयते॥४४॥

हे द्विजप्रवर! परमात्मा सविता इन द्वादश मूर्त्तियों द्वारा समस्त जगत् को व्याप्त करके विराजित हैं। तभी नित्य भक्तिशाली मनुष्य उनका ध्यान द्वादश मूर्त्ति रूप में करते हैं तथा उनको नमस्कार करते हैं। मानव बारह आदित्यों को प्रणाम करके उनका द्वादश नाम सुने अथवा पाठ करे। इससे वे मृत्यु के उपरान्त स्वर्ग में पूजित होंगे।।४२-४४।।

मुनय ऊचुः

यदि तावदयं सूर्य्यश्चादिदेवः सनातनः। ततः कस्मात्तपस्तेपे वरेप्सुः प्राकृतो यथा॥४५॥

मुनिगण कहते हैं—हे ब्रह्मन्! यदि ये सूर्य ही आदिदेव सनातन पुरुष हैं, तब उन्होंने क्यों वर की इच्छा से सामान्य लोगों की तरह तप किया?।।४५।।

ब्रह्मोवाच

एतद्वः संप्रवक्ष्यामि परं गुह्यं विभावसोः। पृष्टं मित्रेण यत् पूर्व्वं नारदाय महात्मने॥४६॥
प्राङ्मयोक्तास्तु युष्मभ्यं रवेर्द्वादश मूर्त्तयः।
मित्रश्च वरुणश्चोभौ तासां तपसि संस्थितौ॥४७॥
अब्भक्षो वरुणस्तासां तस्थौ पश्चिमसागरे।
मित्रो मित्रवने चास्मिन् वायुभक्षोऽभवत्तदा॥४८॥

अथ मेरुगिरेः श्रृङ्गात् प्रच्युतो गन्धमादनात्।
नारदस्तु महायोगी सर्व्वांलोकांश्चरन् वशी॥४९॥
आजगामाथ तत्रैव यत्र मित्रोऽचरत्तपः। तं दृष्ट्वा तु तपस्यन्तं तस्य कौतूहलं ह्यभूत्॥५०॥

ब्रह्मा कहते हैं—विभावसु के सम्बन्ध में पुराकाल में मित्रदेव ने महात्मा नारद से जो पूछा था, मैं वह गूढ़ तत्त्व अब व्यक्त करता हूं। मैंने पहले ही सूर्य की द्वादश मूर्त्ति का उल्लेख इतिपूर्व किया था। उन मूर्त्तियों में से मित्र तथा वरुण तपःश्चरण करने लगे। उनमें से मित्र ने मित्रवन में मात्र वायु भक्षण करते तप किया तथा वरुण ने मात्र जल पीते हुये पश्चिम सागर में तप किया। एक बार महायोगी नारद मेरु गिरि के शिखर से उतर कर गन्धमादन पर्वत को पार करते हुये सभी लोकों में विचरणशील होते वहां पहुंचे, जहां मित्र तपःश्चरण कर रहे थे। उन्हें मित्र को तप करते देख कर अत्यन्त कुतूहल होने लगा।।४६-५०।।

योऽक्षयश्चाव्ययश्चैव व्यक्ताव्यक्तः सनातनः।
धृतमेकात्मकं येन त्रैलोक्यं सुमहात्मना॥५१॥
यः पिता सर्व्वदेवानां पराणामपि यः परः।
अयजद्देवताः कास्तु पितृन् वा कानसौ यजेत्।
इति सञ्चिन्त्य मनसा तं देवं नारदोऽब्रवीत्॥५२॥

उन्होंने विचार किया कि जो अक्षय, अव्यय, व्यक्त-अव्यक्त सनातन पुरुष हैं, जो महात्मा अकेले इस त्रैलोक्य को धारण करते हैं, जो सभी देवताओं के पिता तथा परात्पर प्रभु हैं, वे अब किस देवता-पितर की अर्चना कर रहे हैं? मन में यह विचार करते हुये नारद उन देवता से कहने लगे।।५१-५२।।

नारद उवाच

वेदेषु सपुराणेषु साङ्गोपाङ्गेषु गीयसे। त्वमजः शाश्वतो धाता त्वं निधानमनुत्तमम्॥५३॥
भूतं भव्यं भवच्चैव त्वयि सर्व्वं प्रतिष्ठितम्। चत्वारश्चाश्रमा देव गृहस्थाद्यास्तथैव हि॥५४॥
यजन्ति त्वामहरहस्त्वां मूर्त्तित्वं समाश्रितम्।
पिता माता च सर्व्वस्य दैवतं त्वं हि शाश्वतम्॥५५॥
यजसे पितरं कं त्वं देवं वापि न विद्महे॥५६॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे देव! अंग-उपांग युक्त वेद तथा पुराण में अज, शाश्वत, धाता एवं उत्तम निधानरूप आप वर्णित हैं। भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान सभी आपमें ही स्थित रहता है। गृहस्थादि चारों आश्रम वाले आपकी ही सदा अर्चना करते रहते हैं। आप ही सबके माता, पिता, शाश्वत दैवत् हैं। पता नहीं आप किस देवता अथवा पितृपुरुष की पूजा कर रहे हैं?।।५३-५६।।

मित्र उवाच

अवाच्यमेतद्वक्तव्यं परं गुह्यं सनातनम्।
त्वयि भक्तिमति ब्रह्मन् प्रवक्ष्यामि यथातथम्॥५७॥

यत्तत् सूक्ष्ममविज्ञेयमव्यक्तमचलं ध्रुवम्। इन्द्रियैरिन्द्रियार्थैश्च सर्व्वभूतैर्विवर्ज्जितम्॥५८॥

स ह्यन्तरात्मा भूतानां क्षेत्रज्ञश्चैव कथ्यते।
त्रिगुणाद्व्यतिरिक्तोऽसौ पुरुषश्चैव कल्पितः॥५९॥
हिरण्यगर्भो भगवान् सैव बुद्धिरिति स्मृतः।
महानिति च योगेषु प्रधानमिति कथ्यते॥६०॥
सांख्ये च कथ्यते योगे नामभिर्बहुधात्मकः।
स च त्रिरूपो विश्वात्मा शर्वोऽक्षर इति स्मृतः॥६१॥

धृतमेकात्मकं तेन त्रैयोक्यमिदमात्मना। अशरीरः शरीरेषु सर्व्वेषु निवसत्यसौ॥६२॥

वसन्नपि शरीरेषु न स लिप्येत कर्म्मभिः।
ममान्तरात्मा तव च ये चान्ये देहसंस्थिताः॥६३॥
सर्व्वेषां साक्षिभूतोऽसौ न ग्राह्यं केनचित् क्वचित्।
सगुणो निर्गुणो विश्वो ज्ञानगम्यो ह्यसौ स्मृतः॥६४॥

मित्रदेव कहते हैं—हे ब्रह्मन्! आप इस प्रकार मत कहिये। परन्तु जो सनातन गुह्य परमपद है, वही मैं आपके समान भक्त के समक्ष यथार्थरूपेण कहता हूं। जो सूक्ष्म, अविज्ञेय, अव्यक्त, अचल ध्रुव वस्तु है, जो इन्द्रियों, इन्द्रियार्थ तथा सभी प्राणियों से अगोचर हैं, वे ही क्षेत्रज्ञ पुरुष सभी प्राणियों की अन्तरात्मा कहे जाते हैं। वे त्रिगुणातीत भगवान् हिरण्यगर्भ हैं। वे बुद्धि नाम से निर्णीत हैं। वे महान् हैं एवं वे ही प्रधान (प्रकृति) कहे जाते हैं। सांख्यमतावलम्बी लोग योगशास्त्र में उनको अनेक नाम वाला कहते हैं। वे त्रिरूपी, विश्वात्मा, शर्व तथा अक्षर नाम वाले हैं। उन एकात्मा ने त्रैलोक्य को आत्मा द्वारा धारण किया है। वे स्वयं अशरीरी होकर भी सर्व शरीर में निवास करते हैं। वे शरीर में रहकर भी कर्मों में लिप्त नहीं होते। आप-मैं तथा अन्य सभी देहधारी, सबके वे ही साक्षीभूत अन्तरात्मा हैं। उनको कोई कभी भी पकड़ नहीं सकता। वे सगुण होकर भी निर्गुण हैं। उनको एकमात्र ज्ञान से ही जाना जा सकता है।।५७-६४।।

सर्व्वतः पाणिपादान्तः सर्व्वतोऽक्षिशिरोमुखः।
सर्व्वतः श्रुतिमाँल्लोके सर्व्वमावृत्य तिष्ठति॥६५॥

वे सब ओर पाणि, पैर, नेत्र, मस्तक, मुख वाले सर्वदिक् में कर्ण सम्पन्न हैं। वे जगत् के सब कुछ को आच्छादित करके अवस्थित हैं।।६५।।

विश्वमूर्द्धा विश्वभुजो विश्वपादाक्षिनासिकः। एकश्चरति वै क्षेत्रे स्वैरचारी यथासुखम्॥६६॥
श्रेत्राणीह शरीराणि तेषाञ्चैव यथासुखम्। तानि वेत्ति स योगात्मा ततः क्षेत्रज्ञ उच्यते॥६७॥
अव्यक्ते च पुरे शेते पुरुषस्तेन चोच्यते। विश्वं बहुविधं ज्ञेयं स च सर्व्वत्र उच्यते॥६८॥

तस्मात् स बहुरूपत्वाद्विश्वरूप इति स्मृतः।
तस्यैकस्य महत्वं हि स चैकः पुरुषः स्मृतः॥६९॥

महापुरुषशब्दं हि बिभर्त्त्येकः सनातनः। स तु विधिक्रियायत्तः सृजत्यात्मानमात्मना॥७०॥
शतधा सहस्रधा चैव तथा शतसहस्रधा। कोटिशश्च करोत्येष प्रत्यगात्मानमात्मना॥७१॥

वे विश्वमूर्द्धा, विश्वभुज, विश्वपाद, विश्वनेत्र तथा विश्वनासिका हैं। वे एकाकी ही स्वेच्छा पूर्वक इस शरीर में यथासुख विचरण करते हैं। शरीर समूह को ही क्षेत्र कहा जाता है। इन योगात्मा पुरुष को समस्त शरीर ज्ञात है। तभी वे क्षेत्रज्ञ कहे गये। ये क्षेत्रज्ञ पुरुष सदा अव्यक्त पुर में शयन करते हैं। तभी इनको पुरुष कहा जाता है। वे अनेक रूप होने के कारण विश्वरूप हैं। वे विश्व में सर्वत्र विराजमान हैं। इस बहुरूपत्व के कारण वे विश्वरूप कहे गये। इनमें ही महत्तत्त्व है। तभी ये एकमात्र पुरुष हैं। ये एकमात्र सनातन पुरुष ही महापुरुष कहे जाते हैं। ये ही विधातृकर्म में सचेष्ट होकर आत्मा द्वारा आत्मा का शतधा, सहस्रधा, शतसहस्रधा तथा कोटि-कोटि रूप से सृजन करते हैं। इन्होंने आत्मा से प्रत्यगात्मा रूप जीवात्मा की सृष्टि लाखों तथा करोड़ों संख्या में कर दिया।।६६-७१।।

आकाशात् पतितं तोयं याति स्वाद्वन्तरं यथा। भूमे रसविशेषेण तथा गुणरसात्तु सः॥७२॥
एक एव यथा वायुर्देहेष्वेव हि पञ्चधा। एकत्वञ्च पृथक्त्वञ्च तथा तस्य न संशयः॥७३॥
स्थानान्तरविशेषाच्च यथाग्निर्लभते पराम्।
संज्ञां तथा मुने सोऽयं ब्रह्मादिषु तथाप्नुयात्॥७४॥

जिस प्रकार से आकाश से गिरा जल मृत्तिका के रस भेद से अलग-अलग स्थान पर अलग-अलग स्वाद वाला हो जाता है, उसी प्रकार यही एक पुरुष गुणभेद से विभिन्न आकृतियों वाला प्रतीत होता है। जिस प्रकार से एक ही वायु देह में पांच प्रकार से विभक्त होकर पंचप्राण हो जाता है, वैसे ही उस पुरुष में एकत्व एवं पृथकत्व, दोनों ही विराजमान हैं। स्थानभेद से जैसे अग्नि के अनेक नाम पड़ जाते हैं, हे मुनि! यह सनातन पुरुष भी तदनुरूप हरि-नारायण-ब्रह्मा आदि अनेक नामों वाला हो जाता है।।७२-७४।।

यथा दीपसहस्राणि दीप एकः प्रसूयते। तथा रूपसहस्राणि स एकः सम्प्रसूयते॥७५॥
यदा स बुध्यत्यात्मनां तदा भवति केवलः। एकत्वप्रलये चास्य बहुत्वञ्च प्रवर्त्तते॥७६॥
नित्यं हि नास्ति जगति भूतं स्थावरजङ्गमम्। अक्षयश्चाप्रमेयश्च सर्व्वगश्च स उच्यते॥७७॥
तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं द्विजसत्तमाः। अव्यक्ताव्यक्तभावस्था या सा प्रकृतिरुच्यते॥७८॥
तां योनिं ब्रह्मणो विद्धि योऽसौ सदसदात्मकः।
लोके च पूज्यते योऽसौ दैवे पित्र्ये च कर्म्मणि॥७९॥
नास्ति तस्मात् परो ह्यन्यः पिता देवोऽपि वा द्विजाः।
आत्मना स तु विज्ञेयस्ततस्तं पूजयाम्यहम्॥८०॥

जिस प्रकार से एक ही दीप से हजारों दीप जलाये जाते हैं, वैसे ही एक ही सनातन पुरुष से हजारों-हजार सृष्टि विस्तार लाभ करती है। जब वे सभी आत्मज्ञान लाभ करते हैं, तब वे सभी कैवल्यभावापन्न हो जाते हैं। जब वह देव आत्म रूप को ही वह जानता है, तब एक अकेला रहता है। इस एकत्व का नाश ही उसका बहुरूप है। इस चराचर जगत् में कुछ भी नित्य नहीं है। एकमात्र अक्षय अप्रमेय सर्व व्याप्त सनातन पुरुष ही

नित्य है। हे द्विजोत्तमवृन्द! उनसे ही व्यक्त तथा अव्यक्त उत्पन्न है। जो व्यक्त तथा अव्यक्त भाव में अवस्थित है, वही प्रकृति है। यही प्रकृति ही ब्रह्मयोनि भी है। जो सत्-असतरूपेण विराजित हैं, देव तथा पित्र्य कर्म से जो जगत् में पूजित हैं, हे द्विजप्रवरगण! उनकी अपेक्षा श्रेष्ठ देव अथवा पितर अन्य कोई भी नहीं है। वे आत्मा द्वारा ही जाने जाते हैं। अतएव मैं उनकी ही पूजा करता हूं।।७५-८०।।

स्वर्गेष्वपि हि ये केचित्तं नमस्यन्ति देहिनः।
तेन गच्छन्ति देवर्षे तेनोद्दिष्टफलां गतिम्॥८१॥
तं देवाः स्वाश्रमस्थाश्च नानामूर्त्तिसमाश्रिताः।
भक्त्या सम्पूजयन्त्याद्यं गतिश्चैषां ददाति सः॥८२॥
स हि सर्व्वगतश्चैव निर्गुणश्चैव कथ्यते। एवं मत्वा यथाज्ञानं पूजयामि दिवाकरम्॥८३॥

हे देवर्षि! स्वर्ग निवासी शरीरधारियों में से भी जो कोई उनकी अर्चना करते हैं, उसे भी उसके अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। नाना आकृतिधारी देवता जो अपने-अपने स्थान पर रहकर भक्ति के साथ उन आत्मदेव की पूजा करते हैं, उनको भी वे उनकी वांछित गति का वरदान देते हैं। वे सूर्य ही सर्वगामी तथा निर्गुण कहे जाते हैं, यह जान कर मैं दिवाकर पूजन करता हूं।।८१-८३।।

ये च तद्भाविता लोक एकतत्त्वं समाश्रिताः। एतदप्यधिकं तेषां यदेकं प्रविशन्त्युत॥८४॥
इति गुह्यसमुद्देशस्तव नारद कीर्त्तितः। अस्मद्भक्त्यापि देवर्षे त्वयापि परमं स्मृतम्॥८५॥
सुरैर्व्वा मुनिभिर्व्वापि पुराणैर्व्वरदं स्मृतम्। सर्व्वे च परमात्मानं पूजयन्ति दिवाकरम्॥८६॥

जो लोग तद्भावना से भावित होकर उस एक तत्व का आश्रय लेते हैं, वे उस सूर्यपद में प्रविष्ट होते हैं। हे नारद! मैंने आपसे यह गूढ़ विषय कहा। हे देवर्षि! मेरी भक्ति की तरह आप भी उनको परम पद रूप से ही जानते हैं। देवता तथा प्राचीन ऋषियों ने उनको वरप्रद परम पुरुष जाना था। सभी ने उन परमात्मदेवता सूर्य की अर्चना किया था।।८४-८६।।

ब्रह्मोवाच

एवमेतत् पुराख्यातं नारदाय तु भानुना। मयापि च समाख्याता कथा भानोर्द्विजोत्तमाः॥८७॥
इदमाख्यानमाख्येयं मयाख्यातं द्विजोत्तमाः। न ह्यनादित्यभक्ताय इदं देयं कदाचन॥८८॥
यश्चैतच्छ्रावयेन्नित्यं यश्चैव शृणुयान्नरः। स सहस्रार्चिषं देवं प्रविशेन्नात्र संशयः॥८९॥
मुच्येतार्त्तस्तथा रोगाच्छ्रुत्वेमामदितः कथाम्। जिज्ञासुर्लभते ज्ञानं गतिमिष्टां तथैव च॥९०॥
क्षणेन लभतेऽध्वानमिदं यः पठते मुने। यो यं कामयते कामं स तं प्राप्नोत्यसंशयम्॥९१॥
तस्माद् भवद्भिः सततं स्मर्त्तव्यो भगवान् रविः।
स च धाता विधाता च सर्व्वस्य जगतः प्रभुः॥९२॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे आदित्यमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः।।३०।।



ब्रह्मा पुनः कहते हैं—हे द्विजप्रवर! एवंविध पूर्वकाल में नारद से सूर्य (मित्र) ने कहा था। वही मैंने आप सबसे कहा है। मेरे द्वारा कहा गया यह आख्यान सूर्य भक्ति रहित व्यक्ति से कदापि कहने अथवा प्रदान करने योग्य नहीं है। जो मनुष्य यह आख्यान सुनता है अथवा कहता है, वह निश्चित रूप से भगवान् सहस्रकिरण सूर्य में विलीन होता है। इस आदित्य कथा को आदि से अन्त तक सुन कर आर्त्त व्यक्ति रोगरहित होता है। जिज्ञासु लोगों को ज्ञानलाभ होता है। साथ ही वांछित गति मिलती है। हे मुनिवर! जो मनुष्य इस आदित्य उपाख्यान का पाठ करेगा, अल्पकाल में ही उसे सद्गति मिलेगी। किम्बहुना, स्तव पाठकर्त्ता व्यक्ति जो भी मांगेगा, उसकी वह कामना अवश्य पूरी होगी। अतः आप सर्वदा प्रभु सूर्य का स्मरण करें। वे सूर्य सर्व जगत् के धाता, विधाता तथा प्रभु हैं।।८७-९२।।

।।त्रिंश अध्याय समाप्त।।



अथ एकत्रिंशोऽध्यायः

आदित्य के गुणों तथा नाम माहात्म्य का वर्णन

ब्रह्मोवाच

आदित्यमूलमखिलं त्रैलोक्यं मुनिसत्तमाः। भवत्यस्माज्जगत् सर्व्वं सदेवासुरमानुषम्॥१॥
रुद्रोपेन्द्रमहेन्द्राणां विप्रेन्द्र त्रिदिवौकसाम्। महाद्युतिमताञ्चैव तेजोऽयं सार्व्वलौकिकम्॥२॥
सर्व्वात्मा सर्व्वलोकेशो देवदेवः प्रजापतिः। सूर्य्य एव त्रिलोकस्य मूलं परमदैवतम्॥३॥
अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥४॥
सूर्य्यात् प्रसूयते सर्व्वं तत्र चैव प्रलीयते। भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निःसृतौ पुरा॥५॥
एतत्तु ध्यानिनां ध्यानं मोक्षश्चाप्येष मोक्षिणाम्।
तत्र गच्छन्ति निर्व्वाणं जायन्तेऽस्मात् पुनः पुनः॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे मुनिवर! आदित्य ही त्रैलोक्य के मूल हैं। सुर-असुर-नर से भरा समस्त जगत् आदित्य से ही उत्पन्न है। हे विप्रेन्द्र! ये सूर्य ही रुद्र, उपेन्द्र, महेन्द्र आदि महाद्युतिमान देवलोकस्थ लोगों के सार्वलौकिक तेज रूप हैं। ये ही सर्वात्मा, सर्वलोकेश, देवदेव तथा प्रजापति हैं। ये ही एकमात्र परम दैवत् तथा त्रैलोक्य के मूल हैं। अग्नि में सम्यक् रूप से प्रदत्त आहुति से ये देव तृप्त होते हैं। इनसे ही वृष्टि होती है। वृष्टि द्वारा अन्न, अन्न से प्रजा पालन होता है। सूर्य से ही सब उत्पन्न है, सूर्य में सब लीन हो जाता है। लोगों में जो कुछ भावाभाव है, सभी पूर्वकाल में आदित्य से ही निकला था। एकमात्र सूर्य ही ध्यानियों के ध्यान तथा मुमुक्षु लोगों के मोक्ष हैं। निर्वाण पद चाहने वाले लोग उनमें ही निर्वाण लाभ करते हैं तथा पुनः-पुनः उनसे ही जन्म ग्रहण करते हैं।।१-६।।

क्षणा मुहूर्त्ता दिवसा निशपक्षाश्च नित्यशः। मासाः संवत्सराश्चैव ऋतवश्च युगानि च॥७॥

अथादित्यादृते ह्येषां कालसंख्या न विद्यते।
कालादृते न नियमो नाग्नौ विहरणक्रिया॥८॥

ऋतूनामविभागश्च ततः पुष्पफलं कुतः। कुतो वै शस्यनिष्पत्तिस्तृणौषधिगणः कुतः॥९॥

क्षण, मुहूर्त्त, दिन, रात, पक्ष, मास, वर्ष, ऋतु, युग की कालसंख्या सूर्य से ही होती है। उनके बिना यह गणना नहीं हो सकती। काल के अभाव में कोई नियम नहीं रहता। अग्नि की विहरण क्रिया भी तब लुप्त हो जाती है। ऋतु समूह का विभाग नहीं रह जाता। अतः पुष्प-फलोत्पत्ति, शस्य समूह की तथा औषधियों की स्थिति तथा उत्पत्ति नहीं हो सकती।।७-९।।

अभावो व्यवहाराणां जन्तूनां दिवि चेह च।
जगत्प्रभावाद्विशते भास्कराद्वारितस्करात्॥१०॥
नावृष्ट्या तपते सूर्य्यो नावृष्ट्या परिशुष्यति।
नावृष्ट्या परिधिं धत्ते वारिणा दीप्यते रविः॥११॥

तब काल के अभाव से स्वर्ग तथा मृत्युलोक, दोनों स्थान के देहधारी लोगों का व्यवहार निष्पन्न नहीं हो सकेगा। जगत्कारण जल हरण करने वाले सूर्य से ही उनके अभाव की पूर्त्ति होती है। सूर्य यदि वर्षा नहीं करते तब ताप प्रदान, जीव पोषण अथवा वर्षाभाव में सूर्य का परिधि धारण कार्य भी नहीं हो सकेगा। फलस्वरूप बिना जलवर्षा के सूर्य तप नहीं सकता, सूख नहीं सकता। वह तो जल से ही दीप्तिमान् हो पाता है।।१०-११।।

वसन्ते कपिलः सूर्य्यो ग्रीष्मे काञ्चनसन्निभः। श्वेतो वर्षासु वर्णेन पाण्डुः शरदि भास्करः॥१२॥
हेमन्ते ताम्रवर्णाभः शिशिरे लोहितो रविः। इति वर्णाः समाख्याताः सूर्य्यस्य ऋतुसम्भवाः॥१३॥
ऋतुस्वभाववर्णैश्च सूर्य्यः क्षेमसुभिक्षकृत्। अथादित्यस्य नामानि सामान्यानि द्विजोत्तमाः॥१४॥

सूर्यदेव वसन्त में कपिल वर्ण, ग्रीष्म में काञ्चन वर्ण, वर्षा में श्वेत वर्ण, शरत में पाण्डुर वर्ण, हेमन्त में ताम्रवर्ण तथा शिशिर में लोहित वर्ण प्रभा को धारण करते हैं। ऋतुओं के अनुसार सूर्य के अलग-अलग विशेष वर्णों का यह वर्णन मैंने कर दिया। सूर्य ऋतुकाल के अनुसार वर्ण धारण करके मंगल करते हैं तथा सुभिक्ष सम्पादित करते हैं। हे द्विजप्रवरगण! सामान्यतः आदित्य के बारह अलग-अलग नाम हैं। आदित्य, सविता, सूर्य, मिहिर, अर्क, प्रभाकर, भास्कर, भानु, चित्रभानु, दिवाकर तथा रवि। इन बारह साधारण नामों से सूर्यदेव जगत् में अधिक परिचित हैं।।१२-१४।।

द्वादशैव पृथक्त्वेन तानि वक्ष्याम्यशेषतः। आदित्यः सविता सूर्य्यो मिहिरोऽर्कः प्रभाकरः॥१५॥
मार्त्तण्डो भास्करो भानुश्चित्रभानुर्दिवाकरः। रविर्द्वादशभिस्तेषां ज्ञेयः सामान्यनामभिः॥१६॥

विष्णुर्धाता भगः पूषा मित्रेन्द्रौ वरुणोऽर्य्यमा।
विवस्वानंशुमांस्त्वष्टा पर्जन्यो द्वादशः स्मृतः॥१७॥

इत्येते द्वादशादित्याः पृथक्त्वेन व्यवस्थिताः।
उत्तिष्ठन्ति सदा ह्येते मासैर्द्वादशभिः क्रमात्॥१८॥
विष्णुस्तपति चैत्रे तु वैशाखे चार्य्यमा तथा।
विवस्वान् ज्येष्ठमासे तु आषाढे चांशुमान् स्मृतः॥१९॥
पर्ज्जन्यः श्रावणे मासि वरुणः प्रौष्ठसंज्ञके।
इन्द्र आश्वयुजे मासि धाता तपति कार्त्तिके॥२०॥
मार्गशीर्षे तथा मित्रः पौषे पूषा दिवाकरः।
माघे भगस्तु विज्ञेयस्त्वष्टा तपति फाल्गुने॥२१॥

हे द्विजोत्तम! इसके अतिरिक्त सूर्य के और भी बारह नाम हैं यथा—विष्णु, धाता, भग, पूषा, मित्र, इन्द्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, अंशुमान्, त्वष्टा तथा पर्जन्य। ये बारहों आदित्य पृथक्-पृथक् अवस्थान करते हैं। ये द्वादश मास में क्रमशः एक-एक मास में एक-एक सूर्य का अभ्युदय होता है। इनमें विष्णु चैत्र में, अर्यमा वैशाख में, विवस्वान् ज्येष्ठ में, अंशुमान् आषाढ़ में, पर्जन्य श्रावण में, वरुण भाद्र में, इन्द्र आश्विन में, धाता कार्त्तिक में, मित्र मार्गशीर्ष में, पूषा पौष माह में, भग माघ में तथा त्वष्टा फाल्गुन में ताप देते हैं।।१५-२१।।

शतैर्द्वादशभिर्विष्णू रश्मिभिर्दीप्यते सदा। दीप्यते गोसहस्रेण शतैश्च त्रिभिरर्य्यमा॥२२॥
द्विःसप्तकैर्विवस्वांस्तु अंशुमान् पञ्चभिस्त्रिभिः।
विवस्वानिव पर्ज्जन्यो वरुणश्चार्य्यमा॥२३॥
मित्रवद्भगवांस्त्वष्टा सहस्रेण शतेन च। इन्द्रस्तु द्विगुणैः षड्भिर्धातैकादशभिः शतैः॥२४॥
सहस्रेण तु मित्रो वै पूषा तु नवभिःशतैः। उत्तरोपक्रमेऽर्कस्य वर्द्धन्ते रश्मयस्तथा॥२५॥
दक्षिणोपक्रमे भूयो ह्रसन्ते सूर्य्यरश्मयः। एवं रश्मिसहस्रन्तु सूर्य्यलोकादनुग्रहम्॥२६॥
एवं नाम्नां चतुर्विंशदेक एषां प्रकीर्त्तितः। विस्तरेण सहस्रन्तु पुनरन्यत् प्रकीर्त्तितम्॥२७॥

विष्णु बारह सौ, अर्यमा तेरह सौ, विवस्वान् चौदह सौ तथा अंशुमान् पन्द्रह सौ किरणों से ताप देते हैं। अर्यमा १३०० से, पर्जन्य १४०० किरणों से, वरुण १३०० किरणों से, त्वष्टा एवं मित्र ११०० किरणों से, इन्द्र २२०० किरणों से, धाता ११०० किरणों से, पूषा ९०० किरणों से दीप्त होते हैं। सूर्य की किरणें (रश्मि) उत्तरायण में बढ़ती हैं तथा दक्षिणायन में उनका ह्रास होता है। इस प्रकार से सूर्यलोक से हजारों-हजार रश्मियों का पात होता रहता है। इस प्रकार यहां सूर्य के २४ नाम मैंने कहे हैं। इसके अतिरिक्त सूर्य के १००० अन्य नाम भी कहे गये हैं।।२२-२७।।

मुनय ऊचुः

ये तन्नामसहस्रेण स्तुवन्त्यर्कं प्रजापते। तेषां भवति किं पुण्यं गतिश्च परमेश्वर॥२८॥

मुनिगण कहते हैं—हे प्रजापति! उक्त सहस्र नामों से जो लोग सूर्य स्तव करते हैं, उनको क्या पुण्य मिलता है अथवा उनकी क्या गति होती है, कृपया कहिये।।२८।।

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः सारभूतं सनातनम्। अलं नामसहस्रेण पठन्नेव स्तवं शुभम्॥२९॥
यानि नामानि गुह्यानि पवित्राणि शुभानि च।
तानि वः कीर्त्तयिष्यामि शृणुध्वं भास्करस्य वै॥३०॥
विकर्त्तनो विवस्वांश्च मार्त्तण्डो भास्करो रविः। लोकप्रकाशकः श्रीमाँल्लोकचक्षुर्महेश्वरः॥३१॥
लोकसाक्षी त्रिलोकेशः कर्त्ता हर्त्ता तमिस्रहा। तपनस्तापनश्चैव शुचिः सप्ताश्ववाहनः॥३२॥
गभस्तिहस्तो ब्रह्मा च सर्व्वदेवनमस्कृतः। एकविंशतिरित्येष स्तव इष्टः सदा रवेः॥३३॥
शरीरारोग्यदश्चैव धनवृद्धियशस्करः। स्तवराज इति ख्यातस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः॥३४॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे मुनिप्रवरगण! आप लोग इस सनातन तथा सार रूप स्तव को सुनिये। इस शुभ स्तव का श्रवण कर लेने पर अन्य सहस्रनाम का प्रयोजन नहीं रह जाता। भास्कर के ये सभी नाम गुह्य, पवित्र तथा शुभ हैं। उनका कीर्त्तन करता हूं। आप लोग श्रवण करें। विकर्त्तन, विवस्वान्, मार्त्तण्ड, भास्कर, रवि, लोकप्रकाशक, श्रीमान्, लोकचक्षु, महेश्वर, लोकसाक्षी, त्रिलोकेश, कर्त्ता, हर्त्ता, तमिस्रहा, तापन, तपन, शुचि, सप्ताश्व वाहन, गभस्तिहस्त, ब्रह्मा, सर्वदेव नमस्कृत। ये इक्कीस नाम रवि को अतीव प्रिय हैं। यह स्तवराज तीनों लोकों में प्रसिद्ध है।।२९-३४।।

य एतेन द्विजश्रेष्ठा द्विसन्ध्येऽस्तमनोदये। स्तौति सूर्य्यं शुचिर्भूत्वा सर्व्वपापैः प्रमुच्यते॥३५॥
मानसं वाचिकं वापि देहजं कर्म्मजं तथा।
एकजप्येन तत्सर्व्वं नश्यत्यर्कस्य सन्निधौ॥३६॥
एकजप्यश्च होमश्च सन्ध्योपासनमेव च। धूपमन्त्रार्घ्यमन्त्रश्च बलिमन्त्रस्तथैव च॥३७॥
अन्नप्रदाने दाने च प्रणिपाते प्रदक्षिणे। पूजितोऽयं महामन्त्रः सर्व्वपापहरः शुभः॥३८॥
तस्माद्यूयं प्रयत्नेन स्तवेनानेन वै द्विजाः। स्तुवीध्वं वरदं देवं सर्व्वकामफलप्रदम्॥३९॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे मार्त्तण्डस्यैकविंशतिनामानुकीर्त्तनं नाम एकत्रिंशोऽध्याय॥३१॥

—※—

यह शरीर को आरोग्य, धनवृद्धि तथा यश देने वाला है। जो सूर्योदय तथा सूर्यास्त कालरूपी दोनों संध्या के समय पवित्रता पूर्वक सूर्य का यह स्तव पढ़ता है, वह सभी पापों से रहित हो जाता है। इस स्तव को सूर्य के निकट (समक्ष) जो एक बार भी पढ़ता है, उसके कायिक-वाचिक-मानसिक कर्म जनित समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। यह स्तव एकमात्र जप्य है। यह होम, सन्ध्योपासना, धूप मन्त्र तथा अर्घ्य मन्त्र एवं बलिमन्त्र के समान है। अन्नदान, धनदान, प्रणिपात तथा प्रदक्षिणा हेतु यह सर्वपापहारी तथा शुभ मन्त्र कहा गया है। हे ब्राह्मणवृन्द! अतः मेरा कहना है कि यह स्तव पाठ करके आप लोग इस सर्वकामदायक, वरप्रद सूर्य की स्तुति करें।।३५-३९।।

।।एकत्रिंश अध्याय समाप्त।।



अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

दैत्यपीड़ित देवगण द्वारा अदितिकृत सूर्यस्तव पाठ, देवासुर संग्राम, युद्ध में असुरों की पराजय का वर्णन

मुनय ऊचुः

निर्गुणः शाश्वतो देवस्त्वया प्रोक्तो दिवाकरः।
पुनर्द्वादशधा जातः श्रुतोऽस्माभिस्त्वयोदितः॥१॥
स कथं तेजसो रश्मिः स्त्रिया गर्भे महाद्युतिः।
सम्भूतो भास्करो जातस्तत्र नः संशयो महान्॥२॥

मुनिगण कहते हैं—हे ब्रह्मन्! आपने दिवाकर का उल्लेख निर्गुण शाश्वत देव के रूप में किया है। पुनः आपने उनकी बारह मूर्त्ति का वर्णन हमें सुनाया। तथापि हमारे मन में यह एक संशय है कि वे तेजोराशि महाद्युति भास्कर किस प्रकार स्त्रीगर्भ से उत्पन्न हो गये?।।१-२।।

ब्रह्मोवाच

दक्षस्य हि सुताः श्रेष्ठा बभूवुः षष्टि शोभनाः।
अदितिर्दितिर्दनुश्चैव विनताद्यास्तथैव च॥३॥
दक्षस्ताः प्रददौ कन्याः कश्यपाय त्रयोदश। अदितिर्जनयामास देवांस्त्रिभुवनेश्वरान्॥४॥
दैत्यान्दितिर्दनुश्चोग्रान्दानवान् बलदर्पितान्।
विनताद्यास्तथा चान्याः सुषुवुः स्थाणुजङ्गमान्॥५॥
तस्याथ पुत्रदौहित्रैः पौत्रदौहित्रकादिभिः। व्याप्तमेतज्जगत् सर्व्वं तेषां तासां च वै मुने॥६॥
तेषां कश्यपपुत्राणां प्रधाना देवतागणाः। सात्त्विका राजसाश्चान्ये तामसाश्च गणाः स्मृताः॥७॥
देवान्यज्ञभुजश्चक्रे तथा त्रिभुवनेश्वरान्। त्त्रष्टा ब्रह्मविदां श्रेष्ठः परमेष्ठी प्रजापतिः॥८॥

ब्रह्मा कहते हैं—दक्ष प्रजापति की दिति-अदिति दनु, विनता आदि साठ श्रेष्ठ कन्याओं ने जन्म लिया। ये सभी सुन्दरी थीं। दक्ष ने उनमें से बारह कन्या कश्यप को प्रदान किया। अदिति ने कश्यप के औरस से तथा अपने गर्भ से तीन त्रिभुवनेश्वर पुत्रों को जन्म दिया था। इस प्रकार कश्यप से दिति ने दैत्यों को, दनु ने दानवों को जन्म दिया। उनकी विनता आदि पत्नियों ने स्थावर-जंगमादि विविध पुत्रों को जन्म दिया था। कश्यप के पुत्र, दौहित्र प्रभृति से यह जगत् व्याप्त हो उठा। कन्या-पुत्रगण में से सत्वगुण बहुल देवता ही प्रधान थे। इनके अतिरिक्त कश्यप के तमोगुण एवं रजोगुण बहुल अनेक पुत्र जन्मे। देवता यज्ञभागी तथा त्रिभुवन के प्रभु के पद पर उन्नीत हो गये। उनको प्रजापति कश्यप ने यज्ञ भोक्ता बनाया।।३-८।।

तानबाधन्त सहिताः सापत्न्याद्दैत्यदानवाः। ततो निराकृतान् पुत्रान्दैतेयैर्दानवैस्तथा॥९॥

हतं त्रिभुवनं दृष्ट्वा अदितिर्मुनिसत्तमाः। आच्छिनद्यज्ञभागांश्च क्षुधासम्पीडितान् भृशम्॥१०॥
आराधनाय सवितुः परं यत्नं प्रचक्रमे। एकाग्रा नियताहारा परं नियमास्थिता।
तुष्टाव तेजसां राशिं गगनस्थं दिवाकरम्॥११॥

दैत्य तथा दानव लोग शत्रुता के कारण देवताओं को सर्वदा उत्पीड़न पहुंचाते थे। अदिति ने देखा कि दैत्य-दानव सर्वदा उसके पुत्रों को सभी स्थानों से भगाते रहते हैं। समस्त त्रिभुवन पर दैत्यों का अधिकार हो गया। उनके पुत्र देवता क्षुधा से व्याकुल हैं, यह देखकर अदिति ने अपने पुत्रों हेतु यज्ञभाग का आहरण किया। उन्होंने सवितृ देवता की आराधना के लिये विशेष यत्न प्रारम्भ किया। उन्होंने एकाग्रता पूर्वक परम नियम का अवलम्बन किया तथा गगन में स्थित तेजपुंज दिवाकर का स्तव करने लगीं। वे उस समय नियमित आहार तथा कठोर नियमों का व्रत लेकर सूर्य की स्तुति करने लगीं।।९-११।।

अदितिरुवाच

नमस्तुभ्यं परं सूक्ष्मं सुपुण्यं बिभ्रतेऽतुलम्।
धाम धामवतामीशं धामाधारं च शाश्वतम्॥१२॥
जगतामुपकाराय त्वामहं स्तौमि गोपते। आददानस्य यद्रूपं तीव्रं तस्मै नमाम्यहम्॥१३॥
ग्रहीतुमष्टमासेन कालेनाम्बुमयं रसम्। बिभ्रतस्तव यद्रूपमतितीव्रं नतास्मि तत्॥१४॥
समेतमग्निषोमाभ्यां नमस्तस्मै गुणात्मने। यद्रूपमृग्यजुःसाम्नामैक्येन तपते तव॥१५॥
विश्वमेतत्त्रयीसंज्ञं नमस्तस्मै विभावसो। यत्तु तस्मात्परं रूपमोमित्युक्त्वाभिसंहितम्।
अस्थूलं स्थूलममलं नमस्तस्मै सनातन॥१६॥

देवी अदिति कहती हैं—हे गोपति! आपने परम सूक्ष्म पदार्थ होकर भी पवित्र अतुल तेज धारण किया है। आप तेजस्वियों के ईश्वर तथा सभी तेजों के आधार नित्य पुरुष हैं। आपको नमस्कार! मैं जगत् के उपकारार्थ आपकी स्तुति कर रही हूं। आठ मास तक जलमय रस पृथिवी से ग्रहण करते समय आपका जो तीव्र तापमय रूप होता है, मैं आपके उस रूप को प्रणाम करती हूं! आपको जो अग्निषोमात्मक गुणमय रूप है, जिससे ऋक्-यजुः-साम समूह का एकत्व प्रतिभात होता है, उसे मेरा नमस्कार! हे विभावसु! आपका जो यह त्रयी नामक विश्वरूप है, उसे मेरा नमस्कार! आपका जो इसके बाद वाला ॐकार रूप है, उसे मेरा नमस्कार! हे सनातन देव! आपका जो रूप स्थूल-अस्थूल तथा मलरहित है, उसे मैं नमस्कार करती हूं।।१२-१६।।

ब्रह्मोवाच

एवं सा नियता देवी चक्रे स्तोत्रमहर्निशम्। निराहारा विवस्वन्तमारिराधयिषुर्द्विजाः॥१७॥
ततः कालेन महता भगवांस्तपनो द्विजाः।
प्रत्यक्षतामगात्तस्या दाक्षायण्या द्विजोत्तमाः॥१८॥
सा ददर्श महाकूटं तेजसोऽम्बरसंवृतम्।
भूमौ च संस्थितं भास्वज्ज्वालाभिरतिदुर्दृशम्॥१९॥

ब्रह्मा कहते हैं—इस प्रकार अदिति देवी विवस्वान् के उद्देश्य से नियत नियमबद्ध तथा निराहार होकर अहर्निश उनका स्तव करने लगीं। हे द्विजोत्तमवृन्द! इसके पश्चात् दीर्घकाल बीतने पर भगवान् तपनदेव उन दक्षकन्या अदिति की आंखों के सामने आविर्भूत हो गये। अदिति देखती हैं कि उनके सामने के भूभाग पर आकाश को ढंकते हुये शैलशिखर की आकृति के समान तेजोराशि का आविर्भाव हो गया है। उसकी ज्वालामाला इतनी उज्ज्वल है कि उस पर नेत्र ठहर ही नहीं पा रहे हैं। देवी अदिति उस तेजपुंज को देख कर अत्यन्त सन्त्रस्त होकर कहने लगीं।।१७-१९।।

तं दृष्ट्वा च ततो देवी साध्वसं परमं गता॥२०॥

अदितिरुवाच

जगदाद्य प्रसीदेति न त्वां पश्यामि गोपते। प्रसादं कुरु पश्येयं यद्रूपं ते दिवाकर।
भक्तानुकम्पक विभो त्वद्भक्तान् पाहि मे सुतान्॥२१॥

देवी अदिति कहती हैं—हे जगत् के आदि प्रभु! आप मुझ पर प्रसन्न हो जायें। मैं आपको देख नहीं पा रही हूं। हे दिवाकर! आप प्रसन्न हों। मैं आपके प्रकृत रूप का दर्शन पा सकूं। हे भक्तों पर कृपा करने वाले! हे विभु! आप अपने भक्त पुत्रों की रक्षा करिये।।२०-२१।।

ब्रह्मोवाच

ततः स तेजसस्तस्मादाविर्भूतो विभावसुः। अदृश्यत तदादित्यस्तप्तताम्रोपमः प्रभुः॥२२॥
ततस्तां प्रणतां देवीं तस्यासन्दर्शने द्विजाः।
प्राह भास्वान् वृणुष्वैकं वरं मत्तो यमिच्छसि॥२३॥
प्रणता शिरसा सा तु जानुपीडितमेदिनी। प्रत्युवाच विवस्वन्तं वरदं समुपस्थितम्॥२४॥

ब्रह्मा कहते हैं—तदनन्तर उस तेजपुंज से आदित्य देवता आविर्भूत हो गये। उस समय उनको तप्त ताम्ररूप से देखा जा रहा था। हे द्विजगण! उस समय भास्कर देव ने प्रणत अदिति से कहा—"तुम जो भी चाहती हो, वह एक वर मांगो। तब अदिति ने अपने घुटने पृथिवी पर टेके तथा मस्तक झुकाकर वरदाता विवस्वान् से कहने लगी।।२२-२४।।

अदितिरुवाच

देव प्रसीद पुत्राणां हृतं त्रिभुवनं मम। यज्ञभागाश्च दैतेयैर्दानवैश्च बलाधिकैः॥२५॥
तन्निमित्तं प्रसादं त्वं कुरुष्व मम गोपते। अंशेन तेषां भ्रातृत्वं गत्वा तान्नाशये रिपून्॥२६॥
यथा मे तनया भूयो यज्ञभागभुजः प्रभो। भवेयुरधिपाश्चैव त्रैलोक्यस्य दिवाकर॥२७॥
तथानुकल्पं पुत्राणां सुप्रसन्नो रवे मम। कुरु प्रसन्नार्त्तिहर कार्य्यं कर्त्ता त्वमुच्यते॥२८॥

देवी अदिति कहती हैं—हे देव! प्रसन्न हो जायें। प्रबल दैत्य लोगों ने मेरे पुत्रों का त्रिभुवन राज्य हरण कर लिया। वे लोग यज्ञभाग रहित हो गये। हे गोपति! आप इस सम्बन्ध में मुझ पर प्रसन्न हो जायें। आप अपने अंश से मेरे पुत्रों के भ्राता रूप में आविर्भूत होकर इन शत्रुओं का नाश करिये। हे प्रभो! मेरे पुत्रगण पुनः

यज्ञभागभोजी तथा त्रैलोक्य के स्वामी हो जायें। प्रतिकल्प में आप उन पर प्रसन्न हों। हे प्रसन्नार्त्तिहारी दिवाकर! आप ऐसा करिये, क्योंकि आप ही सब कुछ के कर्त्ता हैं।।२५-२८।।

ब्रह्मोवाच

ततस्तामाह भगवान् भास्करो वारितस्करः।
प्रणतामदितिं विप्राः प्रसादसुमुखो विभुः॥२९॥

सूर्य्य उवाच

सहस्रांशेन ते गर्भः सम्भूयाहमशेषतः। त्वत्पुत्रशत्रून् दक्षोऽहं नाशयाम्याशु निर्वृतः॥३०॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे ब्राह्मणवृन्द! तदनन्तर भगवान् जलतस्कर (पृथिवी का जल सुखा कर हरण करने वाले) भास्कर ने प्रसन्न मुद्रा में अपने सामने प्रणत हो रहीं अदिति से कहा—"अपने हजारवें अंश से मैं आपके गर्भ से उत्पन्न होकर निराकुल मन से आपके पुत्रों के शत्रुगण का वध करूंगा।।२९-३०।।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा भगवान् भास्वानन्तर्धानमुपागतः।
निवृत्ता सापि तपसः सम्प्राप्ताखिलवाञ्छिता॥३१॥

ततो रश्मिसहस्रात्तु सुषम्णाख्यो रवेः करः। ततः संवत्सरस्यान्ते तत्कामपूरणाय सः॥३२॥
निवासं सविता चक्रे देवमातुस्तदोदरे। कृच्छ्रचान्द्रायणादींश्च सा चक्रे सुसमाहिता॥३३॥

शुचिना धारयाम्येनं दिव्यं गर्भमिति द्विजाः।
ततस्तां कश्यपः प्राह किञ्चित्कोपप्लुताक्षरम्॥३४॥

कश्यप उवाच

किं मारयसि गर्भाण्डमिति नित्योपवासिनी।

ब्रह्मा कहते हैं—यह कहने के पश्चात् प्रभु भास्कर वहां से अन्तर्हित् हो गये। अदिति देवी भी सूर्य से वांछित वरलाभ करने के पश्चात् तप से निवृत्त हो गयीं। एक वर्ष व्यतीत होने पर सूर्य की सहस्र किरण में से सुषुम्ना नामक एक किरण अदिति की कामना पूर्ण करने के लिये प्रवृत्त हो गई। सूर्यदेव इसी किरण के रूप में देवमाता अदिति के गर्भ में निवास करने लगे। तब अदिति ने संकल्प किया कि मैं पवित्र भाव से गर्भ धारण करूंगी। अतएव वे समाहित मन से कृच्छ्र-चान्द्रायणादि व्रत करने लगीं। इससे कश्यप ने एक बार कुछ क्रुद्ध स्वर में देवमाता से कहा—"क्या तुम एवंविध नित्य उपवासी रहकर अपने गर्भाण्ड का नाश कर दोगी?"।।३१-३४।।

ब्रह्मोवाच

सा च तं प्राह गर्भाण्डमेतत्पश्येति कोपना। न मारितं विपक्षाणां मृत्युरेव भविष्यति॥३५॥
इत्युक्त्वा तं तदा गर्भमुत्ससर्ज सुरारणिः। जाज्वल्यमानं तेजोभिः पत्युर्वचनकोपिता॥३६॥

ब्रह्मा कहते हैं—इस प्रकार अदिति देवी विवस्वान् के उद्देश्य से नियत नियमबद्ध तथा निराहार होकर अहर्निश उनका स्तव करने लगीं। हे द्विजोत्तमवृन्द! इसके पश्चात् दीर्घकाल बीतने पर भगवान् तपनदेव उन दक्षकन्या अदिति की आंखों के सामने आविर्भूत हो गये। अदिति देखती हैं कि उनके सामने के भूभाग पर आकाश को ढंकते हुये शैलशिखर की आकृति के समान तेजोराशि का आविर्भाव हो गया है। उसकी ज्वालामाला इतनी उज्ज्वल है कि उस पर नेत्र ठहर ही नहीं पा रहे हैं। देवी अदिति उस तेजपुंज को देख कर अत्यन्त सन्त्रस्त होकर कहने लगीं।।१७-१९।।

तं दृष्ट्वा च ततो देवी साध्वसं परमं गता॥२०॥

अदितिरुवाच

जगदाद्य प्रसीदेति न त्वां पश्यामि गोपते। प्रसादं कुरु पश्येयं यद्रूपं ते दिवाकर।
भक्तानुकम्पक विभो त्वद्भक्तान् पाहि मे सुतान्॥२१॥

देवी अदिति कहती हैं—हे जगत् के आदि प्रभु! आप मुझ पर प्रसन्न हो जायें। मैं आपको देख नहीं पा रही हूं। हे दिवाकर! आप प्रसन्न हों। मैं आपके प्रकृत रूप का दर्शन पा सकूं। हे भक्तों पर कृपा करने वाले! हे विभु! आप अपने भक्त पुत्रों की रक्षा करिये।।२०-२१।।

ब्रह्मोवाच

ततः स तेजसस्तस्मादाविर्भूतो विभावसुः। अदृश्यत तदादित्यस्तप्तताम्रोपमः प्रभुः॥२२॥
ततस्तां प्रणतां देवीं तस्यासन्दर्शने द्विजाः।
प्राह भास्वान् वृणुष्वैकं वरं मत्तो यमिच्छसि॥२३॥
प्रणता शिरसा सा तु जानुपीडितमेदिनी। प्रत्युवाच विवस्वन्तं वरदं समुपस्थितम्॥२४॥

ब्रह्मा कहते हैं—तदनन्तर उस तेजपुंज से आदित्य देवता आविर्भूत हो गये। उस समय उनको तप्त ताम्ररूप से देखा जा रहा था। हे द्विजगण! उस समय भास्कर देव ने प्रणत अदिति से कहा—"तुम जो भी चाहती हो, वह एक वर मांगो। तब अदिति ने अपने घुटने पृथिवी पर टेके तथा मस्तक झुकाकर वरदाता विवस्वान् से कहने लगी।।२२-२४।।

अदितिरुवाच

देव प्रसीद पुत्राणां हृतं त्रिभुवनं मम। यज्ञभागाश्च दैतेयैर्दानवैश्च बलाधिकैः॥२५॥
तन्निमित्तं प्रसादं त्वं कुरुष्व मम गोपते। अंशेन तेषां भ्रातृत्वं गत्वा तान्नाशये रिपून्॥२६॥
यथा मे तनया भूयो यज्ञभागभुजः प्रभो। भवेयुरधिपाश्चैव त्रैलोक्यस्य दिवाकर॥२७॥
तथानुकल्पं पुत्राणां सुप्रसन्नो रवे मम। कुरु प्रसन्नार्त्तिहर कार्य्यं कर्त्ता त्वमुच्यते॥२८॥

देवी अदिति कहती हैं—हे देव! प्रसन्न हो जायें। प्रबल दैत्य लोगों ने मेरे पुत्रों का त्रिभुवन राज्य हरण कर लिया। वे लोग यज्ञभाग रहित हो गये। हे गोपति! आप इस सम्बन्ध में मुझ पर प्रसन्न हो जायें। आप अपने अंश से मेरे पुत्रों के भ्राता रूप में आविर्भूत होकर इन शत्रुओं का नाश करिये। हे प्रभो! मेरे पुत्रगण पुनः

यज्ञभागभोजी तथा त्रैलोक्य के स्वामी हो जायें। प्रतिकल्प में आप उन पर प्रसन्न हों। हे प्रसन्नार्त्तिहारी दिवाकर! आप ऐसा करिये, क्योंकि आप ही सब कुछ के कर्त्ता हैं।।२५-२८।।

ब्रह्मोवाच

ततस्तामाह भगवान् भास्करो वारितस्करः।
प्रणतामदितिं विप्राः प्रसादसुमुखो विभुः॥२९॥

सूर्य्य उवाच

सहस्रांशेन ते गर्भः सम्भूयाहमशेषतः। त्वत्पुत्रशत्रून् दक्षोऽहं नाशयाम्याशु निर्वृतः॥३०॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे ब्राह्मणवृन्द! तदनन्तर भगवान् जलतस्कर (पृथिवी का जल सुखा कर हरण करने वाले) भास्कर ने प्रसन्न मुद्रा में अपने सामने प्रणत हो रहीं अदिति से कहा—"अपने हजारवें अंश से मैं आपके गर्भ से उत्पन्न होकर निराकुल मन से आपके पुत्रों के शत्रुगण का वध करूंगा।।२९-३०।।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा भगवान् भास्वानन्तर्धानमुपागतः।
निवृत्ता सापि तपसः सम्प्राप्ताखिलवाञ्छिता॥३१॥
ततो रश्मिसहस्रात्तु सुषम्णाख्यो रवेः करः। ततः संवत्सरस्यान्ते तत्कामपूरणाय सः॥३२॥
निवासं सविता चक्रे देवमातुस्तदोदरे। कृच्छ्रचान्द्रायणादींश्च सा चक्रे सुसमाहिता॥३३॥
शुचिना धारयाम्येनं दिव्यं गर्भमिति द्विजाः।
ततस्तां कश्यपः प्राह किञ्चित्कोपप्लुताक्षरम्॥३४॥

कश्यप उवाच

किं मारयसि गर्भाण्डमिति नित्योपवासिनी।

ब्रह्मा कहते हैं—यह कहने के पश्चात् प्रभु भास्कर वहां से अन्तर्हित् हो गये। अदिति देवी भी सूर्य से वांछित वरलाभ करने के पश्चात् तप से निवृत्त हो गयीं। एक वर्ष व्यतीत होने पर सूर्य की सहस्र किरण में से सुषुम्ना नामक एक किरण अदिति की कामना पूर्ण करने के लिये प्रवृत्त हो गई। सूर्यदेव इसी किरण के रूप में देवमाता अदिति के गर्भ में निवास करने लगे। तब अदिति ने संकल्प किया कि मैं पवित्र भाव से गर्भ धारण करूंगी। अतएव वे समाहित मन से कृच्छ्र-चान्द्रायणादि व्रत करने लगीं। इससे कश्यप ने एक बार कुछ क्रुद्ध स्वर में देवमाता से कहा—"क्या तुम एवंविध नित्य उपवासी रहकर अपने गर्भाण्ड का नाश कर दोगी?"।।३१-३४।।

ब्रह्मोवाच

सा च तं प्राह गर्भाण्डमेतत्पश्येति कोपना। न मारितं विपक्षाणां मृत्युरेव भविष्यति॥३५॥
इत्युक्त्वा तं तदा गर्भमुत्ससर्ज सुरारणिः। जाज्वल्यमानं तेजोभिः पत्युर्वचनकोपिता॥३६॥

तं दृष्ट्वा कश्यपो गर्भमुद्यद् भास्करवर्च्चसम्।
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा वाग्भिराद्याभिरादरात्॥३७॥
संस्तूयमानः स तदा गर्भाण्डात् प्रकटोऽभवत्।
पद्मपत्रसवर्णाभस्तेजसा व्याप्तदिङ्मुखः॥३८॥
अथान्तरिक्षादाभाष्य कश्यपं मुनिसत्तमम्। सतोयमेघगम्भीरा वागुवाचाशरीरिणी॥३९॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर अदिति ने भी क्रुद्ध होकर उत्तर दिया "हे स्वामी! इस गर्भाण्ड को देखिये। मैंने इसका विनाश नहीं किया है। यह गर्भाण्ड जन्म लेकर शत्रु संहार करेगा।" पति वचन से कुपित माता ने तत्क्षण अपना गर्भ मुक्त किया। कश्यप ने तब उदित सूर्य के समान तेजपुंजमय गर्भ को देखा तथा तब वे सश्रद्ध भाव से प्रणत होकर उदार वाक्यों से उनका स्तव करने लगे। कश्यप द्वारा स्तुति किये जाने पर गर्भाण्ड से एक पुत्र उत्पन्न हो गया। यह पद्मपत्र के वर्ण वाला था तथा उसके तेजः से त्रिभुवन व्याप्त हो गया। इस पुत्र के जन्म के अगले मुहूर्त में मुनिप्रवर कश्यप को सम्बोधित करती आकाशवाणी जलद गंभीर वाणी में कहने लगी।।३५-३९।।

वागुवाच

मारितमिति यत् प्रोक्तमेतदण्डं त्वयादितेः।
तस्मान्मुने सुतस्तेऽयं मार्त्तण्डाख्यो भविष्यति॥४०॥
हनिष्यत्यसुरांश्चायं यज्ञभागहरानरीन्। देवा निशम्येति वचो गगनात् समुपागतम्॥४१॥
प्रहर्षमतुलं याता दानवाश्च हतौजसः। ततो युद्धाय दैतेयानाजुहाव शतक्रतुः॥४२॥

आाशवाणी ने कहा—"हे मुनि कश्यप! आपने कुपित होकर अदिति में गर्भाण्ड मृत होने की आशंका व्यक्त किया था, इसीलिये आपके पुत्र मार्तण्ड नाम से प्रसिद्ध होंगे। ये यज्ञभाग का हरण करने वाले असुरों का संहार करेंगे।" यह आकाशवाणी सुनकर देवता प्रसन्न तथा असुरगण तेजरहित हो गये। अब देवताओं से घिरे आनन्दित इन्द्र ने दैत्यों को युद्ध के लिये ललकारा।।४०-४२।।

सह देवैर्मुदा युक्ता दानवाश्च तमभ्ययुः। तेषां युद्धमभूद्घोरं देवानामसुरैः सह॥४३॥
शस्त्रास्त्रवृष्टिसन्दीप्तसमस्तभुवनान्तरम्। तस्मिन् युद्धे भगवता मार्त्तण्डेन निरीक्षिताः॥४४॥
तेजसा दह्यमानास्ते भस्मीभूता महासुराः। ततः प्रहर्षमतुलं प्राप्तः सर्व्वे दिवौकसः॥४५॥
तुष्टुवुस्तेजसां योनिं मार्त्तण्डमदितिं तथा।
स्वाधिकारांस्ततः प्राप्ता यज्ञभागांश्च पूर्व्ववत्॥४६॥
भगवानपि मार्त्तण्डः स्वाधिकारमथाकरोत्।
कदम्बपुष्पवद्भास्वानधश्चोद्र्ध्वञ्च रश्मिभिः।
वृतोऽग्निपिण्डसदृशो दधे नातिस्फुटं वपुः॥४७॥

देवता लोगों से घिरे आनन्दित इन्द्र ने जब दैत्यों का आह्वान किया, तब दैत्य भी युद्धभूमि में आ गये।

उस समय असुरों तथा देवताओं के बीच घोरतम युद्ध होने लगा था। शस्त्र-अस्त्र की वर्षा से समस्त भुवन प्रदीप्त हो उठे। उस युद्धक्षेत्रस्थ विपक्षी दल के प्रति भगवान् मार्तण्ड ने दृष्टिपात किया। उनके दृष्टिपात मात्र से सभी महासुर सूर्यदेव के तेज से भस्मीभूत हो गये। इससे देवताओं ने परम हर्ष प्राप्त किया। तेजपुंज मार्तण्ड ने भी अदिति का स्तव किया था। इसके पश्चात् देवताओं ने पूर्ववत् अपने-अपने पूर्व स्थान को प्राप्त किया। भगवान् मार्तण्ड ने भी तब अपना अधिकार स्थापित किया था। भास्कर ने अपनी रश्मियों से कदम्बपुष्प की तरह अधः एवं ऊर्ध्व में कान्तिमान अग्निपिण्डवत् अस्फुट देह धारण किया।।४३-४७।।

मुनय ऊचुः

कथं कान्ततरं पश्चाद्रूपं संलब्धवान् रविः।
कदम्बगोलकाकारं तन्मे ब्रूहि जगत्पते॥४८॥

मुनिगण कहते हैं—हे जगत्पति! भगवान् रवि का यह कदम्ब के समान गोलाकार रूप बाद में किस प्रकार कान्ततर (रमणीय) हो सका, वह कहिये।।४८।।

ब्रह्मोवाच

त्वष्टा तस्मै ददौ कन्यां संज्ञां नाम विवस्वते।
प्रसाद्य प्रणतो भूत्वा विश्वकर्म्मा प्रजापतिः॥४९॥
त्रीण्यपत्यान्यसौ तस्यां जनयामास गोपतिः।
द्वौ पुत्रौ सुमहाभागौ कन्याञ्च यमुनां तथा॥५०॥
यत्तेजोऽभ्यधिकं तस्य मार्त्तण्डस्य विवस्वतः।
तेनातितापयामास त्रींल्लोकान् सचराचरान्॥५१॥
तद्रूपं गोलकाकारं दृष्ट्वा संज्ञा विवस्वतः। असहन्ती महत्तेजः स्वां छायां वाक्यमब्रवीत्॥५२॥

ब्रह्मा कहते हैं—प्रजापति विश्वकर्मा ने प्रणत होकर विवस्वान् को प्रसन्न किया तथा अपनी संज्ञा नामक कन्या को उन्हें अर्पित किया। विवस्वान् ने संज्ञा के गर्भ से दो पुत्र तथा एक कन्या उत्पन्न किया। कन्या का नाम था यमुना। मार्त्तण्ड का तेज अत्यन्त वर्द्धित हो गया था। वे अपने तेज से सचराचर को तापित करने लगे। सूर्य का यह गोलाकार तीव्र तेज से तप्त रूप का तेज न सह सकने के कारण संज्ञा ने अपनी छाया से कहा—।।४९-५२।।

संज्ञोवाच

अहं यास्यामि भद्रं ते स्वमेव भवनं पितुः।
निर्व्विकारं त्वयात्रैव स्थेयं मच्छासनाच्छुभे॥५३॥
इमौ च बालकौ मह्यं कन्या च वरवर्णिनी।
सम्भाव्या नैव चाख्येयमिदं भगवते त्वया॥५४॥

संज्ञा कहती है—हे शुभे! तुम्हारा मंगल हो जाये। मैं अपने पिता के यहां जा रही हूं। तुम मेरे

आदेशानुसार यहीं निर्विकार होकर रहो। मेरे ये दो पुत्र तथा एक कन्या हैं। इनका पालन करना। मेरे जाने का यह संवाद भगवान् सूर्य से कदापि न कहना।।५३-५४।।

छायोवाच

आ कचग्रहणाद्देवि आशापान्नैव कर्हिचित्।
आख्यास्यामि मतं तुभ्यं गम्यतां यत्र वाञ्छितम्।।५५।।

छाया कहती हैं—हे देवी! जब तक मेरा केश पकड़ कर अथवा मुझे शाप देने के लिये सूर्यदेव उद्यत नहीं होंगे, तब तक यह संवाद प्रकट नहीं करूंगी। आप अपनी इच्छा के अनुरूप जाइये।।५५।।

इत्युक्त्वा व्रीडिता संज्ञा जगाम पितृमन्दिरम्। वत्सराणां सहस्रन्तु वसमाना पितुर्गृहे।।५६।।
भर्त्तुः समीपं याहीति पित्रोक्ता सा पुनः पुनः।
आगच्छद्वडवा भूत्वा कुरूनथोत्तरांस्ततः।।५७।।
तत्र तेपे तपः साध्वी निराहारा द्विजोत्तमाः।
पितुः समीपं यातायां संज्ञायां वाक्यतत्परा।।५८।।
तद्रूपधारिणी छाया भास्करं समुपस्थिता।
तस्याञ्च भगवान् सूर्य्यः संज्ञेयमिति चिन्तयन्।।५९।।
तथैव जनयामास द्वौ पुत्रौ कन्यकां तथा।
संज्ञा तु पार्थिवी तेषामात्मजानां तथाकरोत्।।६०।।
स्नेहं न पूर्व्वजातानां तथा कृतवती तु सा।
मनुस्तत्क्षान्तवांस्तस्या यमस्तस्या न चक्षमे।।६१।।
बहुधा पीड्यमानस्तु पितुः पत्न्या सुदुःखितः।
स वै कोपाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात्।।६२।।
पदा सन्तर्ज्जयामास न तु देहे न्यपातयत्।

छायोवाच

पदा तर्ज्जयसे यस्मात्पितुर्भार्य्यां गरीयसीम्। तस्मात्तवैष चरणः पतिष्यति न संशयः।।६३।।

छाया के कहने पर संज्ञा लज्जित सी पिता के यहां गई। उन्होंने एक हजार वर्ष तक पिता के यहां निवास किया। तब उनके पिता बारम्बार संज्ञा से पतिगृह जाने के लिये कहने लगे। हे द्विजश्रेष्ठनन्दन! तब साध्वी संध्या घोड़ी का रूप धारण उत्तर कुरुदेश जाकर तपःश्चरण करने लगीं। जब सन्ध्या पिता के यहां गई थीं, तब छाया संज्ञा का रूप धर कर सूर्यदेव के निकट पहुंची। सूर्यदेव ने छाया को ही संज्ञा जानकर उनसे दो पुत्र एवं एक कन्या उत्पन्न किया था। संज्ञा अपनी सन्तानों से जैसा प्रेम करती थीं, छाया उनसे वैसा प्रेम नहीं करती थी। संज्ञापुत्र मनु छाया का यह अस्नेह व्यवहार देख कर उसे सहन नहीं कर पा रहे थे। वे अनेक प्रकार से छाया द्वारा पीड़ित किये जाकर दुःखी थे। तब यम ने बाल चापल्यवशात् क्रोध एवं भावी के कारण

अपना पैर उठाया तथा छाया को तर्जित किया। परन्तु उनकी देह पर पदाघात नहीं किया। यम का यह व्यवहार देखकर छाया ने कहा—"तुमने आदरणीय पिता की भार्या को पैर उठा कर धमकाया है, इस अपराध के कारण निश्चित रूप से तुम्हारा पैर गिर जाये।।५६-६३।।

ब्रह्मोवाच

यमस्तु तेन शापेन भृशं पीडितमानसः। मनुना सह धर्म्मात्मा पित्रे सर्व्वं न्यवेदयत्।।६४।।

ब्रह्मा कहते हैं—यम इस शाप के कारण अत्यन्त दुःखी हो गये। अब वे भाई मनु के साथ पिता सूर्यदेव के पास गये तथा समस्त वृत्तान्त उनसे कहा—।।६४।।

यम उवाच

स्नेहेन तुल्यमस्मासु माता देव न वर्त्तते। विसृज्य ज्यायसं भक्त्या कनीयांसं बुभूषति।।६५।।

तस्यां मयोद्यतः पादो न तु देहे निपातितः।
बाल्याद्वा यदि वा मोहात्तद्भवान् क्षन्तुमर्हसि।।६६।।

शप्तोऽहं तात कोपेन जनन्या तनयो यतः। ततो मन्ये न जननीमिमां वै तपतांवर।।६७।।

तव प्रसादाच्चरणो भगवन् न पतेद्यथा। मातृशापादयं मेऽद्य तथा चिन्तय गोपते।।६८।।

यम कहते हैं—हे देव! माता हमारे प्रति एक समान प्रेम नहीं करती। उन्होंने ज्येष्ठ सन्तानों का त्याग किया है। कनिष्ठ सन्तानों से अधिक प्रेम करती हैं। इसलिये मैंने उनको लक्ष्य करके पैर तो उठाया, लेकिन उनके देह पर उसे नहीं गिराया। यह मेरा व्यवहार मोहवश अथवा बाल्य चापल्यवश था। आप उसे क्षमा करिये। हे तात! जननी ने मुझे क्रोध पूर्वक शाप दे दिया। हे तपनप्रवर! इस घटना से यह विदित होता है कि वे हमारी माता नहीं हैं। हे प्रभु गोपति! मातृशापवशात् मेरा पैर न गिरे, आप प्रसन्न होकर वैसा उपाय करिये।।६५-६८।।

रविरुवाच

असंशयं महत्पुत्र भविष्यत्यत्र कारणम्। येन त्वामाविशत्क्रोधो धर्म्मज्ञं धर्म्मशीलिनम्।।६९।।

सर्व्वेषामेवं शापानां प्रतिघातो हि विद्यते।
न तु मात्राभिशप्तानां क्वचिच्छापनिवर्त्तनम्।।७०।।
न शक्यमेतन्मिथ्या तु कर्त्तुः मातुर्वचस्तव।
किञ्चित्तेऽहं विधास्यामि पुत्रस्नेहादनुग्रहम्।।७१।।
कृमयो मांसमादाय प्रयास्यन्ति महीतलम्।
कृतं तस्या वचः सत्यं त्वञ्च त्रातो भविष्यसि।।७२।।

सूर्यदेव कहते हैं—हे पुत्र! जब तुम जैसे धार्मिक तथा धर्माचरणतत्पर व्यक्ति में भी क्रोध का उद्रेक हो जाता है, तब निश्चित रूप से इसके पीछे कोई कारण अवश्य है। सभी पापों का प्रतिकार संभव है। लेकिन मातृशाप को कोई भी नहीं हटा सकता। इस मातृशाप को अन्यथा करने की मेरी क्षमता नहीं है। तथापि मैं

तुम्हारे प्रति किंचित् अनुग्रह करूंगा। कृमि तुम्हारे पैर का मांस लेकर पृथिवी पर जायेंगे। इससे तुम्हारी माता का वाक्य भी सत्य होगा और तुम भी बच जाओगे (अर्थात् पैर नहीं गिरेगा। कुछ मांस कीट पृथिवी पर ले जायेंगे)।।६९-७२।।

ब्रह्मोवाच

आदित्यस्त्वब्रवीच्छायां किमर्थं तनयेषु वै।
तुल्येष्वप्यधिकः स्नेह एकं प्रति कृतस्त्वया।।७३।।
नूनं नैषां त्वं जननी संज्ञा कापि त्वमागता।
निर्गुणेष्वप्यपत्येषु माता शापं न दास्यति।।७४।।

ब्रह्मा कहते हैं—तब सूर्यदेव ने छाया से पूछा—"सन्तान सभी बराबर होते हैं, अथच तुम समान प्रेम न करके एक के प्रति अधिक स्नेह क्यों करती हो? निश्चित रूप से तुम उनकी माता संज्ञा नहीं हो। तुम अन्य कोई हो, क्योंकि यदि सन्तान भले ही गुणहीन हो, माता उसको शाप नहीं दे सकती"।।७३-७४।।

सा तत्परिहरन्ती च शापाद्भीता तदा रवेः। कथयामास वृत्तान्तं स श्रुत्वा श्वसुरं ययौ।।७५।।
स चापि तं यथान्यायमर्च्चयित्वा तदा रविम्।
निर्दग्धुकामं रोषेण सान्त्वयानस्तमब्रवीत्।।७६।।

यह सुन कर छाया स्वामी सूर्य से शाप मिलने की आशंका से भयभीत हो गई। उसने अपना दोष कहते हुये समस्त वृत्तान्त सूर्यदेव से कहा—यह सुनकर सूर्य अपने श्वसुर विश्वकर्मा के पास गये। श्वसुर ने सूर्य का यथोचित सत्कार किया। लेकिन सूर्यदेव ने रोष पूर्वक उनको दग्ध करना चाहा। उनको सान्त्वना देकर विश्वकर्मा कहने लगे।।७५-७६।।

विश्वकर्मोवाच

तवातितेजसा व्याप्तमिदं रूपं सुदुःसहम्। असहन्ती तु तत्संज्ञा वने चरति वै तपः।।७७।।
द्रक्ष्यते तां भवानद्य स्वां भार्य्यां शुभचारिणीम्।
रूपार्थं भवतोऽरण्ये चरन्तीं सुमहत्तपः।।७८।।
श्रुतं मे ब्रह्मणो वाक्यं तव तेजोऽवरोधने। रूपं निवर्त्तयाम्यद्य तव कान्तं दिवस्पते।।७९।।

विश्वकर्मा कहते हैं—हे देव! आपका यह तेज जगत् में व्याप्त है। मेरी कन्या आपका यह दुःसह रूप सहन न कर सकी। वह वन में तप कर रही है। वहां आप उसे देख सकेंगे। आप देखेंगे कि वह शुभचारिणी संज्ञा इसलिये कठोर तप कर रही है, जिससे आपको सुन्दर रूप मिले। आपके तेज को न्यून करने हेतु ही उसका यह तप है। यह मैंने ब्रह्मा से सुना है। हे दिवस्पति! यदि आप आज्ञा दीजिये, तब मैं ही आपका रूप कमनीय कर सकता हूं।।७७-७९।।

ब्रह्मोवाच

ततस्तथेति तं प्राह त्वष्टारं भगवान् रविः। ततो विवस्वतो रूपं प्रागासीत्परिमण्डलम्।।८०।।

विश्वकर्म्मा त्वनुज्ञातः शाकद्वीपे विवस्वता। भ्रमिमारोप्य तत्तेजःशातनायोपचक्रमे॥८१॥
भ्रमताशेषजगतां नाभिभूतेन भास्वता। समुद्राद्रिवनोपेता त्वारुरोह मही नभः॥८२॥

गगनञ्चाखिलं विप्राः सचन्द्रग्रहतारकम्।
अधो गतं महाभागा बभूवाक्षिप्तमाकुलम्॥८३॥
विक्षिप्तसलिलाः सर्व्वे बभूवुश्च तथार्णवाः।
व्यभिद्यन्त महाशैलाः शीर्णसानुनिबन्धनाः॥८४॥
ध्रुवाधाराण्यशेषाणि धिष्ण्यानि मुनिसत्तमाः।
त्रुट्यद्रश्मिनिबन्धीनि बन्धनानि अधो ययुः॥८५॥

ब्रह्मा कहते हैं—भगवान् रवि ने विश्वकर्मा के कथन से सहमत होकर उनको वही करने की अनुमति प्रदान किया। पूर्व में सूर्य का रूप परिमण्डलाकृति था। विश्वकर्मा ने सूर्य की आज्ञा से उनको शाकद्वीप में ले जाकर भ्रमियन्त्र (खराद) पर चढ़ा कर उनका तेज क्षीण किया। अन्त में जगत् के नाभिरूप भगवान् भास्कर भ्रमणरत (खराद पर गोल घूमने लगे) हो गये। शैल-सागर-कानन से घिरी इस पृथिवी की स्थिति उनके भ्रमण से व्याकुलित होकर आकाश में आरुढ़ हो गयी। हे ब्राह्मणों! उस समय चन्द्र, ग्रह तथा समस्त तारकों के साथ समस्त गगन अधोगत होकर आक्षिप्त एवं व्याकुल हो उठा। सागरों का जल चतुर्दिक् फैल गया। महापर्वत टूटने लगे। ध्रुव के आधार वाले नक्षत्र किरण बन्धन भग्न होने के कारण नीचे गिरने लगे।।८०-८५।।

वेगभ्रमणसम्पातवायुक्षिप्तां सहस्रशः। व्यशीर्य्यन्तं महामेघा घोरारावविराविणः॥८६॥
भास्वद्भ्रमणविभ्रान्तभूम्याकाशरसातलम्। जगदाकुलमत्यर्थं तदासीन्मुनिसत्तमाः॥८७॥
त्रैलोक्यमाकुलं वीक्ष्य भ्रममाणं सुरर्षयः। देवाश्च ब्रह्मणा सार्द्धं भास्वन्तमभितुष्टुवुः॥८८॥

गर्जनकारी शत सहस्र महामेघ इस वेगमय सूर्यभ्रमण से उठ रहे पवन के क्षोभ के कारण इतःस्ततः चूर्ण-विचूर्ण हो गये। भास्कर के इस भ्रमण के कारण भूमि-आकाश-रसातल विभ्रान्त होकर रह गये। हे मुनिप्रवरगण! इस प्रकार समस्त जगत् अतीव व्याकुल हो गया। तब देवर्षिगण एवं सभी देवता त्रैलोक्य को आकुल तथा घूमते देख कर ब्रह्मा के साथ आये तथा दिवाकर का स्तव करने लगे।।८६-८८।।

आदिदेवोऽसि देवानां जातस्त्वं भूतये भुवः।
स्वर्गस्थित्यन्तकालेषु त्रिधा भेदेन तिष्ठसि॥८९॥
स्वस्ति तेऽस्तु जगन्नाथ घर्म्मवर्ष दिवाकर।
इन्द्रादयस्तदा देवा लिख्यमानमथास्तुवन्॥९०॥

जय देव जगत्स्वामिन् जयाशेष जगत्पते। ऋषयश्च ततः सप्त वसिष्ठात्रिपुरोगमाः॥९१॥

तुष्टुवुर्विविधैःस्तोत्रैः स्वस्ति स्वस्तीतिवादिनः।
वेदोक्तिभिरथऋग्भिर्वालखिल्याश्च तुष्टुवुः॥९२॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे देव! आप सबके आदिदेव हैं। आपका आविर्भाव धरती के मंगलार्थ हुआ है।

सृष्टि-स्थिति तथा प्रलय काल में आप ही सृष्टि हेतु ब्रह्मा, स्थिति हेतु विष्णु तथा प्रलय हेतु हर के रूप में विराजित रहते हैं। हे धर्मवर्य, जगन्नाथ, दिवाकर! आपकी स्वस्ति हो। यह देख कर इन्द्रादि देवता भी उनकी स्तुति में "जय देव! जगत्स्वामी आपकी जय जयकार है।" उस समय वसिष्ठ, अत्रि आदि प्रमुख सप्तर्षिगण विविध स्तोत्रों द्वारा तथा उनको अनेक स्वस्ति शब्द से सन्तुष्ट करने लगे। उस समय बालखिल्य ऋषि सूर्यदेव को सन्तुष्ट करने हेतु वेदोक्त स्तव कर रहे थे।।८९-९२।।

अग्निराद्याश्च भास्वन्तं लिख्यमानं मुदा युताः।
त्वं नाथ मोक्षिणां मोक्षो ध्येयस्त्वं ध्यानिनां परः॥९३॥
त्वं गतिः सर्व्वभूतानां कर्म्मकाण्डविवर्त्तिनाम्।
सम्पूज्यस्त्वं तु देवेश शं नोऽस्तु जगतां पते॥९४॥
शं नोऽस्तु द्विपदे नित्यं शं नश्चास्तु चतुष्पदे। ततो विद्याधरगणा यक्षराक्षसपन्नगाः॥९५॥
कृताञ्जलिपुटाः सर्व्वे शिरोभिः प्रणता रविम्।
ऊचुस्ते विविधा वाचो मनःश्रोत्रसुखावहाः॥९६॥
सह्यं भवतु तेजस्ते भूतानां भूतभावन। ततो हाहाहूहूश्चैव नारदस्तुम्बुरुस्तथा॥९७॥

उस समय अग्नि आदि प्रमुख देवता प्रसन्न चित्त से सूर्य का स्तव करते कहने लगे—"हे नाथ! आप मोक्ष मार्ग पर चलने वालों के लिये मोक्ष, ध्यान परायण योगीगण के लिये परम ध्येय तथा कर्मकाण्ड तत्पर प्राणीगण हेतु गति हैं। हे देवेश, जगत्पति! आप सभी के पूजनीय हैं। आपकी कृपा से हमारा मंगल हो। हमारे द्विपदों तथा चतुष्पदों का सदा मंगल हो।" तभी विद्याधर-यक्ष-राक्षस-पन्नगगण हाथ जोड़ कर आये तथा उन्होंने शिर झुका कर कान को तथा मन को सुखी करने वाले अनेक वाक्य कहे। यथा—"हे भूतभावन! आपका तेज प्राणीगण को सहनीय हो।" तभी हाहा, हूहू, नारद, तुम्बुरु आये।।९३-९७।।

उपगायितुमारब्धा गान्धर्व्वकुशला रविम्। षड्जमध्यमगान्धारगानत्रयविशारदाः॥९८॥
मूर्च्छनाभिश्च तालैश्च सम्प्रयोगैः सुखप्रदम्।
विश्वाची च घृताची च उर्व्वश्यथ तिलोत्तमा॥९९॥
मेनका सहजन्या च रम्भा चाप्सरसांवरा। ननृतुर्जगतामीशे लिख्यमाने विभावसौ॥१००॥
भावहासविलासाद्यान् कुर्व्वत्योऽभिनयान्बहून्।
प्रावाद्यन्त ततस्तत्र वीणा वेण्वादिझर्झराः॥१०१॥
पणवाः पुष्कराश्चैव मृदङ्गाः पटहानकाः। देवदुन्दुभयः शङ्खाः शतशोऽथ सहस्रशः॥१०२॥
गायद्भिश्चैव नृत्यद्भिर्गन्धर्व्वैरप्सरोगणैः। तूर्य्यवादित्रघोषैश्च सर्व्वं कोलाहलीकृतम्॥१०३॥
ततः कृताञ्जलिपुटा भक्तिनम्रात्ममूर्त्तयः। लिख्यमानं सहस्रांशुं प्रणेमुः सर्व्वदेवताः॥१०४॥
ततः कोलाहले तस्मिन् सर्व्वदेवसमागमे। तेजसः शातनं चक्रे विश्वकर्म्मा शनैः शनैः॥१०५॥

वे गान्धर्वविद्या पारदर्शी लोग मूर्च्छना, ताल तथा सुन्दर स्वर के प्रयोग द्वारा मधुर भाव से रवि के यश

का गान कर रहे थे। जगत्पति दिवाकर को जब ख़राद यन्त्र पर चढ़ाया गया था, तब विश्वाची, घृताची, मेनका, सहजन्या तथा रम्भा आदि प्रधान अप्सरायें हाव, भाव तथा विलासादि के साथ अपने अभिनय से नृत्य करने लगीं। तब सैकड़ों, हजारों वेणु-वीणा के झंकार, पणव, पुष्कर, मृदंग, पटह, आनक, देवदुन्दुभि तथा शंख आदि वाद्य बजाये गये। उस समय नृत्य-गीत-परायण गन्धर्व तथा अप्सराओं के तथा तुरही आदि वादित्र निर्घोष द्वारा सभी स्थान कोलाहलमय हो उठा। तदनन्तर समग्र देवसमाज भक्तिभाव से नत होकर तथा हाथ जोड़कर सहस्रांशु का स्तव जप करने लगा। निखिल देवगण के समागम जनित इस भीषण कोलाहल में विश्वकर्मा, क्रमशः सूर्य को शान मशीन पर क्रमशः छीलने, काटने लगे।।९८-१०५।।

आजानुलिखितश्चासौ निपुणं विश्वकर्म्मणा। नाभ्यनन्दत्तु लिखनं ततस्तेनावतारितः।।१०६।।
न तु निर्भर्त्सितं रूपं तेजसो हननेन तु। कान्तात्कान्ततरं रूपमधिकं शुशुभे ततः।।१०७।।
इति हिमजलघर्म्मकालहेतोर्हरकमलासनविष्णुसंस्तुतस्य।
तदुपरि लिखनं निशम्य भानोर्व्रजति दिवाकरलोकमायुषोऽन्ते।।१०८।।
एवं जन्म रवेः पूर्व्वं बभूव मुनिसत्तमाः। रूपञ्च परमं तस्य मया सम्परिकीर्त्तितम्।।१०९।।

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे मार्त्तण्डजन्मशरीरलिखनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः।।३२।।



उन्होंने विशेष निपुणता के साथ सूर्य को जांघों तक खरादा। यद्यपि इस छिलाई को सूर्य ने रुचिकर नहीं माना। विश्वकर्मा ने उनके सभी अंगों के तेज को क्षीण कर दिया। तेज को खरादने पर भी सूर्य के रूप में कोई कमी नहीं आई। उनका रूप तो अब और भी अत्यन्त कमनीय होकर शोभायमान होने लगा। तब हरि-हर-ब्रह्मा उनका स्तव करने लगे, जो शीत, ग्रीष्म तथा सभी क़ाल के हेतुभूत भानुदेव के इस तेज खरादे जाने के प्रसंग को सुनते हैं, देहान्त होने पर वे दिवाकर लोक जाते हैं। हे मुनिप्रवरगण! पूर्व में सूर्य के जन्म प्रसंग तथा परम रूप प्राप्ति के प्रसंग को मैंने कह दिया।।१०६-१०९।।

।।द्वात्रिंश अध्याय समाप्त।।



अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

अंधकाराच्छन्न ब्रह्मादि द्वारा सूर्यस्तव, उनको सूर्य द्वारा वरप्रदान, सूर्य के १०८ नामों का वर्णन

मुनय ऊचुः

भूयोऽपि कथयास्माकं कथां सूर्य्यसमाश्रिताम्।
न तृप्तिमधिगच्छामः शृण्वन्तस्तां कथां शुभाम्॥१॥
योऽयं दीप्तो महातेजा वह्निराशिसमप्रभः। एतद्वेदितुमिच्छामः प्रभावोऽस्य कुतः प्रभो॥२॥

मुनिगण कहते हैं—हे ब्रह्मन्! आप अब पुनः हमसे सूर्यविषयक कथा कहिये। हम इस शुभ कथा को सुन कर तृप्त नहीं हो रहे हैं। हे प्रभो! इन सूर्य ने अग्निपुंजवत् महातेज दीप्ति लाभ किया है। उसका प्रभाव क्या है, यह हम जानना चाहते हैं।।१-२।।

ब्रह्मोवाच

तमोभूतेषु लोकेषु नष्टे स्थावरजङ्गमे। प्रकृतेर्गुणहेतुस्तु पूर्व्वं बुद्धिरजायत॥३॥
अहङ्कारस्ततो जातो महाभूतप्रवर्त्तकः। वाय्वग्निरापः खं भूमिस्ततस्त्वण्डमजायत॥४॥
तस्मिन्नण्डे त्विमे लोकाः सप्त चैव प्रतिष्ठिताः।
पृथिवी सप्तभिर्द्वीपैः समुद्रैश्चैव सप्तभिः॥५॥
तत्रैवावस्थितो ह्यासीदहं विष्णुर्महेश्वरः। विमूढास्तामसाः सर्व्वे प्रध्यायन्ति तमीश्वरम्॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—जब समस्त जगत् तम द्वारा ढंका था, स्थावर-जंगम विध्वस्त हो गये थे, तब प्रकृति से सर्वप्रथम गुण की हेतुभूत बुद्धि की उत्पत्ति हुई थी। बुद्धि से महाभूत प्रवर्त्तक अहंकार, तब वायु, अग्नि, जल, आकाश तथा भूमि का, तदनन्तर अण्ड का आविर्भाव हो गया। यह अण्ड ऐसा है, जिसमें सातों लोक स्थित हैं। इसी में सातों द्वीप तथा सातों सागर से घिरी पृथिवी स्थापित है। मैं, विष्णु, महेश इसी अण्ड में थे। तमः से घिरे विमूढ़ता युक्त लोग (हम लोग) तब ईश्वर आराधना करने लगे।।३-६।।

ततो वै सुमहातेजाः प्रादुर्भूतस्तमोनुदः। ध्यानयोगेन चास्माभिर्विज्ञातं सविता तदा॥७॥
ज्ञात्वा च परमात्मानं सर्व एव पृथक् पृथक्।
दिव्याभिः स्तुतिभिर्देवः स्तुतोऽऽस्माभिस्तदेश्वरः॥८॥

तदनन्तर महातेजवान् सूर्य प्रकट हो गये थे। हमने ध्यानयोग से जाना कि ये सविता हैं तथा सभी उनको परमात्मरूप जानकर दिव्य-दिव्य स्तोत्र से उनका स्तव करने लगे।।७-८।।

आदिदेवोऽसि देवानामैश्वर्य्याच्च त्वमीश्वरः।
आदिकर्त्ताऽसि भूतानां देवदेवो दिवाकरः॥९॥

जीवनः सर्व्वभूतानां देवगन्धर्व्वरक्षसाम्। मुनिकिन्नरसिद्धानां तथैवोरगपक्षिणाम्॥१०॥

हमने कहा—हे देव! आप देवगण के आदिदेव हैं। ऐश्वर्य के कारण आप ईश्वर हैं। आप प्राणी समूह के आदिकर्त्ता हैं। आप ही देवदेव, दिवाकर हैं। आप सर्वभूत, देव, गन्धर्व, राक्षस, मुनि, किन्नर, सिद्ध तथा पक्षीगण के जीवन हैं।।९-१०।।

त्वं ब्रह्मा त्वं महादेवस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः।
वायुरिन्द्रश्च सोमश्च विवश्वान्वरुणस्तथा॥११॥
त्वं कालः सृष्टिकर्त्ता च हर्त्ता भर्त्ता तथा प्रभुः।
सरितः सागराः शैला विद्युदिन्द्रधनूंषि च॥१२॥

प्रलयः प्रभवश्चैव व्यक्ताव्यक्तः सनातनः। ईश्वरात्परतो विद्या विद्यायाः परतः शिवः॥१३॥
शिवात्परतरो देवस्त्वमेव परमेश्वरः। सर्व्वतः पाणिपादान्तः सर्व्वतोक्षिशिरोमुखः॥१४॥

आप ब्रह्मा, महादेव, प्रजापति, विष्णु, वायु, इन्द्र, सोम, विवस्वान्, वरुण, काल, सृष्टिकर्त्ता, हर्त्ता, भर्त्ता, प्रभु, सरित्, सागर, शैल, विद्युत्, इन्द्रधनुष, प्रलय, प्रभव, व्यक्त-अव्यक्त, सनातन आदि नामों वाले हैं। आप ही इन रूपों में विराजित रहते हैं। ईश्वर से परे विद्या, विद्या से परे शिव एवं शिव से परे परमेश्वर देव भी आप ही हैं। आपके हाथ-पैर, आंखें, शिर तथा मुख सभी दिशाओं में हैं।।११-१४।।

सहस्रांशुः सहस्रास्यः सहस्रचरणेक्षणः। भूतादिर्भूर्भुवः स्वश्च महः सत्यं तपो जनः॥१५॥
प्रदीप्तं दीपनं दिव्यं सर्वलोकप्रकाशकम्। दुर्निरीक्षं सुरेन्द्राणां यद्रूपं तस्य ते नमः॥१६॥
सुरसिद्धगणैर्जुष्टं भृग्वत्रिपुलहादिभिः। स्तुतं परममव्यक्तं यद्रूपं तस्य ते नमः॥१७॥

आप सहस्रांशु, सहस्र मुख वाले, हजारों चरणों वाले तथा सहस्रदर्शन हैं। आप भूतसमूह के भी आदि तथा भू, भुवः, स्वः, मह, जन, तप तथा सत्यलोक भी आप ही हैं। आपका जो सर्वलोक प्रकाशक दिव्य-दीप्त रूप है, उसे सुरेन्द्र भी कठिनाई से देखते हैं। उस रूप को हम प्रणाम करते हैं! जिनकी सेवा देवता तथा सिद्ध करते हैं, भृगु-अत्रि तथा पुलह आदि जिनका सदा स्तव करते हैं, आपके उस अव्यक्त रूप को नमस्कार!।।१५-१७।।

वेद्यं वेदविदां नित्यं सर्वज्ञानसमन्वितम्। सर्वदेवातिदेवस्य यद्रूपं तस्य ते नमः॥१८॥
विश्वकृद्विश्वभूतं च वैश्वानरसुरार्च्चितम्। विश्वस्थितमचिन्त्यं च यद्रूपं तस्य ते नमः॥१९॥

परं यज्ञात् परं वेदात् परं लोकात् परं दिवः।
परमात्मेत्यभिख्यातं यद्रूपं तस्य ते नमः॥२०॥

अविज्ञेयमनालक्ष्यमध्यानगतमव्ययम्। अनादिनिधनं चैव यद्रूपं तस्य ते नमः॥२१॥

जो वेदज्ञों के लिये नित्य वेद्य हैं, जो सर्व ज्ञानमय रूप हैं, उस रूप को नमस्कार! जो विश्वकृत, विश्वभूत, अग्निदेव से अर्चित हैं, जो विश्वस्थित एवं अचिन्त्य हैं, जो वेद, यज्ञ, लोक तथा स्वर्ग से भी परात्पर हैं, जो परमात्मा नाम से कहा जाता है, जो रूप अविज्ञेय, अनालक्ष्य, अवद्य तथा अव्यय है, जिसका आदि-अन्त नहीं है, आपके ऐसे रूप को हम नमस्कार करते हैं!।।१८-२१।।

नमो नमः कारणकारणाय, नमो नमः पापविमोचनाय।
नमो नमस्ते दितिजार्दनाय, नमो नमो रोगविमोचनाय॥२२॥
नमो नमः सर्व्ववरप्रदाय, नमो नमः सर्व्वसुखप्रदाय।
नमो नमः सर्वधनप्रदाय, नमो नमः सर्व्वमतिप्रदाय॥२३॥

आप सर्व कारण के कारण, सर्वपाप विमोचन, रोगविमोचन तथा दैत्यनाशक हैं। आप सर्वप्रद, सर्व सुखप्रद, सर्वधनप्रद, सर्वमतिप्रद हैं। आपको पुनः-पुनः नमस्कार!।।२२-२३।।

स्तुतः स भगवानेवं तैजसं रूपमास्थितः।
उवाच वाचा कल्याण्या को वरो वः प्रदीयताम्॥२४॥

एवंविध स्तुत होकर भगवान् सूर्य ने तैजसरूपी होकर कल्याणपूर्ण वाणी में कहा—"मैं क्या वर प्रदान करूं?"।।२४।।

देवा ऊचुः

तवातितैजसं रूपं न कश्चित्सोढुमुत्सहेत्। सहनीयं तद्भवतु हिताय जगतः प्रभो॥२५॥
एवमस्त्विति सोऽप्युक्त्वा भगवानादिकृत् प्रभुः। लोकानां कार्यसिद्ध्यर्थं घर्म्मवर्षहिमप्रदः॥२६॥

देवता कहते हैं—"हे प्रभो! आपके अत्युज्ज्वल रूप को कोई भी सहन नहीं कर सकता। अतः जगत् के हितार्थ आपका रूप सबके सहन करने योग्य हो जाये।" तब भगवान् आदिकर्त्ता सूर्य 'तथास्तु' कहकर जगत् को हिम, वर्षा तथा धूप प्रदान करने लगे।।२५-२६।।

ततः सांख्याश्च योगाश्च ये चान्ये मोक्षकाङ्क्षिणः।
ध्यायन्ति ध्यायिनो देवं हृदयस्थं दिवाकरम्॥२७॥
सर्वलक्षणहीनोऽपि युक्तो वा सर्व्वपातकैः। सर्व्वञ्च तरते पापं देवमर्कं समाश्रितः॥२८॥
अग्निहोत्रञ्च वेदाश्च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः।
भानोर्भक्तिनमस्कारकलां नार्हन्ति षोडशीम्॥२९॥
तीर्थानां परमं तीर्थं मङ्गलानाञ्च मङ्गलम्। पवित्रञ्च पवित्राणाम् प्रपद्यन्ते दिवाकरम्॥३०॥
शक्राद्यैः संस्तुतं देवं ये नमस्यन्ति भास्करम्।
सर्वकिल्विषनिर्म्मुक्ताः सूर्य्यलोकं व्रजन्ति ते॥३१॥

इस प्रकार से सांख्यमतवादी, योगमार्गावलम्बी तथा ध्याननिष्ठ लोग दिवाकर देव का हृदय में ध्यान करते हैं। व्यक्ति भले ही सर्वलक्षण रहित हो तथा सभी पापों से युक्त हो, दिवाकर की शरण लेने वाला सर्वपाप विनिर्मुक्त हो जाता है। अग्निहोत्र, वेदाभ्यास, बहुत दक्षिणायुक्त यज्ञ का जो फल है, सूर्य भक्ति की तुलना में वह १/१६ भाग भी नहीं है। जो इन्द्रादि देवों द्वारा वन्दनीय सूर्य की शरण लेते हैं अथवा उनको प्रणाम करते हैं, उनको परम तीर्थ सेवा, परम मंगल सेवा तथा परम पवित्रता स्वयमेव प्राप्त हो जाती है। वे सर्वपाप विनिर्मुक्त होकर सौरलोक जाते हैं।।२७-३१।।

मुनय ऊचुः

चिरात्प्रभृति नो ब्रह्मन् श्रोतुमिच्छा प्रवर्त्तते।
नाम्नामष्टशतं ब्रूहि यत्त्वयोक्तं पुरा रवेः॥३२॥

मुनिगण कहते हैं—हे ब्रह्मन्! बहुत दिनों से हम यह सुनना चाहते हैं कि आपने पहले १०८ सूर्य के नामों को कहा था। उसे कहिये॥३२॥

ब्रह्मोवाच

अष्टोत्तरशतं नाम्नां शृणुध्वं गदतो मम। भास्करस्य परं गुह्यं स्वर्गमोक्षप्रदं द्विजाः॥३३॥

ॐ सूर्योऽर्य्यमा भगस्त्वष्टा पूषाऽर्कः सविता रविः।
गभस्तिमानजः कालो मृत्युर्धाता प्रभाकरः॥३४॥
पृथिव्यापश्च तेजश्च खं वायुश्च परायणम्।
सोमो बृहस्पतिः शुक्रो बुधोऽङ्गारक एव च॥३५॥
इन्द्रो विवस्वान्दीप्तांशुः शुचिः शौरिः शनैश्चरः।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कन्दो वैश्रवणो यमः॥३६॥

वैद्युतो जाठरश्चाग्निरैन्धनस्तेजसां पतिः। धर्म्मध्वजो वेदकर्त्ता वेदाङ्गो वेदवाहनः॥३७॥
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिः सर्वामराश्रयः। कलाकाष्ठामुहूर्त्ताश्च क्षपा यामास्तथा क्षणाः॥३८॥
संवत्सरकरोऽश्वत्थः कालचक्रो विभावसुः। पुरुषः शाश्वतो योगी व्यक्ताव्यक्तः सनातनः॥३९॥
कालाध्यक्षः प्रजाध्यक्षो विश्वकर्म्मा तमोनुदः। वरुणः सागरोंऽशश्च जीमूतो जीवनोऽरिहा॥४०॥

भूताश्रयो भूतपतिः सर्व्वलोकनमस्कृतः।
स्त्रष्टा संवर्त्तको वह्निः सर्व्वस्याऽऽदिरलोलुपः॥४१॥
अनन्तः कपिलो भानुः कामदः सर्वतोमुखः।
जयो विशालो वरदः सर्व्वभूतनिषेवितः॥४२॥

मनः सुपर्णो भूतादिः शीघ्रगः प्राणधारणः। धन्वन्तरिर्धूमकेतुरादिदेवोऽदितेः सुतः॥४३॥
द्वादशात्मा रविर्दक्षः पिता माता पितामहः। स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम्॥४४॥

देहकर्त्ता प्रशान्तात्मा विश्वात्मा विश्वतोमुखः।
चराचरात्मा सूक्ष्मात्मा मैत्रेयः करुणान्वितः॥४५॥

ब्रह्मा कहते हैं—मैं १०८ नाम कहता हूं। हे द्विजगण! उसे सुनिये। ये सभी नाम परम गोपनीय तथा स्वर्ग तथा मोक्ष देने वाले हैं।

ओं सूर्य, अर्यमा, भग, त्वष्टा, पूषा, अर्क, सविता, रवि, गभस्तिमान्, अज, काल, मृत्यु, धाता, प्रभाकर, पृथिवी, आप, तेज, आकाश, वायु, परायण, सोम, बृहस्पति, शुक्र, बुध, अङ्गारक, इन्द्र, विवस्वान्,

दीप्तांशु, शुचि, शौरि, शनैश्चर, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, स्कन्द, वैश्रवण, यम, वैद्युत, जाठर, अग्नि, ऐन्धन, तेजस्पति, धर्मध्वज, वेदकर्ता, वेदांग, वेदवाहन, कृत, त्रेता, द्वापर, कलि, सर्वअमराश्रय, कला, काष्ठा, मुहूर्त, क्षपा, याम, क्षण, संवत्सरकर, अश्वत्थ, कालचक्र, विभावसु, पुरुष, शाश्वत, योगी, व्यक्ताव्यक्त, सनातन, कालाध्यक्ष, प्रजाध्यक्ष, विश्वकर्मा, तमोनुद, वरुण, सागर, अंश, जीमूत, जीवन, अरिहन्, भूताश्रय, भूतपति, सर्वलोकनमस्कृत, स्रष्टा, संवर्तक, वह्नि, सर्वस्यादि, अलोलुप, अनन्त, कपिल, भानु, कामद, सर्वतोमुख जय, विशाल, वरद, सर्वभूत सेवित, मन, सुपर्ण, भूतादि, शीघ्रग, प्राणधारण, धन्वन्तरि, धूमकेतु, आदिदेव, अदितिसुत, द्वादशात्मा, रवि, दक्ष, पिता, माता, पितामह, स्वर्गद्वार, प्रजाद्वार, मोक्षद्वार, त्रिविष्टप, देहकर्ता, प्रशान्तात्मा, विश्वात्मा, विश्वतोमुख, चराचरात्मा, सूक्ष्मात्मा, मैत्रेय और करुणान्वित।।३३-४५।।

एतद्वै कीर्त्तनीयस्य सूर्य्यस्यामिततेजसः। नाम्नामष्टशतं रम्यं मया प्रोक्तं द्विजोत्तमाः॥४६॥

सुरगणपितृयक्षसेवितं, ह्यसुरनिशाकरसिद्धवन्दितम्।
वरकनकहुताशनप्रभं, प्रणिपतितोऽस्मि हिताय भास्करम्॥४७॥
सूर्योदये यः सुसमाहितः पठेत् , स पुत्रदारान् धनरत्नसञ्चयान्।
लभेते जातिस्मरतां नरः स तु, स्मृतिञ्च मेधाञ्च स विन्दते पराम्॥४८॥
इमं स्तवं देववरस्य यो नरः, प्रकीर्त्तयेच्छुद्धमनाः समाहितः।
विमुच्यते शोकदवाग्निसागराल्लभेत कामान्मनसा यथेप्सितान्॥४९॥

इति श्री आदिब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भ्वृषिसंवादे सूर्य्यनामाष्टोत्तरशतं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः।।३३।।



हे द्विजप्रवरगण! अमित तेजस्वी सूर्य के ये १०८ रमणीक नाम मैंने कहा—जो देवता, पितर तथा यक्षों से सेवित, असुर-निशाचर-सिद्ध जिनकी वन्दना करते हैं, वे प्रखर, तप्त स्वर्ण तथा अग्नि के समान सूर्य हैं। जगत् के हितार्थ मैं उनको प्रणाम करता हूं! जो समाहित होकर सूर्यदेव के इन १०८ नामों का पाठ करेगा, वह पुत्र, स्त्री, धन, रत्न, पूर्वजन्मस्मृति, परममेधा लाभ करेगा। देवदेव दिवाकर का यह स्तव जो मनुष्य शुद्ध चित्त से समाहित होकर पाठ करेगा, वह शोकरूप दावाग्निमय संसार-सागर से मुक्त होकर सभी कामनाओं को प्राप्त करेगा।।४६-४९।।

।।त्रयस्त्रिंश अध्याय समाप्त।।



अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

रुद्र महिमा वर्णन, दक्ष तथा सती की वार्त्ता, सती का देहत्याग, पार्वती आख्यान वर्णन

ब्रह्मोवाच

योऽसौ सर्व्वगतो देवस्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः। उमाप्रियकरो रुद्रश्चन्द्रार्द्धकृतशेखरः॥१॥
विद्राव्य विबुधान् सर्व्वान् सिद्धविद्याधरानृषीन्।
गन्धर्व्वयक्षनागांश्च तथान्यांश्च समागतान्॥२॥
जघान पूर्व्वं दक्षस्य यजतो धरणीतले। यज्ञं समृद्धं रत्नाढ्यं सर्व्वसम्भारसंभृतम्॥३॥
यस्य प्रतापसंत्रस्ताः शक्राद्यास्त्रिदिवौकसः।
शान्तिं न लेभिरे विप्राः कैलासं शरणं गताः॥४॥
स आस्ते तत्र वरदः शूलपाणिर्वृषध्वजः। पिनाकपाणिर्भगवान् दक्षयज्ञविनाशनः॥५॥
महादेवोऽकले देशे कृत्तिवासा वृषध्वजः। एकाम्रके मुनिश्रेष्ठाः सर्व्वकामप्रदो हरः॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे मुनिप्रवरवृन्द! जो सर्वव्यापी, देवदेव, त्रिपुरारि, त्रिलोचन, उमापति, चन्द्रमौलि, रुद्र हैं, जिनके भय से दक्षयज्ञ में आये देवता, सिद्ध, विद्याधर, ऋषि, गन्धर्व, यक्ष, नाग आदि पूर्वकाल में भाग गये थे, जिन्होंने सर्वसंभार से भरे, सर्वरत्न समृद्ध दक्षयज्ञ का ध्वंस किया था, जिनके प्रताप से सन्तप्त हो गये इन्द्रादि देवता कभी भी शान्तिलाभ नहीं कर सके थे तथा सभी ने कैलास शिखर जाकर जिनकी शरण लिया था, वे वरप्रदाता, पिनाकपाणि, शूलधारी, दक्षयज्ञ विध्वंसक भगवान् वृषध्वज उत्कलदेशस्थ एकाम्रवन में सर्वकामना प्रदाता होकर अवस्थित हैं।।१-६।।

मुनय ऊचुः

किमर्थं स भवो देवः सर्वभूतहिते रतः। जघान यज्ञं दक्षस्य देवैः सर्वैरलङ्कृतम्॥७॥
न ह्यल्पं कारणं तत्र प्रभो मन्यामहे वयम्।
श्रोतुमिच्छामहे ब्रूहि परं कौतूहलं हि नः॥८॥

मुनिगण कहते हैं—हे देव! किस कारण से उन सर्वभूत हितकारी भवदेव ने उस सर्वदेवमय सुसमृद्ध दक्षयज्ञ का ध्वंस किया था? हे प्रभो! हमें लगता है कि इस प्रकार का कार्य कभी भी उन्होंने अल्प कारण से नहीं किया होगा। अतएव हमें यह सुनने की अत्यधिक इच्छा है। आप विस्तार से कहिये।।७-८।।

ब्रह्मोवाच

दक्षस्याऽऽसन्नष्ट कन्या याश्चैवं पतिसङ्गताः।
स्वेभ्यो गृहेभ्यश्चाऽऽनीय ताः पिताऽभ्यर्च्चयद्गृहे॥९॥

ततस्त्वभ्यर्च्चिता विप्रा न्यवसंस्ताः पितुगृहे।
तासां ज्येष्ठा सती नाम पत्नी या त्र्यम्बकस्य वै॥१०॥
नाऽऽजुहावाऽऽत्मजां तां वै दक्षो रुद्रमभिद्विषन्।
अकरोत्सन्नतिं दक्षे न च काञ्चिन्महेश्वरः॥११॥
जामाता श्वशुरे तस्मिन् स्वभावात्तेजसि स्थितः।
ततो ज्ञात्वा सती सर्वास्तास्तु प्राप्ताः पितुर्गृहम्॥१२॥
जगाम साऽप्यनाहूता सती तु स्वपितुर्गृहम्।
ताभ्यो हीनां पिता चक्रे सत्याः पूजामसम्मताम्।
ततोऽब्रवीत्सा पितरं देवी क्रोधसमाकुला॥१३॥

ब्रह्मा कहते हैं—दक्ष प्रजापति की आठ विवाहित कन्यायें थीं। वे पतियों के साथ यज्ञ में आई थीं। एक बार यज्ञ के उपलक्ष्य में दक्ष इन सभी कन्याओं को पतिगृह से अपने गृह लाये तथा उनको भोजन, पेय, आच्छदनादि से सम्मानित किया। वे कन्या प्रसन्न होकर पितृगृह में रुक गयीं। उनमें सबसे बड़ी थी सती। वे प्रभु त्र्यम्बक की पत्नी थीं। दक्ष रुद्र से द्वेष करते थे। उन्होंने इसी कारण सती को नहीं बुलाया। शिव इससे क्षुब्ध नहीं थे। अतः तेजस्वी स्वभाव होकर भी शिव अपने ही स्वभाव में स्थित (तटस्थ) थे। सती यज्ञ का संवाद पाकर बिना बुलाये पितृगृह आ गयीं। लेकिन दक्ष ने अन्य कन्याओं की अपेक्षा हीन भाव तथा अश्रद्धा के साथ सती का सत्कार किया। यह देख कर सती क्रोधित हो गयीं। उन्होंने पिता से कहा—॥९-१३॥

सत्युवाच

यवीयसीभ्यः श्रेष्ठाऽहं किं न पूजसि मां प्रभो।
असत्कृतामवस्थां यः कृतवानसि गर्हिताम्।
अहं ज्येष्ठा वरिष्ठा च मां त्वं सत्कर्त्तुमर्हसि॥१४॥

सती कहती हैं—हे प्रभो! मैं अपनी बहनों से उम्र में ज्येष्ठ तथा श्रेष्ठ हूं। आपने क्यों मेरा यथायोग्य आदर नहीं किया। प्रत्युत मैं तो आपके यहां अत्यन्त गर्हित भाव से स्वयं को असत्कृत मान रही हूं। मैं पुनः कहती हूं कि मैं ज्येष्ठ, वरिष्ठ हूं। आप मेरा सत्कार करें॥१४॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्तोऽब्रवदेनां दक्षः संरक्तलोचनः॥१५॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर दक्ष के नेत्र क्रोध से लाल हो गये॥१५॥

दक्ष उवाच

त्वत्तः श्रेष्ठा वरिष्ठाश्च पूज्या बालाः सुता मम।
तासां ये चैव भर्त्तास्ते मे बहुमताः सति॥१६॥

ब्रह्मिष्ठाश्च व्रतस्थाश्च महायोगाः सुधार्म्मिका।
गुणैश्चैवाधिकाःश्लाघ्याःसर्व्वे ते त्र्यम्बकात् सति॥१७॥
वसिष्ठोऽत्रिः पुलस्त्यश्च अङ्गिराः पुलहः क्रतुः।
भृगुर्मरीचिश्च तथा श्रेष्ठा जामातरो मम॥१८॥
तैश्चापि स्पर्द्धते शर्व्वः सर्व्वे ते चैव तं प्रति।
तेन त्वां न बुभुषामि प्रतिकूलो हि मे भवः॥१९॥
इत्युक्तवांस्तदा दक्षः सम्प्रमूढेन चेतसा। शापार्थमात्मनश्चैव येनोक्ता वै महर्षयः।
तथोक्ता पितरं सा वै क्रुद्धा देवी तमब्रवीत्॥२०॥

दक्ष कहते हैं—"मेरी अन्य कन्या तुमसे श्रेष्ठ, वरिष्ठ तथा पूज्य हैं। हे सती! जिन्होंने मेरी इन कन्याओं से विवाह किया है, वे भी मेरे लिये अत्यन्त सम्माननीय हैं। वे तुम्हारे पति त्र्यम्बक की तुलना में अधिक ब्रह्मनिष्ठ तथा आदर योग्य हैं। वसिष्ठ, अत्रि, पुलत्स्य, अंगिरा, पुलह, क्रतु, भृगु तथा मरीचि ये सात मेरे जामाता हैं। तुम्हारा पति शर्व सदैव उन सात से स्पर्धा करता है। वे सातों भी शर्व से स्पर्द्धा करते रहते हैं। इसीलिये मैं तुम्हारे ऊपर श्रद्धा नहीं करता। वह शर्व (महादेव) तो मेरा शत्रु है। तभी मैंने तुम्हारा सम्मान नहीं किया।" दक्ष ने इस प्रकार अपनी मूढ़ चित्तता के कारण स्वयं को मानों अभिशप्त कराने के लिये बिना विचारे सती से यह सब कहा था। यह सुन कर सती दुःख से तथा अमर्ष से भर गईं। उन्होंने कहना प्रारम्भ किया।।१६-२०।।

सत्युवाच

वाङ्मनःकर्म्मभिर्यस्माददुष्टां मां विगर्हसि।
तस्मात्त्यजाम्यहं देहं मम तात तवाऽऽत्जम्॥२१॥

सती कहती हैं—हे तात! मैं मन-वाणी-कर्म से अद्रुष्ट हूं, तथापि आपने मुझसे ऐसे कटु वाक्य कहे। अतः आपसे उत्पन्न यह देह मैं अब त्याग करूंगी।।२१।।

ब्रह्मोवाच

ततस्तेनापमानेन सती दुःखादमर्षिता। अब्रवीद्वचनं देवी नमस्कृत्य स्वयम्भुवम्॥२२॥

ब्रह्मा कहते हैं—इस अपमान से सती दुःखी होकर अमर्ष में भर गईं। उन्होंने स्वयम्भु देव को नमस्कार करके कहा—।।२२।।

सत्युवाच

येनाहमपदेहा वै पुनर्देहेन भास्वता। तत्राप्यहमसम्मूढा सम्भूता धार्म्मिकी पुनः।
गच्छेयं धर्म्मपत्नीत्वं त्र्यम्बकस्यैव धीमतः॥२३॥

सती कहती हैं—मैं यह देह त्याग करके पुनः उज्ज्वल देह धारण करके धार्मिक एवं असम्मूढ़ होकर जन्म लूंगी तथा पुनः मैं धीमान् त्र्यम्बकदेव का धर्मपत्नित्व प्राप्त करूंगी।।२३।।

ब्रह्मोवाच

तत्रैवाथ समासीना रुष्टाऽऽत्मानं समादधे।
धारयामास चाऽऽग्नेयीं धारणामात्मनाऽऽत्मनि॥२४॥
ततः स्वात्मानमुत्थाप्य वायुना समुदीरितः।
सर्व्वाङ्गेभ्यो विनिःसृत्य वह्निर्भस्म चकार ताम्॥२५॥

ब्रह्मा कहते हैं—सती यह कहने के पश्चात् रोषान्वित स्थिति में वहीं बैठीं तथा अपने आपको समाधिमग्न किया। उन्होंने आत्मा द्वारा आत्मा में आग्नेयी धारणा का अवलम्बन किया। तत्पश्चात् वायु समुद्दीप्त अग्नि ने उनके सर्वाङ्ग से निकल कर सती का देह भस्म कर दिया।।२४-२५।।

तदुपश्रुत्य निधनं सत्या देव्याः स शूलधृक्।
संवादञ्च तयोर्बुद्ध्वा याथातथ्येन शङ्कर।
दक्षस्य च विनाशाय चुकोप भगवान् प्रभुः॥२६॥

इधर भगवान् शूलपाणि को सती का यह दारुण निधन संवाद मिला। उनको जब सती तथा दक्ष के संवाद यथायथ रूप से ज्ञात हुये तब भगवान् शिव दक्ष के विनाशार्थ क्रोधित हो उठे।।२६।।

श्रीशङ्कर उवाच

यस्मादवमता दक्ष सहसैवाऽऽगता सती।
प्रशस्ताश्चेतराः सर्व्वास्त्वत्सुता भर्त्तृभिः सह॥२७॥
तस्माद्वैवस्वते प्राप्ते पुनरेते महर्षयः। उत्पत्स्यन्ति द्वितीये वै तव यज्ञे ह्ययोनिजाः॥२८॥
हुते वै ब्रह्मणः सत्रे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः।
अभिव्याहृत्य सप्तर्षीन् दक्षं सोऽभ्यशपत् पुनः॥२९॥
भविता मानुषो राजा चाक्षुषस्यान्तरे मनोः।
प्राचीनबर्हिषः पौत्रः पुत्रश्चापि प्रचेतसः॥३०॥
इक्ष इत्येव नाम्ना त्वं मारिषायां जनिष्यसि।
कन्यायां शाखिनाञ्चैव प्राप्ते वै चाक्षुषान्तरे॥३१॥
अहं तत्रापि ते विघ्नमाचरिष्यामि दुर्म्मते। धर्म्मकामार्थयुक्तेषु कर्म्मस्विह पुनः पुनः॥३२॥
ततो वै व्याहृतो दक्षो रुद्रं सोऽभ्यशपत् पुनः॥३३॥

भगवान् श्री शंकर कहते हैं—"हे दक्ष! सती यहां जब स्वयं आई थीं, तब तुमने उनका अपमान किया। तुम्हारी अन्य सभी पुत्रियां अपने-अपने पति के साथ यहां आकर तुम्हारे द्वारा सम्मानित की गयीं। इस कार्यवशात् वैवस्वत मनु के अधिकार-काल में ये सभी जामाता महर्षि तुम्हारे यज्ञ में अयोनिज उत्पन्न होंगे, ब्रह्मा के यज्ञ में ये लोग चाक्षुष मन्वन्तर में पुनः जन्म लेंगे। चाक्षुष मनु के राज्य में तुम मनुष्य नृपति होकर जन्म लोगे। प्राचीनबर्हिष के पौत्र तथा प्रचेतागण के पुत्र होकर वृक्ष की पुत्री मारिषा के गर्भ से दक्ष नाम से जन्म लोगे।

हे दुर्मति! तब भी तुम धर्म-कर्म हेतु जो कुछ अनुष्ठान करोगे, उन सबमें पुनः-पुनः विघ्न होगा।" यह सुनकर दक्ष ने भी रुद्रदेव को शाप दिया।।२७-३३।।

दक्ष उवाच

यस्मात्त्वं मत्कृते क्रूर ऋषीन् व्याहृतवानसि।
तस्मात् सार्द्धं सुरैर्यज्ञे न त्वां यक्ष्यन्ति वै द्विजाः॥३४॥
कृत्वाऽऽहुतिं तव क्रूर अपः स्पृशन्ति कर्म्मसु।
इहैव वत्स्यसे लोके दिवं हित्वाऽऽयुगक्षयात्।
ततो देवैस्तु ते सार्द्धं न तु पूजा भविष्यति॥३५॥

दक्ष कहते हैं—हे क्रूर! तुमने मेरे कृत कर्म के कारण ऋषियों से ऐसा कहा है (शाप दिया है), अतः इस कारण से ब्राह्मण लोग देवताओं की यज्ञ में अर्चना करते समय तुम्हारी अर्चना नहीं करेंगे। हे क्रूर! यज्ञकर्म में तुमको आहुति देने के उपरान्त होतृगण जल स्पर्श करेंगे। युगक्षय काल में तुम स्वर्ग त्याग कर इसी लोक में रहोगे। देवताओं के साथ कदापि तुम्हारा पूजन नहीं होगा!।।३४-३५।।

रुद्र उवाच

चातुर्व्वर्ण्यन्तु देवानां ते चाप्येकत्र भुञ्जते।
न भोक्ष्ये सहितस्तैस्तु ततो भोक्ष्याम्यहं पृथक्॥३६॥
सर्व्वेषाञ्चैव लोकानामादिर्भूर्लोक उच्यते।
तमहं धारयाम्येकः स्वेच्छया न तवाऽऽज्ञया॥३७॥
तस्मिन् धृते सर्व्व (स्वर्ग) लोकाः सर्व्वे तिष्ठन्ति शाश्वताः।
तस्मादहं वसामीह सततं न तवाज्ञया॥३८॥

रुद्र कहते हैं—देवताओं में चतुर्वर्ण संस्थान है। वे एक साथ भोजन करते हैं। मैं उनके साथ भोजन न करके पृथकूतः भोजन करूंगा। सभी लोकों में से भूर्लोक ही आदि लोक है। मैं अपनी इच्छा क्रम से इस लोक को धारण करता हूं। तुम्हारी आज्ञा से धारण नहीं करता। मेरे द्वारा इस लोक को धारण किये जाने के कारण सभी लोक इसी में अवस्थित रहते हैं। तभी मैं सर्वदा से इसी लोक में रहता हूं। तुम्हारी आज्ञा से नहीं रहता।।३६-३८।।

ब्रह्मोवाच

ततोऽभिव्याहृतो दक्षो रुद्रेणामिततेजसा। स्वायम्भुवीं तनुं त्यक्त्वा उत्पन्नो मानुषेष्विह॥३९॥
यदा गृहपतिर्दक्षो यज्ञानामीश्वरः प्रभुः। समस्तेनेह यज्ञेन सोऽयजद्दैवतैः सह॥४०॥
अथ देवी सती (यत्ते) जज्ञे प्राप्ते वैवस्वतेऽन्तरे।
मेनायां तामुमां देवीं जनयामास शैलराट्॥४१॥

सा तु देवी सती पूर्व्वमासीत् पश्चादुमाऽभवत्।
सहव्रता भवस्यैषा नैतया मुच्यते भवः॥४२॥
यावदिच्छति संस्थानं प्रभुर्मन्वन्तरेष्विह। मारीचं कश्यपं देवी यथाऽदितिरनुव्रता॥४३॥

ब्रह्मा कहते हैं—तदनन्तर अमित तेजवान् रुद्र के कथनानुरूप दक्ष ने स्वायम्भुव देह त्याग किया तथा वे मनुष्य योनि में जन्मे। गृहपति दक्ष जब समस्त यज्ञानुष्ठान करने के उपरान्त देवताओं के साथ यज्ञेश्वर प्रभु हरि की अर्चना करने लगे, तभी वैवस्वत मन्वन्तर उपस्थित होने पर देवी सती पर्वतराज हिमवान् की पत्नी मेनका के गर्भ से जन्मीं। पूर्व में जो सती नाम से विख्यात थीं, वे ही इस जन्म में उमा नाम से प्रख्यात हो गईं। सती भगवान् भव के साथ सर्वदा युक्त रहती हैं। प्रभु भव भी उनसे कभी अलग नहीं होते। वे जब तक इच्छा हो, सभी मन्वन्तरों में सती के साथ विराजित रहते हैं। मारीच (मरीचिनन्दन) कश्यप को अदिति (नहीं छोड़तीं)।।३९-४३।।

साऽर्द्धं नारायणं श्रीस्तु मघवन्तं शची यथा।
विष्णुं कीर्त्तिरुषा सूर्य्यं वसिष्ठं चाप्यरुन्धती॥४४॥
नैतांस्तु विजहत्येता भर्तॄन् देव्यः कथञ्चन। एवं प्राचेतसो दक्षो जज्ञे वै चाक्षुषेऽन्तरे॥४५॥
प्राचीनबर्हिषः पौत्रः पुत्रश्चापि प्रचेतसाम्। दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां पुनर्नृप॥४६॥
जज्ञे रुद्राभिशापेन द्वितीयमिति नः श्रुतम्। भृग्वादयस्तु ते सर्व्वे जज्ञिरे वै महर्षयः॥४७॥
आद्ये त्रेतायुगे पूर्व्वं मनोर्वैवस्वतस्य ह। देवस्य महतो यज्ञे वारुणीं बिभ्रतस्तनुम्॥४८॥
इत्येषोऽनुशयो ह्यासीत्तयोर्जात्यन्तरं गतः।
प्रजापतेश्च दक्षस्य त्र्यम्बकस्य च धीमतः॥४९॥
तस्मान्नानुशयः कार्य्यो वरेष्विह कदाचन।
जात्यन्तरगतस्यापि भावितस्य शुभाशुभैः।
जन्तोर्न भूतये ख्यातिस्तन्न कार्य्यं विजानता॥५०॥

श्रीदेवी लक्ष्मी नारायण का, शची देवी इन्द्र का, अरुन्धती वसिष्ठ का कदापि परित्याग नहीं करतीं, उसी प्रकार देवी सती किसी भी समय शिव से अलग नहीं रहतीं। हमने सुना है कि रुद्र का शाप पाकर दक्ष ने प्रजापति चाक्षुष मन्वन्तर में प्राचीनबर्हिष के पौत्र तथा दस प्रचेतागण का पुत्र होकर मारिषा के गर्भ से दोबारा जन्म लिया। तब भृगु आदि महर्षि भी इसी प्रकार मनुष्य योनि में जन्मे। इधर वैवस्वत मन्वन्तर के पूर्व त्रेतायुग के प्रारम्भ में यज्ञस्थल में महादेव द्वारा वारुणि तनु धारण किया गया। एवंविध प्रजापति दक्ष तथा धीमान् त्र्यम्बक विभिन्न जाति में उत्पन्न होकर अनुतप्त हुये। इसलिये जन्मान्तर में दक्ष एवं शिव के बीच जो वैर था, वही अब इस प्रकार से घटित हुआ। इसलिये शुभ-अशुभ से भावित होकर कदापि अनुताप नहीं करना चाहिये। अपना भला चाहने वाले बुद्धिमान् लोग कदापि इस प्रकार से वैर न करें।।४४-५०।।

मुनय ऊचुः

कथं रोषेण सा पूर्व्वं दक्षस्य दुहिता सती। त्यक्त्वा देहं पुनर्जाता गिरिराजगृहे प्रभो॥५१॥

देहान्तरे कथं तस्याः पूर्व्वदेहो बभूव ह। भवेन् सह संयोगः संवादश्च तयोः कथम्॥५२॥
स्वयंवरः कथं वृत्तस्तस्मिन् महति जन्मनि। विवाहश्च जगन्नाथ सर्व्वाश्चर्य्यसमन्वितः॥५३॥
तत्सर्व्वं विस्तराद्ब्रह्मन् वक्तुमर्हसि साम्प्रतम्।
श्रोतुमिच्छामहे पुण्यां कथां चातिमनोहराम्॥५४॥

मुनिगण कहते हैं—हे प्रभो! पूर्वकाल में दक्षपुत्री सती ने किस प्रकार से क्रोध में देहत्याग के पश्चात् पुनः पर्वतराज के गृह में जन्म लिया? किस प्रकार से देहान्तर में (अन्य जन्म में) भी उनको पूर्व देह ही प्राप्त हो सका? शिव के साथ उनका मिलन कैसे हुआ? उनका पारस्परिक संबंध कैसे हो सका? इस महाजन्म में उनका स्वयंवर-विवाह कैसे सम्पन्न हो सका? हे जगन्नाथ, ब्रह्मन्! सम्प्रति यह सब प्रसंग विस्तार से कहिये। हम इस मनोहर पुण्य कथा को सुनना चाहते हैं।।५१-५४।।

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनिशार्द्दूलाः कथां पापप्रणाशिनीम्। उमाशङ्करयोः पुण्यां सर्व्वकामफलप्रदाम्॥५५॥
कदाचित् स्वगृहात् प्राप्तं कश्यपं द्विपदां वरम्।
अपृच्छद्धिमवान् वृत्तं लोके ख्यातिकरं हितम्॥५६॥
केनाक्षयाश्च लोकाः स्युः ख्यातिश्च परमा मुने।
तथैव चार्च्यनीयत्वं सत्सु तत्कथयस्व मे॥५७॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे मुनिप्रवरगण! आप उमा-शंकर की यह सर्वकामना फलप्रदा, पापनाशिनी, पावन कथा सुनिये। एक बार सर्वजनप्रवर ऋषि कश्यप अपने घर से हिमालय आये। हिमवान् ने उनसे पूछा—"हे मुनिवर! जगत् में हितकर तथा ख्याति देने वाला कर्म क्या है? क्या करने से अक्षय लोक, परम कीर्त्ति तथा साधु समाज में पूज्यता की प्राप्ति होती है? आप कहिये।।५५-५७।।

कश्यप उवाच

अपत्येन महाबाहो सर्व्वमेतदवाप्यते। ममाऽऽख्यातिरपत्येन ब्रह्मणा ऋषिभिः सह॥५८॥
किं न पश्यसि शैलेन्द्र यतो मां परिपृच्छसि।
वर्त्तयिष्यामि यच्चापि यथादृष्टं पुराऽचल॥५९॥
वाराणसीमहं गच्छन्नपश्यं संस्थितं दिवि। विमानं सुनवं दिव्यमनौपम्यं महर्द्धिमत्॥६०॥
तस्याधस्तादार्त्तनादं गर्त्तस्थाने शृणोम्यहम्।
तमहं तपसा ज्ञात्वा तत्रैवान्तर्हितः स्थितः॥६१॥

ऋषि कश्यप कहते हैं—हे महाबाहु! आपने जिन सब विषयों का उल्लेख किया है, वह सब सन्तान द्वारा ही प्राप्त होता है। हे शैलेन्द्र! आपने मुझसे पूछा तो है, तथापि क्या आप यह नहीं जानते कि मुझे तथा अन्य ऋषियों को सन्तान रूप में पाकर ब्रह्मा को कैसी ख्याति प्रभृति की प्राप्ति हो सकी है। हे पर्वत! इस सम्बन्ध में जो मैंने पूर्वकाल में यह प्रत्यक्ष किया है, वह आपसे कहता हूं। मैंने एक बार वाराणसी धाम जाकर

देखा कि अन्तरिक्ष में एक उत्तम विमान है। वह दिव्य, अनुपम तथा महान् समृद्धि वाला था। उसके नीचे एक गर्त्त था। उस गर्त्त से एक आर्त्त स्वर श्रुतिगोचर हो रहा था। मैं उसका तत्त्व अपने तपोबल से जानकर वहां प्रच्छन्नभाव से स्थित हो गया।।५८-६१।।

अथागात्तत्र शैलेन्द्र विप्रो नियमवान् शुचिः।
तीर्थाभिषेकपूतात्मा परे तपसि संस्थितः।।६२।।
अथ स व्रजमानस्तु व्याघ्रेणाऽऽभीषितो द्विजः।
विवेश तं तदा देशं स गर्तो यत्र भूधर।।६३।।
गर्त्तायां वीरणस्तम्बे लम्बमानांस्तदा मुनीन्।
अपश्यदार्त्तो दुःखर्त्तांस्तानपृच्छच्च स द्विजः।।६४।।

द्विज उवाच

के यूयं वीरणस्तम्बे लम्बवाना ह्यधोमुखाः।
दुःखिता केन मोक्षश्च युष्माकं भविताऽनघाः।।६५।।

हे शैलेन्द्र! तब एक तीर्थ स्नान से पवित्र परम तपस्वी नियम पालन करने वाला ब्राह्मण वहां आया। वह एक व्याघ्र के डर से भयभीत होकर वहां पहुंचा था। जब वह गर्त्त में पहुंचा, तब देखता है कि वहां गर्त्त में वीरण के तने से अनेक दुःखी मुनि लटके हैं। उन मुनियों को इस अवस्था में लटके देख कर ब्राह्मण ने पूछा—"किसने आप लोगों को दुःखी करके यहां उल्टा लटकाया है? हे निष्पाप! क्या करने से आपका यह दुःख दूर होगा?।।६२-६५।।

पितर ऊचुः

वयं ते कृतपुण्यस्य पितरः सपितामहाः।
प्रपितामहाश्च क्लिश्यामस्तव दुष्टेन कर्म्मणा।।६६।।
नरकोऽयं महाभाग गर्त्तरूपेण संस्थितः।
त्वं चापि वीरणस्तम्बस्त्वयि लम्बामहे वयम्।।६७।।
यावत्त्वं जीवसे विप्र तावदेव वयं स्थिताः। मृते त्वयि गमिष्यामो नरकं पापचेतसः।।६८।।
यदि त्वं दारसंयोगं कृत्वापत्यं गुणोत्तरम्। उत्पादयसि तेनास्मान् मुच्येम वयमेनसः।।६९।।
नान्येन तपसा पुत्र तीर्थानाञ्च फलेन च।
एतत् कुरु महाबुद्धे तारयस्व पितॄन् भयात्।।७०।।

पितर कहते हैं—हम लोग तुम्हारे जैसे पुण्यरहित व्यक्ति के पिता, पितामह, प्रपितामह तुम्हारे ही दुष्ट कर्मों से कष्ट पा रहे हैं। हे महाभाग! यह गर्त्तरूप नरक है। तुम ही इस वृक्ष के तने हो। तुमको ही पकड़े हम लटके हैं। हे विप्र! जब तक तुम हो, तभी तक हम जीयेंगे। तुम्हारी मृत्यु होते ही हम पापचित्त से नरक में गिर जायेंगे। यदि तुम विवाह करके एक भी गुणी पुत्र उत्पन्न करो, तब हम पापमुक्त हो सकते हैं। हे पुत्र! इसके

अतिरिक्त अन्य तप, तीर्थ, फल से हमारा उद्धार नहीं होगा। हे महाबुद्धि! हमारे आदेश से यह कार्य करो। हमें भय से छुटकारा प्रदान करो।।६६-७०।।

कश्यप उवाच

स तथेति प्रतिज्ञाय आराध्य वृषभध्वजम्।
पितॄन् गर्त्तात्समुद्धृत्य गणपान् प्रचकार ह॥७१॥
स्वयं रुद्रस्य दयितः सुवेशो नाम नामतः। सम्मतो बलवांश्चैव रुद्रस्य गणपोऽभवत्॥७२॥
तस्मात् कृत्वा तपो घोरमपत्यं गुणवद्भृशम्।
उत्पादयस्व शैलेन्द्र सुतां त्वं वरवर्णिनीम्॥७३॥

ऋषि कश्यप कहते हैं—वह ब्राह्मण पितरों के कथन से सम्मत हो गया। उसने वृषध्वज की उपासना करके उन पितरों का उद्धार कार्य किया। उन पितरों को शिव ने गणाधिपति बना दिया। वह ब्राह्मण स्वयं सुरेश नामक रुद्र का प्रिय गणाधिपति हो गया। हे शैलेन्द्र! इसीलिये कहता हूं। तुम घोर तप करके गुणी पुत्र तथा वरवर्णिनी कन्या उत्पन्न करो।।७१-७३।।

ब्रह्मोवाच

स एवमुक्त्वा ऋषिणा शैलेन्द्रो नियमस्थितः। तपश्चकाराप्यतुलं येन तुष्टिरभून्मम॥७४॥
तदा तमुत्पपाताहं वरदोऽस्मीति चाब्रवम्। ब्रूहि तुष्टोऽस्मि शैलेन्द्र तपसानेन सुव्रत॥७५॥

ब्रह्मा कहते हैं—कश्यप के यह कहने पर पर्वतराज ने नियमों का वरण करके अतुल तप किया। इससे मैं प्रसन्न हो गया। मैंने उनसे जाकर कहा—"हे सुव्रत! मैं वर देने आया हूं। मैं इस तप से प्रसन्न हो गया। तुम क्या चाहते हो?" कहो।।७४-७५।।

हिमवानुवाच

भगवन् पुत्रमिच्छामि गुणैः सर्व्वैरलङ्कृतम्।
एवं वरं प्रयच्छस्व यदि तुष्टोऽसि मे प्रभो॥७६॥

ब्रह्मोवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा गिरिराजस्य भो द्विजाः।
तदा तस्मै वरं चाहं दत्तवान्मनसेप्सितम्॥७७॥
कन्या भवित्री शैलेन्द्र तपसाऽनेन सुव्रत।
यस्याः प्रभावात्सर्व्वत्र कीर्त्तिमाप्स्यसि शोभनाम्॥७८॥
अर्च्चितः सर्व्वदेवानां तीर्थकोटिसमावृतः। पावनश्चैव पुण्येन देवानामपि सर्व्वतः॥७९॥
ज्येष्ठा च सा भवित्री ते अन्ये चात्र ततः शुभे॥८०॥

हिमाचल कहते हैं—हे भगवान्! मैं एक सर्वगुण अलंकृत पुत्र चाहता हूं। यदि आप प्रसन्न हैं, तब मुझे

यह दीजिये। हे द्विजगण! गिरिराज की यह प्रार्थना सुन कर मैंने उनको यही वर प्रदान किया। मैंने कहा—"हे सुव्रत! शैलेन्द्र! इस तपः के फल से तुम्हें एक कन्या प्राप्त होगी। उस कन्या के प्रभाव से तुम सर्वत्र विमल यश प्राप्त करोगे। तुम कोटि-कोटि तीर्थ से परिवृत होकर सभी देवगण द्वारा पूजनीय एवं सर्वपुण्यमय एवं पवित्र रहोगे। तुम्हें तीन शुभ कन्या उत्पन्न होंगी। उनमें यह तपः से प्राप्त कन्या ज्येष्ठ होगी"।।७६-८०।।

सोऽपि कालेन शैलेन्द्रो मेनायामुदपादयत्। अपर्णामेकपर्णाञ्च तथा चैवैकपाटलाम्॥८१॥
न्यग्रोधमेकपर्णन्तु पाटलञ्चैकपाटलाम्। अशित्वा त्वेकपर्णान्तु अनिकेतस्तपोऽचरत्॥८२॥
शतं वर्षसहस्राणां दुश्चरं देवदानवैः। आहारमेकपर्णं तु एकपर्णा समाचरत्॥८३॥
पाटलेन तथैकेन विदधे चैकपाटला। पूर्णे वर्षसहस्रे तु आहारं ताः प्रचक्रतुः॥८४॥
अपर्णा तु निराहारा तां माता प्रत्यभाषत। निषेधयन्ती चोमेति मातृस्नेहेन दुःखिता॥८५॥

सा तथोक्ता तया मात्रा देवी दुश्चरचारिणी।
तेनैव नाम्ना लोकेषु विख्याता सुरपूजिता॥८६॥

एतत्तु त्रिकुमारीकं जगत्स्थावरजङ्गमम्। एतासां तपसा वृत्तं यावद्भूमिर्धरिष्यति॥८७॥

कालक्रमेण शैलराज ने अपनी मेना नामक पत्नी के गर्भ से अपर्णा, एकपर्णा तथा एकपाटला नामक तीन कन्या को उत्पन्न किया। उनमें से एकपर्णा मात्र एक वटपत्र तथा मात्र एक पाटलपत्र खाकर एक लाख वर्ष तक तप करती रही। कन्या एकपाटला ने मात्र एक पाटलपत्र खाकर एक हजार वर्ष तप किया। परन्तु कन्या अपर्णा ने निराहार रहते कठोर तपःश्चरण किया था। माता मेना ने स्नेह के साथ 'उमा' कहकर अपर्णा को तप से रोकने का प्रयत्न किया, तथापि माता के मना करने पर भी अपर्णा ने घोर कठोर तप किया। वे बाद में उमा नाम से पुकारी जाने लगीं। इस त्रैलोक्य में इन तीनों कुमारी का नाम प्रख्यात हो गया। इनका नाम, तप का वृत्तान्त जब तक यह पृथिवी रहेगी, तब तक बना रहेगा।।८१-८७।।

तपःशरीरास्ताः सर्व्वास्तिस्रो योगं समाश्रिताः।
सर्व्वाश्चैव महाभागास्तथा च स्थिरयौवना॥८८॥
ता लोकमातरश्चैव ब्रह्मचारिण्य एव च।
अनुगृह्णन्ति लोकांश्च तपसा स्वेन सर्व्वदा॥८९॥

उमा तासां वरिष्ठा च ज्येष्ठा च वरवर्णिनी। महायोगबलोपेता महादेवमुपस्थिता॥९०॥
दत्तकश्चोशना तस्य पुत्रः स भृगुनन्दनः। आसीत्तस्यैकपर्णा तु देवलं सुषुवे सुतम्॥९१॥

या तु तासां कुमारीणां तृतीया ह्येकपाटला।
पुत्रं सा तमलर्कस्य जैगीषव्यमुपस्थिता॥९२॥
तस्याश्च शङ्खलिखितौ स्मृतौ पुत्रावयोनिजौ।
उमा तु या मया तुभ्यं कीर्त्तिता वरवर्णिनी॥९३॥

अथ तस्यास्तपोयोगात्त्रैलोक्यमखिलं तदा। प्रधूपितमिहाऽऽलक्ष्य वचस्तामहमब्रवम्॥९४॥

इन तीनों हिमवान् की पुत्रियों ने योगावलम्बन किया था। वे सभी महाभाग्यवती एवं स्थिर यौवना हो गईं। ये सर्वलोक जननी तथा ब्रह्मचारिणी रहकर (इनमें से दो) सर्वदा तप से लोक के प्रति कृपा करती रहती हैं। इनमें से वरवर्णिनी उमा सबसे बड़ी थीं। उमा ने महायोग के प्रभाव से महादेव की आराधना किया। भृगुपुत्र उशना हितवान् के दत्तक पुत्र थे। उशना ने एकपर्णा के गर्भ से देवल नामक एक पुत्र उत्पन्न किया था। एकपाटला का विवाह अलर्क के पुत्र जैगीषव्य से हुआ था। उनके शंख-लिखित नामक अयोनिज पुत्र जन्मे। पूर्व में जिन उमा नामक सबसे बड़ी कन्या का वर्णन है, उनके तपःश्चरण से समस्त जगत् तप्त हो उठा। तब मैंने उसके पास जाकर यह कहा—॥८८-९४॥

देवि किं तपसा लोकांस्तापयिष्यसि शोभने।
त्वया सृष्टमिदं सर्व्वं मा कृत्वा तद्विनाशय॥९५॥
त्वं हि धारयसे लोकानिमान् सर्व्वान् स्वतेजसा।
ब्रूहि किं ते जगन्मातः प्रार्थितं सम्प्रतीह नः॥९६॥

उमा से मैंने कहा—हे देवी! हे शोभने! तुम त्रैलोक्य को क्यों तपा रही हो? यह जगत् तुम्हारी ही सृष्टि है। इसका नाश मत करो। मुझे ज्ञात है कि तुम अपने तेज से इस तीनों लोकों को धारण करती हो। हे जगन्माता! तुम क्या चाहती हो, वह मुझसे कहो॥९५-९६॥

देव्युवाच

यदर्थं तपसो ह्यस्य चरणं मे पितामह।
त्वमेव तद्विजानीषे ततः पृच्छसि किं पुनः॥९७॥

देवी कहती हैं—हे पितामह! मेरा तप करने का उद्देश्य आपसे छिपा नहीं है। तब आप क्यों पूछ रहे हैं?॥९७॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तामब्रवं चाहं यदर्थं तप्यसे शुभे। स त्वां स्वयमुपागम्य इहैव वरयिष्यति॥९८॥
शर्व्व एव पतिः श्रेष्ठः सर्व्वलोकेश्वरेश्वरः। वयं सदैव यस्येमे वश्या वै किङ्कराः शुभे॥९९॥
स देवदेवः परमेश्वरः स्वयं, स्वयम्भुरायास्यति देवि तेऽन्तिकम्।
उदाररूपो विकृतादिरूपः, समानरूपोऽपि न यस्य कस्यचित्॥१००॥
महेश्वरः पर्व्वतलोकवासी, चराचरेशः प्रथमोऽप्रमेयः।
विनेन्दुना हीन्द्रसमानवर्च्चसा, विभीषणं रूपमिवास्थितो यः॥१०१॥

इति श्री आदिब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भु-ऋषि-संवादे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥३४॥



ब्रह्मा कहते हैं—मैंने तब देवी से कहा—हे शुभे! जिनके लिये तुम तप कर रही हो, वे स्वयं आकर

तुम्हारा वरण करेंगे। हे शुभे! शर्व देव ही समस्त जगत् के ईश्वर हैं। वे ही परम गति हैं। हम सभी उनके किंकर तथा वशीभूत हैं। हे देवी! वे देवदेव परमेश्वर स्वयम्भू स्वयं तुम्हारे यहां आगमन करेंगे। वे उदारमूर्ति, विरूपाक्ष, आदिदेव हैं। वे महेश हैं। पर्वत लोक में उनका निवास है। वे चराचर के ईश्वर हैं। वे ही आदि तथा अप्रमेय हैं। वे चन्द्र के बिना ही इन्द्र के समान द्युति वाले हैं। उन्होंने ही भीषण रूप (रुद्र रूप) धारण किया है।।९८-१०१।।

।।चतुस्त्रिंश अध्याय समाप्त।।



अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

उमा के साथ देवगण का कथनोपकथन, शिव-पार्वती संवाद, ग्राह तथा पार्वती की वार्त्ता, पार्वती को शिव द्वारा वर प्रदान

ब्रह्मोवाच

ततस्तामब्रुवन् देवास्तदा गत्वा तु सुन्दरीम्। देवी शीघ्रेण कालेन धूर्ज्जटिर्नीललोहितः॥१॥
स भर्त्ता तव देवेशो भविता मा तपः कृथाः।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य देवा विप्रा गिरेः सुताम्॥२॥
जग्मुश्चादर्शनं तस्याः सा चापि विरराम ह।
सा देवी सूक्तमित्येवमुक्त्वा स्वस्याश्रमे शुभे॥३॥
द्वारि जातमशोकञ्च समुपाश्रित्य चास्थिता। अथागाच्चन्द्रतिलकस्त्रिदशार्त्तिहरो हरः॥४॥
विकृतं रूपमास्थाय ह्रस्वो बाहुक एव च।
विभग्ननासिको भूत्वा कुब्जः केशान्तपिङ्गलः॥५॥
उवाच विकृतास्यश्च देवि त्वां वरयाम्यहम्।
अथोमा योगसंसिद्धा ज्ञात्वा शङ्करमागतम्॥६॥
अन्तर्भावविशुद्धात्मा कृपानुष्ठान लिप्सया। तमुवाचार्घ्यपाद्याभ्यां मधुपर्केण चैव ह॥७॥
सम्पूज्य सुमनाभिस्तं ब्राह्मणं ब्राह्मणप्रिया॥८॥

ब्रह्मा कहते हैं—तदनन्तर देवगण ने आकर उन शोभन अंगों वाली देवी उमा से कहा—"हे देवी! शीघ्र ही नीललोहित धूर्जटि शंकर आपके पति होंगे। अतः अब आप तप न करें।" हे ब्राह्मणवृन्द! इसके पश्चात् वे सभी देवता उमा की प्रदक्षिणा करके अन्तर्हित् हो गये। तब देवी ने यह विचार कर कि "देवताओं ने अच्छी

बात कही है" तप से विरत हो गयीं। उनके आश्रम के द्वार पर एक अशोक वृक्ष था। वे उस वृक्ष के नीचे रहने लगीं। तत्पश्चात् देवगण की आर्त्ति का हरण करने वाले चन्द्रमौलि ने विकृत रूप धारण किया तथा वहां आ गये। उनकी बाहु छोटी थी, नासिका टूटी थी, वे पिंगल वर्ण अग्रभाग वाले केशों से युक्त थे। उन कुब्जदेह ने वहां आकर कहा—"हे देवी! मैं तुम्हारा वरण करता हूं"। योगसिद्धा, ब्राह्मणों की प्रिय उमा ने तब समझा कि यह तो शंकर आये हैं। उन्होंने भावविशुद्ध अन्तःकरण से शंकर की कृपा पाने हेतु अर्घ्य, पाद्य, मधुपर्क तथा पुष्पों से उन समागत ब्राह्मण की पूजा करके कहा—॥१-८॥

देव्युवाच

भगवन्न स्वतन्त्राहं पिता मे त्वग्रणीर्गृहे। स प्रभुर्म्मम दाने वै कन्याहं द्विजपुङ्गव॥९॥
गत्वा याचस्व पितरं मम शैलेन्द्रमव्ययम्। स चेद्ददाति मां विप्र तुभ्यं तदुचितं मम॥१०॥

देवी कहती हैं—हे भगवान्! मैं स्वाधीन नहीं हूं। मेरे गृह में पिता प्रधान हैं। हे द्विजप्रवर! मैं कन्या हूं। मेरे दान के कर्त्ता एकमात्र मेरे पिता ही हैं। हे विप्र! मेरे पिता शैलराज हैं। आप उनसे मुझे मांगिये। यदि वे स्वयं मेरा दान आपको करते हैं, तब वह मेरे लिये उचित होगा।।९-१०।।

ब्रह्मोवाच

ततः स भगवान् देवस्तथैव विकृतः प्रभुः।
उवाच शैलराजानं सुतां मे यच्छ शैलराट्॥११॥
स तं विकृतरूपेण ज्ञात्वा रुद्रमथाव्ययम्।
भीतः शापाच्च विमना इदं वचनमब्रवीत्॥१२॥

ब्रह्मा कहते हैं—इसके अनन्तर देवाधिदेव भगवान् उस विरूप आकृति वाले ब्राह्मण वेश में शैलराज के पास आकर कहने लगे कि "आप मुझे कन्या दीजिये।" तब शैलराज विकृत रूप धर कर आये अव्यय रुद्र को जान कर शाप के भय से डरने लगे तथा उन्होंने अनमने होकर उत्तर दिया।।११-१२।।

शैलेन्द्र उवाच

भगवन्नावमन्येऽहं ब्राह्मणान् भुवि देवताः।
मनीषितन्तु यत् पूर्व्वं तच्छृणुष्व महामते॥१३॥
स्वयंवरो मे दुहितुर्भविता विप्रपूजितः। वरयेद्यं स्वयं तत्र स भर्त्तास्या भविष्यति॥१४॥
तच्छ्रुत्वा शैलवचनं भगवान् वृषभध्वजः।
देव्या समीपमागत्य इदमाह महामनाः॥१५॥

शैलराज कहते हैं—"हे प्रभो! मैं भूदेव ब्राह्मणों की अवमानना नहीं कर पाता। इस विषय में मैंने जो पूर्व संकल्प किया था, आप सुनें। हे महामति! मेरी कन्या के विवाहार्थ एक स्वयंवर सभा बुलाई जायेगी। इसमें ब्राह्मण उपस्थित रहेंगे। उस स्वयंवर में मेरी कन्या जिसका भी वरण करेगी, वही उसका पति होगा।" पर्वतराज का यह वचन सुनकर भगवान् वृषध्वज स्वयं देवी उमा के पास आकर कहने लगे।।१३-१५।।

शिव उवाच

देवि पित्रा त्वनुज्ञातः स्वयंवर इति श्रुतिः। तत्र त्वं वरयित्री यं स ते भर्त्ता भवेदिति॥१६॥
तदापृच्छ्य गमिष्यामि दुर्लभां त्वां वरानने।
रूपवन्तं समुत्सृज्य वृणोष्यसदृशं कथम्॥१७॥

शिव कहते हैं—हे देवी! मैंने यह सुना कि पिता तुम्हारा स्वयंवर करा रहे हैं। वहां आकर तुम जिसका भी वरण करोगी, वही तुम्हारा पति होगा। हे वरानने! अतः मैं पूछता हूं कि वहां आये रूपवान् वरों को छोड़कर क्या अयोग्य वर का वरण करोगी?।।१६-१७।।

ब्रह्मोवाच

तेनोक्ता सा तदा तत्र भावयन्ती तदीरितम्। भावञ्च रुद्रनिहितं प्रसादं मनसस्तथा॥१८॥
सम्प्राप्योवाच देवेशं मा तेऽभूद्बुद्धिरन्यथा।
अहं त्वां वरयिष्यामि नाद्भुतन्तु कथञ्चन॥१९॥
अथवा तेऽस्ति सन्देहो मयि विप्र कथञ्चन। इहैव त्वां महाभाग वरयामि मनोगतम्॥२०॥

ब्रह्मा कहते हैं—ब्राह्मण के यह कहने पर उमा उनकी बातों पर विचार करते-करते अपने रुद्र को अर्पित मनोभाव का चिन्तन करके मन में प्रसन्न होकर देवाधिदेव से कहने लगीं—"हे देवेश! आपकी बुद्धि अन्यथा न सोचे। मैं आपका ही वरण करूंगी। मेरा कथन बदलेगा नहीं। हे विप्र! यदि अब भी आपके मन में कोई सन्देह है, तब मैं आपका सद्यः यहीं (मन से) वरण करती हूं"।।१८-२०।।

ब्रह्मोवाच

गृहीत्वा स्तवकं सा तु हस्ताभ्यां तत्र संस्थिता।
स्कन्धे शम्भोः सामाधाय देवी प्राह वृतोऽसि मे॥२१॥
ततः स भगवान् देवस्तया देव्या वृतस्तदा।
उवाच तमशोकं वै वाचा सञ्जीवयन्निव॥२२॥

शिव उवाच

यस्मात्तव सुपुण्येन स्तवकेन वृतोऽस्म्यहम्।
तस्मात्त्वं जरया त्यक्तस्त्वमरः सम्भविष्यसि॥२३॥
कामरूपी कामपुष्पः कामदो दयितो मम। सर्व्वाभरणपुष्पाढ्यः सर्व्वपुष्पफलोपगः॥२४॥
सर्व्वान्नभक्षकश्चैव अमृतस्वाद एव च। सर्व्वगन्धश्च देवानां भविष्यसि दृढप्रियः॥२५॥
निर्भयः सर्व्वलोकेषु भविष्यसि सुनिर्वृतः। आश्रमं वेदमत्यर्थं चित्रकूटेति विश्रुतम्॥२६॥
यो हि यास्यति पुण्यार्थी सोऽश्वमेधमवाप्स्यति।
यस्तु तत्र मृतश्चापि ब्रह्मलोकं स गच्छति॥२७॥

यश्चात्र नियमैर्युक्तः प्राणान् सम्यक् परित्यजेत्।
स देव्यास्तपसा युक्तो महागणपतिर्भवेत्॥२८॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब उमा देवी ने अशोक स्तवक (मंजरी) लेकर उसे शंभु के स्कन्ध पर रख कर कहा—"मैं आपका वरण करती हूं।" इस प्रकार उमा देवी द्वारा वरण किये जाने पर तब मानों अपनी वाणी से शंभु ने अशोक वृक्ष को संजीवित करते कहा—मैं वृत हो गया। तुम कामरूपी, कामपुष्प वाले, मुझे सदा प्रिय रहोगे। हे अशोक! मैं तुम्हारी पवित्र मंजरी द्वारा वृत हुआ हूं। तुम जरा रहित तथा अमर हो जाओ। देवगण के लिये तुम आभरण पुष्प तथा सर्वपुष्पफल रूप से मान्य रहोगे। तुम सर्वान्न भक्षण करने वाले, अमृत के समान आस्वाद वाले तथा सर्वगन्धवह रूप से प्रतिभात रहोगे। देवता तुम्हारे ऊपर सदा श्रद्धा करेंगे। तुम सभी लोकों में निर्भय तथा निश्चिन्त रूप से अवस्थान करोगे। यह आश्रम चित्रकूट कहा जायेगा। जो कोई व्यक्ति यहां पुण्यसंचयार्थ आयेगा, वह अश्वमेध यज्ञफल लाभ करेगा। यहां जो मृत होगा, उसे ब्रह्मलोक की प्राप्ति होगी। जो व्यक्ति यहां नियम तत्पर रहकर प्राणों को छोड़ेगा, वह उमा देवी की तपस्या से युक्त तथा महागणपति पद पर आसीन होगा।।२१-२८।।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तदा देव आपृच्छ्य हिमवत्सुताम्।
अन्तर्द्दधे जगत्स्रष्टा सर्व्वभूतप ईश्वरः॥२९॥
सापि देवी गते तस्मिन् भगवत्यमितात्मनि।
तत एवोन्मुखी भूत्वा शिलायां सम्बभूव ह॥३०॥
उन्मुखी सा भवे तस्मिन् महेशे जगतां प्रभौ।
निशेव चन्द्ररहिता न बभौ विमनास्तदा॥३१॥

ब्रह्मा कहते हैं—तदनन्तर जगत्विधाता भूतपति देवदेव इस प्रकार गिरिनन्दिनी से सम्भाषणोपरान्त वहीं अन्तर्हित् हो गये। अमितात्मा देवदेव शिव के चले जाने पर गिरिजादेवी वहीं जगत्पति के उद्देश्य से मन लगाकर एक शिला पर बैठ गयीं। वे विमना होकर चन्द्रमा से रहित रात्रि की तरह म्लान हो उठीं।।२९-३१।।

अथ शुश्राव शब्दञ्च बालस्यार्त्तस्य शैलजा।
सरस्युदकसम्पूर्णे समीपे चाश्रमस्य च॥३२॥
स कृत्वा बालरूपन्तु देवदेवः स्वयं शिवः।
क्रीडाहेतोः सरोमध्ये ग्राहग्रस्तोऽभवत्तदा॥३३॥
योगमायां समास्थाय प्रपञ्चोद्भवकारणम्। तद्रूपं सरसो मध्ये कृत्वैवं समभाषत॥३४॥

बाल उवाच

त्रातु मां कश्चिदित्याह ग्राहेण हृतचेतसम्।
धिक्कष्टं बाल एवाहमप्राप्तार्थमनोरथः॥३५॥

प्रयामि निधनं वक्त्रे ग्राहस्यास्य दुरात्मनः।
शोचामि न स्वकं देहं ग्राहग्रस्तः सुदुःखितः॥३६॥
यथा शोचामि पितरं मातरञ्च तपस्विनीम्।
ग्राहगृहीतं मां श्रुत्वा प्राप्तं निधनमुत्सुकौ॥३७॥
प्रियपुत्रामेवेकपुत्रौ प्राणान् न्यूनं त्यजिष्यतः।
अहो बत सुकष्टं वै योऽहं बालोऽकृताश्रमः।
अन्तर्ग्राहेण ग्रस्तस्तु यास्यामि निधनं किल॥३८॥

कुछ समय उपरान्त पर्वतनन्दिनी ने अपने आश्रम के सामने स्थित सरोवर से एक बालक के क्रन्दन की आर्त्त ध्वनि सुना। देवाधिदेव शिव ने स्वयं क्रीड़ार्थ बालक रूप धारण किया तथा लीलावश सरोवर में एक ग्राह से पकड़े गये। उन्होंने योगमाया का अवलम्बन लेकर प्रपंच के उद्भव हेतु बालक देह धारण किया था तथा चिल्लाने लगे—"मुझे ग्राह ने पकड़ा है, कोई बचाओ! क्या भयानक कष्ट है! मैं बालक हूं। अभी मेरा जीवन का कोई मनोरथ पूरा नहीं हो सका। मैं इस दुरात्मा ग्राह के मुख में पड़ा मर रहा हूं। यह मेरा ग्रास कर रहा है। मेरे दीन पिता-माता को जो कष्ट होगा तथा मुझे उनके लिये जो दुःख हो रहा है, उतना दुःख मैं अपने लिये नहीं कर रहा हूं। मैं उनका इकलौता पुत्र हूं। मेरे मरने का समाचार सुनकर वे भी मृत हो जायेंगे! क्या दारुण कष्ट है! मैं बालक हूं। मैं बिना किसी ब्रह्मचर्यादि आश्रम का पालन किये ग्राहग्रस्त होकर मृत हो रहा हूं!।।३२-३८।।

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा तु देवी तं नादं विप्रस्याऽऽर्त्तस्य शोभना।
उत्थाय प्रस्थिता तत्र यत्र तिष्ठत्यसौ द्विजः॥३९॥
सापश्यदिन्दुवदना बालकं चारुरूपिणम्। ग्राहस्य मुखमापन्नं वेपमानमवस्थितम्॥४०॥
सोऽपि ग्राहवरः श्रीमान् दृष्ट्वा देवीमुपागताम्।
तं गृहीत्वा द्रुतं यातो मध्यं सरस एव हि॥४१॥
स कृष्यमाणस्तेजस्वी नादमार्त्तं तदाकरोत्।
अथाह देवी दुःखार्त्ता बालं दृष्ट्वा ग्रहावृतम्॥४२॥

पार्वत्युवाच

ग्राहराज महासत्त्व बालकं ह्येकपुत्रकम्। विमुञ्चेमं महादंष्ट्रं क्षिप्रं भीमपराक्रम॥४३॥

ब्रह्मा कहते हैं—जब देवी उमा ने विप्र बालक का यह आर्त्तनाद सुना, तब वे शीघ्रता से उठ कर उस बालक के पास पहुंचीं। देखा, अत्यन्त सुरूप है, लेकिन ग्राह से ग्रसित होकर कांप रहा है। ग्राह ने भी जब उमा को आते देखा, तब वह भी शीघ्रता से बालक को खींचता सरोवर के बीच चला गया। यद्यपि बालक तेजस्वी था, तथापि ग्राह के खींचे जाने के कारण चिल्लाने लगा। भगवती यह देखकर दुःखी मन से कहने

लगीं—"हे महासत्त्व ग्राहराज! इस बालक को छोड़ दो। हे महान् दांतों वाले! हे भीमविक्रम! इसे छोड़ दो। यह माता-पिता का इकलौता पुत्र है।।३९-४३।।

ग्राह उवाच

यो देवि दिवसे षष्ठे प्रथमं समुपैति माम्। स आहारो मम पुरा विहितो लोककर्त्तृभिः॥४४॥
सोऽयं मम महाभागे षष्ठेऽहनि गिरीन्द्रजे। ब्रह्मणा प्रेरितो नूनं नैनं मोक्ष्ये कथञ्चन॥४५॥

ग्राह कहता है—हे देवी! दिन की छठी बेला में जो मेरे पास आता है, मैं उसका आहार करता हूं। पूर्वकाल में लोककर्त्ता ने हमारे सम्बन्ध में यही व्यवस्था किया था। हे शैलनन्दिनी! महाभागे! यह मेरे पास दिन के छठी बेला में आया है। निश्चित रूप से ब्रह्मा ने इसे भेजा है। अतः मैं किसी भी प्रकार से इसे छोड़ नहीं सकता।।४४-४५।।

देव्युवाच

यन्मया हिमवच्छृङ्गे चरितं तप उत्तमम्।
तेन बालमिमं मुञ्च ग्राहराज नमोऽस्तु ते॥४६॥

देवी कहती हैं—हे ग्राहराज! मैं तुमको नमस्कार करती हूं! मैंने हिमालय शिखर पर जो उत्तम तप किया है, उसके बल से तुम इसे छोड़ो।।४६।।

ग्राह उवाच

मा व्ययस्तपसो देवि भृशं बाले शुभानने।
यद्ब्रवीमि कुरु श्रेष्ठे तथा मोक्षमवाप्स्यति॥४७॥

ग्राह कहता है—हे देवी, शुभे! तुम अपने तप का व्यय मत करो। यदि तुम मेरा कथन मानो तब मैं इसे छोड़ दूंगा।।४७।।

देव्युवाच

ग्राहाधिप वदस्वाशु यत् सतामविगर्हितम्।
तत् कृतं नात्र सन्देहो यतो मे ब्राह्मणः प्रियाः॥४८॥

देवी कहती हैं—हे ग्राहपति! ब्राह्मण मुझे प्रिय हैं। अतः साधुजन सम्मत जो कार्य है, कहो। मैं ब्राह्मण बालक के रक्षार्थ वही करूंगी।।४८।।

ग्राह उवाच

यत् कृतं वै तपः किञ्चिद्भवत्या स्वल्पमुत्तमम्।
तत् सर्वं मे प्रयच्छाऽऽशु ततो मोक्षमवाप्स्यति॥४९॥

ग्राह कहता है—तुमने जो कुछ उत्तम तप किया है, वह सब मुझे अर्पित करो। मैं बालक को छोड़ दूंगा।।४९।।

देव्युवाच

जन्मप्रभृति यत् पुण्यं महाग्राह कृतं मया। तत्ते सर्वं मया दत्तं बालं मुञ्च महाग्रह॥५०॥

देवी कहती हैं—हे महाग्राह! मैंने आजन्म जो कुछ पुण्य संचय किया है, सब तुमको अर्पित करती हूं। तुम बालक को छोड़ो।।५०।।

ब्रह्मोवाच

प्रजज्वाल ततो ग्राहस्तपसा तेन भूषितः। आदित्य इव मध्याह्ने दुर्निरीक्ष्यस्तदाभवत्॥५१॥
उवाच चैवं तुष्टात्मा देवीं लोकस्य धारिणीम्॥५२॥

ब्रह्मा कहते हैं—पर्वतनन्दिनी के यह कहते ही ग्राह उस तपः प्रभाव से प्रदीप्त हो उठा। मध्याह्न सूर्य के समान उसकी आकृति दुर्लक्ष्य-सी हो गयी। उसने प्रसन्न होकर लोकधारिणी शैलसुता उमा से कहा—।।५१-५२।।

ग्राह उवाच

देवि किं कृत्यमेतत्ते सुनिश्चित्य महाव्रते।
तपसोऽप्यर्ज्जनं दुःखं तस्य त्यागो न शस्यते।
गृहाण तप एव त्वं बालं चेमं सुमध्यमे। तुष्टोऽस्मि ते विप्रभक्त्या वरं तस्माद्ददामि ते।
सा त्वेवमुक्ता ग्राहेण उवाचेदं महाव्रता॥५३॥

ग्राह कहता है—हे देवी! तुमने यह क्या किया? विचार करके देखो, तप संचय में बहुत कष्ट सहना पड़ता है। उसे त्यागना कदापि संगत नहीं है। अतः मैं तुम्हारी ब्राह्मण भक्ति से प्रसन्न हो गया। मैं तुमको वर देता हूं। तुम अपना तप तथा इस बालक को ग्रहण करो।।५३।।

देव्युवाच

देहेनापि मया ग्राह रक्ष्यो विप्रः प्रयत्नतः। तपः पुनर्मया प्राप्तं न प्राप्यो ब्राह्मणः पुनः॥५४॥
सुनिश्चित्य महाग्राह कृतं बालस्य मोक्षणम्।
न विप्रेभ्यस्तपः श्रेष्ठं श्रेष्ठा मे ब्राह्मणा मताः॥५५॥
दत्त्वा चाहं न गृह्णामि ग्राहेन्द्र विहितं हि ते। न हि कश्चिन्नरो ग्राह प्रदत्तं पुनराहरेत्॥५६॥
दत्तमेतन्मया तुभ्यं नाऽऽददानि हि तत् पुनः।
त्वय्येव रमतामेतद्बालश्चायं विमुच्यताम्॥५७॥

देवी कहती हैं—हे ग्राह! शरीर त्याग कर भी यदि ब्राह्मण की रक्षा हो सके, तब वह मेरा कर्त्तव्य है। यत्न द्वारा तो तप पुनः संचित हो सकता है, लेकिन तब यह विप्र बालक कैसे मिलेगा? मैंने यह सब विचार पूर्वक ही बालक की मुक्ति का उपाय किया था। विप्र की तुलना में कभी भी तप श्रेष्ठ नहीं है। मेरे मतानुसार ब्राह्मण श्रेष्ठ होता है। मैंने तप दान किया है। दान को वापस नहीं लूंगी। कोई भी श्रेष्ठ व्यक्ति दी गई वस्तु वापस नहीं लेता। यह तप तुममें ही प्रतिभात हो। मेरी कामना है कि तुम बालक को छोड़ो।।५४-५७।।

ब्रह्मोवाच

तथोक्तस्तां प्रशस्याथ मुक्त्वा बालं नमस्य च।
देवीमादित्यावभासस्तत्रैवान्तरधीयत ॥५८॥

बालोऽपि सरसस्तीरे मुक्तो ग्राहेण वै तदा। स्वप्नलब्ध इवार्थौघस्तत्रैवान्तरधीयत॥५९॥

तपसोऽपचयं मत्वा देवी हिमगिरीन्द्रजा। भूय एव तपः कर्त्तुमारेभे नियमस्थिता॥६०॥

कर्त्तुकामां तपो भूयो ज्ञात्वा तां शङ्करः स्वयम्।
प्रोवाच वचनं विप्रा मा वृथास्तप इत्युत॥६१॥

मह्यमेतत्तपो देवी त्वया दत्तं महाव्रते। तत्तेनैवाक्षयं तुभ्यं भविष्यति सहस्रधा॥६२॥

इति लब्ध्वा वरं देवी तपसोऽक्षयमुत्तमम्।
स्वयंवरमुदीक्षन्ती तस्थौ प्रीता मुदा युता॥६३॥

ब्रह्मा कहते हैं—उमा द्वारा यह कहते ही सूर्य के समान उज्ज्वल आभा वाला ग्राह देवी की प्रशंसा करने लगा। उसने बालक को छोड़ा तथा वहां से अन्तर्ध्यान हो गया। वह ग्राह से मुक्त किया गया बालक भी उस सरोवर तट से उसी प्रकार अन्तर्हित् हो गया, जैसे स्वप्न में मिली औषधि जागते ही गायब हो जाती है। इधर उमा ने सोचा कि उसका तप क्षयीभूत हो गया, वे पुनः तपःश्चरण हेतु नियम ग्रहण करने लगीं। जब शंकर ने उनको पुनः तपोद्यत देखा, तब उन्होंने कहा—"हे प्रिये! अब तुम तप मत करो। हे महाव्रते! मुझे ही तुमने अपना तप दान किया है। इस दान के फलस्वरूप तुम्हारा तप एक हजार गुना बढ़ गया। वह तप अक्षय हो गया।" गिरिजा ने इस प्रकार तप का अक्षयत्व प्राप्त किया तथा अपना स्वयंवर देखने हेतु प्रेम पूर्वक रहने लगीं।।५८-६३।।

इदं पठेद्यो हि नरः सदैव, बालानुभावाचरणं हि शम्भोः।
स देहभेदं समवाप्य पूतो भवेद्गणेशस्तु कुमारतुल्यः॥६४॥

इति श्रीब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भु-ऋषि-संवादे पार्व्वत्याः सत्त्वदर्शनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः।।३५।।



जो मनुष्य शंकर के इस बालभाव का आचरण पढ़ता है, देहान्त होने पर वह कुमार के समान गणाधिपति होता है।।६४।।

।।पञ्चत्रिंश अध्याय समाप्त।।



अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

पार्वती स्वयंवर, पार्वती की गोद में शिशु रूपी शिव का शयन तथा शिव पार्वती विवाह

ब्रह्मोवाच

विस्तृते हिमवत्पृष्ठे विमानशतसङ्कुले। अभवत् स तु कालेन शैलपुत्र्याः स्वयंवरः॥१॥
अथ पर्व्वतराजोऽसौ हिमवान् ध्यानकोविदः। दुहितुर्देवदेवेन ज्ञात्वा तदभिमन्त्रितम्॥२॥
जानन्नपि महाशैलः समयारक्षणेप्सया। स्वयंवरं ततो देव्याः सर्व्वलोकेष्वघोषयत्॥३॥
देवदानवसिद्धानां सर्व्वलोकनिवासिनाम्। वृणुयात् परमेशानं समक्षं यदि मे मे सुता॥४॥
तदेव सुकृतं श्लाघ्यं ममाभ्युदयसम्मतम्। इति सञ्चिन्त्य शैलेन्द्रः कृत्वा हृदि महेश्वरम्॥५॥
आब्रह्मकेषु देवेषु देव्याः शैलेन्द्रसत्तमः। कृत्वा रत्नाकुलं देशं स्वयंवरमचीकरत्॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—कालक्रम से हिमालय पृष्ठ सैकड़ों विमानों से भर गया। शैलराज हिमालय भले ही ध्यान योग से यह जान गये थे कि देवाधिदेव के साथ उनकी पुत्री का विवाह अशोक वृक्ष के नीचे सम्पन्न हो गया है, तथापि अपने वचन पालनार्थ उन्होंने सभी लोकों में देवी पार्वती के स्वयंवर की घोषणा कर दिया। उन्होंने सोचा कि सभी लोकों में रहने वाले देव-दानव-सिद्धगण के सामने यदि मेरी कन्या देवदेव ईशानशिव का वरण कर लेती है, तब मैं उसे अपना श्लाघ्य पुण्योदय समझूंगा। वही मेरे अभ्युदय के समान होगा। शैलेन्द्र ने मन ही मन यह तय करके हृदय में महादेव की भावना किया। तत्पश्चात् उन्होंने अपने अधिकार वाले देश को रत्नों के ढेर से भर कर ब्रह्मादि समस्त देव समाज में अपनी कन्या के स्वयंवर का समाचार प्रचारित कर दिया।।१-६।।

अथैवमाघोषितमात्र एव, स्वयंवरे तत्र नगेन्द्रपुत्र्याः।
देवादयः सर्वजगन्निवासाः, समाययुस्तत्र गृहीतवेशाः॥७॥
प्रफुल्लपद्मासनसन्निविष्टः, सिद्धैर्वृतो योगिभिरप्रमेयैः।
विज्ञापितस्तेन महीधराज्ञाऽऽगतस्तदाऽहं त्रिदिवैरुपेतः॥८॥

शैलसुता उमा के स्वयंवर का संवाद घोषित होने मात्र से सभी जगत्वासी देवगण विविध वेषभूषा धारण करके हिमालय के घर आये। शैलराज का निमन्त्रण पाकर मैं भी खिले कमलों के आसन पर बैठ कर वहां आया। सिद्धगण, योगीगण, देवताओं के साथ मैं वहां पहुंचा।।७-८।।

अक्ष्णां सहस्रं सुरराट् स बिभ्रद् दिव्याङ्गहारस्त्रगुदाररूपः।
ऐरावतं सर्व्वगजेन्द्रमुख्यं स्रवन्मदासारकृतप्रवाहम्॥९॥
आरुह्य सर्व्वामरराट् स वज्रं, बिभ्रत् समागात् पुरतः सुराणाम्।
तेजः प्रभावाधिकतुल्यरूपी, प्रोद्भासयन् सर्व्वदिशो विवस्वान्॥१०॥

हैमं विमानं स बलत्पताकमारुढ आगात्त्वरितं जवेन।
मणिप्रदीप्तोज्ज्वलकुण्डलश्च वह्न्यर्कतेजःप्रतिमे विमाने॥११॥
समभ्यगात् कश्यपसूनुरेक, आदित्यमध्याद्भगनामधारी।
पीनाङ्गयष्टिः सुकृताङ्गहारतेजोबलाज्ञासदृशप्रभावः॥१२॥
दण्डं समागृह्य कृतान्त आगादारुह्य भीमं महिषं जवेन।
महामहीध्रोच्छ्रयपीनगात्रः स्वर्णादिरत्नाञ्चितचारुवेशः॥१३॥
समीरणः सर्व्वजगद्विभर्त्ता विमानमारुह्य समभ्यगाद्धि।
सन्तापयन् सर्व्वसुरारेशांस्तेजोधिकस्तेजसि सन्निविष्टः॥१४॥
वह्नि समभ्येत्य सुरेन्द्रमध्ये, ज्वलन् प्रतस्थौ वरवेशधारी।
नानामणिप्रज्वलिताङ्गयष्टिर्जगद्वरं दिव्यविमानमग्र्यम्॥१५॥
आरुह्य सर्वद्रविणाधिपेशः, स राजराजस्त्वरितोऽभ्यगाच्च।
आप्याययन् सर्व्वसुरासुरेशान्, कान्त्या च वेशेन च चारुरूपः॥१६॥

महनीय मूर्त्ति सहस्राक्ष इन्द्र अपूर्व हार-माला धारण करके मदजल की धारा बहाने वाले गजराज ऐरावत पर आरूढ़ होकर वज्र लिये हुये देवताओं के आगे-आगे चलते हुये वहां पहुंचे। इन्द्र के तेज प्रभाव से भी अधिक तेजस्वी विवस्वान् सभी दिशाओं को उद्भासित करके पताका फहराते हुये स्वर्ण विमान पर बैठ कर अत्यन्त वेग पूर्वक वहां आये। मणिमय उज्ज्वल कुण्डलधारी भग नाम वाले कश्यपनन्दन आदित्य एकाकी मध्याह्न के सूर्य के समान प्रदीप्त विमान पर बैठे वहां पहुंचे। जिनका प्रभाव, तेज, बल उनकी ही आज्ञा के अनुरूप था, वे पीवर देह वाले दण्डपाणि यम भीषण महिष पर बैठकर वेग पूर्वक वहां आये। महापर्वत की ऊंचाई के समान पीनगात्र (स्थूल देह), समस्त जगत् के विभर्त्ता वायुदेव स्वर्गादि के रत्नों द्वारा अपने सुन्दर वेश को और भी अधिक सज्जित करके विमान पर बैठ कर वहां आये थे। तेजःप्रधान, तेज सन्निविष्ट, अग्निदेव सुन्दर वेशधारी होकर समस्त सुर-असुर को तप्त करते हुये देवताओं के बीच आकर प्रद्योदित हो रहे थे। जिनकी देह नाना मणियों की द्युति से प्रज्वलित है, वे सर्वधनाधिपति राजराज कुबेर भी दिव्य विमान पर बैठे वहां आये। सभी सुर-असुरों को आप्यायित करते हुये मनोहर रूप वाले—।।९-१६।।

ज्वलन्महारत्नविचित्ररूपं, विमानमारुह्य शशी समायात्।
श्यामाङ्गयष्टिः सुविचित्रवेशः, सर्व्वाङ्ग आबद्धसुगन्धिमाल्यः॥१७॥
तार्क्ष्यं समारुह्य महीध्रकल्पं, गदाधरोऽसौ त्वरितः समेतः।
अथाश्विनौ चापि भिषग्वरौ द्वावेकं विमानं त्वरयाऽधिरुह्य॥१८॥
मनोहरौ प्रज्वलचारुवेशौ, आजग्मतुर्देववरौ सुवीरौ।
सहस्रनागः स्फुरदग्निवर्णं, बिभ्रत्तदानीं ज्वलनार्कतेजाः॥१९॥
सार्द्धं स नागैरपरैर्महात्मा, विमानमारुह्य समभ्यगाच्च।
दितेः सुतानाञ्च महासुराणां, वह्न्यर्कशक्रानिलतुल्यभासाम्॥२०॥

वरानुरूपं प्रविधाय वेशं, वृन्दं समागात् पुरतः सुराणाम्।
गन्धर्व्वराजः स च चारुरूपी, दिव्याङ्गदो दिव्यविमानचारी॥२१॥
गन्धर्वसङ्घैः सहितोऽप्सरोभिः, शक्राज्ञया तत्र समाजगाम।
अन्ये च देवास्त्रिदिवात्तदानीं, पृथक् पृथक् चारुगृहीतवेशाः॥२२॥

महारत्नों से जड़े प्रदीप्त विमान पर बैठे चन्द्रमा भी वहां आये। सुविचित्र वेश वाले श्यामांग गदाधारी सर्वांग में सुगन्धि माला धारण करके पर्वत के समान गरुड़ वाहन पर शीघ्र बैठे हुये वहां पहुंचे। विचित्र उज्ज्वल-उत्तम वेष वाले भिषग्गण में श्रेष्ठ देवप्रवर मनोहर अश्विनीकुमारद्वय एक ही उत्तम विमान पर बैठे वहां आये। अग्नि तथा सूर्यवत् तेजसम्पन्न महात्मा सहस्रनाग शेष भी अन्य नागों के साथ विमानारूढ़ होकर उस स्वयंवर में आये। तदनन्तर अग्नि, सूर्य, इन्द्र तथा वायु के समान दीप्ति वाले दितिनन्दन महाअसुरगण भी दुलहे जैसा वेश बनाकर देवगण के पहले ही वहां आ गये थे। वहां सुचारु रूप वाले गन्धर्वराज विश्वावसु भी दिव्य बाजूबन्द से विभूषित होकर दिव्य विमान पर बैठे हुये इन्द्र की आज्ञा से अन्य गन्धर्वों तथा अप्सराओं सहित वहां आये। अन्य देवता पृथक्-पृथक् उत्तम वेश धर कर वहां आये।।१७-२२।।

आजग्मुरारुह्य विमानपृष्ठं, गन्धर्वयक्षोरगकिन्नराश्च।
शचीपतिस्तत्र सुरेन्द्रमध्ये, रराज राजाऽधिकलक्ष्यमूर्तिः॥२३॥
आज्ञाबलैश्वर्य्यकृतप्रमोदः, स्वयंवरं तं समलञ्चकार।
हेतुस्त्रिलोकस्य जगत्प्रसूतेर्माता च तेषां स सुरासुराणाम्॥२४॥
पत्नी च शम्भोः पुरुषस्य धीमतो, गीता पुराणे प्रकृतिः परा या।
दक्षस्य कोपाद्धिमवद्गृहं सा, कार्यार्थमायात्त्रिदिवौकसां हि॥२५॥
विमानपृष्ठे मणिहेमजुष्टे, स्थिता वलच्चामरवीजिताङ्गी।
सर्व्वर्त्तुपुष्पां सुसुगन्धमालां, प्रगृह्य देवी प्रसभं प्रतस्थे॥२६॥

गन्धर्व, यक्ष, सर्प तथा किन्नरगण भी विभिन्न मनोहर उत्तम वेश धारण करके स्वर्ग से विमान पर बैठकर हिमालय आये। समस्त सुर प्रवर लोगों में से देवराज शचीपति इन्द्र अत्यधिक उज्ज्वल रूप से दिखाई दे रहे थे। उन्होंने वहां विराजमान होकर अपने प्रभाव, बल तथा ऐश्वर्य से सभी को प्रमुदित करते हुये उस स्वयंवरभूमि को अलंकृत किया था, जो त्रैलोक्य हेतु, जगत् को उत्पन्न करने वाली, सुरों-असुरों की माता, पुरुषप्रधान शम्भु की पत्नी तथा पुराणों में वर्णित पराप्रकृति हैं, वे भगवती सती देवी दक्ष के कोप के कारण देवों के कार्यसाधनार्थ हिमालय के घर में उत्पन्न हो गयी थीं। वे गिरिनन्दिनी तब मणि-स्वर्णमय विमान पर बैठकर तथा चामरों द्वारा वीजित होकर सर्वरत्नसंभूत पुष्पमयी सुगन्धमाला लेकर स्वयंवर स्थल में सद्यः आ गईं।।२३-२६।।

ब्रह्मोवाच

मालां प्रगृह्य देव्यान्तु स्थितायां देवसंसदि। शक्राद्यैरागतैर्देवैः स्वयंवर उपागते॥२७॥

देव्या जिज्ञासया शम्भुर्भूत्वा पञ्चशिख शिशुः।
उत्सङ्गतलसंसुप्तो बभूव सहसा विभुः॥२८॥
ततो ददर्श तं देवी शिशुं पञ्चशिखं स्थितम्।
ज्ञात्वा तं समवध्यानाज्जगृहे प्रीतिसंयुता॥२९॥
अथ सा शुद्धसङ्कल्पा काङ्क्षितं प्राप्य सत्पतिम्।
निवृत्ता च तदा तस्थौ कृत्वा सा हृदि तं विभुम्॥३०॥

ब्रह्मा कहते हैं—देवी गिरिनन्दिनी माला लेकर इन्द्रादि देवताओं से भरी स्वयंवर सभा में पहुंची। शंभु ने उनके मन का अभिप्राय जानने के लिये एक पञ्चशिखाधारी शिशु होकर देवी की गोद में सोये हुये विराजमान हो गये। देवी ने जब ऐसे बालक को देखा, तब उन्होंने ध्यान बल से जान कर उनको प्रेम पूर्वक ग्रहण किया। तदनन्तर शुद्ध संकल्प वाली गिरिराज पुत्री ने अपने इच्छित पतिदेव को पाकर उनको हृदय में धारण किया तथा वहां से उनको हृदय में लगाये निवृत्त हो गयीं।।२७-३०।।

ततो दृष्ट्वा शिशुं देवा देव्या उत्सङ्गवर्त्तिनम्।
कोऽयमत्रेति संमन्त्र्य चुक्रुशुर्भृशमोहिताः॥३१॥
वज्रमाहारयत्तस्य बाहुमुत्क्षिप्य वृत्रहा। स बाहुरुत्थितस्तस्य तथैव समतिष्ठत॥३२॥
स्तम्भितः शिशुरूपेण देवदेवेन शम्भुना। वज्रं क्षेप्तुं न शशाक वृत्रहा चलितुं न च॥३३॥
भगो नाम ततो देव आदित्यः काश्यपो बली।
उत्क्षिप्य (चिक्षेप) आयुधं दीप्तं छेत्तुमिच्छन् विमोहितः॥३४॥
तस्यापि भगवान् बाहुं तथैवास्तम्भयत्तदा। बलं तेजश्च योगश्च तथैवास्तम्भयद्विभुः॥३५॥
शिरः प्रकम्पयन् विष्णुः शङ्करं समवैक्षत। अथ तेषु स्थितेष्वेवं मन्युमत्सु सुरेषु च॥३६॥

तत्पश्चात् देवगण उन शिशु को देवी की गोद में देखकर मोहवश आक्रोशित हो गये कि यह कौन है? तब शिशु को आहत करने के लिये वज्रपाणि इन्द्र ने अपना वज्र उठाया, लेकिन उनका वह उठा हाथ उसी तरह स्तम्भित हो गया। शिशुरूपी शिव के प्रभाव से इन्द्र का यह हस्त स्ताम्भन हो गया था। वृत्रनाशक इन्द्र का ऐसा हस्त स्तंभन हुआ कि वे वज्राघात ही नहीं कर सके। तब भग नामक बली आदित्य ने दीप्त आयुध उठाकर मोह के कारण शिशु को आहत करना चाहा। भगवान् शिव ने उनके बल, तेज तथा योगप्रभाव को स्तम्भित कर दिया। तब विष्णु शिर हिलाकर शंकर को देखने लगे। एवंविध समस्त देवसमाज ही वहां क्रुद्धभाव में पड़ गया था।।३१-३६।।

अहं परमसंविग्नो ध्यानमास्थाय सादरम्। बुद्धवान् देवदेवेशमुमोत्सङ्गे समास्थितम्॥३७॥
ज्ञात्वाऽहं परमेशानं शीघ्रमुत्थाय सादरम्।
ववन्दे चरणं शम्भोः स्तुतवांस्तमहं द्विजाः॥३८॥

इससे मैं परम उद्विग्न हो गया। मैंने ध्यान द्वारा यह समझ लिया कि देवाधिदेव शंकर ही शैलराज की

गोद में अवस्थित हैं। जब मैं उनको पहचान गया, तब मैंने उठ कर सादर शंभु की चरणवन्दना किया था। हे ब्राह्मणवृन्द! अन्त में मैंने प्राचीन साम संगीत एवं विविध पुण्य आख्यान तथा अत्यन्त गुह्य नामों से उनका स्तव किया।।३७-३८।।

पुराणैः सामसङ्गीतैः पुण्याख्यैर्गुह्यनामभिः।
अजस्त्वमजरो देवः स्रष्टा विभुः परापरम्॥३९॥
प्रधानं पुरुषो यस्त्वं ब्रह्म ध्येयं तदक्षरम्। अमृतं परमात्मा च ईश्वरः कारणं महत्॥४०॥
ब्रह्मसृक् प्रकृतेः स्रष्टा सर्व्वकृतप्रकृतेः परः। इयञ्च प्रकृतिर्देवी सदा ते सृष्टिकारणम्॥४१॥
पत्नीरूपं समास्थाय जगत्कारणमागता। नमस्तुभ्यं महादेव देव्या वै सहिताय च॥४२॥
प्रसादात्तव देवेश नियोगाच्च मया प्रजाः। देवाद्यास्तु इमाः सृष्टा मूढास्त्वद्योगमायया॥४३॥

मैंने (ब्रह्मा ने) कहा—हे देव! आप अज, अजर, स्रष्टा, विभु, परात्पर, प्रधान, पुरुष तथा ध्येय अक्षर परब्रह्म हैं। आपका अन्त (मरण) कभी नहीं है। आप परमात्मा, परम कारणरूप ईश्वर हैं। आप ब्रह्मा की भी सृष्टि करते हैं। आप प्रकृति के भी पहले स्थित, सर्वकृत, सर्वस्रष्टा हैं। यह प्रकृति देवी सृष्टि के लिये आपकी ही पत्नी होकर समस्त जगत् की कारण हो जाती हैं। हे महादेव! मेरा देवी सहित आपको नमस्कार! हे देवेश! आपके नियोग क्रम से, आपके ही अनुग्रह से मैंने निखिल मूढ़ प्रजावर्ग की सृष्टि किया है। आपकी योगमाया से मैंने इन मूढ़ों को रचा है।।३९-४३।।

कुरु प्रसादमेतेषां यथापूर्व्वं भवन्त्विमे। तत एवमहं विप्रा विज्ञाप्य परमेश्वरम्॥४४॥
स्तम्भितान् सर्व्वदेवांस्तानिदं चाहं तदोक्तवान्।
मूढाश्च देवताः सर्व्वा नैनं बुध्यत शङ्करम्॥४५॥
गच्छध्वं शरणं शीघ्रमेनमेव महेश्वरम्। सार्धं मयैव देवेशं परमात्मानमव्ययम्॥४६॥

"हे देव! आप प्रसन्न हो जायें। ये मूढ़ देवता पूर्ववत् प्रकृतिस्थ (स्वस्थ) हो जायें।" हे विप्रगण! मैंने तब महेश्वर से इस प्रकार से निवेदन करने के पश्चात् उन सभी स्तम्भित देवताओं से कहा—"हे देवताओं! तुम सब मूढ़त्व को प्राप्त हो। ये देवाधिदेव शंकर हैं। तुम लोग इनको जान नहीं सके। अतः सब लोग मेरे साथ आकर इन देवदेव परमात्मा अव्यय महेश्वर की शरण ग्रहण करो"।।४४-४६।।

ततस्ते स्तम्भिताः सर्व्वे तथैव त्रिदिवौकसः। प्रणेमुर्मनसा सर्व्वं भावशुद्धेन चेतसा॥४७॥
अथ तेषां प्रसन्नोऽभूद्देवदेवो महेश्वरः। यथापूर्व्वं चकाराऽऽशु देवतानां तनूस्तदा॥४८॥
तत एव प्रवृत्ते तु सर्व्वदेवनिवारणे। वपुश्चकार देवेशस्त्र्यक्षं परममद्भुतम्॥४९॥
तेजसा तस्य ते ध्वस्ताश्चक्षुः सर्व्वे न्यमीलयन्।
तेभ्यः स परमं चक्षुः स्ववपुदृष्टिशक्तिमत्॥५०॥
प्रादात् परमदेवेशमपश्यन्स्ते तदा विभुम्। ते दृष्ट्वा परमेशानं तृतीयेक्षणधारिणम्॥५१॥
शक्राद्या मेनिरे देवाः सर्व्व एव सुरेश्वराः। तस्य देवी तदा हृष्या समक्षं त्रिदिवौकसाम्॥५२॥

पादयोः स्थापयामास स्त्रङ्मालाममितद्युतिः।
साधु साध्विति ते होचुः सर्वे देवाः पुनर्विभुम्॥५३॥

तत्पश्चात् उन सभी स्तम्भित स्वर्ग में रहने वाले देवताओं ने शुद्ध भाव एवं शुद्ध चित्त से तथा मन एकाग्र करके उन प्रभु शंकर को प्रणाम किया! तब देवदेव महेश्वर उन पर प्रसन्न हो गये। उन्होंने सभी देवगण का शरीर पूर्ववत् कर दिया। इस प्रकार देवताओं में शान्ति स्थापित होने पर देवदेव त्रिलोचन ने अपना रूप ग्रहण किया। उनके तेज से सभी के नेत्र चौंधियाने लगे। सभी ने अपने नेत्रों को बंद कर लिया। तब उस सभा में महेश्वर ने देवताओं को ऐसे चक्षु प्रदान किये, जिससे वे उनको प्रत्यक्ष देख सकें। तब सभी विभु शिव को देख सके। सभी ने, इन्द्रादि देवगण ने उन परमेश्वर को देख कर पहचाना कि ये ही त्रिलोचन हैं। उस समय शिवपत्नी गिरिजा ने देवताओं के सामने परम प्रसन्नता पूर्वक देवदेव के चरणों में वरमाला रखा। यह देखकर समस्त देवसमाज साधुवाद देने लगा।।४७-५३।।

सह देव्या नमश्चक्रुः शिरोभिर्भूतलाश्रितैः। अथास्मिन्नन्तरे विप्रास्तमहं दैवतैः सह॥५४॥

हिमवन्तं महाशैलमुक्तवांश्च महाद्युतिम्।
श्लाघ्यः पूज्यश्च वन्द्यश्च सर्व्वेषां त्वं महानसि॥५५॥
शर्व्वेण सह सम्बन्धो यस्य तेऽभ्युदयो महान्।
क्रियतां चारुरुद्वाहः क्रिमर्थं स्थीयते परम्।
ततः प्रणम्य हिमवांस्तदा मां प्रत्यभाषत॥५६॥

उन्होंने अपने मस्तक पृथिवी पर टेक कर भगवान् शिव को प्रणाम किया! हे विप्रवृन्द! उसी समय मैंने देवगण के साथ महाद्युति महापर्वत हिमालय से कहा—"हे शैलराज! भगवान् शंकर के साथ आपका जामाता सम्बन्ध स्थापित हो गया है। यह आपका महान् अभ्युदय कहा जायेगा। अब आप सबके सम्माननीय हैं। पूज्य तथा वन्द्य हैं। आप वास्तव में हम लोगों के लिये महान् हैं। अब आप यह विवाह सम्बन्ध की विधि सम्पन्न करिये। अब क्यों विलम्ब कर रहे हैं?" मेरे यह कहने पर हिमालय ने मुझे प्रणाम करके उत्तर दिया।।५४-५६।।

हिमवानुवाच

त्वमेव कारणं देव यस्य सर्व्वोदये मम। प्रसादः सहसोत्पन्नो हेतुश्चापि त्वमेव हि।
उद्वाहस्तु यदा यादृक् तद्वि (क्तं वि) धत्स्व पितामह॥५७॥

हिमवान् कहते हैं—हे देव! आप ही मेरे समस्त अभ्युदय के कारण हैं। मुझमें जो प्रसन्नता जन्मी है, इसके हेतु आप ही हैं। अब जिस प्रकार से यह विवाह सम्पन्न हो सके, आप वह करिये।।५७।।

ब्रह्मोवाच

तत एवं वयः श्रुत्वा गिरिराजस्य भो द्विजाः।
उद्वाहः क्रियतां देव इत्यहं चोक्तवान् विभुम्॥५८॥

मामाह शङ्करो देवो यथेष्टमिति लोकपः।
तत्क्षणाच्च ततो विप्रा अस्माभिर्निर्म्मितं पुरम्॥५९॥
उद्वाहार्थं महेशस्य नानारत्नोपशोभितम्। रत्नानि मणयश्चित्रा हेममौक्तिकमेव च॥६०॥
मूर्त्तिमन्त उपागम्य अलञ्चक्रुः पुरोत्तमम्। चित्रा मारकती भूमिः सुवर्णस्तम्भशोभिता॥६१॥
भास्वत्स्फटिकभित्तिश्च मुक्ताहारप्रलम्बिता।
तस्मिन् द्वारि पुरे रम्य उद्वाहार्थं विनिर्म्मिता॥६२॥

मैंने गिरिराज का यह कथन सुनकर देवदेव शंकर से कहा—"कृपया विवाह का अनुष्ठान करिये। लोकपति शंकर ने उत्तर में मुझसे कहा—"ठीक है"। तत्क्षण महेश्वर के विवाहार्थ हमने नानारत्नमय एक पुर का निर्माण किया। समस्त रत्न, विचित्र मणियां तथा हेममुक्ता आदि ने मानों मूर्त्तिमान होकर वहां आकर उस पुर को अलंकृत कर दिया था। विचित्र मरकतभूमि स्वर्ण से मढ़ी शोभित हो रही थी। इस पुरी की स्फटिकमयी समस्त उज्ज्वल दीवार ऐसी थी, जिस पर मुक्ता की झालर लटक रही थी। देवदेव महात्मा महेश्वर के विवाह के लिये बना यह पुर अत्यधिक शोभायमान हो रहा था। वहां पर पुर के द्वार पर सोम तथा आदित्य के समान दो मणियां लगी थीं, जो शैत्य तथा ताप का वितरण कर रही थीं।।५८-६२।।

शुशुभे देवदेवस्य महेशस्य महात्मनः। सोमादित्यौ समं तत्र तापयन्तौ महामणी॥६३॥
सौरभेयं मनोरम्यं गन्धमादाय मारुतः। प्रववौ सुखसंस्पर्शो भवभक्तिं प्रदर्शयन्॥६४॥
समुद्रास्तत्र चत्वारः शक्राद्याश्च सुरोत्तमाः। देवनद्यो महानद्यः सिद्धा मुनय एव च॥६५॥
गन्धर्व्वाप्सरसः सर्व्वे नागा यक्षाः सराक्षसाः।
औदकाः खेचराश्चान्ये किन्नरा देवचारणाः॥६६॥
तुम्बुरुर्नारदो हाहाहूहूश्चैव तु सामगाः।
रम्याण्यादाय वाद्यानि तत्राऽऽजग्मुस्तदा पुरम्॥६७॥
ऋषयस्तु कथास्तत्र वेदगीतास्तपोधनाः। पुण्यान् वैवाहिकान्मन्त्राञ्जेपुः संहृष्टमानसाः॥६८॥
जगतो मातरः सर्व्वा देवकन्याश्च कृत्स्नशः।
गायन्ति हर्षिताः सर्व्वा उद्वाहे परमेष्ठिनः॥६९॥

वहां शिव के प्रति भक्ति दर्शाता हुआ सुखस्पर्श वायु उत्तम गन्ध के साथ बहने लगा। चारों सागर, इन्द्रादि श्रेष्ठ देवता, समस्त देवनदियां, नद-नदी, सिद्ध, मुनिगण, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष, राक्षस, जलचर, आकाशचर, किन्नर, देव-दानव तथा नारद-तुम्बुरु-हाहा-हूहू आदि सामगायी गन्धर्व, विद्याधरगण विविध मधुर वाद्य लिये हुये उस समय उस पुर में पहुंचे। तपस्वी ऋषिगण वेद सम्मत अनेक कथाओं की आलोचना करने लगे। वहां अनेक ऋषिगण प्रसन्न होकर पवित्र मन्त्रों का उच्चारण कर रहे थे। उन परमेष्ठि के विवाह के दिन जगन्माता देवकन्यायें प्रसन्न होकर विविध मंगल गीत गाने लगीं।।६३-६९।।

ऋतवः षट् समं तत्र नानागन्धसुखावहाः। उद्वाहः शङ्करस्येति मूर्त्तिमन्त उपस्थिताः॥७०॥

नीलजीमूतसङ्काशैर्मन्त्रध्वनिप्रहर्षिभिः। केकायमानैः शिखिभिर्नृत्यमानैश्च सर्वशः॥७१॥
विलोलपिङ्गलस्पष्टविद्युल्लेखाविहासिता। कुमुदापीडशुक्लाभिर्बलाकाभिश्च शोभिता॥७२॥
प्रत्यग्रसञ्जातशिलीन्ध्रकन्दलीलताद्रुमाद्युद्गतपल्लवा शुभा।
शुभाम्बुधाराप्रणयप्रबोधितैर्महालसैर्भेकगणैश्च नादिता॥७३॥
प्रियेषु मानोद्धतमानसानां, मनस्विनीनामपि कामिनीनाम्।
मयूरकेकाभिरुतैः क्षणेन, मनोहरैर्मानविभङ्गहेतुभिः॥७४॥
तथा विवर्णोज्ज्वलचारुमूर्त्तिना, शशाङ्कलेखाकुटिलेन सर्वतः।
पयोदसङ्घातसमीपवर्त्तिना, महेन्द्रचापेन भृशं विराजिता॥७५॥

शंकर के विवाह में सभी छः ऋतु मूर्तिमान होकर अपने-अपने जलधर के विविध गन्ध-पुष्प लाने लगे। तब नील जलधर के समान द्युतिपूर्ण मयूरों का झुण्ड वहां मन्त्रध्वनि सुनकर चतुर्दिक् अपना केका शब्द करते हुये नृत्य करने लगा। उस समय वहां वर्षा ऋतु अपनी चंचल एवं विलोल पिंगलवर्ण विद्युल्लेखा के साथ विभासित होने लगी। वहां पर कुमुद पुष्प रचित शुक्लवर्ण बलाका श्रेणी (बगुले) गगनतल पर मंडराने लगी। जगह-जगह पर शिलिन्ध्र, कदली आदि नाना तरु एवं लताओं की नयी कोपलें शोभित हो रही थीं। कहीं पर अत्यन्त आलसी मेंढक नव मेघ के आगमन पर जाग गये तथा अपनी ध्वनि करने लगे। कहीं पर मयूर मनोहर केका ध्वनि कर रहे थे, प्रियतम से मनौवल कराने वाली प्रेयसियों का मान क्षणकाल में ही भंग हो जा रहा था। उस समय शशांकलेखा के समान कुटिलाकृति (टेढ़ी आकृति वाला) विविध वर्णोज्ज्वल चारुदर्शन इन्द्रधनुष जीमूतवृन्द (मेघवृन्द) के पास अधिक शोभित हो रहा था।।७०-७५।।

विचित्रपुष्पाम्बुभवैः सुगन्धिभिर्घनाम्बुसम्पर्कतया सुशीतलैः।
विकम्पयन्ती पवनैर्मनोहरैः, सुराङ्गनानामलकावलीः शुभाः॥७६॥
गर्जत्पयोदस्थगितेन्दुबिम्बा, नवाम्बुसिक्तोदकचारुदूर्वा।
निरीक्षिता सादरमुत्सुकाभिर्निश्वासधूम्रं पथिकाङ्गनाभिः॥७७॥
हंसनूपुरशब्दाढ्या समुन्नतपयोधरा। चलद्विद्युल्लताहारा स्पष्टपद्मविलोचना॥७८॥
असितजलदधीरध्वानवित्रस्तहंसा, विमलसलिलधारोत्पातनम्रोत्पलाग्रा।
सुरभिकुसुमरेणुक्लृप्तसर्वाङ्गशोभा, गिरिदुहितृविवाहे प्रावृडाविर्बभूव॥७९॥

वहां विविध पुष्पों के रस की सुगन्धि से युक्त पवन घन मेघों के सम्पर्क के कारण सुशीतल होकर अतीव मधुर भाव से प्रवाहित था। उस पवन के झकोरों से देवनारियों की सुन्दर अलकें कम्पित होने लगीं। आकाश में गरजते बादलों ने चन्द्रमा को ढंक लिया था। ओस के कणों से, वहां उस शुभ जल से दूर्वादल सिक्त हो रहा था। पथिक लोग उत्कण्ठित निःश्वास छोड़ते हुये सादर इस वर्षासमागम को देखने लगे। वर्षा मानों किसी रमणी जैसी प्रतीत हो रही थी। वर्षा में हंसध्वनि ही उसकी नूपुरध्वनि थी। समुन्नत मेघ उसके स्तन थे। चंचल विद्युत् की चमक ही उस वर्षारूपी रमणी का हार था। खिले कमल उसके विशाल नेत्र थे। नील मेघसमूह की धीर गड़गड़ाहट सुन कर हंसों का झुण्ड त्रस्त होने लगा। निरन्तर आकाश से जलधारा गिरने के कारण

कमलों के पत्रों का अग्रभाग झुक गया। सुरभित कुसुमरेणु (पुष्पपराग) सर्वांग में लिप्त होने लगा। गिरिकन्या के विवाह के दिन इस विधि से वर्षारूपी कन्या का आगमन हुआ था।।७६-७९।।

मेघकञ्चुकनिर्म्मुक्ता पद्मकोशोद्भवस्तनी। हंसनूपुरनिर्ह्रादा सर्वशस्यदिगन्तरा॥८०॥
विस्तीर्णपुलिनश्रोणी कूजत्सारसमेखला। प्रफुल्लेन्दीवरश्याम विलोचनमनोहरा॥८१॥
पक्वबिम्बाधरपुटा कुन्ददन्तप्रहासिनी। नवश्यामलताश्यामसोमराजिपुरस्कृता॥८२॥

(अब शरद आगमन का वर्णन सुनिये)। वर्षा ऋतु व्यतीत हो जाने पर पुनः अनुरागिणी मन का हरण करने वाली कामिनी के समान शरद उपस्थित हो गया। इस ऋतु में मेघों का कञ्चुक खुल गया। सभी कमलकोष जो शरद के स्तन के समान प्रतीत हो रहे थे, उन्मुक्त हो उठे। शरद्वधू के नूपुर की ध्वनि ऐसा प्रतीत हो रहा हंसों का शब्द चारों ओर सुनाई दे रहा था। वहां शब्द करती सारसों की पंक्ति शरद्वधू की मेखला जैसी प्रतीत हो रही थी। खिले हुये कमलों का नीलवर्ण उस शरद्वधू की शोभा नीलनयन रूप से मनोहर बना रहे थे। पके बेल के फल इस शरद् ऋतु रूप वधू की अधर श्रेणी का अनुकरण कर रहे थे। कुन्द पुष्प के गुच्छे इस वधू के दांतों का आभास दे रहे थे। नयी उगी श्यामलता (वनस्पतियों का श्याम वर्ण) उस शरद्वधू की रोमावलि का आभास दे रही थी।।८०-८२।।

चन्द्रांशुहारवर्गेण कण्ठोरस्थलगामिना। प्रह्लादयन्ती चेतांसि सर्वेषां त्रिदिवौकसाम्॥८३॥
समदालिकुलोद्गीतमधुरस्वरभाषिणी। चलत्कुमुदसङ्घातचारुकुण्डलशोभिनी॥८४॥
रक्ताशोकप्रशाखोत्थपल्लवाङ्गुलिधारिणी। तत्पुष्पसञ्चयमयैर्वासोभिः समलङ्कृता॥८५॥
रक्तोत्पलाग्रचरणा जातीपुष्पनखावली। कदलीस्तम्भवामोरूः शशाङ्कवदना तथा॥८६॥
सर्वलक्षणसम्पन्ना सर्वालङ्कारभूषिता। प्रेम्णा स्पृशति कान्तेव सानुरागा मनोरमा॥८७॥

उस समय चन्द्रकिरणें उस शरद्वधू के गले से लटके हार की नकल कर रही थीं। इस शरद्वधू (शरद ऋतु) को देखकर समस्त स्वर्ग निवासियों का चित्त आह्लादित हो उठा। मदमत्त भ्रमरों के झुंड का गुंजन ऐसा लग रहा था, मानों वह शरद्वधू मधुर वाक्य कह रही हो। चंचल कुमुद श्रेणी उसके कुण्डल लग रहे थे। लाल अशोक की शाखा में उगे पत्ते उस वधू की उंगलियां लग रही थीं। अशोक के फैले हुये पुष्पपुंज उस वधू के वस्त्र से प्रतीत हो रहे थे। लाल कमल मानों उसके तलवे हों, जातीपुष्प नख हो, कदली का तना मानों उसका सुन्दर उरु हो तथा उगे हुये चन्द्रमा उस शरद्वधू का कमनीय सौम्य चेहरा हो। वस्तुतः उस समय शरद ऋतु ने मानों सर्वलक्षणान्विता, सर्वभूषण भूषिता प्रेमिका कामिनी के समान सभी के मन को आकर्षित कर लिया था। मानों शरद ऋतु अनुरागिणी रमणी के समान प्रेम का स्पर्श दे रही हो।।८३-८७।।

निर्म्मुक्तासितमेघकञ्चुकपटा पूर्णेन्दुबिम्बानना,
नीलाम्भोजविलोचना रविकरप्रोद्भिन्नपद्मस्तनी।
नानापुष्परजः सुगन्धिपवनप्रह्लादनी चेतसां,
तत्राऽऽसीत् कलहंसनूपुररवादेव्या विवाहे शरत्॥८८॥
अत्यर्थशीतलाम्भोभिः प्लावयन्तौ दिशः सदा।
ऋतू हेमन्तशिशिरौ आजग्मतुरतिद्युती॥८९॥

ताभ्यामृतुभ्यां सम्प्राप्तो हिमवान् स नगोत्तमः।
प्रालेयचूर्णवर्षिभ्यां क्षिप्रं रौप्यहरो बभौ॥९०॥
तेन प्रालेयवर्षेण घनेनैव हिमालयः। अगाधेन तदा रेजे क्षीरोद इव सागरः॥९१॥
ऋतुपर्य्यायसम्प्राप्तो बभूव स महागिरिः। साधूपचारात् सहसा कृतार्थ इव दुर्जनः॥९२॥
प्रालेयपटलच्छन्नैः शृङ्गैस्तु शुशुभे नगः। छत्रैरिव महाभागैः पाण्डरैः पृथिवीपतिः॥९३॥

देवी के विवाह के दिन मेघावरण रहित पूर्णेन्दु वदना, नीलपद्मनयना, सूर्य किरण से खिल गये कमल जैसे स्तनों वाली, पुष्प जैसी सुगन्ध से सुगन्धित, चित्त को प्रसन्न करने वाली शरद कामिनी भी हंसों की ध्वनि रूप (हंस कलरव ही मानों नूपुर है) नूपुर शब्द से सभी दिशाओं को मुखरित करती हुई आ गई। तदनन्तर अत्यन्त प्रखर हेमन्त तथा शिशिर ऋतु शीतमय हिम से दसों दिशाओं को आप्लावित करती आ गई। तब अत्यन्त शीघ्रता से सर्वत्र तुषार चूर्ण बरसने लगे। उस अतिघन तुषार चूर्ण बरसने से हिमालय पर्वत क्षीरसागर जैसा प्रतीत हो रहा था। एवंविध वह महापर्वत ऐसा लगने लगा, मानों साधुजन के उत्तम उपचार से दुष्ट भी कृतार्थ हो गया। ऐसे इन ऋतु विपर्यय के आने से वह पर्वत कृतार्थ हो उठा। उस पर्वत के शिखर तुषारपटल से ढंक से गये। देख कर प्रतीत होता था मानों राजा पाण्डुरवर्ण के विपुलाकृति छत्र से आच्छादित होकर शोभित हो रहा हो!।।८८-९३।।

मनोभवोद्रेककराः सुराणां सुराङ्गनानाञ्च मुहुः समीराः।
स्वच्छाम्बुपूर्णाश्च तथा नलिन्यः पद्मोत्पलानां कुसुमैरुपेताः॥९४॥
विवाहे गुरुकन्याया वसन्तः समगादृतुः।
इषत्समुद्भिन्नपयोधराग्रा नार्य्यो यथा रम्यतरा बभूवुः॥९५॥
नात्युष्णशीतानि पयःसरांसि किञ्जल्कचूर्णैः कपिलीकृतानि।
चक्राह्वयुग्मैरुपनादितानि ययुः प्रहृष्टाः सुरदन्तिमुख्याः॥९६॥

इस समय देवताओं तथा देवनारियों में मदन वेग का उद्दीपन करने वाला पवन धीरे-धीरे बहने लगा। सभी सरोवर-जलाशय स्वयं जल से भर गये। पद्म-उत्पल आदि पुष्प समूह खिल उठे थे। पर्वत नन्दिनी के विवाह में अब वसन्त ऋतु आ गया था। उस समय स्त्रियों के स्तनों का अग्रभाग कुछ उभर गया था, इससे सभी स्त्रियां रमणीय शोभायुता हो गयी थीं। अब सरोवरों का जल न तो अधिक ठंडा था, न अधिक उष्ण था। इस कारण कमल किंजल्क (पराग) के जल में गिरने के कारण उस चूर्ण से सरोवरों का जल कपिल वर्ण लग रहा था। जलाशयों में अब चक्रवाक पक्षी के जोड़े निनाद करते घूमने लगे थे। देवताओं के गजगण प्रसन्न होकर उसमें विचर रहे थे।।९४-९६।।

प्रियङ्गूश्चूततरवश्चूतांश्चापि प्रियङ्गवः। तर्ज्जयन्त इवान्योन्यं मञ्जरीभिश्चकाशिरे॥९७॥
हिमशृङ्गेषु शुक्लेषु तिलकाः कुसुमोत्कराः।
शुशुभुः कार्य्यमुद्दिश्य वृद्धा इव समागताः॥९८॥
फुल्लाशोकलतास्तत्र रेजिरे शालसंश्रिताः। कामिन्य इव कान्तानां कण्ठालम्बितबाहवः॥९९॥

प्रियंगु एवं आम्रतरुओं ने अपनी मंजरियों से मानों एक-दूसरे से होड़ करना प्रारम्भ करके उनको विकसित किया था। शुभ्रवर्ण हिमशृंगों पर उगे पुष्पवर्षा करने वाले (प्रचुर पुष्प से चूर्ण) तिलक वृक्ष ऐसे शोभायमान हो रहे थे, मानों कार्य हेतु समागत वृद्ध लोग खड़े हों। शाल वृक्षों से लिपटी हुई प्रफुल्ल अशोक की लता ऐसी लग रही थी, मानों वे प्रियतम के गले में अपनी बाहें डाले प्रेयसी जैसी हों।।९७-९९।।

तस्मिन्नृतौ शुभ्रकदम्बनीपास्तालास्तमालाः सरलाः कपित्थाः॥१००॥
अशोकसर्ज्जार्ज्जुनकोविदाराः पुन्नागनागेश्वरकर्णिकाराः।
लवङ्गतालागुरुसप्तपर्णा न्यग्रोधशोभाञ्जननारिकेलाः।१०१॥
वृक्षास्तथाऽन्ये फलपुष्पवन्तो दृश्या बभूवुः सुमनोहराङ्गाः।
जलाशयाश्चैव सुवर्णतोयाश्चक्राङ्गकारण्डवहंसजुष्टाः॥१०२॥
कोयष्टिदात्यूहबलाकयुक्ता दृश्यास्तु पद्मोत्पलमीनपूर्णाः।
खगाश्च नानाविधभूषिताङ्गा दृश्यास्तु वृक्षेषु सुचित्रपक्षाः॥१०३॥
क्रीडासु युक्तानथ तर्ज्जयन्तः कुर्वन्ति शब्दं मदनेरिताङ्गाः।
तस्मिन् गिरावद्रिसुताविवाहे ववुश्च वाताः सुखशीतलाङ्गाः॥१०४॥
पुष्पाणि शुभ्राण्यपि पातयन्तः शनैर्नगेभ्यो मलयाद्रिजाताः।
तथैव सर्वे ऋतवश्च पुण्याश्चकाशिरेऽन्योन्यविमिश्रिताङ्गाः॥१०५॥

वसन्त समागम होने के साथ ही कदम्ब, नीम, ताल, तमाल, सरल, अशोक, कैंथा, साखू, अर्जुन, कचनार, पुन्नाग, नागकेशर, कनकचम्पा, लवंग, अगर, छितवन, वट, सैजन, नारिकेल तथा अन्य फल-पुष्पयुक्त वृक्ष भी मनोहर रूप से लक्षित हो रहे थे। जलाशय समूह की जलराशि भी इस ऋतु में स्वच्छ रूप से शोभायमान थी। चक्रवाक, कारण्डव, हंस, टिट्टिभ, कठफोड़वा तथा सारसों से युक्त, कमल, कुमुद तथा मत्स्यों से भरे तालाब लक्षित हो रहे थे। इस ऋतु में विचित्र पंखों से सजे पक्षियों के सभी अंग नाना आभूषणों से भूषित से लग रहे थे। वे इस ऋतु के प्रभाव से कामवेग के कारण आकुल होकर कामक्रीड़ा में लगे अन्य पक्षियों के प्रति मानों असहिष्णु होकर उनको धमकाते कूंजन कर रहे हों। शैलनन्दिनी के विवाहोत्सव काल में सुख शीतल मलय पवन अपने झकोरों से पर्वतों पर उगे शुभ्र पुष्पों को पृथिवी पर गिराते मन्द-मन्द बह रहा था। इस प्रकार समस्त ऋतु समूह एक साथ मिल कर अत्यन्त पवित्र रूप से वहां प्रवर्तित थे।।१००-१०५।।

येषां सुलिङ्गानि च कीर्त्तितानि, ते तत्र आसन् सुमनोज्ञरूपाः॥१०६॥
समदालिकुलोद्गीतशिलाकुसुमसञ्चयैः। परस्परं हि मालत्यो भावयन्त्यो विरेजिरे॥१०७॥
नीलानि नीलाम्बुरुहैः पयांसि, गौराणि गौरैश्च मृणालदण्डैः।
रक्तैश्च रक्तानि भृशं कृतानि, मत्तद्विरेफावलिजुष्टपत्रैः॥१०८॥
हैमानि विस्तीर्णजलेषु केषुचिन्निरन्तरं चारुतराणि केषुचित्।
वैदूर्य्यनालानि सरःसु केषुचित्प्रजज्ञिरे पद्मवनानि सर्वतः॥१०९॥

वाप्यस्तत्राभवन्रम्याः कमलोत्पलपुष्पिताः। नानाविहङ्गसंजुष्टा हैमसोपानपङ्क्तयः॥११०॥

श्रृङ्गाणि तस्य तु गिरेः कर्णिकारैः सुपुष्पितैः।
समुच्छ्रितान्यविरलैर्हेमानीव बभुर्द्विजाः॥१११॥

ईषद्विभिन्नकुसुमैः पाटलैश्चापि पाटलाः। सम्बभूवुर्दिशः सर्वाः पवनाकम्पितमूर्त्तिभिः॥११२॥

पूर्व में जिन सब ऋतुओं के लक्षणों को कहा गया है, उन सबने वहां अत्यन्त मनोहर रूप से स्वयं को व्यक्त किया था। उस समय मालती लतायें मदमत्त भ्रमरों के गुंजार के कारण तथा शिलाओं पर गिरी पुष्पराशि के कारण परस्परतः शोभा का विस्तार कर रही थीं। मानों वे एक दूसरे से वहां की शोभा के विषय में चिन्तन करते विराज रही हों। जलाशय की जलराशि कहीं पर मत्त भ्रमरों से भरे नीलकमल की छाया से नीलवर्ण लग रही थी तो कहीं गौरवर्ण के मृणालदण्ड के कारण गौरवर्ण, कहीं रक्तवर्ण कमल की छाया के कारण रक्तवर्ण से शोभायमान हो रही थीं। प्रभूत जल से भरे जलाशय में पद्मवन श्रेणी कहीं कनक वर्ण, कहीं चारुतर वर्ण, कहीं वैदूर्य वर्ण की नाल के साथ उद्भूत हो रही थी। उस समय सभी वापी (बावली) नाना प्रकार के कमल-उत्पल से मण्डित होकर प्रचुर पक्षियों से परिवृत तथा सुन्दर स्वर्ण सोपान पंक्तियों से अलंकृत हो गयी। हे ब्राह्मणों! हिमालय के सभी स्वर्ण शिखर घन पुष्पित कर्णिकाओं से भर उठे। वायु से कम्पित होकर तनिक खिले पाटल पुष्पों की छवि से सभी दिशायें पाटल वर्ण हो उठीं।।१०६-११२।।

कृष्णार्ज्जुना दशगुणा नीलाशोकमहीरुहाः।
गिरौ ववृधिरे फुल्लाः स्पर्धयन्तः परस्परम्॥११३॥

वारुरावविजुष्टानि किंशुकानां वनानि च। पर्वतस्य नितम्बेषु सर्वेषु च विरेजिरे॥११४॥

तमालगुल्मैस्तस्यासीऽऽच्छोभा हिमवतस्तदा। नीलजीमूतसङ्घातैर्निलीनैरिव सन्धिषु॥११५॥

कृष्णवर्ण अर्जुन वृक्ष तथा नीलवर्ण अशोक तरु सभी प्रस्फुटित होकर परस्पर स्पर्द्धा के साथ दस-दस गुना बढ़ने लगे। पक्षीगण के उत्तम शब्द से मुखरित होकर अशोकवन श्रेणी पर्वत की प्रत्येक घाटी में विराज रही थी। उस समय ढेरों तमालगुल्मों से हिमालय की ऐसी शोभा हो गई, जिससे प्रतीत होने लगा कि मानों प्रत्येक पर्वत सन्धियों पर छिपा काला बादल हो।।११३-११५।।

निकामपुष्पैः सुविशालशाखैः, समुच्छ्रितैश्चन्दनचम्पकैश्च।
प्रमत्तपुंस्कोकिलसम्प्रलापैर्हिमाचलोऽतीव तदा रराज॥११६॥

श्रुत्वा शब्दं मृदुमदकलं सर्व्वतः कोकिलानां। चञ्चत्पक्षाः सुमधुरतरं नीलकण्ठा विनेदुः।
तेषां शब्दैरुपचितबलः पुष्पचापेषु हस्तः। सज्जीभूतस्त्रिदशवनिता वेद्धुमङ्गेष्वनङ्गः॥११७॥

पटुःसूर्यातपश्चापि प्रायशोऽल्प (ल्पो) जलाशयः।
देवीविवाहसमये ग्रीष्म आगाद्धिमाचलम्॥११८॥

स चापि तरुभिस्तत्र बहुभिः कुसुमोत्करैः।
शोभयामास श्रृङ्गाणि प्रालेयाद्रेः समन्ततः॥११९॥

तथाऽपि च गिरौ तत्र वायवः सुमनोहराः।
ववुः पाटलविस्तीर्णकदम्बार्ज्जुनगन्धिनः॥१२०॥
वाप्यः प्रफुल्लपद्मौघकेसरारुणमूर्त्तयः। अभवंस्तटसङ्घु (जु) ष्टकलहंसकदम्बकाः॥१२१॥

उस समय हिमालयस्थ चन्दन तथा चम्पक वृक्षों की प्रचुर विशाल शाखा पुष्पों से भर गईं। स्थान-स्थान पर प्रमत्त नर कोकिल की उत्तम काकली श्रुतिगोचर हो रही थी। इससे हिमालय अत्यन्त शोभायमान होने लगा। वहां इतःस्ततः कोकिलों की मदभरी ध्वनि सुन कर चंचल पंखों वाले नीलकण्ठ पक्षी भी सुमधुर केका शब्द करने लगे। उनके इन शब्दों से बलीयान कामदेव ने पुष्पधनु धारण किया तथा वे देवांगनाओं को कामबाण से विद्ध करने हेतु उद्यत हो गये। क्रमशः सूर्य ताप प्रखर होने लगा। देवी के विवाह के समय हिमाचल पर ग्रीष्म ऋतु का आगमन हो गया। सरोवरों का जल घटने लगा। इस ग्रीष्म में भी हिमाद्रि के शिखरों पर विविध पुष्प से भरे वृक्ष सुगन्धित हो रहे थे। पाटल, कदम्ब, अर्जुन आदि वृक्षों से उठी सुगन्धि मनोहर मन्द पवन द्वारा पहले की ही तरह हिमाचल पर प्रवहमान हो गयी। समस्त वापी प्रफुल्ल कमलों के केशरों के गिरने से अरुणिमा युक्त लग रही थी। उनके तट कलहंसों तथा कदम्ब वृक्षों से शोभित थे।।११६-१२१।।

तथा कुरबकाश्चापि कुसुमापाण्डुमूर्त्तयः। सर्वेषु नगशृङ्गेषु भ्रमरावलिसेविताः॥१२२॥
बकुलाश्च नितम्बेषु विशालेषु महीभृतः। उत्ससर्ज मनोज्ञानि कुसुमानि समन्ततः॥१२३॥
इति कुसुमविचित्रसर्ववृक्षा विविधविहङ्गमनादरम्यदेशाः।
हिमगिरितनयाविवाहभूत्यै षडुपययुर्ऋतवो मुनिप्रवीराः॥१२४॥
तत एवं प्रवृत्ते तु सर्व्वभूतसमागमे। नानावाद्यसमाकीर्णे अहं तत्र द्विजातयः॥१२५॥
शैलपुत्रीमलंकृत्य योग्याभरणसम्पदा। पुरं प्रवेशितवांस्तां स्वयमादाय भो द्विजाः॥१२६॥

कुरवक वृक्ष पुष्पों की शोभा से पाण्डुरवर्ण लग रहे थे। सभी पर्वतशृंग भ्रमरों से भरे थे। बकुल (मौलश्री) वृक्ष पर्वतों के विशाल क्षेत्र पर मौलसरी के मनोहर पुष्पों को विकीर्ण कर रहे थे। सभी जाति के वृक्ष उस समय अपने पुष्पों की भरमार से विचित्र शोभायुक्त हो रहे थे। नाना जाति के पक्षीगण के मधुर निनाद से वहां का प्रत्येक स्थान रमणीय हो उठा था। हे मुनिप्रवरगण! पार्वती के इस महान् विवाह के उत्सव में छहों ऋतु एक साथ प्रतिभात हो रहे थे। तदनन्तर नाना वाद्यों के साथ वहां विवाह वाटिका भर सी गयी। हे द्विजों! मैंने तब पर्वतनन्दिनी को यथायोग्य अलंकार से अलंकृत करवाया तथा उनको विवाह वाटिका में प्रविष्ट कराया।।१२२-१२६।।

ततस्तु पुनरेवेशमहं चैवोक्तवान् विभुम्। हविर्जुहोमि वह्नौ ते उपाध्यायपदे स्थितः॥१२७॥
ददासि मह्यं यद्याज्ञां कर्त्तव्योऽयं क्रियाविधिः।
मामाह शङ्करश्चैवं देवदेवो जगत्पतिः॥१२८॥

तब मैंने पुनः विभु महेश्वर से कहा—"हे देव! मैं आपके उपाध्याय के पद पर प्रतिष्ठित होकर अग्नि में घृताहुति प्रदान करूंगा। आपका आदेश मिलने पर मैं समस्त क्रिया सम्पन्न करूंगा।" तदनन्तर जगत्पति शंकर ने मुझसे कहा—।।१२७-१२८।।

शिव उवाच

यदुद्दिष्टं सुरेशान तत्कुरुष्व यथेप्सितम्। कर्त्ताऽस्मि वचनं सर्वं ब्रह्मंस्तव जगद्विभो॥१२९॥

शिव कहते हैं—हे देवेश! ऐसा ही हो। ब्रह्मन्! जगत्स्वामी! मैं आपके सभी आदेशानुसार कार्य करूंगा।।१२९।।

ब्रह्मोवाच

ततश्चाहं प्रहृष्टात्मा कुशानादाय सत्वरम्। हस्तं देवस्य देव्याश्च योगबन्धेन युक्तवान्॥१३०॥
ज्वलनश्च स्वयं तत्र कृताञ्जलिपुटः स्थितः। श्रुतिगीतैर्महामन्त्रैर्मूर्त्तिमद्भिरुपस्थितैः॥१३१॥
यथोक्तविधिना हुत्वा सर्पिस्तदमृतं हविः।
ततस्तं ज्वलनं सर्वं कारयित्वा प्रदक्षिणम्॥१३२॥
मुक्त्वा हस्तसमायोगं सहितः सर्वदैवतैः। पुत्रैश्च मानसैः सिद्धैः प्रकृष्टेनान्तरात्मना॥१३३॥
वृत्त उद्वाहकाले तु प्रणम्य च वृषध्वजम्। योगेनैव तयोर्विप्रास्तदुमापरमेशयोः॥१३४॥
उद्वाहः स परो वृत्तो यं देवा न विदुः क्वचित्।
इति वः सर्वमाख्यातं स्वयंवरमिदं शुभम्।
उद्वाहश्चैव देवस्य श्रृणुध्वं परमाद्भुतम्॥१३५॥

इति श्री आदिब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भु-ऋषिसंवादे उमामहेश्वरयोर्विवाहनिरूपणं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः।।३६।।



ब्रह्मा कहते हैं—तब मैंने प्रसन्न होकर शीघ्रता से कुशमुष्ठि मंगवा कर देवदेव शंभु तथा देवी के हाथों का योगबन्धन किया। हुताशन स्वयं ही हाथ जोड़ कर वहां विराजमान थे। श्रुति के मन्त्र तथा महामन्त्र सभी वहां मूर्त्तिमान होकर शंकर की उपासना कर रहे थे। मैंने सविधि होमकार्य सम्पन्न करके उनसे उस विवाहाग्नि की प्रदक्षिणा कराया तथा देवताओं के साथ प्रसन्न मन से उनके हस्तबन्धन को खोला। तदनन्तर विवाहविधि समाप्त होने पर मैंने भगवान् वृषध्वज शम्भु को प्रणाम किया! मैंने यह प्रणाम देवगण, अपने मानसपुत्रों तथा सिद्धों के साथ प्रसन्न चित्त से किया था। योगबल से ही उमा-महेश्वर की विवाह विधि सम्पन्न हो सकी थी, लेकिन यह तत्व कोई देवता नहीं समझ सके थे। इस प्रकार मैंने आप लोगों से देवी सती की स्वयंवर वार्त्ता का वर्णन कर दिया। अब मैं देवदेव के विवाह से सम्बद्ध और भी कथा कहता हूं, जो अपूर्व है। आप लोग श्रवण करिये।।१३०-१३५।।

।।षट्त्रिंश अध्याय समाप्त।।



अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

देवगण द्वारा शिवस्तुति, शिव का स्वस्थान गमन वर्णन

ब्रह्मोवाच

अथ वृत्ते विवाहे तु भवस्यामिततेजसः। प्रहर्षमतुलं गत्वा देवाः शक्रपुरोगमाः।
तुष्टुवुर्वाग्भिराद्याभिः प्रणेमुस्ते महेश्वरम्॥१॥

ब्रह्मा कहते हैं—इस प्रकार से अमित तेजस्वी शिव का विवाह सम्पन्न होने पर इन्द्रादि देवता परम हर्षित हो गये। तब इन्द्र को आगे करके सभी देवता प्रसन्नता के साथ शिव के पास गये तथा प्रणामोपरान्त उनका स्तवगान करने लगे।।१।।

देवा ऊचुः

नमः पर्वतलिङ्गाय पर्वतेशाय वै नमः। नमः पवनवेगाय विरूपायाजिताय च।
नमः क्लेशविनाशाय दात्रे च शुभसम्पदाम्॥२॥
नमो नीलशिखण्डाय अम्बिकापतये नमः। नमः पवनरूपाय शतरूपाय वै नमः॥३॥
नमो भैरवरूपाय विरूपनयनाय च। नमः सहस्रनेत्राय सहस्रचरणाय च॥४॥
नमो देववयस्याय वेदाङ्गाय नमो नमः। विष्टम्भनाय शक्रस्य बाह्वोर्वेदाङ्कुराय च॥५॥
चराचराधिपतये शमनाय नमो नमः। सलिलाशयलिङ्गाय युगान्ताय नमो नमः॥६॥
नमः कपालमालाय कपालसूत्रधारिणे। नमः कपालहस्ताय दण्डिने गदिने नमः॥७॥
नमस्त्रैलोक्यनाथाय पशुलोकरताय च। नमः खट्वाङ्गहस्ताय प्रमथार्त्तिहराय च॥८॥

देवगण कहते हैं—पर्वतलिंग, पर्वतेश, पवन वेग, विरूप, अजित, क्लेशनाशन, शुभ सम्पत्तिदाता, नीलशिखण्ड, अम्बिका पति को नमस्कार! जो पवनरूप, शतरूप, सहस्रनेत्र, सहस्रचरण को नमस्कार! देवमित्र, भैरवरूप, विरूपनेत्र, वेदांग, इन्द्रबाहु का स्तम्भन करने वाले, वेदांकुर, चराचराधिपति, शमन आपको नमस्कार! आप सलिलाशयलिंग, युगान्त, कपालमाला, कपालसूत्रधारी, कपालहस्त, दण्डी, गदी, त्रैलोक्यनाथ, पशुलोक निवासी, खट्वाङ्गहस्त तथा प्रमथों की आर्त्ति का हरण करने वाले, आपको बारम्बार प्रणाम!।।२-८।।

नमो यज्ञशिरोहन्त्रे कृष्णकेशापहारिणे। भगनेत्रनिपाताय पूष्णो दन्तहराय च॥९॥
नमः पिनाकशूलासिखड्गमुद्गरधारिणे। नमोऽस्तु कालकालाय तृतीयनयनाय च॥१०॥
अन्तकान्तकृते चैव नमः पर्व्वतवासिने। सुवर्णरितसे चैव नमः कुण्डलधारिणे॥११॥
दैत्यानां योगनाशाय योगिनां गुरवे नमः। शशाङ्कादित्यनेत्राय ललाटनयनाय च॥१२॥
नमः श्मशानरतये श्मशानवरदाय च। नमो दैवतनाथाय त्र्यम्बकाय नमो नमः॥१३॥
गृहस्थसाधवे नित्यं जटिले ब्रह्मचारिणे। नमो मुण्डार्धमुण्डाय पशूनां पतये नमः॥१४॥

सलिले तप्यमानाय योगैश्वर्य्यप्रदाय च। नम शान्ताय दान्ताय प्रलयोत्पत्तिकारिणे॥१५॥
नमोऽनुग्रहकर्त्रे च स्थितिकर्त्रे नमो नमः। नमो रुद्राय वसव आदित्यायाश्विने नमः॥१६॥
नमः पित्रेऽथ साङ्ख्याय विश्वेदेवाय वै नमः।
नमः शर्वाय उग्राय शिवाय वरदाय च॥१७॥
नमो भीमाय सेनान्यै पशूनां पतये नमः। शुचये वैरिहानाय सद्योजाताय वै नमः॥१८॥
महादेवाय चित्राय विचित्राय च वै नमः। प्रधानायाप्रमेयाय कार्याय कारणाय च॥१९॥
पुरुषाय नमस्तेऽस्तु पुरुषेच्छाकराय च। नमः पुरुषसंयोगप्रधानगुणकारिणे॥२०॥
प्रवर्त्तकाय प्रकृतेः पुरुषस्य च सर्वशः। कृताकृतस्य सत्कर्त्रे फलसंयोगदाय च॥२१॥
कालज्ञाय च सर्वेषां नमो नियमकारिणे। नमो वैषम्यकर्त्रे च गुणानां वृत्तिदाय च॥२२॥
नमस्ते देवदेवेश नमस्ते भूतभावन। शिव सौम्यमुखो द्रष्टुं भव सौम्यो हि नः प्रभो॥२३॥

जो यज्ञशिरहन्ता, कृष्ण के शापहारी, भगनेत्रनाशक, पूषा के दांतों को भग्न करने वाले, पिनाक-शूल-असि-खड्ग तथा मुद्गरधारी, दैत्यों के योग का नाश करने वाले, योगीगुरु, शशांक तथा आदित्यनेत्र, ललाटनेत्र, गृहस्थ साधु, श्मशानवरद, दैवत्नाथ, त्र्यम्बक, जटिल, ब्रह्मचारी, मुण्डार्द्धमुण्ड, पशुपति, सलिल पर तप्यमान, योगैश्वर्यप्रद, शान्त, दान्त, रुद्र, वसु, आदित्य, अश्विनी, पितृ, सांख्य, विश्वेदेव, शर्व, उग्र, शिव, वरद, भीम, सेनानी, प्रधान, अप्रमेय, शुचि, वैरिहान, सद्योजात, कार्य, कारण, महादेव, चित्र, विचित्र, पुरुष, पुरुषेच्छाकर, पुरुष संयोग प्रधान, गुणकर्त्ता, प्रकृति के प्रवर्त्तक, कृत-अकृत सत्कर्त्ता, फलसंयोगदाता, कालज्ञ, सर्वनियमकारी, वैषम्यकर्त्ता, गुणवृत्तिदाता को हमारा बारम्बार नमस्कार! हे देवदेवेश, भूतभावन! आपको नमस्कार! हे प्रभो! हे सौम्यमुख! आप हमारे लिये दर्शन हेतु सौम्य हो जायें।।९-२३।।

ब्रह्मोवाच

एवं स भगवान् देवो जगत्पतिरुमापतिः।
स्तूयमानः सुरैः सर्वैरमरानिदमब्रवीत्॥२४॥

ब्रह्मा कहते हैं—देवगण से स्तुत होकर भगवान् जगत्पति उमापति शंकर ने कहा—।।२४।।

श्रीशङ्कर उवाच

द्रष्टुं सुखश्च सौम्यश्च देवानामस्मि भोः सुराः।
वरं वरयत क्षिप्रं दाताऽस्मि तमसंशयम्॥२५॥

श्रीशंकर कहते हैं—हे देवगण! आप लोगों के लिये मैं सर्वदा सौम्य सुखद हूं। आप लोग वर मांगिये। वह मैं अवश्य प्रदान करूंगा।।२५।।

ब्रह्मोवाच

ततस्ते प्रणताः सर्वे सुरा ऊचुस्त्रिलोचनम्॥२६॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब देवगण ने त्रिलोचन को प्रणाम करते हुये कहा—।।२६।।

देवा ऊचुः

तवैव भगवन् हस्ते वर एषोऽवतिष्ठताम्। यदा कार्यं तदा नस्त्वं दास्यसे वरमीप्सितम्॥२७॥

देवगण कहते हैं—हे भगवान्! आप जो वर देना चाहते हैं, वह आपके पास ही रहे। जब हमें आवश्यकता होगी, तब इच्छित वर हमें दीजियेगा।।२७।।

ब्रह्मोवाच

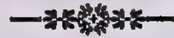
एवमस्त्विति तानुक्त्वा विसृज्य च सुरान् हरः।
लोकांश्च प्रमथैः सार्धं विवेश भवनं स्वकम्॥२८॥
यस्तु हरोत्सवमद्भुतमेनं गायति दैवतविप्रसमक्षम्।
सोऽप्रतिरूपगणेशसमानो देहविपर्य्ययमेत्य सुखी स्यात्॥२९॥

ब्रह्मा कहते हैं—भगवान् हर ने "ऐसा ही हो" कह कर देवगण को विसर्जित किया तथा भगवान् अपने प्रमथगणों के साथ अपने भवन में चले गये। जो मनुष्य इस अपूर्व हर विवाहोत्सव का देवताओं के सामने पाठ करेगा, वह देह त्याग के पश्चात् गणेश के समान होकर सुखी होगा।।२८-२९।।

ब्रह्मोवाच

विप्रवर्याः स्तवं हीमं शृणुयाद्वा पठेच्च यः। स सर्व्वलोकगो देवैः पूज्यतेऽमरराडिव॥३०॥

इति श्री आदिब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भुऋषिसंवादे शिवस्तुतिनिरूपणं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः।।३७।।



ब्रह्मा कहते हैं—जो इसे सुनेंगे अथवा पाठ करेंगे, वे इन्द्र की तरह सदा स्तुत होंगे। वे देवगण द्वारा इन्द्रवत् पूजित होंगे।।३०।।

।।सप्तत्रिंश अध्याय समाप्त।।



अथाष्टात्रिंशोऽध्यायः

मदन दाह, मेनका द्वारा पार्वती का उपहास किया जाना, महेश्वर द्वारा पार्वती को प्रबोधित करने का वर्णन

ब्रह्मोवाच

प्रविष्टे भवनं देवे सूपविष्टे वरासने। स वक्रो मन्मथः क्रूरो देवं वेद्धुमना भवत्॥१॥
तमनाचारसंयुक्तं दुरात्मानं कुलाधमम्। लोकान् सर्व्वान् पीडयन्तं सर्वाङ्गावरणात्मकम्॥२॥

ऋषीणां विघ्नकर्त्तारं नियमानां व्रतैः सह। चक्राह्वयस्य रूपेण रत्या सह समागतम्॥३॥
अथाऽऽततायिनं विप्रा वेद्धुकामं सुरेश्वरः। नयनेन तृतीयेन सावज्ञं समवैक्षत॥४॥
ततोऽस्य नेत्रजो वह्निर्ज्वालामालासहस्रवान्। सहसा रतिभर्त्तारमदहत् सपरिच्छदम्॥५॥
स दह्यमानः करुणमार्त्तोऽक्रोशत विस्वरम्। प्रसादयंश्च तं देवं पपात धरणीतले॥६॥
अथ सोऽग्निपरीताङ्गो मन्मथो लोकतापनः। पपात सहसा मूर्च्छां क्षणेन समपद्यत॥७॥

ब्रह्मा कहते हैं—देवाधिदेव ने अपने भवन में आकर उत्तम आसन ग्रहण किया। तभी क्रूर मन वाला मदन उन पर प्रहार करने के लिये विचार करके आया। यह मदन दुराचारी, दुरात्मा तथा कुलाधम है। इसका स्वभाव है सभी लोक को पीड़ित करना। वह चक्रवाक (पक्षी) के जोड़े का रूप अपनी पत्नी रति के साथ धर कर वहां पहुंचा। हे ब्राह्मणवृन्द! सुरेश्वर शिव ने उस आततायी को प्रहारोद्यत देखकर अपने तीसरे नेत्र से उसकी ओर दृष्टिपात किया। तत्पश्चात् उनके नेत्र से उत्पन्न अग्नि ने हजारों-हजार ज्वालामाला से प्रदीप्त होकर सहसा उस रतिपति को उसके वस्त्राभूषण के साथ दग्ध कर दिया। दग्धावस्था में वह मदन दुःख पूर्वक उच्च स्वर से करुण स्वर में रोदन करने लगा। वह शिवस्तुति करता देवाधिदेव को प्रसन्न करने का प्रयत्न करता भूपतित हो गया। वह अग्निव्याप्त देह लोकतापन मन्मथ मदन भूपतित होते ही क्षण में मूर्च्छित हो गया॥१-७॥

पत्नी तु करुणं तस्य विललाप सुदुःखिता।
देवीं देवञ्च दुःखार्त्ता अयाचत् करुणावती॥८॥
तस्याश्च करुणं ज्ञात्वा देवौ तौ करुणात्मकौ।
ऊचतुस्तां समालोक्य समाश्वास्य च दुःखिताम्॥९॥

तब मदनपत्नी रति अत्यन्त दुःख से विलाप करने लगी तथा उसने भगवान् तथा भगवती पार्वती से अपने पति के प्राणों की भिक्षा मांगा। उसे दुःख से आर्त्त देख कर देवदेव तथा देवी ने दयापरवश होकर उसे आश्वस्त करते कहा—॥८-९॥

उमामहेश्वरावूचतुः

दग्ध एव ध्रुवं भद्रे नास्योत्पत्तिरिहेष्यते।
अशरीरोऽपि ते भ्रदे कार्यं सर्वं करिष्यति॥१०॥
यदा तु विष्णुर्भगवान् वसुदेवसुतः शुभे। तदा तस्य सुतो यश्च पतिस्ते सम्भविष्यति॥११॥

उमा-महेश्वर ने कहा—हे भद्रे! यद्यपि तुम्हारा पति दग्ध हो गया, इसकी उत्पत्ति की संभावना नहीं है। तथापि शरीर रहित होकर भी तुम्हारा पति सभी कार्य करेगा। हे शुभे! जब भगवान् विष्णु वसुदेव पुत्र होकर अवतरित होंगे, तब तुम्हारा पति उनका पुत्र होगा॥१०-११॥

ब्रह्मोवाच

ततः सा तु वरं लब्ध्वा कामपत्नी शुभानना।
जगामेष्टं तदा देशं प्रीतियुक्ता गतक्लमा॥१२॥

दग्ध्वा कामं ततो विप्राः स तु देवो वृषध्वजः।
रेमे तत्रोमया सार्द्धं प्रहृष्टस्तु हिमाचले॥१३॥
कन्दरेषु च रम्येषु पद्मिनीषु गुहासु च। निर्झरेषु च रम्येषु कर्णिकारवनेषु च॥१४॥
नदीतीरेषु कान्तेषु किन्नराचरितेषु च। शृङ्गेषु शैलराजस्य तडागेषु सरःसु च॥१५॥
वनराजिषु रम्यासु नानापक्षिरुतेषु च। तीर्थेषु पुण्यतोयेषु मुनीनामाश्रमेषु च॥१६॥
एतेषु पुण्येषु मनोहरेषु, देशेषु विद्याधरभूषितेषु।
गन्धर्वयक्षामरसेवितेषु, रेमे स देव्या सहितस्त्रिनेत्रः॥१७॥

ब्रह्मा कहते हैं—तदनन्तर शुभानना कामपत्नी ने वरलाभ किया तथा वह शोकरहित एवं प्रसन्न होकर स्वस्थान चली गयी। हे ब्राह्मणवृन्द! इधर वृषध्वज काम को दग्ध करने के पश्चात् उमासहित प्रसन्न चित्त से हिमालय पर रमण करने लगे। रम्य कन्दरा, जलाशय, गुफा, निर्झर, रम्य कर्णिकार के वन, कमनीय नदी तट, किन्नरों से सेवित रम्य देश, शैलराज के शिखर पर; तडाग, सभी सरोवर, रमणीय वन राजि में वे भवानी के साथ रमण तत्पर हो गये। नाना पक्षियों से भरे पुण्य जलमय तीर्थों में तथा पवित्र मुनियों के आश्रमों में सभी पुण्यमय मनोहारी देशों में, इसके अतिरिक्त विद्याधर, गन्धर्व, यक्ष एवं देवताओं से सेवित अन्य रम्य प्रदेशों में त्रिनेत्र महेश्वर गिरिजा के साथ विहार करने लगे।।१२-१७।।

देवैः सहेन्द्रैर्मुनियक्षसिद्धैर्गन्धर्वविद्याधरदैत्यमुख्यैः।
अन्यैश्च सर्वैर्विविधैर्वृतोऽसौ, तस्मिन्नगे हर्षमवाप शम्भुः॥१८॥
नृत्यन्ति तत्राप्सरसः सुरेशा, गायन्ति गन्धर्वगणाः प्रहृष्टाः।
दिव्यानि वाद्यान्यथ वादयन्ति, केचिदद्भुतं देववरं स्तुवन्ति॥१९॥
एवं स देवः स्वगणैरुपेतो, महाबलैः शक्रयमाग्नितुल्यैः।
देव्याः प्रियार्थं भगनेत्रहन्ता, गिरिं न तत्याज तदा महात्मा॥२०॥

इन्द्रादि देवता, मुनि, यक्ष, सिद्ध, विद्याधरगण एवं प्रधान दैत्यों से घिरे भगवान् शंभु को हिमाचल पर अधिक प्रसन्नता मिली थी। अप्सरायें नृत्य कर रही थीं। गन्धर्वगण विविध वाद्यों का वादन कर रहे थे तथा वे साथ ही गायन भी कर रहे थे। कोई-कोई भगवान् शंकर का स्तव भी करने लगे। इस प्रकार भगनेत्र को नष्ट करने वाले महात्मा शंभु ने अपने इन्द्र तथा यम के समान महाबलीगण एवं प्रिया उमा के साथ (उमा की प्रसन्नतार्थ) यह पर्वत नहीं त्यागा।।१८-२०।।

ऋषय ऊचुः

देव्या समं तु भगवांस्तिष्ठंस्तत्र स कामहा।
अकरोत् किं महादेव एतदिच्छाम वेदितुम्॥२१॥

ऋषिगण कहते हैं—भगवान् महादेव ने देवी के साथ वहां रहते हुये क्या कार्य किया?।।२१।।

ब्रह्मोवाच

भगवान् हिमवच्छृङ्गे स हि देव्याः प्रियेच्छया।
गणेशैर्विविधकारैर्हासं संञ्जनयन् मुहुः॥२२॥
देवीं बालेन्दुतिलको रमयंश्च रराम च। महानुभावैः सर्वज्ञैः कामरूपधरैः शुभैः॥२३॥
अथ देव्यासससादैका मातरं परमेश्वरी। आसीनां काञ्चने शुभ्र आसने परमाद्भुते॥२४॥
अथ दृष्ट्वा सतीं देवीमागतां सुररूपिणीम्। आसनेन महार्हेणासम्पादयदनिन्दिताम्।
आसीनां तामथोवाच मेना हिमवतः प्रिया॥२५॥

ब्रह्मा कहते हैं—भगवान् चन्द्रमौलि देवी की प्रसन्नता के लिये हिमालय शृंग पर अपने गणों से पुनः-पुनः हास्य किया करते थे। इच्छानुरूप रूप धारण करने वाले महानुभाव सर्वज्ञ गणपतियों के साथ बालचन्द्र रूपी तिलक मण्डित भगवान् हास्य क्रीड़ा करके देवी गिरिजा को प्रसन्न रखते थे। एक बार परमेश्वरी उमा अपूर्व स्वर्ण आसन पर आसीना अपनी माता मेना के पास गयीं। उनका शुभ्र आसन परम अद्भुत था। मेना ने देवी रूपा भगवती को आते देखकर उनको बैठने के लिये एक महामूल्यवान् आसन प्रदान किया। उनको आसनासीन कराने के उपरान्त हिमाचलप्रिया मेना उनसे कहने लगीं।।२२-२५।।

मेनोवाच

चिरस्यागमनं तेऽद्य वद पुत्रि शुभेक्षणे। दरिद्रा क्रीडनैस्त्वं हि भर्त्रा क्रीडसि सङ्गता॥२६॥
ये दरिद्रा भवन्ति स्म तथैव च निराश्रयाः।
उभे तु एवं क्रीडन्ति यथा तव पतिः शुभे॥२७॥

मेना कहती हैं—हे प्रियदर्शिनी पुत्री! तुम दीर्घकाल के पश्चात् आई हो। अपना मंगल संवाद बतलाओ। स्वामी के साथ क्रीड़ा करते दरिद्र तो नहीं हो गयी? जो निराश्रय है, वही दरिद्र होता है। हे शुभे! जैसे तुम्हारा पति है। दरिद्र तथा आश्रयहीन की क्रीड़ा इसी प्रकार की होती है।।२६-२७।।

ब्रह्मोवाच

सैवमुक्ताऽथ मात्रा तु नातिहृष्टमनाभवत्। महत्या क्षमया युक्ता न किञ्चित्तामुवाच ह।
विसृष्टा च तदा मात्रा गत्वा देवमुवाच ह॥२८॥

ब्रह्मा कहते हैं—माता का कथन सुनकर उमा को कोई भी हर्ष नहीं हो सका। वे महान् क्षमाशील होने के कारण कोई भी उत्तर दिये बिना माता से विदा लेकर अपने भवन पहुंचीं तथा उन्होंने पति शिव से समस्त वृत्तान्त कहा—।।२८।।

पार्वत्युवाच

भगवन् देवदेवेश नेह वत्स्यामि भूधरे। अन्यं कुरु ममाऽऽवासं भुवनेषु महाद्युते॥२९॥

पार्वती कहती हैं—हे भगवान्! देवदेव! मैं अब इस पर्वत पर नहीं रह सकती। हे महाद्युति! संसार में न जाने कितने ही स्थान हैं। आप किसी और स्थान पर मेरा निवास स्थान बनायें।।२९।।

देव उवाच

सदा त्वमुच्यमाना वै मया वासार्थमीश्वरि।
अन्यं न रोचितवती वासं वै देवि कर्हिचित्॥३०॥
इदानीं स्वयमेव त्वं वासमन्यत्र शोभने। कस्मान्मृगयसे देवि ब्रूहि तन्मे शुचिस्मिते॥३१॥

देवाधिदेव कहते हैं—हे ईश्वरी! मैंने तो तुमसे सर्वदा कहा था कि कहीं और रहो, लेकिन तुम अन्यत्र नहीं जाना चाहती थीं। सहसा तुम्हारी इस रुचि बदलने का कारण क्या है? हे देवी! शुचिस्मिते! वह कहो।।३०-३१।।

देव्युवाच

गृहं गताऽस्मि देवेश पितुरद्य महात्मनः। दृष्ट्वा च तत्र मे माता विजने लोकभावने॥३२॥
आसनादिभिरभ्यर्च्य सा मामेवमभाषत। उमे तव सदा भर्त्ता दरिद्रः क्रीडनैः शुभे॥३३॥
क्रीडते न हि देवानां क्रीडा भवति तादृशी।
यत् किल त्वं महादेव गणैश्च विविधैस्तथा।
रमसे तदनिष्टं हि मम मातुर्वृषध्वज॥३४॥

देवी कहती हैं—हे देवेश! आज मैं अपने महात्मा पिता के यहां गई थी। माता ने मुझे आया देखकर आदर के साथ आसन दिया तथा कहा—"हे शुभे! तुम्हारे पति चिर दरिद्र होकर भी जो क्रीड़ा करते हैं, देवसमाज में उनकी तरह कोई क्रीड़ारत नहीं होता।" हे वृषध्वज! आप गणों के साथ जैसी क्रीड़ा करते हैं, वह माता को रुचिकर नहीं प्रतीत होती।।३२-३४।।

ब्रह्मोवाच

ततो देवः प्रहस्याऽऽह देवीं हासयितुं प्रभुः॥३५॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब प्रभु ने हंसते हुये कहा—।।३५।।

देव उवाच

एवमेव न सन्देहः कस्मान्मन्युरभूत्तव। कृत्तिवासा ह्यवासाश्च श्मशाननिलयश्च ह॥३६॥
अनिकेतो ह्यरण्येषु पर्वतानां गुहासु च। विचरामि गणैर्नग्नैर्वृतोऽम्भोजविलोचने॥३७॥
मा क्रुधो देवि मात्रे त्वं तथ्यं माताऽवदत्तव।
न हि मातृसमो बन्धुर्जन्तूनामस्ति भूतले॥३८॥

देवाधिदेव कहते हैं—यह बात तो ठीक है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इससे तुम्हारे अन्दर दीनता अथवा क्रोध क्यों उत्पन्न हो गया। हे कमलनयनी! मैं तो चर्म पहनता हूं। मैं दिगम्बर तथा श्मशान निवासी हूं। मेरा कहीं घर ही नहीं है। मैं अरण्य, वन, पर्वत कन्दराओं में दीर्घकाल से घूमता रहता हूं। तुम माता पर क्रोध मत करो। उन्होंने सत्य कहा है। लोकों में माता के समान कोई बन्धु ही नहीं होता।।३६-३८।।

देव्युवाच

न मेऽस्ति बन्धुभिः किञ्चित् कृत्यं सुरवरेश्वर।
तथा कुरु महादेव यथाऽहं सुखमाप्नुयाम्॥३९॥

देवी कहती हैं—हे सुरपति! मुझे बन्धु-बान्धव कोई भी नहीं चाहिये। हे महादेव! मैं सुख पूर्वक रह सकूं, आप वह करें।।३९।।

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा स देव्या वचनं सुरेशस्तस्याः प्रियार्थे स्वगिरिं विहाय।
जगाम मेरुं सुरसिद्धसेवितं, भार्य्यासहायः स्वगणैश्च युक्तः॥४०॥

इति श्री आदिब्राह्मे महापुराणे स्वयम्भु-ऋषिसंवाद उमा-महेश्वरयोर्हिमवत्परित्यागनिरूपणं नामाष्टात्रिंशोऽध्यायः।।३८।।

ब्रह्मा कहते हैं—देवी का कथन सुनकर महादेव ने देवी का प्रिय करने के लिये हिमालय त्याग कर भगवती तथा अपने प्रिय परिजन गणों के साथ सुरसिद्ध सेवित सुमेरु पर्वत के लिये प्रस्थान किया।।४०।।

।।अष्टात्रिंश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

दक्ष के साथ देवगण का कथनोपकथन, वीरभद्र की उत्पत्ति, दक्ष यज्ञध्वंस तथा शिव से दक्ष को वरलाभ, १००८ नामों का स्तोत्र वर्णन

ऋषय ऊचुः

प्राचेतस्य दक्षस्य कथं वैवस्वतेऽन्तरे। विनाशमगमद् ब्रह्मन् हयमेधः प्रजापतेः॥१॥
देव्या मन्युकृतं बुद्ध्वा क्रुद्धः सर्वात्मकः प्रभुः।
कथं विनाशितो यज्ञो दक्षस्यामिततेजसः।
महादेवेन रोषाद्वै तन्नः प्रब्रूहि विस्तरात्॥२॥

ऋषिगण कहते हैं—वैवस्वत मन्वन्तर में दक्ष प्रजापति का अश्वमेध यज्ञ कैसे ध्वस्त हो गया? सर्वात्मा

देवदेव ने देवी के दैन्य तथा क्रोध का कारण जानकर किस प्रकार अमित तेजस्वी दक्ष का यज्ञ ध्वंस किया? हे भगवान्! कृपया विस्तार से कहिये।।१-२।।

ब्रह्मोवाच

वर्णयिष्यामि वो विप्रा महादेवेन वै यथा।
क्रोधाद्विध्वंसितो यज्ञो देव्याः प्रियचिकीर्षया।।३।।

पुरा मेरोर्द्विजश्रेष्ठाः शृङ्गं त्रैलोक्यपूजितम्। ज्योतिःस्थलं नाम चित्रं सर्वरत्नविभूषितम्।।४।।
अप्रमेयमनाधृष्यं सर्वलोकनमस्कृतम्। तत्र देवो गिरितटे सर्वधातुविचित्रिते।।५।।
पर्य्यङ्क इव विस्तीर्ण उपविष्टो बभूव ह। शैलराजसुता चास्य नित्यं पार्श्वस्थिताऽभवत्।।६।।
आदित्याश्च महात्मानो वसवश्च महौजसः। तथैव च महात्मानावश्विनौ भिषजां वरौ।।७।।
तथा वैश्रवणो राजा गुह्यकैः परिवारितः। यक्षाणामीश्वरः श्रीमान् कैलासनिलयः प्रभुः।।८।।
उपासते महात्मानमुशना च महामुनिः। सनत्कुमारप्रमुखास्तथैव परमर्षयः।।९।।
अङ्गिरःप्रमुखाश्चैव तथा देवर्षयोऽपि च। विश्वावसुश्च गन्धर्वस्तथा नारदपर्वतौ।।१०।।
अप्सरोगणसङ्घाश्च समाजग्मुरनेकशः। ववौ सुखशिवो वायुर्नानागन्धवहः शुचिः।।११।।
सर्वर्त्तुकुसुमोपेतः पुष्पवन्तोऽभवन्द्रुमा। तथा विद्याधराः साध्याः सिद्धाश्चैव तपोधनाः।।१२।।
महादेवं पशुपतिं पर्य्युपासत तत्र वै। भूतानि च तथाऽन्यानि नानारूपधराण्यथ।।१३।।
राक्षसाश्च महारौद्राः पिशाचाश्च महाबलाः। बहुरूपधरा धृष्टा नानाप्रहरणायुधाः।।१४।।
देवस्यानुचरास्तत्र तस्थुर्वैश्वानरोपमाः। नन्दीश्वरश्च भगवान् देवस्यानुमते स्थितः।।१५।।
प्रगृह्य ज्वलितं शूलं दीप्यमानं स्वतेजसा। गङ्गा च सरितां श्रेष्ठा सर्वतीर्थजलोद्भवा।।१६।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे विप्रगण! देवी का प्रिय करने हेतु महादेव क्रोधित हो गये तथा उन्होंने कैसे दक्षयज्ञ ध्वंस किया, वह कहता हूं। हे द्विजश्रेष्ठगण! सुमेरु पर ज्योतिःस्थल नामक एक सभी प्रकार के वृक्षों से मण्डित एक विचित्र शिखर है। यह त्रैलोक्यपूजित, अप्रमेय, अलौकिक तथा सभी के द्वारा नमस्कृत है। पूर्वकाल में देवाधिदेव शंकर इस सभी धातुओं से युक्त पर्यङ्क के समान विस्तीर्ण गिरितट पर एक बार अकेले बैठे थे। महात्मा आदित्यगण, महातेजा वसुगण, वैद्यप्रवर अश्विनीकुमारद्वय, गुह्यकों से घिरे यक्षपति कैलासवासी राजा कुबेर उन देवता की उपासना कर रहे थे। इस समय महामुनि उशना, सनत्कुमार आदि प्रमुख महर्षिगण, अंगीरा आदि देवर्षिगण तथा गन्धर्व, विश्वावसु, नारद, पर्वत तथा अप्सरागण वहां आये। नाना गन्धयुक्त पवित्र सुखस्पर्श वाला पवन वहां मन्द-मन्द बहने लगा। सर्वऋतु जनित पुष्पों पर भ्रमरों के झुण्ड विराजित थे। विद्याधर, सिद्ध, साध्य, तपोधन, नाना रूपान्वित अन्य भूतगण, महारौद्र राक्षसगण, महाबली पिशाचगण, नाना प्रहारकारी, विविध आकार वाले अग्नि के समान लगने वाले देवों के अनुचर, प्रज्वलित शूल धारण करने वाले महादेव के आज्ञापालक प्रभु नन्दीश्वर तथा सर्वतीर्थ जलमयी मूर्त्तिमती सरिद्वरा गंगा—ये सभी पशुपति महादेव की उपासना करने लगे।।३-१६।।

पर्युपासत तं देवं रूपिणी द्विजसत्तमा। एवं स भगवांस्तत्र पूज्यमानः सुरर्षिभिः॥१७॥
देवैश्च सुमहाभागैर्महादेवो व्यतिष्ठत। कस्यचित्त्वथ कालस्य दक्षो नाम प्रजापतिः॥१८॥
पूर्व्वोक्तेन विधानेन यक्ष्यमाणोऽभ्यपद्यत। ततस्तस्य मखे देवाः सर्वे शक्रापुरोगमाः॥१९॥
स्वर्गस्थानादथाऽऽगम्य दक्षमापेदिरे तथा। ते विमानैर्महात्मानो ज्वलद्भिर्ज्वलनप्रभाः॥२०॥
देवस्यानुमतेऽगच्छन् गङ्गाद्वारमिति श्रुतिः। गन्धर्वाप्सरसाकीर्णं नानाद्रुमलतावृतम्॥२१॥

ऋषिसिद्धैः परिवृतं दक्षं दर्म्मभृतां वरम्।
पृथिव्यामन्तरिक्षे च ये च स्वर्लोकवासिनः॥२२॥
सर्वे प्राञ्जलयो भूत्वा उपतस्थुः प्रजापतिम्।
आदित्या वसवो रुद्राः साध्याः सर्वे मरुद्गणाः॥२३॥

हे द्विजोत्तमवृन्द! एवंविध भगवान् देवाधिदेव शिव देवर्षियों तथा देवताओं से पूजित होकर वहां अवस्थित थे। इसी समय दक्ष प्रजापति ने पूर्व विधान द्वारा यज्ञ आरंभ किया। इन्द्रादि समस्त देवता वहां स्वर्ग से आये तथा दक्ष के गृह में उपस्थित हो गये। सुना गया है कि ये सब ज्वलन्त महातमागण विमानारूढ़ होकर नाम वृक्ष-लताकीर्ण, गन्धर्व तथा अप्सराओं से अधिष्ठित गंगाद्वार आये। धार्मिक प्रवर दक्ष तब ऋषियों एवं सिद्धों से घिरे थे। भूतल-आकाश-स्वर्ग में जो लोग रहते हैं, वे सभी करबद्ध रूप से दक्ष प्रजापति की उपासना करने लगे। आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, सभी मरुद्गण।।१७-२३।।

विष्णुना सहिताः सर्व आगता यज्ञभागिनः।
ऊष्मपा धूमपाश्चैव आज्यपाः सोमपास्तथा॥२४॥
अश्विनौ मरुतश्चैव नानादेवगणैः सह। एते चान्ये च बहवो भूतग्रामास्तथैव च॥२५॥
जरायुजाण्डजाश्चैव तथैव स्वेदजोजिद्भवः।
आगताः सत्रिणः सर्वेदेवाः स्त्रीभिः सहर्षिभिः॥२६॥
विराजन्ते विमानस्था दीप्यमाना इवाग्नयः।
तान् दृष्ट्वा मन्युनाऽऽविष्टो दधीचिर्वाक्यमब्रवीत्॥२७॥

विष्णु के साथ वहां यज्ञ में भाग लेने आये। उष्मा का, धूम का, घृत का, सोम का पान करने वाले तथा अश्विनीकुमारद्वय, जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज् प्रभृति अन्य अनेक प्राणी वहां देवगण के साथ आये थे। यज्ञकर्त्ता ऋषिगण तथा अपनी पत्नियों के साथ अनेक देवता आये। वे वहां विमान पर प्रदीप्त अग्नि के समान विराजमान हो गये। इन आये हुये यज्ञदर्शकों को देख कर क्रोध पूर्वक महामुनि दधीचि कहने लगे।।२४-२७।।

दधीचिरुवाच

अपूज्यपूजने चैव पूज्यानां चाप्यपूजने।
नरः पापमवाप्नोति महद्वै नात्र संशयः॥२८॥

दधीचि कहते हैं—जहां अपूज्य की पूजा हो तथा पूज्य की पूजा न हो, वहां निःसन्दिग्ध रूप से महापाप होता है।।२८।।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु विप्रर्षिः पुनर्दक्षमभाषत॥२९॥

ब्रह्मा कहते हैं—वे विप्रर्षि यह कहकर दक्ष से कहने लगे।।२९।।

दधीचिरुवाच

पूज्यञ्च पशुभर्त्तारं कस्मान्नार्च्चयसे प्रभुम्॥३०॥

ऋषि दधीचि कहते हैं—आप प्रभु पूज्य पशुपति की पूजा क्यों नहीं कर रहे हैं?।।३०।।

दक्ष उवाच

सन्ति मे बहवो रुद्राः शूलहस्ताः कपर्द्दिनः।
एकादशस्थानगता नान्यं विद्मो महेश्वरम्॥३१॥

दक्ष कहते हैं—एकादश संख्यक जटाधारी, त्रिशूलहस्त, कपर्दी रुद्र यहां हैं। उनके अतिरिक्त किसी महेश्वर को मैं नहीं जानता।।३१।।

दधीचिरुवाच

सर्वेषामेकमन्त्रोऽयं ममेशो न निमन्त्रितः।
यथाऽहं शङ्करादूर्ध्वं नान्यं पश्यामि दैवतम्।
तथा दक्षस्य विपुलो यज्ञोऽयं न भविष्यति॥३२॥

दधीचि कहते हैं—सभी के परमाराध्य मेरे ईश्वर शंकर यहां निमन्त्रित नहीं हैं। मैं शंकर के अतिरिक्त अन्य देवता को नहीं जानता। अतः मेरे सत्यबल से दक्ष का यह विपुल यज्ञ स्थायी नहीं होगा।।३२।।

दक्ष उवाच

विष्णोश्च भागा विविधाः प्रदत्तास्तथा च रुद्रेभ्य उत प्रदत्ताः।
अन्येऽपि देवा निजभागयुक्ता, ददामि भागं न तु शङ्कराय॥३३॥

दक्ष कहते हैं—विष्णु को विविध यज्ञभाग दिया गया है। इन रुद्रों को भी यज्ञभाग दिया गया है। अन्य देवगण को भी उनका-उनका भाग दिया है। किन्तु शंकर को मैं भाग नहीं दूंगा।।३३।।

ब्रह्मोवाच

गतास्तु देवता ज्ञात्वा शैलराजसुता तदा। उवाच वचनं शर्वं देवं पशुपतिं पतिम्॥३४॥

उमोवाच

भगवन् कुत्र यान्त्येते देवाः शक्रपुरोगाः। ब्रूहि तत्त्वेन तत्त्वज्ञ संशयो मे महानयम्॥३५॥

ब्रह्मा कहते हैं—इधर पितृयज्ञ में सभी देवता गये हैं, जब गिरिजा ने यह सुना तब उन्होंने पशुपति से कहा—"हे प्रभो! इन्द्रादि देवता कहां जा रहे हैं? हे तत्वज्ञ! आप यथायथ कहिये। मुझे इस संबंध में महा संशय हो रहा है"।।३४-३५।।

महेश्वर उवाच

दक्षो नाम महाभागे प्रजानां पतिरुत्तमः। हयमेधेन यजते तत्र यान्ति दिवौकसः॥३६॥

महेश्वर कहते हैं—हे महाभागे! दक्ष नामक अत्युत्तम प्रजापति हैं। सभी देवता उनके अश्वमेध यज्ञ में जा रहे हैं।।३६।।

देव्युवाच

यज्ञमेतं महाभाग किमर्थं नानुगच्छसि। केन वा प्रतिषेधेन गमनं ते न विद्यते॥३७॥

देवी कहती हैं—हे देव! महाभाग! इस यज्ञ में आप क्यों नहीं जा रहे हैं? आपके जाने में क्या विघ्न है?।।३७।।

महेश्वर उवाच

सुरैरेव महाभागे सर्वमेतदनुष्ठितम्। यज्ञेषु मम सर्वेषु न भाग उपकल्पितः॥३८॥
पूर्वागतेन गन्तव्यं मार्गेण वरवर्णिनि। न मे सुराः प्रयच्छन्ति भागं यज्ञस्य धर्म्मतः॥३९॥

महेश्वर कहते हैं—हे महाभागे! सभी देवता सम्मिलित होकर यह यज्ञानुष्ठान कर रहे हैं। सभी यज्ञों को मेरे भाग के बिना किया जाता है। हे वरवर्णिनी! पूर्व क्रम का ही मैं अनुगमन करता हूं। देवता मुझे यज्ञभाग नहीं देते।।३८-३९।।

उमोवाच

भगवन् सर्वदेवेषु प्रभावाभ्यधिको गुणैः। अजेयश्चाप्यधृष्यश्च तेजसा यशसा श्रिया॥४०॥
अनेन तु महाभाग प्रतिषेधेन भागतः। अतीव दुःखमापन्ना वेपथुश्च महानयम्॥४१॥
किं नाम दानं नियमं तपो वा, कुर्यामहं येन पतिर्ममाद्य।
लभेत भागं भगवानचिन्त्यो, यज्ञस्य चेन्द्राद्यमरैर्विचित्र (भक्त) म्॥४२॥

ब्रह्मोवाच

एवं ब्रुवाणां भगवान् विचिन्त्य, पत्नीं प्रहृष्टः क्षुभितामुवाच।

उमा देवी कहती हैं—भगवान्! गुण तथा प्रभाव में आप सबमें प्रधान हैं। तेज, यथा तथा श्री द्वारा आप सबसे अजेय तथा न दबाये जाने वाले हैं। हे महाभाग! आपको यज्ञभाग से रहित किया जाने के कारण मुझे दुःख हो रहा है। इससे मेरा शरीर कांप रहा है। मैं अब ऐसा कौन सा दान करूं, कौन नियम पालन करूं तथा तप करूं, जिससे आप अचिन्त्यमूर्ति भगवान् भूतपति को इन्द्रादि देवताओं के साथ यज्ञभाग प्राप्त हो सके?।

ब्रह्मा कहते हैं—ऐसा वाक्य कहती अपनी पत्नी को दुःखी देखकर प्रहृष्ट मन से भगवान् शंकर ने कहा—।।४०-४२।।

महेश्वर उवाच

न वेत्सि मां देवि कृशोदराङ्गि, किं नाम युक्तं वचनं तवेदम्॥४३॥
अहं विजानामि विशालनेत्रे, ध्यानेन सर्वे च विदन्ति सन्तः।
तवाद्य मोहेन सहेन्द्रदेवा, लोकत्रयं सर्वमथो विनष्टम्॥४४॥
ममाध्वरेशं नितरां स्तुवन्ति, रथन्तरं साम गायन्ति मह्यम्।
मां ब्राह्मणा ब्रह्ममन्त्रैर्यजन्ति, ममाध्वर्य्यवः कल्पयन्ते च भागम्॥४५॥

महेश्वर कहते हैं—हे देवी! कृश उदर वाली! तुम मेरा तत्व नहीं जानती। क्या तुम्हारा ऐसा कहना उचित है? हे विशाल नेत्रों वाली! मैं यह अच्छी तरह जानता हूं कि इन्द्रादि देवगण सहित सभी साधुपुरुष ध्यान द्वारा मेरा तत्व जानते हैं। मेरे कोप से त्रैलोक्य नष्ट हो सकता है। ब्राह्मण मुझे ही यज्ञस्वरूप जान कर मेरा स्तव करते हैं। मेरे ही उद्देश्य से रथन्तर सामगायन होता है। अध्वर्यु लोग ब्रह्ममन्त्र द्वारा मेरी ही अर्चना करते हैं तथा मेरे लिये यज्ञभाग की कल्पना करते हैं।।४३-४५।।

देव्युवाच

विकत्थसे प्राकृतवत् सर्वस्त्रीजनसंसदि।
स्तौषि गर्वायसे चापि स्वमात्मानं न संशयः॥४६॥

देवी कहती हैं—हे शर्व! आप स्त्रियों के समक्ष अपनी बड़ाई करते हैं तथा अपने मुंह से अपनी प्रशंसा एवं गर्व कर रहे हैं।।४६।।

भगवानुवाच

नाऽऽत्मानं स्तौमि देवेशि यथा त्वमनुगच्छसि। संस्त्रक्ष्यामि वरारोहे भागार्थे वरवर्णिनि॥४७॥

भगवान् कहते हैं—हे देवेशी! मैं अपनी प्रशंसा नहीं करता। अब मैं अपने भाग की रक्षा हेतु एक प्राणी की सृष्टि करता हूं।।४७।।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा भगवान् पत्नीमुमां प्राणैरपि प्रियाम्।
सोऽसृजद्भगवान् वक्त्राद्भूतं क्रोधाग्निसम्भवम्॥४८॥
तमुवाच मखं गच्छ दक्षस्य त्वं महेश्वर। नाशयाऽऽशु क्रतुं तस्य दक्षस्य मदनुज्ञया॥४९॥

ब्रह्मा कहते हैं—भगवान् महेश्वर ने अपनी प्राणप्रिया से यह कहकर अपने मुख से अपनी क्रोधाग्नि से एक प्राणी की सृष्टि किया तथा उन्होंने कहा—"तुम मेरी आज्ञा से दक्षयज्ञ में जाकर शीघ्रता से उस यज्ञ का ध्वंस करो"।।४८-४९।।

ब्रह्मोवाच

ततो रुद्रप्रयुक्तेन सिंहवेषेण लीलया। देव्या मन्युकृतं ज्ञात्वा हतो दक्षस्य स क्रतुः॥५०॥

मन्युना च महाभीमा भद्रकाली महेश्वरी।
आत्मनः कर्म्मसाक्षित्वे तेन सार्द्धं सहानुगा॥५१॥
स एष भगवान् क्रोधः प्रेतावासकृतालयः।
वीरभद्रेति विख्यातो देव्या मन्युप्रमार्जकः॥५२॥
सोऽसृजद्रोमकूपेभ्य आत्मनैव गणेश्वरान्। रुद्रानुगान्गणान्रौद्रावीर्यपराक्रमान्॥५३॥
रुद्रस्यानुचराः सर्वे सर्वे रुद्रपराक्रमाः। ते निपेतुस्ततस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्त्रशः॥५४॥

ब्रह्मा कहते हैं—तदनन्तर रुद्र द्वारा प्रयुक्त वह सिंह वेशधारी प्राणी जैसे ही जाने के लिये प्रवृत्त हुआ, मानों तभी दक्षयज्ञ ध्वंस हो गया। महाभीमा महेश्वरी भद्रकाली अपने कर्मसाक्षी रूप से उसकी सहचारिणी हो गयीं। वे श्मशानवासी मूर्तिमान भगवान् क्रोध वीरभद्र के नाम से प्रसिद्ध हो गये। वीरभद्र ने स्वयं ही अपने रोमकूपों से अनेक रुद्र अनुचरों को उत्पन्न किया, जो रुद्र प्रकृति वाले तथा रुद्र ऐसे वीर्य वाले थे। ये सभी गणेश्वर रुद्र के अनुचर थे। सभी वैसे ही पराक्रमी थे। वे शत-शत-सहस्र-सहस्र संख्या थे।।५०-५४।।

ततः किलकिलाशब्द आकाशं पूरयन्निव।
समभूत् सुमहान् विप्राः सर्वरुद्रगणैः कृतः॥५५॥
तेन शब्देन महता त्रस्ताः सर्वे दिवौकसः।
पर्व्वताश्च व्यशीर्य्यन्त चकम्पे च वसुन्धरा॥५६॥
मरुतश्च ववुः क्रूराश्चुक्षुभे वरुणालयः। अग्नयो वै न दीप्यन्ते चादीप्यत भास्करः॥५७॥
ग्रहा नैव प्रकाशन्ते नक्षत्राणि न तारकाः। ऋषयो न प्रभासन्ते न देवा न च दानवाः॥५८॥
एवं हि तिमिरीभूते निर्दहन्ति गणेश्वराः। प्रभञ्जन्त्यपरे यूपान् घोरानुत्पाटयन्ति च॥५९॥
प्रणदन्ति तथा चान्ये विकुर्वन्ति तथा परे। त्वरितं वै प्रधावन्ति वायुवेगा मनोजवाः॥६०॥
चूर्ण्यन्ते यज्ञपात्राणि यज्ञस्यायतनानि। शीर्यमाणान्यदृश्यन्त तारा इव नभस्तलात्॥६१॥
दिव्यान्नपानभक्ष्याणां राशयः पर्व्वतोपमाः। क्षीरनद्यस्तथा चान्या घृतपायसकर्दमाः॥६२॥
मधुमण्डोदका दिव्याः खण्डशर्करबालुकाः। षड्रसान्निवहन्त्यन्या गुडकुल्या मनोरमाः॥६३॥
उच्चावचानि मांसानि भक्ष्याणि विविधानि च।
यानि कानि च दिव्यानि लेह्यचोष्याणि यानि च॥६४॥
भुञ्जन्ति विविधैर्वक्त्रैर्विलुम्पन्ति क्षिपन्ति च। रुद्रकोपा महाकोपाः कालाग्निसदृशोपमाः॥६५॥

किलकिलाहट से वे आकाश को गुंजित करते तेजी से दौड़ पड़े। समग्र रुद्रगण ने तब एक भयंकर अभियान प्रारम्भ किया। उनके भयानक शब्द से समस्त स्वर्गवासी त्रस्त हो उठे। पर्वत विदीर्ण होने लगे, वसुन्धरा कम्पित हो उठी, वायु भयानक वेग से बहने लगी। जलराशि क्षुब्ध हो उठी। अग्नि की दीप्ति कम होने लगी। सूर्य की प्रभा म्लान हो उठी। ग्रह-नक्षत्र-तारकपुंज का प्रकाश नहीं हो रहा था। ऋषि-देवता-दानव सभी निस्तेज हो उठे। सर्वत्र घना अन्धकार व्याप्त हो गया। गणेश्वर लोगों ने यथेच्छ अत्याचार प्रारम्भ कर दिया।

वे यज्ञस्थल के यज्ञकूप उखाड़ रहे थे। एक दल भीषण सिंहनाद कर रहा था। अन्य दल भीषण अंगभंगी किये हुये वायुवेग से दौड़ पड़ा। उन्होंने सभी यज्ञपात्रों को चूर कर दिया। सभी यज्ञायतन को तोड़ फेंका। पर्वत के समान ढ़ेर वाले दिव्य अन्न, पेय, भक्ष्य पदार्थ, क्षीर नदी, घृत-पायस-मधु-मांड़-खांड़-शर्करा-गुड़ नदी, षड्रस वाहिनी नदी, उच्च मांसस्तूप, दिव्य चर्व्य-चोष्य-लेह्य-पेय सामग्री—जो कुछ यज्ञ में एकत्रित था, उसे गणेश्वरों ने या तो खा लिया अथवा अपवित्र करके बिखेर दिया। यह रुद्रकोपोत्पन्न महाकुपित गण लोग कालाग्नि ऐसे लग रहे थे।।५५-६५।।

भक्षयन्तोऽथ शैलाभा भीषयन्तश्च सर्वतः। क्रीडन्ति विविधकाराश्चिक्षिपुः सुरयोषितः॥६६॥
एवं गणाश्च तैर्युक्तो वीरभद्रः प्रतापवान्। रुद्रकोपप्रयुक्तश्च सर्वदेवैः सुरक्षितम्॥६७॥
तं यज्ञमदहच्छीघ्रं भद्रकाल्याः समीपतः। चक्रुरन्ये तथा नादान् सर्वभूतभयङ्करान्॥६८॥

ये पर्वताकृति गणेश्वर अनेक मुखों से सब अन्न खा रहे थे। वे सबको भयभीत करते तथा क्रीड़ा में देवांगनाओं को फेंक रहे थे। रुद्रकोप से उत्पन्न, गणों से समन्वित प्रतापी वीरभद्र ने सभी देवों द्वारा सुरक्षित उस महायज्ञ को भद्रकाली के समक्ष तत्काल दग्ध कर दिया। कुछ गण प्राणीगण को भयानक लगने वाला निनाद करने लगे।।६६-६८।।

छित्त्वा शिरोऽन्ये यज्ञस्य व्यनदन्त भयङ्करम्।
ततः शक्रादयो देवा दक्षश्चैव प्रजापतिः।
ऊचुः प्राञ्जलयो भूत्वा कथ्यतां को भवानिति॥६९॥

दक्ष का शिर उन्होंने काट दिया। रुद्रानुचरगण इस पर जयोल्लास में भर कर भीषण गर्जना करने लगे। तब इन्द्रादि देवता ने अंजलि बांधकर तथा स्वयं प्रजापति दक्ष के मस्तक ने प्रश्न किया—"आप कौन हैं"?।।६९।।

वीरभद्र उवाच

नाहं देवो न दैत्यो वा न च भोक्तुमिहागतः।
नैव द्रष्टुञ्च देवेन्द्रा न च कौतूहलान्वितः॥७०॥

दक्षयज्ञविनाशार्थं सम्प्राप्तोऽहं सुरोत्तमाः। वीरभद्रेति विख्यातो रुद्रकोपाद्विनिःसृतः॥७१॥
भद्रकाली च विख्याता देव्याः क्रोधाद्विनिर्गता। प्रेषिता देवदेवेन यज्ञान्तिकमुपागता॥७२॥
शरणं गच्छ राजेन्द्र देवदेवमुमापतिम्। वरं क्रोधोऽपि देवस्य न वरः परिचारकैः॥७३॥

वीरभद्र कहते हैं—मैं न तो देवता हूं, न दैत्य हूं। यहां कुछ भोग करने नहीं आया हूं। मेरे लिये कुछ भी देखने लायक नहीं है। मुझे देवेन्द्र को देखने का भी कुतूहल नहीं है। हे देवश्रेष्ठगण! मेरा लक्ष्य है दक्षयज्ञ ध्वन्स। इसी हेतु मैं यहां आया हूं। हे सुरश्रेष्ठवृन्द! मेरा नाम वीरभद्र है। रुद्रकोप से मेरा जन्म हुआ है। ये भी क्रोध से निर्गत देवी भद्रकाली हैं। ये देवाधिदेव से भेजी जाकर यहां आई हैं। हे राजेन्द्र! तुम शीघ्र देवाधिदेव उमापति की शरण ग्रहण करो। उमापति का तो क्रोध भी अच्छा है, लेकिन उनके हम अनुचरों की कृपा भी अच्छी नहीं होती।।७०-७३।।

ब्रह्मोवाच

निखातोत्पाटितैर्यूपैरपविद्धैस्ततस्ततः। उत्पतद्भिः पतद्भिश्च गृध्रैरामिषगृध्नुभिः॥७४॥
पक्षवातविनिर्धूतैः शिवारुतविनादितैः। स तस्य यज्ञो नृपतेर्बाध्यमानस्तदा गणैः॥७५॥
आस्थाय मृगरूपं वै खमेवाभ्यपतत्तदा। तन्तु यज्ञं तथारूपं गच्छन्तमुपलभ्य सः॥७६॥
धनुरादाय बाणञ्च तदर्थमगमत् प्रभुः। ततस्तस्य गणेशस्य क्रोधादमिततेजसः॥७७॥
ललाटात्प्रसृतो घोरः स्वेदविन्दुर्बभूव ह। तस्मिन्पतितमात्रे च स्वेदविन्दौ तदा भुवि॥७८॥
प्रादुर्भूतो महानग्निर्ज्वलत्कालानलोपमः। तत्रोदपद्यत तदा पुरुषो द्विजसत्तमाः॥७९॥

ब्रह्मा कहते हैं—दक्षयज्ञ पूर्ण विध्वस्त हो गया। यज्ञ के सभी यूप उखाड़े गये तथा टूट कर इधर-उधर पड़े थे। मांसलोलुप गृध्र चतुर्दिक् आने लगे। सियारिन नाना स्थान पर अमंगलमय शब्द करने लगीं। दक्ष प्रजापति का वह यज्ञ प्रमथों द्वारा तत्काल ध्वस्त हो गया। जब यज्ञ मृगरूप धारण करके आकाश में भाग रहा था, तब एक गणेश्वर ने धनुष बाण से उसको रोकना चाहा। तभी अमित तेजस्वी उन गणपति के ललाट से एक स्वेदविन्दु चू पड़ा, जो अत्यन्त क्रोध से उत्पन्न हुआ था। उस स्वेदविन्दु के भूपतित होते ही उससे कालाग्नि उत्पन्न हो गयी। हे द्विजप्रवरवृन्द! उस अग्नि से एक पुरुष उद्भूत हो गया।।७४-७९।।

ह्रस्वोऽतिमात्रो रक्ताक्षो हरिच्छ्मश्रुर्विभीषणः।
ऊर्ध्वकेशोऽतिरोमाङ्गः शोणकर्णस्तथैव च॥८०॥

करालकृष्णवर्णश्च रक्तवासास्तथैव च। तं यज्ञं स महासत्त्वोऽदहत्कक्षमिवानलः॥८१॥
देवाश्च प्रद्रुताः सर्वे गता भीता दिशो दश। तेन तस्मिन्विचरता विक्रमेण तदा तु वै॥८२॥
पृथिवी व्यचलत्सर्वा सप्तद्वीपा समन्ततः। महाभूते प्रवृत्ते तु देवलोकभयङ्करे॥८३॥
तदा चाहं महादेवमब्रवं प्रतिपूजयन्। भवतेऽपि सुराः सर्वे भागं दास्यन्ति वै प्रभो॥८४॥
क्रियतां प्रतिसंहारः सर्वदेवेश्वर त्वया। इमाश्च देवताः सर्वा ऋषयश्च सहस्रशः॥८५॥
तव क्रोधान्महादेव न शान्तिमुपलेभिरे। यश्चैष पुरुषो जातः स्वेदजस्ते सुरर्षभ॥८६॥
ज्वरो नामैष धर्मज्ञ लोकेषु प्रचरिष्यति। एकीभूतस्य न ह्यस्य धारणे तेजसः प्रभो॥८७॥

समर्था सकला पृथ्वी बहुधा सृज्यतामयम्।
इत्युक्तः स मया देवो भागे चापि प्रकल्पिते॥८८॥

वह पुरुष नाटा था। आंखें रक्तवर्ण, दाढ़ी हरिताभ, केशपाश ऊपर की ओर फैले हुये थे। वह अतीव भयानक था। उसका सर्वाङ्ग रोयें से व्याप्त था। कर्णद्वय लाल थे। शरीर का रंग घोर काला था। उसने लाल वस्त्र धारण किया था। इस महासत्वशाली पुरुष ने भाग रहे यज्ञ को जला दिया। तब देवता भयभीत होकर दसों दिशाओं में भागने लगे। उस पुरुष द्वारा यहां विक्रम के साथ विचरण करते रहने से सप्तद्वीपा पृथिवी कांपने लगीं। देवसमूह को भयभीत करने वाले शिव का तब मैंने पूजन करते हुये यह कहा—"हे प्रभो! सभी देवता आपको यज्ञभाग प्रदान करेंगे। हे देव, देवपति! आप क्रोध को वापस लीजिये। ये सभी देवगण तथा हजारों-

हजार ऋषि आपके क्रोध के कारण शान्ति नहीं पा रहे हैं। हे सुव्रत! यह जो पुरुष आपके स्वेद से जन्मा है, यह ज्वर नाम से लोकों में प्रसिद्ध हो जाये। आपके एकत्रित इस तेज को समस्त पृथिवी भी धारण कर सकने में अक्षम है। अतः इस ज्वर नामक तेज को अनेक भाग में बांट दीजिये।" मेरी इस प्रार्थना पर तब देवाधिदेव ने उसका भाग कर दिया।।८०-८८।।

भगवान्मां तथेत्याह देवदेवः पिनाकधृक्। परां च प्रीतिमगमत्स स्वयं च पिनाकधृक्।।८९।।
दक्षोऽपि मनसा देवं भवं शरणमन्वगात्। प्राणापानौ समारुध्य चक्षुःस्थाने प्रयत्नतः।।९०।।
विधार्य सर्वतो दृष्टिं बहुदृष्टिरमित्रजित्। स्मितं कृत्वाऽब्रवीद्वाक्यं ब्रूहि किं करवाणि ते।।९१।।

भगवान् पिनाकपाणि तब मेरी प्रार्थना से सम्मत हो गये। वह क्रोधज तेज अनेक भाग में बंट गया। प्रभु महेश्वर का यज्ञभाग भी निश्चित हो गया। दक्ष ने प्राणायाम से वायु निरुद्ध करके भगवान् भव की शरण ग्रहण किया। शत्रुजित् भगवान् भव, शंकर ने सर्वत्र दृष्टिपात करके हंसते हुये कहा—"हे दक्ष, प्रजापति! मैं आपका क्या कार्य करूं"।।८९-९१।।

श्राविते च महाख्याने देवानां पितृभिः सह।
तमुवाचाञ्जलिं कृत्वा दक्षो देवं प्रजापतिः।
भीतः शङ्कितचित्तस्तु सवाष्पवदनेक्षणः।।९२।।

दक्ष उवाच

यदि प्रसन्नो भगवान्यदि वाऽहं तव प्रियः। यदि चाहमनुग्राह्यो यदि देयो वरो मम।।९३।।
यद्भक्ष्यं भक्षितं पीतं त्रासितं यच्च नाशितम्।
चूर्णीकृतापविद्धं च यज्ञसंभारमीदृशम्।।९४।।
दीर्घकालेन महता प्रयत्नेन च सञ्चितम्। न च मिथ्या भवेन्मह्यं त्वत्प्रसादान्महेश्वर।।९५।।

उस समय प्रजापति दक्ष ने भयभीत होकर अंजलिबद्ध होकर आंखों से अश्रुपात करते कहा—"हे प्रभो! यदि आप प्रसन्न हैं, यदि मैं आपकी कृपा पाने योग्य समझा जाऊं, तब इस यज्ञोपलक्ष्य में मैंने दीर्घकाल तक ढेरों अन्न-पानादि ही विविध भक्ष्य, भोज्य, द्रव्य सामग्री एकत्र किया था, जिसे आपके गणों ने नष्ट, चूर्ण कर दिया, फेंका तथा खा लिये, आपकी कृपा से वह सब व्यर्थ न हो।।९२-९५।।

ब्रह्मोवाच

तथाऽस्त्वित्याह भगवान्भगनेत्रहरो हरः। धर्माध्यक्षं महादेवं त्र्यम्बकं च प्रजापतिः।।९६।।
जानुभ्यामवनीं गत्वा दक्षो लब्ध्वा भवाद्वरम्।
नाम्नां चाष्टसहस्रेण स्तुतवान्वृषभध्वजम्।।९७।।

इति श्री महापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुऋषिसंवादे दक्षयज्ञविध्वंसनं नामेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः।।३९।।

ब्रह्मा कहते हैं—भगनेत्रभंजक भगवान् हर ने तब ब्रह्मा की प्रार्थना सुनकर 'तथास्तु' कह दिया। दक्ष ने वर पाकर तत्काल उन त्र्यम्बक, धर्माध्यक्ष, महादेव, वृषध्वज को भूतल पर घुटने टेक कर प्रणाम किया तथा १००८ नामों से स्तव करने लगे।।९६-९७।।

।।एकोनचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।



अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

दक्ष द्वारा शिव स्तुति, शिव द्वारा सभी वस्तुओं में विभाग के अनुसार ज्वर स्थापना करना

ब्रह्मोवाच

एवं दृष्ट्वा तदा दक्षः शम्भोर्वीर्यं द्विजोत्तमाः।
प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा संस्तोतुमुपचक्रमे॥१॥

नमस्ते देवदेवेश नमस्तेऽन्धकसूदन। देवेन्द्र त्वं बलश्रेष्ठ देवदानवपूजित॥२॥
सहस्राक्ष विरूपाक्ष त्र्यक्ष यक्षाधिपप्रिय। सर्व्वतःपाणिपादस्त्वं सर्वतोक्षिशिरोमुखः॥३॥
सर्वतः श्रुतिमांलोके सर्वमावृत्य तिष्ठसि। शङ्कुकर्णो महाकर्णः कुम्भकर्णोऽर्णवालयः॥४॥
गजेन्द्रकर्णो गोकर्णः शतकर्णो नमोऽस्तु ते। शतोदरः शतावर्तः शतजिह्वः सनातनः॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे द्विजप्रवरगण! दक्ष ने शंभु का ऐसा बल तथा प्रभाव देखकर हाथ जोड़कर तथा प्रणत होकर उनका स्तव किया। यथा—हे देवदेवेश! अन्धकसूदन! आपको प्रणाम! हे देवेन्द्र! आप महाबलियों में श्रेष्ठ तथा देवदानवों द्वारा पूजित हऋ। हे सहस्राक्ष, सर्वतः हाथ-पैर वाले, सब ओर आंख-मस्तक-मुख एवं कर्ण वाले! आप इस जगत् में सर्वत्र व्याप्त हैं। आप शंकुकर्ण, महाकर्ण, कुम्भकर्ण, अर्णवालय, गजेन्द्रकर्ण, गोकर्ण, शतकर्ण हैं। आपको प्रणाम! आप शतोदर, शतजिह्व, शतावर्त्त तथा सनातन हैं।।१-५।।

दक्ष उवाच

गायन्ति त्वां गायत्रिणो अर्चयन्त्यर्कमर्किणः।
देवदानवगोप्ता च ब्रह्मा च त्वं शतक्रतुः॥६॥
मूर्तिमांस्त्वं महामूर्तिः समुद्रः सरसां निधिः।
त्वयि सर्वा देवता हि गावो गोष्ठ इवाऽऽसते॥७॥

त्वत्तः शरीरे पश्यामि सोममग्निजलेश्वरम्। आदित्यमथ विष्णुं च ब्रह्माणं सबृहस्पतिम्॥८॥

क्रिया करणकार्ये च कर्ता कारणमेव च।
असच्च सदसच्चैव तथैव प्रभवाव्य (प्य) यौ॥९॥

नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च। पशूनां पतये चैव नमोऽस्त्वबन्धकघातिने॥१०॥
त्रिजटाय त्रिशीर्षाय त्रिशूलवरधारिणे त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय त्रिपुरघ्नाय वै नमः॥११॥

वेद गायत्री से लोग आपकी ही उपासना करते हैं। जो सूर्यपासक भी आपकी ही अर्चना करते हैं। आप ही देवता-दानवों के रक्षक, ब्रह्मा, इन्द्र हैं। आप ही मूर्तिमान, महामूर्ति तथा सागर हैं। जैसे गौयें गोशाला में रहती हैं, उसी प्रकार आपमें ही सभी देवता विराजमान हैं। सोम, अग्नि, वरुण, आदित्य, विष्णु, ब्रह्मा, बृहस्पति आप में ही हैं। क्रिया-करण-कार्य-कर्ता-कारण, असत्-सत्-सदसत्, प्रभव-अव्यय, सभी को मैं आपमें देखता हूं। आप ही भव, शर्व, तीन शिर वाले, त्रिशूली, त्र्यम्बक, तीन नेत्रों वाले, त्रिपुरनाशक हैं। आपको मैं पुनः-पुनः नमस्कार करता हूं!।।६-११।।

नमश्चण्डाय मुण्डाय विश्वचण्डधराय च।
दण्डिने शङ्कुकर्णाय दण्डिदण्डाय वै नमः॥१२॥
नमोऽर्धदण्डिकेशाय शुष्काय विकृताय च।
विलोहिताय धूम्राय नीलग्रीवाय वै नमः॥१३॥

आप चण्ड-मुण्ड, विश्वचण्डधर, दण्डी, शंकुकर्ण, दण्डिदण्ड, अर्द्धदण्डिकेश, शुष्क, विकृत, रक्त-कृष्ण वर्ण वाले तथा नीलग्रीव हैं। आपको प्रणाम!।।१२-१३।।

नमोऽस्त्वप्रतिरूपाय विरूपाय शिवाय च। सूर्याय सूर्यपतये सूर्यध्वजपताकिने॥१४॥
नमः प्रमथनाशाय वृषस्कन्धाय वै नमः। नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यकवचाय च॥१५॥
हिरण्यकृतचूडाय हिरण्यपतये नमः। शत्रुघाताय चण्डाय पर्णसंघशयाय च॥१६॥
नमः स्तुताय स्तुतये स्तूयमानाय वै नमः। सर्वाय सर्वभक्षाय सर्वभूतान्तरात्मने॥१७॥

नमो होमाय मन्त्राय शुक्लध्वजपताकिने।
नमोऽनम्याय नम्याय नमः किलकिलाय च॥१८॥

आप अप्रतिम रूप, विरूप, शिव, सूर्यपति, सूर्यध्वजपताकी, प्रमथनाशन, वृषस्कन्ध, हिरण्यगर्भ, हिरण्यकवच, हिरण्य कृतचूड़, हिरण्यपति, शक्रघात, चण्ड, पर्णसंघशय, स्तुत, स्तुति, स्तूयमान, सर्व, सर्वभक्ष, सर्वभूतान्तरात्मा, होम, मन्त्र, शुक्लध्वज तथा पताका वाले, अनम्य-नम्य, किलकिला हैं। आपको बारम्बार प्रणाम!।।१४-१८।।

नमस्त्वां शयमानाय शयितायोत्थिताय च।
स्थिताय धावमानाय कुब्जाय कुटिलाय च॥१९॥

नमो नर्तनशीलाय मुखवादित्रकारिणे। बाधापहाय लुब्धाय गीतवादित्रकारिणे॥२०॥
नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय बलप्रमथनाय च। उग्राय च नमो नित्यं नमश्च दशबाहवे॥२१॥

नमः कपालहस्ताय सितभस्मप्रियाय च। विभीषणाय भीमाय भीष्मव्रतधराय च॥२२॥
नानाविकृतवक्त्राय खड्गजिह्वोग्रदंष्ट्रिणे। पक्षमासलवार्धाय तुम्बीवीणाप्रियाय च॥२३॥
अघोरघोररूपाय घोराघोरतराय च। नमः शिवाय शान्ताय नमः शान्ततमाय च॥२४॥
नमो बुद्धाय शुद्धाय संविभागप्रियाय च। पवनाय पतङ्गाय नमः सांख्यपराय च॥२५॥
नमश्चण्डैकघण्टाय घण्टाजल्पाय घण्टिने। सहस्रशतघण्टाय घण्टामालाप्रियाय च॥२६॥
प्राणदण्डाय नित्याय नमस्ते लोहिताय च। हूंहूंकाराय रुद्राय भगाकारप्रियाय च॥२७॥
नमोऽपारवते नित्यं गिरिवृक्षप्रियाय च। नमो यज्ञाधिपतये भूताय प्रस्तुताय च॥२८॥
यज्ञवाहाय दान्ताय तप्याय च भगाय च। नमस्तटाय तट्याय तटिनीपतये नमः॥२९॥

आप शयमान, शायित, उत्थित, स्थित, धावमान, कुब्ज, कुटिल, नर्त्तनशील, मुखवाद्यकारी, बाधानाशक, लुब्ध, गीतवाद्यकारी, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, बलप्रमथन, उग्र, दशबाहु हैं। आपको पुनः-पुनः प्रणाम! आप कपालहस्त, शुभ्र भस्मप्रिय, विभीषण, भीम, भीष्म, व्रतधारी, नाना विकृतमुख, खड्गजिह्व, उग्र दांतों वाले, पक्ष-मास, लव, तुम्बीवीणाप्रिय, अघोर, घोररूप, घोराघोरतर, शिव, शान्त, शान्ततम, वृद्ध, शुद्ध, संविभागप्रिय, पवन, पतङ्ग, सांख्यपर, चण्डैकघन्ट, घन्टाजल्प, घन्टी, सहस्रशतघन्ट, घण्टामालाप्रिय, बाणदण्ड, नित्य, लोहित, हुहुंकार, रुद्र, भगाकारप्रिय, अपारवान, गिरिवृक्षप्रिय, यज्ञाधिपति, भूत, प्रस्तुत, यज्ञवाद, दान्त, तप्य, भग, तट-तट्य-तटिनीपति आपको नमस्कार!।।१९-२९।।

अन्नदायान्नपतये नमस्त्वन्नभुजाय च। नमः सहस्रशीर्षाय सहस्रचरणाय च॥३०॥
सहस्रोद्धतशूलाय सहस्रनयनाय च। नमो बालार्कवर्णाय बालरूपधराय च॥३१॥
नमो बालार्करूपाय कालक्रीडनकाय च।
नमः शुद्धाय बुद्धाय क्षोभणाय क्षयाय च॥३२॥
तरङ्गाङ्कितकेशाय मुक्तकेशाय वै नमः। नमः षट्कर्मनिष्ठाय त्रिकर्मनियताय च॥३३॥
वर्णाश्रमाणां विधिवत्पृथग्धर्मप्रवर्तिने। नमः श्रेष्ठाय ज्येष्ठाय नमः कलकलाय च॥३४॥
श्वेतपिङ्गलनेत्राय कृष्णरक्तेक्षणाय च। धर्मकामार्थमोक्षाय क्रथाय क्रथनाय च॥३५॥
सांख्याय सांख्यमुख्याय योगाधिपतये नमः।
नमो रथ्याथिरथ्याय चतुष्पथपथाय च॥३६॥
कृष्णाजिनोत्तरीयाय व्यालयज्ञोपवीतिने। ईशान रुद्रसंघात हरिकेश नमोऽस्तु ते॥३७॥

हे अन्नद, अन्नपति, अन्नभुज, सहस्रशीर्ष, सहस्रचरण, सहस्र उद्धत शूलयुक्त, सहस्रनेत्र, बालार्कवर्ण, बाल रूपधारी, बालार्क रूपवाले, बालक्रीड़ानक, शुद्ध, बुद्ध, क्षोभन, क्षय, तरंगांकित केश वाले, मुक्तकेश, षट्कर्मतत्पर, त्रिकर्मनिरत, वर्णाश्रमों के (पृथक-पृथक आश्रमों) धर्मप्रवर्त्तक, श्रेष्ठ, ज्येष्ठ, कलकल, श्वेतपिंगल नयन, कृष्णरक्तेक्षण, धर्म, काम, अर्थ, मोक्ष, क्रथ-क्रथन, सांख्य, सांख्यमुख, योगाधिपति, रथ्य, अतिरथ्य, चतुष्पथ, पथ, कृष्णमृगचर्म का उत्तरीय धारण करने वाले, सर्प यज्ञोपवीत धारण करने वाले, ईशान, रुद्रसंघात, हरिकेश! आपको नमस्कार!।।३०-३७।।

त्र्यम्बकायाम्बिकानाथ व्यक्ताव्यक्त नमोऽस्तु ते।
कालकामदकामघ्न दुष्टोद्धृतनिषूदन॥३८॥
सर्वगर्हितसर्वघ्न सद्योजात नमोऽस्तु ते। उन्मादनशतावर्त गङ्गातोयार्द्रमूर्धज॥३९॥
चन्द्रार्धसंयुगावर्त मेघावर्त नमोऽस्तु ते। नमोऽन्नदानकर्त्रे च अन्नदप्रभवे नमः॥४०॥
अन्नभोक्त्रे च गोप्त्रे च त्वमेव प्रलयानल।
जरायुजाण्डजाश्चैव स्वेदजोद्भिज्ज एव च॥४१॥
त्वमेव देवदेवेश भूतग्रामश्चतुर्विधः। चराचरस्य स्रष्टा त्वं प्रतिहर्ता त्वमेव च॥४२॥
त्वमेव ब्रह्म विश्वेश अप्सु ब्रह्म वदन्ति ते।
सर्वस्य परमा योनिः सुधांशो ज्योतिषां निधिः॥४३॥
ऋक्सामानि तथोंकारमाहुस्त्वां ब्रह्मवादिनः।
हायि हायि हरे हायि हुवाहावेति वाऽसकृत्॥४४॥
गायन्ति त्वां सुरश्रेष्ठाः सामगा ब्रह्मवादिनः। यजुर्मय ऋङ्मयश्च सामाथर्वयुतस्तथा॥४५॥

हे त्र्यम्बक! अम्बिकानाथ, व्यक्त-अव्यक्त, काल, कामप्रद, कामघ्न, दुष्ट संहारक, सर्व, सर्वगर्हितनाशक, सद्योजात! आपको बारम्बार प्रणाम! उद्मादन, शतावर्त्त, गंगाजल से आर्द्र शिर वाले, चन्द्रार्द्धयुक्त, मेघावर्त्त, अन्नदानदाता, अन्नदान के प्रभु, अन्नभोक्ता, गोप्ता, प्रलयानल, जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज! आपको अशेष रूप से नमस्कार! हे देवदेवेश! आप ही चतुर्विध भूतग्राम हैं। आप सचराचर स्रष्टा हैं, आप ही प्रतिहर्त्ता हैं। अज, ब्रह्मा, विश्वेश, ब्रह्म, सबके परमयोनि, सुधांशु तथा ज्योतिनिधि हैं। ब्रह्मवादी लोग आपको ही ऋक्, साम तथा ओंकार कहते हैं। सामगाता ब्रह्मवादी "हाहि-हाहि-हरे हायि- हुवा हाव" से बारम्बार आपका ही गायन करते हैं। आप यजुर्मय, ऋक्मय, साम, अथर्वण, आपसे युत हैं।।३८-४५।।

पठ्यसे ब्रह्मविद्भिस्त्वं कल्पोपनिषदां गणैः।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वर्णाश्रमाश्च ये॥४६॥
त्वमेवाऽश्रमसङ्घाश्च विद्युत्स्तनितमेव च। संवत्सरस्त्वमृतवो मासा मासार्धमेव च॥४७॥
कला काष्ठा निमेषाश्च नक्षत्राणि युगानि च।
वृषाणां ककुदं त्वं हि गिरीणां शिखराणि च॥४८॥
सिंहो मृगाणां पतयस्तक्षकानन्तभोगिनाम्। क्षीरोदो ह्यु दधीनां च मन्त्राणां प्रणवस्तथा॥४९॥

इस प्रकार (चतुर्वेद रूपी) आप ही ब्रह्मविद्, कल्प, उपनिषद् से पढ़े जाते हैं। आप ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रमय वर्णाश्रम हैं। आप ही विद्युत, मेघगर्जन, संवंत्सर, ऋतु, मास, अर्द्धमास (पक्ष), कला, काष्ठा, निमेष, नक्षत्र तथा युग हैं। आप ही बैलों के ककुद हैं। आप पर्वतों के शिखर हैं। आप मृगों में सिंह हैं। आप ही तक्षक एवं अनन्त आदि सर्पों के पति, औषधियों में क्षीरसागर तथा मन्त्रों में प्रणव हैं।।४६-४९।।

वज्रं प्रहरणानां च व्रतानां सत्यमेव च। त्वमेवेच्छा च द्वेषश्च रागो मोहः शमः क्षमा॥५०॥

व्यवसायो धृतिर्लोभः कामक्रोधौ जयाजयौ।
त्वं गदी त्वं शरी चापी खट्वाङ्गी मुद्गरी तथा॥५१॥
छेत्ता भेत्ता प्रहर्ता च नेता मन्ताऽसि नो मतः।
दशलक्षणसंयुक्तो धर्मोऽर्थः काम एव च॥५२॥
इन्दुः समुद्रः सरितः पल्वलानि सरांसि च।
लतावल्यस्तृणौषध्यः पशवो मृगपक्षिणः॥५३॥
द्रव्यकर्मगुणारम्भः कालपुष्पफलप्रदः। आदिश्चान्तश्च मध्यश्च गायत्र्योंकार एव च॥५४॥
हरितो लोहितः कृष्णो नीलः पीतस्तथा क्षणः।
कद्रुश्च कपिला बभ्रुःकपतोमच्छ (त्स्य) कस्तथा॥५५॥
सुवर्णरिता विख्यातः सुवर्णश्चाप्यथो मतः। सुवर्णनाम च तथा सुवर्णप्रिय एव च॥५६॥
त्वमिन्द्रश्चैव यमश्चैव वरुणो धनदोऽनलः। उत्फुल्लश्चित्रभानुश्च स्वर्भानुर्भानुरेव च॥५७॥
होत्रं होता च होम्यं च हुतं चैव तथा प्रभुः। त्रिसौपर्णस्तथा ब्रह्मन्यजुषां शतरुद्रियम्॥५८॥
पवित्रं च पवित्राणां मङ्गलानां च मङ्गलम्।
प्राणश्च त्वं रजश्च त्वं तमः सत्त्वयुतस्तथा॥५९॥

आप प्रहरणसमूह में वज्र तथा व्रतों में सत्य हैं। इच्छा, द्वेष, राग, मोह, शम, क्षमा, व्यवसाय, धृति, लोभ, काम, क्रोध, जय तथा अजय, आप ही हैं। आप गदी, शरी, चापी, खट्वाङ्गी, मुद्गरी, छेत्ता, भेत्ता, प्रहर्त्त नेता तथा मन्ता हैं। आप दश लक्षण वाले धर्म-अर्थ-काम हैं। इन्द्र, समुद्र, सरिता, पल्वल, सरोवर, लता-वल्ली, तृण, औषधि, पशु, मृग, पक्षी तथा द्रव्य, कर्म, गुणों का आरम्भ भी आप हैं। आप ही काल के अनुसार फल देने वाले भी हैं। आप आदि, अन्त, मध्य, गायत्री, ओंकार, हरित, लोहित, कृष्ण, नील, पीत, अरुण, कद्रु, कपिल, वभ्रु, कपोत, मत्स्यक, सुवर्णरिता, सुवर्ण, सुवर्णनामा, सुवर्णप्रिय, इन्द्र, यम, वरुण, धनद, अनल, उत्फुल्ल, चित्रभानु, स्वर्भानु, भानु, होत्र, होता, होमा, हुत, प्रभु, त्रिसुपर्ण, यजुर्वेद के शतरुद्रीय तथा पवित्र समूह में पवित्र तथा मांगलिकों में मंगल भी आप हैं। आप ही प्राण, रजोगुण, तमोगुण तथा सत्वगुण हैं।।५०-५९।।

प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च। उन्मेषश्च निमेषश्च क्षुत्तृड्जृम्भा तथैव च॥६०॥
लोहिताङ्गश्च दंष्ट्री च महावक्त्रो महोदरः। शुचिरोमा हरिच्छ्मश्रुरूर्ध्वकेशश्चलाचलः॥६१॥
गीतवादित्रनृत्याङ्गो गीतवादनकप्रियः। मत्स्यो जालो जलोऽजय्यो जलव्यालः कुटीचरः॥६२॥
विकालश्च सुकालश्च दुष्कालः कालनाशनः।
मृत्युश्चैवाक्षयोऽन्तश्च क्षमामायाकरोत्करः॥६३॥
संचर्तो वर्तकश्चैव संवर्तकबलाहकौ। घण्टाकी घण्टकी घण्टी चूडालो लवणोदधिः॥६४॥
ब्रह्मा कालाग्निवक्त्रश्च दण्डी मुण्डस्त्रिदण्डधृक्। चतुर्युगश्चतुर्वेदश्चतुर्होत्रश्चतुष्पथः॥६५॥

चातुराश्रम्यनेता च चातुवर्ण्यकरश्च ह। क्षराक्षरः प्रियो धूर्तो गणैर्गण्यो गणाधिपः॥६६॥

रक्तमाल्याम्बरधरो गिरीशो गिरिजाप्रियः।
शिल्पीशः शिल्पिनः श्रेष्ठं सर्वशिल्पिप्रवर्तकः॥६७॥
भगनेत्रान्तकश्चण्डः पूष्णो दन्तविनाशनः।
स्वाहा स्वधा वषट्कारो नमस्कार नमोऽस्तु ते॥६८॥

गूढव्रतश्च गूढश्च गूढव्रतनिषेधितः। तरणस्तारणश्चैव सर्वभूतेषु तारणः॥६९॥

आप प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, उन्मेष, निमेष, भूख, पिपासा तथा जंभाई भी हैं। आप लोहितांग, दंष्ट्री, महावक्त्र, महोदर, शुचिरोम, हरितश्मश्रु, ऊर्ध्वकेश, चलाचल, गीत-वाद्य-नृत्य, गीत वादन प्रिय, मत्स्य, जाल, जल, अजय्य, जलसर्प, कुटीचर, विकाल, सुकाल, दुष्काल, कालनाशक, मृत्यु, अक्षय, अन्त, क्षमाकर, मायाकर, सम्वर्त्त, वर्त्तक, सम्वर्त्तक, बलाहक, घण्टाकी, घण्टकी, घण्टी, चूडाल, लवण समुद्र, ब्रह्मा, कालाग्निमुख, मुण्ड, त्रिदण्डधारी, चतुर्युग, चतुर्वेद, चतुहोत्र, चतुष्पथ, चतुराश्रम नेता, चतुर्वर्णाकार, क्षर, अक्षर, प्रिय, धूर्त्त, गण, गण्य, गणाधिप, लाल माला तथा लाल वस्त्रधारी, गिरीश, गिरिजाप्रिय, शिल्पीश, शिल्पिश्रेष्ठ, सर्वशिल्पप्रवर्त्तक, भगनेत्रान्तक, चण्ड, पूषा दन्तनाशक, स्वाहा, स्वधा, वषट्कार, नमस्कार, गढ़व्रत, गढ़, गढ़व्रत निषेवित, तरुण, तारण तथा सभी भूतों के तारणहार आप ही हैं।।६०-६९।।

धाता विधाता संधाता निधाता धारणो धरः।
तपो ब्रह्म च सत्यं च ब्रह्मचर्यं तथाऽऽर्जवम्॥७०॥

भूतात्मा भूतकृद्भूते भूतभव्यभवोद्भवः। भूर्भुवः स्वरितश्चैव भूतो ह्यग्निर्महेश्वरः॥७१॥

ब्रह्मावर्तः सुरावर्तः कामावर्त नमोऽस्तु ते।
कामबिम्बविनिर्हन्ता कर्णिकारस्त्रजप्रियः॥७२॥
गोनेता गोप्रचारश्च गोवृषेश्वरवाहनः।
त्रैलोक्यगोप्ता गोविन्दो गोप्ता गोगर्ग (?) एव च॥७३॥
अखण्डचन्द्राभिमुखः सुमुखो दुर्मुखोऽमुखः।
चतुर्मुखो बहुमुखो रणेष्वभिमुखः सदा॥७४॥

हिरण्यगर्भः शकुनिर्धनदोऽर्थपतिर्विराट्। अधर्महा महादक्षो दण्डधारो रणप्रियः॥७५॥

आप धाता, विधाता, संधाता, निधाता, धारण तथा धर हैं। आप तप, ब्रह्म, सत्य, ब्रह्मचर्य, आर्जव, भूतात्मा, भूतकृत्, भूत, भूत-भविष्य-वर्तमान, उद्भव, भूः, भुवः, स्वः, अग्नि, महेश्वर, ब्रह्मावर्त्त, सुरावर्त्त, कामावर्त्त हैं। आपको नमस्कार! आप कामविम्ब संहर्त्ता, कर्णिकार मालाप्रिय, गोनेता, गोप्रचारक, गोत्र, वृषेश्वर वाहन, त्रैलोक्यगोप्ता, गोविन्द, गोप्ता, गोवर्ग, अखण्डचन्द्राभिमुख, सुमुख, दुर्मुख, अमुख, चतुर्मुख, बहुमुख, सदारणाभिमुख, हिरण्यगर्भ, शकुनी, धनद, अर्थपति, विराट, अधर्महा, महादक्ष, दण्डधर, रणप्रिय हैं।।७०-७५।।

तिष्ठन्स्थिरश्च स्थाणुश्च निष्कम्पश्च सुनिश्चलः। दुर्वारणो दुर्विषहो दुःसहो दुरतिक्रमः॥७६॥
दुर्धरो दुर्वशो नित्यो दुर्दर्पो विजयो जयः। शशः शशाङ्कनयनशीतोष्णः क्षुत्तृषा जरा॥७७॥

आधयो व्याधयश्चैव व्याधिहा व्याधिपश्च यः।
सह्यो यज्ञमृगव्याधो व्याधिनामाकरोऽकरः॥७८॥

शिखण्डी पुण्डरीकश्च पुण्डरीकावलोकनः। दण्डधृक्चक्रदण्डश्च रौद्रभागविनाशनः॥७९॥
विषपोऽमृतपश्चैव सुरापः क्षीरसोमपः। मधुपश्चाऽऽपपश्चैव सर्वपश्च बलाबलः॥८०॥

वृषाङ्गराम्भो (?) वृषभस्तथा वृषभलोचनः।
वृषभश्चैव विख्यातो लोकानां लोकसंस्कृतः॥८१॥

आप स्थित, स्थिर, स्थाणु, निष्कम्प, सुनिश्चल, दुर्वारण, दुर्विषह, दुःसह, दुरतिक्रम, दुर्द्धर, दुर्वश, नित्य, दुर्दर्प, विजय, जय, शश, शशांकनेत्र, शीतोष्ण, क्षुधा, तृष्णा, जरा, आधि, व्याधि, व्याधिहा, व्याधिप, सह्य, यज्ञमृगव्याध, व्याधिनाम, कारोत्कर, शिखण्डी, पुण्डरीक, पुण्डरीकावलोकन, दण्डधृक्, चक्रदण्ड, रौद्रभागविनाशन, विषप, अमृतप, सुराप, क्षीरसोम, मधुप, आपय, सर्वप, बलाबल, वृषांगरान्त, वृषभ, वृषभलोचन, वृषभनामक लोकप्रसिद्ध तथा लोक नमस्कृत हैं!॥७६-८१॥

चन्द्रादित्यौ चक्षुषी ते हृदयं च पितामहः। अग्निष्टोमस्तथा देहो धर्मकर्मप्रसाधितः॥८२॥

न ब्रह्मा न च गोविन्दः पुराणऋषयो न च।
माहात्म्यं वेदितुं शक्ता याथातथ्येन ते शिवः॥८३॥
शिवा या मूर्तयः सूक्ष्मास्ते मह्यं यान्तु दर्शनम्।
ताभिर्मां सर्वतो रक्ष पिता पुत्रमिवौरसम्॥८४॥
रक्ष मां रक्षणीयोऽहं तवानघ नमोऽस्तु ते।
भक्तानुकम्पी भगवान्भक्तश्चाहं सदा त्वयि॥८५॥
यः सहस्राण्यनेकानि पुंसामावृत्य दुर्दृशाम्।
तिष्ठत्येकः समुद्रान्ते स मे गोप्ताऽस्तु नित्यशः॥८६॥
यं विनिद्रा जितश्वासाः सत्त्वस्थाः समदर्शिनः।
ज्योतिः पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मैयोगात्मने नमः॥८७॥

सम्भक्ष्य सर्वभूतानि युगान्ते समुपस्थिते। यः शेते जलमध्यस्थस्तं प्रपद्येऽम्बुशायिनम्॥८८॥

आपके दो नेत्र हैं चन्द्र-सूर्य। पितामह हृदय हैं। धर्म-कर्म प्रसाधित अग्निष्टोम देह है। ब्रह्मा-गोविन्द तथा पौराणिक (प्राचीन) ऋषि आदि कोई भी आपका माहात्म्य नहीं जानते। हे शिव! आपकी जितनी भी सूक्ष्म शिवमूर्त्ति है, वह मुझे दिखलाई पड़े। जैसे पिता अपने औरस पुत्र की रक्षा करता है, आप इन मूर्त्ति द्वारा मेरी रक्षा करें। हे निष्पाप! मैं आपके द्वारा रक्षणीय हूं। आप रक्षा करें। आपको नमस्कार! आप भक्तों पर अनुकम्पा करने वाले भगवान् हैं। मैं सदा आपका भक्त हूं। जो सहस्रों दुर्दृष्टि पुरुषों को आवृत करके एकाकी समुद्र के

अन्त में निवास करते हैं, वे मेरे नित्य रक्षक हो जाये। निद्रा को जीत कर, श्वास को जीत कर, समदर्शी, सत्वगुणी साधुगण योगतत्पर होकर जिस ज्योतिःपदार्थ का अवलोकन करते हैं, उन जलशायी पुरुष की मैं शरण ग्रहण करता हूं।।८२-८८।।

प्रविश्य वदनं राहोर्यः सोमं पिबते निशि।
ग्रसत्यर्कं च स्वर्भानुर्भूत्वा सोमाग्निरेव च॥८९॥
अङ्गुष्ठमात्राः पुरुषा देहस्थाः सर्वदेहिनाम्।
रक्षन्तु ते च मां नित्यं नित्यं चाऽऽप्याययन्तु माम्॥९०॥
येनाप्युत्पादिता गर्भा अपो भागगताश्च ये।
तेषां स्वाहा स्वधा चैव आप्नुवन्ति स्वदन्ति च॥९१॥
येन रोहन्ति देहस्थाः प्राणिनो रोदयन्ति च।
हर्षयन्ति न कृष्यन्ति नमस्तेभ्यस्तु नित्यशः॥९२॥

जो पूर्णिमा तिथि पर राहु के मुख में प्रविष्ट होकर रात्रि में सोमपान करते हैं तथा अमावस्या के दिन स्वर्भानु होकर सूर्य का ग्रास करते हैं, जो सभी देहधारियों के देहस्थ अंगुष्ठ मात्र पुरुष रूप से विद्यमान रहते हैं, वे नित्य मेरी रक्षा करें तथा मुझे तृप्त करें। जिनके द्वारा उत्पादित समस्त गर्भ स्वाहा-स्वधा प्राप्त करता है तथा प्राणीगण उद्भूत होकर रोदन-हर्ष-विषाद स्थिति का भोग करते हैं, उनको मैं नित्य नमस्कार करता हूं! (वे अंगुष्ठमात्र पुरुष स्वयं किसी भी स्थिति के प्रति आकृष्ट नहीं होते)।।८९-९२।।

ये समुद्रे नदीदुर्गे पर्वतेषु गुहासु च। वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु कान्तारगहनेषु च॥९३॥
चतुष्पथेषु रथ्यासु चत्वरेषु सभासु च। हस्त्यश्वरथशालासु जीर्णोद्यानालयेषु च॥९४॥
येषु पञ्चसु भूतेषु दिशासु विदिशासु च। इन्द्रार्कयोर्मध्यगता ये च चन्द्रार्करश्मिषु॥९५॥

रसातलगता ये च ये च तस्मात्परं गताः।
नमेस्तेभ्यो नमेस्तेभ्यो नमेस्तेभ्यस्तु सर्वशः॥९६॥

सर्वस्त्वं सर्वगो देवः सर्वभूतपतिर्भवः। सर्वभूतान्तरात्मा च तेन त्वं न निमन्त्रितः॥९७॥
त्वमेव चेज्यसे देव यज्ञैर्विविधदक्षिणैः। त्वमेव कर्ता सर्वस्य तेन त्वं न निमन्त्रितः॥९८॥

अथवा मायया देव मोहितः सूक्ष्मया तव।
तस्मात्तु कारणाद्वाऽपि त्वं मया न निमन्त्रितः॥९९॥
प्रसीद मम देवेश त्वमेव शरणं मम।
त्वं गतिस्त्वं प्रतिष्ठा च न चान्योऽस्तीति मे मतिः॥१००॥

जो प्रभु समुद्र, नदी, दुर्ग, पर्वत, पर्वतगुहा, वृक्षमूल, गोष्ठ, गहन वन, चौराहा, रथ्या, चत्वर, सभा, हाथी, अश्व, रथशाला, जीर्ण उद्यान, पञ्चभूत, दिक्, विदिक्, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, सूर्यरश्मि, रसातल प्रदेश में जिन-जिन अंश से विराजमान हैं, तथा जिस-जिस अंश से उन-उन स्थानों के भी ऊर्ध्व में प्रसर्पित हैं, मैं सर्व

प्रकार से बारम्बार उन सबको प्रणाम करता हूं! हे देव! आप ही सर्व, सर्वग, सर्वभूताधिपति, भव तथा सर्वभूतान्तरात्मा हैं। तभी मैंने आपको अलग से निमन्त्रित नहीं किया। हे देव! आप ही विविध दक्षिणायुक्त यज्ञों द्वारा अर्चित होते हैं। आप ही सबके कर्त्ता हैं। अतः आपको मैंने अलग से निमन्त्रित नहीं किया। हे देव! आपकी ही सूक्ष्म माया से मैं मोहित हो गया, तभी मैंने आपको निमन्त्रित नहीं किया। हे देवेश! आप मुझ पर प्रसन्न हो जायें। आप ही मुझे शरण देने वाले प्रभु हैं। आप ही गति, प्रतिष्ठा हैं। आपके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।।९३-१००।।

ब्रह्मोवाच

स्तुत्वैवं स महादेवं विरराम प्रजापतिः। भगवानपि सुप्रीतः पुनर्दक्षमभाषत॥१०१॥

ब्रह्मा कहते हैं—दक्ष प्रजापति ने महादेव का ऐसा स्तव किया तथा मौन हो गये। तब भगवान् भव ने प्रसन्न होकर दक्ष से कहा—।।१०१।।

श्रीभगवानुवाच

परितुष्टोऽस्मि ते दक्ष स्तवेनानेन सुव्रत। बहुना तु किमुक्तेन मत्समीपं गमिष्यसि॥१०२॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे दक्ष! हे सुव्रत! इस स्तव से मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हो गया। अधिक क्या कहूं, तुमने मेरा सालोक्य प्राप्त कर लिया।।१०२।।

ब्रह्मोवाच

तथैवमब्रवीद्वाक्यं त्रैलोक्याधिपतिर्भवः।
कृत्वाऽऽश्वासकरं वाक्यं सर्वज्ञो वाक्यसंहितम्॥१०३॥

ब्रह्मा कहते हैं—त्रैलोक्य के स्वामी सर्वज्ञ शिव यह आश्वास वाक्य कहकर पुनः कहने लगे।।१०३।।

श्रीशिव उवाच

दक्ष दुःखं न कर्तव्यं यज्ञविध्वंसनं प्रति। अहं यज्ञहनस्तुभ्यं दृष्टमेत्पुराऽनघ॥१०४॥
भूयश्च त्वं वरमिमं मत्तो गृह्णीष्व सुव्रत। प्रसन्नसुमुखो भूत्वा ममैकाग्रमनाः शृणु॥१०५॥
अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य वै। प्रजापते मत्प्रसादात्फलभागी भविष्यसि॥१०६॥

वेदान्षडङ्गान्बुध्यस्व सांख्ययोगांश्च कृत्स्नशः।
तपश्च विपुलं तप्त्वा दुश्चरं देवदानवैः॥१०७॥

अब्दैर्द्वादशभिर्युक्तं गूढमप्रज्ञनिन्दितम्। वर्णाश्रमकृतैर्धर्मैर्विनीतं न क्वचित्क्वचित्॥१०८॥
समागतं व्यवसितं पशुपाशविमोक्षणम्। सर्वेषामाश्रमाणां च मया पाशुपतं व्रतम्॥१०९॥

उत्पादितं दक्ष शुभं सर्वपापविमोचनम्।
अस्य चीर्णस्य यत्सम्यक्फलं भवति पुष्कलम्।
तच्चास्तु सुमहाभाग मानसस्त्यज्यतां ज्वरः॥११०॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे दक्ष! सुव्रत! तुम्हारा यज्ञ ध्वंस हो गया, इससे दुःखी नहीं होना। तुम पुनः मुझसे यह वर ग्रहण करो तथा प्रसन्नता पूर्वक प्रफुल्ल होकर सुनो। हे प्रजापति! तुम मेरी कृपा से एक हजार अश्वमेध तथा सौ वाजपेय यज्ञ के भागी होगे। तुम षडङ्ग वेद तथा सांख्ययोग को पढ़ो। मैंने बारह वर्ष तक देव तथा दानव के लिये भी दुष्कर विपुल तप द्वारा जिस गूढ़ अनन्दित वर्णाश्रम से अविरोधी पशुपाश विमोचक सर्वाश्रम सम्मत सर्वपापहारी, शुभ पाशुपत व्रत का आविष्कार किया है, उस व्रतानुष्ठान का जो प्रचुर फल होता है, हे महाभाग! तुमको वही फल मिले तथा तुम मानस ज्वर का त्याग करो।।१०४-११०।।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तु देवेशः सपत्नीकः सहानुगः। अदर्शनमनुप्राप्तो दक्षस्यामिततेजसः।।१११।।

अवाप्य च तथा भागं यथोक्तं चोमया भवः।
ज्वरं च सर्वधर्मज्ञो बहुधा व्यभजत्तदा।।११२।।
शान्त्यर्थं सर्वभूतानां शृणुध्वमथ वै द्विजाः।
शिखाभितापो नागानां पर्वतानां शिलाजतु।।११३।।
अपां तु नीलिकां विद्यान्निर्मोको भुजगेषु च।
खोरकः सौरभेयोणामूखरः पृथिवीतले।।११४।।
शुनामपि च धर्मज्ञा दृष्टिप्रत्यवरोधनम्।
रन्ध्रागतमथाश्वानां शिखोद्भेदश्च बर्हिणाम्।।११५।।
नेत्ररागः कोकिलानां द्वेषः प्रोक्तो महात्मनाम्।
जनानामपि भेदश्च सर्वेषामिति नः श्रुतम्।।११६।।
शुकानामपि सर्वेषां हिक्किका प्रोच्यते ज्वरः।
शार्दूलेष्वथ वै विप्राः श्रमोज्वर इहोच्यते।।११७।।

ब्रह्मा कहते हैं—देवदेव यह कहकर भगवती पार्वती तथा अपने गणों के साथ अमित तेजस्वी दक्ष के समक्ष ही अन्तर्ध्यान हो गये। उस समय यथायोग्य यज्ञभाग पाकर सर्वधर्मज्ञ शिव ने सर्वभूतसमूह की शान्ति हेतु शैव ज्वरं को अनेक भागों में बांट दिया। उसमें से नागों का ज्वर था शिखाभिताप, पर्वत का शिलाजीत, जल का नीलिका, सर्पों का केंचुल, खोरक गो जाति का ज्वर था। (शिखाभिताप अर्थात् सर्प मणि प्रतीत होता है, जल की नीलिका अर्थात् जल पर जो नीली काई छा जाती है। गो जाति का खोरक अर्थात् खुरपका रोग) पृथिवी का ऊखर, कुत्तों का दृष्टि प्रतिरोध, अश्वों का रन्ध्रागत, मयूर का शिखा निकलना, कोकिलों का नेत्ररोग, महात्माओं का द्वेष, तोता को हिक्किका, शार्दूलों का श्रम ही ज्वर है।।१११-११७।।

मानुषेषु च सर्वज्ञा ज्वरो नामैष कीर्तितः।
मरणे जन्मनि तथा मध्ये चापि निवेशितः।।११८।।

एतन्माहेश्वरं तेजो ज्वरो नाम सुदारुणः। नमस्यश्चैव मान्यश्च सर्वप्राणिभिरीश्वरः।।११९।।

इमां ज्वरोत्पत्तिमदीनमानसः, पठेत्सदा यः सुसमाहितो नरः।
विमुक्तरोगः स नरो मुदायुतो, लभेत कामांश्च यथामनीषितान्॥१२०॥
दक्षप्रोक्तं स्तवं चापि कीर्तयेद्यः शृणोति वा।
नाशुभं प्राप्नुयात्किंचिद्दीर्घमायुरवाप्नुयात्॥१२१॥
यथा सर्वेषु देवेषु वरिष्ठो भगवान्भवः।
तथा स्तवो वरिष्ठोऽयं स्तवानां दक्षनिर्मितः॥१२२॥
यशः स्वर्गसुरैश्वर्यवित्तादिजयकाङ्क्षिभिः।
स्तोतव्यो भक्तिमास्थाय विद्याकामैश्च यत्नतः॥१२३॥
व्याधितो दुःखितो दीनो नरो ग्रस्तो भयादिभिः।
राजकार्यनियुक्तो वा मुच्यते महते भयात्॥१२४॥
अनेनैव च देहेन गणानां च महेश्वरात्। इह लोके सुखं प्राप्य गणराडुपजायते॥१२५॥

हे सर्वज्ञ ऋषियों! मरण तथा जन्म के बीच मनुष्यों में ज्वर प्रविष्ट होता है। भयंकर ज्वर रूपी यह शिवतेज समस्त प्राणीगण हेतु मान्य एवं नमस्य है। जो मानव दीनता रहित एवं समाहित होकर इस ज्वरोत्पत्ति वार्त्ता का पाठ किया करते हैं, वे विमुक्त रोग होकर सहर्ष सर्व कामना लाभ करते हैं। जो व्यक्ति दक्ष द्वारा कथित शिवस्तव का पाठ करते अथवा सुनते हैं, उनका कोई अशुभ नहीं होता। वे दीर्घायु लाभ करते हैं। सभी देवगण में भगवान् भव वरिष्ठ हैं। इसी प्रकार सभी स्तवों में यह दक्ष कथित स्तव उत्तम है। यशः, स्वर्ग, देवैश्वर्य, वित्त तथा विद्या प्रार्थी लोग यत्नतः भक्तियुक्त मन से यह स्तोत्र पाठ करें। व्याधिग्रस्त, दुःखी, भयग्रस्त तथा राजकार्य में लगा व्यक्ति यह पाठ करके महाभय मुक्त हो जाता है। वह देह रहते ही गणेश्वर बन कर इस लोक में सुखी तथा गणराज होता है।।११८-१२५।।

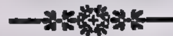
न यक्षा न पिशाचा वा न नागा न विनायकाः।
कुर्युर्विघ्नं गृहे तस्य यत्र संस्तूयते भवः॥१२६॥
शृणुयाद्वा इदं नारी भक्त्याऽथ भवभाविता।
पितृपक्षे भर्तृपक्षे पूज्या भवति चैव ह॥१२७॥
शृणुयाद्वा इदं सर्वं कीर्तयेद्वाप्यभीक्ष्णशः।
तस्य सर्वाणि कार्याणि सिद्धिं गच्छन्त्यविघ्नतः॥१२८॥
मनसा चिन्तितं यच्च यच्च वाचाऽप्युदाहृतम्।
सर्वं संपद्यते तस्य स्तवस्यास्यानुकीर्तनात्॥१२९॥
देवस्य सगुहस्याथ देव्या नन्दीश्वरस्य च।
बलिं विभज (भाग) तः कृत्वा दमेन नियमेन च॥१३०॥

जिस गृह में यह शिव स्तुति का पाठ किया जाता है, वहां यक्ष, पिशाच, नाग, विनायक आदि कोई

भी विघ्न कर सकने में सक्षम नहीं होते। जो स्त्री मनोयोग के साथ भक्ति पूर्वक इस स्तोत्र का श्रवण करती है, वह पितृगृह तथा पतिगृह में सदा सम्मानित होती है। जो इस स्तव को आमूलतः सुनते अथवा पाठ करते हैं, उनका सभी काम विघ्नरहित सम्पन्न होता है। इस स्तव के कीर्त्तन के फलस्वरूप मन ही मन जो कोई जो भी चिन्तन करता है अथवा वाणी से कहता है, वह सब सम्पन्न होता है। दान्त तथा नियम सम्पन्न होकर गुह तथा नन्दीश्वर (गुह = कार्त्तिकेय) के साथ देवेश्वर महादेव को बलि देकर तब यथाक्रमेण यह १००८ नाम पाठ करें।।१२६-१३०।।

ततः प्रयुक्तो गृह्णीयान्नामान्याशु यथाक्रमम्।
इप्सिताल्लँभतेऽप्यर्थान्कामान्भोगांश्च मानवः।।१३१।।
मृतश्च स्वर्गमाप्नोति स्त्रीसहस्त्रसमावृतः।
सर्वकामसुयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः।।१३२।।
पठन्दक्षकृतं स्तोत्रं सर्वपापैः प्रमुच्यते। मृतश्च गणसायुज्यं पूज्यमानः सुरासुरैः।।१३३।।
वृषेण विनियुक्तेन विमानेन विराजते। आभूतसंप्लवस्थायी रुद्रस्यानुचरो भवेत्।।१३४।।
इत्याह भगवान्व्यासः पराशरसुतः प्रभुः।
नैतद्वेदयते कश्चिन्नैतच्छ्राव्यं च कस्यचित्।।१३५।।
श्रुत्वेमं परमं गुह्यं येऽपि स्युः पापयोनयः।
वैश्याः स्त्रियश्च शूद्राश्च रुद्रलोकमाप्नुयुः।।१३६।।
श्रावयेद्यश्च विप्रेभ्यः सदा पर्वसु पर्वसु। रुद्रलोकमवाप्नोति द्विजो वै नात्र संशयः।।१३७।।

इति श्री महापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भ्वृषिसंवादे दक्षस्तवनिरूपणं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः।।४०।।



ऐसा अनुष्ठान करने वाला व्यक्ति समस्त अभीष्ट भोग लाभ करके मरणान्त में हजारों स्त्रियों से घिरा रहकर स्वर्गलाभ करता है। यदि मनुष्य सभी प्रकार के पातकों से ग्रस्त है, वह इस दक्षकृत स्तोत्र को पढ़ने से सर्वपाप विनिर्मुक्त होकर सुर-असुर सबसे पूजित होकर गणसायुज्य पाता है। इस स्तव को पढ़ने वाला वृषयुक्त विमान पर बैठकर कल्पान्त तक रुद्र का अनुचर होकर रहता है। भगवान् पराशर पुत्र व्यासदेव ने मुनियों से यह सब कहा था। उनके अतिरिक्त और कोई यह तत्व नहीं जानता तथा इसे किसी को सुनाया भी नहीं। यह अति गोपनीय कथा सुनकर वैश्य, शूद्र, स्त्री अथवा अन्य पापयोनि भी रुद्रलोक जाते हैं। जो ब्राह्मण प्रत्येक पर्व दिन पर यह स्तोत्र अन्य ब्राह्मणों को सुनाता है, उसकी तो रुद्रलोक प्राप्ति निश्चित है। इसमें संशय नहीं है।।१३१-१३७।।

।।चत्वारिंश अध्याय समाप्त।।



अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

एकाम्रक्षेत्र का माहात्म्य वर्णन

लोमहर्षण उवाच

श्रुत्वैवं वै मुनिश्रेष्ठाः कथां पापप्रणाशिनीम्।
रुद्रक्रोधोद्भवां पुण्यां व्यासस्य वदतो द्विजाः॥१॥
पार्वत्याश्च तथा रोषं क्रोधं शंभोश्च दुःसहम्।
उत्पत्तिं वीरभद्रस्य भद्रकाल्याश्च संभवम्॥२॥
दक्षयज्ञविनाशं च वीर्यं शम्भोस्तथाऽद्भुतम्। पुनः प्रसादं देवस्य दक्षस्य सुमहात्मनः॥३॥
यज्ञभागं च रुद्रस्य दक्षस्य च फलं क्रतोः।
हृष्टा बभूवुः सम्प्रीता विस्मिताश्च पुनः पुनः॥४॥
पप्रच्छुश्च पुनर्व्यासं कथाशेषं तथा द्विजाः।
पृष्टः प्रोवाच तान्व्यासः क्षेत्रमेकाम्रकं पुनः॥५॥

लोमहर्षण कहते हैं—यह व्यास द्वारा कही रुद्रकोप सम्भूत पापनाशिनी पवित्र कथा है। पार्वती का क्रोध, शंभु का दुःसह क्रोध, वीरभद्र की उत्पत्ति, भद्रकाली का उद्भव, दक्षयज्ञ विनाश, शम्भु का अद्भुद् वीर्यवैभव, महात्मा देवदेव शिव की पुनः प्रसन्नता, रुद्र को यज्ञभाग मिलना तथा दक्ष को यज्ञ का फल। इन सबका श्रवण करके मुनिप्रवरगण प्रसन्न, प्रहृष्ट तथा विस्मित होकर व्यासदेव से पुनः-पुनः मुनिगण ने कथा अन्त तक कहने का अनुरोध किया। व्यासजी ने मुनियों द्वारा पूछे जाने पर एकाम्रक्षेत्र का विवरण कहने लगे॥१-५॥

व्यास उवाच

ब्रह्मप्रोक्तां कथां पुण्यां श्रुत्वा तु ऋषिपुङ्गवा। प्रशशंसुस्तदा हृष्टा रोमाञ्चिततनूरुहाः॥६॥

व्यास कहते हैं—वे ऋषिपुंगवगण वहां ब्रह्मा द्वारा कही कथा सुनकर उस समय प्रसन्न तथा रोमांचित होकर प्रशंसा करने लगे॥६॥

ऋषय ऊचुः

अहो देवस्य माहात्म्यं त्वया शम्भोः प्रकीर्तितम्।
दक्षस्य च सुरश्रेष्ठ यज्ञविध्वंसनं तथा॥७॥
एकाम्रकं क्षेत्रवरं वक्तुमर्हसि साम्प्रतम्। श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्परं कौतूहलं हि नः॥८॥

ऋषिगण कहते हैं—हे देवश्रेष्ठ! ब्रह्मन्! आपने देवदेव शंभु का माहात्म्य कहा। हे सुरश्रेष्ठ! दक्षयज्ञ ध्वन्स का भी वर्णन किया गया। सम्प्रति एकाम्र क्षेत्र का विवरण कहें। उसे श्रवण करने की हमारी एकान्त इच्छा है॥७-८॥

व्यास उवाच

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा लोकनाथश्चतुर्मुखः। प्रोवाच शम्भोस्तत्क्षेत्रं भूतले दुष्कृतच्छदम्॥९॥

व्यासजी कहते हैं—उनके वचन को सुनकर लोकनाथ चतुर्मुख ब्रह्मा ने पुनः कहा—॥९॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः प्रवक्ष्यामि समासतः। सर्वपापहरं पुण्यं क्षेत्रं परमदुर्लभम्॥१०॥
लिङ्गकोटिसमायुक्तं वाराणसीसमं शुभम्। एकाम्रकेति विख्यातं तीर्थाष्टकसमन्वितम्॥११॥
एकाम्रवृक्षस्तत्राऽऽसीत्पुरा कल्ये द्विजोत्तमाः।
नाम्ना तस्यैव तत्क्षेत्रमेकाम्रकमिति श्रुतम्॥१२॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे मुनिशार्दूलगण! यह सर्वपापहारी, परम दुर्लभ पुण्यक्षेत्र का वर्णन संक्षेप में कहता हूं, आप सब श्रवण करिये। यह एकाम्र नामक स्थान अष्टतीर्थ समन्वित है। हे द्विजप्रवरगण! यहां पूर्वकाल में एक आम्र का वृक्ष था। उसके ही नाम के ऊपर यह क्षेत्र एकाम्र नाम से विख्यात है। यह स्थल कोटि लिंग से पूर्ण तथा वाराणसी के समान पावन है।।१०-१२।।

हृष्टपुष्टजनाकीर्णं नरनारीसमन्वितम्। विद्वांसग (द्यावद्ग) णभूयिष्ठं धनधान्यादिसंयुतम्॥१३॥
गृहगोपुरसंबाधं त्रिकचाद्वारभूषितम्। नानावणिक्समाकीर्णं नानारत्नोपशोभितम्॥१४॥
पुराट्टालकसंयुक्तं रथिभिः समलङ्कृतम्। राजहंसनिभैः शुभ्रैः प्रासादैरुपशोभितम्॥१५॥
मार्गगद्वारसंयुक्तं सितप्राकारशोभितम्। रक्षितं शस्त्रसङ्घैश्च परिखाभिरलंकृतम्॥१६॥
सितरक्तैस्तथा पीतैः कृष्णश्यामैश्च वर्णकैः।
समीरणोद्धताभिश्च पताकाभिरलंकृतम्॥१७॥

यह तीर्थ हृष्ट-पुष्ट लोगों से भरा है। यहां नाना नर-नारी निवास करते हैं। विद्वान् लोगों से यह तीर्थ व्याप्त है। यह धन-धान्य से समृद्ध, गृह, गोपुर से भरा, नाना मणियों से अलंकृत, नाना रत्नों से उपशोभित, पुर एवं अट्टालिकाओं से भरा, रथियों से विभूषित, राजहंस के समान शुभ्र प्रासादमालाओं से परिशोभित, विविध पथ द्वार से परिवृत, शुभ्र-शुभ्र दीवारों से घिरा, नाना शस्त्रों के समूह से सुरक्षित एवं नाना खाईयों से घिरा है। सित (श्वेत), लाल, पीले, कृष्णवर्ण के पताका यहां पवन वेग से फहराते रहते हैं। उनसे इस क्षेत्र की शोभा बढ़ती है।।१३-१७।।

नित्योत्सवप्रमुदितं नानावादित्रनिस्वनैः। वीणावेणुमृदङ्गैश्च क्षेपणीभिरलंकृतम्॥१८॥
देवतायतनैर्दिव्यैः प्राकारोद्यानमण्डितैः। पूजाविचित्ररचितैः सर्वत्र समलङ्कृतम्॥१९॥
स्त्रियः प्रमुदितास्तत्र दृश्यन्ते तनुमध्यमाः। हारैरलङ्कृतग्रीवाः पद्मपत्रायतेक्षणाः॥२०॥
पीनोन्नतकुचाः श्यामाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः। स्थिरालकाः सुकपोलाः काञ्चीनूपुरनादिताः॥२१॥
सुकेश्यश्चारुजघनाः कर्णान्तायतलोचनाः। सर्वलक्षणसम्पन्नाः सर्वाभरणभूषिताः॥२२॥
दिव्यवस्त्रधराः शुभ्राः काश्चित्काञ्चनसन्निभाः। हंसवारणगामिन्यः कुचभारावनामिताः॥२३॥

दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गाः कर्णाभरणभूषिताः। मदालसाश्च सुश्रेण्यो नित्यं प्रहसिताननाः॥२४॥
ईषद्विस्पष्टदशना बिम्बोष्ठा मधुरस्वराः। ताम्बूलरञ्जितमुखा विदग्धाः प्रियदर्शनाः॥२५॥
सुभगाः प्रियवादिन्यो नित्यं यौवनगर्विताः। दिव्यवस्त्रधराः सर्वाः सदा चारित्रमण्डिताः॥२६॥
क्रीडन्ति ताः सदा तत्र स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः।
स्वे स्वे गृहे प्रमुदिता दिवा रात्रौ वराननाः॥२७॥

यहां पर सदा उत्सव होते हैं। यह आनन्दमय स्थल है। यहां स्थान-स्थान पर नाना प्रकार क्री वाद्यध्वनि होती रहती है। कहीं वीणा तो कहीं वेणु एवं मृदङ्ग स्वर सुनाई पड़ता है। यहां प्राकार एवं उद्यानों से मण्डित दिव्य देवभवन भी विद्यमान हैं। वहां क्षीण कमर वाली तनुमध्या रमणीगण प्रसन्न मुद्रा में विचरती रहती हैं। इन रमणियों के गले में हार के गुच्छे सजे हैं। उनके नयन पद्मपत्र जैसे आयत हैं। वे पीन (स्थूल) तथा उन्नत स्तनों वाली हैं। वे नवयौवनवती, पूर्णचन्द्रानना, स्थिर अलकों से शोभायमान, उत्तम कपोलों वाली, काञ्ची तथा नूपुरध्वनि करने वाली, सुकेशी, चारु जंघों वाली, कान तक विस्तृत नेत्रों वाली, सभी उत्तम लक्षणयुता, सर्वाभरण भूषिता तथा दिव्य वस्त्रधारिणी हैं। उनमें से कतिपय गौरवर्ण वाली हैं, कतिपय का वर्ण स्वर्ण के समान है, कोई-कोई राजहंस के समान गतिशील है। कोई-कोई स्तनभार से झुकी हैं। ये रमणियां सभी सर्वाङ्ग में दिव्य गन्ध से लिप्त हैं। ये सर्वाभरण भूषिता, यौवन मदभार से अलसा, सुचारु जघन से अन्विता तथा सदा हास्यवदना हैं। उनमें से कुछ का दांत तनिक विकसित है, कण्ठस्वर मधुर है। ओष्ठ बिम्बफल सदृश हैं तथा मुख ताम्बूलराग से रंजित है। ये सभी पण्डिता, प्रियदर्शना तथा सुभगा हैं। सभी प्रियवादिनी तथा स्थिरयौवन गर्विता हैं। वे सभी सुचरित्र वाली हैं। ये अप्सराओं के समान उत्तम वस्त्रों वाली हैं। ये वरा रमणीगण दिन-रात अपने-अपने गृह में क्रीड़ारत रहती हैं।।१८-२७।।

पुरुषास्तत्र दृश्यन्ते रूपयौवनगर्विताः। सर्वलक्षणसम्पन्नाः सुमृष्टमणिकुण्डलाः॥२८॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च मुनिसत्तमाः।
स्वधर्मनिरतास्तत्र निवसन्ति सुधार्मिकाः॥२९॥
अन्याश्च तत्र तिष्ठन्ति वारमुख्याः सुलोचनाः।
घृताचीमेनकातुल्यास्तथा समतिलोत्तमाः॥३०॥
उर्वशीसदृशाश्चैव विप्रचित्तिनिभास्तथा। विश्वाचीसहजन्याभाः प्रम्लोचासदृशास्तथा॥३१॥
सर्वास्ताः प्रियवादिन्यः सर्वा विहसिताननाः।
कलाकौशलसंयुक्ताः सर्वास्त गुणसंयुताः॥३२॥
एवं पण्यस्त्रियस्तत्र नृत्यगीतविशारदाः। निवसन्ति मुनिश्रेष्ठाः सर्वस्त्रीगुणगर्विताः॥३३॥
प्रेक्षणालापकुशलाः सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः। न रूपहीना दुर्वृत्ता न परद्रोहकारिकाः॥३४॥
यासां कटाक्षपातेन मोहं गच्छन्ति मानवाः।
न तत्र निर्धनाः सन्ति न मूर्खा न परद्विषः॥३५॥

न रोगिणो न मलिना न कदर्या न मायिनः। न रूपहीना दुर्वृत्ता न परद्राहकारिणः॥३६॥

यहां के पुरुष सदा रूप यौवन गर्वित, उत्तम लक्षण वाले, उज्ज्वल मणिकुण्डलधारी होते हैं। यहां ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी स्व-स्व धर्म में निरत रहते निवास करते हैं। इसके अतिरिक्त घृताची, प्रम्लोचा तथा मेनका के समान अनेक वरवनितायें भी यहां रहती हैं। ये सभी प्रियवादिनी, हंसमुख, कलाकौशल जानने वाली तथा सर्वगुणान्विता हैं। हे मुनिगण! इस प्रकार नृत्यगीत में निपुण गुणमण्डिता पण्यस्त्रियां यहां रहती हैं। ये सभी देखने में तथा बातचीत करने में कुशल, प्रियदर्शिनी तथा शोभना हैं। इनमें से कोई भी रूपरहिता, दुर्वृत्ता अथवा परद्रोही नहीं है। मानव इनके कटाक्ष मात्र से मोहग्रस्त हो जाते हैं। एतद्व्यतिरिक्त इस विश्वप्रसिद्ध क्षेत्र में कोई भी पुरुष निर्धन, मूर्ख, परद्वेषी नहीं है। कोई भी रोगी, मलिन, मायावी, रूपहीन, दुर्वृत्त अथवा परद्रोही नहीं है।।२८-३६।।

तिष्ठन्ति मानवास्तत्र क्षेत्रे जगति विश्रुते। सर्वत्र सुखसञ्चारं सर्वसत्त्वसुखावहम्॥३७॥
नानाजनसमाकीर्णं सर्वसस्यसमन्वितम्। कर्णिकारैश्च पनसैश्चम्पकैर्नागकेसरैः॥३८॥
पाटलाशोकबकुलैः कपित्थैर्बहुलैर्धवैः। चूतनिम्बकदम्बैश्च तथाऽन्यैः पुष्पजातिभिः॥३९॥
नीपकैर्धवखदिरैर्लताभिश्च विराजितम्। शालैस्तालैस्तमालैश्च नारिकेलैः शुभाञ्जनैः॥४०॥
अजुनैः समपर्णैश्च कोविदारैः सपिप्पलैः। लकुचैः सरलैर्लोध्रैर्हिन्तालैर्देवदारुभिः॥४१॥
पलाशैर्मुचुकुन्दैश्च पारिजातैः सकुब्जकैः। कदलीवनखण्डैश्च जम्बूपूगफलैस्तथा॥४२॥

वहां के अधिवासी सर्वदा सुखमग्न हैं। वहां नाना जाति वाले लोगों का निवास है। वहां पर सभी जगह सभी अन्न से पूर्ण है। उस क्षेत्र के नाना स्थान में कर्णिकार, पनस, चम्पक, नागकेशर, पाटल, अशोक, बकुल, कपित्थ, विविध प्रकार के धव, आम्र, नीम, कदम्ब, नीपक, खदिर तथा विविध पुष्पमयी लता विराजमान है। इसके अतिरिक्त वहां शाल, ताल, तमाल, नारियल, शोभाञ्जन, अर्जुन, समपर्ण, कचनार, पीपल, बड़हल, सरल, लोध्र, हिन्ताल, देवदारु, पलाश, मुचुकुन्द, पारिजात, कुब्ज, कदली वनखण्ड, जामुन सुपारी के वृक्ष हैं।।३७-४२।।

केतकीकरवीरैश्च अतिमुक्तैश्च किंशुकैः।
मन्दारकुन्दपुष्पैश्च तथाऽन्यैः पुष्पजातिभिः॥४३॥
नानापक्षिरुतैः सेव्यैरुद्यानैर्नन्दनोपमैः। फलभारानतैर्वृक्षैः सर्वर्तुकुसुमोत्करैः॥४४॥
चकोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गराजैश्च कोकिलैः। कलविङ्कैर्मयूरैश्च प्रियपुत्रैः शुकैस्तथा॥४५॥
जीवंजीवकहारीतैश्चातकैर्वनवेष्टितैः। नानापक्षिगणैश्चान्यैः कूजद्भिर्मधुरस्वरैः॥४६॥

वहां केतकी, कनेर, अतिमुक्त, पलाश, मन्दार, कुन्द तथा अन्य पुष्प जाति विराजमान हैं। वहां अर्जुन, समपर्ण, कोविदार, पीपल, लकुच, सरल, लोध्र, हिन्ताल, देवदारु, पलाश, मुचुकुन्द, पारिजात, कुंजर, कदली, जम्बु, सुपारी, केतकी, करवीर, अतियुक्त, किंशुक, मन्दार, कुन्द तथा अन्य पुष्पप्रधान तरु, लता से वह क्षेत्र अलंकृत है। वहां नाना पक्षी कुंजन करते हैं। नन्दन वन की तरह न जाने कितने ही उद्यान वहां शोभित बने हुये हैं। वृक्षगण, सभी ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले पुष्पों से शोभित फलों से भरे हैं। चकोर,

शतपत्र (कठफोड़वा), भृंगराज, कोकिल, कलविंक, मयूर, प्रियपुत्र, शुक, जीव-जीवक, पपीहा, हारीत, चातक प्रभृति पक्षीगण वहां मधुर स्वर से कूंजन कर रहे थे।।४३-४६।।

दीर्घिकाभिस्तडागैश्च पुष्करिणीभिश्च वापिभिः।
नानाजलाशयैश्चान्यैः पद्मिनीखण्डमण्डितैः॥४७॥
कुमुदैः पुण्डरीकैश्च तथा नीलोत्पलैः शुभैः।
कादम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैव जलकुक्कुटैः॥४८॥
कारण्डवैः प्लवैर्हंसैस्तथाऽन्यैर्जलचारिभिः। एवं नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पैर्नानाविधैर्वरैः॥४९॥
नानाजलाशयैः पुण्यैः शोभितं तत्समन्ततः।
आस्ते तत्र स्वयं देवः कृत्तिवासा वृषध्वजः॥५०॥
हिताय सर्वलोकस्य भुक्तिमुक्तिप्रदः शिवः।
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितश्च सरांसि च॥५१॥
पुष्करिण्यस्तडागानि वाप्यः कूपाश्च सागराः।
तेभ्यः पूर्वं समाहृत्य जलबिन्दून्पृथक्पृथक्॥५२॥
सर्वलोकहितार्थाय रुद्रः सर्वसुरैः सह। तीर्थं बिन्दुसरो नाम तस्मिन्क्षेत्रे द्विजोत्तमाः॥५३॥
चकार ऋषिभिः सार्धं तेन बिन्दुसरः स्मृतम्।
अष्टम्यां बहुले पक्षे मार्गशीर्षे द्विजोत्तमाः॥५४॥
यस्तत्र यात्रां कुरुते विषुवे विजितेन्द्रियः।
विधिवद्बिन्दुसरसि स्नात्वा श्रद्धासमन्वितः॥५५॥
देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितॄन्सन्तर्प्य वाग्यतः।
तिलोदकेन विधिना नामगोत्रविधानवित्॥५६॥
स्नात्वैवं विधिवत्तत्र सोऽश्वमेधफलं लभेत्। ग्रहोपरागे विषुवे संक्रान्त्यामयने तथा॥५७॥

वहां बावली, तालाब, पुष्करिणी प्रभृति जलाशय पद्मिनी से भरे थे। इन सभी जलाशयों में न जाने कितने कुमुद, पुण्डरीक, सुन्दर नीलकमल खिले थे और कादम्ब, चक्रवाक, जलकुक्कुट, कारण्डक, हंस आदि नाना जलपक्षी विचर रहे थे। उस एकाग्र क्षेत्र में सभी जगह अनेक वृक्ष, नाना सुन्दर-सुन्दर पुष्प तथा अनेक जलाशय शोभित थे। वहां स्वयं भुक्ति तथा मुक्तिदाता वृषध्वज शिव सभी लोकों के हितार्थ अवस्थान करते थे। पृथिवी पर जितने भी पुण्यतीर्थ हैं, जितने नद, नदी, सरोवर, पुष्करिणी, तड़ाग, वापी, कूप तथा सागर हैं, सभी से रुद्रदेव ने विन्दु-विन्दु जल लाकर लोगों के हितार्थ इस क्षेत्र में ऋषियों तथा देवों के साथ मिल कर एक तीर्थ निर्मित किया। हे द्विजोत्तमवृन्द! विन्दु-विन्दु जल लाकर यही तीर्थ बनाया गया, तभी यह विन्दुसर कहा गया है। हे द्विजोत्तमगण! अग्रहायण मासीय कृष्णाष्टमी के दिन अथवा विषुव संक्रान्ति के दिन जो मानव इन्द्रियजित् होकर नाम गोत्र के साथ सविधि इस विन्दुसर की यात्रा करता है तथा यहां सश्रद्ध होकर

स्नान, देव-ऋषि-पितर-मनुष्यादि को तिल जल प्रदान करता है, वह अश्वमेध यज्ञफल लाभ करता है। सूर्य-चन्द्र ग्रहण के समय, तुला-मेष राशि की संक्रान्ति के समय, दक्षिणायन-उत्तरायण के समय।।४७-५७।।

युगादिषु षडशीत्यां तथाऽन्यत्र शुभे तिथौ।
ये तत्र दानं विप्रेभ्यः प्रयच्छन्ति धनादिकम्।।५८।।
अन्यतीर्थाच्छतगुणं फलं ते प्राप्नुवन्ति वै।
पिण्डं ये सम्प्रयच्छन्ति पितृभ्यःसरसस्तटे।।५९।।

अक्षय तृतीया (युगारंभ तिथि) पर (मिथुन-कन्या-धनु-मीन राशि काल में), षड्शीति संक्रान्ति पर, किसी याग-यज्ञ किंवा अन्य पुण्यतिथि के उपलक्ष्य में जो यहां ब्राह्मणों को धनादि दान करता है, उसे अन्य तीर्थों की तुलना में सौ गुणित फल की प्राप्ति होती है। विन्दुसरोवर तट पर पितृगण हेतु पिण्डदान करे।।५८-५९।।

पितृणामक्षयां तृप्तिं ते कुर्वन्ति न संशयः।
ततः शम्भोर्गृहं गत्वा वाग्यतः संयतेन्द्रियः।।६०।।
प्रविश्य पूजयेच्छर्वं कृत्वा तं त्रिःप्रदक्षिणम्।
घृतक्षीरादिभिः स्नानं कारयित्वा भवं शुचिः।।६१।।
चन्दने सुगन्धेन विलिप्य कुङ्कुमेन च। ततः सम्पूजयेद्देवं चन्द्रमौलिमुमापतिम्।।६२।।
पुष्पैर्नानाविधैर्मेध्यैर्बिल्वार्ककमलादिभिः। आगमोक्तेन मन्त्रेण वेदोक्तेन च शङ्करम्।।६३।।
अदीक्षितस्तु नाम्नैव मूलमन्त्रेण चार्चयेत्। एवं सम्पूज्य तं देवं गन्धपुष्पानुरागिभिः।।६४।।
धूपदीपैश्च नैवेद्यैरुपहारैस्तथा स्तवैः। दण्डवत्प्रणिपातैश्च गीतैर्वाद्यैर्मनोहरैः।।६५।।
नृत्यजप्यनमस्कारैर्जयशब्दैः प्रदक्षिणैः। एवं सम्पूज्य विधिवद्देवदेवमुमापतिम्।।६६।।

ऐसा करने वाले व्यक्ति के पितृगण अक्षय तृप्तिलाभ करते हैं। यह निःसंदिग्ध है। तदनन्तर जितेन्द्रिय तथा मौनी रहकर शंभुमन्दिर में जाये तथा उनकी तीन प्रदक्षिणा के उपरान्त घृत-क्षीर से उनको स्नान कराकर पूजन करे। चन्दन तथा कुंकुमादि सुगन्ध अनुलेपन, विविध पुष्प, प्रचुर बिल्व, कमल तथा मदार के पत्ते एवं आंवला फल द्वारा वेद तथा आगम में कहे गये मन्त्रों से चन्द्रमौलि उमापति की अर्चना करनी चाहिये। जो मनुष्य दीक्षित नहीं है, वह केवल नाम एवं मूलमन्त्र से ही अर्चना करे। इस प्रकार से उन देव का पूजन गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्यादि उपहार से करने के पश्चात् स्तुति, दण्डवत् प्रणाम करे। तत्पश्चात् गीत, मनोहर वाद्य, नृत्य, नाना स्तव, जयजयकार, प्रदक्षिणा करे। इस प्रकार से सविधि देवाधिदेव उमापति की पूजा करनी चाहिये।।६०-६६।।

सर्वपापविनिर्मुक्तो रूपयौवनगर्वितः। कुलैकविंशमुद्धृत्य दिव्याभरणभूषितः।।६७।।
सौवर्णेन विमानेन किङ्किणीजालमालिना। उपगीयमानो गन्धर्वैरप्सरोभिरलंकृतः।।६८।।
उद्योतयन्दिशः सर्वाः शिवलोकं स गच्छति।
भुक्त्वा तत्र सुखं विप्रा मनसः प्रीतिदायकम्।।६९।।

तल्लोकवासिभिः सार्धं यावदाभूतसंप्लवम्।
ततस्तस्मादिहाऽऽयातः पृथिव्यां पुण्यसंक्षये॥७०॥
जायते योगिनां गेहे चतुर्वेदी द्विजोत्तमाः। योगं पाशुपतं प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात्॥७१॥

ऐसा पूजक सर्वपापमुक्त, रूप-यौवन गर्वित तथा स्वर्णाभरण भूषित होकर किंकिणीजाल सज्जित स्वर्ण विमान पर बैठ कर गन्धर्व तथा अप्सराओं द्वारा प्रशंसित होता सभी दिशाओं को विद्योदित करता शिवलोक गमन करता है। हे विप्रगण! वहां प्रीतिदायक सभी सुखोपभोग करके शिवलोक निवासियों के साथ कल्पान्त पर्यन्त निवास करता है। हे विप्रों! वह वहां सभी ईप्सित सुखभोग के उपरान्त (पुण्य क्षय होने पर) पृथिवी पर जन्म लेकर चतुर्वेदज्ञ योगी के गृह में जन्म लेता है। तदनन्तर पाशुपत योगलाभ होने पर उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है।।६७-७१।।

शयनोत्थापने चैव संक्रान्त्यामयने तथा।
अशोकाख्यां तथाऽष्टम्यां पवित्रारोपणे तथा॥७२॥
ये च पश्यन्ति तं देवं कृत्तिवाससमुत्तमम्। विमानेनार्कवर्णेन शिवलोकं व्रजन्ति ते॥७३॥
सर्वकालेऽपि तं देवं ये पश्यन्ति सुमेधसः।
तेऽपि पापविनिर्मुक्ताः शिवलोकं व्रजन्ति वै॥७४॥

हरिशयनी एकादशी, देवोत्थान एकादशी, संक्रान्ति, दोनों अयन, अशोकाष्टमी, पवित्रारोपण के दिन कृत्तिवास शिव का दर्शन करते हैं, वे सूर्य के समान दीप्त विमान पर बैठ कर शिवलोक जाते हैं। जो बुद्धिमान मानव सदा देवदेव का दर्शन करता है, उसकी गति शिवलोक तक होती है।।७२-७४।।

देवस्य पश्चिमे पूर्वे दक्षिणे चोत्तरे तथा। योजनद्वितयं सार्धं क्षेत्रं तद्भुक्तिमुक्तिदम्॥७५॥
तस्मिन्क्षेत्रवरे लिङ्गं भास्करेश्वरसंज्ञितम्।
पश्यन्ति ये तु तं देवं स्नात्वा कुण्डे महेश्वरम्॥७६॥
आदित्येनार्चितं पूर्वं देवदेवं त्रिलोचनम्। सर्वपापविनिर्मुक्ता विमानवरमास्थिताः॥७७॥
उपगीयमाना गन्धर्वैः शिवलोकं व्रजन्ति ते।
तिष्ठन्ति तत्र मुदिताः कल्पमेकं द्विजोत्तमाः॥७८॥

देवदेव के पश्चिम, पूर्व, दक्षिण, उत्तर की ओर ढाई योजन पर्यन्त का क्षेत्र भुक्ति-मुक्ति दायक है। इस क्षेत्र में भास्करेश्वर लिंग भी है। पूर्वकाल में सूर्य ने इनकी अर्चना किया था। मानव यहां कुण्ड में स्नान करके महेश्वर का दर्शन करें। इससे वे सर्वपापरहित होकर (देहत्याग के पश्चात्) उत्तम विमान पर बैठ कर विविध भोगों का उपभोग करके गन्धर्वों द्वारा स्तुत होकर शिवलोक आकर एक कल्प पर्यन्त वहां मुदित चित्तता पूर्वक निवास करते हैं।।७५-७८।।

भुक्त्वा तु विपुलान्भोगाञ्छिवलोके मनोरमान्।
पुण्यक्षयादिहाऽऽयाता जायन्ते प्रवरे कुले॥७९॥

अथवा योगिनां गेहे वेदवेदाङ्गपारगाः। उत्पद्यन्ते द्विजवराः सर्वभूतहिते रताः॥८०॥
मोक्षशास्त्रार्थकुशलाः सर्वत्र समबुद्धयः।
योगं शम्भोर्वरं प्राप्य ततो मोक्षं व्रजन्ति ते॥८१॥
तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये लिङ्गं यद् दृश्यते द्विजाः।
पूज्यापूज्यं च सर्वत्र वने रथ्याऽन्तरेऽपि वा॥८२॥
चतुष्पथे श्मशाने वा यत्र कुत्र च तिष्ठति।
दृष्ट्वा तल्लिङ्गमव्यग्रःश्रद्धया सुसमाहितः॥८३॥
स्नापयित्वा तु तं भक्त्या गन्धैः पुष्पैर्मनोहरैः। धूपैर्दीपैः सनैवेद्यैर्नमस्कारैस्तथा स्तवैः॥८४॥
दण्डवत्प्रणिपातैश्च नृत्यगीतादिभिस्तथा। सम्पूज्यैवं विधानेन शिवलोकं व्रजेन्नरः॥८५॥

वे शिवलोक में विपुल वांछित भोगों को भोग कर पुण्यक्षय हो जाने पर उत्तम कुल में उत्पन्न होते हैं। अथवा वे योगी के गृह में जन्म लेकर वेद-वेदांग पारंगत, सर्वभूत हित में निरत, उत्तम द्विज, मोक्षशास्त्रज्ञ तथा सर्वत्र समबुद्धि होते हैं। वे अन्त में शंभु का उत्तम योग लाभ करने के पश्चात् मुक्त हो जाते हैं। हे द्विजवृन्द! उस उत्तम क्षेत्र में सर्वत्र, वन, मार्ग, चौराहे अथवा श्मशानादि में, जहां कहीं भी कोई पूज्य-अपूज्य, चाहे जैसा लिंग मिले, मानव उसे देख कर अव्यग्र मन से समाहित होकर सश्रद्ध भाव से उनको स्नान कराये तथा गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य-नमस्कार-स्तव तथा दण्डवत् प्रणाम और नृत्यगीतादि वाद्यों के साथ यथाविधि पूजा करे। ऐसे पूजा करने वाला शिवलोक लाभ करता है।।७९-८५।।

नारी वा द्विजशार्दूलाः सम्पूज्य श्रद्धयाऽन्विता।
पूर्वोक्तं फलमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥८६॥

हे द्विजप्रवरगण! स्त्रियां भी शुद्ध भाव से शिवपूजा द्वारा पूर्वोक्त फल लाभ करती हैं। इसमें सन्देह नहीं है।।८६।।

कः शक्नोति गुणान्वक्तुं समग्रान्मुनिसत्तमाः।
तस्य क्षेत्रवरस्याथ ऋते देवान्महेश्वरात्॥८७॥
तस्मिन्क्षेत्रोत्तमे गत्वा श्रद्धयाऽश्रद्धयाऽपि वा।
माधवादिषु मासेषु नरो वा यदिवाऽङ्गना॥८८॥
यस्मिन्यस्मिंस्तिथौ विप्राः स्नात्वा बिन्दुसरोम्भसि।
पश्येद्देवं विरूपाक्षं देवीं च वरदां शिवाम्॥८९॥
गणं चण्डं कार्तिकेयं गणेशं वृषभं तथा।
कल्पद्रुमं च सावित्रीं शिवलोकं स गच्छति॥९०॥
स्नात्वा च कापिले तीर्थे विधिवत्पापनाशने।
प्राप्नोत्यभिमतान्कामाञ्छिवलोकं स गच्छति॥९१॥

यः स्तम्भं तत्र विधिवत्करोति नियतेन्द्रियः।
कुलैकविंशमुद्धृत्य शिवलोकं स गच्छति॥९२॥
एकाम्रके शिवक्षेत्रे वाराणसीसमे शुभे। स्नानं करोति यस्तत्र मोक्षं स लभते ध्रुवम्॥९३॥

इति श्री महापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंम्भृषिसंवादे एकाम्रक्षेत्रमाहात्म्यवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः॥४१॥



हे मुनिप्रवरवृन्द! केवल महेश्वर के अतिरिक्त ऐसा कौन है, जो इस उत्तम क्षेत्र के सभी गुणों का वर्णन कर सके? श्रद्धा से किंवा अश्रद्धा से पुरुष अथवा स्त्री जो कोई भी किसी भी तिथि के दिन विन्दुसर में स्नान करके वहां महादेव विरूपाक्ष, देवी वरदा शिवा, चण्ड आदि गण, कार्त्तिकेय, गणेश, वृषभ, कल्पद्रुम तथा सावित्री का दर्शन करता है, उसे शिवलोक लाभ होगा। वहां पापहारी कापिल तीर्थ में सविधि स्नान करके वह व्यक्ति वांछित फलों की प्राप्ति करके शिवलोक जाता है। जो व्यक्ति जितेन्द्रिय भाव से वहां ध्वजारोपण करेगा, वह २१ पीढ़ी का उद्धारक होकर शिवलोक प्राप्त करेगा। यह एकाम्रक शिवक्षेत्र काशी के समान पावन है। जो यहां स्नान करता है, उसे निःसन्देह मोक्षलाभ होता है।।८७-९३।।

।।एकचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।



अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

विरजतीर्थ, विरजा देवी, वैतरणी नदी, उत्कलतीर्थ तथा पुरुषोत्तमतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

विरजे विरजा माता ब्रह्माणी संप्रतिष्ठिता।
यस्याः संदर्शनान्मर्त्यः पुनात्यासप्तमं कुलम्॥१॥
सकृद्दृष्ट्वा तु तां देवीं भक्त्याऽऽपूज्य प्रणम्य च।
नरः स्ववंशमुद्धृत्य मम लोकं स गच्छति॥२॥
अन्याश्च तत्र तिष्ठन्ति विरजे लोकमातरः। सर्वपापहरा देव्यो वरदा भक्तवत्सलाः॥३॥

ब्रह्मा कहते हैं—विरजक्षेत्र में विरजा नामक जगन्माता ब्रह्माणी प्रतिष्ठापित हैं। इनके दर्शन से मानव अपनी सात पीढ़ी को पवित्र कर लेता है। जो मनुष्य मात्र एक बार भी इनका दर्शन, भक्तिभाव से पूजन तथा प्रणाम करता है, वह अपने वंश का उद्धार करके मेरे लोक को प्राप्त करता है। इस विरजाक्षेत्र में और भी अनेक लोकमातायें विराजमान हैं। वे सभी पापहारिणी, वरदातृ तथा भक्तवत्सला हैं।।१-३।।

आस्ते वैतरणी तत्र सर्वपापहरा नदी। यस्यां स्नात्वा नरश्रेष्ठः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥४॥
कापिले गोग्रहे सोमे तीर्थे चालाबुसंज्ञिते। मृत्युञ्जये क्रोडतीर्थे वासुके सिद्धकेश्वरे॥६॥
तीर्थेष्वेतेषु मतिमान्विरजे संयतेन्द्रियः। गत्वाऽष्टतीर्थं विधिवत्स्नात्वा देवान्प्रणम्य च॥७॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विमानवरमास्थितः। उपगीयमानो गन्धर्वैर्मम लोके महीयते॥८॥

वहीं पर वैतरणी नाम्नी एक सर्वपापहारिणी नदी है। उसमें स्नान करने वाला मानव सर्वपाप विनिर्मुक्त हो जाता है। वहां स्वयम्भु वराहमूर्त्ति हरि स्वयं विद्यमान हैं। भक्तिभाव के साथ उनको प्रणाम करे। इनके दर्शन से व्यक्ति विष्णु के परम धाम को प्राप्त होता है। विरजाक्षेत्र में ही कापिल, गोग्रह, सोम, अलाबु, मृत्युंजय, क्रोड़, वासुक तथा सिद्धेश्वर, ये अन्य आठ तीर्थ भी हैं। जितेन्द्रिय होकर इस अष्टतीर्थ में जाकर सविधि स्नान तथा वहां के देवगण को प्रणाम करने वाला सभी पापों से मुक्त हो जाता है। देहान्त पर यह विमानारोहण करके गन्धर्वों द्वारा स्तुत होता मेरे लोक में विहार करता है।।४-८।।

विरजे यो मम क्षेत्रे पिण्डदानं करोति वै। स करोत्यक्षयां तृप्तिं पितॄणां नात्र संशयः॥९॥
मम क्षेत्रे मुनिश्रेष्ठा विरजे ये कलेवरम्। परित्यजन्ति पुरुषास्ते मोक्षं प्राप्नुवन्ति वै॥१०॥

स्नात्वा यः सागरे मर्त्यो दृष्ट्वा च कपिलं हरिम्।
पश्येद्देवीं च वाराहीं स याति त्रिदशालयम्॥११॥

इस विरजा नामक मेरे क्षेत्र में जो कोई पिण्ड प्रदान करेगा, वह निश्चित रूप से पितरों को अक्षयरूपेण तृप्त कर देगा। जो यहां देहत्याग करते हैं, उनको निश्चित रूप से मोक्षलाभ होता है। जो मानव सागर स्नानोपरान्त कपिल देव का दर्शन करने के पश्चात् वाराही देवी का दर्शन करता है, उसे देवलोक की प्राप्ति होती है।।९-११।।

सन्ति चान्यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च।
तत्काले तु मुनिश्रेष्ठा वेदितव्यानि तानि वै॥१२॥

समुद्रस्योत्तरे तीरे तस्मिन्देशे द्विजोत्तमाः। आस्ते गुह्यं परं क्षेत्रं मुक्तिदं पापनाशनम्॥१३॥
सर्वत्र बाहुकाकीर्णं पवित्रं सर्वकामदम्। दशयोजनविस्तीर्णं क्षेत्रं परमदुर्लभम्॥१४॥
अशोकार्जुनपुंनागैर्बकुलैः सरलद्रुमैः। पनसैर्नारिकेलैश्च शालैस्तालैः कपित्थकैः॥१५॥
चम्पकैः कर्णिकारैश्च चूतबिल्वैः सपाटलैः। कदम्बैः कोविदारैश्च लकुचैर्नागकेसरैः॥१६॥
प्राचीनामलकैर्लोध्रैर्नारङ्गैर्धवखादिरैः। सर्जभूर्जाश्वकर्णैश्च तमालैर्देवदारुभिः॥१७॥
मन्दारैः पारिजातैश्च न्यग्रोधागुरुचन्दनैः। खर्जूराम्रातकैः सिद्धैर्मुचुकुन्दैः सकिंशुकैः॥१८॥
अश्वत्थैः सप्तपर्णैश्च मधुधारशुभाञ्जनैः। शिंशपामलकैर्नीपैर्निम्बतिन्दुविभीतकैः॥१९॥
सर्वर्तुफलगन्धाढ्यैः सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलैः। मनोह्लादकरैः शुभ्रैर्नानाविहगनादितैः॥२०॥

हे मुनिश्रेष्ठगण! मेरे क्षेत्र में और भी अनेक पुण्यतीर्थ तथा पुण्यायतन हैं। इनको भी ज्ञात करना चाहिये। हे ब्राह्मणों! समुद्र के उत्तरतट पर एक परम गुप्त पापहारी मुक्तिदायक क्षेत्र है। वहां सर्वत्र बालू ही है।

यह पवित्र तथा कामना प्रदायक स्थल है। यह दस योजन विस्तार वाला है। यह मनुष्यलोक का दुर्लभ स्थल है। यहां चारों ओर अशोक, अर्जुन, पुन्नाग, बकुल, सरल, कटहल, नारियल, शाल, ताल, कपित्थ, चम्पा, कर्णिकार, आम्र, बेल, पाटल, कदम्ब, कोविदार, लकुच, नागकेशर, जलामलक, लोध, नारंगी, धव, खदिर, सर्ज, भोजपत्र, अश्वकर्ण, तमाल, देवदारु, मन्दार, पारिजात, बरगद, अगुरु, खजूर, आमड़ा, सिद्ध, मुचुकुन्द, किंशुक, पीपल, सप्तपर्ण, मधुधार, शोभांजन, शिंशपा, आमला, कदम्ब, नीम, तिन्दु, बहेड़ा आदि सभी ऋतुओं वाले फल-कुसुम-गन्धान्वित मन को प्रसन्न करने वाले, नाना पक्षियों से निनादित पादप विद्यमान हैं।।१२-२०।।

श्रोत्ररम्यैः सुमधुरैर्बलनिर्मदनेरितैः। मनसः प्रीतिजनकैः शब्दैः खगमुखेरितैः॥२१॥
चकोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गराजैस्तथा शुकैः। कोकिलैः कलविङ्कैश्च हारीतैर्जीवजीवकैः॥२२॥
प्रियपुत्रैश्चातकैश्च तथाऽन्यैर्मधुरस्वरैः। श्रोत्ररम्यैः प्रियकरैः कूजद्भिश्चार्वधिष्ठितैः॥२३॥
केतकीवनखण्डैश्च अतिमुक्तैः सकुब्जकैः। मालतीकुन्दबाणैश्च करवीरैः सितेतरैः॥२४॥
जम्बीरकरुणाङ्कोलैर्दाडिमैर्बीजपूरकैः। मातुलुङ्गैः पूगफलैर्हिन्तालैः कदलीवनैः॥२५॥
अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः पुष्पैश्चान्यैर्मनोहरैः। लतावितानगुल्मैश्च विविधैश्च जलाशयैः॥२६॥

दीर्घिकाभिस्तडागैश्च पुष्करिणीभिश्च वापिभिः।
नानाजलाशयैः पुण्यैः पद्मिनीखण्डमण्डितैः॥२७॥
सरांसि च मनोज्ञानी प्रसन्नसलिलानि च।
कुमुदैः पुण्डरीकैश्च तथा नीलोत्पलैः शुभैः॥२८॥

इन सब वृक्षों पर चकोर, शतपत्र, भृंगराज, कोकिल, कलविंक, हारीत, जीव-जीवक, प्रियपुत्र, चातक एवं अन्य मधुर कण्ठ वाले, सुनने में मनोहर लगने वाले कूंजन स्वर करते पक्षीगण बसेरा लेते हैं। यहां कितने ही केतकीवन, अतिमुक्त, कुब्ज, मालती, कुन्द, कनेर, जम्बीर, करुण, अंकोल, अनार, बीजपूर, मातुलुंग, सुपारी, हिन्ताल एवं कदलीवन हैं। न जाने कितने मनोहर पुष्पों से उद्भासित वृक्ष तथा लतागुल्मादि यहां विद्यमान हैं। पद्मिनीयुक्त न जाने कितने जलाशय, पुष्करिणी, दीर्घिका एवं कूयें, सरोवर यहां विद्यमान हैं। उनमें कुमुद, पुण्डरीक तथा शुभ नीलकमल खिले हैं।।२१-२८।।

कह्लारैः कमलैश्चापि आचितानि समन्ततः। कादम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैव जलकुक्कुटैः॥२९॥
कारण्डवैः प्लवैर्हंसैः कूर्मैर्मत्स्यैश्च मद्गुभिः। दात्यूहसारसाकीर्णैः कोयष्टिबकशोभितैः॥३०॥
एतैश्चान्यैश्च कूजद्भिः समन्ताज्जलचारिभिः। खगैर्जलचरैश्चान्यैः कुसुमैश्च जलोद्भवैः॥३१॥

ये रत्नकमल से भरे हैं। कादम्ब, चक्रवाक, जलमुर्ग, कारण्डव, प्लव, हंस, कूर्म, मत्स्य, पानीकौड़ी (मद्गु), दात्यूह, सारस, कोयष्ठि, बकुले तथा अन्य जलपक्षी एवं जल में उत्पन्न फूल वहां शोभित हो रहे हैं।।२९-३१।।

एवं नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पैः स्थलजलोद्भवैः। ब्रह्मचारिगृहस्थैश्च वानप्रस्थैश्च भिक्षुभिः॥३२॥
स्वधर्मनिरतैर्वर्णैस्तथाऽन्यैः समलंकृतम्। हृष्टपुष्टजनाकीर्णं नरनारीसमाकुलम्॥३३॥

अशेषविद्यानिलयं सर्वधर्मगुणाकरम्। एवं सर्वगुणोपेतं क्षेत्रं परमदुर्लभम्॥३४॥

यहां इस प्रकार के नाना प्रकार के वृक्ष तथा पुष्प हैं, जो स्थल तथा जल में उत्पन्न होते हैं। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, भिक्षु आदि स्वधर्मतत्पर, चारों आश्रम वाले यहां रहते हैं। यह हृष्ट-पुष्ट लोगों से भरा, नर-नारियों से पूर्ण, सर्वविध विद्याचर्चा का आधार स्थल तथा सर्वधर्म एवं सर्वगुण का खान रूप क्षेत्र है। ऐसा सर्वगुणान्वित क्षेत्र जगत् में दुर्लभ है।।३२-३४।।

आस्ते तत्र मुनिश्रेष्ठा विख्यातः पुरुषोत्तमः।
यावदुत्कलमर्यादा दिक्क्रमेण प्रकीर्त्तिता॥३५॥

तावत्कृष्णप्रसादेन देशः पुण्यतमो हि सः यत्र तिष्ठति विश्वात्मा देशे स पुरुषोत्तमः॥३६॥
जगद्व्यापी जगन्नाथस्तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्। अहं रुद्रश्च शक्रश्च देवश्चाग्निपुरोगमाः॥३७॥

निवसामो मुनिश्रेष्ठास्तस्मिन्देशे सदा वयम्।
गन्धर्वाप्सरसः सर्वाः पितरो देवमानुषाः॥३८॥
यक्षा विद्याधराः सिद्धा मुनयः संशितव्रताः।
ऋषयो वालखिल्याश्च कश्यपाद्याः प्रजेश्वराः॥३९॥
सुपर्णाः किन्नरा नागास्तथाऽन्ये स्वर्गवासिनः।
साङ्गाश्च चतुरो वेदाः शास्त्राणि विविधानि च॥४०॥
इतिहासपुराणानि यज्ञाश्च वरदक्षिणाः।
नद्यश्च विविधाः पुण्यास्तीर्थान्यायतनानि च॥४१॥

सागराश्च तथा शैलास्तस्मिन्देशे व्यवस्थिताः। एवं पुण्यतमे देशे देवर्षिपितृसेविते॥४२॥

हे मुनिप्रवर! इस क्षेत्र में ही विख्यात पुरुषोत्तम अवस्थित हैं। दिग्विभाग के अनुसार जहां तक उत्कल की सीमा निर्दिष्ट है, जहां विश्वात्मा पुरुषोत्तम विराजित हैं, भगवान् कृष्ण की कृपा से वही देश परम पुण्यतम होता है। जगद्व्यापी जगन्नाथ वहीं अवस्थान करते हैं। मैं, रुद्र, इन्द्र, अग्नि आदि प्रमुख देवता सदा वहां निवास करते हैं। गन्धर्व, अप्सरा, पितृगण, देवता, मनुष्य, यक्ष, विद्याधर, सिद्ध व्रताचारी मुनिगण, बालखिल्य आदि ऋषि, काश्यपादि प्रजापति, सुपर्ण-किन्नर, नाग तथा अन्य स्वर्ग के निवासी, अंगों सहित चतुर्वेद, विविध शास्त्र, इतिहास तथा पुराण समूह, अनेक दक्षिणान्वित यज्ञ, विविध पुण्य नदी, नाना तीर्थ तथा देवायतन, सागर समूह और शैलवृन्द सदा वहां विराजित रहते हैं। यह पुण्यप्रद देश देवर्षियों तथा पितरों से सेवित है।।३५-४२।।

सर्वोपभोगसहिते वासः कस्य न रोचते।
श्रेष्ठत्वं कस्य देशस्य किं चान्यदधिकं ततः॥४३॥
आस्ते यत्र स्वयं देवो मुक्तिदः पुरुषोत्तमः।
धन्यास्ते विबुधप्रख्या ये वसन्त्युत्कले नराः॥४४॥

फलस्वरूप (देवर्षि-पितृ सेवित) सर्वोपभोगयुक्त ऐसे पवित्र देश में कौन नहीं रहना चाहेगा? इस देश से अधिक अन्य किस देश का श्रेष्ठत्व है? इस पुण्य स्थल में स्वयं मुक्तिदाता पुरुषोत्तम देव स्थित रहते हैं। जो सब मनुष्य उत्कल में निवास करते हैं, वे देवता के समान लोग संसार में धन्य हैं।।४३-४४।।

तीर्थराजजले स्नात्वा पश्यन्ति पुरुषोत्तमे।
स्वर्गे वसन्ति ते मर्त्या न ते यान्ति यमालये॥४५॥
ये वसन्त्युत्कले क्षेत्रे पुण्ये श्रीपुरुषोत्तमे। सफलं जीवितं तेषामुत्कलानां सुमेधसाम्॥४६॥
ये पश्यन्ति सुरश्रेष्ठं प्रसन्नायतलोचनम्। चारुभ्रूकेशमुकुटं चारुकर्णावतंसकम्॥४७॥
चारुस्मितं चारुदन्तं चारुकुण्डलमण्डितम्।
सुनासं सुकोपलं च सुललाटं सुलक्षणम्॥४८॥
त्रैलोक्यानन्दजननं कृष्णस्य मुखपङ्कजम्॥४९॥

इति श्री महापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भु-ऋषिसंवाद उत्कलक्षेत्रवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः।।४२।।



जो लोग यहां प्रधान तीर्थजल में स्नान करके पुरुषोत्तम का दर्शन करते हैं, वे मर्त्यजन कभी यमलोक नहीं जाते। वे स्वर्ग में ही जाते हैं। जो पवित्र उत्कल देशस्थ पवित्र पुरुषोत्तम क्षेत्र में रहते हैं, वे सब मेधाशाली उत्कलवासी लोगों का ही जीवन सफल है। जिनके लोचन प्रसन्न, प्रफुल्ल तथा आयत हैं, जिनकी उत्तम भौंहें हैं, जो मुकुट से शोभित हैं, जिनका हास्य मनोहर है, जिनके सुन्दर दांत हैं, जो चारु कुण्डल मण्डित हैं, जो उत्तम नासिका वाले, उत्तम कपोल तथा ललाट वाले हैं, श्रीकृष्ण का ऐसा सुलक्षण युक्त त्रैलोक्य के लिये आनन्दप्रद मुखकमल जो देखते हैं, वे ही जगत् में धन्य हैं।।४५-४९।।

।।द्विचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।



अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

अवन्तीनगर, महाकाल शिव, क्षिप्रानदी तथा विन्दस्वामी नामक विष्णु का माहात्म्य वर्णन

ब्रह्मोवाच

पुरा कृतयुगे विप्राः शक्रतुल्यपराक्रमः। बभूव नृपतिः श्रीमानिन्द्रद्युम्न इति श्रुतः॥१॥
सत्यवादी शुचिर्दक्षः सर्वशास्त्रविशारदः। रूपवान्सुभगः शूरो दाता भोक्ता प्रियंवदः॥२॥
यष्टा समस्तयज्ञानां ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः। धनुर्वेदे च वेदे च शास्त्रे च निपुणः कृती॥३॥

वल्लभो नरनारीणां पौर्णमास्यां यथा शशी। आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यः शत्रुसङ्घभयङ्करः॥४॥
वैष्णवः सत्त्वसम्पन्नो जितक्रोधो जितेन्द्रियः। अध्येता योगसांख्यानां मुमुक्षुर्धर्मतत्परः॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे विप्रगण! सत्ययुग में इन्द्र के समान पराक्रमी इन्द्रद्युम्न नामक श्रीमान् राजा थे। वे सत्यवादी, सर्वशास्त्रज्ञ, सुरूप, सभी यज्ञ करने वाले, सुभग, शूर, दाता, भोक्ता, प्रियवादी थे। वे ब्रह्मण्य, सत्यात्मा, धनुर्वेद-वेद-शास्त्र में निपुण, कृति, नर-नारी के प्रिय (प्रजा के प्रिय) तथा पौर्णमासी के चन्द्रमा जैसे थे। वे सूर्य की तरह दुप्रेक्ष्य, शत्रु मण्डली के लिये भयंकर, विष्णुभक्त, सत्वसम्पन्न, क्रोधजित्, जितेन्द्रिय, सांख्य योग के अध्येता, धर्मतत्पर, मुमुक्षु के रूप में प्रसिद्ध थे।।१-५।।

एवं स पालयन्पृथ्वीं राजा सर्वगुणाकरः। तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना हरेराराधनं प्रति॥६॥
कथमाराधयिष्यामि देवदेवं जनार्दनम्। कस्मिन्क्षेत्रेऽथवा तीर्थे नदीतीरे तथाऽऽश्रमे॥७॥

एवं चिन्तापरः सोऽथ निरीक्ष्य मनसा महीम्।
आलोक्य सर्वतीर्थानि क्षेत्राण्यथ पुराण्यपि॥८॥

वे सर्वगुणसम्पन्न राजा पृथिवीपालन में निरत रहते थे। एक बार उनकी बुद्धि में हरि की आराधना का विचार आया। उन्होंने सोचा कि मैं कहां किस प्रकार के क्षेत्र में, तीर्थ अथवा नदीतट पर अथवा आश्रम में देवाधिदेव की आराधना करूं? इस प्रकार वे चिन्तातुर होकर मन ही मन समस्त पृथिवी तथा पृथिवी स्थित तीर्थ एवं पुरनगरादि का चिन्तन करने लगे।।६-८।।

तानि सर्वाणि संत्यज्य जगामाऽऽयतनं पुनः।
विख्यातं परमं क्षेत्रं मुक्तिदं पुरुषोत्तमम्॥९॥
स गत्वा तत्क्षेत्रवरं समृद्धबलवाहनः। अयजच्चाश्वमेधेन विधिवद्भूरिदक्षिणः॥१०॥
कारयित्वा महोत्सेधं प्रासादं चैव विश्रुतम्।
तत्र संकर्षणं कृष्णं सुभद्रां स्थाप्य वीर्यवान्॥११॥
पञ्चतीर्थं च विधिवत्कृत्वा तत्र महीपतिः। स्नानं दानं तपो होमं देवताप्रेक्षणं तथा॥१२॥
भक्त्या चाऽऽराध्य विधिवत्प्रत्यहं पुरुषोत्तमम्। प्रसादाद्देवदेवस्य ततो मोक्षमवाप्तवान्॥१३॥
मार्कण्डेयं च कृष्णं च दृष्ट्वा रामं च भो द्विजाः।
सागरे चेन्द्रद्युम्नाख्ये स्नात्वा मोक्षं लभेद् ध्रुवम्॥१४॥

अन्त में उन्होंने सभी स्थानों का त्याग कर दिया तथा मुक्तिदायक विख्यात पुरुषोत्तम क्षेत्र में गये। राजा इन्द्रद्युम्न ने सैन्य-वाहनादि के साथ उस प्रसिद्ध क्षेत्र में जाकर प्रचुर दक्षिणा देकर यथाविधि अश्वमेध यज्ञानुष्ठान किया। तदनन्तर वहां एक महान् उच्च प्रासाद बनवाकर उसमें संकर्षण, कृष्ण तथा सुभद्रा को स्थापित करके वहां सविधि पञ्चतीर्थ प्रतिष्ठित किया। वे वहां स्नान, दान, तप, होम तथा देवदर्शनादि करने लगे। नित्य यथाविधि पुरुषोत्तम की आराधना करके देवदेव के अनुग्रह से उन्होंने मोक्षलाभ किया। हे द्विजगण! वहां मार्कण्डेय, कृष्ण तथा बलराम हैं। उनका दर्शन करके वहां इन्द्रद्युम्न सागर में स्नान करने से निश्चय मोक्षलाभ होता है।।९-१४।।

मुनय ऊचुः

कस्मात्स नृपतिः पूर्वमिन्द्रद्युम्नो जगत्पतिः। जगाम परमं क्षेत्रं मुक्तिदं पुरुषोत्तमम्॥१५॥
गत्वा तत्र सुरश्रेष्ठ कथं स नृपसत्तमः। वाजिमेधेन विधिवदिष्टवान्पुरुषोत्तमम्॥१६॥
कथं स सर्वफलदे क्षेत्रे परमदुर्लभे। प्रासादं कारयामास चेष्टं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥१७॥
कथं स कृष्णं रामं च सुभद्रां च प्रजापते। निर्ममे राजशार्दूलः क्षेत्रं रक्षितवान्कथम्॥१८॥
कथं तत्र महीपालः प्रासादे भुवनोत्तमे
स्थापयामास मतिमान्कृष्णादींस्त्रिदशार्चितान्॥१९॥
एतत्सर्वं सुरश्रेष्ठ विस्तरेण यथातथम्। वक्तुमर्हस्यशेषेण चरितं तस्य धीमतः॥२०॥
न तृप्तिमधिगच्छामस्तव वाक्यामृतेन वै। श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्परं कौतूहलं हि नः॥२१॥

मुनिगण कहते हैं—पृथिवीपति इन्द्रद्युम्न ने किस निमित्त से इस मुक्तिप्रद परमक्षेत्र पुरुषोत्तम धाम में आगमन किया? हे सुरश्रेष्ठदेव! उन्होंने यहां आकर किस प्रकार से अश्वमेध यज्ञ किया? यथाविधि पुरुषोत्तम देव की आराधना कैसे किया? किस प्रकार से सर्वफलदायक दुर्लभतम इस क्षेत्र में प्रासाद निर्माण तथा कृष्ण, बलराम, सुभद्रा की मूर्ति स्थापना किया? कैसे क्षेत्र रक्षा किया? तथा किस प्रकार से उस सर्वोत्तम प्रासाद (देवालय) में सुरपूजित कृष्ण आदि को स्थापित किया? हे देवेश्वर! यह सब तथा उन धीमान् राजा का कार्यकलाप यथार्थतः कहिये। हे ब्रह्मन्! हम आपके वचनामृत का पान करके तृप्त नहीं हो पा रहे हैं। आपकी कथा से हम पूर्ण कौतूहलाक्रान्त हो रहे हैं।।१५-२१।।

ब्रह्मोवाच

साधु साधु द्विजश्रेष्ठा यत्पृच्छध्वं पुरातनम्। सर्वपापहरं पुण्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम्॥२२॥
वक्ष्यामि तस्य चरितं यथावृत्तं कृते युगे।
शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः प्रयताः संयतेन्द्रियाः॥२३॥
अवन्ती नाम नगरी मालवे भुवि विश्रुता। बभूव तस्य नृपतेः पृथिवी ककुदोपमा॥२४॥
हृष्टपुष्टजनाकीर्णा दृढप्राकारतोरणा। दृढयन्त्रार्गलद्वारा परिखाभिरलङ्कृता॥२५॥
नानावणिक्समाकीर्णा नानाभाण्डसुविक्रिया। रथ्यापणवती रम्या सुविभक्तचतुष्पथा॥२६॥

ब्रह्मा कहते हैं– हे द्विजप्रवर! आपने जो सर्वपापहर, भोगमोक्षदायक, पौराणिक पुण्य वृत्तान्त जानना चाहा है, इससे मैं आप लोगों को बारम्बार साधुवाद देता हूं। हे मुनिप्रवरगण! आप लोग प्रयत्नतः एकाग्र चित्त से श्रवण करिये। मैंने उस सत्ययुग के यथावत् वृत्तान्त का वर्णन किया है। मालव देश में अवन्ती नामक भुवनों में विख्यात नगरी है। यह नगरी राजा इन्द्रद्युम्न की राजधानी थी। राजा इन्द्रद्युम्न समस्त पृथिवी के अधीश्वर थे। उनकी राजधानी अवन्ती थी। यह नगरी हृष्ट-पुष्ट लोगों से पूर्ण थी। चारों ओर सुदृढ़ दीवार, तोरण, दृढ़ यन्त्र (ताले) तथा जंजीर से युक्त द्वारों वाली थी। इसके चारों ओर खाई थी। यहां अनेक देशों के वणिक् (व्यवसायी) नाना प्रकार की ढेरों द्रव्य-सामग्री से भरी थी। यह गलियों तथा बाजारों से युक्त थी। यहां नाना प्रकार के बर्त्तन बिकते थे। यह अच्छी तरह चतुष्पथों (चौराहों) से विभक्त थी।।२२-२६।।

गृहगोपुरसम्बाधा वीथीभिः समलङ्कृता। राजहंसनिभैः शुभ्रैश्चित्रग्रीवैर्मनोहरैः॥२७॥
अनेकशतसाहस्त्रैः प्रासादैः समलङ्कृता। यज्ञोत्सवप्रमुदिता गीतवादित्रनिस्वना॥२८॥
नानावर्णपताकाभिर्ध्वजैश्च समलङ्कृता। हस्त्यश्वरथसङ्कीर्णपदातिगणसङ्कुला॥२९॥
नानायोधसमाकीर्णा नानाजनपदैर्युता। ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चैव द्विजातिभिः॥३०॥
समृद्धा सा मुनिश्रेष्ठा विद्वद्भिः समलङ्कृता।
न तत्र मलिनाः सन्ति न मूर्खा नापि निर्धनाः॥३१॥

गृहों तथा नगर द्वारों से युक्त गोपुरों तथा वीथियों से यह पुरी अलंकृत थी। राजहंस के समान शुभ्र वर्ण चित्र-विचित्र मनोहर शत-सहस्र प्रासादों से यह नगरी सज्जित थी। वहां अनेक हाथी, अश्व, रथ, पैदल सेना, नाना वर्ण वाले ध्वज, पताका, अनेक योद्धा तथा अनेक देश के लोग बहुतायत से भरे थे। यह नगरी सदा यज्ञोत्सव से आमोदित रहती थी। यह गीत एवं वाद्यों के स्वर से मुखरित रहती थी। हे मुनिप्रवरगण! ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्रादि नाना जातीय लोग वहां निवास करते थे। तभी यह नगरी सदैव समृद्ध रहती थी। हे मुनिश्रेष्ठगण! यहां के विद्वानों के कारण यह नगरी सदा अलंकृत रहती थी। वहां मलिन-मूर्ख तथा निर्धन कोई भी नहीं था।।२७-३१।।

न रोगिणो न हीनाङ्गा न द्यूतव्यसनान्विताः।
सदा हृष्टाः सुमनसो दृश्यन्ते पुरुषाः स्त्रियः॥३२॥
क्रीडन्ति स्म दिवा रात्रौ हृष्टास्तत्र पृथक्पृथक्।
सुवेषाः पुरुषास्तत्र दृश्यन्ते मृष्टकुण्डलाः॥३३॥
सुरूपाः सुगुणाश्चैव दिव्यालङ्कारभूषिताः। कामदेवप्रतीकाशाः सर्वलक्षणलक्षिताः॥३४॥
सुकेशाः सुकपोलाश्च सुमुखाः श्मश्रुधारिणः।
ज्ञातारः सर्वशास्त्राणां भेत्तारः शत्रुवाहिनीम्॥३५॥
दातारः सर्वरत्नानां भोक्तारः सर्वसम्पदाम्। स्त्रियस्तत्र मुनिश्रेष्ठा दृश्यन्ते सुमनोहराः॥३६॥
हंसवारणगामिन्यः प्रफुल्लाम्भोजलोचनाः। सुमध्यमाः सुजघनाः पीनोन्नतपयोधराः॥३७॥
सुकेशाश्चारुवदनाः सुकपोलाः स्थिरालकाः। हावभावानतग्रीवाः कर्णाभरणभूषिताः॥३८॥

वहां कोई रोगी, हीन अंगों वाला, द्यूत आदि व्यसनयुक्त नहीं है। वहां पर पुरुष-स्त्री सभी अच्छे प्रसन्न मुख वाले पुरुष-स्त्री हैं। वे सब प्रसन्न चित्त से दिन-रात क्रीड़ा निरत रहते हैं। पुरुष लोगों में सभी अच्छे वेश वाले, उत्तम कुण्डल वाले, सुरूप, शोभन गुण वाले, दिव्याभरण भूषित, कन्दर्पकान्ति, सुलक्षण, सुकेश, सुकपोल, सुमुख, श्मश्रुधारी, सर्वशास्त्रज्ञ, शत्रुसैन्यभेदी, सर्वधन प्रदाता तथा सर्वसम्पत्ति भोक्ता हैं। हे मुनिश्रेष्ठगण! वहां की स्त्रियां अत्यन्त मनोहर हैं। वे हंस तथा गज के समान चलने वाली, कमलनयनी हैं। उनकी कटि तथा जघन सुन्दर हैं। स्तन स्थूल तथा उन्नत हैं। वे उत्तम केशों वाली, चारु मुख वाली, उत्तम कपोल वाली, स्थिर लटों वाली हैं। हाव-भाव के कारण उनकी ग्रीवा झुकी है। कान आभरणों से भूषित हैं।।३२-३८।।

बिम्बोष्ठ्यो रञ्जितमुखास्ताम्बूलेन विराजिताः। सुवर्णाभरणोपेताः सर्वालङ्कारभूषिताः॥३९॥
श्यामावदाताः सुश्रोण्यः काञ्चीनूपुरनादिताः। दिव्यमाल्याम्बरंधरा दिव्यगन्धानुलेपनाः॥४०॥
विदग्धाः सुभगाः कान्ताश्चार्वङ्ग्यः प्रियदर्शनाः।
रूपलावण्यसंयुक्ताः सर्वाः प्रहसिताननाः॥४१॥
क्रीडन्त्यश्च मदोन्मत्ताः सभासु चत्वरेषु च। गीतावाद्यकथालापै रमयन्त्यश्च ताः स्त्रियः॥४२॥
वारमुख्याश्च दृश्यन्ते नृत्यगीतविशारदाः। प्रेक्षणालापकुशलाः सर्वयोषिद्गुणान्विताः॥४३॥

उनके ओष्ठ बिम्बफल के समान हैं। उनका मुख ताम्बूल से रंजित है। सभी अंग स्वर्णालंकार से अलंकृत हैं। करधनी तथा नूपुर के शब्द से वे शब्दित रहती हैं। वे दिव्य माला, दिव्य वस्त्रों से भूषिता हैं तथा सभी चतुरा, सुभगा, कान्ता, प्रियदर्शिनी हैं। सभी नारियां रूप लावण्यवती, प्रसन्नमुखी, क्रीड़ा तत्परा एवं मदोन्मत्ता हैं। वे सभी अथवा प्रांगण क्षेत्र में गीत-वाद्य तथा मधुर अलाप से सब में प्रीति उत्पन्न करती हैं। वहां की वारांगनायें नृत्य-गीत एवं वाद्य विद्या में दक्ष हैं। वे देखने तथा वार्त्ता में निपुण हैं। वे सभी स्त्रीगुणों से समन्वित हैं।।३९-४३।।

अन्याश्च तत्र दृश्यन्ते गुणाचार्याः कुलस्त्रियः।
पतिव्रताश्च सुभगा गुणैः सर्वैरलङ्कृताः॥४४॥
वनैश्चोपवनैः पुण्यैरुद्यानैश्च मनोरमैः। देवतायतनैर्दिव्यैर्नानाकुसुमशोभितैः॥४५॥
शालैस्तालैस्तमालैश्च बकुलैर्नागकेसरैः। पिप्पलैः कर्णिकारैश्च चन्दनागुरुचम्पकैः॥४६॥
पुंनागैर्नारिकेरैश्च पनसैः सरलद्रुमैः। नारङ्गैर्लकुचैर्लोध्रैः सप्तपर्णैः शुभाञ्जनैः॥४७॥
चूतबिल्वकदम्बैश्च शिंशपैर्धवखादिरैः। पाटलाशोकतगरैः करवीरैः सितेतरैः॥४८॥
पीतार्जुनकभल्लातैः सिद्धैराम्रातकैस्तथा। न्यग्रोधाश्वत्थकाश्मर्यैः पलाशैर्देवदारुभिः॥४९॥
मन्दारैः पारिजातैश्च तिन्तिडीकविभीतकैः। प्राचीनामलकैः प्लक्षैर्जम्बूशिरीषपादपैः॥५०॥
कालेयैः काञ्चनारैश्च मधुजम्बीरतिन्दुकैः। खर्जुरागस्त्यबकुलैः शाखोटकहरीतकैः॥५१॥
कङ्कोलैर्मुचुकुन्दैश्च हिन्तालैर्बीजपूरकैः। केतकीवनखण्डैश्च अतिमुक्तैः सकुब्जकैः॥५२॥

इनके अतिरिक्त सर्वगुणशालिनी पतिव्रता सुभगा अन्य अनेक कुलकामिनियां वहां रहती हैं। वहां नाना पुष्पों से शोभित दिव्य देवमन्दिर, पवित्र वन, उपवन एवं मनोहर उद्यान हैं। इनका अन्त ही नहीं है। शाल, ताल, तमाल, बकुल, नागकेशर, पिप्पल, कर्णिकार, चन्दन, अगुरु, चम्पा, पुन्नाग, नागकेशर, पनस, शालवृक्ष, नारंगी, लकुच लोध्र, सप्तपर्ण, शुभाञ्जन, आम्र, बिल्व, कदम्ब, शिंशप, धव, खदिर, पाटल, अशोक, तगर, लाल करवीर, पीत अर्जुन, भल्लातक, सिद्ध, आमड़ा, बरगद, पीपल, काश्मर्य, पलाश, देवदार, मन्दार, पारिजात, तिन्तिड़ी, बहेड़ा, जल आमला, पाकड़ जामुन, शिरीष, कालेय, कचनार, महुआ, नींबू, जम्बीर, खजूर, अगत्स्य, शाखोटक, हरीतक, कंकोल, मुचकुन्द, हिन्ताल, बीजपूर, केतकी के वन, अतिमुक्त कुब्जक।।४४-५२।।

मल्लिकाकुन्दबाणैश्च कदलीखण्डमण्डितैः।
मातुलुङ्गैः पूगफलैः करुणैः सिन्धुवारकैः॥५३॥
बहुवारैः कोविदारैर्बदरैः सकरञ्जकैः। अन्यैश्च विविधैः पुष्पवृक्षैश्चान्यैर्मनोहरैः॥५४॥
लतागुल्मैर्वितानैश्च दद्यानैर्नन्दनोपमैः। सदा कुसुमगन्धाढ्यैः सदा फलभरानतैः॥५५॥

मल्लिका, कुन्द, बाण, कदली, मातुलुंग, सुपारी, करुण, सिन्धुआर, बहुवारक, कोविदार, बैर, करञ्ज, प्रभृति वृक्षों से, अन्य अनेक मनोहर पुष्प वृक्षों से, लता गुच्छ से, नन्दन वन के जैसे विस्तृत उपवनों से, सदा पुष्पगन्धों से सम्पन्न वृक्षों से फल भार से झुके वृक्षों से, नाना जातीय पुष्पवृक्ष तथा नाना जाति की लता, गुल्म तथा नन्दन वन जैसे अनेक उद्यान से वह नगरी अलंकृत थी।।५३-५५।।

नानापक्षिरुते रम्यैर्नानामृगगणावृतैः। चकोरैः शतपत्रैश्च भृङ्गारैः प्रियपुत्रकैः॥५६॥
कलविङ्कैर्मयूरैश्च शुकैः कोकिलकैस्तथा। कपोतैः खञ्जरीटैश्च श्येनैः पारावतैस्तथा॥५७॥
खगैश्चान्यैर्बहुविधैः श्रोत्ररम्यैर्मनोरमैः। सरितः पुष्करिण्यश्च सरांसि सुबहूनि च॥५८॥
अन्यैर्जलाशयैः पुण्यैः कुमुदोत्पलमण्डितैः।
पद्मैः सितेतरैः शुभ्रैः कह्लारैश्च सुगन्धिभिः॥५९॥
अन्यैर्बहुविधैः पुष्पैर्जलजैः सुमनोहरैः। गन्धामोदकरैर्दिव्यैः सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलैः॥६०॥
हंसकारण्डवाकीर्णैश्चक्रवाकोपशोभितैः। सारसैश्च बलाकैश्च कूर्मैर्मत्स्यैः सनक्रकैः॥६१॥
जलपादैः कदम्बैश्च प्लवैश्च जलकुक्कुटैः। खगैर्जलचरैश्चान्यैर्नानारवविभूषितैः॥६२॥
नानावर्णैः सदा हृष्टैरञ्चितानि समन्ततः।
एवं नानाविधैः पुष्पैर्विविधैश्च जलाशयैः॥६३॥

इन वनों के वृक्ष चकोर, शतपत्र (कठफोड़वा), भृंगार, प्रियपुत्र, कलविंक, मयूर, शुक, कोकिल, कपोत, खंजन, बाज तथा पारावत प्रभृति नाना जातीय कर्णमधुर निनाद करने वाले अनेक पक्षियों के स्वर से मुखरित तथा वन नाना मृगगण से परिवृत था। इसके अतिरिक्त कुमुद, उत्पल, शुभ्र पद्म, सुगन्धित कल्हार तथा गन्ध वाले नाना जल में उत्पन्न होने वाले मनोहर पुष्पों से भरी सैकड़ों पवित्र सरितायें, सरोवर आदि जलाशय वहां हैं। इन सभी जलाशयों में सभी ओर हंस, कारण्डव, चक्रवाक, सारस, बगुले, कछुये, मछलियां, मगर, ज्वालपाद, कादम्ब, प्लव, जलमुर्ग आदि नाना ध्वनि करने वाले विविध वर्णयुक्त सदा प्रसन्न जलचर जीव भरे थे। इस प्रकार वहां नाना प्रकार के विविध पुष्पों वाले जलाशय थे।।५६-६३।।

विविधैः पादपैः पुण्यैरुद्यानैर्विविधैस्तथा। जलस्थलचरैश्चैव विहगैश्चार्वधिष्ठतैः॥६४॥
देवतायतनैर्दिव्यैः शोभिता सा महापुरी। तत्राऽऽस्ते भगवान्देवस्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः॥६५॥
महाकालेति विख्यातः सर्वकामप्रदः शिवः।
शिवकुण्डे नरः स्नात्वा विधिवत्पापनाशने॥६६॥
देवान्पितृनृषींश्चैव सन्तर्प्य विधिवद्बुधः। गत्वा शिवालयं पश्चात्कृत्वा तं त्रिःप्रदक्षिणम्॥६७॥

प्रविश्य संयतो भूत्वा धौतवासा जितेन्द्रियः।
स्नानैः पुष्पैस्तथा गन्धैर्धूपैर्दीपैश्च भक्तितः॥६८॥
नैवेद्यैरुपहारैश्च गीतवाद्यैः प्रदक्षिणैः। दण्डवत्प्रणिपातैश्च नृत्यः स्तोत्रैश्च शङ्करम्॥६९॥
सम्पूज्य विधिवद्भक्त्या महाकालं सकृच्छिवम्।
अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥७०॥

वहां विविध उद्यान थे। स्थलचर तथा जलचर पक्षी और नाना दिव्य-दिव्य देवगृह उस पुरी को शोभित कर रहे थे। वहां महाकाल नामक त्रिपुरारि त्रिलोचन भगवान् सर्वकामप्रद शिव विराजमान थे। वहां पापनाशक शिवकुण्ड में सविधि स्नान करके विज्ञ लोग देवता, ऋषि तथा पितरों का तर्पण करके साक्षात् शिवालय की तीन बार प्रदक्षिणा करे। धुले वस्त्र पहने हुये और जितेन्द्रिय होकर शिवमन्दिर में प्रवेश करे। शिव को स्नान, उपहार, गीत, वाद्य देकर उनकी प्रदक्षिणा करके उनको दण्डवत् प्रणाम करें। नृत्य एवं स्तव द्वारा भक्ति के साथ यथाविधि महाकाल नामक शंकर की जो मात्र एक बार भी अर्चना करता है, उसे १००० अश्वमेध फल की प्राप्ति हो जाती है।।६४-७०।।

पापैः सर्वैर्विनिर्मुक्तो विमानैः सर्वकामिकैः।
आरुह्य त्रिदिवं याति यत्र शंभोर्निकेतनम्॥७१॥
दिव्यरूपधरः श्रीमान्दिव्यालङ्कारभूषितः। भुङ्क्ते तत्र वरान्भोगान्यावदाभूतसंप्लवम्॥७२॥
शिवलोके मुनिश्रेष्ठा जरामरणवर्जितः।
पुण्यक्षयादिहाऽऽयातः प्रवरे ब्राह्मणे कुले॥७३॥
चतुर्वेदी भवेद्विप्रः सर्वशास्त्रविशारदः। योगं पाशुपतं प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात्॥७४॥
आस्ते तत्र नदी पुण्या शिप्रा नामेत विश्रुता।
तस्यां स्नातस्तु विधिवत्संतर्प्य पितृदेवताः॥७५॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो विमानवरमास्थितः। भुङ्क्ते बहुविधान्भोगान्स्वर्गलोके नरोत्तमः॥७६॥

ऐसे व्यक्ति के सभी पाप दूर हो जाते हैं। वह सर्वकामप्रद विमानासीन होकर शिवलोक में जाता है। वहां वह दिव्यरूपी तथा दिव्यालंकार से भूषित होकर प्रलयान्त तक उत्तम भोग प्राप्त करता है। शिवलोकस्थ व्यक्ति जरामरण से पीड़ित नहीं होता। पुण्य क्षय होने पर तब वह मृत्युलोक में श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल में जन्म लेता है। तब वह चतुर्वेदज्ञ तथा सर्वशास्त्रज्ञ होकर पाशुपत योग का अवलम्बन लेकर मोक्षलाभ करता है। इस पुर के पास शिप्रा नाम्नी विश्वप्रसिद्ध पुण्यजला नदी बहती है। मनुष्य उस नदी में स्नान करके सविधि पितृ तथा देवगण का तर्पण करके सर्वपाप रहित हो जाता है। तब देहान्तकाल में वह विमानारूढ़ होकर स्वर्ग जाता है। वहां वह अनेक भोगों का उपभोग करता है।।७१-७६।।

आस्ते तत्रैव भगवान्देवदेवो जनार्दनः। गोविन्दस्वामिनामाऽसौ भुक्तिमुक्तिप्रदो हरिः॥७७॥
तं दृष्ट्वा मुक्तिमाप्नोति त्रिसप्तकुलसंयुतः। विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना॥७८॥

सर्वकामसमृद्धेन कामगेनास्थिरेण च। उपगीयमानो गन्धर्वैर्विष्णुलोके महीयते॥७९॥

भुङ्क्ते च विविधान्कामान्निरातङ्को गतज्वरः।
आभूतसंप्लवं यावत्सुरूपः सुभगः सुखी॥८०॥
कालेनाऽऽगत्य मतिमान्ब्राह्मणः स्यान्महीतले।
प्रवरे योगिनां गेहे वेदशास्त्रार्थतत्त्ववित्॥८१॥
वैष्णवं योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात्।
विक्रमस्वामिनामानं विष्णुं तत्रैव भो द्विजाः॥८२॥
दृष्ट्वा नरो वा नारी वा फलं पूर्वोदितं लभेत्।
अन्येऽपि तत्र तिष्ठन्ति देवाः शक्रपुरोगमाः॥८३॥

स्वर्ग में गोविन्दस्वामी नामक मुक्ति एवं मोक्ष देने वाले देवाधिदेव जनार्दन हरि स्थित हैं। उनके दर्शन मात्र से लोगों की २१ पीढ़ी के पूर्वजों को तथा उनको भी मोक्ष प्राप्ति हो जाती है। वह सर्वकाम समृद्ध छोटी-छोटी घंटियों से सज्जित सूर्यवर्ण विमानारूढ़ होकर गन्धर्वों से स्तुत होता विष्णुलोक में सम्मानित होता है। वहां जाकर वह दुःखरहित, निरातंक, सुभग, सुरूप तथा सुखी होकर प्रलयान्त तक भोगों का भोग करता है। तदनन्तर कालक्रमेण पृथिवी पर उत्तम योगीगृह में अथवा वेदशास्त्रज्ञ ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर वैष्णव योगावलम्बन द्वारा मुक्त हो जाता है। हे द्विजगण! वहां पर विक्रमस्वामी नामक विष्णु रहते हैं। पुरुष-स्त्री उनका दर्शन करके भी पूर्वोक्त फल लाभ करते हैं। वहां इन्द्रादि अन्य देवता भी रहते हैं।।७७-८३।।

मातरश्च मुनिश्रेष्ठ सर्वकामफलप्रदाः।
दृष्ट्वा तान्विधिवद्भक्त्या सम्पूज्य प्रणिपत्य च॥८४॥

सर्वपापविनिर्मुक्तो नरो याति त्रिविष्टपम्। एवं सा नगरी रम्या राजसिंहेन पालिता॥८५॥
नित्योत्सवप्रमुदिता यथेन्द्रस्यामरावती। पुराष्टादशसंयुक्ता सुविस्तीर्णचतुष्पथा॥८६॥
धनुर्ज्याघोषनिनदा सिद्धसङ्घमभूषिता। विद्यावद्गणभूयिष्ठा वेदनिर्घोषनादिता॥८७॥

इतिहासपुराणानि शास्त्राणि विविधानि च।
काव्यालापकथाश्चैव श्रूयन्तेऽहर्निशं द्विजाः॥८८॥
एवं मया गुणाढ्या सा तदु (सोज्ज) यिनी समुदाहृता।
यस्यां राजाऽभवत्पूर्वमिन्द्रद्युम्नो महामतिः॥८९॥

इति श्री महापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भु-ऋषिसंवादेऽवन्तिकावर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः।।४३।।



वहां सर्व कामना फलप्रदा मातृगण भी स्थित रहती हैं। उनका सविधि दर्शन पूजन करने तथा प्रणाम द्वारा व्यक्ति सर्वपापरहित होकर स्वर्ग जाता है। ऐसे उत्सव से प्रमुदित तथा १८ पुरियों से घिरी यह रम्य पुरी उन राजश्रेष्ठ द्वारा पालित होकर इन्द्र की अमरावती जैसी लग रही थी। वहां बड़े-बड़े चौराहे थे। वहां धनुष

की प्रत्यंचा की ध्वनि सदा गूंजती थी। यह नगरी सिद्धों के समागम से अलंकृत, अनेक विद्वान् तथा ऋषि से एवं गुणी लोगों से भूषित थी। वहां सदा वेदध्वनि का निनाद होता था। वहां सदा इतिहास, पुराण तथा काव्य की चर्चा होती थी। मैंने ऐसी उज्जयिनी पुरी को ऐसी गुणप्रदा जाना है। महामति इन्द्रद्युम्न इस पुरी के पूर्वकालीन राजा थे।।८४-८९।।

।।त्रिचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।



अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्न राजा का वर्णन, उनका दक्षिण-सागर तट पर जाना

ब्रह्मोवाच

तस्यां स नृपतिः पूर्वं कुर्वन्राज्यमनुत्तमम्। पालयामास मतिमान्प्रजाः पुत्रानिवौरसान्॥१॥
सत्यवादी महाप्राज्ञः शूरः सर्वगुणाकरः। मतिमान्धर्मसम्पन्नः सर्वशास्त्रभृतां वरः॥२॥
सत्यवाञ्छीलवान्दान्तः श्रीमान्परपुरञ्जयः। आदित्य इव तेजोभी रूपैराश्विनयोरिव॥३॥
वर्धमानसुराश्चर्यः शक्रतुल्यपराक्रमः। शारदेन्दुरिवाऽऽभाति लक्षणैः समलंकृतः॥४॥
आहर्ता सर्वयज्ञानां हयमेधादिकृत्तथा। दानैर्यज्ञैस्तपोभिश्च तत्तुल्यो नास्ति भूपतिः॥५॥
सुवर्णमणिमुक्तानां गजाश्वानां च भूपतिः। प्रददौ विप्रमुख्येभ्यो यागे यागे महाधनम्॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—मतिमान् राजा इन्द्रद्युम्न ने पूर्व में इस पुर में रहते अत्युत्तम राज्यशासन करके प्रजा को औरसपुत्र की तरह मान कर उसका पालन किया था। वे सत्यवक्ता, महाप्रज्ञ, शूर, सर्वगुणयुक्त, धार्मिक, प्रशस्त बुद्धि, सर्वशस्त्रधारीगण में श्रेष्ठ, सत्य-शीलवान्, दान्त, श्रीमान् रिपुगण पर जय पाने वाले थे। वे तेज में आदित्य, रूप में अश्विनीकुमारद्वय के समान थे। वे प्रज्ञा में बृहस्पति, पराक्रम में इन्द्र तथा सुलक्षण में शारदीय चन्द्रमा जैसे विराजित थे। वे अश्वमेध आदि अनेक यज्ञों के कर्त्ता थे। दान, यज्ञ, तप आदि किसी भी विषय में उनके समान कोई भी राजा नहीं था। वे प्रति यज्ञ में ब्राह्मणों को स्वर्ण-मणि, मुक्ता, गज, अश्व आदि महाधन देते रहते थे।।१-६।।

हस्त्यश्वरथमुख्यानां कम्बलाजिनवाससाम्। रत्नानां धनधान्यानामन्तस्तस्य न विद्यते॥७॥
एवं सर्वधनैर्युक्तो गुणैः सर्वैरलङ्कृतः। सर्वकामसमृद्धात्मा कुर्वन्राज्यमकण्टकम्॥८॥
तस्येयं मतिरुत्पन्ना सर्वयोगेश्वरं हरिम्। कथमाराधयिष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदं प्रभुम्॥९॥

विचार्य सर्वशास्त्राणि तन्त्राण्यागमविस्तरम्।
इतिहासपुराणानि वेदाङ्गानि च सर्वशः॥१०॥

धर्मशास्त्राणि सर्वाणि नियमानृषिभाषितान्।
वेदाङ्गानि च शास्त्राणि विद्यास्थानानि यानि च॥११॥
गुरुं संसेव्य यत्नेन ब्राह्मणान्वेदपारगान्। आधाय परमां काष्ठां कृतकृत्योऽभवत्तदा॥१२॥

हाथी, घोड़े, उत्तम रथ, कम्बल, मृगचर्म, वस्त्र, रत्नराशि, धन-धान्यादि उनके पास कितना था, उसकी कोई भी सीमा नहीं थी। एवंविध वे सर्वकाम समृद्ध राजा सभी गुण तथा सभी धन से समन्वित होकर निष्कलंक रूप से राज्य पालन कर रहे थे। उनमें एक बार यह विचार आया कि मैं किस प्रकार से भुक्ति-मुक्ति प्रदाता सर्वयोगेश्वर हरि की आराधना करूं? यह विचार कर वे सर्वशास्त्र, सर्वतन्त्र, आगम विस्तार, इतिहास, पुराण, वेदांग, सभी धर्मग्रन्थ, ऋषि भाषित नियम तथा नाना विद्यास्थानों से विचार करके सयत्न गुरु एवं वेदज्ञ ब्राह्मणों की अभूतपूर्व उपासना द्वारा कृतार्थ हो गये।।७-१२।।

सम्प्राप्य परमं तत्त्वं वासुदेवाख्यमव्ययम्। भ्रान्तिज्ञानादतीतस्तु मुमुक्षुः संयतेन्द्रियः॥१३॥
कथमाराधयिष्यामि देवदेवं सनातनम्। पीतवस्त्रं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम्॥१४॥
वनमालावृतोरस्कं पद्मपत्रायतेक्षणम्। श्रीवत्सोरःसमायुक्तं मुकुटाङ्गदशोभितम्॥१५॥
स्वपुरात्स तु निष्क्रान्त उज्जयिन्याः प्रजापतिः।
बलेन महता युक्तः सभृत्यः सपुरोहितः॥१६॥
अनुजग्मुस्तु तं सर्वे रथिनः शस्त्रपाणयः। रथैर्विमानसंकाशैः पताकाध्वजसेवितैः॥१७॥
सादिनश्च तथा सर्वे प्रासतोमरपाणयः। अश्वैः पवनसंकाशैरनुजग्मुस्तु तं नृपम्॥१८॥

उन्होंने वासुदेव नामक परम अव्यय तत्व को पाया तथा भ्रान्तिपूर्ण ज्ञान से अतीत, जितेन्द्रिय तथा मुक्तिकामी होकर यह चिन्तन किया कि मैं किस प्रकार से पीत वस्त्रधारी, चार भुजाधारी, शंख-चक्र-गदाधारी, वनमाला मंडित, पद्मपलाश नेत्र वाले, श्रीवत्स चिह्नयुक्त, मुकुट-अंगद आदि भूषण से सज्जित सनातन देव की आराधना करूं? यह सोचते हुये उन्होंने प्रचुर सैन्य, वाहन, भृत्य तथा पुरोहित के साथ अपनी पुरी उज्जयिनी से बाहर की ओर प्रस्थान किया। शस्त्रधारी रथी लोग पताका तथा ध्वज से भूषित होकर विमानवत् रथों पर बैठकर उनके साथ चल पड़े। प्रास तथा तोमर हाथ में लिये सादि लोगों ने पवनवेगी अश्वों पर बैठकर राजा इन्द्रद्युम्न का अनुगमन किया था।।१३-१८।।

हिमवत्संभवैर्मत्तैर्वारणैः पर्वतोपमैः। ईषादन्तैः सदा मत्तैः प्रचण्डैः षष्टिहायनैः॥१९॥
हेमकक्षैः सपताकैर्घण्टारवविभूषितैः। अनुजग्मुश्च तं सर्वे गजयुद्धविशारदाः॥२०॥
असंख्येयाश्च पादाता धनुष्प्रासासिपाणयः। दिव्यमाल्याम्बरधरा दिव्यगन्धानुलेपनाः॥२१॥
अनुजग्मुश्च तं सर्वे युवानो मृष्टकुण्डलाः।
सर्वास्त्रकुशलाः शूराः सदा सङ्ग्रामलालसाः॥२२॥
अन्तःपुरनिवासिन्यः स्त्रियः सर्वाः स्वलंकृताः। बिम्बौष्ठ्यचारुदशनाः सर्वाभरणभूषिताः॥२३॥
दिव्यवस्त्रधराः सर्वा दिव्यमाल्यविभूषिताः। दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गाः शरच्चन्द्रनिभाननाः॥२४॥

सुमध्यमाश्चारुवेषाश्चारुकर्णालकाञ्चिताः। ताम्बूलरञ्जितमुखा रक्षिभिश्च सुरक्षिताः॥२५॥
यानैरुच्चावचैः शुभ्रैर्मणिकाञ्चनभूषितैः।
उपगीयमानास्ताः सर्वा गायनैः स्तुतिपाठकैः॥२६॥
वेष्टिताः शस्त्रहस्तैश्च पद्मपत्रायतेक्षणाः।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या अनुजग्मुश्च तं नृपम्॥२७॥
वणिग्ग्रामगणाः सर्वे नानापुरनिवासिनः। धनै रत्नैः सुवर्णैश्च सदाराः सपरिच्छदाः॥२८॥
अस्त्रविक्रयकाश्चैव ताम्बूलपण्यजीविनः। तृणविक्रयकाश्चैव काष्ठविक्रयकारकाः॥२९॥
रङ्गोपजीविनः सर्वे मांसविक्रयिणस्तथा। तैलविक्रयकाश्चैव वस्त्रविक्रयकास्तथा॥३०॥
फलविक्रयिणश्चैव पत्रविक्रयिणस्तथा। तथा जवसहाराश्च रजकाश्च सहस्रशः॥३१॥
गोपाला नापिताश्चैव तथाऽन्ये वस्त्रसूचकाः।
मेषपालाश्चाजपाला मृगपालाश्च हंसकाः॥३२॥
धान्यविक्रयिणश्चैव सक्तुविक्रयिणश्च ये। गुडविक्रयिकाश्चैव तथा लवणजीविनः॥३३॥
गायना नर्तकाश्चैव तथा मङ्गलपाठकाः। शैलूषाः कथकाश्चैव पुराणार्थविशारदाः॥३४॥
कवयः काव्यकर्तारो नानाकाव्यविशारदाः। विषघ्ना गारुडाश्चैव नानारत्नपरीक्षकाः॥३५॥
व्योकारास्ताम्रकाराश्च कांस्यकाराश्च रूठकाः।
कौषकाराश्चित्रकाराः कुन्दकाराश्च पावकाः॥३६॥
दण्डकाराश्चासिकाराः सुराधूतोपजीविनः।
मल्ला दूताश्च कायस्था ये चान्ये कर्मकारिणः॥३७॥

गजयुद्ध पारंगत योद्धा लोग सदा प्रमत्त हिमालय में उत्पन्न प्रचण्ड ६० वर्षीय, स्वर्णमय हौदा, पताका युक्त, घन्टा का रव करने वाले पहाड़ जैसे हाथियों के साथ इन्द्रद्युम्न के अनुगामी हो गये। धनु, प्रास तथा तलवारधारी, दिव्य माला एवं वस्त्र पहने, दिव्य गन्ध से लिप्त, असंख्य पैदल सैन्य, उत्तम कुण्डलधारी, सभी अस्त्र चालन में पारंगत, सतत् युद्ध की अभिलाषा करने वाले शौर्यशाली युवकों का दल, विम्बफल के वर्ण वाले ओठों वाली, चारु दन्तपंक्तियुता, सभी आभूषणों से सजी, दिव्य वस्त्रधारिणी, दिव्य गन्ध-अनुलेपन वाली, शारदीय चन्द्रवत् प्रफुल्ल जैसे चेहरे वाली, सुमध्यमा, सुवेशा, कानों तक लम्बित बालों से शोभित, ताम्बूल से रंगे मुख वाली, रक्षकों से सुरक्षिता, सर्व मणि, कांचन भूषित, शुभ्र उत्तम मध्यम वाहनों पर आसीन, स्तुतिपाठों से स्तुत, पद्मपलाश नयना, शस्त्र लिये पुरुषों से घिरी, अन्तःपुर में रहने वाली ललनायें, ब्राह्मण, क्षत्रिया, वैश्यगण इन राजा का अनुगमन कर रहे थे। नाना नगरवासी नाना धन-रत्न-स्वर्ण के साथ अपनी स्त्रियों तथा सामग्री के साथ हजारों-हजार वणिक्, हजारों-हजार अस्त्र विक्रेता, ताम्बूल एवं पण्य से जीविका चलाने वाले, तृण विक्रेता, काष्ठ विक्रेता, रंगों से जीविका कमाने वाले, मांस विक्रेता, तैल एवं वस्त्र विक्रेता, फल विक्रयी, पत्र विक्रयी, धोबी, गोपाल, नाई, दर्जी, मेष पालक (गड़ेरिये), बकरी पालक, मृगपालक,

हंसपालक, धान्यविक्रयी, लवणविक्रयी, गायक, नर्तक, मंगलपाठक, शैलूष, पुराणपण्डित, कथावाचक, कवि, काव्यकर्त्ता तथा नाना काव्य कोविद लोग, गारुड़ (अर्थात् विषवैद्य), विष मन्त्रज्ञ, रत्नपरीक्षक, ताम्रकार, लोहार, कांस्यकार, कोशकार, चित्रकार, खरादी, दण्ड निर्माता, तलवार निर्माता, रूठक (?), पावकगण (?), मद्यजीवी, पहलवान, दूत, कायस्थ तथा अन्य कर्मचारी लोग।।१९-३७।।

तन्तुवाया रूपकारा वार्तिकास्तैलपाठकाः। लावजीवास्तैत्तिरिका मृगपक्ष्युपजीविनः॥३८॥
गजवैद्याश्च वैद्याश्च नरवैद्याश्च ये नराः। वृक्षवैद्याश्च गोवैद्या ये चान्ये छेददाहकाः॥३९॥
एते नागरकाः सर्वे ये चान्ये नानुकीर्तिताः। अनुजग्मुस्तु राजानं समस्तपुरवासिनः॥४०॥

जुलाहे, सोनार, गुप्तचर, तेली, लावा पक्षी-तित्तिर पक्षी-मृग-पक्षी से जीविका चलाने वाले, गज वैद्य, मनुष्य के वैद्य, वृक्ष वैद्य, गो वैद्य, अन्य छेदन तथा दहन करने वाले—ये सब नागरिक तथा वे सब भी जिनका वर्णन नहीं किया गया, वे सब राजा का अनुगमन कर रहे थे।।३८-४०।।

यथा व्रजन्तं पितरं ग्रामान्तरं समुत्सुकाः।
अनुयान्ति यथा पुत्रास्तथा तं तेऽपि नागराः॥४१॥

जैसे पिता के अन्य ग्राम जाने पर पुत्रगण उत्सुकता से उसका अनुगमन करते हैं, वे सभी नागरिक, पुरवासी राजा का अनुगमन करने लगे।।४१।।

एवं स नृपतिः श्रीमान्वृतः सर्वैर्महाजनैः। हस्त्यश्वरथपादातैर्जगाम च शनैः शनैः॥४२॥
एवं गत्वा स नृपतिर्दक्षिणस्योदधेस्तटम्। सर्वैस्तैर्दीर्घकालेन बलैरनुगतः प्रभुः॥४३॥
ददर्श सागरं रम्यं नृत्यन्तमिव च स्थितम्। अनेकशतसाहस्रैरूर्मिभिश्च समाकुलम्॥४४॥
नानारत्नालयं पूर्णं नानाप्राणिसमाकुलम्। वीचीतरङ्गबहुलं महाश्चर्यसमन्वितम्॥४५॥
तीर्थराजं महाशब्दमपारं सुभयङ्करम्। मेघवृन्दप्रतीकाशमगाधं मकरालयम्॥४६॥

इस प्रकार से वे राजा सभी महाधन के साथ और हाथी, अश्व, पैदल सैन्य के साथ धीरे-धीरे जाने लगे। दीर्घकाल पश्चात् वे दक्षिण सागर के पास पहुंचे तथा सागर का दर्शन किया। उन्होंने देखा कि सागर अपनी सैकड़ों-हजारों लहरों द्वारा समाकुल होकर मानों नृत्य कर रहा है। वह नाना रत्नों की खान, अगाध जलपूर्ण, नाना प्राणीगण से समाकुल, बहुल वीचि-तरंगों वाला, महाश्चर्यमय, तीर्थ प्रधान, महान् गर्जन करने वाला, अपार, भयंकर, मेघों के समान अगाध तथा मकरों का निवास है।।४२-४६।।

मत्स्यैः कूर्मैश्च शङ्खैश्च शुक्तिकानक्रशङ्कुभिः।
शिशुमारैः कर्कटैश्च वृतं सर्पैर्महाविषैः॥४७॥

लवणोदं हरेः स्थानं शयनस्य नदीपतिम्। सर्वपापहरं पुण्यं सर्ववाञ्छाफलप्रदम्॥४८॥
अनेकावर्तगम्भीरं दानवानां समाश्रयम्। अमृतस्यारणिं दिव्यं देवयोनिमपां पतिम्॥४९॥

विशिष्टं सर्वभूतानां प्राणिनां जीवधारणम्।
सुपवित्रं पवित्राणां मङ्गलानां च मङ्गलम्॥५०॥

तीर्थानामुत्तमं तीर्थमव्ययं यादसां पतिम्। चन्द्रवृद्धिक्षयस्येव यस्य मानं प्रतिष्ठितम्।।५१।।
अभेद्यं सर्वभूतानां देवानाममृतालयम्। उत्पत्तिस्थितिसंहारहेतुभूतं सनातनम्।।५२।।
उपजीव्यं च सर्वेषां पुण्यं नदनदीपतिम्। दृष्ट्वा तं नृपतिश्रेष्ठो विस्मयं परमं गतः।।५३।।

उसमें असंख्य मछलियां, कच्छप, शंख, सीपी, मकर, शंकु, शिशुमार (डोल्फिन), केकड़े तथा महाविषधर सर्प भरे पड़े हैं। यह लवणसागर नदीपति है तथा हरि का शयन स्थल है। यह सर्वपापहर, पवित्र, सर्व वांछित फल देने वाला, अनेक आवर्त्त युक्त, गहरा, दानव निवास, अमृत की अरणि, देवयोनि, जलपति, समस्त प्राणियों के प्राण को धारण करने वाला, पवित्रों से भी पवित्र, मंगलों का भी मंगल, तीर्थों में उत्तम तीर्थ, अव्यय तथा जलपति है। चन्द्र के बढ़ने (शुक्ल पक्ष) तथा घटने (कृष्णपक्ष) के अनुसार इसका परिमाण (ज्वार-भाटा) होता है। यह सभी प्राणीगण से अभेद्य, देवताओं के अमृत का आलय, सबका उपजीव्य है। यह उत्पत्ति-स्थिति-संहार का हेतुभूत तथा सनातन कहलाता है। यह नद-नदीपति है। इसको देखकर श्रेष्ठ राजा इन्द्रद्युम्न विस्मित हो गये।।४७-५३।।

निवासमकरोत्तत्र वेलामासाद्य सागरीम्। पुण्ये मनोहरे देशे सर्वभूमिगुणैर्युते।।५४।।
वृतं शालैः कदम्बैश्च पुंनागैः सरलद्रुमैः। पनसैर्नारिकेलैश्च बकुलैर्नागकेसरैः।।५५।।
तालैः पिप्पलैः खर्जूरैर्नारङ्गैर्बीजपूरकैः। शालैराम्रातकैर्लोध्रैर्बकुलैर्बहुवारकैः।।५६।।
कपित्थैः कर्णिकारैश्च पाटलाशोकचम्पकैः। दाडिमैश्च तमालैश्च पारिजातैस्तथाऽर्जुनैः।।५७।।
प्राचीनामलकैर्बिल्वैः प्रियंगुवटखादिरैः। इङ्गुदीसप्तपर्णैश्च अश्वत्थागस्त्यजम्बुकैः।।५८।।
मधुकैः कर्णिकारैश्च बहुवारैःसतिन्दुकैः। पलाशबदरैर्नीपैः सिद्धनिम्बशुभाञ्जनैः।।५९।।
वारकैः कोविदारैश्च भल्लातामलकैस्तथा।
इति हिन्तालकाङ्कोलैः करञ्जैः सविभीतकैः।।६०।।
ससर्जमधुकाश्मर्यैः शाल्मलीदेवदारुभिः। शाखोटकैर्निम्बवटैः कुम्भीकोष्ठहरीतकैः।।६१।।
गुग्गुलैश्चन्दनैर्वृक्षैस्तथैवागुरुपाटलैः। जम्बीरकरुणैर्वृक्षैस्तिन्तिडीरक्तचन्दनैः।।६२।।
एवं नानाविधैर्वृक्षैस्तथाऽन्यैर्बहुपादपैः। कल्पद्रुमैर्नित्यफलैःसर्वर्तुकुसुमोत्करैः।।६३।।

उसकी बेलाभूमि पर आकर उन्होंने सर्वविध भूमि गुणमय पवित्र मनोहर देश में एक अपूर्व त्रैलोक्यवन्दित स्थान देखा। उन्होंने देखा कि साखू, कदम्ब, पुन्नाग, शालवृक्ष, कटहल, मौलश्री, नागकेशर, नारियल, ताल, पीपल, खर्जूर, नारंगी बीजपूरक, आमड़ा, लोध्र, बहुबारक, बकुल, कपित्थ, कर्णिकार, पाटल, अशोक, चम्पा, अनार, तमाल, पारिजात, अर्जुन, प्राचीनामलक, बेल, प्रियंगु, वट, खदिर, हिंगोट, छितवन, पीपल, अगत्स्य, नींबू, महुआ, तिन्दुक, पलाश, बेर, कदम्ब, सिद्ध, नीम, सैजन, वारक, कचनार, भल्लातक, आमला, हिन्ताल, कंकोल, कटकरंज, बहेड़ा, सर्ज, मधु, काश्मर्य, सेमल, देवदारु, शाखोट, कुंभीकोष्ठ, हरड़, गुग्गुलु, चन्दन, अगर, करुण, तिन्तिड़ी, लाल चन्दन इत्यादि अनेक सभी ऋतु के फल समन्वित कल्पवृक्षों से वह स्थान शोभित था।।५४-६३।।

नानापक्षिरुतैर्दिव्यैर्मत्तकोकिलनादितैः। मयूरवरसंघुष्टैः शुकसारिकसंकुलैः।।६४।।

हारीतैर्भृङ्गराजैश्च चातकैर्बहुपुत्रकैः। जीवंजीवककाकोलैः कलविङ्कैः कपोतकैः॥६५॥
खगैर्नानाविधैश्चान्यैः श्रोत्ररम्यैर्मनोहरैः। पुष्पिताग्रेषु वृक्षेषु कूजद्भिश्चार्वधिष्ठितैः॥६६॥
केतकीवनखण्डैश्च सदा पुष्पधरैः सितैः। मल्लिकाकुन्दकुसुमैर्यूथिकातगरैस्तथा॥६७॥
कुटजैर्बाणपुष्पैश्च अतिमुक्तैः सकुब्जकैः। मालतीकरवीरैश्च तथा कदलकाञ्चनैः॥६८॥
अन्यैर्नानाविधैः पुष्पैः सुगन्धैश्चारुदर्शनैः। वनोद्यानोपवनजैर्नानावर्णैः सुगन्धिभिः॥६९॥

वहां का स्थान नाना पक्षियों के दिव्य कलरव निनादित था। वहां वृक्षों पर मत्तकोकिल का शब्द तथा मयूरों का केकार उत्थित हो रहा था। शुक, सारिका, कबूतर, हारीत, भृंगराज, चातक, बहुपुत्रक, जीवञ्जिवक (चकोर), गौरैय्या, कलविंक तथा श्रवण मनोहर ध्वनि वाले अन्य पक्षी वहां के पुष्पित वृक्षों पर बैठकर कूंजन कर रहे थे। कहीं पर शुभ्र केतकी वन, कहीं मल्लिका तथा कुन्दपुष्प, तो कहीं यूथिका, तगर, कनेर, कुटज, बाणपुष्प, अतिमुक्त कूजक, मालती, कदली, काञ्चन आदि उपवन में होने वाला अनेक जाति के सुगन्धित तथा सुन्दर लगने वाले अनेक पुष्प समूह से अनेक सुगन्धित वन, उपवन, उद्यान वहां अलंकृत से लग रहे थे।।६४-६९।।

विद्याधरगणाकीर्णैः सिद्धचारणसेवितैः। गन्धर्वोरगरक्षोभिर्भूताप्सरसकिंनरैः॥७०॥
मुनियक्षगणाकीर्णैर्नानासत्त्वनिषेवितैः। मृगैः शाखामृगैः सिंहैर्वराहमहिषाकुलैः॥७१॥
तथाऽन्यैः कृष्णसाराद्यैर्मृगैः सर्वत्र शोभितैः। शार्दूलैर्दीप्तमातङ्गैस्तथाऽन्यैर्वनचारिभिः॥७२॥

वहां इनमें विद्याधर, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, भूत, अप्सरा, किन्नर, मुनि तथा यक्ष विचरणशील थे। नानाविध प्राणी, मृग, शाखामृग, सिंह, वराह, महिष, कृष्णसार, शार्दूल, प्रचण्ड हाथी तथा अन्य वनेचर जन्तु भी वहां भरे पड़े थे।।७०-७२।।

एवं नानाविधैर्वृक्षैरुद्यानैर्नन्दनोपमैः। लतागुल्मवितानैश्च विविधैश्च जलाशयैः॥७३॥
हंसकारण्डवाकीर्णैः पद्मिनीखण्डमण्डितैः। कादम्बैश्च प्लवैर्हंसैश्चक्रवाकोपशोभितैः॥७४॥
कमलैः शतपत्रैश्च कह्लारैः कुमुदोत्पलैः। खगैर्जलचरैश्चान्यैः पुष्पैर्जलसमुद्भवैः॥७५॥
पर्वतैर्दीप्तशिखरैश्चारुकन्दरमण्डितैः। नानावृक्षसमाकीर्णैर्नानाधातुविभूषितैः॥७६॥
सर्वाश्चर्यमयैः शृङ्गैः सर्वभूतालयैः शुभैः। सर्वौषधिसमायुक्तैर्विपुलैश्चित्रसानुभिः॥७७॥

एवंविध नाना प्रकार के वृक्षों, नन्दनवन जैसे उद्यानों, नाना लता-गुल्मवितान, विविध हंस-कारण्डव पक्षियों से भरे, कादम्ब, प्लव, हंस तथा चक्रवाक पक्षियों से शोभित, कमल, शतपत्र, कल्हार, कुमुद, उत्पल आदि नाना जलज पुष्प विराजित, नाना जलाशय तथा दीप्त शिखर वाले चारु कन्दराओं से व्याप्त, नाना वृक्षों से समाकीर्ण, नाना धातु भूषित, सर्वाश्चर्यमय, सर्वभूत निलय, सर्वौषधिमय, चित्र-विचित्र कान्ति वाली घाटियों वाले अनेक पर्वत भी यहां पर हैं।।७३-७७।।

एवं सर्वैः समुदितैः शोभितं सुमनोहरैः। ददर्श स महीपालः स्थानं त्रैलोक्यपूजितम्॥७८॥
दशयोजनविस्तीर्णं पञ्चयोजनमायतम्। नानाश्चर्यसमायुक्तं क्षेत्रं परमदुर्लभम्॥७९॥

इति श्री महापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंम्भृषिसंवादे क्षेत्रदर्शनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः।।४४।।

—※—

राजा इन्द्रद्युम्न ने इस सर्वगुणसम्पन्न सर्वमनोरम दस योजन विस्तीर्ण तथा पांच योजन आयत आश्चर्यमय परम दुर्लभ क्षेत्र को देखा।।७८-७९।।

।।चतुश्चत्वारिंश अध्याय समाप्त।।



अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

विष्णु द्वारा पुरुषोत्तम क्षेत्र का वर्णन

मुनय ऊचुः

तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये वैष्णवे पुरुषोत्तमे। किं तत्र प्रतिमा पूर्वं न स्थिता वैष्णवी प्रभो॥१॥
येनासौ नृपतिस्तत्र गत्वा सबलवाहनः। स्थापयामास कृष्णं च रामं भद्रां शुभप्रदाम्॥२॥
संशयो नो महानत्र विस्मयश्च जगत्पते। श्रोतुमिच्छामहे सर्वं ब्रूहि तत्कारणं च नः॥३॥

मुनिगण कहते हैं—हे प्रभो! नरपति इन्द्रद्युम्न सैन्य-वाहन के साथ वहां आये। कृष्ण, बलराम तथा सुभद्रामूर्त्ति की उन्होंने प्रतिष्ठा किया। क्या इस पवित्र वैष्णव क्षेत्र पुरुषोत्तम में कोई वैष्णवी प्रतिमा नहीं थी? अब यह जानना है कि हे जगत्पति! इस सम्बन्ध में इसका प्रकृततत्व क्या है? यह सुनने की उत्सुकता है। आप मुझसे यह कहिये।।१-३।।

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं पूर्वसंवृत्तां कथां पापप्रणाशिनीम्।
प्रवक्ष्यामि समासेन श्रिया पृष्टः सुरा हरिः॥४॥
सुमेरोः काञ्चने शृङ्गे सर्वाश्चर्यसमन्विते। सिद्धविद्याधरैर्यक्षैः किंनरैरुपशोभिते॥५॥
देवदानवगन्धर्वैर्नागैरप्सरसां गणैः। मुनिभिर्गुह्यकैः सिद्धैः सौपर्णैः समरुद्गणैः॥६॥
अन्यैर्देवालयैः साध्यैः कश्यपाद्यैः प्रजेश्वरैः। वालखिल्यादिभिश्चैव शोभिते सुमनोहरे॥७॥
कर्णिकारवनैर्दिव्यैः सर्वर्तुकुसुमोत्करैः। जातरूपप्रतीकाशैर्भूषिते सूर्यसंनिभैः॥८॥
अन्यैश्च बहुभिर्वृक्षैः शालतालादिभिर्वनैः। पुंनागाशोकसरलन्यग्रोधाम्रातकार्जुनैः॥९॥
पारिजाताम्रखदिरनीपबिल्वकदम्बकैः। धवखादिरपालाशशीर्षामलकतिन्दुकैः॥१०॥
नारिङ्गकोलबकुललोध्रदाडिमदारुकैः। सर्जैश्च कर्णैस्तगरैः शिशिभूर्जवनिम्बकैः॥११॥
अन्यैश्च काञ्चनैश्चैव फलभारैश्च नामितैः। नानाकुसुमगन्धाढ्यैर्भूषिते पुष्पपादपैः॥१२॥
मालतीयूथिकामल्लीकुन्दबाणकुरुण्टकैः। पाटलागस्त्यकुटजमन्दारकुसुमादिभिः॥१३॥

अन्यैश्च विविधैः पुष्पैर्मनसः प्रीतिदायकैः। नानाविहगसंघैश्च कूजद्भिर्मधुरस्वरैः॥१४॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे मुनिगण! आप वह पापनाशिनी कथा श्रवण करिये, जिसे पूर्वकाल में लक्ष्मीदेवी ने भगवान् श्रीहरि से जो प्रश्न किया था, वह संक्षेप में कहता हूं। सुमेरु पर्वत के सर्वैश्वर्यमय स्वर्णशृंग पर विश्वविदित कई सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, किन्नर, देव, दानव, गन्धर्व, अप्सरा, मुनि, गुह्यक, सिद्ध, सौपर्ण तथा मरुद्‌गण एवं देवभूमि निवासी साध्यगण, कश्यपादि प्रजापति एवं बालखिल्यादि मुनिगण वहां की शोभा सम्पादन करते स्थित थे। सभी ऋतुओं में उत्पन्न कुसुमसमूह की वर्षा करने वाले स्वर्णकान्ति, सूर्यसमप्रभ, दिव्य कर्णिकार वन, अन्य बहुत तरह के वृक्ष, शाल-तालवन, पुन्नाग, अशोक, सरल, बरगद, अर्जुन, पारिजात, आम, खदिर, कदम्ब, बेल, नीप, धव, पलाश, शिरीष, आंवला, तिन्दुक, नारंगी, मौलश्री, कोल, लोध्र, अनार, दारुक, सर्ज, कनेर, तगर, शिशिभू, भूर्जव, नीम तथा अन्य फलभार से झुके नाना पुष्पगन्ध वाले पादप, मालती, जूही, मल्ली, कुन्द, बाण, कुन्टक, पाटल, अगत्स्य, कुटज, कन्दर, आदि कुसुमसमूह के वृक्ष पादपों से यह शृंग अलंकृत था। इसके अतिरिक्त और भी कई मन को प्रसन्न करने वाली कुसुमराशि वहां प्रस्फुटित थी। उसकी कोई सीमा नहीं है। वहां अनेक प्रकार के पक्षीगण के झुण्ड मधुर स्वर से कूंजन कर रहे थे।।४-१४।।

पुंस्कोकिलरुतैर्दिव्यैर्मत्तबर्हिणनादितैः। एवं नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पैर्नानाविधैस्तथा॥१५॥
खगैर्नानाविधैश्चैव शोभिते सुरसेविते। तत्र स्थितं जगन्नाथं जगत्स्त्रष्टारमव्ययम्॥१६॥
सर्वलोकविधातारं वासुदेवाख्यमव्ययम्। प्रणम्य शिरसा देवी लोकानां हितकाम्यया।
पप्रच्छेमं महाप्रश्नं पद्मजा तमनुत्तमम्॥१७॥

वहां नर कोकिलों के कूंजन कलरव से तथा मत्तमयूरों के केकारव से सभी स्थान मुखरित था। इस प्रकार अनेक वृक्ष, नाना पुष्प तथा अनेक पक्षीगण के झुण्ड वहां शोभायमान हो रहे थे। उस सुरसेवित सुमेरु शिखर पर एक बार जगत् विधाता जगन्नाथ अव्यय पुरुष भगवान् वासुदेव अवस्थान कर रहे थे। तभी भगवती कमलनयना कमला ने मस्तक नत करके उनको प्रणाम किया तथा सर्वलोक की हितकामना से उनसे यह महाप्रश्न पूछा।।१५-१७।।

श्रीरुवाच

ब्रूहि त्वं सर्वलोकेश संशयं मे हृदि स्थितम्। मर्त्यलोके महाश्चर्ये कर्मभूमौ सुदुर्लभे॥१८॥
लोभमोहग्रहग्रस्ते कामक्रोधमहार्णवे। येन मुच्येत देवेश अस्मात्संसारसागरात्॥१९॥
आचक्ष्व सर्वदेवेश प्रणतां यदि मन्यसे। त्वदृते नास्ति लोकेऽस्मिन्वक्ता संशयनिर्णये॥२०॥

श्रीदेवी कहती हैं—हे सर्वलोकपति! मेरे हृदय में एक संशय है। आप उसका निराकरण करें। इस महाश्चर्यमय सुदुर्लभ कर्मभूमि में सर्वत्र लोभ-मोह-काम-क्रोध आदि जलजन्तु परिपूर्ण होने से यह संसार महासागर की तरह लग रहा है। हे देवेश! इस संसार-सागर से लोग किस तरह से मुक्त हो सकेंगे? हे सर्वदेवाधिपति! यदि आप मुझे विनीत मानते हैं, तब मुझसे यह व्यक्त करिये। इस संसार में आपके अतिरिक्त संशय का निर्णय करने वाला वक्ता कोई नहीं है।।१८-२०।।

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वैवं वचनं तस्या देवदेवो जनार्दनः। प्रोवाच परमा प्रीत्या परं सारामृतोपमम्॥२१॥

ब्रह्मा कहते हैं—देवदेव जनार्दन ने भगवती श्रीदेवी का यह वाक्य सुनकर उनसे प्रेम के साथ अमृतोपम परम सार कथा कहने लगे।।२१।।

श्रीभगवानुवाच

सुखोपास्यः सुसाध्यश्चाभिरामश्च सुसत्फलः।
आस्ते तीर्थवरे देवि विख्यातः पुरुषोत्तमः॥२२॥
न तेन सदृशः कश्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते।
कीर्तनाद्यस्य देवेशि मुच्यते सर्वपातकैः॥२३॥

न विज्ञातोऽमरैः सर्वैर्न दैत्यैर्न च दानवैः। मरीच्याद्यैर्मुनिवरैर्गोपितं मे वरानने॥२४॥
तत्तेऽहं संप्रवक्ष्यामि तीर्थराजं च सांप्रतम्। भावेनैकेन सुश्रोणि श्रृणुष्व वरवर्णिनि॥२५॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे देवी! जितने भी श्रेष्ठ तीर्थ हैं, उनमें से मुख्यतः पुरुषोत्तम क्षेत्र ही उपास्य है। यह सुसाध्य, मनोरम तथा सत्फलप्रदाता रूप से प्रसिद्ध है। इसके समान तीर्थ त्रैलोक्य में नहीं है। हे देवेशी! इस तीर्थ का नाम कीर्त्तन करने वाला व्यक्ति सर्वपापरहित हो जाता है। सभी देवता, दैत्य, दानव तथा मरीचि आदि महर्षि भी इस तीर्थ के सम्बन्ध में नहीं जानते। हे वरानने! यह मेरा अति गोपनीय तीर्थ है। सम्प्रति मैं इस तीर्थप्रवर का विवरण तुमसे कहता हूं। हे सुश्रोणि! तुम एकाग्रता के साथ सुनो।।२२-२५।।

आसीत्कल्पे समुत्पन्ने नष्टे स्थावरजङ्गमे। प्रलीना देवगन्धर्वदैत्यविद्याधरोरगाः॥२६॥
तमोभूतमिदं सर्वं न प्राज्ञायत किंचन। तस्मिञ्जागर्ति भूतात्मा परमात्मा जगद्गुरुः॥२७॥
श्रीमांस्त्रिमूर्तिकृद्देवो जगत्कर्ता महेश्वरः। वासुदेवेति विख्यातो योगात्मा हरिरीश्वरः॥२८॥
सोऽसृजद्योगनिद्रान्ते नाभ्यम्भोरुहमध्यगम्। पद्मकेशरसंकाशं ब्रह्माणं भूतमव्ययम्॥२९॥
तादृग्भूतस्ततो ब्रह्मा सर्वलोकमहेश्वरः। पञ्चभूतसमायुक्तं सृजते च शनैः शनैः॥३०॥

मात्रायोनीनि भूतानि स्थूलसूक्ष्माणि यानि च।
चतुर्विधानि सर्वाणि स्थावराणि चराणि च॥३१॥
ततः प्रजापतिर्ब्रह्मा चक्रे सर्वं चराचरम्।
संचिन्त्य मनसाऽऽत्मानं ससर्ज विविधाः प्रजाः॥३२॥

मरीच्यादीन्मुनीन्सर्वान्देवासुरपितॄनपि। यज्ञविद्याधरांश्चान्यान्नाङ्गाद्याः सरितस्तथा॥३३॥
नरवानरसिंहांश्च विविधांश्च विहङ्गमान्। जरायूनण्डजान्देवि स्वेदजोद्भिदजांस्तथा॥३४॥

कल्पान्त में सब स्थावर-जंगम नष्ट हो गया था। देवता, गन्धर्व, दैत्य, विद्याधर तथा सर्पगण विलीन हो गये थे। समग्र विश्व तमोमय हो गया। कुछ भी ज्ञानगम्य नहीं था। तब एकमात्र भूतात्मा, परमात्मा, जगद्गुरु, जगत्कर्ता, त्रिमूर्त्तिधारी वासुदेव नामक महेश्वर योगात्मा श्रीहरि जाग्रत थे। उन्होंने योगनिद्रावसान होने पर

नाभिकमल के मध्य से पद्मकेशर के समान अव्यय ब्रह्मा की सृष्टि किया। सर्वलोक महेश्वर ब्रह्मा इस प्रकार से उत्पन्न होकर क्रमशः पंचभूतात्मक चराचर जगत् की सृष्टि में प्रवृत्त हो गये थे। स्थूल-सूक्ष्म-स्थावर-जंगम रूपी चतुर्विध भूतवृन्द तन्मात्र से जन्मे। क्रमशः प्रजापति ब्रह्मा ने चराचर सृष्टि करके मन ही मन आत्मचिन्तन किया तथा विविध प्रजापुंज की सृष्टि करने के पश्चात् मरीचि आदि मुनि, समस्त देवता-असुर-पितर-यक्ष-विद्याधर-गंगा आदि सरिताओं-मनुष्य-वानर, सिंह, विविध पक्षी, जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज प्राणियों की सृष्टि किया।।२६-३४।।

ब्रह्मक्षत्रं तथा वैश्यं शूद्रं चैव चतुष्टयम्।
अन्त्यजातांश्च म्लेच्छांश्च ससर्ज विविधान्पृथक्॥३५॥
यत्किंचिज्जीवसंज्ञं तु तृणगुल्मपिपीलिकम्।
ब्रह्मा भूत्वा जगत्सर्वं निर्ममे सचराचरम्॥३६॥

उन्होंने तब ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र को रचा। उन्होंने पृथक्तः अन्त्यज तथा म्लेच्छों की रचना किया। जो कुछ भी जीव संज्ञक तृण-गुल्म-चींटी आदि कीट हैं, प्रभु ने उस सब चराचर का निर्माण ब्रह्मा होकर किया था।।३५-३६।।

दक्षिणाङ्गे तथाऽऽत्मानं सञ्चिन्त्य पुरुषं स्वयम्।
वामे चैव तु नारीं स द्विधा भूतमकल्पयत्॥३७॥
ततः प्रभृति लोकेऽस्मिन्प्रजा मैथुनसम्भवाः।
अधमोत्तममध्याश्च मम क्षेत्राणि यानि च॥३८॥
एवं सञ्चिन्त्य देवोऽसौ पुरा सलिलयोनिजः।
जगाम ध्यानमास्थाय वासुदेवात्मिकां तनुम्॥३९॥

तदनन्तर ब्रह्मा ने स्वयं आत्मा का चिन्तन करके अपने दाहिने अंग से पुरुष तथा वाम से नारी की सृष्टि किया। इस प्रकार उन्होंने द्विविध रूप कल्पना किया। उसी काल से मैथुनी सृष्टि होती है। तभी से मेरा जो उत्तम-मध्यम तथा अधम श्रेणी का क्षेत्र है, उसका चिन्तन करके उन सलिलयोनि ब्रह्मा ने ध्यानावस्थित होकर वासुदेवात्मक देह को (भावना से) प्राप्त किया (अर्थात् वासुदेव मूर्ति से तादात्म्य किया)।।३७-३९।।

ध्यानमात्रेण देवेन स्वयमेव जनार्दनः। तस्मिन्क्षणे समुत्पन्नः सहस्राक्षः सहस्रपात्॥४०॥
सहस्रशीर्षा पुरुषः पुण्डरीकनिभेक्षणः। सलिलध्वान्तमेघाभः श्रीमाञ्छ्रीवत्सलक्षणः॥४१॥
अपश्यत्सहसा तं तु ब्रह्मा लोकपितामहः। आसनैरर्घ्यपाद्यैश्च अक्षतैरभिनन्द्य च॥४२॥
तुष्टाव परमैः स्तोत्रैर्विरिञ्चिः सुसमाहितः। ततोऽहमुक्तवान्देवं ब्रह्माणं कमलोद्भवम्।
कारणं वद मां तात मम ध्यानस्य साम्प्रतम्॥४३॥

तब ध्यान मात्र से ही तत्क्षण स्वयं सहस्राक्ष, सहस्रपात्, सहस्रशीर्ष, पुण्डरीकाक्ष सजल मेघवर्ण श्रीवत्सलांछित श्रीमान् जनार्दन आविर्भूत हो गये। लोकपितामह ब्रह्मा ने उनको देखते ही पाद्य, अर्घ्य, आसनादि

एवं अक्षत से उनकी पूजा किया तथा प्रणाम के साथ समाहित चित्त द्वारा उत्तम स्तव करने लगे। तब मैंने कमलोत्पन्न ब्रह्मा से कहा—हे तात! सम्प्रति मेरा ध्यान करने का क्या कारण है, वह मुझसे कहो।।४०-४३।।

ब्रह्मोवाच

जगद्धिताय देवेश मर्त्यलोकैश्च दुर्लभम्। स्वर्गद्वारस्य मार्गाणि यज्ञदानव्रतानि च॥४४॥
योगः सत्यं तपः श्रद्धा तीर्थानि विविधानि च।
विहाय सर्वमेतेषां सुखं तत्साधनं वद॥४५॥
स्थानं जगत्पते मह्यमुत्कृष्टं च यदुच्यते। सर्वेषामुत्तमं स्थानं ब्रूहि मे पुरुषोत्तम॥४६॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे देवेश! स्वर्गद्वार के मार्ग स्वरूप जो सभी यज्ञ, दान, व्रत, योग, सत्य, तप, श्रद्धा तथा नाना तीर्थ हैं, उन सबके बिना भी जहां अनायास इन सबका फल मिल सके, तथा जो जगत् में अत्यन्त उत्कृष्ट कहा जाता है, हे पुरुषोत्तम! जगत् के हित के लिये उस महान् लोकदुर्लभ स्थान का वर्णन करिये।।४४-४६।।

विधातुर्वचनं श्रुत्वा ततोऽहं प्रोक्तवान्प्रिये।
शृणु ब्रह्मन्प्रवक्ष्यामि निर्मलं भुवि दुर्लभम्॥४७॥
उत्तमं सर्वक्षेत्राणां धन्यं संसारतारणम्। गोब्राह्मणहितं पुण्यं चातुर्वर्ण्यसुखोदयम्॥४८॥
भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां क्षेत्रं परमदुर्लभम्। महापुण्यं तु सर्वेषां सिद्धिदं वै पितामह॥४९॥

हे प्रिये! विधाता का कथन सुनकर मैंने उनको उत्तर दिया कि—"हे ब्रह्मन्! जो जगत् में दुर्लभ तथा निर्मल है, जो सभी क्षेत्रों में उत्तम है, वह संसार तारक, धन्य, पुण्यमय, गो-ब्राह्मणार्थ हितप्रद, चतुर्वर्ण के लिये सुखदायक, मनुष्यों हेतु परम दुर्लभ, भोग-मोक्ष-सिद्धिप्रद तथा महापुण्यजनक है, मैं उस क्षेत्र का वर्णन करता हूं। आप सुनिये।।४७-४९।।

तस्मादासीत्समुत्पन्नं तीर्थराजं सनातनम्। विख्यातं परमं क्षेत्रं चतुर्युगनिषेवितम्॥५०॥
सर्वेषामेव देवानामृषीणां ब्रह्मचारिणाम्। दैत्यदानवसिद्धानां गन्धर्वोरगरक्षसाम्॥५१॥
नानाविद्याधराणां च स्थावरस्य चरस्य च। उत्तमः पुरुषो यस्मात्तस्मात्स पुरुषोत्तमः॥५२॥
दक्षिणस्योदधेस्तीरे न्यग्रोधो यत्र तिष्ठति। दशयोजनविस्तीर्णं क्षेत्रं परम दुर्लभम्॥५३॥
यस्तु कल्पे समुत्पन्ने महदु (त्यु) ल्कानिबर्हणे।
विनाशं नैवमभ्येति स्वयं तत्रैवमास्थितः॥५४॥
दृष्टिमात्रे वटे तस्मिंश्छायामाक्रम्य चासकृत्।
ब्रह्महत्यात्प्रमुच्येत पापेष्वन्येषु का कथा॥५५॥
प्रदक्षिणा कृता यैस्तु नमस्कारश्च जन्तुभिः।
सर्वे विधूतपाप्मानस्ते गताः केशवालयम्॥५६॥
न्यग्रोधस्योत्तरे किञ्चिद्दक्षिणे केशवस्य तु। प्रासादस्तत्र तिष्ठेत्तु पदं धर्ममयं हि तत्॥५७॥

प्रतिमां तत्र वै दृष्ट्वा स्वयं देवेन निर्मिताम्।
अनायासेन वै यान्ति भुवनं मे ततो नराः॥५८॥
गच्छमानांस्तु तान्प्रेक्ष्य एकदा धर्मराट् प्रिये।
मदन्तिकमनुप्राप्य प्रणम्य शिरसाऽब्रवीत्॥५९॥

पूर्वकाल में सर्वलोक प्रसिद्ध चतुर्युग में सेवित एक सनातन तीर्थ प्रधान परम क्षेत्र आविर्भूत हो गया। यह क्षेत्र सभी देवता, ऋषि, ब्रह्मचारी, दैत्य, दानव, सिद्ध, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, नाग, विद्याधर तथा चराचर में उत्तम क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध है। यह उत्तम पुरुषवत् प्रतिभात होता है। तभी इसे पुरुषोत्तम नाम मिला है। दक्षिण सागर के तट पर जहां बरगद का वृक्ष विराजित है, वहां यह दस योजन विस्तार वाला परम दुर्लभ पुरुषोत्तम क्षेत्र अवस्थान करता है। इस क्षेत्र का यह वृक्ष कल्पकालीन महत् उल्कापात में भी नष्ट नहीं होता। मैं स्वयं ही वहां अवस्थित रहता हूं। उस वटवृक्ष का दर्शन करने तथा उसके नीचे बैठने वाला ब्रह्महत्या ऐसे पाप तक से मुक्त हो जाता है। अन्य पातकों की तो बात ही क्या? जो प्राणी उस वृक्ष की प्रदक्षिणा तथा उसे प्रणाम करते हैं, वे सभी पापों से परिमुक्त होकर केशव के धाम जाते हैं। इस बरगद के वृक्ष के उत्तर में तथा केशव मन्दिर के किंचित् दक्षिण में पुरुषोत्तम का देवालय विद्यमान है। वह तो धर्ममय पदरूप है। वहां स्वयं प्रभु निर्मित देवप्रतिमा का दर्शन करने वाला अनायास ही मेरे लोक को प्राप्त करता है। एक बार धर्मराज वैकुण्ठ जाते लोगों को देख कर मेरे पास आये तथा प्रणामोपरान्त कहा—॥५०-५९॥

यम उवाच

नमस्ते भगवन्देव लोकनाथ जगत्पते। क्षीरोदवासिनं देवं शेषभोगानुशायिनम्॥६०॥
वरं वरेण्यं वरदं कर्तारमकृतं प्रभुम्। विश्वेश्वरमजं विष्णुं सर्वज्ञमपराजितम्॥६१॥
नीलोत्पलदलश्यामं पुण्डरीकनिभेक्षणम्। सर्वज्ञं निर्गुणं शान्तं जगद्धातारमव्ययम्॥६२॥
सर्वलोकविधातारं सर्वलोकसुखावहम्। पुराणं पुरुषं वेद्यं व्यक्ताव्यक्तं सनातनम्॥६३॥
परावराणां स्त्रष्टारं लोकनाथं जगद्गुरुम्। श्रीवत्सोरस्कसंयुक्तं वनमालाविभूषितम्॥६४॥
पीतवस्त्रं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम्। हारकेयूरसंयुक्तं मुकुटाङ्गदधारिणम्॥६५॥
सर्वलक्षणसम्पूर्णं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्। कूटस्थमचलं सूक्ष्मं ज्योतीरूपं सनातनम्॥६६॥

यमराज कहते हैं—हे भगवान्, लोकनाथ, जगत्पति! मैं आपको नमस्कार करता हूं! आप क्षीरसागर में रहने वाले, शेषनाग की शैय्या पर शयन करने वाले, वर, वरेण्य, वरद, कर्त्ता, अकृत, प्रभु, विश्वेश्वर, अज, विष्णु, सर्वज्ञ, अपराजित, नीलकमलवत् श्यामवर्ण, पुण्डरीकाक्ष, सर्वज्ञ, निर्गुण, शान्त, जगत्विधाता, अव्यय, सर्वलोक विधाता, सर्वलोक को सुख देने वाले, पुराणपुरुष, व्यक्त, अव्यक्त, सनातन, पर-अपर, स्त्रष्टा, लोकनाथ, जगद्गुरु, श्रीवत्सचिह्नांकित वक्ष वाले, वनमालामण्डित, पीतवस्त्रधारी, चतुर्बाहुधारी, शंख-चक्र-गदाधारी, हार केयूर भूषित, मुकुट-अंगद (बाजूबन्द) से मण्डित, सर्वलक्षणयुक्त, सभी इन्द्रियों से रहित, कूटस्थ अचल, सनातन एवं ज्योतिरूप हैं।।६०-६६।।

भावाभावविनिर्मुक्तं व्यापिनं प्रकृतेः परम्। नमस्यामि जगन्नाथमीश्वरं सुखदं प्रभुम्॥६७॥

इत्येवं धर्मराजस्तु पुरा न्यग्रोधसन्निधौ। स्तुत्वा नानाविधैः स्तोत्रैः प्रणाममकरोत्तदा॥६८॥
तं दृष्ट्वा तु महाभागे प्रणतं प्राञ्जलिस्थितम्। स्तोत्रस्य कारणं देवि पृष्टवानहमन्तकम्॥६९॥
वैवस्वत महाबाहो सर्वदेवोत्तमो ह्यसि।
किमर्थं स्तुतवान्मां त्वं संक्षेपात्तद् ब्रवीहि मे॥७०॥

"आप भाव-अभाव से रहित, सर्वव्यापी प्रकृति के परे सुखद, ईश्वर, जगन्नाथ प्रभु हैं। आपको नमस्कार! इस प्रकार से धर्मराज ने पूर्वकाल में उस बरगद पेड़ के पास मेरा नाना प्रकार के स्तोत्रों से स्तव किया तथा प्रणाम किया। हे महाभाग! मैंने तब यमराज को हाथ जोड़े प्रणत देख कर उनसे पूछा—हे महाबाहो! सर्वोत्तम वैवस्वत! तुम सभी देवों से श्रेष्ठ हो। किसलिये तुम मेरा स्तव कर रहे हो? संक्षेप में कहो"।।६७-७०।।

धर्मराज उवाच

अस्मिन्नायतने पुण्ये विख्याते पुरुषोत्तमे। इन्द्रनीलमयी श्रेष्ठा प्रतिमा सार्वकामिकी॥७१॥
तां दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्ष भावेनैकेन श्रद्धया।
श्वेताख्यं भवनं यान्ति निष्कामाश्चैव मानवाः॥७२॥
अतः कर्तुं न शक्नोमि व्यापारमरिसूदन। प्रसीद सुमहादेव संहर प्रतिमां विभो॥७३॥

धर्मराज कहते हैं—हे पुण्डरीकाक्ष! इस प्रसिद्ध पवित्र पुरुषोत्तम क्षेत्र में जो सर्वकामप्रदा इन्द्रनीलमयी उत्तम प्रतिमा है, श्रद्धा तथा एकाग्रता पूर्वक उसका दर्शन करने वाला निष्काम होकर आपके श्वेतलोक जाता है। हे मधुसूदन! इस कारण मैं अपने पदानुरूप कार्य नहीं कर पा रहा हूं। हे महान् देव! हे प्रभो! आप प्रसन्न हो जायें। इस प्रतिमा को यहां से गुप्त कर दीजिये।।७१-७३।।

श्रुत्वा वैवस्वतस्यैतद्वाक्यमेतदुवाच ह। यम तां गोपयिष्यामि सिकताभिः समन्ततः॥७४॥
ततः सा प्रतिमा देवि वल्लिभिर्गोपिता मया।
यथा तत्र न पश्यन्ति मनुजाः स्वर्गकाङ्क्षिणः॥७५॥
प्रच्छाद्य वल्लिकैर्देवि जातरूपपरिच्छदैः।
यमं प्रस्थापयामास स्वां पुरीं दक्षिणां दिशम्॥७६॥

यम का कथन सुनकर भगवान् ने कहा—"हे यम! मैं इस प्रतिमा को बालुका से आच्छादित कर देता हूं।" हे देवी! तत्पश्चात् मैंने उस प्रतिमा को ऐसे गोपन कर दिया, जिससे स्वर्ग चाहने वाले उसे देख न सकें। हे देवी! तब मैंने स्वर्णकान्ति बालुका आदि से उस प्रतिमा को ढंकने के पश्चात् यम को उनकी दक्षिणस्थ पुरी में भेज दिया।।७४-७६।।

ब्रह्मोवाच

लुप्तायां प्रतिमायां तु इन्द्रनीलस्य भो द्विजाः।
तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये विख्याते पुरुषोत्तमे॥७७॥

यो भूतस्तत्र वृत्तान्तो देवदेवो जनार्दनः। तं सर्वं कथयामास स तस्यै भगवान्पुरा॥७८॥
इन्द्रद्युम्नस्य गमनं क्षेत्रसंदर्शनं तथा। क्षेत्रस्य वर्णनं चैव प्रासादकरणं तथा॥७९॥
हयमेधस्य यजनं स्वप्नदर्शनमेव च। लवणस्योदधेस्तीरे काष्ठस्य दर्शनं तथा॥८०॥
दर्शनं वासुदेवस्य शिल्पिराजस्य च द्विजाः। निर्माणं प्रतिमायास्तु यथावर्णं विशेषतः॥८१॥
स्थापनं चैव सर्वेषां प्रासादे भुवनोत्तमे। यात्राकाले च विप्रेन्द्राः कल्पसङ्कीर्तनं तथा॥८२॥
मार्कण्डेयस्य चरितं स्थापनं शङ्करस्य च। पञ्चतीर्थस्य माहात्म्यं दर्शनं शूलपाणिनः॥८३॥

वटस्य दर्शनं चैव व्युष्टिं तस्य च भो द्विजाः।
दर्शनं बलदेवस्य कृष्णस्य च विशेषतः॥८४॥

सुभद्रायाश्च तत्रैव माहात्म्यं चैव सर्वशः। दर्शनं नरसिंहस्य व्युष्टिसङ्कीर्तनं तथा॥८५॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे ब्राह्मणों! एवंविध वही इन्द्रनील प्रतिमा लुप्त हो गयी। उस प्रसिद्ध पुरुषोत्तम क्षेत्र में जो सब घटना घटी थी, देवाधिदेव जनार्दन ने वह सब पूर्वकाल में भगवती लक्ष्मी से कहा था। उनकी वर्णित घटनावली इस प्रकार से है—इन्द्रद्युम्न का पुरुषोत्तम क्षेत्र आना, क्षेत्रदर्शन, क्षेत्रवर्णन, प्रासाद निर्माण, अश्वमेध यज्ञ करना, स्वप्न देखना, क्षारसमुद्र के तट पर काठ (लकड़ी) देखना, शिल्पीराज तथा वासुदेव का दर्शन, प्रतिमा निर्माण, सर्वलोकोत्तम प्रासाद में प्रतिमा स्थापना, यात्रा काल में कल्पों का कीर्त्तन, मार्कण्डेय चरित्र, शंकर स्थापना, पंचतीर्थ माहात्म्य शिवदर्शन, वटदर्शन स्तुति। हे द्विजों! बलदेव, कृष्ण, सुभद्रा दर्शन, माहात्म्य, नृसिंह दर्शन, उनकी स्तुति-कीर्त्तन।।७७-८५।।

अनन्तवासुदेवस्य दर्शनं गुणकीर्तनम्। श्वेतमाधवमाहात्म्यं स्वर्गद्वारस्य दर्शनम्॥८६॥
उदधेर्दर्शनं चैव स्नानं तर्पणमेव च। समुद्रस्नानमाहात्म्यमिन्द्रद्युम्नस्य च द्विजाः॥८७॥
पञ्चतीर्थफलं चैव महाज्येष्ठं तथैव च। स्थानं कृष्णस्य हलिनः पर्वयात्राफलं तथा॥८८॥
वर्णनं विष्णुलोकस्य क्षेत्रस्य च पुनः पुनः। पूर्वं कथितवान्सर्वं तस्यै स पुरुषोत्तमः॥८९॥

इति श्री महापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे पूर्ववृत्तानुवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः।४५।।



अनन्त वासुदेव दर्शन तथा गुणकीर्त्तन, श्वेत माधव महिमा, स्वर्गद्वार दर्शन। समुद्रदर्शन, उसमें स्नान-तर्पण। समुद्र स्नान तथा इन्द्रद्युम्न माहात्म्य। पंचतीर्थ फल, ज्येष्ठ पूर्णिमा फल, कृष्ण-बलराम के स्थान, पर्वयात्राफल, विष्णुलोक वर्णन, क्षेत्र का पुनः-पुनः वर्णन। यह सब भगवान् ने लक्ष्मीदेवी से कहा—।।८६-८९।।

।।पञ्चचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।



अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्न द्वारा पुरुषोत्तम क्षेत्र का दर्शन

मुनय ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे देव कथाशेषं महीपतेः। तस्मिन्क्षेत्रवरे गत्वा किं चकार नराधिपः॥१॥

मुनिगण कहते हैं—हे देव! हम राजा इन्द्रद्युम्न की कथा सुनने की इच्छा रखते हैं। उन राजा ने उस उत्तम क्षेत्र में जाकर क्या किया?॥१॥

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः प्रवक्ष्यामि समासतः। क्षेत्रसंदर्शनं चैव कृत्यं तस्य च भूपतेः॥२॥

गत्वा तत्र महीपालः क्षेत्रे त्रैलोक्यविश्रुते। ददर्श रमणीयानि स्थानानि सरितस्तथा॥३॥

नदी तत्र महापुण्या विन्ध्यपादविनिर्गता।
स्वित्रोपलेति विख्याता सर्वपापहरा शिवा॥४॥

गङ्गातुल्या महास्त्रोता दक्षिणार्णवगामिनी। महानदीति नाम्ना सा पुण्यतोया सरिद्वरा॥५॥

दक्षिणस्योदधेर्गर्भं गताऽऽवर्तातिशोभिता। उभयोस्तटयोर्यस्या ग्रामाश्च नगराणि च॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे मुनिप्रवरवृन्द! मैं उन राजा के द्वारा पुरुषोत्तम क्षेत्र दर्शन को संक्षेप में कहता हूं। वे राजा उस त्रैलोक्य प्रसिद्ध विश्रुत क्षेत्र में आये तथा उस रमणीक स्थान तथा नदियों का दर्शन किया। उन्होंने देखा कि विन्ध्य पर्वत से निकली महापुण्या सर्वपापहारिणी शिव (कल्याण) पूर्ण जल वाली, गंगा के समान स्रोता एक महानदी प्रवाहित हो रही है, जो दक्षिण सागर से मिलती है। यह उत्तम सरिता चित्रोत्पला नाम से प्रसिद्ध है। यह दक्षिण सागर में गिर कर अतिशय शोभित हो रही है। हे मुनिप्रवरगण! इस महानदी के दोनों तट पर कितने ग्राम तथा नगर परिलक्षित होते हैं।।२-६।।

दृश्यन्ते मुनिशार्दूलाः। सुसस्याः सुमनोहराः। हृष्टपुष्टजनाकीर्णा वस्त्रालङ्कारभूषिताः॥७॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रास्तत्र पृथक्पृथक्।
स्वधर्मनिरताः शान्ता दृश्यन्ते शुभलक्षणाः॥८॥

ताम्बूलपूर्णवदना मालादामविभूषिताः। वेदपूर्णमुखा विप्राः सषडङ्गपदक्रमाः॥९॥

अग्निहोत्ररताः केचित्केचिदौपासनक्रियाः।
सर्वशास्त्रार्थकुशला यज्वानो भूरिदक्षिणाः॥१०॥

ये सभी ग्राम तथा नगर उत्तम धन-धान्य से भरे सुन्दर हैं, वहां के निवासी हृष्ट-पुष्ट, अपने-अपने धर्म में निरत, शान्त, वस्त्र-अलंकार से भूषित, उत्तम लक्षण वाले, ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र अलग-अलग भाव से अवस्थान करते हैं। वहां के निवासियों का मुख ताम्बूल चूर्ण युक्त, गला मालाओं से भूषित रहता है। वे धर्मनिरत तथा शान्त हैं। ब्राह्मणगण की वाणी वेदमयी है। उनमें से कोई अग्निहोत्र रत, कोई सभी शास्त्रों में

निपुण, कोई यज्ञशील तथा कोई विपुल दक्षिणा वाले हैं। वे ब्राह्मण षडङ्ग, पद-क्रम सहित वेदज्ञ हैं। कोई यज्ञशील है तो कोई कर्मकाण्डी है।।७-१०।।

चत्वरे राजमार्गेषु वनेषूपवनेषु च। सभामण्डलहर्म्येषु देवतायतनेषु च॥११॥
इतिहासपुराणानि वेदाः साङ्गाः सुलक्षणाः।
काव्यशास्त्रकथास्तत्र श्रूयन्ते च महाजनैः॥१२॥
स्त्रियस्तद्देशवासिन्यो रूपयौवनगर्विताः। सम्पूर्णलक्षणोपेता विस्तीर्णश्रोणिमण्डलाः॥१३॥
सरोरुहमुखाः श्यामाः शरच्चन्द्रनिभाननाः। पीनोन्नतस्तनाः सर्वाः समृध्या चारुदर्शनाः॥१४॥
सौवर्णवलयाक्रान्ता दिव्यैर्वस्त्रैलङ्कृताः। कदलीगर्भसङ्काशाः पद्मकिञ्जल्कसप्रभा॥१५॥
बिम्बाधरपुटाः कान्ताः कर्णान्तायतलोचनाः। सुमुखाश्चारुकेशाश्च हावभावावनामिताः॥१६॥
काश्चित्पद्मपलाशाक्ष्यः काश्चिदिन्दीवरेक्षणाः।
विद्युद्विस्पष्टदशनास्तन्वङ्ग्यश्च तथाऽपराः॥१७॥
कुटिलालकसंयुक्ता सीमन्तेन विराजिताः। ग्रीवाभरणसंयुक्ता माल्यदामविभूषिताः॥१८॥
कुण्डलै रत्नसंयुक्तैः कर्णपूरैर्मनोहरैः। देवयोषित्प्रतीकाशा दृश्यन्ते शुभलक्षणाः॥१९॥

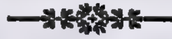
वहां सभी चबूतरे, राजमार्ग, वन, उपवन, सभामण्डप, धर्मश्रेणी तथा देवायतन पर महाजनगण मिल कर परस्परतः इतिहास-पुराण, अंगों सहित वेद तथा विविध काव्य शास्त्र की कथा सुनते हैं। वहां की स्त्रियां भी रूप एवं यौवनगर्वित, सर्व उत्तम लक्षण सम्पन्न तथा विपुल जांघों वाली हैं। उनका मुखमण्डल शारदीय चन्द्र के समान है, स्थूल तथा उन्नत स्तनों वाली, सुन्दरी हैं। उनके बाहु स्वर्ण वलय से अलंकृत हैं। देह दिव्य वस्त्र एवं आभूषण से भूषित है। देह के वर्ण की प्रभा पद्म-किंजल्कवत् है। अधरोष्ठ बिम्बफल के समान कमनीय तथा नेत्र कर्णान्त तक विस्तृत हैं। वे सभी सुमुखी, सुकेशी तथा भाव में नम्र हैं। उनमें से कोई-कोई पद्मपलाशनयना है, कोई इन्दीवर के समान नयनों वाली, कोई विद्युत्वत् चमकने वाले दांतों वाली, कोई तन्वङ्गी, कोई कुटिल (घुंघराले) अलकों वाली तथा कोई-कोई ग्रीवा में आभरण पहने हैं। वे मालाओं से अलंकृत, मनोरम रत्नकुण्डल मण्डित, सर्वशुभलक्षण से युक्त तथा देवस्त्री जैसी लगती हैं।।११-१९।।

दिव्यगीतवरैर्ध्वन्यैः क्रीडमाना वराङ्गनाः। वीणावेणुमृदङ्गैश्च पणवैश्चैव गोमुखैः॥२०॥
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्नानावाद्यैर्मनोहरैः। क्रीडन्त्यस्ताः सदा हृष्टा विलासिन्यः परस्परम्॥२१॥
एवमादि तथाऽनेकगीतवाद्यविशारदाः। दिवा रात्रौ समायुक्ताः कामोन्मत्ता वराङ्गनाः॥२२॥
भिक्षुवैखानसैः सिद्धैः स्नातकैर्ब्रह्मचारिभिः। मन्त्रसिद्धैस्तपःसिद्धैर्यज्ञसिद्धैर्निषेवितम्॥२३॥

ये सभी विलासिनी उत्तम स्त्रियां वहां दिव्य गीतध्वनि, वेणु-वीणा-मृदंग-पणव-गोमुख तथा शंख प्रभृति मनोहर वाद्यों के निनाद से सदा प्रसन्न मन से क्रीड़ा करती रहती हैं। एवंविध वहां गीतवाद्य में निपुण बहुत सी वाराङ्गनागण कामोन्मत्ता होकर दिवारात्रि नाना संभोग सुख में मग्न रहती हैं। इसके अतिरिक्त वहां बहुत से भिक्षु, वैखानस, सिद्ध, स्नातक, ब्रह्मचारी, मन्त्रसिद्ध असंख्य लोक विराजित हैं।।२०-२३।।

इत्येवं ददृशे राजा क्षेत्रं परमशोभनम्। अत्रैवाऽऽराधयिष्यामि भगवन्तं सनातनम्॥२४॥
जगद्गुरुं परं देवं परं पारं परं पदम्। सर्वेश्वरेश्वरं विष्णुमनन्तमपराजितम्॥२५॥
इदं तन्मानसं तीर्थं ज्ञातं मे पुरुषोत्तमम्। कल्पवृक्षो महाकायो न्यग्रोधो यत्र तिष्ठति॥२६॥
प्रतिमा चेन्द्रनीलाख्या स्वयं देवेन गोपिता।
न चात्र दृश्यते चानया प्रतिमा वैष्णवी शुभा॥२७॥
तथा यत्नं करिष्यामि यथा देवो जगत्पतिः।
प्रत्यक्षं मम चाभ्येति विष्णुः सत्यपराक्रमः॥२८॥
यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च होमैर्ध्यानैस्तथाऽर्चनैः। उपवासैश्च विधिवच्चरेयं व्रतमुत्तमम्॥२९॥
अनन्यमनसा चैव तन्मना नान्यमानसः।
विष्णवायतनविन्यासे प्रारम्भं च करोम्यहम्॥३०॥

इति श्री महापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे क्षेत्रवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥४६॥



राजा इन्द्रद्युम्न ने यह परमशोभन क्षेत्र देख कर यह निश्चित किया कि "मैं यहीं भगवान्, सनातन, जगद्गुरु, परमदेव, परमपद, सर्वेश्वर, अपराजित, अनन्त विष्णु की आराधना करूंगा। यह वही मानस तीर्थ पुरुषोत्तम क्षेत्र है। यह विलुप्त विशाल कल्पवृक्ष न्यग्रोध (वटवृक्ष) यहां विराजमान है। यहीं पर स्वयं देवदेव ने अपनी इन्द्रनील प्रतिमा गोपित किया था। यहां अन्य कोई वैष्णवी प्रतिमा नहीं दीखती। अतः मैं ऐसा यत्न करूंगा, जिससे देवदेव जगत्पति सत्यपराक्रम विष्णु का मुझे दर्शन मिले। मैं अब से यज्ञ, दान, तप, होम, अध्ययन, अर्चन, उपवास तथा सविधि उत्तम व्रतों द्वारा अनन्य मन से भगवत् परायण होकर विष्णु देवालय का निर्माण करना प्रारंभ तो कर ही रहा हूं"॥२४-३०॥

॥षट्चत्वारिंश अध्याय समाप्त॥



अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्न द्वारा देवालय प्रासाद बनाने हेतु राजाओं को बुलाना

ब्रह्मोवाच

एवं स पृथिवीपालश्चिन्तयित्वा द्विजोत्तमाः। प्रासादार्थं हरेस्तत्र प्रारम्भमकरोत्तदा॥१॥
आनाय्य गणकान्सर्वानाचार्याञ्छास्त्रपारगान्।
भूमिं संशोध्य यत्नेन राजा तु परया मुदा॥२॥

ब्राह्मणैर्ज्ञानसम्पन्नैर्वेदशास्त्रार्थपारगैः। अमात्यैर्मन्त्रिभिश्चैव वास्तुविद्याविशारदैः॥३॥
तैः सार्धं स समालोच्य सुमुहूर्ते शुभे दिने। सुचन्द्रतारसंयोगे ग्रहानुकूल्यसंयुते॥४॥
जयमङ्गलशब्दैश्च नानावाद्यैर्मनोहरैः। वेदाध्ययननिर्घोषैगीतैः सुमधुरस्वरैः॥५॥
पुष्पलाजाक्षतैर्गन्धैः पूर्णकुम्भैः सदीपकैः। ददावर्घ्यं ततो राजा श्रद्धया सुसमाहितः॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे द्विजप्रवरगण! उन राजा इन्द्रद्युम्न ऐसा विचार करके हरि के प्रासाद निर्माणार्थ सन्नद्ध हो गये। परम प्रेम पूर्वक उन्होंने अनेक शास्त्रज्ञ गणक (ज्योतिषियों) आचार्यगण को बुलवा कर भूमि शोधन कराया। वेदज्ञ ज्ञानसम्पन्न ब्राह्मण, आमात्य, मन्त्री तथा वास्तुविद्याविशारद अन्य विद्वानों के साथ स्थान के गुण-अवगुण का विचार किया। चन्द्र-तारक शुद्ध, उत्तम ग्रह की अनुकूलता वाले शुभ दिवस तथा शुभ मुहूर्त में जयमंगल ध्वनि, मनोहर वाद्यध्वनि, वेदनिर्घोष तथा मधुर स्वर वाले संगीत के साथ पूर्णकुम्भ तथा प्रदीप स्थापना के पश्चात् पुष्प, लावा, अक्षत तथा गन्धादि से परम श्रद्धा के साथ सुसमाहित होकर उन्होंने अर्घ्य प्रदान किया।।१-६।।

दत्त्वैवमर्घ्यं विधिवदानाय्य स महीपतिः। कलिङ्गाधिपतिं शूरमुत्कलाधिपतिं तथा।
कोशलाधिपतिं चैव तानुवाच तदा नृपः॥७॥

तत्पश्चात् यथाविधि अर्घ्य देकर राजा ने कलिंग, उत्कल, शूर प्रदेश, कोशल के अधिपतियों को बुलवाया तथा उनसे कहा—।।७।।

राजोवाच

गच्छध्वं सहिताः सर्वे शिलार्थे सुसमाहितः।
गृहीत्वा शिल्पिमुख्यांश्च शिलाकर्मविशारदान्॥८॥
विन्ध्याचलं सुविस्तीर्णं बहुकन्दरशोभितम्।
निरूप्य सर्वासानूनि च्छेदयित्वा शिलाः शुभाः।
संवाह्यन्तां च शकटैर्नौकाभिर्मा विलम्बथ॥९॥

राजा इन्द्रद्युम्न कहते हैं—हे राजाओं! आप लोग अपने अनुचरों के साथ तत्परता पूर्वक शीघ्र शिलासंग्रह हेतु जायें। शिलाकर्म ज्ञाता उत्तम शिल्पियों को लेकर कन्दरा मण्डित विस्तीर्ण विन्ध्याचल जाकर उसके शिखरों पर से विशेष रूप से छांटकर उत्तम शिलाओं को काट कर नौकाओं से यहां भेजें। इसमें विलम्ब न करें।।८-९।।

ब्रह्मोवाच

एवं गन्तुं समादिश्य तान्नृपान्स महीपतिः।
पुनरेवाब्रवीद्वाक्यं सामात्यान्सं पुरोहितान्॥१०॥

ब्रह्मा कहते हैं—राजा इन्द्रद्युम्न ने अन्य राजाओं को यह आदेश देने के अनन्तर अपने मन्त्री तथा पुरोहितवृन्द से कहा—।।१०।।

राजोवाच

गच्छन्तु दूताः सर्वत्र ममाऽऽज्ञां प्रवदन्तु वै।
यत्र तिष्ठन्ति राजानः पृथिव्यां तान्सुशीघ्रगाः॥११॥
हस्त्यश्वरथपादातैः सामात्यैः सपुरोहितैः। गच्छत सहिताः सर्व इन्द्रद्युम्नस्य शासनात्॥१२॥

राजा कहते हैं—पृथिवी पर जहां-जहां राजा हैं, वहां पर दूत जाकर मेरी आज्ञा की घोषणा करे कि आप सब मेरे आदेश से हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सेना के साथ शीघ्र दूतों के साथ आईये।।११-१२।।

ब्रह्मोवाच

एवं दूताः समाज्ञाता राज्ञा तेन महात्मना। गत्वा तदा नृपानूचुर्वचनं तस्य भूपतेः॥१३॥
श्रुत्वा तु ते तथा सर्वे दूतानां वचनं नृपाः।
आजग्मुस्त्वरिताः सर्वे स्वसैन्यैः परिवारिताः॥१४॥
ये नृपाः सर्वदिग्भागे ये च दक्षिणतः स्थिताः।
पश्चिमायां स्थिता ये च उत्तरापथसंस्थिताः॥१५॥
प्रत्यन्तवासिनो येऽपि ये च सन्निधिवासिनः।
पार्वतीयाश्च ये केचित्तथा द्वीपनिवासिनः॥१६॥
रथैर्नागैः पदातैश्च वाजिभिर्धनविस्तरैः। सम्प्राप्ता बहुशो विप्राः श्रुत्वेन्द्रद्युम्नशासनम्॥१७॥
तानागतान्नृपान्दृष्ट्वा सामात्यान्सपुरोहितान्। प्रोवाच राजा हृष्टात्मा कार्यमुद्दिश्य सादरम्॥१८॥

ब्रह्मा कहते हैं—राजा महात्मा इन्द्रद्युम्न का आदेश पाकर वे दूत अन्य राजाओं के पास गये तथा उनकी आज्ञा को राजाओं से कहा। सभी राजाओं ने दूतों के मुख से इन्द्रद्युम्न का आदेश जानकर अपने-अपने सैन्यदल के साथ शीघ्रता से वहां आगमन किया। पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण दिक् निवासी राजा, प्रत्यन्तवासी, समीपवर्त्ती राजा तथा पर्वत एवं द्वीपों के राजा, म्लेच्छ देश के राजा, ये सभी राजा लोग, रथ, अश्व, पैदल सैन्य एवं अन्य प्रचुर धन-रत्न लेकर इन्द्रद्युम्न का आदेश सुनते ही वहां पहुंच गये। उन राजाओं को अपने-अपने पुरोहित तथा मन्त्रियों के साथ आया देख कर इन्द्रद्युम्न ने प्रसन्न मन से उनसे अपने कार्य हेतु सादर कहा—॥१३-१८।।

राजोवाच

शृणुध्वं नृपशार्दूला यथा किञ्चिद्ब्रवीम्यहम्।
अस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये भुक्तिमुक्तिप्रदे शिवे॥१९॥
हयमेधं महायज्ञं प्रासादं चैव वैष्णवम्। कथं शक्नोम्यहं कर्तुमिति चिन्ताकुलं मनः॥२०॥
भवद्भिः सुसहायैस्तु सर्वमेतत्करोम्यहम्। यदि यूयं सहाया मे भवध्वं नृपसत्तमाः॥२१॥

राजा कहते हैं—हे राजाओं! मैं जो कहता हूं, सुनिये। मैं इस भोग-मोक्षप्रद मांगलिक क्षेत्र में अश्वमेध

यज्ञ करके एक वैष्णव मन्दिर कैसे निर्मित करने में सक्षम हो सकूंगा, यह विचारते हुये मेरा मन चिन्ताकुल हो गया था। हे नृपप्रवरवृन्द! मुझे आशा है कि यदि आप सब मेरी सहायता करें, तब मैं निश्चित रूप से आप लोगों की उत्तम सहायता द्वारा सभी कार्य सम्पन्न कर सकूंगा।।१९-२१।।

ब्रह्मोवाच

इत्येवं वदमानस्य राजराजस्य धीमतः। सर्वे प्रमुदिता हृष्टा भूपास्ते तस्य शासनात्॥२२॥
ववृषुर्धनरत्नैश्च सुवर्णमणिमौक्तिकैः। कम्बलाजिनरत्नैश्च राङ्कवास्तरणैः शुभैः॥२३॥
वज्रवैदूर्यमाणिक्यैः पद्मरागेन्द्रनीलकैः। गजैरश्वैर्धनैश्चान्यै रथैश्चैव करेणुभिः॥२४॥
असंख्येयैर्बहुविधैर्द्रव्यैरुच्चावचैस्तथा। शालिव्रीहियवैश्चैव माषमुद्गतिलैस्तथा॥२५॥
सिद्धार्थचणकैश्चैव गोधूमैर्मसुरादिभिः। श्यामाकैर्मधुकैश्चैव नीवारैः सकुलत्थकैः॥२६॥
अन्यैश्च विविधैर्धान्यैर्ग्राम्यारण्यैः सहस्रशः। बहुधान्यसहस्राणां तण्डुलानां च राशिभिः॥२७॥
गव्यस्य हविषः कुम्भैः शतशोऽथ सहस्रशः। तथाऽन्यैर्विविधैर्द्रव्यैर्भक्ष्यभोज्यानुलेपनैः॥२८॥
राजानः पूरयामासुर्यत्किञ्चिद्द्रव्यसम्भवैः। तान्दृष्ट्वा यज्ञसंभारान्सर्वसम्पत्समन्वितान्॥२९॥
यज्ञकर्मविदो विप्रान्वेदवेदाङ्गपारगान्। शास्त्रेषु निपुणान्दक्षान्कुशलान्सर्वकर्मसु॥३०॥
ऋषींश्चैव महर्षींश्च देवर्षींश्चैव तापसान्। ब्रह्मचारिगृहस्थांश्च वानप्रस्थान्यतींस्तथा॥३१॥

स्नातकान्ब्राह्मणांश्चान्यानग्निहोत्रे सदा स्थितान्।
आचार्योपाध्यायवरान्स्वाध्यायतपसाऽन्वितान्॥३२॥
सदस्याञ्छास्त्रकुशलांस्तथाऽन्यान्पावकान्बहून्।
दृष्ट्वा तान्नृपतिः श्रीमानुवाच स्वं पुरोहितम्॥३३॥

ब्रह्मा कहते हैं—राजाधिराज धीमान् इन्द्रद्युम्न का कथन सुनकर सभी राजा मुदित तथा हर्षित हो उठे। उन्होंने असंख्य धन, रत्न, स्वर्ण, मणि-मुक्ता का वहां वर्षण कर दिया। उन्होंने उत्तम कम्बल, मृगचर्म, रत्न, कालीन, हीरा-वैदूर्य-माणिक, पद्मराग-नीलम रत्न, गज-अश्व-धन-धान्य, रथ, छोटे-बड़े द्रव्य, अन्य अनेक प्रकार के द्रव्य संभार, शालिधान्य-व्रीहि-यव-उर्द-मूंग-तिल-सरसों-चना-गेहूं-मसूर-श्यामाक-मधूक-नीवार-कुलथी, इनके तिरिक्त हजारों ग्राम्य तथा अरण्य में उत्पन्न सामग्री, ढेरों हजारों तण्डुल के ढेर, लाखों महिष, गौ, हजारों घृतपूर्ण घट, भक्ष्य-भोज्य-लेह्यः पदार्थ से बनी सामग्री वहां प्रस्तुत किया। इससे वह यज्ञस्थली भर गयी। तब उन श्रीमान् राजा ने सर्वसमृद्धियुक्त यज्ञसामग्री को देखा तथा यज्ञ कर्मज्ञ, वेद-वेदांग पारंगत, शास्त्रसेवी, सर्वकर्मसक्षम विप्र, ऋषि, महर्षि, तपस्वी, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, यति, स्नातक, द्विज, उपाध्याय, शास्त्रज्ञ, सदस्य तथा अनेक पावकगण को देखकर राजा पुरोहित से कहने लगे।।२२-३३।।

राजोवाच

ततः प्रयान्तु विद्वान्सो ब्राह्मणा वेदपारगाः।
वाजिमेधार्थसिद्ध्यर्थं देशं पश्यन्तु यज्ञियम्॥३४॥

राजा कहते हैं—वेदपारंगत ब्राह्मणगण अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न करने हेतु जाकर यज्ञस्थल को देखें।।३४।।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तः स तथा चक्रे वचनं तस्य भूपतेः।
हृष्टः स मन्त्रिभिः सार्धं तदा राजपुरोहितः।।३५।।
ततो ययौ पुरोधाश्च प्राज्ञः स्थपतिभिः सह।
ब्राह्मणानग्रतः कृत्वा कुशलान्यज्ञकर्मणि।।३६।।
तं देशं धीवरग्रामं सप्रतोलिविटङ्किनम्। कारयामास विप्रोऽसौ यज्ञवाटं यथाविधि।।३७।।
प्रासादशतसम्बाधं मणिप्रवरशोभितम्। इन्द्रसद्मनिभं रम्यं हेमरत्नविभूषितम्।।३८।।
स्तम्भान्कनकचित्रांश्च तोरणानि बृहन्ति च।
यज्ञायतनदेशेषु दत्त्वा शुद्धं च काञ्चनम्।।३९।।
अन्तःपुराणि राज्ञां च नानादेशनिवासिनाम्।
कारयामास धर्मात्मा तत्र तत्र यथाविधि।।४०।।
ब्राह्मणानां च वैश्यानां नानादेशसमीयुषाम्। कारयामास विधिवच्छालास्तत्राप्यनेकशः।।४१।।

ब्रह्मा कहते हैं—राजा के यह कहने पर राजा के पुरोहित ने हर्षित होकर मन्त्रीगण के साथ राजाज्ञा का पालन किया। वे प्राज्ञ पुरोधा यज्ञकर्म दक्ष ब्राह्मणों को आगे करके राजाओं के साथ यज्ञस्थान में गये तथा वहां पर वे शिल्पियों के साथ गलियों तथा कबूतरों के निवास से युक्त धीवर ग्राम गये तथा सविधि उसे यज्ञस्थल बनाया। वहां इन्द्रभवन के समान नाना स्वर्ण-रत्न तथा उत्तम मणियों से शोभित सैकड़ों प्रासाद, स्वर्ण चित्रित असंख्य स्तम्भ, बड़े-बड़े तोरणों का निर्माण कराया। धर्मात्मा पुरोहित ने समस्त यज्ञायतन विशुद्ध स्वर्ण से बनवाया। उन्होंने नाना देश के राजाओं के अन्तःपुर तथा नाना देश के ब्राह्मण तथा वैश्यों हेतु अनगिनत गृह (शाला) यथाविधि निश्चित स्थानों पर बनवाया।।३५-४१।।

प्रियार्थं तस्य नृपतेराययुर्नृपसत्तमाः। रत्नान्यनेकान्यादाय स्त्रियश्चाऽऽययुरुत्सवे।।४२।।
तेषां निर्विशतां स्वेषु शिविरेषु महात्मनाम्। नदतः सागरस्येव दिविस्पृगभवद्ध्वनिः।।४३।।
तेषामभ्यागतानां च स राजा मुनिसत्तमाः। व्यादिदेशाऽऽयतनानि शय्याश्चाप्युपचारतः।।४४।।
भोजनानि विचित्राणि शालीक्षुयवगोरसैः। उपेत्य नृपतिश्रेष्ठो व्यादिदेश स्वयं तदा।।४५।।
तथा तस्मिन्महायज्ञे बहवो ब्रह्मवादिनः। ये च द्विजातिप्रवरास्तत्राऽऽसन्द्विजसत्तमाः।।४६।।
समाजग्मुः सशिष्यास्तान्प्रतिजग्राह पार्थिवः। सर्वांश्चताननुययौ यावदावसथानिति।।४७।।

राजा इन्द्रद्युम्न का प्रिय करने हेतु देश-विदेश से आये प्रधान राजा तथा रमणीगण विविध रत्नों के साथ वहां पहुंचे। उन्होंने उत्सव में अपना योगदान प्रदान किया। जब वे सभी महात्मा अतिथिगण अपने-अपने शिविरों में जा रहे थे, तब उनके गमनागमन के कारण सागर गर्जनवत् आकाशव्यापी ध्वनि उठ रही थी। हे मुनिप्रवरवृन्द! राजा इन्द्रद्युम्न ने स्वयं अभ्यागतों को यथायोग्य स्थान, आसन, शय्या, शालिधान्य, ईख, जौ,

गोरस से बने उत्तम पान-भोजनादि देने का आदेश दिया। उस महान् यज्ञ में अनेक ब्रह्मज्ञ द्विजातियों में श्रेष्ठ लोग भी अपने-अपने शिष्यों सहित आये थे। महातेजा राजा ने उनका सम्मान के साथ स्वागत किया तथा उनके लिये निश्चित आवास तक वे राजा स्वयं दम्भ त्याग कर गये।।४२-४७।।

स्वयमेव महातेजा दम्भं त्यक्त्वा नृपोत्तमः।
ततः कृत्वा स्वशिल्पं च शिल्पिनोऽन्ये च ये तदा।।४८।।
कृत्स्नं यज्ञविधिं राज्ञे तदा तस्मै न्यवेदयन्। ततः श्रुत्वा नृपश्रेष्ठः कृतं सर्वमतन्द्रितः।
हृष्टरोमाऽभवद्राजा सह मन्त्रिभिरच्युतः।।४९।।

इसके पश्चात् शिल्पियों ने अपना-अपना शिल्पकार्य सम्पन्न करके राजा से यथाविधि कार्य पूर्ण होने का संवाद दिया। उन श्रेष्ठ राजा ने जब यह सुना कि सभी कार्य सम्पन्न हो गया, तब वे मन्त्रियों के साथ निश्चिन्त तथा प्रसन्न हो गये।।४८-४९।।

ब्रह्मोवाच

तस्मिन्यज्ञे प्रवृत्ते तु वाग्मिनो हेतुवादिभिः। हेतुवादान्बहूनाहुः परस्परजिगीषवः।।५०।।
देवेन्द्रस्येव (?) विहितं राजसिंहेन भो द्विजाः।
ददृशुस्तोरणान्यत्र शातकुम्भमयानि च।।५१।।
शय्यासनविकारांश्च सुबहून्रत्नसञ्चयान्। घटपात्रीकटाहानि कलशान्वर्धमानकान्।।५२।।
नहि कश्चिदसौवर्णमपश्यद्वसुधाधिपः। यूपांश्च शास्त्रपठितान्दारवान्हेमभूषितान्।।५३।।
उपक्षिप्तान्यथाकालं विधिवद्भूरिवर्चसः। स्थलजा जलजा ये च पशवः केचन द्विजाः।।५४।।

ब्रह्मा कहते हैं—उस यज्ञ के आरम्भ में पारस्परिक विजय पाने की इच्छा से वाग्मीगण वहां उपस्थित हेतुवादियों से कारणवाद कहते विचार कर रहे थे। हे द्विजवृन्द! उन राजाओं में सिंह इन्द्रद्युम्न का प्रत्येक कार्य देवेन्द्र जैसा प्रतीत हो रहा था। राजा लोगों ने वहां स्वर्णतोरण, घट, पात्र, कड़ाही देखा तथा प्रचुर शय्या, आसन, कम्बल, ढेरों रत्नघट, कलस सब स्वर्णमय देखा। कोई भी वस्तु वहां स्वर्णहीन नहीं थी। उन्होंने देखा कि वहां की स्वर्णभूमि में सभी यज्ञीय काष्ठ यूप स्वर्णभूषित थे। उनको यथामुहूर्त्त सविधि गाड़ा गया। हे द्विजगण! वहां पर स्थलचर तथा जलचर जन्तु लाये गये।।५०-५४।।

सर्वानेव समानीतानपश्यंस्तत्र ते नृपाः। गाश्चैव महिषीश्चैव तथा वृद्धस्त्रियोऽपि च।।५५।।
औदकानि च सत्त्वानि श्वापदानि वयांसि च।
जरायुजाण्डजातानि स्वेदजान्युद्भिदानि च।।५६।।
पर्वतान्युपधान्यानि भूतानि ददृशुश्च ते। एवं प्रमुदित सर्वं पशुतो धनधान्यतः।।५७।।
यज्ञवाटं नृपा दृष्ट्वा विस्मयं परमं गताः।
ब्राह्मणानां विशां चैव बहुमिष्टान्नमृद्धिमत्।।५८।।
पूर्णे शतसहस्रे तु विप्राणां तत्र भुञ्जताम्। दुन्दुभिर्मेघनिर्घोषान्मुहुर्मुहुरथाकरोत्।।५९।।

विननादासकृच्चापि दिवसे दिवसे गते। एवं स ववृधे यज्ञस्तस्य राज्ञस्तु धीमतः॥६०॥

वहां सभी राजाओं ने यह सब देखा। गाय, महिष, वृद्ध स्त्री, जलीय जन्तु, हिंसक जन्तु, पक्षी, अंडज, स्वेदज, उद्भिज जन्तु, पर्वत, धान्य, प्राणी आदि सभी वहां थे। पशु तथा धन-धान्य से पूर्ण यज्ञस्थल देखकर सभी प्रमुदित हो गये। इस यज्ञस्थल को देखकर राजाओं को परम विस्मय हो गया। वहां ब्राह्मण तथा वैश्य प्रचुर मिष्ठान्न से सम्पन्न थे। वहां लगातार एक लाख वर्ष पर्यन्त ब्राह्मण भोजन ही हो रहा था। वहां बिना रुके मेघगर्जन जैसा दुन्दुभिनाद होता रहता था। इस प्रकार नित्य दुन्दुभिनाद श्रुतिगोचर होता था। इस प्रकार राजा का यज्ञकार्य बढ़ने लगे।।५५-६०।।

अन्नस्य सुबहून्विप्रा उत्सर्गान्निर्गतोपमान्। दधिकुल्याश्च ददृशुः पयसश्च ह्रदांस्तथा॥६१॥
जम्बूद्वीपो हि सकलो नानाजनपदैर्युतः। द्विजाश्च तत्र दृश्यन्ते राज्ञस्तस्य महामुखे॥६२॥
तत्र यानि सहस्त्राणि पुरुषाणां ततस्ततः। गृहीत्वा भाजनं जग्मुर्बहूनि द्विजसत्तमाः॥६३॥
श्राविणश्चापि ते सर्वे सुमृष्टमणिकुण्डलाः। पर्यवेषयन्द्विजातीञ्छतशोऽथ सहस्रशः॥६४॥

विविधान्यनुपानानि पुरुषा येऽनुयायिनः।
ते वै नृपोपभोज्यानि ब्राह्मणेभ्यो ददुः सह॥६५॥

समागतान्वेदविदो राज्ञश्च पृथिवीश्वरान्। पूजां चक्रे तदा तेषां विधिवद्भूरिदक्षिणः॥६६॥
दिग्देशादागतान्राज्ञो महासङ्ग्रामशालिनः। नटनर्तककादींश्च गीतस्तुतिविशारदान्॥६७॥
पत्न्यो मनोरमास्तस्य पीनोन्नतपयोधराः। इन्दीवरपलाशाक्ष्यः शरच्चन्द्रनिभाननाः॥६८॥

हे विप्रगण! इस यज्ञ में अतिथि राजाओं ने पर्वत जैसे ढेर में अन्न, बहुसंख्यक दधि के सरोवर तथा दुग्ध की झीलों को देखा। लगता था मानों नाना जनपदों से घिरा समस्त जम्बूद्वीप ही इस राजा के महायज्ञ में आया हो। वहां इतःस्तत हजारों-हजार लोग आते तथा वे बहुत भोजन लेकर लौट जाते। सुमार्जित मणिकुण्डल धारी हजारों परिवेशक भक्त पुरुष द्विजों को भोजन परोसते थे। वे ब्राह्मणों को अलंकृत करते, राज्य भोग जैसा अनेक प्रकार का अन्न द्विजों को प्रदान करते। राजा इन्द्रद्युम्न प्रचुर दक्षिणादाता थे। वे अभ्यागत वेदज्ञ ब्राह्मणों को तथा नाना देश से आये महायुद्ध पारंगत सभी राजाओं को, गीत-स्तुति मर्मज्ञ नट-नर्तक प्रभृति का यथायोग्य सत्कार करते थे। इन राजा की १००१ पत्नियां थीं। उन सबके स्तन स्थूल तथा उन्नत थे। उनके नेत्र कमल-पलाश जैसे तथा मुखमण्डल शारदीय चन्द्रमा जैसे थे।।६१-६८।।

कुलशीलगुणोपेताः सहस्त्रैकं शताधिकम्। एवं तद्रूपपरमपत्नीगणसमन्वितम्॥६९॥
रत्नमालाकुलं दिव्यं पताकाध्वजसेवितम्। रत्नहारयुतं रम्यं चन्द्रकान्तिसमप्रभम्॥७०॥
करिणः पर्वताकारान्मदसिक्तान्महाबलान्। शतशः कोटिसङ्घातैर्दन्तिभिर्दन्तभूषणैः॥७१॥
वातवेगजवैरश्वैः सिन्धुजातैः सुशोभनैः। श्वाताश्वैः श्यामकर्णैश्च कोट्यनेकैर्जवान्वितैः॥७२॥

वे सभी मनोहर रूप वाली, उत्तम कुल-शील तथा गुणी थीं। राजा उस समय अपनी पत्नियों से घिरे थे। उनके कण्ठ में रत्नमाला तथा रत्नहार लटक रहा था। वे स्वर्गीय वेश में शोभित लग रहे थे। वे चन्द्रकान्ति युक्त थे। उनके निवास के चारों ओर ध्वजा-पताका फहरा रहे थे। उन्होंने देखा कि सामने शिर से मदस्राव करते

पर्वताकार सैकड़ों हाथी खड़े हैं। उनके बड़े-बड़े दांत भूषण ऐसे तथा लम्बे थे। न जाने कितने सैकड़ों-करोड़ों वायुवेगी सिन्धुदेशीय श्वेत सुन्दर अश्व थे। उनमें कोई-कोई श्यामकर्ण तथा महावेगवान् था।।६९-७२।।

संनद्धबद्धकक्षैश्च नानाप्रहरणोद्यतैः। असङ्ख्येयैः पदाशतैश्च देवपुत्रोपमैस्तथा॥७३॥
इत्येवं ददृशे राजा यज्ञसम्भारविस्तरम्। मुदं लेभे तदा राजा संहृष्टो वाक्यमब्रवीत्॥७४॥

वहां कवचधारी, बद्धकक्ष, नाना अस्त्र-शस्त्रधारी देवपुत्र जैसे पदाति सैन्य द्वारा यज्ञस्थल घिरा था। जब राजा ने यज्ञस्थल का तथा उसकी सामग्री का यह विस्तार देखा, उससे वे मुदित हो गये। वे हर्षित होकर कहने लगे।।७३-७४।।

राजोवाच

आनयध्वं हयश्रेष्ठं सर्वलक्षणलक्षितम्। चारयध्वं पृथिव्यां वै राजपुत्राः सुसंयताः॥७५॥
विद्वद्भिर्धर्मविद्भिश्च अत्र होमो विधीयताम्।
कृष्णच्छागं च महिषं कृष्णसारमृगं द्विजान्॥७६॥
अनड्वाहं च गाश्चैव सर्वांश्च पशुपालकान्। इष्टयश्च प्रवर्तन्तां प्रासादं वैष्णवं ततः॥७७॥
सर्वमेतच्च विप्रेभ्यो दीयतां मनसेप्सितम्।
स्त्रियश्च रत्नकोट्यश्च ग्रामाश्च नगराणि च॥७८॥
सम्यक्समृद्धभूम्यश्च विषयाश्चैवमर्थिनाम्। अन्यानि द्रव्यजातानि मनोज्ञानि बहूनि च॥७९॥
सर्वेषां याचमानानां नास्ति ह्येतन्न भाषयेत्। तावत्प्रवर्ततां यज्ञो यावद्देवः पुरा त्विह॥
प्रत्यक्षं मम चाभ्येति यज्ञस्यास्य समीपतः॥८०॥

राजा कहते हैं—तुम सब शीघ्र सर्वलक्षण सम्पन्न अश्व लाओ तथा उसे पृथिवी पर्यटनार्थ छोड़ो। उसकी रक्षा हेतु जितेन्द्रिय राजपुरुष जायें। विद्वान् धर्मज्ञ विप्र होमकार्य में लगें। द्विजगण काले बकरे, महिष, कृष्णसार मृग, बैल, गौ तथा अन्य पशु संग्रह करें। यज्ञ कार्य प्रारम्भ हो तथा वैष्णव देवालय निर्मित हो। स्त्री, रत्न, ग्राम, नगर तथा अन्य वांछित द्रव्य ब्राह्मणों को प्रदान किया जाये। एतद्व्यतिरिक्त अन्य याचकों में से जो कोई जिस अभीष्ट द्रव्य हेतु प्रार्थना करे, उनमें से किसी से नहीं न कहा जाये। जब तक यज्ञदेव प्रभु यज्ञवेदी पर प्रकट न हों, तब तक यज्ञ चले।।७५-८०।।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तदा विप्रा राजसिंहो महाभुजः। ददौ सुवर्णसङ्घातं कोटीनां चैव भूषणम्॥८१॥
करेणुशतसाहस्रं वाजिनो नियुतानि च। अर्बुदं चैव वृषभं स्वर्णशृङ्गीश्च धेनुकाः॥८२॥
सुरूपाः सुरभीश्चैव कांस्यदोहाः पयस्विनीः।
प्रायच्छत्स तु विप्रेभ्यो वेदविद्भ्यो मुदा युतः॥८३॥
वासांसि च महार्हाणि राङ्कवास्तराणानि च।
सुशुक्लानि च शुभ्राणि प्रवालमणिमुत्तमम्॥८४॥

अददात्स महायज्ञे रत्नानि विविधानि च॥८५॥

वज्रवैदूर्यमाणिक्यमुक्तिकाद्यानि यानि च। अलङ्कारवतीः शुभ्राः कन्या राजीवलोचनाः॥८६॥
शतानि पञ्च विप्रेभ्यो राजा हृष्टः प्रदत्तवान्।
स्त्रियः पीनपयोभाराः कञ्चुकैः स्वस्तनावृताः॥८७॥
मध्यहीनाश्च सुश्रोण्यः पद्मपत्रायतेक्षणाः। हावभावान्वितग्रीवा बह्व्यो वलयभूषिताः॥८८॥
पादनूपुरसंयुक्ताः पट्टदुकूलवाससः। एकैकशोऽददात्तस्मिन्काम्याश्च कामिनीर्बहूः॥८९॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे ऋषिवृन्द! महाबाहु राजा यह कहकर कोटि-कोटि स्वर्ण दान करने लगे। उन्होंने वेदज्ञ ब्राह्मणों को लाखों करेणु, करोड़ों आभूषण, एक लक्ष हाथी, दस लाख अश्व, एक अरब बैल, स्वर्ण से मढ़ी सींगों वाली सुन्दर दुग्धवती गायें प्रदान करने के साथ उनको कीमती वस्त्र, कालीन, प्रवालादि मणि तथा विविध रत्न प्रदान किया। उन्होंने गौरवर्ण, कमलनयनी, वज्रमणि, वैदूर्य, मुक्ता से अलंकृत ५०० कन्यायें ब्राह्मणों को प्रदान किया। हे द्विजप्रवरगण! राजा ने इस यज्ञ में प्रत्येक ब्राह्मण को जो स्त्रियां प्रदान किया था, वे सभी स्थूल तथा उन्नत स्तनों के भार से झुकी हुई थीं। उनके स्तन कञ्चुक (चोली) से ढंके थे। उनकी कमर पतली तथा सुन्दर थी। उनके नेत्र पद्मपलाश जैसे आयत थे। पैर नूपुरों से सजे थे। समस्त अंग पट्टवस्त्र से लिपटे थे। वे हाव-भाव-विलास से युक्त थीं। वे सभी वलय आदि अलंकारों से अलंकृत थीं।।८१-८९।।

अर्थिभ्यो ब्राह्मणादिभ्यो हयमेधे द्विजोत्तमाः।
भक्ष्यं भोज्यं च सम्पूर्णं नानासंभारसंयुतम्॥९०॥
खण्डकाद्यान्यनेकानि स्विन्नपक्वांश्च पिष्टकान्।
अन्नान्यन्यानि मेध्यांश्च घृतपूरांश्च खाण्डवान्॥९१॥
मधुरांस्तर्जितान्पूपानन्नं मृष्टं सुपाकिकम्।
प्रीत्यर्थं सर्वसत्त्वानां दीयतेऽन्नं पुनः पुनः॥९२॥
दत्तस्य दीयमानस्य धनस्यान्तो न विद्यते।
एवं दृष्ट्वा महायज्ञं देवदैत्याः सवा (चा) रणाः॥९३॥
गन्धर्वाप्सरसः सिद्धा ऋषयश्च प्रजेश्वराः। विस्मयं परमं याता दृष्ट्वा क्रतुवरं शुभम्॥९४॥

हे विप्रगण! राजा ने इस यज्ञ में ब्राह्मणादि सबको नाना रसयुक्त विविध भक्ष्य, भोज्य, खांड़ आदि से बने अनेक मीठे पदार्थ, उबाल कर, पीस कर बनाये पदार्थ, घी में पकाये नाना प्रकार के खांड के बने मधुर सुपक्व खाद्य, मालपूआ आदि अनेक द्रव्य दिया। सभी की प्रसन्नतार्थ बारम्बार प्रचुर मीठे अन्न दिये जाते। तब तक प्रदान किया जाता, जब तक भोजन करने वाला तृप्त न हो। प्रदत्त अन्न की कोई सीमा नहीं थी। देव, दैत्य, दानव, गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, ऋषि तथा प्रजापति लोग भी ऐसे महायज्ञ को देख अत्यन्त विस्मित हो गये।।९०-९४।।

पुरोधा मन्त्रिणो राजा हृष्टास्तत्रैव सर्वशः।
न तत्र मलिनः कश्चिन्न दीनो न क्षुधाऽन्वितः॥९५॥

न वोपसर्गो न ग्लानिर्नाऽऽधयो व्याधयस्तथा।
नाकालमरणं तत्र न दंशो न ग्रहा विषम्॥९६॥
हृष्टपुष्टजनाः सर्वे तस्मिन्राज्ञो महोत्सवे। ये च तत्र तपःसिद्धा मुनयश्चिरजीविनः॥९७॥
न जातं तादृशं यज्ञं धनधान्यसमन्वितम्। एवं स राजा विधिवद्वाजिमेधं द्विजोत्तमाः।
क्रतुं समापयामास प्रसादं वैष्णवं तथा॥९८॥

इति श्री महापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंम्भृषिसंवादे प्रासादकरणं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः।।४७।।



इस उत्तम यज्ञ को सम्पन्न होते देखकर पुरोहित, मन्त्री तथा राजा भी सर्वान्तःकरण से हर्षित हो गये। वहां कोई भी मलिन, दीन तथा भूखा नहीं दिखलाई देता था। कोई उपसर्ग, ग्लानि, आधि, व्याधि, अकालमृत्यु वहां नहीं था। दंश, ग्रह, विष का वहां प्रभाव नहीं था। राजा इन्द्रद्युम्न के इस यज्ञमहोत्सव में सब कोई तपस्वी मुनि तथा अन्य लोग जो आये थे, सभी हृष्ट-पुष्ट दिखाई दे रहे थे। ऐसा धन-धान्य सम्पन्न यज्ञ कभी नहीं सुना गया। हे द्विजोत्तमगण! इस प्रकार उन राजा ने सविधि अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किया तथा वैष्णव मन्दिर भी बनवाया।।९५-९८।।

।।सप्तचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।



अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

प्रतिमा पाने हेतु इन्द्रद्युम्न द्वारा भोगों का त्याग करना

मुनयः ऊचुः

ब्रूहि नो देवदेवेश यत्पृच्छामः पुरातनम्। यथा ताः प्रतिमाः पूर्वमिन्द्रद्युम्नेन निर्मिताः॥१॥
केन चैव प्रकारेण तुष्टस्तस्मै स माधवः। तत्सर्वं वद चास्माकं परं कौतूहलं हि नः॥२॥

मुनिगण कहते हैं—हे देवदेवेश! महाराज इन्द्रद्युम्न ने जिस प्रकार उस प्रतिमा का निर्माण किया था, हम वह जानना चाहते हैं। आप वह पुराणवार्त्ता हमसे कहिये। हमें सुनने का अत्यन्त कुतूहल है।।१-२।।

ब्रह्मोवाच

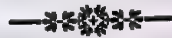
शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः पुराणं वेदसम्मितम्। कथयामि पुरा वृत्तं प्रतिमानां च सम्भवम्॥३॥
प्रवृत्ते च महायज्ञे प्रासादे चैव निर्मिते। चिन्ता तस्य बभूवाथ प्रतिमार्थमहर्निशम्॥४॥
न वेद्मि केन देवेशं सर्वेशं लोकपावनम्। सर्गस्थित्यन्तकर्तारं पश्यामि पुरुषोत्तमम्॥५॥

चिन्ताविष्टस्त्वभूद्राजा शेते रात्रौ दिवाऽपि न।
न भुङ्क्ते विविधान्भोगान्न च स्नानं प्रसाधनम्॥६॥
नैव वाद्येन गन्धेन गायनैर्वर्णकैरपि। न गजैर्मदयुक्तैश्च न चानेकैर्हयान्वितैः॥७॥
नेन्द्रनीलैर्महानीलैः पद्मरागमयैर्न च। सुवर्णरजताद्यैश्च वज्रस्फटिकसंयुतैः॥८॥
बहुरागार्थकामैर्वा न वन्यैरन्तरिक्षगैः। बभूव तस्य नृपतेर्मनसस्तुष्टिवर्धनम्॥९॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे मुनिप्रवरगण! जिस प्रकार से यह पुरातन प्रतिमा निर्मित हुई थी, वह प्राचीन घटना मैं कहता हूं। आप लोग सुनिये। यह महायज्ञ प्रारम्भ हो गया तथा विष्णु का देवालय बन कर सम्पन्न हो गया, तब राजा दिन-रात प्रतिमा निर्माण के लिये चिन्तित हो उठे। वे विचार कर रहे थे कि पता नहीं किस प्रकार देवेश सर्वज्ञ लोकपावन, सृष्टि-स्थिति-संहार कारण पुरुषोत्तम का दर्शन प्राप्त होगा? वे इस प्रकार की चिन्ता के कारण दिन-रात में कभी भी निद्रित नहीं हो पा रहे थे। उन्होंने आहार त्याग दिया। वे किसी भी योग्य वस्तु का उपभोग नहीं करते थे। उन्होंने तो स्नान तथा भूषणादि धारण करना भी त्याग दिया था। वाद्य-गायन-गन्धद्रव्य, वर्णक, मदमत्त हाथी, अनेक अश्व, पद्मराग, महानील, इन्द्रनील मणि, स्वर्ण, चांदी, हीरा, स्फटिक, कोई द्रव्य, किंवा अन्तरिक्षगामी, वनचारी कोई पक्षी आदि देखकर भी उनके मन को शान्ति नहीं मिलती थी।।३-९।।

शैलमृद्दारुजातेषु प्रशस्तं किं महीतले। विष्णुप्रतिमायोग्यं च सर्वलक्षणलक्षितम्॥१०॥
एतैरेव त्रयाणां तु दयितं स्यात्सुरार्चितम्।
स्थापिते प्रीतिमभ्येति इति चिन्तापरोऽभवत्॥११॥
पञ्चरात्रविधानेन सम्पूज्य पुरुषोत्तमम्। चिन्ताविष्टो महीपालः संस्तोतुमुपचक्रमे॥१२॥

इति श्री महापुराणे आदिब्राह्मे इन्द्रद्युम्नस्य प्रतिमानिर्माणविधानं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥४८॥



वे यह निर्णय नहीं कर पा रहे थे कि पृथिवी के पत्थर, मृत्तिका, काष्ठ, इनमें से किस वस्तु से निर्मित प्रतिमा उचित, लक्षणयुक्त तथा प्रशस्त है? वे यह चिन्ता करते रहते थे कि इनमें से कौन प्रतिमा देवगण को प्रिय है? किस स्थापना से विष्णु प्रसन्न होते हैं? यह विचार करते वे पांच रात्र विधानानुसार विष्णु की अर्चना के पश्चात् चिन्तन करके स्तव करने लगे।।१०-१२।।

।।अष्टचत्वारिंश अध्याय समाप्त।।



अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

इन्द्रद्युम्न द्वारा भगवत् स्तुति

वासुदेव नमेस्तऽस्तु नमस्ते मोक्षकारण। त्राहि मां सर्वलोकेश जन्मसंसारसागरात्॥१॥
निर्मलाम्बरसङ्काश नमस्ते पुरुषोत्तम। सङ्कर्षण नमस्तेऽस्तु त्राहि मां धरणीधर॥२॥
नमस्ते हेमगर्भाभ नमस्ते मकरध्वज। रतिकान्त नमस्तेऽस्तु त्राहि मां शम्बरान्तक॥३॥
नमस्तेऽञ्जनसङ्काश नमस्ते भक्तवत्सल। अनिरुद्ध नमस्तेऽस्तु त्राहि मां वरदो भव॥४॥
नमस्ते विबुधावास नमस्ते विबुधप्रिय। नारायण नमस्तेऽस्तु त्राहि मां शरणागतम्॥५॥
नमस्ते बलिनां श्रेष्ठ नमस्ते लाङ्गलायुध। चतुर्मुख जगद्धाम त्राहि मां प्रपितामह॥६॥

इन्द्रद्युम्न कहते हैं—हे वासुदेव, मोक्षकारण, सर्वलोकेश! आपको नमस्कार! आप भवसागर से मेरा उद्धार करिये। हे निर्मल, आकाशसन्निभ, पुरुषोत्तम, संकर्षण, धरणीधर! आपको प्रणाम! मेरा उद्धार करिये। हे हेमगर्भाभ, मकरध्वज, रतिकान्त, शम्बरासुरनाशक, अंजनसंकाश, भक्तवत्सल, अनिरुद्ध! आपको प्रणाम!। मेरा उद्धार करिये। हे देवताओं के आवासरूप, देवप्रिय नारायण, बलिप्रवर, हलायुध, चतुर्मुख, जगद्धाम, प्रपितामह! आपको प्रणाम! मेरा उद्धार करिये।।१-६।।

नमस्ते नीलमेघाभ नमस्ते त्रिदशार्जित। त्राहि विष्णो जगन्नाथ मग्नं मां भवसागरे॥७॥
प्रलयानलसङ्काश नमस्ते दितिजान्तक। नरसिंह महावीर्य त्राहि मां दीप्तलोचन॥८॥
यथा रसातलादुर्वी त्वया दंष्ट्रोद्धृता पुरा। तथा महावराहस्त्वं त्राहि मां दुःखसागरात्॥९॥
तवैता मूर्तयः कृष्ण वरदाः संस्तुता मया। तवेमे बलदेवाद्याः पृथग्रूपेण संस्थिताः॥१०॥

अङ्गानि तव देवेश गरुत्माद्यास्तथा प्रभो।
दिक्पालाः सायुधाश्चैव केशवाद्यास्तथाऽच्युत॥११॥

ये चान्ये तव देवेश भेदाः प्रोक्ता मनीषिभिः। तेऽपि। सर्वे जगन्नाथ प्रसन्नायतलोचन॥१२॥
मयाऽर्चिताः स्तुताः सर्वे तथा यूयं नमस्कृताः। प्रयच्छत वरं मह्यं धर्मकामार्थमोक्षदम्॥१३॥

हे नीलमेघाभ, देवार्चित, जगन्नाथ, विष्णु! मैं भवसागर में डूब रहा हूं। आप मेरा उद्धार करिये। हे प्रलयाग्नि के समान, दितिपुत्रों के नाशक, महावीर्य, दीप्तलोचन, नरसिंह! आपको प्रणाम! मेरा उद्धार करिये। पूर्वकाल में आपने ही महावाराहरूपेण धरती का उद्धार किया था। आप दुःखसागर से मेरी रक्षा करिये। हे कृष्ण! आपकी इन सब वरदायक मूर्त्ति द्वारा आप मेरी रक्षा करिये। बलदेव आदि जो भी देवता हैं, वे सब आप ही हैं। आप ही इन सब रूप से पृथक् भावेन अवस्थित हैं। हे प्रभो, देवेश! गरुड़ आदि आपके ही अंग हैं। केशवादि दिक्पाल आपके आयुध हैं। हे अच्युत, देवेश! मनीषी लोग ने आपकी जिन मूर्त्तियों का निर्णय दिया है, हे जगन्नाथ! सौम्यदर्शन! मैंने आपकी उन सभी देवप्रतिमाओं की अर्चना-स्तव तथा नमन किया है। आप उन सभी रूपों द्वारा मुझे धर्म-काम-मोक्षप्रद वरदान दीजिये।।७-१३।।

भेदास्ते कीर्तिता ये तु हरे सङ्कर्षणादयः। तव पूजार्थसम्भूतास्ततस्त्वयि समाश्रिताः॥१४॥
न भेदस्तव देवेश विद्यते परमार्थतः। विविधं तव यद्रूपमुक्तं तदुपचारतः॥१५॥
अद्वैतं त्वां कथं द्वैतं वक्तुं शक्नोति मानवः।
एकस्त्वं हि हरे व्यापी चित्स्वभावो निरञ्जनः॥१६॥
परमं तव यद्रूपं भावाभावविवर्जितम्। निर्लेपं निर्गुणं श्रेष्ठं कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥१७॥
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रव्यवस्थितम्।
तद्देवाश्च न जानन्ति कथं जानाम्यहं प्रभो॥१८॥

हे देव! आपकी अर्चना हेतु आपकी जो संकर्षणादि अलग मूर्त्तियां कही गयी हैं, वे सभी आपमें ही स्थापित हैं। हे देवेश! परमार्थ दृष्टि से आपमें कोई भेद ही नहीं है। तब जो आपके कल्पित रूप हैं, वे केवल उपचारार्थ बने हैं। मानव किस प्रकार से आपको द्वैत रूप कह सकता है। आप तो वास्तव में अद्वैत हैं। आप एकाद्वय, सर्वव्यापी, चित्स्वभाव, निरंजन हैं। आपका परम रूप भावाभाव रहित, निर्मल, निर्गुण, श्रेष्ठ, कूटस्थ, अचल, ध्रुव, सर्वोपाधि-निर्मुक्त तथा सत्तामात्र है। उसे तो देवगण भी नहीं जानते। अतः हे प्रभो! मैं कैसे जान सकता हूं?।।१४-१८।।

अपरं तव यद्रूपं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम्। शङ्खचक्रगदापाणिमुकुटाङ्गदधारिणम्॥१९॥
श्रीवत्सोरस्कसंयुक्तं वनामालाविभूषितम्।
तदर्चयन्ति विबुधा ये चान्ये तव संश्रयाः॥२०॥

आपका अन्य जो एक रूप है, वह पीत वस्त्रधारी, चार भुजा युक्त, शंख-चक्र-गदाधारी, मुकुट तथा बाजूबन्द से शोभित, श्रीवत्स चिह्न युक्त वक्षःस्थल तथा वनमाला मण्डित है। देवगण तथा आपके आश्रित लोग आपके इसी रूप की आराधना करते हैं।।१९-२०।।

देवदेव सुरश्रेष्ठ भक्तानामभयप्रद। त्राहि मां पद्मपत्राक्ष मग्नं विषयसागरे॥२१॥
नान्यं पश्यामि लोकेश यस्याहं शरणं व्रजे। त्वामृते कमलाकान्त प्रसीद मधुसूदन॥२२॥
जराव्याधिशतैर्युक्तो नानादुःखैर्निपीडितः।
हर्षशोकान्वितो मूढः कर्मपाशैः सुयन्त्रितः॥२३॥
पतितोऽहं महारौद्रे घोरे संसारसागरे। विषमोदकदुष्पारे रागद्वेषझषाकुले॥२४॥
इन्द्रियावर्तगम्भीरे तृष्णाशोकोर्मिसङ्कुले। निराश्रये निरालम्बे निःसारेऽत्यन्तचञ्चले॥२५॥

हे देवाधिदेव! सुरप्रवर! भक्तों को अभय देने वाले, पद्मपत्राक्ष! मैं विषय समुद्र में डूब रहा हूं। मेरी रक्षा करिये। हे लोकेश! मैं आपकी शरण में हूं। आपके अतिरिक्त अन्य किसी शरण्य को नहीं देखता। हे कमलाकान्त, मधुसूदन! आप मुझ पर प्रसन्न हों! मैं सैकड़ों आधि-व्याधि तथा जराजाल से जड़ित हूं। नाना दुःख से पीड़ित हो रहा हूं। कभी हर्ष होता है तो कभी विषादशोक के कारण विमूढ़त्व हो जाता है। असंख्य कर्मपाशों ने मुझे आबद्ध कर रखा है। मैं अति भीषण संसार-सागर में पतित हो रहा हूं। यह संसार-सागर विविध विषम दुःखजाल से भरा तथा दुष्कर है। यह रागद्वेषादि नाना मत्स्यों से पूर्ण है। यहां गंभीर आवर्त्त (भंवर)

इन्द्रियों का है। यह तृष्णा तथा शोक की सैकड़ों लहरों से समाकुल है। यह निरालम्ब, निःसार, निराश्रय एवं अत्यन्त चंचल है।।२१-२५।।

मायया मोहितस्तत्र भ्रमामि सुचिरं प्रभो। नानाजातिसहस्रेषु जायमानः पुनः पुनः॥२६॥

मया जन्मान्यनेकानि सहस्राण्ययुतानि च।
विविधान्यनुभूतानि संसारेऽस्मिञ्जनार्दन॥२७॥

हे प्रभु! आपकी माया से मोहित होकर इस संसार-सागर में मैंने दीर्घकालीन भ्रमण किया है। सहस्रों विभिन्न योनि में पुनः-पुनः जन्मा हूं। न जाने कितने हजार, दस हजार अन्य जन्म मैंने इस संसार में लिया है। उसकी सीमा तथा गिनती नहीं है। हे जगत्पति! इसी प्रकार से मैं कभी नरक में तो कभी स्वर्ग में जाता रहता हूं। कभी मृत्युलोक में, कभी तिर्यक् योनि में भ्रमण किया करता हूं। जलयन्त्र में बंधा घड़ा जैसे कभी ऊपर तथा कभी नीचे जाता है, हे देवप्रवर! मैं भी तदनुरूप कर्मडोर से बंधा अधः, ऊर्ध्व तथा मध्य में भटकता रहता हूं। हे जनार्दन! इस संसार में मैंने विविध सुख-दुःख का अनुभव हजारों-लाखों बार किया।।२६-२७।।

वेदाः साङ्गा मयाऽधीताः शास्त्राणि विविधानि च।
इतिहासपुराणानि तथा शिल्पान्यनेकशः॥२८॥
असन्तोषाश्च सन्तोषाः सञ्चयापचया व्ययाः।
मया प्राप्ता जगन्नाथ क्षयवृद्ध्यक्षयेतराः॥२९॥

भार्यारिमित्रबन्धूनां वियोगाः सङ्गमास्तथा। पितरो विविधा दृष्टा मातरश्च तथा मया॥३०॥

दुःखानि चानुभूतानि यानि सौख्यान्यनेकशः।
प्राप्ताश्च बान्धवाः पुत्रा भ्रातरो ज्ञातयस्तथा॥३१॥

मयोषितं तथा स्त्रीणां कोष्ठे विण्मूत्रपिच्छले। गर्भवासे महादुःखमनुभूतं तथा प्रभो॥३२॥

दुःखानि यान्यनेकानि बाल्ययौवनगोचरे।
वार्धके च हृषीकेश तानि प्राप्तानि वै मया॥३३॥

हे जनार्दन! मैंने समस्त वेद, नाना शास्त्र, नाना इतिहास, पुराण तथा अनेक शिल्पशास्त्रों को पढ़ा है। हे जगन्नाथ! कितने क्षय, वृद्धि, स्थिति, सन्तोष, असन्तोष, संचय-अपचय, व्यय को प्राप्त किया है। कितनी पत्नी, शत्रु, मित्र तथा बन्धुवर्ग का वियोग-संगम मैंने अनुभूत किया है। न जाने कितने माता-पिता मैंने देखा। मैंने कभी प्रचुर सुख तो कभी प्रचुर दुःख का अनुभव किया था। अनेक-अनेक (जन्मों में) भ्राता, पुत्र, बन्धु, ज्ञाति मुझे मिले। मैंने अनगिनत बार स्त्रियों के गर्भ में उनके विष्ठा, मूत्र तथा चिकनापन भरे कोष्ठ में निवास किया। हे प्रभो! मैंने बाल्य तथा यौवन काल में जो दुःख भोगा, हे हृषीकेश! बुढ़ापे में भी वही दुःख आया है।।२८-३३।।

मरणे यानि दुःखानि यममार्गे यमालये। मया तान्यनुभूतानि नरके यातनास्तथा॥३४॥

कृमिकीटद्रुमाणां च हस्त्यश्वमृगपक्षिणाम्।
महिषोष्ट्रगवां चैव तथाऽन्येषां वनौकसाम्॥३५॥

द्विजातीनां च सर्वेषां शूद्राणां चैव योनिषु।
धनिनां क्षत्रियाणां च दरिद्राणां तपस्विनाम्॥३६॥
नृपाणां नृपभृत्यानां तथाऽन्येषां च देहिनाम्। गृहेषु तेषामुत्पन्नो देव चाहं पुनः पुनः॥३७॥

मरण के पश्चात् यमलोक जाते समय यममार्ग में जो-जो दुःख भोग होता है, वह सब मुझे अनुभूत हो रहा है। नरक में जो भीषण यन्त्रणा भोगनी पड़ती है, वह मैं जानता हूं। कृमि-कीट-वृक्ष-हाथी-घोड़ा-मृग-पक्षी-महिष-ऊंट, गौ तथा अन्य वन्य जीवों की योनि में तथा समस्त द्विज, समस्त शूद्र, धनाड्य, क्षत्रिय, दीन-दरिद्र, गृहस्थ, अनेक राजा, राजा के नौका रूपों में तथा अन्य प्राणीगण के यहां मैंने पुनः-पुनः जन्म लिया है॥३४-३७॥

गतोऽस्मि दासतां नाथ भृत्यानां बहुशो नृणाम्।
दरिद्रत्वं चेश्वरत्वं स्वामित्वं च तथा गतः॥३८॥
हतो मया हताश्चान्ये घातितो घातितास्तथा। दत्तं ममान्यैरन्येभ्यो मया दत्तमनेकशः॥३९॥
पितृमातृसुहृद्भ्रातृकलत्राणां कृतेन च।
धनिनां श्रोत्रियाणां च दरिद्राणां तपस्विनाम्॥४०॥
उक्तं दैन्यं च विविधं त्वक्त्वा लज्जा जनार्दन। देवतिर्यङ्मनुष्येषु स्थावरेषु चरेषु च॥४१॥
न विद्यते तथा स्थानं यत्राहं न गतः प्रभो। कदा मे नरके वासः कदा स्वर्गे जगत्पते॥४२॥
कदा मनुष्यलोकेषु कदा तिर्यग्गतेषु च। जलयन्त्रे यथा चक्रे घटी रज्जुनिबन्धना॥४३॥
याति चोर्ध्वमधश्चैव कदा मध्ये च तिष्ठति। तथा चाहं सुरश्रेष्ठ कर्मरज्जुसमावृतः॥४४॥
अधश्चोर्ध्वं तथा मध्ये भ्रमन्गाच्छामि योगतः। एवं संसारचक्रेऽस्मिन्भैरवे रोमहर्षणे॥४५॥

हे देव! मैंने अनेक जन्मों में अनेक भृत्यवंशीय लोगों के यहां दासत्व किया है। कभी दरिद्र, कभी प्रभु, कभी (स्वामी) ईश्वर पद पर प्रतिष्ठित रहा हूं। मैंने कभी एक का तो कभी अनेक का वध किया था। कभी अनेकों ने मुझे दान दिया तो कभी मैंने अनेक को दान दिया। हे जनार्दन! मैंने घृणा-लज्जा त्याग कर पिता-माता-सुहृद-भ्राता तथा पत्नी के निमित्त अनेक बार अनेक धनियों-दरिद्रों से विविध कातरोक्ति किया। हे प्रभो! देवता, तिर्यक्, मनुष्य तथा सचराचर जगत् में ऐसा स्थान ही नहीं है, जहां मैं नहीं गया। हे जगत्पति! इस प्रकार मैंने कभी नरक तो कभी स्वर्ग में निवास किया। कभी मनुष्यों में तो कभी तिर्यक् योनि में मैंने जन्म लिया। जैसे जलयन्त्र में रस्सी से बंधा घट ऊपर-नीचे-मध्य में घूमता रहता है, तदनुरूप मैं कर्मरूपी रज्जु से बद्ध कभी नरक, कभी स्वर्ग तथा नाना योनियों में घूमता रहता हूं। हे प्रभो! यह संसार चक्र अत्यन्त घोर तथा रोमहर्षण है॥३८-४५॥

भ्रमामि सुचिरं कालं नान्तं पश्यामि कर्हिचित्।
न जाने किं करोम्यद्य हरे व्याकुलितेन्द्रियः॥४६॥
शोकतृष्णाभिभूतोऽहं कांदिशीको विचेतनः। इदानीं त्वामहं देव विह्वलः शरणं गतः॥४७॥

त्राहि मां दुःखितं कृष्ण मग्नं संसारसागरे। कृपां कुरु जगन्नाथ भक्तं मां यदि मन्यसे॥४८॥

इस संसार चक्र में मैं दीर्घकाल से भ्रमण करता इसका कहीं अन्त नहीं देखता। हे हरि! मैं व्याकुल हो गया हूं। क्या करना चाहिये, यह भी नहीं जानता। मैं शोक तथा तृष्णा से अभिभूत हूं। मेरा चैतन्य विलुप्त है। किंकर्त्तव्यविमूढ़ स्थिति में पड़ा हूं। हे देव! अब मैं विह्वल होकर आपका शरणापन्न हो गया। यदि आप मुझे अपना भक्त मानते हैं, तब हे जगन्नाथ! मेरे ऊपर कृपा करिये।।४६-४८।।

त्वदृते नास्ति मे बन्धुर्योऽसौ चिन्तां करिष्यति।
देव त्वां नाथमासाद्य न भयं मेऽस्ति कुत्रचित्॥४९॥

जीविते मरणे चैव योगक्षेमेऽथ वा प्रभो। ये तु त्वां विधिवद्देव नार्चयन्ति नराधमाः॥५०॥
सुगतिस्तु कथं तेषां भवेत्संसारबन्धनात्। किं तेषां कुलशीलेन विद्यया जीवितेन च॥५१॥

येषां न जायते भक्तिर्जगद्धातरि केशवे।
प्रकृतिं त्वासुरीं प्राप्य ये त्वां निन्दन्ति मोहिताः॥५२॥
पतन्ति नरके घोरे जायमानाः पुनः पुनः।
न तेषां निष्कृतिस्तस्माद्विद्यते नरकार्णवात्॥५३॥

हे प्रभो! आपके अतिरिक्त मेरा कोई स्वामी नहीं है। ऐसा कोई बन्धु भी नहीं है, जो मेरे लिये चिन्ता करे। हे देव! आपके समान रक्षक को मैं पा गया हूं। अब मुझे अपने जीवन-मरण-योगक्षेम का कहीं भी भय नहीं है। हे प्रभो! हे देव! जो नराधम आपकी सविधि आराधना नहीं करते, उनकी मुक्ति इस संसारबन्धन से कैसे होगी? जिनके मन में जगत् धारण करने वाले केशव की भक्ति उत्पन्न नहीं होती, उनका कुल-शील, विद्या तथा जीवन किस काम का? जो लोग आसुरी प्रकृति वाले होकर मूढ़ता पूर्वक आपकी निन्दा करते हैं, वे बारम्बार जन्म लेकर घोर नरक में जाते हैं। हे देव! जो सब दुर्वृत्त नराधम आप पर दोषारोपण करते हैं, उनको नरकार्णव से त्राण नहीं मिलता!।।४९-५३।।

ये दूषयन्ति दुर्वृत्तास्त्वां देव पुरुषाधमाः। यत्र यत्र भवेज्जन्म मम कर्मनिबन्धनात्॥५४॥

तत्र तत्र हरे भक्तिस्त्वयि चास्तु दृढा सदा।
आराध्य त्वां सुरा दैत्या नराश्चान्येऽपि संयताः॥५५॥
अवापुः परमां सिद्धिं कस्त्वां देव न पूजयेत्।
न शक्नुवन्ति ब्रह्माद्याः स्तोतुं त्वां त्रिदशा हरे॥५६॥
कथं मानुषबुद्ध्याऽहं स्तौमि त्वां प्रकृतेः परम्।
तथा चाज्ञानभावेन संस्तुतोऽसि मया प्रभो॥५७॥

तत्क्षमस्वापराधं मे यदि तेऽस्ति दया मयि। कृपापराधेऽपि हरे क्षमां कुर्वन्ति साधवः॥५८॥
तस्मात्प्रसीद देवेश भक्तस्नेहं समाश्रितः। स्तुतोऽसि यन्मया देव भक्तिभावेन चेतसा।

साङ्गं भवतु तत्सर्वं वासुदेव नमोऽस्तु ते॥५९॥

हे हरि! मैं विनय करता हूं कि मेरे कर्मानुरूप जहां कहीं भी मेरा जन्म हो, वहां-वहां मैं सदा आपके प्रति दृढ़ भक्तियुक्त होकर रहूं। हे देव! दैत्य तथा मानव, सभी सुसंयत भाव से आपकी आराधना द्वारा मुक्तिरूपी परमसिद्धि लाभ करते हैं। हे देव! कौन ऐसा है, जो आपकी अर्चना नहीं करेगा? हे देव! ब्रह्मादि देवता भी आपका स्तव कर सकने में समर्थ नहीं हैं। मैं तो सामान्य मनुष्य हूं। आप प्रकृति से परे हैं। हे प्रभो! तथापि मैंने अज्ञता के साथ आपका जो स्तव किया है, उससे जो अपराध हो गया, उसे आप कृपा पूर्वक क्षमा करिये। हे हरि! साधुगण अपराधी पर क्षमा करते हैं। अतः देवेश! आप भक्तवत्सल होकर प्रसन्न हो जायें। हे देव! मैं भक्तियुक्त होकर तुम्हारा जो स्तव कर रहा हूं, आपकी कृपा से वह साङ्ग हो जाये (अर्थात् वह पूर्ण हो जाये)। हे वासुदेव! आपको मेरा प्रणाम!।।५४-५९।।

ब्रह्मोवाच

इत्थं स्तुतास्तदा तेन प्रसन्नो गरुडध्वजः। ददौ तस्मै मुनिश्रेष्ठाः सकलं मनसेप्सितम्।।६०।।

यः सम्पूज्य जगन्नाथं प्रत्यहं स्तौति मानवः।
स्तोत्रेणानेन मतिमान्स मोक्षं लभते ध्रुवम्।।६१।।
त्रिसन्ध्यं यो जपेद्विद्वानिदं स्तोत्रवरं शुचिः।
धर्मं चार्थं च कामं च मोक्षं च लभते नरः।।६२।।
यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि श्रावयेद्वा समाहितः।
स लोकं शाश्वतं विष्णोर्याति निर्धूतकल्मषः।।६३।।
धन्यं पापहरं चेदं भुक्तिमुक्तिप्रदं शिवम्।
गुह्यं सुदुर्लभं पुण्यं न देयं यस्य कस्यचित्।।६४।।

न नास्तिकाय मूर्खाय न कृतघ्नाय मानिने। न दुष्टमतये दद्यान्नाभक्ताय कदाचन।।६५।।

दातव्यं भक्तियुक्ताय गुणशीलान्विताय च।
विष्णुभक्ताय शान्ताय श्रद्धानुष्ठानशालिने।।६६।।

ब्रह्मा कहते हैं—राजा की स्तुति द्वारा स्तुत होकर प्रभु गरुड़ध्वज तत्काल प्रसन्न हो गये। उन्होंने राजा को सर्वाभीष्ट वर प्रदान किया। जो मानव नित्य जगन्नाथ की पूजा करके यह स्तव पढ़ता है, निश्चय ही उसे मोक्ष प्राप्ति होती है। जो अभिज्ञ लोग पवित्र होकर तीनों सन्ध्याकाल में यह उत्तम स्तोत्र पाठ करते हैं, उन्हें धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष मिलता है। जो व्यक्ति समाहित होकर यह स्तोत्र पढ़ता किंवा सुनता है, अथवा सुनाता है, वह पापरहित होकर विष्णु के नित्यधाम की प्राप्ति करता है। यह धन्य, पापनाशक, भुक्ति-मुक्तिप्रद, मंगलमय, गुप्त, दुर्लभ पुण्यस्तोत्र जिस किसी को नहीं देना चाहिये। जो नास्तिक, मूर्ख, कृतघ्न, अभिमानी, दुष्टबुद्धि अथवा अभक्त है, उसे यह स्तव कदापि न दे। जो भक्तियुक्त, गुणी, शीलवान्, विष्णुभक्त, शान्त तथा श्राद्धानुष्ठान निरत है, ऐसे व्यक्ति को यह स्तोत्र प्रदान करना चाहिये।।६०-६६।।

इदं समस्ताघविनाशहेतुः, कारुण्यसंज्ञं सुखमोक्षदं च।
अशेषवाञ्छाफलदं वरिष्ठ, स्तोत्रं मयोक्तं पुरुषोत्तमस्य।।६७।।

ये तं सुसूक्ष्मं विमला मुरारिं, ध्यायन्ति नित्यं पुरुषं पुराणम्।
ते मुक्तिभाजः प्रविशन्ति विष्णुं, मन्त्रैर्यथाऽऽज्यं हुतमध्वराग्नौ॥६८॥
एकः स देवो भवदुःखहन्ता, परः परेषां न ततोऽस्ति चान्यत्।
द्र(स्त्र)ष्टा स पाता स तु नाशकर्ता, विष्णुःसमस्ताखिलसारभूतः॥६९॥
किं विद्यया किं स्वगुणैश्च तेषां, यज्ञैश्च दानैश्च तपोभिरुग्रैः।
येषां न भक्तिर्भवतीह कृष्णे, जगद्गुरौ मोक्षसुखप्रदे च॥७०॥
लोके स धन्यः स शुचिः स विद्वान् मखैस्तपोभिः स गुणैर्वरिष्ठः।
ज्ञाता स दाता स तु सत्यवक्ता, यस्यास्ति भक्तिः पुरुषोत्तमाख्ये॥७१॥

इति श्री महापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंम्भृषिसंवादे कारुण्यस्तव वर्णनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥४९॥



यह सर्वपापहारी पुरुषोत्तम स्तोत्र मैंने कहा। यह कारुणाख्य, सुख-मोक्षदाता, अशेष इष्टफलप्रद तथा श्रेष्ठ है। जो निर्मल मन से इन अतिसूक्ष्म, पुराणदेव मुरारी का ध्यान करता है, वह मुक्तिलाभ करके यज्ञाग्नि में मन्त्राहूत घृतवत् विष्णु में प्रविष्ट हो जाता है। ये परात्पर परम देव ही एकमात्र भवदुःख का हनन करते हैं। उनके अतिरिक्त और कोई कर्त्ता ही नहीं है। वे ही स्त्रष्टा-पाता (पालक)-नाशकर्त्ता हैं। वे ही संसार के सार विष्णु हैं। मोक्षसुख दाता जगद्गुरु के प्रति जिनकी भक्ति नहीं है, उनकी विद्या-गुण-यज्ञ-दान, तीव्र तप सब व्यर्थ है। परन्तु जिसकी पुरुषोत्तम के प्रति भक्ति है, जगत् में वही धन्य, पवित्र, विद्वान् तथा यज्ञ तप एवं गुणों में वरिष्ठ हैं। वे ही प्रकृत ज्ञाता-दाता-सत्यवादी हैं।।६७-७१।।

।।एकोनपञ्चाश अध्याय समाप्त।।



अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

प्रतिमा की उत्पत्ति वर्णन के अन्तर्गत् इन्द्रद्युम्न का स्वप्न में भगवत् दर्शन, विश्वकर्मा द्वारा भगवान् की तीन मूर्त्ति का निर्माण

ब्रह्मोवाच

स्तुत्वैवं मुनिशार्दूलाः प्रणम्य च सनातनम्। वासुदेवं जगन्नाथं सर्वकामफलप्रदम्॥१॥
चिन्ताविष्टो महीपालः कुशानास्तीर्य भूतले। वस्त्रं च तन्मना भूत्वा सुष्वाप धरणीतले॥२॥

कथं प्रत्यक्षमभ्येति देवदेवो जनार्दनः। मम चाऽऽर्तिहरो देवस्तदाऽसाविति चिन्तयन्॥३॥
सुप्तस्य तस्य नृपतेर्वासुदेवो जगद्गुरुः। आत्मानं दर्शयामास शङ्खचक्रगदाभृतम्॥४॥
स ददर्श तु सप्रेम देवदेवं जगद्गुरुम्। शङ्खचक्रधरं देवं गदाचक्रोग्रपाणिनम्॥५॥
शार्ङ्गबाणधरं देवं ज्वलत्तेजोतिमण्डलम्। युगान्तादित्यवर्णाभं नीलवैदूर्यसन्निभम्॥६॥
सुपर्णांसे तमासीनं षोडशार्धभुजं शुभम्। स चास्मै प्राब्रवीद्धीराः साधु राजन्महामते॥७॥
क्रतुनाऽनेन दिव्येन तया भक्त्या च श्रद्धया। तुष्टोऽस्मि ते महीपाल वृथा किमनुशोचसि॥८॥
यदत्र प्रतिमा राजञ्जगत्पूज्या सनातनी। यथा सा प्राप्यते भूप तदुपायं ब्रवीमि ते॥९॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे मुनिप्रवरगण! सर्वकामफलदायक सनातन वासुदेव जगन्नाथ की यह स्तुति तथा प्रणाम करने के उपरान्त चिन्तामग्न इन्द्रद्युम्न पृथिवी पर कुश तथा वस्त्र बिछा कर तन्मय होकर शयन करने लगे। वे उस समय सोच रहे थे कि किस प्रकार देवाधिदेव जनार्दन का दर्शन मिलेगा? उनके अतिरिक्त मेरी आर्त्ति हरण करने वाला कोई नहीं है। राजा वहां लेटकर यही चिन्ता कर रहे थे। इस समय वासुदेव जगद्गुरु प्रभु वहां प्रत्यक्ष हो गये। उन शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी ने राजा को दर्शन दिया था। राजा ने प्रेम के साथ उन शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी का दर्शन किया। राजा ने देखा कि वे गरुड़ की पीठ पर आसीन हैं। उनकी वर्णप्रभा युगान्तकालीन आदित्य के समान प्रतिभात हो रही है। वे नीलवर्ण वैदूर्यमणिवत् कान्ति युक्त थे। वे अष्टभुज तथा शार्ङ्ग-बाणधारी थे। उनकी आकृति मानों प्रदीप्त ज्योतिर्मण्डल रूप थी। उन भगवान् वासुदेव ने राजा से कहा कि "हे महामति राजा! तुमको साधुवाद। तुम्हारा यह दिव्य यज्ञ तथा श्रद्धा-भक्ति देख कर मैं प्रसन्न हूं। हे राजन्! तुम क्यों वृथा शोक कर रहे हो? यहां जो जगत्पूज्या सनातनी प्रतिमा है, उसे तुम जिस उपाय से पाओगे, वह कहता हूं।।१-९।।

गतायामद्य शर्वर्यां निर्मले भास्करोदिते। सागरस्य जलस्यान्ते नानाद्रुमविभूषिते॥१०॥
जलं तथैव वेलायां दृश्यते तत्र वै महत्। लवणस्योदधे राजंस्तरङ्गैः समभिप्लुतम्॥११॥
कूलान्ते हि महावृक्षः स्थितः स्थलजलेषु च।
वेलाभिर्हन्यमानश्च न चासौ कम्पते द्रुमः॥१२॥
परशुमादाय हस्तेन ऊर्मेरन्तस्ततो व्रज। एकाकी विहरन्राजन्स त्वं पश्यसि पादपम्॥१३॥
ईदृक्चिह्नं समालोक्य छेदय त्वमशङ्कितः। छेद्यमानं तु तं वृक्षं प्रातरद्भुतदर्शनम्॥१४॥
दृष्ट्वा तेनैव सञ्चिन्त्य ततो भूपालदर्शनात्।
कुरु तां प्रतिमां दिव्यां जहि चिन्तां विमोहिनीम्॥१५॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा महाभागो जगामादर्शनं हरिः। स चापि स्वप्नमालोक्य परं विस्मयमागतः॥१६॥

हे राजन्! रात्रि व्यतीत होने पर जब निर्मल सूर्यमण्डल उदित हो, तब लहरों से उच्छलित गंभीर (गहन) समुद्र परिलक्षित होगा। उस तट के पास कुछ जल में तथा कुछ स्थल में एक महावृक्ष दिखलाई देगा।

यह वृक्ष सागर की तरंगों के टकराने से भी नहीं हिलता! तुम कुठार लेकर अकेले तरंगों में जाकर उसे प्रत्यक्ष देखो। पूर्वोक्त लक्षण से उस वृक्ष को पहचान कर निःशंक होकर उसे काट देना। तुम देखोगे कि प्रभात होते ही वह कटा वृक्ष अद्भुत आकृति का होगा। हे राजन्! यह देखकर तुम विचार पूर्वक उस वृक्ष से दिव्य प्रतिमा बनाना। अब तुम अपनी भ्रमात्मक चिन्ता त्याग दो। तुम्हारा कल्याण होगा। यह कहकर भगवान् हरि अन्तर्हित् हो गये। राजा भी इस स्वप्न को देख कर विस्मित थे।।१०-१६।।

तां निशां समुद्वीक्ष्य स्थितस्तद्गतमानसः। व्याहरन्वैष्णवान्मन्त्रान्सूक्तं चैव तदात्मकम्॥१७॥
प्रगतायां रजन्यां तु उत्थितो नान्यमानसः। स स्नात्वा सागरे सम्यग्यथावद्विधिना ततः॥१८॥

दत्त्वा दानं च विप्रेभ्यो ग्रामांश्च नगराणि च।
कृत्वा पौर्वाह्णिकं कर्म जगाम स नृपोत्तमः॥१९॥
न चाश्वो न पदातिश्च न गजो न च सारथिः।
एकाकी स महावेलां प्रविवेश महीपतिः॥२०॥

जागकर उन्होंने देखा कि अभी भी रात्रि का अन्त नहीं हुआ है। अतः तद्गत् चित्त से वैष्णवमन्त्र तथा वैष्णव सूक्त उच्चरित करते उन्होंने रात व्यतीत किया। अन्ततः रात्रि बीतने पर वे उठे तथा उन्होंने अनन्य मन से सागर जल से सविधि स्नान किया और ब्राह्मणों को धन, ग्राम, नगर आदि दानोपरान्त पौर्वाह्णिक कर्म सम्पन्न करने के पश्चात् वहां से चले गये। उस समय उन्होंने अपने साथ गज, अश्व, सारथि अथवा पैदल सैनिक भी नहीं लिया। वे एकाकी ही उस सागर की महान् तरंगों में प्रवेश कर गये।।१७-२०।।

तं ददर्श महावृक्षं तेजस्वन्तं महाद्रुमम्। महातिगमहारोहं पुण्यं विपुलमेव च॥२१॥
महोत्सेधं महाकायं प्रसुप्तं च जलान्तिकं। सान्द्रमाञ्जिष्ठवर्णाभं नामजातिविवर्जितम्॥२२॥
नरनाथस्तदा विप्रा द्रुमं दृष्ट्वा मुदाऽन्वितः। परशुना शातयामास निशितेन दृढेन च॥२३॥
द्वैधीकर्तुमनास्तत्र बभूवेन्द्रसखः स च। निरीक्ष्यमाणे काष्ठे तु बभूवाद्भुतदर्शनम्॥२४॥

तभी उन्होंने उस महातेजवान् वृक्ष को देखा। वे देखते हैं कि वृक्ष बहुत उच्च, पवित्र, विस्तीर्ण तथा विशाल शाखाओं से युक्त, महाकाय, नाम-जाति से रहित (जिसका नाम तथा जाति ज्ञात न हो सके) तथा गहरे वर्ण के अंजन के समान कान्ति वाला था। मानों वह जल में ही सोया था। हे ब्राह्मणवृन्द! राजा ने उस वृक्ष को देखते ही प्रसन्नता के साथ अपने साथ लाये तीक्ष्ण धार कुठार से उसे काट दिया। तब जब इन्द्रसखा इन राजा को उसे दो टुकड़ा करने हेतु देखा गया, तब का दृश्य अतीव अपूर्व था!।।२१-२४।।

विश्वकर्मा च विष्णुश्च विप्ररूपधरावुभौ। आजग्मतुर्महाभागौ तदा तुल्याग्रजन्मानौ॥२५॥
ज्वलमानौ स्वतेजोभिर्दिव्यस्त्रगनुलेपनौ। अथ तौ तं समागम्य नृपमिन्द्रसखं तदा॥२६॥
तावूचतुर्महाराज किमत्र त्वं करिष्यसि। किमर्थं च महाबाहो शातितश्च वनस्पतिः॥२७॥
असहायो महादुर्गे निर्जने गहने वने। महासिन्धुतटे चैव कथं वै शातितो द्रुमः॥२८॥

राजा देखते हैं कि वहां सहसा विप्रवेश धारण किये महाभाग देवशिल्पी विश्वकर्मा तथा स्वयं विष्णुदेव का आगमन हुआ है। वे अपने तेज से आप ही उद्भासित थे। उनके गले में दिव्य माला तथा अंगों पर दिव्य

अनुलेपन लगे थे। वे इन्द्रसखा राजा के पास आकर कहने लगे—"हे राजन्! आप इस स्थान पर क्या कर रहे हैं? हे महाबाहो! आपने इस वृक्ष को क्यों काटा है? इस महासिन्धु तट स्थित महादुर्गम निबिड़-निर्जन कानन में यही एकमात्र वृक्ष था। इसे आपने किसलिये काटा?।।२५-२८।।

ब्रह्मोवाच

तयोः श्रुत्वा वचो विप्राः स तु राजा मुदाऽन्वितः।
वभाषे वचनं ताभ्यां मृदुलं मधुरं तथा॥२९॥

दृष्ट्वा तौ ब्राह्मणौ तत्र चन्द्रसूर्याविवाऽऽगतौ। नमस्कृत्य जगन्नाथाववाङ्मुखमवस्थितः॥३०॥

ब्रह्मा कहते हैं—जब महाभाग श्रीहरि ने राजा से यह कहा—उन्होंने इन दोनों चन्द्रमा-सूर्य के समान समागत ब्राह्मणों को देख कर उनको नतशिर होकर प्रणाम किया तथा मधुर स्वर में उनसे कहा—।।२९-३०।।

राजोवाच

देवदेवमनाद्यन्तमनन्तं जगतां पतिम्। आराधयितुं प्रतिमां करोमीति मतिर्मम॥३१॥
अहं स देवदेवेन परमेण महात्मना। स्वप्नान्ते च समुद्दिष्टो भवद्भ्यां श्रावितं मया॥३२॥

राजा कहते हैं—मैं देवाधिदेव अनादि अनन्त जगत्पति की आराधना हेतु एक प्रतिमा निर्माण करूंगा। यही मेरा लक्ष्य है। मुझे स्वप्न में देवदेव परमात्मा द्वारा यही आदेश मिला है।।३१-३२।।

ब्रह्मोवाच

राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा देवेन्द्रप्रतिमस्य च। प्रहस्य तस्मै विश्वेशस्तुष्टो वचनमब्रवीत्॥३३॥

ब्रह्मा कहते हैं—उन इन्द्र के समान राजेन्द्र का कथन सुनकर विश्वविधाता श्रीहरि ने हंसते हुये उन राजा से कहा—।।३३।।

विष्णुरुवाच

साधु साधु महीपाल यदेतन्मतमुत्तमम्। संसारसागरे घोरे कदलीदलसन्निभे॥३४॥
निःसारे दुःखबहुले कामक्रोधसमाकुले। इन्द्रियावर्तकलिले दुस्तरे रोमहर्षणे॥३५॥
नानाव्याधिशतावर्ते जलबुद्बुदसन्निभे। यतस्ते मतिरुत्पन्ना विष्णोराराधनाय वै॥३६॥
धन्यस्त्वं नृपशार्दूल गुणैः सर्वैरलङ्कृतः। सप्रजा पृथिवी धन्या सशैलवनकानना॥३७॥
सपुरग्रामनगरा चतुर्वर्णैरलङ्कृता। यत्र त्वं नृपशार्दूल प्रजाः पालयिता प्रभुः॥३८॥
एह्येहि सुमहाभाग द्रुमेऽस्मिन्सुखशीतले। आवाभ्यां सह तिष्ठ त्वं कथाभिर्धर्मसंश्रितः॥३९॥
अयं मम सहायस्तु आगतः शिल्पिनां वरः। विश्वकर्मसमः साक्षान्निपुणः सर्वकर्मसु।
मयोद्दिष्टां तु प्रतिमां करोत्येष तटं त्यज॥४०॥

विष्णु कहते हैं—मैं तुमको साधुवाद देता हूं। तुम्हारी जो बुद्धि है, उसका मैं अनुमोदन करता हूं। इस केले के पत्ते के समान चंचल संसार-सागर का रूप अत्यन्त भयप्रद है। इसमें सार नामक कुछ भी नहीं है। यह

काम-क्रोध-दुःख परम्परा से समाकुल है। यह इन्द्रिय रूपी भंवर से भरा है। यह दुस्तर, रोमहर्षण, जल के बुलबुले जैसा अस्थिर तथा सैकड़ों व्याधियों से भरा है। ऐसे संसार में रहते हुये तुम्हारी जो मति विष्णु आराधना की हो गयी, इसके लिये तुम धन्य हो। हे नृपप्रवर! तुम सर्वगुण से अलंकृत हो। तुम्हारे समान प्रजापालक पाकर यह प्रजा से भरी सशैलवनकानना पृथिवी भी धन्य है। हे महाभाग! इस सुशीतल वृक्ष के नीचे बैठो तथा मेरे साथ नाना कथावार्त्ता करो। ये जो मेरे साथ आये हैं, ये साक्षात् विश्वकर्मा के समान प्रधान शिल्पी तथा सभी कर्मों में दक्ष हैं। मेरे आदेश से ये ही प्रतिमा बनायेंगे। अतएव तुम इस तट को छोड़ो।।३४-४०।।

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वैवं वचनं तस्य तदा राजा द्विजन्मनः। सागरस्य तटं त्यक्त्वा गत्वा तस्य समीपतः॥४१॥

तस्थौ स नृपतिश्रेष्ठो वृक्षच्छाये सुशीतले।

ततस्तस्मै स विश्वात्मा ददावाज्ञां द्विजाकृतिः॥४२॥

शिल्पिमुख्याय विप्रेन्द्राः कुरुष्व प्रतिमा इति। कृष्णरूपं परं शान्तं पद्मपत्रायतेक्षणम्॥४३॥

श्रीवत्सकौस्तुभधरं शङ्खचक्रगदाधरम्। गौराङ्गंक्षीरवर्णाभं द्वितीयं स्वस्तिकाङ्कितम्॥४४॥

लाङ्गलास्त्रधरं देवमनन्ताख्यं महाबलम्। देवदानवगन्धर्वयक्षविद्याधरोरगैः॥४५॥

न विज्ञातो हि तस्यान्तस्तेनानन्त इति स्मृतः।

भगिनीं वासुदेवस्य रुक्मवर्णां सुशोभनाम्॥४६॥

तृतीयां वै सुभद्रां च सर्वलक्षणलक्षिताम्॥४७॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे विप्र! उस समय राजा ने इन ब्राह्मण की बात सुनकर सागर तट को छोड़ा तथा उसके समीप सुशीतल वृक्षछाया में बैठ गये। हे विप्रों! उस समय उन द्विज का वेश धारण किये विश्वात्मा प्रभु ने उस श्रेष्ठ शिल्पी को आदेश दिया कि तुम प्रतिमा बनाओ। पहली प्रतिमा कृष्णमूर्त्ति होगी, जो परम शान्त, पद्मपत्र ऐसे नेत्र वाली, श्रीवत्स, कौस्तुभ, शंख, चक्र, गदाधारी होगी। दूसरी प्रतिमा अनन्तमूर्त्ति, गौराङ्ग, क्षीर वर्ण जैसी, स्वस्तिकादि चिह्न युक्त तथा हलधारी होगी। देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर, उरगगण भी उनका अन्त नहीं जानते। तभी इनको अनन्त कहते हैं। तृतीय प्रतिमा होगी सुभद्रामूर्त्ति। यह स्वर्णवर्ण, सुशोभन तथा सर्वलक्षणान्वित होंगी। ये वासुदेव की बहन हैं।।४१-४७।।

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वैतद्वचनंतस्य विश्वकर्मा सुकर्मकृत्। तत्क्षणात्कारयामास प्रतिमाः शुभलक्षणाः॥४८॥

प्रथमं शुक्लवर्णाभं शारदेन्दुसमप्रभम्। आरक्ताक्षं महाकायं स्फटाविकटमस्तकम्॥४९॥

नीलाम्बरधरं चोग्रं बलं बलमदोद्धतम्। कुण्डलैकधरं दिव्यं गदामुशलधारिणाम्॥५०॥

द्वितीयं पुण्डरीकाक्षं नीलजीमूतसन्निभम्। अतसीपुष्पसंकाशं पद्मपत्रायतेक्षणम्॥५१॥

पीतवाससमत्युग्रं शुभं श्रीवत्सलक्षणम्। चक्रपूर्णकरं दिव्यं सर्वपापहरं हरिम्॥५२॥

ब्रह्मा कहते हैं—ब्राह्मण वेशधारी विष्णु का यह कथन सुनकर देवशिल्पी विश्वकर्मा ने तत्क्षण

शुभलक्षण सम्पन्ना प्रतिमायें निर्मित कर दिया। प्रथम शुक्लवर्ण बलराम प्रतिमा, शरदचन्द्र के समान द्युति, आरक्त नयन, महाकाय, फणयुक्त विकट मस्तक, नील वस्त्रधारी, गर्वित, एक कान में कुण्डल पहने, गदाभूषण धारी थी। द्वितीय प्रतिमा कृष्ण की थी, जो नीलमेघ के समान वर्ण वाली, पुण्डरीक के समान नेत्र वाली, अतसी पुष्प के समान देह आभा वाली थी। वह पीत वस्त्रधारी, पद्मपत्रायत नेत्र युक्त श्रीवत्सांकित वक्ष तथा चक्रधारी सर्वपापहारी थी।।४८-५२।।

तृतीयां स्वर्णवर्णाभां पद्मपत्रायतेक्षणाम्। विचित्रवस्त्रसंछन्नां हारकेयूरभूषिताम्॥५३॥
विचित्राभरणोपेतां रत्नहारावलम्बिताम्। पीनोन्नतकुचां रम्यां विश्वकर्मा विनिर्ममे॥५४॥
स तु राजाऽद्भुतं दृष्ट्वा क्षणेनैकेन निर्मिताः।
दिव्यवस्त्रयुगच्छन्ना नानारत्नैरलङ्कृताः॥५५॥
सर्वलक्षणसम्पनाः प्रतिमाः सुमनोहराः। विस्यमं परमं गत्वा इदं वचनमब्रवीत्॥५६॥

तृतीय मनोहारी प्रतिमा स्वर्णवर्णाभ थी। उसके नेत्र पद्मपलाश जैसे थे। उसने रंगबिरंगे वस्त्र धारण किये थे। वह हार-केयूर भूषित, विचित्र आभरण से सज्जित रत्नहार धारिणी, स्थूल-उन्नत स्तनों वाली मनोहारिणी सुभद्रा मूर्त्ति थी। जिसे विश्वकर्मा ने बनाया था। राजा ने देखा कि दिव्य वस्त्रों के जोड़े से ढंकी, नाना रत्नों से अलंकृत, सर्वलक्षणयुक्त मनोरम तीन प्रतिमायें क्षणों में ही बन गयीं! यह अद्भुद् घटना देख कर राजा विस्मयविमुग्ध होकर कहने लगे।।५३-५६।।

इन्द्रद्युम्न उवाच

किं देवौ समनुप्राप्तौ द्विजरूपधरावुभौ। उभौ चाद्भुतकर्माणौ देववृत्तावमानुषौ॥५७॥
देवौ वा मानुषौ वाऽपि यक्षविद्याधरौ युवाम्।
किन्नु ब्रह्महृषीकेशौ किं वसू किमुताश्विनौ॥५८॥
न वेद्मि सत्यद्भावौ मायारूपेण संस्थितो।
युवां गतोऽस्मि शरणमात्मा तु मे प्राकश्यताम्॥५९॥

इति श्री महापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभ्वृषिसंवादे प्रतिमोत्पत्तिकथनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५०।।



राजा कहते हैं—क्या आप लोग ब्राह्मणरूपी देवता हैं? अथवा अद्भुद कर्मा देवचरित्र वाले मानव हैं? आप लोग देवता, मनुष्य, यक्ष, विद्याधर, ब्रह्मर्षि, अश्विनीकुमारद्वय, जो कोई क्यों न हों, आपका रहस्य मैं नहीं जानता! आप माया में स्थित हैं। मैं आपकी शरण लेता हूं। आप आत्मप्रकाश करिये।।५७-५९।।

।।पञ्चाशत्तम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पुरुषोत्तम क्षेत्र में तीनों मूर्त्ति की स्थापना, इन्द्रद्युम्न का विष्णुपद गमन, पञ्चतीर्थ वर्णन

श्रीभगवानुवाच

नाहं देवो न यक्षो वा न दैत्यो न च देवराट्।
न ब्रह्मा न च रुद्रोऽहं विद्धि मां पुरुषोत्तमम्॥१॥

अर्तिहा सर्वलोकानामनन्तबलपौरुषः। आराधनीयो भूतानामन्तो यस्य न विद्यते॥२॥
पठ्यते सर्वशास्त्रेषु वेदान्तेषु निगद्यते। यमाहुर्ज्ञानगम्येति वासुदेवेति योगिनः॥३॥
अहमेव स्वयं ब्रह्मा अहं विष्णु शिवोऽप्यहम्। इन्द्रोऽहं देवराजश्च जगत्संयमनो यमः॥४॥

भगवान् कहते हैं—मैं देव, यक्ष, दैत्य, देवराज इन्द्र, ब्रह्मा अथवा रुद्र कोई नहीं हूं। मुझे तुम पुरुषोत्तम ही जानो। मैं सबकी आर्त्ति का हरण करने वाला पुरुषोत्तम हूं। मेरा बल-पौरुष अनन्त है। मैं सभी प्राणियों द्वारा आराधनीय हूं। मेरा अन्त नहीं है। मेरा वर्णन सभी शास्त्र में है। वेदान्त आदि ग्रन्थों में मेरा ही प्रतिपादन है। योगी लोग मुझे ही ज्ञानगम्य तथा वासुदेव कहते हैं। मैं ही ब्रह्मा-विष्णु-शिव तथा देवराज इन्द्र और जगत् का संयमिता यमराज हूं।।१-४।।

पृथिव्यादीनि भूतानि त्रेताग्निर्हुतभुङ्नृप। वरुणोऽपां पतिश्चाहं धरित्री च महीधरः॥५॥
यत्किञ्चिद्वाङ्मयं लोके जगत्स्थावरजङ्गमम्। चराचरं च यद्विश्वं मदन्यन्नास्ति किञ्चन॥६॥
प्रीतोऽहं ते नृपश्रेष्ठ वरं वरय सुव्रत। यदिष्टं तत्प्रयच्छामि हृदि यत्ते व्यवस्थितम्॥७॥
मद्दर्शनमपुण्यानां स्वप्नान्तेऽपि न जायते। त्वं पुनर्दृढभक्तित्वात्प्रत्यक्षं दृष्टवानसि॥८॥

हे राजन्! पृथिवी आदि पंचभूत, त्रेताग्नि (तीनों अग्नि जो आहुति ग्रहण करता है) वह भी मैं ही हूं। मैं जलपति वरुण, धरती, पर्वत, सब मैं ही हूं। त्रिभुवन में जो कुछ भी वाङ्मय है, जो कुछ स्थावर-जंगम चराचर विश्व है, वह सब भी मैं हूं। मेरे अतिरिक्त कुछ का भी अस्तित्व नहीं है। हे नृपप्रवर! सुव्रत! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हो गया। तुम वर मांगो। तुम्हारा जो वांछित है अथवा तुमने हृदय में जो कुछ निश्चय किया है, वह सब मैं तुमको देता हूं। जो पुण्यहीन हैं, वे स्वप्न में भी मेरा दर्शन नहीं पा सकते। तुम दृढ़ भक्तिशाली हो, तभी तुम मुझे प्रत्यक्ष कर सके।।५-८।।

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वैवं वासुदेवस्य वचनं तस्य भो द्विजाः।
रोमाञ्चिततनुर्भूत्वा इदं स्तोत्रं जगौ नृपः॥९॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे द्विजगण! वासुदेव का यह वाक्य सुनकर राजा रोमांचित हो गये तथा वे प्रभु का स्तव करने लगे।।९।।

राजोवाच

श्रियः कान्त नमस्तेऽस्तु श्रीपते पीतवाससे।
श्रीद श्रीश श्रीनिवास नमस्ते श्रीनिकेतन॥१०॥

आद्यं पुरुषमीशानं सर्वेशं सर्वतोमुखम्। निश्कलं परमं देवं प्रणतोऽस्मि सनातनम्॥११॥
शब्दातीतं गुणातीतं भावाभावविवर्जितम्। निर्लेपं निर्गुणं सूक्ष्मं सर्वज्ञं सर्वभावनम्॥१२॥
प्रावृण्मेघप्रतीकाशं गोब्राह्मणहिते रतम्। सर्वेषामेव गोप्तारं व्यापिनं सर्वभाविनम्॥१३॥
शङ्खचक्रधरं देवं गदामुशलधारिणम्। नमस्ये वरदं देवं नीलोत्पलदलच्छविम्॥१४॥
नागपर्यङ्कशयनं क्षीरोदार्णवशायिनम्। नमस्येऽहं हृषीकेशं सर्वपापहरं हरिम्॥१५॥
पुनस्त्वां देवदेवेश नमस्ये वरदं विभुम्। सर्वलोकेश्वरं विष्णुं मोक्षकारणमव्ययम्॥१६॥

राजा कहते हैं—हे श्रीकान्त, श्रीपति! आप पीतवस्त्रधारी हैं। आपको नमस्कार! हे श्रीप्रद, श्रीश, श्रीनिवास, श्रीनिकेतन! आपको नमस्कार! आप आद्य, ईशान, पुरुष, सर्वेश, सर्वतोमुख, निष्कल, सनातन, परमदेव, शब्दातीत, गुणातीत, भावाभाव विवर्जित, निर्लेप, निर्गुण, सूक्ष्म, सर्वज्ञ, सर्वभावन, वर्षाकालीन मेघ के समान श्यामवर्ण, गो-ब्राह्मण के हित में निरत, सबसे गुप्त, सर्वव्यापी, सर्वभावन, शंख-चक्रधारी, गदा-मूसलधारी, नीलोत्पलदल की कान्ति वाले, वरप्रद तथा देवाधिदेव हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूं! आप क्षीरसागर में सर्पशय्या पर शयन करने वाले हृषीकेश हैं। आप सभी पापों का हरण करने वाले हरि हैं। हे देवदेवेश! आप वर देने वाले, विभु, सभी लोकों के ईश्वर, मोक्षकारण, अव्यय, विष्णु हैं। आपको मैं पुनः-पुनः नमस्कार करता हूं!।।१०-१६।।

ब्रह्मोवाच

एवं स्तुत्वा तु तं देवं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः। उवाच प्रणतो भूत्वा निपत्य धरणीतले॥१७॥

ब्रह्मा कहते हैं—राजा ने एवंविध स्तव तथा प्रणामोपरान्त हाथ जोड़कर विनय के साथ दण्डवत् किया तथा कहने लगे।।१७।।

राजोवाच

प्रीतोऽसि यदि मे नाथ वृणोमि वरमुत्तमम्। देवासुराः सगन्धर्वा यक्षरक्षोमहोरगाः॥१८॥
सिद्धविद्याधराः साध्याः किन्नरा गुह्यकास्तथा।
ऋषयो ये महाभागा नानाशास्त्रविशारदाः॥१९॥
परिव्राड्योगयुक्ताश्च वेदतत्त्वार्थचिन्तकाः। मोक्षमार्गविदो येऽन्ये ध्यायन्ति परमं पदम्॥२०॥
निर्गुणं निर्मलं शान्तं यत्पश्यन्ति मनीषिणः।
तत्पदं गन्तुमिच्छामि त्वत्प्रासादात्सुदुर्लभम्॥२१॥

राजा कहते हैं—हे नाथ! यदि आप प्रसन्न हैं, तब मैं प्रार्थना करता हूं कि देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, महासर्प, सिद्ध, विद्याधर, साध्य, किन्नर, गुह्यक, महाभाग ऋषि, नाना शास्त्रज्ञ साधुगण, परिव्राजक,

योगी तथा अन्य वेद-तत्वचिन्तक, मोक्षमार्गदर्शी, मनीषीगण जिन निर्गुण-निर्मल, शान्त, परमपद का ध्यान तथा दर्शन करते रहते हैं, मैं आपकी कृपा से उस दुर्लभ परमपद को पाना चाहता हूं।।१८-२१।।

श्रीभगवानुवाच

सर्वं भवतु भद्रं ते यथेष्टं सर्वमाप्नुहि। भविष्यति यथाकामं मत्प्रसादान्न संशयः॥२२॥
दश वर्षसहस्राणि तथा नव शतानि च। अविच्छिन्नं महाराज्यं कुरु त्वं नृपसत्तम॥२३॥
प्रयास्यसि पदं दिव्यं दुर्लभं यत्सुरासुरैः। पूर्णमनोरथं शान्तं गुह्यमव्यक्तमव्ययम्॥२४॥
परात्परतरं सूक्ष्मं निर्लेपं निष्कलं ध्रुवम्। चिन्ताशोकविनिर्मुक्तं क्रियाकारणवर्जितम्॥२५॥
तदहं दर्शयिष्यामि ज्ञेयाख्यं परमं पदम्। यं प्राप्य परमानन्दं प्राप्स्यसि परमां गतिम्॥२६॥
कीर्तिश्च तव राजेन्द्र भवत्यत्र महीतले। यावद्घना नभो यावद्यावच्चन्द्रार्कतारकम्॥२७॥
यावत्समुद्राः सप्तैव यावन्मेर्वादिपर्वताः। तिष्ठन्ति दिवि देवाश्च तावत्सर्वत्र चाव्यया॥२८॥

इन्द्रद्युम्नसरो नाम तीर्थं यज्ञाङ्गसम्भवम्।
यत्र स्नात्वा सकृल्लोकः शक्रलोकमवाप्नुयात्॥२९॥
दापयिष्यति यः पिण्डांस्तटेऽस्मिन्सरसः शुभे।
कुलैकविंशमुद्धृत्य शक्रलोकं गमिष्यति॥३०॥

पूज्यमानोऽप्सरोभिश्च गन्धर्वैर्गीतनिस्वनैः। विमानेन वसेत्तत्र यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥३१॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे राजन्! तुम्हारा मंगल हो। तुम समस्त इष्ट वस्तु को प्राप्त करो। मेरी कृपा से निश्चित रूप से तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा। तुम दस हजार नौ सौ वर्ष तक अविच्छिन्न रूप से महाराज पद का उपभोग करो। तदनन्तर तुम सुर-असुरगण के लिये भी दुर्लभ दिव्यपद लाभ करोगे। जो पूर्ण, शान्त, गुप्त, व्यक्त-अव्यक्त, परात्पर, सूक्ष्म, निर्लेप, निष्कल, ध्रुव, चिन्ता तथा शोकरहित, क्रिया-कारण वर्जित है तथा जिसे पाकर तुम परमानन्द गति लाभ करोगे, उस ज्ञेय परमपद को मैं तुमको दिखला दूंगा। हे राजेन्द्र! जब तक आकाश, मेघ, चन्द्र, सूर्य, तारक, सातों समुद्र, मेरु आदि पर्वतों की स्थिति है तथा जब तक देवता स्वर्ग में रहते हैं, तब तक पृथिवी पर तुम्हारी अक्षय कीर्ति फैली रहेगी। इन्द्रद्युम्न सरोवर नामक एक यज्ञांग सम्भूत तीर्थ प्रसिद्ध होगा। उसमें मात्र एक बार स्नान करने से ही मानव इन्द्रलोक जायेंगे तथा चौदह इन्द्रों के राज्यकाल तक अप्सराओं से पूजित तथा गन्धर्वों की गीतध्वनि से आप्यायित होकर विमान में घूमते वहां निवास करेंगे।।२२-३१।।

सरसो दक्षिणे भागे नैर्ऋत्यां तु समाश्रिते। न्यग्रोधस्तिष्ठते तत्र तत्समीपे तु मण्डपः॥३२॥
केतकीवनसंछन्नो नानापादपसङ्कुलः। नारिकेलैरसंख्येयैश्चम्पकैर्बकुलावृतैः॥३३॥
अशोकैः कर्णिकारैश्च पुन्नागैर्नागकेसरैः। पाटलाम्रातसरलैश्चन्दनैर्देवदारुभिः॥३४॥
न्यग्रोधाश्वत्थखदिरैः पारिजातैः सहार्जुनैः। हिन्तालैश्चैव तालैश्च शिंशपैर्बदरैस्तथा॥३५॥
करञ्जैर्लकुचैः प्लक्षैः पनसैर्बिल्वधातुकैः। अन्यैर्बहुविधैर्वृक्षैः शोभितः समलङ्कृतः॥३६॥

इस सरोवर के दक्षिण नैर्ऋत् कोण में एक वटवृक्ष है। उसके समीप का स्थान (मण्डल) केतकी वन से आच्छन्न तथा नाना पादपों से समाकुल है। वहां असंख्य नारियल, चम्पक, बकुल, अशोक, कर्णिकार, पुन्नाग, नागकेशर, पाटल, आम्रात, सरल, चन्दन, देवदारु, बरगद, पीपल, खदिर, पारिजात, अर्जुन, हिन्ताल, ताल, सिरिस, बदर, कटकरेज, लकुच, पाकड़, कटहल, बेल, धातुक तथा अन्य अनेक वृक्ष से वह मण्डप शोभायमान है।।३२-३६।।

आषाढस्य सिते पक्षे पञ्चम्यां पितृदैवते।
ऋक्षे नेष्यन्ति नस्तत्र नीत्वा सप्त दिनानि वै॥३७॥
मण्डपे स्थापयिष्यन्ति सुवेश्याभिः सुशोभनैः। क्रीडाविशेषबहुलैर्नृत्यगीतमनोहरैः॥३८॥
चामरैः स्वर्णदण्डैश्च व्यजनै रत्नभूषणैः।
वीजयन्तस्तथाऽस्मभ्यं स्थापयिष्यन्ति मङ्गलाः॥३९॥
ब्रह्मचारी यतिश्चैव स्नातकाश्च द्विजोत्तमाः।
वानप्रस्था गृहस्थाश्च सिद्धाश्चान्ये च ब्राह्मणाः॥४०॥
नानावर्णपदैः स्तोत्रैर्ऋग्यजुःसामनिस्वनैः।
करिष्यन्ति स्तुतिं राजन्रामकेशवयोः पुनः॥४१॥
ततः स्तुत्वा च दृष्ट्वा च सम्प्रणम्य च भक्तितः।
नरो वर्षायुतं दिव्यं श्रीमद्धरिपुरे वसेत्॥४२॥
पूज्यमानोऽप्सरोभिश्च गन्धर्वैर्गीतनिस्वनैः। हरेरनुचरस्तत्र क्रीडते केशवेन वै॥४३॥
विमानेनार्कवर्णेन रत्नहारेण भ्राजता। सर्वकामैर्महाभोगैस्तिष्ठते भुवनोत्तमे॥४४॥
तपःक्षयादिहाऽऽगत्य मनुष्यो ब्राह्मणो भवेत्।
कोटीधनपतिः श्रीमांश्चतुर्वेदी भवेद्ध्रुवम्॥४५॥

आषाढ़ शुक्ला पञ्चमी के दिन मघा नक्षत्र काल में इस मण्डप में हमारी मूर्त्ति स्थापना करो तथा मांगलिक मन्त्रों से विविध सुन्दर वेशभूषा द्वारा हमें भूषित करके मनोहर क्रीड़ा, नृत्य तथा गीतों से हमें आप्यायित करो और स्वर्णदण्ड वाले रत्नभूषण जटित चामरों द्वारा हमें वीजित करके (पंखा झलना) हमारी स्थापना करो। उस समय ब्रह्मचारी, यति, स्नातक, द्विजवर, वानप्रस्थ, गृहस्थ, सिद्ध तथा अन्य ब्राह्मणों को नाना वर्णपदमय स्तोत्र तथा ऋक्-यजुः-साम निर्घोष द्वारा हमारा स्तव करना चाहिये। हे राजन्! तब लोग बलराम-कृष्ण का दर्शन, प्रणाम तथा भक्तिपूर्ण स्तव करके हरि लोक में दिव्य दस हजार वर्षों तक (दिव्य वर्ष = ३६० मानुष वर्ष) निवास का अवसर पायेंगे। वे वहां हरि के सेवक के रूप में अप्सराओं द्वारा पूजित तथा गन्धर्वों के गीत स्वर से आप्यायित होकर हरि के साथ क्रीड़ा करेंगे। वे भुवनों में उत्तम सूर्यवर्ण विमान, उज्ज्वल रत्नहार तथा सभी महाभोग के उपभोग के पश्चात् तप क्षय होने पर मर्त्यलोक में धनपति, श्रीमान्, चतुर्वेदज्ञ ब्राह्मण होकर जन्म लेंगे।।३७-४५।।

ब्रह्मोवाच

एवं तस्मै वरं दत्त्वा कृत्वा च समयं हरिः। जगामादर्शनं विप्राः सहितो विश्वकर्मणा॥४६॥
स तु राजा तदा हृष्टो रोमाञ्चिततनूरुहः। कृतकृत्यमिवाऽऽत्मानं मेने संदर्शनाद्धरेः॥४७॥
ततः कृष्णं च रामं च सुभद्रां च वरप्रदाम्। रथैर्विमानसंकाशैर्मणिकाञ्चनचित्रितैः॥४८॥
संवाह्य तास्तदा राजा महामङ्गलनिःस्वनैः।
आनयामास मतिमान्सामात्यः सपुरोहितः॥४९॥
नानावादित्रनिर्घोषैर्नानावेदस्वनैः शुभैः। संस्थाप्य च शुभे देशे पवित्रे सुमनोहरे॥५०॥
ततः शुभतिथौ काले नक्षत्रे शुभलक्षणे। प्रतिष्ठां कारयामास सुमुहूर्त्ते द्विजैः सह॥५१॥
यथोक्तेन विधानेन विधिदृष्टेन कर्मणा। आचार्यानुमतेनैव सर्वं कृत्वा महीपतिः॥५२॥
आचार्याय तदा दत्त्वा दक्षिणां विधिवत्प्रभुः।
ऋत्विग्भ्यश्च विधानेन तथाऽन्येभ्यो धनं ददौ॥५३॥
कृत्वा प्रतिष्ठां विधिवत्प्रासादे भवनोत्तमे। स्थापयामास तान्सर्वान्विधिदृष्टेन कर्मणा॥५४॥
ततः सम्पूज्य विधिना नानापुष्पैः सुगन्धिभिः।
सुवर्णमणिमुक्ताद्यैर्नानावस्त्रैः सुशोभनैः॥५५॥
रत्नैश्च विविधैर्दिव्यैरासनैर्ग्रामपत्तनैः। ददौ चान्यान्स विषयान्पुराणि नगराणि च॥५६॥
एवं बहुविधं दत्त्वा राज्यं कृत्वा यथोचितम्।
इष्ट्वा च विविधैर्यज्ञैर्दत्त्वा दानान्यनेकशः॥५७॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे ब्राह्मणवृन्द! भगवान् हरि ने इस प्रकार राजा को वर दिया तथा विश्वकर्मा के साथ ही वे अन्तर्ध्यान हो गये। तब राजा श्रीहरि के दर्शन द्वारा रोमांचित तथा हर्षित स्थिति में स्वयं को कृतार्थ मानने लगे। तत्पश्चात् वे आमात्य तथा पुरोहित के साथ कृष्ण, बलराम तथा सुभद्रा मूर्त्ति को मणि-स्वर्ण जटित विमान के समान रथ पर बैठाकर महान् मंगलघोष करते-करते ले जाने लगे। नाना वाद्यों के घोष तथा वेदध्वनि के साथ शुभ पवित्र देश में उनकी स्थापना करने के उपरान्त द्विजगणों के साथ शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र तथा मुहूर्त्त में राजा ने सविधि इन प्रतिमा की प्रतिष्ठा सम्पन्न किया। राजा ने आचार्यों के मत से सभी कर्म निर्वाह करके सविधि आचार्यों को दक्षिणा प्रदान किया। इस प्रतिष्ठा के उपलक्ष्य में राजा ने अनेक याचकों को भी धन दिया। सविधि मूर्त्ति प्रतिष्ठा के उपरान्त विधानोक्त कर्मों से प्रतिमाओं को उत्तम देवालय में स्थापित करके नाना सुगन्धित पुष्प, सुवर्ण, मणि, मुक्ता, अनेक उत्तम वस्त्र, रत्न, दिव्य आसन, ग्राम, नगर तथा अन्य नाना विषय, पुर आदि दान करने के पश्चात् राज्य करने लगे। उन्होंने न्यायतः शासन के साथ विविध दान भी यज्ञों के साथ दिया।।४६-५७।।

कृतकृत्यस्ततो राजा त्यक्तसर्वपरिग्रहः। जगाम परमं स्थानं तद्विष्णोः परमं पदम्॥५८॥
एवं मया मुनिश्रेष्ठाः कथितो वो नृपोत्तमः। क्षेत्रस्य चैव माहात्म्यं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ॥५९॥

इस कार्य से राजा ने स्वयं को कृतार्थ माना। तदनन्तर उन्होंने सभी परिग्रह का त्याग करके स्वयं विष्णु का परमपद लाभ किया। हे मुनिप्रवरगण! मैंने नृपप्रवर इन्द्रद्युम्न का विवरण तथा क्षेत्र महिमा कहा। अब आप क्या सुनना चाहते हैं?।।५८-५९।।

विष्णुरुवाच

श्रुत्वैवं वचनं तस्य ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
आश्चर्यं मेनिरे विप्राः पप्रच्छुश्च पुनर्मुदा॥६०॥

विष्णुदेव कहते हैं—अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा का कथन सुनकर विप्रों ने आश्चर्य माना तथा वे प्रसन्न मन से प्रश्न करने लगे।।६०।।

मुनय ऊचुः

कस्मिन्काले सुरश्रेष्ठ गन्तव्यं पुरुषोत्तमम्। विधिना केन कर्तव्यं पञ्चतीर्थमिति प्रभो॥६१॥
एकैकस्य च तीर्थस्य स्नानदानस्य यत्फलम्।
देवताप्रेक्षणे चैव ब्रूहि सर्वं पृथक्पृथक्॥६२॥

मुनिगण कहते हैं—हे देवप्रवर! किस काल में पुरुषोत्तम क्षेत्र जाना चाहिये तथा हे प्रभो! किस विधि से पंचतीर्थ कृत्य करना चाहिये? उनमें से प्रत्येक तीर्थ में स्नान-दान तथा देवदर्शन का जो फल मिलता है, उसे पृथक्-पृथक् कहिये।।६१-६२।।

ब्रह्मोवाच

निराहारः कुरुक्षेत्रे पादेनैकेन यस्तपेत्। जितेन्द्रियो जितक्रोधः सप्तसंवत्सरायुतम्॥६३॥
दृष्ट्वा सदा ज्येष्ठशुक्लद्वादश्यां पुरुषोत्तमम्।
कृतोपवासः प्राप्नोति ततोऽधिकतरं फलम्॥६४॥
तस्माज्ज्येष्ठे मुनिश्रेष्ठाः प्रयत्नेन सुसंयतैः। स्वर्गलोकेप्सुविप्राद्यैर्द्रष्टव्यः पुरुषोत्तमः॥६५॥
पञ्चतीर्थं तु विधिवत्कृत्वा ज्येष्ठे नरोत्तमः।
शुक्लपक्षस्य द्वादश्यां पश्येत्तं पुरुषोत्तमम्॥६६॥
ये पश्यन्त्यव्ययं देवं द्वादश्यां पुरुषोत्तमम्।
ते विष्णुलोकमासाद्य न च्यवन्ते कदाचन॥६७॥

ब्रह्मा कहते हैं—कुरुक्षेत्र में सत्तर हजार वर्ष इन्द्रिय संयम द्वारा क्रोध को वशीभूत करके एक पैर पर खड़े होकर निराहार तप से जो फललाभ होता है, उससे अधिक फल ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी के दिन उपवासी रहकर पुरुषोत्तम दर्शन से मिलता है। अतः मुनिप्रवरगण! स्वर्गलोक चाहने वाले ब्राह्मणादि द्विज यत्नतः संयत होकर ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी तिथि पर पुरुषोत्तम दर्शन करें। तीर्थसेवी मनुष्य सविधि पञ्चतीर्थ सेवा करे। वे लोग शुक्ला द्वादशी पर पुरुषोत्तम दर्शन करें। जो द्वादशी तिथि के दिन अव्यय देव पुरुषोत्तम का दर्शन करता है, वह विष्णु लोक जाने पर कदापि वहां से च्युत नहीं होता।।६३-६७।।

तस्माज्ज्येष्ठे प्रयत्नेन गन्तव्यं भो द्विजोत्तमाः।
कृत्वा तस्मिन्पञ्चतीर्थं द्रष्टव्यः पुरुषोत्तमः॥६८॥
सुदूरस्थोऽपि यो भक्त्या कीर्तयेत्पुरुषोत्तमम्।
अहन्यहनि शुद्धात्मा सोऽपि विष्णुपुरं व्रजेत्॥६९॥
यात्रां करोति कृष्णस्य श्रद्धया यः समाहितः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं व्रजेन्नरः॥७०॥
चक्रं दृष्ट्वा हरेर्दूरात्प्रासादोपरि संस्थितम्।
सहसा मुच्यते पापान्नरो भक्त्या प्रणम्य तत्॥७१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे पुरुषोत्तमवर्णनं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५१॥



हे ब्राह्मणवृन्द! महाज्येष्ठ काल में यत्नतः पुरुषोत्तम क्षेत्र में जाना चाहिये तथा वहां पंचतीर्थकृत्य का अनुष्ठान करके पुरुषोत्तम दर्शन विहित है। जो मनुष्य दूर रहकर भी नित्य शुद्ध होकर भक्तिभाव से पुरुषोत्तम का नाम जप-कीर्त्तन करता है तथा जो सश्रद्ध भाव से विष्णु यात्रा विधान करता है, उसे विष्णु प्राप्ति होती है। वह सभी पापों से छूट जाता है। पुरुषोत्तम धाम के शिखर पर जो चक्र है, उसे दूर से भी देख कर प्रणाम करे। इससे सभी पापों से छुटकारा मिलता है।।६८-७१।।

।।एकपञ्चाश अध्याय समाप्त।।



अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेय का उपाख्यान, मार्कण्डेय द्वारा वटवृक्षादि का दर्शन

ब्रह्मोवाच

आसीत्कल्पे मुनिश्रेष्ठाः सम्प्रवृत्ते महाक्षये। नष्टेऽर्कचन्द्रे पवने नष्टे स्थावरजङ्गमे॥१॥
उदिते प्रलयादित्ये प्रचण्डे घनगर्जिते। विद्युदुत्पातसङ्घातैः सम्भग्ने तरुपर्वते॥२॥
लोके च संहृते सर्वे महदुल्कानिबर्हणे। शुष्केषु सर्वतोयेषु सरःसु च सरित्सु च॥३॥
ततः संवर्तको वह्निर्वायुना सह भो द्विजाः। लोकं तु प्राविशत्सर्वमादित्यैरुपशोभितम्॥४॥
पश्चात्स पृथ्वीं भित्त्वा प्रविश्य च रसातलम्। देवदानवयक्षाणां भयं जनयते महत्॥५॥

निर्दहन्नागलोकं च यच्च किञ्चित्क्षिताविह।
अधस्तान्मुनिशार्दूलाः सर्वं नाशयते क्षणात्॥६॥
ततो योजनविंशानां सहस्राणि शतानि च। निर्दहत्याशुगो वायुः स च संवर्तकोऽनलः॥७॥
सदेवासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम्। ततो दहति संदीप्तः सर्वमेव जगत्प्रभुः॥८॥

ब्रह्मा कहते हैं—पूर्वकाल में महाप्रलय होने पर काल का अत्यन्त भीषण रूप था। चन्द्र, सूर्य, स्थावर, जंगम कुछ भी नहीं बचा था। तब प्रलयादित्य उदित हो गये। प्रचण्ड घनगर्जन सुनाई देने लगा। वैद्युताग्नि गिरने से तरु-पर्वत सभी चूर्ण-विचूर्ण थे। सभी लोकों का नाश हो गया था। बृहत् उल्कायें गिर रही थीं। सरिता-सागरादि समस्त जलाशय सूख गये। हे ब्राह्मणवृन्द! उस समय पवन एवं प्रलयसूर्य के संयोग से भीषण संवर्त्तक अग्नि का जन्म हो गया। इसने पृथिवी भेदन द्वारा रसातल में प्रवेश करके देव, दानव, यक्षों को महा भयभीत कर दिया। इसके प्रभाव से नागलोक पूर्णतः जल गया। पृथिवी पर का भी सब कुछ जल गया। हे मुनिप्रवरगण! अधः-ऊर्ध्व में जहां कहीं भी जो था, वह इस अग्निप्रकोप से क्षण में नष्ट हो गया था। तब क्षिप्रगामी वायु तथा संवर्त्तक अग्नि ने अल्पकाल में ही हजारों-लाखों योजन स्थान जला दिया। उस अग्नि ने देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प सभी प्राणियों को दग्ध कर दिया।।१-८।।

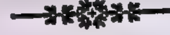
प्रदीप्तोऽसौ महारौद्रः कल्पाग्निरिति संश्रुतः। महाज्वालो महार्चिष्मान्सम्प्रदीप्तमहास्वनः॥९॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशो ज्वलन्निव स तेजसा। त्रैलोक्यं चादहत्तूर्णं ससुरासुरमानुषम्॥१०॥
एवंविधे महाघोरे महाप्रलयदारुणे। ऋषिः परमधर्मात्मा ध्यानयोगपरोऽभवत्॥११॥
एकः सन्तिष्ठते विप्रा मार्कण्डेयेति विश्रुतः। मोहपाशैर्निबद्धोऽसौ क्षुत्तृष्णाकुलितेन्द्रियः॥१२॥
स दृष्ट्वा तं महावह्निं शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः।
तृष्णार्तः प्रस्खलन्विप्रास्तदाऽसौ भयविह्वलः॥१३॥

यह प्रचण्ड प्रदीप्त महारौद्र कल्पाग्नि था। इसने महाज्वाल महार्चिष्मान् रूप से प्रदीप्त होकर सुर-असुर-नर से भरे त्रैलोक्य को सहसा पूर्णतः जला दिया। हे विप्रगण! हमने सुना है कि ऐसे महाघोर संकट में एकमात्र महर्षि मार्कण्डेय ध्यानावस्थित थे। तथापि ये भी मोहपाश में आबद्ध होकर क्षुधा-तृष्णा से विकल हो गये। इस महान् अग्नि को देखने के कारण उनका कण्ठ-ओठ-तालु सूख गया। वे प्यास तथा भय से विह्वल हो गये। वे चलने में लड़खड़ा जाते थे। वे भयविह्वल थे।।९-१३।।

बभ्राम पृथिवीं सर्वां कांदिशीको विचेतनः। त्रातारं नाधिगच्छन्वै इतश्चेतश्च धावति॥१४॥
न लेभे च तदा शर्म यत्र विश्राम्यता द्विजाः।
करोमि किं न जानामि यस्याहं शरणं व्रजे॥१५॥
कथं पश्यामि तं देवं पुरुषेशं सनातनम्। इति सञ्चिन्तयन्देवमेकाग्रेण सनातनम्॥१६॥
प्राप्तवांस्तत्पदं दिव्यं महाप्रलयकारणम्। पुरुषेशमिति ख्यातं वटराजं सनातनम्॥१७॥
त्वरायुक्तो मुनिश्चासौ न्यग्रोधस्यान्तिकं ययौ।
आसाद्य तं मुनिश्रेष्ठास्तस्य मूले समाविशत्॥१८॥

न कालाग्निभयं तत्र न चाङ्गारप्रवर्षणम्। न संवर्तागमस्तत्र न च वज्राशनिस्तथा॥१९॥

इति श्री महापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे मार्कण्डेयेन वटदर्शनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५२॥



वे चेतनारहित से तथा किंकर्त्तव्यविमूढ़ हालत में समस्त पृथिवी पर भटकने लगे। उन्होंने कहीं भी अपना कोई रक्षक नहीं पाया। वे दौड़ रहे थे। वे जहां भी विश्रान्त होना चाहते, कहीं भी सुख नहीं मिलता। उन्होंने विचार किया कि अब क्या करूं? कहां जाकर किसकी शरण ग्रहण करूं? वे कुछ भी समझ नहीं पा रहे थे कि कैसे उन सनातन पुरुषोत्तम का दर्शन मिले? इस प्रकार एकाग्रता पूर्वक महाप्रलय के कारणभूत सनातन परम ब्रह्म का चिन्तन करते हुये उनको पास में ही पुरुशेष नाम वाला एक उत्तम बरगद वृक्ष दिखाई पड़ा। उसे देखते ही मार्कण्डेय शीघ्रता के साथ उस वटवृक्ष के पास गये। वे वहां जाकर उसकी जड़ के पास बैठे। वहां देखते हैं कि वहां कालाग्नि का भय, अंगारवर्षा, वज्रपात, संवर्त्ताग्नि आदि कुछ भी नहीं है।।१४-१९।।

।।द्विपञ्चाश अध्याय समाप्त।।



अथ त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेय को भगवान् का दर्शन

ब्रह्मोवाच

ततो गजकुलप्रख्यास्तडिन्मालाविभूषिताः। समुत्तस्थुर्महामेघा नभस्यद्भुतदर्शनाः॥१॥

केचिन्नीलोत्पलश्यामाः केचित्कुमुदसन्निभाः।

केचित्किञ्जल्कसङ्काशाः केचित्पीताः पयोधराः॥२॥

केचिद्धरितसङ्काशाः काकाण्डसन्निभास्तथा। केचित्कमलपत्राभाः केचिद्धिङ्गुलसन्निभाः॥३॥

केचित्पुरवराकाराः केचिद्गिरिवरोपमाः। केचिदञ्जनसङ्काशाः केचिन्मरकतप्रभाः॥४॥

विद्युन्मालापिनद्धाङ्गाः समुत्तस्थुर्महाघनाः। घोररूपा महाभागा घोरस्वननिनादिताः॥५॥

ततो जलधराः सर्वे समावृण्वन्नभस्तलम्। तैरियं पृथिवी सर्वा सपर्वतवनाकरा॥६॥

आपूरिता दिशः सर्वाः सलिलौघपरिप्लुताः। ततस्ते जलदा घोरा वारिणा मुनिसत्तमाः॥७॥

सर्वतः प्लावयामासुश्चोदिताः परमेष्ठिना। वर्षमाणा महातोयं पूरयन्तो वसुन्धराम्॥८॥

सुघोरमशिवं रौद्रं नाशयन्ति स्म पावकम्। ततो द्वादश वर्षाणि पयोदाः समुपप्लवे॥९॥

धाराभिः पूरयन्तो वै चोद्यमाना महात्मना।
ततः समुद्राः स्वां वेलामतिक्रामन्ति भो द्विजाः॥१०॥

ब्रह्मा कहते हैं—तत्पश्चात् आकाश में तड़ित्माला मण्डित तथा गजेन्द्र के समान अद्भुत आकार के महामेघ आकाश में उदित हो गये। इन सभी मेघों में कुछ नीलकमल जैसे श्यामवर्ण थे, कुछ कुमुद के समान, कुछ किंजल्कवत्, कुछ पीतवर्ण, कुछ हरितवर्ण, कुछ कौये के अण्डे के समान, कुछ पद्मपलाश जैसे, कुछ हिंगुल वर्णाभ थे। कुछ बड़े नगर ऐसे विस्तार वाले थे। कुछ पर्वत के समान थे। कुछ में मरकत की प्रभा थी। कुछ के अंग विद्युन्माला मण्डित थे। हे महाभागगण! ये सभी महामेघ घोरतर गर्जन के साथ उठे। तब इन मेघों ने एक साथ आकाश को आवृत कर लिया। यह सशैल वन कानना समस्त धरा जलदजाल से भर उठी। जलप्रवाह से सभी दिशायें भर गईं। हे मुनिप्रवरगण! इस घोराकृति जलदजाल से जलवर्षण द्वारा सभी स्थान प्लावित हो उठे। परमेष्ठि द्वारा प्रेरित होकर उन्होंने महाजलवर्षण से वसुधा कों पूरित करके अमंगलकारी भीषण अग्नि को शान्त कर दिया था। तब बारह वर्ष तक लगातार वर्षा होती रही। इस धाराप्रवाह वर्षण से सभी समुद्र पूर्ण हो गये। हे द्विजगण! जलाधिक्य से सागर अपनी सीमा लांघने लगे।।१-१०।।

पर्वताश्च व्यशीर्यन्त मही चाप्सु निमज्जति।
सर्वतः सुमहाभ्रान्तास्ते पयोदा नभस्तलम्॥११॥
संवेष्टयित्वा नश्यन्ति वायुवेगसमाहताः। ततस्तं मारुतं घोरं स विष्णुर्मुनिसत्तमाः॥१२॥
आदिपद्मालयो देवः पीत्वा स्वपिति भो द्विजाः।
तस्मिन्नेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे॥१३॥
नष्टे देवासुरनरे यक्षराक्षसवर्जिते। ततो मुनिः स विश्रान्तो ध्यात्वा च पुरुषोत्तमम्॥१४॥
ददर्श चक्षुरुन्मील्य जलपूर्णां वसुन्धराम्।
नापश्यत्तं वटं नोर्वीं न दिगादि न भास्करम्॥१५॥
न चन्द्रार्काग्निपवनं न देवासुरपन्नगम्। तस्मिन्नेकार्णवे घोरे तमोभूते निराश्रये॥१६॥
निमज्जन्स तदा विप्राः सन्तर्तुमुपचक्रमे।
बभ्रामासौ मुनिश्चाऽऽर्त इतश्चेतश्च सम्प्लवन्॥१७॥
निममज्ज तदा विप्रास्त्रातारं नाधिगच्छति। एवं तं विह्वलं दृष्ट्वा कृपया पुरुषोत्तमः।
प्रोवाच मुनिशार्दूलास्तदा ध्यानेन तोषितः॥१८॥

इस वर्षा से पर्वत विशीर्ण हो चले। ये मेघ आकाश में सभी स्थानों को घेर कर सतत् भ्रमण करने लगे। अन्त में प्रबल वायुवेग से आहत होकर ये सभी विनष्ट हो गये। हे मुनिप्रवरगण! आदि कमल के आधार देवाधिदेव विष्णु ने तब इस भीषण मारुत का पान किया और वे भयानक एकार्णव में शयनरत हो गये। तब स्थावर-जंगम नष्ट थे। देव-असुर, यक्ष-राक्षस किसी का भी अस्तित्व नहीं बचा। उस समय मार्कण्डेय ऋषि ने विश्रामोपरान्त पुरुषोत्तम का ध्यान करके नेत्रों को खोल कर देखा कि वसुन्धरा जल के कारण जलाकार हो गयी। वे अब अपने आश्रय वटवृक्ष, पृथिवी, दिशायें, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, पवन, असुर, पन्नग आदि किसी को भी

नहीं देख पा रहे थे। इस घोर एकार्णव में कहीं आश्रय नहीं था। सर्वत्र तमः ही था। हे ब्राह्मणों! उस समय वे मुनिप्रवर एकार्णव जल में डूबने पर निकलने का प्रयत्न करने लगे। तथापि इनकी चेष्टा व्यर्थ हो गयी। तब वे आर्त्तभाव से उस जल में डूबते-उतराते भटकने लगे। कोई बचाने वाला न पाकर वे जल में अन्ततः डूब गये। उनको इस प्रकार विह्वल देखकर ध्यानभावित पुरुषोत्तम ने कृपा पूर्वक कहा—॥११-१८॥

श्रीभगवानुवाच

वत्स श्रान्तोऽसि बालस्त्वं भक्तस्त्वं मम सुव्रत।
आगच्छाऽऽगच्छ शीघ्रं त्वं मार्कण्डेय ममान्तिकम्॥१९॥
मा त्वयैव च भेतव्यं सम्प्राप्तोऽसि ममाग्रतः।
मार्कण्डेय मुने धीर बालस्त्वं श्रमपीडितः॥२०॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे वत्स, सुव्रत बालक! तुम थक गये हो। तुम मेरे भक्त हो। मार्कण्डेय! शीघ्र मेरे पास आओ। हे धीर मुनि मार्कण्डेय! तुम बालक तथा श्रम पीड़ित हो। कोई भय मत करो। तुम मेरे पास आये हो॥१९-२०॥

ब्रह्मोवाच

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मुनिः परमकोपितः। उवाच स तदा विप्रा विस्मितश्चाभवन्मुहुः॥२१॥

ब्रह्मा कहते हैं—भगवान् का कथन सुनकर महर्षि पहले तो परम क्रोधित हो गये, तदनन्तर विस्मित होकर उन्होंने कहा—॥२१॥

मार्कण्डेय उवाच

कोऽयं नाम्ना कीर्तयति तपः परिभवन्निव। बहुवर्षसहस्राख्यं धर्षयन्निव मे वपुः॥२२॥
न ह्येष समुदाचारो देवेष्वपि समाहितः। मां ब्रह्मा स च देवेशो दीर्घायुरिति भाषते॥२३॥
कस्तपो घोरशिरसो ममाद्य त्यक्तजीवितः।
मार्कण्डेयेति चोक्त्वा मन्मृत्युं गन्तुमिहेच्छति॥२४॥

महर्षि मार्कण्डेय कहते हैं—कौन है जो मेरे तपबल की अवज्ञा करके मेरा नाम लेकर मुझे पुकार रहा है? यह व्यक्ति तो मेरे हजारों वर्षव्यापी जीवन काल के प्रति घृणा प्रकट करता है। ऐसा व्यवहार तो देवसमाज में नहीं होता। देवदेव ब्रह्मा मुझे दीर्घायु कहकर पुकारते हैं। कौन अल्पायु विगत आयु व्यक्ति मुझे केवल मार्कण्डेय कहकर अपनी मृत्यु चाहता है?॥२२-२४॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तदा विप्राश्चिन्ताविष्टोऽभवन्मुनिः।
किं स्वप्नोऽयं मया दृष्टः किंवा मोहोऽयमागतः॥२५॥
इत्थं चिन्तयतस्तस्य उत्पन्ना दुःखहा मतिः।
व्रजामि शरणं देवं भक्त्याऽहं पुरुषोत्तमम्॥२६॥

स गत्वा शरणं देवं मुनिस्तद्गतमानसः। ददर्श तं वटं भूयो विशालं सलिलोपरि॥२७॥
शाखायां तस्य सौवर्णं विस्तीर्णायां महाद्भुतम्।
रुचिरं दिव्यपर्यङ्कं रचितं विश्वकर्मणा॥२८॥
वज्रवैदूर्यरचितं मणिविद्रुमशोभितम्। पद्मरागादिभिर्जुष्टं रत्नैरन्यैरलङ्कृतम्॥२९॥
नानास्तरणसंवीतं नानारत्नोपशोभितम्। नानाश्चर्यसमायुक्तं प्रभामण्डलमण्डितम्॥३०॥
तस्योपरि स्थितं देवं कृष्णं बालवपुर्धरम्। सूर्यकोटिप्रतीकाशं दीप्यमानं सुवर्चसम्॥३१॥
चतुर्भुजं सुन्दराङ्गं पद्मपत्रायतेक्षणम्। श्रीवत्सवक्षसं देवं शङ्खचक्रगदाधरम्॥३२॥
वनमालावृतोरस्कं दिव्यकुण्डलधारिणम्। हारभारार्पितग्रीवं दिव्यरत्नविभूषितम्॥३३॥
दृष्ट्वा तदा मुनिर्देवं विस्मयोत्फुल्ललोचनः। रोमाञ्चिततनुर्देवं प्रणिपत्येदमब्रवीत्॥३४॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे ब्राह्मणवृन्द! मार्कण्डेय यह कहकर चिन्तातुर हो उठे। उन्होंने सोचा कि "क्या मैंने स्वप्न देखा? अथवा मैं मोहग्रस्त हूं?" वे ऐसी चिन्ता कर ही रहे थे कि उनमें दुःख का ध्वंस करने वाली मति उत्पन्न हो गयी। उन्होंने निश्चित किया कि मैं भक्ति पूर्वक पुरुषोत्तम देवता की शरण लेता हूं। यह निश्चित करके उन मुनिप्रवर ने तद्गत चित्त से पुरुषोत्तम देव की शरण लिया। तब वे देखते हैं कि वह वटवृक्ष पुनः जल पर भासित हो रहा है। उसकी विशाल शाखा पर दिव्य परमाद्भुद् स्वर्ण का पलंग विश्वकर्मा ने रचा था। यह हीरा, प्रवाल, मणि, मुक्ता, पद्मराग तथा अन्य रत्नों से अलंकृत था। नाना आस्तरण से वह आच्छन्न था। वह अनेक दृश्य से भरा था तथा प्रभामण्डल से मण्डित था। उस पलंग पर बालक देह श्रीकृष्णदेव अवस्थित थे। उनकी देहप्रभा कोटि सूर्यवत् समुज्ज्वल थी। वे सुवर्चा, चतुर्भुज, सुन्दरांग, पद्मपत्र के समान आयत नेत्र तथा शंख-चक्र-गदाधारी थे। उनका वक्ष श्रीवत्स तथा वनमाला से मण्डित था। वे दिव्य कुंण्डलधारी थे। उनके गले में उज्ज्वल हार लटक रहा था। वे अनेक प्रकार के दिव्य रत्न से रंजित थे। मुनिप्रवर मार्कण्डेय ने उन देवदेव का दर्शन पाकर विस्मयोत्फुल्ल नेत्र से रोमांचित होकर प्रणाम किया तथा कहा—॥२५-३४॥

मार्कण्डेय उवाच

अहो चैकार्णवे घोरे विनष्टे सचराचरे। कथमेको ह्ययं बालस्तिष्ठत्यत्र सुनिर्भयः॥३५॥

महर्षि मार्कण्डेय कहते हैं—अहो! इस घोर एकार्णव जल में सचराचर समस्त नष्ट हो गया था। यह बालक एकाकी किस प्रकार निर्भय हो गया है?॥३५॥

ब्रह्मोवाच

भूतं भव्यं भविष्यं च जानन्नपि महामुनिः। न बुबोध तदा देवं मायया तस्य मोहितः।
यदा न बुबुधे चैनं तदा खेदादुवाच ह॥३६॥

ब्रह्मा कहते हैं—महामुनि मार्कण्डेय भूत-भविष्यत् तथा वर्त्तमान व्यवहार से अभिज्ञ होकर भी दैवी माया से मोहित होकर तब कुछ भी समझ नहीं पा रहे थे। जब वह कुछ समझ नहीं सके, तब वे दुःख पूर्वक कहने लगे॥३६॥

मार्कण्डेय उवाच

वृथा मे तपसो वीर्यं वृथा ज्ञानं वृथा क्रिया। वृथा मे जीवितं दीर्घं वृथा मानुष्यमेव च॥३७॥
योऽहं सुप्तं न जानामि पर्यङ्के दिव्यबालकम्॥३८॥

महर्षि मार्कण्डेय कहते हैं—मेरा तप, ज्ञान, क्रिया, दीर्घ जीवन तथा मनुष्यत्व वृथा है। यह सब होने पर भी मैं आज इस पलंग पर शायित बालक के सम्बन्ध में कुछ नहीं जान सका।।३७-३८।।

ब्रह्मोवाच

एवं सञ्चिन्तयन्विप्रः प्लवमानो विचेतनः। त्राणार्थं विह्वलश्चासौ निर्वेदं गतवांस्तदा॥३९॥
ततो बालार्कसङ्काशं स्वमहिम्ना व्यवस्थितम्। सर्वतेजोमयं विप्रा न शशाकाभिवीक्षितुम्॥४०॥
दृष्ट्वा तं मुनिमायान्तं स बालः प्रहसन्निव।
प्रोवाच मुनिशार्दूलास्तदा मेघौघनिस्वनः॥४१॥

ब्रह्मा कहते हैं—मुनि मार्कण्डेय अचेतन होकर यही चिन्ता करते-करते उस एकार्णव जल में डूबने लगे। वे अपनी रक्षा हेतु व्याकुलित हो उठे। तब उनमें निराशा उत्पन्न हो गई। हे विप्रगण! वह बालक अपनी महिमा में स्थित था। वह बालसूर्य के समान तथा सर्वतेजोमय था। मुनि मार्कण्डेय तो उसकी ओर आंखें उठाकर भी नहीं देख पा रहे थे। तब बालक ने मार्कण्डेय को डूबते-उतराते देख कर सहास्य मुद्रा में मेघगम्भीर स्वर में कहा—।।३९-४१।।

श्रीभगवानुवाच

वत्स जानामि श्रान्तं त्वां त्राणार्थं मामुपस्थितम्।
शरीरं विश मे क्षिप्रं विश्रामस्ते मयोदितः॥४२॥

बालक रूपी श्रीभगवान् कहते हैं—हे वत्स! मुझे ज्ञात है कि तुम थक गये हो। तुम रक्षा पाने हेतु मेरी शरण में आये हो। शीघ्र मेरे देह में प्रवेश करो। इससे तुमको विश्राम प्राप्त होगा।।४२।।

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा स वचनं तस्य किञ्चिन्नोवाच मोहितः।
विवेश वदनं तस्य विवृतं चावशो मुनिः॥४३॥

इति श्री महापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे मार्कण्डेयप्रलयदर्शनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५३॥

ब्रह्मा कहते हैं—मुनिप्रवर मार्कण्डेय ने भगवान् का वाक्य सुन कर कुछ भी नहीं कहा। वे मोहवश विवश होकर भगवान् के खुले मुंह में प्रवेश कर गये।।४३।।

।।त्रिपञ्चाश अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेय का भगवत-उदर में प्रवेश

ब्रह्मोवाच

स प्रविश्योदरे तस्य बालस्य मुनिसत्तमः। ददर्श पृथवीं कृत्स्नां नानाजनपदैवृताम्॥१॥
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलोदधीन्। ददर्श तान्समुद्रांश्च जम्बु प्लक्षं च शाल्मलम्॥२॥
कुशं क्रौञ्चं च शाकं च पुष्करं च ददर्श सः।
भारतादीनि वर्षाणि तथा सर्वांश्च पर्वतान्॥३॥
मेरुं च सर्वरत्नाढ्यमपश्यत्कनकाचलम्। नानारत्नान्वितैः शृङ्गैर्भूषितं बहुकन्दरम्॥४॥
नानामुनिजनाकीर्णं नानावृक्षवनाकुलम्। नानासत्त्वसमायुक्तं नानाश्चर्यसमन्वितम्॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—मुनिसत्तम मार्कण्डेय ने उस बालक के पेट में प्रविष्ट होकर वहां नाना जनपदों से घिरी समग्र पृथिवी, लवण-इक्षु-सुरा-घृत-दधि-दुग्ध आदि सप्त समुद्रों को, जम्बु-प्लक्ष-शाल्मलि-कुश-क्रौञ्च, पुष्कर-शाक नांमक द्वीपों, भारत आदि वर्षों तथा समस्त पर्वतों एवं रत्नयुक्त मेरु नामक स्वर्णगिरि को देखा। यह सर्वरत्नमण्डित शिखरों वाला, अनेक कन्दराओं वाला, नाना मुनिजन से पूर्ण, नाना वृक्षों से पूर्ण, नाना सत्वसम्पन्न, नाना आश्चर्यमय, व्याघ्र, सिंह, वराह, महिष, गज तथा वानरों से भरा था। इन्द्रादि देववृन्द तथा सिद्ध-चारण-नाग-मुनि-यक्ष तथा अप्सराओं से वह अधिष्ठित था। वह अन्य देवगृहों से सज्जित था। ऐसे सुन्दर सुमेरु गिरि को मार्कण्डेय ने देखा। वहां नाना प्रकार के वृक्ष थे। वह नाना प्राणियों से भरा तथा नाना आश्चर्य समन्वित था।।१-५।।

व्याघ्रैः सिंहैर्वराहैश्च चामरैर्महिषैर्गजैः। मृगैः शाखामृगैश्चान्यैर्भूषितं सुमनोहरम्॥६॥
शक्राद्यैर्विविधैर्देवैः सिद्धचारणपन्नगैः। मुनियक्षाप्सरोभिश्च वृत्तैश्चान्यैः सुरालयैः॥७॥

वहां व्याघ्र, सिंह, वराह, चामर, महिष, हाथी, वानरों से भूषित मनोहर पर्वत था। इन्द्रादि विविध देवता, सिद्ध, चारण, सर्प, मुनि, यक्ष, अप्सराओं एवं देवगृहों से भरा था। वहां अन्य प्राणी भी थे।।६-७।।

ब्रह्मोवाच

एवं सुमेरुं श्रीमन्तमपश्यन्मुनिसत्तमः। पर्यटन्स तदा विप्रस्तस्य बालस्य चोदरे॥८॥
हिमवन्तं हेमकूटं निषधं गन्धमादनम्। श्वेतं च दुर्धरं नीलं कैलासं मन्दरं गिरिम्॥९॥
महेन्द्रं मलयं विन्ध्यं पारियात्रं तयाऽर्बुदम्।
सह्यं च शुक्तिमन्तं च मैनाकं वक्रपर्वतम्॥१०॥

ब्रह्मा कहते हैं—ऐसे श्रीमान् सुमेरु को मुनिसत्तम मार्कण्डेय ने देखा। इस प्रकार मुनि ने बालक के उदर में घूमते हुये वहां सुमेरु, हिमवान्, हेमकूट, गन्धमादन, श्वेत, दुर्धर, नील, कैलास, मन्दर, महेन्द्र, मलय, विन्ध्य, पारियात्र, अर्बुद, शुक्तिमान्, मैनाक तथा वक्र आदि पर्वतों को देखा।।८-१०।।

एताश्चान्याश्च बहवो यावन्तः पृथिवीधराः। ततस्तांस्तु मुनिश्रेष्ठाः सोऽपश्यद्रत्नभूषितान्॥११॥
कुरुक्षेत्रं च पाञ्चालान्मत्स्यान्मद्रान्सकेकयान्।
वाह्लीकान्शूरसेनांश्च काश्मीरांस्तङ्गणान्खसान्॥१२॥
पार्वतीयान्किरातांश्च कर्णप्रावरणान्मरून्। अन्त्यजानन्त्यजातींश्च सोऽपश्यत्तस्य चोदरे॥१३॥
मृगाञ्छाखामृगान्सिंहान्वराहान्सृमराञ्छशान्।
गजांश्चान्यांस्तथा सत्त्वान्सोऽपश्यत्तस्य चोदरे॥१४॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि ग्रामाश्च नगराणि च। कृषिगोरक्षवाणिज्यं क्रयविक्रयणं तथा॥१५॥
शक्रादीन्विबुधाञ्छ्रेष्ठांस्तथाऽन्यांश्च दिवौकसः। गन्धर्वाप्सरसो यक्षानृषींश्चैव सनातनान्॥१६॥
दैत्यदानवसङ्घांश्च नागांश्च मुनिसत्तमाः। सिंहिकातनयांश्चैव ये चान्ये सुरशत्रवः॥१७॥

ऐसे तथा अनेक पर्वतों को उन मुनिश्रेष्ठ ने देखा, जो नाना रत्नों से पूर्ण थे। हे मुनिश्रेष्ठगण! इसके अतिरिक्त कुरुक्षेत्र, पाञ्चाल, मत्स्य, मद्र, केकय, वाह्लीक, शूरसेन, काश्मीर, तङ्गण, खस, पार्वत्य, किरात, कर्णप्रावरण, मरुदेश तथा अन्त्यज, अनन्त्यज आदि जाति, मृग, शाखामृग, सिंह, सृमर, खरहा और हाथी आदि जीवों को, अन्य प्राणियों को तथा पृथिवी स्थित सभी तीर्थ, ग्राम, नगर, कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य, क्रय-विक्रय, इन्द्रादि श्रेष्ठ देव, अन्य देव, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, ऋषि, दैत्य, दानव, नाग तथा सिंहिका पुत्रों (राहु-केतु) तथा अन्य देवशत्रुओं को उस उदर में देखा। उन्होंने अन्य देवशत्रुगण को भी बालक के उदर में देखा।।११-१७।।

यत्किञ्चित्तेन लोकेऽस्मिन्दृष्टपूर्वं चराचरम्।
अपश्यत्स तदा सर्वं तस्य कुक्षौ द्विजोत्तमाः॥१८॥
अथवा किं बहूक्तेन कीर्तितेन पुनः पुनः। ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं यत्किञ्चित्सचराचरम्॥१९॥
भूर्लोकं च भुवर्लोकं स्वर्लोकं च द्विजोत्तमाः। महर्जनस्तपः सत्यमतलं वितलं तथा॥२०॥
पातालं सुतलं चैव वितलं च रसातलम्। महातलं च ब्रह्माण्डमपश्यत्तस्य चोदरे॥२१॥
अव्याहता गतिस्तस्य तदाऽभूद्द्विजसत्तमाः।
प्रसादात्तस्य देवस्य स्मृतिलोपश्च नाभवत्॥२२॥
भ्रममाणस्तदा कुक्षौ कृत्स्नं जगदिदं द्विजाः। नान्तं जगाम देहस्य तस्य विष्णोः कदाचन॥२३॥
यदाऽसौ नाऽगतश्चान्तं तस्य देहस्य भो द्विजाः।
तदा तं वरदं देवं शरणं गतवान्मुनिः॥२४॥
ततोऽसौ सहसा विप्रा वायुवेगेन निःसृतः।
महात्मनो मुखात्तस्य विवृतात्पुरुषस्य सः॥२५॥

इति श्री महापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे मार्कण्डेयस्य भगवत्कुक्षिपरिवर्तनं नाम चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५४॥

किम्बहुना, जगत् में जो कुछ चराचर पदार्थ पूर्व में उन्होंने देखा था (उदर के बाहर देखा था), वह सब उन्होंने उस बालक के कोख में देख लिया अथवा अधिक वही बात दुहराने से क्या लाभ? ब्रह्मा से तृण पर्यन्त जो कुछ चराचर है, सभी को बालक के उदर में महर्षि ने देख लिया। भूर्लोक, भुवर्लोक, महर्लोक, जन, तप, सत्यलोक तथा अतल, तलातल, वितल, रसातल, महातल और समस्त ब्रह्माण्ड उनके उदर में महर्षि मार्कण्डेय ने देखा था। हे द्विजवृन्द! उस समय उनकी गति अव्याहत हो गई तथा देवाधिदेव के प्रभाव से उनकी स्मरणशक्ति लुप्त नहीं थी। हे द्विजगण! उन मुनि ने प्रभु के उदरस्थ समस्त जगत् का भ्रमण किया, तथापि वे उस विष्णुदेह का अन्त नहीं पा सके। हे द्विजप्रवरगण! जब महर्षि किसी भी प्रकार उन वरप्रद देवदेव का अन्त नहीं पा सके, तब वे उनके शरणापन्न हो गये। शरण लेते ही अगले मुहूर्त में ही महर्षि मार्कण्डेय भगवान् के खुले मुखविवर से सहसा वायुवेग से बाहर निकल आये।।१८-२५।।

।।चतुःपञ्चाश अध्याय समाप्त।।



अथ पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेय का भगवान् के मुख से बाहर आना तथा उनके द्वारा स्तुति

ब्रह्मोवाच

स निष्क्रम्योदरात्तस्य बालस्य मुनिसत्तमाः। पुनश्चैकार्णवामुर्वीमपश्यज्जनवर्जिताम्।।१।।
पूर्वदृष्टं च तं देवं ददर्श शिशुरूपिणम्। शाखायां वटवृक्षस्य पर्यङ्कोपरि संस्थितम्।।२।।
श्रीवत्सवक्षसं देवं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम्। जगदादाय तिष्ठन्तं पद्मपत्रायतेक्षणम्।।३।।
सोऽपि तं मुनिमायान्तं प्लवमानमचेतनम्। दृष्ट्वा मुखाद्विनिष्क्रान्तं प्रोवाच प्रहसन्निव।।४।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे मुनिप्रवरगण! मुनिप्रवर मार्कण्डेय बालकरूपी भगवान् के मुख से जब बाहर निकले, तब उन्होंने पुनः जन-प्राणी रहित एकार्णवीकृत (समुद्र में मग्न) धरती को देखा। उन्होंने उसी वटवृक्ष की शाखा पर स्थित पर्यंक पर लेटे पूर्व में देखे गये शिशुरूपी देवदेव को पुनः देखा। वे पुण्डरीकाक्ष, श्रीवत्स चिह्न से अंकित वक्ष वाले, पीतवस्त्रधारी, चतुर्भुज देव समस्त जगत् को कवलित करके वहां अवस्थान कर रहे थे। उधर जब भगवान् ने जो बालक रूपी थे, मुनि मार्कण्डेय को अपने मुख से बाहर आया देखा, तब वे उनसे हास्य पूर्वक कहने लगे।।१-४।।

श्री भगवानुवाच

कच्चित्त्वयोषितं वत्स विश्रान्तं च ममोदरे। भ्रममाणश्च किं तत्र आश्चर्यं दृष्टवानसि।।५।।

भक्तोऽसि मे मुनिश्रेष्ठ श्रान्तोऽसि च ममाऽऽश्रितः।
तेन त्वामुपकाराय सम्भाषे पश्य मामिह॥६॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे वत्स! तुमने मेरे उदर में निवास करके विश्राम तो पा लिया? इस प्रकार से भ्रमण करते हुये क्या कोई आश्चर्य घटना तुमने देखा? हे मुनिप्रवर! तुम मेरे भक्त हो। श्रान्त देख कर मैंने तुमको आश्रय दिया था। अतः मैं तुम्हारे ही उपकारार्थ कहता हूं। तुम मेरा दर्शन करो।।५-६।।

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा स वचनं तस्य संप्रहृष्टतनूरुहः। ददर्श तं सुदुष्प्रेक्षं रत्नैर्दिव्यैरलङ्कृतम्॥७॥
प्रसन्ना निर्मला दृष्टिर्मुहूर्तात्तस्य भो द्विजाः। प्रसादात्तस्य देवस्य प्रादुर्भूता पुनर्नवा॥८॥
रक्ताङ्गुलितलौ पादौ ततस्तस्य सुरार्चितौ। प्रणम्य शिरसा विप्रा हर्षगद्गदया गिरा॥९॥
कृताञ्जलिस्तदा हृष्टो विस्मितश्च पुनः पुनः। दृष्ट्वा तं परमात्मानं संस्तोतुमुपचक्रमे॥१०॥

ब्रह्मा कहते हैं—भगवान् का वाक्य सुनकर मुनिप्रवर मार्कण्डेय हर्ष से पुलकित हो गये थे। उन्होंने तब रत्न-अलंकार मण्डित दुर्लक्ष्य पुरुष की ओर दृष्टिपात किया। हे ब्राह्मणगण! मुहूर्त्त मात्र में महर्षि की दृष्टि विमल तथा पुनः प्रसन्न हो गयी। उन देवदेव की कृपा से उनकी दृष्टि मानों पुनः नवीन तथा प्रकाशमय हो गई। हे ब्राह्मणवृन्द! मुनि मार्कण्डेय भगवान् के लाल उंगलियों से शोभित सुरसेवित चरणद्वय में प्रणाम करके हाथ जोड़कर बारम्बार विस्मय के साथ हर्षगद्गद वाक्य से स्तव करने लगे।।७-१०।।

मार्कण्डेय उवाच

देवदेव जगन्नाथ मायाबालवपुर्धर। त्राहि मां चारुपद्माक्ष दुःखितं शरणागतम्॥११॥
सन्तप्तोऽस्मि सुरश्रेष्ठ संवर्ताख्येन वह्निना। अङ्गारवर्षभीतं च त्राहि मां पुरुषोत्तम॥१२॥
शोषितश्च प्रचण्डेन वायुना जगदामुना। विह्वलोऽहं तथा श्रान्तस्त्राहि मां पुरुषोत्तम॥१३॥
तापितश्च तशामात्यैः (?) प्रलयावर्तकादिभिः।
न शान्तिमधिगच्छामि त्राहि मां पुरुषोत्तम॥१४॥
तृषितश्च क्षुधाऽऽविष्टो दुःखितश्च जगत्पते।
त्रातारं नात्र पश्यामि त्राहि मां पुरुषोत्तम॥१५॥

महर्षि मार्कण्डेय कहते हैं—हे जगन्नाथ! माया से बालक शरीर धारण करने वाले, सुन्दर कमललोचन, देवदेव! मैं शरणागत तथा दुखित हूं। आप मेरी रक्षा करिये। हे सुरप्रवर! मैं संवर्त्ताग्नि से प्रतप्त हूं। मैं उस अंगारवर्षण से भयभीत हूं। हे पुरुषोत्तम! आप मेरी रक्षा करें। मैं अत्यन्त प्रचण्ड ज्वालामय वायु से शुष्क हो गया। मैं विह्वल तथा श्रान्त और प्रलय के आदित्यों एवं आवर्त्तकों से तापित होकर कहीं भी तनिक शान्ति नहीं पा रहा हूं। हे पुरुषोत्तम! कृपा पूर्वक रक्षा करिये। हे जगतपति! मैं तृषित, क्षुधापीड़ित तथा दुःखी होकर किसी को भी अपना रक्षक नहीं पा रहा हूं। हे पुरुषोत्तम! आप मेरी रक्षा करिये।।११-१५।।

अस्मिन्नेकार्णवे घोरे विनष्टे सचराचरे। न चान्तमधिगच्छामि त्राहि मां पुरुषोत्तम॥१६॥

तवोदरे च देवेश मया दृष्टं चराचरम्। विस्मितोऽहं विषण्णश्च त्राहि मां पुरुषोत्तम॥१७॥
संसारेऽस्मिन्निरालम्बे प्रसीद पुरुषोत्तम। प्रसीद विबुधश्रेष्ठ प्रसीद विबुधप्रिय॥१८॥
प्रसीद विबुधां नाथ प्रसीद विबुधालय। प्रसीद सर्वलोकेश जगत्कारणकारण॥१९॥

हे प्रभो! देवेश! यह घोर एकान्त सागर अन्तहीन है। इस घोर एकार्णव में सचराचर विनष्ट हो गया। मैं इसका अन्त नहीं पा रहा हूं। हे पुरुषोत्तम! मेरी रक्षा करिये। हे देव! मैंने आपके उदर में सचराचर देख लिया। उससे मैं खिन्न एवं आश्चर्यान्वित हूं। हे पुरुषोतम! मेरी रक्षा करिये। हे पुरुषोत्तम! इस आश्रयरहित संसार में आप मेरे प्रति प्रसन्न हो जायें। हे देवताओं के प्रिय! देवों के नाथ! देवगण के आश्रय, सर्वलोकेश, जगत् के कारण के भी कारण! मुझ पर आप प्रसन्न हो जायें।।१६-१९।।

प्रसीद सर्वकृद्देव प्रसीद मम भूधर। प्रसीद सलिलावास प्रसीद मधुसूदन॥२०॥
प्रसीद कमलाकान्त प्रसीद त्रिदशेश्वर। प्रसीद कंसकेशिघ्न प्रसीदारिष्टनाशन॥२१॥
प्रसीद कृष्ण दैत्यघ्न प्रसीद दनुजान्तक। प्रसीद मथुरावास प्रसीद यदुनन्दन॥२२॥

हे सर्वदेवेश! भूधर, जल में निवास करने वाले, मधुसूदन, कमलाकान्त, त्रिदशेश्वर, कंस-केशी हन्ता, अरिष्ट असुर नाशक, दैत्यघ्न कृष्ण, दनुजान्तक, मथुरावासी, यदुनन्दन! आप मुझ पर प्रसन्न हो जायें।।२०-२२।।

प्रसीद शक्रावरज प्रसीद वरदाव्यय। त्वं मही त्वं जलं देव त्वमग्निस्त्वं समीरणः॥२३॥

त्वं नभस्त्वं मनश्चैव त्वमहंकार एव च।
त्वं बुद्धिः प्रकृतिश्चैव सत्त्वाद्यास्त्वं जगत्पते॥२४॥
पुरुषस्त्वं जगद्व्यापी पुरुषादपि चोत्तमः।
त्वमिन्द्रियाणि सर्वाणि शब्दाद्या विषयाः प्रभो॥२५॥
त्वं दिक्पालाश्च धर्माश्च वेदा यज्ञाः सदक्षिणाः।
त्वमिन्द्रस्त्वं शिवो देवस्त्वं हविस्त्वं हुताशनः॥२६॥
त्वं यमः पितृराट्देवं त्वं रक्षोधिपतिः स्वयम्।
वरुणस्त्वमपां नाथ त्वं वायुस्त्वं धनेश्वरः॥२७॥
त्वमीशानस्त्वमनन्तस्त्वं गणेशश्च षण्मुखः।
वसवस्त्वं तथा रुद्रास्त्वमादित्याश्च खेचराः॥२८॥
दानवास्त्वं तथा यक्षास्त्वं दैत्याः समरुद्गणाः।
सिद्धाश्चाप्सरसो नागा गन्धर्वास्त्वं सचारणाः॥२९॥

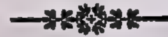
पितरो बालखिल्याश्च प्रजानां पतयोऽच्युत। मुनयस्त्वमृषिगणास्त्वमश्विनौ निशाचराः॥३०॥

अन्याश्च जातयस्त्वं हि यत्किञ्चिज्जीवसंज्ञितम्।
किञ्चात्र बहुनोक्तेन ब्रह्मादिस्तम्बगोचरम्॥३१॥

हे इन्द्र के छोटे भाई, वरप्रद, अव्यय! आप प्रसन्न हों। हे देव! आप पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, नभ हैं। आप मन, अहंकार, बुद्धि, प्रकृति से भी उत्तम पुरुष, सभी इन्द्रियां, शब्दादि विषय, दिक्, काल, धर्म, वेद, दक्षिणामय यज्ञ, इन्द्र, शिव, हविः, हुताशन, पितृराट्, यम, राक्षसाधिपति, जलपति वरुण, धनेश्वर कुबेर, ईशान, अनन्त, गणेश, स्कन्द, वसु, रुद्र, आदित्य, आकाशचारी प्राणी, दानव, यक्ष, दैत्य, मरुद्गण, सिद्ध, अप्सरा, नाग, गन्धर्व, चारण, पितर, बालखिल्य ऋषि, प्रजापतिगण, मुनिगण, ऋषिगण, अश्विनीकुमारगण, निशाचरगण, अन्य जो कुछ जाति एवं जीव-प्राणी हैं, वे सब आप ही हैं। किम्बहुना, ब्रह्मा से लगाकर तृण पर्यन्त जो कुछ भी विद्यमान है, वह सब आपके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है।।२३-३१।।

भूतं भव्यं भविष्यं च त्वं जगत्सचराचरम्।
यत्ते रूपं परं देव कूटस्थमचलं ध्रुवम्॥३२॥
ब्रह्माद्यास्तन्न जानन्ति कथमन्येऽल्पमेधसः।
देव शुद्धस्वभावोऽसि नित्यस्त्वं प्रकृते परः॥३३॥
अव्यक्तः शाश्वतोऽनन्तः सर्वव्यापी महेश्वरः।
त्वमाकाशः परः शान्तो अजस्त्वं विभुरव्ययः॥३४॥
एवं त्वां निर्गुणं स्तोतुं कः शक्नोति निरञ्जनम्।
स्तुतोऽसि यन्मया देव विकलेनाल्पचेतसा।
तत्सर्वं देवदेवेश क्षन्तुमर्हसि चाव्यय॥३५॥

इति श्री महापुराणे आदिब्राह्मे स्वंयभुऋषिसंवादे भगवत्स्तवनिरूपणं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५५।।



आप ही भूत-भविष्यत् तथा वर्त्तमान रूप समस्त काल एवं कालिक व्यवहार भी हैं। हे देव! आपका जो कूटस्थ अचल ध्रुव परम रूप है, उसे ब्रह्मादि देवता नहीं जानते। अतएव मेरे समान अल्प बुद्धि वाले आपको कैसे जान सकते हैं! हे देव! आप शुद्धस्वभाव, नित्य, प्रकृति से अतीत, अव्यक्त, शाश्वत, अनन्त, सर्वव्यापी, महेश्वर, परम शान्त, आकाश, अज, अव्यय, विभु हैं। आप निर्गुण तथा निरंजन पुरुष हैं। आपका स्तव कर सकने में कौन समर्थ है? हे देव! मैंने अल्पबुद्धि होकर भी आपका किंचित् स्तव किया है। इसमें जो भी त्रुटि-विच्युति घटित हो गई हो, हे देवेश! आप उसे क्षमा करिये।।३२-३५।।

।।पञ्चपञ्चाश अध्याय समाप्त।।



अथ षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

विष्णु-मार्कण्डेय का विस्तृत संवाद वर्णन

ब्रह्मोवाच

इत्थं स्तुतस्तदा तेन मार्कण्डेयेन भो द्विजाः। प्रीतः प्रोवाच भगवान्मेघगम्भीरया गिरा॥१॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे द्विजवृन्द! उस समय मार्कण्डेय मुनि द्वारा स्तुत नारायण प्रसन्न हो गये। उन्होंने मेघ के समान गंभीर स्वर में ऋषि से कहा—॥१॥

श्रीभगवानुवाच

ब्रूहि कामं मुनिश्रेष्ठ यत्ते मनसि वर्तते। ददामि सर्वं विप्रर्षे मत्तो यदभिवाञ्छसि॥२॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे मुनिप्रवर! तुम अपना वांछित प्रकट करो। मैं तुम्हारी सभी मनःकामना पूर्ण करूंगा॥२॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा स वचनं विप्राः शिशोस्तस्य महात्मनः। उवाच परमप्रीतो मुनिस्तद्गतमानसः॥३॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे विप्रगण! उन महात्मा शिशु का कथन सुन कर मार्कण्डेय परम प्रसन्न होकर तद्‌गत चित्त से कहने लगे॥३॥

मार्कण्डेय उवाच

ज्ञातुमिच्छामि देव त्वां मायां वै तव चोत्तमाम्। त्वत्प्रसादाच्च देवेश स्मृतिर्न परिहीयते॥४॥

द्रुतमन्तः शरीरेण सततं पर्य (रि) वर्तितम्।
इच्छामि पुण्डरीकाक्ष ज्ञातुं त्वामहमव्ययम्॥५॥

इह भूत्वा शिशुः साक्षात्किं भवानवतिष्ठते। पीत्वा जगदिदं सर्वमेतदाख्यातुमर्हसि॥६॥
किमर्थं च जगत्सर्वं शरीरस्थं तवाऽनघ। कियन्तं च त्वया कालमिह स्थेयमरिन्दम॥७॥
ज्ञातुमिच्छामि देवेश ब्रूहि सर्वमशेषतः। त्वत्तः कमलपत्राक्ष विस्तरेण यथातथम्।
महदेतदचिन्त्यं च यदहं दृष्टवान्प्रभो॥८॥

महर्षि मार्कण्डेय कहते हैं—हे देव! आपकी उत्तम माया मैं जानना चाहता हूं। हे देव! आपकी कृपा से मेरी स्मृति विलुप्त न हो। मैंने आपके उदर में अतीव द्रुत गति से भ्रमण किया था। हे पुण्डरीकाक्ष! आप कौन हैं? यह जानने की मेरी कामना है। आप यहां शिशुरूपेण समस्त जगत् का पान करके क्यों स्थित हैं? हे निष्पाप! यह निखिल जगत् आपके उदर में क्यों रहता है? आप किस काल से यहां रह रहे हैं? हे शत्रुहन्ता, देवदेव! यह सब मैं आपसे विस्तार पूर्वक जानना चाहता हूं। हे कमलनयन! मैंने जो कुछ देखा, वह तो महत् एवं अचिन्तनीय है॥४-८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तः स तदा तेन देवदेवो महाद्युतिः। सान्त्वयन्स तदा वाक्यमुवाच वदतां वरः॥९॥

ब्रह्मा कहते हैं—परम तेजोमय भगवान् से मार्कण्डेय ने जब यह कहा, तब परम वक्ता मुनि को सान्त्वना देते श्रीभगवान् ने कहा—॥९॥

श्रीभगवानुवाच

कामं देवाश्च मां विप्र नहि जानन्ति तत्त्वतः।
तव प्रीत्या प्रवक्ष्यामि यथेदं विसृजाम्यहम्॥१०॥
पितृभक्तोऽसि विप्रर्षे मामेव शरणं गतः।
ततो दृष्टोऽस्मि ते साक्षाद्ब्रह्मचर्यं च ते महत्॥११॥
आपो नारा इति पुरा संज्ञाकर्म कृतं मया।
मया नारायणोऽस्म्युक्तो मम तास्त्वयनं सदा॥१२॥
अहं नारायणो नाम प्रभवः शाश्वतोऽव्ययः।
विधाता सर्वभूतानां संहर्ता च द्विजोत्तम॥१३॥

अहं विष्णुरहं ब्रह्मा शक्रश्चापि सुराधिपः। अहं वैश्रवणो राजा यमः प्रेताधिपस्तथा॥१४॥
अहं शिवश्च सोमश्च कश्यपश्च प्रजापतिः। अहं धाता विधाता च यज्ञश्चाहं द्विजोत्तम॥१५॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे विप्र! देवगण भी मुझे सम्यक्तः नहीं जानते। मैं तुम्हारे प्रति प्रसन्न हूं। मैं जिस प्रकार से सबका सृष्टिकर्त्ता हूं, वह कहता हूं। हे विप्रर्षि! तुम पितृभक्त तथा मेरे शरणागत हो। मैं तुम्हारे प्रति सन्तुष्ट हूं। तुम्हारा असाधारण ब्रह्मचर्य मुझे ज्ञात है। पूर्वकाल में मैंने जल की संज्ञा "नार" निश्चित किया था। वह "नार" (जल) मेरा निवास है। मैं नारायण नाम से सबका आदिकारण हूं। मैं अव्यय, शाश्वत, सब प्राणीगण का विधाता तथा सृष्टि करने वाला हूं। मैं ही विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, वैश्रवण, प्रेतपति, यम, शिव, सोम, प्रजापति कश्यप, धाता, विधाता, यज्ञ हूं।।१०-१५।।

अग्निरास्यं क्षितिः पादौ चन्द्रादित्यौ च लोचने।
द्यौर्मूर्धा खं दिशः श्रोत्रे तथाऽऽपः स्वेदसम्भवाः॥१६॥

सदिशं च नभः कायो वायुर्मनसि मे स्थितः। मया क्रतुशतैरिष्टं बहुभिश्चाऽऽप्तदक्षिणैः॥१७॥

यजन्ते वेदविदुषो मां देवयजने स्थितम्।
पृथिव्यां क्षत्रियेन्द्राश्च पार्थिवाः स्वर्गकाङ्क्षिणः॥१८॥

यजन्ते मां तथा वैश्याः स्वर्गलोकजिगीषवः। चतुःसमुद्रपर्यन्तां मेरुमन्दरभूषणाम्॥१९॥
शेषो भूत्वाऽहमेको हि धारयामि वसुन्धराम्। वाराहं रूपमास्थाय ममेयं जगती पुरा॥२०॥

हे द्विजोत्तम! अग्नि मेरा मुख, पृथिवी पादद्वय, चन्द्र-सूर्य नेत्र, ऊर्ध्वभूमि मस्तक, आकाश तथा दिशा कान हैं। जलराशि स्वेद है। दिक् तथा नभ काया है। वायु मेरे चित्त में है। मैं सैकड़ों-हजारों दक्षिणान्वित यज्ञों

द्वारा पूजित हूं। वेदज्ञ लोग मेरी ही अर्चना करते हैं। पृथिवी पर जो श्रेष्ठ क्षत्रिय तथा राजा स्वर्ग की इच्छा से तथा जिगीषु वैश्य स्वर्गलोक हेतु मेरा पूजन करते हैं। यह मेरु-मन्दर भूषणा, चारों समुद्र से घिरी वसुन्धरा को मैं ही शेषनाग के रूप से धारण करता हूं। पूर्वकाल में जलमग्ना इस वसुन्धरा का मैंने ही वराह रूप धारण करके अपने वीर्य-बल से उद्धार किया था।।१६-२०।।

मज्जमाना जले विप्रवीर्येवणास्मि समुद्धृता।
अग्निश्च वाडवो विप्र भूत्वाऽहं द्विजसत्तम॥२१॥
पिबाम्यपः समाविष्टस्ताश्चैव विसृजाम्यहम्।
ब्रह्मा वक्त्रं भुजौ क्षत्रमूरू मे संश्रिता विशः॥२२॥
पादौ शूद्रा भवन्तीमे विक्रमेण क्रमेण च। ऋग्वेदः सामवेदश्च यजुर्वेदस्त्वथर्वणः॥२३॥
मत्तः प्रादुर्भवन्त्येते मामेव प्रविशन्ति च। यतयः शान्तिपरमा यतात्मानो बुभुत्सवः॥२४॥
कामक्रोधद्वेषमुक्ता निःसङ्गा वीतकल्मषाः। सत्त्वस्था निरहंकारा नित्यमध्यात्मकोविदाः॥२५॥
मामेव सततं विप्राश्चिन्तयन्त उपासते। अहं संवर्तको ज्योतिरहं संवर्तकोऽनलः॥२६॥
अहं संवर्तकः सूर्यस्त्वहं संवर्तकोऽनिलः। तारारूपाणि दृश्यन्ते यान्येतानि नभस्तले॥२७॥
मम वै रोमकूपाणि विद्धि त्वं द्विजसत्तम। रत्नाकराः समुद्राश्च सर्व एव चतुर्दिशः॥२८॥
वसनं शयनं चैव निलयं चैव विद्धि मे। कामः क्रोधश्च हर्षश्च भयं मोहस्तथैव च॥२९॥
ममैव विद्धि रूपाणि सर्वाण्येतानि सत्तम।
प्राप्नुवन्ति नरा विप्र यत्कृत्वा कर्म शोभनम्॥३०॥

हे विप्र! मैं ही बाड़वाग्नि होकर समुद्र जल का पान करता हूं। पुनः उसी में समाविष्ट होकर उस सब की सृष्टि करता हूं। ब्राह्मण मेरे मुखरूप, क्षत्रिय मेरी बाहु, वैश्य मेरे उरु हैं। शूद्र मेरा पद है। ऋक्, साम, यजुः तथा अथर्व—ये चारों वेद मुझसे ही उत्पन्न हैं। ये मुझमें ही (अन्ततः) प्रविष्ट हो जाते हैं। जो समगुणावलम्बी हैं, यतात्मा, तत्वजिज्ञासु, काम-क्रोध-द्वेषरहित, संगहीन, निष्पाप, सत्वस्थ, निरहंकार तथा नियत अध्यात्म कोविद विप्रगण तन्मय भाव से मेरी ही उपासना करते हैं। मैं ही तारा रूप आकाश मण्डल, संवर्त्त ज्योति तथा संवर्त्तक अग्नि हूं। मैं ही संवर्त्तक सूर्य तथा संवर्तक वायु हूं। हे द्विजप्रवर! ये सब मेरे रोमकूप हैं। चारों ओर विस्तृत रत्नाकर समुद्र मेरा वस्त्र, शयनस्थल तथा गृह है। काम, क्रोध, हर्ष, भय, मोह मेरे ही रूप हैं। हे सत्तम! विप्र! जिन शोभन कर्म से मनुष्य मुझे पाते हैं, वह सब मेरा ही रूप है।।२१-३०।।

सत्यं दानं तपश्चोग्रमहिंसां सर्वजन्तुषु। मद्विधानेन विहिता मम देहविचारिणः॥३१॥
मयाऽभिभूतविज्ञानश्चेष्टयन्ति न कामतः। सम्यग्वेदमधीयाना यजन्तो विविधैर्मखैः॥३२॥
शान्तात्मानो जितक्रोधाः प्राप्नुवन्ति द्विजातयः।
प्राप्तुं शक्यो न चैवाहं नरैर्दुष्कृतकर्मभिः॥३३॥
लोभाभिभूतैः कृपणैरनार्यरकृतात्मभिः। तन्मां महाफलं विद्धि नराणां भावितात्मनाम्॥३४॥

सुदुष्प्रापं विमूढानां मां कुयोगनिषेविणाम्।
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति सत्तम॥३५॥
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम्।
दैत्या हिंसानुरक्ताश्च अवध्याः सुरसत्तमैः॥३६॥

मनुष्यगण जिस सत्य, दान, उग्रतप तथा सर्वभूतों में अहिंसा प्रभृति कर्मों से मंगललाभ करते हैं, मैं ही उनके मूल में हूं। देहधारी मेरे ही विधान से सृष्ट हैं। मेरी ही माया द्वारा उनका तत्वविज्ञान तिरोहित होता है तथा मेरी ही इच्छा से उनका तत्व विज्ञान सुचालित भी होता है। वे सभी मेरी ही इच्छा से चालित भी होते हैं। वे मेरे ही देह में विचरण करते हैं। जो सम्यक्तः वेदाध्ययन, विविध यज्ञार्चन करते हैं, वे शान्तचित्त, क्रोधजित् द्विजातिगण मुझे प्राप्त होते हैं। दुष्कृतकर्मा लोग मुझे कदापि नहीं पा सकते। जो लोभ के अभिभूत, कृपण, अनार्य तथा अकृतात्मा हैं, वे भी मुझे नहीं जान पाते। भावितात्मा लोग जिस महाफल को पाते हैं, वह मैं ही हूं। परन्तु विमूढ़, कुयोगी, असत् मार्गगामी के लिये मैं सदा अप्राप्य रहता हूं। जिस काल में तथा जिस समय धर्म की ग्लानि होती है, अधर्म का अभ्युत्थान होता है, तब-तब मैं आविर्भूत हो जाता हूं। जब उत्तम देवगण दारुण दैत्यों तथा हिंसकों का वध नहीं कर पाते।।३१-३६।।

राक्षसाश्चापि लोकेऽस्मिन्यदोत्पत्स्यन्ति दारुणाः।
तदाऽहं संप्रसूयामि गृहेषु पुण्यकर्मणाम्॥३७॥
प्रविष्टो मानुषं देहं सर्वं प्रशमयाम्यहम्। सृष्ट्वा देवमनुष्यांश्च गन्धर्वोरगराक्षसान्॥३८॥
स्थावराणि च भूतानि संहराम्यात्ममायया। कर्मकाले पुनर्देहमनुचिन्त्य सृजाम्यहम्॥३९॥
आविश्य मानुषं देहं मर्यादाबन्धकारणात्। श्वेतःकृतयुगे धर्मः श्यामस्त्रेतायुगे मम॥४०॥
रक्तो द्वापरमासाद्य कृष्णः कलियुगे तथा।
त्रयो भागा ह्यधर्मस्य तस्मिन्काले भवन्ति च॥४१॥
अन्तकाले च सम्प्राप्ते कालो भूत्वाऽतिदारुणः।
त्रैलोक्यं नाशयाम्येकः सर्वं स्थावरजङ्गमम्॥४२॥
अहं त्रिधर्मा विश्वात्मा सर्वलोकसुखावहः।
अभिन्नः सर्वगोऽनन्तो हृषीकेश उरुक्रमः॥४३॥

तब मैं पुण्यकर्मा के गृह में मनुष्य शरीर में जन्म लेता हूं तथा सभी बाधाओं को शान्त कर देता हूं। मैं देव, मनुष्य, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, चराचर निखिल वस्तु की सृष्टि करके पुनः अपनी माया से उसका संहार भी कर देता हूं। कर्म काल में मैं पुनः देहानुचिन्तन द्वारा सब कुछ सृष्ट कर देता हूं। मैं ही धर्ममर्यादा स्थापनार्थ मनुष्य देह धारण करता हूं। सत्ययुग में श्वेत, त्रेता में श्याम, द्वापर में रक्त, कलि में कृष्णवर्ण का शरीर होता है। कलि में तीन भाग अधर्म होता है। प्रलयकाल होने पर मैं ही अति दारुण काल देह धारण करके एकाकी चराचर त्रैलोक्य संहार करता हूं। मैं ही त्रिधर्मा, विश्वात्मा, सर्वलोकसुखावह, अभिन्न, सर्वगामी, अनन्त, हृषीकेश तथा उरुक्रम हूं।।३७-४३।।

कालचक्रं नयाम्येको ब्रह्मरूपं ममैव तत्। शमनं सर्वभूतानां सर्वभूतकृतोद्यमम्॥४४॥

एवं प्रणिहितः सम्यङ्ममाऽऽत्मा मुनिसत्तम।
सर्वभूतेषु विप्रेन्द्र न च मां वेत्ति कश्चन॥४५॥
सर्वलोके च मां भक्ताः पूजयन्ति च सर्वशः।
यच्च किञ्चित्त्वया प्राप्तं मयि क्लेशात्मकं द्विज॥४६॥

सुखोदयाय तत्सर्वं श्रेयसे च तवानघ। यच्च किञ्चित्त्वया लोके दृष्टं स्थावरजङ्गमम्॥४७॥
विहितः सर्व एवासौ मयाऽऽत्मा भूतभावनः। अहं नारायणो नाम शङ्खचक्रगदाधरः॥४८॥

मैं ही कालात्मक जगत् का प्रवर्त्तन करता हूं। मैं ब्रह्मस्वरूप हूं। मैं ही सभी प्राणियों का शमयिता हूं। हे मुनिसत्तम! मेरा आत्मा सभी प्राणियों का इस प्रकार से शमन करता रहता है। हे विप्रेन्द्र! लेकिन मुझे कोई जान नहीं पाता। भक्तगण सब प्रकार से मेरा पूजन करते हैं। हे द्विज! तुमने मुझसे जो कुछ कष्ट पाया है, हे निष्पाप! वह सभी तुम्हारे सुखोदय तथा मंगलार्थ है। जगत् में स्थावर-जंगम जो कुछ तुमने देखा है, मैं ही भूतभावन उन सबमें विराजमान हूं तथा वह सब मुझमें ही विहित है। हे विप्रर्षि! मैं ही शंख-चक्र-गदाधारी नारायण हूं।।४४-४८।।

यावद्युगानां विप्रर्षे सहस्त्रं परिवर्तते। तावत्स्वपिति विश्वात्मा सर्वविश्वानि मोहयन्॥४९॥
एवं सर्वमहं कालमिहाऽऽसे मुनिसत्तम। अशिशुः शिशुरूपेण यावद्ब्रह्मा न बुध्यते॥५०॥
मया च दत्तो विप्रेन्द्र वरस्ते ब्रह्मरूपिणा। असकृत्परितुष्टेन विप्रर्षिगणपूजित॥५१॥

सर्वमेकार्णवं कृत्वा नष्टे स्थावरजङ्गमे।
निर्गतोऽसि मयाऽऽज्ञातस्ततस्ते दर्शितं जगत्॥५२॥
अभ्यन्तरं शरीरस्य प्रतिष्टोऽसि यदा मम।
दृष्ट्वा लोकं समस्तं हि विस्मितो नावबुध्यसे॥५३॥
ततोऽसि वक्त्राद्विप्रर्षे द्रुतं निःसारितो मया।
आख्यातस्ते मया चाऽऽत्मा दुर्ज्ञेयो हि सुरासुरैः॥५४॥

यावत्स भगवान्ब्रह्मा न बुध्येत महातपाः। तावत्त्वमिह विप्रर्षे विश्रब्धश्चर वै सुखम्॥५५॥

ततो विबुद्धे तस्मिंस्तु सर्वलोकपितामहे।
एको भूतानि स्त्रक्ष्यामि शरीराणि द्विजोत्तम॥५६॥
आकाशं पृथिवीं ज्योतिर्वायुः सलिलमेव च।
लोके यच्च भवेत्किञ्चिदिह स्थावरजङ्गमम्॥५७॥

जब तक सहस्त्रयुग व्यतीत नहीं होते, तब तक मैं विश्वात्मा ही समस्त विश्व को मोहित करता शयन करता हूं। हे मुनिसत्तम! जब तक ब्रह्म विवोधित नहीं होते, तब तक विश्वात्मा मैं (समस्त विश्व को विमोहित करते) अशिशु होने पर भी शिशुरूपेण सर्वकाल अवस्थित रहता हूं। हे विप्रर्षिगण पूजित! मैं ब्रह्मरूपी तुम्हारे

ऊपर सन्तुष्ट होकर तुमको वर देता हूं। एकार्णव जल में स्थावर-जंगम सब नष्ट होने पर मेरी ही प्रेरणा से तुमने समस्त जगत् देखा तदनन्तर तुमने जब मेरे उदर में प्रवेश किया, तब समस्त जगत् प्रत्यक्ष करके तुम विस्मित हो गये। तथापि तुमको प्रकृत तत्व अभी भी विदित नहीं था। हे विप्रर्षि! मैंने शीघ्रता से तुमको अपने मुख से बाहर निकाला था। तथापि यह आत्मतत्व देवता-असुर सबके लिये अत्यन्त दुर्ज्ञेय होने पर भी मैंने तुमसे प्रकाशित कर दिया। जब तक महातपस्वी ब्रह्मा प्रबुद्ध नहीं हो जाते, तब तक तुम यहीं पर विश्वस्त भाव से सुख के साथ विचरण करो। तदनन्तर जब लोकपितामह ब्रह्मा जाग्रत हो जायें, तब तक मैं एकाकी ही सभी भूतों, आकाश, पृथिवी, ज्योति, वायु तथा जल इत्यादि जो भी स्थावर जंगम वस्तु है, सभी का पुनः सृष्टि विस्तार करूंगा।।४९-५७।।

ब्रह्मोवाच

एवमुत्त्वा तदा विप्राः पुनस्तं प्राह माधवः। पूर्णे युगसहस्रे तु मेघगम्भीरनिस्वनः।।५८।।

ब्रह्मा कहते हैं—यह कहने के पश्चात् जब एक हजार युग व्यतीत हो गया, तब प्रभु ने पुनः मेघ गंभीर स्वर में मार्कण्डेय से कहा—।।५८।।

श्री भगवानुवाच

मुने ब्रूहि यदर्थं मां स्तुवान्परमार्थतः। वरं वृणीष्व यच्छ्रेष्ठं ददामि नचिरादहम्।।५९।।
आयुष्मानसि देवानां मद्भक्तोऽसि दृढव्रतः। तेन त्वमसि विप्रेन्द्र पुनर्दीर्घायुराप्नुहि।।६०।।

श्रीभगवान् कहते हैं—हे मुनिवर! तुमने जिसलिये मेरा स्तव किया था, तथा जो तुम्हारी प्रधान वाञ्छा है, तुम वह कहो। मैं शीघ्र तुमको वर देता हूं। तुम आयुष्मान् तथा मेरे भक्त हो। तभी पुनः कहता हूं कि तुम और देवताओं से भी दीर्घ आयु को प्राप्त करो (तुम देवगण से भी अधिक आयु वाले हो)।।५९-६०।।

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वा वाणीं शुभां तस्य विलोक्य स तदा पुनः।
मूर्ध्ना निपत्य सहसा प्रणम्य पुनरब्रवीत्।।६१।।

ब्रह्मा कहते हैं—मार्कण्डेय ने भगवान् का यह शुभ वाक्य सुन कर उनको मस्तक झुका कर प्रणाम किया तथा कहा—।।६१।।

मार्कण्डेय उवाच

दृष्टं परं हि देवेश तव रूपं द्विजोत्तम। मोहोऽयं विगतः सत्यं त्वयि दृष्टे तु मे हरे।।६२।।
एवमेवमहं नाथ इच्छेयं त्वत्प्रसादतः। लोकानां च हितार्थाय नानाभावप्रशान्तये।।६३।।
शैवभागवतानां च वादार्थप्रतिषेधकम्। अस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये निर्मले पुरुषोत्तमे।।६४।।
शिवस्याऽऽयतनं देव करोमि परमं महत्। प्रतिष्ठेयं तथा तत्र तव स्थाने च शङ्करम्।।६५।।
ततो ज्ञास्यन्ति लोकेऽस्मिन्नेकमूर्ती हरीश्वरौ।
प्रत्युवाच जगन्नाथः स पुनस्तं महामुनिम्।।६६।।

महर्षि मार्कण्डेय कहते हैं—"हे देवेश! आपका परम रूप मैंने प्रत्यक्ष कर लिया। हे देव! आपका दर्शन पाकर मेरा मोह गत हो गया है। हे नाथ! आपकी कृपा से लोकहितार्थ तथा नाना भावों के प्रशमनार्थ शैव तथा भागवतगण के बीच का मतभेद नष्ट करने हेतु पुण्यमय निर्मल पुरुषोत्तम क्षेत्र में एक शिवमंदिर का निर्माण करना चाहता हूं। मैं आपके क्षेत्र में शंकर मूर्त्ति स्थापित करूंगा। इससे लोगों को ज्ञात होगा कि भगवान् हरि तथा हर भिन्न रूप नहीं हैं, वे एक ही मूर्त्ति हैं।" तब प्रभु जगन्नाथ ने महामुनि मार्कण्डेय से कहा—।।६२-६६।।

श्री भगवानुवाच

यदेतत्परमं देवं कारणं भुवनेश्वरम्। लिङ्गमाराधनार्थाय नानाभावप्रशान्तये।।६७।।

ममाऽऽदिष्टेन विप्रेन्द्र कुरु शीघ्रं शिवालयम्।
तत्प्रभावाच्छिवलोके तिष्ठ त्वं च तथाऽक्षयम्।।६८।।
शिवे संस्थापिते विप्र मम संस्थापनं भवेत्।
नाऽऽवयोरन्तरं किञ्चिदेकभावौ द्विधा कृतौ।।६९।।

यो रुद्रः स स्वयं विष्णुर्यो विष्णुः स महेश्वरः। उभयोरन्तरं नास्ति पवनाकाशयोरिव।।७०।।
मोहितो नाभिजानाति य एव गरुडध्वजः। वृषध्वजः स एवेति त्रिपुरघ्नं त्रिलोचनम्।।७१।।
तव नामाङ्कितं तस्मात्कुरु विप्र शिवालयम्। उत्तरे देवदेवस्य कुरु तीर्थं सुशोभनम्।।७२।।
मार्कण्डेयह्रदो नाम नरलोकेषु विश्रुतः। भविष्यति द्विजश्रेष्ठ सर्वपापप्रणाशनः।।७३।।

श्रीभगवान् कहते हैं—मेरे आदेश से विभिन्न मतवाद के प्रशमनार्थ तथा आराधनार्थ परम कारण भुवनेश्वरदेव की लिंग प्रतिष्ठा करके शीघ्र शिवालय बनाओ। हे विप्र! शिव का संस्थापन ही मेरी स्थापना है। हरि तथा हर में कोई पार्थक्य नहीं है। मेरी एक ही मूर्त्ति द्विधा विभक्त है। जो रुद्र हैं, वे ही स्वयं विष्णु हैं। जो विष्णु हैं, वे ही महेश्वर हैं। वायु तथा आकाश की तरह दोनों में कोई भेद नहीं है। मूढ़ व्यक्ति यह नहीं जानते कि जो गरुड़ध्वज हैं, वे ही वृषध्वज हैं, वे ही त्रिपुरहन्ता त्रिलोचन हैं। हे विप्र! आपने नाम से एक शिवालय तुम बनवाकर देवदेव के उत्तर की ओर मार्कण्डेय ह्रद नामक एक तीर्थ स्थापित करो। यह मनुष्य लोक में प्रसिद्धि लाभ करेगा। हे द्विजप्रवर! इस तीर्थ के सेवन से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।।६७-७३।।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा स तदा देवस्तत्रैवान्तरधीयत। मार्कण्डेयं मुनिश्रेष्ठाः सर्वव्यापी जनार्दनः।।७४।।

इति श्री महापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे मार्कण्डेयस्य श्री भगवद्दर्शनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५६।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे मुनिगण! उन सर्वव्यापी भगवान् जनार्दन ने मार्कण्डेय ऋषि को यह बतलाया तथा अन्तर्हित हो गये।।७४।।

।।षट्पञ्चाश अध्याय समाप्त।।



अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

पञ्चतीर्थ विधि वर्णन

ब्रह्मोवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि पञ्चतीर्थविधिं द्विजाः। यत्फलं स्नानदानेन देवताप्रेक्षणेन च॥१॥
मार्कण्डेयह्रदं गत्वा नरश्चोदङ्मुखः शुचिः। निमज्जेत्तत्र वारांस्त्रीनिमं मन्त्रमुदीरयेत्॥२॥
संसारसागरे मग्नं पापग्रसतमचेतनम्। त्राहि मां भगनेत्रघ्न त्रिपुरारे नमोऽस्तु ते॥३॥
नमः शिवाय शान्ताय सर्वपापहराय च। स्नानं करोमि देवेश मम नश्यतु पातकम्॥४॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे द्विजों! इसके अनन्तर पंचतीर्थ तथा अन्य तीर्थ में जाकर स्नान-दान तथा देवतादर्शन का जो फल है, कहता हूं। तीर्थसेवी मनुष्य प्रथमतः मार्कण्डेय ह्रद में जाकर पूर्वमुखी होकर पवित्रता के साथ तीन बार डुबकी लगाये तथा यह मन्त्र पढ़े, जो मूल में श्लोक ३ तथा ४ हैं। श्लोकार्थ है—मैं संसार-सागर में निमज्जित होकर पापों में लगा तथा विवेकज्ञान रहित हूं। हे त्रिपुरारि! भगनेत्रनाशक! मेरी रक्षा करें। आपको प्रणाम! हे शिव, शान्त, सर्वपापहर! देवेश! मैं स्नान कर रहा हूं। मेरे पाप नष्ट हों।।१-४।।

नाभिमात्रे जले स्नात्वा विधिवद्देवता ऋषीन्।
तिलोदकेन मतिमान्पितॄंश्चान्यांश्च तर्पयेत्॥५॥
स्नात्वा तथैव चाऽऽचम्य ततो गच्छेच्छिवालयम्।
प्रविश्य देवतागारं कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम्॥६॥

मूलमन्त्रेण सम्पूज्य मार्कण्डेयस्य चेश्वरम्। अघोरेण च भो विप्राः प्रणिपत्य प्रसादयेत्॥७॥
त्रिलोचन नमस्तेऽस्तु नमस्ते शशिभूषण। त्राहि मां त्वं विरूपाक्ष महादेव नमोऽस्तु ते॥८॥

स्नानोपरान्त नाभि तक जल में खड़े होकर सविधि देवता तथा ऋषिगण का तर्पण एवं तिल जल द्वारा पितरों का तर्पण करना चाहिये। तब पुनः स्नान करके आचमन करे तथा वहां से शिवालय जाये। वहां जाकर देवालय में प्रवेश करे तथा तीन बार प्रदक्षिणा करने के उपरान्त मार्कण्डेयेश्वर की पूजा तथा प्रणाम करना चाहिये। मूल में कहे गये मन्त्र श्लोक ८ द्वारा उनको प्रसन्न करे। श्लोकार्थ है—हे शशिभूषण, त्रिलोचन आपको नमस्कार है! हे विरूपाक्ष, महादेव! आपको प्रणाम! आप मेरी रक्षा करिये।।५-८।।

मार्कण्डेयह्रदे त्वेवं स्नात्वा दृष्ट्वा च शङ्करम्।
दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः॥९॥

पापैः सर्वैर्विनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति। तत्र भुक्त्वा वरान्भोगान्यावदाभूतसम्प्लवम्॥१०॥
इहलोकं समासाद्य भवेद्विप्रो बहुश्रुतः। शाङ्करं योगमासाद्य ततो मोक्षमवाप्नुयात्॥११॥

वहां स्नान तथा शंकर का दर्शन करने वाला मानव दस अश्वमेध फललाभ करता है। वह सर्वपाप विवर्जित होकर शिवलोक प्रस्थान करता है। वहां प्रलय काल आने तक नाना उत्तम भोगों का उपभोग करके

पुण्य क्षय होने पर इहलोक में (जन्म लेकर) आकर बहुश्रुत ब्राह्मण के रूप में जन्म लेता है। अन्त में शैव योगावलम्बन द्वारा उसे मुक्तिलाभ हो जाता है।।९-११।।

कल्पवृक्षं ततो गत्वा कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम्।
पूजयेत्परया भक्त्या मन्त्रेणानेन तं वटम्॥१२॥

ओं नमो व्यक्तरूपाय महाप्रलयकारिणे। महद्रसोपविष्टाय न्यग्रोधाय नमोऽस्तु ते॥१३॥
अमरस्त्वं सदा कल्पे हरेश्चाऽऽयतनं वट। न्यग्रोध हर मे पापं कल्पवृक्ष नमोऽस्तु ते॥१४॥

तत्पश्चात् कल्पवृक्ष (वट) के पास जाकर उसकी तीन प्रदक्षिणा करनी चाहिये। उस वट की पूजा परमभक्ति से इस मन्त्र से करे, जो मूल में श्लोक १३-१४ में लिखा है। मन्त्रार्थ है "ॐ महाप्रलयकारी, प्रत्यक्ष दर्शन वट को प्रणाम! आप महान् रस पर उपविष्ट रहते हैं। हे वट! आपको प्रणाम! आप शाश्वत तथा कल्पान्त काल में भी अमर हैं। आप श्रीहरि के निवास स्थान हैं। हे वट! आप कल्पवृक्ष हैं। मेरे पापों का हरण करिये। आपको नमस्कार!।।१२-१४।।

भक्त्या प्रदक्षिणं कृत्वा नत्वा कल्पवटं नरः।
सहसा मुच्यते पापाज्जीर्णत्वच इवोरगः॥१५॥
छायां तस्य समाक्रम्य कल्पवृक्षस्य भो द्विजाः।
ब्रह्महत्यां नरो जह्यात्पापेष्वन्येषु का कथा॥१६॥
दृष्ट्वा कृष्णाङ्गसम्भूतं ब्रह्मतेजोमयं परम्।
न्यग्रोधाकृतिकं विष्णुं प्रणिपत्य च भो द्विजाः॥१७॥
राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं प्राप्नोति चाधिकम्।
तथा स्ववंशमुद्धृत्य विष्णुलोकं स गच्छति॥१८॥

वैनतेयं नमस्कृत्य कृष्णस्य पुरतः स्थितम्। सर्वपापविनिर्मुक्तस्ततो विष्णुपुरं व्रजेत्॥१९॥

वह मनुष्य कल्पवृक्ष की भक्ति के साथ प्रदक्षिणा तथा प्रणाम करने से उसी तरह सर्वपाप विनिर्मुक्त हो जाता है, जिस प्रकार पुरानी केंचुल त्याग कर सर्प नया जैसा हो जाता है। हे द्विजों! मनुष्य कल्पवृक्ष की छाया का आश्रय लेकर ब्रह्महत्या पाप से विनिर्मुक्त हो जाता है। अन्य पाप की तो बात ही क्या? हे द्विजों! कृष्ण के अंग से उत्पन्न, ब्रह्मतेजमय, न्यग्रोध की आकृति वाले विष्णु को प्रणाम करने वाला मानव राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञ की तुलना में उससे भी अधिक फल लाभ करता है तथा अपने वंश का उद्धारक होकर विष्णुलोक लाभ करता है। मनुष्य श्रीकृष्ण के निकट रहने वाले वैनतेय गरुड़ को प्रणाम करके सर्वपाप विनिर्मुक्त होकर विष्णुलोक जाता है।।१५-१९।।

दृष्ट्वा वटं वैनतेयं यः पश्येत्पुरुषोत्तमम्। सङ्कर्षणं सुभद्रां च स याति परमां गतिम्॥२०॥

प्रविश्याऽऽयतनं विष्णोः कृत्वा तं त्रिः प्रदक्षिणम्।
सङ्कर्षणं स्वमन्त्रेण भक्त्याऽऽपूज्य प्रसादयेत्॥२१॥

नमस्ते हलधृग्राम नमस्ते मुशलायुध। नमस्ते रेवतीकान्त नमस्ते भक्तवत्सल॥२२॥
नमस्ते बलिनां श्रेष्ठ नमस्ते धरणीधर। प्रलम्बारे नमस्तेऽस्तु त्राहि मां कृष्णपूर्वज॥२३॥

जो व्यक्ति वट एवं गरुड़देव के दर्शनोपरान्त पुरुषोत्तम, बलराम तथा सुभद्रा का दर्शन करता है, उसे परमगति प्राप्त होती है। विष्णुमंदिर में प्रविष्ट होकर तीन प्रदक्षिणा करके यथोक्त मन्त्र से भक्ति पूर्वक हलधर की पूजा करे। उनको "नमस्ते हलधारी राम" इत्यादि मूलोक्त श्लोक २२ तथा २३ से प्रसन्न करे। इसका मन्त्रार्थ एवंविध है—

"हे हलधारी बलराम! आपको मेरा प्रणाम! हे मूसल आयुध धारण करने वाले, रेवती पति, भक्तवत्सल प्रभु! आपको प्रणाम! हे बलवानों में श्रेष्ठ, धरणीधर, प्रलम्बासुर के नाशक! कृष्ण के बड़े भ्राता! मैं आपको प्रणाम करता हूं! आप मेरी रक्षा करें।।२०-२३।।

एवं प्रसाद्य चानन्तमजेयं त्रिदशार्चितम्। कैलाशशिखराकारं चन्द्रात्कान्ततराननम्॥२४॥
नीलवस्त्रधरं देवं फणाविकटमस्तकम्। महाबलं हलधरं कुण्डलैकविभूषितम्॥२५॥
रौहिणेयं नरो भक्त्या लभेदभिमतं फलम्।
सर्वपापैर्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति॥२६॥
आभूतसंप्लवं यावद्भुक्त्वा तत्र सुखं नरां। पुण्यक्षयादिहाऽऽगत्य प्रवरे योगिनां कुले॥२७॥
ब्राह्मणप्रवरो भूत्वा सर्वशास्त्रार्थपारगः। ज्ञानं तत्र समासाद्य मुक्तिं प्राप्नोति दुर्लभाम्॥२८॥

एवंविध अनन्त, अजेय, सुरार्चित, कैलास शिखर के आकार वाले, चन्द्र से भी अधिक मनोहर मुख वाले, नील वस्त्रधारी, शिर पर फण का छत्र धारण करने वाले, कुण्डलमण्डित, महाबली, रोहिणीनन्दन हलधारी बलराम को भक्तिभाव से प्रसन्न करने वाला मानव वांछित फललाभ करता है तथा सर्वपापविनिर्मुक्त होकर विष्णुलोक गमन करता है। तदनन्तर वह प्रलयान्त तक वहां सुखभोग करके पुण्यक्षय होने पर पुनः इस लोक (मृत्युलोक) में जन्म लेकर योगीगण के उत्तम कुल में सर्वशास्त्रज्ञ ब्राह्मणप्रवर होकर जन्म लेता है। यहां ज्ञानलाभ करके अन्ततः वह दुर्लभ मुक्तिपद की प्राप्ति करता है।।२४-२८।।

एवमभ्यर्च्य हलिनं ततः कृष्णं विचक्षणः। द्वादशाक्षरमन्त्रेण पूजयेत्सुसमाहितः॥२९॥
द्विषट्कवर्णमन्त्रेण भक्त्या ये पुरुषोत्तमम्।
पूजयन्ति सदा धीरास्ते मोक्षं प्राप्नुवन्ति वै॥३०॥
न तां गतिं सुरा यान्ति योगिनौ नैव सोमपाः।
यां गतिं यान्ति भा विप्रा द्वादशाक्षरतत्पराः॥३१॥
तस्मात्तेनैव मन्त्रेण भक्त्या कृष्णं जगद्गुरुम्।
सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यैः प्रणिपत्य प्रसादयेत्॥३२॥
जय कृष्ण जगन्नाथ जय सर्वाघनाशन। जय चाणूरकेशिघ्न जय कंसनिषूदन॥३३॥
जय पद्मपलाशाक्ष जय चक्रगदाधर। जय नीलाम्बुदश्याम जय सर्वसुखप्रद॥३४॥

जय देव जगत्पूज्य जय संसारनाशन। जय लोकपते नाथ जय वाञ्छाफलप्रद॥३५॥
संसारसागरे घोरे निःसारे दुःखफेनिले। क्रोधग्राहाकुले रौद्रे विषयोदकसम्प्लवे॥३६॥
नानारोगार्मिकलिले मोहावर्तसुदुस्तरे। निमग्नोऽहं सुरश्रेष्ठ त्राहि मां पुरुषोत्तम॥३७॥

इस प्रकार हलधारी की अर्चना के उपरान्त वह विचक्षण रूप से समाहित होकर द्वादशाक्षर मन्त्र से पुरुषोत्तम देवार्चन करे। जो धीर मानव भक्तिभाव से उक्त मन्त्र द्वारा पुरुषोत्तम की अर्चना करता है, वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। उसे ऐसी गति मिलती है, जो देवता, योगी, सोमपायीगण को भी नहीं मिल पाती। इसलिये द्वादशाक्षर मन्त्र द्वारा भक्तिभाव से गन्धपुष्पादि द्वारा भगवान् वासुदेव की पूजा तथा उनको प्रणिपात करके कहे—जय कृष्ण, जय जगन्नाथ, जय सर्वपापनाशक, जय चाणूर-केशी हन्ता, जय कंस निषूदन, जय पद्मपलाशनेत्र प्रभु, जय चक्र, गदाधारी, जय नीलजलधर श्याम, जय सर्व सुखप्रद, जय देव जगत्पूज्य, जय संसारनाशन, जय लोकपति, जय वांछा फलदायक आपकी जय हो! यह संसार महाघोर, निःसार, दुःखरूपी फेन से व्याप्त है। यहां क्रोधरूपी ग्राह भरे पड़े हैं। यह भयानक विषय वासनात्मक जल से परिपूर्ण है। यह अनेक रोग-तरंग से क्षुब्ध, मोहरूपी भंवर से ऐसा भयप्रद है कि इसे पार नहीं किया जा सकता है। यह दुष्पार जो है। हे सुरप्रवर, पुरुषोत्तम! मैं इसमें डूब रहा हूं। कृपया मेरी रक्षा करिये।।२९-३७।।

एवं प्रसाद्य देवेशं वरदं भक्तवत्सलम्। सर्वपापहरं देवं सर्वकामफलप्रदम्॥३८॥
पीनांसं द्विभुजं कृष्णं पद्मपत्रायतेक्षणम्। महोरस्कं महाबाहुं पीतवस्त्रं शुभाननम्॥३९॥
शङ्खचक्रगदापाणिं मुकुटाङ्गदभूषणम्। सर्वलक्षणसंयुक्तं वनमालाविभूषितम्॥४०॥

दृष्ट्वा नरोऽञ्जलिं कृत्वा दण्डवत्प्रणिपत्य च।
अश्वमेधसहस्राणां फलं प्राप्नोति वै द्विजाः॥४१॥
यत्फलं सर्वतीर्थेषु स्नाने दाने प्रकीर्तितम्।
नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च॥४२॥

इस प्रकार से उनको प्रसन्न करना चाहिये। उन देवेश, वरप्रद, भक्तवत्सल, सर्वपापनाशक, सर्वकाम फलदायक, स्थूलस्कन्ध, द्विभुज, पद्मपलाश नेत्र, विशाल वक्ष युक्त, महाबाहु, पीतवस्त्रधारी, शुभानन, शंख-चक्र-गदाधारी, मुकुट तथा बाजूबंद से शोभित, सभी उत्तम लक्षण वाले, वनमाली श्रीकृष्ण का दर्शन हाथ जोड़कर तथा दण्डवत् प्रणाम के साथ करे। ऐसे व्यक्ति को सहस्र अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। हे ब्राह्मणों! सभी तीर्थों में स्नान तथा सर्व द्रव्यदान का जो फल है, एकमात्र कृष्ण का दर्शन तथा प्रणाम करने से भी वही फललाभ होता है।।३८-४२।।

यत्फलं सर्वरत्नाद्यैरिष्टे बहुसुवर्णके। नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च॥४३॥
यत्फलं सर्ववेदेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम्। नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च॥४४॥
यत्फलं सर्वदानेन व्रतेन नियमेन च। नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च॥४५॥
तपोभिर्विविधैरुग्रैर्यत्फलं समुदाहृतम्। नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च॥४६॥
यत्फलं ब्रह्मचर्येण सम्यक्चीर्णेन तत्कृतम्। नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च॥४७॥

यत्फलं च गृहस्थस्य यथोक्ताचारवर्तिनः।
नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च॥४८॥
यत्फलं वनवासेन वानप्रस्थस्य कीर्तितम्।
नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च॥४९॥
संन्यासेन यथोक्तेन यत्फलं समुदाहृतम्।
नरस्तत्फलमाप्नोति दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च॥५०॥

विविध रत्न तथा अनेक स्वर्णदक्षिणा से यज्ञ करने, सभी वेदों का अध्ययन तथा सर्वयज्ञानुष्ठान, सर्वप्रकार दान, व्रत तथा नियमाचरण द्वारा कठोर तप के अनुष्ठान से, सम्यक् ब्रह्मचर्य, गृहस्थ के लिये शास्त्रोचित आचार के अनुशीलन से, यथाविधि वानप्रस्थ पालन से तथा सविधि सन्यास का जो फल होता है, वह सब श्रीकृष्ण के दर्शन करने तथा प्रणाम करने से भी स्वतः प्राप्त हो जाता है।।४३-५०।।

किं चात्र बहुनोक्तेन माहात्म्ये तस्य भो द्विजाः।
दृष्ट्वा कृष्णां नरो भक्त्या मोक्षं प्राप्नोति दुर्लभम्॥५१॥

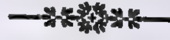
पापैविर्मुक्तः शुद्धात्मा कल्पकोटिसमुद्भवैः। श्रिया परमया युक्तः सर्वैः समुदितो गुणैः॥५२॥
सर्वकामे समृद्धेन विमानेन सुवर्चसा। त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य नरो विष्णुपरं व्रजेत्॥५३॥
तत्र कल्पशतं यावद्भुक्त्वा भोगान्मनोरमान्। गन्धर्वाप्सरसैः सार्धं यथा विष्णुश्चतुर्भुजः॥५४॥
च्युतस्तस्मादिहाऽऽयातो विप्राणां प्रवरे कुले। सर्वज्ञः सर्ववेदी च जायते गतमत्सरः॥५५॥
स्वधर्मनिरतः शान्तो दाता भूतहिते रतः। आसाद्य वैष्णवं ज्ञानं ततो मुक्तिवाप्नुयात्॥५६॥

हे द्विजगण! श्रीकृष्ण के महत्व विषयक अधिक कहने से क्या लाभ? भक्तिभाव से उनका दर्शन करने से मानव द्वारा उनकी कृपा से दुर्लभ मोक्ष मिलना निश्चित है। कृष्णदर्शन मात्र से ही मानव करोड़ों कल्प में अर्जित पापों से मुक्त हो जाता है। शुद्ध चित्त से परम समृद्धि सम्पन्न तथा सर्वगुण भूषित होकर वह अपनी २१ पीढ़ी का उद्धारक होकर सर्वकाम समृद्ध उज्ज्वल विमान पर बैठकर विष्णुपुर जाता है। वहां वह गन्धर्वों एवं अप्सराओं के साथ चतुर्भुज विष्णु के ही रूप वाला होकर शतकोटि कल्प तक मनोरम भोगों का उपभोग करके पुण्यक्षय होने पर वहां से विच्युत होकर उत्तम विप्रकुल में सर्वज्ञ, सर्ववेदज्ञ, स्वधर्मतत्पर, मात्सर्यरहित, शान्त, सर्वभूतहिततत्पर, भूरिदाता, ब्राह्मण होकर जन्म लेता है। तदनन्तर वैष्णव ज्ञान लाभ करके मुक्त हो जाता है।।५१-५६।।

ततः सम्पूज्य मन्त्रेण सुभद्रां भक्तवत्सलाम्।
प्रसादयेत्ततो विप्राः प्रणिपत्य कृताञ्जलिः॥५७॥
नमस्ते सर्वगे देवि नमस्ते शुभसौख्यदे।
त्राहि मां पद्मपत्राक्षि कात्यायनि नमोऽस्तु ते॥५८॥
एवं प्रसाद्य तां देवीं जगद्धात्रीं जगद्धिताम्।
बलदेवस्य भगिनीं सुभद्रां वरदां शिवाम्॥५९॥

कामगेन विमानेन नरो विष्णुपुरं व्रजेत्। आभूतसम्प्लवं यावत्क्रीडित्वा तत्र देववत्॥६०॥
इह मानुषतां प्राप्तो ब्राह्मणो वेदविद्भवेत्।
प्राप्य योगं हरेस्तत्र मोक्षं च लभते ध्रुवम्॥६१॥

इति श्री महापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे कृष्णदर्शनमाहात्म्यं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५७॥



तदनन्तर यथोक्त मन्त्रों से भक्तवत्सला सुभद्रा देवी की पूजा करके प्रणाम के साथ हाथ जोड़कर मूलोक्त श्लोक ५८ से प्रार्थना करे। मन्त्रार्थ है—"हे सर्वव्याप्त, शुभ सुख प्रदात्री! कमलनयनी कात्यायनि! आपको नमस्कार! आप मेरी रक्षा करिये।" इस प्रकार बलदेव की बहन जगद्धात्री, भद्रदायिनी सुभद्रा को प्रसन्न करके अन्त में वह मनुष्य विष्णुलोक जाता है। वहां प्रलयान्त तक देववत् क्रीड़ा करके मर्त्यलोक में वेदज्ञ ब्राह्मणरूपेण जन्म लेता है तथा वैष्णव योगाश्रय लेकर निश्चित रूप से मोक्षलाभ करता है।।५७-६१।।

।।सप्तपञ्चाश अध्याय समाप्त।।



अथाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नरसिंह पूजाविधि वर्णन

ब्रह्मोवाच

एवं दृष्ट्वा बलं कृष्णं सुभद्रां प्रणिपत्य च।
धर्मं चार्थं च कामं च मोक्षं च लभते ध्रुवम्॥१॥
निष्क्रम्य देवतागारात्कृतकृत्यो भवेन्नरः। प्रणम्याऽऽयतनं पश्चाद्व्रजेत्तत्र समाहितः॥२॥
इन्द्रनीलमयो विष्णुर्यत्राऽऽस्ते वालुकावृतः। अन्तर्धानगतं नत्वा ततो विष्णुपुरं व्रजेत्॥३॥

ब्रह्मा कहते हैं—इस प्रकार बलराम, कृष्ण, सुभद्रा का दर्शन तथा प्रणाम करके लोक में धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूप चतुर्वर्ग फल मिलता है। तदनन्तर देव मन्दिर से बाहर आकर कृतार्थ मानव पुनः मन्दिर में प्रणाम करे तथा सुसमाहित होकर वहां जाये, जहां इन्द्रनीलमय विष्णु बालुका के नीचे आच्छन्न भाव से अवस्थित हैं। वहां उनको प्रणाम करने वाला विष्णुलोक लाभ करता है।।१-३।।

सर्वदेवमयो योऽसौ हतवानसुरोत्तमम्। स आस्ते तत्र भो विप्राः सिंहार्धकृतविग्रहः॥४॥
भक्त्या दृष्ट्वा तु तं देवं प्रणम्य नरकेसरीम्। मुच्यते पातकैर्मर्त्यः समस्तैर्नात्र संशयः॥५॥

जिन्होंने असुरप्रवर हिरण्यकशिपु का वध किया था, वे सर्वदेवमय नरसिंहमूर्त्ति भगवान् वहीं स्थित

रहते हैं। हे विप्रगण! उन नरकेशरी देवाधिदेव को भक्ति के साथ प्रणाम करने से मर्त्यवासी मनुष्य सर्वपाप रहित हो जाता है। इसमें संदेह ही नहीं है।।४-५।।

नरसिंहस्य ये भक्ता भवन्ति भुवि मानवाः।
न तेषा दुष्कृतं किञ्चित्फलं स्याद्यद्यदीप्सितम्॥६॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नरसिंहं समाश्रयेत्। धर्मार्थकाममोक्षाणां फलं यस्मात्प्रयच्छति॥७॥

पृथिवीवासी लोग जो नृसिंह देव की भक्ति करते हैं, उनमें कोई दुष्कृति नहीं रह जाती। वे जो भी कामना करते हैं, उनको तदनुरूप फल प्राप्त होता है। अतः सर्वयत्न से नरसिंह देव की शरण लेनी चाहिये, क्योंकि धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष के एकमात्र दाता वे ही हैं।।६-७।।

मुनय ऊचुः

माहात्म्यं नरसिंहस्य सुखदं भुवि दुर्लभम्। यथा कथयसे देव तेन नो विस्मयो महान्॥८॥
प्रभावं तस्य देवस्य विस्तरेण जगत्पते। श्रोतुमिच्छामहे ब्रूहि परं कौतूहलं हि नः॥९॥
यथा प्रसीदेद्देवोऽसि नरसिंहो महाबलः। भक्तानामुपकाराय ब्रूहि देव नमोऽस्तु ते॥१०॥
प्रसादान्नरसिंहस्य या भवन्त्यत्र सिद्धयः। ब्रूहि ताः कुरु चास्माकं प्रसादं प्रपितामह॥११॥

मुनिगण कहते हैं—हे प्रभो! आपने नरसिंह देव की मनुष्यलोक दुर्लभ सुखद माहात्म्य कहा है। इसे सुनकर हमें अत्यन्त विस्मय हो रहा है। अतएव हे जगत्पति! उन देवाधिदेव की महिमा हम विस्तार से जानना चाहते हैं। हमें कुतूहल हो रहा है, अतः आप वह कहिये। हे प्रपितामह! ये महाबली नृसिंह देव जिस प्रकार प्रसन्न होकर भक्तों का उपकार करते हैं तथा उनकी कृपा से जिस प्रकार की सिद्धियां मिलती हैं, आप हम पर अनुग्रह करके वह सब कहिये। हे देवाधिदेव! आपको हम प्रणाम करते हैं!।।८-११।।

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं तस्य भो विप्राः प्रभावं गदतो मम। अजितस्याप्रमेयस्य भुक्तिमुक्तिप्रदस्य च॥१२॥
कः शक्नोति गुणान्वक्तुं समस्तांस्तस्य भो द्विजाः।
सिंहार्धकृतदेहस्य प्रवक्ष्यामि समासतः॥१३॥
याः काश्चित्सिद्धयश्चात्र श्रूयन्ते दैवमानुषाः।
प्रसादात्तस्य ताः सर्वाः सिध्यन्ति नात्र संशयः॥१४॥
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले दिक्षु तोये पुरे नगे। प्रसादात्तस्य देवस्य भवत्यव्याहता गतिः॥१५॥
असाध्यं तस्य देवस्य नास्त्यत्र सचराचरे। नरसिंहस्य भो विप्राः सदा भक्तानुकम्पिनः॥१६॥
विधानं तस्य वक्ष्यामि भक्तानामुपकारकम्। ये प्रसीदेच्चैवासौ सिंहार्धकृतविग्रहः॥१७॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे द्विजगण! मुझसे उन देवदेव की माहात्म्य कथा श्रवण करिये। वे अजित, अप्रमेय, भुक्ति-मुक्ति देने वाले हैं। किसकी ऐसी क्षमता है, जो उनके सभी गुणों को कह सके? तथापि हे ब्राह्मणवृन्द! मैं उन नृसिंहमूर्त्ति भगवान् का माहात्म्य संक्षेप में कहता हूं। जो कुछ दैवी एवं मानुषी सिद्धि का वर्णन मिलता

है, वह नृसिंह देव की कृपा से अवश्य प्राप्त होती है। उन देवाधिदेव की कृपा से स्वर्ग, मर्त्य, पाताल, सभी दिशा, जल, नगर तथा घोर पर्वत पर अव्याहत गति प्राप्त होती है। इस चराचर जगत् में भक्तों पर कृपा करने वाले नृसिंह प्रभु के लिये कुछ भी असाध्य नहीं है। मैं अब उस मंगलप्रद विधान को कहता हूं, जिससे ये आधे सिंह के शरीर वाले देव भक्तों पर प्रसन्न होते हैं।।१२-१७।।

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः कल्पराजं सनातनम्। नरसिंहस्य तत्त्वं च यन्न ज्ञातं सुरासुरैः॥१८॥
शाकयावकमूलैस्तु फलपिण्याकसक्तुकैः। पयोभक्षेण विप्रेन्द्रा वर्तयेत्साधकोत्तमः॥१९॥
कोशकौपीनवासाश्च ध्यानयुक्तो जितेन्द्रियः। अरण्ये विजने देशे पर्वते सिन्धुसङ्गमे॥२०॥
ऊषरे सिद्धक्षेत्रे च नरसिंहाश्रमे तथा। प्रतिष्ठाप्य स्वयं वाऽपि पूजां कृत्वा विधानतः॥२१॥

हे मुनिप्रवरवृन्द! देव-असुरगण भी जो नहीं जानते, मैं नरसिंह देव की वह सनातन तत्वकथा आप लोगों को सुनाता हूं। हे विप्रप्रवरगण! वह साधकप्रवर कौपीनधारी, ध्यानी, जितेन्द्रिय होकर शाक, यावक, कन्द-मूल, फल, तिल से बना पिण्याक, सत्तू खा कर साधना करे अथवा मात्र दुग्धाहार करता साधना आदि करे। सदा ध्यान-परायण ही रहे। वह विजन देश में, पर्वत, नदी संगम, ऊषर, सिद्ध भूमि अथवा प्रसिद्ध नृसिंह देवालय में देवदेव की मूर्त्ति स्थापित करे तथा वहां सविधि पूजा करे।।१८-२१।।

द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य उपोष्य मुनिपुङ्गवाः।
जपेल्लक्षाणि वै विंशन्मनसा संयतेन्द्रियः॥२२॥
उपपातकयुक्तश्च महापातकसंयुतः। मुक्तो भवेत्ततो विप्राः साधको नात्र संशयः॥२३॥
कृत्वा प्रदक्षिणं तत्र नरसिंहं प्रपूजयेत्। पुण्यगन्धादिभिर्धूपैः प्रणम्य शिरसा प्रभुम्॥२४॥
कर्पूरचन्दनाक्तानि जातीपुष्पाणि मस्तके। प्रदद्यान्नरसिंहस्य ततः सिद्धिः प्रजायते॥२५॥

शुक्लपक्षीय द्वादशी को वह उपवासी रहे। हे मुनिपुंगवगण! वह साधक एक लाख नृसिंह मन्त्र का जप एकाग्र होकर करे। भले ही वह महापातक युक्त क्यों न हो, उपपातकी क्यों न हो, वह निश्चित रूप से पापमुक्त होकर पवित्र होता है। उस समय नृसिंह देवता की प्रदक्षिणा, पूजा, गन्ध-पुष्पादि, धूप-दीपादि से करनी चाहिये। तदनन्तर शिर पृथिवी पर नत करके उनको प्रणाम करे। देवता नरसिंह देव के मस्तक पर पूजक को कर्पूर तथा चन्दन लिप्त जातीपुष्प अर्पित करने चाहिये। इससे सिद्धि मिलती है।।२२-२५।।

भगवान्सर्वकार्येषु न क्वचित्प्रतिहन्यते। तेजः सोढुं न शक्ताः स्युर्ब्रह्मरुद्रादयः सुराः॥२६॥
किं पुनर्दानवा लोके सिद्धगन्धर्वमानुषाः। विद्याधरा यक्षगणाः सकिन्नरमहोरगाः॥२७॥

भगवान् नृसिंह सर्वकर्म सुसाधन में सुदक्ष हैं। वे कहीं प्रतिहत नहीं होते। ब्रह्मा-रुद्र आदि देवता उनके तेज को सहन करने में सक्षम नहीं होते। अतएव दानव-सिद्ध-गन्धर्व-मनुष्य-विद्याधर-यक्ष-किन्नर अथवा महासर्पगण भी उनका तेज सह सकने में अक्षम हैं। अधिक क्या कहें?।।२६-२७।।

मन्त्रं यानासुरान्हन्तुं जपन्त्येकेऽन्यसाधकाः।
ते सर्वे प्रलयं यान्ति दृष्ट्वाऽऽदित्याग्निवर्चसः॥२८॥
सकृज्जप्तं तु कवचं रक्षेत्सर्वमुपद्रवम्। द्विर्जप्तं कवचं दिव्यं रक्षते देवदानवात्॥२९॥

गन्धर्वाः किन्नरा यक्षा विद्याधरमहोरगाः।
भूताः पिशाचा रक्षांसि ये चान्ये परिपन्थिनः॥३०॥
त्रिर्जप्तं कवचं दिव्यमभेद्यं च सुरासुरैः। द्वादशाभ्यन्तरे चैव योजनानां द्विजोत्तमाः॥३१॥

असुरों के उपद्रव निवारणार्थ जो साधक नृसिंह मन्त्र का जप करते हैं, उन आदित्य एवं अग्निवत् प्रभाव वाले साधकों को देखने मात्र से असुरदल नष्ट हो जाता है। मात्र एक बार नृसिंह कवच का जप करने से सभी उपद्रव शान्त हो जाते हैं। दो बार यह जप करने से देवों-दानवों का उपद्रव निवृत्त हो जाता है। गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, विद्याधर, महासर्प, भूत, पिशाच तथा राक्षस एवं अन्य जो भी विरोधी विघ्नहर्त्ता हो, वे नृसिंह कवच के तीन जप करने से दूर हो जाते हैं। हे द्विजोत्तमगण! यहां तक कि वहां से बारह योजन पर्यन्त तक भी सुर अथवा असुरगण आदि से प्रभु नरसिंह देव रक्षा करते हैं।।२८-३१।।

रक्षते भगवान्देवो नरसिंहो महाबलः। ततो गत्वा बिलद्वारमुपोष्य रजनीत्रयम्॥३२॥
पलाशकाष्ठैः प्रज्वाल्य भगवन्तं हुताशनम्। पलाशसमिधस्तत्र जुहुयात्त्रिमधुप्लुता॥३३॥
द्वे शते द्विजशार्दूला वषट्कारेण साधकः। ततो विवरद्वारं तु प्रकटं जायते क्षणात्॥३४॥
ततो विशेत्तु निःशङ्कं कवची विवरं बुधः। गच्छतः सङ्कटं तस्य तमोमोहश्च नश्यति॥३५॥
राजमार्गःसुविस्तीर्णो दृश्यते भ्रमराजि (क्षि) तः।
नरसिंहं स्मरंस्तत्र पातालं विशते द्विजाः॥३६॥
गत्वा तत्र जपेत्तत्वं नरसिंहाख्यमव्ययम्। ततः स्त्रीणां सहस्राणि वीणावादनकर्मणाम्॥३७॥
निर्गच्छन्ति पुरो विप्राः स्वागतं ता वदन्ति च।
प्रवेशयन्ति ता हस्ते गृहीत्वा साधकेश्वरम्॥३८॥
ततो रसायनं दिव्यं पाययन्ति द्विजोत्तमाः। पीतमात्रे दिव्यदेहो जायते सुमहाबलः॥३९॥
क्रीडते सह कन्याभिर्यावदाभूतसम्प्लवम्। भिन्नदेहो वासुदेवे लीयते नात्र संशयः॥४०॥

तत्पश्चात् मनुष्य बिलद्वार जाये। वहां तीन रात उपवासी रहकर पलाश काष्ठ में भगवान् अग्नि को प्रज्वलित करके त्रिमधु से लिप्त २०० पलाश समिध् द्वारा वषट्कार मन्त्र उच्चारण करते हुये उसमें आहुति प्रदान करे। ऐसा करने से तत्क्षण बिल द्वार खुल जायेगा। तदनन्तर कवचधारी बुद्धिमान साधक शंका रहित होकर उसमें प्रवेश करे। प्रवेश पथ पर उसे कोई बाधा-विघ्न नहीं रहेगा। उसका तमः-मोह नष्ट होगा। तब एक विस्तीर्ण राजमार्ग लक्षित होगा। हे ब्राह्मणों! उस समय नृसिंह देव का स्मरण करने से उस पथ से पाताल में प्रवेश करे तथा वहां अव्यय नृसिंह मन्त्र जप करे। तदनन्तर वीणावादिनी सहस्रों रमणियां उस साधक के स्वागत में आकर स्वागत वाक्य कहेंगी। वे स्त्रियां साधक का हाथ पकड़कर उसे प्रवेश करा देंगी। वे साधक को दिव्य रसायन पान करायेंगी। उससे तभी साधक महाबली तथा दिव्यदेही होकर प्रलय तक रमणीगण के साथ क्रीड़ा करेगा तथा देहान्त में वासुदेव में लीन होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है।।३२-४०।।

यदा न रोचते वासस्तस्मान्निर्गच्छते पुनः।
पट्टं शूलं च खड्गं च रोचनां च मणिं तथा॥४१॥

रसं रसायनं चैव पादुकाञ्जनमेव च। कृष्णाजिनं मुनिश्रेष्ठा गुटिकां च मनोहराम्॥४२॥

कमण्डलुं चाक्षसूत्रं यष्टिं सञ्जीवनीं तथा।
सिद्धविद्यां च शास्त्राणि गृहीत्वा साधकेश्वरः॥४३॥

यदि वह साधक वहां नहीं रहना चाहता, तब वह वहां से पुनः बाहर आ सकता है। वह वहां से पट्ट, शूल, खड्ग, वंशलोचन, मणि, रस, रसायन, पादुका, दिव्य अंजन, कृष्णमृगचर्म, उत्तम गुटिका, कमण्डलु, अक्षसूत्र (जपमाला), संजीवनी यष्टि जिससे मृत भी जी जाता है, सिद्धविद्या तथा नाना शास्त्र लाभ कर वहां से बाहर आता है।।४१-४३।।

ज्वलद्वह्निस्फुलिङ्गोर्मिवेष्टितं त्रिशिखं हृदि। सकृन्यस्तं दहेत्सर्वं वृजिनं जन्मकोटिजम्॥४४॥

विषे न्यस्तं विषं हन्यात्कुष्ठं हन्यात्तनौ स्थितम्।
स्वदेहे भ्रूणहत्यादि कृत्वा दिव्येन शुध्यति॥४५॥

महाग्रहगृहीतेषु ज्वलमानं विचिन्तयेत्। हृदन्ते वै ततः शीघ्रं नश्येयुर्दारुणा ग्रहाः॥४६॥

बालानां कण्ठके बद्धं रक्षा भवति नित्यशः।
गण्डपिण्डकलूतानां नाशनं कुरुते ध्रुवम्॥४७॥
व्याधिजाते समिद्भिश्च घृतक्षीरेण होमयेत्।
त्रिसन्ध्यं मासमेकं तु सर्वरोगान्विनाशयेत्॥४८॥

वह ज्वलन्त अग्नि से वेष्ठित त्रिशूलाकृति नृसिंह मन्त्र (कवच) एक बार भी जिसके हृदय पर रख दिया जाय, उसके शतकोटि जन्मान्तरीण समस्त पातक दग्ध हो जाते हैं। उसे विष में न्यस्त करने से विष तक नष्ट हो जाता है। देह में न्यस्त करने से कोढ़ रोग नष्ट होगा। अपने शरीर में इसे न्यस्त करने पर भ्रूणहत्यादि पापों से भी शुद्धिलाभ हो जाता है। महाग्रह से बाधित व्यक्ति इस मन्त्र का (कवच को) हृदय में उज्ज्वलाकार चिन्तन करे। शीघ्र ही दारुण ग्रह निवृत्त हो जाते हैं। बालकों के गले में इसे बांधने से उनकी रक्षा होगी तथा लूता, गण्ड-पिण्डकादि, समस्त बाल रोग नष्ट हो जायेंगे। व्याधि उत्पन्न होने पर एक मास तक त्रिसन्ध्या घृत एवं क्षीर के साथ समिध् द्वारा होम करे। इसी से सर्वरोग नष्ट होते हैं।।४४-४८।।

असाध्यं तु न पश्यामि त्रैलोक्ये सचराचरे।
यां यां कामयते सिद्धिं तां तां प्राप्नोति स ध्रुवम्॥४९॥
अष्टोत्तरशतं त्वेके पूजयित्वा मृगाधिपम्।
मृत्तिकाः सप्त वल्मीके श्मशाने च चतुष्पथे॥५०॥

रक्तचन्दनसंमिश्रा गवां क्षीरेण लोडयेत्। सिंहस्य प्रतिमां कृत्वा प्रमाणेन षडङ्गुलाम्॥५१॥

लिम्पेत्तथा भूर्जपत्रे रोचनया समालिखेत्।
नरसिंहस्य कण्ठे तु बद्ध्वा चैव हि मन्त्रवित्॥५२॥

उस साधक हेतु इस त्रैलोक्य में कुछ भी अप्राप्त अथवा असाध्य नहीं रह जाता। साधक जिस-जिस

सिद्धि की कामना करता है, वह उसे मिल जाती है। साधक वल्मीक, श्मशान तथा चौराहे की सात मुट्ठी मिट्टी लेकर उसमें रक्तचन्दन मिलाये। उसे गोदुग्ध से साने। इससे नृसिंह देवता की छः अंगुल की प्रतिमा बनाकर १०८ बार इन देवाधिदेव की पूजा करे। तब भोजपत्र पर गोरोचन से नृसिंह मन्त्र लिखकर वह मन्त्रज्ञ व्यक्ति कवचाकार नृसिंह देव के कण्ठ में पहनाये।।४९-५२।।

जपेत्संख्याविहीनं तु पूजयित्वा जलाशये।
यावत्सप्ताहमात्रं तु जपेत्संयमितेन्द्रियः।।५३।।

अब वह जितेन्द्रिय साधक वह प्रतिमा जलाशय में स्थापित करके एक सप्ताह पूजा करे। जो मन्त्र जपे उसे गिनना नहीं चाहिये।।५३।।

जलाकीर्णा मुहूर्त्तेन जायते सर्वमेदिनी। अथवा शुष्कवृक्षाग्रे नरसिंहं तु पूजयेत्।।५४।।
जप्त्वा चाष्टशतं तत्त्वं वर्षन्तं विनिवारयेत्।
तमेवं पिञ्जके बद्ध्वा भ्रामयेत्साधकोत्तमः।।५५।।
महावातो मुहूर्त्तेन आगच्छेन्नात्र संशयः।
पुनश्च धारयेत्क्षिप्रं सप्तस (ज) प्तेन वारिणा।।५६।।

ऐसी साधना करने से मुहूर्त्त मात्र में समग्र धरती जलपूर्ण हो जाती है अथवा यदि सूखे वृक्ष के समक्ष इन देव की पूजा की जाये तथा १०८ बार मन्त्र जप करे, तब साधक वर्षा निवारित कर देगा। इस प्रतिमा को रस्सी में बांधकर यदि साधक घुमायेगा, तब क्षणमात्र में प्रबल आंधी आ जायेगी। पुनः इसी मन्त्र को सात बार जप कर शीघ्र जल में डुबाये, तब वह वायु शान्त होगा।।५४-५६।।

अथ तां प्रतिमां द्वारि निखनेद्यस्य साधकः।
गोत्रोत्सादो भवेत्तस्य उद्धृते चैव शान्तिदः।।५७।।
तस्मात्तं मुनिशार्दूला भक्त्या सम्पूजयेत्सदा। मृगराजं महावीर्यं सर्वकामफलप्रदम्।।५८।।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजातयः।।५९।।
सम्पूज्य तं सुरश्रेष्ठं भक्त्या सिंहवपुर्धरम्। मुच्यन्ते चाशुभैर्दुःखैर्जन्मकोटिसमुद्भवैः।।६०।।
सम्पूज्यं तं सुरश्रेष्ठं प्राप्नुवन्त्यभिवाञ्छितम्।
देवत्वममरेशत्वं गन्धर्वत्वं च भो द्विजाः।।६१।।

यदि साधक किसी के द्वार पर प्रतिमा गाड़ दे, तब उस गृह के लोगों का वंश ही विलुप्त हो जायेगा। उसे पुनः खोद कर निकालने पर शान्ति होगी। हे मुनिप्रवर! ऐसे प्रभावशाली, महावीर्य, सर्वकामफलप्रद, दाता, नृसिंह देव की पूजा सदा भक्तिभाव से करे। उनकी पूजा करने वाला सर्वपातक निवृत्त होकर विष्णुलोक जाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्रादि अन्त्य जाति वाले भी भक्ति के साथ इन देवप्रवर नृसिंह देव की पूजा द्वारा कोटि जन्मार्जित दुरित दुःख से छुटकारा पाते हैं। हे द्विजवृन्द! इन देवप्रवर की पूजा द्वारा अभीष्ट फल मिलता है। यहां तक कि गन्धर्वत्व, देवत्व एवं देवेन्द्रत्व भी तब दुर्लभ नहीं रह जाता।।५७-६१।।

यक्षविद्याधरत्वं च तथाऽयच्चाभिवाञ्छितम्।
दृष्ट्वा स्तुत्वा नमस्कृत्वा सम्पूज्य नरकेसरीम्॥६२॥
प्राप्नुवन्ति नरा राज्यं स्वर्गं मोक्षं च दुर्लभम्।
नरसिंहं नरो दृष्ट्वा लभेदभिमतं फलम्॥६३॥

इन नृसिंह देव का दर्शन, स्तवन, पूजन करने तथा इनको प्रणाम करने से यक्षत्व, विद्याधरत्वादि अन्य ईप्सित पद भी मिलते हैं। मनुष्यगण नृसिंह दर्शन से राज्य, स्वर्ग तथा मोक्ष भी पाते हैं। मात्र एक बार उनका दर्शन करने वाला सर्वपाप विनिर्मुक्त होकर विष्णुलोक जाता है।।६२-६३।।

निर्मुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति।
सकृद्दृष्ट्वा तु तं देवं भक्त्या सिंहवपुर्धरम्॥६४॥
मुच्यते चाशुभैर्दुःखैर्जनमकोटिसमुद्भवैः। सङ्ग्रामे सङ्कटे दुर्गे चोरव्याघ्रादिपीडिते॥६५॥
कान्तारे प्राणसन्देहे विषवह्निजलेषु च। राजादिभ्यः समुद्रेभ्यो ग्रहरोगादिपीडिते॥६६॥
स्मृत्वा तं पुरुषः सर्वै राजग्रामैर्विमुच्यते। सूर्योदये यथा नाशं तमोऽभ्येति महत्तरम्॥६७॥

नृसिंह देव का दर्शन करके मनुष्यों की जन्मकोटि में उत्पन्न अशुभ शक्ति भी दूर हो जाती है। संग्राम, संकट, दुर्गम प्रदेश, चोर तथा व्याघ्रों का उत्पीड़न, प्राणसंशय, विष, अग्नि, जल, राजा तथा समुद्र से उत्पन्न भय, ग्रह-रोगादि पीड़ा प्रभृति सभी प्रकार के संकट नृसिंहदेव के स्मरण से ही नष्ट हो जाते हैं। जैसे सूर्योदय से तमः नष्ट हो जाता है।।६४-६७।।

तथा संदर्शने तस्य विनाशं यान्त्युपद्रवाः। गुटिकाञ्जनपातालपादुके च रसायनम्॥६८॥
नरसिंहे प्रसन्ने तु प्राप्नोत्यन्यांश्च वाञ्छितान्।
यान्यानकामानभिध्यायन्भजते नरकेसरीम्॥६९॥
तांस्तान्कामानवाप्नोति नरो नास्त्यत्र संशयः।
दृष्ट्वा तं देवदेवेशं भक्त्याऽऽपूज्य प्रणम्य च॥७०॥
दशानामश्वमेधानां फलं दशगुणं लभेत्। पापैः सर्वैर्विनिर्मुक्तो गुणैः सर्वैरलङ्कृतः॥७१॥

उनके दर्शन मात्र से सभी उपद्रव नष्ट हो जाते हैं। वह व्यक्ति दिव्य गुटिका, दिव्य अंजन, पाताल जाने के लिये प्राप्त दिव्य खड़ाऊं, रसायन तथा अन्य वांछित वस्तु नृसिंहदेव की कृपा से पा जाता है। मनुष्य इन नृसिंह की अर्चना से अन्य सभी काम्य वस्तु निःसन्देह पाता है। इनका दर्शन, भक्तिभाव से अर्चना तथा इनको प्रणाम करने से सौ अश्वमेध फल की प्राप्ति होती है। उस व्यक्ति के सभी पातक नष्ट हो जाते हैं। वह सर्वगुण सम्पन्न हो जाता है।।६८-७१।।

सर्वकामसमृद्धात्मा जरामरणवर्जितः। सौवर्णेन विमानेन किङ्किणीजालमालिना॥७२॥
सर्वकामसमृद्धेन कामगेन सुवर्चसा। तरुणादित्यवर्णेन मुक्ताहारावलम्बिना॥७३॥
दिव्यस्त्रीशतयुक्तेन दिव्यगन्धर्वनादिना। कुलैकविंशमुद्धृत्य देववन्मुदितः सुखी॥७४॥

स्तूयमानोऽप्सरोभिश्च विष्णुलोकं व्रजेन्नरः।
भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान्विष्णुलोके द्विजोत्तमाः॥७५॥
गन्धर्वैरप्सरैर्युक्तः कृत्वा रूपं चतुर्भुजम्। मनोह्लादकरं सौख्यं यावदाभूतसम्प्लवम्॥७६॥
पुण्यक्षयादिहाऽऽयातः प्रवरे योगिनां कुले। चतुर्वेदी भवेद्विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः।
वैष्णवं योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात्॥७७॥

इति श्री महापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे नरसिंहमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५८॥



वह जरामरण दुःख रहित हो जाता है। वह मृत्युलोक में सभी कामनाओं को पाकर मृत्यु के बाद छोटी घंटियों से मण्डित, सर्वकाम समृद्ध, बाल सूर्य के समान, मुक्ताहार मण्डित इच्छागामी समुज्ज्वल, शत-शत देवस्त्रियों तथा दिव्य गन्धर्वों के स्वर से नादित स्वर्ण विमान पर बैठकर अपनी २१ पीढ़ियों का उद्धार करता, देवगण की तरह प्रसन्नचित्त तथा अप्सराओं से स्तुत होकर विष्णुधाम में जाता है। वहां वह अप्सराओं तथा गन्धर्वों के साथ चतुर्भुज विष्णुरूपी होकर उत्तमोत्तम भोगों का भोग करके प्रलय काल तक अत्यन्त सुखलाभ करता है। तत्पश्चात् पुण्य क्षीण होने पर मृत्यु लोग में आकर योगियों के उत्तम कुल में वेदज्ञ तथा शास्त्र पारंगत चतुर्वेदी ब्राह्मण होकर जन्म लेकर वैष्णव योग का सहारा लेकर मोक्ष पाता है।।७२-७७।।

।।अष्टपञ्चाशत्तम अध्याय समाप्त।।



अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

कपालगौतम ऋषि के मृत पुत्र की जीवन प्राप्ति हेतु श्वेत राजा की प्रतिज्ञा तथा विष्णु से वर पाना, श्वेतमाधव माहात्म्य वर्णन

ब्रह्मोवाच

अनन्ताख्यं वासुदेवं दृष्ट्वा भक्त्या प्रणम्य च। सर्वपापविनिर्मुक्तो नरो याति परं पदम्॥१॥
मया चाऽऽराधितश्चासौ शक्रेण तदनन्तरम्।
विभीषणेन रामेण कस्तं नाऽऽराधयेत्पुमान्॥२॥
श्वेतगङ्गां नरः स्नात्वा यः पश्येच्छ्वेतमाधवम्।
मत्स्याख्यं माधवं चैव श्वेतद्वीपं स गच्छति॥३॥

ब्रह्मा कहते हैं—मानव मात्र को चाहिये कि अनन्त नामक वासुदेव का दर्शन तथा उनको भक्तिपूर्ण प्रणाम करे। इससे वे सर्वपाप विनिर्मुक्त हो जाते हैं तथा परमपद लाभ करते हैं। सबसे पहले मैंने उनकी आराधना किया था। तब इन्द्र, तदनन्तर विभीषण, तदनन्तर रामचन्द्र ने उनकी आराधना किया। जो मनुष्य श्वेतगंगा में नहाकर श्वेतमाधव एवं मत्स्य नामक माधव का दर्शन करता है, उसकी गत श्वेतद्वीप में होती है।।१-३।।

मुनय ऊचुः

श्वेतमाधवमाहात्म्यं वक्तुमर्हस्यशेषतः। विस्तरेण जगन्नाथ प्रतिमां तस्य वै हरेः।।४।।
तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये विख्याते जगतीतले। श्वेताख्यं माधवं देवं कस्तं स्थापितवान्पुरा।।५।।

मुनिगण कहते हैं—हे प्रभो! आपने श्वेतमाधव माहात्म्य तथा प्रतिमा विवरण विस्तार से कहिये। हम और भी श्रवण करना चाहते हैं। हमें यह जानना है कि जगत् प्रसिद्ध पवित्र क्षेत्र में श्वेतमाधवदेव की स्थापना किसने पूर्वकाल में किया था?।।४-५।।

ब्रह्मोवाच

अभूत्कृतयुगे विप्राः श्वेतो नाम नृपो बली। मतिमान्धर्मविच्छूरः सत्यसन्धो दृढव्रतः।।६।।
यस्य राज्ये तु वर्षाणां सहस्रं दश मानवाः।
भवन्त्यायुष्मन्तो लोका बालस्तस्मिन्न सीदति।।७।।
वर्तमाने तदा राज्ये किञ्चित्काले गते द्विजाः।
कपालगौतमो नाम ऋषिः परमधार्मिकः।।८।।
सुतोऽस्याजातदन्तश्च मृतः कालवशाद् द्विजाः।
तमादाय ऋषिर्धीमान्नृपस्यान्तिकमानयत्।।९।।
दृष्ट्वैवं नृपतिः सुप्तं कुमारं गतचेतसम्। प्रतिज्ञामकरोद्विप्रा जीवनार्थं शिशोस्तदा।।१०।।

ब्रह्मा कहते हैं—पूर्व सत्ययुग के समय श्वेत नामक एक प्रबल राजा थे। वे बुद्धिमान्, धार्मिक, शूर, सत्यप्रतिज्ञ तथा दृढ़व्रती थे। उनके (राज्यकाल में मनुष्यों की परमायु १० हजार वर्ष थी)। बाल्यकाल में कोई भी उनके राज्य में मृत नहीं होता था। हे ब्राह्मणों! कुछ काल अतीत होने पर कपाल गौतम नामक एक परम धार्मिक ऋषि का एक पुत्र जिसका दांत भी नहीं निकला था, कालवशात् मृत हो गया। धीमान् ऋषि तब उस मृत बालक का शव लेकर राजा के यहां आये। नृपति ने इसे ऋषिपुत्र को चैतन्यहीन देखकर उसके जीवन रक्षा हेतु प्रण किया।।६-१०।।

राजोवाच

यावद्बालमहं त्वेनं यमस्य सदने गतम्। नाऽऽनये सप्तरात्रेण चितां दीप्तां समारुहे।।११।।

राजा कहते हैं—यदि मैं यमसदनगत् बालक को सात दिनों में वापस नहीं लाता, तब जलती चिता में आत्मोत्सर्ग करूंगा।।११।।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वाऽसितैः पद्मैः शतैर्दशशतादिकैः।
सम्पूज्य च महादेवं राजा विद्यां पुनर्जपेत् (?)॥१२॥
अतिभक्तिं तु सञ्चिन्त्य नृपस्य जगदीश्वरः।
सांनिध्यमगमत्तुष्टोऽस्मीत्युवाच सहोमया॥१३॥
श्रुत्वैवं गिरमीशस्य विलोक्य सहसा हरम्। भस्मदिग्धं विरूपाक्षं शरत्कुन्देन्दुवर्चसम्॥१४॥
शार्दूलचर्मवसनं शशाङ्कितमूर्धजम्। महीं निपत्य सहसा प्रणम्य स तदाऽब्रवीत्॥१५॥

ब्रह्मा कहते हैं—एवंविध प्रण करने के उपरान्त राजा ने एक लाख नीले कमलों से महादेवार्चन करके उनका मन्त्र जप किया। जगदीश्वर शंभु ने राजा की अत्यन्त भक्ति को देख कर उमा सहित वहां आकर कहा—"मैं प्रसन्न हो गया।" राजा ने भगवान् का यह आश्वासन सुनकर सहसा दृष्टि उठाकर देखा कि विभूति से भूषित, विरूपाक्ष, शरद चन्द्र की कान्ति वाले, शार्दूलचर्मधारी, शिर पर अर्द्धचन्द्र धारण किये साक्षात् भगवान् हर वहां उपस्थित हैं। उनको देख कर राजा ने भूमि पर लोटते हुये प्रणाम करके कहा—॥१२-१५॥

श्वेत उवाच

कारुण्यं यदि मे दृष्ट्वा प्रसन्नोऽसि प्रभो यदि।
कालस्य वशमापन्नो बालको द्विजपुत्रकः॥१६॥
जीवत्वेष पुनर्बाल इत्येवं व्रतमाहितम्। अकस्माच्च मृतं बालं नियम्य भगवन्स्वयम्।
यथोक्तायुष्यसंयुक्तं क्षेमं कुरु महेश्वर॥१७॥

राजा श्वेत कहते हैं— हे प्रभो! यदि मुझे देखकर आपके मन में करुणा उत्पन्न है, तथा यदि आप प्रभु मुझ पर प्रसन्न हैं, तब मेरे प्रण के अनुसार यह ब्राह्मण बालक पुनर्जीवित हो जाये। हे महेश्वर! बालक अकस्मात मृत हो गया है। इसे आप जीवित करें, तथा यथायोग्य आयु काल से युक्त करके इसका मंगल करें। यही कामना है।॥१६-१७॥

ब्रह्मोवाच

श्वेतस्यैतद्वचः श्रुत्वा मुदं प्राप हरस्तदा। कालमाज्ञापयामास सर्वभूतभयङ्करम्॥१८॥
नियम्य कालं दुर्धर्षं यमस्याऽऽज्ञाकरं द्विजाः।
बालं सञ्जीवयामास मृत्योर्मुखगतं पुनः॥१९॥
कृत्वा क्षेमं जगत्सर्वं मुनेः पुत्रं स तं द्विजाः। देव्या सहोमया देवस्तत्रैवान्तरधीयत॥२०॥
एवं संजीवयामास मुनः पुत्रं नृपोत्तमः॥२१॥

ब्रह्मा कहते हैं—राजा श्वेत का ऐसा वचन सुनकर भगवान् हर हर्ष में भर गये। तब सर्वभूतक्षयंकर यमकिंकर दुर्धर्ष काल को उन्होंने आज्ञा दिया कि मृत्युमुख गत इस शिशु को पुनः जीवित करो। हे द्विजवृन्द! उस समय भगवान् हर की कृपा से सभी जगत् मंगलमय हो गया। ब्राह्मण पुत्र को अपना जीवन मिल गया।

तदनन्तर उमा के साथ भगवान् अन्तर्हित् हो गये। इस प्रकार से श्वेतराज ने मुनि बालक को जीवित कराया।।१८-२१।।

मुनय ऊचुः

देवदेव जगन्नाथ त्रैलोक्यप्रभवाव्यय। ब्रूहि नः परमं तथ्यं श्वेताख्यस्य च साम्प्रतम्॥२२॥

मुनिगण कहते हैं—हे त्रिभुवनेश्वर! भावाभावनिदान देवाधिदेव जगन्नाथ! सम्प्रति आप श्वेतमाधव के परम तथ्य को प्रकाशित करिये।।२२।।

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः सर्वसत्त्वहितावहम्। प्रवक्ष्यामि यथातथ्यं यत्पृच्छथ ममानघाः॥२३॥
माधवस्य च माहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम्। यच्छ्रुत्वाऽभिमतान्कामान्ध्रुवं प्राप्नोति मानवः॥२४॥
श्रुतवानृषिभिः पूर्वं माधवाख्यस्य भो द्विजाः।
शृणुध्वं तां कथां दिव्यां भयशोकार्तिनाशिनीम्॥२५॥
स कृत्वा राजमेकाग्र्यं वर्षाणां च सहस्रशः।
विचार्यं लौकिकान्धर्मान्वैदिकान्नियमांस्तथा॥२६॥
केशवाराधने विप्रा निश्चितं व्रतमास्थितः। स गत्वा परमं क्षेत्रं सागरं दक्षिणाश्रयम्॥२७॥
तटे तमिञ्छुभे रम्ये देशे कृष्णस्य चान्तिके।
श्वेतोऽथ कारयामास प्रसादं शुभलक्षणम्॥२८॥
धन्वन्तरशतं चैकं देवदेवस्य दक्षिणे। ततः श्वेतेन विप्रेन्द्राः श्वेतशैलमयेन च॥२९॥
कृतः स भगवाञ्छ्वेतो माधवश्चन्द्रसंन्निभः।
प्रतिष्ठां विधिवच्चक्रे यथोद्दिष्टां स्वयं तु सः॥३०॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे मुनिप्रवरवृन्द! आप लोग श्रवण करिये। हे निष्पापगण! मैं आप लोगों के प्रश्नानुरूप सर्वभूत हितप्रद मानव माहात्म्य कहता हूं। यह माहात्म्य कथा सर्वपापनाशक है। इसे सुनकर मानव अपनी वांछित कामना प्राप्त करते हैं। पूर्व में ऋषिगण ने श्वेत माधव माहात्म्य का जो वर्णन सुना था, आप भय, शोकनाशिनी दिव्य कथा सुनिये। इन श्वेत राजा ने एक हजार वर्ष तक राज्य करके लौकिक-वैदिक धर्म तथा अनेक नियमों की आलोचना किया तथा केशव की आराधना का व्रत ग्रहण करके वे दक्षिण सागर तीरस्थ परम क्षेत्र पुरुषोत्तम आये। वहां के शुभ रमणीक देश में कृष्ण के पास उन्होंने एक शुभलक्षणात्मक सौ धनुष विस्तार वाला प्रासाद बनवाया। देवाधिदेव के दक्षिण की ओर यह प्रासाद श्वेतपर्वत पर बना था। राजा श्वेत ने चन्द्रमा जैसी शुभ्र माधव प्रतिमा बना कर उस प्रासाद में सविधि स्थापित किया और ब्राह्मण, दरिद्र तथा अन्य तपस्वियों को प्रचुर धन दान किया। तदनन्तर राजा माधव के समीप गये।।२३-३०।।

दत्त्वा दानं द्विजातिभ्यो दीनानाथतपस्विनाम्।
अथानन्तरतो राजा माधवस्य च सन्निधौ॥३१॥

महीं निपत्य सहसा ओंकारं द्वादशाक्षरम्। जपन्स मौनमास्थाय मासमेकं समाधिना॥३२॥
निराहारो महाभागः सम्यग्विष्णुपदे स्थितः। जपान्ते स तु देवेशं संस्तोतुमुपचक्रमे॥३३॥

उन्होंने सहसा मूर्त्ति को साष्टांग प्रणाम किया! वे वहां माधव का द्वादशाक्षर मन्त्र जप करने लगे। उन्होंने समाधियोग का अवलम्बन लेकर तथा मौनी होकर एक मास तक निराहार रहकर विष्णु के चरणों का ध्यान करते अवस्थान भी किया। जप समाप्त होने पर वे देवाधिदेव की स्तुति करने लगे।।३१-३३।।

श्वेत उवाच

ॐ नमो वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च। प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमो नारायणाय च॥३४॥
नमोऽस्तु बहुरूपाय विश्वरूपाय वेधसे। निर्गुणायाप्रतर्क्याय शुचये शुक्लकर्मणे॥३५॥
ॐ नमः पद्मनाभाय पद्मगर्भोद्भवाय च। नमोऽस्तु पद्मवर्णाय पद्महस्ताय ते नमः॥३६॥
ॐ नमः पुष्कराक्षाय सहस्राक्षाय मीढुषे। नमः सहस्रपादाय सहस्रभुजमन्यवे॥३७॥
ॐ नमोऽस्तु वराहाय वरदाय सुमेधसे। वरिष्ठाय वरेण्याय शरण्यायाच्युताय च॥३८॥
ॐ नमो बालरूपाय बालपद्मप्रभाय च। बालार्कसोमनेत्राय मुञ्जकेशनाय धीमते॥३९॥

राजा श्वेत कहते हैं—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, नारायण को मैं प्रणाम करता हूं! जो बहुरूप, विश्वरूप, वेधा, निर्गुण, तर्क से परे, पवित्र एवं शुक्लकर्मा हैं, मैं उनको प्रणाम करता हूं! जो पद्मनाभ, पद्मगर्भ से उद्भूत, पद्मवर्ण तथा पद्महस्त हैं, उनको बारम्बार मेरा प्रणाम! पुष्कराक्ष, सहस्राक्ष, कल्याणदाता, सहस्रपाद, सहस्र भुजाधारी, यज्ञरूपी को प्रणाम! वराह, वरद, सुमेधा, वरिष्ठ, वरेण्य, शरण्य, अच्युत, बालरूप, बालपद्मप्रभ, नव कमल कान्तिधारी, चन्द्र-सूर्य नेत्र वाले, कमनीय कोमल केश वाले भगवान् को प्रणाम!।।३४-३९।।

केशवाय नमो नित्यं नमो नारायणाय च। माधवाय वरिष्ठाय गोविन्दाय नमो नमः॥४०॥
ॐ नमो विष्णवे नित्यं देवाय वसुरेतसे। मधुसूदनाय नमः शुद्धायांशुधराय च॥४१॥
नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय नमः श्रीवत्सधारिणे।
त्रिविक्रमाय च नमो दिव्यपीताम्बराय च॥४२॥
सृष्टिकर्त्रे नमस्तुभ्यं गोप्त्रे धात्रे नमो नमः। नमोऽस्तु गुणभूताय निर्गुणाय नमो नमः॥४३॥
नमो वामनरूपाय नमो वामनकर्मणे। नमो वामननेत्राय नमो वामनवाहिने॥४४॥
नमो रम्याय पूज्याय नमोऽस्त्वव्यक्तरूपिणे।
अप्रतर्क्याय शुद्धाय नमो भयहराय च॥४५॥
संसारार्णवपोताय प्रशान्ताय स्वरूपिणे। शिवाय सौम्यरूपाय रुद्रायोत्तारणाय च॥४६॥
भवभङ्गकृते चैव भवभोगप्रदाय च। भवसङ्घातरूपाय भवसृष्टिकृते नमः॥४७॥
ॐ नमो दिव्यरूपाय सोमाग्निश्वसिताय च।
सोमसूर्यांशुकेशाय गोब्रह्माणहिताय च॥४८॥

ॐ नमः ऋक्स्वरूपाय पदक्रमस्वरूपिणे।
ऋक्स्तुताय नमस्तुभ्यं नमः ऋक्साधनाय च॥४९॥
ॐ नमो यजुषां धात्रे यजूरूपधराय च। यजुर्याज्याय जुष्टाय यजुषां पतये नमः॥५०॥
ॐ नमः श्रीपते देव श्रीधराय वराय च।
श्रियः कान्ताय दान्ताय योगिचिन्त्याय योगिने॥५१॥

मैं केशव, नारायण, माधव, वरिष्ठ, गोविन्द को पुनः-पुनः प्रणाम करता हूं! ये विष्णु, वसुरेता, मधुसूदन, शुद्ध, अंशुधर, अनन्त, सूक्ष्म, श्रीवत्सधारी, त्रिविक्रम, दिव्य पीताम्बरधर, सृष्टि करने वाले, गोप्ता, धाता, गुणभूत, निर्गुण, वामनरूपी, वामनकर्मा, वामननयन, रम्य, पूज्य, अव्यक्तरूप, अप्रतर्क्य, शुद्ध, भयहारी, संसार-सागर के पार ले जाने वाले जहाजरूपी, प्रशान्त, स्वरूपी, शिव, सौम्यरूप, रुद्र, उत्तारण, भवभंग करने वाले, भवभोगप्रद, भवसंघातरूप, भवसृष्टि कर्त्ता, दिव्यरूप, सोमाग्निष्वासित, सोमसूर्यांशुकेश, गो ब्राह्मण हितकारी, ऋक् स्वरूप, पदक्रममन्त्ररूपी, ऋक् स्तुत, ऋक् साधन, यजुर्द्धारण करने वाले, यजुःस्वरूपधर, जुष्ट, यजुःपति, श्रीपति, देव, श्रीधर, वरेण्य, श्रीकान्त, दान्त, योगियों द्वारा चिन्तनीय तथा योगी हैं।।४०-५१।।

ॐ नमः सामरूपाय सामध्वनिवराय च। ॐ नमः सामसौम्याय सामयोगविदे नमः॥५२॥
साम्ने च सामगीताय ॐ नमः सामधारिणे। सामयज्ञविदे चैव नमः सामकराय च॥५३॥
नमस्त्वथर्वशिरसे नमोऽथर्वस्वरूपिणे। नमोऽस्त्वथर्वपादाय नमोऽथर्वकराय च॥५४॥
ॐ नमो वज्रशीर्षाय मधुकैटभघातिने। महोदधिजलस्थाय वेदाहरणकारिणे॥५५॥
नमो दीप्तस्वरूप हृषीकेशाय वै नमः। नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय ते नमः॥५६॥
नारायण नमस्तुभ्यं नमो लोकहिताय च। ॐ नमो मोहनाशाय भवभङ्गकराय च॥५७॥
गतिप्रदाय च नमो नमो बन्धहराय च। त्रैलोक्यतेजसां कर्त्रे नमस्तेजःस्वरूपिणे॥५८॥
योगीश्वराय शुद्धाय रामायोत्तरणाय च। सुखाय सुखनेत्राय नमः सुकृतधारिणे॥५९॥
वासुदेवाय वन्द्याय वामदेवाय वै नमः। देहिनां देहकर्त्रे च भेदभङ्गकराय च॥६०॥

आप सामरूप, सामध्वनिवर, ग्रामसौम्य, सामयोगज्ञ, साम, सामगीत, सामधारी, सामयज्ञविज्ञ, सामकर, अथर्वशिरा, अथर्वरूप, अथर्ववाद, अथर्वकर, वज्रशीर्ष, मधुकैटभघाती, महोदधि जलशायी, वेद का हरण करने वाले, दीप्तरूप, हृषीकेश हैं। आपको बारम्बार प्रणाम! हे नारायण! आप वासुदेव, लोकहितकारी, मोहहर, भवभंगकारी, गतिप्रद, वद्धहर, त्रैलोक्य तेजकारी, तेजरूपी, योगीश्वर, शुद्ध, राम, उत्तारण, सुख, सुखनेत्र, सुकृतधारी, वासुदेव, वन्द्य, वामदेव, देहीगण के देह को निर्मित करने वाले, भेदों को भंग करने वाले हैं। आपको प्रणाम!।।५२-६०।।

देवैर्वन्दितदेहाय नमस्ते दिव्यमौलिने। नमो वासनिवासाय वासव्यवहराय च॥६१॥
ॐ नमो वसुकर्त्रे च वसुवासप्रदाय च। नमो यज्ञस्वरूपाय यज्ञेशाय च योगिने॥६२॥

यतियोगकरेशाय नमो यज्ञाङ्गधारिणे। सङ्कर्षणाय च नमः प्रलम्बमथनाय च॥६३॥
मेघघोषस्वनोत्तीर्णवेगलाङ्गलधारिणे। नमोऽस्तु ज्ञानिनां ज्ञानं नारायणपरायणे॥६४॥

आप देवगण वन्दित, दिव्य मुकुट पहनने वाले, वासरूप, वासव्यवहार, वसुकर्त्ता, वसुओं को निवास देने वाले, यज्ञरूप, यज्ञेश, योगी, यति, योग के ईश, यज्ञांगधारी, संकर्षण, प्रलम्बासुर वधकर्त्ता, मेघगंभीर निनाद करने वाले, वेग पूर्वक हल धारण करने वाले तथा ज्ञानियों के ज्ञान हैं। आप नारायण परायण को प्रणाम!।।६१-६४।।

न मेऽस्ति त्वामृते बन्धुर्नरकोत्तारणे प्रभो। अतस्त्वां सर्वभावेन प्रणतो नतवत्सल॥६५॥

मलं यत्कायजं वाऽपि मानसं चैव केशव।
न तस्यान्योऽस्ति देवेश क्षालकस्त्वामृतेऽच्युत॥६६॥
संसर्गाणि समस्तानि विहाय त्वामुपस्थितः।
सङ्गो मेऽस्तु त्वया सार्धमात्मलाभाय केशव॥६७॥

हे प्रभो! आपके अतिरिक्त मेरा ऐसा कोई बन्धु ही नहीं है, जो मेरा नरक से उद्धार कर सके। हे प्रणतवत्सल! मैं आपके चरणों में सर्वतोभाव से प्रणत होता हूं। हे केशव! अच्युत! देवेश! आपके अतिरिक्त कायिक एवं मानस पापक्षालय अन्य कोई नहीं है। मैं सभी संग त्याग करके आपका आश्रय लेता हूं। हे केशव! आत्मलाभार्थ आपसे साथ मेरा साथ हो। हे केशव! मैं इस दुःखमय संसार को आपत्ति तथा दुःख बहुल मानता हूं। संसार में रहकर त्रिविध तप से मैं सर्वदा क्लेश युक्त रहता हूं। अतः मैं आपकी शरण में आ गया। आपके साथ मेरा सम्पर्क दृढ़ हो जाये। मैं आपका साधर्म्य पा सकूं।।६५-६७।।

कष्टमापत्सुदुष्पारं संसारं वेद्मि केशव। तापत्रयपरिक्लिष्टस्तेन त्वां शरणं गतः॥६८॥
एषणाभिर्जगत्सर्वं मोहितं मायया तव। आकर्षितं च लोभाद्यैरतस्त्वामहमाश्रितः॥६९॥

हे केशव! कष्ट तथा विपत्ति के कारण दुष्पार इस संसार को मैं सम्यक्तः जानता हूं। मैं तापत्रय से क्लिष्ट हो गया हूं। मैं आपकी शरण लेता हूं। आपकी माया से समस्त जगत् मोहित है। लोभ-प्रभृति बराबर यहां आकृष्ट करते रहते हैं। तभी मैंने आपकी शरण लिया है।।६८-६९।।

नास्ति किञ्चित्सुखं विष्णो संसारस्थस्य देहिनः।
यथा यथा हि यज्ञेश त्वयि चेतः प्रवर्तते॥७०॥
तथा फलविहीनं तु सुखमात्यन्तिकं लभेत्।
नष्टो विवेकशून्योऽस्मि दृश्यते जगदातुरम्॥७१॥
गोविन्द त्राहि संसारान्मामुद्धर्तुं त्वमर्हसि। मग्नस्य मोहसलिले निरुत्तारे भवार्णवे।
उद्धर्ता पुण्डरीकाक्ष त्वामृतेऽन्यो न विद्यते॥७२॥

हे विष्णु! संसारस्थ देहीगण को तनिक भी सुख नहीं है। हे यज्ञेश! जैसे-जैसे आपमें चित्त लगता जाता है, उस फलाकांक्षा रहित स्थिति में अत्यन्त सुख की प्राप्ति होती है। मैं विवेकशून्य हूं। समस्त संसार मुझे आतुर प्रतीत हो रहा है। हे गोविन्द! रक्षा करिये। आप ही मेरा संसार-सागर से उद्धार कर सकते हैं। मैं ऐसे भवार्णव

के मोहरूपी जल में डूब रहा हूं, जहां से हे पुण्डरीकाक्ष! आप ही मेरा उद्धार कर सकेंगे। आपके अतिरिक्त इस संसार-समुद्र से कोई भी उद्धारक नहीं है।।७०-७२।।

ब्रह्मोवाच

इत्थं स्तुतस्ततस्तेन राज्ञा श्वेतेन भो द्विजाः।
तस्मिन्क्षेत्रवरे दिव्ये विख्याते पुरुषोत्तमे॥७३॥
भक्तिं तस्य तु सञ्चिन्त्य देवदेवो जगद्गुरुः। आजगाम नृपस्याग्रे सर्वैर्देवैर्वृतो हरिः॥७४॥
नीलजीमूतसङ्काशः पद्मपत्रायतेक्षणः। दधत्सुदर्शनं धीमान्कराग्रे दीप्तमण्डलम्॥७५॥
क्षीरोदजलसङ्काशो विमलश्चन्द्रसन्निभः। रराज वामहस्तेऽस्य पाञ्चजन्यो महाद्युतिः॥७६॥
पक्षिराजध्वजः श्रीमान्गदाशार्ङ्गासिधृक्प्रभुः। उवाच साधु भो राजन्यस्य ते मतिरुत्तमा।
यदिष्टं वर भद्रं ते प्रसन्नोऽस्मि तवानघ॥७७॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे ब्राह्मणवृन्द! उन श्रेष्ठ राजा श्वेत ने उस प्रसिद्ध क्षेत्र पुरुषोत्तम आकर स्तव किया था। इससे जगद्गुरु देवदेव उनकी भक्ति के सम्बन्ध में विचार करते हुये सभी देवगण के साथ इस वटवृक्ष के निकट पहुंचे। देवदेव की आकृति नील मेघ जैसी थी। उनके नेत्र पद्मपत्रवत् आयत थे। उनके हाथों में चक्र सुदर्शन शोभित था। अथच वे देखने में क्षीरसागर के समान शुभ्र, चन्द्रवत् विमल थे। वे गरुड़ पर बैठे थे। उनके बायें हाथ में पांचजन्य था। वे महान् द्युति वाले, गरुड़ध्वज, श्रीमान्, शार्ङ्गधनु, गदा तथा तलवारधारी थे। उन्होंने उपस्थित होकर कहा—"साधु! राजन्! तुममें उत्तम बुद्धि जन्मी है। मैं प्रसन्न हो गया। तुम अभीष्ट वर मांगो।।७३-७७।।

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वैवं देवदेवस्य वाक्यं तत्परमामृतम्। प्रणम्य शिरसोवाच श्वेतस्तद्गतमानसः॥७८॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे विप्रवृन्द! राजा श्वेत ने देवाधिदेव का यह अमृत समान वाक्य सुनकर मस्तक झुका कर राजा को प्रणाम करके गद्‌गद् स्वर में कहा—।।७८।।

श्वेत उवाच

यद्यहं भगवन्भक्तः प्रयच्छ वरमुत्तमम्। आब्रह्मभुवनादूर्ध्वं वैष्णवं पदमव्ययम्॥७९॥
विमलं विरजं शुद्धं संसारासङ्गवर्जितम्। तत्पदं गन्तुमिच्छामि त्वत्प्रसादाज्जगत्पते॥८०॥

राजा श्वेत कहते हैं—हे प्रभो! मैं यदि आपके भक्त के रूप में गण्य हूं, तब मुझे उत्तम वर दीजिये। हे जगत्पति! जिस वैष्णवपद की स्थिति ब्रह्मभवन के ऊर्ध्व में है, जो अव्यय, विरज, शुद्ध तथा संसार संग रहित है, आपकी कृपा से मैं वही पदलाभ करने की इच्छा करता हूं।।७९-८०।।

श्रीभगवानुवाच

यत्पदं विबुधाः सर्वे मुनयः सिद्धयोगिनः। नाभिगच्छन्ति यद्रम्यं परं पदमनामयम्॥८१॥
यास्यसि परमं स्थानं राज्यामृतमुपास्य च। सर्वाल्लोकानतिक्रम्य मम लोकं गमिष्यसि॥८२॥

श्रीभगवान् कहते हैं—जिस पद को पाने में देवगण, मुनिगण तथा सिद्ध योगीगण सिद्ध लोग भी समर्थ नहीं हैं, उस अनामय परम मनोरम पद को तुम प्राप्त करोगे। अब तुम राज्यसुख का भोग करो। तदनन्तर सभी लोकों को पार करके मेरे लोक जाओगे।।८१-८२।।

कीर्तिस्तवात्र राजेन्द्र त्रींल्लोकांश्च गमिष्यति।
सान्निध्यं मम चैवात्र सर्वदैव भविष्यति।।८३।।
श्वेतगङ्गेति गास्यन्ति सर्वे ते देवदानवाः। कुशाग्रेणापि राजेन्द्र श्वेतगाङ्गेयमम्बु च।।८४।।
स्पृष्ट्वा स्वर्गं गमिष्यन्ति मद्भक्ता ये समाहिताः।
यस्त्विमां प्रतिमां गच्छेन्माधवाख्यां शशिप्रभाम्।।८५।।
शङ्खगोक्षीरसङ्काशामशेषाघविनाशिनीम्। तां प्रणम्य सकृद्भक्त्या पुण्डरीकनिभेक्षणाम्।।८६।।
विहाय सर्वलोकान्वै मम लोके महीयते। मन्वन्तराणि तत्रैव देवकन्याभिरावृतः।।८७।।
गीयमानश्च मधुरं सिद्धगन्धर्वसेवितः। भुनक्ति विपुलान्भोगान्यथेष्टं मामकैः सह।।८८।।

हे राजेन्द्र! त्रैलोक्य में तुम्हारी कीर्ति विस्तृत होगी। यहां मैं सर्वदा सन्निहित रहूंगा। देवता तथा दानवगण श्वेतगंगा का नाम गायन करेंगे। हे राजेन्द्र! इस श्वेतगंगा का कुशाग्र मात्र जल भी जो लोग स्पर्श करेंगे, वे मेरे भक्त हैं। उनको स्वर्ग प्राप्त करना निश्चित है। जो व्यक्ति इन चन्द्रकान्ति अशेष दुरितहारी पुण्डरीक नयना माधव नामक प्रतिमा को एक बार भी भक्ति के साथ प्रणाम करता है, वह सभी लोकों को छोड़ कर मेरे ही लोक में पूजित होगा। वहां वह मन्वन्तर पर्यन्त देवकन्याओं से परिवृत होकर सिद्ध-गन्धर्वों से सेवित होकर मेरे पार्श्वचरों के साथ विपुल भोगों का उपभोग करेगा।।८३-८८।।

च्युतस्तस्मादिहाऽऽगत्य मनुष्यो ब्राह्मणो भवेत्। वेदवेदाङ्गविच्छ्रीमान्भोगवांश्चिरजीवितः।।८९।।
गजाश्वरथयानाढ्यो धनधान्यावृतः शुचिः। रूपवान्बहुभाग्यश्च पुत्रपौत्रसमन्वितः।।९०।।
पुरुषोत्तमं पुनः प्राप्य वटमूलेऽथ सागरे।
त्यक्त्वा देहं हरिं स्मृत्वा ततः शान्तप्रदं व्रजेत्।।९१।।

इति श्री महापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे श्वेतमाधवमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः।।५९।।



(वहां वह मन्वन्तर काल पर्यन्त रहकर) वहां से च्युत होकर (पुण्यक्षय होने पर) मर्त्यलोक में जन्म लेकर वेदों का तथा वेदांग का ज्ञाता श्रीमान् ब्राह्मण होकर जन्म लेगा। इस जन्म में उसका घर हाथी-अश्वादि, विविध वाहन तथा अगणित धन-धान्य से पूर्ण रहेगा। वह बली, भाग्यशाली तथा पुत्र-पौत्रादि से घिर कर दीर्घ आयु प्राप्त करेगा। तदनन्तर वह पुरुषोत्तम क्षेत्र आकर वटमूल में अथवा सागर जल में हरिध्यानपरायण होकर देह त्याग करेगा।।८९-९१।।

।।एकोनषष्ठितम् अध्याय समाप्त।।



अथ षष्टितमोऽध्यायः

नारायण के अष्टाक्षर मन्त्र की प्रशंसा, नारायण कवच तथा समुद्र स्नान विधि

ब्रह्मोवाच

श्वेतमाधवमालोक्य समीपे मत्स्यमाधवम्। एकार्णवजले पूर्वं रोहितं रूपमास्थितम्॥१॥
वेदानां हरणार्थाय रसातलतले स्थितम्।
चिन्तयित्वा क्षितिं सम्यक्तस्मिन्स्थाने प्रतिष्ठितम्॥२॥
आद्यावतरणं रूपं माधवं मत्स्यरूपिणम्। प्रणम्य प्रणतो भूत्वा सर्वदुःखाद्विमुच्यते॥३॥
प्रयाति परमं स्थानं यत्र देवो हरिः स्वयम्।
काले पुनरिहाऽऽयातो राजा स्यात्पृथिवीतले॥४॥

ब्रह्मा कहते हैं—पूर्वकाल में एकार्णव जल में जिन्होंने रोहित मत्स्य का रूप धारण किया था तथा वेद उद्धारार्थ जो रसातल में स्थित थे तथा जिन्होंने पृथिवी को पुनः उसके स्वस्थान पर प्रतिष्ठित किया था, वही प्रभु का प्रथम मत्स्यरूपी अवतार था। वे ही आद्यावतार मत्स्यरूपी माधव इन श्वेतमाधव के पास स्थान विशेष में प्रतिष्ठित हैं। श्वेत माधव का दर्शन करके उनके प्रतिष्ठास्थान का सम्यक् रूप से चिन्तन करने तथा उनको प्रणाम करने से मानव सर्वदुःख रहित होकर अन्त में उस लोक में जाता है, जहां हरि विराजित हैं। तदनन्तर पुण्यक्षय होने पर वह मर्त्यलोक में आकर पृथिवी पर राज्य पाता है।।१-४।।

वत्समाधवमासाद्य दुराधर्षो भवेन्नरः। दाता भोक्ता भवेद्यज्वा वैष्णवः सत्यसङ्गरः॥५॥
योगं प्राप्य हरेः पश्चात्ततो मोक्षमवाप्नुयात्। मत्स्यमाधवमाहात्म्यं मया संपरिकीर्तितम्।
यं दृष्ट्वा मुनिशार्दूलाः सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥६॥

इन मत्स्यमाधव का लाभ करके लोग दुराधर्ष हो जाते हैं तथा दाता, भोक्ता, यज्वा, वैष्णव तथा सत्य प्रतिज्ञ हो जाते हैं। तदनन्तर वैष्णव योग का सहारा लेकर मोक्षलाभ करते हैं। यह मैंने मत्स्यमाधव माहात्म्य कह दिया है। मुनिप्रवरगण! इन मत्स्यमाधव के दर्शन मात्र से ही मानव को उसकी सभी कामना मिल जाती है।।५-६।।

मुनय ऊचुः

भगवञ्श्रोतुमिच्छामो मार्जनं वरुणालये।
क्रियते स्नानदानादि तस्याशेषफलं वद॥७॥

मुनिगण कहते हैं—हे भगवान्! कृपया हमसे आप समुद्र स्नान विधि, स्नान-दानादि का फल कहिये।।७।।

ब्रह्मोवाच

श्रृणुध्वं मुनिशार्दूला मार्जनस्य यथाविधि।
भक्त्या तु तन्मना भूत्वा सम्प्राप्य पुण्यमुत्तमम्॥८॥
मार्कण्डेयह्रदे स्नानं पूर्वकाले प्रशस्यते। चतुर्दश्यां विशेषेण सर्वपापप्रणाशनम्॥९॥
तद्वत्स्नानं समुद्रस्य सर्वकालं प्रशस्यते। पौर्णमास्यां विशेषेण हयमेधफलं लभेत्॥१०॥
मार्कण्डेय वटं कृष्णं रौहिणेयं महोदधिम्।
इन्द्रद्युम्नसरश्चैव पञ्चतीर्थीविधिः स्मृतः (?)॥११॥
पूर्णिमा ज्येष्ठमासस्य ज्येष्ठा ऋक्षं यदा भवेत्।
तदा गच्छेद्विशेषेण तीर्थराजं परं शुभम्॥१२॥
कायवाङ्मानसैः शुद्धस्तद्भावो नान्यमानसः।
सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो वीतरागो विमत्सरः॥१३॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे मुनिप्रवरगण! सुनिये! यथाशास्त्र मार्जन विधि कहता हूं। पुण्यशाली मानव के लिये सबसे पहले भक्तिभाव पूर्वक तन्मय होकर मार्कण्डेय ह्रद में स्नान करना कर्त्तव्य है। विशेषतः चतुर्दशी में इस ह्रद में स्नान करने से सर्वपाप प्रनष्ट हो जाता है। समुद्र सभी समय प्रशस्त है। विशेषतः पौर्णमासी के दिन समुद्र में स्नान द्वारा अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। मार्कण्डेय ह्रद, अक्षयवट, कृष्ण-बलराम, महोदधि, इन्द्रद्युम्न सरोवर—ये पांच तीर्थ हैं। ज्येष्ठ मासीय ज्येष्ठा नक्षत्र योग में पूर्णिमा पड़ने पर तीर्थश्रेष्ठ पुरुषोत्तम जाये। इस समय तीर्थयात्रा से वाक्य, मन तथा काया में शुद्धि आ जाती है। मन एकाग्र होता है। साथ ही तीर्थसेवी व्यक्ति सभी द्वन्द्वों से मुक्त, वीतराग तथा मत्सरशून्य हो जाता है।।८-१३।।

कल्पवृक्षवटं रम्यं तत्र स्नात्वा जनार्दनम्। प्रदक्षिणं प्रकुर्वीत त्रिवारं सुसमाहितः॥१४॥
यं दृष्ट्वा मुच्यते पापात्सप्तजनमसमुद्भवात्।
पुण्यं चाऽऽप्नोति विपुलं गतिमिष्टां च भो द्विजाः॥१५॥

रमणीय कल्पवृक्ष (वट) के निकट जाकर स्नान करे। तदनन्तर वटवृक्ष रूपी जनार्दन की तीन बार प्रदक्षिणा करनी चाहिये। इस वृक्ष के दर्शन से सात जन्मों में अर्जित पापों से छुटकारा मिल जाता है। विपुल पुण्य होता है तथा वांछित इष्ट गति भी मिल जाती है।।१४-१५।।

तस्य नामानि वक्ष्यामि प्रमाणं च युगे युगे।
यथासङ्ख्यं च भो विप्राः कृतादिषु यथाक्रमम्॥१६॥
वटं वटेश्वरं कृष्णं पुराणपुरुषं द्विजाः। वटस्यैतानि नामानि कीर्तितानि कृतादिषु॥१७॥
योजनं पादहीनं च योजनार्धं तदर्धकम्। प्रमाणं कल्पवृक्षस्य कृतादौ परिकीर्तितम्॥१८॥
यथोक्तेन तु मन्त्रेण नमस्कृत्वा तु तं वटम्।
दक्षिणाभिमुखो गच्छेद्धन्वन्तरशतत्रयम्॥१९॥

यत्रासौ दृश्यते विष्णुः स्वर्गद्वारं मनोरमम्।
सागराम्भः समाकृष्टं काष्ठं सर्वगुणान्वितम्॥२०॥

हे ब्राह्मणवृन्द! इस कल्पवट का प्रतियुग का नाम, प्रमाण तथा संख्या क्रम पूर्वक कहता हूं। वट, वटेश्वर, कृष्ण, पुराण पुरुष ये क्रमशः सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग के नाम हैं। कृत (सत्य) युग में इसका विस्तार एक योजन, त्रेता में तीन कोस, द्वापर में दो कोस, कलि में एक कोस कहा गया है। मन्त्र पाठ से उसे प्रणाम करके दक्षिण की ओर तीन सौ धनुष जाये। (३०० धनुष = १२०० हाथ)। वहां भगवान् विष्णु, मनोरम स्वर्गद्वार तथा सागर-जल से लाया गया सर्वगुणयुक्त काष्ठ लक्षित होता है।।१६-२०।।

प्रणिपत्य ततस्तं भो परिपूज्य ततः पुनः। मुच्यते सर्वरोगाद्यैस्तथा पापैर्ग्रहादिभिः॥२१॥

उग्रसेनं पुरा दृष्ट्वा स्वर्गद्वारेण सागरम्।
गत्वाऽऽचम्य शुचिस्तत्र ध्यात्वा नारायणं परम्॥२२॥

न्यसेदष्टाक्षरं मन्त्रं पश्चाद्धस्तशरीरयोः। ॐ नमो नारायणायेति यं वदन्ति मनीषिणः॥२३॥

वहां जो भगवान् को प्रणाम करके पूजन करता है, वह सभी रोग-पाप तथा ग्रहपीड़ा रहित हो जाता है। वह ग्रहदृष्टि से भी मुक्त हो जाता है। तदनन्तर उग्रसेन का दर्शन करके स्वर्गद्वार पथ पर से सागर में जाकर आचमन करके पवित्र मन से परम पुरुष नारायण देव का ध्यान करने के अनन्तर उनका अष्टाक्षर मन्त्र का करन्यास तथा सर्वाङ्गन्यास करे। मनीषीगण नारायण का अष्टाक्षर मन्त्र यह कहते है—"ॐ नमो नारायणाय"।।२१-२३।।

किं कार्यं बहुभिर्मन्त्रैर्मनोविभ्रमकारकैः।
ॐ नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः॥२४॥
आपो नरस्य सूनुत्वान्नारा इतीह कीर्तिताः।
विष्णोस्तास्त्वयनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥२५॥

नारायणपरा वेदा नारायणपरा द्विजाः। नारायणपरा यज्ञा नारायणपराः क्रियाः॥२६॥
नारायणपरा पृथ्वी नारायणपरं जलम्। नारायणपरो वह्निर्नारायणपरं नभः॥२७॥
नारायणपरो वायुर्नारायणपरं मनः। अहङ्कारश्च बुद्धिश्च उभे नारायणात्मके॥२८॥

भूतं भव्यं भविष्यं च यत्किंञ्चिज्जीवसंज्ञितम्।
स्थूलं सूक्ष्मं परं चैव सर्वं नारायणात्मकम्॥२९॥

मन में भ्रान्ति उत्पादक अनेक मन्त्र की क्या आवश्यकता? एकमात्र "ॐ नमो नारायणाय" मन्त्र सर्वार्थसाधक है। नरोत्पन्न होने के कारण आपः (जल) को नार कहते हैं। "नार" सर्वाग्र में विष्णु का निवास स्थान होने के कारण विष्णु का नाम नारायण पड़ा। वेद, ब्राह्मण, सभी यज्ञ, क्रिया समूह, पृथिवी, जल, अग्नि, आकाश, वायु, मन—ये सभी नारायण परायण हैं। अहंकार तथा बुद्धि भी नारायणात्मक है। भूत-भविष्यत्-वर्त्तमान जो कुछ जीव संचित स्थूल-सूक्ष्म तथा परम वस्तु है, वह सब नारायणात्मक ही है।।२४-२९।।

शब्दाद्या विषयाः सर्वे श्रोत्रादीनीन्द्रियाणि च। प्रकृतिः पुरुषश्चैव सर्वे नारायणात्मकाः॥३०॥
जले स्थले च पाताले स्वर्ग लोकेऽम्बरे नगे। अवष्टभ्य इदं सर्वमास्ते नारायणः प्रभुः॥३१॥
किं चात्र बहुनोक्तेन जगदेतच्चराचरम्। ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सर्वं नारायणात्मकम्॥३२॥
नारायणात्परं किञ्चिन्नेह पश्यामि भो द्विजाः।
तेन व्याप्तमिदं सर्वं दृश्यादृश्यं चराचरम्॥३३॥

शब्द-रसादि पंच विषय, कर्ण आदि इन्द्रिय, प्रकृति तथा पुरुष तक भी नारायणमय ही है। जल, स्थल, पाताल, स्वर्ग, अम्बर, पर्वत, सभी में व्यापकरूपेण नारायण प्रतिष्ठित हैं। किम्बहुना, ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त, जो कुछ भी है, समस्त संसार नारायणात्मक है। हे द्विजवृन्द! नारायण से बढ़कर जगत् में कुछ भी नहीं है। वे समस्त दृश्य एवं अदृश्य में व्याप्त हैं।।३०-३३।।

आपो ह्यायतनं विष्णोः स च एवाम्भसां पतिः। तस्मादप्सु स्मरेन्नित्यं नारायणमघापहम्॥३४॥
स्नानकाले विशेषेण चोपस्थाय जले शुचिः।
स्मरेन्नारायणं ध्यायेद्धस्ते काये च विन्यसेत्॥३५॥
ओंकारं च नकारं च अङ्गुष्ठे हस्तयोर्न्यसेत्।
शेषैर्ह (षान्ह) स्ततलं (ले) यावत्तर्जन्यादिषु विन्यसेत्॥३६॥
ओंकारं वामपादे तु नकारं दक्षिणे न्यसेत्।
मोकारं वामकट्यां तु नाकारं दक्षिणे न्यसेत्॥३७॥
राकारं नाभिदेशे तु यकारं वामबाहुके।
णाकारं दक्षिणे न्यस्य यकारं मूर्ध्नि विन्यसेत्॥३८॥
अधश्चोर्ध्वं च हृदये पार्श्वतः पृष्ठतोऽग्रतः। ध्यात्वा नारायणं पश्चादारभेत्कवचं बुधः॥३९॥

जल तथा जलपति, दोनों ही नारायण का आयतन (निवास) है। अतः पापहारी नारायण का स्मरण सदा जल में करना चाहिये। विशेषतः विशुद्ध मनुष्य स्नानकाल में नारायण पूजन-स्मरण-ध्यान करके उनका करन्यास तथा अंगन्यास करे। पहले अंगुष्ठ तथा हस्तद्वय पर ॐकार तथा नकार का न्यास करके तर्जनी से लेकर अन्य अंगुलिदलों पर अन्य वर्ण का विन्यास करे। यह करन्यास है। अब वामपद पर ओंकार का, दक्षिण पद पर नकार का, वाम कटि पर "मो" का, दक्षिण कटि पर "ना" का, नाभि पर "रा" का, वाम बाहु पर "य" का, दक्षिण बाहु पर "णा" का, मस्तक पर "य" का विन्यास करे। तदनन्तर अधः, ऊर्ध्व, हृदय, पार्श्व, पृष्ठ तथा अग्रभाग पर नारायण का ध्यान करके अभिज्ञ व्यक्ति कवच पढ़े।।३४-३९।।

पूर्वे मां पातु गोविन्दो दक्षिणे मधुसूदनः। पश्चिमे श्रीधरो देवः केशवस्तु तथोत्तरे॥४०॥
पातु विष्णुस्तथाऽऽग्नेये नैर्ऋते माधवोऽव्ययः।
वायव्ये तु हृषीकेशस्तथेशाने च वामनः॥४१॥
भूतले पातु वाराहस्तथोर्ध्वं च त्रिविक्रमः। कृत्वैवं कवचं पश्चादात्मानं चिन्तयेत्ततः॥४२॥

यथा—गोविन्द पूर्व में, मधुसूदन दक्षिण में, श्रीधर पश्चिम में तथा उत्तर में केशव मेरी रक्षा करें। अग्निकोण में विष्णु, नैर्ऋत् में अविनाशी माधव, वायव्य में हृषीकेश, ईशान में वामन, भूतल पर वराह तथा त्रिविक्रम ऊर्ध्व में रक्षा करें। यह पाठ करके अब इस प्रकार चिन्तन करे।।४०-४२।।

अहं नारायणो देवः शङ्खचक्रगदाधरः। एवं ध्यात्वा तदाऽऽत्मानमिमं मन्त्रमुदीरयेत्॥४३॥
त्वमग्निर्द्विपदां नाथ रेतोधाः कामदीपनः। प्रधानः सर्वभूतानां जीवानां प्रभुरव्ययः॥४४॥
अमृतस्यारणिस्त्वं हि देवयोनिरपांपते। वृजिनं हर मे सर्वं तीर्थराज नमोऽस्तु ते॥४५॥
एवमुच्चार्य विधिवत्ततः स्नानं समाचरेत्।
अन्यथा भो द्विजश्रेष्ठाः स्नानं तत्र न शस्यते॥४६॥
कृत्वा तु वैदिकैर्मन्त्रैरभिषेकं च मार्जनम्।
अन्तर्जले जपेत्पश्चात्त्रिरावृत्त्याऽघमर्षणम्॥४७॥

कि "मैं ही शंखचक्रगदाधारी नारायण हूं। यह ध्यान करके यह मन्त्र पाठ करे। "हे नाथ! आप द्विपदों के अग्नि, वीर्यधारी, काम दीप्त करने वाले, सभी प्राणियों में प्रधान तथा जीवगण के अव्यय प्रभु हैं। आप ही अमृत की अरणी, देवयोनि, जलपति हैं। हे तीर्थराज! मेरा पातक हरण करें।" यह मन्त्र पढ़ कर विधिवत् स्नान करना चाहिये। हे ब्राह्मणप्रवरगण! सागर में अन्य प्रकार का स्नान प्रशस्त नहीं होता। वैदिक मन्त्र से अभिषेक एवं मार्जन करके जल में खड़े होकर तीन बार अघमर्षण मन्त्र पढ़े।।४३-४७।।

हयमेधो यथा विप्राः सर्वपापहरः क्रतुः। तथाऽघमर्षणं चात्र सूक्तं सर्वाघनाशनम्॥४८॥
उत्तीर्य वाससी धौते निर्मले परिधाय वै।
प्राणानायम्य चाऽऽचम्य सन्ध्यां चोपास्य भास्करम्॥४९॥
उपतिष्ठेत्ततश्चोर्ध्वं क्षिप्त्वा पुष्पजलाञ्जलिम्। उपस्थायोर्ध्वबाहुश्च तल्लिङ्गैर्भास्करं ततः॥५०॥
गायत्रीं पावनीं देवीं जपेदष्टोत्तरं शतम्। अन्यांश्च सौरमन्त्रांश्च जप्त्वा तिष्ठन्समाहितः॥५१॥

हे ब्राह्मणगण! जिस तरह से अश्वमेध यज्ञ सर्वपापहर है, उसी प्रकार अघमर्षण सूक्त भी सर्वपापनाशक है। तत्पश्चात् जल से बाहर तट पर आकर दो विशुद्ध वस्त्र पहने। तब प्राणायाम, आचमन, सन्ध्योपासन समापन करके सूर्याराधन करे। तत्पश्चात् ऊर्ध्व में भास्कर के उद्देश्य से पुष्पांजलि देकर ऊर्ध्व बाहु होकर भास्कर की आराधना हेतु १०८ बार पवित्र गायत्री एवं अन्य सूर्यमन्त्र जपे। तत्पश्चात् समाहित भाव द्वारा अवस्थान करना चाहिये।।४८-५१।।

कृत्वा प्रदक्षिणं सूर्यं नमस्कृत्योपविश्य च।
स्वाध्यायं प्राङ्मुखः कृत्वा तर्पयेद्दैवतान्यृषीन्॥५२॥
मनुष्यांश्च पितृंश्चान्यान्नामगोत्रेण मन्त्रवित्। तोयेन तिलमिश्रेण विधिवत्सुसमाहितः॥५३॥
तर्पणं देवतानां च पूर्वं कृत्वा समाहितः। अधिकारी भवेत्पश्चात्पितृणां तर्पणे द्विजः॥५४॥
श्राद्धे हवनकाले च पाणिनैकेन निर्वपेत्। तर्पणे तूभयं कुर्यादेष एव विधिः सदा॥५५॥

पुनः सूर्य प्रदक्षिणा तथा उनको प्रणामोपरान्त आसन पर पूर्वमुख बैठकर स्वाध्याय करे। मन्त्रज्ञ व्यक्ति तदनन्तर तिलयुक्त जल द्वारा समाहित मन से नाम गोत्र उच्चारण करते हुये देव, ऋषि, मनुष्य, पितर एवं भूतों का तर्पण करे। द्विजगण पहले समाहित होकर देवतर्पण करें। तदनन्तर उनको पितृतर्पण का अधिकार मिलता है। श्राद्ध तथा होमादि कृत्य एक ही हाथ से करे। तर्पण दोनों हाथ से होगा। यही सनातन धार्मिक नियम है।।५२-५५।।

अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु। तृप्यतामिति सिञ्चेत्तु नामगोत्रेण वाग्यतः।।५६।।

कायस्थैर्यस्तिलैर्मोहात्करोति पितृतर्पणम्। तर्पितास्तेन पितरस्त्वङ्मांसरुधिरास्थिभिः।।५७।।

अङ्गस्थैर्न तिलैः कुर्याद्देवतापितृतर्पणम्। रुधिरं तद्भवेत्तोयं प्रदाता किल्बिषी भवेत्।।५८।।

भूम्यां यद्दीयते तोयं दाता चैव जले स्थितः।
वृथा तन्मुनिशार्दूला नोपतिष्ठति कस्यचित्।।५९।।

स्थले स्थित्वा जले यस्तु प्रयच्छेदुदकं नरः। पितॄणां नोपतिष्ठेत सलिलं तन्निरर्थकम्।।६०।।

उदके नोदकं कुर्यात्पितृभ्यश्च कदाचन। उत्तीर्य तु शुचौ देशे कुर्यादुदकतर्पणम्।।६१।।

नोदकेषु न पात्रेषु न क्रुद्धो नैकपाणिना। नोपतिष्ठति तत्तोयं यद्भूम्यां न प्रदीयते।।६२।।

पितॄणामक्षयं स्थानं मही दत्ता मया द्विजाः।
तस्मात्तत्रैव दातव्यं पितॄणां प्रीतिमिच्छता।।६३।।

वह व्यक्ति बायें पैर को मोड़ कर बैठे। वह मौनी वाक्संयमी वाम-दक्षिण हाथ से 'तृप्यताम' मन्त्र के पूर्व में नाम-गोत्र का उच्चारण करके तर्पण करे। जो व्यक्ति मोह के कारण अपने अंग पर तिल रखकर तर्पण करता है, उसने पितृगण का तर्पण मानों त्वचा, मांस, रुधिर तथा अस्थि से किया। अतः अंगस्थित तिल से कदापि देव-पितृ तर्पण न करे। ऐसा जलयुक्त तिल रुधिरवत् होता है तथा तर्पणकर्त्ता को पाप का भागी होना पड़ता है। हे मुनिप्रवरगण! दाता व्यक्ति जल में रहकर भूतल पर यदि जल प्रदान करता है, वह व्यर्थ है। उससे कोई भी तृप्त नहीं होता। जो स्थल पर रहकर तर्पणार्थ जल में जल प्रदान करता है, वह भी व्यर्थ ही है। उससे पितर तृप्त नहीं होते। जल में रहकर कभी भी पितृगण को जल प्रदान न करे। पवित्र तट पर जल तर्पण करे। क्रोधित होकर एक हाथ से, जल में अथवा पात्र में तर्पण जल न छोड़े। जो तर्पण जल पृथिवी पर नहीं दिया जाता, वह बेकार हो जाता है। वह उद्दिष्ट पितरों को नहीं मिलता। हे ब्राह्मणों! मैंने पृथिवी को ही पितरों के तर्पणार्थ अक्षय स्थानरूपेण दिया है। अतः पृथिवी पर ही तर्पण जल देना चाहिये।।५६-६३।।

भूमिपृष्ठे समुत्पन्ना भूम्यां चैव च संस्थिताः।
भूम्यां चैव लयं याता भूमौ दद्यात्ततो जलम्।।६४।।
आस्तीर्य च कुशान्साग्रांस्तानावाह्य स्वमन्त्रतः।
प्राचीनाग्रेषु वै देवान्याम्याग्रेषु तथा पितॄन्।।६५।।

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे समुद्रस्नानविधिनिरूपणं नाम षष्टितमोऽध्यायः।।६०।।

—❀—

भू पृष्ठ पर ही जन्म होता है। वहीं लोग रहते हैं तथा भूमि में ही सबका लय होता है। अतः भूमि पर ही जलदान कर्त्तव्य है। तर्पण काल में भूमि पर ही अग्रभाग युक्त कुश बिछाये। वहां देवता तथा पितरों का उनके-उनके मन्त्र से आवाहन करके पूर्वाग्र में देवगण हेतु तथा दक्षिण में पितृगण को जल प्रदान करे।।६४-६५।।

।।षष्ठितम अध्याय समाप्त।।



अथैकषष्टितमोऽध्यायः

शरीरशोधन विधि, आवाहनादि मन्त्रयुक्त पूजाविधि का वर्णन

ब्रह्मोवाच

देवान्पितृृस्तथा चान्यान्सन्तर्प्याऽऽचम्य वाग्यतः।
हस्तमात्रं चतुष्कोणं चतुर्द्वारं सुशोभनम्॥१॥
पुरं विलिख्य भो विप्रास्तीरे तस्य महोदधेः। मध्ये तत्र लिखेत्पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम्॥२॥
एवं मण्डलमालिख्य पूजयेत्तत्र भो द्विजाः। अष्टाक्षरविधानेन नारायणमजं विभुम्॥३॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि कायशोधनमुत्तमम्। अकारं हृदये ध्यात्वा चक्ररेखासमन्वितम्॥४॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे विप्रगण! इस प्रकार देवता, पितर तथा अन्य प्राणीगण का तर्पण करके आचमन के पश्चात् मौनी होकर सागर तट पर एक मण्डल बनाये। यह एक हाथ का, चौकोर, चार द्वार युक्त तथा शोभन होगा। उसमें एक कर्णिका युक्त अष्टदल कमल का अंकन करे। ऐसा मंडल बनाकर अष्टाक्षर मन्त्र से अज, विभु, नारायण का पूजन उसमें करना चाहिये। हे ब्राह्मणगण! तदनन्तर उत्तम कायशुद्धि कहता हूं। हृदय में चक्ररेखान्वित 'अ'कार का ध्यान करे (पाठभेद से 'क्ष' का ध्यान भी किसी प्रति में अंकित है)।।१-४।।

ज्वलन्तं त्रिशिखं चैव दहन्तं पापनाशनम्।
चन्द्रमण्डलमध्यस्थं राकारं मूर्ध्नि चिन्तयेत्॥५॥
शुक्लवर्णं प्रवर्षन्तममृतं प्लावयन्महीम्। एवं निर्धूतपापस्तु दिव्यदेहस्ततो भवेत्॥६॥
अष्टाक्षरं ततो मन्त्रं न्यसेदेवाऽऽत्मनो बुधः। वामपादं समारभ्य क्रमशश्चैव विन्यसेत्॥७॥
पञ्चाङ्गं वैष्णवं चैव चतुर्व्यूहं तथैव च। करशुद्धिं प्रकुर्वीत मूलमन्त्रेण साधकः॥८॥
एकैकं चैव वर्णं तु अङ्गुलीषु पृथक्पृथक्।
ओंकारं पृथिवीं शुक्लां वामपादे तु विन्यसेत्॥९॥

तदनन्तर उज्ज्वल त्रिशिखारूप दाहकारी-पापनाशक अग्नि के चिन्तन सहित चन्द्र मण्डल मध्य स्थित

'रा' का चिन्तन मस्तक पर करे। यह भावना करे कि शुक्लवर्ण किरणें अमृत वर्षण करती पृथिवी को प्लावित कर रही हैं। एवंविध निष्पाप होकर (धारणा करने वाला) पापरहित तथा दिव्यदेही हो जाता है। अब साधक को वाम पाद से प्रारम्भ करने क्रमशः सर्वाङ्ग में अष्टाक्षर मन्त्र का न्यास करना चाहिये। तदनन्तर वह व्यक्ति वैष्णव पंचांग, चतुर्व्यूह तथा मूल मन्त्र से करशुद्धि सम्पन्न करे। प्रत्येक अंगुलि दल में एक-एक ओंकार वर्ण विन्यस्त करके शुक्लवर्ण पृथिवी बीज का न्यास वाम पैर पर करना चाहिये।।५-९।।

नकारः शाम्भवः श्यामो दक्षिणे तु व्यवस्थितः।
मोकारं कालमेवाऽऽहुर्वामकट्यां निधापयेत्।।१०।।
नाकारः सर्वबीजं तु दक्षिणस्यां व्यवस्थितः।
राकारस्तेज इत्याहुर्नाभिदेशे व्यवस्थितः।।११।।
वायव्योऽयं यकारस्तु वामस्कन्धे समाश्रितः।
णाकारः सर्वगो ज्ञेयो दक्षिणांसे व्यवस्थितः।
यकारोऽयं शिरस्थश्च यत्र लोकाः प्रतिष्ठिताः।।१२।।

श्यामवर्ण शांभव बीज 'न' का न्यास दक्षिण पैर पर, कालबीज 'मो' का न्यास वाम कटि पर, सर्वबीज 'ना' का न्यास दक्षिण कटि पर, तैजस 'रा' बीज का न्यास नाभि पर, वायव्यबीज 'य' का न्यास बायें कंधे पर तथा सर्वग बीज 'णा' का न्यास दक्षिण स्कन्ध पर करे। तदनन्तर सर्वलोक प्रतिष्ठित 'य' बीज का शिर पर करे।।१०-१२।।

ॐ विष्णवे नमः शिरः। ॐ ज्वलनाय नमः शिखा। ॐ विष्णवे नमः कवचम्। ॐ विष्णवे नमः स्फुरणं दिशोबन्धाय। ॐ हुंफडस्त्रम्। ॐ शिरसि शुक्लो वासुदेव इति। ॐ आं ललाटे रक्तः सङ्कर्षणो गरुत्मान्वह्निस्तेज आदित्य इति। ॐ आं ग्रीवायां पीतः प्रद्युम्नो वायुमेघ इति। ॐ आं हृदये कृष्णोनिरुद्धः सर्वशक्तिसमन्वित इति। एवं चतुर्व्यूहमात्मानं कृत्वा ततः कर्म समाचरेत्।।१३।।

अब—

ॐ विष्णवे नमः	—	शिर,
ॐ ज्वलनाय नमः	—	शिखा,
ॐ विष्णवे नमः	—	कवच,
ॐ हुं फडस्त्रम्	—	नेत्रस्पर्श तथा दिग्बन्धन करे।
ॐ शिरसि शुक्लो वासुदेवः	—	शिर
ॐ आं ललाटे रक्तः संकर्षणो गरुत्मान् वह्निस्तेज आदित्यः	—	ललाट
ॐ आं ग्रीवायां पीतः प्रद्युम्नः वायुमेघः	—	ग्रीवा
ॐ आं हृदये कृष्णोऽनिरुद्धः सर्वशक्तिसमन्वितः	—	हृदय

इन मन्त्रों द्वारा स्वयं को साधक चतुर्व्यूह से सुरक्षित करे। तदनन्तर आगे का कार्य करे।।१३।।

ममाग्रेऽवस्थितो विष्णुः पृष्ठतश्चापि केशवः।
गोविन्दो दक्षिणे पार्श्वे वामे तु मधुसूदनः॥१४॥
उपरिष्टात्तु वैकुण्ठो वाराहः पृथिवीतले। अवान्तरदिशो यास्तु तासु सर्वासु माधवः॥१५॥
गच्छतस्तिष्ठतो वाऽपि जाग्रतः स्वपतोऽपि वा। नरसिंहकृता गुप्तिर्वासुदेवमयो ह्यहम्॥१६॥

मेरे आगे विष्णु, पृष्ठ की ओर केशव, दक्षिण पार्श्व में गोविन्द, वाम पार्श्व में मधुसूदन, ऊर्ध्व में वैकुण्ठ, पृथिवी तल पर प्रभु वाराह, सभी दिशा तथा दिक् कोणों में माधव रक्षा करें। गमन करते, अवस्थान करते, जागते, स्वप्न देखते, शयन करते नृसिंह देव मेरी रक्षा करें। मैं वासुदेवमय हूं।।१४-१६।।

एवं विष्णुमयो भूत्वा ततः कर्म समारभेत्।
यथा देहे तथा देवे सर्वतत्त्वानि योजयेत्॥१७॥

इस प्रकार स्वयं विष्णुमय होकर तब कर्माचरण करे। साधक में जिस प्रकार से स्वदेह में सर्वतत्व योजित किया था। वह तदनुरूप देवता पर जो उस मण्डल में हैं, सर्वतत्व योजित् करे।।१७।।

ततश्चैव प्रकुर्वीत प्रोक्षणं प्रणवेन तु। फट्कारान्तं समुद्दिष्टं सर्वविघ्नहरं शुभम्॥१८॥
तत्रार्कचन्द्रवह्नीनां मण्डलानि विचिन्तयेत्।
पद्ममध्ये न्यसेद्विष्णुं पवनस्याम्बरस्य च॥१९॥
ततो विचिन्त्य हृदय ओंकारं ज्योतिरूपिणम्।
कर्णिकायां समासीनं ज्योतिरूपं सनातनम्॥२०॥
अष्टाक्षरं ततो मन्त्रं विन्यसेच्च यथाक्रमम्। तेन व्यस्तसमस्तेन पूजनं परमं स्मृतम्॥२१॥
द्वादशाक्षरमन्त्रेण यजेद्देवं सनातनम्। ततोऽवधार्य हृदये कर्णिकायां बहिर्न्यसेत्॥२२॥
चतुर्भुजं महासत्त्वं सूर्यकोटिसमप्रभम्। चिन्तयित्वा महायोगं ज्योतिरूपं सनातनम्।
ततश्चाऽऽवाहयेन्मन्त्रं क्रमेणाऽऽचिन्त्य मानसे॥२३॥

तदनन्तर प्रणव मन्त्र से प्रोक्षण करके सर्वविघ्नहारी शुभ फट् कारान्त मन्त्र द्वारा जो 'ॐ नमो नारायणाय फट्' से प्रोक्षण करना चाहिये। तब सूर्य, चन्द्र, ब्रह्ममण्डल का चिन्तन करे। पद्ममध्य में विष्णु का न्यास करके हृदय में ज्योतिरूप ओंकार चिन्तन करके कर्णिका स्थित सनातन ज्योतिरूप अष्टाक्षर मन्त्र का यथाक्रमेण विन्यास करना चाहिये। तब इस मन्त्र से पृथक्तः तथा समूहात्मक रूप से पूजन करना सर्वोत्कृष्ट है। इन सनातन देव की पूजा द्वादशाक्षर मन्त्र से करे। इस पूजन के उपरान्त हृदय में भागवत् ध्यान ओंकार ज्योतिरूप करके कर्णिका में समासीन सनातन ज्योतिरूप का स्मरण करे। इन सनातन देव की पूजा द्वादशाक्षर मन्त्र से की जाये। तदनन्तर हृदय में इनकी अवधारणा करने के पश्चात् कर्णिका के बहिर्भाग में न्यास करे। ये देव चतुर्भुज, महान् पराक्रम वाले, कोटि सूर्यवत् प्रभावान् हैं। इन ज्योतिरूपी सनातन महायोग का ध्यान करके आवाहन कार्य करे।।१८-२३।।

आवाहनमन्त्रः

मीनरूपो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः। आयातु देवो वरदो मम नारायणोऽग्रतः। ॐ नमो नारायणाय नमः॥२४॥

स्थापनमन्त्रः

कर्णिकायां सुपीठेऽत्र पद्मकल्पितमासनम्। सर्वसत्त्वहितार्थाय तिष्ठ त्वं मधुसूदन। ॐ नमो नारायणाय नमः॥२५॥

अर्घमन्त्रः

ॐ त्रैलोक्यपतीनां पतये देवदेवाय हृषीकेशाय विष्णवे नमः। ॐ नमो नारायणाय नमः॥२६॥

पाद्यमन्त्रः

ॐ पाद्यं पादयोर्देव पद्मनाभ सनातन। विष्णो कमलपत्राक्ष गृहाण मधुसूदन। ॐ नमो नारायणाय नमः॥२७॥

मधुपर्कमन्त्रः

मधुपर्कं महादेव ब्रह्माद्यैः कल्पितं तव। मया निवेदितं भक्त्या गृहाण पुरुषोत्तम। ॐ नमो नारायणाय नमः॥२८॥

आवाहन—हे मीन रूप! वराह, नृसिंह, वामन रूपधारी, वरप्रद, देव, नारायण मेरे आगे आगमन करें। ॐ नमो नारायणाय नमः।

स्थापना मन्त्र—हे मधुसूदन! आप इस मानस द्वारा कल्पित कमल रूपेण उत्तम कर्णिका के आसन पर समस्त जीवगण के कल्याणार्थ आप आसीन हों। ॐ नमो नारायणाय नमः।

अर्घ्यमन्त्र—ॐ आप त्रैलोक्य स्वामीगण के भी स्वामी हैं। हे देवदेव, हृषीकेश, विष्णु! आपको प्रणाम! ॐ नमो नारायणाय नमः।

पाद्यमन्त्र—हे पद्मनाभ, सनातन देव, विष्णु कमलनयन मधुसूदन! आपके चरण पर पाद्य अर्पित है। ॐ नमो नारायणाय नमः।

मधुपर्क मन्त्र—हे महान् देवता! ब्रह्मा आदि कल्पित यह मधुपर्क आपको भक्तिभाव से निवेदित कर रहा हूं। हे पुरुषोत्तम! ग्रहण करें। ॐ नमो नारायणाय नमः।।२४-२८।।

आचमनीयमन्त्रः

मन्दाकिन्याः सितं वारि सर्वपापहरं शिवम्। गृहाणाऽऽचमनीयं त्वं मया भक्त्या निवेदितम्। ॐ नमो नारायणाय नमः॥२९॥

स्नानमन्त्रः

त्वमापः पृथिवी चैव ज्योतिस्त्वं वायुरेव च। लोकेश वृत्तिमात्रेण वारिणा स्नापयाम्यहम्। ॐ नमो नारायणाय नमः॥३०॥

वस्त्रमन्त्रः

देवतत्त्वसमायुक्त यज्ञवर्णसमन्वित। स्वर्णवर्णप्रभे देव वाससी तव केशव। ॐ नमो नारायणाय नमः॥३१॥

विलेपनमन्त्रः

शरीरं तेन जानामि चेष्टां चैव च केशव। मया निवेदितो गन्ध प्रतिगृह्य विलिप्यताम्। ॐ नमो नारायणाय नमः॥३२॥

आचमनीय मन्त्र—मैं सर्वपापहारी शुभ मन्दाकिनी जल आपको आचमनार्थ निवेदित करता हूं। हे देव! ग्रहण करिये! ॐ नमो नारायणाय नमः।

स्नान मन्त्र—हे लोकपति! आप जल, पृथिवी तथा ज्योतिरूप हैं। आप ही वायु हैं। हे लोकेश! केवल वृति मात्र से (विधि निर्वाह मात्र हेतु) जल स्नान करें। ॐ नमो नारायणाय नमः।

वस्त्र मन्त्र— हे देव! आप देवतत्व समायुक्त हैं। आप यज्ञवर्ण समन्वित हैं। हे केशव! ये स्वर्णवर्ण वस्त्र स्वीकार करिये। ॐ नमो नारायणाय नमः।

विलेपन मन्त्र—हे केशव! मुझे आपके देह का ज्ञान नहीं है। आपकी क्या इच्छा है, यह भी ज्ञान नहीं है। तथापि यह सुगन्ध विलेपन अर्पित है। स्वीकार करें। ॐ नमो नारायणाय नमः।।२९-३२।।

उपवीतमन्त्रः

ऋग्यजुःसाममन्त्रेण त्रिवृतं पद्मयोनिना। सावित्रीग्रन्थिसंयुक्तमुपवीतं तवार्पये। ॐ नमो नारायणाय नमः॥३३॥

अलङ्कारमन्त्रः

दिव्यरत्नसमायुक्त वह्निभानुसमप्रभ। गात्राणि तव शोभन्तु सालङ्काराणि माधव। ॐ नमो नारायणाय नमः॥३४॥

ॐ नम इति प्रत्यक्षरं समस्तेन मूलमन्त्रेण वा पूजयेत्॥३५॥

उपवीत मन्त्र—यह यज्ञोपवीत पद्मयोनि विधाता द्वारा ऋक्, यजुः, साम मन्त्रों से तीन बार लपेटा हुआ है। यह सावित्री की बनाई ग्रन्थि से युक्त है। यह आपको अर्पित है। ग्रहण करें। ॐ नमो नारायणाय नमः।

अलंकार मन्त्र—हे माधव! दिव्य रत्न समायुक्त, अग्नि तथा सूर्य प्रभा वाले प्रभु! आपके गात्र इन अलंकारों से शोभायमान हो जायें। ॐ नमो नारायणाय नमः।

ॐ नमः के प्रत्येक अक्षर से किंवा पूर्ण मूलमन्त्र से पूजा करे।।३३-३५।।

धूपमन्त्रः

वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुरभिश्च ते। मया निवेदितो भक्त्या धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्। ॐ नमो नारायणाय नमः॥३६॥

दीपमन्त्रः

सूर्यचन्द्रसमो ज्योतिर्विद्युदग्न्योस्तथैव च। त्वमेव ज्योतिषां देव दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्। ॐ नमो नारायणाय नमः॥३७॥

नैवेद्यमन्त्रः

अन्नं चतुर्विधं चैव रसैः षड्भिः समन्वितम्। मया निवेदितं भक्त्या नैवेद्यं तव केशव। ॐ नमो नारायणाय नमः॥३८॥

धूप मन्त्र—हे देव! मैं दिव्य गन्धयुक्त सुरभित वानस्पतिक रसयुक्त धूप श्रद्धा पूर्वक अर्पित कर रहा हूं। ग्रहण करिये। ॐ नमो नारायणाय नमः।

दीप मन्त्र—हे देव! आप सूर्य, चन्द्र, विद्युत्, अग्निवत् ज्योतिष्मान् हैं। आप प्रकाशपूर्ण हैं। हे प्रभो! यह दीपक ग्रहण करिये। ॐ नमो नारायणाय नमः।

नैवेद्य मन्त्र—हे केशव! चतुर्विध षड्रसात्मक मधुर अन्न भक्ति से प्रदान कर रहा हूं। अब इस पूजनोपरान्त पुनः देवता का न्यास करना चाहिये। ॐ नमो नारायणाय नमः।।३६-३८।।

पूर्वे दले वासुदेवं याम्ये सङ्कर्षणं न्यसेत्। प्रद्युम्नं पश्चिमे कुर्यादनिरुद्धं तथोत्तरे॥३९॥
वाराहं च तथाऽऽग्नेये नरसिंहं च नैर्ऋते। वायव्ये माधवं चैव तथैशाने त्रिविक्रमम्॥४०॥
तथाऽष्टाक्षरदेवस्य गरुडं पुरतो न्यसेत्। वामपार्श्वे तथा चक्रं शङ्खं दक्षिणतो न्यसेत्॥४१॥
तथा महागदां चैव न्यसेद्देवस्य दक्षिणे। ततः शार्ङ्गं धनुर्विद्वान्न्यसेद्देवस्य वामतः॥४२॥

दक्षिणेनेषुधी दिव्ये खड्गं वामे च विन्यसेत्।
श्रियं दक्षिणतः स्थाप्य पुष्टिमुत्तरतो न्यसेत्॥४३॥

वनमालां च पुरतस्ततः श्रीवत्सकौस्तुभौ। विन्यसेद्धृदयादीनि पूर्वादिषु चतुर्दिशम्॥४४॥
ततोऽस्त्रं देवदेवस्य कोणे चैव तु विन्यसेत्। इन्द्रमग्निं यमं चैव नैर्ऋतं वरुणं तथा॥४५॥
वायुं धनदमीशानमनन्तं ब्रह्मणा सह। पूजयेत्तान्त्रिकैर्मन्त्रैरधश्चोर्ध्वं तथैव च॥४६॥
एवं सम्पूज्य देवेशं मण्डलस्थं जनार्दनम्। लभेदभिमतान्कामान्नरो नास्त्यत्र संशयः॥४७॥

पूर्व दल पर वासुदेव, दक्षिण दल पर संकर्षण, पश्चिम पर प्रद्युम्न, उत्तर पर अनिरुद्ध, अग्निकोण में वराह, नैर्ऋत् में नरसिंह, वायव्य में माधव, ईशान में त्रिविक्रम का न्यास करे। इस प्रकार वासुदेव के समक्ष गरुड़, वामपार्श्व में चक्र, दक्षिण में शंख तथा महागदा, वाम में शार्ङ्ग धनु, दक्षिण पार्श्व में दिव्य दो तरकस तथा वाम में खड्ग का, दक्षिण में श्री, उत्तर में पुष्टि का न्यास करे। समक्ष में वनमाला श्रीवत्स, कौस्तुभ मणि तथा पूर्वादि चारों दिक् तथा कोणों में देवाधिदेव का अस्त्र विन्यास करे। ऊर्ध्व तथा अधः में तांत्रिक मन्त्र से ब्रह्मा, इन्द्र, यम, नैर्ऋत्, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान तथा अनन्त पूजन करना चाहिये। एवंविध मण्डलस्थ देवदेव जनार्दन की पूजा करके निश्चित रूप से अभिमत काम्य वस्तु की प्राप्ति होती है। इसमें संशय ही नहीं है।।३९-४७।।

अनेनैव विधानेन मण्डलस्थं जनार्दनम्। पूजितं यः संपश्येत स विशेद्विष्णुमव्ययम्॥४८॥

सकृदप्यर्चितो येन विधिनाऽनेन केशवः।
जन्ममृत्युजरां तीर्त्वा स विष्णोः पदमाप्नुयात्॥४९॥
यः स्मरेत्सततं भक्त्या नारायणमतन्द्रितः।
अन्वहं तस्य वासाय श्वेतद्वीपः प्रकल्पितः॥५०॥

ओंकारादिसमायुक्तं नमःकारान्तदीपितम्। तन्नाम सर्वतत्त्वानां मन्त्र इत्यभिधीयते॥५१॥

इस प्रकार से मण्डलस्थ जनार्दन को जो पूजित होता देखते हैं, वे अव्यय विष्णु में लीन हो जाते हैं। जो इस विधि से एक बार भी केशव पूजन सम्पन्न कर लेते हैं, वे जन्म, जरा, मृत्यु पर जय पाकर विष्णुपद में उपनीत हो जाते हैं। जो भक्ति भाव से तथा निरलस भाव से नित्य नारायण स्मरण करता है, उसे श्वेत द्वीप में स्थान मिलता है। प्रणव को आदि में लगाकर अन्तः नमः कहे। सर्वतत्मय वासुदेव का नाम ही सर्वतत्वमय मन्त्र कहा गया है।।४८-५१।।

अनेनैव विधानेन गन्धपुष्पं निवेदयेत्। एकैकस्य प्रकुर्वीत यथोद्दिष्टं क्रमेण तु॥५२॥
मुद्रास्ततो निबध्नीयाद्यथोक्तक्रमचोदिताः। जपं चैव प्रकुर्वीत मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्॥५३॥
अष्टाविंशतिमष्टौ वा शतमष्टोत्तरं तथा। कामेषु च यथाप्रोक्तं यथाशक्ति समाहितः॥५४॥

पद्मं शङ्खश्च श्रीवत्सो गदा गरुड एव च।
चक्रं खड्गश्च शार्ङ्गं च अष्टौ मुद्राःप्रकीर्तिताः॥५५॥

विसर्जनमन्त्रः

गच्छ गच्छ परं स्थानं पुराणपुरुषोत्तम। यत्र ब्रह्मादयो देवा विन्दन्ति परमं पदम्॥५६॥
अर्चनं ये न जानन्ति हरेर्मन्त्रैर्यथोदितम्। ते तत्र मूलमन्त्रेण पूजयन्त्वच्युतं सदा॥५७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे पूजाविधिकथनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः॥६१॥



यहां उल्लिखित मन्त्रों से ही यथाक्रमेण गन्ध-पुष्पादि अर्पित करना चाहिये। तदनन्तर यथा—विहित क्रम से निर्दिष्ट मुद्रा प्रदर्शन करके मन्त्री व्यक्ति ८, २८, १०८ अथवा यथाशक्ति मूलमन्त्र जपे। पद्म, शंख, श्रीवत्स, गदा, गरुड़, चक्र, शार्ङ्ग—ये आठ मुद्रा कही गयी हैं। इन सबका प्रदर्शन करे। तदनन्तर मन्त्र युक्त विसर्जन करे। मन्त्रार्थ है—हे पुराणपुरुषोत्तम! आप अपने परमस्थान जायें। वहां ब्रह्मादि देवगण परमपद लाभ करते हैं। जो यथायथ हरि के मन्त्रार्चन को नहीं जानते, वे केवल मूलमन्त्र से ही अर्चना करें।।५२-५७।।

।।एकषष्टितम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

समुद्र स्नान माहात्म्य वर्णन

ब्रह्मोवाच

एवं सम्पूज्य विधिवद्भक्त्या तं पुरुषोत्तमम्। प्रणम्य शिरसा पश्चात्सागरं च प्रसादयेत्॥१॥
प्राणस्त्वं सर्वभूतानां योनिश्च सरितांपते। तीर्थराज नमस्तेऽस्तु त्राहि मामच्युतप्रिय॥२॥
स्नात्वैवं सागरे सम्यक्तस्मिन्क्षेत्रवरे द्विजाः। तीरे चाभ्यर्च्य विधिवन्नारायणमनामयम्॥३॥
रामं कृष्णं सुभद्रां च प्रणिपत्य च सागरम्। शतानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः॥४॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वदुःखविवर्जितः। वृन्दारक इव श्रीमान्रूपयौवनगर्वितः॥५॥
विमानेनार्कवर्णेन दिव्यगन्धर्वनादिना। कुलैकविंशमुद्धृत्य विष्णुलोकं स गच्छति॥६॥
भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान्क्रीडित्वा चाप्सरैः सह। मन्वन्तरशतं साग्रं जरामृत्युविवर्जितः॥७॥
पुण्यक्षयादिहाऽऽयातः कुले सर्वगुणान्विते।
रूपवान्सुभगः श्रीमान्सत्यवादी जितेन्द्रियः॥८॥
वेदशास्त्रार्थविद्विप्रो भवेद्यज्वा तु वैष्णवः। योगं च वैष्णवं प्राप्य ततो मोक्षमवाप्नुयात्॥९॥

ब्रह्मा कहते हैं—इस प्रकार भक्ति पूर्वक पुरुषोत्तम देव की सविधि पूजा करके मस्तक झुका कर प्रणाम करने के उपरान्त वरुण को प्रसन्न करते हुये कहे—"हे सरिताओं के स्वामी! आप समस्त प्राणीगण के प्राण तथा योनि हैं। हे तीर्थराज! अच्युतप्रिय! आपको प्रणाम! मेरी रक्षा करिये।" हे ब्राह्मणों! यह कहने के उपरान्त सागर स्नान करके तट पर सविधि अनामय नारायण, बलराम, सुभद्रा तथा सागर की अर्चना के उपरान्त उनको प्रणाम करके मानव सौ अश्वमेध यज्ञों का फल पा जाता है। उसके सभी पाप तथा दुःख दूरीभूत हो जाते हैं। वह देवता के समान श्रीमान् तथा यौवनगर्वित होकर गन्धर्वों के दिव्य संगीत से नादित सूर्यवर्ण विमान पर बैठकर अपनी २१ पीढ़ी का उद्धार करके विष्णुलोक जाता है। वहां जाकर वह सौ मन्वन्तर तक जरा-मृत्यु से छुटकारा स्थिति लाभ करके नाना प्रकार के भोगों का उपभोग करता हुआ तथा अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करके तत्पश्चात् पुण्यक्षय हो जाने पर मृत्युलोक में जन्म लेकर किसी सर्वगुण सम्पन्न कुल में सुरूप, सौभाग्यशाली, श्रीमान्, सत्यवादी, इन्द्रियजित्, वेद-शास्त्रार्थज्ञ, यागशील, वैष्णव ब्राह्मण होकर जन्म लेता है तथा वैष्णव योग का अवलम्बन लेकर अन्त में मोक्षलाभ करता है।।१-९।।

ग्रहोपरागे सङ्क्रान्त्यामयने विषुवे तथा। युगादिषु षडशीत्यां व्यतीपाते दिनक्षये॥१०॥
आषढ्यां चैव कार्तिक्यां माघ्यां वाऽन्ये शुभे तिथौ।
ये तत्र दानं विप्रेभ्यः प्रयच्छन्ति सुमेधसः॥११॥
फलं सहस्त्रगुणितमन्यतीर्थाल्लभन्ति ते। पितृणां ये प्रयच्छन्ति पिण्डं तत्र विधानतः॥१२॥

ग्रहण, क्रान्ति, अयन, विषुव, युगाद्य, षड्शीति, व्यतीपात तथा आषाढ़, कार्तिक, माघ मास की शुभ

तिथि पर जो सुधी मानव पुरुषोत्तम क्षेत्र में ब्राह्मणों को धनादि प्रदान करता है, वह अन्य तीर्थ की तुलना में सहस्रगुना फल पाता है। जो वहां सविधि पितृपिण्ड प्रदान करता है।।१०-१२।।

अक्षयां पितरस्तेषां तृप्तिं सम्प्राप्नुवन्ति वै।
एवं स्नानफलं सम्यक्सागरस्य मयोदितम्॥१३॥
दानस्य च फलं विप्राः पिण्डदानस्य चैव हि। धर्मार्थमोक्षफलदमायुष्कीर्तियशस्करम्॥१४॥
भुक्तिमुक्तिफलं नृणां धन्यं दुःस्वप्ननाशनम्। सर्वपापहरं पुण्यं सर्वकामफलप्रदम्॥१५॥

उसके पितर अक्षय कीर्त्तिलाभ करते हैं। हे ब्राह्मणों! एवंविध सविधि सागर स्नान, धनदान तथा पिण्डदान का जो फल मिलता है, वह मैंने आप लोगों को यथायथ कह दिया। यह पौराणिक विधि धर्म-अर्थ तथा मोक्षदायक है। हे द्विजवृन्द! आयु-कीर्त्ति-यश-भुक्ति-मुक्तिफल इससे मिलता है। यह धन्य-पुण्यप्रद तथा सर्वकामफलप्रद है। यह सर्वपापहर एवं दुःस्वप्न नाशक है।।१३-१५।।

नास्तिकाय न वक्तव्यं पुराणं च द्विजोत्तमाः।
तावद् गर्जन्ति तीर्थानि माहात्म्यैः स्वैः पृथक्पृथक्॥१६॥
यावन्न तीर्थराजस्य माहात्म्यं वर्ण्यते द्विजाः।
पुष्करादीनि तीर्थानि प्रयच्छन्ति स्वकं फलम्॥१७॥
तीर्थराजस्तु स पुनः सर्वतीर्थफलप्रदः। भूतले यानि तीर्थानि सरितश्च सरांसि च॥१८॥
विशन्ति सागरे तानि तेनासौ श्रेष्ठतां गतः।
राजा समस्ततीर्थानां सागरः सरितां पतिः॥१९॥
तस्मात्समस्ततीर्थेभ्यः श्रेष्ठोऽसौ सर्वकामदः।
तमोनाशं यथाऽभ्येति भास्करेऽभ्युदिते द्विजाः॥२०॥
स्नानेन तीर्थराजस्य तथा पापस्य संक्षयः। तीर्थराजसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति॥२१॥

हे द्विजप्रवरगण! इस पुण्य प्रसंग को नास्तिकों से कदापि न कहे। हे द्विजों! जब तक इस तीर्थराज का माहात्म्य प्रचलित नहीं होता है, तभी तक सभी तीर्थ अपने-अपने माहात्म्य को गर्व पूर्वक व्यक्त करते गर्जन करते रहते हैं। पुष्कर आदि तीर्थ अपनी-अपनी सेवा का अपना ही फलमात्र बांटते रहते हैं, लेकिन यह तीर्थराज पुरुषोत्तम एक ही साथ सभी तीर्थों का फल अकेले देता है। पृथिवी पर जितनी सरितायें, सरोवरादि तीर्थ हैं, वे सभी सागर में प्रवेश करते हैं, इसीलिये सरितपति सागर सभी तीर्थों का सर्वश्रेष्ठ राजा है। अतः सर्वकामप्रद सागर सभी तीर्थों से प्रधान हैं। हे द्विजगण! जिस तरह सूर्योदय से समस्त तमःराशि का नाश होता है, उसी तरह इस तीर्थराज में स्नान करने वाला सभी पापों से रहित हो जता है। इस तीर्थराज के समान न तो कोई तीर्थ था, न होगा!।।१६-२१।।

अधिष्ठानं यदा यत्र प्रभोर्नारायणस्य वै।
कः शक्नोति गुणान्वक्तुं तीर्थराजस्य भो द्विजाः॥२२॥

कोट्यो नवनवत्यस्तु यत्र तीर्थानि सन्ति वै।
तस्मात्स्नानं च दानं च होमं जप्यं सुरार्चनम्।
यत्किञ्चित्क्रियते तत्र चाक्षयं क्रियते द्विजाः॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे समुद्रस्नानमाहात्म्यवर्णनं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः॥६२॥



यहां स्वामी प्रभु देवाधिदेव नारायण का सदैव अधिष्ठान रहता है। हे द्विजवर! इस तीर्थराज के गुण को कौन कह सकेगा? यहां ८९ करोड़ तीर्थ सदा निवास करते हैं। यहां किया देवतार्चन, स्नान, दान, होम, जप सभी कुछ अक्षय हो जाता है।।२२-२३।।

।।द्विषष्टितम अध्याय समाप्त।।



अथ त्रिषष्टितमोऽध्यायः

पञ्चतीर्थ माहात्म्य निरूपण

ब्रह्मोवाच

ततो गच्छेद् द्विजश्रेष्ठास्तीर्थं यज्ञाङ्गसम्भवम्।
इन्द्रद्युम्नसरो नाम यत्राऽऽस्ते पावनं शुभम्॥१॥
गत्वा तत्र शुचिर्धीमानाचम्य मनसा हरिम्। ध्यात्वोपस्थाय च जलमिमं मन्त्रमुदीरयेत्॥२॥
अश्वमेधाङ्गसम्भूत तीर्थ सर्वाघनाशन। स्नानं त्वयि करोम्यद्य पापं हर नमोऽस्तु ते॥३॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे द्विजप्रवरगण! तदनन्तर यज्ञों के कारण यज्ञांग से उत्पन्न श्रेष्ठ इन्द्रद्युम्न सरोवर नामक तीर्थ में जाये, जो पावन तथा शुभ है। यहां जाकर धीमान् व्यक्ति पवित्र भाव से आचमन करके मन ही मन हरि का ध्यान तथा जलस्पर्श करके यह मन्त्र पढ़े। यथा—हे अश्वमेध के यज्ञांग से उत्पन्न, सर्वपापनाशक तीर्थ! आज मैं आपके जल में स्नान कर रहा हूं। आप मेरे पापों को हरिये। आपको नमस्कार है!।।१-३।।

एवमुच्चार्य विधिवत्स्नात्वा देवानृषीन्पितॄन्।
तिलोदकेन चान्यांश्च सन्तर्प्याऽऽचम्य वाग्यतः॥४॥
दत्त्वा पितॄणां पिण्डांश्च सम्पूज्य पुरुषोत्तमम्।
दशाश्वमेधिकं सम्यक्फलं प्राप्नोति मानवः॥५॥
सप्तावरान्सप्त परान्वंशानुद्धृत्य देववत्। कामगेन विमानेन विष्णुलोकं स गच्छति॥६॥

भुक्त्वा तत्र सुखान्भोगान्यावच्चन्द्रार्कतारकम्।
च्युतस्तस्मादिहाऽऽयातो मोक्षं च लभते ध्रुवम्॥७॥
एवं कृत्वा पञ्चतीर्थामेकादश्यामुपोषितः। ज्येष्ठशुक्लपञ्चदश्यां यः पश्येत्पुरुषोत्तमम्॥८॥
स पूर्वोक्तं फलं प्राप्य क्रीडित्वा वाऽच्युतालये।
प्रयाति परमं स्थानं यस्मान्नाऽऽवर्तते पुनः॥९॥

यह मन्त्रोच्चार करके सविधि स्नान करके देवता, ऋषि तथा पितरों हेतु तिल जल दान करे (तर्पण करे)। पितरों को पिण्डदान तथा पुरुषोत्तम की पूजा करके मानव सौ अश्वमेध यज्ञफल लाभ करता है तथा अपने कुल की पूर्व तथा आगे की सात-सात पीढ़ी का उद्धार करके देवगण के समान होकर इच्छागामी विमान पर बैठ कर विष्णुलोक जाता है। वहां जाकर जब तक चन्द्र-सूर्य की सत्ता है, तब तक सुखभोग करके पुण्यक्षय होने पर वहां से च्युत होकर मर्त्यलोक में जन्म लेता है तथा उसे निश्चित रूप से इसके पश्चात् मोक्षलाभ होता है। इस प्रकार एकादशी को उपवासी रहकर जो मनुष्य पञ्चतीर्थकृत्य सम्पादित करने के पश्चात् ज्येष्ठ पूर्णिमा के दिन पुरुषोत्तम का दर्शन करता है, उसे समस्त पूर्वोक्त फल की प्राप्ति होती है। वह अच्युत लोक में (मृत्यु के उपरान्त) विहार करके एक ऐसे स्थान की प्राप्ति करता है, जहां जाकर उसे पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता।।४-९।।

मुनय ऊचुः

मासानन्यान्परित्यज्य माघादीन्प्रपितामह। प्रशंससि कथं ज्येष्ठं ब्रूहि तत्कारणं प्रभो॥१०॥

मुनिगण कहते हैं—हे प्रपितामह! माघादि सभी महीनों को छोड़कर एकमात्र ज्येष्ठ मास की ही प्रशंसा क्यों कर रहे हैं? हे प्रभो! इसका क्या कारण है? वह कहिये।।१०।।

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनिशार्दूलाः प्रवक्ष्यामि समासतः।
ज्येष्ठं मासं तथा तेभ्यः प्रशंसामि पुनः पुनः॥११॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितश्च सरांसि च।
पुष्करिण्यस्तडागानि वाप्यः कूपास्तथा ह्रदाः॥१२॥
नानानद्यः समुद्राश्च सप्ताहं पुरुषोत्तमे। ज्येष्ठशुक्लदशम्यादि प्रत्यक्षं यान्ति सर्वदा॥१३॥
स्नानदानादिकं तस्माद्देवताप्रेक्षणं द्विजाः।
यत्किञ्चित्क्रियते तत्र तस्मिन्कालेऽक्षयं भवेत्॥१४॥
शुक्लपक्षस्य दशमी ज़्येष्ठे मासि द्विजोत्तमाः। हरते दश पापानि तस्माद्दशहरा स्मृता॥१५॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे मुनिप्रवरगण! सुनिये। मैं यहां संक्षेप में कहता हूं। अन्य मास की अपेक्षा ज्येष्ठ मास की ही मैं पुनः-पुनः प्रशंसा क्यों कर रहा हूं, उसका कारण यह है कि पृथिवी पर जो कुछ सरिता, सरोवर, पुष्करिणी, तड़ाग, वापी, कूप, ह्रद, नाना नदी तथा समुद्रादि तीर्थ हैं, वे सभी ज्येष्ठ शुक्ला दशमी से प्रारम्भ

करके एक सप्ताह तक पुरुषोत्तम क्षेत्र में सदा प्रत्यक्ष होते हैं। हे द्विजवृन्द! तभी स्नान-दान-देवता तर्पणादि जो कुछ पुण्यकार्य उस समय किया जाता है, वहां सब अक्षय हो जाता है। ज्येष्ठ शुक्ला दशमी दस पापों का हरण करती है। तभी इसे दशहरा कहते हैं।।११-१५।।

यस्तस्यां हलिनं कृष्णं पश्येद्भद्रां सुसंयतः। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं व्रजेन्नरः॥१६॥

उत्तरे दक्षिणे विप्रास्त्वयने पुरुषोत्तमम्। दृष्ट्वा रामं सुभद्रां च विष्णुलोकं व्रजेन्नरः॥१७॥

नरो दोलागतं दृष्ट्वा गोविन्दं पुरुषोत्तमम्।
फाल्गुन्यां प्रयतो भूत्वा गोविन्दस्य पुरं व्रजेत्॥१८॥

विषुवद्दिवसे प्राप्ते पञ्चतीर्थीविधानतः। कृत्वा सङ्कर्षणं कृष्णं दृष्ट्वा भद्रां च भो द्विजाः॥१९॥

नरः समस्तयज्ञानां फलं प्राप्नोति दुर्लभम्।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥२०॥

यः पश्यति तृतीयायां कृष्णं चन्दनरूषितम्।
वैशाखस्यासिते पक्षे स यात्यच्युतमन्दिरम्॥२१॥

ज्यैष्ठ्यां ज्येष्ठर्क्षयुक्तायां यः पश्येत्पुरुषोत्तमम्।
कुलैकविंशमुद्धृत्य विष्णुलोकं स गच्छति॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे पञ्चतीर्थीमाहात्म्यनिरूपणं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः।।६३।।



जो मानव संयत होकर दशमी के दिन बलराम, कृष्ण, सुभद्रा का दर्शन करता है, उसके सभी पातक दूर हो जाते हैं। वह विष्णुलोक जाता है। हे विप्रगण! उत्तरायण तथा दक्षिणायन दोनों में पुरुषोत्तम कृष्ण, बलराम तथा सुभद्रा के दर्शन से विष्णुलोक प्राप्त होता है। जो व्यक्ति फाल्गुन में प्रयत्नतः पुरुषोत्तम गोविन्द को दोला (झूला) पर झूलता दर्शन करता है, वह गोविन्दलोक जाता है। हे ब्राह्मणगण! विषुव के दिन सविधि पञ्चकृत्य का अनुष्ठान करने के उपरान्त संकर्षण, कृष्ण तथा सुभद्रा का दर्शन करता है, वह सर्वयज्ञफल लाभ करता है। वह सर्वपापरहित होकर विष्णुलोक जाता है। जो वैशाख कृष्ण तृतीया के दिन चन्दन चर्चित कृष्ण दर्शन करता है, उसे अच्युत लोक की प्राप्ति होती है। ज्येष्ठा नक्षत्र युक्त ज्येष्ठा पूर्णिमा को पुरुषोत्तम दर्शन करने वाला अपने इक्कीस कुलों का उद्धार करके विष्णुलोक जाता है।।१६-१२।।

।।त्रिषष्टितम अध्याय समाप्त।।



अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः

महाज्येष्ठी प्रशंसा वर्णन

ब्रह्मोवाच

यदा भवेन्महाज्यैष्ठीं राशिनक्षत्रयोगतः। प्रयत्नेन तदा मर्त्यैर्गन्तव्यं पुरुषोत्तमम्॥१॥

कृष्णं दृष्ट्वा महाज्यैष्ठ्यां रामं भद्रां च भो द्विजाः।
नरो द्वादशयात्रायाः फलं प्राप्नोति चाधिकम्॥२॥

प्रयागे च कुरुक्षेत्रे नैमिषे पुष्करे गये। गङ्गाद्वारे कुशावर्ते गङ्गासागरसङ्गमे॥३॥
कोकामुखे शूकरे च मथुरायां मरुस्थले। शालग्रामे वायुतीर्थे मन्दरे सिन्धुसागरे॥४॥
पिण्डारके चित्रकूटे प्रभासे कनखले द्विजाः। शङ्खोद्धारे द्वारकायां तथा बदरिकाश्रमे॥५॥
लोहकुण्डे चाश्वतीर्थे सर्वपापप्रमोचने। कामालये कोटितीर्थे तथा चामरकण्टके॥६॥
लोहार्गले जम्बुमार्गे सोमतीर्थे पृथूदके। उत्पलावर्तके चैव पृथुतुङ्गे सुकुब्जके॥७॥
एकाम्रके च केदारे काश्यां च विरजे द्विजाः। कालञ्जरे च गोकर्णे श्रीशैले गन्धमादने॥८॥
महेन्द्रे मलये विन्ध्ये पारियात्रे हिमालये। सह्ये च शुक्तिमन्ते च गोमन्ते चार्बुदे तथा॥९॥

ब्रह्मा कहते हैं—जब तक राशि नक्षत्र के योगानुसार महाज्येष्ठी रहेगी, तब सभी मृत्युलोक निवासी यत्न पूर्वक पुरुषोत्तम क्षेत्र जायें। हे ब्राह्मणवृन्द! महाज्येष्ठी के दिन जो लोग बलराम-कृष्ण तथा सुभद्रा का दर्शन करते हैं, उनको द्वादश यात्रा से भी अधिक फल मिलता है। प्रयाग, कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य, पुष्कर, गया, गंगाद्वार, कुशावर्त्त, गंगासागर संगम, कोकामुख, शूकर, मथुरा, मरुस्थान, शालग्राम, वायुतीर्थ, मन्दर, सिन्धु सागर, पिण्डारक, चित्रकूट, प्रभास, कनखल, शंखोद्धार, द्वारका, बदरिकाश्रम, लोहकुण्ड, अश्वतीर्थ, सर्वपाप प्रमोचन, कमलालय, कोटितीर्थ, अमरकण्टक, लोहार्गल, जम्बूमार्ग, सोमतीर्थ, पृथूदक, उत्पलावर्त्तक, पृथुतुंग, सुकुब्जक, एकाम्रक, केदार, काशी, विरज, कालंजर, गोकर्ण, श्रीशैल, गन्धमादन, महेन्द्र, मलय, विन्ध्य, पारियात्र, हिमालय, सह्य, शुक्तिमन्त, गोमन्त, अर्बुद।।१-९।।

गङ्गायां सर्वतीर्थेषु यामुनेषु च भो द्विजाः। सरस्वतेषु गोमत्यां ब्रह्मपुत्रेषु सप्तसु॥१०॥

गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा च नर्मदा।
तापी पयोष्णी कावेरी शिप्रा चर्मण्वती द्विजाः॥११॥
वितस्ता चन्द्रभागा च शतद्रुर्बाहुदा तथा।
ऋषिकुल्या कुमारी च विपाशा च दृषद्वती॥१२॥
सरयूर्नाकगङ्गा च गण्डकी च महानदी।
कौशिकी करतोया च त्रिस्त्रोता मधुवाहिनी॥१३॥

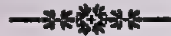
गंगा के सभी तीर्थ, यमुना, सरस्वती, गोमती, ब्रह्मपुत्र के सप्त तीर्थ, गोदावरी, भीमरथी, तुंगभद्रा, नर्मदा, तापी, पयोष्णि, कावेरी, शिप्रा, चर्मण्वती, वितस्ता, चन्द्रभागा, शतद्रु, बाहुदा, ऋषिकुल्या, कुमारी, विपाशा, दृषद्वती, सरयू, स्वर्गगंगा, गण्डकी, महानदी, कौशिकी, करतोया, त्रिस्रोता, मधुवाहिनी।।१०-१३।।

महानदी वैतरणी याश्चान्या नानुकीर्तिताः।
अथवा किं बहूक्तेन भाषितेन द्विजोत्तमाः॥१४॥
पृथिव्यां सर्वतीर्थेषु सर्वेष्वायतनेषु च। सागरेषु च शैलेषु नदीषु च सरःसु च॥१५॥
यत्फलं स्नानदानेन राहुग्रस्ते दिवाकरे।
तत्फलं कृष्णमालोक्य महाज्यैष्ठ्यां लभेन्नरः॥१६॥

महानदी, वैतरणी तथा अन्य जो नदियां यहां नहीं कही गयी हैं तथा हे ब्राह्मणगण! किम्बहुना पृथिवी के सभी तीर्थ, सभी देवायतन, सागर, पर्वत, नदी, सरोवर पर स्नान-दान का फल और सूर्यग्रहण काल में स्नान-दान का जो फल है, वह समस्त फल महाज्येष्ठी पर कृष्णदर्शन से मिल जाता है।।१४-१६।।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गन्तव्यं पुरुषोत्तमे। महाज्यैष्ठ्यां मुनिश्रेष्ठा सर्वकामफलेप्सुभिः॥१७॥
दृष्ट्वा रामं महाज्येष्ठं कृष्णं सुभद्रया सह।
विष्णुलोकं नरो याति समुद्धृत्य समं कुलम्॥१८॥
भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान्यावदाभूतसम्प्लवम्।
पुण्यक्षयादिहाऽऽगत्य चतुर्वेदी द्विजो भवेत्॥१९॥
स्वधर्मनिरतः शान्तः कृष्णभक्तो जितेन्द्रियः।
वैष्णवं योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात्॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे महाज्यैष्ठीप्रशंसावर्णनं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः॥६४॥



हे मुनिप्रवरगण! महाज्येष्ठी के समय सर्वप्रयत्न पूर्वक पुरुषोत्तम क्षेत्र में जाना चाहिये। इस दिन राम-कृष्ण तथा सुभद्रा के दर्शन से मानव विष्णुलोक जाता है तथा उसके कुल की सद्गति होती है। वह वहां प्रलय काल तक उत्तम भोगों को भोग कर तदनन्तर पुण्यक्षय होने पर मृत्युलोक में चतुर्वेदी ब्राह्मण होकर जन्म लेता है। इस जन्म में वह स्वधर्मतत्पर, शान्त, कृष्णभक्त तथा इन्द्रियजित् हो जाता है। अन्त में वैष्णव योग का अवलम्बन लेकर मोक्षलाभ करता है।।१७-२०।।

।।चतुःषष्टितम अध्याय समाप्त।।



अथ पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

कृष्ण स्नान माहात्म्य वर्णन

मुनय ऊचुः

कस्मिन्काले भवेत्स्नानं कृष्णस्य कमलोद्भव।
विधिना केन तद्ब्रूहि ततो विधिविदां वर॥१॥

मुनिगण कहते हैं—हे कमलयोनि! हे विधिज्ञगण के अग्रणी! कृपया यह कहिये कि किस विधि के अनुसार किस काल में भगवान् कृष्ण का स्नान होता है?।।१।।

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनयः स्नानं कृष्णस्य वदतो मम। रामस्य च सुभद्रायाः पुण्यं सर्वाघनाशनम्॥२॥
मासि ज्येष्ठे च सम्प्राप्ते नक्षत्रे चन्द्रदैवते। पौर्णमास्यां तदा स्नानं सर्वकालं हरेर्द्विजाः॥३॥

सर्वतीर्थमयः कूपस्तत्राऽऽस्ते निर्मलः शुचिः।
तदा भोगवती तत्र प्रत्यक्षा भवति द्विजाः॥४॥
तस्माज्ज्यैष्ठ्यां समुद्धृत्य हैमाढ्यैः कलशैर्जलम्।
कृष्णरामाभिषेकार्थं सुभद्रयाश्च भो द्विजाः॥५॥

कृत्वा सुशोभनं मञ्चं पताकाभिरलङ्कृतम्। सुदृढं सुखसञ्चारं वस्त्रैः पुष्पैरलङ्कृतम्॥६॥
विस्तीर्णं धूपितं धूपैः स्नानार्थं रामकृष्णयोः। सितवस्त्रपरिच्छन्नं मुक्ताहारावलम्बितम्॥७॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे मुनिगण! सुनिये। मैं कृष्ण, बलराम तथा सुभद्रा का सर्वपापहारी पुण्यमय स्नान वृत्तान्त कहता हूं। हे ब्राह्मणवृन्द! ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को चन्द्रदैवत् नक्षत्र (ज्येष्ठा) में हरिध्यान प्रशस्त है। यह पूर्णिमा ज्येष्ठा नक्षत्र युक्त हो। उस समय (पुरुषोत्तम क्षेत्र तथा अन्यत्र) वहां सभी कूप निर्मल, सर्वतीर्थमय तथा पवित्र हो जाते हैं। तहां पर भोगवती स्वयं प्रत्यक्ष होती हैं। अतः बलराम-कृष्ण-सुभद्रा के स्नानार्थ हेमकलश बनाकर उससे कूप से जल निकाले। अब कृष्ण आदि के स्नानार्थ एक मञ्च बनाना चाहिये। यह मंच पताका से सज्जित, शोभायमान, सुदृढ़, सुख संचारमय, वस्त्र एवं पुष्पों से अलंकृत, विस्तीर्ण, धूप से धूपित, श्वेत वस्त्र से ढंका तथा मुक्ताहार से मण्डित हो।।२-७।।

तत्र नानाविधैर्वाद्यैः कृष्णं नीलाम्बरं द्विजाः।
मध्ये सुभद्रां चाऽस्थाप्य जयमङ्गलनिस्वनैः॥८॥

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चान्यैश्च जातिभिः। अनेकशतसाहस्त्रैर्वृतं स्त्रीपुरुषैर्द्विजाः॥९॥

गृहस्थाः स्नातकाश्चैव यतयो ब्रह्मचारिणः।
स्नापयन्ति तदा कृष्णं मञ्चस्थं सहलायुधम्॥१०॥

तथा समस्ततीर्थानि पूर्वोक्तानि द्विजोत्तमाः।
स्वोदकैः पुष्पमिश्रैश्च स्नापयन्ति पृथक्पृथक्॥११॥

पश्चात्पटहशङ्खाद्यैर्भेरीमुरजनिस्वनैः। काहलैस्तालशब्दैश्च मृदङ्गैर्झर्झरैस्तथा॥१२॥
अन्यैश्च विविधैर्वाद्यैर्घण्टास्वनविभूषितैः। स्त्रीणां मङ्गलशब्दैश्च स्तुतिशब्दैर्मनोहरैः॥१३॥
जयशब्दैस्तथा स्तोत्रैर्वीणावेणुनिनादितैः। श्रूयते सुमहाञ्छब्दः सागरस्येव गर्जतः॥१४॥

उस मंच पर राम-कृष्ण के बीच में सुभद्रा की भी स्थापना करके विविध जयमंगल ध्वनि तथा नाना उत्तम वाद्यों के साथ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि सैकड़ों-हजारों गृहस्थ स्नातक, यति तथा ब्रह्मचारी आदि सर्व साम्प्रदायिक नरनारी मिलित होकर मञ्चस्थ कृष्ण तथा बलराम को स्नान करायें। इस समय सभी तीर्थ अपने-अपने पुष्पमय पवित्र जल से पृथक्-पृथक् रूप से उनको स्नान कराते हैं। तदनन्तर पटह-शंख-भेरी-मुरज-काहल-करताल-मृदंग-झर्झर तथा अन्यं वाद्य एवं घंटा आदि की मंगल ध्वनि तथा स्त्रियों के कण्ठ से निकले मांगलिक शब्द, स्तुति गीति, जय शब्द, स्तोत्र एवं वेणुवीणा का निनाद, यह सब गर्जनकारी सागर के गम्भीर निर्घोष जैसा प्रतीत होता था।।८-१४।।

मुनीनां वेदशब्देन मन्त्रशब्दैस्तथाऽपरैः। नानास्तोत्ररवैः पुण्यैः सामशब्दोपबृंहितैः॥१५॥
यतिभिः स्नातकैश्चैव गृहस्थैर्ब्रह्मचारिभिः। स्नानकाले सुरश्रेष्ठ स्तुवन्ति परया मुदा॥१६॥
श्यामैर्वेश्याजनैश्चैव कुचभारावनामिभिः। पीतरक्ताम्बराभिश्च माल्यदामावनामिभिः॥१७॥
सरत्नकुण्डलैर्दिव्यैः सुवर्णस्तबकान्वितैः। चामरै रत्नदण्डैश्च वीज्येते रामकेशवौ॥१८॥
यक्षविद्याधरैः सिद्धैः किन्नरैश्चाप्सरोगणैः। परिवार्याम्बरगतैर्देवगन्धर्वचारणैः॥१९॥

आदित्या वसवो रुद्राः साध्या विश्वे मरुद्गणाः।
लोकपालास्तथा चान्ये स्तुवन्ति पुरुषोत्तमम्॥२०॥

मुनियों द्वारा उच्चरित वेदध्वनि, मन्त्र शब्द, नाना स्तोत्र तथा पवित्र सामगान—यह सब वहां मुखरित हो उठता है। न जाने कितने यति, स्नातक, गृहस्थ, ब्रह्मचारी इन राम-कृष्ण-सुभद्रा के स्नान काल में स्तव पाठ करते हैं। स्तनभार से झुकी हुई नवयौवना वारवनितायें (गणिकायें) पीत-रक्तवर्ण के वस्त्र, नाना माला दाम तथा स्वर्णस्तवकयुत दिव्य-दिव्य कुण्डल दल से अलंकृत होकर रत्नखण्डात्मक चामर राम तथा केशव हेतु झलती रहती हैं। उस समय यक्ष, विद्याधर, सिद्ध, किन्नर, अप्सरा, देव, गन्धर्व, चारण, आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्वेदेवगण, मरुद्गण तथा सभी लोकपाल गगन में रहकर पुरुषोत्तम देव का स्तव करते हैं।।१५-२०।।

नमस्ते देवदेवेश पुराण पुरुषोत्तम। सर्गस्थित्यन्तकृद्देव लोकनाथ जगत्पते॥२१॥

त्रैलोक्यधारिणं देव ब्रह्मण्यं मोक्षकारणम्।
तं नमस्यामहे भक्त्या सर्वकामफलप्रदम्॥२२॥
स्तुत्वैवं विबुधाः कृष्णं रामं चैव महाबलम्।
सुभद्रां च मुनिश्रेष्ठास्तदाऽऽकाशे व्यवस्थिताः॥२३॥

गायन्ति देवगन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसस्तथा।
देवतूर्याण्यवाद्यन्त वाता वान्ति सुशीतलाः॥२४॥
पुष्पमिश्रं तदा मेघा वर्षन्त्याकाशगोचराः।
जयशब्दं च कुर्वन्ति मुनयः सिद्धचारणाः॥२५॥
शक्राद्या विबुधाः सर्व ऋषयः पितरस्तथा।
प्रजानां पतयो नागा ये चान्ये स्वर्गवासिनः॥२६॥
ततो मङ्गलसंभारैर्विधिमन्त्रपुरस्कृतम्। आभिषेचनिकं द्रव्यं गृहीत्वा देवतागणाः॥२७॥
इन्द्रो विष्णुर्महावीर्यः सूर्याचन्द्रमसौ तथा।
धाता चैव विधाता च तथा चैवानिलानलौ॥२८॥
पूषा भर्गोऽर्यमा त्वष्टा अंशुनैव विवस्वता।
पत्नीभ्यां सहितो धीमान्मित्रेण वरुणेन च॥२९॥

वे स्तव करते हैं कि—"हे पुराणपुरुष देवदेव! आपको नमस्कार! आप सृष्टि, स्थिति, संहार करने वाले हैं। हे लोकनाथ, जगत्पति! आप त्रैलोक्यधारी, सर्वकामप्रद, मोक्षनिदान, ब्रह्मण्यदेव हैं। हम आपको प्रणाम करते हैं!" देवता लोग कृष्ण, राम तथा सुभद्रा का एवंविध स्तव करते हुये आकाश में स्थित रहते हैं। तब देवता एवं गन्धर्व गायन करते हैं। अप्सरा नृत्य करती हैं। सभी देवदुन्दुभियां बजती हैं और शीतल वायु प्रवाहित होती रहती है। उस समय मेघगण आकाशस्थ रहकर पुष्पमय जल वर्षा करते हैं तथा मुनि एवं सिद्ध चामर लोग जय शब्दोच्चार करते हैं। इन्द्रादि देवता, सभी ऋषि, पितर, प्रजापति लोग, नागगण तथा अन्य स्वर्गवासी देवता इन मंगल संभार के सहयोग से यथाविधि वेदध्वनि करते हैं तथा वे सभी अभिषेकार्थ द्रव्य लेकर वहां उपस्थित रहते हैं। इन्द्र, विष्णु, सूर्य, चन्द्र, धाता, विधाता, वायु, अग्नि, पूषा, भग, अर्यमा, त्वष्टा, अंशु, विवस्वान्, सपत्नीक मित्रावरुण।।२१-२९।।

रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरश्विभ्यां च वृतः प्रभुः। विश्वैर्देवैर्मरुद्भिश्च साध्यैश्च पितृभिः सह॥३०॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च यक्षराक्षसपन्नगैः। देवर्षिभिरसंख्येयैस्तथा ब्रह्मर्षिभिर्वरैः॥३१॥
वैखानसैर्वालखिल्यैर्वाय्वाहारैर्मरीचिपैः। भृगुभिश्चाङ्गिरोभिश्च सर्वविद्यासुनिष्ठतैः॥३२॥
सर्वविद्याधरैः पुण्यैर्योगसिद्धिभिरावृतः। पितामहः पुलस्त्यश्च पुलहश्च महातपाः॥३३॥
अङ्गिराः कश्यपोऽत्रिश्च मरीचिर्भृगुरेव च। क्रतुर्हरः प्रचेताश्च मनुर्दक्षस्तथैव च॥३४॥
ऋतवश्च ग्रहाश्चैव ज्योतींषि च द्विजोत्तमाः। मूर्तिमत्यश्च सरितो देवाश्चैव सनातनाः॥३५॥
समुद्राश्च ह्रदाश्चैव तीर्थानि विविधानि च। पृथिवी द्यौर्दिशश्चैव पादपाश्च द्विजोत्तमाः॥३६॥
अदितिर्देवमाता च ह्रीः श्रीः स्वाहा सरस्वती।
उमा शची सिनीवाली तथा चानुमतिः कुहूः॥३७॥

रुद्रगण, वसुगण, आदित्यगण, अश्विनीकुमारद्वय तथा विश्वेदेवगण, मरुद्गण, साध्यगण, पितृगण,

गन्धर्वगण, अप्सरागण, यक्ष, राक्षस, पन्नगगण, देवर्षि तथा ब्रह्मर्षिगण, वैखानस, बालखिल्यगण जो वायुहारी तथा किरण पान करने वाले हैं, भृगु तथा अंगीरा आदि सर्वविद्याविद् महर्षि, पवित्र विद्याधर, योगसिद्धियों से समावृत पितामह ब्रह्मा, पुलत्स्य, पुलह, अंगीरा, कश्यप, अत्रि, मरीचि, क्रतु, हर, प्रचेता, मनु, दक्ष, ऋतु, ग्रह, ज्योतिष्क (नक्षत्र) गण, मूर्तिमती नदियां, सनातन देवगण, समुद्र, ह्रद, सभी तीर्थ, पृथिवी, दिक्, तरुगण, देवमाता अदिति, ह्री, श्री, स्वाहा, सरस्वती, उमा, शची, सिनिवाली, अनुमति, कुहू।।३०-३७।।

राका च धिषणा चैव पत्न्यश्चान्या दिवौकसाम्।
हिमवांश्चैव विन्ध्यश्च मेरुश्चानेकशृङ्गवान्।।३८।।
ऐरावतः सानुचरः कलाकाष्ठास्तथैव च। मासार्धं मासऋतवस्तथा रात्र्यहनी समाः।।३९।।
उच्चैःश्रवा हयश्रेष्ठो नागराजश्च वामनः। अरुणो गरुडश्चैव वृक्षाश्चौषधिभिः सह।।४०।।
धर्मश्च भगवान्देवः समाजग्मुर्हि सङ्गताः। कालो यमश्च मृत्युश्च यमस्यानुचराश्च ये।।४१।।
बहुलत्वाच्च नोक्ता ये विविधा देवतागणाः।
ते देवस्याभिषेकार्थं समायान्ति ततस्ततः।।४२।।
गृहीत्वा ते तदा विप्राः सर्वे देवा दिवौकसः।
आभिषेचनिकं द्रव्यं मङ्गलानि च सर्वशः।।४३।।
दिव्यसंभारसंयुक्तैः कलशैः काञ्चनैर्द्विजाः।
सारस्वतीभिः पुण्याभिर्दिव्यतोयाभिरेव च।।४४।।
तोयेनाऽऽकाशगङ्गायाः कृष्णं रामेण सङ्गतम्।
सपुष्पैःकाञ्चनैः कुम्भैः स्नापयन्त्यवनिस्थिताः।।४५।।

राका, धिषणा तथा अन्य देवपत्नियां, हिमालय, विन्ध्य, अनेक शृङ्ग वाला मेरु, ऐरावत हाथी अनुचरों के साथ, कला, काष्ठा, मास, पक्ष, ऋतु, रात्रि, दिन, संवत्सर, अश्वों में श्रेष्ठ उच्चैःश्रवा, नागराज, वामन, अरुण, गरुड़, वृक्ष, औषधि, भगवान् धर्म, काल, यम, मृत्यु, यम के गण—सभी उस समय पुरुषोत्तम देव के अभिषेक हेतु वहां आते हैं। जिन सब का नाम मैंने कहा है, इसके अतिरिक्त अन्य विविध देवता उन देवता के अभिषेकार्थ चारों ओर से आते हैं। उनकी संख्या इतनी अधिक है कि उनके नाम का वर्णन नहीं किया जा सकेगा। जो सभी आगत देवगण-ब्राह्मणगण मांगलिक अभिषेक द्रव्य लाकर वहां स्थित रहते हैं, वे सभी पृथिवी पर पुष्पयुक्त स्वर्ण कलश में सरस्वती नदी का जल तथा आकाशगंगा का दिव्य जल लाकर बलराम-कृष्ण का अभिषेक करते हैं। वे देवी सुभद्रा का भी अभिसिंचन करते हैं।।३८-४५।।

सञ्चरन्ति विमानानि देवानामम्बरे तथा।
उच्चावचानि दिव्यानि कामगानि स्थिराणि च।।४६।।
दिव्यरत्नविचित्राणि सेवितान्यप्सरोगणैः। गीतैर्वाद्यैः पताकाभिः शोभितानि समन्ततः।।४७।।

उस समय उत्तम-मध्यम-नाना प्रकार की दिव्य-दिव्य विमान श्रेणी आकाश में संचरण करती रहती हैं।

इन सभी विमानों पर रहकर अप्सरायें गीत, वाद्य ध्वनि करती हैं तथा वे सभी विमान दिव्य रत्नजड़ित पताकाओं से शोभित रहते हैं। ये सभी विमान छोटे-बड़े तथा इच्छामात्र से गगन में विचरण करते हैं।।४६-४७।।

एवं तदा मुनिश्रेष्ठाः कृष्णं रामेण सङ्गतम्।
स्नापयित्वा सुभद्रां च संस्तुवन्ति मुदाऽन्विताः॥४८॥

हे मुनिप्रवरगण! इस प्रकार कृष्ण-राम-सुभद्रा को स्नान कराने के उपरान्त स्वर्ग निवासी इन्द्रादि देवगण तथा सिद्ध लोग हर्ष में भरकर पुरुषोत्तम का स्तव करने लगते हैं।।४८।।

जय जय लोकपाल भक्तरक्षक जय जय प्रणतवत्सल जय जय भूतचरण जय जयाऽऽदिदेव बहुकारण जय जय वासुदेव जय जयासुरसंहरण जय जय दिव्यमीन जय जय त्रिदशवर जय जय जलधिशयन जय जय योगिवर जय जय सूर्यनेत्र जय जय देवराज जय जय कैटभारे जय जय वेदवर जय जय कूर्मरूप जय जय यज्ञवर जय जय कमलनाभ जय जय शैलचर जय जय योगशायिञ्जय जय वेगधर जय जय विश्वमूर्ते जय जय चक्रधर जय जय भूतनाथ जय जय धरणीधर जय जय शेषशायिञ्जय जय पीतवासो जय जय सोमकान्त जय जय योगवास जय जय दहनवक्त्र जय जय धर्मवास जय जय गुणनिधान जय जय श्रीनिवास जय जय गरुडगमन जय जय सुखनिवास जय जय धर्मकेतो जय जय महीनिवास जय जय गहनचरित्र जय जय योगिगम्य जय जय मखनिवास जय जय वेदवेद्य जय जय शान्तिकर जय जय योगिचिन्त्य जय जय पुष्टिकर जय जय ज्ञानमूर्ते जय जय कमलाकर जय जय भाववेद्य जय जय मुक्तिकर जय जय विमलदेह जय जय सत्त्वनिलय जय जय गुणसमृद्ध जय जय यज्ञकर जय जय गुणविहीन जय जय मोक्षकर जय जय भूशरण्य जय जय कान्तियुत जय जय लोकशरण जय जय लक्ष्मीयुत जय जय पङ्कजाक्ष जय जय सृष्टकर जय जय योगयुत जय जयातसीकुसुमश्यामदेह जय जय समुद्रविष्टदेह जय जय लक्ष्मीपङ्कजषट्चरण जय जय भक्तवश जय जय लोककान्त जय जय परमशान्त जय जय परमसार जय जय चक्रधर जय जय भोगियुत जय जय नीलाम्बर जय जय शान्तिकर जय जय मोक्षकर जय जय कलुषहर॥४९॥

वे कहते हैं—हे लोकपालक, भक्तरक्षक, प्रणतवत्सल, भूतचरण, आदिदेव! आपकी जय-जयकार है! आप बहु कारण, वासुदेव, असुर विनाशक, दिव्य मत्स्यरूपी, देवगण में श्रेष्ठ, जलधि में शयनरत, योगीप्रवर, सूर्यनेत्र, देवराज, कैटभ के शत्रु वेदरूपी की जय हो!

आप कूर्मरूप, यज्ञप्रवर, कमलनाभ, शैलचर, योगमाया द्वारा शयन करने वाले, वेगधर, विश्वमूर्ति, चक्रधारी, भूतनाथ, धरणीधर, शेषशायी, पीले वस्त्र को धारण करने वाले, सोमकान्त, योगवास, मुख से अग्नि प्रकट करने वाले, धर्मवास हैं। आपकी जय-जयकार है!

हे देव! आप गुणनिधि, श्रीनिवास, गरुड़ पर जाने वाले, सुखनिवास, धर्मकेतु, मही निवास, गहन चरित्र वाले, योगिगम्य, यज्ञ में रहने वाले, वेदों से जाने वाले, शान्तिप्रद, योगीगण द्वारा चिन्तनीय, पुष्टिकर, सत्वधाम, गुणों से पूर्ण, यज्ञकर्त्ता, गुणों से अतीत, विमल शरीर, निर्गुण, मोक्षप्रद, भूशरण्य (पृथिवी को शरण देने वाले), कान्तिमान, लोकशरण, लक्ष्मी से युक्त, कमल नयन, सृष्टिकर्त्ता, योगयुक्त, अतसी कुसुम जैसे श्यामलदेह वाले हैं। आपकी जय-जयकार हो! आप सागर मध्य निवासी, लक्ष्मीरूपी कमल पर भ्रमरवत् मंडराकर मधुपान रत, भक्त के वशीभूत, लोकों के स्वामी, परम शान्त, परम सार रूप, चक्रधर, सर्पशायी, नील वस्त्रधारी, शान्तिकर, मोक्षकर, कलुषहारी हैं। आपकी सदा जय हो!।।४९।।

जय कृष्ण जगन्नाथ जय सङ्कर्षणानुज। जय पलाशाक्ष जय वाञ्छाफलप्रद॥५०॥

जय मालावृतोरस्क जय चक्रगदाधर। जय पद्मालयाकान्त जय विष्णो नमोऽस्तु ते॥५१॥

हे कृष्ण! जगन्नाथ, संकर्षण के अनुज, पद्म जैसे नेत्र वाले, इच्छित फलदाता, वक्षःस्थल पर वैजयन्ती माला से शोभित, लक्ष्मी के पति, विष्णु आपको सदा प्रणाम! आपकी जय हो!।।५०-५१।।

ब्रह्मोवाच

एवं स्तुत्वा तदा देवाः शक्राद्याः हृष्टमानसाः।
सिद्धचारणसङ्घाश्च ये चान्ये स्वर्गवासिनः॥५२॥
मुनयो वालखिल्याश्च कृष्णं रामेण सङ्गतम्।
सुभद्रां च मुनिश्रेष्ठाः प्रणिपत्याम्बरे स्थिताः॥५३॥
दृष्ट्वा स्तुत्वा नमस्कृत्वा तदा ते त्रिदिवौकसः।
कृष्णं राम सुभद्रां च यान्ति स्वं स्वं निवेशनम्॥५४॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे मुनिप्रवरगण! उस समय इन्द्रादि देवता, सिद्धगण, चारणगण, अन्य सभी स्वर्ग में रहने वाले तथा बालखिल्य आदि मुनिगण इस प्रकार प्रफुल्ल चित्त से कृष्ण, बलराम, सुभद्रा का स्तव करके उनको प्रणाम करते हैं! तत्पश्चात् देवगण ने कृष्ण, बलराम, सुभद्रा का दर्शन, स्तवन तथा नमस्कार किया तथा अपने-अपने निवास चले जाते हैं।।५२-५४।।

सञ्चरन्ति विमानानि देवानामम्बरे तदा।
उच्चावचानि दिव्यानि कामगानि स्थिराणि च॥५५॥
दिव्यरत्नविचित्राणि सेवितान्यप्सरोगणैः। गीतैर्वाद्यैः पताकाभिः शोभितानि समन्ततः॥५६॥
तस्मिन्काले तु ये मर्त्याः पश्यन्ति पुरुषोत्तमम्।
बलभद्रं सुभद्रां च ते यान्ति पदमव्ययम्॥५७॥

उस समय देवगण के प्रस्थानकाल में भी आकाश में अनेक इच्छा मात्र से चलने वाले, दिव्य रत्नजड़ित, पताकाभूषित, सुर सुन्दरियों के गीत-वाद्य से मुखरित विमान चतुर्दिक् उड़ते रहते हैं। इस समय जो मृत्युलोक वासी पुरुषोत्तम बलराम तथा सुभद्रा का दर्शन प्राप्त करता है, उसे अव्ययपद लाभ होता है।।५५-५७।।

सुभद्रारामसहितं मञ्चस्थं पुरुषोत्तमम्। दृष्ट्वा निरामयं स्थानं यान्ति नास्त्यत्र संशयः॥५८॥
कपिलाशतदानेन यत्फलं पुष्करे स्मृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं सहलायुधम्।
सुभद्रां च मुनिश्रेष्ठाः प्राप्नोति शुभकृन्नरः॥५९॥
कन्याशतप्रदानेन यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६०॥
सुवर्णशतनिष्काणां दानेन यत्फलं स्मृतम्।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६१॥
गोसहस्रप्रदानेन यत्फलं परिकीर्तितम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६२॥
भूमिदानेन विधिवद्यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६३॥
यत्फलं चान्नदानेन अर्घातिथ्येन कीर्तितम्।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६४॥
वृषोत्सर्गेण विधिवद्यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६५॥
यत्फलं तोयदानेन ग्रीष्मे वाऽन्यत्र कीर्तितम्।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६६॥
तिलधेनुप्रदानेन यत्फलं सम्प्रकीर्तितम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६७॥
गजाश्वरथदानेन यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६८॥
सुवर्णशृङ्गीदानेन यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥६९॥
जलधेनुप्रदानेन यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥७०॥
दानेन घृतधेन्वाश्च फलं यत् समुदाहृतम्।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥७१॥
चान्द्रायणेन चीर्णेन यत्फलं समुदाहृतम्।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥७२॥
मासोपवासैर्विधिवद्यत्फलं समुदाहृतम्। तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं लभते नरः॥७३॥

बलराम तथा सुभद्रा के साथ मंच पर आसीन प्रभु पुरुषोत्तम का दर्शन करने वाला मानव निरामय स्थान लाभ करता है। इसमें तनिक संशय नहीं है। हे मुनिप्रवरगण! पुष्कर में सैकड़ों कपिला गौदान का जो फल होता है, वह पुण्यात्मा मानव सुभद्रा तथा बलराम के साथ कृष्णदर्शन से पा लेता है। सैकड़ों कन्यादान की जिस बात का शास्त्र में वर्णन है, यहां मञ्च पर आसीन कृष्ण दर्शन से मानव वही फल लाभ करता है। सौ निष्क स्वर्णदान, हजारों गोदान, सविधि भूमिदान, अतिथि को अर्घ्य एवं अन्नदान, वृषोत्सर्गादि, ग्रीष्म में जलदान, तिलधेनुदान, गज-अश्व-रथ दान, जलधेनुदान, चान्द्रायण व्रतानुष्ठान, सविधि एक मास उपवास, इन सबका जो-जो फल शास्त्रों में कहते हैं, एकमात्र मञ्चासीन भगवान् कृष्ण के दर्शन से वही फल मिलता है (सौ निष्क = १ निष्क १६ मासा स्वर्ण का होता है)॥५८-७३॥

अथ किं बहुनोक्तेन भाषितेन पुनः पुनः। तस्य देवस्य माहात्म्यं मञ्चस्थं द्विजोत्तमाः॥७४॥

यत्फलं सर्वतीर्थेषु व्रतैर्दानैश्च कीर्तितम्।
तत्फलं कृष्णमालोक्य मञ्चस्थं सहलायुधम्॥७५॥
सुभद्रां च मुनिश्रेष्ठाः प्राप्नोति शुभकृन्नरः।
तस्मान्नरोऽथवा नारी पश्येत्तं पुरुषोत्तमम्॥७६॥
ततः समस्ततीर्थानां लभेत्स्नानादिकं फलम्।
स्नानशेषेण कृष्णस्य तोयेनाऽऽत्माऽभिषिच्यते॥७७॥

किम्बहुना, हे द्विजप्रवरगण! इस विषय में बारम्बार क्या कहें? समस्त तीर्थ, व्रत, दानकार्य का जो फल होता है, मानव मञ्चासीन राम-कृष्ण-सुभद्रा के दर्शन से वही पा लेता है। अतः नर किंवा नारी तब पुरुषोत्तम का दर्शन करे। इस दर्शन द्वारा उनको सर्वतीर्थफल लाभ होता है। कृष्ण के स्नानोपरान्त उस जल से अपनी देह अभिषिक्त करना चाहिये। इससे सभी तीर्थस्नान का फल मिलता है।।७४-७७।।

वन्ध्या मृतप्रजा या तु दुर्भगा ग्रहपीडिता। राक्षसाद्यैर्गृहीता वा तथा रोगैश्च संहताः॥७८॥

सद्यस्ताः स्नानशेषेण उदकेनाभिषेचिताः।
प्राप्नुवन्तीप्सितान् कामान्यान्वाञ्छन्ति चेप्सितान्॥७९॥
पुत्रार्थिनी लभेत्पुत्रान्सौभाग्यं च सुखार्थिनी।
रोगार्ता मुच्यते रोगाद्धनं च धनकाङ्क्षिणी॥८०॥
पुण्यानि यानि तोयानि तिष्ठन्ति धरणीतले।
तानि स्नानावशेषस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥८१॥
तस्मात्स्नानावशेषं यत्कृष्णस्य सलिलं द्विजाः।
तेनाभिषिञ्चेद्गात्राणि सर्वकामप्रदं हि तत्॥८२॥
स्नातं पश्यन्ति ये कृष्णं व्रजन्तं दक्षिणामुखम्।
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यन्ते ते न संशय॥८३॥

वन्ध्या, मृतवत्सा, दुर्भाग्यशालिनी, ग्रहपीड़िता, राक्षसों से आविष्ट, रोगाक्रान्ता स्त्री इस स्नानशेष जल से अभिषिक्त होकर सद्य सर्व इच्छित फल प्राप्त करती है। पुत्रार्थिनी को पुत्र, सुखार्थिनी को उत्तम सौभाग्य, रोगार्त्ता को रोगमुक्ति तथा धनार्थिनी नारी को धन की प्राप्ति होती है। धरणी पर जितने भी पुण्य जल हैं, वे इस कृष्णस्नान से बचे जल के १/१६ भाग इतने भी प्रभावी नहीं हैं। हे ब्राह्मणों! श्रीकृष्ण के स्नान से बचे जल से सदा अभिषिक्त होना चाहिये। यह सर्वकामप्रद है। स्नानोपरान्त कृष्ण को जो दक्षिणाभिमुखीन ले जाते देखते हैं, वे ब्रह्महत्यादि सर्वपाप से रहित हो जाते हैं। इसमें संशय ही नहीं है।।७८-८३।।

शास्त्रेषु यत्फलं प्रोक्तं पृथिव्यास्त्रिप्रदक्षिणैः।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं व्रजन्तं दक्षिणामुखम्॥८४॥

तीर्थयात्राफलं यत्तु पृथिव्यां समुदाहृतम्।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम्॥८५॥
बदर्यां यत्फलं प्रोक्तं दृष्ट्वा नारायणं नरम्।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम्॥८६॥
गङ्गाद्वारे कुरुक्षेत्रे स्नानदानेन यत्फलम्।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम्॥८७॥
प्रयागे च महामाघ्यां यत्फलं समुदाहृतम्।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम्॥८८॥
शालग्रामे महाचैत्र्यां स्नानदानेन यत्फलम्।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम्॥८९॥
महाभिधानकार्तिक्यां पुष्करे यत्फलं स्मृतम्।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम्॥९०॥
यत्फलं स्नानदानेन गङ्गासागरसङ्गमे। दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम्॥९१॥
ग्रस्ते सूर्ये कुरुक्षेत्रे स्नानदानेन यत्फलम्।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम्॥९२॥

पृथिवी की तीन प्रदक्षिणा का जो शास्त्रोक्त फल है, पृथिवी के समस्त तीर्थ पर्यटन का, बदरिकाश्रम जाकर नारायण के दर्शन का, कुरुक्षेत्र तथा गंगाद्वार में स्नान का तथा दान का, माघी अमावस्या को प्रयाग में स्नान का, पुण्यप्रद चैत्र मास में शालग्राम तीर्थ में स्नान का तथा दान का, महापुण्यप्रदा कार्त्तिकी पूर्णिमा पर पुष्कर तीर्थ में स्नान-दान का गंगासागर-संगम में स्नान-दान का, सूर्यग्रहण पर कुरुक्षेत्र में स्नान-दान का जो फल वर्जित है, वही फल दक्षिणाभिमुखी यात्रा के समय कृष्ण के दर्शन से मिलता है।।८४-९२।।

गङ्गायां सर्वतीर्थेषु यामुनेषु च भो द्विजाः। सारस्वतेषु तीर्थेषु तथाऽन्येषु सरःसु च॥९३॥
यत्फलं स्नानदानेन विधिवत्समुदाहृतम्।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम्॥९४॥
पुष्करे चाथ तीर्थेषु गये चामरकण्टके। नैमिषादिषु तीर्थेषु क्षेत्रेष्वायतनेषु च॥९५॥
यत्फलं स्नानदानेन राहुग्रस्ते दिवाकरे।
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं दक्षिणामुखम्॥९६॥

गंगा तथा यमुना के सभी तीर्थों में, सरस्वती के तीर्थों तथा अन्य सभी सरोवर में जो दान स्नानफल प्राप्त होता है तथा पुष्कर, गया, अमरकण्टक, नैमिषादि तीर्थ क्षेत्रादि में स्नान-दान का जो-जो फल निश्चित है तथा सूर्यग्रहण पर स्नान-दान का जो फल कहा जाता है, कृष्ण को दक्षिणामुख यात्रा करते देखने से भी मनुष्य वही फल लाभ करता है।।९३-९६।।

अथ किं पुनरुक्तेन भाषितेन पुनः पुनः।
यत्किञ्चित्कथितं चात्र फलं पुण्यस्य कर्मणः॥९७॥
वेदशास्त्रे पुराणे च भारते च द्विजोत्तमाः। धर्मशास्त्रेषु सर्वेषु तथाऽन्यत्र मनीषिभिः॥९८॥
दृष्ट्वा नरो लभेत्कृष्णं तत्फलं सहलायुखम्।
सकलं भद्रया सार्धं व्रजन्तं दक्षिणामुखम्॥९९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे कृष्णस्नानमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः॥६५॥



इस सम्बन्ध में पुनः-पुनः एक ही बात दोहराने से क्या लाभ? वेद-शास्त्र-पुराण-भारत तथा अन्य धर्मग्रन्थों में पुण्यकर्मा लोगों ने पुण्यकर्म के अनुष्ठान का जो फल निश्चित किया है, बलराम-सुभद्रा तथा कृष्ण की दक्षिणाभिमुखीन यात्रा का दर्शन करने से वही सब फल मिल जाता है।।९७-९९।।

।।पञ्चषष्टितम अध्याय समाप्त।।



अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः

गुड़िवा यात्रा का माहात्म्य वर्णन

ब्रह्मोवाच

गुडिवामण्डपं यान्तं ये पश्यन्ति रथे स्थितम्।
कृष्णं बलं सुभद्रां च ते यान्ति भवनं हरेः॥१॥
ये पश्यन्ति तदा कृष्णं सप्ताहं मण्डपे स्थितम्।
हलिनं च सुभद्रां च विष्णुलोकं व्रजन्ति ते॥२॥

ब्रह्मा कहते हैं—गुड़िवा मण्डप में कृष्ण-बलराम तथा सुभद्रा को जो जाते देखते हैं, वे विष्णुलोक जाते हैं। जो इस मण्डप में स्थित कृष्ण-बलराम-सुभद्रा का एक सप्ताह तक दर्शन करते हैं, वे विष्णुलोक जाते हैं।।१-२।।

मुनय ऊचुः

केन सा निर्मिता यात्रा दक्षिणस्यां जगत्पते।
यात्राफलं च किं तत्र प्राप्यते ब्रूहि मानवैः॥३॥
किमर्थं सरसस्तीरे राज्ञस्तस्य जगत्पते। पवित्रे विजने देशे गत्वा तत्र च मण्डपे॥४॥

कृष्णः सङ्कर्षणश्चैव सुभद्रा च रथेन ते। स्वस्थानं सम्परित्यज्य सप्तरात्रं वसन्ति वै॥५॥

मुनिगण कहते हैं—हे जगत्पति! किसने इस दक्षिण दिक् की यात्रा का प्रारम्भ किया था? वहां जाने से मनुष्यों को किस प्रकार का यात्राफल मिलता है? किस कारण से इस राजकीय सरोवर के तट पर विजन देश में बने मण्डप में जाकर कृष्ण-बलराम-सुभद्रा अपने स्थान त्याग कर यहां सात रात्रि रथ पर निवास करते हैं? यह कहिये।।३-५।।

ब्रह्मोवाच

इन्द्रद्युम्नेन भो विप्राः परा वै प्रार्थितो हरिः। सप्ताहं सरसस्तीरे मम यात्रा भवत्त्विति॥६॥
गुडिवा नाम देवेश भुक्तिमुक्तिफलप्रदा। तस्मै किल वरं चासौ ददौ स पुरुषोत्तमः॥७॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे विप्रगण! पूर्वकाल में इन्द्रद्युम्न राजा ने श्रीहरि से यह प्रार्थना किया था कि "हे देवेश! मेरे सरोवर के तट पर आपकी सप्ताहव्यापी यात्रा हो। यह यात्रा भुक्ति-मुक्तिप्रदायक फल देकर गुण्डीवा नाम से प्रसिद्ध हो जाये।" यह सुनकर भगवान् ने उनको यह वर दिया।।६-७।।

श्रीभगवानुवाच

सप्ताहं सरसस्तीरे तव राजन्भविष्यति। गुडिवा नाम यात्रा मे सर्वकामफलप्रदा॥८॥
ये मां तत्रार्चयिष्यन्ति श्रद्धया मण्डपे स्थितम्।
सङ्कर्षण सुभद्रां च विधिवत्सुसमाहिताः॥९॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्राश्च वै नृप।
पुष्पैर्गन्धैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यकैर्वरैः॥१०॥
उपहारैर्बहुविधैः प्रणिपातैः प्रदक्षिणैः। जयशब्दैस्तथा स्तोत्रैर्गीतैर्वाद्यैर्मनोहरैः॥११॥
न तेषां दुर्लभं किञ्चित्फलं यस्य यदीप्सितम्। भविष्यति नृपश्रेष्ठ मत्प्रसादादसंशयम्॥१२॥

श्रीभगवान् कहते हैं—राजन्! तुम्हारे सरोवर के तट पर मेरी सर्वकामफलप्रदा गुण्डीवा नामक यात्रा सप्ताह पर्यन्त होगी। वहां मण्डपस्थित मुझे-बलराम तथा सुभद्रा को जो सुसमाहित होकर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, नाना उपचार, प्रणिपात, प्रदक्षिणा, जय जयकार से यथाविधि पूजा करेंगे, वह चाहे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री अथवा शूद्र जिस किसी जाति का भी हो, उनके लिये कोई फल पा लेना दुर्लभ नहीं होता। वे अपना-अपना अभीष्ट फल लाभ कर लेते हैं। हे नृपश्रेष्ठ! उनकी सभी कामना पूर्ण होगी। इसमें कोई संशय नहीं है।।८-१२।।

ब्रह्मोवाच

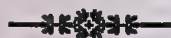
एवमुक्त्वा तु तं देवस्तत्रैवान्तरधीयत। स तु राजवरः श्रीमान्कृतकृत्योऽभवत्तदा॥१३॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुडिवायां द्विजोत्तमाः। सर्वकामप्रदं देवं पश्येत्तं पुरुषोत्तमम्॥१४॥
अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्धनो लभते धनम्।
रोगाच्च मुच्यते रोगी कन्या प्राप्नोति सत्पतिम्॥१५॥

आयुः कीर्तिं यशो मेधां बलं विद्यां धृतिं पशून्।
नरः सन्ततिमाप्नोति रूपयौवनसम्पदम्॥१६॥
यान्यान् समीहते भोगान्दृष्ट्वा तं पुरुषोत्तमम्।
नरो वाऽप्यथवा नारी तांस्तान्प्राप्नोत्यसंशयम्॥१७॥

ब्रह्मा कहते हैं—हरि यह कहकर तत्काल अन्तर्ध्यान हो गये। राजश्रेष्ठ श्रीमान् इन्द्रद्युम्न ने उस समय वर पाकर स्वयं को कृतकृत्य माना। अतएव सर्वयत्न पूर्वक गुण्डीवा जाकर सर्वकामदाता पुरुषोत्तम का दर्शन करे। हे ब्राह्मणवृन्द! उस समय पुरुषोत्तम के दर्शन द्वारा यदि वह अपुत्रक है तो पुत्र, निर्धन है तो धन, रोगी है तो आरोग्य तथा कुमारी को उत्तम पति की प्राप्ति होती है। इसके अतिरिक्त आयु, कीर्त्ति, यश, मेधा, बल, विद्या, धृति, पशु, रूप, यौवन, सम्पदा तथा अन्य जो कुछ अभीष्ट वस्तु है, वह सब पुरुषोत्तम के दर्शन द्वारा नारीगण निश्चित रूप से प्राप्त कर लेती हैं। यह निःसंदिग्ध है।।१३-१७।।

यात्रां कृत्वा गुडिवाख्यां विधिवत्सुसमाहितः।
आषाढस्य सिते पक्षे नरो योषिदथापि वा॥१८॥
दृष्ट्वा कृष्णं च रामं च सुभद्रां च द्विजोत्तमाः।
दशपञ्चाश्वमेधानां फलं प्राप्नोति चाधिकम्॥१९॥
सप्तावरान्सप्त परान्वंशानुद्धृत्य चाऽऽत्मनः। कामगेन विमानेन सर्वरत्नैरलङ्कृतः॥२०॥
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च सेव्यमानो यथोत्तरैः। रूपवान्सुभगः शूरो नरो विष्णुपुरं व्रजेत्॥२१॥
तत्र भुक्त्वा वरान्भोगान्यावदाभूतसम्प्लवम्। सर्वकामसमृद्धात्मा जरामरणवर्जितः॥२२॥
पुण्यक्षयादिहाऽऽगत्य चतुर्वेदी द्विजो भवेत्।
वैष्णवं योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात्॥२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे गुडिवायात्रामाहात्म्यनिरूपणं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः॥६६॥



मनुष्य सुसमाहित होकर गुण्डीवा नामक यात्रा करे। यह यात्रा स्त्री अथवा पुरुष को आषाढ़ शुक्लपक्ष में करना चाहिये। ऐसा व्यक्ति अपनी सात पूर्व पीढ़ी तथा सात आगामी पीढ़ी का उद्धार करता है। देहान्त होने पर वह कामवेगी विमान पर बैठकर विष्णुलोक जाता है। वह विमान सर्वरत्न अलंकृत होता है। उसे पन्द्रह अश्वमेध यज्ञफल लाभ भी होता है। यह सुभद्रा, कृष्ण, बलराम के दर्शन का फल है। वह देहान्तरोपरान्त सर्वरत्न से भूषित तथा गन्धर्व-अप्सराओं से सेवित होकर विष्णुलोक जाता है। वहां प्रलयकाल तक सर्वकाम समृद्ध होकर उत्तम भोग भोग कर पुनः पुण्य क्षय होने पर जरामरण वर्जित रूप से मृत्युलोक में चतुर्वेदी ब्राह्मण के रूप में जन्म लेता है। अन्त में वैष्णव योग का अवलम्बन लेकर मोक्ष पाता है।।१८-२३।।

।।षट्षष्टितम अध्याय समाप्त।।



अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः

द्वादश यात्रा माहात्म्य वर्णन

मुनय ऊचुः

एकैकस्यास्तु यात्रायाः फलं ब्रूहि पृथक्पृथक्।
यत्प्राप्नोति नरः कृत्वा नारी वा तत्र संयता॥१॥

मुनिगण कहते हैं—हे ब्रह्मन्! नर अथवा नारी संयत होकर यात्रा का अनुष्ठान करके जो फल पाते हैं, आप उस एक यात्रा के फल को अलग-अलग कहिये।।१।।

ब्रह्मोवाच

प्रतियात्राफलं विप्राः शृणुध्वं गदतो मम। यत्प्राप्नोति नरः कृत्वा तस्मिन्क्षेत्रे सुसंयतः॥२॥
गुडिवायां तथोत्थाने फाल्गुन्यां विषुवे तथा।
यात्रां कृत्वा विधानेन दृष्ट्वा कृष्णं प्रणम्य च॥३॥
सङ्कर्षणं सुभद्रां च लभेत्सर्वत्र वै फलम्। नरो गच्छेद्विष्णुलोके यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥४॥
यावद्यात्रां ज्येष्ठमासे करोति विधिवन्नरः।
तावत्कल्पं विष्णुलोके सुखं भुङ्क्ते न संशयः॥५॥
तस्मिन्क्षेत्रवरे पुण्ये रम्ये श्रीपुरुषोत्तमे। भुक्तिमुक्तिप्रदे नृणां सर्वसत्त्वसुखावहे॥६॥
ज्येष्ठे यात्रां (त्रा) नरः कृत्वा नारी वा संयतेन्द्रियः।
यथोक्तेन विधानेन दश द्वे च समाहितः॥७॥
प्रतिष्ठां कुरुते यस्तु शाठ्यदम्भविवर्जितः।
स भुक्त्वा विविधान्भोगान्मोक्षं चान्ते लभेद्ध्रुवम्॥८॥

ब्रह्मा कहते हैं—मानवगण को उस क्षेत्र में सुसंयत भाव से यात्रा करने से जो फल मिलता है, मैं उस प्रत्येक यात्रा का फल कहता हूं। श्रवण करें। उत्थान एकादशी, फाल्गुन पूर्णिमा तथा विषुव काल में (अर्थात् जब दिन-रात का समान काल हो) तब व्यक्ति यात्रा करके सविधि कृष्ण-बलराम तथा सुभद्रा का दर्शन तथा प्रणाम निवेदन करे। इस गुण्डीवा की यांत्रा से मनुष्य सभी फलों को प्राप्त करते हैं। वे चौदहों इन्द्र के इन्द्रत्व काल तक विष्णुलोक में रहते हैं। जितने समय तक व्यक्ति ज्येष्ठमास में जितनी बार यथाविधि यात्रा करते हैं, वह उतने कल्प तक विष्णुलोक वासी रहते हैं। वे वहां सुखभोग करते हैं। यह भोग-मोक्षप्रद, सभी को सुखप्रद, पवित्र पुरुषोत्तम क्षेत्र है। यहां जो कोई स्त्री-पुरुष ज्येष्ठ मास में बारह बार सविधि यात्रा करता है, शठता तथा द्वेषरहित होकर दम्भादि दुर्गुण त्याग कर देव स्थापना करता है, वह जीवन काल में नाना भोगों को भोग कर अन्त काल में मोक्ष लाभ करता है।।२-८।।

मुनय ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे देव प्रतिष्ठां वदतस्तव। विधानं चार्चनं दानं फलं तत्र जगत्पतेः॥९॥

मुनिगण कहते हैं—हे देव! जगत्पति की प्रतिष्ठा पूजाविधि तथा उनको प्रसन्न करने वाले दान का फल हम तुरन्त सुनना चाहते हैं। कृपया कहिये।।९।।

ब्रह्मोवाच

श्रृणुध्वं मुनिशार्दूलाः प्रतिष्ठां विधिचोदिताम्।
यां कृत्वा तु नरो भक्त्या नारी वा लभते फलम्॥१०॥
यात्रा द्वादश सम्पूर्णा यदा स्यात्तु (स्युस्तु) द्विजोत्तमाः।
तदा कुर्वीत विधिवत्प्रतिष्ठां पापनाशिनीम्॥११॥
ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे त्वेकादश्यां समाहितः।
गत्वा जलाशयं पुण्यमाचम्य प्रयतः शुचिः॥१२॥
आवाह्य सर्वतीर्थानि ध्यात्वा नारायणं तथा।
ततः स्नानं प्रकुर्वीत विधिवत्सुसमाहितः॥१३॥
यस्य यो विधिरुद्दिष्ट ऋषिभिः स्नानकर्मणि।
तेनैव तु विधानेन स्नानं तस्य विधीयते॥१४॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे मुनिप्रवरगण! मानवगण को जिसका अनुष्ठान करने से विशेष फल मिलता है, मैं उस विधि निर्दिष्ट प्रतिष्ठा का वर्णन करता हूं। श्रवण करें। हे ब्राह्मणवृन्द! जब द्वादश यात्रा सम्पन्न हो जाये, तब विधि के साथ पापनाशिनी प्रतिष्ठा करनी चाहिये। ज्येष्ठ मास की शुक्ला एकादशी के दिन समाहित होकर पवित्र जलाशय पर जाकर पवित्रता के साथ आचमन एवं सर्वतीर्थ आवाहन करने के उपरान्त नारायण का ध्यान करके (सविधि आचमन करे) तब स्नान करना चाहिये। ऋषियों ने जिसके लिये जैसी स्नान विधि का निर्देश किया है, उसे उसी विधान के अनुरूप ही स्नान करना होगा।।१०-१४।।

स्नात्वा सम्यग्विधानेन ततो देवानृषीन्पितॄन्।
सन्तर्पयेत्तथाऽन्यांश्च नामगोत्रविधानवित्॥१५॥
उत्तीर्य वाससी धौते निर्मले परिधाय वै। उपस्पृश्य विधानेन भास्कराभिमुखस्ततः॥१६॥
गायत्रीं पावनीं देवीं मनसा वेदमातरम्। सर्वपापहरां पुण्यां जपेदष्टोत्तरं शतम्॥१७॥
पुण्यांश्च सौरमन्त्रांश्च श्रद्धया सुसमाहितः। त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य भास्करं प्रणमेत्ततः॥१८॥
वेदोक्तं त्रिषु वर्णेषु स्नानं जाप्यमुदाहृतम्।
स्त्रीशूद्रयोः स्नानजाप्यं वेदोक्तविधिवर्जितम्॥१९॥

सम्यक् विधि से स्नान करके देवता-ऋषि-पितृगण के नाम-गोत्रादि का उल्लेख करके तर्पण करे। अन्य प्राणीगण हेतु भी तर्पण करना चाहिये। इसके अनन्तर वहां से उठ कर धुले वस्त्रद्वय धारण करके

निखिल पापहारिणी पावनी वेदमाता गायत्री देवी का १०८ बार जप करे। तदनन्तर समाहित भाव से सश्रद्ध होकर सभी पुण्यात्मक सौर मन्त्रों का जप और भास्कर की तीन प्रदक्षिणा करने के पश्चात् उनको प्रणाम करे। ब्राह्मणादि तीन वर्णों हेतु यही स्नान-जपक्रम वेदों में वर्णित है। स्त्री तथा शूद्रों के लिये वेदविधान से स्नान वर्जित है।।१५-१९।।

ततो गच्छेद्गृहं मौनी पूजयेत्पुरुषोत्तमम्।
प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च उपस्पृश्य यथाविधि॥२०॥
घृतेन स्नापयेद्देवं क्षीरेण तदनन्तरम्। मधुगन्धोदकेनैव तीर्थचन्दनवारिणा॥२१॥
ततो वस्त्रयुगं श्रेष्ठं भक्त्या तं परिधापयेत्।
चन्दनागरुकर्पूरैः कुङ्कुमेन विलेपयेत्॥२२॥
पूजयेत्परया भक्त्या पद्मैश्च पुरुषोत्तमम्।
अन्यैश्च वैष्णवैः पुष्पैरर्चयेन्मल्लिकादिभिः॥२३॥
सम्पूज्यैवं जगन्नाथं भुक्तिमुक्तिप्रदं हरिम्। धूपं चागुरुसंयुक्तं दहेद्देवस्य चाग्रतः॥२४॥
गुग्गुलं च मुनिश्रेष्ठा दहेद्गन्धसमन्वितम्।
दीपं प्रज्वालयेद्भक्त्या यथाशक्त्या (क्ति) घृतेन वै॥२५॥
अन्यांश्च दीपकान्दद्याद्द्वादशैव समाहितः। घृतेन च मुनिश्रेष्ठास्तिलतैलेन वा पुनः॥२६॥

इसके पश्चात् मौनी होकर पुरुषोत्तम के देवालय में जाकर हाथ-पैर प्रक्षालनोपरान्त तथा आचमन के पश्चात् सविधि घृत-क्षीर-मधु-गन्ध-जल तथा पवित्र चन्दनादि से उन पुरुषोत्तम देव को स्नान कराये। उनको भक्ति पूर्वक दो वस्त्र धारण कराकर चन्दन, अगुरु, कपूर, कुंकुम से उनके अंगों को लिप्त करे। इस प्रकार भक्ति पूर्वक कमल एवं मल्लिकादि विष्णु को प्रिय लगने वाले पुष्पों से पुरुषोत्तम प्रभु की अर्चना करनी चाहिये। इस पूजन के पश्चात् उन भुक्ति-मुक्ति प्रदाता जगदीश श्रीहरि को अगुरु की धूप तथा गुग्गुलु, प्रदीप्त घृतदीपक अर्पित करे। घृत न होने पर तिल तैल आदि अन्य स्नेह पदार्थ द्वारा भी बारह दीपक जलाकर अर्पित कर सकते हैं।।२०-२६।।

नैवेद्ये पायसापूपशष्कुलीवटकं तथा। मोदकं फाणितं वाऽल्पं फलानि च निवेदयेत्॥२७॥
एवं पञ्चोपचारेण सम्पूज्य पुरुषोत्तमम्। नमः पुरुषोत्तमायेति जपेदष्टोत्तरं शतम्॥२८॥
ततः प्रसादयेद्देवं भक्त्या तं पुरुषोत्तमम्। नमस्ते सर्वलोकेश भक्तानामभयप्रद॥२९॥
संसारसागरे मग्नं त्राहि मां पुरुषोत्तम। यास्ते मया कृता यात्रा द्वादशैव जगत्पते॥३०॥
प्रसादात्तव गोविन्द सम्पूर्णास्ता भवन्तु मे। एवं प्रसाद्य तं देवं दण्डवत्प्रणिपत्य च॥३१॥

इसके पश्चात् नैवेद्य-पायस-अपूप, शष्कुली (पूरी), लड्डू, खांड़ तथा फल अर्पित करना चाहिये। इस पंचोपचार से पुरुषोत्तम अर्चना के उपरान्त "नमः पुरुषोत्तमाय" मन्त्र का १०८ जप करके भक्ति-भाव के साथ देव को यह मन्त्र कहकर प्रणाम करे तथा प्रसन्न करे। यथा—"हे सर्वलोकेश, हे भक्तों को अभय देने वाले! आपको मेरा प्रणाम! हे पुरुषोत्तम! मैं संसार-सागर में डूब रहा हूं। मेरी रक्षा करिये। हे जगत्पति! मैंने आपकी

द्वादश यात्रा का अनुष्ठान कर लिया। हे गोविन्द! आपकी कृपा से वह अनुष्ठान पूर्ण हो जाये।" यह कह कर भगवान् को दण्डवत् प्रणाम निवेदन करना चाहिये।।२७-३१।।

ततोऽर्चयेद्गुरुं भक्त्या पुष्पवस्त्रानुलेपनैः। नानयोरन्तरं यस्माद्विद्यते मुनिसत्तमाः॥३२॥
देवस्योपरि कुर्वीत श्रद्धया सुसमाहितः। नाना पुष्पैर्मुनिश्रेष्ठा विचित्रं पुष्पमण्डपम्॥३३॥
कृत्वाऽवधारणं पश्चाज्जागरं कारयेन्निशि।
कथां च वासुदेवस्य गीतिकां चापि कारयेत्॥३४॥
ध्यायन्पठन्स्तुवन्देवं प्रणयेद्रजनीं बुधः। ततः प्रभाते विमले द्वादश्यां द्वादशैव तु॥३५॥
निमन्त्रयेद्व्रतस्नातान्ब्राह्मणान्वेदपारगान्। इतिहासपुराणज्ञाञ्श्रोत्रियान्संयतेन्द्रियान्॥३६॥

हे मुनिसत्तमवृन्द! इस प्रकार भगवान् देवदेव को प्रसन्न करके पुष्प, वस्त्र, अनुलेपनादि से गुरु की अर्चना करे। गुरु तथा पुरुषोत्तम में कोई भी भेद नहीं है। इसके अनन्तर सश्रद्ध भाव से समाहित होकर उनके ऊपर विविध पुष्पों से एक विचित्र पुष्पमण्डप बनाये। इसके पश्चात् वासुदेव से सम्बन्धित अनेक कथा तथा गीतों द्वारा रात्रि जागरण, भगवत् ध्यान और स्तवपाठ करते रात्रि अतिवाहित करना चाहिये। अब प्रातः द्वादशी के दिन बारह व्रती ब्राह्मणों को निमन्त्रित करे, जो वेदज्ञ, इतिहास-पुराणज्ञ, श्रोत्रिय, इन्द्रियजित् हों।।३२-३६।।

स्नात्वा सम्यग्विधानेन धौतवासा जितेन्द्रियः। स्नापयेत्पूर्ववत्तत्र पूजयेत्पुरुषोत्तमम्॥३७॥
गन्धैः पुष्पैरुपहारैर्नैवेद्यैर्दीपकैस्तथा। उपचारैर्बहुविधैः प्रणिपातैः प्रदक्षिणैः॥३८॥
याप्यैः स्तुतिनमस्कारैर्गीतवाद्यैर्मनोहरैः। सम्पूज्यैवं जगन्नाथं ब्राह्मणान्पूजयेत्ततः॥३९॥
द्वादशैव तु गास्तेभ्यो दत्त्वा कनकमेव च। छत्रोपानद्युगं चैव श्रद्धाभक्तिसमन्वितः॥४०॥
भक्त्या तु सधनं तेभ्यो दद्याद्वस्त्रादिकं द्विजाः।
सद्भावेन तु गोविन्दस्तोष्यते पूजितो यतः॥४१॥
आचार्याय ततो दद्याद्गोवस्त्रं कनकं तथा।
छत्रोपानद्युगं चान्यत्कांस्यपात्रं च भक्तितः॥४२॥

अब पूर्व दिन की ही तरह सम्यक् विधि पूर्वक स्नान करकें शुद्ध होकर शुद्ध मन से पुरुषोत्तम को स्नान कराकर उनकी पूजा करे। गन्ध-पुष्प-नैवेद्य-दीप तथा नाना उपचार, उपहार, प्रणिपात, प्रदक्षिणा, जप, स्तुति, गीति एवं मनोहर वाद्यों के साथ जगन्नाथ का पूजन करने के पश्चात् उन द्वादश ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिये। श्रद्धा-भक्ति पूर्वक उनको १२ गायें (प्रत्येक को १-१ गौ), स्वर्ण, छत्र, चर्मपादुका आदि और धन एवं वस्त्र प्रदान करे। हे ब्राह्मगण! भक्ति-श्रद्धायुत होकर ब्राह्मणों को धन-वस्त्रादि देना चाहिये। ब्राह्मणों के सन्तुष्ट होने से गोविन्द प्रभु प्रसन्न होते हैं। इसके पश्चात् आचार्य को भी भक्तिभाव से गौ, वस्त्र, स्वर्ण, छत्र, चर्मपादुका, कांस्यपात्र प्रदान करे।।३७-४२।।

ततस्तान्भोजयेद्विप्रान्भोज्यं पायसपूर्वकम्। पक्वान्नं भक्ष्यभोज्यं च गुडसर्पिःसमन्वितम्॥४३॥
ततस्तानन्नतृप्तांश्च ब्राह्मणान्स्वस्थमानसान्। द्वादशैवोदकुम्भांश्च दद्यात्तेभ्यः समोदकान्॥४४॥

दक्षिणां च यथाशक्त्या (क्ति) दद्यात्तेभ्यो विमत्सरः।
कुम्भं च दक्षिणां चैव आचार्याय निवेदयेत्॥४५॥
एवं सम्पूज्य तान्विप्रान्गुरुं ज्ञानप्रदायकम्।
पूजयेत्परया भक्त्या विष्णुतुल्यं द्विजोत्तमाः॥४६॥
सुवर्णवस्त्रगोधान्यैर्द्रव्यैश्चान्यैर्वरैर्बुधः। सम्पूज्य तं नमस्कृत्य इमं मन्त्रमुदीरयेत्॥४७॥
सर्वव्यापी जगन्नाथः शङ्खचक्रगदाधरः। अनादिनिधनो देवः प्रीयतां पुरुषोत्तमः॥४८॥
इत्युच्चार्य ततो विप्रांस्त्रिः कृत्वा च प्रदक्षिणाम्।
प्रणम्य शिरसा भक्त्या आचार्यं तु विसर्जयेत्॥४९॥

अब निमन्त्रित ब्राह्मणगण को पायस, पक्वान्न, गुड़, घृतमिश्रित अनेक भक्ष्य, भोज्य एवं अन्न आदि भोजनार्थ देना चाहिये। जब वे भोजन से तृप्त एवं स्वस्थ हो जायें, तब उनको १२ जल भरे घट तथा दक्षिणा प्रदान करे। उस समय आचार्य को भी जल घट एवं दक्षिणा देना चाहये। ऐसे विप्रों के पूजनोपरान्त विष्णु के समान ज्ञानदाता गुरु की स्वर्ण वस्त्र, गौ, धान्य एवं अन्य द्रव्यों द्वारा अर्चना करके यह मन्त्र पढ़े। यथा— "सर्वव्यापी शंख-चक्र-गदाधारी अनादि-अनन्त पुरुषोत्तम जगन्नाथ प्रभु प्रसन्न हो जायें।" यह पढ़ कर ब्राह्मणों की तीन प्रदक्षिणा तथा शिर नत करके उनको प्रणाम करके भक्ति पूर्वक उन ब्राह्मणों एवं आचार्य को विदा करे।।४३-४९।।

ततस्तान्ब्राह्मणान्भक्त्या चाऽऽसीमान्तमनुव्रजेत्।
अनुव्रज्य तु तान्सर्वान्नमस्कृत्य निवर्तयेत्॥५०॥
बान्धवैः स्वजनैर्युक्तस्ततो भुञ्जीत वाग्यतः। अन्यैश्चोपासकैर्दीनैर्भिक्षुकैश्चान्नकाङ्क्षिभिः॥५१॥
एवं कृत्वा नरः सम्यङ्नारी व लभते फलम्। अश्वमेधसहस्राणां राजसूयशतस्य च॥५२॥
अतीतं शतमादाय पुरुषाणां नरोत्तमाः।
भविष्यं च शतं विप्राः स्वर्गत्या दिव्यरूपधृक्॥५३॥
सर्वलक्षणसम्पन्नः सर्वालङ्कारभूषितः। सर्वकामसमृद्धात्मा देववद्विगतज्वरः॥५४॥
रूपयौवनसम्पन्नो गुणैः सर्वैरलङ्कृतः। स्तूयमानोऽप्सरोभिश्च गन्धर्वैः समलङ्कृतः॥५५॥
विमानेनार्कवर्णेन कामगेन स्थिरेण च। पताकाध्वजयुक्तेन सर्वरत्नैरलङ्कृतः॥५६॥
उद्योतयन्दिशः सर्वा आकाशे विगतक्लमः।
युवा महाबलो धीमान्विष्णुलोकं स गच्छति॥५७॥
तत्र कल्पशतं यावद्भुङ्क्ते भोगान्यथेप्सितान्। सिद्धाप्सरोभिर्गन्धर्वैः सुरविद्याधरोरगैः॥५८॥
स्तूयमानो मुनिवरैस्तिष्ठते विगतज्वरः। यथा देवो जगन्नाथः शङ्खचक्रगदाधरः॥५९॥

जब ब्राह्मणों को विदा किया जाये, तब अपने निवास की सीमा तक उनके साथ जाये तथा उनको वहां प्रणाम करके तब वापस आये। तत्पश्चात् बन्धु, स्वजन, अन्य साधक, दीन, भिक्षु तथा भोजन चाहने वालों को

भोजन देकर स्वयं भोजन करे। स्त्री किंवा पुरुष ऐसी अर्चना करके सहस्र अश्वमेध तथा सौ राजसूय यज्ञफल लाभ करते हैं। उनकी पूर्व की सौ पीढ़ी तथा भविष्यत् सौ पीढ़ी वाले लोग उद्धार पाकर स्वर्ग जाते हैं। ऐसी अर्चना करने वाले मनुष्य सर्वलक्षण, सर्वभूषण युक्त होकर सभी कामनाओं को पाकर रहते हैं। तदनन्तर देवता जैसे दिव्य शरीर, रूप-यौवन एवं सद्गुणों से युक्त होकर गन्धर्वों एवं अप्सराओं से स्तुत होकर पताका युक्त सूर्य के समान वर्ण वाले, कामगति (इच्छित गति) युक्त विमानारूढ़ होकर अपने तेज से सभी दिशाओं को उद्भासित करते आकाश पथ से बिना क्लेश जाते हुये विष्णु लोक पहुंचकर सौ कल्प पर्यन्त विविध इच्छित भोगों का उपभोग करते हैं। वे वहां सिद्ध, गन्धर्व, अप्सरा, सुर, सर्प, मुनिगण द्वारा नित्य स्तुत होकर परम सुख के साथ रहते हैं। वे शंख-चक्र-गदाधारी देव जगन्नाथ की तरह—।।५०-५९।।

तथाऽसौ मुदितो विप्राः कृत्वा रूपं चतुर्भुजम्।
भुक्त्वा तत्र वरान्भोगान् क्रीडां कृत्वा सुरैः सह॥६०॥
तदन्ते ब्रह्मसदनमायाति सर्वकामदम्। सिद्धविद्याधरैश्चापि शोभितं सुरकिन्नरैः॥६१॥
कालं नवतिकल्पं तु तत्र भुक्त्वा सुखं नरः।
तस्मादायाति विप्रेन्द्राः सर्वकामफलप्रदम्॥६२॥
रुद्रलोकं सुरगणैः सेवितं सुखमोक्षदम्। अनेकशतसाहस्त्रैर्विमानैः समलङ्कृतम्॥६३॥
सिद्धविद्याधरैर्यक्षर्भूषितं दैत्यदानवैः। अशीतिकल्पकालं तु तत्र भुक्त्वा सुखं नरः॥६४॥
तदन्ते याति गोलोकं सर्वभोगसमन्वितम्। सुरसिद्धाप्सरोभिश्च शोभितं सुमनोहरम्॥६५॥
तत्र सप्ततिकल्पांस्तु भुक्त्वा भोगमनुत्तमम्।
दुर्लभं त्रिषु लोकेषु स्वस्थचित्तो यथाऽमरः॥६६॥
तस्मादागच्छते लोकं प्राजापत्यमनुत्तमम्। गन्धर्वाप्सरसैः सिद्धैर्मुनिविद्याधरैर्वृतः॥६७॥
षष्टिकल्पान्सुखं तत्र भुक्त्वा नानाविधं मुदा। तदन्ते शक्रभवनं नानाश्चर्यसमन्वितम्॥६८॥

चतुर्भुज मूर्त्ति वाला होकर प्रमुदित मन से देवगण के साथ नाना भोगों का उपभोग एवं विविध क्रीड़ा करते रहने के पश्चात् अन्त में सिद्ध-विद्याधर-देवता-किन्नर शोभित सर्वकामप्रद ब्रह्मलोक जाता है। वहां ९० कल्पों तक विविध भोगसुख उपभोग करने के अनन्तर वह सर्वकामफलप्रद, सुख-मोक्षप्रद शत-शत, सहस्र-सहस्र विमानों से संकुल, सिद्ध-विद्याधर-यक्ष-दैत्य-दानवगण से परिव्याप्त देवजन सेवित रुद्रलोक जाता है। वहां ८० कल्पों तक नाना सुखों को भोग कर सर्वभोगसमन्वित सुरगण तथा सिद्धगण सेवित मनोहर गोलोक जाता है। वहां ७० कल्पों तक त्रैलोक्य दुर्लभ उत्तम भोगों को भोगने के उपरान्त स्वस्थ चित्त से गन्धर्व, सिद्ध, देव, मुनि, विद्याधर सेवित प्राजापत्य लोक जाता है, जहां ६० कल्पों तक विविध भोगसुख भोग कर नानाश्चर्यपूर्ण इन्द्र लोक आता है।।६०-६८।।

गन्धर्वैः किन्नरैः सिद्धैः सुरविद्याधरोरगैः। गुह्यकाप्सरसैः साध्यैर्वृतैश्चान्यैः सुरोत्तमैः॥६९॥
आगत्य तत्र पञ्चाशत्कल्पान्भुक्त्वा सुखं नरः।
सुरलोकं ततो गत्वा विमानैः समलङ्कृतः॥७०॥

चत्वारिंशत्तु कल्पांस्तु भुक्त्वा भोगान्सुदुर्लभान्।
आगच्छते ततो लोकं नक्षत्राख्यं सुदुर्लभम्॥७१॥
ततो भोगान्वरान्भुङ्क्ते त्रिंशत्कल्पान्यथेप्सितान्।
तस्मादागच्छते लोकं शशाङ्कस्य द्विजोत्तमाः॥७२॥
यत्रासौ तिष्ठते सोमः सर्वैर्देवैरलङ्कृतः। तत्र विंशतिकल्पांस्तु भुक्त्वा भोगं सुदुर्लभम्॥७३॥
आदित्यस्य ततो लोकमायाति सुरपूजितम्। नानाश्चर्यमयं पुण्यं गन्धर्वाप्सरसेवितम्॥७४॥
तत्र भुक्त्वा शुभान्भोगान्दश कल्पान्द्विजोत्तमाः।
तस्मादायाति भुवनं गन्धर्वाणां सुदुर्लभम्॥७५॥
तत्र भोगान्समस्तांश्च कल्पमेकं यथासुखम्।
भुक्त्वा चाऽऽयाति मेदिन्यां राजा भवति धार्मिकः॥७६॥
चक्रवर्ती महावीर्यो गुणैः सर्वैरलङ्कृतः।
कृत्वा राज्यं स्वधर्मेण यज्ञैरिष्ट्वा सुदक्षिणैः॥७७॥

वह वहां ४० कल्पों तक नाना दुर्लभ भोग सुख का अनुभव करके नक्षत्र लोक जाता है। वहां पर ३० कल्पों तक नाना इष्ट भोग्य वस्तु उपभोग करने के उपरान्त चन्द्र लोक जाते हैं। हे ब्राह्मणों! इस लोक में सर्वदेव समलंकृत सोमदेव विराजमान हैं। वहां जाकर वह बीस कल्प तक दुर्लभ भोग सुख का भोग करके सुरगणपूजित आदित्य लोक जाता है, जो नाना आश्चर्यमय है तथा गन्धर्व एवं अप्सराओं से सेवित है। वहां वह १० कल्प तक सुखभोग करके वहां से दुर्लभ गन्धर्वलोक जाकर वहां एक कल्प रहता है। गन्धर्व लोक में अनेक भोगों का उपभोग करके पृथिवी पर धार्मिक, चक्रवर्ती, महावीर्यशाली, सर्वगुण अलंकृत राजा रूप में जन्म लेता है। वह इस जन्म में धर्मानुरूप राज्य शासन करके बहुदक्षिणान्वित विपुल यज्ञानुष्ठान करता है॥६९-७७॥

तदन्ते योगिनां लोकं गत्वा मोक्षप्रदं शिवम्।
तत्र भुक्त्वा वरान्भोगान्यावदाभूतसम्प्लवम्॥७८॥
तस्मादागच्छते चात्र जायते योगिनां कुले। प्रवरे वैष्णवे विप्रा दुर्लभे साधुसम्मते॥७९॥
चतुर्वेदी विप्रवरो यज्ञैरिष्ट्वाऽऽप्तदक्षिणैः।
वैष्णवं योगमास्थाय ततो मोक्षमवाप्नुयात्॥८०॥
एवं यात्राफलं विप्रा मया सम्यगुदाहृतम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ॥८१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे द्वादशयात्राफलमाहात्म्य-निरूपणं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः॥६७॥

तदनन्तर मोक्षदायक शिवमय योगीलोक जाकर प्रलय पर्यन्त वहां नाना उत्तम भोगोपभोग करने के उपरान्त वैष्णव योगीगण के साधु सम्मत उत्तम गृह में जन्म लेता है। वह इस जन्म में चारों वेदों का ज्ञाता उत्तम ब्राह्मण होकर प्रभूत दक्षिणान्वित प्रचुर यज्ञों का अनुष्ठान करके अन्त में वैष्णव योग द्वारा मोक्ष पाता है। हे ब्राह्मणवृन्द! मैंने सम्यक्तः यात्राफल कह दिया। यह मनुष्यों को भोग, मोक्ष देने वाला है। आप लोग और क्या सुनना चाहते हैं?।।७८-८१।।

।।सप्तषष्टितम अध्याय समाप्त।।



अथाष्टषष्टितमोऽध्यायः

विष्णुलोक का वर्णन

मुनय ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे देव विष्णुलोकमनामयम्। लोकानन्दकरं कान्तं सर्वाश्चर्यसमन्वितम्॥१॥
प्रमाणं तस्य लोकस्य भोगं कान्तिं बलं प्रभो। कर्मणा केन गच्छन्ति तत्र धर्मपरायणाः॥२॥
दर्शनात्स्पर्शनाद्वाऽपि तीर्थस्नानादिनाऽपि वा।
विस्तराद्ब्रूहि तत्त्वेन परं कौतूहलं हि नः॥३॥

मुनिगण कहते हैं—हे देव! सर्वाश्चर्यमय तथा लोकों को आनन्द उत्पन्न करने वाला कमनीय अनामय विष्णु लोक किस प्रकार का है, वह हम सुनना चाहते हैं। हे प्रभो! इस लोक का भोग, कान्ति, बल तथा प्रमाण क्या है? किस प्रकार का कर्म करने पर धार्मिक लोग वहां जाते हैं? किस प्रकार के तीर्थ के दर्शन, स्पर्श तथा स्नानादि से लोग वहां जाते हैं? आप वह विस्तार से कहिये। सुनने का हमें अतीव कुतूहल है। किस कर्म द्वारा धार्मिक लोग उसे प्राप्त करते हैं?।।१-३।।

ब्रह्मोवाच

शृणुध्वं मुनयः सर्वे यत्परं परमं पदम्। भक्तानामीहितं धन्यं पुण्यं संसारनाशनम्॥४॥
प्रवरं सर्वलोकानां विष्णवाख्यं वदतो मम। सर्वाश्चर्यमयं पुण्यं स्थानं त्रैलोक्यपूजितम्॥५॥
अशोकैः पारिजातैश्च मन्दारैश्चम्पकद्रुमैः। मालतीमल्लिकाकुन्दैर्बकुलैर्नागकेसरैः॥६॥
पुन्नागैरतिमुक्तैश्च प्रियङ्गुतगरार्जुनैः। पाटलाचूतखदिरैः कर्णिकारवनोज्ज्वलैः॥७॥
नारङ्गैः पनसैर्लोध्रैर्निम्बदाडिमसर्जकैः। द्राक्षालकुचखर्जूरैर्मधुकेन्द्रफलैर्द्रुमैः॥८॥
कपित्थैर्नारिकेरैश्च तालैः श्रीफलसम्भवैः। कल्पवृक्षैरसंख्यैश्च वन्यैरन्यैः सुशोभनैः॥९॥

सरलैश्चन्दनैर्नीपैर्देवदारुशुभाञ्जनैः। जातीलवङ्गकङ्कोलैः कर्पूरामोदवासिभिः॥१०॥
ताम्बूलपत्रनिचयैस्तथा पूगीफलद्रुमैः। अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैः सर्वर्तुफलशोभितैः॥११॥
पुष्पैर्नानाविधैश्चैव लतागुच्छसमुद्भवैः। नानाजलाशयैः पुण्यैर्नानापक्षिरुतैर्वरैः॥१२॥
दीर्घिकाशतसङ्घातैस्तोयपूर्णैर्मनोहरैः। कुमुदैः शतपत्रैश्च पुष्पैः कोकनदैर्वरैः॥१३॥
रक्तनीलोत्पलैः कान्तैः कह्लारैश्च सुगन्धिभिः।
अन्यैश्च जलजैः पुष्पैर्नानावर्णैः सुशोभनैः॥१४॥
हंसकारण्डवाकीर्णैश्चक्रवाकोपशोभितैः। कोयष्टिकैश्च दात्यूहैः कारण्डवरवाकुलैः॥१५॥
चातकैः प्रियपुत्रैश्च जीवंजीवकजातिभिः। अन्यैर्दिव्यैर्जलचरैर्विहारमधुरस्वनैः॥१६॥
एवं नानाविधैर्दिव्यैर्नानाश्चर्यसमन्वितैः। वृक्षैर्जलाशयैः पुण्यैर्भूषितं सुमनोहरैः॥१७॥

ब्रह्मदेव कहते हैं—हे मुनिगण! जो भक्तों को इच्छित प्रदाता धन्य, पुण्यमय तथा संसार-बन्धनहारी हैं, वह परात्पर परमपद क्या है, वह आप लोग श्रवण करें। यह विष्णुलोक सर्वलोक श्रेष्ठ, सर्वाश्चर्यमय, त्रैलोक्यपूजित, पुण्यस्थल है। वहां सर्वदा शोक रहित स्थिति रहती है। वहां अशोक वृक्ष, पारिजात, मन्दार, चम्पा, मालती, मल्लिका, कुन्द, बकुल, नागकेशर, पुन्नाग, अतियुक्त, प्रियंगु, तगर, अर्जुन, पाटल, आम, खदिर, कर्णिकार, नारंगी, पनस, लोध्र, नीम, अनार, सर्जक, द्राक्षा, बड़हर, खजूर, मधूक, इन्द्रफल, कपित्थ, नारियल, ताल, श्रीफल, कल्पवृक्ष, साल, चन्दन, नीम, देवदारु, शुभांजन, जाती, लौंग, कंकोल, कर्पूर आदि सुगन्ध प्रदायक वृक्ष, ताम्बूल पत्र समूह, पूंगीफल तथा अन्य सर्व ऋतुफलों से शोभित विविध वृक्ष तथा वली विद्यमान रहती है। इसके अतिरिक्त लतागुच्छों से उत्पन्न अनेक प्रकार के पुष्प, वृक्ष एवं वल्ली आदि विराजमान हैं। यहां अनेक पुण्यमय जलाशय हैं, जिसमें नाना प्रकार के पक्षीगण के पवित्र शब्द, सैकड़ों मनोहर वावली, कुमुद-शतपत्र, कोकनद-रक्तवर्ण एवं नीलवर्ण के कमल, कमनीय सुगन्धपूर्ण कह्लार, अन्य प्रकार के जलोत्पन्न नाना पुष्प, हंस, कारण्डव, चक्रवाक, कोयष्टिक, टिटिहरी, दात्यूह, चातक, प्रियपुत्र, जीवजीवक तथा अन्य दिव्य विहाररत मधुर स्वर में बोलने वाले जलचर शोभायमान होते हैं। ये सभी जलाशय में तथा वहां सुशोभित हैं।।४-१७।।

तत्र दिव्यैर्विमानैश्च नानारत्नविभूषितैः। कामगैः काञ्चनैः शुभ्रैर्दिव्यगन्धर्वनादितैः॥१८॥
तरुणादित्यसङ्काशैरप्सरोभिरलङ्कृतैः। हेमशय्यासनयुतैर्नानाभोगसमन्वितैः॥१९॥
खेचरैः सपताकैश्च मुक्ताहारावलम्बिभिः। नानावर्णैरसंख्यातैर्जातरूपपरिच्छदैः॥२०॥
नानाकुसुमगन्धाढ्यैश्चन्दनागुरुभूषितैः। सुखप्रचार बहुलैर्नानावादित्रनिःस्वनैः॥२१॥
मनोमारुततुल्यैश्च किङ्किणीस्तवकाकुलैः। विहरन्ति पुरे तस्मिन्वैष्णवे लोकपूजिते॥२२॥

एवंविध नाना दिव्य आश्चर्यमय कितने ही मनोहर वृक्ष तथा पुण्यमय जलाशय वहां विद्यमान हैं। इनके अतिरिक्त कांचनमय दिव्य विमानश्रेणी वहां पर विद्यमान है। ये सभी विमान गन्धर्वगण के नाद से नादित, नाना रत्न से भूषित, अप्सराओं से अलंकृत, तरुण सूर्य के समान शोभित, स्वर्ण शय्या तथा आसन से युक्त और नाना भोगों से मण्डित है। ये सभी विमान पताकाओं के फहराने से तथा मुक्ताहार श्रेणी के

लटकने के कारण सुन्दरतम लग रहे हैं। ये सभी अनेक प्रकार के स्वर्णमय परदों से भूषित हैं। ये सभी अनेक पुष्पों की सुगन्ध से आमोदित रहते हैं तथा ये सभी चन्दन एवं अगुरु समूह की गन्ध से भरे रहते हैं। यहां वे अनेक वाद्यों की ध्वनि से मुखरित रहते हैं। उनका वेग वायु तथा मन की गति के समान है। वे सभी छोटी-छोटी घन्टियों से सजे हैं। इन विमानों में बैठकर लोकपूजित विष्णुलोक में सदा देवता एवं देवांगनायें विहार करते हैं।।१८-२२।।

नानाङ्गनाभिः सततं गन्धर्वाप्सरसादिभिः। चन्द्राननाभिः कान्ताभिर्योषिद्धिः सुमनोहरैः॥२३॥
पीनोन्नतकुचाग्राभिः सुमध्याभिः समन्ततः। श्यामावदातवर्णाभिर्मत्तमातङ्गगामिभिः॥२४॥
परिवार्य नरश्रेष्ठं वीजयन्ति स्म ताः स्त्रियः। चामरै रुक्मदण्डैश्च नानारत्नविभूषितैः॥२५॥
गीतनृत्यैस्तथा वाद्यैर्मोदमानैर्मदालसैः। यक्षविद्याधरैः सिद्धैर्गन्धर्वैरप्सरोगणैः॥२६॥
सुरसङ्घैश्च ऋषिभिः शुशुभे भुवनोत्तमम्।
तत्र प्राप्य महाभोगान्प्राप्नुवन्ति मनीषिणः॥२७॥

गन्धर्व, कामिनी तथा अप्सरायें और अनेक प्रकार की स्त्रियां और अन्य स्थूल, उन्नत स्तनों वाली सुमध्यमा सुन्दरियां, चन्द्रमुखी, मत्त हाथी की चाल से चलने वाली कामिनी इस पुर में पुरुषोत्तम विष्णु को घेर कर नाना स्वर्ण दण्ड वाले चामर उनको झलती रहती हैं। विद्याधर, सिद्ध, गन्धर्व, अप्सरा, देवगण, मनोहर गीत, नृत्य, वाद्य, वादन से, महर्षियों के शुभ्र आलाप से तथा मदमत्त यक्षों से यह लोक शोभायमान है। यहां मनीषी लोग जाकर सभी उत्तम भोग प्राप्त करते हैं।।२३-२७।।

वटराजसमीपे तु दक्षिणस्योदधेस्तटे। दृष्टो यैर्भवान्कृष्णः पुष्कराक्षो जगत्पतिः॥२८॥
क्रीडन्त्यप्सरसैः सार्धं यावद्द्याश्चन्द्रतारकम्। प्रतप्तहेमसङ्काशा जरामरणवर्जिताः॥२९॥
सर्वदुःखविहीनाश्च तृष्णाग्लानिविवर्जिताः। चतुर्भुजा महावीर्या वनमालाविभूषिताः॥३०॥
श्रीवत्सलाञ्छनैर्युक्ताः शङ्खचक्रगदाधराः।
केचिन्नीलोत्पलाश्यामाः केचित्काञ्चनसन्निभाः॥३१॥
केचिन्मरकतप्रख्याः केचिद्वैदूर्यसन्निभाः। श्यामवर्णाः कुण्डलिनस्तथाऽन्ये वज्रसन्निभाः॥३२॥
न तादृक्सर्वदेवानां भान्ति लोका द्विजोत्तमाः। यादृग्भाति हरेर्लोकः सर्वाश्चर्यसमन्वितः॥३३॥

दक्षिण समुद्र के तट पर वटवृक्ष के पास जो भगवान् पुण्डरीकाक्ष विश्वविधाता कृष्ण का दर्शन करते हैं, वे चन्द्रमा तथा सूर्य के सृष्टि में विद्यमान रहने तक वहां अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करते हैं। उनकी देहप्रभा प्रतप्त स्वर्णवत् हो जाती है। वे जरा-मरण रहित हो जाते हैं। वे चतुर्भुज, महावीर्यशाली, वनमालाधारी, श्रीवत्सचिह्नांकित तथा शंख-चक्र-गदाधारी होकर विचरते रहते हैं। उनमें से कोई-कोई नीलकमल के समान श्यामवर्ण, कोई स्वर्णकान्ति, कोई मरकतमणिवत्, कोई वैदूर्य के समान, कोई श्यामवर्ण कुण्डलधारी तथा कोई अन्य वर्ण एवं कान्तियुक्त होते हैं। हे ब्राह्मणवृन्द! यह सर्वाश्चर्ययुक्त विष्णुलोक जैसा है, देवलोक भी उसकी तुलना में कुछ भी नहीं लगता। सम्पूर्ण लोकों की शोभा विष्णुलोक के समान नहीं है।।२८-३३।।

न तत्र पुनरावृत्तिर्गमनाज्जायते द्विजाः। प्रभावात्तस्य देवस्य यावदाभूतसम्प्लवम्॥३४॥

विचरन्ति पुरे दिव्ये रूपयौवनगर्विताः। कृष्णं रामं सुभद्रां च पश्यन्ति पुरुषोत्तमे॥३५॥
प्रतप्तहेमसङ्काशं तरुणादित्यसन्निभम्। पुरमध्ये हरेर्भाति मन्दिरं रत्नभूषितम्॥३६॥
अनेकशतसाहस्त्रैः पताकैः समलङ्कृतम्। योजनायतविस्तीर्णं हेमप्राकारवेष्टितम्॥३७॥
नानावर्णैर्ध्वजैश्चित्रैः कल्पितैः सुमनोहरैः। विभाति शारदो यद्वन्नक्षत्रैः सह चन्द्रमाः॥३८॥

हे ब्राह्मणगण! इस लोक की प्राप्ति के पश्चात् पुनः उस व्यक्ति को जन्म नहीं लेना पड़ता। इन देवाधिदेव के प्रभाव से ये सभी लोग उस पुरी के दिव्य स्थान में रूपयौवन सम्पन्न होकर प्रलय आने तक विचरण करते हैं तथा वे कृष्ण-बलराम तथा सुभद्रा का दर्शन पुरुषोत्तम क्षेत्र में कर पाते हैं। इस विष्णुपुरी में श्रीहरि का एक रत्नमण्डित मण्डप है, जहां तपे स्वर्ण तथा बालसूर्य के समान अनेक हजार संख्यक पताकायें शोभित रहती हैं। यह मण्डप दस हजार योजन विस्तार वाला है, जो स्वर्ण की दीवार से घिरा है। इस मंदिररूपी मण्डप पर नाना वर्ण के मनोहारी विचित्र ध्वजपताकायें फहराती रहती हैं। यह नक्षत्रों से घिरे चन्द्रमा के समान लगती हैं।।३४-३८।।

चतुर्द्वारं सुविस्तीर्णं कञ्चुकीभिः सुरक्षितम्। पुरसप्तकसंयुक्तं महोत्सेकं मनोहरम्॥३९॥
प्रथमं काञ्चनं तत्र द्वितीयं मरकतैर्युतम्। इन्द्रनीलं तृतीयं तु महानीलं ततः परम्॥४०॥
पुरं तु पञ्चमं दीप्तं पद्मरागमयं पुरम्। षष्ठं वज्रमयं विप्रा वैदूर्यं सप्तमं पुरम्॥४१॥

इसके चार द्वार हैं। वे विस्तीर्ण हैं तथा द्वारपालों से रक्षित हैं। वहां अत्युच्च मनोहर सात पुर भी हैं। प्रथम द्वार स्वर्णमय, द्वितीय द्वार मरकतमणिमय, तृतीय द्वार इन्द्रनीलमणिमय तथा चतुर्थ द्वार महानीलमय है। द्वार से सटे सात पुरों में से जो पंचम पुरी है, वह पद्मरागमयी है। षष्ठ पुरी हिरण्मय तथा सप्तम पुरी वैदूर्यमयी है॥३९-४१।।

नानारत्नमयैर्हेमप्रवालाङ्कुरभूषितैः। स्तम्भैरद्भुतसङ्काशैर्भाति तद्भवनं महत्॥४२॥

विष्णु भवन में ऊंचे-ऊंचे नाना रत्नमय तथा स्वर्ण-प्रवालखण्ड निर्मित अद्भुद आकार के सुशोभन स्तम्भ भी बने हैं। इन स्तम्भों से विष्णु भवन अतीव शोभान्वित रहता है।।४२।।

दृश्यन्ते तत्र सिद्धाश्च भासयन्ति दिशो दश।
पौर्णमास्यां सनक्षत्रो यथा भाति निशाकरः॥४३॥
आरूढस्तत्र भगवान्सलक्ष्मीको जनार्दनः। पीताम्बरधरः श्यामः श्रीवत्सलक्ष्मसंयुतः॥४४॥

वहां पर दसों दिशाओं में सिद्धगण को दस दिशाओं को उद्भासित करते वैसे ही विचरणरत देखा जाता है, जिस प्रकार पूर्णिमा के चन्द्रमा नक्षत्रों के बीच उद्भासित रहते हैं। इस भवन के मध्य में स्थित सिंहासन पर पीताम्बरधारी, श्रीवत्सांकित वक्ष वाले श्यामवर्ण प्रभु जनार्दन लक्ष्मी के साथ विराजित रहते हैं।।४३-४४।।

ज्वलत्सुदर्शनं चक्रं घोरं सर्वास्त्रनायकम्। दधार दक्षिणे हस्ते सर्वतेजोमयं हरिः॥४५॥
कुन्देन्दुरजतप्रख्यं हारगोक्षीरसन्निभम्। आदाय तं मुनिश्रेष्ठाः सव्यहस्तेन केशवः॥४६॥
यस्य शब्देन सकलं संक्षोभं जायते जगत्। विश्रुतं पाञ्चजन्येति सहस्त्रावर्तभूषितम्॥४७॥

सभी अस्त्रों के नायक ज्वलन्त सुदर्शन चक्र अपने दाहिने हाथ में सर्वतेजोमय श्रीहरि धारण किये रहते

हैं। इन प्रभु ने सर्वतेजान्वित, कुन्द-इन्दु तथा चांदी के समान, गोदुग्ध जैसा श्वेत-उज्ज्वल तथा अपने शब्द से समस्त जगत् को क्षुब्ध करने वाला, सहस्र आवर्त्तमय विख्यात पांचजन्य शंख वाम हस्त में धारण किया है।।४५-४७।।

दुष्कृतान्तकरीं रौद्रां दैत्यदानवनाशिनीम्। ज्वलद्वह्निशिखाकारां दुःसहां त्रिदशैरपि॥४८॥
कौमोदकीं गदा चासौ धृतवान्दक्षिणे करे।
वामे विस्फुरति ह्यस्य शार्ङ्गं सूर्यसमप्रभम्॥४९॥
शरैरादित्यसङ्काशैर्ज्वालामालाकुलैर्वरैः। योऽसौ संहरते देवस्त्रैलोक्यं सचराचरम्॥५०॥
सर्वानन्दकरः श्रीमांन्सर्वशास्त्रविशारदः। सर्वलोकगुरुर्देवः सर्वैर्देवैर्नमस्कृतः॥५१॥
सहस्रमूर्धा देवेशः सहस्रचरणेक्षणः। सहस्राख्यः सहस्राङ्गः सहस्रभुजवान्प्रभुः॥५२॥
सिंहासनगतो देवः पद्मपत्रायतेक्षणः। विद्युद्विस्पष्टसङ्काशो जगन्नाथो जगद्गुरुः॥५३॥
परीतः सुरसिद्धैश्च गन्धर्वाप्सरसां गणैः। यक्षविद्याधरैर्नागैर्मुनिसिद्धैः सचारणैः॥५४॥
सुपर्णैर्दानवैर्दैत्यै राक्षसैर्गुह्यकिन्नरैः। अन्यैर्देवगणैर्दिव्यैः स्तूयमानो विराजते॥५५॥

प्रभु ने दाहिने निचले हाथ में दुष्कृति नाशक, अपने प्रभाव से दैत्य-दानव नाशक, ज्वलित अग्निवत् शिखा वाली, देवताओं के लिये भी असहनीय कौमोदकी गदा धारण किया है। इन प्रभु के वाम वाले हाथ में सूर्य के समान तेज वाला शार्ङ्ग धनुष विराजित रहता है। जो सूर्य के समान ज्वालामाला समावृत बाणों से सचराचर त्रैलोक्य संहारकारी हैं। जो सर्वानन्दकर, श्रीमान्, सर्वशास्त्रज्ञाता, जगद्गुरु, सभी देवगण द्वारा प्रणाम योग्य, सहस्रमूर्द्धा, सहस्राक्ष, सहस्र चरण, सहस्राभिधान, सहस्र अंगों वाले, सहस्रबाहु, सिंहासनासीन, पद्मपत्रायत नेत्र, विद्युत्वत् विशेष कान्ति वाले, सुरसिद्धगण द्वारा सेवित, चराचर गुरु जगन्नाथ देव यक्ष, विद्याधर, नाग, मुनिगण, सिद्ध-चारण, सुपर्ण, दैत्य, दानव, राक्षस, गुह्यक, किन्नर तथा अन्य देवताओं द्वारा स्तुत होकर विराजित रहते हैं (वही विष्णु धाम है)।।४८-५५।।

तत्रस्था सततं कीर्तिः प्रज्ञा मेधा सरस्वती।
बुद्धिर्मतिस्तथा क्षान्तिः सिद्धिर्मूर्तिस्तथा द्युतिः॥५६॥
गायत्री चैव सावित्री मङ्गला सर्वमङ्गला।
प्रभा मतिस्तथा कान्तिस्तत्र नारायणी स्थिता॥५७॥
श्रद्धा च कौशिकी देवी विद्युत्सौदामिनी तथा।
निद्रा रात्रिस्तथा माया तथाऽन्यामरयोषितः॥५८॥
वासुदेवस्य सर्वास्ता भवने संप्रतिष्ठिताः। अथ किं बहुनोक्तेन सर्वं तत्र प्रतिष्ठितम्॥५९॥
घृताची मेनका रम्भा सहजन्या तिलोत्तमा।
उर्वशी चैव निम्लोचा प्रम्लोचा सुमनोहरा॥६०॥
मुनिसम्मोहनी रामा चन्द्रमध्या शुभानना। सुकेशी नीलकेशा च तथा मन्मथदीपिनी॥६१॥

अलम्बुषा मिश्रकेशी तथाऽन्या मुञ्जिकस्थला।
क्रतुस्थला वराङ्गी च पूर्वचित्तिस्तथा परा॥६२॥
परावती महारूपा शशिलेखा शुभानना। हंसलीलानुगामिन्यो मत्तवारणगामिनी॥६३॥
बिम्बोष्ठी नवगर्भा च विख्याताः सुरयोषितः।
एताश्चान्या अप्सरसो रूपयौवनगर्विताः॥६४॥
सुमध्याश्चारुवदनाः सर्वालङ्कारभूषिताः। गीतमाधुर्यसंयुक्ताः सर्वलक्षणसंयुताः॥६५॥

उस धाम में कीर्त्ति, प्रज्ञा, मेधा, सरस्वती, मति, बुद्धि, सिद्धि, क्षान्ति, मूर्त्ति, द्युति, गायत्री, सावित्री, मंगला, सर्वमंगला, प्रभा, कान्ति, नारायणी, श्रद्धा, कौशिकी, विद्युत्, सौदामिनी, निद्रा, रात्रि, माया तथा अन्य अमर नारीगण प्रतिष्ठित हैं। घृताची, मेनका, रंभा, सहजन्या, तिलोत्तमा, निम्लोचा, वामना, मन्दोदरी, सुभगा, विश्वाची, विपुलानना, भद्रांगी, चित्रसेना, प्रम्लोचा, मनोहरा, मुनिमनमोहिनी, रामा, चित्रमध्या, शुभानना, सुकेशी, नीलकेशा, मन्मथोदीपिनी, अलम्बुषा, मित्रकेशी, मुंजीकस्थला, क्रतुस्थला, वरांगी, पूर्वचित्ति, परा, परावती, महारूपा, शशिलेखा प्रभृति सभी हंसलीलानुगामिनी, मत्त हथिनी के जैसी चलने वाली, बिम्बफल जैसे ओठों वाली प्रसिद्ध देव-गन्धर्व की रमणियां तथा रूप-यौवनगर्वित अप्सरायें वहां सर्वालंकार भूषित होकर पुरुषोत्तम से अधिष्ठित उस स्थान पर नित्य-गायन तथा मधुर वाद्य बजाती हैं।।५६-६५।।

गीतवाद्ये च कुशलाः सुरगन्धर्वयोषितः। नृत्यन्त्यनुदिनं तत्र यत्रासौ पुरुषोत्तमः॥६६॥
न तत्र रोगो नो ग्लानिर्न मृत्युर्न हिमातपौ।
न क्षुत्पिपासा न जरा न वैरूप्यं न चासुखम्॥६७॥
परमानन्दजननं सर्वकामफलप्रदम्। विष्णुलोकात्परं लोकं नात्र पश्यामि भो द्विजाः॥६८॥
ये लोकाः स्वर्गलोके तु श्रूयन्ते पुण्यकर्मणाम्।
विष्णुलोकस्य ते विप्राः कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥६९॥

ये सभी रमणीगण जो सुर-गन्धर्व वर्ग की स्त्रियां हैं, गीतवाद्य में निष्णात हैं। ये पुरुषोत्तम के सामने नृत्यगीत करती हैं। जहां प्रभु पुरुषोत्तम रहते हैं, वहां रोग, ग्लानि, मृत्यु, हिम (ठंडक), आतप (ग्रीष्म), क्षुधा-पिपासा, जरा, विरूपता तथा अन्य कोई भी उपद्रव तथा अशान्ति नहीं है। वास्तव में यह लोक परमानन्दप्रद तथा सर्व प्रकार के काम्यफलों को देने वाला है। हे ब्राह्मणगण! मैंने विष्णु लोक से बढ़ कर कोई श्रेष्ठ लोक देखा ही नहीं। स्वर्ग में पुण्यकर्मा लोगों के जिन लोकों का वृत्तान्त सुना गया है, वे विष्णुलोक की तुलना में १/१६ भाग भी नहीं हैं।।६६-६९।।

एवं हरेः पुरस्थानं सर्वभोगगुणान्वितम्। सर्वसौख्यकरं पुण्यं सर्वाश्चर्यमयं द्विजाः॥७०॥
न तत्र नास्तिका यान्ति पुरुषा विषयात्मकाः।
न कृतघ्ना न पिशुना नो स्तेना नाजितेन्द्रियाः॥७१॥
येऽर्चयन्ति सदा भक्त्या वासुदेवं जगद्गुरुम्।
ते तत्र वैष्णवा यान्ति विष्णुलोकं न संशयः॥७२॥

दक्षिणस्योदधेस्तीरे क्षेत्रे परमदुर्लभे। दृष्ट्वा कृष्णं च रामं च सुभद्रां च द्विजोत्तमाः॥७३॥
कल्पवृक्षसमीपे तु ये त्यजन्ति कलेवरम्। ते तत्र मनुजा यान्ति मृता ये पुरुषोत्तमे॥७४॥
वटसागरयोर्मध्ये यः स्मरेत्पुरुषोत्तमम्। तेऽपि तत्र नरा यान्ति ये मृताः पुरुषोत्तमे॥७५॥
तेऽपि तत्र परं स्थानं यान्ति नास्त्यत्र संशयः।
एवं मया मुनिश्रेष्ठा विष्णुलोकः सनातनः।
सर्वानन्दकरः प्रोक्तो भुक्तिमुक्तिफलप्रदः॥७६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे विष्णुलोकानुकीर्तनं नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः॥६८॥



हे ब्राह्मणगण! यह ऐसा सर्वगुणान्वित, सर्वसुखप्रद, पवित्र, सर्वाश्चर्यमय हरिपुर है। नास्तिक, विषयी, इन्द्रियपरायण, विश्वासघाती, चुगली करने वाले, चोर यहां प्रवेश भी नहीं पा सकते। जो सदा भक्तिभावान्वित होकर सचराचर गुरु वासुदेव की पूजा करते हैं, वे वैष्णव निश्चित रूप से यहां आते हैं। हे ब्राह्मणों! दक्षिण समुद्र तट पर परम दुर्लभ इस पुरुषोत्तम क्षेत्र में कृष्ण, बलराम, सुभद्रा का दर्शन करके जो कल्पवृक्ष के पास शरीर त्याग करते हैं, वे पुरुषोत्तम क्षेत्र में देहत्याग करने वाले पुरुष विष्णुलोक जाते हैं। वटवृक्ष तथा समुद्र के बीच के स्थान में रहकर जो पुरुष पुरुषोत्तम स्मरण करता है तथा वहां जो मृत होता है, ऐसे सभी लोग विष्णुलोक जाते हैं। उनको निःसन्दिग्ध रूप से यहां पर स्थान मिलता है। हे मुनिप्रवरगण! मैंने सनातन विष्णुलोक का वर्णन कर दिया। यह सर्वानन्द जनक तथा सभी प्रकार के भोग तथा मोक्ष को देने वाला है।।७०-७६।।

।।एकषष्टितम अध्याय समाप्त।।



अथोनसप्ततितमोऽध्यायः

पुरुषोत्तम माहात्म्य वर्णन

मुनय ऊचुः

बह्वाश्चर्यस्त्वया प्रोक्तो विष्णुलोको जगत्पते। नित्यानन्दकरः श्रीमान्भुक्तिमुक्तिफलप्रदः॥१॥
क्षेत्रं च दुर्लभं लोके कीर्तितं पुरुषोत्तमम्।
त्यक्त्वा यत्र नरो देहं याति सालोक्यतां हरेः॥२॥
सम्यक्क्षेत्रस्य माहात्म्यं त्वया सम्यक्प्रकीर्तितम्।
यत्र स्वदेहसंत्यागाद्विष्णुलोकं व्रजेन्नरः॥३॥

अहो मोक्षस्य मार्गोऽयं देहत्यागस्त्वयोदितः। नराणामुपकाराय पुरुषाख्ये न संशयः॥४॥
अनायासेन देवेश देहं त्यक्त्वा नरोत्तमाः।
तस्मिन्क्षेत्रे परं विष्णोः पदं यान्ति निरामयम्॥५॥
श्रुत्वा क्षेत्रस्य माहात्म्यं विस्मयो नो महानभूत्।
प्रयागपुष्करादीनि क्षेत्राण्यायतनानि च॥६॥
पृथिव्यां सर्वतीर्थानि सरितश्च सरांसि च। न तथा तानि सर्वाणि प्रशंससि सुरोत्तम॥७॥

मुनिगण कहते हैं—हे जगत्पति! आपने अनेक आश्चर्यान्वित, नित्य आनन्दप्रद, भोग-मोक्ष फलदायक, श्रीमान् विष्णु लोक का वर्णन किया है तथा जहां देहत्याग करके लोग हरिलोक की प्राप्ति करते है, उस दुर्लभ पुरुषोत्तम क्षेत्र का भी वर्णन आपने किया है। इस क्षेत्र की महिमा कितनी अपूर्व है, वह भी आपने कहा है। इस क्षेत्र में देहत्याग करने वाला विष्णुलोक जाता है। अहो! निश्चित रूप से आपने मनुष्यों के उपकारार्थ पुरुषोत्तम तीर्थ में देहत्यागरूपी मोक्षमार्ग निर्दिष्ट किया है। हे देवेश! यहां देहत्याग द्वारा मानव अनायास निरामय विष्णुपद लाभ कर लेते हैं। हम इस क्षेत्रमहिमा को सुनकर विशेष विस्मय में पड़ गये हैं। हे पुरुषोत्तम! प्रयाग, पुष्कर आदि कितने ही पुण्यमय क्षेत्र, देवायतन पृथिवी पर विराजमान हैं, इनके अतिरिक्त अनेक पुण्यमयी नदियां तथा पुण्य सरोवर भी हैं। तथापि आपने बारम्बार पुरुषोत्तम क्षेत्र की जो प्रशंसा किया है, ऐसी प्रशंसा आपने किसी भी तीर्थ की एक बार भी नहीं किया!।।१-७।।

यथा प्रशंससि क्षेत्रं पुरुषाख्यं पुनः पुनः। ज्ञातोऽस्माभिरभिप्रायस्तवेदानीं पितामह॥८॥
येन प्रशंससि क्षेत्रं मुक्तिदं पुरुषोत्तमम्। पुरुषाख्यसमं नूनं क्षेत्रं नास्ति महीतले।
तेन त्वं विबुधश्रेष्ठ प्रशंससि पुनः पुनः॥९॥

हे पितामह! आपने किस कारण से मुक्तिप्रद इस पुरुषोत्तम क्षेत्र की ऐसी प्रशंसा किया है, हमने अब इसका कारण जान लिया। वास्तव में इसके समान धरती पर कोई तीर्थ ही नहीं है। हे देवश्रेष्ठ! तभी आप इसकी बारंबार प्रशंसा करते जा रहे हैं!।।८-९।।

ब्रह्मोवाच

सत्यं सत्यं मुनिश्रेष्ठा भवद्भिः समुदाहृतम्। पुरुषाख्यसमं क्षेत्रं नास्त्यत्र पृथिवीतले॥१०॥
सन्ति यानि तु तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च।
तानि श्रीपुरुषाख्यस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥११॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे मुनिगण! आप सबने सत्य ही कहा है। इसके समान तीर्थ पृथिवी पर है ही नहीं। पृथिवी पर जो भी देवालय अथवा पुण्य तीर्थ हैं, वे पुरुषोत्तम क्षेत्र की तुलना में १/१६ अंश भी नहीं हैं।।१०-११।।

यथा सर्वेश्वरो विष्णुः सर्वलोकात्तमोत्तमः। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥१२॥
आदित्यानां यथा विष्णुः श्रेष्ठत्वे समुदाहृतः।
तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥१३॥

नक्षत्राणां यथा सोमः सरसां सागरो यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥१४॥
वसूनां पावको यद्वद्रुद्राणां शङ्करो यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥१५॥
वर्णानां ब्राह्मणो यद्वद्वैनतेयश्च पक्षिणाम्। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥१६॥
शिखरिणां यथा मेरुः पर्वतानां हिमालयः। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥१७॥
प्रमदानां यथा लक्ष्मीः सरितां जाह्नवी यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥१८॥
ऐरावतो गजेन्द्राणां महर्षीणां भृगुर्यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥१९॥

सेनानीनां यथा स्कन्दः सिद्धानां कपिलो यथा।
तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥२०॥
उच्चैःश्रवा यथाऽश्वानां कवीनामुशना कविः।
तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥२१॥

मुनीनां च यथा व्यासः कुबेरो यक्षरक्षसाम्। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥२२॥
इन्द्रियाणां मनो यद्वद्भूतानामवनी यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥२३॥
अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां पवनं प्लवतां यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥२४॥
भूषणानां तु सर्वेषां यथा चूडामणिर्द्विजाः। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥२५॥

गन्धर्वाणां चित्ररथः शस्त्राणां कुलिशो यथा।
तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥२६॥

अकारः सर्ववर्णानां गायत्री छन्दसां यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥२७॥

सर्वेश्वर भगवान् विष्णु जिस प्रकार से सर्वलोक श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार पुरुषोत्तम सभी तीर्थों में वरिष्ठ है। जैसे आदित्यों में विष्णु, नक्षत्रों में चन्द्रमा, जलराशि में सागर, वसुओं में पावक, रुद्रगणों में शंकर, वर्णों में ब्राह्मण, पक्षियों में वैनतेय गरुड़, (पर्वत) शिखरों में सुमेरु, पर्वतों में हिमालय, स्त्रियों में लक्ष्मी, नदियों में जाह्नवी, हाथियों में ऐरावत, महर्षियों में भृगु, सेनानीगण में स्कन्द, सिद्धों में कपिल, अश्वों में उच्चैःश्रवा, कवियों में उशना, मुनियों में व्यास, यक्ष-राक्षसों में कुबेर, इन्द्रियों में मन, पंचभूत समूह में धरती, वृक्षों में पीपल, बहने वालों में पवन, सभी आभूषणों में चूड़ामणि, गन्धर्वों में चित्ररथ, शस्त्रों में वज्र, सर्व वर्ण में 'अ' कार, छन्दों में गायत्री, अंगों में मस्तक श्रेष्ठ है, उसी प्रकार से सभी तीर्थों की तुलना में पुरुषोत्तम तीर्थ वरिष्ठ है।।१२-२७।।

सर्वाङ्गेभ्यो यथा श्रेष्ठमुत्तमाङ्गं द्विजोत्तमाः। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥२८॥
अरुन्धती यथा स्त्रीणां सतीनां श्रेष्ठतां गता। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥२९॥
यथा समस्तविद्यानां मोक्षविद्या परा स्मृता। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥३०॥
मनुष्याणां यथा राजा धेनूनामपि कामधुक्। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥३१॥
सुवर्णं सर्वरत्नानां सर्पाणां वासुकिर्यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्॥३२॥

हे द्विजों! जैसे सभी अंगों में शिर श्रेष्ठ है। सभी पुण्य क्षेत्रों में से पुरुषोत्तम श्रेष्ठ वरिष्ठ है। जिस प्रकार स्त्रियों में सती शिरोमणि अरुन्धती, सभी विद्या में मोक्षविद्या, मनुष्यों में राजा, धेनुओं में कामधेनु, रत्नों में स्वर्ण, सर्पों में वासुकि श्रेष्ठ है, वैसे ही सभी तीर्थों से पुरुषोत्तम तीर्थ श्रेष्ठ है।।२८-३२।।

प्रह्लादः सर्वदैत्यानां रामः शस्त्रभृतां यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्।।३३।।
झषाणां मकरो यद्वन्मृगाणां मृगराड्यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्।।३४।।
समुद्राणां यथा श्रेष्ठः क्षीरोदः सरितां पतिः। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्।।३५।।
वरुणो यादसां यद्वद्यमः संयमिनां यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्।।३६।।
देवर्षीणां यथा श्रेष्ठो नारदो मुनिसत्तमाः। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्।।३७।।
धातूनां काञ्चनं यद्वत्पवित्राणां च दक्षिणा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्।।३८।।
प्रजापतिर्यथा दक्ष ऋषीणां कश्यपो यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्।।३९।।
ग्रहाणां भास्करो यद्वन्मन्त्राणां प्रणवो यथा। तथा समस्ततीर्थानां वरिष्ठं पुरुषोत्तमम्।।४०।।

अश्वमेधस्तु यज्ञानां यज्ञा श्रेष्ठः प्रकीर्तितः।
तथा समस्ततीर्थानां क्षेत्रं च तद्द्विजोत्तमाः।।४१।।
ओषधीनां यथा धान्यं तृणेषु तृणराड्यथा।
तथा समस्ततीर्थानामुत्तमं पुरुषोत्तमम्।।४२।।

जिस प्रकार से दैत्यों में प्रह्लाद, शस्त्रधारियों में राम, मत्स्यों में मकर, मृगों में सिंह, समुद्रों में क्षीरसागर, जलचर समूह में वरुण, संयमी लोगों में यम, देवर्षिगण में नारद, धातुओं में स्वर्ण, पवित्र समूह में दक्षिणा, प्रजापतियों में दक्ष, ऋषियों में कश्यप, ग्रहों में सूर्य, मन्त्रों में ओंकार, यज्ञों में अश्वमेध, औषधियों में धान्य, तृणों में कुश प्रधान तथा श्रेष्ठ है, तदनुरूप सभी तीर्थों की तुलना में पुरुषोत्तम तीर्थ सर्वोत्तम है।।३३-४२।।

यथा समस्ततीर्थानां धर्मः संसारतारकः। तथा समस्ततीर्थाना श्रेष्ठं तत्पुरुषोत्तमम्।।४३।।

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे पुरुषोत्तममाहात्म्य-
निरूपणं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः।।६९।।



जिस प्रकार से सभी तीर्थों में से धर्म ही सर्वोत्तम उद्धारक माना गया है, उसी प्रकार जितने भी तीर्थ हैं, उन सबमें से पुरुषोत्तम तीर्थ ही सर्वोत्तम है।।४३।।

।।एकोनसप्ततितम अध्याय समाप्त।।



अथ सप्ततितमोऽध्यायः

ब्रह्मा-नारद संवाद, चतुर्विध तीर्थों के लक्षण, गौतमी माहात्म्य वर्णन

ब्रह्मोवाच

सर्वेषां चैव तीर्थानां क्षेत्राणां च द्विजोत्तमाः। जपहोमव्रतानां च तपोदानफलानि च॥१॥
न तत्पश्यामि भो विप्रा यत्तेन सदृशं भुवि। किं चात्र बहुनोक्तेन भाषितेन पुनः पुनः॥२॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं क्षेत्रं तत्परमं महत्।
पुरुषाख्यं सकृद्दृष्ट्वा सागराम्भःसमाप्लुतम्॥३॥
ब्रह्मविद्यां सकृज्ज्ञात्वा गर्भवासो न विद्यते। हरेः सन्निहिते स्थान उत्तमे पुरुषोत्तमे॥४॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे विप्रगण! सभी तीर्थों तथा सभी पुण्यमय क्षेत्रों में जप-होम-व्रत-स्नान का जो फल मिलता है, उसकी अपेक्षा इन सभी कृत्य को पुरुषोत्तम क्षेत्र में करने से अधिक फल की प्राप्ति होती है। हे विप्रों! पुरुषोत्तम के समान पुण्यफलप्रद स्थान मैं पृथिवी पर कहीं नहीं देखता। इस प्रसंग को बारम्बार कहने से क्या लाभ? इस पुरुषोत्तम की महत्ता सत्य है, सत्य है, सत्य है। सागर जल से प्लावित पुरुषोत्तम का एक बार भी दर्शन करने से तथा एक बार भी ब्रह्मविद्या का ज्ञान होने पर मनुष्य को कभी भी गर्भपीड़ा सहन करके जन्म नहीं लेना पड़ेगा। यह उत्तम पुरुषोत्तम सेवन करने वाला इस उत्तम हरि सन्निहित स्थान में।।१-४।।

संवत्सरमपासीत मासमात्रमथापि वा। ते जप्तं हुतं तेन तेन तप्तं तपो महत्॥५॥
स याति परमं स्थानं यत्र योगेश्वरो हरिः।
भुक्त्वा भोगान्विचित्रांश्च देवयोषित्समन्वितः॥६॥
कल्पान्ते पुनरागत्य मर्त्यलोके नरोत्तमः। जायते योगिनां विप्रा ज्ञानज्ञेयोद्यतो गृहे॥७॥

एक वर्ष किंवा एक मास मात्र उपासना करके सभी स्नान-जप-होम तथा तप का महाफल इस स्थान की महिमा से प्राप्त करता है। जहां योगेश्वर हरि विराजमान हैं, उस परम स्थान में उसकी गति हो जाती है। वहां जाकर वह वहां की विचित्र भोगराशि का उपभोग करता है। वह वहां देवांगनाओं के साथ विहार करता कल्पान्त में पुनः मृत्युलोक में उत्पन्न होकर योगियों के ज्ञानोज्ज्वल गृह में जन्म लेता है।।५-७।।

सम्प्राप्य वैष्णवं योगं हरेः स्वच्छन्दतां व्रजेत्।
कल्पवृक्षस्य रामस्य कृष्णस्य भद्रया सह॥८॥
मार्कण्डेयन्द्रद्युम्नस्य माहात्म्यं माधवस्य च।
स्वर्गद्वारस्य माहात्म्यं सागरस्य विधिः क्रमात्॥९॥
मार्जनस्य यथाकाले भागीरथ्याः समागमम्। सर्वमेतन्मया ख्यातं यत्परं श्रोतुमिच्छथ॥१०॥

इन्द्रद्युम्नस्य माहात्म्यमेतच्च कथितं मया। सर्वाश्चर्यं समाख्यातं रहस्यं पुरुषोत्तमम्।
पुराणं परमं गुह्यं धन्यं संसारमोचनम्॥११॥

तदनन्तर वैष्णव योग पाकर वह नरप्रवर भी श्रीहरि की तरह मुक्त व्यक्ति हो जाता है। कल्पवृक्ष, बलराम, कृष्ण, सुभद्रा, मार्कण्डेय, इन्द्रद्युम्न, माधव तथा स्वर्गद्वार का माहात्म्य तथा सागर स्नान एवं मार्जन विधि और यथाकाल भागीरथी का समागम, यह सब प्रसंग मैंने आप लोगों से कहा। आप लोग और क्या श्रवण करना चाहते हैं? मैंने इन्द्रद्युम्न का माहात्म्य विस्तार के साथ कहा था। इस प्रख्यात पुरुषोत्तम क्षेत्र की सर्वाश्चर्यमय रहस्य कथा भी मैंने कह दिया। यह धन्य, परम गोपनीय, पुरातन तथा संसार से छुटकारा दिलाने वाला तीर्थ है।।८-११।।

मुनय ऊचुः

नहि नस्तृप्तिरस्तीह श्रृण्वतां तीर्थविस्तरम्। पुनरेव परं गुह्यं वक्तुमर्हस्यशेषतः।
परं तीर्थस्य माहात्म्यं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्॥१२॥

मुनिगण कहते हैं—यह तीर्थ विवरण सुनकर हम लोग तृप्त नहीं हो पा रहे हैं। आप पुनः परम गोपनीय तीर्थ माहात्म्य का वर्णन अशेषरूपेण कहिये।।१२।।

ब्रह्मोवाच

इममेव पुरा प्रश्नं पृष्टोऽस्मि द्विजसत्तमाः। नारदेन प्रयत्नेन तदा तं प्रोक्तवानहम्॥१३॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे ब्राह्मणवृन्द! पूर्वकाल में नारद ने मुझसे यही पूछा था। उनसे मैंने यत्नतः उत्तर दिया था।।१३।।

नारद उवाच

तपसो यज्ञदानानां तीर्थानां पावनं स्मृतम्। सर्वं श्रुतं मया त्वत्तो जगद्योने जगत्पते॥१४॥
कियन्ति सन्ति तीर्थानि स्वर्गमर्त्यरसातले।
सर्वेषामेव तीर्थानां सर्वदा किं विशिष्यते॥१५॥

नारद कहते हैं—हे जगत्कारण! जगत्पति! तप, यज्ञ, दान, तीर्थ—इनमें से जो पवित्र है, उसके सम्बन्ध में मैंने आपसे श्रवण किया था। लेकिन समस्त स्वर्ग, मर्त्य, रसातल में कितने तीर्थ हैं? इन सबमें से कौन सा तीर्थ विशिष्ट है? वह कहिये।।१४-१५।।

ब्रह्मोवाच

चतुर्विधानि तीर्थानि स्वर्गे मर्त्ये रसातले। दैवानि मुनिशार्दूल आसुराण्यारुषाणि च॥१६॥
मानुषाणि त्रिलोकेषु विख्यातानि सुरादिभिः।
मानुषेभ्यश्च तीर्थेभ्य आर्षं तीर्थमनुत्तमम्॥१७॥
आर्षेभ्यश्चैव तीर्थेभ्य आसुरं बहुपुण्यदम्। आसुरेभ्यस्तथा पुण्यं दैवं तत्सार्वकामिकम्॥१८॥

ब्रह्मविष्णुशिवैश्चैव निर्मितं दैवमुच्यते। त्रिभ्यो यदेकं जायेत तस्मान्नातः परं विदुः॥१९॥
त्रयाणामपि लोकानां तीर्थं मेध्यमुदाहृतम्। तत्रापि जाम्बवं द्वीपं तीर्थं बहुगुणोदयम्॥२०॥
जाम्बवे भारतं वर्षं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्। कर्मभूमिर्यतः पुत्र तस्मात्तीर्थं तदुच्यते॥२१॥

तत्रैव यानि तीर्थानि यान्युक्तानि मया तव।
हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये षणद्यो देवसम्भवाः॥२२॥
तथैव देवजा ब्रह्मान्दक्षिणार्णवविन्ध्ययोः।
एता द्वादश नद्यस्तु प्राधान्येन प्रकीर्तिताः॥२३॥

अभिसम्पूजितं यस्माद्भारतं बहुपुण्यदम्। कर्मभूमिरतो देवैर्वर्षं तस्मात्प्रकीर्तितम्॥२४॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे मुनिशार्दूल! स्वर्ग-मर्त्य-रसातलस्थ चतुर्विध तीर्थ कहे जाते हैं। यथा—दैव, आसुर, आर्ष, मानुष। इनमें मानुष तीर्थ से आर्ष, आर्ष से आसुर तथा आसुर से दैवतीर्थ श्रेष्ठ होता है। वह सर्व कामफलप्रद तथा पवित्र तीर्थ है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव द्वारा दैवतीर्थ बनाये गये हैं। अतः इन त्रिदेवों द्वारा जिसकी उत्पत्ति होती है, उसकी तुलना में अन्य कुछ भी प्रधान नहीं कहा जा सकता। इन देवत्रय निर्मित तीर्थों को ही त्रैलोक्य में पवित्र तीर्थ कहते हैं। इनके अतिरिक्त समस्त जम्बूद्वीप में जो भारतवर्ष है, वह स्वयं त्रैलोक्य विश्रुत प्रधानतीर्थ है। हे पुत्र नारद! भारत को कर्मभूमि कह कर उसे तीर्थ संज्ञा दी गयी है। तभी इसे देवगण ने श्रेष्ठ वर्ष कहा है।।१६-२४।।

आर्षाणि चैव तीर्थानि देवजानि क्वचित्क्वचित्।
आसुरैरावृतान्यासंस्तदेवाऽसुरमुच्यते ॥२५॥

दैवेष्वेव प्रदेशेषु तपस्तप्त्वा महर्षयः। दैवप्रभावात्तपस आर्षाण्यपि च तान्यपि॥२६॥

आत्मनः श्रेयसे मुक्त्यै पूजायै भूतयेऽथवा।
आत्मनः फलभूत्यर्थं यशसोऽवाप्तये पुनः॥२७॥

मानुषैः कारितान्याहुर्मानुषाणीति नारद। एवं चतुर्विधो भेदस्तीर्थानां मुनिसत्तमाः॥२८॥

भेदं न कश्चिज्जानाति श्रोतुं युक्तोऽसि नारद।
बहवः पण्डितंमन्याः शृण्वन्ति कथयन्ति च।
सुकृती कोऽपि जानाति वक्तुं श्रोतुं निजैर्गुणैः॥२९॥

कहीं-कहीं देवतीर्थ एवं आर्षतीर्थ आसुर तीर्थों से घिरे रहते हैं। तभी उनको आसुर तीर्थ कहा जाता है। महर्षियों ने अनेक दैवस्थल तीर्थों में तप करके आर्षतीर्थ निर्मित किया है। हे नारद! आत्मा का मंगल करने हेतु, भुक्ति एवं मोक्ष के लिये, देवार्चना हेतु और अपना यश बनाये रखने के लिये मनुष्यों ने जिन तीर्थों का निर्माण किया है, वे सभी मानुष तीर्थ कहे जाते हैं। हे मुनिप्रवर! ये ही तीर्थों के चार भेद हैं। इस भेद की बात को कोई नहीं जानता। अनेक पण्डित ही इसे सुनते तथा कहते हैं, तथापि पुण्यात्मा ही अपने गुणों के कारण इसे सुन पाते तथा कह पाते हैं। ऐसे सुकृतिसम्पन्न अत्यन्त विरले ही हैं।।२५-२९।।

नारद उवाच

तेषां स्वरूपं भेदं च श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥३०॥
ब्रह्मन्कृतयुगादौ तु उपायोऽन्यो न विद्यते।
तीर्थसेवां विना स्वल्पायासेनाभीष्टदायिनीम्॥३१॥
न त्वया सदृशो धातर्वक्ता ज्ञाताऽथवा क्वचित्।
त्वं नाभिकमले विष्णोः सञ्जातोऽखिलपूर्वजः॥३२॥

नारद कहते हैं—हे देव! मैं तीर्थों का स्वरूप तथा भेद यथायथ जानना तथा सुनना चाहता हूं। मेरा विश्वास है कि इसको सुनने से सभी पापों से निश्चित रूप से मुक्ति मिल जाती है। हे ब्रह्मन्! कृतयुग आदि में अल्प प्रयास से ही अभीष्ट देने वाली तीर्थयात्रा के अतिरिक्त अन्य उपाय है ही नहीं! हे विधाता! आपके समान वक्ता तथा ज्ञाता कहीं भी नहीं है। आपकी उत्पत्ति विष्णु के नाभिकमल से है। आप सबके पूर्व में उत्पन्न पूर्वज हैं।।३०-३२।।

ब्रह्मोवाच

गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा च वेणिका।
तापी पयोष्णी विन्ध्यस्य दक्षिणे तु प्रकीर्तिताः॥३३॥
भागीरथी नर्मदा तु यमुना च सरस्वती। विशोका च वितस्ता च हिमवत्पर्वताश्रिताः॥३४॥
एता नद्यः पुण्यतमा देवतीर्थान्युदाहृताः।
गयः कोल्लासुरो वृत्रस्त्रिपुरो ह्यन्धकस्तथा॥३५॥
हयमूर्धा च लवणो नमुचिः शृङ्गकस्तथा। यमः पातालकेतुश्च मयः पुष्कर एव च॥३६॥
एतैरावृततीर्थानि आसुराणि शुभानि च। प्रभासो भार्गवोऽगस्तिर्नरनारायणौ तथा॥३७॥
वसिष्ठश्च भरद्वाजो गौतमः कश्यपो मनुः। इत्यादिमुनिजुष्टानि ऋषितीर्थानि नारद॥३८॥
अम्बरीषो हरिश्चन्द्रो मान्धाता मनुरेव च। कुरुः कनखलश्चैव भद्राश्वः सगरस्तथा॥३९॥
अश्वयूपो नाचिकेता वृषाकपिररिन्दमः। इत्यादिमानुषैर्विप्र निर्मितानि शुभानि च॥४०॥
यशसः फलभूत्यर्थं निर्मितानीह नारद। स्वतोद्भूतानि दैवानि यत्र क्वापि जगत्त्रये।
पुण्यतीर्थानि तान्याहुस्तीर्थभेदो मयोदितः॥४१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे तीर्थमाहात्म्ये तीर्थभेदवर्णनम् नाम सप्ततितमोऽध्यायः।।७०।।

गौतमीमाहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः।।१।।



ब्रह्मा कहते हैं—गोदावरी, भीमरथी, तुंगभद्रा, वेणिका, तापी तथा पयोष्णि नदियां विन्ध्यपर्वत के

दक्षिण दिक् में प्रवहमान हैं। भागीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विशोका, वितस्ता नदियां हिमाचल से निकली हैं। ये सभी पुरातन नदियां हैं। ये सभी देवतीर्थ हैं। गय, कोल्लासुर, वृत्र, त्रिपुर, अन्धक, हयग्रीव, लवण, नमुचि, शृंगक, यम, पातालकेतु, मय तथा पुष्कर आदि जो तीर्थ असुरों से आवृत हैं, वे शुभ आसुर तीर्थ हैं। प्रभास, भार्गव, अगस्ति, नर तथा नारायण, वसिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, कश्यप, मनु आदि मुनियों से सेवित स्थान ऋषितीर्थ अथवा आर्षतीर्थ कहे गये हैं। अम्बरीष, हरिश्चन्द्र, मान्धाता, मनु, कुरु, कनखल, भद्राश्व, सगर, अश्वयूप, नचिकेता, वृषाकपि आदि राजाओं ने जिन तीर्थों का निर्माण किया, वे सभी शुभ मानुष तीर्थ हैं। हे नारद! मनुष्यगण यश लाभार्थ तीर्थ निर्माण कर गये हैं। लेकिन तीनों लोक में दैवतीर्थ स्वतः उद्भूत हैं। ये सभी पुण्यजनक हैं। यह मैंने तीर्थभेद कह दिया।।३३-४१।।

।।सप्ततितम अध्याय समाप्त।।



अथैकसप्ततितमोऽध्यायः

गंगा की उत्पत्ति कथा का आरम्भ

नारद उवाच

त्रिदैवत्यं तु यत्तीर्थं सर्वेभ्यो ह्युक्तमुत्तमम्।
तस्य स्वरूप भेद च विस्तरेण ब्रवीतु मे॥१॥

नारद कहते हैं—हे ब्रह्मन्! आपने त्रिदेवों द्वारा निर्मित तीर्थों को सर्वापेक्षा उत्तम कहा है। अब उसका स्वरूपभेद विस्तार पूर्वक कहिये।।१।।

ब्रह्मोवाच

तावदन्यानि तीर्थानि तावत्ताः पुण्यभूमयः। तावद्यज्ञादयो यावत्त्रिदैवत्यं न दृश्यते॥२॥
गङ्गेयं सरितां श्रेष्ठा सर्वकामप्रदायिनी। त्रिदैवत्या मुनिश्रेष्ठ तदुत्पत्तिमतः शृणु॥३॥
वर्षाणामयुतात्पूर्वं देवकार्य उपस्थिते। तारको बलवानासीन्मद्वरादतिगर्वितः॥४॥
देवानां परमैश्वर्यं हृतं तेन बलीयसा। ततस्ते शरणं जग्मुर्देवाः सेन्द्रपुरोगमाः॥५॥
क्षीरोदशायिनं देवं जगतां प्रपितामहम्। कृताञ्जलिपुटा देवा विष्णुमूचुरनन्यगाः॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—अन्य तीर्थ, अन्य पुण्यभूमि, यज्ञ आदि तभी तक श्रेष्ठ कहे जाते हैं, जब तक त्रिदैवत् तीर्थ दिखलाई नहीं दे जाता। यह जो सर्वकामप्रदा सरित्वरा गंगा देवी हैं, ये त्रिदैवत्या नाम से कही गयी हैं। हे मुनिप्रवर! अब इनकी उत्पत्ति कथा सुनें। दस हजार वर्ष पहले एक बार एक देवकार्य आ पड़ा। तब तारक नामक एक असुर ने मेरे वर से दर्पित होकर देवगण का सभी ऐश्वर्य लूट लिया। इन्द्रादि देवता निरुपाय होकर

क्षीर-सागरशायी जगत्रपितामह विष्णु की शरण में गये तथा वे कृतांजलिबद्ध स्थिति में होकर अनन्य मन से उनका स्तव करने लगे।।२-६।।

देवा ऊचुः

त्व त्राता जगतां नाथ देवानां कीर्तिवर्धन। सर्वेश्वर जगद्योने त्रयीमूर्ते नमोऽस्तु ते॥७॥
लोकस्त्रष्टाऽसुरान्हन्ता त्वमेव जगतां पतिः।
स्थित्युत्पत्तिविनाशानां कारणं त्वं जगन्मय॥८॥
त्राता न कोऽप्यस्ति जगत्त्रयेऽपि, शरीरिणां सर्वविपद्गतानाम्।
त्वया विना वारिजपत्रनेत्र, तापत्रयाणां शरणं न चान्यत्॥९॥

देवगण कहते हैं—हे देवताओं के नाथ! कीर्त्तिवर्द्धन, जगत्कारण, वेदमूर्त्ति देव! आप जगत् के रक्षक हैं। आपको हम प्रणाम करते हैं! हे जगन्नाथ! आप लोकों के स्त्रष्टा, असुरहन्ता, जगत्पालक तथा स्थिति-उत्पत्ति-विनाशक हैं। इस त्रिभुवन में आपके सिवाय विपन्नों का रक्षक कोई भी नहीं है। हे पुण्डरीकाक्ष! आप ही तापत्रय को शान्त करते हैं। आपके अतिरिक्त कोई भी रक्षक नहीं है!।।७-९।।

पिता च माता जगतोऽखिलस्य, त्वमेव सेवासुलभोऽसि विष्णो।
प्रसीद पाहीश महाभयेभ्योऽस्मदार्तिहन्ता वद कस्त्वदन्यः॥१०॥
आदिकर्ता वराहस्त्वं मत्स्यः कूर्मस्तथैव च। इत्यादिरूपभेदैर्नो रक्षसे भय आगते॥११॥
हृतस्वाम्यान्सुरगणान्हृतदारान्गतापदः। कस्मान्न रक्षसे देव अनन्यशरणान्हरे॥१२॥

आप ही निखिल जगत् के पिता-माता हैं। सेवा से ही आपकी प्राप्ति होती है। हे ईश्वर! प्रसन्न हो जायें। हमारी महाभय से रक्षा करिये। आपके अतिरिक्त आर्त्तिहारक और कौन है? आप आदिकर्त्ता, वराह, मत्स्य, कूर्मादि विभिन्न रूप से हमारे भय के समय हमारी रक्षा करते हैं। अब देवताओं का ऐश्वर्य ही नहीं, स्त्री-पुत्रादि का भी हरण हो रहा है। देवगण अब पूरी तरह से विपन्न हो रहे हैं। हे हरि! इन आश्रय रहित तथा एकमात्र आपके आश्रित देवगण की आप रक्षा क्यों नहीं कर रहे हैं?।।१०-१२।।

ब्रह्मोवाच

ततः प्रोवाच भगवाञ्शेषशायी जगत्पतिः।
कस्माच्च भयमापन्नं तद्ब्रुवन्तु गतज्वराः।
ततः श्रियःपतिं प्राहुस्तं तारकवधं प्रति॥१३॥

ब्रह्मा कहते हैं—शेषशायी भगवान् जगत्पति ने उत्तर दिया कि—"किसके द्वारा तुम लोगों को भयभीत किया गया है? स्थिरता पूर्वक इसे कहो।" देवगण ने भगवान् से तारक वधार्थ प्रार्थना किया।।१३।।

देवा ऊचुः

तारकाद्भयमापन्नं भीषणं रोमहर्षणम्। न युद्धैस्तपसा शापैर्हन्तुं नैव क्षमा वयम्॥१४॥
अर्वाग्दशाहाद्यो बालस्तस्मान्मृत्युमवाप्स्यति। तस्माद्देव न चान्येभ्यस्तत्र नीतिर्विधीयताम्॥१५॥

देवता कहते हैं—तारकासुर से हमें अत्यन्त रोमहर्षक भय उत्पन्न हो गया है। उसे हम तपोबल, युद्ध तथा शाप द्वारा नष्ट करने में समर्थ नहीं हो सके। उसकी मृत्यु दस वर्ष से कम आयु वाले बालक से ही होगी। हे देव! अन्य किसी भी उपाय से उसकी मृत्यु होना संभव नहीं है। इसमें आप प्रभु को जिस किसी नीति का प्रयोग करना उचित लगे, वही करिये।।१४-१५।।

ब्रह्मोवाच

पुनर्नारायणः प्राह नाहं बलोत्कटः सुराः।
न मत्तो मदपत्याच्च न देवेभ्यो वधो भवेत्॥१६॥
ईश्वराद्यदि जायेत अपत्यं बहुशक्तिमत्। तस्माद्वधमवाप्नोति तारको लोकदारुणः॥१७॥
तद्गच्छामः सुराः सर्वे यतितुमृषिभिः सह।
भार्यार्थं प्रथमो यत्नः कर्तव्यः प्रभविष्णुभिः॥१८॥

ब्रह्मा कहते हैं—देवगण का कथन सुनकर विष्णु ने उत्तर दिया कि "हे देवताओं! मैं उत्कट बली नहीं हूं। मैं, मेरी सन्तान किंवा किसी देवता द्वारा इस असुर का वध नहीं हो सकेगा। यदि ईश्वर शिव से प्रभूत शक्ति वाला पुत्र उत्पन्न हो, तभी उस पुत्र के द्वारा महालोकभयंकर तारकवध हो सकेगा। हे देवताओं! चलिये! हम ऋषियों के साथ मिलकर उन शिव की भार्या लाने हेतु यत्न करें"।।१६-१८।।

तथेत्युक्त्वा सुरगणा जग्मुस्ते च नगोत्तमम्।
हिमवन्तं रत्नमयं मेनां च हिमवत्प्रियाम्॥१९॥
इदमूचुः सर्व एव सभार्यं तुहिनं गिरिम्॥२०॥

देवगण ने कहा—"ऐसा ही हो।" और वे सभी रत्नमय हिमालय गये और हिमालयप्रिया मेना एवं उनके पति गिरिवर हिमालय से सभी ने एक स्वर में कहा—।।१९-२०।।

देवा ऊचुः

दाक्षायणी लोकमाता या शक्तिः संस्थिता गिरौ।
बुद्धिः प्रजा धृतिर्मेधा लज्जा पुष्टिः सरस्वती॥२१॥
एवं त्वनेकधा लोके या स्थिता लोकपावनी।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं युवयोर्गर्भमाविशत्॥२२॥
समुत्पन्ना जगन्माता शम्भोः पत्नी भविष्यति।
अस्माकं भवतां चापि पालनी च भविष्यति॥२३॥

देवता कहते हैं—दाक्षायणी, लोकमाता दाक्षायणी आपके यहां जन्मी हैं। वे लोकपावनी माता बुद्धि, प्रज्ञा, धृति, मेधा, लज्जा, पुष्टि, सरस्वती इत्यादि अनेक रूपों में जगत् को पावन करके अवस्थित हैं। वे देवताओं की कार्यसिद्धि हेतु आपकी पुत्री के रूप में उत्पन्न हैं। ये जगन्माता इस प्रकार पुनः उत्पन्न होकर पुनः शंभु की पत्नी होंगी। वे आप लोगों तथा हम लोगों का पालन करेंगी।।२१-२३।।

ब्रह्मोवाच

हिमवानपि तद्वाक्यं सुराणामभिनन्द्य च।
मेना चापि महोत्साहा अस्त्वित्येवं वचोऽब्रवीत्॥२४॥
तदोत्पन्ना जगद्धात्री गौरी हिमवतो गृहे। शिवध्यानरता नित्यं तन्निष्ठा तन्मनोगता॥२५॥
तां वै प्रोचुः सुरगणा ईशार्थे तप आविश। तथा हिमवतः पृष्ठे गौरी तेपे तपो महत्॥२६॥
पुनः सम्मन्त्रयामासुरीशो ध्यायति तां शिवाम्।
आत्मानं वा तथाऽन्यद्वा न जानीमः कथं भवः॥२७॥
मेनकायाः सुतायां तु चित्तं दध्यात्सुरेश्वरः।
तत्र नीतिर्विधातव्या ततः श्रैष्ठ्यमवाप्स्यथ।
ततः प्राह महाबुद्धिर्वाचस्पतिरुदारधीः॥२८॥

ब्रह्मा कहते हैं—हिमालय ने देवगण का यह वचन सुनकर उनका अभिनन्दन किया तथा उनकी पत्नी मेना ने भी अतीव उत्साह के साथ "यही हो" कहा। तदनन्तर जगद्धात्री गौरी ने हिमालय के यहां जन्म लिया। वे शिवध्यान में निरत, नियत एकान्तपरायणा तथा तन्मय होकर समय व्यतीत करने लगीं। देवगण ने उनसे ईश्वर हेतु तपःश्चरण करने के लिये प्रार्थना किया था। गौरी उनके अनुरोध द्वारा हिमालय पर जाकर महातप करने लगीं। इधर देवगण ने पुनः यह मन्त्रणा किया कि "गौरी तो शिव को प्राप्त करने हेतु तपस्या कर रही हैं, तथापि शिव भी शिवा का ध्यान करें, इसका उपाय क्या है? हम यह नहीं जानते। वे भगवान् भव किस उपाय से गौरी के प्रति चित्त लगायें? अतः इस विषय में हमको नीति का प्रयोग करना चाहिये। इसी से हमें मंगल की प्राप्ति होगी। यह निश्चित है।" तब महाबुद्धि, उदार चित्त वाले बृहस्पति ने कहा—॥२४-२८॥

बृहस्पतिरुवाच

यस्त्वयं मदनो धीमान्कन्दर्पः पुष्पचापधृक्।
स विध्यतु शिवं शान्तं बाणैः पुष्पमयैः शुभैः॥२९॥
तेन विद्धस्त्रिनेत्रोऽपि ईशायां बुद्धिमादधेत्।
परिणेष्यत्यसौ नूनं तदा तां गिरिजां हरः॥३०॥
जयिनः पञ्चबाणस्य न बाणाः क्वापि कुण्ठिताः।
तथोढायां जगद्धात्र्यां शम्भोः पुत्रो भविष्यति॥३१॥
जातः पुत्रस्त्रिनेत्रस्य तारकं स हनिष्यति। वसन्तं च सहायार्थं शोभिष्ठं कुसुमाकरम्॥३२॥
आह्लादनं च मनसा कामायैनं प्रयच्छथ॥३३॥

बृहस्पति कहते हैं—जो पुष्पधनु धारण करता है, धीमान् शक्तिशाली मन्मथ कामदेव है, वह पुष्पमय काम बाण द्वारा उन शान्त शिव को विद्ध करे। मदनबाण से विद्ध होकर त्रिलोचन निश्चित रूप से ईशानी के प्रति मनोयोग करेंगे। तभी वे गिरिराज कन्या का पाणिग्रहण भी करेंगे। विजयी पंचबाण कामदेव का बाण कहीं भी कुण्ठित नहीं

होता। शम्भु द्वारा जगद्धात्री से पाणिग्रहण करने पर उनके गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न होगा। वे त्रिनेत्र के पुत्र ही तारकासुर का वध करेंगे। अतः मदन की सहायता के लिये कुसुमाकर वसन्त को भी भेजो।।२९-३३।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा सुरगणा मदनं कुसुमाकरम्। प्रेषयामासुरव्यग्राः शिवान्तिकमरिन्दमाः॥३४॥

स जगाम त्वरा कामो धृतचापो समाधवः।
रत्या च सहितः कामः कर्तुं कर्म सुदुष्करम्॥३५॥
गृहीत्वा सशरं चापमिदं तस्य मनोऽभवत्।
मया वेध्यस्त्ववेध्यो वै शम्भुर्लोकगुरुः प्रभुः॥३६॥
त्रैलोक्यजयिनो बाणाः शम्भौ मे किं दृढा न वा।
तेनासौ चाग्निनेत्रेण भस्मशेषस्तदा कृतः॥३७॥

तदेव कर्म सुदृढमीक्षितुं सुरसत्तमाः। आजग्मुस्तत्र यद्वृत्तं शृणु विस्मयकारकम्॥३८॥

शम्भुं दृष्ट्वा सुरगणा यावत्पश्यन्ति मन्मथम्।
तावच्च भस्मसाद्भूतं कामं दृष्ट्वा भयातुराः।
तुष्टुवुस्त्रिदशेशानं कृताञ्जलिपुटाः सुराः॥३९॥

ब्रह्मा कहते हैं—देवता लोग इस प्रस्ताव से सम्मत हो गये। उन्होंने मदन तथा वसन्त को शिव के स्थान पर भेज दिया। कामदेव मदन भी उस समय वसन्त एवं रति के साथ हाथों में अपना इक्षुधनुष तथा पुष्पबाण लेकर त्वरित गति के साथ इस दुष्कर्म के साधन हेतु चल पड़ा। मदन ने धनुष पर बाण चढ़ा कर मन ही मन विचार किया "चराचर गुरु शंभु यद्यपि अवेध्य हैं, तब भी मैं उनको विद्ध करूंगा। क्या मेरा त्रिलोक विजय पंचबाण प्रभु के देह में अपनी मजबूती का प्रदर्शन नहीं करेगा?" यद्यपि मदन ने यही स्थिर किया था, तथापि शम्भु की भीषण नेत्रज्वाला से वह भस्मीभूत हो गया। उस कठोर कर्म को देखने हेतु वहां देवगण भी आ पहुंचे! उस समय की विस्मयजनक घटना को सुनें। देवताओं ने शम्भु का दर्शन करके जैसे ही मदन की ओर दृष्टिपात किया, वे देखते हैं कि वह तो भस्मीभूत हो गया। यह देख कर देवता भयभीत हो गये। वे हाथ जोड़कर देवाधिदेव का स्तव करने लगे।।३४-३९।।

देवा ऊचुः

तारकाद्भयमापन्नं कुरु पत्नीं गिरेः सुताम्॥४०॥

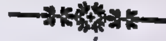
देवगण कहते हैं—हे प्रभो! हम तारकासुर से अतीव भयभीत हैं। आप कृपया गिरिसुता उमा को अपनी पत्नी बनाईये।।४०।।

ब्रह्मोवाच

विद्धचित्तो हरोऽप्याशु मेने वाक्यं सुरोदितम्।
अरुन्धतीं वसिष्ठं च मां तु चक्रधरं तथा॥४१॥

प्रेषयामासुरमरा विवाहाय परस्परम्। सम्बन्धोऽपि तथाऽप्यासीद्धिमवल्लोकनाथयोः॥४२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे गङ्गोत्पत्तौ शम्भुविवाहसम्भवो नामैकसप्ततितमोऽध्यायः॥७१॥
गौतमीमाहात्म्ये द्वितीयोऽध्यायः॥२॥



ब्रह्मा कहते हैं—श्रीहर तो कामबाण से विद्ध हो गये थे। वे तत्क्षण देवताओं की प्रार्थना से सहमत हो गये। उस समय वसिष्ठ, अरुन्धती, मुझे तथा चक्रधारी विष्णु को शिव के विवाहार्थ भेजा गया। अविलम्ब पर्वतराज हिमवान् तथा लोकपति प्रभु ईशान के बीच पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित हो गया॥४१-४२॥

॥एकसप्ततितम अध्याय समाप्त॥



अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः

शिवविवाह तथा हिमालय वर्णन

ब्रह्मोवाच

हिमवत्पर्वते श्रेष्ठे नानारत्नविचित्रिते। नानावृक्षलताकीर्णे नानाद्विजनिषेविते॥१॥
नदीनदसरःकूपतडागादिभिरावृते। देवगन्धर्वयक्षादिसिद्धचारणसेविते॥२॥
शुभमारुतसम्पन्ने हर्षोत्कर्षैककारणे। मेरुमन्दरकैलासमैनाकादिनगैर्वृते॥३॥
वसिष्ठागस्त्यपौलस्त्यलोमशादिभिरावृते। महोत्सवे वर्तमाने विवाहः समजायत॥४॥
तत्र वेदी रत्नमयी शोभिता स्वर्णभूषिता। वज्रमाणिक्यवैदूर्यतन्मयस्तम्भशोभिता॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—पर्वतों में हिमवान् श्रेष्ठ है। वह नाना रत्नों से चित्रित, नाना तरु-लता से भरा और नाना ब्राह्मणगण से सेवित है। उसके अनेक स्थानों में न जाने कितने नदी-नद, सरोवर, कूप, तालाब स्थित रहते हैं। उसमें देव, गन्धर्व, यक्ष, सिद्ध, चारण विचरण करते हैं। यहां हर्षवृद्धि का प्रधान कारण है सुखप्रद वायु का प्रवाह होना। मेरु, मन्दर, कैलास, मैनाकादि पर्वतों से हिमालय घिर गया। वसिष्ठ, अगत्स्य, पौलत्स्य तथा लोमश आदि ऋषिवर्ग यहां आ गये। इस प्रकार तब हिमालय में शिव-पार्वती का महोत्सव प्रारम्भ हो गया। वहां एक रत्नमयी विवाहवेदी बनी। इस वेदी के स्तम्भ हीरा, मानिक, वैदूर्यादि मणियों से जड़े थे॥१-५॥

जयालक्ष्मीशुभाक्षान्तिकीर्तिपुष्ट्यादिसंवृता। मेरुमन्दरकैलासरैवतैः परिशोभितैः॥६॥
पूजितो लोकनाथेन विष्णुना प्रभविष्णुना। मैनाकः पर्वतश्रेष्ठो रेजेऽतीव हिरण्मयः॥७॥
ऋषयो लोकपालाश्च आदित्याः समरुद्गणाः। विवाहे वेदिकां चक्रुर्देवदेवस्य शूलिनः॥८॥

विश्वकर्मा स्वयं त्वष्टा वेदीं चक्रे सतोरणाम्।
सुरभी नन्दिनी नन्दा सुनन्दा कामदोहिनी॥९॥
आभिस्तु शोभितेशान्या विवाहः समजायत।
समुद्राः सरितो नागा ओषध्यो लोकमातरः॥१०॥
सवनस्पतिबीजाश्च सर्वे तत्र समाययुः। भुवः कर्म इला चक्रे ओषध्यस्त्वन्नकर्म च॥११॥
वरुणः पानकर्माणि दानकर्म धनाधिपः। अग्निश्चकार तत्रान्नं यच्चेष्टं लोकनाथयोः॥१२॥
तत्र तत्र पृथक्पूजां चक्रे विष्णुः सनातनः।
वेदाश्च सहरस्या वै गायन्ति च हसन्ति च॥१३॥
नृत्यन्त्यप्सरसः सर्वा जगुर्गन्धर्वकिन्नराः। लाजाधृक्चापि मैनाको बभूव मुनिसत्तम॥१४॥

जया, लक्ष्मी, शुभा, क्षान्ति, कीर्त्ति, पुष्टि आदि देवीगण वहां उस विवाहमण्डप में आई थीं। मेरु, मन्दर, कैलास, रैवतादि पर्वतों तथा स्वयं लोकपति प्रभविष्णुविष्णु से सम्मानित होकर पर्वतराज हेममय मैनाक अतिशय शोभायमान था। ऋषिगण, लोकपाल, आदित्य, मरुद्गण ने शूलपाणि शंकर की विवाह वेदी बनाया था। स्वयं विश्वकर्मा ने वहां एक तोरणमयी वेदी को निर्मित किया था। ईशानी देवी के इस विवाहोत्सव में सुरभि, नन्दिनी, नन्दा, सुनन्दा, कामदुहा आदि गौ, समुद्र, सरिता, पर्वत, औषधिसमूह, लोकमातायें, वनस्पति, बीजादि—सब कोई आकर विवाह में योगदान कर रहे थे। इला ने भूमिकर्म का, औषधियों ने अन्नक्रिया का, वरुण ने पानकर्म का तथा कुबेर ने दानकर्म का भार लिया। अग्नि ने स्वयं अभीष्ट अन्न प्रस्तुत करना प्रारम्भ किया। सनातन विष्णु अलग-अलग पूजा कार्य में नियुक्त थे। वेदगण अपने रहस्यों के साथ गायन तथा हास्य कर रहे थे। अप्सरायें, गन्धर्व तथा किन्नरगण भी हास्य, नृत्य एवं संगीत ध्वनि करते जा रहे थे। मैनाक पर्वत ने लावा वर्षण का कार्य वहां किया था।।६-१४।।

पुण्याहवाचनं वृत्तमन्तर्वेश्मनि नारद। वेदिकायामुपाविष्टौ दम्पती सुरसत्तमौ॥१५॥
प्रतिष्ठाप्याग्निं विधिवदश्मानं चापि पुत्रक। हुत्वा लाजांश्च विधिवत्प्रदक्षिणमथाकरोत्॥१६॥

हे नारद! उस समय गृह के अन्दर पुण्याहवाचन होने लगा। देव-दम्पत्ति (शिव-पार्वती) विवाह वेदी पर आकर बैठे। हे पुत्र! उस समय सविधि अग्नि तथा प्रस्तर की प्रतिष्ठा की गयी। लाजा होम सम्पन्न होने पर सविधि उन्होंने अग्नि प्रदक्षिणा कार्य भी किया।।१५-१६।।

अश्मनः स्पर्शहेतोश्च देव्यङ्गुष्ठं करेऽस्पृशत्।
विष्णुना प्रेरितः शम्भुर्दक्षिणस्य पदस्य च॥१७॥
तामदर्शमहं तत्र होमं कुर्वन्हरान्तिके। दृष्टेऽङ्गुष्ठे दुष्टबुद्ध्या वीर्यं सुस्राव मे तदा॥१८॥
लज्जया कलुषीभूतः स्कन्नं वीर्यमचूर्णयम्।
मद्वीर्याच्चूर्णितात्सूक्ष्माद्वालखिल्यास्तु जज्ञिरे॥१९॥
ततो महानभूत्तत्र हाहाकारः सुरोदितः। लज्जया परिभूतोऽहं निर्गतस्तु तदाऽऽसनात्॥२०॥

पश्यत्सु देवसङ्घेषु तूष्णींभूतेषु नारद। गच्छन्तं मां महादेवो दृष्ट्वा नन्दिनमब्रवीत्॥२१॥

इसके अनन्तर विष्णु की प्रेरणा से देवदेव शंभु ने प्रस्तरस्पर्श सम्पन्न किया और अंगूठे से देवी पार्वती का स्पर्श किया। हे पुत्र! मैं उस समय शंकर के पास में ही बैठा हवन कर रहा था। तभी मैंने वहां पार्वती का दर्शन कर लिया। उनके अंगुष्ठ को देखते ही दुष्टबुद्धि के कारण मेरा वीर्य स्खलित हो गया। मैं लज्जा से कलुषीभूत हो गया तथा उस वीर्य को मैंने चूर्ण कर लिया। उस चूर्णीकृत वीर्य से बालखिल्य मुनिगण उत्पन्न हो गये। इस घटना के कारण वहां देवसमाज में हाहाकार मचने लगा। मैं भी लज्जा से अभिभूत होकर तत्काल उस आसन से उठ गया। देवसमाज अवाक् होकर मेरी ओर देखने लगा। हे नारद! महादेव ने तब मुझे जाते देख कर नन्दी से कहा—॥१७-२१॥

शिव उवाच

ब्रह्माणमाह्वयस्वेह गतपापं करोम्यहम्। कृतापराधेऽपि जने सन्तः सकृपमानसाः।
मोहयन्त्यपि विद्वांसं विषयाणामियं स्थितिः॥२२॥

शंकर कहते हैं—हे नन्दी! तुम ब्रह्मा को यहां बुलाओ। मैं उनको निष्पाप करूंगा। लोगों के अपराध करने पर भी साधु लोग कृपापरवश रहते हैं। विषय तो विद्वानों में भी मोहोत्पादन कर देता है। यही उसका स्वभाव है।।२२।।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा स भगवानुमया सहितः शिवः।
ममानुकम्पया चैव लोकानां हितकाम्यया॥२३॥
एतच्चकार लोकेशः शृणु नारद यत्नतः।
पापिनां पापमोक्षाय भूमिरापो भविष्यति॥२४॥
तयोश्च सारसर्वस्वमाहरिष्यामि पावनम्। एवं निश्चित्य भगवांस्तयोः सारं समाहरत्॥२५॥
भूमिं कमण्डलुं कृत्वा तत्रापः सन्निवेश्य च।
पावमान्यादिभिः सूक्तैरभिमन्त्र्य च यत्नतः॥२६॥
त्रिजगत्पावनीं शक्तिं तत्र सस्मार पापहा।
मामुवाच स लोकेशो गृहाणेमं कमण्डुलम्॥२७॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे नारद! भगवान् उमापति शिव ने मेरे ऊपर कृपा के कारण यह बात कही थी। उन्होंने लोकहितार्थ जो व्यवस्था किया था, उसे यत्नतः श्रवण करो। शिव ने कहा था कि "भूमि तथा जल पापियों के पापों का मोचन करने वाले हो जायें। मैंने उनके पवित्र सार सर्वस्व को ग्रहण कर लिया।" भगवान् भव ने यह कहकर ऐसी व्यवस्था करने के उपरान्त जल तथा मृत्तिका के सार को ग्रहण कर लिया। तदनन्तर उन्होंने भूमि की कल्पना कमण्डलु रूप से किया। उसमें जल रखकर पावमानी सूक्त को पढ़ कर उसे अभिमन्त्रित भी किया। उसमें प्रभु ने त्रैलोक्यपावनी शक्ति का ध्यान करके मुझसे कहा—॥२३-२७॥

आपो वै मातरो देव्यो भूमिर्माता तथाऽपरा।
स्थित्युत्पत्तिविनाशानां हेतुत्वमुभयोः स्थितम्॥२८॥
अत्र प्रतिष्ठतो धर्मो ह्यत्र यज्ञः सनातनः। अत्र भुक्तिश्च मुक्तिश्च स्थावरं जङ्गमं तथा॥२९॥

कि यह कमण्डलु ग्रहण करो। देवी जल माता हैं। भूमि भी माता हैं। स्थिति, उत्पत्ति तथा विनाश के कारण इनमें सन्निहित रहा करते हैं। इस जल एवं भूमिमय कमण्डलु में सनातन धर्म, यज्ञ, भुक्ति-मुक्ति, स्थावर-जंगम अवस्थित हैं।।२८-२९।।

स्मरणान्मानसं पापं वचनाद्वाचिकं तथा।
स्नानपानाभिषेकाच्च प्रणश्यत्यपि कायिकम्॥३०॥
एतदेवामृतं लोके नैतस्मात्पावनं परम्। मयाऽभिमन्त्रितं ब्रह्मन्गृहाणेमं कमण्डलुम्॥३१॥
अत्रत्यं वारि यः कश्चित्स्मरेदपि पठेदपि। स सर्वकामानाप्नोति गृहाणेमं कमण्डलुम्॥३२॥

इस कमण्डलु के जल का स्मरण करने से मानस पाप नष्ट होते हैं। इसका वर्णन करने से वाचिक तथा स्नान-पान एवं अभिषेक द्वारा काया के पाप नष्ट हो जाते हैं। जगत् में यह जल परम पावन अमृत रूप है। हे ब्रह्मन्! मैं इसे अभिमंत्रित करता हूं। आप इस कमंडलु को ग्रहण करें। इस कमण्डलु में स्थित जल का स्मरण करने तथा नाम कीर्त्तन करने से मनुष्य की सभी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। अतः आप इसे ग्रहण करिये।।३०-३२।।

भूतेभ्यश्चापि पञ्चभ्य आपो भूतं महोदितम्।
तासामुत्कृष्टमेतस्माद्गृहाणेमं कमण्डलुम्॥३३॥
अत्र यद्वारि शोभिष्ठं पुण्यं पावनमेव च।
स्पृष्ट्वा स्मृत्वा च दृष्ट्वा च ब्रह्मन्पापाद्विमोक्ष्यसे॥३४॥

पंचभूतों में से जल ही महोदयशाली है तथा जलों में से कमण्डलु का जल उत्कृष्ट होता है। अतः इसे ग्रहण करिये। हे ब्रह्मन्! इस कमण्डलु में जो शुभ पुण्यराशि है, उसका स्पर्श, स्मरण तथा दर्शन करने से व्यक्ति पापों से मुक्त हो जाता है।।३३-३४।।

एवमुक्त्वा महादेवः प्रादान्मम कमण्डलुम्।
ततः सुरगणाः सर्वे भक्त्या प्रोचुः सुरेश्वरम्।
आह्लादश्च महांस्तत्र जयशब्दो व्यवर्तत॥३५॥
देवोत्सवे मातुरजः पदाग्रं, समीक्ष्य पापात्पतितत्वमाप।
प्रादात्कृपालुः स्मरणात्पवित्रां गङ्गां पिता पुण्यकमण्डलुस्थाम्॥३६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे तीर्थमाहात्म्ये गङ्गोत्पत्तौ
ब्रह्मकमण्डलुदानं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः।।७२।।

गौतमीमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः।।३।।

यह कहकर महादेव ने मेरे हाथों में कमण्डलु दे दिया। इससे देवता अत्यन्त आह्लादित हो उठे। वे जय शब्द का उच्चारण करने लगे तथा भक्तिभाव से उन्होंने इन सुरेश्वर के लिये कहा—देवाधिदेव शिव के विवाहोत्सव में ब्रह्मयोनि जगन्माता के चरणों का अग्रभाग देखकर ब्रह्मा को पातित्य प्राप्त हो गया था। जगत्पिता शंकर ने कृपा करके उनकी पवित्रता हेतु उनके लिये परम पवित्र गंगा को कमण्डल में रख कर ब्रह्मा को प्रदान किया।।३५-३६।।

।।द्विसप्ततितम अध्याय समाप्त।।



अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

बलि-वामन चरित्र

नारद उवाच

कमण्डलुस्थिता देवी तव पुण्यविवर्धिनी। यथा मर्त्यं गता नाथ तन्मे विस्तरतो वद॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—गंगादेवी कमण्डलु में रहते हुये आपके पुण्य का वर्द्धन कराने वाली हो गयीं। वे जिस प्रकार से मर्त्यधाम में पहुंची थीं, वह मुझसे विस्तार से कहिये।।१।।

ब्रह्मोवाच

बलिर्नाम महादैत्यो देवारिरपराजितः। धर्मेण यशसा चैव प्रजासंरक्षणेन च॥२॥
गुरुभक्त्या च सत्येन वीर्येण च बलेन च। त्यागेन क्षमया चैव त्रैलोक्ये नोपमीयते॥३॥

तस्यर्द्धिमुन्नतां दृष्ट्वा देवाश्चिन्तापरायणाः।
मिथः समूचुरमरा जेष्यामो वै कथं बलिम्॥४॥
तस्मिञ्शासति राज्यं तु त्रैलोक्यं हतकण्टकम्।
नारयो व्याधयो वाऽपि नाऽऽधयो वा कथञ्चन॥५॥

अनावृष्टिरधर्मो वा नास्तिशब्दो न दुर्जनः। स्वप्नेऽपि नैव दृश्येत बलौ राज्यं प्रशासति॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—बलि नामक एक देवशत्रु महादैत्य था। कहीं भी वह पराजित नहीं होता था। धर्म, यश, प्रजा-संरक्षण, गुरुभक्ति, सत्य, वीर्य, बल, त्याग तथा क्षमागुण में त्रैलोक्य में उसके समान उपमा स्थान तो कोई नहीं था। देवता उसकी महान् उन्नत समृद्धि देखकर चिन्तित हो गये तथा परस्परतः मिलकर यह मन्त्रणा करने लगे कि कैसे इसे जीता जाये। इधर बलि के राज्यशासन काल में त्रैलोक्य निष्कण्टक था। आधि-व्याधि, शत्रुभय, अनावृष्टि, अधर्म, अभावजनित आर्त्तनाद अथवा दुर्जनों का उपद्रव स्वप्न में भी किसी को अनुभूत नहीं होता था।।२-६।।

तस्योन्नतिशैरर्भग्नाः कीर्तिखड्गाद्विधाकृतः।
तस्याऽऽज्ञाशक्तिभिन्नाङ्गा देवाः शर्म न लेभिरे॥७॥
ततः सम्मन्त्रयामासुः कृत्वा मात्सर्यमग्रतः।
तद्यशोग्निप्रदीप्ताङ्गा विष्णुं जग्मुः सुविह्वलाः॥८॥

देवता लोग बलि की समृद्धि रूपी बाणों से भग्न होकर उसके कीर्त्तिरूपी खड्ग से मानों दो टुकड़े हो गये थे। वे बलि के प्रभुत्व को देख कर क्षत-विक्षत से प्रतीत एवं विह्वल हो गये। उन्होंने मात्सर्य के कारण परस्परतः मन्त्रणा करके विष्णु की शरण लिया।।७-८।।

देवा ऊचुः

आर्ताः स्म गतसत्त्वाः स्म शङ्खचक्रगदाधर। अस्मदर्थे भवान्नित्यमायुधानि बिभर्ति च॥९॥
त्वयि नाथे जगन्नाथ अस्माकं दुःखमीदृशम्।
त्वां तु प्रणमती वाणी कथं दैत्यं नमस्यति॥१०॥
मनसा कर्मणा वाचा त्वामेव शरणं गताः।
त्वदङ्घ्रिशरणाः सन्तः कथं दैत्यं नमेमहि॥११॥
यजामस्त्वां महायज्ञैर्वदामो वाग्भिरच्युत। त्वदेकशरणाः सन्तः कथं दैत्यं नमेमहि॥१२॥
त्वद्वीर्यमाश्रिता नित्यं देवाः सेन्द्रपुरोगमाः। त्वया दत्तं पदं प्राप्य कथं दैत्यं नमेमहि॥१३॥

देवगण कहते हैं—हे शंख-चक्र-गदाधारी! हम आर्त्त तथा प्रभाव रहित हो गये हैं। हमारी रक्षा के ही लिये आप आयुध धारण करते हैं। हे जगन्नाथ! आप ऐसे रक्षक के रहते भी हमारी यह दुःखद दशा है। हमारी जो वाणी आपको प्रणाम कहती थी, वह अब दैत्य को कैसे नमस्कार कहेगी? हम काया-मन-वाणी से आपकी शरण ले रहे हैं। हम आपके चरणाश्रित होकर दैत्य को कैसे नमस्कार करें? हे अच्युत! हम महायज्ञों से आपकी ही अर्चना करते हैं। हम उदार वाक्यों से आपकी ही स्तुति करते हैं। हम आपके आश्रित होकर दैत्यों को कैसे नमस्कार करें? इन्द्रादि प्रमुख देवता आपके ही बल पर आश्रित हैं। हम देवता आपके द्वारा प्रदान पद को पाकर कैसे दैत्यों का नमन करें।।९-१३।।

स्रष्टा त्वं ब्रह्ममूर्त्या तु विष्णुर्भूत्वा तु रक्षसि।
संहर्ता रुद्रशक्त्या त्वं कथं दैत्यं नमेमहि॥१४॥
ऐश्वर्यं कारणं लोके विनैश्वर्यं तु किं फलम्। हतैश्वर्याः सुरेशान कथं दैत्यं नमेमहि॥१५॥
अनादिस्त्वं जगद्धातरनन्तस्त्वं जगद्गुरुः। अन्तवन्तममुं शत्रुं कथं दैत्यं नमेमहि॥१६॥
तवैश्वर्येण पुष्टाङ्गा जित्वा त्रैलोक्यमोजसा।
स्थिराः स्याम सुरेशान कथं दैत्यं नमेमहि॥१७॥

आप ब्रह्मा के रूप में स्रष्टा, विष्णु रूप में रक्षाकर्त्ता, रुद्र रूप में संहारक हैं। हम आपकी जगह दैत्यों को कैसे प्रणाम करें। जगत् में ऐश्वर्य लाभ करना आवश्यक है। बिना ऐश्वर्य क्या लाभ? हे सुरेश! हम ऐश्वर्य

से हत होकर दैत्यों को कैसे प्रणाम करें। हे जगत्‌विधाता! आप अनादि, अनन्त, चराचरगुरु हैं। आपके रहते हम इस नश्वर शत्रु दैत्य को कैसे प्रणाम करें? हम लोग आपके ही प्रताप से पुष्ट होकर बलात् समस्त त्रैलोक्य पर विजय पाकर भविष्य में स्वस्थ हो जायेंगे। हे सुरेश्वर! तब हम दैत्य को क्यों प्रणाम करें?।।१४-१७।।

ब्रह्मोवाच

इत्येतदेव वचनं श्रुत्वा दैतेयसूदनः। उवाच सर्वानमरान्देवानां कार्यसिद्धये॥१८॥

श्रीभगवानुवाच

मद्भक्तोऽसौ बलिर्दैत्यो ह्यवध्योऽसौ सुरासुरैः।
यथा भवन्तो मत्पोष्यास्तथा पोष्यो बलिर्मम॥१९॥
विना तु संगरं देवा हत्वा राज्यं त्रिविष्टपे।
बलिं निबध्य मन्त्रोक्त्या राज्यं वः प्रददाम्यहम्॥२०॥

ब्रह्मा कहते हैं—दैत्यसूदन भगवान् ने देवताओं का यह कथन सुनकर उनकी कार्यसिद्धि हेतु कहा—"देवगण! बलि मेरा भक्त है। अतएव वह देवता एवं असुरों से अवध्य है। जिस प्रकार से बलि का परिपालक मैं हूं, उसी प्रकार तुम लोगों का भी मैं ही पालक हूं। अतः बिना युद्ध किये मैं बलि का राज्य लेकर उससे ही मन्त्रणा करके उसे बांध कर स्वर्ग राज्य तुम लोगों को प्रदान करूंगा।।१८-२०।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा सुरगणाः संजग्मुर्दिवमेव हि। भगवानपि देवेशो ह्यदित्या गर्भमाविशत्॥२१॥
तस्मिन्नुत्पद्यमाने तु उत्सवाश्च बभूविरे। जातोऽसौ वामनो ब्रह्मन्यज्ञेशो यज्ञपुरुषः॥२२॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्हयमेधाय दीक्षितः। बलिर्बलवतां श्रेष्ठ ऋषिमुख्यै समाहितः॥२३॥
पुरोधसा च शुक्रेण वेदवेदाङ्गवेदिना। मखे तस्मिन्वर्तमाने यजमाने बलौ तथा॥२४॥
आर्त्विज्य ऋषिमुख्ये तु शुक्रे तत्र पुरोधसि। हविर्भागार्थमासन्नदेवगन्धर्वपन्नगे॥२५॥
दीयतां भुज्यतां पूजा क्रियतां च पृथक्पृथक्। परिपूर्णं पुनः पूर्णमेवं वाक्ये प्रवर्तति॥२६॥

ब्रह्मा कहते हैं—भगवान् का वचन सुनकर देवगण ने कहा कि 'ऐसा ही हो' तथा वे सभी देवता स्वर्ग चले गये। हे ब्रह्मन्! अब भगवान् देवेश्वर ने भी अदिति के गर्भ में प्रवेश किया। जब वे कालान्तर में उत्पन्न हो गये, तब देवगण ने एक महोत्सव किया। हे ब्रह्मन्! भगवान् उस समय यज्ञेश, यज्ञपुरुष, वामन होकर जन्मे थे। इधर बलवानों में श्रेष्ठ बलिराज ने अश्वमेध यज्ञार्थ दीक्षा लिया। उस यज्ञ में बहुसंख्यक ऋषिगण आये थे। वेद-वेदांगविद् शुक्राचार्य उसमें पुरोहित थे। इस प्रकार बलियज्ञ प्रारम्भ हो गया। ऋषिप्रवर पुरोहित शुक्राचार्य जब ऋत्विक् कर्म में लग गये, तब हविर्भाग ग्रहणार्थ देवता-गन्धर्व एवं सर्पगण वहां उपस्थित हो गये थे। उस समय "दीयताम्-भुज्यताम्" प्रभृति अनेक ध्वनि सुनाई पड़ रही थी। वहां लोग "पूर्ण तथा परिपूर्ण" आदि वाक्य कहते जा रहे थे।।२१-२६।।

शनैस्तद्देशमभ्यागाद्वामनः सामगायनः। यज्ञवाटमनुप्राप्तो वामनश्चित्रकुण्डलः॥२७॥

प्रशंसमानस्तं यज्ञं वामनं प्रेक्ष्य भार्गवः। ब्रह्मरूपधरं देवं वामनं दैत्यसूदनम्॥२८॥
दातारं यज्ञतपसां फलं हन्तारं रक्षसाम्। ज्ञात्वा त्वरन्नथोवाच राजानं भूरितेजसम्॥२९॥
जेतारं क्षेत्रधर्मेण दातारं भक्तितो धनम्। बलिं बलवतां श्रेष्ठं सभार्यं दीक्षितं मखे॥३०॥
ध्यायन्तं यज्ञपुरुषमुत्सृजन्तं हविः पृथक्। तमाह भृगुशार्दूलः शुक्रः परमबुद्धिमान्॥३१॥

इसी समय भगवान् वामन देवता विचित्र कुण्डलों से मण्डित होकर सामगायन करते हुये वहां पहुंच गये। उन्होंने यज्ञक्षेत्र में आकर यज्ञ की अत्यन्त प्रशंसा किया था। भृगुपुत्र शुक्र ने जब दैत्य संहारक ब्रह्मस्वरूप वामनदेव को देखा, तब उन्होंने यह समझ लिया कि ये ही समस्त यज्ञों तथा तपःश्चरण के फलदाता तथा राक्षसकुल नाशक नारायण हैं। तत्पश्चात् विजयी, दानतत्पर, अत्यन्त तेजस्वी, अपनी स्त्री के साथ यज्ञ में दीक्षित प्रभूत तेजस्वी बलिराज जो यज्ञपुरुष का ध्यान करके उनको पृथक् हविः देना चाह रहे थे, उनसे त्वरान्वित होकर भृगुशार्दूल परम बुद्धिशाली शुक्राचार्य ने कहा—॥२७-३१॥

शुक्र उवाच

योऽसौ तव मखं प्राप्तो ब्राह्मणो वामनाकृतिः।
नासौ विप्रो बले सत्यं यज्ञेशो यज्ञवाहनः॥३२॥
शिशुस्त्वां याचितुं प्राप्तो नूनं देवहिताय हि।
मया च सह संमन्त्र्यः पश्चाद्देयं त्वया प्रभो॥३३॥

शुक्राचार्य कहते हैं—हे बलिराज! ये वामनाकृति ब्राह्मण, जो तुम्हारे यज्ञ में आये हैं, ये ब्राह्मण नहीं हैं। ये निःसन्देह यज्ञवाहन, यज्ञेश्वर, शिशुरूपी देव देवताओं के हित के लिये तुमसे याचना करने आये हैं। हे प्रभो (ऐश्वर्यशाली)! मेरे साथ मन्त्रणा करके, तभी इनको जो देना निश्चित होगा, वह प्रदान करना॥३२-३३॥

ब्रह्मोवाच

बलिस्तु भार्गवं प्राह पुरोधसमरिन्दमः॥३४॥

ब्रह्मा कहते हैं—शत्रुमर्दक बलिराज ने भार्गव शुक्र की बात सुनकर उनसे कहा—॥३४॥

बलिरुवाच

धन्योऽहं मम यज्ञेशो गृहमायाति मूर्तिमान्। आगत्य याचते किञ्चित्किं मन्त्र्यमवशिष्यते॥३५॥

बलिराज कहते हैं—मूर्तिमान यज्ञेश्वर मेरे घर आये हैं। इससे मैं धन्य हो गया। ये जो कुछ मांगेंगे, वह देने के लिये मन्त्रणा की क्या आवश्यकता?॥३५॥

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा सभार्योऽसौ शुक्रेण च पुरोधसा। जगाम यत्र विप्रेन्द्रो वामनोऽदितिनन्दनः॥३६॥

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा केनार्थित्वं तदुच्यताम्।
वामनोऽपि तदा प्राह पदत्रयमितां भुवम्॥३७॥

देहि राजेन्द्र नान्येन कार्यमस्ति धनेन किम्।
तथेत्युक्त्वा तु कलशान्नानारत्नविभूषितात्॥३८॥
वारिधारां पुरस्कृत्य वामनाय भुवं ददौ।
पश्यत्सु ऋषिमुख्येषु शुक्रे चैव पुरोधसि॥३९॥
पश्यत्सु लोकनाथेषु वामनाय भुवं ददौ। पश्यत्सु दैत्यसङ्घेषु जयशब्दे प्रवर्तति॥४०॥
शनैस्तु वामनः प्राह स्वस्ति राजन्सुखी भव।
देहि मे सम्मितां भूमिं त्रिपदामाशु गम्यते॥४१॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब बलि यह कहने के उपरान्त वहां अपनी पत्नी एवं पुरोहितों के साथ गये, जहां पर वामन स्थित थे। उन्होंने हाथ जोड़कर उनसे कहा—आप क्या मांगना चाहते हैं?" यह सुनकर भगवान् वामन ने कहा—"हे राजेन्द्र! आप मुझे तीन पग मात्र भूमि दीजिये। इसके अतिरिक्त मुझे अन्य किसी धन का प्रयोजन नहीं है।"

यह सुनकर बलिराज ने "तथास्तु" कहा। उन्होंने नाना रत्नजटित कलश से जल लेकर अभ्युक्षण किया तथा वामनदेव को ऋषिगण तथा शुक्राचार्य की उपस्थिति में तीन पग भूमिदान का संकल्प कर दिया। बलिराज ने समस्त ऋषियों, पुरोहितों, प्रधान-प्रधान दैत्यों एवं लोकप्रवर लोगों के सामने वामनदेव को भूमि प्रदान किया। उस समय वामन देव ने मन्द स्वर में कहा—"स्वस्ति"। तत्पश्चात् उन्होंने कहा—"राजन्! आप सुखी हों। अब मुझे तीन पैर माप की भूमि दीजिये। मैं अभी शीघ्र चला जाऊंगा"।।३६-४१।।

तथेत्युवाच दैत्येशो यावत्पश्यति वामनम्। यज्ञेशो यज्ञपुरुषश्चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे॥४२॥
यथा स्यातां सुरा मूर्ध्नि ववृधे विक्रमाकृतिः।
अनन्तश्चाच्युतो देवो विक्रान्तो विक्रमाकृतिः।
तं दृष्ट्वा दैत्यराट् प्राह सभार्यो विनयान्वितः॥४३॥

यह सुनकर बलिराज ने कहा—"यही हो।" यह कह कर जैसे ही दैत्यराज बलि ने भगवान् वामन की ओर दृष्टिपात किया, वे देखते हैं कि ये वामन देव विराट मूर्तिधारी हो गये। चन्द्र तथा सूर्यदेव तो उनके स्तनों (वक्ष) के पास एवं देवता लोग उनके मस्तक पर परिलक्षित हो रहे थे। वे इतने बढ़ गये थे कि उनकी आकृति की कोई सीमा ही नहीं थी। वे विक्रान्त, अच्युत, यज्ञपुरुष एवं विक्रमाकृति थे। यह दृश्य देख कर बलिराज ने अपनी पत्नी के साथ भगवान् से विनय पूर्वक कहा—॥४२-४३।।

बलिरुवाच

क्रमस्व विष्णो लोकेश यावच्छत्त्या (क्ति) जगन्मय।
जितं मया सुरेशान सर्वभावेन विश्वकृत्॥४४॥

बलिराज कहते हैं—हे विष्णु! लोकेश्वर! सुरेश्वर! आप अपनी शक्ति के अनुसार जितनी दूर तक चाहें, इच्छा से अपने पैरों से भूमि माप लीजिये। मैंने तो समस्त संसार विजित कर लिया था।।४४।।

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्यसमकालं तु विष्णुः प्राह महाक्रतुः॥४५॥

ब्रह्मा कहते हैं—बलि के यह कहते ही महायज्ञ पुरुष भगवान् विष्णु ने उत्तर दिया।।४५।।

विष्णुरुवाच

दैत्येश्वर महाबाहो क्रमिष्ये पश्य दैत्यराट्॥४६॥

विष्णु कहते हैं—हे दैत्येश्वर! तुम देखो मैं पैरों को भूमि मापार्थ उठा रहा हूं।।४६।।

ब्रह्मोवाच

एवं वदन्तं स प्राह क्रम विष्णो पुनः पुनः॥४७॥

ब्रह्मा कहते हैं—विष्णु के यह कहने पर बलिराज पुनः-पुनः कहने लगे।।४७।।

ब्रह्मोवाच

कूर्मपृष्ठे पदं न्यस्य बलियज्ञे पदं न्यसत्। द्वितीयं तु पदं प्राप ब्रह्मलोकं सनातनम्॥४८॥
तृतीयस्य पदस्यात्र स्थानं नास्त्यसुरेश्वर। क्व क्रमिष्ये भुवं देहि बलिं तं हरिरब्रवीत्।
विहस्य बलिरप्याह सभार्यः स कृताञ्जलिः॥४९॥

बलिराज कहते हैं—हे विभु! आप पैरों से नापें। ब्रह्मा कहते हैं— तब विष्णु ने पहला पैर कूर्मपृष्ठ पर, द्वितीय पद बलि के यज्ञ में रखा (कूर्मपृष्ठ जो धरती के नीचे है, समस्त पृथिवी का आधार है)। उनका दूसरा कदम सनातन ब्रह्मलोक तक पहुंच गया। तब श्रीहरि ने बलि से कहा कि "हे असुरेश्वर! मेरे तीसरे कदम हेतु स्थान है कहां? स्थान नहीं है। हे ब्रह्मन्! मैं इसे कहां रखूं?" यह देखकर बलिराज ने हंसते हुये पत्नी सहित हाथ जोड़ कर प्रभु से कहा—।।४८-४९।।

बलिरुवाच

त्वया सृष्टं जगत्सर्वं न स्त्रष्टाऽहं सुरेश्वर। त्वद्दोषादल्पमभवत्किं करोमि जगन्मय॥५०॥
तथाऽपि नानृतपूर्वं कदाचिद्वच्मि केशव।
सत्यवाक्यं च मां कुर्वन्मत्पृष्ठे हि पदं न्यस॥५१॥

बलिराज कहते हैं—हे सुरेश्वर! मैं तो इस जगत् का रचयिता नहीं हूं। आपने ही समस्त जगत् की सृष्टि किया है। आपकी दृष्टि से ही यह क्षुद्रकाय हो गया। हे जगन्मय! इसमें मैं क्या कर सकता हूं। हे केशव! तथापि मैं अपने वचन को व्यर्थ नहीं जाने दे सकता। मेरा प्रण सत्य हो। आप मेरी पीठ पर अपना तीसरा कदम रखिये।।५०-५१।।

ब्रह्मोवाच

ततः प्रसन्नो भगवांस्त्रयीमूर्तिः सुरार्चितः॥५२॥

ब्रह्मा कहते हैं—त्रयी-वेदमूर्ति भगवान् तब प्रसन्न हो गये। उन सुरार्चित प्रभु ने बलि से कहा—।।५२।।

भगवानुवाच

वरं वृणीष्व भद्रं ते भक्त्या प्रीतोऽस्मि दैत्यराट्॥५३॥

श्रीभगवान् कहते हैं—हे भद्र! मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हो गया। मुझसे वर ग्रहण करो।।५३।।

ब्रह्मोवाच

स तु प्राह जगन्नाथं न याचे त्वां त्रिविक्रमम्।
स तु प्रादात्स्वयं विष्णुः प्रीतः सन्मनसेप्सितम्॥५४॥
रसातलपतित्वं च भावि चेन्द्रपदं पुनः। आत्माधिपत्यं च हरिरविनाशि यशो विभुः॥५५॥
एवं दत्त्वा बलेः सर्वं ससुतं भार्ययाऽन्वितम्।
रसातले हरिः स्थाप्य बलिं त्वमरवैरिणम्॥५६॥
शतक्रतोस्तथा प्रादात्सुरराज्यं यथाभवम्। एतस्मिन्नन्तरे तत्र पदं प्रागात्सुरार्चितम्॥५७॥
द्वितीयं तत्पदं विष्णोः पितुर्मम महामते।
यत्पदं समनुप्राप्तं गृहं दृष्ट्वाऽप्यचिन्तयम्॥५८॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब बलिराज ने कहा कि "मैं त्रिविक्रम से कुछ भी नहीं मांगूंगा।" यह सुनकर भगवान् विष्णु ने बलिराज को अपनी इच्छा से उनका अभीष्ट वर प्रदान किया। उन्होंने बलि को रसातल का आधिपत्य, भविष्य का इन्द्रपद तथा आत्माधिपत्य प्रदान किया। भगवान् ने उन बलिराज को अविनश्वर यश भी दिया था। इस प्रकार भगवान् ने बलिराज तथा उनकी पत्नी को वर देकर पूर्ववत् इन्द्र को देवराजत्व प्रदान किया। इस समय मेरे कारण प्रभु विष्णु का दूसरा वाला कदम मेरे गृह (ब्रह्मलोक) में आया था। हे महामति! वह देखकर मैं विचार करने लगा था।।५४-५८।।

किं कृत्यं यच्छुभं मे स्यात्पदे विष्णोः समागते।
सर्वस्वं च समालोक्य श्रेष्ठो मे स्यात्कमण्डलुः॥५९॥
तद्वारि यत्पुण्यतमं दत्तं च त्रिपुरारिणा। वरं वरेण्यं वरदं वरं शान्तिकरं परम्॥६०॥
शुभं च शुभदं नित्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्। मातृस्वरूपं लोकानाममृतं भेषजं शुचि॥६१॥
पवित्रं पावनं पूज्यं श्रेष्ठं गुणान्वितम्। स्मरणादेव लोकानां पावनं किं नु दर्शनात्॥६२॥
तादृग्वारि शुचिर्भूत्वा कल्पयेऽर्घाय मे पितुः।
इति सञ्चिन्त्य तद्वारि गृहीत्वाऽर्घाय कल्पितम्॥६३॥

मैंने विचार किया कि यहां विष्णु के चरण आये हैं। उनका क्या सत्कार करूं? किस प्रकार इनकी सेवा से मेरा शुभ हो सके। तब मैंने अपने पास जो कुछ था उसे देखा (अर्थात् मैंने अपनी ओर देखा)। तब मैंने यह उपलब्ध किया कि मेरा कमण्डलु एकमात्र श्रेष्ठ वस्तु है। उसका जल पवित्रतम है। स्वयं त्रिपुरारि ने उसे प्रदान किया था। तब मैंने उस श्रेष्ठ, वरेण्य, वरप्रद, शान्तिप्रद, परम शुभ, शुभप्रद, नित्य, भुक्ति-मुक्तिदाता, मातृस्वरूप, लोकसमूह के भवरोग की अमृतौषधि, पवित्र, पावन, पूज्य, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, गुणान्वित एवं

स्मरणमात्र से पवित्र कर देने वाले कमण्डलु जल स्वयं को पवित्र करके अपने पिता को अर्घ्य देने हेतु निश्चय किया।।५९-६३।।

विष्णोः पादे तु पतितमर्घवारि सुमन्त्रितम्। तद्वारि पतितं मेरौ चतुर्धा व्यगमद्ध्रुवम्।।६४।।
पूर्वे तु दक्षिणे चैव पश्चिमे चोत्तरे तथा। दक्षिणे पतितं यत्तु जटाभिः शङ्करो मुने।।६५।।
जग्राह पश्चिमे यत्तु पुनः प्रायात्कमण्डलुम्। उत्तरे यत्तु पतितं विष्णुर्जग्राह तज्जलम्।।६६।।

तदनन्तर मैंने कमण्डलु जल की पवित्रता का चिन्तन करके उस अर्घ्य जल को मन्त्र से अभिमन्त्रित किया और उस जल को विष्णुदेव के चरणों पर अर्पित किया। वह अर्घ्यजल विष्णु के चरणों पर गिरते ही वहां से मेरु पर्वत पर गिरा, जहां वह चार भागों में बंट गया। वहां से वह पृथिवी की ओर प्रवाहित होने लगा। वह जल पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण दिशाओं में गया। हे मुनिवर! जो जल दक्षिण में पड़ा था, उसे शंकर ने अपनी जटा पर धारण किया। पश्चिम वाला जल पुनः कमण्डलु में ही आ गया। जो जल उत्तर दिशा में गया था, उसे विष्णु ने ग्रहण कर लिया।।६४-६६।।

पूर्वस्मिन्नृषयो देवा पितरो लोकपालकाः। जगृहुः शुभदं वारि तस्माच्छ्रेष्ठं तदुच्यते।।६७।।
या दक्षिणां दिशं प्राप्ता आपो वै लोकमातरः।
विष्णुपादप्रसूतास्ता ब्रह्मण्या लोकमातरः।।६८।।
महेश्वरजटासंस्थाः पर्वजातशुभोदयाः। तासां प्रभावस्मरणात्सर्वकामानवाप्नुयात्।।६९।।

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे तीर्थमाहात्म्ये गङ्गाया महेश्वरजटागमन-निरूपणं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः।।७३।।

गौतमीमाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः।।४।।



जो जल पूर्व दिशा में गिरा था, उसे देवता, ऋषिगण, पितृगण एवं लोकपालों ने सुखप्रद मानकर सादर ग्रहण कर लिया। अतः वह जल श्रेष्ठ कहा गया। विष्णुपद से विगलित जो जल दक्षिण में गिरा था, वह जगत् के लिये माता के समान है। वह तो साक्षात् ब्रह्मण्य है। जो जल महेश्वर की जटा में स्थित है, उसके प्रभाव को स्मरण करने मात्र से व्यक्ति अपनी सभी मनोकामनाओं को प्राप्त कर लेता है।।६७-६९।।

।।त्रिसप्ततितम अध्याय समाप्त।।



अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

गंगा के रूपद्वय का वर्णन, गौतम ऋषि का कैलास धाम गमन

नारद उवाच

कमण्डलुस्थिता देवी महेश्वरजटागता। श्रुता देव यथा मर्त्यमागता तद्ब्रवीतु मे॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे देव! मैंने सुना है कि आपके कमण्डलु तथा महेश्वर की जटा में गंगा स्थित हैं। तथापि वे इस मर्त्यलोक में कैसे आई थीं? इसका वर्णन करिये।।१।।

ब्रह्मोवाच

महेश्वरजटास्था या आपो देव्यो महामते। तासां च द्विविधो भेद आहर्तुर्द्वयकारणात्॥२॥
एकांशो ब्राह्मणेनात्र व्रतदानसमाधिना। गौतमेन शिवं पूज्य आहृतो लोकविश्रुतः॥३॥
अपरस्तु महाप्राज्ञ क्षत्रियेण बलीयसा। आराध्य शङ्करं देवं तपोभिर्नियमैस्तथा॥४॥
भगीरथेन भूपेन आहृतोंऽशोपरस्तथा। एवं द्वैरूप्यमभवद्गङ्गाया मुनिसत्तम॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे महामति! जो समस्त दिव्य जल पवित्र गंगा के रूप में महेश्वर की जटा में था, उसे धरती पर लाने वाले दो लोग थे। अतः इसके दो भाग हो गये। इसके एक भाग को गौतम नामक एक ब्राह्मण व्रत, दान तथा समाधि द्वारा शिवाराधन करके भूतल पर लाये थे। इसने लोकों में विशेष ख्यातिलाभ किया था। हे महाप्राज्ञ! अन्य भाग को क्षत्रिय राजा भगीरथ प्रचण्ड तप एवं नियम का पालन करके शिवाराधन करते हुये गंगा को भूतल पर ले गये। हे मुनिप्रवर! इसी कारण से गंगा का द्विविध रूप कहा गया है।।२-५।।

नारद उवाच

महेश्वरजटास्तथा या हेतुना केन गौतमः। आहर्ता क्षत्रियेणापि आहृता केन तद्वद॥६॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे देव! गंगा देवी तो महेश्वर की जटा में स्थित थीं। गौतम उसके एक भाग को तथा शेष क्षत्रिय भगीरथ किस कारण से पृथिवी पर लाये?।।६।।

ब्रह्मोवाच

यथाऽऽनीता पुरा वत्स ब्राह्मणेनेतरेण वा। तत्सर्वं विस्तरेणाहं वदिष्ये प्रीतये तव॥७॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे वत्स! पूर्वकाल में ब्राह्मण तथा क्षत्रिय द्वारा गंगा देवी जिस कारण से भूतल पर लाई गयी थीं, तुम्हारी प्रसन्नता के लिये वह विस्तार से कहता हूं।।७।।

यस्मिन्काले सुरेशस्य उमा पत्न्यभवत्प्रिया। तस्मिन्नेवाभवद्गङ्गा प्रिया शम्भोर्महामते॥८॥
मम दोषापनोदाय चिन्तयानः शिवस्तदा। उमया सहितः श्रीमान्देवीं प्रेक्ष्य विशेषतः॥९॥
रसवृत्तौ स्थितो यस्मान्निर्ममे रसमुत्तमम्। रसिकत्वात्प्रियत्वाच्च स्त्रैणत्वात्पावनत्वतः॥१०॥

सर्वाभ्यो ह्यधिकप्रीतिर्गङ्गाभूद्द्विजसत्तम।
तामेव चिन्तयानोऽसौ सर्वदाऽऽस्ते महेश्वरः॥११॥
सैवोद्भूता जटामार्गात्कस्मिंश्चित्कारणान्तरे।
स तु सङ्गोपयामास गङ्गा शम्भुर्जटागताम्॥१२॥

हे महामति! जब उमा देवी ने शंकर से विवाह किया था, तभी गंगा भी उनकी प्रिय स्त्री हो गईं। श्रीमान् शिव उमा के साथ मेरा दोष दूर करने हेतु विशेषतः इन देवी की ओर देखा था। उस समय वे रसभाव में स्थित थे। इस अवस्था में उनके द्वारा उत्तम रस का निर्माण किया गया। हे द्विजप्रवर! रसिकत्व, प्रियत्व, स्त्रैणत्व (स्त्री भक्त होना), पावनत्व के कारण रसरूपा गंगा देवी ही उनके लिये सर्वापेक्षा अधिक प्रणयप्रदात्री हो गयीं महेश्वर सदैव उनका ही चिन्तन करते रहते थे। उस समय गंगादेवी किसी कारण से जटापथ से प्रकटित हो गई थीं, तथापि शंभु ने उनको जटा में ही निहित कर लिया था।।८-१२।।

शिरसा च धृतां ज्ञात्वा न शशाक उमा तदा।
सोढुं ब्रह्मञ्जटाजूटे स्थितां दृष्ट्वा पुनः पुनः॥१३॥
अमर्षेण भवं गौरी प्रेरयस्वेत्यभाषत। नैवासौ प्रेरयच्छम्भू रसिको रसमुत्तमम्॥१४॥
जटास्वेव तदा देवीं गोपायन्तं विमृश्य सा।
विनायकं जयां स्कन्दं रहो वचनमब्रवीत्॥१५॥
नैवायं त्रिदशेशानो गङ्गां त्यजति कामुकः।
साऽपि प्रिया शिवस्याद्य कथं त्यजति तां प्रियाम्॥१६॥
एवं विमृश्य बहुशो गौरी चाऽऽह विनायकम्॥१७॥

हे ब्रह्मन्! उमा देवी ने जब गंगा को सर्वदा शंकर के जटाजूट में अवस्थान करते देखा, तब वे यह किसी प्रकार से सहन नहीं कर सकीं। गौरी ने तब क्रोधित होकर कई बार गंगा का त्याग करने का अनुरोध किया। तथापि रसिकों में श्रेष्ठ शंभु ने किसी भी प्रकार से गंगा का त्याग नहीं किया। वे उनको अपनी जटा में ही छिपाये रहते थे। तब यह पता पाकर भवानी ने निर्जन में गजानन, स्कन्द तथा जया से कहा कि— "देखो! ये कामुक देवेश्वर किसी भी प्रकार से गंगा का त्याग नहीं कर रहे हैं। गंगा शिव को अतीव प्रिय हैं। अतः वे कैसे गंगा का त्याग करेंगे?" इस प्रकार से अनेक विचार-विमर्श के पश्चात् गौरी ने विनायक से कहा—।।१३-१७।।

पार्वत्युवाच

न देवैर्नासुरैर्यक्षैर्न सिद्धैर्भवताऽपि च। न राजभिरथान्यैर्वा न गङ्गां त्यजति प्रभुः॥१८॥
पुनस्तपस्यामि वा गत्वा हिमवन्तं नगोत्तमम्।
अथवा ब्राह्मणैः पुण्यैस्तपोभिर्हतकल्मषैः॥१९॥
तैर्वा जटास्थिता गङ्गा प्रार्थिता भुवमाप्नुयात्॥२०॥

पार्वती कहती हैं—हे विनायक! स्वामी किसी भी प्रकार से गंगा का त्याग नहीं कर रहे हैं। देवता, असुर, यक्ष, सिद्ध, अन्य राजा लोग, यहां तक कि तुम्हारे अनुरोध से भी वे उस गंगा का त्याग करेंगे, ऐसा नहीं लगता! अतएव मैं पुनः गंगा जाकर तप करूंगी अथवा यदि कोई पुण्यात्मा ब्राह्मण कठोर तप द्वारा शंकर की जटा में स्थित गंगा से प्रार्थना करके उनको पृथिवी पर ले जायें तभी मुझे शान्तिलाभ होगा।।१८-२०।।

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा मातृवाक्यं मातरं प्राह विघ्नराट्।
भ्रात्रा स्कन्देन जयया सम्मन्त्र्येह च युज्यते॥२१॥
तत्कुर्मो मस्तकाद्गङ्गां तथा त्यजति मे पिता। एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्ननावृष्टिरजायत॥२२॥
द्विर्द्वादश समा मर्त्ये सर्वप्राणिभयावहा। ततो विनष्टमभवज्जगत्स्थावरजङ्गमम्॥२३॥
विना तु गौतमं पुण्यमाश्रमं सर्वकामदम्। स्त्रष्टुकामः पुरा पुत्र स्थावरं जङ्गमं तथा॥२४॥
कृतो यज्ञो मया पूर्वं स देवयजनो गिरिः।
मन्नामा तत्र विख्यातस्ततो ब्रह्मगिरिः सदा॥२५॥

ब्रह्मा कहते हैं—विघ्नराज गजानन ने माता की यह बात सुनकर कहा—"इस सम्बन्ध में भ्राता स्कन्द एवं जया के साथ मन्त्रणा करके हम वही करेंगे, जिससे पिता मस्तक पर से गंगा का त्याग करें।" हे ब्रह्मन्! इसी समय १४ वर्ष स्थायी रहने वाली अनावृष्टि स्थिति मृत्युलोक में हो गयी। इसके कारण समस्त स्थावर, जंगम जगत् नष्ट हो गया। तथापि इस विपत्ति के आने पर भी गौतम के सर्वकामप्रद पुण्यमय आश्रम का तथा गौतम ऋषि का नाश नहीं हो सका। तब उसी प्राचीन काल में मैंने पुनः स्थावर, जंगम सृष्टि करने के अभिप्राय से देवगिरि पर एक यज्ञ किया। तभी यह पर्वत मेरे ही नाम से ब्रह्मगिरि के नाम से प्रसिद्ध हो गया।।२१-२५।।

तमाश्रित्य नगश्रेष्ठं सर्वदाऽऽस्ते स गौतमः।
तस्याऽऽश्रमे महापुण्ये श्रेष्ठे ब्रह्मगिरौ शुभे॥२६॥
आधयो व्याधयो वाऽपि दुर्भिक्षं वाऽप्यवर्षणम्।
भयशोकौ च दारिद्र्यं न श्रूयन्ते कदाचन॥२७॥
तदाश्रमं विनाऽन्यत्र हव्यं वा कव्यमेव वा।
नास्ति पुत्र तथा दाता होता यष्टा तथैव च॥२८॥
यदैव गौतमो विप्रो ददाति च जुहोति च। तदैवाप्ययनं स्वर्गे सुराणामपि नान्यतः॥२९॥
देवलोकेऽपि मर्त्ये वा श्रूयते गौतमो मुनिः।
होता दाता च भोक्ता च स एवेति जना विदुः॥३०॥

गौतम ऋषि इस श्रेष्ठ पर्वत का आश्रय लेकर वहां सर्वदा निवास करने लगे। ब्रह्मगिरि स्थित उनका मंगलमय महापुण्यमय उत्तम आश्रम में आधि, व्याधि, दुर्भिक्ष, अनावृष्टि, भय, शोक, दरिद्रता आदि की उत्पत्ति

की बातें कभी नहीं सुनी गयीं। उनके आश्रम के सिवाय उस समय कहीं भी हव्य-कव्य नहीं था। गौतम ब्राह्मण जिस प्रकार के दाता, होता तथा यष्टा थे, (यष्टा = यज्ञ करने वाले), उनकी तरह का कोई भी कहीं भी उस समय नहीं था! उस समय गौतम के कार्यों से स्वर्गस्थ देवताओं का जिस प्रकार से आप्यायन होता था, अन्यत्र कहीं भी वैसा नहीं हो सकता था। देवलोक, मर्त्यलोक सर्वत्र ही गौतम मुनि का नाम व्याप्त हो गया था। उस समय लोग उनको ही यथार्थ होता, दाता एवं भोक्ता कहा करते थे।।२६-३०।।

तच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे नानाश्रमनिवासिनः। गौतमाश्रममापृच्छन्नागच्छन्तस्तपोधनाः॥३१॥
तेषां मुनीनां सर्वेषामागतानां स गौतमः। शिष्यवत्पुत्रवद्भक्त्या पितृवत्पोषकोऽभवत्॥३२॥

क्रमशः नाना आश्रमवासी मुनिगण ने गौतम की प्रभाव कथा को सुना। वे यह सुनकर गौतम का आश्रम खोजते हुये वहां जाने हेतु तत्पर हो गये। इस प्रकार वे लोग गौतमाश्रम पहुंच गये। गौतम उनमें से किसी का पालन शिष्यवत्, किसी का पुत्रवत् तो किसी का पितृवत् करने लगे। जिनको जो अभीष्ट था, जिसे जिसकी आवश्यकता थी, गौतम उनको तदनुरूप भोग्यवस्तु देकर उनकी परिचर्या किया करते थे।।३१-३२।।

यस्य (तेषां) यथेप्सितं कामं यथायोग्यं यथाक्रमम्।
यथानुरूपं सर्वेषां शुश्रूषामकरोन्मुनिः॥३३॥
आज्ञया गौतमस्याऽऽसन्नोषध्यो लोकमातरः।
आराधिताः पुनस्तेन ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥३४॥

जिस व्यक्ति की जैसी इच्छा थी, उसी क्रम से उसकी सुश्रूषा वे मुनि गौतम किया करते थे। गौतम मुनि के आदेशानुसार औषधियां माता की तरह जनगण की हितैषी हो गयीं। गौतम ने जिस प्रकार से अतिथिगण की सेवा किया था, वह देखकर ब्रह्मा-विष्णु तथा शिव प्रसन्न हो गये।।३३-३४।।

जायन्ते च तदौषध्यो लूयन्ते च तदैव हि।
सम्पत्स्यन्ते तदोप्यन्ते गौतमस्य तपोबलात्॥३५॥
सर्वाः समृद्धयस्तस्य संसिध्यन्ते मनोगताः।
प्रत्यहं वक्ति विनयाद्गौतमस्त्वागतान्मुनीन्॥३६॥
पुत्रवच्छिष्यवच्चैव प्रेष्यवत्करवाणि किम्। पितृवत्पोषयामास संवत्सरगणान्बहून्॥३७॥
एवं वसत्सु मुनिषु त्रैलोक्ये ख्यातिराश्रयात्।
ततो विनायकः प्राह मातरं भ्रातरं जयाम्॥३८॥

गौतम के तपःप्रभाव से सभी औषधियां उत्पन्न होती, काटी जाती तथा वे कुछ ही समय में मातृरूपा शक्ति से वैसी ही बढ़ जाती थीं। लोगों की सभी वांछित समृद्धि सिद्ध हो जाती थी। गौतम ऋषि इन समागत मुनियों से विनय के साथ पुत्रवत्, शिष्यवत् तथा पोष्यवत्—यह पूछते थे कि "आपकी क्या सेवा करूं?" इस प्रकार से गौतम ने उनका अनेक वर्ष तक पालन किया था। जब मुनि लोग ऋषि गौतम के आश्रम में निवास कर रहे थे, उस समय गौतम ऋषि की प्रसिद्धि सम्पूर्ण राष्ट्र में फैल गयी। इसी प्रसंग में देव विनायक ने अपनी माता पार्वती, भाई स्कन्द तथा जया से प्रश्न किया।।३५-३८।।

विनायक उवाच

देवानां सदने मातर्गीयते गौतमो द्विजः। यन्न साध्यं सुरगणैर्गौतमः कृतवानिति॥३९॥
एवं श्रुतं मया देवि ब्राह्मणस्य तपोबलम्। स विप्रश्चालयेदेनां मातर्गङ्गां जटागताम्॥४०॥
तपसा वाऽन्यतो वाऽपि पूजयित्वा त्रिलोचनम्।
स एव च्यावयेदेनां जटास्थां मे पितृप्रियाम्॥४१॥
तत्र नीतिर्विधातव्या तां विप्रो याचयेद्यथा। तत्प्रभावात्सरिच्छ्रेष्ठा शिरसोऽवतरत्यपि॥४२॥

विनायकदेव कहते हैं—हे माता! देवताओं के यहां सदैव महर्षि गौतम महात्मा की प्रशंसा की जा रही है। मैंने सुना है कि देवता भी जो नहीं कर सकते, वैसा गौतम करने में समर्थ हैं। हे देवी! मैंने इन ब्राह्मण के तपोबल की ऐसी गाथा सुनी है कि वे तपस्या अथवा अन्य अर्चना द्वारा भगवान् त्रिलोचन को प्रसन्न कर लेंगे और उनके जटाजूट में विहार करने वाली गंगा का अवतरण भूतल पर करा देंगे। मुझे यह पूर्ण विश्वास है कि गौतम के प्रयास से मेरे पिता शंभु की प्रिया भूतलगामिनी होंगी। अतः हमें ऐसी नीति का अवलम्बन लेना चाहिये, जिससे गौतम मुनि गंगा से प्रार्थना करें। गौतम मुनि के प्रभाव से गंगा को पृथिवी पर उतारना ही होगा। यह निश्चित है।।३९-४२।।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा मातरं भ्रात्रा जयया सह विघ्नराट्। जगाम गौतमो यत्र ब्रह्मसूत्रधरः कृशः॥४३॥
वसन्कतिपयाहःसु गौतमाश्रममण्डले। उवाच ब्राह्मणान्सर्वांस्तत्र तत्र च विघ्नराट्॥४४॥
गच्छामः स्वमधिष्ठानमाश्रमाणि शुचीनि च।
पुष्टाः स्म गौतमान्नेन पृच्छामो गौतमं मुनिम्॥४५॥
इति सम्मन्त्र्य पृच्छन्ति मुनयो मुनिसत्तमाः।
स तान्निवारयामास स्नेहबुद्ध्या मुनीन्पृथक्॥४६॥

ब्रह्मा कहते हैं—एवंविध विघ्नेश्वर विनायक देव ने माता एवं जया से यह कहा तथा वे स्वयं वहां की यात्रा हेतु चल पड़े, जहां पर ब्रह्मसूत्रधारी कृशकाय महर्षि गौतम निवास कर रहे थे। उस गौतमाश्रम में आकर विघ्नराज ने पहले वहां कई दिन निवास किया, तत्पश्चात् उन्होंने वहां की ब्राह्मणमण्डली से कहा—"अब हमें अपने-अपने गृह वापस चले जाना चाहिये। हमारे प्रस्थान का उचित समय आ गया है। हमारा शरीर ऋषि गौतम के अन्न से परिपुष्ट हो गया है, इसलिये उनसे कहकर जाना उचित है।" मुनियों तथा विनायक ने इस प्रकार मन्त्रणा किया और अपना निर्णय महर्षि गौतम से कहा। लेकिन गौतम ऋषि ने स्नेह पूर्वक उनको जाने से रोकते हुये कहा—।।४३-४६।।

गौतम उवाच

कृताञ्जलिः सविनयमासध्वमिह चैव हि। युष्मच्चरणशुश्रूषां करोमि मुनिपुङ्गवाः॥४७॥
शुश्रूषौ पुत्रवन्नित्यं मयि तिष्ठति नोचितम्। भवतां भूमिदेवानामाश्रमान्तरसेवनम्॥४८॥

इदमेवाऽऽश्रमं पुण्यं सर्वेषामिति मे मतिः। अलमन्येन मुनय आश्रमेण गतेन वा॥४९॥

महर्षि गौतम कहते हैं—हे मुनिपुंगववृन्द! मैं हाथ जोड़कर विनीत भाव से आपके चरणों की सेवा करता रहूंगा। मेरी तरह पुत्र के समान सेवा करने वाला रहते हुये भी आप जैसे भूदेव लोगों का इस आश्रम से अन्यत्र चले जाना कदापि उचित नहीं है। आप लोग मेरे इस पुण्यमय आश्रम को अपना ही समझें। इसे मैं आप सबका ही मानता हूं। हे मुनियों! आश्रम छोड़ कर जाने का कोई प्रयोजन ही नहीं है।।४७-४९।।

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा मुनिर्वाक्यं विघ्नकृत्यमनुस्मरन्।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा ब्राह्मणान्स गणाधिपः॥५०॥

गणाधिप उवाच

अन्नक्रीता वयं किं नो निवारयत गौतमः।
साम्नां नैव वयं शक्ता गन्तुं स्वं स्वं निवेशनम्॥५१॥
नायमर्हति दण्डं वा उपकारी द्विजोत्तमाः।
तस्माद्बुद्ध्या व्यवस्यामि तत्सर्वैरनुमन्यताम्॥५२॥

ब्रह्मा कहते हैं—गणेश्वर विनायक ने जब गौतम का यह निवेदन सुना तब उन्होंने विचार किया कि उनके अपने वांछित कार्य में विघ्न आ गया है। अतः उन्होंने हाथ जोड़कर ब्राह्मणों से कहा—"हम अन्न के दास होकर रह गये हैं। हम लोग आसानी से यहां से अपने-अपने गृह लौटने में समर्थ नहीं हो पा रहे हैं, तथापि ये ब्राह्मण उपकारी रहे हैं। इसलिये इनको कोई दण्ड नहीं दे सकते। अब मैंने एक युक्ति का विचार किया है। आप सब उस युक्ति का अनुमोदन करें।।५०-५२।।

ब्रह्मोवाच

ततः सर्वे द्विजश्रेष्ठाः क्रियतामित्यनुब्रुवन्।
एतस्य तूपकाराय लोकानां हितकाम्यया॥५३॥
ब्राह्मणानां च सर्वेषां श्रेयो यत्स्यात्तथा कुरु।
ब्राह्मणानां वचः श्रुत्वा मेने वाक्यं गणाधिपः॥५४॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब सभी द्विजश्रेष्ठ लोगों ने एक स्वर से गणेश्वर विनायक के समर्थन का आश्वासन दिया। उन सबने यह भी कहा कि जिस उपाय से महात्मा गौतम का तथा सबका उपकार हो सके तथा जिस उपाय द्वारा समस्त ब्राह्मण मण्डली श्रेयलाभ कर सके, आप वैसा ही करिये। ब्राह्मण मण्डली की स्वीकारोक्ति सुन कर विनायक ने कहा—।।५३-५४।।

विनायक उवाच

क्रियते गुणरूपं यद्गौतमस्तु विशेषतः॥५५॥

गणेश्वर विनायक कहते हैं—मैं वही करूंगा, जिससे गौतम मुनि का विशेष उपकार हो सके।।५५।।

ब्रह्मोवाच

अनुमान्य द्विजान्सर्वान्पुनः पुनरुदारधीः।
स्वयं च ब्राह्मणो भूत्वा प्रणम्य ब्राह्मणान्पुनः।
मातुर्मते स्थितो विद्वाञ्जयां प्राह गणेश्वरः॥५६॥

ब्रह्मा कहते हैं—उदार बुद्धि गणेश्वर ने तब ब्राह्मणों से बारम्बार अनुमति लेकर स्वयं ब्राह्मणरूपी होने पर भी ब्राह्मण मण्डली को प्रणाम किया। उन्होंने यह निश्चय किया कि माता पार्वती की आज्ञा के अनुसार कार्य करूंगा। तदनन्तर गणेश्वर विघ्नराज गणेश ने जया से कहा—॥५६॥

विनायक उवाच

यथा नान्यो विजानीते तथा कुरु शुभानने।
गोरूपधारिणी गच्छ गौतमो यत्र तिष्ठति॥५७॥
शालीन्खाद विनाश्याथ विकारं कुरु भामिनि।
कृते प्रहारे हुँकारे प्रेक्षिते चापि किञ्चन।
पत दीनं स्वनं कृत्वा न म्रियस्व न जीव च॥५८॥

विनायकदेव कहते हैं—हे शुभानने! आप ऐसा करिये, जिसे अन्य लोग न जान सकें। आप गौ रूपी होकर गौतम मुनि के पास जाईये। वहां जाकर शालिधान्य को खा कर जो बचे, वह सब अपने पैरों से कुचल कर नष्ट कर दीजिये। उस समय यदि कोई भी आप पर प्रहार करे अथवा हुंकार करके भगाना चाहे, तब आप आर्त्त स्वर में चीत्कार करके अधमरी स्थिति में गिर जाना।।५७-५८।।

ब्रह्मोवाच

तथा चकार विजया विघ्नेश्वरमते स्थिता।
यत्राऽसीद्गौतमो विप्रो जया गोरूपधारिणी॥५९॥
जगाम शालीन्खादनी तां ददर्श स गौतमः।
गां दृष्ट्वा विकृतां विप्रस्तां तृणेन न्यवारयत्॥६०॥
निवार्यमाणा सा तेन स्वनं कृत्वा पपात गौः।
तस्यां तु पतितायां च हाहाकारो महानभूत्॥६१॥
स्वनं श्रुत्वा च दृष्ट्वा च गौतमस्य विचेष्टितम्।
व्यथिता ब्राह्मणाः प्राहुर्विघ्नराजपुरस्कृताः॥६२॥

ब्रह्मा कहते हैं—विघ्नेश्वर गणेश्वर के मतानुरूप जया ने वैसा ही कार्य किया। जहां गौतम मुनि रहते थे, वहां गौरूपी जया ने जाकर वहां शालिधान्य के खेत में समस्त शालि का भक्षण करना तथा वहां विचरण करके बाकी धान्य को नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया। यह देख कर कि विकृताकार गौ धान्य नष्ट कर रही है,

उन्होंने तृण द्वारा उस दुर्बल गौ को भगाना प्रारम्भ किया। लेकिन वह गौ भी उस समय अपनी निर्बलता तथा प्रहार के कारण क्रन्दन करती हुई भूपतित हो गई। यह देखते ही ब्राह्मणमण्डली में हाहाकार होने लगा। गणेश के द्वारा पहले से समझाये गये ब्राह्मण लोग गौतम की यह चेष्टा देख कर और गौ का क्रन्दन सुनकर व्यथित मन से विघ्नराज एवं गौतम ऋषि के निकट जाकर कहने लगे।।५९-६२।।

ब्राह्मणा ऊचुः

इतो गच्छामहे सर्वे न स्थातव्यं तवाऽऽश्रमे।
पुत्रवत्पोषिताः सर्वे पृष्टोऽसि मुनिपुङ्गव।।६३।।

ब्राह्मण कहते हैं—हे मुनिप्रवर! अब हम आपके आश्रम में नहीं रुक सकते। यहां से हम सब प्रस्थान करेंगे। आपने हमारा पुत्रवत् पालन किया है। अतएव जाते समय कह कर जा रहे हैं।।६३।।

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा मुनिर्वाक्यं विप्राणां गच्छतां तदा।
वज्राहत इवाऽऽसीत्स विप्राणां पुरतोऽपतत्।।६४।।
तमूचुर्ब्राह्मणाः सर्वे पश्येमां पतितां भुवि।
रुद्राणां मातरं देवीं जगतां पावनीं प्रियाम्।।६५।।
तीर्थदेवस्वरूपिण्यामस्यां गवि विधेर्बलात्। पतितायां मुनिश्रेष्ठ गन्तव्यमवशिष्यते।।६६।।
चीर्णं व्रतं क्षयं याति यथा वासस्त्वदाश्रमे।
वयं नान्यधना ब्रह्मन्केवलं तु तपोधनाः।।६७।।

ब्रह्मा कहते हैं—गौतम ऋषि उन गमन के लिये तैयार मुनिमण्डली की बात सुनकर उसी प्रकार से पृथिवी पर गिर पड़े, जैसे आकाशीय विद्युत् के प्रहार से वृक्ष गिर जाते हैं। यह देख कर ब्राह्मणमण्डली ने ऋषिप्रवर गौतम से कहा कि "संसार को पावन करने वाली गोमाता धरती पर पड़ी हैं। ये रुद्रों की माता हैं, जो भूपतित हैं। दैव बल के कारण इन देव एवं तीर्थरूपा गोमाता के यहां गिर जाने के कारण हमारा यहां से चले जाना ही उचित है, क्योंकि आपके आश्रम में अब रुकने से हमारा अब तक का किया धरा व्रत क्षयीभूत हो जायेगा। हे ब्रह्मर्षि! हम अन्य धनों से धनी नहीं हैं। हमारे पास केवल तपरूपी धन ही है।।६४-६७।।

ब्रह्मोवाच

विप्राणां पुरतः स्थित्वा विनीतः प्राह गौतमः।।६८।।

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर महर्षि गौतम ने ब्राह्मणों के समक्ष आकर अत्यन्त विनीत होकर कहा—।।६८।।

गौतम उवाच

भवन्त एव शरणं पूतं मां कर्तुमर्हथ।।६९।।

महर्षि गौतम कहते हैं—अब आप लोग ही मेरी सहायता करके मुझे पवित्र करिये।।६९।।

ब्रह्मोवाच

ततः प्रोवाच भगवान्विघ्नराड्ब्राह्मणैर्वृतः॥७०॥

ब्रह्मा कहते हैं—गौतम मुनि के यह कहने पर ब्राह्मणों से घिरे भगवान् विघ्नराज ने कहा—॥७०॥

विघ्नराज उवाच

नैवेयं म्रियते तत्र नैव जीवति तत्र किम्।
वदामोऽस्मिन्सुसन्दिग्धे निष्कृतिं गतिमेव वा॥७१॥

भगवान् विघ्नेश्वर कहते हैं—यह गौ मर गयी अथवा अभी जीवित है, कुछ भी नहीं कहा जा सकता। ऐसे संदेह के स्थान पर हम कुछ कैसे कह सकते हैं?॥७१॥

गौतम उवाच

कथमुत्थास्यतीयं गौरथ चास्मिंश्च निष्कृतिम्।
वक्तुमर्हथ तत्सर्वं करिष्येऽहमसंशयम्॥७२॥

गौतम ऋषि कहते हैं—यह गौ किस प्रकार से उठेगी तथा मैं इस पाप से किस प्रकार छुटकारा पा सकूंगा, आप सब यह बतलाने में सक्षम हैं। मैं आप लोगों के निर्णय का यथावत् पालन करूंगा॥७२॥

ब्राह्मणा ऊचुः

सर्वेषां च मतेनायं वदिष्यति च बुद्धिमान्। एतद्वाक्यमथास्माकं प्रमाणं तव गौतम॥७३॥

ब्राह्मण कहते हैं—हम सभी के मतानुसार ये बुद्धिमान ब्राह्मण ही बतलाने में सक्षम हैं। इनका निर्णय ही हमारे लिये प्रमाण है॥७३॥

ब्रह्मोवाच

ब्राह्मणैः प्रेर्यमाणोऽसौ गौतमेन बलीयसा। विघ्नकृद्ब्रह्मवपुषा प्राह सर्वानिदं वचः॥७४॥

ब्रह्मा कहते हैं—उस समय ब्राह्मण मण्डली और महर्षि गौतम से प्रेरित होकर ब्राह्मणरूपधारी विघ्नराज ने उत्तर प्रदान किया॥७४॥

विघ्नराज उवाच

सर्वेषां च मतेनाहं वदिष्यामि यथार्थवत्। अनुमन्यन्तु मुनयो मद्वाक्यं गौतमोऽपि च॥७५॥
महेश्वरजटाजूटे ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः। कमण्डलुस्थितं वारि तिष्ठतीति हि शुश्रुम॥७६॥
तदानयस्व तरसा तपसा नियमेन च। तेनाभिषिञ्च गामेतां भगवन्भुवमाश्रिताम्।
ततो वत्स्यामहे सर्वे पूर्ववत्तव वेश्मनि॥७७॥

भगवान् विघ्नराज कहते हैं—मैं सभी के मतानुसार कहना चाहता हूं। मेरा कथन सुनकर सभी मुनिगण तथा महर्षि गौतम मेरी बात का अनुमोदन करें। हम सभी ने सुना है कि अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा के कमण्डलु का जल ही शंकर के जटाजाल में स्थित है। मुनि गौतम तप तथा नियमावलम्बन द्वारा इस जल को यहां ले आयें।

उस जल से इस भूपतित गौ का अभिषेक हो। हे भगवान् गौतम! तब यह कार्य हो जाने पर हम सभी ऋषिमण्डली वाले आपके आश्रम में निवास कर सकेंगे।।७५-७७।।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तवति विप्रेन्द्रे ब्राह्मणानां च संसदि। तत्रापतत्पुष्पवृष्टिर्जयशब्दो व्यवर्धत।
ततः कृताञ्जलिर्नम्रो गौतमो वाक्यमब्रवीत्।।७८।।

ब्रह्मा कहते हैं—जैसे ही उन विप्ररूपी विघ्नेश्वर ने ब्राह्मण समाज में यह मत व्यक्त किया, तभी स्वर्ग से पुष्पवृष्टि के साथ जयजयकार होने लगा। यह देख कर हाथ जोड़ कर नम्रता पूर्वक गौतम ने कहा—।।७८।।

गौतम उवाच

तपसाऽग्निप्रसादेन देवब्रह्मप्रसादतः। भवतां च प्रसादेन मत्सङ्कल्पोनुसिद्ध्यताम्।।७९।।

गौतम कहते हैं—मेरे तपोबल से, अग्नि की कृपा से, ब्रह्मण्य देवों के अनुग्रह से मेरा यह संकल्प अवश्य सिद्ध होगा।।७९।।

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति तं विप्रा आपृच्छन्मुनिपुङ्गवम्।
स्वानि स्थानानि ते जग्मुः समृद्धान्यन्नवारिभिः।।८०।।
यातेषु तेषु विप्रेषु भ्रात्रा सह गणेश्वरः। जयया सह सुप्रीतः कृतकृत्यो न्यवर्तत।।८१।।

ब्रह्मदेव कहते हैं—ब्राह्मणों ने गौतम का कथन सुनकर कहा 'ऐसा ही हो' और वे सभी गौतम से विदा मांग कर अपने-अपने अन्न-जल से भरे-पूरे आश्रमों में चले गये। ब्राह्मणों के चले जाने पर गणपति देव कृतार्थ तथा प्रसन्न चित्त से अपने भाई तथा जयादेवी के साथ स्वस्थान चले गये।।८०-८१।।

गतेषु ब्रह्मवृन्देषु गणेशे च गते तथा। गौतमोऽपि मुनिश्रेष्ठस्तपसा हतकल्मषः।।८२।।
ध्यायंस्तदर्थं स मुनिः किमिदं मम संस्थितम्।
इत्येवं बहुशो ध्यायञ्ज्ञानेन ज्ञातवान्द्विज।।८३।।
निश्चित्य देवकार्यार्थमात्मनः किल्विषां गतिम्।
लोकानामुपकारं च शम्भोः प्रीणनमेव च।।८४।।
उमायाः प्रीणनं चापि गङ्गानयनमेव च। सर्वं श्रेयस्करं मन्ये मयि नैव च किल्विषम्।।८५।।

जब समस्त ब्राह्मण तथा विप्र वेषधारी गणेश चले गये तब गौतम स्वयं को तपःश्चरण द्वारा निष्पाप जानकर मन ही मन इस घटित घटना के सम्बन्ध में सोचने लगे कि यह क्या घटित हो गया? वे यह विचार करने लगे थे। वे मुहूर्त मात्र में अपने अन्तर्ज्ञान के द्वारा इस घटना का रहस्य जान गये। देव कार्य सिद्धि, स्वकृत पापों का नाश, महेश्वर तथा उमा की प्रसन्नता प्राप्ति और सर्वसाधारण के उपकारार्थ निश्चय दृढ़ करके उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि मैंने कोई पाप नहीं किया अर्थात् जानबूझ कर पाप नहीं किया। इस निष्कर्ष से वे उत्तम विप्र अत्यन्त हर्षित हो गये।।८२-८५।।

इत्येवं मनसा ध्यायन्सुप्रीतोऽभूद्द्विजोत्तमः।
आराध्य जगतामीशं त्रिनेत्रं वृषभध्वजम्॥८६॥
आनयिष्ये सरिच्छ्रेष्ठां प्रीताऽस्तु गिरिजा मम। सपत्नी जगदम्बाया महेश्वरजटास्थिता॥८७॥
एवं हि सङ्कल्प्य मुनिप्रवीरः, स गौतमो ब्रह्मगिरेर्जगाम।
कैलासमाधिष्ठितमुग्रधन्वना, सुरार्चितं प्रियया ब्रह्मवृन्दैः॥८८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे तीर्थमाहात्म्ये विनायकगौतमव्यापारनिरूपणं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः॥७४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चमोऽध्यायः॥५॥



अब उन्होंने यह दृढ़ व्रत लिया कि मैं जगत्पति त्रिलोचन वृषवाहन की आराधना करके सरिताओं में प्रवर गंगा को ले आऊंगा। गिरिजा भी इस कार्य से प्रसन्न हो जायेगी। इसका कारण है कि हर की जटा में स्थित गंगादेवी भगवती पार्वती की सौत जो हैं। यह दृढ़ संकल्प व्रत ग्रहण करके मुनिप्रवर गौतम ने ब्रह्मगिरि के अपने आश्रम से ब्राह्मणों द्वारा परिपूजित उमा-महेश्वर की स्थिति के कारण परिशोभित कैलास पर्वत की ओर प्रयाण किया॥८६-८८॥

॥चतुःसप्ततितम अध्याय समाप्त॥



अथ पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

गौतम द्वारा उमा-महेश्वर स्तुति तथा उनके द्वारा गंगा को पृथिवी पर लाना

नारद उवाच

कैलासशिखरं गत्वा गौतमो भगवानृषिः।
किं चकार तपो वाऽपि कां चक्रे स्तुतिमुत्तमाम्॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—भगवान् गौतम ऋषि ने कैलास शिखर पर जाकर कैसी तपस्या अथवा कौन सा उत्तम स्तव किया था?॥१॥

ब्रह्मोवाच

गिरिं गत्वा ततो वत्स वाचं संयम्य गौतमः।
आस्तीर्य स कुशान्प्राज्ञः कैलासे पर्वतोत्तमे॥२॥

उपविश्य शुचिर्भूत्वा स्तोत्रं चेदं ततो जगौ। अपतत्पुष्पवृष्टिश्च स्तूयमाने महेश्वरे॥३॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे वत्स! प्रकृष्ट ज्ञानी गौतम ने कैलास जाकर वाणी का संयम किया और कुशा बिछा कर पवित्र भाव से उस पर बैठ गये। वहां उन्होंने यह स्तवपाठ करना प्रारम्भ किया। जब वे स्तुतिपाठ कर रहे थे, तभी पुष्पवर्षा होने लगी।।२-३।।

गौतम उवाच

भोगार्थिनां भोगमभीप्सितं च, दातुं महान्त्यष्टवपूंषि धत्ते।
सोमो जनानां गुणवन्ति नित्यं, देवं महादेवमिति स्तुवन्ति॥४॥
कर्त्तुं स्वकीयैर्विषयैः सुखानि, भर्तुं समस्तं सचराचरं च।
सम्पत्तये ह्यस्य विवृद्धये च, महीमयं रूपमितीश्वरस्य॥५॥
सृष्टेः स्थितेः संहरणाय भूमेराधारमाधातुमपां स्वरूपम्।
भेजे शिवः शान्ततनुर्जनानां, सुखाय धर्माय जगत्प्रतिष्ठितम्॥६॥

ऋषि गौतम कहते हैं—हे ईश्वर! आप भोगार्थी लोगों को भोग-प्रदानार्थ गुणमयी महती अष्टमूर्त्ति धारण करते हैं। आप सौम्यमूर्त्ति हैं। आपके महादेव नाम की सभी लोग स्तुति करते रहते हैं। आप ईश्वर समस्त चराचर का भरण-पोषण करने वाले तथा उसकी समृद्धि तथा ऐश्वर्य के हेतु हैं। यह आपका पृथिवीमय रूप विराजमान है। आप ही सृष्टि-स्थिति-संहारार्थ भूमि को आधार देने हेतु जनगण को सुख प्रदानार्थ तथा धर्मरक्षणार्थ लोक प्रसिद्ध जल का रूप धारण करते हैं। आप ही शिव एवं शान्त रूपी हैं।।४-६।।

कालव्यवस्थाममृतस्त्रवं च, जीवस्थितिं सृष्टिमथो विनाशनम्।
मुदं प्रजानां सुखमुन्नतिं च, चक्रेऽर्कचन्द्राग्निमयं शरीरम्॥७॥
वृद्धिं गतिं शक्तिमथाक्षराणि, जीवव्यवस्थां मुदमप्यनेकाम्।
स्त्रष्टुं कृतं वायुरितीशरूपं, त्वं वेत्सि नूनं भगवन्भवन्तम्॥८॥
भेदैर्विना नैव कृतिर्न धर्मो, नाऽऽत्मीयमन्यन्न दिशोऽन्तरिक्षम्।
द्यावापृथिव्यौ न च भुक्तिमुक्ती, तस्मादिदं व्योमवपुस्तवेश॥९॥

आपने ही अग्नि, चन्द्र-सूर्यमय वायु धारण किया है। काल व्यवस्था, अमृत वर्षा, जीव सृष्टि, स्थिति, विनाश एवं प्रजावर्ग का प्रहर्ष, सुख तथा उन्नति का विधान किया है। हे प्रभो! आप वृद्धि, गति, शक्ति, जीव व्यवस्था तथा प्रचुर प्रमोद वितरणार्थ वायुदेह धारण करते हैं। वास्तव में आप ही स्वयं को स्वयं जान सकते हैं। अन्य कोई आपको नहीं जान सकता। आप ही एकमात्र इन सब रहस्य के ज्ञाता हैं। हे ईश्वर! इन भेदों के अभाव में कोई कृति, धर्म, दिक्, अन्तरिक्ष, आत्मीय, द्यावा, पृथिवी, भुक्ति-मुक्ति कुछ भी नहीं हो सकते। हे ईश! इसीलिये आपका यह व्योममय शरीर रूप विराजमान रहता है।।७-९।।

धर्मं व्यवस्थापयितुं व्यवस्य, ऋक्सामशास्त्राणि यजुश्च शाखाः।
लोके च गाथाः स्मृतयः पुराणमित्यादिशब्दात्मकतामुपैति॥१०॥

यष्टा क्रतुर्यान्यपि साधनानि, ऋत्विक्प्रदेशं (यं) फलदेशकालाः।
त्वमेव शम्भो परमार्थतत्त्वं, वदन्ति यज्ञाङ्गमयं वपुस्ते॥११॥

आपने ही धर्म की व्यवस्थापनार्थ ऋक्, यजुः, साम तथा अन्य अनेक वेदशाखा, विविध लौकिक गाथा, स्मृति-पुराण आदि अनेक शास्त्र विभाग किया है। आपने ही इन-इन शब्द स्वरूपता को ग्रहण किया है। हे शंभुदेव! यज्ञकर्त्ता, यज्ञ, नाना साधन, ऋत्विक्, यज्ञीय प्रदेश, यज्ञफल, यज्ञीय देश-काल आप ही हैं। आपका ही यज्ञादिमय शरीर परमार्थतत्वरूपेण प्रख्यात है।।१०-११।।

कर्ता प्रदाता प्रतिभूः प्रदानं, सर्वज्ञसाक्षी पुरुषः परश्च।
प्रत्यात्मभूतः परमार्थरूपस्त्वमेव सर्वं किमु वाग्विलासैः॥१२॥
न वेदशास्त्रैर्गुरुभिः प्रदिष्टो , न नासि बुद्ध्यादिभिरप्रधृष्यः।
अजोऽप्रमेयः शिवशब्दवाच्यस्त्वमस्ति (मेव) सत्यं भगवन्नमस्ते॥१३॥

आप ही जगत्कर्त्ता, प्रतिभू, प्रदाता, प्रदान, सर्वज्ञ, सर्वसाक्षी, परम पुरुष प्रत्यगात्मा, परमात्म स्वरूपी हैं। किम्बहुना, सब कुछ आप ही हैं। आप वेद शास्त्र, गुरु के उपदेश, बुद्धि आदि किसी के द्वारा भी गोचर नहीं हो सकते। आप अज, अप्रमेय, शिव तथा सत्य हैं। हे प्रभो! आपको प्रणाम है!।।१२-१३।।

आत्मैकतां स्वप्रकृतिं कदाचिदैक्षच्छिवः सम्पदियं ममेति।
पृथक्तदैवाभवदप्रतर्क्याचिन्त्यप्रभावो बहुविश्वमूर्तिः॥१४॥
भावेऽभिवृद्धा च भवे भवे च, स्वकारणं कारणमास्थिता च।
नित्या शिवा सर्वसुलक्षणा वा, विलक्षणा विश्वकरस्य शक्तिः॥१५॥

जब प्रकृति की अप्रकटीभूता स्थिति में आप प्रकृति को अपनी सम्पदा तथा भोग्य मान कर आप देखते हैं, तब प्रकृति आपसे विभिन्न हो जाती है। अलग हो जाती है। उस स्थिति में आपसे पृथक्रूपेण भासित होती है। आप तो तर्क से परे, अचिन्त्य प्रभाव वाले हैं। उस समय आप ही विश्व के नाना रूपों में मूर्त्त हो जाते हैं। यह प्रकृति शक्ति संसार का कारण होकर भी स्वयं अपनी कारणरूपा है। वह सर्वदा सुलक्षणा भी है। यह विलक्षणा शिवा ही विश्वविधाता की शक्ति है।।१४-१५।।

उत्पादनं संस्थितिरन्नवृद्धिर्नयाःसतां यत्र सनातनास्ते।
एकैव मूर्त्तिर्न समस्ति किञ्चिदसाध्यमस्या दयिता हरस्य॥१६॥
यदर्थमन्नानि धनानि जीवा, यच्छन्ति कुर्वन्ति तपांसि धर्मान्।
साऽपीयमम्बा जगतो जनित्री, प्रिया तु सोमस्य महासुकीर्तिः॥१७॥
यदीक्षितं काङ्क्षति वासवोऽपि, यन्नामतो मङ्गलमाप्नुयाच्च।
या व्याप्य विश्वं विमलीकरोति, सोमा सदा सोमसमानरूपा॥१८॥

जिससे अनादिकाल से अनवरत उद्भव-स्थिति-वृद्धि एवं लय होता रहता है। वह आपकी ही अभिन्न मूर्ति है। आपकी इस मूर्त्ति के लिये कुछ भी असाध्य नहीं है। आप हर हैं। ये आपकी ही पत्नी हैं। जिनकी

प्रसन्नता हेतु जीवगण अन्न तथा धनराशि का दान, धर्माचरण एवं तप करते रहते हैं, वे ही जगत् को जन्म देने वाली, महायशस्विनी, सोमप्रिया अम्बा हैं। देवेन्द्र भी जिनका कृपाकटाक्ष पाने हेतु कामना करते रहते हैं, जिनके नामोच्चारण मात्र से सभी का मंगल होता है, जो जगत् में व्याप्त होकर विराजमान हैं, वे चन्द्रकान्ति भगवती उमा सर्वदा विश्वमण्डल को विमल बनाती रहती हैं। वे सोमा (भगवती) सदा सोम स्वरूप (महेश्वर स्वरूप) ही हैं।।१६-१८।।

ब्रह्मादिजीवस्य चराचरस्य, बुद्ध्यक्षिचैतन्यमनःसुखानि।
यस्याः प्रसादात्फलवन्ति नित्यं, वागीश्वरी लोकगुरोः सुरम्या॥१९॥
चतुर्मुखस्यापि मनो मलीनं, किमन्यजन्तोरिति चिन्त्य माता।
गङ्गाऽवतारं विविधैरुपायैः, सर्वं जगत्पावयितुं चकार॥२०॥
श्रुतीः समालक्ष्य हरप्रभुत्वं, विश्वस्य लोकः सकलैः प्रमाणैः।
कृत्वा च धर्मान्बुभुजे च भोगान् विभूतिरेषा तु सदाशिवस्य॥२१॥

ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त समस्त प्राणीगण की बुद्धि, नेत्र, चैतन्य तथा मनःप्रवृत्ति जिनकी कृपा से सफल हो जाती है, जगद्गुरु की वही मूर्त्ति ही यथार्थ सुन्दरी तथा वागीश्वरी हैं। जगन्माता का चिन्तन एवंविध करे। अन्य प्राणीगण की तो बात ही क्या? माता ने ब्रह्मा के मन में मालिन्य को देख कर समस्त जगत् को पवित्र करने हेतु गंगा का अवतरण धरती पर कराया था। विश्व के निवासी सभी लोग समस्त श्रुतिवाक्य एवं शिव के प्रभुत्व की पर्यालोचना करके तथा विविध प्रमाणों के साथ धर्म का अनुष्ठान करके जिन नाना भोगों को पाते हैं, वह सदाशिव की ही विभूति के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है।।१९-२१।।

कार्यक्रियाकारकसाधनानां, वेदोदितानामथ लौकिकानाम्।
यत्साध्यमुत्कृष्टतमं प्रियं च, प्रोक्ता च सा सिद्धिरनादिकर्तुः॥२२॥
ध्यात्वा वरं ब्रह्म परं प्रधानं, यत्सारभूतं यदुपासितव्यम्।
यत्प्राप्य मुक्ता न पुनर्भवन्ति, सद्योगिनो मुक्तिरुमापतिः सः॥२३॥
यथा यथा शम्भुरमेयमायारूपाणि धत्ते जगतो हिताय।
तद्योगयोग्यानि तथैव धत्से, पतिव्रतात्वं त्वयि मातरेवम्॥२४॥

सभी वैदिक एवं लौकिक कार्य, क्रिया, कारक एवं कारणों से जो उत्कृष्टतर रूप से साध्य है, वह सब इन अनादिकर्त्ता प्रभु की ही सिद्धि से होता है। जो सारभूत एवं एकमात्र उपासितव्य हैं, उन परम ब्रह्मवस्तु का ध्यान करके तथा उनको प्राप्त करके योगी लोग मुक्त हो जाते हैं। उनको अब पुनः मृत्युलोक में जन्म नहीं लेना पड़ता। योगी लोगों की यह मुक्ति साक्षात् उमापति रूप है। भगवान् शंभु जगत् के हित हेतु जिन-जिन अमेय माया-रूप को धारण करते हैं, हे माता! आप भी वैसा रूप स्वयं भी धारण कर लेती हैं। आप में ही वास्तविक पातिव्रत धर्म स्थित रहता है।।२२-२४।।

ब्रह्मोवाच

इत्येवं स्तुवतस्तस्य पुरस्ताद्वृषभध्वजः। उमया सहितः श्रीमान्गणेशादिगणैर्वृतः॥२५॥

साक्षादागत्य तं शम्भुः प्रसन्नो वाक्यमब्रवीत्॥२६॥

ब्रह्मा कहते हैं—जब गौतम इस प्रकार का स्तव कर रहे थे, उसी समय गणेशादि के साथ उमापति वृषध्वज उनके समक्ष प्रकट होकर प्रसन्नता पूर्वक गौतम मुनि से कहने लगे।।२५-२६।।

शिव उवाच

किं ते गौतम दास्यामि भक्तिस्तोत्रव्रतैः शुभैः।
परितुष्टोऽस्मि याचस्व देवानामपि दुष्करम्॥२७॥

शिव कहते हैं—हे गौतम! मैं तुमको क्या प्रदान करूं? मैं तुम्हारी भक्ति, स्तव एवं उत्तम व्रताचरण से अत्यन्त प्रसन्न हूं। यदि तुम देवदुर्लभ वर भी मांगोगे, मैं तुमको वह देने के लिये प्रस्तुत हूं।।२७।।

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा जगन्मूर्तेर्वाक्यं वाक्यविशारदः। हर्षवाष्पपरीताङ्गो गौतमः पर्यचिन्तयत्॥२८॥
अहो दैवमहो धर्मो ह्यहो वै विप्रपूजनम्।
अहो लोकगतिश्चित्रा अहो धातर्नमोऽस्तु ते॥२९॥

ब्रह्मा कहते हैं—वाणीविशारद गौतम विश्वविधाता शिव का यह वाक्य सुन कर गद्‌गद् चित्त हो गये। उन्होंने विचार किया "अहो! दैव, धर्म, विप्रों की अर्चना ही श्रेष्ठ है। अहो! संसार की गति कैसी विचित्र है! हे विधाता प्रभु! आपको प्रणाम"!।।२८-२९।।

गौतम उवाच

जटास्थितां शुभां गङ्गां देहि मे त्रिदशार्चित।
यदि तुष्टोऽसि देवेश त्रयीधाम नमोऽस्तु ते॥३०॥

ऋषि गौतम कहते हैं—हे देवगण द्वारा पूजित! प्रभो! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तब आप अपनी जटा में स्थित गंगा को मुझे सौंप दीजिये। हे देवेश! त्रयीधाम! आपको मेरा प्रणाम!।।३०।।

ईश्वर उवाच

त्रयाणामुपकारार्थं लोकानां याचितं त्वया। आत्मनस्तूपकाराय तद्याचस्वाकुतोभयः॥३१॥

ईश्वर कहते हैं—इस त्रैलोक्य तथा अपने निजी उपकार के लिये तुमने गंगा हेतु प्रार्थना किया है। अतः तुम निःशंक होकर वांछित वर मांगो।।३१।।

गौतम उवाच

स्तोत्रेणानेन ये भक्तास्त्वां च देवीं स्तुवन्ति वै।
सर्वकामसमृद्धाः स्युरेतद्धि वरयाम्यहम्॥३२॥

गौतम मुनि कहते हैं—मेरी दूसरी प्रार्थना यह है कि मेरे इस स्तव द्वारा जो भक्त आपकी अथवा भगवती की स्तुति करें, उनका सभी कार्य सुसमृद्ध रूप से सम्पन्न हो जाये।।३२।।

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति देवेशः परितुष्टोऽब्रवीद्वचः। अन्यानपि वरान्मत्तो याचस्व विगतज्वरः॥३३॥
एवमुक्तस्तु हर्षेण गौतमः प्राह शङ्करम्॥३४॥

ब्रह्मा कहते हैं—देवाधिदेव ने तब प्रसन्न होकर "ऐसा ही हो" कहा। तत्पश्चात् उन्होंने पुनः कहा—तुम विगतश्रम होकर अब अन्य वर मांगो।।३३-३४।।

गौतम उवाच

इमां देवी जटासंस्थां पावनीं लोकपावनीम्।
तव प्रियां जगन्नाथ उत्सृज ब्रह्मणो गिरौ॥३५॥
सर्वासां तीर्थभूता तु यावद्गच्छति सागरम्।
ब्रह्महत्यादिपापानि मनोवाक्कायिकानि च॥३६॥
स्नानमात्रेण सर्वाणि विलयं यान्तु शङ्कर। चन्द्रसूर्योपरागे च अयने विषुवे तथा॥३७॥
सङ्क्रान्तौ वैधृतौ पुण्यतीर्थेष्वन्येषु यत्फलम्।
अस्यास्तु स्मरणादेव तत्पुण्यं जायतां हर॥३८॥
श्लाघ्यं कृते तपः प्रोक्तं त्रेतायां यज्ञकर्म च। द्वापरे यज्ञदाने च दानमेव कलौ युगे॥३९॥
युगधर्माश्च ये सर्वे देशधर्मास्तथैव च। देशकालादिसंयोगे यो धर्मो यत्र शस्यते॥४०॥
यदन्यत्र कृतं पुण्यं स्नानदानादिसंयमैः। अस्यास्तु स्मरणादेव तत्पुण्यं जायतां हर॥४१॥

गौतम कहते हैं—हे जगन्नाथ! आप अपनी जटा में स्थित लोकपावनी अपनी प्रेयसी गंगा को ब्रह्मगिरि पर छोड़िये। ये सभी नदियों में तीर्थरूपा होकर सागर तक जायें। इनके जल में स्नान मात्र से मानसिक, वाचिक, कायिक तथा ब्रह्महत्यादि जो कुछ पाप है, वह सब विलीन हो जाये। हे शंकर! चन्द्र-सूर्य ग्रहण, अयन, विषुव तथा वैधृति आदि योग में अन्य तीर्थों में स्नान करने से जो फल लाभ होता है, इन गंगा के स्मरण मात्र से वही फल प्राप्त हो। हे शिव! सत्ययुग में तप, त्रेता में यज्ञ, द्वापर में यज्ञ तथा दान और कलियुग में एकमात्र दानकार्य ही श्रेष्ठ है। ये सभी युगधर्म, समस्त देशधर्म तथा देश-काल के योग से जो धर्म जहां प्रशस्त कहा गया है तथा अन्य तीर्थों में स्नान, दान एवं संयमादि से जो फल मिलता है, इन गंगा के स्मरण मात्र से वही पुण्य उत्पन्न हो जाये।।३५-४१।।

यत्र यत्र त्वियं याति यावत्सागरगामिनी। तत्र तत्र त्वया भाव्यमेष चास्तु वरो वरः॥४२॥
योजनानां तूपरि तु दश यावच्च संख्यया। तदन्तरप्रविष्टानां महापातकिनामपि॥४३॥
तत्पितॄणां च तेषां च स्नानायाऽऽगच्छतां शिव।
स्नाने चाप्यन्तरे मृत्योर्मुक्तिभाजो भवन्तु वै॥४४॥
एकतः सर्वतीर्थानि स्वर्गमर्त्यरसातले। एष तेभ्यो विशिष्टं तु अलं शम्भो नमोऽस्तु ते॥४५॥

हे हर! यह सागरगामिनी सुरतरंगिणी जहां-जहां प्रवाहित हो, वहां-वहां आपकी स्थिति प्रार्थित है। यही

मेरा अभीष्ट वर है। इस देवनदी के तट से दस योजन तक के भूभाग में जो निवास करें, महापातकी होने पर भी उनके तथा उनके पितृगणों की मुक्ति होगी और स्नान के उद्देश्य से गमनोद्यत व्यक्ति की यदि यात्रा काल में स्नान पूर्व मृत्यु हो जाये, तब भी वे मुक्ति के अधिकारी रहें। हे शिव! स्वर्ग, मृत्युलोक तथा रसातल के सभी तीर्थों में से विशिष्ट तीर्थ एक ओर हो तथा दूसरी ओर यह देवनदी अकेली हो, तब अकेले इस देवनदी में स्नान का फल उनके ही बराबर हो। यही मेरी प्रार्थना है। हे शंभु! मुझे इससे अधिक कुछ नहीं कहना है। आपको मेरा प्रणाम!।।४२-४५।।

ब्रह्मोवाच

तद्गौतमवचः श्रुत्वा तथाऽस्त्वित्यब्रवीच्छिवः।
अस्याः परतरं तीर्थं न भूतं न भविष्यति॥४६॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं वेदे च परिनिष्ठितम्।
सर्वेषां गौतमी पुण्या इत्युक्त्वाऽन्तरधीयत॥४७॥
ततो गते भगवति लोकपूजिते, तदाज्ञया पूर्णबलः स गौतमः।
जटां समादाय सरिद्वरां तां, सुरैर्वृतो ब्रह्मगिरिं विवेश॥४८॥

ब्रह्मा कहते हैं—भगवान् शिव ने गौतम का निवेदन सुनकर "तथास्तु" कहा। भगवान् ने कहा—"इसकी अपेक्षा प्रधान तीर्थ न तो है, न होगा। मैं तीन बार यह कहता हूं कि सभी नदियों की तुलना में यह गौतमी नदी पुण्यप्रदा है।" यह कह कर शंकर अन्तर्हित् हो गये। लोकपूज्य भगवान् जब अन्तर्हित् हो गये, तब पूर्णकाम गौतम मुनि देवगण के साथ शिव की जटा एवं उसमें स्थित श्रेष्ठ गंगा नदी को लेकर ब्रह्मगिरि पहुंचे।।४६-४८।।

ततस्तु गौतमे प्राप्ते जटामादाय नारद। पुष्पवृष्टिरभूत्तत्र समाजग्मुः सुरेश्वराः॥४९॥
ऋषयश्च महाभागा ब्राह्मणाः क्षत्रियास्तथा।
जयशब्देन तं विप्रं पूजयन्तो मुदान्विताः॥५०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे तीर्थमाहात्म्ये गौतम्यानयनं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः।।७५।।

गौतमीमाहात्म्ये षष्ठोऽध्यायः।।६।।



हे नारद! जब गौतम ऋषि जटा एवं जटास्थित गंगा को लेकर अपने आश्रम पहुंचे, तब आकाश से पुष्प वर्षा होने लगी। सभी देवगण भी वहां पहुंच गये थे। वहां अनेक ऋषिगण, भाग्यवान् विप्रगण तथा क्षत्रिय भी आ गये थे। सभी आनन्दित होकर गौतम का सत्कार-पूजन करने के अनन्तर उनका जयजयकार करने लगे।।४९-५०।।

।।पञ्चसप्ततितम अध्याय समाप्त।।



अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः

गंगा का पंचदश रूपों में विभक्त होकर स्वर्गादि लोक जाना, गोदावरी स्नान विधि वर्णन

नारद उवाच

महेश्वरजटाजूटाद्गङ्गामादाय गौतमः। आगत्य ब्रह्मणः पुण्ये ततः किमकरोद्गिरौ॥१॥

देवर्षि नारद कहते हैं—ऋषि गौतम ने महेश्वर के जटाजूट से गंगा को ब्रह्मगिरि ले आने पर क्या कार्य किया?।।१।।

ब्रह्मोवाच

आदाय गौतमो गङ्गां शुचिः प्रयतमानसः। पूजितो देवगन्धर्वैस्तथा गिरिनिवासिभिः॥२॥
गिरेर्मूर्ध्नि जटां स्थाप्य स्मरन्देवं त्रिलोचनम्। उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा गङ्गां स द्विजसत्तमः॥३॥

ब्रह्मा कहते हैं—गौतम पवित्र होकर संयम के साथ गंगा को जब ले आये, उस समय वहां देवता, गंधर्व, पर्वत निवासी लोगों द्वारा वे पूजित हो गये। गौतम मुनि ने वह हर जटा ब्रह्मगिरि के शिखर पर स्थापित कर दिया। तदनन्तर उन्होंने देवदेव त्रिलोचन का स्मरण करके हाथ जोड़ कर गंगा से कहा—।।२-३।।

गौतम उवाच

त्रिलोचनजटोद्भूते सर्वकामप्रदायिनि। क्षमस्व मातः शान्ताऽसि सुखं याहि हितं कुरु॥४॥

ऋषि गौतम कहते हैं—हे हर की जटा से उत्पन्न! सर्वकामप्रदा माता! आप क्षमा करिये। शान्त हो जायें। सुख से प्रवाहित हों। सभी का हित साधन करें।।४।।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा गौतमेन गङ्गा प्रोवाच गौतमम्। दिव्यरूपधरा देवी दिव्यस्त्रगनुलेपना॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—गंगा ने गौतम द्वारा इस प्रकार अनुरोध किये जाने पर दिव्य रूप धारण किया। वे दिव्य आभूषणों तथा अनुलेपनों से विभूषित थीं। उन्होंने ऋषि गौतम से कहा—।।५।।

गङ्गोवाच

गच्छेयं देवसदनमथवाऽपि कमण्डलुम्। रसातलं वा गच्छेयं जातस्त्वं सत्यवागसि॥६॥

गंगा कहती हैं—हे वत्स! तुम सत्यवक्ता हो। मैं इस समय देवलोक में, रसातल में किंवा ब्रह्मा के कमण्डलु में से कहां जाऊं?।।६।।

गौतम उवाच

त्रयाणामुपकारार्थं लोकानां याचिता मया।
शम्भुना च तथा दत्ता देवि तन्नान्यथा भवेत्॥७॥

ऋषि गौतम कहते हैं—मैंने त्रैलोक्य के उपकारार्थ आपको त्रिलोचन से मांगा था। हे देवी! शंभु ने आपको मुझे प्रदान किया था। अतएव मेरे द्वारा प्रार्थित विषय अन्यथा न हो।।७।।

ब्रह्मोवाच

तद्गौतमवचः श्रुत्वा गङ्गा मेने द्विजेरितम्। त्रेधाऽऽत्मानं विभज्याथ स्वर्गमर्त्यरसातले॥८॥
स्वर्गे चतुर्धा व्यगमत्सप्तधा मर्त्यमण्डले। रसातले चतुर्धैव सैवं पञ्चदशाकृतिः॥९॥
सर्वत्र सर्वभूतैव सर्वपापविनाशिनी। सर्वकामप्रदा नित्यं सैव वेदे प्रगीयते॥१०॥

ब्रह्मा कहते हैं—गंगा देवी ने गौतम ऋषि की बातों को सुनकर विचार किया तथा उन्होंने स्वयं को भागत्रय में विभक्त कर दिया। वे एक भाग से स्वर्ग, एक भाग से मृत्युलोक तथा एक भाग से रसातल में चली गयीं। उनकी त्रैलोक्यगामिनी धारा स्वर्ग में चतुर्द्धा, मर्त्यलोक में सप्तधा तथा रसातल में चतुर्द्धा विभक्त हो गयी। इस प्रकार गंगा सब मिला कर पन्द्रह धाराओं में विभक्त हो गयीं। गंगा सर्वत्र सर्वभूत स्वरूपिणी, सर्वपाप-प्रशमनी तथा नित्य निखिल कामप्रदा रूप से वेदों में कही गयी हैं।।८-१०।।

मर्त्यामर्त्यगतामेव पश्यन्ति न तलं गताम्। नैव स्वर्गगतां मर्त्याः पश्यन्त्यज्ञानबुद्धयः॥११॥
यावत्सागरगा देवी तावद्देवमयी स्मृता। उत्सृष्टा गौतमेनैव प्रायात्पूर्वार्णवं प्रति॥१२॥
ततो देवर्षिभिर्जुष्टां मातरं जगतः शुभाम्। गौतमो मुनिशार्दूलः प्रदक्षिणमथाकरोत्॥१३॥
त्रिलोचनं सुरेशानं प्रथमं पूज्य गौतमः। उभयोस्तीरयोः स्नानं करोमीति दधे मतिम्॥१४॥
स्मृतमात्रस्तदा तत्राऽऽविरासीत्करुणार्णवः।
तत्र स्नानं कथं सिध्येदित्येवं शर्वमब्रवीत्॥१५॥
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा भक्तिनम्रस्त्रिलोचनम्॥१६॥

मृत्युलोक के लोग गंगा की रसातलगत मूर्त्ति का दर्शन नहीं कर पाते। इस प्रकार ज्ञानबुद्धि विहीन मर्त्यलोक निवासी स्वर्गस्थ गंगा की मूर्त्ति नहीं देख पाते। वे केवल गंगा के मर्त्यलोक में प्रवाहित रूप का ही दर्शन कर पाते हैं। गौतम द्वारा लाई गई सागरगामिनी गंगा देवी देवमयी रूप से विख्यात हो गयी। वे पूर्व सागर की ओर प्रयाण कर गयीं। इसके पश्चात् मुनिशार्दूल गौतम ने देवर्षियों द्वारा सेवित पावनी जगन्माता गंगा की प्रदक्षिणा किया। तदनन्तर वे विचार करने कि "मैं सुरेश्वर त्रिलोचन की अर्चना करके दोनों तट पर स्नान करूंगा।" गौतम ऋषि द्वारा स्मरण करते ही उसी मुहूर्त्त में करुणा सागर शंकर वहां आविर्भूत हो गये। तब गौतम ने उनसे पूछना चाहा कि किस प्रकार के स्नान से सिद्धि मिलेगी? यह निश्चित करके उन्होंने हाथ जोड़ कर भक्ति से नम्र वचनों द्वारा त्रिलोचन देव से पूछा।।११-१६।।

गौतम उवाच

देवदेव महेशान तीर्थस्नानविधिं मम। ब्रूहि सम्यङ्महेशान लोकानां हितकाम्यया॥१७॥

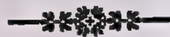
ऋषि गौतम कहते हैं—हे देवाधिदेव महेश! जगत् के हित के लिये आप सम्यक्रूपेण तीर्थ स्नानविधि कहिये।।१७।।

शिव उवाच

महर्षे शृणु सर्वं च विधिं गोदावरीभवम्।
पूर्वं नान्दीमुखं कृत्वा देहशुद्धिं विधाय च॥१८॥
ब्राह्मणान्भोजयित्वा च तेषामाज्ञां प्रगृह्य च।
ब्रह्मचर्येण गच्छन्ति पतितालापवर्जिताः॥१९॥
यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च च तीर्थफलमश्नुते॥२०॥
भावदुष्टिं परित्यज्य स्वधर्मपरिनिष्ठितः।
श्रान्तसंवाहनं कुर्वन्दद्यादन्नं यथोचितम्॥२१॥
अकिञ्चनेभ्यः साधुभ्यो दद्याद्वस्त्राणि कम्बलान्।
शृण्वन्हरिकथां दिव्यां तथा गङ्गासमुद्भवाम्।
अनेन विधिना गच्छन्सम्यक्तीर्थफलं लभेत्॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये षट्सप्ततितमोऽध्यायः॥७६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तमोऽध्यायः॥७॥



भगवान् त्रिलोचन कहते हैं—हे महर्षि! तुम अब इस गोदावरी नदी में स्नान सम्बन्धित समस्त विवरण श्रवण करो। प्रथमतः नान्दीमुख श्राद्ध सम्पन्न करने के अनन्तर देहशुद्धि कर लो। इसके पश्चात् तुम ब्राह्मणों को भोजन कराने के अनन्तर उनके आदेश के अनुसार ब्रह्मचर्य धारण करना। पतितों के साथ वार्तालाप न करके यात्रा करना। तीर्थ का फल उसे ही प्राप्त होता है, जिसका दोनों हाथ, दोनों पैर तथा मन सुसंयत रहता है। विद्यावान्, तपस्वी, कीर्त्तिमान ही तीर्थफल लाभ करते हैं। स्वधर्म में एकनिष्ठ होकर, दुष्ट विचारों से दूर रहकर तीर्थसेवी मनुष्य अकिंचन लोगों, साधुगण को अन्न, वस्त्र, कम्बल दान करे और गंगा की उत्पत्ति से सम्बन्धित दिव्य हरिकथा का श्रवण करे। इस प्रकार से विधिवत् जो मनुष्य तीर्थ जाता है, उसे विशेष तीर्थफल लाभ होता है।।१८-२२।।

।।षट्सप्ततितम अध्याय समाप्त।।



अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

गौतमीतीर्थ महत्त्व वर्णन

ब्रह्मोवाच

त्र्यम्बकश्च इति प्राह गौतमं मुनिभिर्वृतम्॥१॥

ब्रह्मा कहते हैं—भगवान् त्र्यम्बक ने मुनियों से घिरे गौतम से कहा—॥१॥

शिव उवाच

द्विहस्तमात्रे तीर्थानि सम्भविष्यन्ति गौतम। सर्वत्राहं सन्निहितः सर्वकामप्रदस्तथा॥२॥

त्र्यम्बक देव कहते हैं—हे गौतम! गंगा के पास दो हाथ तक के स्थान पर तीर्थ स्थित है। मैं सबका मनोरथ पूरा करते हुये वहां सर्वत्र सन्निहित रहता हूं॥२॥

ब्रह्मोवाच

गङ्गाद्वारे प्रयागे च तथा सागरसङ्गमे। एतेषु पुण्यदा पुंसां मुक्तिदा सा भगीरथी॥३॥
नर्मदा तु सरिच्छ्रेष्ठा पर्वतेऽमरकण्टके। यमुना सङ्गता तत्र प्रभासे तु सरस्वती॥४॥
कृष्णा भीमरथी चैव तुङ्गभद्रा तु नारद। तिसृणां सङ्गमो यत्र तत्तीर्थं मुक्तिदं नृणाम्॥५॥

पयोष्णी सङ्गता यत्र तत्रत्या तच्च मुक्तिदम्।
इयं तु गौतमी वत्स यत्र क्वापि ममाऽऽज्ञया॥६॥
सर्वेषां सर्वदा नृणां स्नानान्मुक्तिं प्रदास्यति।
किञ्चित्काले पुण्यतमं किञ्चित्तीर्थं सुरागमे॥७॥

सर्वेषां सर्वदा तीर्थं गौतमी नात्र संशयः। तिस्रः कोट्योर्धकोटी च योजनानां शतद्वये॥८॥
तीर्थानि मुनिशार्दूल सम्भविष्यन्ति गौतम। इयं माहेश्वरी गङ्गा गौतमी वैष्णवीति च॥९॥
ब्राह्मी गोदावरी नन्दा सुनन्दा कामदायिनी। ब्रह्मतेजः समानीता सर्वपापप्रणाशिनी॥१०॥

ब्रह्मा कहते हैं—गंगाद्वार, प्रयाग, सागर-संगम इन स्थानत्रय में भागीरथी मनुष्यों के लिये पुण्यप्रदा तथा मुक्तिप्रदा रहती हैं। अमरकंटक पर्वत पर नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा बहती हैं। यमुना उसमें मिलती है। प्रभास तीर्थ में सरस्वती बहती है। हे नारद! कृष्णा, भीमरथी तथा तुंगभद्रा नदियों का संगम स्थल मनुष्यों को मुक्ति देने वाला है। पयोष्णी का जहां संगम है, वह भी मुक्तिप्रद स्थल है। हे वत्स! मेरे आदेशानुसार यह गौतमी नदी जहां-जहां प्रवहमान है, वहां-वहां तो स्नान मात्र से सभी कामनाओं का फल तथा मुक्तिफल प्राप्त होता है। कोई-कोई तीर्थ किसी विशेष काल में तथा कोई तीर्थ देवसमागम होने पर पुण्यतम होता है, तथापि यह गौतमी नदी सभी काल में सबके लिये पुण्यतम है। यह निःसन्दिग्ध है। हे गौतम! तीन कोटि पचास लक्ष तीर्थ यहां दो सौ योजन में विराजमान हैं। यह माहेश्वरी गौतमीगंगा ही गौतमी, वैष्णवी, ब्राह्मी, गोदावरी, नन्दा,

सुनन्दा, कामप्रदा नाम से प्रख्यात है। यह ब्रह्मतेज से लायी गयी है। अतः यह कामफलप्रदा एवं सर्वपापनाशिनी है।।३-१०।।

स्मरणादेव पापौघहन्त्री मम सदा प्रिया। पञ्चानामपि भूतानामापः श्रेष्ठत्वमागताः॥११॥

तत्रापि तीर्थभूतास्तु तस्मादापः पराः स्मृताः।
तासां भागीरथी श्रेष्ठा ताभ्योऽपि गौतमी तथा॥१२॥
आनीता सजटा गङ्गा अस्या नान्यच्छुभावहम्।
स्वर्गे भुवि तले वाऽपि तीर्थं सर्वार्थदं मुने॥१३॥

यह सर्वदा मुझे प्रिय नदी है। यह स्मरण मात्र से ही पापनाशिनी है। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश नामक पंचमहाभूतों में से जल ही श्रेष्ठ है। इस पर से वह यदि तीर्थयुक्त हो, तब कहना ही क्या? तभी जल को सबसे श्रेष्ठ कहा गया है। इस जल में से भी भागीरथी सर्वश्रेष्ठा है। इस भागीरथी की अपेक्षा गौतमी तो परम श्रेष्ठा है। हे मुनिप्रवर! यह गंगा हर की जटा के साथ लाई गई। इसलिये इससे बढ़ कर कोई अन्य शुभ तीर्थ है ही नहीं। जबकि स्वर्ग, पृथिवी तथा पातालस्थ सभी तीर्थ मनोहरपूरक भले ही हैं, लेकिन कोई भी तीर्थ इसके समान नहीं है।।११-१३।।

ब्रह्मोवाच

इत्येतत्कथितं पुत्र गौतमाय महात्मने। साक्षाद्धरेण तुष्टेन मया तव निवेदितम्॥१४॥

एवं सा गौतमी गङ्गा सर्वेभ्योऽप्यधिका मता।
तत्स्वरूपं च कथितं कुतोऽन्या श्रवणस्पृहा॥१५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सप्तसप्ततितमोऽध्यायः।।७७।।

गौतमीमाहात्म्येऽष्टमोऽध्यायः।।८।।



ब्रह्मा कहते हैं—हे पुत्र! साक्षात् महेश्वर ने यह सब वर्णन गौतम से किया था। वही प्रसंग मैंने प्रसन्न होकर तुमसे कह दिया। इस प्रकार यह गौतमीगंगा सर्वापेक्षा प्रधान मानी गयीं। मैंने इसका स्वरूप तुमसे कहा है। अब क्या और सुनना चाहते हो?।।१४-१५।।

।।सप्तसप्ततितम अध्याय समाप्त।।



अथाष्टसप्ततितमोऽध्यायः

सगर वंश का वृत्तान्त, गंगा को लेकर भगीरथ का पाताल गमन

नारद उवाच

द्विविधा सैव गदिता एकाऽपि सुरसत्तम। एको भेदस्तु कथितो ब्राह्मणेनाऽऽहृतो यतः॥१॥
क्षत्रियेणापरोऽप्यंशो जटास्वेव व्यवस्थितः। भवस्य देवदेवस्य आहृतस्तद्वदस्व मे॥२॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे सुरसत्तम! गंगा एक होकर भी द्विधा विभक्त हो गयीं, यह आपने कहा तथा आपने यह भी उल्लेख किया कि इसका एक भाग ब्राह्मण गौतम द्वारा धरती पर लाया गया। तथापि शंकर की जटा में स्थित गंगा का एक भाग धरती पर क्षत्रिय द्वारा लाया गया था, यह वर्णन करिये।।१-२।।

ब्रह्मोवाच

वैवस्वतान्वये जात इक्ष्वाकुकुलसम्भवः। पुरा वै सगरो नाम राजाऽऽसीदतिधार्मिकः॥३॥
यज्वा दानपरो नित्यं धर्माचारविचारवान्।
तस्य भार्याद्वयं चाऽऽसीत्पतिभक्तिपरायणम्॥४॥
तस्य वै संततिर्नाभूदिति चिन्तापरोऽभवत्। वसिष्ठं गृहमाहूय सम्पूज्य विधिवत्ततः॥५॥
उवाच वचनं राजा सन्ततेः कारणं प्रति।
इति तद्वचनं श्रुत्वा ध्यात्वा राजानमब्रवीत्॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—पूर्वकाल में वैवस्वत मन्वन्तर के समय उसी वंश के इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न सगर नामक अतीव धर्मात्मा राजा थे। वे सदा यज्ञ करने वाले, दानी और धर्मसंगत आचार-विचार वाले थे। उनकी दो पातिव्रत धर्म तत्पर पत्नियां थीं। राजा सगर को कोई सन्तान नहीं होने के कारण वे सदा चिन्तित रहते थे। एक बार राजा ने अपने यहां महर्षि वसिष्ठ को बुलाया तथा उनकी यथोचित पूजा तथा सम्मान करने के उपरान्त उनसे अपने यहां सन्तान न होने का कारण जानना चाहा। वसिष्ठ मुनि ने राजा का प्रश्न सुनकर कुछ समय ध्यान करने के अनन्तर कहा—।।३-६।।

वसिष्ठ उवाच

सपत्नीकः सदा राजन्नृषिपूजापरो भव॥७॥

ऋषि वसिष्ठ कहते हैं—हे राजन्! तुम सपत्नीक सर्वदा ऋषियों की पूजा करो।।७।।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा स मुनिर्विप्र यथास्थानं जगाम ह। एकदा तस्य राजर्षेर्गृहमागात्तपोनिधिः॥८॥
तस्यर्षेः पूजनं चक्रे स संतुष्टोऽब्रवीद्वचः। वरं ब्रूहि महाभागेत्युक्ते पुत्रान्स चावृणोत्॥९॥

स मुनिः प्राह राजानमेकस्यां वंशधारकः।
पुत्रो भूयात्तथाऽन्यस्यां षष्टिसाहस्त्रकं सुताः॥१०॥
वरं दत्त्वा मुनौ याते पुत्रा जाताः सहस्त्रशः। स यज्ञान्सुबहूंश्चक्रे हयमेधान्सुदक्षिणान्॥११॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे विप्र नारद! वसिष्ठ मुनि यह कह कर अपने आश्रम वापस चले गये। एक बार राजर्षि सगर के घर में एक तपस्वी आये। राजा ने उनकी सविधि पूजा किया। तब वे तपस्वी प्रसन्न होकर कहने लगे—"हे महाभाग! वर मांगो।" राजा ने तपस्वी से पुत्र हेतु प्रार्थना किया। यह सुनकर तपस्वी ने कहा—"तुम्हारी एक पत्नी के गर्भ से एक वंशधर पुत्र उत्पन्न होगा तथा दूसरी पत्नी के गर्भ से साठ हजार पुत्र जन्म लेंगे।" मुनि ने यह वर राजा को दिया तथा वहां से स्वस्थान चले गये। मुनि द्वारा प्रदत्त वर के अनुसार राजा के यहां उनकी पत्नी के गर्भ से हजारों-हजार पुत्र जन्मे। राजा ने अनेक अश्वमेध यज्ञानुष्ठान करके ब्राह्मणों को उन यज्ञों में प्रचुर दक्षिणा प्रदान किया था।।८-११।।

एकस्मिन्हयमेधे वै दीक्षितो विधिवन्नृपः। पुत्रान्व्ययोजयद्राजा ससैन्यान्हयरक्षणे॥१२॥
क्वचिदन्तरमासाद्य हयं जह्रे शतक्रतुः। मार्गमाणाश्च ते पुत्रा नैवापश्यन्हयं तदा॥१३॥
सहस्त्राणां तथा षष्टिर्नानायुद्धविशारदाः। तेषु पश्यत्सु रक्षांसि पुत्रेषु सगरस्य हि॥१४॥
प्रोक्षितं तद्धयं नीत्वा ते रसातलमागमन्।
राक्षसान्मायया युक्तान्नैवापश्यन्त सागराः॥१५॥

तत्पश्चात् एक यज्ञ हेतु राजा ने दीक्षा लेकर यज्ञ के अश्व के रक्षणार्थ अपने पुत्रों तथा अपने सैन्य को अश्व रक्षा के लिये नियुक्त किया। तथापि शतक्रतु इन्द्र ने मार्ग के किसी स्थान से उस यज्ञीय अश्व का हरण कर लिया। राजा सगर के वे पुत्र यज्ञीय अश्व को खोजने लगे। तथापि उस अश्व का कहीं भी सन्धान उन्हें नहीं मिल सका। वे महान् युद्धविद्याविशारद सगरपुत्र ६०००० थे। जब सगर पुत्रगण अश्व को खोज रहे थे, तभी कुछ राक्षस उस यज्ञ अश्व को रसातल में ले गये। वे सगरपुत्र उन माया निष्णात राक्षसों को नहीं देख सके।।१२-१५।।

न दृष्ट्वा ते हयं पुत्राः सगरस्य बलीयसः। इतश्चेतश्चरन्तस्ते नैवापश्यन्हयं तदा॥१६॥
देवलोकं तदा जग्मुः पर्वतांश्च सरांसि च।
वनानि च विचिन्वन्तो नैवापश्यन्हयं तदा॥१७॥
कृतस्वस्त्ययनो राजा ऋत्विग्भिः कृतमङ्गलः।
अदृष्ट्वा तु पशुं रम्यं राजा चिन्तामुपेयिवान्॥१८॥
अटन्तः सागराः सर्वे देवलोकमुपागमन्। हयं तमनुचिन्वन्तस्तत्रापि न हयोऽभवत्॥१९॥
ततो महीं समाजग्मुः पर्वतांश्च वनानि च। तत्रापि च हयं नैव दृष्टवन्तो नृपात्मजाः॥२०॥

राजा सगर के ये महाबली पुत्रगण यज्ञीय अश्व को प्रयत्नतः खोज रहे थे, तथापि उनको अश्व का संधान कहीं नहीं मिल सका। तब वे सगरपुत्र देवलोक अश्व खोजते हुये पहुंचे। क्रमशः सगरपुत्रगण पर्वत, सरोवर, वनों में अश्व को खोजते हुये विचरण कर रहे थे, तथापि उस अश्व का कहीं भी पता नहीं चल सका।

इधर राजा सगर ऋत्विकों द्वारा मंगल क्रिया एवं स्वस्त्ययन सम्पन्न किये जाने पर भी यज्ञीय अश्व को वापस आया न देख कर अत्यन्त चिन्तातुर हो गये। जब सगरपुत्रों को वह अश्व देवलोक में भी नहीं मिला, तब वे सभी पृथिवी पर आकर यहां के सभी पर्वतों तथा वनों में उस अश्व को खोजने लगे, लेकिन अनेक प्रयत्न के पश्चात् भी वह यज्ञीय अश्व उन्हें कहीं भी नहीं मिल सका!।।१६-२०।।

एतस्मिन्नन्तरे यत्र दैवी वागभवत्तदा। रसातले हयो बद्ध आस्ते नान्यत्र सागराः॥२१॥

इति श्रुत्वा ततो वाक्यं गन्तुकामा रसातलम्।
अखनन्पृथिवीं सर्वां परितः सागरास्ततः॥२२॥
ते क्षुधार्ता मृदं शुष्कां भक्षयन्तस्त्वहर्निशम्।
न्यखनंश्चापि जग्मुश्च सत्वरास्ते रसातलम्॥२३॥
तानागतान्भूपसुतान्सागरान्बलिनः कृतीन्।
श्रुत्वा रक्षांसि संत्रस्ता व्यगमन्कपिलान्तिकम्॥२४॥

कपिलोऽपि महाप्राज्ञस्तत्र शेते रसातले। पुरा च साधितं तेन देवानां कार्यमुत्तमम्॥२५॥

विनिद्रेण ततः श्रान्तः सिद्धे कार्ये सुरान्प्रति।
अब्रवीत्कपिलः श्रीमान्निद्रास्थानं प्रयच्छथ (त)॥२६॥
रसातलं ददुस्तस्मै पुनराह सुरान्मुनिः।
यो मामुत्थापयेन्मन्दो भस्मी भूयाच्च सत्वरम्॥२७॥

इसी अवसर पर उन्होंने एक आकाशीय देव वाणी को सुना "हे सगरपुत्रगण! तुम्हारा यज्ञीय अश्व रसातल में बंधा है।" यह सुनकर वे सभी सगर पुत्रगण रसातल में प्रवेशार्थ भूमि खनन करने लगे। वे क्षुधार्त होकर मिट्टी खाते थे तथा रात-दिन भूमि खनन करते रसातल तक पहुंच गये। इन बली, कृतिमान् सगरपुत्रगण के आने का समाचार जान कर रसातल में छिपे राक्षस त्रस्त हो गये। तब वे महर्षि महाप्राज्ञ कपिल के पास आये, जो उस समय रसातल में निद्रित थे। पूर्वकाल में महर्षि कपिल ने देवगण का विशेष कार्य सम्पन्न किया था। उस कार्य को करने के पश्चात् श्रीमान् कपिल मुनि थक गये तथा उन्होंने देवगण से कहा कि "मुझे निद्रा हेतु स्थान प्रदान करो।" कपिल मुनि के यह कहने पर देवगण ने उनको शयन के लिये रसातल में स्थान दिया था। कपिल ने देवताओं से यह वर मांगा था कि "जो व्यक्ति मेरी निद्रा भंग करेगा, वह तत्काल भस्म हो जायेगा"।।२१-२७।।

ततः शये तलगतो नो चेन्न स्वप्न एव हि। तथेत्युक्तः सुरगणैस्तत्र शेते रसातले॥२८॥

तस्य प्रभावं ते ज्ञात्वा राक्षया मायया युताः।
सागराणां च सर्वेषां वधोपायं प्रचक्रिरे॥२९॥
विना युद्धेन ते भीता राक्षसाः सत्वरास्तदा।
आगत्य यत्र स मुनिः कपिलः कोपनो महान्॥३०॥

शिरोदेशे हयं ते वै बद्ध्वाऽथ त्वरयाऽन्विताः।
दूरे स्थित्वा मौनिनश्च प्रेक्षन्तः किं भवेदिति॥३१॥

तभी से कपिल मुनि रसातल में शयनरत थे। देवगण ने उनको शयन हेतु निर्विघ्न स्थिति का वर दे दिया था। मायावी राक्षसगण मुनि के इस वर प्रभाव को जानते थे। अतः उन्होंने ऐसी युक्ति किया, जिससे सगरपुत्रगण मर जायें। वे बिना सगर पुत्रों से युद्ध किये भयभीत स्थिति में शीघ्रता से क्रोधी स्वभाव वाले कपिल के पास आये तथा उनके सिरहाने उस अश्व को बांध दिया। वे दूर से छिप कर यह देखने लगे कि कौन घटना घटित होती है।।२८-३१।।

ततस्तु सागराः सर्वे निर्विशन्तो रसातलम्। ददृशुस्ते हयं बद्धं शयानं पुरुषं तथा॥३२॥
तं मेनिरे च हर्तारं क्रतुहन्तारमेव च। एनं हत्वा महापापं नयामोऽश्वं नृपान्तिकम्॥३३॥
केचिदूचुः पशुं बद्धं नयामोऽनेन किं फलम्।
तदाऽऽहुरपरे शूरा राजानः शासका वयम्॥३४॥
उत्थाप्यैनं महापापं हन्मः क्षात्रेण वर्चसा।
ते तं जघ्नुर्मुनिं पादैर्ब्रुवन्तो निष्ठुराणि च॥३५॥

तत्पश्चात् सगरपुत्रों ने रसातल में आकर देखा कि एक तपस्वी सोये हैं तथा उनके शिर की ओर अश्व बंधा है। सगरपुत्रों को यह प्रतीत हुआ कि यही निद्रित व्यक्ति ही अश्व हरने वाला तथा यज्ञ में विघ्न करने वाला है। इसलिये सगरपुत्रों ने निश्चित किया कि इसका वध करके अश्व को राजा सगर के पास पहुंचा देना है। उनमें से कोई सगरपुत्र यह भी कहने लगा कि "इस निद्रित व्यक्ति से हमें क्या प्रयोजन! हम अपने अश्व को लेकर चले जायें।" इस बात का प्रतिवाद करते एक अन्य सगरपुत्र ने कहा—"यह कैसी बात कर रहे हो? हम शूरवीर हैं। हम शासक तथा राजा हैं। अतः इस दुष्ट को उठा कर हमें क्षत्रियोचित स्वाभाविक प्रभाव से इसका विनाश कर देना चाहिये।" इस बात से सभी सगरपुत्र सहमत हो गये और वे सभी कठोर वचनों से कपिल मुनि को बुरा-भला कहने लगे। वे कपिल मुनि पर पैरों से प्रहार भी कर रहे थे!।।३२-३५।।

ततः कोपेन महता कपिलो मुनिसत्तमः।
सागरानीक्षयामास तान्कोपाद्भस्मसात्करोत्॥३६॥
जज्वलुस्ते ततस्तत्र सागराः सर्व एव हि। तत्तु सर्वं न जानाति दीक्षितः सगरो नृपः॥३७॥
नारदः कथयामास सगराय महात्मने।
कपिलस्य तु संस्थानं हयस्यापि तु संस्थितिम्॥३८॥
राक्षसानां तु विकृतिं सागराणां च नाशनम्।
ततश्चिन्तापरो राजा कर्त्तव्यं नावबुध्यत॥३९॥
अपरोऽपि सुतश्चाऽऽसीदसमञ्जा इति श्रुतः।
स तु बालांस्तथा पौरान्मौर्ख्यात्क्षिपति चाम्भसि॥४०॥

सगरोऽप्यथ विज्ञप्तः पौरैः सम्मिलितैस्तदा।
दुर्नयं तस्य तं ज्ञात्वा ततः क्रुद्धोऽब्रवीन्नृपः॥४१॥
स्वानमात्यांस्तदा राजा देशत्यागं करोत्वयम्।
असमञ्जाः क्षत्रधर्मत्यागी वै बालघातकः॥४२॥

इस पर कपिल मुनि जाग गये तथा उन्होंने क्रोधपूर्ण दृष्टि द्वारा सगरपुत्रों को देखा। कपिल मुनि के दृष्टिपात करते ही सभी सगरपुत्र भस्मीभूत हो गये। उन महामुनि की नेत्रज्वाला से वे सभी जल कर भस्मीभूत हो गये। इधर यज्ञ में दीक्षित राजा सगर को इस घटना की कोई सूचना नहीं थी। तब देवर्षि नारद ने महात्मा कपिल का सागर के पास संस्थान, अश्वरक्षण, राक्षसों की षड्यन्त्र पूर्ण चेष्टा तथा उनके पुत्रों के विनाश का समाचार राजा सगर को बतला दिया। इससे राजा सगर चिन्तातुर हो गये तथा वे अपने कर्त्तव्य का निश्चय नहीं कर सके। राजा सगर का असमंजस नामक एक अन्य पुत्र भी था। वह पुत्र मूर्खता तथा दुष्टता के कारण नगरवासी लोगों के शिशु सन्तानों को पकड़ कर जल में फेंक देता था। इससे व्यथित पुरवासी लोगों ने राजा से इस अत्याचारपूर्ण घटना को कहा। राजा पुत्र का यह कुकृत्य जान कर अतीव क्रोधित हो गये। राजा ने अपने मन्त्रियों से कहा कि "शीघ्रता के साथ असमंजस मेरा राज्य छोड़ कर चला जाये। यह बालघाती है। इसने क्षत्रियधर्म त्याग दिया है"।।३६-४२।।

सगरस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वाऽमात्यास्त्वरान्विताः।
तत्यजुर्नृपतेः पुत्रमसमञ्जा गतो वनम्॥४३॥
सागरा ब्रह्मशापेन नष्टाः सर्वे रसातले। एकोऽपि च वनं प्राप्त इदानीं का गतिर्मम॥४४॥
अंशुमानिति विख्यातः पुत्रस्तस्यासमञ्जसः।
आनाय्य बालकं राजा कार्यं तस्मै न्यवेदयत्॥४५॥
कपिलं च समाराध्य अंशुमानपि बालकः। सगराय हयं प्रादात्ततः पूर्णोऽभवत्क्रतुः॥४६॥
तस्यापि पुत्रस्तेजस्वी दिलीप इति धार्मिकः।
तस्यापि पुत्रो मतिमान्भगीरथ इति श्रुतः॥४७॥

राजा का आदेश पाकर मन्त्रियों ने असमंजस को देश त्याग कर चले जाने हेतु बाध्य कर दिया। तब असमंजस वन में चला गया। इसको छोड़ कर सभी सगरपुत्रगण रसातल में ब्रह्मशाप से नष्ट हो गये थे। तब राजा सगर ने विचार किया कि अब मेरी गति क्या होगी? इस विचार के उपरान्त राजा सगर ने असमंजस के बालक पुत्र अंशुमान को बुलाया तथा समस्त राजकार्य उसे सौंप दिया। उस समय बालक होने पर भी अंशुमान कपिल की अर्चना करके अश्व को वहां से वापस लाया तथा वह अश्व अपने पितामह सगर को अर्पित कर दिया। इस प्रकार सगर का यज्ञ सम्पन्न हो गया। अंशुमान का पुत्र दिलीप तेजस्वी तथा धार्मिक था। उसके पुत्र थे मतिमान् भगीरथ।।४३-४७।।

पितामहानां सर्वेषां गतिं श्रुत्वा सुदुःखितः। सगरं नृपशार्दूलं पप्रच्छ विनयान्वितः॥४८॥
सागराणां तु सर्वेषां निष्कृतिस्तु कथं भवेत्। भगीरथं नृपः प्राह कपिलो वेत्ति पुत्रक॥४९॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा बालः प्रायाद्रसातलम्।
कपिलं च नमस्कृत्वा सर्वं तस्मै न्यवेदयत्॥५०॥
स मुनिस्तु चिरं ध्यात्वा तपसाऽराध्य शङ्करम्।
जटाजलेन स्वपितृनाप्लाव्य नृपसत्तम॥५१॥
ततः कृतार्थो भविता त्वं च ते पितरस्तथा।
तथा करोमीति मुनिं प्रणम्य पुनरब्रवीत्॥५२॥
क्व गच्छेऽहं मुनिश्रेष्ठ कर्त्तव्यं चापि तद्वद॥५३॥

कपिल उवाच

कैलासं तं नरश्रेष्ठ गत्वा स्तुहि महेश्वरम्। तपः कुरु यथाशक्ति ततश्चेप्सितमाप्स्यसि॥५४॥

भगीरथ ने वयस्क होकर अपने पितामहगण की दुर्गति का वृत्तान्त जब जाना, तब वह अत्यन्त दुःखी हो गया। तब उसने विनीत भाव से राजा सगर से अपने पितामहगण के उद्धार का उपाय पूछा। राजा सगर ने कहा—"हे पुत्र! इसका उपाय जो कुछ है, वह रसातल में जाकर कपिलदेव से पूछो।" उनकी बात सुन कर बालक भगीरथ रसातल में चला गया। वहां जाकर कपिल को उसने प्रणाम किया तथा उनसे समस्त वृत्तान्त कह दिया। कपिल ऋषि ने किंचित् ध्यान करके कहा—"हे राजन्! तुम तप करके शंकर की आराधना करके उनके जटा के जल से पितामहगण को आप्लावित करो। इससे तुम्हारे पितर उद्धार प्राप्त कर लेंगे। तुम कृतार्थ हो जाओगे।।४८-५४।।

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा स मुनेर्वाक्यं मुनिं नत्वा त्वगान्नगम्।
कैलासं स शुचिर्भूत्वा बालो बालक्रियान्वितः।
तपसे निश्चयं कृत्वा उवाच स भगीरथः॥५५॥

ब्रह्मा कहते हैं—भगीरथ ने मुनि का उपदेश सुनकर उनको प्रणाम किया तथा कैलास प्रस्थान कर गये। वहां जाकर वे पवित्रता पूर्वक उसी बाल्यावस्था में तपस्यार्थ कृतनिश्चय होकर शंकर से प्रार्थना करने लगे।।५५।।

भगीरथ उवाच

बालोऽहं बालबुद्धिश्च बालचन्द्रधर प्रभो।
नाहं किमपि जानामि ततः प्रीतो भव प्रभो॥५६॥
वाग्भिर्मनोभिः कृतिभिः कदाचिन्ममोपकुर्वन्ति हिते रता ये।
तेभ्यो हितार्थं त्विह चामरेश, सोमं नमस्यामि सुरादिपूज्यम्॥५७॥
उत्पादितो यैरभिवर्धितश्च, समानगोत्रश्च समानधर्मा।
तेषामभीष्टानि शिवः करोतु, बालेन्दुमौलिं प्रणतोऽस्मि नित्यम्॥५८॥

भगीरथ कहते हैं—हे प्रभो! हे बालचन्द्रधारी! मैं बालक हूं। बालकवत् मेरी बुद्धि है। मैं आपका तत्व नहीं जानता। हे प्रभो! दया करके मुझ पर प्रसन्न हो जायें। जो वाक्य-मन तथा क्रिया द्वारा भी मेरे उपकार में रत थे, मैं अपने ऐसे उन पूर्वजों के हितार्थ हे अमरेश्वर! सुरासुर पूजित आपको प्रणाम करता हूं! जिन समानगोत्र तथा समानधर्मा पूर्वजों ने मुझे उत्पन्न तथा वर्द्धित किया है, भगवान् शिव उनको अभीष्ट प्रदान करें। मैं आप बाल चन्द्रमौलि प्रभु के चरणों में सदा प्रणत होता हूं।।५६-५८।।

ब्रह्मोवाच

एवं तु ब्रुवतस्तस्य पुरस्तादभवच्छिवः। वरेण च्छन्दयानो वै भगीरथमुवाच ह।।५९।।

ब्रह्मा कहते हैं—भगीरथ ऐसी प्रार्थना कर ही रहे थे कि शंकर ने वर प्रदान करने की इच्छा से भगीरथ से कहा—।।५९।।

शिव उवाच

यन्न साध्यं सुरगणैर्देयं तत्ते मया ध्रुवम्। वदस्व निर्भयो भूत्वा भगीरथ महामते।।६०।।

शिव कहते हैं—हे महाबुद्धिमान् भगीरथ! मैं तुमको वह वर प्रदान करूंगा, जो देवगण के लिये भी दुष्प्राप्य है। तुम निःशंक होकर वर मांगो।।६०।।

ब्रह्मोवाच

भगीरथः प्रणम्येशं हृष्टः प्रोवाच शङ्करम्।।६१।।

ब्रह्मा कहते हैं—तब भगीरथ ने शंकर को प्रणाम करके कहा—।।६१।।

भगीरथ उवाच

जटास्थितां पितॄणां मे पावनाय सरिद्वराम्। तामेव देहि देवेश सर्वमाप्तं ततो भवेत्।।६२।।

भगीरथ कहते हैं—हे देवेश! मेरे पितृगण की पवित्रता हेतु आप अपने जटाजूट में विहार करने वाली उत्तम नदी गंगा को प्रदान करिये। इसी से मुझे सब कुछ प्राप्त हो जायेगा।।६२।।

ब्रह्मोवाच

महेशोऽपि विहस्याथ भगीरथमुवाच ह।।६३।।

ब्रह्मा कहते हैं—तब महेश ने हंसते हुये भगीरथ से कहा—।।६३।।

शिव उवाच

दत्ता मयेयं ते पुत्र पुनस्तां स्तुहि सुव्रत।।६४।।

शिव कहते हैं—हे सुव्रत! पुत्र! मैंने तुमको गंगा प्रदान किया। अब उनकी स्तुति करो।।६४।।

ब्रह्मोवाच

तद्देववचनं श्रुत्वा तदर्थं तु तपो महत्।
स्तुतिं चकार गङ्गाया भक्त्या प्रयतमानसः।।६५।।

तस्या अपि प्रसादं च प्राप्य बालोऽप्यबालवत्।
गङ्गां महेश्वरात्प्राप्तामादायागाद्रसातलम्॥६६॥
न्यवेदयत्स मुनये कपिलाय महात्मने। यथोदितप्रकारेण गङ्गां संस्थाप्य यत्नतः॥६७॥
प्रदक्षिणमथाऽऽवर्त्य कृताञ्जलिपुटोऽब्रवीत्॥६८॥

ब्रह्मा कहते हैं—भगवान् शिव का कथन सुनकर भगीरथ ने गंगा को संतुष्ट करने हेतु एकतान चित्त होकर तप तथा गंगा स्तव किया। वे बालक थे, तथापि उन्होंने वयस्कों जैसे अध्यवसाय करके गंगा देवी की प्रसन्नता का लाभ किया। वे महेश्वर से प्राप्त उन गंगा को लेकर रसातल पहुंचे। वहां उन्होंने कपिल ऋषि से समस्त वृत्तान्त का वर्णन किया तथा सयत्न गंगा की वहां स्थापना करके उन्होंने हाथ जोड़कर उनकी प्रदक्षिणा करके कहा—॥६५-६८॥

भगीरथ उवाच

देवि मे पितरः शापात्कपिलस्य महामुनेः। प्राप्तास्ते विगतिं मातस्तस्मात्तान्पातुमर्हसि॥६९॥

राजा भगीरथ कहते हैं—मेरे पितरों ने महामुनि कपिल के शाप से दुर्गति पाया है। हे माता! आप उनका उद्धार करिये॥६९॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा सुरनदी सर्वेषामुपकारिका। लोकानामुपकारार्थं पितॄणां पावनाय च॥७०॥
अगस्त्यपीतस्याम्भोधेः पूरणाय विशेषतः। स्मरणादेव पापानां नाशाय सुरनिम्नगा॥७१॥
भगीरथोदितं चक्रे रसातलतले स्थितान्। भस्मीभूतान्नृपसुतान्सागरांश्च विशेषतः॥७२॥
विनिर्दग्धानथाऽऽप्लाव्य खातपूरमथाकरोत्।
ततो मेरुं समाप्लाव्य स्थितां बालोऽब्रवीन्नृपः॥७३॥

ब्रह्मा कहते हैं—उस समय सभी लोकों की हितैषी सुरतरंगिणी भगीरथ की प्रार्थना को चरितार्थ करने हेतु सम्मत हो गयीं। उन्होंने भगीरथ के पितरों की पवित्रतार्थ, अगत्स्य द्वारा पी लिये गये समुद्र को पुनः भरने हेतु तथा स्मरण मात्र से ही सभी के पापप्रक्षालन के लिये स्वर्गलोक से पृथिवी पर अवतरण किया। उन्होंने भगीरथ की प्रार्थना के अनुरूप रसातलगत कपिल क्रोध से निर्दग्ध सगरपुत्रों की भस्म को विशेषतया आप्लावित करके गढ़े के समान हो रहे समुद्र को अपने जल से भर दिया। तदनन्तर वे सुमेरु को प्लावित करके स्थित हो गयीं। यह देख कर बालक राजा भगीरथ ने उनसे कहा—॥७०-७३॥

कर्मभूमौ त्वया भाव्यं तथेत्यागाद्धिमालयम्।
हिमवत्पर्वतात्पुण्याद्भारतं वर्षमभ्यगात्॥७४॥
तन्मध्यतः पुण्यनदी प्रायात्पूर्वार्णवं प्रति।
एवमेषाऽपि ते प्रोक्ता गङ्गा क्षात्रा महामुने॥७५॥
माहेश्वरी वैष्णवी च सैव ब्राह्मी च पावनी। भागीरथी देवनदी हिमवच्छिखराश्रया॥७६॥

महेश्वरजटावारि एवं द्वैविध्यमागतम्। विन्ध्यस्य दक्षिणे गङ्गा गौतमी सा निगद्यते।
उत्तरे साऽपि विन्ध्यस्य भागीरथ्यभिधीयते॥७७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे भागीरथ्यवतरणं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः॥७८॥
गौतमीमाहात्म्ये नवमोऽध्यायः॥९॥



भगीरथ कहते हैं—"हे देवी! आप कर्मभूमि भारत में विराजमान हो जाईये।" भगीरथ की प्रार्थना से पुण्यमयी गंगा सहमत हो गयीं। वे हिमालय पर आकर भारत में उतरीं और भारतवर्ष में से बहती पूर्व सागर की ओर प्रवहमान हो गयीं। हे महामुनि! मैंने तुमसे क्षत्रिय द्वारा अवतरित गंगा का संवाद कहा। यह गंगादेवी ही माहेश्वरी, वैष्णवी, ब्राह्मी, पावनी, हिमालय शिखराश्रिता भागीरथी हैं। वे एवंविध महेश्वर के जटाजाल से द्विधा विभाजित होकर एक भाग से विन्ध्य पर्वत के दक्षिण की ओर बहने वाली गोमतीगंगा हो गयीं। वे अपने दूसरे भाग से विन्ध्यगिरि के उत्तर में जाकर प्रवाहित भागीरथी गंगा कही गयीं।।७४-७७।।

।।अष्टसप्ततितम अध्याय समाप्त।।



अथोनाशीतितमोऽध्यायः

वराहतीर्थ वर्णन

नारद उवाच

न मनस्तृप्तिमाधत्ते कथाः शृण्वत्त्वयेरिताः। पृथक्तीर्थफलं श्रोतुं प्रवृत्तं मम मानसम्॥१॥
क्रमशो ब्राह्मणानीतां गङ्गां मे प्रथमं वद। पृथक्तीर्थफलं पुण्यं सेतिहासं यथाक्रमम्॥२॥

देवर्षि नारद कहते हैं—हे भगवान्! आपके मुख से निःसृत इस पुण्यकथा को सुन-सुन कर मेरा मन तृप्त नहीं हो रहा है। मेरा मन विभिन्न तीर्थफल सुनने हेतु उत्सुक होता जा रहा है। आपने प्रथमतः ब्राह्मण गौतम द्वारा आनीत गंगा की फलकथा कहकर उसके इतिहास का उल्लेख करते हुये उसके तट पर स्थित विभिन्न तीर्थ तथा उनका फल कहिये।।१-२।।

ब्रह्मोवाच

तीर्थानां च पृथग्भावं फलं माहात्म्यमेव च।
सर्वं वक्तुं न शक्नोमि न च त्वं श्रवणे क्षमः॥३॥
तथाऽपि किञ्चिद्वक्ष्यामि शृणु नारद यत्नतः।
यान्युक्तानि च तीर्थानि श्रुतिवाक्यानि यानि च॥४॥

तानि वक्ष्यामि संक्षेपान्नमस्कृत्वा त्रिलोचनम्।
यत्रासौ भगवानासीत्प्रत्यक्षस्त्र्यम्बको मुने॥५॥
त्र्यम्बकं नाम तत्तीर्थं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्। वाराहमपरं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥६॥
तस्य रूपं प्रवक्ष्यामि नाम विष्णोर्यथाऽभवत्।
पुरा देवान्पराभूय यज्ञमादाय राक्षसः॥७॥

ब्रह्मा कहते हैं—तीर्थसमूह का पार्थक्य, फल, माहात्म्य सभी मैं कह सकूं, ऐसी शक्ति मुझमें नहीं है। तुम्हारी भी क्षमता नहीं है कि वह समस्त सुन सको! तथापि कुछ माहात्म्य तुमसे कहता हूं। हे नारद! यत्नतः सुनो। श्रुतिवाक्य में जिन सब तीर्थों की कथा को कहा गया है, मैं त्रिलोचन को प्रणाम करके वह सब संक्षेप में कहता हूं। हे मुनिप्रवर! जहां त्र्यम्बक देव प्रत्यक्ष हुये थे, वह भुक्ति-मुक्ति प्रदाता त्र्यम्बक तीर्थ है। अन्य है त्रैलोक्य प्रसिद्ध वराह तीर्थ। इन तीर्थों में जिस प्रकार से विष्णु का नाम जुटा, वह सब कहता हूं। श्रवण करो। पूर्वकाल में एक राक्षस ने देवताओं को परास्त करके यज्ञ का हरण किया था।।३-७।।

रसातलमनुप्राप्तः सिन्धुसेन इति श्रुतः। यज्ञे तलमनुप्राप्ते निर्यज्ञा ह्यभवन्मही॥८॥

वह यज्ञ का हरण करके रसातल में जाने वाला राक्षस सिन्धुसेन था। यज्ञ को पृथिवी पर से हरण किये जाने के कारण धरती यज्ञहीन हो गयी थी।।८।।

नायं लोकोऽस्ति न परो यज्ञे नष्ट इतीत्वराः। सुरास्तमेव विविशू रसातलमनुद्विषम्॥९॥
नाशक्नुवंस्तु तं जेतुं देवा इन्द्रपुरोगमाः। विष्णुं पुराणपुरुषं गत्वा तस्मै न्यवेदयन्॥१०॥
राक्षसस्य तु तत्कर्म यज्ञभ्रंशमशेषतः। ततः प्रोवाच भगवान्वाराहं वपुरास्थितः॥११॥
शङ्खचक्रगदापाणिर्गत्वा चैव रसातलम्। आनयिष्ये मखं पुण्यं हत्वा राक्षसपुङ्गवान्॥१२॥

यज्ञ नष्ट हो जाने के कारण देवगण ने समझ लिया कि इससे तो इहलोक तथा परलोक, दोनों नष्ट ही हैं। अतएव देवता व्यग्र हो उठे तथा वे सभी देवता शत्रु का पीछा करते रसातल में प्रविष्ट हो गये। इतना करने पर भी देवगण तथा इन्द्रादि प्रमुख देवता उस राक्षस को पराजित नहीं कर सके। हताश होकर सभी देवता इस स्थिति में पुराणपुरुष विष्णु देव के पास गये तथा राक्षस द्वारा यज्ञध्वंस का वृत्तान्त उनसे कह दिया। उस समय शंख-चक्र-गदाधारी भगवान् ने वराह शरीर धारण करके कहा कि "मैंने वराह देह धारण कर लिया है। अब मैं शंख-चक्र-गदाधारी होकर रसातल में सभी प्रधान दैत्यों का वध करके उस परम पावन यज्ञ को धरती पर लाऊंगा"।।९-१२।।

स्वः प्रयान्तु सुराः सर्वे व्येतु वो मानसो ज्वरः।
येन गङ्गा तलं प्राप्ता पथा तेनैव चक्रधृक्॥१३॥
जगाम तरसा पुत्र भुवं भित्त्वा रसातलम्। स वराहवपुः श्रीमान्रसातलनिवासिनः॥१४॥
राक्षसान्दानवान्हत्वा मुखे धृत्वा महाध्वरम्।
वाराहरूपी भगवान्मखमादाय यज्ञभुक्॥१५॥

येन प्राप तलं विष्णुः पथा तेनैव शत्रुजित्।
मुखे न्यस्य महायज्ञं निश्चक्राम रसातलात्॥१६॥
तत्र ब्रह्मगिरौ देवाः प्रतीक्षां चक्रिरे हरेः। पथस्तस्माद्विनिःसृत्य गङ्गास्त्रवणमभ्यगात्॥१७॥
प्रक्षालयच्च स्वाङ्गानि असृग्लिप्तानि नारद। गङ्गाम्भसा तत्र कुण्डं वाराहमभवत्ततः॥१८॥

भगवान् ने पुनः कहा कि "अब आप सभी देवता स्वर्ग जायें। अब आप लोगों का मानसिक ज्वर चला गया।" हे पुत्र नारद! चक्रधारी भगवान् यह कह कर उस मार्ग पर गये, जहां से गंगा देवी रसातल में गयी थीं। भगवान् उस मार्ग का भेदन करके रसातल पहुंचे। श्रीमान् वराह देही भगवान् ने रसातल में स्थित दानवों तथा राक्षसों का वध किया तथा मुख में उस महायज्ञ को धारण करके उसी मार्ग से पुनः ब्रह्मगिरि पर बाहर आ गये। वहां देवता पहले से खड़े होकर भगवान् की प्रतीक्षा कर रहे थे। श्रीहरि वहां से निकलकर गंगा के स्रोत पर गये थे। वहां प्रभु ने गंगा के जल द्वारा अपने राक्षस रक्त लिप्त अंगों को धोया। वह स्थान तभी से वराहकुण्ड के नाम से प्रख्यात हो गया।।१३-१८।।

मुखे न्यस्तं महायज्ञं देवानां पुरतो हरिः। दत्तवांस्त्रिदशश्रेष्ठो मुखाद्यज्ञोऽभ्यजायत॥१९॥
ततः प्रभृति यज्ञाङ्गं प्रधानं स्रुव उच्यते। वाराहरूपमभवदेवं वै कारणान्तरात्॥२०॥
तस्मात्पुण्यतमं तीर्थं वाराहं सर्वकामदम्। तत्र स्नानं च दानं च सर्वक्रतुफलप्रदम्॥२१॥
तत्र स्थितोऽपि यः कश्चित्पितृन्स्मरति पुण्यकृत्।
विमुक्ताः सर्वपापेभ्यः पितरः स्वर्गमाप्नुयुः॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये वराहतीर्थवर्णनं नामोनाशीतितमोऽध्यायः।।७९।।

गौतमीमाहात्म्ये दशमोऽध्यायः।।१०।।



सुरेश्वर श्रीहरि ने अपने मुख में रखे महायज्ञ को देवताओं के आगे रख दिया। उस समय उनके मुख से पुनः यज्ञोत्पत्ति हो गयी थी। इसी कारण से स्रुव प्रधानतम यज्ञांग माना जाता है। इस प्रकार से इस विशेष कारण से वराह रूप कल्पित किया गया है। उस तीर्थ को अतीव पुण्यप्रद तथा सर्वकामना साधक कहते हैं। वहां स्नान-दान करने से सर्वयज्ञफलोत्पत्ति होती है। वहां रहकर जो पुण्यात्मा व्यक्ति पितरों का स्मरण करता है, उसके पितर सर्वपापरहित होकर स्वर्ग जाते हैं।।१९-२२।।

।।अथैकोनशीतितम अध्याय समाप्त।।



अथाशीतितमोऽध्यायः

लुब्धक चरित्र वर्णन तथा कपोततीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

कुशावर्तस्य माहात्म्यमहं वक्तुं न ते क्षमः। तस्य स्मरणमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः॥१॥
कुशावर्तमिति ख्यातं नराणां सर्वकामदम्। कुशेनाऽऽवर्तितं यत्र गौतमेन महात्मना॥२॥
कुशेनाऽऽवर्तयित्वा तु आनयामास तां मुनिः।
तत्र स्नानं च दानं च पितॄणां तृप्तिदायकम्॥३॥
नीलगङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा निःसृता नीलपर्वतात्। तत्र स्नानादि यत्किंचित्करोति प्रयतो नरः॥४॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे नारद! कुशावर्त्त तीर्थ का माहात्म्य कितना अधिक है, वह मैं कहने में समर्थ नहीं हूं। उस तीर्थ का स्मरण करने से ही मानव कृतार्थ हो जाता है। कुशावर्त्त तीर्थ मनुष्यों हेतु सर्वकामप्रद है। महात्मा गौतम वहां कुश घुमाते हुये गंगा को लाये थे। मुनिप्रवर गौतम गंगा को कुश के आवर्त्तन से (मार्ग दिखला कर) लाये। यहां स्नान, दान करने से पितर तृप्त हो जाते हैं। सरिताओं में श्रेष्ठ नीलगंगा नीलाचल से निकली है। मनुष्यगण सावधानी से नियम पालन करते हुये यहां स्नानादि जो कुछ कर्म किया जाता है, उन सबसे पितृगण को अक्षय तृप्ति प्राप्त होती है।।१-४।।

सर्वं तदक्षयं विद्यात्पितॄणां तृप्तिदायकम्। विश्रुतं त्रिषु लोकेषु कपोतं तीर्थमुत्तमम्॥५॥
तस्य रूपं च वक्ष्यामि मुने शृणु महाफलम्। तत्र ब्रह्मगिरौ कश्चिद्व्याधः परमदारुणः॥६॥
हिनस्ति ब्राह्मणान्साधून्यतीन्गोपक्षिणो मृगान्।
एवंभूतः स पापात्मा क्रोधनोऽनृतभाषणः॥७॥
भीषणाकृतिरत्युग्रो नीलाक्षो ह्रस्वबाहुकः। दन्तुरो नष्टनासाक्षो ह्रस्वपात्पृथुकुक्षिकः॥८॥
ह्रस्वोदरो ह्रस्वभुजो विकृतो गर्दभस्वनः। पाशहस्तः पापचित्तः पापिष्ठः सधनुः सदा॥९॥
तस्य भार्या तथाभूता अपत्यान्यपि नारद।
तया तु प्रेर्यमाणोऽसौ विवेश गहनं वनम्॥१०॥

उत्तम कपोत तीर्थ त्रैलोक्य प्रसिद्ध है। हे मुनिवर! कपोत तीर्थ का वर्णन महाफलजनक तीर्थरूपेण मैं कह रहा हूं। उसे सुनो। पूर्वकाल में ब्रह्मगिरि के अंचल में एक महादारुण प्रकृति वाला व्याध (बहेलिया) रहता था। वह ब्राह्मण, साधु, पक्षी, मृगादि पशु इन सभी प्राणीगण की हत्या करता था। वह पापी व्याध अत्यन्त क्रोधी था। वह असत्य बोलने वाला, भीषणाकार, अत्यन्त उग्र, विकृत रूप वाला, छोटी बाहु वाला, नीलनेत्र, उन्नत दांतों वाला, छोटे पैरों वाला, पिच के उदर वाला, गर्दभ के समान बोलने वाला, पाशधारी, पापी चित्त वाला, पापकर्मा तथा सर्वदा धनुष-बाण लिये रहता था। उसकी पत्नी तथा पुत्र-कन्या आदि भी उसी की ही तरह थे। हे नारद! एक दिन वह व्याध पत्नी के द्वारा भेजे जाने के कारण गहन वन में प्रविष्ट हो गया।।५-१०।।

स जघान मृगान्पापः पक्षिणो बहुरूपिणः। पञ्जरे प्राक्षिपत्कांश्चिज्जीवमानांस्तथेतरान्॥११॥
क्षुधया परितप्ताङ्गो विह्वलस्तृषया तथा। भ्रान्तदेशो बहुतरं न्यवर्तत गृहं प्रति॥१२॥
ततोऽपराह्णे संप्राप्ते निवृत्ते मधुमाधवे। क्षणात्तडिद्गर्जितं च साभ्रं चैवाभवत्तदा॥१३॥
ववौ वायुः साश्मवर्षो वारिधारातिभीषणः।
स गच्छंल्लुब्धकः श्रान्तः पन्थानं नावबुध्यत॥१४॥

उस वन में उस पापी ने अनेक मृगों तथा नाना रूप वाले पक्षियों का वध किया। उसने अपने पिंजरे में कुछ जीवित पक्षियों तथा कुछ मृत पक्षियों को भरा। समय अधिक बीत गया था। क्षुधा-तृष्णा से उसका शरीर विकल हो चुका था। उसने वहां अत्यन्त अधिक अन्वेषण किया और अन्ततः अपने गृह की ओर चल पड़ा। उस अपराह्न काल में ज्येष्ठ मास व्यतीत हो चला था। तभी तीसरा पहर आते-आते आकाश में बिजली गरजने लगी। मेघ से गगनमण्डल घिर गया। अगले क्षण ही वायु प्रवाह होने लगा। अत्यन्त भयानक वृष्टि होने लगी। आकाश से ओले गिरने लगे। उस समय वह व्याध चलते हुये थक गया था। उसे मार्ग भी भूल गया॥११-१४॥

जलं स्थलं गर्तमथो पन्थानमथवा दिशः। न बुबोध तदा पापः श्रान्तः शरणमप्यथ॥१५॥
क्व गच्छामि क्व तिष्ठेयं किं करोमीतिचिन्तयत्।
सर्वेषां प्राणिनां प्राणानाहर्ताऽहं यथाऽन्तकः॥१६॥
ममाप्यन्तकरं भूतं संप्राप्तं चाश्मवर्षणम्।
त्रातारं नैव पश्यामि शिलां वा वृक्षमन्तिके॥१७॥
एवं बहुविधं व्याधो विचिन्त्यापश्यदन्तिके।
वने वनस्पतिमिव नक्षत्राणां यथाऽत्रिजम्॥१८॥
मृगाणां च यथा सिंहमाश्रमाणां गृहाधिपम्।
इन्द्रियाणां मन इव त्रातारं प्राणिनां नगम्॥१९॥
श्रेष्ठं विटपिनं शुभ्रं शाखापल्लवमण्डितम्।
तमाश्रित्योपविष्टोऽभूत्क्लिन्नवासा स लुब्धकः॥२०॥

कहीं जल, कहीं स्थल, कहीं गर्त्त, कहीं पथ था। वह पापात्मा कुछ भी निश्चित नहीं कर पा रहा था। उसे कहीं भी आश्रय नहीं मिल रहा था। वह सोच रहा था "क्या करूं, कहां जाऊं? मैं तो यम के समान सभी प्राणियों के प्राणों का हर्त्ता हूं। आज मुझे भी यमराज के समान यह ओला वर्षा का सामना करना पड़ रहा है। यहां कोई बचाने वाला नहीं है। पास में कहीं कोई वृक्ष तथा चट्टान नहीं दिखलाई दे रही है। अतएव अब कहां आश्रय ग्रहण करूं? मैं अन्तक (यम) के समान सभी प्राणियों का हत्यारा हूं। आज मुझे भी कहीं शरणस्थल नहीं मिल रहा है। एक शिला अथवा वृक्ष भी यहां कहीं नहीं है।" वह इस प्रकार चिन्तित था, तभी उसे सामने एक शाखा-पल्लवयुक्त अत्यन्त रक्षक रूप एक वृक्ष दिखलाई पड़ा। यह वृक्ष उस वन में वनस्पति के समान, नक्षत्रों में चन्द्रमा के समान, इन्द्रियों में प्रधान मन के समान, मृगपशुगण में सिंह के समान, आश्रमी लोगों में

गृहस्थाश्रमी के समान प्रतिभात हो रहा था। अब उस बहेलिया ने उस वृक्ष का आश्रय ग्रहण किया। वह वर्षा के जल से भींग गया था।।१५-२०।।

स्मरन्भार्यामपत्यानि जीवेयुरथवा न वा। एतस्मिन्नन्तरे तत्र चास्तं प्राप्तो दिवाकरः।।२१।।
तमेव नगमाश्रित्य कपोतो भार्यया सह। पुत्रपौत्रैः परिवृतो ह्यास्ते तत्र नगोत्तमे।।२२।।

सुखेन निर्भयो भूत्वा सुतृप्तः प्रीत एव च।
बहवो वत्सरा याता वसतस्तस्य पक्षिणः।।२३।।

पतिव्रता तस्य भार्या सुप्रीता तेन चैव हि। कोटरे तन्नगे श्रेष्ठे जलवाय्वग्निवर्जिते।।२४।।

भार्यापुत्रैः परिवृतः सर्वदाऽऽस्ते कपोतकः।
तस्मिन्दिने दैववशात्कपोतश्च कपोतकी।।२५।।

भक्ष्यार्थं तु उभौ यातौ कपोतो नगमभ्यगात्। साऽपि दैववशात्पुत्र पञ्जरस्थैव वर्तते।।२६।।

वह उस वृक्ष का आश्रय लेकर अपने स्त्री-पुत्रादि के विषय में विचार करने लगा। उसने सोचा कि मेरे सन्तान जीवित हैं, अथवा नहीं! वह व्याध इसी तरह से चिन्ता कर रहा था, तभी सूर्यदेव अस्त हो गये। उसी वृक्ष पर एक कपोत अपनी स्त्री, पुत्र तथा पौत्रगण के साथ तृप्त, प्रसन्न तथा निःशंक चित्त होकर रहता था। वह कई वर्ष से वहां सुख पूर्वक निवास कर रहा था। उसकी पतिव्रता पत्नी कपोती जल, वायु, अग्निभय रहित होकर उस वृक्ष के कोटर में अपने कुटुम्ब के साथ रहती थी। वह कपोत अपने स्त्री-पुत्रादि के साथ वहीं पर सदैव रहता था। उस घटना वाले दिन वे कपोत-कपोती दोनों ही भोजन संग्रहार्थ बहिर्गत् हुये थे। अपने समय पर कपोत तो अपने घोंसले में वापस आ गया, लेकिन दैवात् वह कपोती शिकारी व्याध के पिंजड़े में फंस गयी।।२१-२६।।

गृहीता लुब्धकेनाथ जीवमानेव वर्तते। कपोतकोऽप्यपत्यानि मातृहीनान्युदीक्ष्य च।।२७।।

वर्षं च भीषणं प्राप्तमस्तं यातो दिवाकरः।
स्वकोटरं तयाहीनमालोक्य विललाप सः।।२८।।
तां बद्धां पञ्जरस्थां वा न बुबोध कपोतराट्।
अन्वारेभे कपोतो वै प्रियाया गुणकीर्तनम्।।२९।।

लुब्धक (व्याध) उसे जीवित ही लाया। उस समय कपोत अपनी सन्तानों को मातृ रहित देख कर तथा उस समय हो रही भीषण वर्षा को देख कर और सूर्य को अस्त देखकर विलाप करने लगा। उसने देखा कि कोटर कपोती से रहित है।।२७-२९।।

नाद्याप्यायाति कल्याणि मम हर्षविवर्धिनी। मम धर्मस्य जननी मम देहस्य चेश्वरी।।३०।।
धर्मार्थकाममोक्षाणां सैव नित्यं सहायिनी। तुष्टे हसन्ती रुष्टे च मम दुःखप्रमार्जनी।।३१।।

सखी मन्त्रेषु सा नित्यं मम वाक्यरता सदा।
नाद्याप्यायाति कल्याणी सम्प्रयातेऽपि भास्करे।।३२।।

कपोत विलाप कर रहा था कि मेरी पत्नी व्याध के पिंजड़े में फंसी है। वह उसके गुणों का वर्णन रोते हुये करने लगा। कपोत कह रहा था "मेरे हर्ष की वृद्धि करने वाली कल्याणी कपोती अभी तक नहीं आई! वह मेरी प्रिया मेरे धर्म कार्य की जननीरूपा, प्राणेश्वरी तथा धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष कार्य में सदा सहचरी रहती थी। वह जब मैं प्रसन्न चित्त रहता था, तब वह भी प्रसन्न रहती थी। मेरी प्रसन्नता में हंसती रहती थी। मुझे कष्ट होने पर वह मेरा कष्ट दूर कर देती थी। वह मन्त्रणा कार्य में मेरे सखा के समान थी। वह सर्वदा मेरे कथनानुरूप ही आचरण करती थी। अब तो सूर्य तक अस्त हो गये।! वह कल्याणी अभी तक नहीं लौट पाई।।३०-३२।।

न जानाति व्रतं मन्त्रं दैवं धर्मार्थमेव च। पतिव्रता पतिप्राणा पतिमन्त्रा पतिप्रिया।।३३।।

नाद्याप्यायाति कल्याणी किं करोमि क्व यामि वा।
किं मे गृहं काननं च तया हीनं हि दृश्यते।।३४।।
तया युक्तं श्रिया युक्तं भीषणं वाऽपि शोभनम्।
नाद्याप्यायाति मे कान्ता यया गृहमुदीरितम्।।३५।।
विनाऽनया न जीविष्ये त्यजे वाऽपि प्रियां तनुम्।
किं कुर्वन्तु त्वपत्यानि लुप्तधर्मस्त्वहं पुनः।।३६।।

वह मेरी प्रिया कोई व्रत, मन्त्रत, दैवक्रिया, धर्म, अर्थ, कुछ भी नहीं जानती थी। वह सदा पतिव्रता, पतिमन्त्रा तथा पतिप्रिया थी। वह कल्याणी अभी तक नहीं आई! मैं क्या करूं? कहां जाऊं? यह भार्या रहित घर वन ऐसा लग रहा है। इस गृह में मेरी प्रिया का जब निवास था, यह लक्ष्मीयुक्त लगता रहता था। भीषण होकर भी शोभायमान लगता था। गृहिणी ही गृह कहलाती है। मेरी वह कल्याणी, कामिनी, गृहिणी अभी तक नहीं आई। मैं पत्नी बिना अपना जीवन व्यतीत नहीं करूंगा। मैं अपने प्रिय प्राणों का त्याग कर दूंगा। मेरे मरने पर मेरे सन्तानगण की क्या दशा होगी? मेरा तो धर्म ही लुप्त हो रहा है।।३३-३६।।

एवं विलपतस्तस्य भर्तुर्वाक्यं निशम्य सा।
पञ्जरस्थैव सा वाक्यं भर्तारमिदमब्रवीत्।।३७।।

वह कपोत इस प्रकार से विलाप कर रहा था। व्याध के पिंजड़े में स्थित कपोती ने अपने पति का विलाप सुनकर उत्तर दिया।।३७।।

कपोतक्युवाच

अत्राहमस्मि बद्धैव विवशाऽस्मि खगोत्तम। आनीताऽहं लुब्धकेन बद्धा पाशैर्महामते।।३८।।

धन्याऽस्म्यनुगृहीताऽस्मि पतिर्वक्ति गुणान्मम।
सतो वाऽप्यसतो वाऽपि कृतार्थऽहं न संशयः।।३९।।

तुष्टे भर्तरि नारीणां तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः। विपर्यये तु नारीणामवश्यं नाशमाप्नुयात्।।४०।।

त्वं दैवं त्वं प्रभुर्मह्यं त्वं सुहृत्त्वं परायणम्।
त्वं व्रतं त्वं परं ब्रह्म स्वर्गो मोक्षस्त्वमेव च।।४१।।

मा चिन्तां कुरु कल्याण धर्मे बुद्धिं स्थिरां कुरु।
त्वत्प्रसादाच्च भुक्ता हि भोगाश्च विविधा मया॥४२॥
अलं खेदेन मज्जेन धर्मे बुद्धिं कुरु स्थिराम्॥४३॥

कपोती कहती है— हे खगराज! मैं इस पिंजड़े में विवशता के साथ बन्द हूं। हे महामति! एक व्याध ने मुझे जाल में बांध कर इसमें बन्द कर दिया। जो भी हो, मैं तो धन्य एवं अनुगृहीत हो गयी। इसका कारण है कि मेरे पति ने मेरे गुण का वर्णन किया है। भले ही वे गुण मुझमें हों अथवा नहीं हों, मैं कृतार्थ हूं, इसमें सन्देह नहीं है। पति के प्रसन्न होने पर उनकी स्त्रियों के प्रति सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं। पति के असन्तुष्ट होने पर उन स्त्रियों का नाश निश्चित है। आप स्वामी तथा मेरे देवता हैं। आप मेरे पति, सुहृद, परम आश्रय, मेरे व्रत, मेरे परमब्रह्म, मेरे स्वर्ग तथा मेरे मोक्षरूप हैं। हे कल्याणप्रद! आप चिन्ता न करें। धर्म के प्रति अपनी मति स्थिर करिये। आपकी कृपा से मैंने विविध सुखभोग किया है। मेरे लिये दुःख करने का कोई प्रयोजन ही नहीं है। अब धर्म में अपनी बुद्धि स्थिर रखिये।।३८-४३।।

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा प्रियावाक्यमुत्ततार नगोत्तमात्।
यत्र सा पञ्जरस्था तु कपोती वर्तते त्वर (द्रुत) म्॥४४॥
तामागत्य प्रियं दृष्ट्वा मृतवच्चापि लुब्धकम्।
मोक्षयामीति तामाह निश्चेष्टो लुब्धकोऽधुना॥४५॥

ब्रह्मा कहते हैं—जब कपोत ने अपनी प्रिया का यह वाक्य श्रवण किया, तब वह वृक्ष से उतर कर उसके पास आया। उसने अपनी कपोती के पास ही मृतप्रायः अचेत व्याध को देखा और कहा—"देखो! यह व्याध चेष्टारहित सा पड़ा है। मैं तुमको बन्धन से मुक्त कर देता हूं"।।४४-४५।।

मा मुञ्चस्व महाभाग ज्ञात्वा संबन्धमस्थिरम्।
लुब्धानां खेचरा ह्यन्नं जीवो जीवस्य चाशनम्॥४६॥
नापराधं स्मराम्यस्य धर्मबुद्धिं स्थिरां कुरु। गुरुग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः॥४७॥

कपोत का यह कथन सुनकर उस कपोती ने कहा कि "हे महाभाग! आप मुझे मुक्त करने का प्रयास न करें। प्राणियों का सम्बन्ध स्थिर नहीं होता। व्याध के लिये पक्षी अन्न रूप हैं। जीव का जीव ही भोजन है। इसमें व्याध का कोई अपराध नहीं है। आप अपनी बुद्धि धर्म के प्रति स्थिर करिये। ब्राह्मण तथा द्विज के गुरु अग्नि हैं तथा सभी वर्णों का गुरु ब्राह्मण ही है।।४६-४७।।

पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः। अभ्यागतमनुप्राप्तं वचनैस्तोषयन्ति ये॥४८॥
तेषां वागीश्वरी देवी तृप्ता भवति निश्चितम्।
तस्यान्नस्य प्रदानेन शक्रस्तृप्तिमवाप्नुयात्॥४९॥
पितरः पादशौचेन अन्नाद्येन प्रजापतिः। तस्योपचाराद्वै लक्ष्मीर्विष्णुना प्रीतिमाप्नुयात्॥५०॥

स्त्रियों का गुरु उनका पति होता है। तथापि अतिथि तो सबके गुरु होते हैं। जो अतिथि को उत्तम वाणी से सन्तुष्ट कर देते हैं, भगवती वागीश्वरी उनको निश्चित रूप से तृप्त कर देती हैं। अतिथि को अन्नदान करने से इन्द्र प्रसन्न हो जाते हैं। वे तृप्त हो जाते हैं। उनका चरण-प्रक्षालन करने से पितर और ब्रह्मा प्रजापति उनको अन्न देने से प्रसन्न हो जाते हैं। उनको अन्य उपचार आदि प्रदान करने से लक्ष्मी तथा विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं।।४८-५०।।

शयने सर्वदेवास्तु तस्मात्पूज्यतमोऽतिथिः। अभ्यागतमनुश्रान्तं सूर्योढं गृहमागतम्।
तं विद्याद्देवरूपेण सर्वक्रतुफलो ह्यसौ।।५१।।
अभ्यागतं श्रान्तमनुव्रजन्ति, देवाश्च सर्वे पितरोऽग्नयश्च।
तस्मिन्हि तृप्ते मुदमाप्नुवन्ति, गते निराशेऽपि च ते निराशाः।।५२।।

अभ्यागत को जो शयन कराता है, उसने तो सभी देवगण को प्रसन्न कर दिया। अतएव अतिथि व्यक्ति तो सदा पूज्य है। यदि सूर्यास्त के समय घर पर अतिथि आ जाये, तब उसे देवता ही जाने। इस अतिथि की सेवा से सभी यज्ञों का फल मिल जाता है। सभी देवता, पितर तथा समस्त अग्नि श्रान्त अभ्यागत अतिथि का अनुगमन करते हैं। इन अभ्यागत अतिथि की तृप्ति से ही इन लोगों की तृप्ति हो जाती है। अतिथि के निराश होने पर ये सभी निराश हो जाते हैं।।५१-५२।।

तस्मात्सर्वात्मना कान्त दुःखं त्यक्त्वा शमं व्रज।
कृत्वा तिष्ठ शुभां बुद्धिं धर्मकृत्यं समाचर।।५३।।
उपकारोऽपकाराश्च प्रवराविति संमतौ। उपकारिषु सर्वोऽपि करोत्युपकृतिं पुनः।।५४।।
अपकारिषु यः साधुः पुण्यभाक्स उदाहृतः।।५५।।

हे कान्त! तभी मेरा यह कहना है कि आप सर्वदा दुःख को छोड़कर शान्ति का आश्रय लीजिये। आपकी बुद्धि कल्याणकारी हो जाये। आप धर्ममार्ग का पालन करिये। मैं उपकारी तथा अपकारी, इन दोनों को ही श्रेष्ठ मानती हूं। उपकारी का उपकार तो सभी लोग करते हैं, लेकिन अपकारी जनों के साथ जो साधु व्यवहार करते हैं, वे ही वास्तविक पुण्यात्मा हैं।।५३-५५।।

कपोत उवाच

आवयोरनुरूपं च त्वयोक्तं साधु मन्यसे। किंतु वक्तव्यमप्यस्ति तच्छृणुष्व वरानने।।५६।।
सहस्रं भरते कश्चिच्छतमन्यो दशापरः। आत्मानं च सुखेनान्यो वयं कष्टोदरंभराः।।५७।।
गर्तधान्यधनाः केचित्कुशूलधनिनोऽपरे।
घटक्षिप्तधनाः केचिच्चञ्चुक्षिप्तधना वयम्।।५८।।
पूजयामि कथं श्रान्तमभ्यागतमिमं शुभे।।५९।।

कपोत कहता है—हे प्रिये! तुमने तो पति-पत्नी इन दोनों के अनुरूप कहा है। तुम्हारा मन्तव्य तो उत्तम है। इसमें तनिक सन्देह नहीं है। तथापि मुझे कुछ कहना है, उसे श्रवण करो। कोई एक हजार का, कोई सौ

का, कोई दस लोगों का भरण-पोषण करता है। कोई पुरुष अपना ही पोषण करता रहता है। तथापि अत्यन्त कष्ट के साथ कोई अपना पोषण करता है। कोई मात्र गर्त्तरूपी (भंडार) स्थान में रखे धान्य के धनी रहते हैं, कोई कुशूल (अन्न की बखार) मात्र के धान्य के धनी हो पाते हैं। कोई घट से रक्षित किये गये धान्य का धनी होता है। तथापि हम तो मात्र चोंच से लाये धान्य के धनी होते हैं। हे शुभे! मैं इस थके अतिथि का सत्कार कैसे कर सकूंगा?।।५६-५९।।

कपोत्युवाच

अग्निरापः शुभा वाणी तृणकाष्ठादिकं च यत्।
एतदप्यर्थिने देयं शीतार्तो लुब्धकस्त्वयम्।।६०।।

कपोती कहती है—यह व्याध अत्यन्त शीत से पीड़ित है। अतः आग, जल, शुभ वाणी तथा तृण-काष्ठादि जो कुछ मिले, वही अतिथि को हम दे सकते हैं।।६०।।

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा प्रियावाक्यं वृक्षमारुह्य पक्षिराट्। आलोकयामास तदा वह्निं दूरं ददर्श ह।।६१।।

स तु गत्वा वह्निदेशं चञ्चुनोल्मुकमाहरत्।
पुरोऽग्निं ज्वालयामास लुब्धकस्य कपोतकः।।६२।।
शुष्ककाष्ठानि पर्णानि तृणानि च पुनः पुनः।
अग्नौ निक्षेपयामास निशीथे स कपोतराट्।।६३।।
तमग्निं ज्वलितं दृष्ट्वा लुब्धकः शीतदुःखितः।
अवशानि स्वकाङ्गानिं प्रताप्य सुखमाप्तवान्।।६४।।
क्षुधाग्निना दह्यमानं व्याधं दृष्ट्वा कपोतकी।
मा मुञ्चस्व महाभाग इति भर्तारमब्रवीत्।।६५।।
स्वशरीरेण दुःखार्तं लुब्धकं प्रीणयामि तम्।
इष्टातिथीनां ये लोकास्तांस्त्वं प्राप्नुहि सुव्रत।।६६।।

ब्रह्मा कहते हैं—पक्षिराज कपोत ने पत्नी का कथन सुनकर तत्काल वृक्ष पर जाकर देखा कि दूर में कहीं अग्नि प्रज्वलित है। यह देख कर कपोत उड़ कर वहां गया तथा अपनी चोंच से एक जलता काठ लेकर लौटा। उसने उस ज्वलन्त काष्ठ से व्याध के पास अग्नि जला दिया। सूखी लकड़ी तथा सूखे तृणों-पत्तों से अग्नि जलने लगी। इस जलती अग्नि में कपोत अपनी चोंच से लाकर सूखा पत्ता तथा तृण इसी अग्नि में छोड़ रहा था। शीत से पीड़ित व्याध ने इस अग्नि से अपने अंगों को ताप कर शान्ति लाभ किया। तभी कपोती ने व्याध को भूखरूपी अग्नि से पीड़ित देख कर कपोत से कहा कि "हे महाभाग! मुझे आप पिंजड़े से मुक्त मत करो। मैं अपने शरीर से इस व्याध की भूख शान्त कर दूंगी। इस प्रकार उसे प्रसन्न करूंगी। हे सुव्रत! आप उन लोकों को प्राप्त करें, जो अतिथिपूजक पाते हैं।।६१-६६।।

कपोत उवाच

मयि तिष्ठति नैवायं तव धर्मो विधीयते। इष्टातिथिर्भवामीह अनुजानीहि मां शुभे॥६७॥

कपोत कहता है—हे शुभे! मेरे जीवित रहते तुमको ऐसा धर्माचरण करना उचित नहीं है। मुझे विदा करो। मैं ही अतिथि हेतु उसके प्रिय कार्य का अनुष्ठान करूंगा।।६७।।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वाऽग्निं त्रिरावर्त्य स्मरन्देवं चतुर्भुजम्।
विश्वात्मकं महाविष्णुं शरण्यं भक्तवत्सलम्॥६८॥
यथासुखं जुषस्वेति वदन्नग्निं तथाऽऽविशत्।
तं दृष्ट्वाऽग्नौ क्षिप्तजीवं लुब्धको वाक्यमब्रवीत्॥६९॥

ब्रह्मा कहते हैं—कपोत ने यह कहने के पश्चात् तीन बार अग्नि की प्रदक्षिणा किया तथा चतुर्भुज, विश्वात्मक, शरण्य, भक्तवत्सल महाविष्णु का स्मरण करके यह कहा—"मुझे ग्रहण करिये।" और वह अग्नि में प्रविष्ट हो गया। व्याध ने उसे अग्नि में प्राण रहित अवस्था में देख कर कहा—।।६८-६९।।

लुब्धक उवाच

अहो मानुषदेहस्य धिग्जीवितमिदं मम।
यदिदं पक्षिराजेन मदर्थे साहसं कृतम्॥७०॥

लुब्धक (व्याध) कहता है—मनुष्य देह वाला मेरा जीवन व्यर्थ ही है। मेरे इस शरीर के लिये ही इस पक्षिराज ने जीवन विसर्जित कर दिया।।७०।।

ब्रह्मोवाच

एवं ब्रुवन्तं तं लुब्धं पक्षिणी वाक्यमब्रवीत्॥७१॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे महाभाग! जब लुब्धक ने यह कहा, तब वह कपोती कहने लगी।।७१।।

कपोत्युवाच

मां त्वं मुञ्च महाभाग दूरं यात्येष मे पतिः॥७२॥

कपोती कहती है—तुम मुझे मुक्त कर दो। मेरे पति अत्यन्त दूर चले जा रहे हैं।।७२।।

ब्रह्मोवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा पञ्जरस्थां कपोतकीम्। लुब्धको मोचयामास तरसा भीतवत्तदा॥७३॥
साऽपि प्रदक्षिणं कृत्वा पतिमग्निं तदा जगौ॥७४॥

ब्रह्मा कहते हैं—व्याध कपोती का कथन सुनकर किंचित् भयभीत हो गया और उसने कपोती को पिंजड़े से छोड़ दिया। उस समय कपोती ने मुक्त होकर पति के दग्ध देह की प्रदक्षिणा किया तथा अग्नि में प्रवेश करते हुये कहा—।।७३-७४।।

कपोत्युवाच

स्त्रीणामयं परो धर्मो यद्भर्तुरनुवेशनम्। वेदे च विहितो मार्गः सर्वलोकेषु पूजितः॥७५॥
व्यालग्राही यथा व्यालं बिलादुद्धरते बलात्।
एवं त्वनुगता नारी सह भर्त्रा दिवं व्रजेत्॥७६॥
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च यानि रोमाणि मानुषे।
तावत्कालं वसेत्स्वर्गे भर्तारं याऽनुगच्छति॥७७॥

कपोती कहती है—पति का अनुगमन करना ही स्त्रियों हेतु सत्-मार्ग कहा गया है। लोक समाज भी इसी पथ को उत्तम कहता है। मदारी जिस प्रकार से बलात् सर्प को उसके बिल से बाहर निकाल लेता है, उसी प्रकार पतिपरायणा स्त्री भी पति का अनुगमन करके स्वर्गगामी हो जाती है। मनुष्य के देह में जो साढ़े तीन कोटि रोम होते हैं, ऐसी नारी उतने काल पर्यन्त स्वर्ग में निवास करती है।।७५-७७।।

नमस्कृत्वा भुवं देवान्गङ्गां चापि वनस्पतीन्।
आश्वास्य तान्यपत्यानि लुब्धकं वाक्यमब्रवीत्॥७८॥

यह कहने के अनन्तर कपोती ने गंगा, भूमि, देवगण, वनस्पति समूह को प्रणाम किया तथा वह अपने बच्चों को आश्वस्त करते हुये कहने लगी।।७८।।

कपोत्युवाच

त्वत्प्रसादान्महाभाग उपपन्नं ममेदृशम्। अपत्यानां क्षमस्वेह भर्त्रा यामि त्रिविष्टपम्॥७९॥

कपोती कहती है—हे महाभाग! यह तुम्हारी ही कृपा से मुझे यह सौभाग्य मिला है (कि मैं पति के साथ सहगमन कर रही हूं)। मैं अब अपने पति के साथ स्वर्ग जा रही हूं। मेरे बच्चों के प्रति सदय रहना।।७९।।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा पक्षिणी साध्वी प्रविवेश हुताशनम्।
प्रविष्टायां हुतवहे जयशब्दो न्यवर्तत॥८०॥
गगने सूर्यसंकाशं विमानमतिशोभनम्। तदाऽऽरूढौ सुरनिभौ दंपती ददृशे ततः॥८१॥
हर्षेण प्रोचतुरुभौ लुब्धकं विस्मयान्वितम्॥८२॥

ब्रह्मा कहते हैं—इतना कहकर वह साध्वी पक्षिणी अग्नि में प्रविष्ट हो गयी। उसके अग्नि में प्रवेश करते ही वहां जयध्वनि उठने लगी। उस समय वे पक्षी-दम्पति देवदम्पति के समान सूर्य की तरह वाले अति सुन्दर विमान पर बैठे परिलक्षित हो रहे थे। तदनन्तर उन्होंने हर्ष में भर कर उस विस्मयापन्न व्याध से कहा—।।८०-८२।।

दंपती ऊचतुः

गच्छावस्त्रिदशस्थानमापृष्टोऽपि महामते।
आवयोः स्वर्गसोपानमतिथिस्त्वं नमोऽस्तु ते॥८३॥

दम्पति कहते हैं—हे महामति! हम देवलोक जा रहे हैं। हम तुमसे विदा चाहते हैं। तुम अतिथि रूपेण हमारे लिये स्वर्ग के सोपान रूप हो (तुम्हारे ही कारण से हम प्राण त्याग द्वारा स्वर्गगामी हो सके)। हम तुमको प्रणाम करते हैं!।।८३।।

ब्रह्मोवाच

विमानवरमारूढौ तौ दृष्ट्वा लुब्धकोऽपि सः।
सधुनः पञ्जरं त्यक्त्वा कृताञ्जलिरभाषत॥८४॥

ब्रह्मा कहते हैं—उस समय जब उस व्याध ने पक्षीदम्पति को विमानारूढ़ देखा, तब उसने भी अपना धनुष-बाण दूर फेंक दिया। वह हाथ जोड़कर कहने लगा।।८४।।

लुब्धक उवाच

न त्यक्तव्यो महाभागौ देयं किंचिदजानते।
अहमत्रातिथिर्मान्यो निष्कृतिं वक्तुमर्हथः॥८५॥

व्याध कहता है—हे महाभाग! आप लोग मुझे न त्यागें। अज्ञानी को भी ज्ञान दीजिये। मैं यहां आप लोगों का अतिथि रहा हूं। जिससे मैं पापों से मुक्त हो सकूं, वह उपाय आप कहिये।।८५।।

दंपती ऊचतुः

गौतमीं गच्छ भद्रं ते तस्याः पापं निवेदय। तत्रैवाऽऽप्लवनात्पक्षं सर्वपापैर्विमोक्ष्यसे॥८६॥
मुक्तपापः पुनस्तत्र गङ्गायामवगाहने। अश्वमेधफलं पुण्यं प्राप्य पुण्यो भविष्यसि॥८७॥
सरिद्वरायां गौतम्यां ब्रह्मविष्ण्वीशसंभुवि।
पुनराप्लवनादेव त्यक्त्वा देहं मलीमसम्॥८८॥
विमानवरमारूढः स्वर्गं गन्ताऽस्यसंशयम्॥८९॥

दम्पति कहते हैं—तुम गौतमीतट पर जाओ। तुम्हारा मंगल हो। अपना सभी पाप वहां नदी में निवेदित करो। वहां एक पक्ष (१५ दिन) तक स्नान करके सर्वपाप रहित हो जाओगे। तदनन्तर तुम इस गंगा स्नान से पाप रहित होकर पवित्र अश्वमेध फल प्राप्त करोगे। तब तुम पुण्यात्मा हो जाओगे। सरिताओं में श्रेष्ठ गौतमी ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव से उत्पन्न हैं। पन्द्रह दिनों के बाद स्नान के बाद तुम जैसे ही एक स्नान करोगे, वैसे ही तुम यह पापदेह त्याग कर श्रेष्ठ विमान पर बैठ कर निश्चित रूप से स्वर्ग जाओगे। यह निःसंशय है।।८६-८९।।

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं ताभ्यां तथा चक्रे स लुब्धकः। विमानवरमारूढो दिव्यरूपधरोऽभवत्॥९०॥
दिव्यमाल्याम्बरधरः पूज्यमानोऽप्सरोगणैः। कपोतश्च कपोती च तृतीयो लुब्धकस्तथा।
गङ्गायाश्च प्रभावेण सर्वे वै दिवमाक्रमन्॥९१॥

ततः प्रभृति तत्तीर्थं कापोतमिति विश्रुतम्। तत्र स्नानं च दानं च पितृपूजनमेव च॥९२॥
जपयज्ञादिकं कर्म तदानन्त्याय कल्पते॥९३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कपोततीर्थवर्णनं नामाशीतितमोऽध्यायः॥८०॥
गौतमीमाहात्म्ये एकादशोऽध्यायः॥११॥



ब्रह्मा कहते हैं—व्याध ने उन दम्पति का कथन सुन कर वैसा ही कार्य सम्पन्न किया। तत्पश्चात् वह दिव्य रूप एवं दिव्य मालाओं से भूषित होकर और अप्सराओं से सेवित होकर गंगा के प्रभाव से उसी प्रकार स्वर्ग चला गया, जिस प्रकार कपोत-कपोती गये थे। तभी से यह तीर्थ कपोततीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है। यहां स्नान-दान-पितृपूजन तथा जप-यज्ञादि जो कुछ कर्म किया जाता है, वह सब अक्षय फलप्रद होता है॥९०-९३॥

॥अशीतितम अध्याय समाप्त॥



अथैकाशीतितमोऽध्यायः

स्कन्द चरित्र वर्णन, कुमारतीर्थ की उत्पत्ति

ब्रह्मोवाच

कार्तिकेयं परं तीर्थं कौमारमिति विश्रुतम्। यन्नामश्रवणादेव कुलवान् रूपवान्भवेत्॥१॥
निहते तारके दैत्ये स्वस्थे जाते त्रिविष्टपे। कार्तिकेयं सुतं ज्येष्ठं प्रीत्या प्रोवाच पार्वती॥२॥
यथासुखं भुङ्क्ष्व भोगांस्त्रैलोक्ये मनसः प्रियान्।
ममाऽज्ञया प्रीतमनाः पितुश्चैव प्रसादतः॥३॥

ब्रह्मा कहते हैं—कार्त्तिकेय अथवा कौमार नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ है। इसका नाम सुनने से मनुष्य कुलीन तथा रूपवान् हो जाता है। जब पूर्वकाल में तारकवध होने से देवता लोग स्वस्थ हो गये, तब पार्वती देवी ने प्रीति पूर्वक अपने ज्येष्ठ पुत्र कार्तिकेय से कहा कि "तुम मेरी आज्ञा से अब मनःप्रिय भोगों का उपभोग करो। त्रैलोक्य में मेरी आज्ञा से तथा अपने पिता शिव की कृपा से तुम संसार के सभी भोगों का भोग करना"॥१-३॥

एवमुक्तः स वैमात्रा विशाखो देवतास्त्रियः (?)।
यथासुखं बलाद्रेमे देवपत्न्योऽपि रेमिरे॥४॥

ततः संभुज्यमानासु देवपत्नीषु नारद। नाशक्नुवन्वारयितुं कार्तिकेयं दिवौकसः॥५॥
ततो निवेदयामासुः पार्वत्यै पुत्रकर्म तत्।
असकृद्वार्यमाणोऽपि मात्रा देवैः स शक्तिधृक्॥६॥
नैवासावकरोद्वाक्यं स्त्रीष्वासक्तस्तु षण्मुखः।
अभिशापभयाद्भीता पार्वती पर्यचिन्तयत्॥७॥

माता का यह कथन सुनकर कार्त्तिकेय सुख पूर्वक तथा बलात् देवस्त्रियों के साथ रमण करने लगे तथा देवपत्नियां भी उनके साथ रतिक्रीड़ा में आसक्त हो गयीं। हे नारद! तभी से सभी देवपत्नियां कार्त्तिकेय द्वारा उपभोग की जाने लगीं। देवता लोग किसी भी प्रकार से कार्त्तिकेय को इस कार्य से रोक नहीं सके। इससे त्रस्त होकर सभी देवता भगवती पार्वती के पास जाकर उनके पुत्र का यह अपकृत्य भगवती से कहने लगे। लेकिन वे षडानन स्कन्ददेव अत्यन्त शक्तिशाली थे तथा उन स्त्रियों के प्रति वे इतने आसक्त हो गये थे, जिसके कारण भगवती पार्वती माता और अन्य देवताओं के द्वारा पुनः-पुनः रोके जाने पर भी उन्होंने सबकी बातों को अनसुनी कर दिया। यह देख कर माता पार्वती ने अभिशाप भय से व्याकुल होकर तथा पुत्रस्नेह के कारण चिन्तातुर होकर विचार किया।।४-७।।

पुत्रस्नेहात्तथैवेशा देवानां कार्यसिद्धये। देवपत्न्यश्चिरं रक्ष्या इति मत्वा पुनः पुनः॥८॥
यस्यां तु रमते स्कन्दः पार्वती त्वपि तादृशी। तद्रूपमात्मनः कृत्वा वर्तयामास पार्वती॥९॥
इन्द्रस्य वरुणस्यापि भार्यामाहूय षण्मुखः। यावत्पश्यति तस्यां तु मातृरूपमपश्यत॥१०॥

उन्होंने विचार किया कि पुत्रस्नेह तो है, तथापि देवगण के इस कार्य को सिद्ध करते हुये देवस्त्रियों की भी रक्षा करना आवश्यक है। यह निश्चय करके वे स्वयं अनेक रूपों में विभक्त हो गयीं। स्कन्ददेव जिन-जिन स्त्रियों के प्रति आसक्त थे, पार्वती माता स्वयं उन-उन रमणीय स्थानों में रहने लगीं। इधर स्कन्ददेव इन्द्र-वरुण की अथवा अन्य देवपत्नियों की इच्छा करके उनसे रमण हेतु उद्यत होते थे, वे वहां देखते थे कि वे रमणियां उनकी माता भगवती पार्वती के रूप में विराजमान हैं!।।८-१०।।

तामपास्य नमस्याथ पुनरन्यामथाऽऽह्वयत्।
तस्यां तु मातृरूपं स प्रेक्ष्य लज्जामुपेयिवान्॥११॥
एवं बह्वीषु तद्रूपं दृष्ट्वा मातृमयं जगत्। इति सञ्चिन्त्य गाङ्गेयो वैराग्यमगमत्तदा॥१२॥

कार्त्तिकेय जिस किसी भी नारी को वहां देखते थे, उसे अपनी माता के रूप में पाकर लज्जितावस्था में उसे प्रणाम करके अन्य रमणी को बुलाते। तथापि इस रमणी को भी वे अपनी माता की मूर्त्ति के रूप वाला देखते! वे इस प्रकार लज्जा से अवनत हो गये। जब स्कन्ददेव ने सभी स्त्रियों को अपनी मातृमूर्त्ति रूप देखा, तब उन षडानन स्कन्द को समस्त जगत् मातृमय प्रतीत होने लगा। इससे उनमें वैराग्य का संचार हो गया!।।११-१२।।

स तु मातृकृतं ज्ञात्वा प्रवृत्तस्य निवर्तनम्। निवार्यश्चेदहं भोगात्किंतु पूर्वं प्रवर्तितः॥१३॥

अब उन्होंने समझा यह मेरी भोगनिवृत्ति मेरी माता भगवती के ही कारण हो सकी है। उन्होंने और भी

विचार किया कि यदि माता यही चाहती हैं, तब उन्होंने पूर्वकाल में क्यों मुझे भोगों में-प्रवृत्त होने की प्रेरणा दिया था?।।१३।।

तस्मान्मातृकृतं सर्वं मम हास्यास्पदं त्विति।
लज्जया परया युक्तो गौतमीमगमत्तदा॥१४॥

इयं च मातृरूपा मे शृणोतु मम भाषितम्। इतः स्त्रीनामधेयं यन्मम मातृसमं मतम्॥१५॥
एवं ज्ञात्वा लोकनाथः पार्वत्या सह शङ्करः। पुत्रं निवारयामास वृत्तमित्यब्रवीद्गुरुः॥१६॥

ततः सुरपतिः प्रीतः किं ददामीति चिन्तयन्।
कृताञ्जलिपुटः स्कन्दः पितरं पुनरब्रवीत्॥१७॥

"अतः माता द्वारा किया यह सब मेरी हंसी का कारण हो गया है।" यह विचार करने के पश्चात् षडानन अत्यन्त लज्जित होकर गौतमी नदी के जल में प्रवेश करके कहने लगे कि "यह गौतमी नदी मातृरूपा हैं। आप मेरा कथन सुनिये। आज से जो कुछ स्त्रीलिंग नाम वाला है, वह सब मेरे लिये माता के समान होगा।" लोकपति शंकर ने पुत्र का जब यह अभिमत सुना, तब वे भगवती के साथ वहां आये तथा उनको निवारित किया। भगवान् ने तब स्कन्द से कहा कि "जो घटित होना था, वह सब तो हो गया।" तदनन्तर भगवान् विचार करने लगे कि इन षडानन को क्या प्रदान करूं? तभी स्कन्द ने हाथ जोड़ा तथा पिता से निवेदन करने लगे।।१४-१७।।

स्कन्द उवाच

सेनापतिः सुरपतिस्तव पुत्रोऽहमित्यपि। अलमेतेन देवेश किं वरैः सुरपूजित॥१८॥

अथवा दातुकामोऽसि लोकानां हितकाम्यया।
याचेऽहं नाऽऽत्मना देव तदनुज्ञातुमर्हसि॥१९॥

महापातकिनः केचिद्गुरुदाराभिगामिनः। अत्राऽऽप्लवनमात्रेण धौतपापा भवन्तु ते॥२०॥

आप्नुवन्तूत्तमां जातिं तिर्यञ्चोऽपि सुरेश्वर।
कुरूपो रूपसम्पत्तिमत्र स्नानादवाप्नुयात्॥२१॥

स्कन्ददेव कहते हैं—हे देवेन्द्र! प्रभो! सुरपूजित! मैं तो देव सेनापति होकर विराजित तथा आपका ही पुत्र हूं। यही सब मेरे लिये बहुत है। हे देवेश! मुझे अन्य वर लेने का क्या प्रयोजन? तथापि यदि आप वर देना ही चाहते हों, तब हे देव! मैं अपने लिये नहीं, प्रत्युत जगत् के हितार्थ कुछ मांगता हूं। आप उसे प्रदान करें। मेरा निवेदन यह है कि जो गुरुपत्नीगामी, महापापी हैं, वे इस गौतमी जल में स्नान मात्र से ही पापमुक्त हो जायें। हे सुरेश्वर! यहां दान करने वाले तिर्यक् प्राणी भी उच्च जाति लाभ करें। वे अमित रूप-सम्पदा लाभ करें।।१८-२१।।

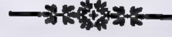
ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति तं शम्भुः प्रत्यनन्दत्सुतेरितम्।

ततः प्रभृति तत्तीर्थं कार्तिकेयमिति श्रुतम्।
तत्र स्नानं च दानं च सर्वक्रतुफलप्रदम्॥२२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कुमारतीर्थवर्णनं नामैकाशीतितमोऽध्यायः॥८१॥

गौतमीमाहात्म्ये द्वादशोऽध्यायः॥१२॥



ब्रह्मा कहते हैं—शम्भुपुत्र! 'यही हो।' तभी से यह तीर्थ कार्त्तिकेय नाम वाला होकर प्रसिद्ध है। यहां स्नान-दान करने से से सर्वयज्ञ फल लाभ होगा॥२२॥

॥एकाशीतितम अध्याय समाप्त॥



अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः

कृत्तिकातीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

यत्ख्यातं कृत्तिकातीर्थं कार्तिकेयादनन्तरम्। तस्य श्रवणमात्रेण सोमपानफलं लभेत्॥१॥

पुरा तारकनाशाय भवरेतोऽपिबत्कविः।
रेतोगर्भं कविं दृष्ट्वां ऋषिपत्न्योऽस्पृहन्मुने॥२॥
सप्तर्षीणामृतुस्नातां वर्जयित्वा त्वरुन्धतीम्।
तासु गर्भः समभवत्षट्सु स्त्रीषु तदाऽग्नितः॥३॥
तप्यमानास्तु शोभिष्ठा (?) ऋतुस्नातास्तु ता मुने।
किं कुर्मः क्व नु गच्छामः किं कृत्वा सुकृतं भवेत्॥४॥

ब्रह्मा कहते हैं—कार्त्तिकेय तीर्थ के पश्चात् कृत्तिकातीर्थ विख्यात है। यहां स्नान मात्र से ही सोमपान फललाभ होता है। हे मुनिवर! पूर्वकाल में तारक वध हेतु हुताशन अग्नि ने भगवान् भव शंकर का वीर्यपान कर लिया था। अग्नि की यह अवस्था देख कर ऋषिपत्नियां इच्छा करने लगीं। उस काल में ऋतुस्नाता ऋषिपत्नियों में से देवी अरुन्धती के अतिरिक्त सभी ऋषिपत्नियों ने यह इच्छा किया था। उस समय छः ऋषिपत्नियों ने इच्छामात्र से अग्नि के गर्भ को ग्रहण किया। हे मुनिप्रवर! ऋतुस्नाता वे छहों ऋषिपत्नीगण तपःप्रवीण एवं वरिष्ठ थीं। गर्भ रह गया देखकर वे ऋतुस्नात रूपसी ऋषिपत्नियां अनुतप्त होकर विचार करने लगीं कि हम कहां जायें, हम क्या करें तथा किस कर्म से हमारा कल्याण हो?॥१-४॥

इत्युक्त्वा ता मिथो गङ्गां व्यग्रा गत्वा व्यपीडयन्।
ताभ्यस्ते निःसृता गर्भाः फेनरूपास्तदाऽम्भसि॥५॥
अम्भसा त्वेकतां प्राप्ता वायुना सर्व एव हि।
एकरूपस्तदा ताभ्यः षण्मुखः समजायत॥६॥
स्त्रावयित्वा तु तान्गर्भानृषिपत्न्यो गृहान्ययुः।
तासां विकृतरूपाणि दृष्ट्वा ते ऋषयोऽब्रुवन्॥७॥
गम्यतां गम्यतां शीघ्रं स्वैरी वृत्तिर्न युज्यते।
स्त्रीणामिति ततो वत्स निरस्ताः पतिभिस्तु ताः॥८॥

यह विचार करते वे सभी ऋषिपत्नियां व्यग्रता के साथ गंगा में प्रविष्ट हो गईं। वे वहां अपने पेट दबाने लगीं। इससे उनका गर्भ फेनरूपी होकर बहिर्गत् हो गया। वह फेन जल में तैरते हुये वायु के कारण एक में मिल गया। यह गर्भपात करके ऋषिपत्नियां अपने आश्रम चली गयीं। इससे एकरूपी षडाननदेव ने जन्म लिया। उनकी विकृत आकृति देखकर ऋषियों ने कहा कि "चली जाओ, शीघ्र तुम सब यहां से जाओ। स्त्रियों का स्वेच्छाचार कभी भी सहनीय नहीं है।" हे वत्स नारद! वे ऋषिपत्नियां अपने-अपने पति द्वारा बहिष्कृत कर दी गयीं!।।५-८।।

ततो दुःखं समाविष्टास्त्यक्ताः स्वपतिभिश्च षट्।
ता दृष्ट्वा नारदः प्राह कार्तिकेयो हरोद्भवः॥९॥
गाङ्गेयोऽग्निभवश्चेति विख्यातस्तारकान्तकः।
तं यान्तु न चिरादेव प्रीतो भोगं प्रदास्यति॥१०॥

उस समय वे छः ऋषिपत्नियां दुःख से अभिभूत हो गयीं वहां आये नारद ने उनको देख कर कहा— "जो गांगेय शिवपुत्र, कार्त्तिकेय तारकान्तक के नाम से प्रसिद्ध हैं, वे गांगेय तथा आग्नेय (गंगापुत्र तथा अग्निपुत्र) कहे जाते हैं। आप ऋषिपत्नियां उनकी शरण लीजिये। वे प्रसन्न होकर इष्टफल देते हैं"।।९-१०।।

देवर्षेर्वचनादेव समभ्येत्य च षण्मुखम्।
कृत्तिकाः स्वयमेवैतद्यथावृत्तं न्यवेदयन्॥११॥
ताभ्यो वाक्यं कृत्तिकाभ्यः कार्तिकेयोऽनुमन्य च।
गौतमीं यान्तु सर्वाश्च स्नात्वाऽऽपूज्य महेश्वरम्॥१२॥
एष्यामि चाहं तत्रैव यास्यामि सुरमन्दिरम्।
तथेत्युक्त्वा कृत्तिकाश्च स्नात्वा गङ्गां च गौतमीम्॥१३॥
देवेश्वरं च संपूज्य कार्तिकेयानुशासनात्। देवेश्वरप्रसादेन प्रययुः सुरमन्दिरम्॥१४॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं कृत्तिकातीर्थमुच्यते।
कार्तिक्यां कृत्तिकायोगे तत्र यः स्नानमाचरेत्॥१५॥

सर्वक्रतुफलं प्राप्य राजा भवति धार्मिकः।
तत्तीर्थस्मरणं वाऽपि यः करोति शृणोति च।
सर्वपापविनिर्मुक्तो दीर्घमायुरवाप्नुयात्॥१६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये कृत्तिकातीर्थवर्णनं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः॥८२॥
गौतमीमाहात्म्ये त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥



देवर्षि नारद का वचन सुनकर वे ऋषिपत्नियां षडानन देव के पास गईं। उन्होंने अपना यथायथ वृत्तान्त उनसे निवेदित किया। कार्त्तिकेय ने उन कृत्तिकाओं (ऋषिपत्नियों) के मुख से यह सब वृत्तान्त श्रवण करके कहा—"आप सभी गौतमी तट पर जाकर वहां स्नान तथा शिवार्चन करें। मैं वहीं आ जाऊंगा। तब बाद में देवलोक जाना है।" उन कृत्तिकाओं ने कार्त्तिकेय के कथनानुरूप गौतमीगंगा जाकर वहां स्नान सम्पन्न किया। उन्होंने कृत्तिका नक्षत्र युता कार्त्तिक पूर्णिमा पर वहां स्नान किया था।

इससे देवदेव की कृपा से वे सभी देवलोक में चली गयीं। तभी से यही स्थान कृत्तिकातीर्थ कहा गया। कार्तिक मास में कृत्तिका नक्षत्र के दिन जो व्यक्ति यहां स्नान करता है, उसे समस्त यज्ञफल मिलता है। वह धार्मिक राजा होकर जन्म लेता है। जो व्यक्ति इस तीर्थ का स्मरण करते अथवा नाम सुनते हैं, वे लोग सर्व पाप रहित होकर दीर्घायु हो जाते हैं।।११-१६।।

।।द्वाशीतितम अध्याय समाप्त।।



अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः

दशाश्वमेधतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

दशाश्वमेधिकं तीर्थं तच्छृणुष्व महामुने। यस्य श्रवणमात्रेण हयमेधफलं लभेत्॥१॥
विश्वकर्मसुतः श्रीमान्विश्वरूपो महाबलः। तस्यापि प्रथमः पुत्रस्तत्पुत्रो भौवनो विभुः॥२॥
पुरोधाः कश्यपस्तस्य सर्वज्ञानविशारदः। तमपृच्छन्महाबाहुर्भौवनः सार्वभौवनः॥३॥
यक्ष्येऽहं हयमेधैश्च युगपद्दशभिर्मुने। इत्यपृच्छद्गुरुं विप्रं क्व यक्ष्यामि सुरानिति॥४॥
सोऽवदद्देवयजनं तत्र तत्र नृपोत्तम। यत्र यत्र द्विजश्रेष्ठा प्रावर्तन्त महाक्रतून्॥५॥
तत्राभवन्नृषिगणा आर्त्विज्ये मखमण्डले। युगपद्दशमेधानि प्रवृत्तानि पुरोधसा॥६॥

पूर्णतां नाऽऽययुस्तानि दृष्ट्वा चिन्तापरो नृपः। विहाय देवयजनं पुनरन्यत्र तान्क्रतून्॥७॥
उपाक्रमत्तथा तत्र विघ्नदोषास्तमाययुः। दृष्ट्वाऽपूर्णांस्ततो यज्ञान् राजा गुरुमभाषत॥८॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे महामुनि! अब दशाश्वमेध का वर्णन करे, जो उत्तम तीर्थ है। इसके श्रवण मात्र से ही अश्वमेध यज्ञफल लाभ होता है। विश्वकर्मा के पुत्र थे श्रीमान् विश्वरूप। उनका पुत्र था प्रथम। उसका पुत्र था विभु भौवन। सर्वविद्यानिधान कश्यप मुनि उसके पुरोहित थे। भौवन ने सार्वभौम नरेश होकर कश्यप मुनि से प्रश्न किया कि "हे मुनिवर! मैं एक साथ दस अश्वमेध यज्ञ करूंगा। लेकिन यह कहां सम्पन्न करूं? आप ही यज्ञस्थल का निर्णय करिये।" यह सुन कर कश्यप मुनि ने कहा—"श्रेष्ठ ब्राह्मणवृन्द ने पूर्वकाल में जहां-जहां महायज्ञ किया था, वहीं-वहीं देवता का यजन विहित कहा जाता है।" यह सुनकर राजा ने उन निर्दिष्ट स्थानों पर यज्ञ प्रारम्भ किया था। अनेक ऋषिगण ऋत्विक् कर्म में नियुक्त किये गये थे। पुरोहितों की प्रेरणा से एक साथ राजा ने १० यज्ञ प्रारम्भ किया। तथापि वहां अनेक विघ्न भी होने लगे थे। यह देखकर राजा ने अपने यज्ञों को अपूर्ण होता जान कर पुरोहित तथा गुरु से कहा—॥१-८॥

राजोवाच

देशदोषात्कालदोषान्मम दोषात्तवापि वा।
पूर्णतां नाऽऽप्नुवन्ति स्म दशमेधानि वाजिनः॥९॥

राजा कहते हैं—मेरे द्वारा प्रारम्भ किये ये दस अश्वमेधयज्ञ देश-काल के किंवा मेरे अथवा आपके दोषों से पूर्ण नहीं हो पा रहे हैं॥९॥

ब्रह्मोवाच

ततश्च दुःखितो राजा कश्यपेन पुरोधसा। गीष्पतेर्भ्रातरं ज्येष्ठं गत्वा संवर्तमूचतुः॥१०॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब राजा तथा पुरोहित दुःखी होकर बृहस्पति के बड़े भाई संवर्त्त से जाकर कहने लगे॥१०॥

कश्यपभौवनावूचतुः

भगवन्युगपत्कार्याण्यश्वमेधानि मानद। दश संपूर्णतां यान्ति तं देशं तं गुरुं वद॥११॥

महर्षि कश्यप तथा राजा भौवन कहते हैं—हे प्रभो! हे मान दाता! हम एक साथ दस अश्वमेधयज्ञ कर रहे हैं। ये यज्ञ अनुष्ठित होकर जिस प्रकार सुसम्पूर्ण हो सके, आप उसके देश तथा योग्य गुरु का निर्देश दीजिये॥११॥

ब्रह्मोवाच

ततो ध्यात्वा ऋषिश्रेष्ठः संवर्तो भौवनं तदा। अब्रवीद्गच्छ ब्रह्माणं गुरुं देशं वदिष्यति॥१२॥

भौवनोऽपि महाप्राज्ञः कश्यपेन महात्मना।
आगत्य मामब्रवीच्च गुरुं देशादिकं च यत्॥१३॥

ततोऽहमब्रवं पुत्र भौवनं कश्यपं तथा। गौतमीं गच्छ राजेन्द्र स देशः क्रतुपुण्यवान्॥१४॥

अयमेव गुरुः श्रेष्ठं कश्यपो वेदपारगः। गुरोरस्य प्रसादेन गौतम्याश्च प्रसादतः॥१५॥
एकेन हयमेधेन तत्र स्नानेन वा पुनः। सेत्स्यन्ति तत्र यज्ञाश्च दशमेधानि वाजिनः॥१६॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर ऋषिप्रवर संवर्त्त ने तब ध्यान करके राजा से कहा—"तुम गुरु ब्रह्मा के यहां जाओ। वे ही तुम्हारे यज्ञार्थ उचित देश निर्धारित करेंगे।" तब महाप्राज्ञ भौवन महात्मा कश्यप के साथ मेरे पास आये तथा राजा ने मुझसे यज्ञार्थ गुरु एवं उचित देश की जिज्ञासा किया। हे पुत्र नारद! तब मैंने राजा तथा महर्षि कश्यप से कहा—"हे राजेन्द्र तथा मुनीन्द्र! तुम लोग गौतमीतट पर जाओ। वह स्थान यज्ञपुण्य से पूर्ण है। तुमको अलग गुरु की आवश्यकता ही नहीं है। ये महावेदज्ञ कश्यप ही तुम्हारे गुरु हैं। इन गुरु की कृपा तथा गौतमीगंगा के प्रसाद से तुम्हारा एक ही अश्वमेध सम्पन्न होने से ही तुमको दस अश्वमेध यज्ञफल प्राप्त हो जायेगा"।।१२-१६।।

तच्छ्रुत्वा भौवनो राजा गौतमीतीरमभ्यगात्।
कश्यपेन सहायेन हयमेधाय दीक्षितः॥१७॥
ततः प्रवृत्ते यज्ञेशे हयमेधे महाक्रतौ। संपूर्णे तु तदा राजा पृथिवीं दातुमुद्यतः॥१८॥
ततोऽन्तरिक्षे वागुच्चैरुवाच नृपसत्तमम्। पूजयित्वा स्थितं विप्रानृत्विजोऽथ सदस्पतीन्॥१९॥

राजा भौवन यह सुनकर महर्षि कश्यप के साथ गौतमी नदी के पास गये तथा वहां जाकर राजा यज्ञार्थ दीक्षित हो गये। यह यज्ञराज अश्वमेध वहां यथाकाल सम्पन्न हो गया। तब राजा समस्त पृथिवी दानार्थ उद्यत हो गये थे। तभी वहां एक आकाशवाणी उत्थित होकर विप्रों, ऋत्विजों तथा सदस्यों को सम्मानित करती कहने लगी।।१७-१९।।

आकाशवागुवाच

पुरोधसे कश्यपाय सशैलवनकाननाम्। पृथिवीं दातुकामेन दत्तं सर्वं त्वया नृप॥२०॥
भूमिदानस्पृहां त्यक्त्वा अन्नं देहि महाफलम्।
नान्नदानसमं पुण्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते॥२१॥
विशेषतस्तु गङ्गायाः श्रद्धया पुलिने मुने। त्वया तु हयमेधोऽयं कृतः सबहुदक्षिणः।
कृतकृत्योऽसि भद्रं ते नात्र कार्या विचारणा॥२२॥

आकाशवाणी ने कहा—हे राजन्! यह जो तुम अपने पुरोहित कश्यप को वन-पर्वत-काननों सहित पृथिवी दान करना चाहते हो, इस इच्छा से ही तुमने सब दे दिया। अतः भूमिदान का संकल्प त्यागो और महाफलप्रद अन्नदान करो। त्रैलोक्य में विशेषतः गंगातट पर अन्नदान के समान पुण्य नहीं है। श्रद्धा पूर्वक अन्नदान से जो असीम पुण्य होगा, उसे क्या कहा जाये? तुमने अनेक दक्षिणा वाले इस यज्ञ को सम्पन्न कर दिया, इससे तुम कृतार्थ हो गये। तुम्हारा मंगल निश्चित है। इसमें अन्यथा विचार मत करो।।२०-२२।।

ब्रह्मोवाच

तथाऽपि दातुकामं तं मही प्रोवाच भौवनम्॥२३॥

पृथिव्युवाच

विश्वकर्मज सार्वभौम मा मां देहि पुनः पुनः।
निमज्जेऽहं सलिलस्य मध्ये तस्मान्न दीयताम्॥२४॥

ब्रह्मा कहते हैं—इस आकाशवाणी के अनन्तर भी राजा भूमिदान में प्रवृत्त थे। तब मही ने स्वयं राजा से कहा—"हे विश्वकर्मपुत्र! सार्वभौम राजन्! आप मुझ पृथिवी का दान न करें। मैं जल में डूब जाऊंगी। अतः आप दान करने से निवृत्त हो जायें।।२३-२४।।

ब्रह्मोवाच

ततश्च भौवनो भीतः किं देयमिति चाब्रवीत्।
पुनश्चोवाच सा पृथ्वी भौवनं ब्राह्मणैर्वृतम्॥२५॥

ब्रह्मा कहते हैं—राजा ने तब भयभीत होकर यह विचार किया "अब क्या दान करूं?" तब पृथिवी ने उनसे ब्राह्मणों के सामने कहा—।।२५।।

भूम्युवाच

तिला गावो धनं धान्यं यत्किचिद्गौतमीतटे। सर्वं तदक्षयं दानं किं मां भौवन दास्यसि॥२६॥
गङ्गातीरं समाश्रित्य ग्रासमेकं ददाति यः। तेनाहं सकला दत्ता किं मां भौवन दास्यसि॥२७॥

पृथिवी कहती हैं—हे राजा भौवन! इस गौतमीतट पर तिल, गौ, धन, धान्य, अन्न अथवा जो कुछ भी दान किया जाता है, वह सभी अक्षय हो जाता है। इस नदी के तट पर जो मनुष्य मात्र एक ग्रास भी दान करते हैं, मानों उसने मुझे ही पूर्णतः दान कर दिया। अतः हे भौवन राज! मेरा दान क्यों कर रहे हो?।।२६-२७।।

ब्रह्मोवाच

तद्भुवो, वचनं श्रुत्वा भौवनः सार्वभौवनः।
तथेति मत्वा विप्रेभ्यो ह्यन्नं प्रादात्सुविस्तरम्॥२८॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं दशाश्वमेधिकं विदुः। दशानामश्वमेधानां फलं स्नानादवाप्यते॥२९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये दशाश्वमेधतीर्थवर्णनं नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः॥८३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥



ब्रह्मा कहते हैं—सार्वभौम राजा भौवन ने धरती देवी का यह कथन सुनकर सहमत हो गये। उन्होंने ब्राह्मणों को प्रचुर दान दिया। तभी से वह तीर्थ दशाश्वमेधिक तीर्थ के नाम से जाना जाता है। वहां स्नान करने से दस अश्वमेध यज्ञफल मिलता है।।२८-२९।।

।।त्र्यशीतितम अध्याय समाप्त।।



अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः

पैशाचतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

पैशाचं तीर्थमपरं पूजितं ब्रह्मवादिभिः। तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि गौतम्या दक्षिणे तटे॥१॥
गिरिर्ब्रह्मगिरेः पार्श्वे अञ्जनो नाम नारद। तस्मिञ्शैले मुनिवर शापभ्रष्टा वराप्सरा॥२॥
अञ्जना नाम तत्राऽऽसीदुत्तमाङ्गेन वानरी। केसरी नाम तद्भर्ता अद्रिकेति तथाऽपरा॥३॥

साऽपि केसरिणो भार्या शापभ्रष्टा वराप्सरा।
उत्तमाङ्गेन मार्जारी साऽप्यास्तेऽञ्जनपर्वते॥४॥

ब्रह्मा कहते हैं—उसके पश्चात् पैशाचतीर्थ है। यह ब्रह्मवादियों द्वारा पूजित है। गौतमी नदी के दक्षिण तीर्थ पर स्थित इस तीर्थ का स्वरूप सुनो। हे नारद! ब्रह्मगिरि के पार्श्व में अंजन पर्वत है। अंजना नामक एक प्रधान अप्सरा शापभ्रष्ट होकर यहां रहती थी। उसका चेहरा देख कर लगता था कि वह वानरी है। उसके पति का नाम था केशरी। इस केशरी की अन्य पत्नी का नाम था अद्रिका। अद्रिका भी शापभ्रष्टा उत्तम अप्सरा थी। इसका चेहरा बिल्ली जैसा था। केशरी की ये पत्नियां उसी अंजनगिरि पर रहती थीं।।१-४।।

दक्षिणार्णवमभ्यगात्केसरी लोकविश्रुतः। एतस्मिन्नन्तरेऽगस्त्योऽञ्जनं पर्वतमभ्यगात्॥५॥

अञ्जना चाद्रिकं चैव अगस्त्यमृषिसत्तमम्।
पूजयामासतुरुभे यथान्यायं यथासुखम्॥६॥

ततः प्रसन्नो भगवानाहोभे व्रियतां वरः। ते आहतुरुभेऽगस्त्यं पुत्रौ देहि मुनीश्वर॥७॥

सर्वेभ्यो बलिनौ श्रेष्ठौ सर्वलोकोपकारकौ।
तथेत्युक्त्वा मुनिश्रेष्ठो जगामाऽऽशां स दक्षिणाम्॥८॥

एक बार अति प्रसिद्ध केसरी दक्षिण सागर तट पर गये। इसी समय ऋषिप्रवर अगत्स्य अंजन पर्वत आये थे। उस समय अद्रिका एवं अंजना ने ऋषिसत्तम अगत्स्य की सेवा-सुश्रूषा सम्पन्न किया था। ऋषि ने प्रसन्न होकर कहा—"वर मांगो।" केशरी की इन पत्नीद्वय ने कहा—"हे मुनीश्वर! आप हमें सबसे बली और सर्वलोक के हितकामी दो पुत्र प्रदान करिये।" मुनिप्रवर अगत्स्य ने यह सुनकर "तथास्तु" कहा तथा वे दक्षिण दिशा चले गये।।५-८।।

ततः कदाचित्ते काले अञ्जना चाद्रिका तथा।
गीतं नृत्यं च हास्यं च कुर्वत्यौ गिरिमूर्धनि॥९॥
वायुश्च निर्ऋतिश्चापि ते दृष्ट्वा सस्मितौ सुरौ।
कामाक्रान्तधियौ चोभौ तदा सत्वरमीयतुः॥१०॥

इस घटना के पश्चात् अद्रिका तथा अंजना उस पर्वत पर नृत्य-गीत एवं हास्याभिनय करने पहुंच गयीं।

उस समय वायु एवं निर्ऋति ने इन दोनों कन्याओं को देखा। वे मुस्कराते हुये कामाक्रान्त मन से शीघ्र उन दोनों कन्याओं के पास पहुंचे।।९-१०।।

भार्ये भवेतामुभयोरावां देवौ वरप्रदौ। ते अप्यूचतुरस्त्वेतद्रेमाते गिरिमूर्धनि॥११॥
अञ्जनायां तथा वायोर्हनुमान्समजायत। अद्रिकायां च निर्ऋतेरद्रिर्नाम पिशाचराट्॥१२॥
पुनस्ते आहतुरुभे पुत्रौ जातौ मुनेर्वरात्। आवयोर्विकृतं रूपमुत्तमाङ्गेन दूषितम्॥१३॥
शापाच्छचीपतेस्तत्र युवामाज्ञातुमर्हथः। ततः प्रोवाच भगवान्वायुश्च निर्ऋतिस्तथा॥१४॥
गौतम्यां स्नानदानाभ्यां शापमोक्षो भविष्यति।
इत्युक्त्वा तावुभौ प्रीतौ तत्रैवान्तरधीयताम्॥१५॥

उन्होंने कन्याओं से कहा कि तुम दोनों हमारी पत्नी हो जाओ। हम वरप्रद देवता हैं। उन कन्याओं ने यह स्वीकार कर लिया और दोनों कन्या उन दोनों देवगण के साथ विहार करने लगीं। तब अंजना के गर्भ से वायु ने हनुमान को उत्पन्न किया। उधर अद्रिका के गर्भ से निर्ऋति ने अद्रि को जन्म दिया। यह एक उत्तम पिशाच था। कन्याओं ने वायु एवं निर्ऋति से कहा कि "मुनि के वर से आप लोगों को पुत्र उत्पन्न तो हो गये तथापि हम दोनों स्त्रियों के मुख इन्द्र शाप से दूषित तथा विकृत हैं। आप हमारा शापमोचन करें।" यह सुनकर भगवान् वायु तथा निर्ऋति ने कहा—"तुम लोग गौतमी नदी के तट पर जाओ। वहां स्नान-दान करने से शापमुक्ति मिलेगी।" यह कहकर वायु तथा निर्ऋति अन्तर्ध्यान हो गये।।११-१५।।

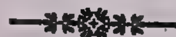
ततोऽञ्जनां समादाय अद्रिः पैशाचमूर्त्तिमान्।
भ्रातुर्हनुमतः प्रीत्यै स्नापयामास मातरम्॥१६॥
तथैव हनुमान्गङ्गामादायाद्रिमतित्वरन्। मार्जाररूपिणीं नीत्वा गौतम्यास्तीरमाप्तवान्॥१७॥

तत्पश्चात् हनुमान को प्रसन्न करने के उद्देश्य से पिशाचमूर्त्ति अद्रि विमाता अंजना को लेकर गया तथा अंजना को गौतमी में स्नान कराया। इस प्रकार हनुमान ने अपनी विमाता अद्रिका को जो मार्जाररूपा थी, ले जाकर गौतमी में स्नान कराया।।१६-१७।।

ततः प्रभृति तत्तीर्थं पैशाचं चाऽऽञ्जनं तथा।
ब्रह्मणो गिरिमासाद्य सर्वकामप्रदं शुभम्॥१८॥
योजनानां त्रिपञ्चाशन्मार्जारं पूर्वतो भवेत्।
मार्जारसंज्ञितात्तस्माद्धनूमन्तं वृषाकपिम् (?)॥१९॥
फेनासङ्गममाख्यातं सर्वकामप्रदं शुभम्। तस्य स्वरूपं व्युष्टिश्च तत्रैव प्रोच्यते शुभा॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पैशाचतीर्थवर्णनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः॥८४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चदशोऽध्यायः॥१५॥



तभी से यह तीर्थ पैशाच एवं अंजन नाम से विख्यात हो गया। सर्वकामप्रद ब्रह्मगिरि से लगाकर पूर्व

की ओर का ५३ योजन भाग मार्जार कहा गया है। उसके बाद का स्थान हनुमान (वृषाकपि) तीर्थ कहा गया है। इन दोनों स्थान का गौतमी संगम स्थल फेना संगम सर्वकामप्रद तथा मंगलमय है। यही उसका प्रकृत रूप तथा शुभ विवरण भी है।।१८-२०।।

।।चतुरशीतितम अध्याय समाप्त।।



अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

क्षुधातीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

क्षुधातीर्थमिति ख्यातं शृणु नारद तन्मनाः। कथ्यमानं महापुण्यं सर्वकामप्रदं नृणाम्।।१।।
ऋषिरासीत्पुरा कण्वस्तपस्वी वेदवित्तमः। परिभ्रमन्नाश्रमाणि क्षुधया परिपीडितः।।२।।
गौतमस्याऽऽश्रमं पुण्यं समृद्धं चान्नवारिणा।
आत्मानं च क्षुधायुक्तं समृद्धं चापि गौतमम्।।३।।
वीक्ष्य कण्वोऽथ वैषम्यं वैराग्यमगमत्तदा। गौतमोऽपि द्विजश्रेष्ठो ह्यहं तपसि निष्ठितः।।४।।
समेन याच्ञाऽयुक्ता स्यात्तस्माद्गौतमवेश्मनि।
न भौक्ष्येऽहं क्षुधार्तोऽपि पीडितेऽपि कलेवरे।।५।।

ब्रह्मा कहते हैं—हे नारद! प्रसिद्ध क्षुधातीर्थ का वर्णन सुनो। यह मनुष्यों हेतु महापुण्यप्रद तथा सर्वकामप्रद है। पूर्वकाल में कण्व नामक वेदज्ञ तपःशील ऋषि थे। एक बार वे भूख से व्याकुल होकर कई आश्रमों में भटकते अन्ततः अन्न-जल से भरे-पूरे एक पवित्र आश्रम में पहुंचे जो गौतम मुनि का आश्रम था। उस समय जब कण्व ने स्वयं को क्षुधार्त्त तथा गौतम को अत्यन्त समृद्ध देखा, तब उनके मन में विषम वैराग्योत्पत्ति हो गयी। उन्होंने विचार किया कि "मैं भी तपोनिष्ठ हूं, तथापि समधर्मी से याचना करना कदापि संगत कार्य नहीं लगता। यदि मेरा देह ही नष्ट हो जाये, तथापि मैं क्षुधार्त्त होने पर भी किसी भी तरह से गौतमाश्रम में याचना द्वारा पेट नहीं भरूंगा"।।१-५।।

गच्छेयं गौतमीं गङ्गामर्जयेयं च सम्पदम्। इति निश्चित्य मेधावी गत्वा गङ्गां च पावनीम्।।६।।
स्नात्वा शुचिर्यतमना उपविश्य कुशासने। तुष्टाव गौतमीं गङ्गां क्षुधां च परमापदम्।।७।।

"मैं शीघ्र गौतमीगंगा स्थल में जाकर वहीं जैसे भी होगा, अर्थार्जन करूंगा।" यह निश्चय करके वे मेधावी ऋषि गौतमीगंगा जाकर वहां स्नानोपरान्त पवित्र होकर प्रसन्न एकाग्र मन से कुशासनासीन होकर गौतमीगंगा तथा परमापत्तिरूपी क्षुधा का स्तव करते कहने लगे।।६-७।।

कण्व उवाच

नमोऽस्तु गङ्गे परमार्तिहारिणि, नमः क्षुधे सर्वजनार्तिकारिणि।
नमो महेशानजटोद्भवे शुभे, नमो महामृत्युखाद्विनिःसृते॥८॥
पुण्यात्मनां शान्तरूपे क्रोधरूपे दुरात्मनाम्। सरिद्रूपेण सर्वेषां तापपापापहारिणि॥९॥
क्षुधारूपेण सर्वेषां तापपापप्रदे नमः। नमः श्रेयस्करि देवि नमः पापप्रतर्दिनि।
नमः शान्तिकरि देवि नमो दारिद्र्यनाशिनि॥१०॥

ऋषि कण्व कहते हैं—हे परमार्त्तिहारिणी! गंगे! आपको प्रणाम! हे सर्वसमस्त लोगों को क्लेश देने वाली क्षुधा! तुमको भी मेरा नमस्कार! हे महेश जटा से उत्पन्न शिवे गौतमी! आपको प्रणाम! हे महामृत्यु के मुख से निर्गत क्षुधा! तुमको मेरा नमस्कार! हे पुण्यात्माओं के लिये शान्तिरूपा गौतमी गंगे! तथा हे दुरात्माओं के लिये क्रोधरूपा क्षुधा! आप दोनों में से एक तो सब का पाप-ताप हरण करती हैं, तो दूसरी क्षुधा रूप से सबको पाप-ताप प्रदान करती हैं। आप दोनों को मेरा नमस्कार! हे श्रेयस्करी, पापनाशिनी, शान्तिप्रदातृ, दारिद्र्यहरण करने वाली गौतमी गंगे देवी! आपको मेरा बारम्बार प्रणाम!।।८-१०।।

ब्रह्मोवाच

इत्येवं स्तुवतस्तस्य पुरस्तादभवद्द्वयम्। एकं गाङ्गं मनोहारि ह्यपरं भीषणाकृति।
नमः कृताञ्जलिर्भूत्वा नमस्कृत्वा द्विजोत्तमः॥११॥

ब्रह्मा कहते हैं—जब कण्व ऋषि ने इस प्रकार से स्तव किया, तब गौतमीगंगा एवं क्षुधा उनके समक्ष प्रकट हो गयीं। उनमें से एक मनोहारिणी गौतमीगंगा थीं, दूसरी भीषण आकृतिधारी क्षुधा थी। उस समय उन द्विजप्रवर ने हाथ जोड़कर नमस्कार करके कहा—।।११।।

कण्व उवाच

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये ब्राह्मि माहेश्वरि शुभे। वैष्णवि त्र्यम्बके देवि गोदावरि नमोऽस्तु ते॥१२॥
त्र्यम्बकस्य जटोद्भूते गौतमस्याघनाशिनि।
सप्तधा सागरं यान्ति गोदावरि नमोऽस्तु ते॥१३॥
सर्वपापकृतां पापे धर्मकामार्थनाशिनि। दुःखलोभमयि देवि क्षुधे तुभ्यं नमो नमः॥१४॥

गौतम ने कहा—"हे सर्व मंगल-मांगल्य देने वाली, ब्राह्मी, माहेश्वरी, वैष्णवी, त्र्यम्बके, देवि गोदावरी! आपको प्रणाम! आपने त्र्यम्बक के जटाजाल से उत्पन्न होकर गौतम का पाप हरण किया था। आप सात धाराओं में विभक्त होकर सागर की ओर बहती हैं। हे गोदावरी! आपको प्रणाम! हे समस्त पापियों के लिये पापरूप, धर्म-अर्थ-काम एवं अर्थ का ध्वंस करने वाली, दुःख एवं लोभमयी क्षुधा देवी! मैं आपको भी प्रणाम करता हूं!॥१२-१४।।

ब्रह्मोवाच

तत्कण्ववचनं श्रुत्वा सुप्रीते आहतुर्द्विजम्॥१५॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे सुव्रत! नारद! द्विजप्रवर कण्व का स्तव सुनकर गंगा एवं क्षुधा प्रसन्नता पूर्वक कहने लगीं।।१५।।

गङ्गाक्षुधे ऊचतुः

अभीष्टं वद कल्याण वरान्वरय सुव्रत॥१६॥

गंगा एवं क्षुधा कहती हैं—हे कल्याणमय! अपना इच्छित वर मांगो।।१६।।

ब्रह्मोवाच

प्रोवाच प्रणतो गङ्गां कण्वः क्षुधां यथाक्रमम्॥१७॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर कण्व ऋषि क्रमशः गंगा एवं क्षुधा से कहने लगे।।१७।।

कण्व उवाच

देहि देवि मनोज्ञानि कामानि विभवं मम।
आयुर्वित्तं च भुक्तिं गङ्गे च मुक्तिं प्रयच्छ मे॥१८॥

कण्व कहते हैं—हे देवी गंगे! आप मुझे मनोहर इच्छित वस्त्र, अपार वैभव, आयु, धन, भुक्ति-मुक्ति प्रदान करिये।।१८।।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा गौतमीं गङ्गां क्षुधां चाऽऽह द्विजोत्तमः॥१९॥

ब्रह्मा कहते हैं—गौतमीगंगा से यह कहकर उन द्विजोत्तम कण्व ने क्षुधा से कहा—॥१९।।

कण्व उवाच

मयि मद्वंशजे चापि क्षुधे तृष्णे दरिद्रिणि। याहि पापतरे रूक्षे न भूयास्त्वं कदाचन॥२०॥

अनेन स्तवेन ये वै त्वां स्तुवन्ति क्षुधातुराः।
तेषां दारिद्र्यदुःखानि न भवेयुर्वरोऽपरः॥२१॥
अस्मिंस्तीर्थे महापुण्ये स्नानदानजपादिकम्।
ये कुर्वन्ति नरा भक्त्या लक्ष्मीभाजो भवन्तु ते॥२२॥
यस्त्विदं पठते स्तोत्रं तीर्थे वा यदि वा गृहे।
तस्य दारिद्र्यदुःखेभ्यो न भयं स्याद्वरोऽपरः॥२३॥

कण्व कहते हैं—हे पापतरा! रूक्षरूपा, दरिद्रता देने वाली, तृष्णा की जननी, क्षुधा! तुम मेरे यहां अथवा मेरे वंशजों के यहां कदापि मत आना। इस मेरे द्वारा कहे गये स्तव से जो क्षुधातुर लोग तुम्हारा स्तव करें, उनको कदापि दरिद्रता दुःख न हो। इस महापुण्यवान् तीर्थ में जो कोई भक्तिभाव से स्नान, दान, जपादि करें, वह भी लक्ष्मीभागी हो जाये। यदि कोई मनुष्य तीर्थ में अथवा गृह में ही यह स्तवपाठ करे, उसे दरिद्रता, दुःखादि से कोई भय ही न हो। यही मेरी प्रार्थना है।।२०-२३।।

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति चोक्त्वा ते कण्वं याते स्वमालयम्।
ततः प्रभृति तत्तीर्थं काण्वं गाङ्गं क्षुधाभिधम्।
सर्वपापहरं वत्स पितॄणां प्रीतिवर्धनम्॥२४॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये क्षुधातीर्थवर्णनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः॥८५॥

गौतमीमाहात्म्ये षोडशोऽध्यायः॥१६॥



ब्रह्मा कहते हैं—"तथास्तु" कह कर गंगा एवं क्षुधा अन्तर्हित् हो गयीं। कण्व ने भी स्वस्थान गमन किया। तभी से यह तीर्थ कण्व, गाङ्ग अथवा क्षुधातीर्थ कहा जाता है। हे वत्स! यह सर्वपापहारी तीर्थ पितृगण को अत्यन्त प्रसन्नता प्रदाता है (तर्पणादि द्वारा)॥२४-२५॥

॥पञ्चाशीतितम अध्याय समाप्त॥



अथ षडशीतितमोऽध्यायः

चक्रतीर्थ तथा गणिकातीर्थ संगम का और विश्वधर वैश्य का वर्णन

ब्रह्मोवाच

अस्ति ब्रह्मन्महातीर्थं चक्रतीर्थमिति श्रुतम्। तत्र स्नानान्नरो भक्त्या हरेर्लोकमवाप्नुयात्॥१॥
एकादश्यां तु शुक्लायामुपोष्य पृथिवीपते।
गणिकासङ्गमे स्नात्वा प्राप्नुयादक्षयं पदम्॥२॥
पुरा तत्र यथा वृत्तं तन्मे निगदतः शृणु। आसीद्विश्वधरो नाम वैश्यो बहुधनान्वितः॥३॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे ब्रह्मन्! चक्रतीर्थ नामक एक प्रसिद्ध महातीर्थ है। वहां भक्तिभाव से स्नान करने वाला विष्णुलोक जाता है। शुक्ला एकादशी के दिन उपवासी रहकर मनुष्य गणिकासंगम में स्नान द्वारा अक्षय पद लाभ कर लेता है। पूर्वकाल में इस तीर्थ के सम्बन्ध में जो घटना घटित हो गयी थी, उसे कहता हूं। श्रवण करो। पूर्वकाल में अत्यन्त धनवान् एक वैश्य विश्वधर था॥१-३॥

उत्तरे वयसि श्रेष्ठस्तस्य पुत्रोऽभवदृषे। गुणवान्रूपसम्पन्नो विलासी शुभदर्शनः॥४॥
प्राणेभ्योऽपि प्रियः पुत्रः काले पञ्चत्वमागतः।
तथा दृष्ट्वा तु तं पुत्रं दम्पती दुःखपीडितौ॥५॥

कुर्वाते स्म तदा तेन सहैव मरणे मतिम्। हा पुत्र हन्त कालेन पापेन सुदुरात्मना॥६॥
यौवने वर्तमानोऽपि नीतोऽसि गुणसागर। आवयोश्च तथैव त्वं प्राणेभ्योऽपि सुदुर्लभः॥७॥

उसे वृद्धावस्था में एक पुत्र जन्मा। वह रूपवान्, गुणी, विलासी तथा प्रियदर्शन था। कालक्रमेण विश्वधर का यह प्राणों के समान प्रिय पुत्र मृत हो गया। यह देख कर वे वैश्य दम्पत्ति दुःखी होकर स्वयं मरने हेतु उद्यत हो गये। वे आर्त्त होकर कहने लगे—"हा पुत्र! हा गुणसागर! तुम तो हमारे लिये प्राणों से भी बढ़ कर दुर्लभ वस्तु थे। दुरात्मा पापी काल ने यौवनावस्था में ही तुम्हारा हरण कर लिया"।।४-७।।

इत्थं तु रुदितं श्रुत्वा दम्पत्योः करुणं यमः।
त्यक्त्वा निजपुरं तूर्णं कृपयाऽऽविष्टमानसः॥८॥
गोदावर्याः शुभे तीरे स्थितो ध्यायञ्जनार्दनम्।
अपि स्वल्पेन कालेन प्रजा वृद्धाः समन्ततः॥९॥
इयत इति मे पृथ्वी कथ्यतां केन पूरिता (?)।
न कश्चिन्म्रियते जन्तुर्भाराक्रान्ता वसुन्धरा॥१०॥
ततो देवी गता तूर्णं वसुधा मुनिसत्तम। यत्रास्ति सुरसंयुक्तः शक्रः परपुरञ्जयः।
दृष्ट्वा वसुन्धरामिन्द्रः प्रणिपत्येदमब्रवीत्॥११॥

यमराज ने इस दम्पति का ऐसा करुण क्रन्दन सुना, तब वे करुणा विगलित हो गये। वे उस मृत पुत्र को छोड़ कर अपने गृह लौट आये। तदनन्तर वे गोदावरी तट पर आसीन होकर जनार्दन का ध्यान करने लगे। उस अल्पकाल में जब वे ध्यानमग्न थे, पृथिवी पर (मृत्यु न होने के कारण) प्रजाजन बढ़ने लगे। तब पृथिवी ने विचार किया कि "किसने मेरे ऊपर इतनी प्रजा का भार रख दिया? वसुधा भाराक्रान्त होकर दौड़ती-भागती वहां पहुंची, जहां देवराज शत्रुपुरजेता इन्द्र देवताओं के साथ विराजित थे। वसुधा को देख कर इन्द्र ने उसे प्रणाम करते हुये कहा—।।८-११।।

इन्द्र उवाच

किमागमनकार्यं त इति मे पृथ्वि कथ्यताम्॥१२॥

इन्द्रदेव कहते हैं—हे देवी पृथिवी! आप अपने आने का कारण कहिये।।१२।।

धरोवाच

भारेण गुरुणा शक्र पीडिताऽहं विना वधम्।
कारणं प्रष्टुमायाता किमिदं कथ्यतां मम॥१३॥

वसुधा कहती हैं—हे इन्द्र! प्रजा मृत्युग्रस्त नहीं हो रही है। मैं प्रजा के भारी भार से त्रस्त हो रही हूं। ऐसा क्यों हो रहा है? मैं यह जानने आई हूं। इसका कारण कहिये।।१३।।

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा महीवाक्यमिन्द्रो वचनमब्रवीत्॥१४॥

ब्रह्मा कहते हैं—पृथिवी का प्रश्न सुनकर इन्द्रदेव कहने लगे।।१४।।

इन्द्र उवाच

कारणं यदि नाम स्यात्तदानीं ज्ञायते मया।
सुराणां हि पतिर्यस्मादहं सर्वासु (?) मेदिनि॥१५॥

इन्द्रदेव कहते हैं—इस विषय में जो कारण है, मैं उसे जान गया हूं। हे मेदिनी! मैं देवराज हूं, अतः कोई भी विषय मेरे लिये अज्ञात नहीं हो सकता।।१५।।

ब्रह्मोवाच

अथ पृथ्वी तदा वाक्यं श्रुत्वा चाऽऽह शचीपतिम्।
यम आदिश्यतां तर्हिं यथा संहरते प्रजाः॥१६॥
इति श्रुत्वा वचो मह्या आदिष्टाः सिद्धकिन्नराः।
यमस्याऽऽनयने शीघ्रं महेन्द्रेण महामुने॥१७॥
ततस्ते सत्वरं याताः सर्वे वैवस्वतं पुरम्। नैवापश्यन्यमं तत्र ते सिद्धाः सह किन्नरैः।
तथाऽऽगत्य पुनर्वेगाद्वार्ता शक्रे निवेदिता॥१८॥

ब्रह्मा कहते हैं—इन्द्र का कथन सुनकर पृथिवी ने उनसे कहा—"आप अपना आदेश भेजिये कि यम अब प्रजासंहार कार्य करें।" हे मुनिवर! पृथिवी का अनुरोध सुनकर देवराज ने तब शीघ्र यम को बुलाने हेतु सिद्धों तथा किन्नरों को आदेश दिया। तदनन्तर वे सभी शीघ्रता के साथ यमलोक पहुंचे, तथापि उन्हें यम वहां नहीं मिले। सिद्धों तथा किन्नरों ने वापस आकर यह समाचार इन्द्र से कहा—।।१६-१८।।

सिद्धकिन्नरा ऊचुः

यमो यमपुरे नाथ अस्माभिर्नावलोकितः।
महताऽपि सुयत्नेन वीक्ष्यमाणः समन्ततः॥१९॥

सिद्ध-किन्नरगण कहते हैं—हे सुरपति! हमने यमलोक जाकर बहुत खोजा, तथापि हमें वहां यमराज दिखाई नहीं पड़े।।१९।।

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचस्तेषां पृष्टः शक्रेण वै तदा।
सविता स पिता तस्य यमः कुत्राऽऽस्त इत्यथ॥२०॥

ब्रह्मा कहते हैं—सिद्ध-किन्नरगण का कथन सुनकर देवराज ने यम के पिता सविता सूर्य से पूछा कि इस समय यम कहां हैं?।।२०।।

सूर्य उवाच

शक्र गोदावरीतीरे कृतान्तो वर्ततेऽधुना। चरंस्तत्र तपस्तीव्रं न जाने किं नु कारणम्॥२१॥

सूर्यदेव कहते हैं—हे इन्द्र! मेरे पुत्र यमराज गोदावरी तट पर स्थित होकर तीव्र तपःश्चरण कर रहे हैं। उस तपस्या का कारण मुझे अज्ञात है।।२१।।

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचो भानोः शक्रः शङ्कामुपाविशत्॥२२॥

ब्रह्मा कहते हैं—सूर्य का कथन सुनकर इन्द्रदेव सन्दिग्ध चित्त हो गये।।२२।।

शक्र उवाच

अहो कष्टं महाकष्टं नष्टा मे सुरनाथता। गोदावर्यां तपः कुर्याद्यमो वै दुष्टचेष्टितः।
जिघृक्षुर्मत्पदं नूनं देवा इति मतिर्मम॥२३॥

इन्द्रदेव कहते हैं—कितना कष्ट है, कितना दुःख है! देवताओं के आधिपत्य को वहन करते मेरी बुद्धि नष्ट हो गयी। यमराज निश्चित रूप से मेरा सुराधिपत्य हरण करने हेतु गोदावरी के किनारे तपःश्चरणरत हैं। हे देवताओं! इस प्रसंग में मेरी यही धारणा है।।२३।।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा सहसेन्द्रेण आहूतश्चाप्सरोगणः॥२४॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब इन्द्र ने एकाएक अप्सराओं का आह्वान किया।।२४।।

इन्द्र उवाच

का भवतीषु कालस्य स्थितस्य तपसि द्विषः। तपःप्रणाशने शक्ता इति मे शीघ्रमुच्यताम्॥२५॥

इन्द्र कहते हैं—तप में लगे मेरे शत्रु यम का तप भंग कर सकने में तुम लोगों में से कौन समर्थ है? शीघ्रता पूर्वक कहो।।२५।।

ब्रह्मोवाच

इति शक्रवचः श्रुत्वा नोचे काऽपि महामुने।
अथ शक्रः प्रकोपेण प्रत्युवाचाप्सरोगणम्॥२६॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे महामुनि! देवराज इन्द्र का यह प्रश्न सुनकर भी किसी अप्सरा ने उत्तर नहीं दिया। तब इन्द्र क्रोध में भरकर अप्सराओं से कहने लगे।।२६।।

इन्द्र उवाच

उत्तरं नाब्रवीत्किञ्चिद्यामस्तर्हि वयं स्वयम्।
सज्जा भवन्तु विबुधाः सैन्यैरायान्तु मा चिरम्।
घातयामो वयं शत्रुं तपसा स्वर्गकामुकम्॥२७॥

इन्द्र कहते हैं—तुम लोग मेरी बात का उत्तर क्यों नहीं दे रही हो? हे देवताओं! अब सभी लोग युद्धार्थ सज्जित हो जाओ। शीघ्र ससैन्य आओ। मैं स्वयं वहां जाकर अपने तपोबल से स्वर्ग की इच्छा रखने वाले शत्रु का नाश करूंगा।।२७।।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ते सति देवानां सेना प्रादुर्बभूव ह। इतीन्द्रहृदयं ज्ञात्वा हरिणा लोकधारिणा॥२८॥
प्रेषितं चक्रिणा चक्रं रक्षणाय यमस्य हि। चक्रं यत्राभवत्तत्र चक्रतीर्थमनुत्तमम्॥२९॥
अथेन्द्रं मेनका प्राह शङ्कितेति वचस्तदा॥३०॥

ब्रह्मा कहते हैं—इन्द्र के यह कहते ही देव सेना सज्जित हो गयी। इधर लोकों के रक्षक हरि को जब इन्द्र का अभिप्राय ज्ञात हुआ, उन्होंने यम के रक्षार्थ अपना चक्र वहां भेज दिया। जहां वह चक्र उपस्थित हुआ था, वह स्थान चक्रतीर्थ नाम से प्रख्यात हो गया। तभी मेनका अप्सरा ने शंकित होकर इन्द्र से कहा—।।२८-३०।।

मेनकोवाच

कालावलोकने नालं काचिदस्ति सुरेश्वर। मरणं च वरं देव भवतो न यमात्पुनः॥३१॥
रूपयौवनमत्तेयं गणिकायाचनं प्रभो। प्रेषणं तत्प्रयच्छैषा स्वामित्वं मन्यते त्वया॥३२॥

मेनका कहती है—हे देवराज! कालराज यम की ओर कटाक्षपात में कोई भी स्त्री सक्षम नहीं है। हे देव! आपके हाथों मरना श्रेयस्कर है, तथापि यम के द्वारा हमारी मृत्यु न हो। हे प्रभो! यही एक रूपयौवन गर्विता गणिका यहां है। इसके ऊपर आपका प्रभुत्व है। यह गणिका यम के पास जाने की प्रार्थना कर रही है। अतः आप इसे ही भेजें।।३१-३२।।

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्याः शक्रः सुरवरेश्वरः।
आदिदेशाबलां क्षामां सत्कृत्य गणिकां तथा॥३३॥

ब्रह्मा कहते हैं—देवराज ने मेनका का यह वाक्य सुनकर उस क्षीणांगी, अबला गणिका को आदर पूर्वक आदेश दे दिया कि यम के पास जाओ।।३३।।

शक्र उवाच

गणिके गच्छ मे कार्यं कुरु सुन्दरि मा चिरम्।
कृतकृत्याऽऽगता भूयो वल्लभा मे यथा शची॥३४॥

इन्द्रदेव कहते हैं—हे गणिका! सुन्दरी! शीघ्रता पूर्वक मेरे कार्य के लिये जाओ। तुम जब कृतकार्य होकर वापस लौटोगी, तब तुम शची के समान मेरी प्रिय स्त्री बन जाओगी।।३४।।

ब्रह्मोवाच

इत्याकर्ण्य वचः शक्रादुत्पत्य गणिका दिशः। क्षणेन यमसान्निध्यमायाता चारुरूपिणी॥३५॥
यमान्तिकमनुप्राप्ता द्योतयन्ती दिशो दश।
सलीलं ललितं बाला जगौ हिन्दोलकङ्कलम् (चञ्चला)॥३६॥

ततश्चचाल कालस्य मनो लोलं चलाचलम्।
अथोन्मील्य यमो नेत्रे कामपावकपूरिते॥३७॥
तस्यां व्यापारयामास श्रेयःशत्रौ महामुने। ततो विलीय सा सद्यः सरित्त्वमगमत्तदा॥३८॥
गौतम्यां तु समागम्य गणिकागणकिङ्करैः। गीयमाना गता स्वर्गे तस्य तीर्थप्रभावतः॥३९॥
गच्छन्तीं गणिकां दृष्ट्वा विमानस्थां दिवं प्रति।
विस्मयं परमं प्राप्तः कालस्तरललोचनः।
आऽऽदित्येन चाऽऽगत्य एवमुक्तो यमस्तदा॥४०॥

ब्रह्मा कहते हैं—वह गणिका इन्द्र की स्वीकृति सुनते ही तत्क्षण आकाश पथ से जाकर यम के पास आ गयी। जब वह उत्तम अंगों वाली गणिका यम के समीप जाने लगी, तब उसकी देहकान्ति दसों दिशाओं को द्योतित-शोभायमान कर रही थी। वह चटुल-चपला तरुणी यम के निकट अत्यन्त हाव-भाव के साथ ललित लीलायें करती आ गई। वह हिन्दोलकंकल राग गा रही थी। इससे यम का मन चंचल हो गया। तभी यम ने अपना कामाग्नि से पूर्ण नेत्र खोला। उन्होंने अपने श्रेय मार्ग की शत्रु इस गणिका की ओर उसी दृष्टि से देखा। यम की दृष्टि पड़ते ही वह गणिका विलीन होकर नदी रूपा हो गयी। तीर्थ प्रभाव के कारण वह गणिका गणों एवं किन्नर वृन्द से सत्कृत होकर स्वर्ग चली गयी। तब विमानारूढ़ गणिका को स्वर्गगमनार्थ उद्यत होते देखकर चंचल नेत्र वाले काल विस्मित हो गये। तभी सूर्यदेव ने आकर यम से कहा—॥३५-४०॥

सूर्य उवाच

कुरु पुत्र निजं कर्म प्रजानां त्वं परिक्षयम्।
पश्य वातं सदा वान्तं सृजन्तं वेधसं प्रजाः।
पर्यटन्तं त्रिलोकीं मां वहन्तीं वसुधां प्रजाः॥४१॥

सूर्यदेव कहते हैं—हे पुत्र! तुम्हारा कर्त्तव्य कर्म है प्रजा का क्षय करना। तुम उसी कार्य में लग जाओ। देखो! वायु सदा बहते हैं। विधाता सदा सृष्टि करते हैं। मैं त्रैलोक्य में घूमता रहता हूं। पृथिवी सदा प्रजा भार ढ़ोती है।॥४१॥

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा यमो वाक्यं पितुर्वचनमब्रवीत्॥४२॥

ब्रह्मा कहते हैं—यम ने पिता का वाक्य सुन कर कहा—॥४२॥

यम उवाच

एतन्न गर्हितं कर्म कुर्यामहमिदं ध्रुवम्। कर्मण्यस्मिन्महाक्रूरे समादेष्टुं न वाऽर्हसि॥४३॥
इति श्रुत्वा च तद्वाक्यं भानुर्वचनमब्रवीत्। किं नाम गर्हितं कर्म तव कर्तुमलं यम॥४४॥
किं न दृष्टा त्वया यान्ती गणिका गणकिङ्करैः।
गीयमाना दिवं सद्यो गौतमीतोयमाप्लुता॥४५॥

त्वया चात्र तपस्तीव्रं कृतं पुत्र सुदुष्करम्।
नैवान्तं तस्य पश्यामि तस्माद्गच्छ निजं पुरम्॥४६॥
इत्युक्त्वा भगवान्भानुस्तत्र स्नात्वा गतो दिवम्।
यमोऽपि सङ्गमे स्नात्वा ततो निजपुरं ययौ॥४७॥

यम कहते हैं—"यह प्रजाक्षय निन्दनीय तथा गर्हित कर्म है। मैं यह नहीं करूंगा। यह निश्चित है।" तब सूर्य ने कहा—"क्या मैं तुमसे गर्हित कर्म कहूंगा? कौन काम गर्हित है? तुमने क्या अभी गौतमी जल स्नात गणिका को गणों तथा किंकरों से प्रशंसित होकर स्वर्गगामी नहीं देखा? हे पुत्र! तुमने यहां कठोर तपाराधना किया है। यहां की स्नान महिमा से तुम्हारा तप अक्षय हो गया। मैं तो उस तप का कोई अन्त नहीं देख पाता हूं। अब तुम यमलोक जाओ"।।४३-४७।।

भूतहाऽपि ततः शङ्कां तत्याज च महामुने।
तथा दृष्ट्वा यमं यान्तं चक्रे चक्रं प्रयाणकम्॥४८॥
भगवान्यत्र गोविन्दो वनमालाविभूषितः। इति यः शृणुयान्मर्त्यः पठेद्वाऽपि समाहितः॥४९॥
आपदस्तस्य नश्यन्ति दीर्घमायुरवाप्नुयात्॥५०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये चक्रतीर्थगणिकासङ्गमवर्णनं नाम षडशीतितमोऽध्यायः॥८६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥



हे महामुने! तदनन्तर यम ने अपनी शंका का त्याग कर दिया। यम को अपनी पुरी लौटते देख कर विष्णुचक्र वहां से चला गया, जहां भगवान् वनमाली नारायण अवस्थित थे। जो मृत्युलोक निवासी मानव समाहित मन से इस वृत्तान्त का पाठ किंवा श्रवण करेगा, उसकी सभी आपत्तियां नष्ट होंगी तथा वह दीर्घायु होगा।।४८-५०।।

।।षड्शीतितम अध्याय समाप्त।।



अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः

अहल्यासंगम तथा इन्द्रतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

अहल्यासङ्गमं चेह तीर्थं त्रैलोक्यपावनम्। शृणु सम्यङ्मुनिश्रेष्ठ तत्र वृत्तमिदं यथा॥१॥
कौतुकेनातिमहता मया पूर्वं मुनीश्वर। सृष्टा कन्या बहुविधा रूपवत्यो गुणान्विताः॥२॥

तासामेकां श्रेष्ठतमां निर्ममे शुभलक्षणाम्।
तां बालां चारुसर्वाङ्गीं दृष्ट्वा रूपगुणान्विताम्॥३॥
को वाऽस्याः पोषणे शक्त इति मे बुद्धिराविशत्।
न दैत्यानां सुराणां च न मुनीनां तथैव च॥४॥
नास्त्यस्याः पोषणे शक्तिरिति मे बुद्धिरन्वभूत्।
गुणज्येष्ठाय विप्राय तपोयुक्ताय धीमते॥५॥

सर्वलक्षणयुक्ताय वेदवेदाङ्गवेदिने। गौतमाय महाप्राज्ञामददां पोषणाय ताम्॥६॥

पालयस्व मुनिश्रेष्ठ यावदाप्स्यति यौवनम्।
यौवनस्थां पुनः साध्वीमानयेथा ममान्तिकम्॥७॥

ब्रह्मा कहते हैं—अहल्यासंगम नामक एक त्रैलोक्यपावन तीर्थ यहां स्थित है। हे मुनिवर! इस तीर्थ का विवरण श्रवण करिये। हे मुनिवर! पूर्वकाल में मैंने कौतूहलाक्रान्त होकर रूप-गुण-युता अनेक कन्याओं की सृष्टि किया। उनमें से एक कन्या सबसे श्रेष्ठ थी। उसे देख कर मैंने विचार किया "इसका भरण-पोषण करने में कौन समर्थ होगा? दैत्य, देवता, मुनि, इनमें से कोई भी इसका भरण-पोषण करने में सक्षम हो, ऐसा मुझे नहीं प्रतीत होता। अन्ततः मैंने अपनी इस महाप्रभा कन्या को तपस्वी, सर्वसुलक्षण वाले, वेद-वेदांग ज्ञाता, गुणों में प्रधान, धीमान् गौतम मुनि को पोषणार्थ समर्पित करते उनसे कहा कि "हे मुनिवर! जब तक यह युवती नहीं हो जाती, तब तक आप इसे पालिये। जब यह युवावस्था में पहुंचे, तब आप इस साध्वी को लेकर मेरे यहां चले आईयेगा"।।१-७।।

एवमुक्त्वा गौतमाय प्रादां कन्यां सुमध्यमाम्। तामादाय मुनिश्रेष्ठ तपसा हतकल्मषः॥८॥
तां पोषयित्वा विधिवदलङ्कृत्य ममान्तिकम्। निर्विकारो मुनिश्रेष्ठो ह्यहल्यामानयत्तदा॥९॥

यह कहकर मैंने कन्या गौतम को दे दिया। हे मुनिवर! तपस्या से पवित्र चित्त वाले गौतम ने निर्दिष्ट समय पर्यन्त कन्या का पोषण किया। तत्पश्चात् वे सविधि अलंकृत करने के उपरान्त निर्विकार चित्त से उस कन्या को मेरे पास ले आये। उस कन्या का नाम अहल्या था।।८-९।।

तां दृष्ट्वा विबुधाः सर्वे शक्राग्निवरुणादयः।
मम देया सुरेशान इत्यूचुस्ते पृथक्पृथक्॥१०॥

तथैव मुनयः साध्या दानवा यक्षराक्षसाः।
तान्सर्वानागतान्दृष्ट्वा कन्यार्थमथ सङ्गतान्॥११॥
इन्द्रस्य तु विशेषेण महांश्चाभूत्तदा ग्रहः। गौतमस्य तु माहात्म्यं गाम्भीर्यं धैर्यमेव च॥१२॥

अहल्या को देखकर इन्द्र-अग्नि तथा वरुण आदि प्रधान देवताओं ने आकर मुझसे कहा—"हे सुरेश्वर! हमें अहल्या प्रदान करिये।" एवंविध सभी अपने-अपने लिये प्रार्थना कर रहे थे। उस समय मुनिगण, साध्यगण, दानवगण, यक्ष-राक्षसगण सभी मेरी उस कन्या को मांग रहे थे। मैंने इतने कन्या प्रार्थीगण को एकत्र हो गया देखा। इस सम्बन्ध में इन्द्र विशेष याचना कर रहे थे। उस समय गौतम की महिमा, गंभीरता तथा धैर्य को मैंने देखा।।१०-१२।।

स्मृत्वा सुविस्मितो भूत्वा ममैवमभवत्सुधीः।
देयेयं गौतमायैव नान्ययोग्या शुभानना॥१३॥
तस्मा एव तु तां दास्ये तथाऽप्येवमचिन्तयम्।
सर्वेषां च मतिर्धैर्यं मथितं बालयाऽनया॥१४॥
अहल्येति सुरैः प्रोक्तं मया च ऋषिभिस्तदा।
देवानृषींस्तदा वीक्ष्य मया तत्रोक्तमुच्चकैः॥१५॥
तस्मै सा दीयते सुभ्रूर्यः पृथिव्याः प्रदक्षिणाम्।
कृत्वोपतिष्ठते पूर्वं न चान्यस्मै पुनः पुनः॥१६॥

इससे विस्मित होकर मैंने निश्चय किया कि यह शुभानना कन्या अन्य व्यक्ति के योग्य नहीं है। इसे मैं गौतम के हाथों ही समर्पित करूंगा। यह निश्चय करके मैं पुनः विचार करने लगा कि देवता, ऋषि आदि सभी ने कहा है कि "आपकी कन्या ने हम सभी का धीरज तथा मन मथित कर दिया है।" मैंने उनके इस कथन के विषय में विचार करने के उपरान्त ऋषि एवं देव मण्डलियों पर दृष्टिपात् करके उच्च स्वर में कहा—"जो सबसे पहले पृथिवी की प्रदक्षिणा करके वापस आ जायेगा, मैं अपनी पुत्री अहल्या उसके ही हाथों अर्पित करूंगा। जो यह कार्य सर्वप्रथम नहीं कर सकेगा, उसे अहल्या को प्रदान नहीं किया जायेगा।" दूसरे को यह कन्या बारम्बार नहीं दी जायेगी।।१३-१६।।

ततः सर्वे सुरगणाः श्रुत्वा वाक्यं मयेरितम्।
अहल्यार्थं सुरा जग्मुः पृथिव्याश्च प्रदक्षिणे॥१७॥
गतेषु सुरसङ्घेषु गौतमोऽपि मुनीश्वर। प्रयत्नमकरोत्कञ्चिदहल्यार्थमिमं तथा॥१८॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्सुरभिः सर्वकामधुक्। अर्धप्रसूता ह्यभवत्तां ददर्श स गौतमः॥१९॥
तस्याः प्रदक्षिणं चक्रे इयमुर्वीति संस्मरन्। लिङ्गस्य च सुरेशस्य प्रदक्षिणमथाकरोत्॥२०॥

मेरा कथन सुनकर सभी देवगण अहल्या को पाने की लालसा लेकर पृथिवी प्रदक्षिणार्थ निकल पड़े। हे मुनिवर! जब देवगण चले गये, तब गौतम भी अहल्या को पाने हेतु सचेष्ट हो गये थे। तभी वहां ऐसी सुरभि

गौ दिखलाई पड़ी, जिसका प्रसव हो रहा था तथा आधा बछड़ा बाहर था आधा अभी गर्भ में ही था। इस अर्द्धप्रसूता गौ को देख कर गौतम ने उसकी प्रदक्षिणा सम्पन्न किया। अर्द्धप्रसूता गौ पृथिवी ही मानी जाती है। तदनन्तर गौतम ने वहां देवाधिदेव शंकर के लिंग की भी प्रदक्षिणा सम्पन्न किया।।१७-२०।।

तयोः प्रदक्षिणं कृत्वा गौतमो मुनिसत्तमः। सर्वेषां चैव देवानामेकं चापि प्रदक्षिणम्॥२१॥
नैवाभवद्धुवो गन्तुः सञ्जातं द्वितयं मम। एवं निश्चित्य स मुनिर्ममान्तिकमथाभ्यगात्॥२२॥
नमस्कृत्वाऽब्रवीद्वाक्यं गौतमो मां महामतिः।
कमलासन विश्वात्मन्नमस्तेऽस्तु पुनः पुनः॥२३॥
प्रदक्षिणीकृता ब्रह्मन्मयेयं वसुधाऽखिला। यदत्र युक्तं देवेश जानीते तद्भवान्स्वयम्॥२४॥
मया तु ध्यानयोगेन ज्ञात्वा गौतममब्रवम्। तवैव दीयते सुभ्रूः प्रदक्षिणमिदं कृतम्॥२५॥
धर्मं जानीहि विप्रर्षे दुर्ज्ञेयं निगमैरपि। अर्धप्रसूता सुरभिः सप्तद्वीपवती मही॥२६॥
कृता प्रदक्षिणा तस्याः पृथिव्याः सा कृता भवेत्।
लिङ्गं प्रदक्षिणीकृत्य तदेव फलमाप्नुयात्॥२७॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मुने गौतम सुव्रत। तुष्टोऽहं तव धैर्येण ज्ञानने तपसा तथा॥२८॥
दत्तेयमृषिशार्दूल कन्या लोकवरा मया। इत्युक्त्वाऽहं गौतमाय अहल्यामददां मुने॥२९॥

मुनिप्रवर गौतम ने यह सब प्रदक्षिणा करके विचार किया कि सभी देवताओं द्वारा एक बार पृथिवी प्रदक्षिणा सम्पन्न होने से पहले ही मैंने दो बार पृथिवी प्रदक्षिणा कर लिया। यह निश्चय करके महर्षि गौतम मेरे पास आये। मुझे प्रणाम करते हुये मुझसे उन महाबुद्धिमान् ने कहा कि "हे कमलासन, विश्वात्मा, ब्रह्मन्! आपको पुनः पुनः प्रणाम! मैंने निखिल पृथिवी की प्रदक्षिणा कर लिया। हे देवेश! अब इस सम्बन्ध में जो उचित हो, वह आपको स्वयं ज्ञात है।" तब मैंने ध्यानयोग से जान कर गौतम से कहा—"तुमने वस्तुतः पृथिवी प्रदक्षिणा कर लिया। अतः मैं अपनी पुत्री अहल्या तुमको ही प्रदान करूंगा। हे विप्रर्षि! जो धर्म निगमों द्वारा भी कठिनाई से ज्ञात नहीं हो सकता, वह तुमको ज्ञात है। अर्द्धप्रसूता गौ वस्तुतः सप्तद्वीपा पृथिवी ही है। उसकी प्रदक्षिणा कर लेना भी पृथिवी प्रदक्षिणा ही है। साथ ही देवाधिदेव के लिंग की प्रदक्षिणा करने का भी वही फल है। हे सुव्रत, मुनि! गौतम! तुम्हारा धैर्य, ज्ञान एवं तपःप्रभाव देखकर मैं सर्वान्तःकरण से प्रसन्न हो गया। हे ऋषिप्रवर! इस लोक की ललामभूता मेरी यह कन्या है। मैं इसे तुमको देता हूं"।।२१-२९।।

जाते विवाहे ते देवाः कृत्वेलायाः प्रदक्षिणम्।
शनैः शनैरथाऽऽगत्य ददृशुः सर्व एव ते॥३०॥
तं गौतममहल्यां च दाम्पत्यं प्रीतिवर्धनम्।
ते चाऽऽगत्याथ पश्यन्तो विस्मिताश्चाभवन्सुराः॥३१॥
अतिक्रान्ते विवाहे तु सुराः सर्वे दिवं ययुः।
समत्सरः शचीभर्ता तामीक्ष्य च दिवं ययौ॥३२॥

ततः प्रीतमनास्तस्मै गौतमाय महात्मने। प्रादां ब्रह्मगिरिं पुण्यं सर्वकामप्रदं शुभम्॥३३॥

अहल्यायां मुनिश्रेष्ठो रेमे तत्र स गौतमः।
गौतमस्य कथां पुण्यां श्रुत्वा शक्रस्त्रिविष्टपे॥३४॥

जब उन दोनों का विवाह सम्पन्न हो गया था, तब देवता लोगों ने एक-एक करके पृथिवी प्रदक्षिणा करके लौटने पर विवाह कार्य प्रत्यक्ष कर लिया। तत्पश्चात् गौतम एवं अहल्या का प्रीतिप्रद दाम्पत्य देख कर सभी देवता विस्मित हो गये और विवाह कार्य सम्पन्न हो जाने के कारण सभी अपने धाम लौट गये। केवल शचीपति ने अहल्या को ईर्ष्याभरी दृष्टि से देखते हुये स्वर्गगमन किया था। तदनन्तर मैंने प्रसन्नचित्त के साथ सर्वकामसुखप्रद अपना पवित्र ब्रह्मगिरि भी महात्मा गौतम को समर्पित कर दिया। मुनिप्रवर गौतम अहल्या के साथ इस सुरम्य गिरिपर्वत पर विहार करने लगे। इन्द्र ने गौतम के दाम्पत्य की पुण्यकथा को स्वर्गलोक में सुना।।३०-३४।।

तमाश्रमं तं च मुनिं तस्य भार्यामनिन्दिताम्।
भूत्वा ब्राह्मणवेषेण द्रष्टुमागाच्छतक्रतुः॥३५॥
स दृष्ट्वा भवनं तस्य भार्यां च विभवं तथा।
पापीयसीं मतिं कृत्वा अहल्यां समुदैक्षत॥३६॥
नाऽऽत्मानं न परं देशं कालं शापादृषेर्भयम्।
न बुबोध तदा वत्स कामाकृष्टः शतक्रतुः॥३७॥
तद्ध्यानपरमो नित्यं सुरराज्येन गर्वितः।
संतप्ताङ्गः कथं कुर्यां प्रवेशो मे कथं भवेत्॥३८॥

वे ईर्ष्याप्रवण देवराज मुनि तथा उनकी अनिन्दिता पत्नी अहल्या को देखने उनके आश्रम में ब्राह्मणरूप में आये। इन्द्र ने गौतमाश्रम, उन गौतम की पत्नी तथा उनके वैभव को देखा, जिससे वे विह्वल हो उठे। उन इन्द्र ने अपने पाप से आक्रान्त मन द्वारा अहल्या को देखा। हे वत्स! इससे इन्द्र कामातुर हो गये। तब उनके मन में अपने-पराये, देश-काल, ऋषिभय-पापभय कुछ भी उदित नहीं हो रहा था। वे देवराजत्व से गर्वित होकर सदा अहल्या का ही चिन्तन करने लगे। उन्होंने विचार किया कि क्या करूं? सर्वाङ्ग सन्तप्त हो रहा है। किस प्रकार गौतमाश्रम में प्रविष्ट हो सकूंगा?।।३५-३८।।

एवं वसन्विप्ररूपो नान्तरं त्वध्यगच्छत।
स कदाचिन्महाप्राज्ञः कृत्वा पौर्वाह्णिकीं क्रियाम्॥३९॥
सहितो गौतमः शिष्यैर्निर्गतश्चाऽऽश्रमाद्बहिः।
आश्रमं गौतमीं विप्रान्धान्यानि विविधानि च॥४०॥

द्रष्टुं गतो मुनिवर इन्द्रस्तं समुदैक्षत। इदमन्तरमित्युक्त्वा चक्रे कार्यं मनःप्रियम्॥४१॥

रूपं कृत्वा गौतमस्य प्रियेप्सुः स शतक्रतुः।
तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीमहल्यां वाक्यमब्रवीत्॥४२॥

इस प्रकार इन्द्र ब्राह्मण वेश में गौतम की शिष्य मण्डली में निवास करके भी अपनी इच्छापूर्ति का अवसर नहीं पा सके। एक बार महाप्राज्ञ गौतम पूर्वाह्निकी क्रिया सम्पन्न करने के अनन्तर शिष्यों के साथ आश्रम के बाहर गये। आश्रम प्रान्त, गौतमीगंगा, अन्य विप्रवर्ग तथा विविध धान्यादि को जो आश्रम का था देखने हेतु वे निकले थे। देवेन्द्र ने यह अवसर देखा तथा उन्होंने जान लिया कि मेरे लिये यही अच्छा अवसर है। शतक्रतु ने तत्काल गौतम का रूप धारण किया तथा उस उत्तम अंगों वाली अहल्या को देख कर कहा—॥३९-४२॥

इन्द्र उवाच

आकृष्टोऽहं तव गुणै रूपं स्मृत्वा स्खलत्पदः।
इति ब्रुवन्हसन्हस्तमादायान्तः समाविशत्॥४३॥
न बुबोध त्वहल्या तं जारं मेने तु गौतमम्।
रममाणा यथासौख्यं प्रागाच्छिष्यैः स गौतमः॥४४॥
आगच्छन्तं नित्यमेव अहल्या प्रियवादिनी।
प्रतियाति प्रियं वक्ति तोषयन्ती च तं गुणैः॥४५॥
तामदृष्ट्वा महाप्राज्ञो मेने तन्महदद्भुतम्। द्वारस्थितं मुनिश्रेष्ठं सर्वे पश्यन्ति नारद॥४६॥
अग्निहोत्रस्य शालाया रक्षिणो गृहकर्मिणः।
ऊचुर्मुनिवरं भीता गौतमं विस्मयान्विताः॥४७॥

इन्द्र कहते हैं—"हे प्रिये! मैं तुम्हारे गुणों के कारण खिंचा आ रहा हूं। तुम्हारा रूप स्मरण करके पग-पग पर मेरा पैर खिसकता जा रहा है।" यह कहकर हंसते-हंसते इन्द्र ने अहल्या का हाथ पकड़ा तथा गृह के अन्दर प्रवेश किया। तथापि अहल्या वास्तविकता नहीं समझ सकी। वह अहल्या उस जार को ही गौतम समझ कर उस जार के साथ रमण करने लगी। तभी महर्षि गौतम शिष्यों सहित आश्रम लौट आये। अन्य दिनों गौतम के गृह वापस आने पर प्रियभाषिणी अहल्या वहां बाहर आती तथा अपने गुणों से गौतम को प्रसन्न करती थी, साथ ही प्रिय संभाषण भी करती थी। लेकिन आज महाप्राज्ञ गौतम अहल्या को द्वार पर न आया देख कर विस्मित हो गये। हे नारद! समस्त आश्रमवासी लोगों ने देखा कि गौतम ऋषि द्वार पर खड़े हैं। तब अग्निहोत्र शाला के रक्षक लोग भीत अथच विस्मित होकर मुनि से कहने लगे।।४३-४७।।

रक्षिण ऊचुः

भगवन्किमिदं चित्रं बहिरन्तश्च दृश्यसे।
प्रिययाऽन्तः प्रविष्टोऽसि तथैव च बहिर्भवान्।
अहो तपःप्रभावोऽयं नानारूपधरो भवान्॥४८॥

रक्षीगण कहते हैं—हे भगवान्! यह क्या विचित्र बात है? आप जो आश्रम की कुटिया के भीतर तथा बाहर एक साथ दो जगह विराजमान हैं। आप भीतर प्रवेश करके अपनी प्रिया के साथ हैं, साथ ही आप बाहर भी विराजमान हैं! यह तपस्या का अलौकिक प्रभाव है। तभी आप नाना रूपधारी हैं।।४८।।

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा विस्मितस्त्वन्तः प्रविष्टः को नु तिष्ठति।
प्रिये अहल्ये भवति किं मां न प्रतिभाषसे॥४९॥
इत्यृषेवर्चनं श्रुत्वा अहल्या जारमब्रवीत्॥५०॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनते ही ऋषि गौतम गृह में गये कि वहां कौन है? वे विस्मित होकर घर में जाकर कहने लगे—"हे प्रिये! अहल्या! तुम मुझसे बोलती क्यों नहीं? अहल्या ने यह सुनकर जार इन्द्र से कहा—॥४९-५०॥

अहल्योवाच

को भवान्मुनिरूपेण पापं त्वां कृतवानसि।
इति ब्रुवती शयनादुत्थिता सत्वरं भयात्॥५१॥
स चापि पापकृच्छक्रो विडालोऽभून्मुनेर्भयात्।
त्रस्तां च विकृतां दृष्ट्वा स्वप्रियां दूषितां तदा॥५२॥
उवाच स मुनिः कोपात्किमिदं साहसं कृतम्।
इति ब्रुवन्तं भर्तारं साऽपि नोवाच लज्जिता॥५३॥
अन्वेषयन्स्तु तं जारं बिडालं ददृशे मुनिः।
को भवानिति तं प्राह भस्मीकुर्यां मृषा वदन्॥५४॥

अहल्या कहती है—"तुम कौन हो, जिसने मुनिरूपी होकर यह पापकृत्य किया है? यह कहकर वह शीघ्र भय पूर्वक शयन शय्या से उठ गई। इधर पापकारी सुरेन्द्र भी मुनि के भय से बिड़ाल रूपी हो गया। तब उन मुनि ने अपनी प्रिया को त्रस्ता, विकृता एवं दूषिता देखकर क्रोध पूर्वक कहा—"तुमने यह कैसा साहस कर लिया? पति की बात से अहल्या लज्जित हो गयी तथा कोई उत्तर ही न दे सकी। उस समय मुनि ने उस जार को खोजते हुये सामने एक बिड़ाल देखा। मुनि ने उसे देख कर कहा—"तू कौन है? सत्य बोल। यदि झूठ बोलेगा, तब मैं भस्म कर दूंगा"॥५१-५४॥

इन्द्र उवाच

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा चैवमाह शचीपतिः। शचीभर्ता पुरां भेत्ता तपोधन पुरुष्टुतः॥५५॥
ममेदं पापमापन्नं सत्यमुक्तं मयाऽनघ। महद्विगर्हितं कर्म कृतवानस्म्यहं मुने॥५६॥
स्मरसायकनिर्भिन्नहृदयाः किं न कुर्वते। ब्रह्मन्मयि महापापे क्षमस्व करुणानिधे॥५७॥
सन्तः कृतापराधेऽपि न रौक्ष्यं जातु कुर्वते।
निशम्य तद्वचो विप्रो हरिमाह रुषाऽन्वितः॥५८॥

यह सुनकर इन्द्र हाथ जोड़ कर कहने लगे—"हे तपोधन! मैं शचीपति, सुरपति, पुरुहूत हूं। हे निष्पाप! सत्य कहता हूं। यह पापकृत्य मैंने ही किया है। हे मुनिवर! निश्चय ही मैं अत्यन्त गर्हितकर्मा हूं।

फलस्वरूप कामबाणों से भेदा जाकर मेरा हृदय विद्ध हो गया था। कामबाण क्या नहीं कर देता! हे ब्रह्मन्! हे करुणानिधान! मैं महापापी हूं, मुझे क्षमा करिये। साधु लोग अपराधी के साथ भी कठोर व्यवहार नहीं करते।" इन्द्र का कथन सुनकर भी गौतम का क्रोध शान्त नहीं हो सका। उन क्रोधित विप्र ने इन्द्र से कहा—॥५५-५८॥

गौतम उवाच

भगभक्त्या कृतं पापं सहस्रभगवान्भव।
तामप्याह मुनिः कोपात्त्वं च शुष्कनदी भव॥५९॥
ततः प्रसादयामास कथयन्ती तदाकृतिम्॥६०॥

विप्र गौतम कहते हैं—तुमने भग की अनुरक्ति के कारण ही यह पापकृत्य किया है। अतः तुम्हारे देह में एक हजार भग (योनि) हो जायें। तभी उन मुनि ने क्रोधित होकर अहल्या से भी कहा—"तुम एक सूखी नदी होकर अवस्थित रहो।" तब अहल्या गौतम को प्रसन्न करने हेतु कहने लगी॥५९-६०॥

अहल्योवाच

मनसाऽप्यन्यपुरुषं पापिष्ठाः कामयन्ति याः।
अक्षयान्यान्ति नरकांस्तासां सर्वेऽपि पूर्वजाः॥६१॥
भूत्वा प्रसन्नो भगवन्नवधारय मद्वचः।
तव रूपेण चाऽऽगत्य मामगात्साक्षिणस्त्विमे॥६२॥
तथेति रक्षिणः प्रोचुरहल्या सत्यवादिनी।
ध्यानेनापि मुनिर्ज्ञात्वा शान्तं प्राह पतिव्रताम्॥६३॥

अहल्या कहती है—हे प्रभो! जो कामिनीगण मन ही मन अन्य पुरुष की कामना करती हैं, वे अक्षय नरकगामी होती हैं। उनके पूर्वज भी ऐसी गति पाते हैं, परन्तु आप प्रसन्न होकर मेरी प्रार्थना पर विचार करिये। यह व्यक्ति आपका ही रूप धारण करके मेरे साथ कामक्रीड़ा कर रहा था। इस बात के गवाह इस अग्निशाला के सभी रक्षक भी हैं। यह सुनकर उन रक्षकों ने भी कहा कि अहल्या का कथन सत्य है। तब मुनि ने भी ध्यान करके वस्तुस्थिति जान लिया तथा शान्त मन से पत्नी से कहा, जो पतिव्रता थी॥६१-६३॥

गौतम उवाच

यदा तु सङ्गता भद्रे गौतम्या सरिदीशया। नदी भूत्वा पुना रूपं प्राप्यसे प्रियकृन्मम॥६४॥

महर्षि गौतम कहते हैं—हे भद्रे! जब तुम नदी होकर गौतमी नदी से संगम करोगी, तब पुनः मेरा प्रिय करने वाला रूप प्राप्त करोगी॥६४॥

इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वा तथा चक्रे पतिव्रता। तया तु सङ्गता देव्या अहल्या गौतमप्रिया॥६५॥
पुनस्तद्रूपमभवद्यन्मया निर्मितं पुरा। ततः कृताञ्जलिपुटः सुरराट् प्राह गौतमम्॥६६॥

पतिव्रता अहल्या ने ऋषि का यह वचन सुनकर नदीरूप धारण किया तथा गौतमी से मिल गयीं।

पूर्वकाल में मैंने जिस प्रकार अहल्या की सृष्टि किया था, उन्होंने वैसा ही रूप धारण कर लिया। तब देवराज इन्द्र ने हाथ जोड़कर गौतम ऋषि से कहा—।।६४-६६।।

इन्द्र उवाच

मां पाहि मुनिशार्दूल पापिष्ठं गृहमागतम्। पादयोः पतितं दृष्ट्वा कृपया प्राह गौतमः।।६७।।

इन्द्रदेव कहते हैं—हे मुनिप्रवर! मैं गृहागत, पापी हूं। आप मेरा उद्धार करिये। यह कहकर इन्द्र महर्षि के चरणों पर गिर गये। तब गौतम ने कृपा पूर्वक इन्द्र से कहा—।।६७।।

गौतम उवाच

गौतमीं गच्छ भद्रं ते स्नानं कुरु पुरन्दर। क्षणान्निर्धूतपापस्त्वं सहस्राक्षो भविष्यसि।।६८।।
उभयं विस्मयकरं दृष्ट्वानस्मि नारद। अहल्यायाः पुनर्भावं शचीभर्ता सहस्रदृक्।।६९।।
ततः प्रभृति तत्तीर्थमहल्यासङ्गमं शुभम्। इन्द्रतीर्थमिति ख्यातं सर्वकामप्रदं नृणाम्।।७०।।

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्येऽहल्या सङ्गमेन्द्रतीर्थवर्णनं नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः।।८७।।

गौतमीमाहात्म्येऽष्टादशोऽध्यायः।।१८।।

ऋषि गौतम कहते हैं—"हे इन्द्र! तुम जाकर गौतमी जल में स्नान करो। तुमको पुण्य लाभ होगा। तुम क्षण में ही सहस्राक्ष हो जाओगे तथा पापरहित हो जाओगे।" हे नारद! अहल्या का पुनराविर्भाव तथा शचीपति को सहस्रनेत्र लाभ, यह दोनों घटनाचक्र मैंने तुमसे कह दिया। तभी से अहल्या संगम एक पवित्र तीर्थ माना गया। यह इन्द्रतीर्थ कहा जाता है। यह मनुष्यों हेतु सर्वकामप्रद है।।६८-७०।।

।।सप्तशीतितम अध्याय समाप्त।।

❖❖❖

अथाष्टाशीतितमोऽध्यायः

जनस्थानतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

तस्मादप्यपरं तीर्थं जनस्थानमिति श्रुतम्। चतुर्योजनविस्तीर्णं स्मरणान्मुक्तिदं नृणाम्।।१।।
वैवस्वतान्वये जातो राजाऽभूज्जनकः पुरा। सोऽपांपतेस्तु तनुजामुपयेमे गुणार्णवाम्।।२।।
धर्मार्थकाममोक्षाणां जनकां जनको नृपः। अनुरूपगुणत्वाच्च तस्य भार्या गुणार्णवा।।३।।
याज्ञवल्क्यश्च विप्रेन्द्रस्तस्य राज्ञः पुरोहितः। तमपृच्छन्नृपश्रेष्ठो याज्ञवल्क्यं पुरोहितम्।।४।।

ब्रह्मा कहते हैं—इसके पश्चात् का तीर्थ जनस्थान कहा जाता है। यह तीर्थ चार योजन विस्तीर्ण तथा स्मरण मात्र से ही मुक्तिदायक है। पूर्वकाल में वैवस्वत वंश में जनक नाम वाले एक राजा थे। धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्ष की जनयित्री, वरुणपुत्री गुणार्णवा से उन्होंने पाणिग्रहण किया था। वह नारी अपने नाम के अनुरूप गुणों का आगार थी। इन राजा के पुरोहित थे श्रेष्ठतम विप्र याज्ञवल्क्य। एक दिन सभा में राजा जनक ने अपने पुरोहित याज्ञवल्क्य से प्रश्न किया।।१-४।।

जनक उवाच

भुक्तिमुक्ति उभे श्रेष्ठे निर्णीते। मुनिसत्तमैः। दासीदासेभतुरगरथाद्यैर्भुक्तिरुत्तमाः॥५॥
किंत्वन्तविरसा भुक्तिर्मुक्तिरेका निरत्यया।
भुक्तेर्मुक्तिः श्रेष्ठतमा भुक्त्या मुक्तिं कथं व्रजेत्॥६॥
सर्वसङ्गपरित्यागान्मुक्तिप्राप्तिः सुदुःखतः।
तद्ब्रूहि द्विजशार्दूल सुखान्मुक्तिः कथं भवेत्॥७॥

राजा जनक कहते हैं—हे प्रभो! मुनिप्रवरवृन्द भुक्ति को तथा मुक्ति को, अर्थात् उभय को श्रेष्ठ कहते हैं। इसमें दास, दासी, हाथी, अश्व, रथादि यान वाहन से घिरे रहकर सुखानुभव करना ही उत्तम भुक्ति (भोग) है। तथापि इस भुक्ति का परिणाम अन्ततः विरस ही रहता है। एकमात्र मुक्ति ही नित्य तथा अविनश्वर है। भुक्ति की तुलना में मुक्ति ही श्रेष्ठ है। यहां यह शंका है कि भुक्ति द्वारा मुक्ति का लाभ कैसे हो सकेगा? सर्वसंग त्याग करके तथा अति कठोर दुःख भोग से ही मुक्तिलाभ होता है। हे द्विजप्रवर! किस विधि से सुख के साथ मुक्तिलाभ हो सकेगा?।।५-७।।

याज्ञवल्क्य उवाच

अपांपतिस्तव गुरुः श्वशुरः प्रियकृत्तथा।
तं गत्वा पृच्छ नृपते उपदेक्ष्यति ते हितम्॥८॥

ऋषि याज्ञवल्क्य कहते हैं—जलपति वरुण आपके प्रिय कर्त्ताश्वसुर हैं। वे ही आपके गुरु हैं। वे आपको हित का उपदेश प्रदान करेंगे। उनसे पूछिये।।८।।

याज्ञवल्क्यश्च जनको राजानं वरुणं तदा। गत्वा चोचतुरव्यग्रौ मुक्तिमार्गं यथाक्रमम्॥९॥

तब याज्ञवल्क्य तथा जनक ने वरुणराज के यहां जाकर यथाक्रमेण धीरता के साथ उनसे मुक्तिमार्ग के सम्बन्ध में प्रश्न किया।।९।।

वरुण उवाच

द्विधा तु संस्थिता मुक्तिः कर्मद्वारेऽप्यकर्मणि।
वेदे च निश्चितो मार्गः कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः॥१०॥
सर्वं च कर्मणा बद्धं पुरुषार्थचतुष्टयम्।
अकर्मणैवाऽऽप्यत इति मुक्तिमार्गो मृषोच्यते॥११॥

कर्मणा सर्वधान्यानि सेत्स्यन्ति नृपसत्तम।
तस्मात्सर्वात्मना कर्म कर्तव्यं वैदिकं नृभिः॥१२॥
तेन भुक्तिं च मुक्तिं च प्राप्नुवन्तीह मानवाः।
अकर्मणः कर्म पुण्यं कर्म चाप्याश्रमेषु च॥१३॥
जात्याश्रितं च राजेन्द्र तत्रापि शृणु धर्मवित्।
आश्रमाणि च चत्वारि कर्मद्वाराणि मानद॥१४॥
चतुर्णामाश्रमाणां च गार्हस्थ्यं पुण्यदं स्मृतम्।
तस्माद्भुक्तिश्च मुक्तिश्च भवतीति मतिर्मम॥१५॥

वरुणदेव कहते हैं—मुक्ति दो प्रकार की कही गयी है। प्रथम है कर्मपथ से मिलने वाली, द्वितीय है अकर्म मार्ग में स्थित। अकर्म से कर्मपथ श्रेष्ठ है। यही वेदवाक्य का निर्णय है। पुरुषार्थ चतुष्टय कर्मबद्ध होता है। अतः अकर्म से जो मुक्तिपथ मिलता है, वह मिथ्या कहा गया है। हे राजन्! कर्म से ही सभी धर्म सिद्ध हो जाते हैं। अतः सर्व प्रयत्न के साथ मनुष्य वैदिक कर्म को कर्त्तव्य मानकर करें। मनुष्यों को कर्मानुसार भुक्ति-मुक्तिलाभ होता है। हे राजेन्द्र! अकर्म से कर्म ही शुभ है। वह कर्म आश्रम भेद से जाति सम्बन्धित है। वह सब कहता हूं। हे धर्मज्ञ! उसे श्रवण करो। हे मानद! कर्म द्वार ये चार आश्रम कहे गये हैं। इन चारों में गृहस्थाश्रम ही श्रेष्ठ है। वही उत्तम पुण्य देने वाला है। उसी में भुक्ति-मुक्ति मिलती है। यह मेरी धारणा है।।१०-१५।।

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा तु जनको याज्ञवल्क्यश्च बुद्धिमान्। वरुणं पूजयित्वा तु पुनर्वचनमूचतुः॥१६॥
को देशः किं च तीर्थं स्याद्भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्।
तद्वदस्व सुरश्रेष्ठ सर्वज्ञोऽसि नमोऽस्तु ते॥१७॥

ब्रह्मा कहते हैं—बुद्धिमान् राजा जनक ने तथा याज्ञवल्क्य ने वरुण देव का कथन सुनकर उनका आदर करके पुनः-पुनः कहा—"हे सुरप्रवर! कौन देश अथवा कौन तीर्थ भुक्ति-मुक्तिदायक है? आप सर्वज्ञ हैं। आपको प्रणाम!।।१६-१७।।

वरुण उवाच

पृथिव्यां भारतं वर्षं दण्डकं तत्र पुण्यदम्।
तस्मिन्क्षेत्रे कृतं कर्म भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम्॥१८॥
तीर्थानां गौतमी गङ्गा श्रेष्ठा मुक्तिप्रदा नृणाम्।
तत्र यज्ञेन दानेन भोगान्मुक्तिमवाप्स्यति॥१९॥

वरुणदेव कहते हैं—पृथिवी में भारतवर्ष पुण्यजनक है। इसमें दण्डक वन और भी पुण्यदायक है। तीर्थों में से गोमतीगंगा मनुष्यों के लिये प्रधानतः मुक्तिप्रदा है। वहां स्नान-दान से भुक्ति तथा मुक्तिलाभ हो जाता है।।१८-१९।।

ब्रह्मोवाच

याज्ञवल्क्यश्च जनको वाचं श्रुत्वा ह्यपांपतेः।
वरुणेन ह्यनुज्ञातौ स्वपुरीं जग्मतुस्तदा॥२०॥
अश्वमेधादिकं कर्म चकार जनको नृपः।
याजयामास विप्रेन्द्रो याज्ञवल्क्यश्च तं नृपम्॥२१॥
गङ्गातीरं समाश्रित्य यज्ञानमुक्तिमवाप राट्। तथा जनकराजानो बहवस्तत्र कर्मणा॥२२॥
मुक्तिं प्रापुर्महाभागा गौतम्याश्च प्रसादतः। ततः प्रभृति जनस्थानेति विश्रुतम्॥२३॥

ब्रह्मा कहते हैं—याज्ञवल्क्य तथा जनक ने जलपति वरुण का उपदेश सुनकर उनसे अनुमति लिया और उस समय अपने नगर लौट आये। गृह में आकर जनकराज ने अश्वमेधादि नाना यज्ञानुष्ठान किया। विप्रेन्द्र याज्ञवल्क्य ने उनका यज्ञ कराया। ये सभी यज्ञ गोमतीगंगा के तट पर किये गये। इसके फलस्वरूप राजा को मुक्ति मिली। राजा जनक के कर्म के प्रभाव तथा गौतमी की कृपा से और भी अनेक भाग्यशाली लोगों ने मुक्ति पाया था। उसी दिन से इस तीर्थ का नाम जनस्थान प्रसिद्ध हो गया।।२०-२३।।

जनकानां यज्ञसदो जनस्थानं प्रकीर्तितम्।
चतुर्योजनविस्तीर्णं स्मरणात्सर्वपापनुत्॥२४॥
तत्र स्नानेन दानेन पितॄणां तर्पणेन तु।
तीर्थस्य स्मरणाद्वाऽपि गमनाद्भक्तिसेवनात्॥२५॥
सर्वान्कामानवाप्नोति मुक्तिं च समवाप्नुयात्॥२६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये जनस्थानतीर्थवर्णनं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः॥८८॥

गौतमीमाहात्म्ये एकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥



यह जनकवंशीय राजाओं का यज्ञ स्थान है। यह चार योजन विस्तार वाला है। यह स्मरण करने मात्र से पाप हरता है। वहां स्नान-दान तथा पितरों का तर्पण करने तथा तीर्थ का स्मरण करने से, वहां जाने से, भक्ति के साथ उस तीर्थ सेवन से मानव की सभी कामना पूर्ण होती है। अन्त में वह मुक्त हो जाता है।।२४-२६।।

।।अष्टाशीतितम अध्याय समाप्त।।



अथोननवतितमोऽध्यायः

अरुणा-वरुणा संगम तथा अश्वतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

अरुणा वरुणा चैव नद्यौ पुण्यतरे शुभे। तयोश्च सङ्गमः पुण्यो गङ्गायां मुनिसत्तम॥१॥
तदुत्पत्तिं शृणुष्वेह सर्वपापविनाशिनीम्।
काश्यपस्य सुतो ज्येष्ठ आदित्यो लोकविश्रुतः॥२॥
त्रैलोक्यचक्षुस्तीक्ष्णांशुः सप्ताश्वो लोकपूजितः।
तस्य पत्नी उषा ख्याता त्वाष्ट्री त्रैलोक्यसुन्दरी॥३॥
भर्तुः प्रतापतीव्रत्वमसहन्ती सुमध्यमा। चिन्तयामास किं कृत्यं मम स्यादिति भामिनी॥४॥

ब्रह्मा कहते हैं—अरुणा तथा वरुणा नामक दो पुण्यतरा शुभावहा नदी हैं। हे मुनिवर! उनका गंगा से संगमस्थल अत्यन्त पुण्यप्रद है। अब सर्वपापहारिणी उनकी उत्पत्ति का श्रवण करो। कश्यप के ज्येष्ठ पुत्र आदित्य लोकप्रसिद्ध हैं। वे त्रैलोक्यचक्षु, तीक्ष्ण किरणयुक्त, लोकपूजित देवता हैं। वे सात अश्व वाले हैं। उनकी पत्नी त्वष्टा की पुत्री त्रैलोक्यसुन्दरी प्रसिद्ध ऊषा हैं। वे उत्तम कटि (कमर) वाली सुन्दरी ऊषा अपने पति सूर्य के तीव्र तेज को सहन नहीं कर पाती थी। उन भामिनि ने विचार किया कि अब मैं क्या करूं?।।१-४।।

तस्याः पुत्रौ महाप्राज्ञौ मनुर्वैवस्वतो यमः। यमुना च नदी पुण्या शृणु विस्मयकारणम्॥५॥
साऽकरोदात्मनश्छायामात्मरूपेण यत्नतः। तामब्रवीत्ततश्चोषा त्वं च मत्सदृशी भव॥६॥
भर्तारं त्वमपत्यानि पालयस्व ममाऽऽज्ञया। यावदागमनं मे स्यात्पत्युस्तावत्प्रिया भव॥७॥
नाऽऽख्यातव्यं त्वया क्वापि अपत्यानां तथा प्रिये।
तथेत्याह च सा छाया निजगाम गृहादुषा॥८॥
इत्युक्त्वा सा जगामाऽऽशु शान्तं रूपमभीप्सती।
सा गत्वोषा गृहं त्वष्टुः पित्रे सर्वं न्यवेदयत्।
त्वष्टाऽपि चकितः प्राह तां सुतां सुतवत्सलः॥९॥

हे नारद! इस विस्मयकारी घटना को सुनिये। सूर्यपत्नी तथा त्वष्टा (विश्वकर्मा) की पुत्री के मनु तथा यम नामक दो पुत्र एवं यमुना नामक एक पुत्री थी। अतः यत्नतः ऊषा ने अपने ही समान छाया की सृष्टि करके कहा—"तुम मेरे समान होकर रहो। मेरे आदेश से मेरे पति की सन्तानों का पालन करना। जब तक मैं वापस नहीं आती, तब तक तुम ही मेरे पति की प्रिया होकर रहना। तुम मेरे पति तथा सन्तान से कभी यह रहस्य मत कहना।" छाया इस आदेश से सहमत हो गयी। ऊषा इस प्रकार घर से निकल पड़ी। उसने पति के सौम्यरूप की कामना करते हुये पिता के घर जाकर उनसे समस्त वृत्तान्त निवेदित किया। यह सुनकर पिता त्वष्टा ने चकित होकर कहा—।।५-९।।

त्वष्टोवाच

नैतद्युक्तं भर्तृमत्या यत्स्वैरेण प्रवर्तनम्। अपत्यानां कथं वृत्तिर्भर्तुर्वा सवितुस्तव।
बिभेमि भद्रे शिष्टोऽहं भर्तुर्गेहं पुनर्व्रज॥१०॥

त्वष्टा कहते हैं—हे भद्रे! पतियुक्त स्त्री के लिये ऐसा स्वेच्छाचार उचित नहीं है। तुम्हारे बिना तुम्हारे पुत्रों तथा पति का निर्वाह कैसे होगा? वास्तव में मैं यह सोच कर भयभीत हो रहा हूं। मेरा उपदेश सुनो। तुम पतिगृह जाओ।।१०।।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्ता तु पित्रा सा नेत्युक्त्वा वै पुनः पुनः। उत्तरं च कुरोर्देशं जगाम तपसे त्वरा॥११॥
तत्र तेपे तपस्तीव्रं वडवारूपधारिणी। दुष्प्रेक्षं तं स्वकं कान्तं ध्यायन्ती निश्चला उषा॥१२॥
एतस्मिन्नन्तरे तात छाया चोषास्वरूपिणी।
पत्यौ सा वर्तयामास अपत्यान्यथ जज्ञिरे॥१३॥
सावर्णिश्च शनिश्चैव विष्टिर्या दुष्टकन्यका।
सा छाया वर्तयामास वैषम्येणैव नित्यशः॥१४॥
स्वेष्वपत्येषु चोषाया यमस्तत्र चुकोप ह।
वैषम्येणाथ वर्तन्तीं छायां तां मातरं तदा॥१५॥
ताडयामास पादेन दक्षिणाशापतिर्यमः। पुत्रदौर्जन्यसंक्षोभाच्छाया वैवस्वतं यमम्॥१६॥
शशाप पाप ते पादो विशीर्यतु ममाऽऽज्ञया। विशीर्णचरणो दुःखाद्रुदन्पितरमभ्यगात्।
सवित्रे तं तु वृत्तान्तं न्यवेदयदशेषतः॥१७॥

ब्रह्मा कहते हैं—पिता की बात सुनकर ऊषा ने बार-बार असहमति प्रकट किया तथा वह तपस्यार्थ शीघ्रता पूर्वक उत्तरकुरु देश चली गयी। वहां उन्होंने घोड़ी का रूप धारण करके तीव्र तप प्रारम्भ कर दिया। वे निश्चित रूप से हृदय में अपने अत्यन्त कठिन प्रयत्न से देखे जाने वाले पति का ध्यान करती रहतीं। इस समय ऊषा रूपा छाया पति की सेवा में निरत रहती और उसने कतिपय सन्तानों को भी जन्म दिया। उनके नाम थे सावर्णि, शनि एवं दुष्ट कन्या विष्टि। छायादेवी अपनी सन्तान तथा ऊषा की सन्तानों का पालन समानता पूर्वक नहीं करती थी। यह असमान व्यवहार देख कर दक्षिण दिक् के अधिपति यम ने क्रोध पूर्वक असमान व्यवहारता माता छाया पर अपने चरण से प्रहार किया। पुत्र की इस उद्दण्डता को देख कर छाया ने क्षुब्ध होकर वैवस्वत यम को अभिशाप प्रदान किया—"हे पापी! तुम्हारा पैर मेरे शाप से विशीर्ण हो जाये।" यम विशीर्ण चरणों के कारण दुःख पूर्वक रुदन करते पिता के यहां गये तथा समस्त घटना चक्र पिता सूर्य से आदि से अन्त तक निवेदित किया।।११-१७।।

यम उवाच

नेयं माता सुरश्रेष्ठ यया शप्तोऽहमीदृशः। अपत्येषु विरुद्धेषु जननी नैव कुप्यते॥१८॥

यद्बाल्यादब्रवं किञ्चिदथवा दुष्कृतं कृतम्।
नैव कुप्यति सा माता तस्मान्नेयं ममाम्बिका॥१९॥
यदपत्यकृतं किञ्चित्साध्वस्वाधु यथा तथा।
मात्यस्यां सर्वमप्येतत्तस्मान्मातेति गीयते॥२०॥
प्रधक्ष्यन्तीव मां तात नित्यं पश्यति चक्षुषा।
वक्त्यग्निकालसदृशा वाचा नेयं मदम्बिका॥२१॥

यम कहते हैं—हे सुरप्रवर देव! ये मेरी माता नहीं हो सकतीं, क्योंकि ऐसा होता तब वे इस प्रकार अभिशाप नहीं देतीं। विशेषतः सन्तान भले ही विरुद्ध आचरण करे, माता कभी कुपिता नहीं हो सकती। मैंने बालकपन के कारण न जाने क्या-क्या नहीं कहा, कितने दुष्कृत्य किये, क्या कभी मेरी माता ने ऐसा क्रोध किया? अतः मेरी धारणा ही नहीं हो रही है कि ये मेरी माता हैं। सन्तान साधु-असाधु चाहे कैसी क्यों न हो, अच्छा-बुरा चाहे जो क्यों न करे, सभी मां को सहन हो जाता है। तभी तो उसे माता कहते हैं। हे तात! इस समय जो हमारी माता हैं, मानों वे सदा हमें अपने नेत्रों की अग्नि से दग्ध सी करती रहती हैं तथा सदैव अपनी अग्निमयी वाणी का प्रयोग हमसे करती हैं। अतएव ये कदापि हमारी माता नहीं हैं।।१८-२१।।

ब्रह्मोवाच

तत्पुत्रवचनं श्रुत्वा सविताऽचिन्तयत्ततः।
इयं छाया नास्य माता उषा माता तु साऽन्यतः॥२२॥
मम शान्तिमभीप्सन्ती देशेऽन्यस्मिंस्तपोरता। उत्तरे च कुरौ त्वाष्ट्री वडवारूपधारिणी॥२३॥
तत्राऽऽस्ते सा इति ज्ञात्वा जगामेशो दिवाकरः।
यत्र सा वर्तते कान्ता अश्वरूपः स्वयं तदा॥२४॥
तां दृष्ट्वा वडवारूपां पर्यधावद्धयाकृतिः।
कामातुरं हयं दृष्ट्वा श्रुत्वा वै ह्रेषितस्वनम्॥२५॥
उषा पतिव्रतोपेता पतिध्यानपरायणा। हयधर्षणसम्भीता को त्वयं चेत्यजानती॥२६॥

ब्रह्मा कहते हैं—पुत्र का कथन सुनकर सविता देव चिन्तित हो उठे। उन्होंने विचार किया कि "यह स्त्री अवश्यमेव ऊषा की छाया है। यम की माता ऊषा कदापि ऐसी नहीं थी। उसकी प्रकृति अन्य प्रकार की थी। मेरे तीव्रतर ताप को शान्त करने की कामना से वह देशान्तर में जाकर तप करते समय व्यतीत कर रही है।" दिवाकर ने यह विचार करके यह जान लिया कि विश्वकर्मानन्दिनी ऊषा घोड़ी का रूप धर कर उत्तरकुरु देश में स्थित है। दिवाकर ने जब यह वृत्तान्त जान लिया, तब वे स्वयं अश्वरूपी होकर अपनी पत्नी के विचरण स्थल की ओर चल पड़े। वहां जाकर उन्होंने जब उस घोड़ी को देखा, तब वे भी अश्वरूप में उसका पीछा करने लगे। अश्व को कामातुर होकर हिनहिनाते देख कर पतिव्रता पतिध्यानरता ऊषा उस अश्व से कामक्रीड़ा की आशंका से भयभीत हो गई। वह सोचने लगी कि यह अश्व कौन है?।।२२-२६।।

अपलायत्पतौ प्राप्ते दक्षिणाभिमुखी त्वरा।
को नु मे रक्षकोऽत्र स्यादृषयो वाऽथवा सुराः॥२७॥
धावन्तीं तां प्रियामश्वामश्वरूपधरः स्वयम्। पर्यधावद्यतो याति उषा भानुस्ततस्ततः॥२८॥
स्मरग्रहवशे जातः को दुश्चेष्टं न चेष्टते। भागीरथीं नदीश्चान्या वनान्युपवनानि च॥२९॥
नर्मदां चाथ विन्ध्यं च दक्षिणाभिमुखावु (खी उ) भौ।
अतिक्रम्य भयोद्विग्ना त्वाष्ट्यभ्यगाच्छ गौतमीम्॥३०॥
त्रातारः सन्ति मुनयो जनस्थान इति श्रुतम्।
ऋषीणामाश्रमं साऽश्वा प्रविष्टा गौतमीं तथा॥३१॥

अश्वरूपी पति को (पहचान न सकने के कारण) अपनी ओर आते देख कर ऊषा त्वरान्वित रूप से दक्षिण दिशा की ओर भागने लगी। वह विचार कर रही थी कि क्या कोई देवता अथवा ऋषि उसकी रक्षा करेगा? अपनी प्रिया ऊषा को घोड़ी रूप में भागते देख कर अश्वरूपी सूर्यदेव भी ऊषा का पीछा कर रहे थे। ऊषा जिस ओर भी जाती, सूर्यदेव उधर ही पहुंच जाते। कामग्रह से ग्रस्त ऐसा कौन है, जो दुःचेष्टा नहीं करता! इस समय यह अश्व तथा घोड़ी दोनों ही दक्षिण की ओर दौड़े जा रहे थे। ये दोनों भागीरथी तथा अन्य नदियों, वनों, उपवनों को पार करते-करते क्रमशः नर्मदा तथा विन्ध्य के भी पार आ गये। तदनन्तर कहीं भी रक्षा का ठिकाना न पाकर ऊषा गौतमी नदी के तट पर पहुंच गयी। ऊषा ने यह सुना था कि जनस्थान में (पृथिवी) मुनि जन रक्षा करते हैं, अतः वह गौतमी तटस्थ ऋषियों के आश्रम के पास गौतमी जल में प्रविष्ट हो गयी।।२७-३१।।

अनुप्राप्तस्तथा चाश्वो भानुस्तद्रूपवांस्ततः। अश्वं निवारयामासुवर्जनस्था मुनिदारकाः।
ततः कोपादृषींस्तांश्च शशापोषापतिः प्रभुः॥३२॥

भानुरुवाच

निवारयथ मां यस्माद्वटा यूयं भविष्यथ॥३३॥

तभी अश्वरूपी सूर्यदेव भी वहां आ गये। लेकिन वहां आश्रम के बालक सूर्यदेव को रोकने लगे। यह देख कर ऊषा के पति अश्वरूपी सूर्य ने उन बालकों को अभिशाप दिया। भानुदेव ने कहा—"तुम लोगों ने मुझे रोका है, अतएव तुम लोग वटवृक्ष हो जाओ"।।३२-३३।।

ब्रह्मोवाच

ज्ञानदृष्ट्या तु मुनयो मेनिरेऽश्वमुषापतिम्। स्तुवन्तो देवदेवेशं भानुं तं मुनयो मुदा॥३४॥
स्तूयमानो मुनिगणैरश्वां भानुरथागमत्।
वडवाया मुखे लग्नं मुखं चाश्वस्वरूपिणम्॥३५॥
ज्ञात्वा त्वाष्ट्री च भर्तारं मुखाद्वीर्यं प्रसुस्त्रुवे।
तयोर्वीर्येण गङ्गायामश्विनौ समजायताम्॥३६॥

तत्राऽऽगच्छन्सुरगणाः सिद्धाश्च मुनयस्तथा।
नद्यो गावस्ततौषध्यो देवा ज्योतिर्गणास्तथा॥३७॥
सप्ताश्वश्च रथः पुण्यो ह्यरुणो भानुसारथिः।
यमो मनुश्च वरुणः शनिर्वैवस्वतस्तथा॥३८॥
यमुना च नदी पुण्या तापी चैव महानदी। तत्तद्रूपं समास्थाय नद्यस्ता विस्मयान्मुने॥३९॥
द्रष्टुं ते विस्मयाविष्टा आजग्मुः श्वशुरस्तथा।
अभिप्रायं विदित्वा तु श्वशुरं भानुरब्रवीत्॥४०॥

ब्रह्मा कहते हैं—मुनिगण ने ज्ञान नेत्र से उस अश्व को ऊषापति के रूप में जान लिया। इससे वे हर्षित होकर उनकी स्तुति करने लगे। भानुदेव ऊषापति सूर्यदेव मुनियों द्वारा स्तुत होकर उस घोड़ीरूपा ऊषा से संगत हो गये तथा उनके मुख से उन्होंने अपना मुख मिलाया। अब ऊषा ने इस अश्व को अपना पति जानकर मुख से वीर्यक्षरण कर दिया। उन दोनों के वीर्य के गंगा (गोमती) में गिर जाने के कारण वहां अश्विनीकुमारद्वय उत्पन्न हो गये। इस घटना के कारण आश्चर्यान्वित होकर वहां पर देवता, सिद्ध, मुनि, नदियां, गौयें, औषधियां, ज्योतिष्कगण (नक्षत्रादि), सूर्य का सप्ताश्व रथ, सूर्यसारथी अरुण, यम, मनु, वरुण, शनि, सावर्ण, यमुना, तापी तथा पुण्यजला महानदी आदि अपना-अपना रूप धारण किये इन लोगों के दर्शनार्थ वहां पर आ गये। वहां पर सूर्यदेव के श्वसुर विश्वकर्मा भी विस्मयाविष्ट होकर आ गये थे। तब सूर्यदेव ने ऊषा देवी की इच्छा को जान लेने के करण अपने श्वसुर त्वष्टा (विश्वकर्मा) से कहा—॥३४-४०॥

भानुरुवाच

उषायाः प्रीतये त्वष्टः कुर्वत्यास्तप उत्तमम्।
यन्त्रारूढं च मां कृत्वा छिन्धि तेजांस्यनेकशः।
यावत्सौख्यं भवेदस्यास्तावच्छिन्धि प्रजापते॥४१॥

सूर्यदेवता कहते हैं—हे त्वष्टा! ऊषा ने उत्तम तप किया है। उनकी प्रसन्नतार्थ आप मुझे खराद यन्त्र पर चढ़ायें तथा मेरे तेज को इतना खराद कर काट दीजिये, जिससे ऊषा को सुख हो। वह जितना मेरा तेज सहन कर सके उतना छोड़ कर शेष खराद दीजिये॥४१॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा ततस्त्वष्टा सोमनाथस्य सन्निधौ।
तेजसां छेदनं चक्रे प्रभासं तु ततो विदुः॥४२॥
भर्त्रा च सङ्गता यत्र गौतम्यामश्वरूपिणी। अश्विनोर्यत्र चोत्पत्तिरश्वतीर्थं तदुच्यते॥४३॥
भानुतीर्थं तदाख्यातं तथा पञ्चवटाश्रमः। तापी च यमुना चैव पितरं द्रष्टुमागते॥४४॥
अरुणावरुणानद्योर्गङ्गायां सङ्गमः शुभः।
देवानां तत्र तीर्थानामागतानां पृथक्पृथक्॥४५॥

नव त्रीणि सहस्त्राणि तीर्थानि गुणवन्ति च।
तत्र स्नानं च दानं च सर्वमक्षयपुण्यदम्॥४६॥
स्मरणात्पठनाद्वाऽपि श्रवणादपि नारद। सर्वपापविनिर्मुक्तो धर्मवान्स सुखी भवेत्॥४७॥
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्येऽरुणावरुणासङ्गमाश्वभानुतीर्थवर्णनं नामोननवतितमोऽध्यायः॥८९॥
गौतमीमाहात्म्ये विंशतितमोऽध्यायः॥२०॥



ब्रह्मा कहते हैं—विश्वकर्मा ने सूर्य का कथन सुनकर कहा—"ऐसा ही हो"। तदनन्तर उन्होंने सोमनाथ के निकट सूर्य की तेजोराशि को काट दिया। इसी से प्रभास तीर्थ की उत्पत्ति हो गई। गौतमी नदी के जिस भाग पर अश्विनीरूपा ऊषा अपने पति सूर्य के साथ संगत हो गयी थीं, जहां अश्विनीकुमारद्वय उत्पन्न हुये थे, वह स्थल अश्वतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है। वही भानुतीर्थ, पञ्चवटाश्रम के नाम से भी विख्यात है। अरुणा-वरुणा नदियों का संगमस्थान पावन एवं शुभावह है। यहां पर आये देवताओं के भी सत्ताईस हजार तीर्थ प्रख्यात हैं। यहां स्नान-दानादि जो कुछ कृत्य सम्पन्न किया जाता है, वह अक्षय होता है। हे नारद! इस तीर्थकथा का श्रवण, पठन तथा स्मरण भी व्यक्ति को सर्वपापमुक्त करके धार्मिक एवं सुखी बनाता है।।४२-४७।।

।।एकोननवतितम अध्याय समाप्त।।



अथ नवतितमोऽध्यायः

गारुड़तीर्थ वर्णन, नदी-विष्णु संवाद, विष्णु द्वारा गरुड़ के दर्प का हरण, गौतमी में स्नान से गरुड़ को वज्रदेह की प्राप्ति

ब्रह्मोवाच

गारुडं नाम यत्तीर्थं सर्वविघ्नप्रशान्तिदम्। तस्य प्रभावं वक्ष्यामि शृणु नारद यत्नतः॥१॥
मणिनाग इति त्वासीच्छेषपुत्रो महाबलः। गरुडस्य भयाद्भक्त्या तोषयामास शङ्करम्॥२॥
ततः प्रसन्नो भगवान्परमेष्ठी महेश्वरः। तमुवाच महानागं वरं वरय पन्नग॥३॥
नागः प्राह प्रभो मह्यं देहि मे गरुडाभयम्। तथेत्याह च तं शम्भुर्गरुडादभयं भवेत्॥४॥
निर्गतो निर्भयो नागो गरुडादरुणानुजात्। क्षीरोदशायी यत्राऽऽस्ते क्षीरार्णवसमीपतः॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—गरुड़ नामक एक तीर्थ है, जो सभी विघ्नों को शान्त कर देता है। इसका माहात्म्य कहता हूं। यत्नतः श्रवण करो। अनन्त नागपुत्र मणिनाग महाबली नाग था। उसने गरुड़ के भय से भक्ति के

साथ शंकराराधन किया। तदनन्तर भगवान् महेश्वर ने प्रसन्न होकर उस महानाग से कहा—"वर मांगो"। नाग ने कहा—"हे प्रभु! मुझे गरुड़ से अभय दीजिये।" शंभु ने सहमत होकर मणिनाग को अभयदान दे दिया। अरुण के अनुज गरुड़ से निर्भय होकर यह नाग निर्भयता के साथ वहां गया, जहां क्षीरसागर में विष्णु विराजित थे। वहां वह यत्र-तत्र विचरण करने लगा।।१-५।।

इतश्चेतश्च चरति नागोऽसौ सुखशीतले।
गरुडोऽपि च यत्राऽऽस्ते तं देशमपि यात्यसौ॥६॥
गरुडः पन्नगं दृष्ट्वा चरन्तं निर्भयेन तु। तं गृहीत्वा महानागं प्राक्षिपत्स्वस्य वेश्मनि॥७॥
तं बद्ध्वा गारुडैः पाशैर्गरुडो नागसत्तमम्। एतस्मिन्नन्तरे नन्दी प्रोवाचेशं जगत्प्रभुम्॥८॥

किम्बहुना जहां गरुड़ का निवास था, वहां भी यह मणिनाग चला गया। गरुड़ ने इस नाग को अपने यहां निर्भयता पूर्वक विचरते देख कर उसे पकड़ा तथा अपने गृह में बन्द कर दिया। तभी नन्दीश्वर ने प्रभु शंकर से कहा—।।६-८।।

नन्दिकेश्वर उवाच

नूनं नागो च चाऽऽयाति भक्षितो बद्ध एव वा।
गरुडेन सुरेशान जीवन्नागो न संव्रजेत्॥९॥

नन्दिकेश्वर कहते हैं—"जब मणिनाग वापस नहीं आया। गरुड़ ने या तो उसे बन्दी बनाया है अथवा उसे खा लिया है। यदि वह जीवित होता तब अवश्य अब तक यहां आ जाता"।।९।।

ब्रह्मोवाच

नन्दिनो वचनं श्रुत्वा ज्ञात्वा शम्भुरथाब्रवीत्॥१०॥

नन्दी का कथन सुनकर शंभु समस्त घटना से अवगत हो गये। उन्होंने कहा—।।१०।।

शिव उवाच

गरुडस्य गृहे नागो बद्धस्तिष्ठति सत्वरम्।
गत्वां तं जगतामीशं विष्णुं स्तुहि जनार्दनम्॥११॥
बद्धं नागं काश्यपेन मद्वाक्यादानय स्वयम्।
तत्प्रभोर्वचनं श्रुत्वा नन्दी गत्वा श्रियः पतिम्॥१२॥
व्यज्ञापयत्स्वयं वाक्यं विष्णु लोकपरायणम्।
नारायणः प्रीतमना गरुडं वाक्यमब्रवीत्॥१३॥

भगवान् शिव कहते हैं—"गरुड़ के गृह में नाग बंधा हुआ पड़ा है। तुम शीघ्र जाओ। वहां जाकर जनार्दन का स्तव करना और गरुड़ द्वारा बांधे गये मणिनाग को साथ लेकर शीघ्र आओ।" भगवान् शिव का आदेश पाकर नन्दी लक्ष्मीपति भगवान् नारायण के यहां गये तथा लोककल्याण निरत विष्णु से समस्त घटना का वर्णन किया, जिसे सुनकर प्रसन्नचित्त भगवान् कहने लगे।।११-१३।।

विष्णुरुवाच

विनतात्मज मे वाक्यान्नन्दिने देहि पन्नगम्। कम्पमानस्तदाकर्ण्य नेत्युवाच विहङ्गमः।
विष्णुमप्यब्रवीत्कोपात्सुपर्णो नन्दिनोऽन्तिके॥१४॥

भगवान् विष्णु कहते हैं—"हे विनता पुत्र! मेरा आदेश मानकर उस सर्प को नन्दी को प्रदान करो।" यह सुनकर गरुड़ ने क्रोध से कांपते हुये कहा—"नहीं दूंगा"। उन्होंने नन्दी के समक्ष क्रोधयुक्त होकर विष्णु से कहा—॥१४॥

गरुड उवाच

यद्यत्प्रियतमं किञ्चिद्भृत्येभ्यः प्रभविष्णवः। दास्यन्त्यन्ये भवान्नैव मयाऽऽनीतं हरिष्यिति॥१५॥
पश्य देवं त्रिनयनं नागं मोक्ष्यति नन्दिना। मयोपपादितं नागं त्वं तु दास्यसि नन्दिने॥१६॥
त्वां वहामि सदा स्वामिन्मम देयं सदा त्वया।
मयोपपादितं नागं वक्तुं देहीति नोचितम्॥१७॥
सतां प्रभूणां नेयं स्याद्वृत्तिः सद्वृत्तिकारिणाम्।
सन्तो दास्यन्ति भृत्येभ्यो मदुपात्तहरो भवान्॥१८॥
दैत्याञ्जयसि सङ्ग्रामे मद्बलेनैव केशव। अहं महाबलीत्येवं मुधैव शलाघते भवान्॥१९॥

गरुड़ कहते हैं—अन्य स्वामी लोग अपने सेवकों को जो उनकी प्रिय वस्तु देते हैं, वैसा तो आप कुछ नहीं देते। यदि मैं कुछ ले आता हूं, आप उसे हर लेते हैं। देखिये! ये त्रिलोचन देवता कितने भक्तप्रिय हैं! वे नन्दी को भेज कर उस नाग को मुक्त कराने के लिये उत्सुक हैं। आपके भृत्य मैंने इस नाग को प्राप्त किया है। आप उलटा उसे नन्दी को दे रहे हैं। मैं नित्य आपको ढोता हूं। आपको चाहिये कि मुझे देते रहा करें। मैं एक नाग लाया, आप उलटे उसे छोड़ने का आदेश दे रहे हैं। यह सर्वथा अनुचित कार्य है। सद्वृत्ति युक्त सच्चरित्र स्वामी के लिये ऐसा व्यवहार उचित नहीं है। सज्जन लोग सेवकों को देते रहते हैं। आप तो पाई वस्तु का हरण कर रहे हैं। हे केशव! यह स्मरण रखिये कि मेरे बल से ही आप युद्ध में दैत्यों पर विजय पाते हैं। मैं ही वास्तव में महाबली हूं। आपकी शलाघा व्यर्थ है।।१५-१९।।

ब्रह्मोवाच

गरुडस्येति तद्वाक्यं श्रुत्वा चक्रगदाधरः।
विहस्य नन्दिनः पार्श्वे पश्यद्भिर्लोकपालकैः॥२०॥
इदमाह महाबुद्धिर्मां समुह्य कृशो भवान्। त्वद्बलादसुरान्सर्वाञ्जेष्येऽहं खगसत्तम॥२१॥
इत्युक्त्वा श्रीपतिर्ब्रह्मञ्शान्तकोपोऽब्रवीदिदम्।
वहाङ्गुलिं करस्याऽऽशु कनिष्ठां नन्दिनोऽन्तिके॥२२॥
गरुडस्य ततो मूर्ध्नि न्यस्येदं पुनरब्रवीत्। सत्यं मां वहसे नित्यं पश्य धर्मं विहङ्गम॥२३॥

न्यस्तायां ततोऽङ्गुल्यां शिरः कुक्षौ समाविशत्।
कुक्षिश्च चरणस्यान्तः प्राविशच्चूर्णितोऽभवत्।
ततः कृताञ्जलिर्दीनो व्यथितो लज्जयाऽन्वितः॥२४॥

ब्रह्मा कहते हैं—महाबुद्धिशाली चक्र-गदाधर प्रभु विष्णु ने गरुड़ का यह कथन सुनकर लोकपालों तथा शिव के अनुचर नंदी के सामने हास्य पूर्वक कहा—"हे गरुड़! तुम मुझे ढोते हुये कृश हो गये हो। तुम्हारा यह कथन उत्तम है कि तुम्हारे ही बल से मैंने असुरों को जीता है।" यह कहकर श्रीपति ने बिना क्रोध किये गरुड़ से कहा—"मैं स्वीकार करता हूं कि तुम विलक्षण शक्तिमान् हो। तुम मेरी कनिष्ठा अंगुली को वहन करो।" यह कहकर नन्दी के समक्ष ही विष्णु ने अपनी कनिष्ठा उंगली को गरुड़ के मस्तक पर रख कर कहा—"हे पक्षी! सत्य बात है कि तुम नित्य मुझे ढोते हो। अब तुम धर्म की गति देखो।" यह कह कर जैसे ही विष्णु ने अपनी उंगली गरुड़ के मस्तक पर रखा, वैसे ही गरुड़ का मस्तक (उसके भार से) उसकी ही कोख में प्रवेश कर गया। अब उसका कोख उसी के दोनों पैर के बीच में चला गया। इस प्रकार गरुड़ चूर्ण-विचूर्ण हो गया। वह लज्जा में डूब कर, दीनता पूर्वक पीड़ा से तड़पता हाथ जोड़कर विनीत वाक्यों में कहने लगा।।२०-२४।।

गरुड उवाच

त्राहि त्राहि जगन्नाथ भृत्यं मामपराधिनम्।
त्वं प्रभुः सर्वलोकानां धर्ता धार्यस्त्वमेव च॥२५॥
अपराधसहस्राणि क्षमन्ते प्रभविष्णवः। कृतापराधेऽपि जने महती यस्य वै कृपा॥२६॥
वदन्ति मुनयः सर्वे त्वामेव करुणाकरम्। रक्षस्वाऽऽर्तं जगन्मातर्मामम्बुजनिवासिनि।
कमले बालकं दीनमार्तं तनयवत्सले॥२७॥

गरुड़ कहता है—हे जगन्नाथ! कृपा पूर्वक आप मुझे बचाईये। मैं आपका अपराधी भृत्य हूं। आप सबके प्रभु तथा धारण करने वाले हैं। स्वामी लोग नौकरों का हजारों-हजार अपराध क्षमा कर देते हैं। इन तीनों लोकों में अपराध करने पर भी जिनकी महान् करुणा की बात सुनी जाती है, मुनिगण ऐसे आप की ही महिमा का गान करते रहते हैं। वे ऐसे आपको करुणाकर कहते हैं। साथ ही हे कमलविलासिनी जगदम्बिका माता कमला! आप ही इस आर्त्त-दीन बालक की रक्षा करिये।।२५-२७।।

ब्रह्मोवाच

ततः कृपान्विता देवी श्रीरप्याह जनार्दनम्॥२८॥

ब्रह्मा कहते हैं—तत्पश्चात् करुणार्द्र हृदय कृपालु देवी लक्ष्मी ने जनार्दन से कहा—।।२८।।

कमलोवाच

रक्ष नाथ स्वकं भृत्यं गरुडं विपदं गतम्। जनार्दन उवाचेदं नन्दिनं शम्भुवाहनम्॥२९॥

देवी कमला कहती हैं—"हे नाथ! विपन्न भृत्य गरुड़ की रक्षा करिये।" तब जनार्दन ने शंभु के वाहन नन्दी से कहा—।।२९।।

विष्णुरुवाच

नय नागं सगरुडं शम्भोरन्तिकमेव च। तत्प्रसादाच्च गरुडो महेश्वरनिरीक्षितः।
आत्मीयं च पुना रूपं गरुडः समवाप्स्यति॥३०॥

विष्णु कहते हैं—तुम गरुड़ के साथ मणिनाग को लेकर शिव के पास जाओ। महेश्वर प्रसन्न दृष्टि द्वारा गरुड़ को पुनः इसका पूर्वरूप प्रदान करेंगे।।३०।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा च वृषभो नागेन गरुडेन च। शनैः स शङ्करं गत्वा सर्वं तस्मै न्यवेदयत्।
शङ्करोऽपि गरुत्मन्तं प्रोवाच शशिशेखरः॥३१॥

ब्रह्मा कहते हैं—नन्दी ने "ऐसा ही हो" कहा और वे नाग के साथ में गरुड़ को शंकर के पास ले गये। उन्होंने समस्त वृत्तान्त शिव से कहा। चन्द्रमौलि शिव ने उस समय गरुड़ से कहा—।।३१।।

शिव उवाच

याहि गङ्गां महाबाहो गौतमीं लोकपावनीम्।
सर्वकामप्रदां शान्तां तामाप्लुत्य पुनर्वपुः॥३२॥
प्राप्स्यसे सर्वकामांश्च शतधाऽथ सहस्रधा। सर्वपापोपतप्ता ये दुर्दैवोन्मूलितोद्यमाः।
प्राणिनोऽभीष्टदा तेषां शरणं खग गौतमी॥३३॥

शिवं कहते हैं—हे महाबाहो! तुम लोकपावनी गौतमीगंगा जाओ। उस सर्वकामप्रदा गौतमीगंगा में स्नान करो, जो शान्ति देने वाली है। इससे तुमको पुनः अपना पूर्व रूप प्राप्त होगा। जो कोई सैकड़ों-हजारों नाना पापों से परितप्त है तथा जो दारुण दैव प्रभाव से विफल परिश्रम हो गया हो, ऐसा व्यक्ति भी यहां गौतमीगंगा में स्नान द्वारा वांछितफल लाभ करता है। ऐसे लोगों हेतु गौतमी ही एकमात्र आश्रय है।।३२-३३।।

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्यं प्रणतो भूत्वा श्रुत्वा तु गरुडोऽभ्यगात्।
गङ्गामाप्लुत्य गरुडः शिवं विष्णुं ननाम सः॥३४॥
ततः स्वर्णमयः पक्षी वज्रदेहो महाबलः। वेगी भवन्मुनिश्रेष्ठ पुनर्विष्णुमियात्सुधीः॥३५॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं गारुडं सर्वकामदम्। तत्र स्नानादि यत्किञ्चित्करोति प्रयतो नरः।
सर्वं तदक्षयं वत्स शिवविष्णुप्रियावहम्॥३६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये गरुडतीर्थवर्णनं नाम नवतितमोऽध्यायः॥९०॥

गौतमीमाहात्म्ये एकविंशतितमोऽध्यायः॥२१॥



ब्रह्मा कहते हैं—गरुड़ ने प्रणतभाव से शंकर का वचन सुना। वे तत्काल गौतमीगंगा गये और वहां

स्नान के पश्चात् उन्होंने शिव तथा विष्णु को प्रणाम किया! हे मुनिवर नारद! गरुड़ तब से स्वर्णमय महाबली वज्र देह वाले तथा अमित वेगवान् हो गये। वे पुनः विष्णु के पास आये। उसी दिन से यह तीर्थ सर्वकामप्रद होकर गारुड़ तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हो गया। मनुष्य यहां संयत होकर जो कुछ स्नान-दानादि करता है, वह सब अक्षय हो जाता है। उससे शिव तथा विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं।।३४-३६।।

।।नवतीतितम अध्याय समाप्त।।



अथैकनवतितमोऽध्यायः

गोवर्द्धनतीर्थ का वर्णन

ब्रह्मोवाच

ततो गोवर्धनं तीर्थं सर्वपापप्रणाशनम्। पितॄणां पुण्यजननं स्मरणादपि पापनुत्॥१॥

तस्य प्रभाव एष स्यान्मया दृष्टस्तु नारद।
ब्राह्मणः कर्षकः कश्चिज्जाबालिरिति विश्रुतः॥२॥
न विमुञ्चत्यनड्वाहौ मध्यं यातेऽपि भास्करे।
प्रतोदेन प्रतुदति पृष्ठतोऽपि च पार्श्वयोः॥३॥

तौ गावावश्रुपूर्णाक्षौ दृष्ट्वा गौः कामदोहिनी। सुरभिर्जगतां माता नन्दिने सर्वमब्रवीत्॥४॥

ब्रह्मा कहते हैं—तदनन्तर पितृगण के लिये पुण्य प्रदान करने वाला सर्वपापहारी गोवर्द्धनतीर्थ है। यह स्मरण मात्र से पाप हरण करने वाला है। हे नारद! मैंने इसका प्रभाव इस प्रकार से देखा है। जाबालि नाम वाले एक विख्यात कृषक ब्राह्मण प्रचण्ड मध्याह्न काल में भी हल जोतते वृषभ को खेत से नहीं हटाता था। वह तो उनकी पीठ तथा पार्श्व में चाबुक से प्रहार भी करता रहता था। कामदुधा माता सुरभि ने इन दोनों बैलों की आंखों में आंसू भरे देख कर नन्दी से यह वृत्तान्त कहा—।।१-४।।

स चापि व्यथितो भूत्वा शम्भवे तन्न्यवेदयत्।
शम्भुश्च वृषभं प्राह सर्वं सिध्यतु ते वचः॥५॥

शिवाज्ञासहितो नन्दी गोजातं सर्वमाहरत्। नष्टेषु गोषु सर्वेषु स्वर्गे मर्त्ये ततस्त्वरा॥६॥
मामवोचन्सुरगणा विना गोभिर्न जीव्यते। तानवोचं सुरान्सर्वाञ्शङ्करं यात याचत॥७॥

यह सुनकर नन्दी व्यथित हो गये। उन्होंने शंभु से यह प्रसंग कह दिया। यह सुनकर शंभु ने नन्दी से कहा कि "तुम्हारी जो इच्छा इस सम्बन्ध में है, वह सफल होगी।" नन्दी ने तब शिव की आज्ञा के अनुरूप समस्त गो जाति को एकत्रित करके रख लिया। उस समय स्वर्ग, मर्त्य, रसातल कहीं भी एक भी गो जाति

दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी। तब देवगण ने आकर मुझ ब्रह्मा से कहा कि "हम सब गौओं के बिना कैसे रहें?" तब मैंने देवगण से इस सम्बन्ध में शंकर के पास जाने का आदेश दिया।।५-७।।

तथैवेशं तु ते सर्वे स्तुत्वा कार्यं न्यवेदयन्। ईशोऽपि विबुधानाह जानाति वृषभो मम॥८॥
ते वृषं प्रोचुरमरा देहि गा उपकारिणः। वृषोऽपि विबुधानाह गोसवः क्रियतां क्रतुः॥९॥

मेरे आदेशानुरूप शंकर के यहां जाकर उनकी स्तुति देवगण ने किया और अपने आने का प्रयोजन श्री महेश्वर से व्यक्त किया। शंकर ने उत्तर दिया कि "इस सम्बन्ध में नन्दी जानते हैं, उनसे कहो।" तब देवगण परोपकार करने वाले नन्दी के पास जाकर कहने लगे "हे नन्दी! आप उपकारी गोगण को हमें वापस कर दीजिये। तब नन्दी ने देवगण से गोसव यज्ञ करने हेतु कहा—।।८-९।।

ततः प्राप्स्यथ गाः सर्वा दिव्या याश्च मानुषाः।
ततः प्रवर्तते यज्ञो गोसवो देवनिर्मितः॥१०॥
गौतम्याश्च शुभे पार्श्वे गावो ववृधिरे ततः। गोवर्धनं तु तत्तीर्थं देवानां प्रीतिवर्धनम्॥११॥
तत्र स्नानं मुनिश्रेष्ठ गोसहस्रफलप्रदम्। किञ्चिद्दानादिना यत्स्यात्फलं तत्तु न विद्महे॥१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये गोवर्धनतीर्थवर्णनं नामैकनवतितमोऽध्यायः॥९१॥
गौतमीमाहात्म्ये द्वाविंशतितमोऽध्यायः॥२२॥



नन्दी ने उस समय कहा कि इस यज्ञ को सम्पन्न करने पर ही समस्त दैवी एवं मानुषी गो जाति पुनः प्राप्त हो सकेगी। तब देवगण ने गोसव यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। इससे गौतमी नदी के पावन तट पर गौ जाति बढ़ने लगी। इसी कारण वहां देवगण की प्रसन्नता बढ़ाने वाले गोवर्धन तीर्थ की स्थापना हो गयी। हे मुनिप्रवर! वहां स्नान, गोदान, धनादि दान का फल होता है। परन्तु वहां दान का यथार्थ फल कह सकने में असमर्थ हूं। वहां का स्नान मात्र ही सहस्र गोदान के समान फलप्रद है।।१०-१२।।

।।एकनवतितम अध्याय समाप्त।।



अथ द्विनवतितमोऽध्यायः

धौतपाप (पापनाशन) तीर्थ का वर्णन, मही नामक ब्राह्मणी का उपाख्यान

ब्रह्मोवाच

पापप्रणाशनं नाम तीर्थं पापभयापहम्। नामधेयं प्रवक्ष्यामि शृणु नारद यत्नतः॥१॥

धृतव्रत इति ख्यातो ब्राह्मणो लोकविश्रुतः।
तस्य भार्या मही नाम तरुणी लोकसुन्दरी॥२॥
तस्य पुत्रः सूर्यनिभः सनाज्जात इति श्रुतः। धृतव्रतं तथाऽकर्षन्मृत्युः कालेरितो मुने॥३॥
ततः सा बालविधवा बालपुत्रा सुरूपिणी। त्रातारं नैव पश्यन्ती गालवाश्रममभ्यगात्॥४॥
तस्मै पुत्रं निवेद्याथ स्वैरिणी पापमोहिता।
सा बभ्राम बहून्देशान्पुंस्कामा कामचारिणी॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—अब मैं पापक्षय करने वाले पापप्रणाशनतीर्थ का वर्णन करता हूं। हे नारद! यत्नतः सुनो। इसका यह नाम क्यों पड़ा, उसे सुनो। पूर्वकाल में धृतव्रत नामक प्रसिद्ध ब्राह्मण थे। उनकी पत्नी थी मही। मही तरुणी तथा सुन्दरी थी। उसका एक सूर्य के समान पुत्र था। पुत्र जन्म के उपरान्त धृतव्रत ब्राह्मण मृत हो गये। तब वह सुंन्दरी विधवा अपने तथा बालक पुत्र के लिये कोई आश्रय न पाकर गालव मुनि के आश्रम में चली गयी। अपने पुत्र को उस आश्रम में रख कर वह सुन्दरी विधवा स्वेच्छाचारिणी हो गयी। वह स्वैरिणी तथा पापमोहित होकर पुरुषों को खोजते नाना देशों में घूमने लगी।।१-५।।

तत्पुत्रो गालवगृहे वेदवेदाङ्गपारगः। जातोऽपि मातृदोषेण वेश्येरितमतिस्त्वभूत्॥६॥
जनस्थानमिति ख्यातं नानाजातिसमावृतम्।
तत्रासौ पण्यवेषेण अध्यास्ते च मही तथा॥७॥
तत्सुतोऽपि बहून्देशान्परिबभ्राम कामुकः। सोऽपि कालवशात्तत्र जनस्थानेऽवसत्तदा॥८॥
स्त्रियमाकाङ्क्षते वेश्यां धृतव्रतसुतो द्विजः। मही चापि धनं दातॄन्पुरुषान्समपेक्षते॥९॥
मेने न पुत्रमात्मीयं स चापि न तु मातरम्।
तयोः समागमश्चाऽऽसीद्विधिना मातृपुत्रयोः॥१०॥
एवं बहुतिथे काले पुत्रे मातरि गच्छति। तयोः परस्परं ज्ञानं नैवाऽऽसीन्मातृपुत्रयोः॥११॥

इधर उसका पुत्र गालवाश्रम में रहता वेद-वेदांग पारंगत हो गया। मातृदोष के कारण उसका चित्त विषयासक्त हो गया। तत्पश्चात् नाना जाति समावृत नगर में आकर उसकी माता मही रहने लगी थी। मही का यह पुत्र भी अनेक देशों में घूमता हुआ कालक्रमेण इसी जनस्थान में आ गया, जहां उसकी माता रहती थी। इस नगर में आकर वह ब्राह्मणपुत्र वेश्यासंग खोजने लगा। इधर मही विधवा भी वेश्या होकर धनी पुरुषों की बाट जोहती रहती थी। मही अपने पुत्र को पहचान नहीं सकी। उसके पुत्र ने भी माता को नहीं पहचाना। उस समय दैवत् माता तथा पुत्र के बीच संगम हो गया। इस प्रकार बहुत दिनों तक माता तथा पुत्र के बीच यह क्रीड़ा होती रही। वे आपस में एक दूसरे को पहचान नहीं सके।।६-११।।

एवं प्रवर्तमानस्य पितृधर्मेण सन्मतिः। आसीत्तस्याप्यसद्वृत्तेः शृणु नारद चित्रवत्॥१२॥
स्वैरस्थित्या वर्तमानो नेदं स परिहातवान्।
ब्राह्मीं सन्ध्यामनुष्ठाय तदूर्ध्वं तु धनार्जनम्॥१३॥

विद्याबलेन वित्तानि बहून्यार्ज्य ददात्यसौ।
तथा स प्रातरुत्थाय गङ्गां गत्वा यथाविधि॥१४॥
शौचादि स्नानसन्ध्यादि सर्वं कार्यं यथाक्रमम्।
कृत्वा तु ब्राह्मणान्नत्वा ततोऽभ्येति स्वकर्मसु॥१५॥

इस प्रकार के घृणित कर्म में आसक्त रहने पर भी पिता का धार्मिक संस्कार रहने के कारण उस द्विजपुत्र में धर्मकार्य करने की प्रवृत्ति का उन्मूलन नहीं हो सका था। हे नारद! अब आश्चर्य घटना को सुनो। वह द्विजपुत्र भले ही वेश्या में आसक्त था, तथापि वह नित्य धर्माचरण करता रहता था। वह नित्यप्रति प्रातः उठ कर गौतमीगंगा जाता तथा वहां सविधि शौचाचार, स्नान, सन्ध्या आदि समस्त कार्य करके आयु में ज्येष्ठ ब्राह्मणों को प्रणाम करने के उपरान्त स्वगृह वापस आता था।।१२-१५।।

प्रातःकाले गौतमीं तु यदा याति विरूपवान्। कुष्ठसर्वाङ्गशिथिलः पूयशोणितनिःस्रवः॥१६॥
स्नात्वा तु गौतमीं गङ्गां यदा याति सुरूपधृक्।
शान्तः सूर्याग्निसदृशो मूर्तिमानिव भास्करः॥१७॥
एतद्रूपद्वयं स्वस्य नैव पश्यति स द्विजः। गालवो यत्र भगवांस्तपोज्ञानपरायणः॥१८॥
आश्रित्य गौतमीं देवीं आस्ते च मुनिभिर्वृतः।
ब्राह्मणोऽपि च तत्रैव नित्यं तीर्थं समेत्य च॥१९॥
गालवं च नमस्याथ ततो याति स्वमन्दिरम्।
गङ्गायाः सेवनात्पूर्वं सनाज्जातस्य यद्वपुः॥२०॥
स्नानसन्ध्योत्तरे काले पुनर्यदपि तद्द्विजे। उभयं तस्य तद्रूपं गालवो नित्यमेव च॥२१॥
दृष्ट्वा सविस्मयो मेने किञ्चिदस्त्यत्र कारणम्।
एवं सविस्मयो भूत्वा गालवः प्राह तं द्विजम्॥२२॥
गच्छन्तं तु नमस्याथ सनाज्जातं गुरुर्गृहम्।
आहूय यत्नतो धीमान्कृपया विस्मयेन च॥२३॥

गालव उवाच

को भवान्क्व च गन्ताऽसि किं करोषि क्व भोक्ष्यसि।
किंनामा त्वं क्व शय्या ते का ते भार्या वदस्व मे॥२४॥

जब वह गौतमीगंगा में स्नान करने आता था, तब उसका सर्वाङ्ग कुष्ट व्याधि से शिथिल रहा करता था। उससे मवाद-रक्त बहता रहता था। लेकिन जब वह गौतमीगंगा में स्नान करके बाहर निकलता, तब उसका शरीर सुरूप, सूर्यसन्निभ चमकता रहता। लगता था मानों यह साक्षात् सूर्य ही हो! इस प्रकार दो काल में इसका दो प्रकार का रूप रहा करता था। लेकिन वह द्विजपुत्र इसे स्वयं नहीं समझ पाता था। तप तथा ज्ञान सम्पन्न भगवान् गालव गौतमीगंगा के तट पर मुनियों के साथ रहते थे। वह द्विजपुत्र भी नित्य गंगा स्नान करके गालव

को प्रणाम करता अपने घर जाता था। गौतमीगंगा में स्नान के पहले तथा स्नानोपरान्त उस ब्राह्मण पुत्र का जो रूप होता था, उसे नित्य गालव ऋषि देखा करते थे। वे यह देख कर विस्मय के साथ यह विचार करते थे कि अवश्य इसका कोई गूढ़ कारण होगा। एक दिन गालव ने कुतूहलाक्रान्त होकर उस ब्राह्मण पुत्र से इस रूप परिवर्तन का कारण पूछा। उस समय यह ब्राह्मणपुत्र स्नानोपरान्त गालव ऋषि को प्रणाम करके वापस जा रहा था। धीमान् गुरु गालव ने उसे पुकारा तथा इस विषय में उन्होंने ब्राह्मणपुत्र से पूछा कि तुम कहां रहते हो, कहां जा रहे हो, क्या करते हो तथा क्या भोजन करते हो? तुम्हारा नाम क्या है? कहां शयन करते हो? तुम्हारी पत्नी कौन है? यह सब व्यक्त करो।।१६-२४।।

ब्रह्मोवाच

गालवस्य वचः श्रुत्वा ब्राह्मणोऽप्याह तं मुनिम्॥२५॥

ब्रह्मा कहते हैं—गालव मुनि का कथन-सुनकर वह ब्राह्मणपुत्र उनसे कहने लगा।।२५।।

ब्राह्मण उवाच

श्वः कथ्यते मया सर्वं ज्ञात्वा कार्यविनिर्णयम्॥२६॥

ब्राह्मणपुत्र कहता है—मैं सम्यक् विचारोपरान्त कल उत्तर प्रदान करूंगा।।२६।।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा गालवं तं सनाज्जातो गृहं ययौ।
भुक्त्वा रात्रौ तया सम्यक्शय्यामासाद्य बन्धकीम्।
उवाच चकितः स्मृत्वा गालवस्य तु यद्वचः॥२७॥

ब्रह्मा कहते हैं—गालव मुनि से यह उत्तर देकर धृतव्रत ब्राह्मण का पुत्र घर चला गया। तदनन्तर वह गालव ऋषि का कथन याद करके अपनी शय्या की सहचरी वेश्या से कहने लगा।।२७।।

ब्राह्मण उवाच

त्वं तु सर्वगुणोपेता बन्धक्यपि पतिव्रता।
आवयोः सदृशी प्रीतिर्यावज्जीवं प्रवर्तताम्॥२८॥
तथाऽपि किञ्चित्पृच्छामि किंनाम्नी त्वं क्व वा कुलम्।
कन्नु स्थानं क्व वा बन्धुर्मम सर्वं निवेद्यताम्॥२९॥

ब्राह्मणपुत्र कहता है—तुम सर्वगुणवती तथा वेश्या होकर भी पतिव्रता हो। हममें ऐसा प्रेम सदा आजीवन बना रहे। परन्तु मुझे कुछ पूछना है। तुम्हारा नाम क्या है, क्या कुल है, पूर्व में कहां घर था, कौन तुम्हारा बन्धु है? यह सब प्रकटरूपेण कहो।।२८-२९।।

बन्धक्युवाच

धृतव्रत इति ख्यातो ब्राह्मणो दीक्षितः शुचिः।
तस्य भार्या मही चाहं मत्पुत्रो गालवाश्रमे॥३०॥
उत्सृष्टो मतिमान् बालः सनाज्जात इति श्रुतः।

अहं तु पूर्वदोषेण त्यक्त्वा धर्मं कुलागतम्।
स्वैरिणी त्विह वर्तेऽहं विद्धि मां ब्राह्मणीं द्विज॥३१॥

वेश्या कहती है—धृतव्रत नामक एक प्रसिद्ध ब्राह्मण थे। मैं उनकी महीयसी पत्नी हूं। मेरा पुत्र गालवाश्रम में रहता है। वह मेरा पुत्र होकर भी मतिमान् है और सन्नज्जात नाम से विख्यात है। मैंने प्राक्तन कर्म दोष से कुलधर्म का त्याग किया है और अब स्वैरिणी होकर कालयापन कर रही हूं। हे द्विज! मैं ब्राह्मणी हूं।।३०-३१।।

ब्रह्मोवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा मर्मविद्ध इवाभवत्। पपात सहसा भूमौ वेश्या तं वाक्यमब्रवीत्॥३२॥

ब्रह्मा कहते हैं—द्विजपुत्र वेश्या का यह वचन सुनकर मानों मर्मविद्ध होकर भूमि पर गिर पड़ा। यह देख कर वेश्या ने उससे कहा—।।३२।।

वेश्योवाच

किं तु जातं द्विजश्रेष्ठ क्व च प्रीतिर्गता तव।
किं तु वाक्यं मया चोक्तं तव चित्तविरोधकृत्॥३३॥
आत्मानमात्मनाऽऽश्वास्य ब्राह्मणो वाक्यमब्रवीत्॥३४॥

वेश्या कहती है—"यह क्या? तुम्हारा प्रेम कहां तिरोहित हो गया? क्या मैंने तुम्हारे मन को पीड़ा पहुंचाने वाला कुछ कह दिया?" यह सुनकर द्विजपुत्र ने स्वयं को संभाल कर कहा—।।३३-३४।।

ब्राह्मण उवाच

धृतव्रतः पिता विप्रस्तत्पुत्रोऽहं सनाद्यतः। माता मही मम इयं मम दैवादुपागता॥३५॥

ब्राह्मणपुत्र कहता है—मैं ही धृतव्रत का पुत्र सनाज्जात हूं। यह तुम मेरी माता मही हो। दैवात् हमारा ऐसा संयोग हो गया।।३५।।

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा तस्य वाक्यं साऽप्यभूदतिदुःखिता।
तयोस्तु शोचतोः पश्चात्प्रभाते विमले रवौ।
गालवं मुनिशार्दूलं गत्वा विप्रो न्यवेदयत्॥३६॥

ब्रह्मा कहते हैं—वारविलासिनी मही यह सब सुन कर अत्यन्त दुःखी हो गयी। वे दोनों आपस में शोक करने लगे। तब रात्रि होने पर विमल प्रभात हो गया। सूर्य रश्मि विकसित हो उठी। द्विजपुत्र ने उस समय मुनिप्रवर गालव से समस्त प्रसंग कहा—।।३६।।

ब्राह्मण उवाच

धृतव्रतसुतो ब्रह्मंस्त्वया पूर्वं तु पालितः। उपनीतस्त्वया चैव मही माता मम प्रभो॥३७॥

किं करोमि च किं कृत्वा निष्कृतिर्मम वै भवेत्॥३८॥

युवक ब्राह्मण कहता है—हे ब्रह्मन्! मैं धृतव्रत का पुत्र हूं। शैशव काल में आपने ही मुझे पाल कर मेरा यज्ञोपवीत किया है। प्रभु! ये ही मेरी माता हैं। क्या करने से मेरा उद्धार होगा।।३७-३८।।

ब्रह्मोवाच

तद्विप्रवचनं श्रुत्वा गालवः प्राह मा शुचः। तवेदं द्विविधं रूपं नित्यं पश्याम्यपूर्ववत्॥३९॥

ततः पृष्टोऽसि वृत्तान्तं श्रुतं ज्ञातं मया यथा।
यत्कृत्यं तव तत्सर्वं गङ्गायां प्रत्यगात्क्षयम्॥४०॥
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यादस्या देव्याः प्रसादतः।
पूतोऽसि प्रत्यहं वत्स नात्र कार्या विचारणा॥४१॥

प्रभाते तव रूपाणि सपापानि त्वहर्निशम्। पश्येऽहं पुनरप्येव रूपं तव गुणोत्तमम्॥४२॥

आगच्छन्तं त्वागोयुक्तं गच्छन्तं त्वामनागसम्।
पश्यामि नित्यं तस्मात्त्वं पूतो देव्या कृतोऽधुना॥४३॥

ब्रह्मा कहते हैं—विप्रपुत्र का वृत्तान्त सुन कर गालव ने उनसे कहा—"तुम शोक मत करो। मैं नित्य तुम्हारे अपूर्व रूप को देखता था तथा तभी तुमसे उस सम्बन्ध में मैंने प्रश्न पूछा। अब मैंने समस्त वृत्तान्त सुन लिया तथा परिस्थिति भी समझ गया हूं। तुम्हारा समस्त दुष्कृत्य गंगा स्नान से क्षय हो गया। इस तीर्थ की महिमा तथा गौतमीगंगा की कृपा से तुम पवित्र हो, इसमें कोई सन्देह ही नहीं है। मैं नित्य प्रातः तुमको पापाक्रान्त देखा करता था। स्नानोपरान्त तुम्हारा यह गुणमय रूप पुनः देखता था। गंगा स्नानार्थ जाते समय मैं तुमको अपराध युक्त तथा स्नानोपरान्त गृह जाते समय तुमको मैं निरपराध देखा करता था। तुम गौतमीगंगा देवी की कृपा से पवित्र हो।।३९-४३।।

तस्मान्न कार्यं ते किञ्चिदवशिष्टं भविष्यति।
इयं च माता ते विप्र ज्ञाता या चैव बन्धकी॥४४॥
पश्चात्तापं गताऽत्यन्तं निवृत्ता त्वथ पातकात्।
भूतानां विषये प्रीतिर्वत्स स्वाभाविकी यतः॥४५॥

सत्सङ्गतो महापुण्यन्निवृत्तिर्दैवतो भवेत्। अत्यर्थमनुतप्तेयं प्रागाचरितपुण्यतः॥४६॥

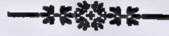
स्नानं कृत्वा चात्र तीर्थे ततः पूता भविष्यति।
तथा तौ चक्रतुरुभौ मातापुत्रौ च नारद॥४७॥

"अब तुम्हारा कोई कर्त्तव्य शेष नहीं है। हे विप्र! यह वेश्या तुम्हारी माता है। यह अत्यन्त पश्चाताप के कारण पापों से निवृत्त हो गयी है। हे वत्स! प्राणीगण की विषय के प्रति जो रुचि होती है, वह स्वाभाविक ही है। परन्तु कभी यदि दैवात् विशेष पुण्यवशात् सत्संग मिलता है, तब तत्काल विषयों के प्रति रुचि नहीं रह जाती। तुम्हारी माता पूर्व पुण्यबल से स्वयं ही अनुतप्त हो गयी है। यह मात्र इस तीर्थ स्नान से पवित्र होगी।" हे नारद! उन माता-पुत्र ने ऋषि वचनानुरूप कार्य किया था।।४४-४७।।

स्नानाद्बभूवतुरुभौ गतपापावसंशयम्। ततः प्रभृति तत्तीर्थं धौतपापं प्रचक्षते॥४८॥
पापप्रणाशनं नाम गालवं चेति विश्रुतम्। महापातकमल्पं वा तथा यच्चोपपातकम्।
तत्सर्वं नाशयेदेतद्धौतपापं सुपुण्यदम्॥४९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे गौतमीमाहात्म्यनिरूपणं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः॥९२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्रयोविंशतितमोऽध्यायः॥२३॥



उन्होंने गौतमीगंगा में स्नान करने मात्र से पाप से छुटकारा पा लिया था। उसी दिन से यह तीर्थ धौतपाप कहा गया। इसे गालवतीर्थ तथा पापप्रणाशनतीर्थ नाम से भी प्रसिद्धि मिली है। इस धौतपाप तीर्थ में सभी महापातक-उपपातक शान्त हो जाते हैं। प्रशमित हो जाते हैं। वास्तव में यह तीर्थ अतीव पुण्यप्रद है॥४८-४९॥

॥द्विनवतितम अध्याय समाप्त॥



अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः

विश्वामित्रतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

यत्र दाशरथी रामः सीताया सहितो द्विज। पितॄन्सन्तर्पयामास पितृतीर्थं ततो विदुः॥१॥
तत्र स्नानं च दानं च पितॄणां तर्पणं तथा। सर्वमक्षयतामेति नात्र कार्या विचारणा॥२॥
यत्र दाशरथी रामो विश्वामित्रं महामुनिम्। पूजयामास राजेन्द्रो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥३॥
विश्वामित्रं तु तत्तीर्थमृषिजुष्टं सुपुण्यदम्। तत्स्वरूपं च वक्ष्यामि पठितं वेदवादिभिः॥४॥

ब्रह्मा कहते हैं—जहां सीता के साथ दाशरथी राम ने पितृगण का तर्पण किया था, वही पितृतीर्थ है। वहां किया स्नान, दान तथा पितृतर्पण निश्चित रूप से अक्षय हो जाता है। दशरथ सुत राजेन्द्र राम ने जहां पर तत्वद्रष्टा मुनिगण से घिरे विश्वामित्र मुनि की पूजा किया था, वह महापुण्यजनक तीर्थ विश्वामित्रतीर्थ कहा गया है। वेदज्ञगण उस तीर्थ का जो स्वरूप कह गये हैं, मैं वही कहता हूं॥१-४॥

अनावृष्टिरभूत्पूर्वं प्रजानामतिभीषणा। विश्वामित्रो महाप्राज्ञः सशिष्यो गौतमीमगात्॥५॥
शिष्यान्पुत्रांश्च जायां च कृशान्दृष्ट्वा क्षुधातुरान्।
व्यथितः कौशिकः श्रीमाञ्शिष्यानिदमुवाच ह॥६॥

पूर्वकाल में प्रजागण के लिये भयावह एक अनावृष्टि का समय था। उस समय शिष्यों के सहित महर्षि विश्वामित्र गौतमी तीर आये। स्त्री, पुत्र तथा शिष्यों को भूखा एवं क्षीण अंगों वाला देख कर श्रीमान् विश्वामित्र उस समय शिष्यों से कहने लगे।।५-६।।

विश्वामित्र उवाच

यथाकथञ्चिद्यत्किञ्चिद्यत्र क्वापि यथा तथा।
आनीयतां किन्तु भक्ष्यं भोज्यं वा मा विलम्बयताम्।
इदानीमेव गन्तव्यमानेतव्यं क्षणेन तु॥७॥

ऋषि विश्वामित्र कहते हैं—तुम लोग चाहे जहां से जैसा मिले वैसा ही आहार लाओ। विलम्ब न करो। क्षण में लाओ!।।७।।

ब्रह्मोवाच

ऋषेस्तद्वचनाच्छिष्याः क्षुधितास्त्वरया ययुः। अटमाना इतश्चेतो मृतं ददृशिरे शुनम्॥८॥
तमादाय त्वरायुक्ता आचार्याय न्यवेदयन्।
सोऽपि तं भद्रमित्युक्त्वा प्रतिजग्राह पाणिना॥९॥
विशसध्वं श्वमांसं च क्षालयध्वं च वारिणा।
पचध्वं मन्त्रवच्चापि हुत्वाऽग्नौ तु यथाविधि॥१०॥
देवानृषीन्पितृनन्यांस्तर्पयित्वाऽतिथीनगुरून्।
सर्वे भोक्ष्यामहे शेषमित्युवाच स कौशिकः॥११॥
विश्वामित्रवचः श्रुत्वा शिष्याश्चक्रुस्तथैव तत्।
पच्यमाने श्वमांसे तु देवदूतोऽग्निरभ्यगात्।
देवानां सदने सर्वं देवेभ्यस्तन्न्यवेदयत्॥१२॥

ब्रह्मा कहते हैं—क्षुधापीड़ित शिष्यगण ऋषि के आदेशानुरूप शीघ्र भिक्षा संग्रहार्थ निकल पड़े। अनेक स्थान पर अन्वेषण करने पर उन्होंने एक मृत कुत्ता देखा। उन लोगों ने वही लाकर आचार्य के सामने रखा। विश्वामित्र ने उसे ही यथेष्ट मानकर हाथों में ले लिया। तत्पश्चात् उन्होंने शिष्यों से कहा—"तुम लोग यह मांस काट कर जल से धोना। मन्त्र से अग्नि में इसकी आहुति दे कर यथाविधि पकाना। तदनन्तर हम देवता, ऋषि, पितृगण, अतिथि तथा गुरुजनों को तर्पित करके बाकी बचा मांस ग्रहण करेंगे।" विश्वामित्र का आदेश सुनकर शिष्यों ने यथावत् कार्य किया। जब कुत्ते का मांस पकाया जा रहा था, तब अग्नि, देवदूत रूप से देवताओं की सभा में आकर कहने लगे।।८-१२।।

अग्निरुवाच

देवैः श्वमांसं भोक्तव्यमापन्नमृषिकल्पितम्॥१३॥

अग्निदेव कहते हैं—आज देवगण को ऋषियों द्वारा अर्पित कुत्ते का मांस खाना होगा।।१३।।

ब्रह्मोवाच

अग्नेस्तद्वचनादिन्द्रः श्येनो भूत्वा विहायसि। स्थालीमथाहरत्पूर्णां मांसेन पिहितां तदा॥१४॥
तत्कर्म दृष्ट्वा शिष्यास्ते ऋषेः श्येनं न्यवेदयन्।
हृता स्थाली मुनिश्रेष्ठ श्येनेनाकृतबुद्धिना॥१५॥
ततश्चुकोप भगवाञ्शप्तुकामस्तदा हरिम्। ततो ज्ञात्वा सुरपतिः स्थालीं चक्रे मधुप्लुताम्॥१६॥
पुनर्निवेशयामास उल्कास्वेव खगो हरिः। मधुना तु समायुक्तां विश्वामित्रश्चुकोप ह।
स्थालीं वीक्ष्य ततः कोपादिदमाह स कौशिकः॥१७॥

अग्नि का कथन सुनकर इन्द्र ने बाज के रूप में आकाश में उड़ कर उस मांसपूर्ण पात्र को पंजों से उठा लिया और उड़ गये। शिष्यों ने जब यह देखा, तब उन्होंने सभी घटनाक्रम गुरु विश्वामित्र से व्यथित होकर कहा—यह प्रसंग सुनकर विश्वामित्र क्रोधित हो गये। उन्होंने इन्द्र को शाप देने का निश्चय किया। यह जानने पर देवराज ने पात्र को मधुपूर्ण कर दिया। तदनन्तर पक्षीरूप में वे वहां आये तथा पात्र को अग्नि पर रख दिया, लेकिन मधुपूर्ण पात्र देख कर इन्द्र से कुपित होकर महर्षि विश्वामित्र ने कहा—॥१४-१७॥

विश्वामित्र उवाच

श्वमांसमेव नो देहि त्वं हरामृतमुत्तमम्। नो चेत्त्वां भस्मसात्कुर्यामिन्द्रो भीतस्तदाऽब्रवीत्॥१८॥

विश्वामित्र कहते हैं—"हे इन्द्र! तुम यह अमृत ले जाओ तथा उस कुत्ते वाले मांस को लौटा दो। अन्यथा तुमको भस्मीभूत कर दूंगा।" मुनि को क्रोधित देख कर भयग्रस्त इन्द्र ने कहा—॥१८॥

इन्द्र उवाच

मधु हुत्वा यथान्यायं पिब पुत्रैः समन्वितः। किमनेन श्वमांसेन अमेध्येन महामुने॥१९॥

इन्द्र कहते हैं—हे महामुनि! मधु से होम करके आप पुत्रों के साथ उसका सविधि पान करिये। वह अमेध्य श्वानमांस क्या करियेगा?॥१९॥

ब्रह्मोवाच

विश्वामित्रोऽपि नेत्याह भुक्तेनैकेन किं फलम्।
प्रजाः सर्वाश्च सीदन्ति किं तेन मधुना हरे॥२०॥
सर्वेषाममृतं चेत्स्याद्भोक्ष्येऽहममृतं शुचि। अथवा देवपितरो भोक्ष्यन्तीदं श्वमांसकम्॥२१॥
पश्चादहं तच्च मांसं भोक्ष्ये नानृतमस्ति मे।
ततो भीतः सहस्राक्षो मेघानाहूय तत्क्षणात्॥२२॥

ब्रह्मा कहते हैं—विश्वामित्र ने उत्तर दिया कि हम लोगों के ही भोजन से क्या लाभ? हे इन्द्र! समस्त प्रजा क्षुधा ज्वाला से अवसन्न है। मेरे अकेले मधु भक्षण से क्या फल होगा? (क्या उन सबका पेट भरेगा)। यदि सभी अमृतलाभ करें, तभी मैं अमृत भक्षण करूंगा। यदि ऐसा नहीं होता, तब ये देवता तथा पितर मेरे

द्वारा तर्पित श्वानमांस ही खायें। इससे हमें कोई पातक नहीं होगा। यह निश्चित ही है। यह सुन कर इन्द्र ने अत्यन्त भयभीत होकर शीघ्र मेघों को बुलाया।।२०-२२।।

ववर्ष चामृतं वारि ह्यमृतेनार्पिताः प्रजाः। पश्चात्तदमृतं पुण्यं हरिदत्तं यथाविधि।।२३।।
तर्पयित्वा सुरानादौ तर्पयित्वा जगत्त्रयम्। विप्रः सम्भुक्तवाञ्शिष्यैर्विश्वामित्रः स्वभार्यया।।२४।।
ततः प्रभृति तत्तीर्थमाख्यातं चातिपुण्यदम्। यत्राऽऽगतः सुरपतिर्लोकनाममृतार्पणम्।।२५।।
सञ्जातं मांसवर्जं तु तत्तीर्थं पुण्यदं नृणाम्। तत्र स्नानं च दानं च सर्वक्रतुफलप्रदम्।।२६।।
ततः प्रभृति तत्तीर्थं विश्वामित्रमिति स्मृतम्। मधुतीर्थमथैन्द्रं च श्येनं पर्जन्यमेव च।।२७।।

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभ्वृषिसंवादे तीर्थमाहात्म्ये विश्वामित्रतीर्थवर्णनं नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः।।९३।।
गौतमीमाहात्म्ये चतुर्विंशोऽध्यायः।।२४।।



मेघगण ने अमृतवर्षण करके प्रजावर्ग को तृप्त कर दिया। तत्पश्चात् विश्वामित्र मुनि ने इन्द्र प्रदत्त अमृत से देवता, पितर तथा तीनों लोकों का तर्पण करके स्त्री, पुत्र तथा शिष्यों सहित उसका भक्षण किया। तभी से यह तीर्थ अतीव पुण्यदायक विश्वामित्रतीर्थ कहा गया। स्वयं इन्द्र ने यहां अमृत वर्षण किया था। यहां विश्वामित्र ने मांस भक्षण वर्जन किया था। अतः यह मनुष्यगण के लिये अतीव पुण्यप्रद तीर्थ है। यहां स्नान-दान से समस्त यज्ञफल की प्राप्ति होती है। यह विख्यात विश्वामित्रतीर्थ तभी से सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसे मधुतीर्थ, ऐन्द्रतीर्थ, श्येनतीर्थ तथा पर्जन्यतीर्थ भी कहा जाता है।।२३-२७।।

।।त्रिनवतितम अध्याय समाप्त।।



अथ चतुर्नवतितमोऽध्यायः

श्वेततीर्थ का वर्णन

ब्रह्मोवाच

श्वेततीर्थमिति ख्यातं त्रैलोक्ये विश्रुतं शुभम्। तस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते।।१।।
श्वेतो नाम पुरा विप्रो गौतमस्य प्रियः सखा। आतिथ्यपूजानिरतो गौतमीतीरमाश्रितः।।२।।
मनसा कर्मणा वाचा शिवभक्तिपरायणः। ध्यायन्तं तं द्विजश्रेष्ठं पूजयन्तं सदाशिवम्।।३।।
पूर्णायुषं द्विजवरं शिवभक्तिपरायणम्। नेतुं दूताः समाजग्मुर्दक्षिणाशापतेस्तदा।।४।।
नाशक्नुवन्गृहं तस्य प्रवेष्टुमपि नारद। तदा काले व्यतिक्रान्ते चित्रको मृत्युमब्रवीत्।।५।।

ब्रह्मा कहते हैं—तत्पश्चात् त्रैलोक्य में प्रख्यात शुभ श्वेततीर्थ है। इस तीर्थ का नाम सुनते ही व्यक्ति सर्वपाप रहित हो जाता है। पूर्वकाल में श्वेत नामक एक ब्राह्मण गौतम के सखा थे। गौतमीतट पर उनका आश्रम था। वे सदा अतिथि सत्कार में लगे रहते थे। श्वेत द्विज मन-कर्म-वाणी से शिवभक्त थे। सतत् शिवध्यान तथा पूजन करते रहते उन द्विजवर की आयु पूर्ण हो गयी। उस समय उन शिवभक्त को ले जाने के लिये यमदूत आ गये। परन्तु हे नारद! वे यमदूत तो श्वेत ब्राह्मण के गृह में प्रवेश भी नहीं कर सके। विलम्ब देख कर चित्रक ने मृत्यु से प्रश्न किया।।१-५।।

चित्रक उवाच

किं नाऽऽयाति क्षीणजीवो मृत्यो श्वेतः कथञ्चिवति।
नाद्याप्यायान्ति दूतास्ते मृत्योर्नैवोचितं तु ते॥६॥

चित्रक कहते हैं—हे मृत्यु! यह क्षीणायु श्वेत ब्राह्मण अब तक क्यों यहां नहीं आया। उसको लेने जो यमदूत गये थे, वे भी नहीं लौटे। इसका कारण क्या है? तुम्हारे लिये ऐसा अनियम संगत नहीं है।।६।।

ब्रह्मोवाच

ततश्च कुपितो मृत्युः प्रायाच्छ्वेतगृहं स्वयम्।
बहिःस्थितांस्तदा पश्यन्मृत्युर्दूतान्भयार्दितान्।
प्रोवाच किमिदं दूता मृत्युमूचुश्च दूतकाः॥७॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब मृत्यु क्रोधित होकर स्वयं श्वेत ब्राह्मण के घर गये। जा कर देखते हैं कि वहां यमदूत लोग भयभीत होकर गृह के बाहर ही खड़े हैं। तब मृत्यु ने दूतों से कहा—"यह क्या? बाहर क्यों खड़े हो?" यह सुन कर दूत मृत्यु से कहने लगे।।७।।

दूता ऊचुः

शिवेन रक्षितं श्वेतं वयं नो वीक्षितुं क्षमाः। येषां प्रसन्नो गिरिशस्तेषां का नाम भीतयः॥८॥

यमदूत कहते हैं—यह श्वेत शिव द्वारा रक्षित है। अतः हम लोग इसकी ओर देखने में भी असमर्थ हैं। जिस पर गिरिजापति प्रसन्न हों, उनको किसका भय!।।८।।

ब्रह्मोवाच

पाशपाणिस्तदा मृत्युः प्राविशद्यत्र स द्विजः।
नासौ विप्रो विजानाति मृत्युं वा यमङ्किकरान्॥९॥
शिवं पूजयते भक्त्या श्वेतस्य तु समीपतः।
मृत्युं पाशधरं दृष्ट्वा दण्डी प्रोवाच विस्मितः॥१०॥

ब्रह्मा कहते हैं—पाशधारी मृत्यु तब ब्राह्मण के पास गया। वह ब्राह्मण भक्तिभाव से शिव अर्चन कर रहा था। वह मृत्यु अथवा उसके किंकरों को पहचान ही नहीं रहा था। उस ओर ब्राह्मण का भ्रूक्षेप तक नहीं था। अन्ततः मृत्यु को पाशधारी देख कर शिव के अनुचर दण्डी ने पूछा—।।९-१०।।

दण्ड्युवाच

किमत्र वीक्षसे मृत्यो दण्डिनं मृत्युरब्रवीत्॥११॥

दण्डी कहते हैं—हे मृत्यु! यहां क्या खोज रहे हो?।।११।।

मृत्युरुवाच

श्वेतं नेतुमिहाऽऽयातस्तस्माद्वीक्षे द्विजोत्तमम्॥१२॥

मृत्यु कहता है—मैं यहां इस समय श्वेत ब्राह्मण को ले जाने आया हूं। तभी उसे देख रहा हूं।।१२।।

ब्रह्मोवाच

त्वं गच्छेत्यब्रवीद्दण्डी मृत्युः पाशानथाक्षिपत्।
श्वेताय मुनिशार्दूल ततो दण्डी चुकोप ह॥१३॥
शिवदत्तेन दण्डेन दण्डी मृत्युमताडयत्। ततः पाशधरो मृत्युः पपात धरणीतले॥१४॥
ततस्ते सत्वरं दूता हन्तं मृत्युमवेक्ष्य च। यमाय सर्वमवदन्वधं मृत्योस्तु दण्डिना॥१५॥
ततश्च कुपितो धर्मो यमो महिषवाहनः। चित्रगुप्तं बहुबलं यमदण्डं च रक्षकम्॥१६॥
महिषं भूतवेतालानाधिव्याधींस्तथैव च। अक्षिरोगान्कुक्षिरोगान्कर्णशूलं तथैव च॥१७॥
ज्वरं च त्रिविधं पापं नरकाणि पृथक्पृथक्।
त्वरन्तामिति तानुक्त्वा जगाम त्वरितो यमः॥१८॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब दण्डी ने मृत्यु से कहा कि "यहां से चले जाओ।" मृत्यु ने श्वेत की ओर पाश फेंका। इससे दण्डी क्रोधित हो गये। दण्डी ने शिवप्रदत्त दण्ड द्वारा मृत्यु पर प्रहार किया। उस प्रहार से पाशधारी मृत्यु भूपतित हो गया। यमदूतों ने यम के पास जाकर दण्डी द्वारा मृत्यु का वध किये जाने का समाचार उनको दिया। वह सुनकर महिषवाहन यम क्रोधित हो गये। उन्होंने चित्रगुप्त, बहुबलशाली यमदण्ड, महिष, भूत, वेताल, आधि-व्याधि, अक्षिरोग, कुक्षिरोग, कर्णशूल, त्रिविध ज्वर एवं समस्त नरकों को शीघ्रता से आदेश दिया तथा उनको लेकर वे स्वयं शीघ्रता से वहां से चल पड़े।।१३-१८।।

एतैरन्यैः परिवृतो यत्र श्वेतो द्विजोत्तमः। तमायान्तं यमं दृष्ट्वा नन्दी प्रोवाच सायुधः॥१९॥
विनायकं तथा स्कन्दं भूतनाथं तु दण्डिनम्। तत्र तद्युद्धमभवत्सर्वलोकभयावहम्॥२०॥

अब सबके साथ शस्त्र-सज्जित यम को आते देखकर शस्त्रधारी नन्दी ने विनायक, स्कन्द, भूतपति तथा दण्डी से यह समाचार कहा। तब वहां पर एक सर्वलोक भयंकर घोर युद्ध आरम्भ हो गया।।१९-२०।।

कार्तिकेयः स्वयं शक्त्या बिभेद यमकिङ्करान्।
दक्षिणाशापतिं चापि निजघान बलान्वितम्॥२१॥
हतावशिष्टा याम्यास्ते आदित्याय न्यवेदयन्।
आदित्योऽपि सुरैः सार्धं श्रुत्वा तन्महदद्भुतम्॥२२॥

लोकपालैरनुवृतो ममान्तिकमुपागमत्। अहं विष्णुश्च भगवानिन्द्रोऽग्निर्वरुणस्तथा॥२३॥
चन्द्रादित्यावश्विनौ च लोकपाला मरुद्गणाः।
एते चान्ये च बहवो वयं याता यमान्तिकम्॥२४॥
मृत आस्ते दक्षिणेशो गङ्गातीरे बलान्वितः।
समुद्राश्च नदा नागा नानाभूतान्यनेकशः॥२५॥
तत्राऽऽजग्मुः सुरेशानं द्रष्टुं वैवस्वतं यमम्।
तं दृष्ट्वा हतसैन्यं च यमं देवा भयार्दिताः।
कृताञ्जलिपुटाः शम्भुमूचुः सर्वे पुनः पुनः॥२६॥

उस युद्ध में भगवान् कार्त्तिकेय अपनी शक्ति से यमकिंकरों को छिन्न-भिन्न करने लगे तथा यमराज को भी उन्होंने उनके सैन्य तथा वाहन के साथ आहत कर दिया। मृत होने से बचे यम के पक्ष वालों ने सूर्य से सब घटना वर्णित कर दिया। आदित्य इस अद्भुद घटना को सुनकर लोकपाल तथा अन्य देवगण के साथ मेरे पास आये। उस समय मैं, भगवान् विष्णु, इन्द्र, अग्नि, वरुण, चन्द्र, सूर्य, मरुद्गण एवं अन्य लोकपाल एकत्र होकर यम के पास गये। सब लोग जाकर देखते हैं कि बली यम गंगातट पर मृतक की तरह पड़े हैं। वे सेना सहित मृत से हैं। यह देख कर देवगण भयभीत हो गये। वे हाथ जोड़ कर शंकर से पुनः-पुनः प्रार्थना करने लगे।।२१-२६।।

देवा ऊचुः

भक्तप्रियत्वं ते नित्यं दुष्टहन्तृत्वमेव च। आदि कर्तुर्नमस्तुभ्यं नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते।
ब्रह्मप्रिय नमस्तेऽस्तु देवप्रिय नमोऽस्तु ते॥२७॥
श्वेतं द्विजं भक्तमनायुषं ते, नेतुं यमादिः सकलोऽसमर्थः।
सन्तोषमाप्ताः परमं समीक्ष्य, भक्तप्रियत्वं त्वयि नाथ सत्यम्॥२८॥
ते त्वां प्रपन्नाः शरणं कृपालुं, नालं कृतान्तोऽप्यनुवीक्षितुं तान्।
एवं विदित्वा शिव एव सर्वे, त्वामेव भक्त्या परया भजन्ते॥२९॥

देवगण कहते हैं—हे आदिकर्त्ता! हे नीलकण्ठ! भक्तों के प्रति अनुराग तथा दुष्टदमन की क्षमता आपमें नित्य विद्यमान रहती है। आपको हम प्रणाम करते हैं! हे ब्रह्मप्रिय! आपको प्रणाम! हे देवप्रिय! हम आपको नमस्कार करते हैं! श्वेत ब्राह्मण आपका भक्त है। उसकी आयु शेष नहीं बची है, तथापि समस्त देवता भी उसे मृत करके ले जाने में समर्थ नहीं हैं। हे नाथ! वस्तुतः आपमें ही भक्तों के प्रति कृपालुता है। यह देख कर हमें अत्यन्त सन्तोष है। जो आपके समान कृपालु देवता की शरण में आते हैं, यम तो उसका दर्शन भी नहीं कर सकते। यह तथ्य जान कर सब लोग आप शिवस्वरूप वाले की शरण परम भक्तिभाव से लेते हैं।।२७-२९।।

त्वमेव जगतां नाथ किं न स्मरसि शङ्कर।
त्वां विना कः समर्थोऽत्र व्यवस्थां कर्तुमीश्वरः॥३०॥

हे शंकर! आप ही जगत् के नाथ हैं, यह आपको याद क्यों नहीं आ रहा है? हे ईश्वर! आपके अतिरिक्त कौन है, जो इस विश्व की व्यवस्था तथा इसका विधान कर सके?।।३०।।

ब्रह्मोवाच

एवं तु स्तुवतां तेषां पुरस्तादभवच्छिवः। किं ददामीति तानाह इदमूचुः सुरा अपि॥३१॥

ब्रह्मा कहते हैं—देवगण जब यह स्तव करने लगे, तब शिव ने उनके समक्ष आविर्भूत होकर कहा—"मैं तुम लोगों को क्या प्रदान करूं?" यह सुनकर देवगण ने कहा—।।३१।।

देवा ऊचुः

अयं वैवस्वतो धर्मो नियन्ता सर्वदेहिनाम्।
धर्माधर्मव्यवस्थायां स्थापितो लोकपालकः॥३२॥

नायं वधमवाप्नोति नापराधी न पापकृत्। विना तेन जगद्धातुर्नैव किञ्चिद्भविष्यति॥३३॥
तस्माज्जीवय देवेश यमं सबलवाहनम्। प्रार्थना सफला नाथ महत्सु न वृथा भवेत्॥३४॥

देवता कहते हैं—ये वैवस्वत यम सभी देहधारियों के नियामक हैं। ये लोकपाल धर्म तथा अधर्म की व्यवस्था हेतु नियुक्त हैं। ये अपराधी अथवा पापी नहीं हैं। अतः ये वध योग्य नहीं हैं। इन यम के विना जगद्विधाता का कोई उद्देश्य सिद्ध नहीं होगा। हे देवेश! अतः आप सेना एवं वाहन सहित यम को जीवित करिये। हे नाथ! महत् लोगों से की गई प्रार्थना कदापि विफल नहीं होती।।३२-३४।।

ब्रह्मोवाच

ततः प्रोवाच भगवाञ्जीवयेयमसंशयम्। यमं यदि वचो मेऽद्य अनुमन्यन्ति देवताः॥३५॥
ततः प्रोचुः सुराः सर्वे कुर्मो वाक्यं त्वयोदितम्।
हरिब्रह्मादिसहितं वशे यस्याखिलं जगत्॥३६॥
ततः प्रोवाच भगवानमरान्समुपागतान्। मद्भक्तो न मृतिं यातु नेत्यूचुरमराः पुनः॥३७॥
अमराः स्युस्ततो देव सर्वलोकाश्चराचराः। अमर्त्यमर्त्यभेदोऽयं न स्याद्देव जगन्मय॥३८॥
पुनरप्याह ताञ्शम्भुः शृण्वन्तु मम भाषितम्। मद्भक्तानां वैष्णवानां गौतमीमनुसेवताम्॥३९॥
वयं तु स्वामिनो नित्यं न मृत्युः स्वाम्यमर्हति।
वार्ताऽप्येषां न कर्तव्या यमेन तु कदाचन॥४०॥
आधिव्याध्यादिभिर्जातु कार्यो नाभिभवः क्वचित्।
ये शिवं शरणं यातास्ते मुक्तास्तत्क्षणादपि॥४१॥
सानुगस्य यमस्यातो नमस्याः सर्व एव ते। तथेत्यूचुः सुरगणा देवदेवं शिवं प्रति॥४२॥
ततश्च भगवान्नाथो नन्दिनं प्राह वाहनम्॥४३॥

ब्रह्मा कहते हैं—तत्पश्चात् भगवान् शंकर ने देवताओं से कहा—"यदि देवता मेरी बात का अनुमोदन

करें, तब मैं यम को अवश्य जीवित कर दूंगा।" यह सुनकर देवताओं ने कहा—"हम निश्चित रूप से आपके कथनानुरूप कार्य करेंगे। यह ब्रह्मा-विष्णु सहित समस्त विश्व आपके ही वश में विराजित रहता है।" तत्पश्चात् भवानीपति ने वहां उपस्थित देवगण से कहा—"तब यह हो कि मेरे भक्त कदापि मृत्युभाव में न पड़ें।" देवताओं ने कहा—"ऐसा कृपया मत कहिये। हे देव! ऐसा होने पर चराचर समस्त लोक अमर हो जायेगा। हे जगन्नाथ! तब मर्त्य-अमर्त्य का भेद नहीं रह जायेगा। यह सुनकर शिव ने कहा—"तुम लोग मेरी बात सुनो। मेरे भक्त, विष्णु भक्त तथा गौतमीगंगा की सेवा में निरत व्यक्ति पर सदा मेरा ही प्रभुत्व रहे। इन पर यम का अधिकार कदापि न हो। यहां तक कि यम के मुख में इनका नाम भी न आये। आधि-व्याधि प्रभृति से इनको क्लेश भी न हो। यम इन भक्तों में इन सबका उत्पादन न कर सकें। जो शिव के शरणापन्नं हों, उनकी अविलम्ब मुक्ति हो। ये लोग यम तथा उनके अनुचरों से सदा नमस्य हों।" देवताओं ने यह सुन कर शिव से कहा कि ऐसा ही हो। इसके पश्चात् भगवान् शंकर ने अपने वाहन नन्दी से कहा—॥३५-४३॥

शिव उवाच

गौतम्या उदकेन त्वमभिषिञ्च मृतं यमम्॥४४॥

भगवान् शिव कहते हैं—हे नन्दी! तुम गौतमीगंगा के जल से यम का अभिषेक करो॥४४॥

ब्रह्मोवाच

ततो यमादयः सर्वे अभिषिक्तास्तु नन्दिना।
उत्थिताश्च सजीवास्ते दक्षिणाशां ततो गताः॥४५॥
उत्तरे गौतमीतीरे विष्ण्वाद्याः सर्वदैवताः। स्थिता आसन्पूजयन्तो देवदेवं महेश्वरम्॥४६॥
तत्राऽऽसन्नयुतान्यष्ट सहस्राणि चतुर्दश। तथा षट्‌च सहस्राणि पुनः षट्‌च तथैव च॥४७॥
षड्दक्षिणे तथा तीरे तीर्थानामयुतत्रयम्। पुण्यमाख्यानमेतद्धि श्वेततीर्थस्य नारद॥४८॥
यत्रासौ पतितो मृत्युर्मृत्युतीर्थं तदुच्यते। तस्य श्रवणमात्रेण सहस्रं जीवते समाः॥४९॥
तत्र स्नानं च दानं च सर्वपापप्रणाशनम्। श्रवणं पठनं चापि स्मरणं च मलक्षयम्।
करोति सर्वलोकानां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥५०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये उत्तरतीरस्थैकलक्षद्वादशसहस्रतीर्थदक्षिणतीरस्थत्रिंशत्सहस्रतीर्थवर्णनं नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः॥९४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चविंशोऽध्यायः॥२५॥



ब्रह्मा कहते हैं—तत्पश्चात् यम आदि सभी नन्दी द्वारा अभिषिक्त होकर उठ बैठे तथा जीवित हो गये। उन्होंने दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान कर दिया। गौतमी नदी के उत्तर तट पर रहकर विष्णु आदि सभी देवगण ने महेश्वर पूजन सम्पन्न किया। वहां उस समय १०६००० तीर्थ उपस्थित थे। इसी तरह गौतमीगंगा के दक्षिण तट पर छः हजार तीन अयुत तीर्थ विराजमान हो गये थे। हे नारद! यही श्वेततीर्थ का पुण्य प्रसंग मैंने कहा।

यहीं मृत्यु पृथिवी पर गिरे थे। तभी इसे मृत्युतीर्थ कहते हैं। इस तीर्थ प्रसंग के सुनने मात्र से एक हजार वर्ष की परमायु मिलती है। उस व्यक्ति के सभी पापों का नाश हो जाता है। इन सब भुक्ति-मुक्ति देने वाले तीर्थ का विवरण स्मरण करने, पठन करने तथा श्रवण करने मात्र से सभी पापों का नाश हो जाता है।।४५-५०।।

।।चतुःनवतितम अध्याय समाप्त।।



अथ पञ्चनवतितमोऽध्यायः

शुक्रतीर्थ वर्णन तथा श्वेतराज के साथ यम के युद्ध का वर्णन

ब्रह्मोवाच

शुक्रतीर्थमिति ख्यातं सर्वसिद्धिकरं नृणाम्। सर्वपापप्रशमनं सर्वव्याधिविनाशनम्॥१॥
अङ्गिराश्च भृगुश्चैव ऋषी परमधार्मिकौ। तयोः पुत्रौ महाप्राज्ञौ रूपबुद्धिविलासिनौ॥२॥
जीवः कविरिति ख्यातौ मातापित्रोर्वशे रतौ।
उपनीतौ सुतौ दृष्ट्वा पितरावूचतुर्मिथः॥३॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह विख्यात शुक्रतीर्थ मनुष्यों को सर्वसिद्धि देने वाला, सभी पापों का नाशक तथा सभी रोगों को नष्ट करने वाला है। अंगीरा तथा भृगु नामक दो परम धर्मात्मा ऋषि थे। उनके रूप एवं बुद्धि सम्पन्न महाप्राज्ञ पुत्र जन्मे। एक का नाम था जीव, अन्य का नाम था कवि। दोनों पुत्र माता-पिता के वश में रहा करते थे। तदनन्तर इनका जब यज्ञोपवीत संस्कार हो गया, तब उनको देख कर उनके पिता परस्परतः एक दूसरे से कहने लगे।।१-३।।

ऋषी ऊचतुः

आवयोरेक एवास्तु शास्ता नित्यं च पुत्रयोः।
तस्मादेकः शासिता स्यात्तिष्ठत्वेको यथासुखम्॥४॥

दोनों ऋषि कहते हैं—हम दोनों में से एक व्यक्ति निश्चित रूप से दोनों पुत्रों का शिक्षक बने।।४।।

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा ततः शीघ्रमङ्गिराः प्राह भार्गवम्। अध्यापयिष्ये सदृशं सुखं तिष्ठतु भार्गवः॥५॥
एतच्छ्रुत्वा चाङ्गिरसो वाक्यं भृगुकलोद्वहः।
तथेति मत्वाऽङ्गिरसे शुक्रं तस्मै न्यवेदयत्॥६॥

उभावपि सुतौ नित्यमध्यापयति वै पृथक्।
वैषम्यबुद्ध्या तौ बालौ चिराच्छुक्रोऽब्रवीदिदम्॥७॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर अंगीरा ने तत्काल भार्गव से कहा—"मैं दोनों पुत्रों को एक ही प्रकार से पढ़ाऊंगा। आप भार्गव सुख से रहिये। भृगु ऋषि ने अंगीरा का कथन सुन कर वही संगत माना तथा शुक्र की शिक्षा का भार (कवि की शिक्षा का भार) अंगीरा को ही सौंप दिया। तब से अंगीरा दोनों बालकों को पढ़ाने लगे। उनका यह अध्यापन कार्य दोनों बालकों के प्रति समदर्शिता से नहीं चलता था (पक्षपात करते थे)। वे दोनों बालकों को अलग-अलग पढ़ाते थे। यह चिरकाल चलने वाला विषम अध्यापन भांप कर शुक्र ने कहा—॥५-७॥

शुक्र उवाच

वैषम्येण गुरो मां त्वमध्यापयसि नित्यशः। गुरूणां नेदमुचितं वैषम्यं पुत्रशिष्ययोः॥८॥
वैषम्येण च वर्तन्ते मूढाः शिष्येषु देशिकाः।
नैषा विषमबुद्धीनां संख्या पापस्य विद्यते॥९॥
आचार्य सम्यग्ज्ञातोऽसि नमस्येऽहं पुनः पुनः। गच्छेयं गुरुमन्यं वै मामनुज्ञातुमर्हसि॥१०॥
गच्छेयं पितरं ब्रह्मन्यद्यसौ विषमो भवेत्।
ततो वाऽन्यत्र गच्छामि स्वामिन्पृष्टोऽसि गम्यते॥११॥

शुक्र कहते हैं—हे गुरुदेव! आप नित्य विषमता पूर्वक हमें पढ़ाते हैं। अपने पुत्र तथा शिष्य के सम्बन्ध में विषमता रख कर पढ़ाना, यह गुरुगण का धर्म नहीं है। जो मूढ़ उपदेष्टा हैं, वे ही शिष्यों में विषमता बुद्धि रखते हैं। विषम बुद्धि वाले उपदेष्टा को कितना पाप लगता है, उसे गिना नहीं जा सकता। हे आचार्य! आप स्वतः सब जानते हैं, समझते हैं। आपको पुनः-पुनः प्रणाम! आप आदेश करिये कि मैं अन्य गुरु के पास चला जाऊं। हे ब्रह्मन्! मैं अभी पिता के पास जाऊंगा। यदि वे भी विषम बुद्धि का आश्रय लेते हैं, तब मैं अन्यत्र कहीं जाऊंगा। हे स्वामी! आपसे कह दिया। अब मैं अपने रास्ते जाता हूं।।८-११।।

ब्रह्मोवाच

गुरुं बृहस्पतिं दृ (पृ) ष्ट्वा अनुज्ञातस्त्वगात्ततः। अवाप्तविद्यः पितरं गच्छेयं चेत्यचिन्तयत्॥१२॥
तस्मात्कमनुपृच्छेयमुत्कृष्टः को गुरुर्भवेत्। इति स्मरन्महाप्राज्ञमपृच्छद्वृद्धगौतमम्॥१३॥

ब्रह्मा कहते हैं—तत्पश्चात् गुरु बृहस्पति से आज्ञा लेकर शुक्र चल पड़े। वे सोच रहे थे कि मैं सभी विद्या पढ़ कर ही पिता के पास लौटूंगा। अतः मैं किससे पूछूं कि मेरा गुरु कौन होगा? इस प्रकार विचार करते-करते उन्होंने महाज्ञानी वृद्ध गौतम से प्रश्न किया।।११-१३।।

शुक्र उवाच

को गुरुः स्यान्मुनिश्रेष्ठ मम ब्रूहि गुरुर्भवेत्।
त्रयाणामपि लोकानां यो गुरुस्तं व्रजाम्यहम्॥१४॥

शुक्र कहते हैं—हे मुनिश्रेष्ठ! कौन मेरा गुरु होगा? वह आप कहिये। इस त्रैलोक्य में आपके निर्देशानुरूप जो मेरे गुरु निश्चित होंगे, मैं उनके पास ही अध्ययनार्थ जाऊंगा।।१४।।

ब्रह्मोवाच

स प्राह जगतामीशं शम्भुं देवं जगद्गुरुम्।
क्वाऽऽराधयामि गिरिशमित्युक्तः प्राह गौतमः॥१५॥

ब्रह्मा कहते हैं—महर्षि गौतम ने कहा—"तुम शंभु को गुरु बनाओ।" तब शुक्र ने पूछा—"उनकी आराधना कहां करूं"?।।१५।।

गौतम उवाच

गौतम्यान्तु शुचिर्भूत्वा स्तोत्रैस्तोषय शङ्करम्।
ततस्तुष्टो जगन्नाथः स ते विद्यां प्रदास्यति॥१६॥

गौतम कहते हैं—तुम गौतमीतट पर जाओ। वहां पवित्रता पूर्वक स्नानोपरान्त स्तव पाठ करके शंकर को प्रसन्न करना। वे जगन्नाथ प्रसन्न होकर तुमको विद्या प्रदान करेंगे।।१६।।

ब्रह्मोवाच

गौतमस्य तु तद्वाक्यात्प्रागाद्गङ्गां स भार्गवः।
स्नात्वा भूत्वा शुचिः सम्यक्स्तुतिं चक्रे स बालकः॥१७॥

ब्रह्मा कहते हैं—भार्गव ने गौतम के आदेशानुरूप गौतमीगंगा प्रस्थान किया। वहां उन्होंने स्नान से पवित्र होकर यथाविधि शंकर का स्तव किया।।१७।।

शुक्र उवाच

बालोऽहं बालबुद्धिश्च बालचन्द्रधर प्रभो।
नाहं जानामि ते किञ्चित्स्तुतिं कर्तुं नमोऽस्तु ते॥१८॥
परित्यक्तस्य गुरुणा न ममास्ति सुहृत्सखा।
त्वं प्रभुः सर्वभावेन जगन्नाथ नमोऽस्तु ते॥१९॥
गुरुर्गुरुमतां देव महतां च महानसि। अहमल्पतरो बालो जगन्मय नमोऽस्तु ते॥२०॥
विद्यार्थं हि सुरेशान नाहं वेद्मि भवद्गतिम्।
मां त्वं च कृपया पश्य लोकसाक्षिन्नमोऽस्तु ते॥२१॥

शुक्र कहते हैं—हे बालचन्द्रधर! प्रभो, शंकर! मैं तो बालक हूं। मेरी बुद्धि भी बालकोचित ही है। मैं आपका स्तुति-गायन नहीं जानता। आपको मेरा नमस्कार! गुरु ने मुझे त्याग दिया है। मेरा कोई भी सुहृद अथवा सखा नहीं है। अब आप ही सर्वथा मेरे प्रभु हैं। आपको मेरा नमस्कार! हे जगन्नाथ! आपको नमस्कार! आप तो गुरुओं के भी गुरु तथा महत् से भी महान् हैं। मैं क्षुद्र बालक हूं। हे जगन्मय! हे सुरेश! मैं विद्यार्थी

हूं। आपका तत्व तनिक भी नहीं जानता। आप कृपा करके मुझे देखिये। हे लोकसाक्षी! आपको मेरा प्रणाम!।।१८-२१।।

ब्रह्मोवाच

एवं तु स्तुवतस्तस्य प्रसन्नोऽभूत्सुरेश्वरः॥२२॥

ब्रह्मा कहते हैं—शुक्र के इस प्रकार से स्तव करने पर महेश्वर प्रसन्न हो गये।।२२।।

शिव उवाच

कामं वरय भद्रं ते यच्चापि सुरदुर्लभम्॥२३॥

शिव कहते हैं—जो वर देवताओं के लिये भी दुर्लभ है, ऐसा वर भी तुम इच्छानुरूप मांग सकते हो।।२३।।

ब्रह्मोवाच

कविरप्याह देवेशं कृताञ्जलिरुदारधीः॥२४॥

ब्रह्मा कहते हैं—उदार बुद्धि कवि (शुक्र) ने तब हाथ जोड़ कर कहा—।।२४।।

शुक्र उवाच

ब्रह्मादिभिश्च ऋषिभिर्या विद्या नैव गोचरा।
तां विद्यां नाथ याचिष्ये त्वं गुरुर्मम दैवतम्॥२५॥

शुक्र कहते हैं—हे नाथ! ब्रह्मादि देवता तथा समस्त ऋषि भी जो विद्या नहीं जानते, मैं वही विद्या चाहता हूं। आप ही मेरे परम गुरु हैं।।२५।।

ब्रह्मोवाच

मृतसञ्जीवनीं विद्यामज्ञातां त्रिदशैरपि। तां दत्तवान्सुरश्रेष्ठस्तस्मै शुक्राय याचते॥२६॥
इतरा लोकिकी विद्या वैदिकी चान्यगोचरा। किं पुनः शङ्करे तुष्टे विचार्यमवशिष्यते॥२७॥
स तु लब्ध्वा महाविद्यां प्रायात्स्वपितरं गुरुम्।
दैत्यानां च गुरुश्चाऽऽसीद्विद्यया पूजितः कविः॥२८॥
ततः कदाचित्तां विद्यां कस्मिंश्चित्कारणान्तरे।
कचो बृहस्पतिसुतो विद्यां प्राप्तः कवेस्तु ताम्॥२९॥
कचाद्बृहस्पतिश्चापि ततो देवाः पृथक्पृथक्। अवापुर्महतीं विद्यां यामाहुर्मृतजीविनीम्॥३०॥

ब्रह्मा कहते हैं—मृत संजीवनी विद्या तो देवगण भी नहीं जानते। सुरश्रेष्ठ शिव ने वह विद्या शुक्र को प्रदान किया। इसके अतिरिक्त जितनी अन्य लौकिक तथा वैदिक विद्या है, वह समस्त अन्य लोगों को अज्ञात है, उन सब महाविद्याओं को महादेव से पाकर शुक्र ने अपने पिता के गृह प्रस्थान किया। शुक्राचार्य इन विद्या के प्रभाव से दैत्यों द्वारा पूज्य होकर उनके गुरु हो गये। एक बार बृहस्पति के पुत्र कच ने किसी कारण से इन

ऋषि से मृत संजीवनी विद्या प्राप्त किया था। तदनन्तर कच से बृहस्पति ने तथा बृहस्पति से क्रमशः सभी देवगण ने इस महाविद्या मृत संजीवनी का लाभ किया। यह विद्या मृतक को जिला देती है।।२६-३०।।

यत्र सा कविना प्राप्ता विद्याऽऽपूज्य महेश्वरम्।
गौतम्या उत्तरे पारे शुक्रतीर्थं तदुच्यते।।३१।।
मृतसञ्जीवनीतीर्थमायुरारोग्यवर्धनम्। स्नानं दानं च यत्किञ्चित्सर्वमक्षयपुण्यदम्।।३२।।

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभ्वृषिसंवादे मृतसञ्जीवनीतीर्थमाहात्म्यनिरूपणं नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः।।९५।।
गौतमीमाहात्म्ये षड्विंशोऽध्यायः।।२६।।



जहां रहकर शुक्र ने महेश्वराराधन से इस विद्या को प्राप्त किया था, वह स्थान गौतमी के उत्तर तट पर है। यही शुक्रतीर्थ कहा गया है। इसका अन्य नाम है मृतसंजीवनी तीर्थ। यह आयु एवं आरोग्य बढ़ाने वाला तीर्थ है। यहां पर स्नान-दान जो कुछ सम्पन्न किया जाता है, वह सब अक्षय पुण्यदायक हो जाता है।।३१-३२।।

।।पञ्चनवतितम अध्याय समाप्त।।



अथ षण्णवतितमोऽध्यायः

इन्द्रतीर्थ वर्णन, ब्रह्महत्या भय से इन्द्र का पलायन आदि प्रसंग वर्णन, मालव देश के नाम की निरुक्ति, पुण्यसित्ता संगम तथा सप्तसहस्रतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

इन्द्रतीर्थमिति ख्यातं ब्रह्महत्याविनाशनम्। स्मरणादपि पापौघक्लेशसङ्घविनाशनम्।।१।।
पुरा वृत्रवधे वृत्ते ब्रह्महत्या तु नारद। शचीपतिं चानुगता तां दृष्ट्वा भीतवद्धरिः।।२।।
इन्द्रस्ततो वृत्रहन्ता इतश्चेतश्च धावति। यत्र यत्र त्वसौ याति हत्या साऽपीन्द्रगामिनी।।३।।
स महत्सर आविश्य पद्मनालमुपागमत्।
तत्रासौ तन्तुवद्भूत्वा वासं चक्रे शचीपतिः।।४।।

ब्रह्मा कहते हैं—ब्रह्महत्या विनाशन विख्यात इन्द्रतीर्थ का स्मरण करने से भी अशेष पाप तथा क्लेश नष्ट हो जाता है। हे नारद! पूर्वकाल में इन्द्र द्वारा वृत्रवध होने के अनन्तर ब्रह्महत्या इन्द्र का पीछा करने लगी। उसे देख कर इन्द्र भयभीत हो गये। जहां भी इन्द्र जाते, वह कराल ब्रह्महत्या उनका पीछा करते वहां पहुंच जाती

थी। तब इन्द्र ने एक महासरोवर में प्रवेश करके एक कमलनाल के भीतर आश्रय लिया था। शचीपति इन्द्र ने वहां तन्तुरूपेण निवास किया था।।१-४।।

सरस्तीरेऽपि हत्याऽऽसीद्दिव्यं वर्षसहस्रकम्। एतस्मिन्नन्तरे देवा निरिन्द्रा ह्यभवन्मुने॥५॥
मन्त्रयामासुरव्यग्राः कथमिन्द्रो भवेदिति। तत्राहमवदं देवान्हत्यास्थानं प्रकल्प्य च॥६॥
इन्द्रस्य पावनार्थाय गौतम्यामभिषिच्यताम्।
यत्राभिषिक्तः पूतात्मा पुनरिन्द्रो भविष्यति॥७॥

वह ब्रह्महत्या भी सरोवर के तट पर इन्द्र की प्रतीक्षा में दिव्य सहस्रवर्ष पर्यन्त पड़ी थी। हे मुनिवर! तभी देवगण इन्द्रविहीन हो जाने के कारण इन्द्र को वापस ले आने हेतु आपस में मन्त्रणा करने लगे। तभी मैंने देवगण से कहा कि यदि इस ब्रह्महत्या को स्थान दे दिया जाये, तब इन्द्र को ले जाकर गौतमी जल में स्नान करना चाहिये। गौतमी जल से सुस्नात होकर इन्द्र पुनः पवित्रात्मा हो जायेंगे"।।५-७।।

तथा ते निश्चयं कृत्वा गौतमीं शीघ्रमागमन्। तत्र स्नानं सुरपतिं देवाश्च ऋषयस्तथा॥८॥
अभिषेक्तुकामास्ते सर्वे शचीकान्तं च तस्थिरे।
अभिषिच्यमानमिन्द्रं तं प्रकोपाद् गौतमोऽब्रवीत्॥९॥

तब ऋषि एवं देवता लोग ने देवराज को गौतमीगंगा में स्नान कराने के उपरान्त वे सभी इन्द्र के अभिषेकार्थ प्रस्तुत हो गये। इन्द्र को अभिषिक्त होते देखकर महर्षि गौतम कुपित हो गये। तब गौतम मुनि ने कहा—।।८-९।।

गौतम उवाच

अभिषेक्ष्यन्ति पापिष्ठं महेन्द्रं गुरुतल्पगम्।
तान्सर्वान्भस्मसात्कुर्यां शीघ्रं यान्त्वसुरारयः॥१०॥

गौतम मुनि कहते हैं—यह क्या? तुम लोग गुरुपत्नीगामी इन्द्र का अभिषेक करोगे? ऐसा नहीं होगा। हे देवताओं! तुम लोग शीघ्र चले जाओ अन्यथा मैं सबको भस्मीभूत कर दूंगा।।१०।।

ब्रह्मोवाच

तदृषेर्वचनं श्रुत्वा परिहृत्य च गौतमीम्। नर्मदामगमन्सर्व इन्द्रमादाय सत्वराः॥११॥
उत्तरे नर्मदातीरे अभिषेकाय तस्थिरे। अभिषेक्ष्यमाणमिन्द्रं तं माण्डव्यो भगवानृषिः॥१२॥
अब्रवीद्भस्मसात्कुर्यां यदि स्यादभिषेचनम्।
पूजयामासुरमरा माण्डव्यं युक्तिभिः स्तवैः॥१३॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनते ही सभी देवता शीघ्रता से गौतमी नदी को छोड़ कर इन्द्र के साथ नर्मदा गये। नर्मदा के उत्तर तट पर वे लोग इन्द्र का अभिषेक करने के लिये उद्यत हो गये। यह देख कर भगवान् माण्डव्य ऋषि ने कहा—"यदि यहां पर इन्द्र का अभिषेक करोगे, तब मैं सबको भस्म कर दूंगा। माण्डव्य ऋषि का यह वचन सुनकर देवगण स्तुति वाक्यों से उनकी पूजा करने लगे।।११-१३।।

देवा ऊचुः

अयमिन्द्रः सहस्राक्षो यस्मिन्देशेऽभिषिच्यते। तत्रातिदारुणं विघ्नं मुने समुपजायते॥१४॥
तच्छान्तिं कुरु कल्याण प्रसीद वरदो भव।
मलनिर्यातनं यस्मिन्कुर्मस्तस्मिन्वरान्बहून्॥१५॥
देशे दास्यामहे सर्वे तदनुज्ञातुमर्हसि। यस्मिन्देशे सुरेन्द्रस्य अभिषेको भविष्यति॥१६॥
स सर्वकामदः पुंसां धान्यवृक्षफलैर्युतः। नानावृष्टिर्न दुर्भिक्षं भवेदत्र कदाचन॥१७॥

देवगण कहते हैं—हे मुनिवर! इन सहस्राक्ष इन्द्र का जहां कहीं भी अभिषेक होगा, वहां भयंकर विघ्न होने लगेगा। हे कल्याणदाता! आप उन विघ्नों को शान्त करिये। आप प्रसन्न तथा वरप्रद हो जाईये। जहां कहीं भी इन्द्र का पाप प्रक्षालन किया जायेगा, उस देश हेतु हम लोग अनेक वर प्रदान करेंगे। अतः आप अनुमति दीजिये कि कहां पर इन्द्र का अभिषेक हम करें। जहां कहीं यह कार्य होगा, वह लोगों के लिये सर्वकामप्रद तथा प्रचुर अन्न से पूर्ण रहेगा। वहां अनावृष्टि तथा दुर्भिक्ष कदापि नहीं होगा।।१४-१७।।

ब्रह्मोवाच

मेने ततो मुनिश्रेष्ठो माण्डव्यो लोकपूजितः। अभिषेकः कृतस्तत्र मलनिर्यातनं तथा॥१८॥
देवैस्तदोक्तो मुनिभिः स देशो मालवस्ततः।
अभिषिक्ते सुरपतौ जाते च विमले तदा॥१९॥
आनीय गौतमीं गङ्गां तं पुण्यायाभिषेचिरे। सुराश्च ऋषयश्चैव अहं विष्णुस्तथैव च॥२०॥
वशिष्ठो गौतमश्चापि अगस्त्योऽत्रिश्च कश्यपः।
एते चान्ये च ऋषयो देवा यक्षाः सपन्नगाः॥२१॥
स्नानं तत्पुण्यतोयेन अकुर्वन्नभिषेचनम्। मया पुनः शचीभर्ता कमण्डलुभवेन च॥२२॥

ब्रह्मा कहते हैं—लोकपूज्य महामुनि माण्डव्य देवताओं की बातों से सम्मत हो गये। तब इन्द्र की मलिनता का क्षालन एवं अभिषेक सम्पन्न हो गया। तब से देवगण एवं मुनिगण इस देश को मालव नाम से सम्बोधित करते हैं। अभिषेक सम्पन्न हो जाने के कारण देवराज इन्द्र निर्मल हो गये। तब देवताओं ने इन्द्र को गौतमीगंगा लाकर उनका वहां भी अभिषेक किया। उस समय मैंने, सभी देवता, ऋषिगण, विष्णु, वसिष्ठ, गौतम, अगस्त्य, अत्रि, कश्यप तथा अन्य सभी देवता, ऋषि, यक्ष तथा सर्पगण ने गौतमी के पुण्य जल द्वारा इन्द्र को स्नान तथा अभिषेक कराया। मैंने अपने कमण्डलु जल से भी शचीपति का अभिषेक किया था।।१८-२२।।

वारिणाऽप्यभिषिक्तश्च तत्र पुण्याऽभवन्नदी।
सिक्ता चेति च तत्राऽऽसीत्ते गङ्गायां च सङ्गते॥२३॥
सङ्गमौ तत्र विख्यातौ सर्वदा मुनिसेवितौ। ततः प्रभृति तत्तीर्थं पुण्यासङ्गममुच्यते॥२४॥
सिक्तायाः सङ्गमे पुण्यमैन्द्रं तदभिधीयते।
तत्र सप्त सहस्राणि तीर्थान्यासञ्शुभानि च॥२५॥

तेषु स्नानं च दानं च विशेषेण तु सङ्गमे। सर्वं तदक्षयं विद्यान्नात्र कार्या विचारणा॥२६॥
यदेतत्पुण्यमाख्यानं यः पठेच्च शृणोति वा।
सर्वपापैः स मुच्येत मनोवाक्कायकर्मजैः॥२७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पुण्यासिक्तासङ्गमेन्द्रतीर्थादिसप्तसहस्रतीर्थवर्णनं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः॥९६॥

गौतमीमाहात्म्ये सप्तविंशोऽध्यायः॥२७॥



तभी मेरे कमण्डलु जल से, जिससे शचीपति का अभिषेक किया था, एक पुण्यनदी प्रादुर्भूत हो गयी। यह नदी अन्त में गौतमीगंगा में मिल जाती है। वहां का यह नदी संगम सर्वदा मुनिगण द्वारा सेवित होने लगा। उसी दिन से यह तीर्थ पुण्यासंगम कहा जाने लगा। यह कमण्डलु जल से उद्भूत सिक्ता नदी का संगम पवित्र ऐन्द्रतीर्थ भी कहा गया है। वहां पर सात हजार शुभ तीर्थ प्रतिष्ठित रहते हैं। इन तीर्थों में तथा विशेषतः वहां संगम स्थल में स्नान द्वारा तथा दानादि द्वारा जो कुछ सत्कार्य किया जाता है, वह अक्षय हो जाता है। यह निःसंदिग्ध है। इस पुण्य आख्यान को जो कोई सुनता अथवा पढ़ता है, उसके मन, वाणी तथा कर्मजनित समस्त पाप समाप्त हो जाते हैं।।२३-२७।।

।।षण्णवतितम अध्याय समाप्त।।



अथ सप्तनवतितमोऽध्यायः

रावण का तपःश्चरण, उसका कुबेर से युद्ध, कुबेर द्वारा तपस्या तथा पौलस्त्यतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

पौलस्त्यं तीर्थमाख्यातं सर्वसिद्धिप्रदं नृणाम्।
प्रभावं तस्य वक्ष्यामि भ्रष्टराज्यप्रदायकम्॥१॥
उत्तराशापतिः पूर्वमृद्धिसिद्धिसमन्वितः। पुरा लङ्कापतिश्चाऽऽसीज्ज्येष्ठो विश्रवसः सुतः॥२॥
तस्यै भ्रातरश्चाऽऽसन्बलवन्तोऽमितप्रभाः। सापत्ना रावणश्चैव कुम्भकर्णो विभीषणः॥३॥
तेऽपि विश्रवसः पुत्रा राक्षस्यां राक्षसास्तु ते। मद्दत्तेन विमानेन धनदो भ्रातृभिः सह॥४॥
ममान्तिकं भक्तियुक्तो नित्यमेति तु याति च।
रावणस्य तु या माता कुपिता साऽऽब्रवीत्सुतान्॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—विख्यात पौलत्स्यतीर्थ मनुष्यों को सभी सिद्धि देने वाला है। इस तीर्थसेवा से राजा अपना गंवाया हुआ राज्य पुनः पा लेते हैं। पूर्वकाल में उत्तर दिशा के अधिपति कुबेर महासमृद्धि तथा सिद्धिसम्पन्न थे। वे विश्रवा के बड़े पुत्र थे। प्रबल युद्ध के उपरान्त उनको लंका का आधिपत्य मिला था। रावण, कुंभकर्ण तथा विभीषण उनकी विमाता राक्षसी के गर्भ से उत्पन्न महाबली तीन भाई थे। कुबेर भाईयों के साथ मेरे प्रदत्त विमान पर बैठ कर भक्तिभाव में भरे हुये नित्य मेरे पास आते थे। रावण की माता राक्षसी इस कारण कुपित होकर अपने पुत्रों से बोली—।।१-५।।

रावणमातोवाच

मरिष्ये न च जीविष्ये पुत्रा वैरूप्यकारणात्।
देवाश्च दानवाश्चाऽऽसन्सापत्ना भ्रातरो मिथः।।६।।
अन्योन्यवधमीप्सन्ते जयैश्वर्यवशानुगाः। तद्धवन्तो न पुरुषा न शक्ता न जयैषिणः।
सापत्नं योऽनुमन्यन्ते तस्य जीवो निरर्थकः।।७।।

रावण की माता कहती हैं—मेरे जीवित रहने का कोई कारण नहीं है। निश्चय मैं मर जाऊंगी। देव तथा दानव परस्परतः सौतेले भाई हैं। वे विजय तथा ऐश्वर्य के लिये परस्पर एक दूसरे को निहत करने की इच्छा रखते हैं। लेकिन तुम लोग तो पुरुष नहीं लगते। इसका कारण है कि तुम लोगों में विजय की तथा शक्तिमत्ता की इच्छा अथवा स्थिति नहीं है। जो व्यक्ति शत्रु के अधीन रहता है, उसका जीवन निरर्थक ही है।।६-७।।

ब्रह्मोवाच

तन्मातृवचनं श्रुत्वा भ्रातरस्ते त्रयो मुने। जग्मुस्ते तपसेऽरण्यं कृतवन्तस्तपो महत्।।८।।
मत्तो वरानवापुश्च त्रय एते च राक्षसाः। मातुलेन मरीचेन तथा मातामहेन तु।।९।।
तन्मातृवचनाच्चापि ततो लङ्कामयाचत। रक्षोभावान्मातृदोषाद्भ्रात्रोर्वरमभून्महत्।।१०।।
ततस्तदभवद्युद्धं देवदानवयोरिव। युद्धे जित्वाऽग्रजं शान्तं धनदं भ्रातरं तथा।।११।।
पुष्पकं च पुरीं लङ्कां सर्वं चैव व्यपाहरत्। रावणो घोषयामास त्रैलोक्ये सचराचरे।।१२।।
यो दद्यादाश्रयं भ्रातुः स च वध्यो भवेन्मम।
भ्रात्रा निरस्तो वैश्रवणो नैव प्रापाऽऽश्रयं क्वचित्।।१३।।
पितामहं पुलस्त्यं तं गत्वा नत्वाऽब्रवीद्वचः।

माता का यह उपालम्भ युक्त कथन सुनकर तीनों भाई तपस्यार्थ वन में गये और वहां उन्होंने अत्यन्त कठोर तप किया। तदनन्तर उन तीनों राक्षसों ने मुझसे वर लाभ किया। इसके पश्चात् वे लोग माता के आदेश के अनुसार मामा मारीच तथा मातामह के परामर्श से प्रेरित होकर लंका का राज्य मांगा। माता के दोष तथा राक्षस भाव के कारण उन लोगों में भाई कुबेर के प्रति शत्रुता का जन्म हो गया। तब देवासुर युद्ध जैसा घोर युद्ध कुबेर तथा इन राक्षसों के बीच छिड़ गया। युद्ध में बड़े भाई कुबेर को जीत कर इन तीनों राक्षसों ने उसका पुष्पक विमान तथा लंका नगरी छीन लिया। तदनन्तर रावण ने घोषित किया कि

इस सचराचर त्रैलोक्य में जो कोई मेरे भाई कुबेर को शरण देगा, वह मेरे द्वारा वध किया जायेगा। कुबेर इस प्रकार राज्य से च्युत होकर कहीं भी शरण नहीं पा सके। तब कुबेर ने पितामह पुलत्स्य के पास जाकर उनसे निवेदन किया।।८-१३।।

धनद उवाच

भ्रात्रा निरस्तो दुष्टेन किं करोमि वदस्व मे। आश्रयः शरणं यत्स्याद्दैवं वा तीर्थमेव च॥१४॥

कुबेर कहते हैं—मैं अपने दुष्ट भ्राता द्वारा भगाया जाकर कहीं आश्रय नहीं पा रहा हूं। अब मुझे क्या करना चाहिये, वह कहिये। जहां मुझे आश्रय मिल सके। क्या ऐसा कोई तीर्थ है अथवा दैव का सहारा मिलेगा?।।१४।।

ब्रह्मोवाच

तत्पौत्रवचनं श्रुत्वा पुलस्त्यो वाक्यमब्रवीत्॥१५॥

ब्रह्मा कहते हैं—पौत्र का कथन सुनकर पुलत्स्य ने कहा—।।१५।।

पुलस्त्य उवाच

गौतमीं गच्छ पुत्र त्वं स्तुहि देवं महेश्वरम्।
तत्र नास्य प्रवेशः स्याद्गङ्गाया जलमध्यतः॥१६॥
सिद्धिं प्राप्स्यति कल्याणीं तथा कुरु मया सह॥१७॥

ऋषि पुलत्स्य कहते हैं—हे पुत्र! तुम गौतमीगंगा जाओ। वहां के जल के भीतर तुम्हारे भाई की गति नहीं हो सकेगी। वहां जाकर महेश्वर के स्तव का गायन करना। तुमको परमासिद्धि मिलेगी। अब मेरे साथ यही कार्य सम्पन्न करो।।१६-१७।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा जगामासौ सभार्यो धनदस्तथा।
पित्रा मात्रा च वृद्धेन पुलस्त्येन धनेश्वरः॥१८॥
गत्वा तु गौतमीं गङ्गां शुचिः स्नात्वा यतव्रतः।
तुष्टाव देवदेवेशं भुक्तिमुक्तिप्रदं शिवम्॥१९॥

ब्रह्मा कहते हैं—कुबेर इस बात से सहमत हो गये। वे पिता-माता, स्त्री तथा वृद्ध पुलत्स्य सहित गौतमीगंगा गये। वहां स्नान से शुद्ध तथा व्रतशील होकर भुक्ति-मुक्ति देने वाले शिव का स्तव करने लगे।।१८-१९।।

धनद उवाच

स्वामी त्वमेवास्य चराचरस्य, विश्वस्य शम्भो न परोऽस्ति कश्चित्।
त्वमप्यवज्ञाय यदीह मोहात्प्रगल्भते कोऽपि स शोच्य एव॥२०॥

त्वामष्टमूर्त्या सकलं बिभर्षि, त्वदाज्ञया वर्तत एव सर्वम्।
तथाऽपि वेदेति बुधो भवन्तं, न जात्वविद्वान्महिमा पुरातनम्॥२१॥
मलप्रसूतं यदवोचदम्बा हास्यात्सुतोऽयं तव देव शूरः।
त्वत्प्रेक्षिताद्यः स च विघ्नराजो, जज्ञे त्वहो चेष्टितमीशदृष्टेः॥२२॥
अश्रुप्लुताङ्गी गिरिजा समीक्ष्य, वियुक्तादाम्पत्यमितीशमूचे।
मनोभवोऽभून्मदनो रतिश्च, सौभाग्यपूर्व (र्ण) त्वमवाप सोमात्॥२३॥

कुबेर (धनद) कहते हैं—हे शम्भु! आप चराचर विश्व के प्रभु हैं। आपसे बढ़ कर कोई भी नहीं है। यदि कोई व्यक्ति आपकी अवज्ञा करके मोह के वशीभूत होकर स्वयं को महान् मानने का अभिमान करता है, तब वह वस्तुतः शोचनीय हो जाता है। आप अष्टमूर्त्ति द्वारा सब कुछ धारण करते हैं। आपकी आज्ञा से ही सब कुछ निष्पन्न होता है। वेदज्ञ बुद्धिमान मानव ही आपके इस तत्व को जानता है। लेकिन अविद्वान् लोग आपका माहात्म्य नहीं जानते। हे देव! अम्बा गौरी देवी ने अपने उबटन से पुतला बनाकर परिहास में ही यह कहा था—"यह मेरा पुत्र है।" वह पुतला भी आपकी दृष्टि के प्रभाव से बलवान् विघ्नराज हो गया। अहा! ईश्वर दृष्टि की क्या महिमा है! पूर्वकाल में गिरिजा देवी ने कामदेव के भस्म हो जाने के कारण दाम्पत्य का अभाव देख कर अश्रुपूत नेत्र से यह कहा था। सोममूर्त्ति आपसे गिरिजा की प्रार्थना सुनकर स्वयं ही कामदेव-रति तथा मदकारी वसन्त उत्पन्न हो गये थे।।२०-२३।।

ब्रह्मोवाच

इत्यादि स्तुवतस्तस्य पुरतोऽभूत्त्रिलोचनः। वरेण च्छन्दयामास हर्षान्नोवाच किञ्चन॥२४॥
तूष्णींभूते तु धनदे पुलस्त्ये च महेश्वरे। पुनः पुनर्वरस्वेति शिवे वादिनि हर्षिते॥२५॥

ब्रह्मा कहते हैं—कुबेर ने जब एवंविध स्तव किया, तब त्रिलोचन उनके समीप आविर्भूत हो गये तथा कुबेर को वर ग्रहण करने हेतु कहा था। तथापि धनपति कुबेर हर्षातिरेक के कारण कुछ भी नहीं कह सके। धनपति को मौनी देख कर शिव ने उनसे पुनः-पुनः वर हेतु कहा। तभी एक आकाशवाणी सुनाई पड़ी थी। यह कल्याणमयी तथा हर्षयुक्त वाणी थी।।२४-२५।।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र वागुवाचाशरीरिणी। प्राप्तव्यं धनपालत्वं वदन्तीदं महेश्वरम्॥२६॥
पुलस्त्यस्य तु यच्चित्तं पितुर्वैश्रवणस्य तु। विदित्वेव तदा वाणी शुभमर्थमुदीरयत्॥२७॥
भूतवद्भवितव्यं स्याद्दास्यमानं तु दत्तवत्। प्राप्तव्यं प्राप्तवत्तत्र दैवी वागभवच्छुभा॥२८॥

उस आकाशवाणी ने कुबेर के पितामह पुलत्स्य मुनि तथा पिता वैश्रवण ऋषि के मनोगत भाव को जानकर महेश्वर से कहा—"यह कुबेर धनपाल होगा।" दैवी वाक् से भवितव्य भूतकालवत् दातव्य व्यस्तु दत्तवत् तथा प्राप्तव्य वस्तु प्राप्तवत् प्रतीत तथा उपलब्ध हो जाती है। दैवी वाक्य तत्क्षण कार्यरूपेण परिणत हो जाता है।।२६-२८।।

प्रभूतशत्रुः परिभूतदुःखः, सम्पूज्य सोमेश्वरमाप लिङ्गम्।
दिगीश्वरत्वं द्रविणप्रभुत्वमपारदातृत्वकलत्रपुत्रान्॥२९॥

तां वाचं धनदः श्रुत्वा देवदेवं त्रिशूलिनम्। एवं भवतु नामेति धनदो वाक्यमब्रवीत्॥३०॥
तथैवास्त्विति देवेशो दैवीं वाचममन्यत।
पुलस्त्यं च वरैः पुण्यैस्तथा विश्रवसं मुनिम्॥३१॥
धनपालं च देवेशो ह्यभिनन्द्य ययौ शिवः।
ततः प्रभृति तत्तीर्थं पौलस्त्यं धनदं विदुः॥३२॥
तथा वैश्रवसं पुण्यं सर्वकामप्रदं शुभम्। तेषु स्नानादि यत्किञ्चित्तत्सर्वं बहुपुण्यदम्॥३३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पौलस्त्यतीर्थवर्णनं नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः॥९७॥

गौतमीमाहात्म्येऽष्टाविंशोऽध्यायः॥२८॥



कुबेर के शत्रु असंख्य थे। वे दुःख से घिरे थे। तथापि अब सोमेश्वर लिंगार्चन से उन्होंने दिक्पालत्व, धनपतित्व तथा अपार दानशीलत्व लाभ किया। धनपति ने यह आकाशवाणी सुनकर शंभु से कहा—"दैवी वाणी सफल हो। यही मेरी प्रार्थना है।" देवाधिदेव शंभु ने "ऐसा ही हो" कहकर दैववाणी का अनुमोदन कर दिया। एवंविध भगवान् ने मुनि पुलत्स्य, विश्रवा ऋषि तथा धनपति को पुण्यमय वर से अभिनन्दित किया। तदनन्तर प्रभु शंकर अन्तर्हित् हो गये। तभी से यह तीर्थ पौलत्स्य, धनद एवं वैश्रवण तीर्थ के नाम से प्रख्यात है। यह सर्वकामप्रद, पवित्र तथा शुभावह है। यहां स्नानादि जो कुछ कार्य किया जाता है, वह सब पुण्यप्रद हो जाता है।।२९-३३।।

।।सप्तनवतितम अध्याय समाप्त।।



अथाष्टनवतितमोऽध्यायः

अग्नितीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

अग्नितीर्थमिति ख्यातं सर्वक्रतुफलप्रदम्। सर्वविघ्नोपशमनं तत्तीर्थस्य फलं शृणु॥१॥
जातवेदा इति ख्यातो अग्नेर्भ्राता स हव्यवाट्।
हव्यं वहन्तं देवानां गौतम्यास्तीर एव तु॥२॥
ऋषीणां सत्रसदने अग्नेर्भ्रातरमुत्तमम्। भ्रातुः प्रियं तथा दक्षं मधुर्दितिसुतो बली॥३॥
जघान ऋषिमुख्येषु पश्यत्सु च सुरेष्वपि। हव्यं देवा नैव चाऽऽपुर्मृते वै जातवेदसि॥४॥

मृते भ्रातरि स त्वग्निः प्रिये वै जातवेदसि।
कोपेन महताऽविष्टो गाङ्गमम्भः समाविशत्॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—जो सब यज्ञों के लिये फलप्रद, सभी विघ्न को शान्त तथा विनष्ट करने वाला है, ऐसे तीर्थ फल को सुनो। पूर्व में जातवेदा नामक अग्नि के एक भाई थे। वे देवगण के हव्य का वहन करते थे। एक बार गौतमीतट पर ऋषिगण यज्ञशाला में देवताओं का हव्य वहन कर रहे थे। तभी मधु नामक एक बली दैत्य ने ऋषि तथा देवताओं के सामने ही जातवेदा का वध कर दिया। जातवेदा के निहत होने पर देवता लोग हव्य का लाभ नहीं कर पा रहे थे। इधर प्रिय भाई की मृत्यु हो जाने के कारण अग्निदेव अतीव क्रोधित हो गये तथा उन्होंने गंगाजल में प्रवेश कर लिया।।१-५।।

गङ्गाम्भसि समाविष्टे ह्यग्नौ देवाश्च मानुषाः। जीवमुत्सर्जयामासुरग्निजीवा यतो मताः॥६॥
यत्राग्निर्जलमाविष्टस्तं देशं सर्व एव ते। आजग्मुर्विबुधाः सर्वे ऋषयः पितरस्तथा॥७॥
विनाऽग्निना न जीवामः स्तुवन्तोऽग्निं विशेषतः।
अग्निं जलगतं दृष्ट्वा प्रियं चोचुर्दिवौकसः॥८॥

जब अग्नि गंगाजल में प्रवेश कर गये, तब अग्निजीवी देवता तथा मनुष्यगण सभी ने प्राण त्याग कर दिया था। जहां से अग्नि जल में प्रवेश किया था, वहीं पर सभी देवता, ऋषि तथा पितृगण आ गये। वे कहने लगे कि "अग्नि बिना हम जीवन धारण नहीं कर सकते।" तदनन्तर वे अग्निदेव का स्तव करने लगे।।६-८।।

देवा ऊचुः

देवाञ्जीवय हव्येन कव्येन च पितॄन्स्तथा। मानुषानन्नपाकेन बीजानां क्लेदनेन च॥९॥

देवगण कहते हैं—हे देव! आप हव्य-कव्य प्रदान करके देवता एवं पितरों को तथा अन्नपाक द्वारा मनुष्यों को और क्लेदन द्वारा बीजों को जीवन प्रदान करिये।।९।।

ब्रह्मोवाच

अग्निरप्याह तान्देवाञ्शक्तो यो मे गतोऽनुजः।
क्रियमाणे भवत्कार्ये या गतिर्जातवेदसः॥१०॥
सा वाऽपि स्यान्मम सुरा नोत्सहे कार्यसाधने।
कार्यं तु सर्वतस्तस्य भवतां जातवेदसः॥११॥
इमां स्थितिमनुप्राप्तो न जाने मे कथं भवेत्।
इह चामुत्र च व्याप्तौ शक्तिरप्यत्र नो भवेत्॥१२॥
अथापि क्रियमाणे वै कार्ये सैव गतिर्मम। देवास्तमूचुर्भावेन सर्वेण ऋषयस्तथा॥१३॥
आयुः कर्मणि च प्रीतिर्व्याप्तौ शक्तिश्च दीयते।
प्रयाजाननुयाजांश्च दास्यामो हव्यवाहन॥१४॥
देवानां त्वं मुखं श्रेष्ठमाहुत्यः प्रथमास्तव। त्वया दत्तं तु यद्द्रव्यं भोक्ष्यामः सुरसत्तम॥१५॥

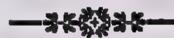
ब्रह्मा कहते हैं—तब अग्नि ने भी देवताओं की स्तुति का उत्तर प्रदान करते कहा—"हे देवताओं! मेरा छोटा भाई मृत हो गया। वही इस कार्य में अत्यन्त सक्षम था। वह आप लोगों के कार्य साधन में निरत रह कर जिस प्रकार से मरण गति पा गया, वही गति मेरी भी होगी। इसलिये हे देवताओं! मेरी रुचि आप लोगों के कार्य साधन की नहीं हो रही है। मेरी शक्ति मर्त्यलोक, स्वर्गलोक तथा व्याप्ति में कार्य करने की नहीं है। मैं चाहे जो कार्य आप सबका क्यों न करूं, मेरी भी गति मेरे भाई जैसी ही होगी।" तब देवता तथा ऋषियों ने अग्नि से कहा—"हे हव्यवाहन! हम लोग आपको आयु-कर्म में प्रीति तथा सर्वाधिकार शक्ति प्रदान करेंगे तथा आपको प्रयाज-अनुयाज यज्ञभाग भी प्रदान करेंगे। आप देवगण के मुख हैं। आपकी ही प्रथम आहुति होगी। आपको प्रदत्त सामग्री का ही हम भोजन करेंगे"।।१०-१५।।

ब्रह्मोवाच

ततस्तुष्टोऽभवद्वह्निर्देववाक्याद्यथाक्रमम्। इह चामुत्र च व्याप्तौ हव्ये वा लौकिके तथा।।१६।।
सर्वत्र वह्निरभयः समर्थोऽभूत्सुराज्ञया। जातवेदा बृहद्भानुः सप्तार्चिर्नीललोहितः।।१७।।
जलगर्भः शमीगर्भो यज्ञगर्भः स उच्यते।
जलादाकृष्य विबुधा अभि (भ्य) षिच्य वि (ऋन्वि) भावसुम्।।१८।।
उभयत्र पदे वासः सर्वगोऽग्निस्ततोऽभवत्। यथागतं सुरा जग्मुर्वह्नितीर्थं तदुच्यते।।१९।।
तत्र सप्त शतान्यासंस्तीर्थानि गुणवन्ति च।
तेषु स्नानं च दानं च यः करोति जितात्मवान्।।२०।।
अश्वमेधफलं साग्रं प्राप्नोत्यविकलं शुभम्। देवतीर्थं च तत्रैव आग्नेयं जातवेदसम्।।२१।।
अग्निप्रतिष्ठितं लिङ्गं तत्राऽऽस्तेऽनेकवर्णवत्। तद्देवदर्शनादेव सर्वक्रतुफलं लभेत्।।२२।।

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्येऽग्नितीर्थवर्णनं नामाष्टनवतितमोऽध्यायः।।९८।।

गौतमीमाहात्म्ये ऐकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः।।२९।।



ब्रह्मा कहते हैं—तदनन्तर देवगण के वचनानुसार अग्निदेव सन्तुष्ट हो गये। वे उनके आदेश से ऐहिक एवं पारलौकिक हव्य के विषय में सर्वत्र निर्भय तथा समर्थ हो गये। वे जातवेदा, बृहद्भानु, सप्तार्चि, नीललोहित, जलगर्भ, शमीगर्भ तथा यज्ञगर्भ कहलाये। देवगण ने उनको जल से बाहर किया तथा उनका अभिषेक करके उनको प्रतिष्ठापित किया। वे जल-थल दोनों में निवास करने के कारण सर्वत्रगामी हो गये। जहां से वे प्रथमतः जल से निकाले गये (आविर्भूत हुये) वही स्थान अग्नितीर्थ है। वहां बहुल गुणान्वित सात सौ तीर्थ विराजमान हैं। जो व्यक्ति एकाग्रता एवं संयम के साथ वहां स्नान-दान करता है, वह अवश्य अश्वमेध यज्ञफल पाता है। वहीं पर देवतीर्थ भी है। यहां अग्नि तथा जातवेदा द्वारा स्थापित अनेक वर्णों वाला एक लिंग है। उसका दर्शन करने मात्र से सभी यज्ञफल मिलता है।।१६-२२।।

।।अष्टनवतितम अध्याय समाप्त।।



अथैकोनशततमोऽध्यायः

ऋणमोचनतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

ऋणप्रमोचनं नाम तीर्थं वेदविदो विदुः। तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु नारद तन्मनाः॥१॥
आसीत्पृथुश्रवा नाम प्रियः कक्षीवतः सुतः। न दारसङ्ग्रहं लेभे वैराग्यान्नाग्निपूजनम्॥२॥
कनीयांस्तु समर्थोऽपि परिवित्तिभयान्मुने। नाकरोद्दारकर्मादि नैवाग्नीनामुपासनम्॥३॥
ततः प्रोचुः पितृगणाः पुत्रं कक्षीवतः शुभम्। ज्येष्ठं चैव कनिष्ठं च पृथक्पृथगिदं वचः॥४॥

ब्रह्मा कहते हैं—वेदज्ञ लोग कहते हैं कि ऋणमोचन नामक एक तीर्थ है। हे नारद! मैं उसके स्वरूप का कीर्तन करता हूं। मन देकर श्रवण करिये। पूर्व में कक्षीवान् का पुत्र पृथुश्रवा था। वह वैराग्य युक्त था, अतः उसने विवाह ही नहीं किया। वह अग्नि उपासना भी नहीं करता था। उसका कनिष्ठ भ्राता समर्थ होकर भी परिवित्ति कहलाने के पापभय से (अर्थात् जब ज्येष्ठ भ्राता अविवाहित हो, तब कनिष्ठ का विवाह नियम विरुद्ध मानते हैं। ऐसा करने वाला परिवित्ति कहलाता है)। विवाह नहीं कर रहा था। वह भी अग्नि उपासना नहीं करता था। तब पूर्वज पितरों ने दोनों भ्राताओं से अलग-अलग कहा—॥१-४॥

पितर ऊचुः

ऋणत्रयापनोदाय क्रियतां दारसङ्ग्रहः॥५॥

ब्रह्मोवाच

नेत्युवाच ततो ज्येष्ठः किमृणं केन युज्यते।
कनीयांस्तु पितॄन्प्राह न योग्यो दारसङ्ग्रहः॥६॥
ज्येष्ठे सति महाप्राज्ञः परिवित्तिभयादिति। तावुभौ पुनरप्येवमूचुस्ते वै पितामहाः॥७॥

ब्रह्मा कहते हैं—तदनन्तर ज्येष्ठ भ्राता ने कहा—"मैं विवाह नहीं करूंगा। ऋण क्या है? कैसे ऋणमुक्ति होती है?" कनिष्ठ ने भी पितरों से कहा—"ज्येष्ठ भ्राता के अविवाहित रहते कनिष्ठ का विवाह कैसे हो सकता है?"॥५-७॥

पितर ऊचुः

यातामुभौ गौतमीं तु पुण्यां कक्षीवतः सुतौ। कुरुतां गौतमीस्नानं सर्वाभीष्टप्रदायकम्॥८॥
गच्छतां गौतमीं गङ्गां लोकत्रयपावनीम्।
स्नानं च तर्पणं तस्यां कुरुतां श्रद्धयाऽन्वितौ॥९॥
दृष्ट्वाऽवनामिता ध्याता गौतमी सर्वकामदा। न देशकालजात्यादिनियमोऽत्रावगाहने।
ज्येष्ठोऽनृणस्ततो भूयात्परिवित्तिर्न चेतरः॥१०॥

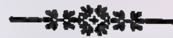
पितृगण पुनः कहते हैं—हे पुत्रद्वय! तुम पुण्यप्रदा, लोकों को पावन करने वाली गौतमीगंगा जाओ। वहां सश्रद्ध भाव से स्नान तथा तर्पण कार्य करने से सभी वांछित फल लाभ होगा। गौतमी जल में स्नान तथा उसका दर्शन करने से तथा वहां ध्यान करने से सभी काम्यफल प्राप्त होता है। गौतमीतट पर देश, काल, जाति का विचार नहीं है। तदनन्तर पितरों की आज्ञा का पालन करने से ज्येष्ठ एव कनिष्ठ दोनों भाई ऋणमुक्त हो गये।।८-१०।।

ब्रह्मोवाच

ततः पृथुश्रवा ज्येष्ठः कृत्वा स्नानं सतर्पणम्।
त्रयाणामपि लोकानां काक्षीवतोऽनृणोऽभवत्।।११।।
ततः प्रभृति तत्तीर्थमृणमोचनमुच्यते। श्रौतस्मार्तऋणेभ्यश्च इतरेभ्यश्च नारद।
तत्र स्नानेन दानेन ऋणी मुक्तः सुखी भवेत्।।१२।।

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये ऋणमोचनतीर्थवर्णनं नाम नवनवतितमोऽध्यायः।।९९।।

गौतमीमाहात्म्ये त्रिंशोऽध्यायः।।३०।।



ब्रह्मा कहते हैं—तत्पश्चात् ज्येष्ठ भ्राता पृथुश्रवा गौतमी में स्नान तर्पणोपरान्त त्रैलोक्य के तथा पिता कक्षीवान् के ऋण से उऋण हो गया। तभी से यह तीर्थ ऋणमोचन तीर्थ के नाम से विख्यात है। ऋणी व्यक्ति गौतमी में स्नान-दान करके श्रौत-स्मार्त्त ऋण से मुक्त हो जाते हैं। वे सुखी हो जाते हैं।।११-१२।।

।।एकोनशततम अध्याय समाप्त।।



अथ शततमोऽध्यायः

सुपर्णासंगमतीर्थ, रुद्र तथा सुपर्णा का वर्णन

ब्रह्मोवाच

सुपर्णासङ्गमं नाम काद्रवासङ्गमं तथा। महेश्वरो यत्र देवो गङ्गापुलिनमाश्रितः।।१।।
अग्निकुण्डं च तत्रैव रौद्रं वैष्णवमेव च। सौरं सौम्यं तथा ब्राह्मं कौमारं वारुणं तथा।।२।।
अप्सरा च नदी यत्र सङ्गता गङ्गया तथा। तत्तीर्थस्मरणादेव कृतकृत्यो भवेन्नरः।।३।।
सर्वपापप्रशमनं शृणु यत्नेन नारद। इन्द्रेण हिंसिताः पूर्वं बालखिल्या महर्षयः।
दत्तार्धतपसः सर्वे प्रोचुस्ते काश्यपं मुनिम्।।४।।

ब्रह्मा कहते हैं—सुपर्णासंगम तथा काद्रवासंगम नामक तीर्थद्वय हैं। वहां देव महेश्वर गंगातट पर विराजित रहते हैं। वहां अग्निकुण्ड, रौद्र-वैष्णव-सौर-सौम्य-ब्राह्म-कौमार तथा राक्षस नामक और भी अनेक तीर्थ थे। यहां अप्सरानदी गंगा से मिलती है। इन तीर्थों का स्मरण करने वाले मनुष्य भी कृतार्थ हो जाते हैं। हे नारद! इस सर्वपापप्रशमन तीर्थ का विवरण श्रवण करो। पूर्वकाल में बालखिल्य महर्षि से इन्द्र अत्यन्त ईर्ष्यालु थे। तब बालखिल्य ऋषियों ने अपने तप का अर्द्ध भाग कश्यप मुनि को देकर उनसे कहा—॥१-४॥

वालखिल्या ऊचुः

पुत्रमुत्पादयानेन इन्द्रदर्पहरं शुभम्। तपसोऽर्धं तु दास्यामस्तथेत्याह मुनिस्तु तान्॥५॥
सुपर्णायां ततो गर्भमादधे स प्रजापतिः। कद्र्वां चैव शनैब्रह्मन्सर्पाणां सर्पमातरि॥६॥
ते गर्भिण्यावुभे आह गन्तुकामः प्रजापतिः।
अपराधो न च क्वापि कार्यो गमनमेव च॥७॥
अन्यत्र गमनाच्छापो भविष्यति न संशयः॥८॥

बालखिल्य ऋषिगण कहते हैं—हे महाभाग कश्यप! आप एक इन्द्र दर्प का हरण करने वाला पुत्र उत्पन्न करिये। हम आपको अपनी तपस्या का आधा भाग दे रहे हैं। मुनि ने भी उन ऋषियों की बात सुनकर कहा—"ऐसा ही होगा"। तत्पश्चात् प्रजापति ने सुपर्णा तथा सर्पमाता कद्रु में गर्भाधान किया। उन्होंने जाते समय दोनों गर्भिणी पत्नियों से कहा—"तुम लोग कहीं कोई अपराध मत करना। कहीं भी मत जाना। जाने से अभिशप्त हो जाओगी"॥५-८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा स ययौ पत्न्यौ गते भर्तरि ते उभे। तदैव जगमतुः सत्रमृषीणां भावितात्मनाम्॥९॥
ब्रह्मवृन्दसमाकीर्णं गङ्गातीरसमाश्रितम्। उन्मत्ते ते उभे नित्यं वयःसम्पत्तिगर्विते॥१०॥
निवार्यमाणे बहुशो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
विकुर्वत्यौ तत्र सत्रे समानि च हवींषि च॥११॥
योषितां दुर्विलसितं कः संवरितुमीश्वरः। ते दृष्ट्वा चुक्षुभुर्विप्रा अपमार्गरते उभे॥१२॥
अपमार्गस्थिते यस्मादापगे हि भविष्यथः। सुपर्णा चैव कद्रूश्च नद्यौ ते सम्बभूवतुः॥१३॥

ब्रह्मा कहते हैं—वे महामुनि अपनी उभय पत्नियों से यह कहकर चले गये। तदनन्तर पति के चले जाने पर वे दोनों स्त्रियां स्वाभाविक रूप से भावितात्मा सप्तर्षिगण के गंगातीरस्थ सत्रयज्ञ में चली गईं, जहां ब्राह्मणवृन्द भरे पड़े थे। तत्वद्रष्टा मुनिगण के अनेक रोकने पर भी वे सत्र में रहकर मुनिगण के सामगान तथा हविः कार्य को दूषित-विकृत करने लगीं। वे अपने यौवन के कारण गर्व से भरी थीं। ऋषिगण द्वारा मना किये जाने पर भी यह दुष्कार्य किये जा रही थीं। स्त्रियों को अनुचित कामों से कौन रोक सकता है? अन्ततः ऋषिगण ने क्रोधित होकर कहा—"तुम लोग गलत मार्ग पर स्थित हो। इसलिये तुम दोनों नदीरूप हो जाओ।" इस शाप से सुपर्णा तथा कद्रू नदीरूप हो गयीं॥९-१३॥

स कदाचिद्गृहं प्रायात्कश्यपोऽथ प्रजापतिः।
ऋषिभ्यस्तत्र वृत्तान्तं शापं ताभ्यां सविस्तरम्॥१४॥
श्रुत्वा तु विस्मयाविष्टः किं करोमीत्यचिन्तयत्।
ऋषिभ्यः कथयामास वालखिल्या इति श्रुताः॥१५॥
त ऊचुः कश्यपं विप्र गत्वा गङ्गां तु गौतमीम्।
तत्र स्तुहि महेशानं पुनर्भार्ये भविष्यतः॥१६॥
ब्रह्महत्याभयादेव यत्र देवो महेश्वरः।
गङ्गामध्ये सदा ह्यास्ते मध्यमेश्वरसंज्ञया॥१७॥
तथेत्युक्त्वा कश्यपोऽपि स्नात्वा गङ्गां जितव्रतः।
तुष्टाव स्तवनैः पुण्यैर्देवदेवं महेश्वरम्॥१८॥

जब एक बार प्रजापति कश्यप अपने गृह लौटे, तब उन्होंने ऋषियों के मुख से दोनों पत्नियों के पापकृत्य को विस्तार से जाना। तब वे विचार करने लगे "अब मैं क्या करूं?" इस प्रकार से चिन्तित होकर उन्होंने समस्त वृत्तान्त बालखिल्य ऋषियों से कह दिया। तब उन ऋषियों ने कश्यप से कहा—"आप गौतमीगंगा जाकर वहां महेश की स्तुति करिये। आप वहां जायें, जहां ब्रह्महत्या से डरे हुये महेश्वर सतत् गंगा मध्य में 'मध्यमेश्वर' नाम धारण करके रहते हैं। इस प्रकार वहां जाकर स्नानादि करने से आपकी दोनों पत्नियां अपना पूर्वरूप लाभ करेंगी।" यह सुनकर महाव्रती कश्यप ने कहा—"यही होगा" और उन्होंने गौतमीगंगा में स्नान तथा मांगलिक स्तव से देवदेव महेश की स्तुति किया।।१४-१८।।

कश्यप उवाच

लोकत्रयैकाधिपतेर्न यस्य, कुत्रापि वस्तुन्यभिमानलेशः।
स सिद्धनाथोऽखिलविश्वकर्ता, भर्ता शिवाया भवतु प्रसन्नः॥१९॥
तापत्रयोष्णद्युतितापितानामितस्ततो वै परिधावतां च।
शरीरिणां स्थावरजङ्गमानां, त्वमेव दुःखव्यपनोददक्षः॥२०॥
सत्त्वादियोगस्त्रिविधोऽपि यस्य, शक्रादिभिर्वक्तुमशक्य एव।
विचित्रवृत्तिं परिचिन्त्य सोमं, सुखी सदा दानपरो वरेण्यः॥२१॥

कश्यप कहते हैं—जो लोकत्रय के अधिपति हैं, जिनमें कहीं, किसी भी वस्तु के प्रति अभिमान का लेश भी नहीं है, वे सर्व-विश्वविधाता शिवा देवी के पति सिद्धनाथ महेश्वर प्रसन्न हो जायें। यह सचराचर प्राणीवर्ग तापत्रयरूपी दिवाकर ताप से तापित होकर इतस्ततः दौड़ता रहता है। आप ही एकमात्र हैं, जो इनका दुःख दूर कर सकते हैं। जिस कुछ की, सत्वादि गुणत्रय के भेद की, सत्वादि गुणत्रय के भेद की तथा इन तीनों के योग की व्याख्या कर सकने में इन्द्र आदि भी समर्थ नहीं हैं, उन विचित्र वृत्ति धारी शंकर का ध्याता व्यक्ति सदा सुखी, दानी तथा श्रेष्ठ होता है।।१९-२१।।

ब्रह्मोवाच

इत्यादिस्तुतिभिर्देवः स्तुतो गौरीपतिः शिवः। प्रसन्नो ह्यददाच्छम्भुः कश्यपाय वरान्बहून्॥२२॥
भार्यार्थिनं तु तं प्राह स्यातां भार्ये उभे तु ते। नदीस्वरूपे पत्न्यौ ये गङ्गां प्राप्य सरिद्वराम्॥२३॥
तत्सङ्गमनमात्रेण ताभ्यां भूयात्स्वकं वपुः। ते गर्भिण्यौ पुनर्जाते गङ्गायाश्च प्रसादतः॥२४॥
ततः प्रजापतिः प्रीतो भार्ये प्राप्य महामनाः। आह्वयामास तान्विप्रान्गौतमीतीरमाश्रितान्॥२५॥

सीमन्तोन्नयनं चक्रे ताभ्यां प्रीतः प्रजापतिः।
ब्राह्मणान्पूजयामास विधिदृष्टेन कर्मणा॥२६॥

ब्रह्मा कहते हैं—गौरीपति शिव कश्यप के इस स्तव से प्रसन्न हो गये। उन्होंने तब प्रसन्नता पूर्वक कश्यप को अनेक वर प्रदान किया। कश्यप भार्या चाहते थे। अतएव शिव ने कहा—"तुम्हारी दोनों भार्या पुनः प्रकट होंगी। अभी वे दोनों नदीरूप हो गयी हैं। वे श्रेष्ठ सरिता गंगा से संगम होते ही, इनको पुनः अपना पूर्वरूप प्राप्त होगा। गंगा की कृपा से वे तत्काल अपनी गर्भिणी अवस्था प्राप्त करेंगी।" तदनन्तर महामना प्रजापति ने प्रसन्न होकर पुनः अपनी दोनों भार्याओं को प्राप्त किया। उन्होंने सभी गौतम तटस्थ ब्राह्मणों को पुकारा। उनसे अपनी दोनों पत्नियों का सीमन्तोन्नयन संस्कार कराकर उस उपलक्ष्य में प्रभु ने सविधि ब्राह्मणों को सत्कृत किया।।२२-२६।।

भुक्तवत्स्वथ विप्रेषु कशपस्याथ मन्दिरे। भर्तृसमीपोपविष्टा कद्रूर्विप्रान्निरीक्ष्य च॥२७॥

ततः कद्रूर्ऋषीनक्ष्णा प्राहसत्ते च चुक्षुभुः।
येनाक्ष्णा हसिता पापे भज्यतां तेऽक्षि पापवत्॥२८॥
काणाऽभवत्ततः कद्रूः सर्पमातेति योच्यते।
ततः प्रसादयामास कश्यपो भगवानृषीन्॥२९॥

जब ब्राह्मणगण भोजन कर चुके, उस समय कद्रु ने ऋषिगण को देख कर वक्र दृष्टि से उनका मानों उपहास उड़ाया। यह देखने से ब्राह्मण क्रोधित हो गये। उन्होंने कहा—"हे पापिनी! तुमने जिस दृष्टि से हमारा उपहास किया है, वह पापपूर्ण तुम्हारा नेत्र भग्न हो जाये।" तत्काल कद्रू कानी हो गयीं। तदनन्तर कश्यप ने ऋषिगण को प्रयत्न करके प्रसन्न कर लिया।।२७-२९।।

ततः प्रसन्नास्ते प्रोचुर्गौतमी सरितां वरा। अपराधसहस्रेभ्यो रक्षिष्यति च सेवनात्॥३०॥

ऋषियों ने प्रसन्न होकर कहा—"सरितप्रवरा गौतमी की सेवा करने वाला हजारों-हजार अपराधों से भी रक्षा पा लेता है"।।३०।।

भार्यान्वितस्तथा चक्रे कश्यपो मुनिसत्तमः। ततः प्रभृति तत्तीर्थमुभयो सङ्गमं विदुः।
सर्वपापप्रशमनं सर्वक्रतुफलप्रदम्॥३१॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुऋषिसंवादे कद्रूसुपर्णासङ्गमतीर्थवर्णनं नाम शततमोऽध्यायः॥१००॥
गौतमीमाहात्म्ये एकत्रिंशोऽध्यायः।।३१।।



अब महर्षि कश्यप ने पत्नी सहित गौतमीगंगा की सेवा द्वारा अपनी भार्या कद्रू का कानापन दूर कर दिया। तभी से यह महान् तीर्थ सर्वपापहारी, सर्वयज्ञफलप्रद सुपर्णासंगम अथवा काद्रवसंगम कहा गया।।३१।।

।।शततम अध्याय समाप्त।।



अथैकाधिकशततमोऽध्यायः

सरस्वती संगम, पुरूरवस, ब्रह्मतीर्थ, सिद्धेश्वरतीर्थ तथा पुरूरवा द्वारा उर्वशी प्राप्ति का वर्णन

ब्रह्मोवाच

पुरूरवसमाख्यातं तीर्थं वेदविदो विदुः। स्मरणादेव पापानां नाशनं किन्नु दर्शनात्॥१॥
पुरूरवा ब्रह्मसदः प्राप्य तत्र सरस्वतीम्। यदृच्छया देवनदीं हसन्तीं ब्रह्मणोऽन्तिके।
तां दृष्ट्वा रूपसम्पन्नामुर्वशीं प्राह भूपतिः॥२॥

ब्रह्मा कहते हैं—प्रसिद्ध पुरूरवा तीर्थ को वेदज्ञ लोगों ने निश्चित किया है। इसके स्मरण मात्र से पाप नाश हो जाता है। इसके दर्शन के अपूर्व फल को कहता हूं। एक बार पुरूरवा ब्रह्मसभा गये थे। ब्रह्मा के पास देवनदी सरस्वती उस समय अकारण हंसने लगीं। यह देख कर पुरूरवा रूपवती उर्वशी से पूछने लगे।।१-२।।

राजोवाच

केयं रूपवती साध्वी स्थितेयं ब्रह्मणोऽन्तिके।
सर्वासामुत्तमा योषिद्दीपयन्ती सभामिमाम्॥३॥

पुरूरवा कहते हैं—ये रूपवती साध्वी स्त्री कौन हैं? ये तो ब्रह्मा के पास रहकर समस्त समाज को उद्भासित कर रही हैं। प्रतीत होता है कि ये स्त्री समाज की शिरोमणि हैं।।३।।

ब्रह्मोवाच

उर्वशी प्राह राजानमियं देवनदी शुभा। सरस्वती ब्रह्मसुता नित्यमेति च याति च।
तच्छ्रुत्वा विस्मितो राजा आनयेमां ममान्तिकम्॥४॥

ब्रह्मा कहते हैं—उर्वशी ने राजा से कहा कि "ये ब्रह्मकन्या पुण्यमयी देवसरिता सरस्वती हैं। ये सर्वदा यहां आती-जाती रहती हैं।" यह सुनकर राजा विस्मित होकर कहने लगे "इनको मेरे निकट लाओ"।।४।।

ब्रह्मोवाच

उर्वशी पुनरप्याह राजानं भूरिदक्षिणम्॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—उर्वशी ने यज्ञों में प्रभूत दक्षिणादाता राजा से कहा—।।५।।

उर्वश्युवाच

आनीयते महाराज तस्याः सर्वं निवेद्य च॥६॥

उर्वशी कहती है—हे महाराज! उनसे सभी बातें निवेदित करके लाती हूं।।६।।

ब्रह्मोवाच

ततस्तां प्राहिणोत्तत्र राजा प्रीत्या तदोर्वशीम्। सा गत्वा राजवचनं न्यवेदयदथोर्वशी॥७॥
सरस्वत्यपि तन्मेने उर्वश्या यन्निवेदितम्। सा तथेति प्रतिज्ञाय प्रायाद्यत्र पुरूरवाः॥८॥
सरस्वत्यास्ततस्तीरे स रेमे बहुलाः समाः। सरस्वानभवत्पुत्रो यस्य पुत्रो बृहद्रथः॥९॥

ब्रह्मा कहते हैं—उर्वशी को तब राजा ने सरस्वती को लाने के लिये भेज दिया। उर्वशी ने सरस्वती से जाकर राजा का संवाद कहा। सरस्वती ने तब उर्वशी के कथन का अनुमोदन किया और 'तथास्तु' कहकर वे पुरूरवा के पास आ गयीं। पुरूरवा ने सरस्वती के साथ अनेक वर्षों तक रमण किया। सरस्वती के गर्भ से सरस्वान राजा जन्मा। उसका पुत्र था बृहद्रथ।।७-९।।

तां गच्छन्तीं नृपगृहं नित्यमेव सरस्वतीम्।
सरस्वन्तं ततो लक्ष्म ज्ञात्वाऽन्येषु तथा कृतम्॥१०॥
तस्यै ददावहं शापं भूया इति महानदी। मच्छापभीता वागीशा प्रागाद्देवीं च गौतमीम्॥११॥

मैं नित्य देखता था कि सरस्वती राजा के गृह जाती थी। मैंने सरस्वान् को भी उसकी आकृति एवं चिह्न के कारण तथा अन्य लोगों द्वारा कथित वार्ता से 'यह सरस्वती का पुत्र है' ऐसा जाना। समस्त रहस्यचक्र से अवगत होकर मैंने सरस्वती को शाप दिया "तुम महानदी हो जाओ।" वे वाग् की ईश्वरी मेरे शाप से भीत होकर गौतमीगंगातट पर गयीं।।१०-११।।

कमण्डलुभवां पूतां मातरं लोकपावनीम्। तापत्रयोपशमनीमैहिकामुष्मिकप्रदाम्॥१२॥
सा गत्वा गौतमीं देवीं प्राह मच्छापमादिताः।
गङ्गाऽपि मामुवाचेदं विशापं कर्तुमर्हसि॥१३॥
न युक्तं यत्सरस्वत्याः शापं त्वं दत्तवानसि।
स्त्रीणामेष स्वभावो वै पुंस्कामा योषितो यतः॥१४॥
स्वभावचपला ब्रह्मन्योषितः सकला अपि। त्वं कथं तु न जानीषे जगत्स्रष्टाऽम्बुजासन॥१५॥
विडम्बयति कं वा न कामो वाऽपि स्वभावतः।
ततो विशापमवदं दृश्याऽपि स्यात्सरस्वती॥१६॥

जिनका जन्म मेरे कमण्डलु से हुआ था, जो समस्त जगत् की पवित्र मातृरूपेण विराजमान हैं, जो ऐहिक तथा पारलौकिक शुभ फल देती हैं, ऐसी गौतमी से सरस्वती ने जाकर मेरे शाप का वर्णन किया। तब उन गौतमीगंगा ने मुझसे कहा कि "ब्रह्मन्! आप सरस्वती को शाप से मुक्त करिये। सरस्वती को शापित करना

आपके लिये कदापि उचित कार्य नहीं है। स्त्रियां तो पुरुष की कामना करती ही हैं। यह तो उनका सर्वदा का स्वभाव जो है। हे ब्रह्मन्! सभी स्त्रियां स्वभावतः चंचल होती हैं। हे कमलासन देव! आप ही जगत् की सृष्टि करने वाले हैं। क्या आप स्त्री स्वभाव से विदित नहीं हैं। काम ने किसे विडम्बित नहीं किया है?" यह सुन कर मैंने सरस्वती को शापमुक्त कर दिया। वे प्रत्यक्ष दिखलाई भी देने लगीं।।१२-१६।।

तस्माच्छापान्नदी मर्त्ये दृश्याऽदृश्या सरस्वती।
यत्रैषा सङ्गता देवी गङ्गायां शापविह्वला॥१७॥

तत्र प्रायान्नृपवरो धार्मिकः स पुरूरवाः। तपस्तप्त्वा समाराध्य देवं सिद्धेश्वरं हरम्॥१८॥
सर्वान्कामानथावाप गङ्गायाश्च प्रसादतः। तत प्रभृति तत्तीर्थं पुरूरवसमुच्यते॥१९॥
सरस्वतीसङ्गमं च ब्रह्मतीर्थं तदुच्यते। सिद्धेश्वरो यत्र देवः सर्वकामप्रदं तु तत्॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सरस्वतीसङ्गम पुरूरवसब्रह्मतीर्थसिद्धेश्वरवर्णनं नामैकाधिकशततमोऽध्यायः।।१०१।।

गौतमीमाहात्म्ये द्वात्रिंशोऽध्यायः।।३२।।



मेरी इस शाप घटना से मर्त्यधाम में यह सरस्वतीनदी दृश्या तथा अदृश्या इन दोनों रूपों से विराजमान है। इस पुण्य संगम स्थल में मनुष्य जो कुछ स्नान-दान का अनुष्ठान करते हैं, वह सब सर्वकामफल प्रदान करता है। वहां निष्काम रहने से मुक्ति तक संभव हो जाती है। जहां शंभु मृगव्याध हो गये थे, वह तीर्थ मनुष्यों के लिये सर्वार्थ प्रदायक है। वहां का अन्य ब्रह्मतीर्थ स्वर्ग तथा मोक्ष देता है।।१७-२०।।

।।एकाधिकशततम अध्याय समाप्त।।



अथ द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

पञ्चतीर्थ माहात्म्य, मृगव्याधोपाख्यान

ब्रह्मोवाच

सावित्री चैव गायत्री श्रद्धा मेधा सरस्वती।
एतानि पञ्च तीर्थानि पुण्यानि मुनयो विदुः॥१॥
तत्र स्नात्वा तु पीत्वा तु मुच्यते सर्वकल्मषात्।
सावित्री चैव गायत्री श्रद्धा मेधा सरस्वती॥२॥

एता मम सुता ज्येष्ठा धर्मसंस्थानहेतवः। सर्वासामुत्तमां काञ्चिन्निर्ममे लोकसुन्दरीम्॥३॥
तां दृष्ट्वा विकृता बुद्धिर्ममाऽऽसीन्मुनिसत्तमः।
गृह्यमाणा मया बाला सा मां दृष्ट्वा पलायिता॥४॥
मृगीभूता तु सा बाला मृगोऽहमभवं तदा। मृगव्याधोऽभवच्छम्भुर्धर्मसंरक्षणाय च॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—सावित्री, गायत्री, श्रद्धा, मेधा, सरस्वती—ये पांच तीर्थ मुनिगण के अनुसार अतीव पुण्यमय स्थल हैं। यहां इन सबमें स्नान करने वाला सर्वपाप रहित हो जाता है। सावित्री, गायत्री, श्रद्धा, मेधा, सरस्वती, ये सब मेरी ही कन्यायें हैं। ये सभी धर्म की स्थापना की कारण हैं। इनमें से ज्येष्ठा कन्या सावित्री को मैंने सर्वलोक सुन्दरी और सर्वश्रेष्ठ रूप में सृष्ट किया है। हे मुनिप्रवर! उसे देख कर मेरी भी बुद्धि विकृत हो गयी थी। मैंने उसे ग्रहण कर लिया था। लेकिन वह बाला मुझे देखकर मृगीरूप धारण करके भाग गई। मैं भी मृगरूपी होकर उसका पीछा करने लगा था। तभी धर्मरक्षार्थ भगवान् शंभु मृगव्याध रूप में वहां आ गये।।१-५।।

ता मद्भीताः पञ्च सुता गङ्गामीयुर्महानदीम्। ततो महेश्वरः प्रयाद्धर्मसंरक्षणाय सः॥६॥
धनुर्गृहीत्वा सशरमीशोऽपि मृगरूपिणम्। मामुवाच वधिष्ये त्वां मृगव्याधस्तदा हरः॥७॥

उस समय मुझे देख कर पांच कन्यायें भयभीत हो गईं। उन्होंने जाकर महानदी गंगा में शरण लिया था। मृगव्याध रूपी महेश्वर ने धर्मरक्षार्थ हाथ में धनुष-बाण लेकर मुझ मृगरूपी से कहा कि मैं तुम्हारा वध करूंगा।।६-७।।

तत्कर्मणो निवृत्तोऽहं प्रादां कन्यां विवस्वते।
सावित्र्याद्याः पञ्च सुता नदीरूपेण सङ्गताः॥८॥
ता आगताः पुनश्चापि स्वर्गं लोकं ममान्तिकम्।
यत्र ताः सङ्गता देव्या पञ्च तीर्थानि नारद॥९॥
सङ्गतानि च पुण्यानि पञ्च नद्यः सरस्वती।
तेषु स्नानं तथा दानं यत्किञ्चित्कुरुते नरः॥१०॥
सर्वकामप्रदं तस्मान्नैष्कर्म्यान्मुक्तिदं स्मृतम्।
तत्राभवन्मृगव्याधं तीर्थं सर्वार्थदं नृणाम्।
स्वर्गमोक्षफलं चान्यद्ब्रह्मतीर्थफलं स्मृतम्॥११॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये पञ्चतीर्थमाहात्म्यनिरूपणं नाम द्व्याधिकशततमोऽध्यायः॥१०२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥३३॥



तब मैं उस दुष्कर्म से हट गया। मैंने अपनी उस कन्या को विवस्वान् (सूर्य) को अर्पित कर दिया। मेरी वे पाचों सावित्री आदि कन्या नदीरूप में गंगा में मिल गयीं। तथापि वे पुनः मेरे लोक में आ गयीं। हे

नारद! जहां वे आपस में मिली हैं (संगम हुआ है) वही पंचतीर्थ है। इस पुण्य संगम स्थल में स्नान-दान जो कुछ भी किया जाये, वह सभी सर्वकामफलप्रद हो जाता है। वहां का अन्य तीर्थ ब्रह्मतीर्थ है, जो स्वर्ग एवं मोक्षफल को उत्पन्न करता है।।८-११।।

।।द्व्यधिकशततम अध्याय समाप्त।।



अथ त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

शमी आदि तीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

शमीतीर्थमिति ख्यातं सर्वपापोपशान्तिदम्।
तस्याऽऽख्यानं प्रवक्ष्यामि शृणु यत्नेन नारद॥१॥

आसीत्प्रियव्रतो नाम क्षत्रियो जयतां वरः। गौतम्या दक्षिणे तीरे दीक्षां चक्रे पुरोधसा॥२॥
हयमेध उपक्रान्ते ऋत्विग्भिर्ऋषिभिर्वृते। तस्य राज्ञो महाबाहोर्वसिष्ठस्तु पुरोहितः॥३॥
तद्यज्ञवाटमगमद्दानवोऽथ हिरण्यकः। दानवमभिप्रेक्ष्य देवास्त्विन्द्रपुरोगमाः॥४॥
भीताः केचिद्दिवं जग्मुर्हव्यवाट्शमिमाविशत्। अश्वत्थं विष्णुरगमद्भानुरर्कं वटं शिवः॥५॥
सोमः पलाशमगमद्गङ्गाम्भो हव्यवाहनः। अश्विनौ तु हयं गृह्य वायसोऽभूद्यमः स्वयम्॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—विख्यात शमीतीर्थ सर्वपापनाशक है। हे नारद! उसका आख्यान सुनिये। प्रियव्रत नामक एक विजयी क्षत्रिय राजा थे। वे गौतमीनदी के दक्षिण तट पर अश्वमेध यज्ञार्थ दीक्षित हुये थे। महर्षि वसिष्ठ उनके पुरोहित थे। वे ऋत्विक्, पुरोहित तथा अन्य ऋषियों से परिवृत होकर जब यज्ञ का प्रारम्भ करने लगे, तभी हिरण्यक नाम वाला एक दैत्य यज्ञक्षेत्र में आ गया। उस दानव को देख कर इन्द्रादि कतिपय देवता भय पूर्वक स्वर्ग भाग गये। अग्नि शमीवृक्ष, विष्णु पीपल वृक्ष, भानु मदार वृक्ष, शिव वटवृक्ष तथा सोम पलाश वृक्ष पर चले गये। हव्यवाहन (अग्नि) गंगाजल में छिप गये। अश्विनीकुमारद्वय ने यज्ञीय अश्व का तथा यम ने कौये का रूप धारण कर लिया।।१-६।।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र वसिष्ठो भगवानृषिः। तं यष्टिमादाय दैतेयान्न्यवारयदथाऽज्ञया॥७॥
ततः प्रवृत्तः पुनरेव यज्ञो, दैत्यो गतः स्वेन बलेन युक्तः।
इमानि तीर्थानि ततः शुभानि, दशाश्वमेधस्य फलानि दद्युः॥८॥
प्रथमं तु शमीतीर्थं द्वितीयं वैष्णवं विदुः। आर्कं शैवं च सौम्यं च वासिष्ठं सर्वकामदम्॥९॥

तभी भगवान् वसिष्ठ ऋषि ने यष्टि लेकर दैत्य को ताड़ित किया। तदनन्तर उनकी आज्ञा से यज्ञ पुनः

प्रारम्भ हो गया। वह दैत्य ससैन्य भाग गया। तभी से वहां के सभी तीर्थ शुभ एवं दशाश्वमेध फल देने लगे। वहां प्रथम है शमीतीर्थ, द्वितीय है वैष्णवतीर्थ, तत्पश्चात् अर्कतीर्थ, शैवतीर्थ, सौम्य एवं वासिष्ठतीर्थ भी है। ये सभी तीर्थ समस्त कामना पूर्ण करते हैं।।७-९।।

देवाश्च ऋषयः सर्वे निवृत्ते मखविस्तरे। तुष्टाः प्रोचुर्वसिष्ठं तं यजमानं प्रियव्रतम्॥१०॥

जब वह राजा का यज्ञ सम्पन्न हो गया, देवता, ऋषि सन्तुष्ट हो गये तथा पुरोहित वसिष्ठ ने अपने यजमान प्रियव्रत को वहां के उन वृक्षों तथा गौतमीगंगा का माहात्म्य पुनः कहा—।।१०।।

तांश्च वृक्षांस्तां च गङ्गां मुदा युक्ताः पुनः पुनः।
हयमेधस्य निष्पत्यै एते याता इतस्ततः॥११॥
हयमेधफलं दद्युस्तीर्थानीत्यवदन्सुराः। तस्मात्स्नानेन दानेन तेषु तीर्थेषु नारद।
हयमेधफलं पुण्यं प्राप्नोति न मृषा वचः॥१२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुऋषिसंवादे तीर्थमाहात्म्ये शम्यादितीर्थवर्णनं नाम त्र्यधिकशततमोऽध्यायः।।१०३।।

गौतमीमाहात्म्ये चतुस्त्रिंशोऽध्यायः।।३४।।



तत्पश्चात् अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न होने पर सभी ने सहर्ष अपने-अपने स्थान पर प्रस्थान किया। देवता लोग कहते गये थे कि यहां पूर्वोक्त ये सभी तीर्थ समूह अश्वमेध फल प्रदान करेंगे। अतः हे नारद! इन सभी तीर्थों में स्नान-दान करने वाला मानव पवित्र हो जाता है तथा उसे अश्वमेध यज्ञफल मिलता है। यह सत्य बात है।।११-१२।।

।।त्र्यधिकशततम अध्याय समाप्त।।



अथ चतुरधिकशततमोऽध्यायः

हरिश्चन्द्रोपाख्यान, विश्वामित्रादि २२००० तीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

विश्वामित्रं हरिश्चन्द्रं शुनःशेपं च रोहितम्। वारुणं ब्राह्ममाग्नेयमैन्द्रमैन्दवमैश्वरम्॥१॥
मैत्रं च वैष्णवं चैव याम्यमाश्विनमौशनम्। एतेषां पुण्यतीर्थानां नामधेयं शृणुष्व मे॥२॥
हरिश्चन्द्र इति त्वासीदिक्ष्वाकुप्रभवो नृपः। तस्य गृहे मुनी प्राप्तौ नारदः पर्वतस्तथा।
कृत्वाऽऽतिथ्यं तयोः सम्यग्घरिश्चन्द्रोऽब्रवीदृषी॥३॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे नारद! विश्वामित्र, हरिश्चन्द्र, शुनःशेप, रोहित, वरुण, ब्राह्म, आग्नेय, ऐन्द्र, ऐन्दव, मैत्र, वैष्णव, याम्य, आश्विन तथा औशन तीर्थों के नाम की निरुक्ति मुझसे श्रवण करो। इक्ष्वाकु कुल में हरिश्चन्द्र नामक राजा थे। एक बार उनके गृह में महामुनि पर्वत तथा देवर्षि नारद आये। राजा ने उनका यथायोग्य आतिथ्य किया। तदनन्तर राजा ने कहा—।।१-३।।

हरिश्चन्द्र उवाच

पुत्रार्थं क्लिश्यते लोकः किं पुत्रेण भविष्यति।
ज्ञानी वाऽप्यथवाऽज्ञानी उत्तमो मध्यमोऽथवा।
एतं मे संशयं नित्यं ब्रूतामृषिवरावुभौ।।४।।

राजा हरिश्चन्द्र कहते हैं—हे मुनिवर! लोक में लोग पुत्र हेतु कष्ट स्वीकार करते हैं, तथापि पुत्र द्वारा क्या होता है? पुत्रवान् लोग ज्ञानी-अज्ञानी, उत्तम अथवा मध्यम, क्या होते हैं? यह सार्वकालिक संदेह मुझे रहता है, कृपया इसका निवारण करिये।।४।।

ब्रह्मोवाच

तावूचतुर्हरिश्चन्द्रं पर्वतो नारदस्तथा।।५।।

ब्रह्मा कहते हैं—नारद तथा पर्वत ऋषिद्वय ने राजा का प्रश्न सुन कर कहा—।।५।।

नारदपर्वतावूचतुः

एकधा दशधा राजञ्शतधा च सहस्रधा। उत्तरं विद्यते सम्यक्तथाऽप्येतदुदीर्यते।।६।।
नापुत्रस्य परो लोको विद्यते नृपसत्तम। जाते पुत्रे पिता स्नानं यः करोति जनाधिप।।७।।
दशानामश्वमेधानामभिषेकफलं लभेत्। आत्मप्रतिष्ठा पुत्रात्स्याज्जायते चामरोत्तमः।।८।।

नारद, पर्वत कहते हैं—हे राजन्! आपने जो पूछा है, उसका एक, दस, सौ तथा सहस्र उत्तर हैं। जो भी हो, इनमें से एक-एक कहता हूं। हे राजन्! अपुत्रक व्यक्ति की पारलौकिक गति नहीं होती। पुत्र जन्म होने पर जो पिता स्नान करते हैं, वे ही दशाश्वमेध यज्ञ के अभिषेक फल को पाते हैं। पुत्र से ही आत्मप्रतिष्ठा तथा अमरत्व लाभ होता है। देवता लोग सुधा द्वारा तथा ब्राह्मण आदि वर्ण वाले पुत्र से अमरत्व लाभ करते हैं।।६-८।।

अमृतेनामरा देवाः पुत्रेण ब्राह्मणादयः। त्रिऋणान्मोचयेत्पुत्रः पितरं च पितामहान्।।९।।
किन्तु मूलं किमु जलं किन्तु श्मश्रूणि किं तपः।
विना पुत्रेण राजेन्द्र स्वर्गो मुक्तिः सुतात्स्मृताः।।१०।।
पुत्र एव परो लोको धर्मः कामोऽथ एव च।
पुत्रो मुक्तिः परं ज्योतिस्तारकः सर्वदेहिनाम्।।११।।
विना पुत्रेण राजेन्द्र स्वर्गमोक्षौ सुदुर्लभौ। पुत्र एव परो लोके धर्मकामार्थसिद्धये।।१२।।

विना पुत्रेण यद्दत्तं विना पुत्रेण यद्धुतम्। विना पुत्रेण यज्जन्म व्यर्थं तदवभाति मे॥१३॥
तस्मात्पुत्रसमं किञ्चित्काम्यं नास्ति जगत्त्रये।
तच्छ्रुत्वा विस्मयवांस्तावुवाच नृपः पुनः॥१४॥

"पुत्र ही पिता तथा पितामहगण के ऋणत्रय का मोचन करते हैं। हे राजेन्द्र! पुत्र के बिना मूल, जल, श्मश्रु, तप—कुछ भी फलदायक नहीं होता। पुत्र से ही स्वर्ग मिलता है। पुत्र से ही मुक्ति होती है। पुत्र ही मानव का परम लोक है तथा पुत्र ही धर्म-काम तथा अर्थ है। पुत्र ही मुक्ति है, पुत्र ही परम ज्योतिः तथा पुत्र ही सभी देहधारियों के तारणहार हैं। पुत्र के बिना स्वर्ग तथा मोक्ष दुर्लभ है। धर्म-काम तथा अर्थसिद्धि के विषय में पुत्र ही एकमात्र प्रधान उपादान है। अपुत्रक व्यक्ति जो दान करता है, अथवा होम करता है, वह सब व्यर्थ है। किम्बहुना अपुत्रक का जन्म ही व्यर्थ है। अतः तीनों लोकों में पुत्र ऐसा कोई उत्तम कार्य नहीं है।" यह सब सुनकर राजा हरिश्चन्द्र आश्चर्यान्वित होकर कहने लगे।।९-१४।।

हरिश्चन्द्र उवाच

कथं मे स्यात्सुतो ब्रूतां यत्र क्वापि यथातथम्।
येन केनाप्युपायेन कृत्वा किञ्चित्तु पौरुषम्।
मन्त्रेण यागदानाभ्यामुत्पाद्योऽसौ सुतो मया॥१५॥

हरिश्चन्द्र कहते हैं—आप सब कहिये, कहां जाकर क्या करने से मुझे पुत्र होगा? कौन सा पुरुषार्थ, उपाय, मन्त्र, दान, यज्ञ करने से मुझे पुत्रोत्पत्ति हो सकेगी, वह कहिये। मुझे पुत्र अवश्य चाहिये।।१५।।

ब्रह्मोवाच

तावूचतुर्नृपश्रेष्ठ हरिश्चन्द्रं सुतार्थिनम्। ध्यात्वा क्षणं तथा सम्यग्गौतमीं याहि मानद॥१६॥
तत्रापांपतिरुत्कृष्टं ददाति मनसीप्सितम्। वरुणः सर्वदाता वै मुनिभिः परिकीर्तितः॥१७॥
स तु प्रीतः शनैः काले तव पुत्रं प्रदास्यति।
एतच्छ्रुत्वा नृपश्रेष्ठो मुनिवाक्यं तथाऽकरोत्॥१८॥
तोषयामास वरुणं गौतमीतीरमाश्रितः। ततश्च तुष्टो वरुणो हरिश्चन्द्रमुवाच ह॥१९॥

ब्रह्मा कहते हैं—उन मुनिद्वय ने किंचित् ध्यान करके सुतार्थी हरिश्चन्द्र से कहा—"हे मानद! आप गौतमीगंगा जायें। वहां जलपति वरुण आपको अभीष्ट प्रदान करेंगे। मुनियों का कहना है कि वरुणदेव सभी कामना पूर्ण करते हैं। अतएव वे प्रसन्न होने पर यथाकाल आपको पुत्र प्रदान करेंगे। मुनि का कथन सुनकर उन नृपश्रेष्ठ ने वैसा ही किया। राजा गौतमीतट पर गये तथा उन्होंने वरुण को प्रसन्न किया! तब वरुण प्रसन्न होकर राजा से कहने लगे।।१६-१९।।

वरुण उवाच

पुत्रं दास्यामि ते राजंल्लोकत्रयविभूषणम्।
यदि यक्ष्यसि तेनैव तव पुत्रो भवेद्ध्रुवम्॥२०॥

वरुण कहते हैं—हे राजन्! मैं त्रिलोक के अलंकार स्वरूप एक पुत्र आपको प्रदान करूंगा। परन्तु यदि उस पुत्र द्वारा मेरा यज्ञ करने का प्रण करो तभी पुत्र दूंगा। यह प्रतिज्ञा करने पर ही तुमको पुत्र होगा। यह निश्चित है।।२०।।

ब्रह्मोवाच

हरिश्चन्द्रोऽपि वरुणं यक्ष्ये तेनेत्यवोचत। ततो गत्वा हरिश्चन्द्रश्चरुं कृत्वा तु वारुणम्॥२१॥
भार्यायै नृपतिः प्रदात्ततो जातः सुतो नृपात्।
जाते पुत्रे अपामीशः प्रोवाच वदतां वरः॥२२॥

वरुण उवाच

अद्यैव पुत्रो यष्टव्यः स्मरसे वचनं पुरा॥२३॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब हरिश्चन्द्र ने वारुण यज्ञार्थ वचन दिया। तत्पश्चात् उन्होंने वारुण चरु बनाकर पत्नी को दिया। यथाकाल उनको एक पुत्र जन्मा। पुत्र होने पर वाग्मी जलपति ने हरिश्चन्द्र से कहा—"हे राजन्! आपको स्मरण है न, इसी पुत्र द्वारा आपको यज्ञ करना है। अपना पूर्व वचन स्मरण करिये।।२१-२३।।

ब्रह्मोवाच

हरिश्चन्द्रोऽपि वरुणं प्रोवाचेदं क्रमागतम्॥२४॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब क्रमशः हरिश्चन्द्र ने भी वरुण से अपनी इच्छा कहा—।।२४।।

हरिश्चन्द्र उवाच

निर्दशो मेध्यतां याति पशुर्यक्ष्ये ततो ह्यहम्॥२५॥

हरिश्चन्द्र कहते हैं—पशु दांत का उद्‌गम होने पर मेध्य होता है अर्थात् यज्ञ में लिया जाता है। अतः दांत निकलते ही यज्ञ करूंगा।।२५।।

तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञो वरुणोऽगात्स्वमालयम्।
निर्दशे पुनरभ्येत्य यजस्वेत्याह तं नृपम्॥२६॥
राजाऽपि वरुणं प्राह निर्दन्तो निष्फलः पशुः।
पशोर्दन्तेषु जातेषु एहि गच्छाधुनाऽप्पते॥२७॥
तच्छ्रुत्वा राजवचनं पुनः प्रायादपांपतिः। जातेषु चैव दन्तेषु सप्तवर्षेषु नारद॥२८॥
पुनरप्याह राजानं यजस्वेति ततोऽब्रवीत्। राजाऽपि वरुणं प्राह पतस्यन्तीमे अपांपते॥२९॥
सम्पतस्यन्ति तथा चान्ये ततो यक्ष्ये व्रजाधुना। पुनः प्रायात्स वरुणः पुनर्दन्तेषु नारद।
यजस्वेति नृपं प्राह राजा प्राह त्वपांपतिम्॥३०॥

(ब्रह्मा कहते हैं) राजा का वाक्य सुन कर वरुण स्वस्थान चले गये। तदनन्तर दांत निकल आने पर वरुण ने आकर राजा को यज्ञ हेतु स्मरण कराया। तव राजा ने कहा कि जब उसे अनेक (कई) दांत निकल

आयें तब आईये। हे नारद! यह सुनकर वरुण वापस चले गये। जब सात वर्ष के उपरान्त बालक को अनेक दांत निकल आये, तब पुनः वरुण ने आकर यज्ञार्थ राजा को स्मरण दिलाया। तब राजा ने कहा कि "इसके दूध के दांत जब गिर कर नये दांत निकलें, तब यज्ञ करूंगा। अभी आप स्वस्थान जायें।" हे नारद! जब दूध के दांत गिर कर नये दांत निकल आये, तब पुनः वरुण आये तथा यज्ञार्थ राजा को वचन पालनार्थ स्मरण दिलाया। वह सुनकर जलपति से राजा ने कहा—।।२६-३०।।

राजोवाच

यदा तु क्षत्रियो यज्ञे पशुर्भवति वारिप।
धनुर्वेदं यदा वेत्ति तदा स्यात्पशुरुत्तमः॥३१॥

राजा कहते हैं—हे जलरक्षक देव! क्षत्रिय सन्तान जब धनुर्वेद जान लेते हैं, तब वे उत्तम यज्ञपशु होते हैं।।३१।।

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा राजवचनं वरुणोऽगात्स्वमालयम्।
यदाऽस्त्रेषु च शस्त्रेषु समर्थोभूत्स रोहितः॥३२॥
सर्ववेदेषु शास्त्रेषु वेत्ताऽभूत्स त्वरिन्दमः। युवराज्यमनुप्राप्ते रोहिते षोडशाब्दिके॥३३॥
प्रीतिमानगमत्तत्र यत्र राजा सरोहितः। आगत्य वरुणः प्राह यजस्वाद्य सुतं स्वकम्॥३४॥
ओमित्युक्त्वा नृपवर ऋत्विजः प्राह भूपतिः।
रोहितं च सुतं ज्येष्ठं शृण्वतो वरुणस्य च॥३५॥

हरिश्चन्द्र उवाच

एहि पुत्र महावीर यक्ष्ये त्वां वरुणाय हि॥३६॥

ब्रह्मा कहते हैं—राजा का वचन सुनकर वरुण स्वस्थान चले गये। जब राजकुमार रोहित अस्त्र-शस्त्र संचालन में पारंगत हो गया तथा वह शत्रुहन्ता सोलह वर्ष का हो गया तथा युवराज पद पर अभिषिक्त भी हो गया, तब वरुण प्रसन्नचित्तता पूर्वक वहां आये, जहां राजा हरिश्चन्द्र रोहित के साथ बैठे थे। उन्होंने राजा से कहा—"राजन्! अब आप अपने पुत्र द्वारा यज्ञानुष्ठान करिये।" इस बार राजा ने सहमति सूचक वाक्य द्वारा पहले वरुण के ही सामने ऋत्विकों से और उसके पश्चात् ज्येष्ठ पुत्र रोहित से कहा—"हे महावीर पुत्र! तुम्हारे द्वारा वरुण के उद्देश्य से यज्ञ करूंगा"।।३२-३६।।

ब्रह्मोवाच

किमेतदित्यथोवाच रोहितः पितरं प्रति। पिताऽपि यद्यथावृत्तमाचचक्षे सविस्तरम्।
रोहितः पितरं प्राह शृण्वतो वरुणस्य च॥३७॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर रोहित ने कहा—"यह क्या वृत्तान्त है?" तब पिता हरिश्चन्द्र ने विस्तार पूर्वक समस्त घटनाक्रम पुत्र से व्यक्त किया। यह सुन कर रोहित ने वरुण के समक्ष पिता से कहा—।।३७।।

रोहित उवाच

अहं पूर्वं महाराज ऋत्विग्भिः सपुरोहितः।
विष्णवे लोकनाथाय यक्ष्येऽहं त्वरितं शुचिः।
पशुना वरुणेनाथ तदनुज्ञातुर्महसि॥३८॥

रोहित कहता है—महाराज! मैंने स्वयं यज्ञपशु होकर पुरोहित तथा ऋत्विकों के साथ पहले से ही पवित्रता पूर्वक लोकनाथ विष्णु हेतु यज्ञ करने का निश्चय किया है। आप उसके लिये शीघ्र अनुमति प्रदान करें।।३८।।

ब्रह्मोवाच

रोहितस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा वारीश्वरस्तदा। कोपेन महताऽऽविष्टो जलोदरमथाकरोत्॥३९॥
हरिश्चन्द्रस्य नृपते रोहितः स वनं ययौ। गृहीत्वा स धनुर्दिव्यं रथारूढो गतव्यथः॥४०॥
यत्र चाऽऽराध्य वरुणं हरिश्चन्द्रो जनेश्वरः।
गङ्गायां प्राप्तवान्पुत्रं तत्रागात्सोऽपि रोहितः॥४१॥
व्यतीतान्यथ वर्षाणि पञ्चषष्ठे प्रवर्तति। तत्र स्थित्वा नृपसुतः शुश्राव नृपते रुजम्॥४२॥
मया पुत्रेण जातेन पितुर्वै क्लेशकारिणा।
किं फलं किन्नु कृत्यं स्यादित्येवं पर्यचिन्तयत्॥४३॥

ब्रह्मा कहते हैं—रोहित का कथन सुनकर जलपति वरुण महान् क्रोध में भर गये। उन्होंने राजा हरिश्चन्द्र को जलोदर रोग से पीड़ित कर दिया। रोहित ने उद्वेगरहित होकर धनुष बाण लिया तथा रथारूढ़ होकर वनों में चला गया। अब हरिश्चन्द्र उस गौतमीगंगा तट पर गये, जहां वरुण की आराधना द्वारा उन्होंने रोहित को पुत्र रूप में प्राप्त किया था। पांच-छः वर्ष व्यतीत हो जाने पर जब रोहित ने पिता के रोग का समाचार पाया, तब उसने विचार किया कि मैं यदि पुत्र होकर पिता के क्लेश का कारण बनता हूं, यह उचित नहीं है। मेरा अब क्या कर्त्तव्य होना चाहिये।।३९-४३।।

तस्यास्तीरे ऋषीन्पुण्यानपश्यन्नृपतेः सुतः। गङ्गातीरे वर्तमानमपश्यदृषिसत्तमम्॥४४॥
अजीगर्तमिति ख्यातमृषेस्तु वयसः सुतम्। त्रिभिः पुत्रैरनुवृतं भार्यया क्षीणवृत्तिकम्।
तं दृष्ट्वा नृपतेः पुत्रो नमस्येदं वचोऽब्रवीत्॥४५॥

रोहित यह विचार कर ही रहा था कि उसने गौतमीगंगा तट पर अनेक ऋषिगण को देखा। उसमें अजीगर्त्त नामक अति प्रसिद्ध ऋषि भी थे। ये महर्षि अपनी भार्या तथा तीन पुत्रों के साथ अति कष्ट पूर्वक जीवन यापन कर रहे थे। उनको देख कर राजपुत्र रोहित ने प्रणाम करके कहा—।।४४-४५।।

रोहित उवाच

क्षीणवृत्तिः कृशः कस्माद्दुर्मना इव लक्ष्यसे॥४६॥

रोहित कहता है—आप दुर्बल, क्षीण वृत्ति (अल्प आय वाले) तथा दुःखी मन वाले क्यों हैं?।।४६।।

ब्रह्मोवाच

अजीगर्तोऽपि चोवाच रोहितं नृपतेः सुतम्॥४७॥

ब्रह्मा कहते हैं—अजीगर्त्त ने उत्तर देते हुये कहा—॥४७॥

अजीगर्त उवाच

वर्तनं नास्ति देहस्य भोक्तारो बहवश्च मे। विनाऽन्नेन मरिष्यामो ब्रूहि किं करवामहे॥४८॥

ऋषि अजीगर्त्त कहते हैं—खाने वाले मेरे परिवार में अनेक हैं, वृत्ति कुछ भी नहीं है। अतः अन्नाभाव में सभी को मरना होगा और क्या कहूं?॥४८॥

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा पुनरप्याह नृपपुत्र ऋषिं तदा॥४९॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर राजपुत्र ने पुनः कहा—॥४९॥

रोहित उवाच

तव किं वर्तते चित्ते तद्ब्रूहि वदतांवर॥५०॥

रोहित कहता है—हे उत्तम वक्ता महर्षि! आपका क्या मन्तव्य है? वह कहिये॥५०॥

अजीगर्त उवाच

हिरण्यं रजतं गावो धान्यं वस्त्रादिकं न मे। विद्यते नृपशार्दूल वर्तनं नास्ति मे ततः॥५१॥
सुता मे सन्ति भार्या च अहं वै पञ्चमस्तथा। नैतेषां कतमस्यापि क्रेताऽन्नेन नृपोत्तम॥५२॥

अजीगर्त्त कहते हैं—हे राजन्! मेरे पास स्वर्ण, चांदी, गौ, धान्य, वस्त्र आदि कुछ भी नहीं है। इसके अतिरिक्त मेरे पास आजीविका भी नहीं है। ऐसा कोई खरीददार भी नहीं मिलता, जो हम पांच में से एक को खरीद कर अन्न प्रदान करे॥५१-५२॥

रोहित उवाच

किं क्रीणासि महाबुद्धेऽजीगर्त सत्यमेव मे।
वद नान्यच्च वक्तव्यं विप्रा वै सत्यवादिनः॥५३॥

रोहित कहता है—हे अजीगर्त्त! क्या यह सत्य है कि आप अपने परिवार में से किसी का विक्रय करना चाहते हैं? ब्राह्मण सत्यवक्ता होते हैं। अतः आप अन्यथा कुछ भी नहीं कह सकते॥५३॥

अजीगर्त उवाच

त्रयाणामपि पुत्राणामेकं वा मां तथैव च।
भार्या वाऽपि गृहाणेमां क्रीत्वा जीवामहे वयम्॥५४॥

अजीगर्त्त कहते हैं—मेरे तीन पुत्र हैं। साथ ही मैं तथा मेरी पत्नी भी हैं। इनमें से जिसे आप चाहें, खरीद लीजिये। इससे बाकी हम लोग जीवित बच जायेंगे॥५४॥

रोहित उवाच

किं भार्यया महाबुद्धे किं त्वया वृद्धरूपिणा।
युवानं देहि पुत्रं मे पुत्राणां यं त्वमिच्छसि॥५५॥

रोहित कहता है—हे महाबुद्धिमान्! आप वृद्ध हैं। आपसे अथवा आपकी भार्या से क्या होगा? अतएव आप अपने तीनों पुत्रों में से जिसे चाहें, एक पुत्र मुझे प्रदान कर दीजिये। उसे मुझे बेच दीजिये।।५५।।

अजीगर्त उवाच

ज्येष्ठपुत्रं शुनःपुच्छं नाहं क्रीणामि रोहित।
माता कनीयसं चापि च क्रीणाति ततोऽनयोः।
मध्यमं तु शुनःशेपं क्रीणामि वद तद्धनम्॥५६।

अजीगर्त्त कहते हैं—शुनःपुच्छ मेरा ज्येष्ठ पुत्र है। मैं इसका विक्रय नहीं करूंगा। सबसे छोटे पुत्र का विक्रय करने हेतु उसकी माता सहमत नहीं होगी। अतः मैं अपने मध्यम पुत्र शुनःशेप को बेचूंगा। आप उसका मूल्य कहिये।।५६।।

रोहित उवाच

वरुणाया पशुः कल्प्यः पुरुषो गुणवत्तरः।
यदि क्रीणासि मूल्यं त्वं वद सत्यं महामुने॥५७॥

रोहित कहते हैं—वरुण हेतु एक गुणों में श्रेष्ठ व्यक्ति की ही कल्पना यज्ञपशु के रूप में करनी है। हे महामुनीश्वर! यदि आप विक्रय करना चाहते हैं, तब उसका उचित मूल्य कहिये।।५७।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा त्वजीगर्तः पुत्रमूल्यमकल्पयत्।
गवां सहस्रं धान्यानां निष्काणां चापि वाससाम्।
राजपुत्र वरं देहि दास्यामि स्वसुतं तव॥५८॥

ब्रह्मा कहते हैं—अजीगर्त्त ने रोहित का कथन स्वीकार कर लिया और उन्होंने पुत्र का मूल्य निर्धारण करते हुये कहा कि यदि एक हजार गौ, प्रचुर धान्य (अन्न), सहस्र स्वर्णमुद्रा तथा सहस्र वस्त्र आप दान कर सकें, तब मैं अपना पुत्र आपको दे दूंगा।।५८।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा रोहितोऽपि प्रादात्सवसनं धनम्। दत्त्वा जगाम पितरमृषिपुत्रेण रोहितः।
पित्रे निवेदयामास क्रयक्रीतमृषेः सुतम्॥५९॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब रोहित ने कहा—"ऐसा ही हो।" उसने अजीगर्त्त को धर्म-वस्त्र-स्वर्ण-गौ आदि देकर ऋषिपुत्र को साथ लिया तथा पिता के पास चले गये। उन्होंने खरीदा हुआ ऋषिपुत्र पिता को समर्पित करके समस्त क्रय वृत्तान्त उनसे कहा—।।५९।।

रोहित उवाच

वरुणाय यजस्व त्वं पशुना त्वमरुग्भव॥६०॥

रोहित कहता है—हे पिता! आप इस खरीदे गये पशु द्वारा वरुण के लिये यज्ञ करके रोगमुक्त हो जायें।।६०।।

ब्रह्मोवाच

तथोवाच हरिश्चन्द्रः पुत्रवाक्यादनन्तरम्॥६१॥

ब्रह्मा कहते हैं—पुत्र का कथन सुनकर राजा हरिश्चन्द्र ने उत्तर दिया।।६१।।

हरिश्चन्द्र उवाच

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या राज्ञा पाल्या इति श्रुतिः।
विशेषतस्तु वर्णानां गुरवो हि द्विजोत्तमाः॥६२॥
विष्णोरपि हि ये पूज्या मादृशाः कुत एव हि।
अवज्ञयाऽपि येषां स्यान्नृपाणां स्वकुलक्षयः॥६३॥
तान्पशून्कृत्वा कृपणं कथं रक्षितुमुत्सहे। अहं च ब्राह्मणं कुर्यां पशुं नैतद्धि युज्यते॥६४॥
वरं हि जातु मरणं न कथञ्चिद्द्विजं पशुम्।
करोमि तस्मात्पुत्र त्वं ब्राह्मणेन सुखं व्रज॥६५॥

राजा हरिश्चन्द्र कहते हैं—वेदों का कथन है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ये तीन वर्ण राजाओं द्वारा पाले जाने चाहियें। विशेषतः ब्राह्मणप्रवर तो सभी वर्ण के गुरु होते हैं। जो भगवान् विष्णु द्वारा भी पूज्य हैं, वे मेरे जैसे व्यक्ति द्वारा तो सम्मान पूर्वक पूजा के योग्य हैं। जिनकी अवज्ञा करने से राजाओं का कुल क्षयीभूत हो जाता है, उस ब्राह्मण को मैं यज्ञपशु बनाकर किस प्रकार से दीनों का रक्षक कहा जाऊंगा। वास्तव में मैं ब्राह्मण को कदापि यज्ञपशु नहीं बना सकता। मृत्यु श्रेयस्कर है, तथापि ब्राह्मण को यज्ञपशु नहीं बनाऊंगा। पुत्र! तुम इन ब्राह्मण को साथ लेकर चले जाओ। मैं रोगी ही ठीक हूं।।६२-६५।।

ब्रह्मोवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र वागुवाचाशरीरिणी॥६६॥

ब्रह्मा कहते हैं—तभी वहां अशरीरी (आकाशवाणी) सुनाई पड़ी।।६६।।

आकाशवागुवाच

गौतमीं गच्छ राजेन्द्र ऋत्विग्भिः सपुरोहितः। पशुना विप्रपुत्रेण रोहितेन सुतेन च॥६७॥
त्वया कार्यः क्रतुश्चैव शुनःशेपवधं विना। क्रतुः पूर्णो भवेत्तत्र तस्माद्याहि महामते॥६८॥

आकाशवाणी ने कहा—हे राजेन्द्र! तुम ऋत्विक्, पुरोहित, पुत्र रोहित तथा विप्र रूपी पशु शुनःशेप के साथ गौतमीतट जाओ। वहां जाकर यज्ञानुष्ठान करो। वहां इस शुनःशेप की बलि दिये बिना ही तुम्हारा यज्ञ सम्पन्न होगा। हे महामति! तुम शीघ्र गौतमीतट गमन करो।।६७-६८।।

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं शीघ्रं गङ्गामगान्नृपोत्तमः। विश्वामित्रेण ऋषिणा वसिष्ठेन पुरोधसा॥६९॥

वामदेवेन ऋषिणा तथाऽन्यैर्मुनिभिः सह।
प्राप्य गङ्गां गौतमीं तां नरमेधाय दीक्षितः॥७०॥
वेदिमण्डपकुण्डादि यूपपश्वादि चाकरोत्।
कृत्वा सर्वं यथान्यायं तस्मिन्यज्ञे प्रवर्तिते॥७१॥
शुनःशेपं पशुं यूपे निबध्याथ समन्त्रकम्।
वारिभिः प्रोक्षितं दृष्ट्वा विश्वामित्रोऽब्रवीदिदम्॥७२॥

ब्रह्मा कहते हैं—राजा हरिश्चन्द्र यह सुनकर शीघ्रता पूर्वक सबको लेकर गंगातट पर गये। उन्होंने विश्वामित्र, वसिष्ठ, वामदेव तथा अन्य मुनियों-ऋषियों के साथ गंगातट पर आकर नरमेध यज्ञार्थ दीक्षा ग्रहण किया। वेदी, मण्डप, यूप, पशु प्रभृति सभी यज्ञोपकरण यथाविधि बनाये तथा एकत्र किये गये। जब यज्ञ प्रारम्भ हुआ, तब शुनःशेप को पशुरूपेण बांध कर मन्त्रपूत जल उस पर छिड़का गया। यह देख कर विश्वामित्र ने देवता, ऋषिगण राजा हरिश्चन्द्र से तथा रोहित से विशेषतः कहा—॥६९-७२॥

विश्वामित्र उवाच

देवानृषीन्हरिश्चन्द्रं रोहितं च विशेषतः। अनुजानन्त्विमं सर्वे शुनःशेपं द्विजोत्तमम्॥७३॥
येभ्यस्त्वयं हविर्देयो देवेभ्योऽयं पृथक्पृथक्।
अनुजानन्तु ते सर्वे शुनःशेपं विशेषतः॥७४॥
वसाभिर्लोमभिस्त्वग्भिर्मांसैः सन्मन्त्रितैर्मखे।
अग्नौ होष्यः पशुश्चायं शुनःशेपो द्विजोत्तमः॥७५॥
उपासिताः स्युर्विप्रेन्द्रास्ते सर्वे त्वनुमन्य माम्।
गौतमीं यान्तु विप्रेन्द्राः स्नात्वा देवान्पृथक्पृथक्॥७६॥
मन्त्रैः स्तोत्रैः स्तुवन्तस्ते मुदं यान्तु शिवे रताः।
एनं रक्षन्तु मुनयो देवाश्च हविषो भुजः॥७७॥

विश्वामित्र कहते हैं—मैं देवता, ऋषि, हरिश्चन्द्र तथा रोहित से यह बात विशेषतया कह रहा हूं कि आप सभी द्विजोत्तम शुनःशेप को आज्ञा प्रदान करिये। जिन देवगण को इस यज्ञ में पृथक्-पृथक् हवि देनी है, वे देवता भी विशेषतया शुनःशेप को अनुमति प्रदान करें। इस यज्ञ में शुनःशेप की वसा, लोम, मांस से मन्त्रोच्चार पूर्वक यज्ञाग्नि में हवन होगा। सभी विप्रेन्द्रगण इस कार्य हेतु मुझे अनुमति देकर गौतमीतट पर जाकर स्नानोपरान्त पृथक् मन्त्र, स्तव से देवस्तुति करते सानन्द शिवोपासना हेतु तन्मय हो जायें। हविर्भोजी देवता तथा मुनि लोग इस यज्ञपशु की रक्षा करें।।७३-७७।।

ब्रह्मोवाच

तथोत्यूचुश्च मुनयो मेने च नृपसत्तमः।
ततो गत्वा शुनःशेपो गङ्गां त्रैलोक्यपावनीम्॥७८॥

स्नात्वा तुष्टाव तान्देवान्ये तत्र हविषो भुजः। ततस्तुष्टाः सुरगणाः शुनःशेपं च ते मुने।
अवदन्त सुराः सर्वे विश्वामित्रस्य शृण्वतः॥७९॥

ब्रह्मा कहते हैं—मुनिगण ने तब कहा—"यही हो"। राजा तथा विश्वामित्र भी इस बात से सहमत थे। तदनन्तर शुनःशेप ने त्रैलोक्यपावनी गंगा में स्नानोपरान्त समस्त हविर्भोजी देवगण को स्तुति से सन्तुष्ट किया। तब प्रसन्न होकर देवगण ने शुनःशेप से विश्वामित्र के सामने ही कहा—॥७८-७९॥

सुरा ऊचुः

क्रतुः पूर्णो भवत्वेष शुनःशेपवधं विना॥८०॥

देवता कहते हैं—शुनःशेप का वध किये बिना ही यह यज्ञ सम्पन्न हो जाये॥८०॥

ब्रह्मोवाच

विशेषेणाथ वरुणश्चावदन्नृपसत्तमम्। ततः पूर्णोऽभवद्राज्ञो नृमेधो लोकविश्रुतः॥८१॥
देवानां च प्रसादेन मुनीनां च प्रसादतः। तीर्थस्य तु प्रसादेन राज्ञः पूर्णोऽभवत्क्रतुः॥८२॥
विश्वामित्रः शुनःशेपं पूजयामास संसदि। अकरोदात्मनः पुत्रं पूजयित्वा सुरान्तिके॥८३॥
ज्येष्ठं चकार पुत्राणामात्मनः स तु कौशिकः।
न मेनिरे ये च पुत्रा विश्वामित्रस्य धीमतः॥८४॥
शुनःशेपस्य च ज्यैष्ठ्यं ताञ्शशाप स कौशिकः।
ज्यैष्ठ्यं ये मेनिरे पुत्राः पूजयामास तान्सुतान्॥८५॥

ब्रह्मा कहते हैं—वरुण ने राजा से यह बात विशेषतया कहा था। तब राजा ने लोकप्रसिद्ध नरमेध यज्ञ पूर्ण किया। देवता, मुनिगण तथा तीर्थ की प्रसन्नता के कारण ही राजा का यज्ञ पूर्ण हो सका। विश्वामित्र ने उस यज्ञसभा में शुनःशेप का आदर करके उसे अपना पुत्र मान लिया। विश्वामित्र ने अपने पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र के रूप में शुनःशेप को मान्यता प्रदान किया था। लेकिन विश्वामित्र के अन्य पुत्रों ने शुनःशेप को अपने ज्येष्ठ भ्राता के रूप में स्वीकार ही नहीं किया। तब विश्वामित्र क्रोधित हो गये। उन्होंने अपने पुत्रों को शाप तक दे दिया! लेकिन जिन विश्वामित्र पुत्रों ने शुनःशेप को अपना बड़ा भाई मान लिया था, उनको विश्वामित्र ने विशेष आदर प्रदान किया॥८१-८५॥

वरेण मुनिशार्दूलस्तदेतत्कथितं मया। एतत्सर्वं यत्र जातं गौतम्या दक्षिणे तटे॥८६॥
तत्र तीर्थानि पुण्यानि विख्यातानि सुरादिभिः।
बहूनि तेषां नामानि मत्तः शृणु महामते॥८७॥
हरिश्चन्द्रं शुनःशेपं विश्वामित्रं सरोहितम्। इत्याद्यष्ट सहस्राणि तीर्थान्यथ चतुर्दश॥८८॥
तेषु स्नानं च दानं च नरमेधफलप्रदम्।
आख्यातं चास्य माहात्म्यं तीर्थस्य मुनिसत्तम॥८९॥

यः पठेत्पाठयेद्वाऽपि शृणुयाद्वाऽपि भक्तितः।
अपुत्रः पुत्रमाप्नोति यच्चान्यन्मनसः प्रियम्॥९०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुऋषिसंवादे तीर्थमाहात्म्ये विश्वामित्रादिद्वाविंशतिसहस्रतीर्थवर्णनं नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः॥१०४॥

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥३५॥



हे मुनिवर नारद! मैंने तुमसे यह सब वृत्तांन्त वर्णित कर दिया। यह घटना गौतमी नदी के दक्षिण तट पर घटी थी। हे महामति! इस तीर्थप्रदेश में अनेक अन्य प्रसिद्ध तीर्थ भी हैं। उनके नाम सुनो। हरिश्चन्द्र, शुनःशेप, विश्वामित्र तथा रोहित आदि नामों वाले आठ हजार तथा चौदह तीर्थ यहां वर्त्तमान हैं। ये कुल बाईस हजार तीर्थ हैं। यहां स्नान-दान द्वारा नरमेध यज्ञफल मिलता है। हे मुनिवर! इस तीर्थ के माहात्म्य तथा कथा को पढ़ने वाले, पढ़ाने वाले अथवा सुनने वाले अपुत्रक भी पुत्रलाभ करते हैं। उनकी सभी कामना पूर्ण होती है।।८६-९०।।

।।चतुरधिकशततम अध्याय समाप्त।।



अथ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

देवगण द्वारा सोम प्राप्ति तथा गंगा (गौमतीगंगा) में मिलित नद-नदी का वर्णन, सोमतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

सोमतीर्थमिति ख्यातं पितॄणां प्रीतिवर्धनम्। तत्र वृत्तं महापुण्यं शृणु यत्नेन नारद॥१॥
सोमो राजाऽमृतमयो गन्धर्वाणां पुराऽभवत्। न देवानां तदा देवा मामभ्येत्येदमब्रुवन्॥२॥

देवा ऊचुः

गन्धर्वैराहृतः सोमो देवानां प्राणदः पुरा। तमध्यायन्सुरगणा ऋषयस्त्वतिदुःखिताः।
यथा स्यात्सोमो ह्यस्माकं तथा नीतिर्विधीयताम्॥३॥

ब्रह्मा कहते हैं—विख्यात सोमतीर्थ पितरों की प्रसन्नता का वर्द्धक है। वहां जो महान् पुण्यप्रद घटना घटित हुई थी, हे नारद! उसे सुनो। पूर्वकाल में अमृतमय सोम गन्धर्वों के राजा हो गये थे। वे देवताओं में नहीं थे। तब देवगण ने आकर मुझसे कहा कि "हे ब्रह्मन्! गन्धर्वों ने हमारे प्राणप्रद सोम को ले लिया है। इसके

लिये हम अतीव चिन्तातुर हैं। साथ ही ऋषिगण भी अत्यन्त दुःखी हैं। अब आप ऐसी नीति चलिये, जिससे सोम पुनः हमारा ही हो जाये।।१-३।।

ब्रह्मोवाच

तत्र वाग्विबुधानाह गन्धर्वाः स्त्रीषु कामुकाः।
तेभ्यो दत्त्वाऽथ मां देवाः सोममाहर्तुमर्हथ॥४॥
वाचं प्रत्यूचुरमरास्त्वां दातुं न क्षमा वयम्।
विना तेनापि न स्थातुं शक्यं नैव त्वया विना॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब सरस्वती ने देवगण से कहा—"सुनो! गन्धर्वगण स्त्री के प्रति अतीव अनुरागी होते हैं। अतः मुझे उनको अर्पित करके तुम लोग सोम ले आओ।" लेकिन अमरगण (देवगण) ने सरस्वती से कहा—"हम आपका दान नहीं कर सकते।" वरन् हम सोम बिना रह लेंगे, आपके बिना हम एक क्षण नहीं रह सकेंगे।।४-५।।

पुनर्वागब्रवीद्देवान्पुनरेष्याम्यहं त्विह। अत्र बुद्धिर्विधातव्या क्रियतां क्रतुरुत्तमः॥६॥
गौतम्या दक्षिणे तीरे भवेद्देवागमो यदि। मखं तु विषयं कृत्वा आयान्तु सुरसत्तमाः॥७॥
गन्धर्वाः स्त्रीप्रिया नित्यं पणध्वं तं मया सह।
तथेत्युक्त्वा सुरगणाः सरस्वत्या वचःस्थिताः॥८॥

तब वाग्देवी सरस्वती ने कहा—"हे देवताओं! मैं पुनः यहां लौट आऊंगी। इस सम्बन्ध में तुम लोग एक काम करो। गौतमी के दक्षिण तट पर तुम लोग एक महायज्ञ आयोजित करो। इस यज्ञ के उपलक्ष्य में वहां देवता तथा गन्धर्व जुटेंगे। गन्धर्वगण अत्यन्त रमणी प्रिय होते हैं। तुम लोग मुझे ले जाकर मेरा विनिमय वहां सोम के बदले करना।" यह सुनकर देवगण भगवती सरस्वती के कथनानुसार उनमें आस्था करके कार्यरत हो गये।।६-८।।

देवदूतैः पृथग्देवान्यक्षान्गन्धर्वपन्नगान्। आह्वानं चक्रिरे तत्र पुण्ये देवगिरौ तदा॥९॥
ततो देवगिरिर्नाम पर्वतस्याभवन्मुने। तत्राऽऽगमन्सुरगणा गन्धर्वा यक्षकिन्नराः॥१०॥
देवाः सिद्धाश्च ऋषयस्तथाऽष्टौ देवयोनयः। ऋषिभिर्गौतमीतीरे क्रियमाणे महाध्वरे॥११॥
तत्र देवैः परिवृतः सहस्राक्षोऽभ्यभाषत॥१२॥

तदनन्तर देवदूतों ने देवता, यक्ष, गन्धर्व तथा पन्नगों के यहां अलग-अलग जाकर उनको देवगिरि आने के लिये कहा। तत्पश्चात् देवता-गन्धर्व-यक्ष-किन्नर-सिद्ध और ऋषिगण उस देवगिरि पर आ गये। गौतमीतट पर ऋषियों द्वारा महाव्रत प्रारम्भ किया गया। उस समय देवताओं के साथ आये सहस्राक्ष इन्द्र ने कहा—।।९-१२।।

इन्द्र उवाच

गन्धर्वानथ सम्पूज्य सरस्वत्याः समीपतः।
सरस्वत्या पणध्वं नो युष्माकममृतात्मना॥१३॥

इन्द्रदेव कहते हैं—हे देवताओं! तुम लोग गन्धर्वगण का पूजा-सत्कार करके उनके यहां सरस्वती को ले जाकर उनके बदले सोम ले आने हेतु सौदा करो।।१३।।

ब्रह्मोवाच

तच्छक्रवचानत्ते वै गन्धर्वाः स्त्रीषु कामुकाः।
सोमं दत्त्वा सुरेभ्यस्तु जगृहस्तां सरस्वतीम्॥१४॥
सोमोऽभवच्चामराणां गन्धर्वाणां सरस्वती।
अवसत्तत्र वागीशा तथाऽपि च सुरान्तिके॥१५॥
आयाति च रहो नित्यमुपांशु क्रियतामिति। अतएव हि सोमस्य क्रयो भवति नारद॥१६॥

ब्रह्मा कहते हैं—स्त्रियों के प्रति कामुक गन्धर्वों ने इन्द्र के प्रस्ताव के अनुरूप देवगण को सोम देकर बदले में सरस्वती को ग्रहण कर लिया। तभी से चन्द्र (सोम) अमरगण (देवगण) के तथा सरस्वती गन्धर्वों की अपनी हो गईं। सरस्वती गन्धर्वों के साथ रहने तो लगीं, परन्तु गोपनीय रूप से वे नित्य देवगण के यहां आकर कहतीं कि "इस घटना को गुप्त रखना।" हे नारद! इस प्रकार सोम का खरीदा जाना सम्पन्न हो गया। अतः क्रमशः सोम तथा सरस्वती, ये दोनों ही देवताओं के यहां ही रह गये। इसी कारण यज्ञ में सोम को क्रय करते हैं।।१४-१६।।

उपांशुना वर्तितव्यं सोमक्रयण एव हि। ततोऽभवद्देवतानां सोमश्चापि सरस्वती॥१७॥
गन्धर्वाणां नैव सोमो नैवाऽऽसीच्च सरस्वती।
तत्रागमन्सर्व एव सोमार्थं गौतमीतटम्॥१८॥
गावो देवा पर्वता यक्षरक्षाः, सिद्धाः साध्या मुनयो गुह्यकाश्च।
गन्धर्वास्ते मरुतः पन्नगाश्च, सर्वौषध्यो मातरो लोकपालाः।
रुद्रादित्या वसवश्चाश्विनौ च, येऽन्ये देवा यज्ञभागस्य योग्याः॥१९॥

सोम क्रय काल में मौनी ही रहे। अब देवी एवं सोम, ये दोनों देवगण के पास ही रह गये। गन्धर्वों के पास इन दोनों में से कोई नहीं था। देवगण द्वारा सोमसंग्रह कार्य हेतु सभी लोग गौतमीतट पर मिले थे। गौ, देवता, पर्वत, यक्ष, राक्षस, सिद्ध, साध्य, मुनि, गुह्यक, गन्धर्व, मरुत, पन्नग, संजीवनी, सभी औषधियां, लोकपाल, रुद्र, आदित्य, अष्ट वसु, अश्विनीकुमारद्वय तथा अन्य यज्ञभाग पाने के योग्य देवतागण वहां आ गये थे।।१७-१९।।

पञ्चविंशतिनद्यस्तु गङ्गायां सङ्गता मुने। पूर्णाहुतिर्यत्र दत्ता पूर्णाख्यानं तदुच्यते॥२०॥
गौतम्यां सङ्गता यास्तु सर्वाश्चापि यथोदिताः।
तन्नामधेयतीर्थानि संक्षेपाच्छृणु नारद॥२१॥
सोमतीर्थं च गान्धर्वं देवतीर्थमतः परम्। पूर्णातीर्थं ततः शालं श्रीपर्णासङ्गमं तथा॥२२॥
स्वागतासङ्गमं पुण्यं कुसुमायाश्च सङ्गमम्।
पुष्टिसङ्गममाख्यातं कर्णिकासङ्गमं शुभम्॥२३॥

वैष्णवीसङ्गमश्चैव कृशरासङ्गमस्तथा। वासवीसङ्गमश्चैव शिवशर्या तथा शिखी॥२४॥

कुसुम्भिका उपारथ्या शान्तिजा देवजा तदा।

अजो वृद्धः सुरो भद्रो गौतम्या सह सङ्गताः॥२५॥

इनके अतिरिक्त उस समय २५ नदियां गंगा (गौमतीगंगा) में आकर मिल गईं। यहां जब यज्ञ की पूर्णाहुति दी गयी, तब यह स्थल तीर्थ कहा जाने लगा। गौमती में जो सब नदियां मिली हैं, उनके नाम के अनुसार यहां एक-एक तीर्थ विकसित हो गये। हे नारद! सोमतीर्थ, गान्धर्व, देवतीर्थ, पवित्र कुसुमासंगम, वैष्णवीसंगम, कृशरासंगम, वासवीसंगम, पुष्टिसंगम, शुभकर्णिकासंगम, शिवशर्यासंगम, शिखी, कुसुम्भिका, उपास्थ्या, शान्तिजा, देवज्ञा, वृद्ध अज तथा भद्रसुर नामक नदियां एवं नद गौतमी में मिले हैं।।२०-२५।।

एते चान्ये च बहवो नदीनदसहायगाः। पृथिव्यां यानि तीर्थानि ह्यगमन्देवपर्वते॥२६॥

सोमार्थं वै तथा चान्येऽप्यागमन्मखमण्डपम्।

तानि तीर्थानि गङ्गायां सङ्गतानि यथाक्रमम्॥२७॥

नदीरूपेण कान्येव नदरूपेण कानिचित्। सरोरूपेण कान्यत्र स्तवरूपेण कानिचित्॥२८॥

तान्येव सर्वतीर्थानि विख्यातानि पृथक्पृथक्।

तेषु स्नानं जपो होमः पितृतर्पणमेव च॥२९॥

सर्वकामप्रदं पुंसां भुक्तिदं मुक्तिभाजनम्। एतेषां पठनं चापि स्मरणं वा करोति यः।

सर्वपापविनिर्मुक्तो याति विष्णुपुरं जनः॥३०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुऋषिसंवादे तीर्थमाहात्म्ये पूर्णादिपञ्चविंशतिनदीदेवनदीनद-संगमवर्णनं नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः।।१०५।।

गौतमीमाहात्म्ये षट्त्रिंशोऽध्यायः।।३६।।



इनके अतिरिक्त भी अनेक नदी-नद गौतमी में यहां मिले हैं। सोम का संग्रह करने और भी अनेक तीर्थ देवपर्वत पर आये थे। वे भी यज्ञमण्डप में पहुंचे थे। ये सभी तीर्थ गौतमीगंगा में मिल कर यथाक्रमेण कुछ नदी रूप से, कुछ सरोवर रूप से, कोई-कोई स्तव रूप से, इस प्रकार के पृथक्-पृथक् भाव से प्रसिद्ध हो गये। इन तीर्थों में स्नान, तप, जप, होम, तर्पण करने वाले व्यक्ति की सभी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। उसे भुक्ति-मुक्ति लाभ होता है। जो व्यक्ति इन तीर्थों का नामोच्चार अथवा उनका स्मरण करता है, वह सर्वपाप विनिर्मुक्त होकर विष्णुलोक जाता है।।२६-३०।।

।।पञ्चाधिकशततम अध्याय समाप्त।।



अथ षडधिकशततमोऽध्यायः

अमृतोत्पत्ति वर्णन, देवता-दानवों का मेरु पर्वत जाकर मन्त्रणा करना

ब्रह्मोवाच

प्रवरासङ्गमो नाम श्रेष्ठा चैव महानदी। यत्र सिद्धेश्वरो देवः सर्वलोकोपकारकृत्॥१॥
देवानां दानवानां च सङ्गमोऽभूत्सुदारुणः। तेषां परस्परं वाऽपि प्रीतिश्चाभून्महामुने॥२॥
तेऽप्येवं मन्त्रयामासुर्देवा वै दानवा मिथः। मेरुपर्वतमासाद्य परस्परहितैषिणः॥३॥

ब्रह्मा कहते हैं—प्रवरासंगम नामक एक महानदी है। वहां सभी लोकहितैषी सिद्धेश्वर रहते हैं। पूर्वकाल में देवता तथा दानवों में घोर युद्ध हुआ था। हे महामुनि! तदनन्तर दोनों पक्षों में सन्धि हो गयी। तब देवता तथा दानव पारस्परिक हितकामना से मेरु पर्वत पर एकत्र होकर मन्त्रणा करने लगे।।१-३।।

देवदैत्या ऊचुः

अमृतेनामरत्वं स्यादुत्पाद्यामृतमुत्तमम्। पिबामः सर्व एवैते भवामश्चामरा वयम्॥४॥
एकीभूत्वा वयं लोकान्पालयामः सुखानि च।
प्राप्स्यामः सङ्गरं हित्वा सङ्गरो दुःखकारणम्॥५॥
प्रीत्या चैवार्जितानर्थान्भोक्ष्यामो गतमत्सराः।
यतः स्नेहेन वृत्तिर्या साऽस्माकं सुखदा सदा॥६॥
वैपरीत्यं तु यद्वृत्तं न स्मर्तव्यं कदाचन।
न च त्रैलोक्यराज्येऽपि कैवल्ये वा सुखं मनाक्।
तदूर्ध्वमपि वा यत्तु निर्वैरत्वादवाप्यते॥७॥

देवदैत्य कहते हैं—अमृत से ही अमरत्व लाभ होता है। अतः हम लोग अमृत उत्पादन करके पान करें, इससे हमें अमरत्व मिलेगा। तत्पश्चात् हम लोग एक साथ लोकों का पालन करें। इससे हमें सुख-शान्ति मिलेगी। यह स्नेहवृत्ति सुखद होगी। अब तक के युद्ध को विस्मित करें। वही दुःखप्रद है। हम स्वार्जित सम्पत्ति का ईर्ष्या रहित होकर भोग करेंगे। प्रेम व्यवहार सदैव सुख देता है। अब तक के परस्परतः वैपरीत्य को हम भूलें। इसी से जो सुख मिलेगा, उसके बराबर त्रैलोक्य का राज्य किंवा मुक्तिलाभ भी नहीं है।।४-७।।

ब्रह्मोवाच

एवं परस्परं प्रीताः सन्तो देवाश्च दानवाः। एकीभूताश्च सुप्रीता विमथ्य वरुणालयम्॥८॥
मन्थानं मन्दरं कृत्वा रज्जुं कृत्वा तु वासुकिम्।
देवाश्च दानवाः सर्वे ममन्थुर्वरुणालयम्॥९॥

उत्पन्नं च ततः पुण्यममृतं सुरवल्लभम्। निष्पन्ने चामृते पुण्ये ते च प्रोचुः परस्परम्॥१०॥

यामः स्वं स्वमधिष्ठानं कृतकार्याः श्रमं गताः।
सर्वे समं च सर्वेभ्यो यथायोग्यं विभज्यताम्॥११॥

यदा सर्वागमो यत्र यस्मिंल्लग्ने शुभावहे। विभज्यतामिदं पुण्यममृतं सुरसत्तमाः॥१२॥

इत्युक्त्वा ते ययुः सर्वे दैत्यदानवराक्षसाः।
गतेषु दैत्यसङ्घेषु देवाः सर्वेऽन्वमन्त्रयन्॥१३॥

देवा ऊचुः

गतास्ते रिपवोऽस्माकं दैवयोगादरिन्दमाः। रिपूणाममृतं नैव देयं भवति सर्वथा॥१४॥

ब्रह्मा कहते हैं—इस प्रकार से देवता तथा दानव परस्परतः मिल कर वरुणालय गये। वहां उन्होंने सागर मंथन किया। इस मंथन कार्य हेतु मन्दर पर्वत को मंथन दण्ड बनाया गया। इस कार्य में वासुकि नाग मंथन की रस्सी थे। तब देवप्रिय पवित्र अमृत समुद्र से निकला। अमृतोत्पत्ति होते ही देव-दानव ने परस्परतः कहा—"हम लोगों की सुख-प्राप्ति का समय आ गया। हम कृतकार्य हो गये। अब हम अपने-अपने घर जायें। तत्पश्चात् जब शुभ लग्न होगा, हम एकत्र आकर इस उत्तम अमृत का यथायोग्य भाग कर लेंगे।" यह कह कर दैत्य-दानव-राक्षस अपने-अपने स्थान पर चले गये। दैत्यों के चले जाने पर देवताओं ने मन्त्रणा किया कि दैवात् हमारे शत्रु चले गये। यह अच्छा हो गया। शत्रुओं को यह अमृत कदापि नहीं देना है।।८-१४।।

ब्रह्मोवाच

बृहस्पतिस्तथेत्याह पुनराह सुरानिदम्॥१५॥

बृहस्पतिरुवाच

न जानन्ति यथा पापा पिबध्वं च तथाऽमृतम्।
अयमेवोचितो मन्त्रो यच्छत्रूणां पराभवः॥१६॥
द्वेष्याः सर्वात्मना द्वेष्या इति नीतिविदो विदुः।
न विश्वास्या न चाऽऽख्येया नैव मन्त्र्याश्च शत्रवः॥१७॥

तेभ्यो न देयममृतं भवेयुरमरास्ततः। अमरेषु च जातेषु तेषु दैत्येषु शत्रुषु।
ताञ्जेतुं नैव शक्ष्यामो न देयममृतं ततः॥१८॥

ब्रह्मा कहते हैं—बृहस्पति ने इस बात का अनुमोदन करते कहा—हे देवगण! जिससे ये पापी राक्षस-दैत्य जान न सकें, इस प्रकार से अमृतपान करो। जिससे शत्रुगण पराजित हो जायें, वही उचित मन्त्रणा होती है। नीतिज्ञों का कथन है कि जो द्वेषी हैं, वे सभी तरह से द्वेष के पात्र हैं। शत्रु का भरोसा, विश्वास न करे। उसके साथ मन्त्रणा न करे। उनसे कोई गुप्त बात व्यक्त भी न करे। अतः असुरों को अमृत नहीं देना है। अमृतपान से वे अमर हो जायेंगे। तब उनको पराजित नहीं किया जा सकेगा। अतः उनको अमृतपान करने देना अकर्त्तव्य ही है।।१५-१८।।

ब्रह्मोवाच

इति सम्मन्त्र्य ते देवा वाचस्पतिमथाब्रुवन्॥१९॥

ब्रह्मा कहते हैं—इस मन्त्रणा के उपरान्त देवताओं ने कहा—॥१९॥

देवा ऊचुः

क्व यामः कुत्र मन्त्रः स्यात्क्व पिबामः क्व संस्थितिः।
कुर्मस्तदेव प्रथमं वद वाचस्पते तथा॥२०॥

देवता कहते हैं—हे गुरुदेव! तब हम कहां जायें? कहां जाने से हमारे मन्त्रणा की रक्षा होगी? तथा कहां जाकर हम अमृत पान करें। आप आदेश दीजिये। हम वैसा ही करेंगे॥२०॥

बृहस्पतिरुवाच

यान्तु ब्रह्माणममराः पृच्छन्त्वत्र गतिं पराम्।
स तु ज्ञाता च वक्ता च दाता चैव पितामहः॥२१॥

बृहस्पति कहते हैं—हे देवगण! तुम लोग ब्रह्मा के पास जाओ। उनसे इस सम्बन्ध में उत्तम उपाय पूछो। वे पितामह ही सम्यक् ज्ञाता, वक्ता तथा दाता हैं॥२१॥

ब्रह्मोवाच

बृहस्पतेर्वचः श्रुत्वा मदन्तिकमथाऽऽगमन्।
नमस्य मां सुराःसर्वे यद्वृत्तं तन्न्यवेदयन्॥२२॥
तद्देववचनात्पुत्र तैः सुरैरगमं हरिम्। विष्णवे कथितं सर्वं शम्भवे विषहारिणे॥२३॥
अहं विष्णुश्च शम्भुश्च देवगन्धर्वकिन्नरैः। मेरुकन्दरमागत्य न जानन्ति यथाऽसुराः॥२४॥
रक्षकं च हरिं कृत्वा सोमपानाय तस्थिरे।
आदित्यस्तत्र विज्ञाता सोमभोज्यानथेतरान्॥२५॥
सोमो दाताऽमृतं भागं चक्रधृग्रक्षकस्तथा।
नैव जानन्ति तद्दैत्या दनुजा राक्षसास्तथा॥२६॥
विना राहुं महाप्राज्ञं सैहिकेयं च सोमपम्। कामरूपधरो राहुर्मरुतां मध्यमाविशत्॥२७॥
मरुद्रूपं समास्थाय पानपात्रधरस्तथा। ज्ञात्वा दिवाकरो दैत्यं तं सोमाय न्यवेदयत्॥२८॥

ब्रह्मा कहते हैं—बृहस्पति का कथन सुनकर देवगण मेरे पास आये तथा उन्होंने नमस्कार के उपरान्त सभी वृत्तान्त मुझसे कहा। हे पुत्र! मैं देवताओं के साथ श्रीहरि के यहां गया। विष्णु तथा शंभु से हमने इस घटना को व्यक्त किया। तदनन्तर जिस प्रकार असुरगण न जानें, इस भाव से मैं, विष्णु, शंभु, देवता, गन्धर्व तथा किन्नर मेरु पर्वत गये। वहां श्रीहरि रक्षाकार्य कर रहे थे। देवगण उस सोम (अमृत) पान में प्रवृत्त हो गये। आदित्य जानते थे कि कौन सोमभागी है तथा कौन नहीं है। चक्रपाणि हरि रक्षक तथा सोम अमृत परिवेशक

(परोसने वाले) बने। महाप्राज्ञ सिंहिका पुत्र राहु के अतिरिक्त दैत्य, दनुज किंवा राक्षस इस अमृतपान घटना को नहीं जान पाये। राहु इस कार्य को जान गया था। अतः वह इच्छानुरूप रूप धारण करके देवताओं में प्रवेश पा गया था।।२२-२८।।

तदा तदमृतं तस्मै दैत्यायादैत्यरूपिणे। दत्त्वा सोमं तदा सोमो विष्णवे तन्न्यवेदयत्।।२९।।
विष्णुः पीतामृतं दैत्यं चक्रेणोद्यम्य तच्छिरः।
चिच्छेद तरसा वत्स तच्छिरस्त्वमरं त्वभूत्।।३०।।
शिरोमात्रविहीनं यद्देहं तदपतद्भुवि। देहं तदमृतस्पृष्टं पतितं दक्षिणे तटे।।३१।।
गौतम्या मुनिशार्दूल कम्पयद्वसुधातलम्। देहं चाप्यमरं पुत्र तदद्भुतमिवाभवत्।।३२।।

उसने तब देवरूप धारण किया था, जिसे आदित्य देव ने विष्णु तथा सोम को बतला दिया। हे वत्स! जैसे ही विष्णु ने इस सम्बन्ध में जाना, उन्होंने तत्काल अमृत पी रहे राहु का गला चक्र से काट दिया। तथापि राहु का मस्तक अमृत प्रविष्ट हो जाने के कारण तब से ही अमर हो गया! दैत्य का मस्तक रहित देह पृथिवी पर लुढ़क गया। हे मुनिवर! गौतमी के दक्षिण तट पर दैत्य का सुधा से स्पर्शित देह पड़ा था। उससे धरती कम्पित हो गयी। वह देह भी अमर हो गया। हे पुत्र! उस समय यह सब वास्तव में एक अद्भुत घटना रूपी हो गया।।२९-३२।।

देहं च शिरसोऽपेक्षि शिरो देहमपेक्षते। उभयं चामरं जातं दैत्यश्चायं महाबलः।।३३।।

देह मस्तक की अपेक्षा करता है तथा मस्तक भी देह की अपेक्षा करता है। लेकिन यहां तो वह महाबली सिर तथा धड़ दोनों रूप में अमर हो गया। यद्यपि सिर तथा देह परस्परतः पृथक् नहीं रह सकते, लेकिन यहां तो दोनों पृथकतः होकर भी अमर थे।।३३।।

शिरःकाये समाविष्टं सर्वान्भक्षयते सुरान्। तस्माद्देहमिदं पूर्वं नाशयामो महीगतम्।
ततस्ते शङ्करं प्राहुर्देवाः सर्वे ससंभ्रमाः।।३४।।

देवता लोग यह देख कर शंकित हो गये। उन्होंने सोचा कि यदि यह मस्तक पूर्ववत् देह से लग गया, तब तो यह दैत्य सभी देवताओं को खा जायेगा। अतएव हम सर्वप्रथम इस पृथिवी पर पड़े धड़ को नष्ट करें। यह विचार कर सभी ने शीघ्र भगवान् शंकर से इस आशंका को कहा। देवताओं ने और भी प्रभु से कहा—।।३४।।

देवा ऊचुः

महीगतं दैत्यदेहं नाशयस्व सुरोत्तम। त्वं देव करुणासिन्धुः शरणागतरक्षकः।।३५।।
शिरसा नैव युज्येत दैत्यदेहं तथा कुरु।।३६।।

देवता कहते हैं—हे सुरेश्वर! इस पृथिवी पर पड़े दैत्य के धड़ को आप नष्ट कर दीजिये। हे देव! आप करुणा सागर तथा शरणागत रक्षक हैं। जिससे यह दैत्य का धड़ अपने मस्तक से युक्त न हो सके, आप ऐसा उपाय करें।।३५-३६।।

ब्रह्मोवाच

प्रेषयामास चेशोऽपि श्रेष्ठां शक्तिं तदाऽऽत्मनः।
मातृभिः सहितां देवीं मातरं लोकपालिनीम्॥३७॥
ईशायुधंधरा देवी ईशशक्तिसमन्विता। महीगतं यत्र देहं तत्रागाद्भक्ष्यकाङ्क्षिणी॥३८॥
शिरोमात्रं सुराः सर्वे मेरौ तत्रैव सान्त्वयन्। देहो देव्या पुनस्तत्र युयुधे बहवः समाः॥३९॥
राहुस्तत्र सुरानाह भित्त्वा देहं पुरा मम (?)।
अत्राऽऽस्ते रसमुत्कृष्टं तदाकृष्य शरीरतः (?)॥४०॥
पृथग्भूते रसे देहं प्रवरेऽमृतमुत्तमम्। भस्मीभूयात्क्षणेनैव तस्मात्कुर्वन्तु तत्पुरा॥४१॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब भगवान् ईशान ने मातृगणों के साथ जगन्माता लोकपालिनी ऐशी शक्ति को भेजा। यह भगवान् की ऐशी शक्ति आयुधधारिणी तथा भोजन करने की इच्छा वाली होकर पृथिवी पर पड़े दैत्य के धड़ के पास गयीं। सभी देवता एक साथ मिलकर दैत्य के शिर भाग को प्रयत्नतः मेरु पर्वत पर रोके हुये थे। वह धड़ देवी से अनेक वर्षों तक युद्ध करने लगा। तब मेरु पर्वतस्थ राहु के शिर ने देवगण से कहा—"तुम लोग मेरे धड़ का भेदन करो तथा उसमें जो उत्तम रस हो, उसे उसमें से खींच लो। वह उत्तम रस जब उस देह से पृथक् हो जायेगा, तब मेरा वह धड़ क्षण भर में भस्म हो जायेगा। तुम लोग सबसे पहले यही कार्य सम्पन्न करो।।३७-४१।।

ब्रह्मोवाच

एतद्राहुवचः श्रुत्वा प्रीताः सर्वेऽसुरारयः।
अभ्यषिञ्चन्ग्रहाणां त्वं ग्रहो भूया मुदाऽन्वितः॥४२॥
तद्देववचनाच्छक्तिरीश्वरी या निगद्यते। देहं भित्त्वा दैत्यपतेः सुरशक्तिसमन्विता॥४३॥
आकृष्य शीघ्रमुत्कृष्टं प्रवरं चामृतं बहिः।
स्थापयित्वा तु तद्देहं भक्षयामास चाम्बिका॥४४॥
कालरात्रिर्भद्रकाली प्रोच्यते या महाबला।
स्थापितं रसमुत्कृष्टं रसानां प्रवरं रसम् (?)॥४५॥
व्यस्त्रवत्स्थापितं तत्तु प्रवरा साऽभवन्नदी। आकृष्टममृतं चैव स्थापितं साऽप्यभक्षयत्॥४६॥
ततः श्रेष्ठा नदी जाता प्रवरा चामृता शुभा। राहुदेहसमुद्भूता रुद्रशक्तिसमन्विता॥४७॥
नदीनां प्रवरा रम्या चामृता प्रेरिता तथा। तत्र पञ्च सहस्राणि तीर्थानि गुणवन्ति च॥४८॥

ब्रह्मा कहते हैं—देवपक्षीय लोगों ने राहु का यह कथन जब सुना, वे सभी प्रसन्न हो गये। उन्होंने राहु के मस्तक को ग्रहों में अभिषिक्त कर दिया। राहु भी ग्रहपद पाकर मुदित हो गया। तदनन्तर देवताओं के कथनानुसार भगवान् महेश्वर की ऐशी शक्ति ने दैत्यपति का धड़ भेद दिया तथा शीघ्रता से उसमें स्थित अत्युत्तम सुधारस खींच लिया। अब ऐशी शक्ति उस नीरस देह को खाने लगीं। ये देवी अम्बिका ही कालरात्रि, भद्रकाली तथा महाबला

प्रकृति कही गयी हैं। उन्होंने दैत्य के शरीर से सुधारस आकर्षित करके स्थापित कर दिया। वह स्थापित रस निकल कर प्रवरा नदीरूपेण बहने लगा। बाकी बचे आकृष्ट एवं स्थापित रस को देवी ने खा लिया। राहु के देहरस से निर्गत यह शुभा अमृता नदी उत्तम नदी के रूप में प्रवरा नाम वाली होकर रुद्रशक्ति समन्वित हो गई। तभी से यह प्रवरा नदी रमणीय रूप से बह रही है। इस नदी पर पांच हजार गुणपूर्ण तीर्थ विराजमान हैं।।४२-४८।।

तत्र शम्भुः स्वयं तस्थौ सर्वदा सुरपूजितः।
तस्यै तुष्टाः सुराः सर्वे देव्यै नद्यै पृथक् पृथक्॥४९॥

इस कारण वहां स्वयं देवपूजित प्रभु शंकर रहने लगे। देवता लोगों ने प्रसन्न होकर उस दिव्य नदी को अलग से पृथक् वर प्रदान किया।।४९।।

वरान्ददुर्मुदा युक्ता यथा पूजामवाप्स्यति। शम्भुः सुरपतिर्लोके तथा पूजामवाप्स्यसि॥५०॥
निवासं कुरु देवि त्वं लोकानां हितकाम्यया।
सदा तिष्ठ रसेशानि सर्वेषां सर्वसिद्धिदा॥५१॥
स्तवनात्कीर्तनाद्ध्यानात् सर्वकामप्रदायिनी।
त्वां नमस्यन्ति ये भक्त्या किञ्चिदापेक्ष्य सर्वदा॥५२॥
तेषां सर्वाणि कार्याणि भवेयुर्देवताज्ञया।
शिवशक्त्योर्यतस्तस्मिन्निवासोऽभूत् सनातनः॥५३॥
अतो वदन्ति मुनयो निवासपुरमित्यदः। प्रवरायाः पुरा देवाः सुप्रीतास्ते वरान्ददुः॥५४॥

देवगण ने कहा—"हे देवी! जिस तरह से शंभु जगत् में पूजित होते हैं, आपको भी वही पूजा प्राप्त हो। लोकों की हितकामना से आप यहीं निवास करिये। हे रसेश्वरी! आप सबके लिये सिद्धिप्रदा होकर यहां अवस्थित रहें। आपका नाम कीर्त्तन, आपकी स्तुति तथा ध्यान करने से आप सबको अभीष्ट प्रदान करें। जो सर्वदा आपको भक्तिभाव से प्रणाम करेंगे, आपके आदेश से उनका सभी कार्य सिद्ध हो। यहां शिव तथा शक्ति का सनातन निवास होने के कारण मुनिगण इस स्थान को निवासपुर कहेंगे।" इसी प्रकार से देवताओं ने प्रसन्न होकर प्रवरा नदी को भी वर प्रदान किया।।५०-५४।।

गङ्गायाः सङ्गमो यस्ते विख्यातः सुरवल्लभः। तत्राऽऽप्लुतानां सर्वेषां भुक्तिर्वा मुक्तिरेव च॥५५॥
यद्वाऽपि मनसः काम्यं देवानामपि दुर्लभम्।
स्यात्तेषां सर्वमेवेह एवं दत्त्वा सुरा ययुः॥५६॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं प्रवरासङ्गमं विदुः। प्रेरिता देवदेवेन शक्तिर्या प्रेरिता तु सा॥५७॥
अमृता सैव विख्याता प्रवरैवं महानदी॥५८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयम्भुऋषिसंवादे शिवप्रेरितामृतासङ्गमादितीर्थवर्णनं नाम षडधिकशततमोऽध्यायः।।१०६।।

गौतमीमाहात्म्ये सप्तत्रिंशोऽध्यायः।।३७।।



देवगण कहते हैं—"जहां यहां आपका गंगा के साथ देवप्रिय संगम हुआ है, वह स्थल अतीव प्रसिद्धि पूर्ण है। वहां स्नानादि करने से सभी को भुक्ति-मुक्ति प्राप्त होगी, जो देवताओं को भी दुर्लभ है, ऐसी मनोवांछित गति यहां मनुष्य के लिये संभव होगी।" देवगण यह सब वर देकर अन्तर्हित् हो गये। उसी दिन से यह तीर्थ प्रवरा संगम कहा जाने लगा। देवदेव शंभु ने जिस शक्ति को यहां भेजा था, वह अमृता महानदी प्रवरा नाम वाली हो गई।।५५-५८।।

।।षड्धिकशततम अध्याय समाप्त।।



अथ सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

वृद्ध गौतम तथा वृद्धा संगम तीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

वृद्धासङ्गममाख्यातं यत्र वृद्धेश्वरः शिवः। तस्याऽऽख्यानं प्रवक्ष्यामि शृणु पापप्रणाशनम्॥१॥
गौतमो वृद्ध इत्युक्तो मुनिरासीन्महातपाः। यदा पुराऽभवद्बालो गौतमस्य सुतो द्विजः॥२॥
अनासः स पुरोत्पन्नस्तस्माद्विकृतरूपधृक्। स वैराग्याज्जगामाथ देशं तीर्थमितस्ततः॥३॥
उपाध्यायेन नैवाऽसील्लज्जितस्य समागमः।
शिष्यैरन्यैः सहाध्यायो लज्जितस्य च नाभवत्॥४॥
उपनीतः कथञ्चिच्च पित्रा वै गौतमेन सः। एतावता गौतमोऽपि व्यगमच्चरितुं बहिः॥५॥
एवं बहुतिथे काले ब्रह्ममात्रा धृते द्विजे। नैव चाध्ययनं तस्य सञ्जातं गौतमस्य हि॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—विख्यात वृद्धासंगम तीर्थ पर वृद्धेश्वर शिव विराजमान हैं। इस वृद्धासंगम तीर्थ का पापनाशक उपाख्यान कहता हूं। सुनो। पूर्वकाल में वृद्ध गौतम नामक एक महातपा ऋषि थे। ये महर्षि गौतम के पुत्र थे, जो जन्मतः नासिका रहित थे। अतः वे विकृत रूप से जन्मे थे। कालक्रमेण वैराग्य के कारण ये अनेक तीर्थों के पर्यटनार्थ घर से निकले। उनको नासिका नहीं थी, अतएव लज्जा भाव के कारण ये उपाध्याय के यहां पढ़ने नहीं गये। ये अन्य शिष्यों के साथ पढ़ने में लज्जाबोध करते थे। पिता गौतम ने यज्ञ के समय किसी प्रकार से इनका उपनयन कर दिया था। तब वृद्ध गौतम पुनः पर्यटनार्थ घर से बाहर निकल पड़े। इस प्रकार से दीर्घकाल व्यतीत हो गया। इस प्रकार से इनका अध्ययन नहीं हो सका।।१-६।।

नैव शास्त्रस्य चाभ्यासो गौतमास्याभवत्तदा। अग्निकार्यं ततश्चक्रे नित्यमेव यतव्रतः॥७॥
गायत्र्यभ्यासमात्रेण ब्राह्मणो नामधारकः। अग्न्युपासनमात्रं च गायत्र्यभ्यसनं तथा॥८॥
एतावता ब्राह्मणत्वं गौतमस्याभवन्मुने। उपासतोऽग्निं विधिवद्गायत्रीं च महात्मनः॥९॥

तस्याऽऽयुर्ववृधे पुत्र गौतमस्य चिरायुषः।
न दारसङ्ग्रहं लेभे नैव दाताऽस्ति कन्यकाम्॥१०॥
तथा चरंस्तीर्थदेशे वनेषु विविधेषु च। आश्रमेषु च पुण्येषु अटन्नास्ते स गौतमः॥११॥

एकमात्र गायत्री मन्त्र ही इनका सहारा था। इसके अतिरिक्त वेदाध्ययन तथा कोई शास्त्र समालोचना का इनको कुछ भी अवसर नहीं मिला। ये प्रतिदिन व्रतशील रहकर अग्निकार्य (होम) करते थे। एकमात्र गायत्री अभ्यास करने के कारण ये नाम से ब्राह्मण कहे जाते थे। गायत्री उपासना तथा होम कार्य द्वारा ही इनका ब्राह्मणत्व बचा था। हे मुनिवर! ये विधिवत् होम तथा गायत्री जप करते थे। इस कारण इनका आयुकाल बढ़ गया। ये चिरायु हो गये। इनका विवाह नहीं हुआ था। इनको कोई भी कन्या नहीं देना चाहता था। ये नाना वनों तथा तीर्थों में विचरने लगे। ये नाना पुण्याश्रमों में जाकर रहते भी थे।।७-११।।

एवं भ्रमञ्शीतगिरिमाश्रित्याऽऽस्ते स गौतमः। तत्रापश्यद्गुहां रम्यां वल्लीविटपमालिनीम्॥१२॥
तत्रोपविश्य विप्रेन्द्रो वस्तुं समकरोन्मतिम्। चिन्तयंस्तु प्रविष्टोऽसावपश्यत्स्त्रियमुत्तमाम्॥१३॥
शिथिलाङ्गीमथ कृशां वृद्धां च तपसि स्थिताम्।
ब्रह्मचर्येण वर्तन्तीं विरागां रहसि स्थिताम्॥१४॥
स तां दृष्ट्वा मुनिश्रेष्ठो नमस्काराय तस्थिवान्। नमस्यन्तं मुनिश्रेष्ठं तं गौतममवारयत्॥१५॥

एवंविध भ्रमणरत रहते-रहते इन्होंने एक बार हिमवान् पर्वत पर निवास किया था। इन्होंने वहां एक लतावल्ली विटप से शोभित एक गुफा देखी। वह अतीव रमणीय गुफा थी। इन विप्रवर ने उस गुहा में प्रविष्ट होकर रहने का विचार किया। कुछ समय विचार करने के पश्चात् जब इन्होंने उस कन्दरा में प्रवेश किया, तब वहां इन्होंने एक वृद्ध कृशकाय उत्तम नारी को देखा। वह शिथिल देह की होकर भी तपःश्चरण कर रही थी। यह वृद्धा ब्रह्मचर्य अवलम्बन तथा विषयों की इच्छा का त्याग करके निर्जन में रहती थी। मुनिप्रवर वृद्ध गौतम ने इस नारी को देख कर उसका अभिवादन करना चाहा। लेकिन वृद्धा ने इनको प्रणत होने से रोक दिया।।१२-१५।।

वृद्धोवाच

गुरुस्त्वं भविता मह्यं न मां वन्दितुमर्हसि।
आयुर्विद्या धनं कीर्तिर्धर्मः स्वर्गादिकं च यत्।
तस्य नश्यति वै सर्वं यं नमस्यति वै गुरुः॥१६॥

वृद्धा नारी कहती है—हे भगवान्! आप मेरे गुरु होंगे। अतः आपके नमस्कार योग्य मैं नहीं हूं। यदि गुरु नमस्कार करते हैं, तब उस व्यक्ति की आयु, विद्या, धन, कीर्त्ति, धर्म तथा स्वर्गादि फल तक का नाश हो जाता है।।१६।।

ब्रह्मोवाच

कृताञ्जलिपुटस्तां वै गौतमः प्राह विस्मितः॥१७॥

ब्रह्मा कहते हैं—वृद्ध गौतम ने यह सुनकर हाथ जोड़ कर वृद्धा से कहा—॥१७॥

गौतम उवाच

तपस्विनी त्वं वृद्धां च गुणज्येष्ठा च भामिनी।
अल्पविद्यास्त्वल्पवया अहं तव गुरु कथम्॥१८॥

वृद्ध गौतम कहते हैं—हे भगवति! आप तपस्विनी हैं। आप गुणों में बड़ी तथा वृद्धा हैं। मैं अल्प विद्या तथा अल्प आयु वाला क्षुद्र व्यक्ति आपका गुरु कैसे हो सकता हूं?॥१८॥

वृद्धोवाच

आर्ष्टिषेणाप्रियपुत्र ऋतुध्वज इति श्रुतः। गुणवान्मतिमाञ्शूरः क्षत्रधर्मपरायणः॥१९॥
स कदाचिद्वनं प्रायान्मृगयाकृष्टचेतनः। विश्राममकरोदस्यां गुहायां स ऋतध्वजः॥२०॥
युवा स मतिमान्दक्षो बलेन महता वृतः। तं विश्रान्तं नृपवरमप्सरा ददृशे ततः॥२१॥
गन्धर्वराजस्य सुता सुश्यामा इति विश्रुता।
तां दृष्ट्वा चकमे राजा राजानं चकमे च सा॥२२॥
इति क्रीडा समभवत्तया राज्ञो महामते। निवृत्तकामो राजेन्द्रस्तामापृच्छ्याऽऽगमद्गृहम्॥२३॥

वृद्धा कहती है—राजा आर्ष्टिषेण का प्रिय पुत्र ऋतुध्वज शूर, गुणी, बुद्धिमान तथा क्षत्रिय धर्मपालक था। वह एक बार शिकार खेलने अरण्य में गया। उसने इसी कन्दरा में विश्राम किया था। वह युवा, विचक्षण तथा सभी कार्य में दक्ष था। उसके साथ प्रचुर सैन्य वाहन थे। गुहा में जब वह टिका था, उस समय गन्धर्वराज की पुत्री सुश्यामा अप्सरा ने राजा को देखा। राजा भी उस गन्धर्वकन्या को देख कर कामार्त्त हो गया। वह कन्या भी राजा को देख कर काम की आकांक्षा करने लगी। तदनन्तर राजा तथा अप्सरा में रतिक्रीड़ा होने लगी। कामक्रीड़ा समाप्त होने पर राजा उससे वार्त्तालाप करके अपने घर लौट गये॥१९-२३॥

उत्पन्नाऽहं ततस्तस्यां सुश्यामायां महामते। गच्छन्ती मां तदा माता इदमाह तपोधन॥२४॥

सुश्यामोवाच

यस्त्वस्यां प्रविशेद्भद्रे स ते भर्ता भविष्यति॥२५॥

वृद्धोवाच

इत्युक्त्वा स जगामाथ माता मम महामते। तस्मादत्र प्रविष्टस्त्वं पुमान्नान्यः कदाचन॥२६॥
सहस्राणि तथाऽशीतिं कृत्वा राज्यं पिता मम।
अत्रैव च तपस्तप्त्वा ततः स्वर्गमुपेयिवान्॥२७॥
स्वर्गं यातेऽपि पितरि सहस्राणि तथा दश।
वर्षाणि मुनिशार्दूल राज्यं कृत्वा तथा परः॥२८॥
स्वर्गं यातो मम भ्राता अहमत्रैव संस्थित। अहं ब्रह्मन्नान्यवृत्ता न माता न पिता मम॥२९॥

अहमात्मेश्वरी ब्रह्मन्निर्दिष्टा क्षत्रकन्यका। तस्माद्भजस्व मां ब्रह्मन्व्रतस्थां पुरुषार्थिनीम्॥३०॥

हे महामति! कालक्रम से सुश्यामा के गर्भ से मेरा जन्म हो गया। जाते समय सुश्यामा माता ने मुझसे कहा था—हे भद्रे! तुमको कहीं जाना नहीं होगा। इस गुहा में जो कोई पुरुष आयेगा, वही तुम्हारा पति होगा। हे महामति! मेरी माता यह कह कर चली गयी। हे महामति! मैं तब से यहीं रहती हूं। अतः आप अब तक में सबसे प्रथम प्रवेश करने वाले पुरुष हैं, आपसे पहले यहां किसी पुरुष का आगमन नहीं हुआ है, तब आप ही माता द्वारा निर्दिष्ट मेरे पति हैं। हे ब्रह्मन्! मेरे पिता ने एक हजार अस्सी वर्ष राज्य किया था। तदनन्तर वे तप करके स्वर्गगामी हो गये। हे मुनिशार्दूल! तदनन्तर मेरा भाई एक हजार दस वर्ष राज्य करके स्वर्ग चला गया। हे ब्रह्मन्! मैं तो यहीं रह रही हूं। मैं अभी अविवाहित ही हूं। मेरे माता-पिता नहीं हैं। मैं अपनी स्वामिनी स्वयं हूं। मैं क्षत्रिय कन्या हूं। हे ब्रह्मन्! मैं व्रती तथा पुरुष की कामना करती हूं। आप मुझे ग्रहण करें।।२४-३०।।

गौतम उवाच

सहस्रायुरहं भद्रे मत्तस्त्वं वयसाऽधिका। अहं बालस्त्वं तु वृद्धा नैवायं घटते मिथः॥३१॥

वृद्ध गौतम कहते हैं—मैं मात्र एक हजार वर्ष का हूं। तुम वय में मुझसे कहीं अधिक हो। मैं तुम्हारे समक्ष बालक हूं। तुम वृद्धा हो। अतः हमारा परस्परतः विवाह संघटित होना असंभव है।।३१।।

वृद्धोवाच

त्वं भर्ता मे पुरा दिष्टो नान्यो भर्ता मतो मम।
धात्रा दत्तस्ततस्त्वं मां न निराकर्तुमर्हसि॥३२॥
अथवा नेच्छसि मां त्वमप्रदुष्टामनुव्रताम्।
ततस्त्यक्ष्यामि जीवं मे इदानीं तव पश्यतः॥३३॥

अपेक्षिताप्राप्तितो हि देहिनां मरणं वरम्। अनुरक्तजनत्यागे पातकान्तो न विद्यते॥३४॥

वृद्धा कहती है—पहले से ही आप मेरे पति निश्चित हैं। अन्य पति हेतु मेरी रुचि नहीं है। आप ही विधाता द्वारा प्रदत्त मेरे पति हैं। आप मेरा अनुरोध न काटें अथवा यदि आप निरपराधा, अनुव्रता मुझसे विवाह नहीं करेंगे, तब आपके समक्ष मैं इसी क्षण जीवन त्याग करूंगी। वास्तव में वांछित वस्तु की जब प्राप्ति न हो सके, तब मरण ही मनुष्य के लिये मंगल है। यह बात भी आपको ज्ञात है कि अनुरक्त को निराश करने से जो पाप होता है, उसकी कोई सीमा अथवा गणना नहीं हो सकती।।३२-३४।।

ब्रह्मोवाच

वृद्धायास्तद्वचः श्रुत्वा गौतमो वाक्यमब्रवीत्॥३५॥

ब्रह्मा कहते हैं—वृद्धा का कथन सुनकर वृद्ध गौतम ने कहा—।।३५।।

गौतम उवाच

अहं तपोविरहितो विद्याहीनो ह्यकिञ्चनः।
नाहं वरो हि योग्यस्ते कुरूपो भोगवर्जितः॥३६॥

अनासोऽहं किं करोमि अतपोविद्य एव च। तस्मात्सुरूपं सुविद्यामापाद्य प्रथमं शुभे।
पश्चात्ते वचनं कार्यं ततो वृद्धाऽब्रवीद्द्विजम्॥३७॥

वृद्ध गौतम कहते हैं—"मैं तप रहित, विद्याहीन, निर्धन हूं। मैं वर होने योग्य नहीं हूं। मैं कुरूप तथा भोगरहित हूं। मैं नासिकाहीन, तपहीन, विद्याहीन क्या करूं। हे शुभे! पहले मुझे सुरूप-विद्यायुक्त करो। तब मैं रूपवान् होकर तुम्हारा कथन मानूंगा।" यह सुनकर वृद्धा ने कहा—॥३६-३७॥

वृद्धोवाच

मया सरस्वती देवी तोषिता तपसा द्विज।
तथैवाऽऽपो रूपवत्यो रूपदाताऽग्निरेव च॥३८॥
तस्माद्वागीश्वरी देवी सा ते विद्यां प्रदास्यति। अग्निश्च रूपवान्देवस्तव रूपं प्रदास्यति॥३९॥

वृद्धा कहती है—हे द्विज! मैंने तप द्वारा सरस्वती को प्रसन्न किया है। रूपवान् वरुण तथा सुरूप अग्नि भी मेरी तपस्या से सन्तुष्ट हैं। अतः वागीश्वरी देवी आपको विद्या, रूपवान् अग्नि रूप प्रदान करेंगे।।३८-३९।।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा गौतमं तं वृद्धोवाच विभावसुम्।
प्रार्थयित्वा सुविद्यं तं सुरूपं चाकरोन्मुनिम्॥४०॥
ततः सुविद्यः सुभगः सुकान्तो, वृद्धां स पत्नीमकरोत्प्रीतियुक्तः।
तया स रेमे बहुला मनोज्ञया, समाः सुखं प्रीतमना गुहायाम्॥४१॥
कदाचित्तत्र वसतोर्दम्पत्योर्मुदतोर्गिरौ। गुहायां मुनिशार्दूल आजग्मुर्मुनयोऽमलाः॥४२॥
वसिष्ठवामदेवाद्या ये चान्ये च महर्षयः।
भ्रमन्तः पुण्यतीर्थानि प्राप्नुवंस्तस्य तां गुहाम्॥४३॥
आगतांस्तानृषीञ्ज्ञात्वा गौतमः सह भार्यया। सत्कारमकरोत्तेषां जहसुस्तं च केचन॥४४॥
ये बाला यौवनोन्मत्ता वयसा ये च मध्यमाः।
वृद्धां च गौतमं प्रेक्ष्य जहसुस्तत्र केचन॥४५॥

ब्रह्मा कहते हैं—वृद्धा ने वृद्ध गौतम को यह कहा तथा उसने वागीश्वरी और विभावसु से प्रार्थना करके ब्राह्मण को विद्यावान् तथा रूपवान् कर दिया। अब वृद्ध गौतम ने विद्यावान्, रूपवान्, सुकान्त तथा सुभग होकर प्रेम पूर्वक वृद्धा का पाणिग्रहण किया और दोनों ने उसी गुफा में दीर्घकाल व्यतीत किया। ब्राह्मण अपनी मनोहरा पत्नी के साथ वहीं रहने लगा। एक बार वे दम्पति प्रसन्न मन से गिरिगुहा में बैठे थे। उसी समय वसिष्ठ तथा वामदेव प्रभृति अनेक विमल चित्त वाले पुण्यतीर्थ महर्षिगण पर्यटन करते हुये वहां पहुंचे। वृद्ध गौतम ने अपनी पत्नी के साथ उन महर्षिगण के आने का संवाद पाकर उनका यथायोग्य सत्कार किया। समागत ऋषिगण में से जो बालभावापन्न किंवा यौवन से उन्मत्त अथवा प्रौढ़ थे, उनमें से कतिपय ने वृद्धा के साथ सुभग सुन्दर गौतम को देखकर उनकी हंसी उड़ाई। तब अन्य ऋषिगण ने भी कहा—॥४०-४५॥

ऋषय ऊचुः

पुत्रोऽयं तव पौत्रो वा वृद्धे को गौतमोऽभवत्।
सत्यं वदस्व कल्याणि इत्येवं जहसुर्द्विजाः॥४६॥
विषं वृद्धस्य युवती वृद्धाया अमृतं युवा।
इष्टानिष्टसमायोगो दृष्टोऽस्माभिरहो चिरात्॥४७॥

ऋषिगण कहते हैं—हे वृद्धे! यह गौतम तुम्हारा कौन है? यह तुम्हारा पुत्र अथवा पौत्र है? हे कल्याणी! सत्य कहो! हमारे साथी ब्राह्मण मजाक कर रहे हैं। वृद्धों के लिये युवती विष है। वृद्धा स्त्री के लिये युवा व्यक्ति अमृत है। दीर्घ काल के बाद इष्ट-अनिष्ट का यह योग हमने देखा!।।४६-४७।।

ब्रह्मोवाच

इत्येवमूचिरे केचिद्दंपत्योः शृण्वतोस्तदा।
एवमुक्त्वा कृतातिथ्या ययुः सर्वे महर्षयः॥४८॥
ऋषीणां वचनं श्रुत्वा उभावपि सुदुःखितौ।
लज्जितौ च महाप्राज्ञौ गौतमो भार्यया सह।
प्रपच्छ मुनिशार्दूलमगस्त्यमृषिसत्तमम्॥४९॥

ब्रह्मा कहते हैं—समागत महर्षियों में से किसी-किसी ने उन दम्पति के सामने ही यह सब कहा था। तदनन्तर सभी महर्षि अतिथि सत्कार प्राप्त करके चले गये। अब उन महाप्राज्ञ दम्पति ने अतिथियों से यह सब बात सुनकर अत्यन्त दुःख का अनुभव किया और लज्जित भी हो गये। तब वृद्ध गौतम ने महर्षि अगत्स्य से पूछा।।४८-४९।।

गौतम उवाच

को देशः किमु तीर्थं वा यत्र श्रेयः समाप्यते।
शीघ्रमेव महाप्राज्ञ भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥५०॥

गौतम कहते हैं—वह कौन देश है, कौन तीर्थ है, जहां श्रेय लाभ होगा? हे महाप्राज्ञ! आप त्वरित रूप से बतायें। आप भुक्ति-मुक्तिप्रद तीर्थ का सन्धान दीजिये।।५०।।

अगस्त्य उवाच

वदद्भिर्मुनिभिर्ब्रह्मन्मया श्रुतमिदं वचः।
सर्वे कामास्तत्र पूर्णा गौतम्यो नात्र संशयः॥५१॥
तस्माद्गच्छ महाबुद्धे गौतमीं पापनाशिनीम्।
अहं त्वामनुयास्यामि यथेच्छसि तथा कुरु॥५२॥

ऋषि अगत्स्य कहते हैं—हे ब्रह्मन्! पूर्वकाल में मैंने मुनिगण से यह सुना था कि गौतमीतट पर जाने

से निश्चित रूप से सभी कामनायें सफल हो जाती हैं। हे महाबुद्धिमान्! आप पापनाशिनी गौतमी जायें। मैं मार्ग बता रहा हूं। अब जो इच्छा हो वह करें।।५१-५२।।

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वाऽगस्त्यवाक्यं वृद्धया गौतमोऽभ्यगात्।
तत्र तेपे तपस्तीव्रं पत्न्या स भगवानृषिः॥५३॥
स्तुतिं चकार देवस्य शंभोर्विष्णोस्तथैव च।
गङ्गां च तोषयामास भार्यार्थं भगवानृषिः॥५४॥

ब्रह्मा कहते हैं—ऋषि अगत्स्य का वचन सुनकर वृद्ध गौतम अपनी वृद्धा पत्नी के साथ गौतमीगंगा तट पर गये, जहां उन दम्पति ने घोर तप किया। तब उन भगवान् ऋषि ने शंभु तथा विष्णु का स्तव करके अपनी पत्नी हेतु गंगा को प्रसन्न किया।।५३-५४।।

गौतम उवाच

खिन्नत्मनामत्र भवे त्वमेव शरणं शिवः। मरुभूमावध्वगानां विटपीव प्रियायुतः॥५५॥

वृद्ध गौतम कहते हैं—हे शिव! इस संसार में जिनकी आत्मा आर्त्त हो गयी है, आप ही प्रिया पार्वती के साथ उनके उसी प्रकार एकमात्र आश्रय हैं, जैसे अनावृष्टि से तपते रेगिस्तान में दग्ध तृणों के लिये मेघ!।।५५।।

उच्चावचानां भूतानां सर्वथा पापनोदनः।
सस्यानां घनवत्कृष्ण त्वमवग्रहशोषिणाम्॥५६॥

वैकुण्ठदुर्गनिःश्रेणिस्त्वं पीयूषतरङ्गिणी। अधोगतानां तप्तानां शरणं भव गौतमि॥५७॥

आप ही एकमात्र हैं, जो उत्तम-मध्यम-अधम श्रेणी के प्राणीगण के ताप का हरण करते हैं। हे नदीश्रेष्ठा गौतमी! आप पीयूषतरंगिणी रूप से वैकुण्ठ रूपी दुर्ग का भेदन करके धरती पर आकर सन्तप्त जनगण की आश्रयरूपा हैं।।५६-५७।।

ब्रह्मोवाच

ततस्तुष्टाऽवदद्वाक्यं गौतमं वृद्धया युतम्। शरणागतदीनार्तं शरण्या गौतमी मुदा॥५८॥

ब्रह्मा कहते हैं—तदनन्तर शरणागत दीनों की आर्त्ति का हरण करने वाली गौतमी ने ब्राह्मण की स्तुति से प्रसन्न होकर कहा—।।५८।।

गौतम्युवाच

अभिषिञ्चस्व भार्यां त्वं मज्जलैर्मन्त्रसंयुतैः। कलशैरुपचारैश्च ततः पत्नी तव प्रिया॥५९॥
सुरूपा चारुसर्वाङ्गी सुभगा चारुलोचना। सर्वलक्षणसंपूर्णा रम्यरूपमवाप्स्यति॥६०॥

रूपवत्या पुनस्त्वं वै भार्यया चाभिषेचितः।
सर्वलक्षणसंपूर्णः कान्तं रूपमवाप्स्यसि॥६१॥

गौतमी कहती हैं—तुम कल से मेरा महापावन जल भरो तथा नाना उपचारों से अपनी पत्नी का तुम उस जल से अभिषेक करो। देखोगे कि तुम्हारी पत्नी तब प्रिया, सुरूपा, चारुदेहा, सुभगा, सुलोचना तथा सभी उत्तम लक्षणान्विता तथा रम्य रूपा हो जायेगी। तब तुम्हारी यह सुरूपा पत्नी जब तुम्हारा अभिषेक करेगी, तब तुम भी सर्व सुलक्षण सम्पन्न कमनीयरूप लाभ करोगे।।५९-६१।।

ब्रह्मोवाच

तथेति गङ्गावचनाद्यथोक्तं तौ च चक्रतुः। सुरूपतामुभौ प्राप्तौ गौतम्याश्च प्रसादतः।।६२।।
अभिषेकोदकं यच्च सा नदी समजायत।
तस्या नाम्ना तु विख्याता वृद्धाया मुनिसत्तम।।६३।।
वृद्धा नदीति विख्याता गौतमोऽपि तथोच्यते।
वृद्धगौतम इत्युक्त ऋषिभिः समवासिभिः।
वृद्धा तु गौतमीं प्राह गङ्गां प्रत्यक्षरूपिणीम्।।६४।।

ब्रह्मा कहते हैं—तब उन दम्पत्ति ने गौतमीगंगा के वचनानुरूप कार्य किया। वे गौतमी की कृपा से सुरूप हो गये। उस समय उनके अभिषेक जल से वृद्धा के नाम के अनुरूप वृद्धा नदी प्रतिष्ठित हो गयी। गौतम वृद्धा के साथ रहने से सभी ऋषियों के अनुसार वृद्ध गौतम नाम से ख्यात हो गये। तब वृद्धा ने प्रत्यक्ष रूपधारिणी गौतमीगंगा से कहा—।।६२-६४।।

वृद्धोवाच

मन्नाम्नीयं नदी देवि वृद्धा चेत्यभिधीयताम्। त्वया च सङ्गमस्तस्यास्तस्यास्तीर्थमनुत्तमम्।।६५।।
रूपसौभाग्यसंपत्तिपुत्रपौत्रप्रवर्धनम्। आयुरारोग्यकल्याणं जयप्रीतिविवर्धनम्।
स्नानदानादिहोमैश्च पितृणां पावनं परम्।।६६।।

वृद्धा कहती है—हे देवी! मेरे नाम के अनुसार यह नदी वृद्धनदी कही जाये। आपके साथ जहां इसका संगम हुआ है, वह स्थान सर्वश्रेष्ठ तीर्थ कहा जाये। इस संगम में स्नान, दान तथा होमादि अनुष्ठान से पितरों में परम पवित्रता, मानवों में रूप-सौभाग्य-सम्पत्ति-पुत्र-पौत्र-आयु-आरोग्य, सम्पत्ति, कल्याण, जय तथा प्रमोद बढ़े।।६५-६६।।

ब्रह्मोवाच

अस्त्वित्याह च तां गङ्गां सुवृद्धां गौतमप्रियाम्।
गौतमस्थापितं लिङ्गं वृद्धानाम्नैव कीर्तितम्।।६७।।
तत्रैव च मुदं प्राप्तो वृद्धया मुनिसत्तमः। तत्र स्नानं च दानं च सर्वाभीष्टप्रदायकम्।।६८।।
ततः प्रभृति तत्तीर्थं वृद्धासङ्गममुच्यते।।६९।।

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये वृद्धासंगमाद्युभयतटसप्तदशतीर्थवर्णनं नाम सप्तधिकशततमोऽध्यायः।।१०७।।

गौतमीमाहात्म्येऽष्टात्रिंशोऽध्यायः।।३८।।

—❋—

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर गंगा ने गौतम की पत्नी वृद्धा से 'तथास्तु' कहा। वहां गौतम ऋषि द्वारा स्थापित लिंग भी वृद्धा के नामानुसार वृद्धेश्वर नाम से प्रसिद्ध हो गया। वृद्धासहित उन मुनि ने यहीं प्रीतिलाभ किया था। यहां स्नान-दान करने से वांछित फल मिलता है। तभी से यह तीर्थ वृद्धासंगम के नाम से सम्बोधित होने लगा।।६७-६९।।

।।सप्ताधिक शततम अध्याय समाप्त।।



अथाष्टाधिकशततमोऽध्यायः

इलातीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

इलातीर्थमिति ख्यातं सर्वसिद्धिकरं नृणाम्। ब्रह्महत्यादिपापानां पावनं सर्वकामदम्।।१।।
वैवस्वतान्वये जात इलो नाम जनेश्वरः। महत्या सेनया सार्धं जगाम मृगयावनम्।।२।।
परिबभ्राम गहनं बहुव्यालसमाकुलम्। नानाकारद्विजयुतं विटपैः परिशोभितम्।।३।।
वनेचरं नृपश्रेष्ठो मृगयागतमानसः। तत्रैव मतिमाधत्त इलोऽमात्यानथाब्रवीत्।।४।।

ब्रह्मा कहते हैं—विख्यात इलातीर्थ मनुष्यों को सभी सिद्धि देने वाला है। इस तीर्थमाहात्म्य से व्यक्ति ब्रह्महत्यादि सभी पापों से मुक्त होकर पवित्र हो जाता है। वैवस्वत वंश में इल नामक एक राजा था। वह एक बार भारी सैन्यबल के साथ मृगया के लिये वन में गया। नाना पक्षियों से युक्त, अनेक वृक्षों से मण्डित, बहुसंख्यक सर्पों से संमाकुल गहन वन में भ्रमण करते-करते उसका मन मृगया में ही लगा था। वह उसी मृगया में ही मन लगाये रहता था। उसने साथ आये मंत्रियों से कहा—।।१-४।।

इल उवाच

गच्छन्तु नगरं सर्वे मम पुत्रेण पालितम्। देशं कोशं बलं राज्यं पालयन्तु पुनश्च तम्।।५।।
वसिष्ठोऽपि तता यातु आदायाग्नीन्पितेव नः।
पत्नीभिः सहितो धीमानरण्येऽहं वसाम्यथ।।६।।
अरण्यभोगभुग्भिश्च वाजिवारणमानुषैः। मृगयाशीलिभिः कैश्चिद्यान्तु सर्व इतः पुरीम्।।७।।

राजा इल कहता है—तुम सब लोग राजधानी लौट जाओ। वहां मेरे पुत्र, राज्य, कोष तथा सैन्य वाहन की रक्षा करो। वहां जाकर सभी का सम्यक् पालन भार ग्रहण करो। मेरे पिता के समान महर्षि वसिष्ठ भी मेरी रानियों तथा अग्नि को लेकर चले जायें। मैं अब कतिपय अनुचर, अश्व, आखेट कुशल हाथी आदि के साथ यहीं रहूंगा। अन्य सभी यहां से चले जायें।।५-७।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा ययुस्तेऽपि स्वयं प्रायाच्छनैर्गिरिम्। हिमवन्तं रत्नमयं वसंस्तत्र इलो नृपः॥८॥
ददर्श कन्दरं तत्र नानारत्नविचित्रितम्। तत्र यक्षेश्वरः कश्चित्सुमन्युरिति विश्रुतः॥९॥

ब्रह्मा कहते हैं—राजा के आदेशानुसार सभी लोग राजधानी के लिये चल पड़े। राजा भी हिमालय पर्वत की ओर जाकर वहां रहने लगा। उसने एक दिन अपने निवास के पास एक नाना रत्न मण्डित सुन्दर कन्दरा (गुफा) देखा। इसमें सुमन्यु नामक एक प्रसिद्ध यक्षराज रहता था।।८-९।।

तस्य भार्या समानाम्नी भर्तृव्रतपरायणा। तस्मिन्वसत्यसौ यक्षो रमणीये नगोत्तमे॥१०॥
मृगरूपेण व्यचरद्भार्यया स महामतिः। स्वेच्छया स्ववने यक्षः क्रीडते नृत्यगीतकैः॥११॥
इत्थं स यक्षो जानाति मृगरूपधरोऽपि च।
इलस्तु तं न जानाति कन्दरं यक्षपालितम्॥१२॥

उसकी पत्नी का नाम था समा, जो पतिव्रत परायणा थी। यक्षराज उस रमणीय हिमगिरी पर ही निवास करता था। वह कभी मृग रूप धारण करके पत्नी के साथ वहां स्वेच्छा से विचरता रहता था। वह नाचता-गाता अपने वन में क्रीड़ा करता रहता था। वह मृगरूप धारण करके भी अपनी कन्दरा तथा वन आदि के सम्बन्ध में पूर्णतः अवगत था, तथापि राजा इल यक्ष द्वारा सेवित कन्दरा के विषय में कुछ नहीं जानता था कि यह यक्ष की है।।१०-१२।।

यक्षस्य गेहं विपुलं नानारत्नविचित्रितम्। तत्रोपविष्टो नृपतिर्महत्या सेनया वृतः॥१३॥
वासं चक्रे स तत्रैव गेहे यक्षस्य धीमतः।
स यक्षोऽधर्मकोपेन भार्यया मृगरूपधृक्॥१४॥

यक्ष का गृह विशाल तथा नाना रत्नों से चित्रित था। राजा इल को ज्ञात नहीं था कि यह यक्ष का गृह है। वह अपनी महान् सेना के साथ उस धीमान् यक्ष के गृह में ठहर गया। उधर जब मृगरूपी यक्ष ने अपनी भार्या के साथ राजा इल के इस अन्याय कर्म को देखा, तब वह अत्यन्त क्रोधित हो गया।।१३-१४।।

इलं जेतुं न शक्नोमि याचितो न ददाति च।
हृतं गेहं ममानेन किं करोमीत्यचिन्तयत्॥१५॥
युधि मत्तं कथं हन्यां चेति स्थित्वा स यक्षराट्।
आत्मीयान्प्रेषयामास यक्षाञ्शूरान्धनुर्धरान्॥१६॥

यक्ष ने विचार किया कि मैं राजा इल को युद्ध में पराजित नहीं कर सकता। प्रार्थना करने पर यह मेरा गृह नहीं छोड़ेगा। इसने मेरा गृह हर लिया! अब मैं क्या करूं? कैसे इसे युद्ध में नष्ट करूं? तब यक्षराज ने अपने आत्मीय शूर धनुषधारी यक्षों को राजा के यहां भेजते हुये कहा—।।१५-१६।।

यक्ष उवाच

युद्धे जित्वा च राजानमिलमुद्धतदन्तिनम्। गृहाद्यथाऽन्यतो याति मम तत्कर्तुमर्हथ॥१७॥

यक्षराज कहता है—हे आत्मीय बन्धुगण! तुम लोग उस मद से उद्धत राजा को जीत कर ऐसा उद्यम करो, जिससे वह राजा मेरा घर छोड़कर और कहीं चला जाये।।१७।।

ब्रह्मोवाच

यक्षेश्वरस्य तद्वाक्याद्यक्षास्ते युद्धदुर्मदाः। इलं गत्वाऽब्रुवन्सर्वे निर्गच्छास्माद्गुहालयात्॥१८॥
न चेद्युद्धात्परिभ्रष्टः पलाय्य क्व गमिष्यसि। तद्यक्षवचनात्कोपाद्युद्धं चक्रे स राजराट्॥१९॥
जित्वा यक्षान्बहुविधानुवास दश शर्वरीः।
यक्षेश्वरो मृगो भूत्वा भार्ययाऽपि वने वसन्॥२०॥
हृतगेहो वनं प्राप्तो हृतभृत्यः स यक्षिणीम्।
प्राह चिन्तापरो भूत्वा मृगीरूपधरां प्रियाम्॥२१॥

ब्रह्मा कहते हैं—यक्षराज की आज्ञा के अनुसार वे रणदुर्मद धनुर्धर यक्ष इल राजा के पास जाकर कहने लगे—"हे राजन्! तुम हमारी गुहा से निकल कर चले जाओ। अन्यथा युद्ध में हार कर कहां भागोगे?" इल राज ने यक्षों का कथन सुन क्रोधित होकर यक्षों से युद्ध किया। युद्ध में यक्ष हार गये। राजा दस रात्रि पर्यन्त आनन्द के साथ उस गुहा में निवास करता रहा। उधर मृगरूपी यक्ष जो पत्नी के साथ वन में निवास कर रहा था, अब गृह रहित तथा जन रहित हो गया। तब मृग रूपधारी यक्ष ने उस वन में विचरण करने वाली अपनी मृगरूपी यक्षिणी पत्नी से चिन्तातुर होकर कहा—॥१८-२१।।

यक्ष उवाच

राजाऽयं दुर्मनाः कान्ते व्यसनासक्तमानसः। कथमायाति विपदं तत्रोपायो विचिन्त्यताम्॥२२॥
पापर्धिव्यसनान्तानि राज्यान्यखिलभूभुजाम्। प्रापयोमावनं सुभ्रूर्मृगी भूत्वा मनोहरा॥२३॥
प्रविशेत्तत्र राजाऽयं स्त्री भविष्यत्यसंशयम्। करणीयं त्वया भद्रे न चैतद्युज्यते मम।
अहं तु पुरुषो येन त्वं पुनः स्त्री च यक्षिणी॥२४॥

यक्ष कहता है—हे प्रिये! यह मृगया में आसक्त मन वाला दुष्ट चित्त राजा कैसे यहां आ गया? कैसे यह विपदा यहां से हटेगी? इस विषय में एक उपाय पर दृढ़ रहो। सभी राजाओं का राज्य पाप तथा वासनाओं की अधिकता के कारण विनष्ट ही है। अतएव तुम मनोहारिणी मृगी बनकर इस राजा को उमावन में ले जाओ। राजा उस वन में प्रवेश करते ही निश्चित रूप से स्त्री होगा। हे भद्रे! यह तुम्हारा ही कर्त्तव्य है। मेरे द्वारा यह नहीं होगा। तुम यह करने के अनन्तर पुनः यक्षिणी होकर ही रहोगी।।२२-२४।।

यक्षिण्युवाच

कथं त्वया न गन्तव्यमुमावनमनुत्तमम्।
गतेऽपि त्वयि को दोषस्तन्मे कथय तत्त्वतः॥२५॥

यक्षिणी कहती है—तुम किस कारण से उस उमा वन में नहीं जाते। तुम्हारे जाने में क्या दोष है? वह मुझसे स्पष्ट करो।।२५।।

यक्ष उवाच

हिमवत्पर्वतश्रेष्ठ उमया सहितः शिवः। देवैर्गणैरनुवृतो विचचार यथासुखम्।
पार्वती शंकरं प्राह कदाचिद्रहसि स्थितम्॥२६॥

यक्ष कहता है—एक बार की बात है, उमा के साथ भगवान् शंकर यथासुख देवताओं को अपने पृष्ठ की ओर देखकर हिमालय पर विचर रहे थे। इस स्थिति में कभी पार्वती ने एकान्त में भगवान् शंकर से कहा—॥२६॥

पार्वत्युवाच

स्त्रीणामेष स्वभावोऽस्ति रतं गोपायितं भवेत्।
तस्मान्मे नियतं देशमाज्ञया रक्षितं तव॥२७॥
देहि मे त्रिदशेशान उमावनमिति श्रुतम्। विना त्वया गणेशेन कार्तिकेयेन नन्दिना॥२८॥
यस्त्वत्र प्रविशेन्नाथ स्त्रीत्वं तस्य भवेदिति॥२९॥

भगवती कहती हैं कि स्त्रियों का स्वभाव ऐसा होता है कि पुरुष का संगम-साथ वे अत्यन्त गुप्त होकर चाहती हैं। हे देव ईशान! आप अति गुप्त एवं सुरक्षित स्थान मुझे दीजिये। वह स्थान लोक में उमावन कहा जाये। वहां आप, गणेश, कार्त्तिकेय तथा नन्दी के अतिरिक्त जो कोई भी प्रवेश करे, उसे स्त्रीत्व की प्राप्ति हो॥२७-२९॥

यक्ष उवाच

इत्याज्ञोमावने दत्ता प्रसन्नेनेन्दुमौलिना। किं करोमि पुमान्कान्ते त्वया प्रणयनार्दितः।
तस्मान्मया न गन्तव्यमुमाया वनमुत्तमम्॥३०॥

यक्षराज कहता है—तब भगवान् चन्द्रमौलि ने प्रसन्न होकर इस सम्बन्ध में यही आदेश दे दिया। अतः हे कान्ते! मैं पुरुष होने के कारण वहां जाकर क्या करूंगा? उस मनोरम वन में प्रवेश करना मेरा कर्तव्य नहीं है तथा उचित भी नहीं है॥३०॥

ब्रह्मोवाच

तद्भर्तृवचनं श्रुत्वा यक्षिणी कामरूपिणी।
मृगी भूत्वा विशालाक्षी इलस्य पुरतोऽभवत्॥३१॥
यक्षस्तु संस्थितस्तत्र ददर्शेलो मृगीं तदा।
मृगयासक्तचित्तो वै मृगीं दृष्ट्वा विशेषतः॥३२॥
एक एव हयारूढो निर्ययौ तां मृगीमनु। साऽऽकर्षत शनैस्तं तु राजानं मृगयाकुलम्॥३३॥
शनैर्जगाम सा तत्र यदुमावनमुच्यते।
अदृश्या तु मृगी तस्मै दर्शयन्ती क्वचित्क्वचित्॥३४॥

तिष्ठन्ती चैव गच्छन्ती धावन्ती च विभीतवत्।
हरिणी चपलाक्षी सा तमाकर्षदुमावनम्॥३५॥
अनुप्राप्तो हयारूढस्तत्राप स उमावनम्। उमावनं प्रविष्टं तं ज्ञात्वा सा यक्षिणी तदा॥३६॥
मृगीरूपं परित्यज्य यक्षिणी कामरूपिणी।
दिव्यरूपं समास्थाय चाशोकतरुसन्निधौ॥३७॥

ब्रह्मा कहते हैं—पति वाक्य सुनकर वह इच्छानुरूप आकृति धारण कर सकने में सक्षम यक्षिणी मृगी होकर इल राजा के समक्ष विचरने लगी। राजा ने वहीं से उस मृगी को तथा दूर स्थित यक्ष को देखा। राजा का चित्त मृगी को देख कर उसका शिकार करने हेतु तत्पर होने लगा। इसीलिये वह तत्काल अकेले ही अश्वारूढ़ होकर मृगी का पीछा करने लगा। मृगी भी शिकार हेतु आसक्त चित्त वाले राजा को अपनी ओर आकृष्ट करते दौड़ने लगी। क्रम से वह मृगी उमावन में प्रविष्ट हो गई। वहां पहुंचकर वह कभी दिखलाई पड़ती तो कभी छिप जाती। वह चंचल नेत्रों वाली मृगी कभी तो रुकती, कभी चलती, तो कभी शंकित सी होकर दौड़ पड़ती! जब यक्षिणी ने जान लिया कि राजा उमावन में प्रवेश कर चुका, तब वह अपना मृगी रूप छोड़ कर पुनः यक्षिणीरूपा हो गई! वह मृगी रूप त्याग कर दिव्यरूपी हो गई तथा अशोक वृक्ष की शाखा के सहारे खड़ी हो गयी।।३१-३७।।

तच्छाखालम्बितकरा दिव्यगन्धानुलेपना। दिव्यरूपधरा तन्वी कृतकार्या समा तदा॥३८॥
हसन्ती नृपतिं प्रेक्ष्य श्रान्तं हयगतं तदा। मृगीमालोकयन्तं तं चपलाक्षमिलं तदा॥३९॥
भर्तृवाक्यमशेषेण स्मरन्ती प्राह भूमिपम्॥४०॥

उसने हाथों से शाखा को पकड़ रखा था। उसके अंग दिव्य गन्धलेपों से लिप्त थे तथा दिव्यरूपेण उद्भासित थे। वह तन्वी यक्षिणी कृतकृत्य होकर अश्व पर आरूढ़, थके हुये राजा को देख-देख कर हंसती जा रही थी। वह अपनी चपल आंखों से इल राजा को लक्ष्य करती तथा अपने पति के कथन को स्मरण करती कहने लगी।।३८-४०।।

समो उवाच

हयारूढाऽबला तन्वि क्व एकैव तु गच्छसि।
पुरुषस्य च वेषेण इले कामनुयास्यसि॥४१॥

समा यक्षिणी कहती है—हे तन्वंगी! तुम अबला स्त्री होकर भी अश्व पर सवार एकाकिनी कहां जा रही हो? तुम पुरुष वेष का वस्त्रादि पहने किसे खोज रही हो?।।४१।।

ब्रह्मोवाच

इलेति वचनं श्रुत्वा राजाऽसौ क्रोधमूर्च्छितः।
यक्षिणीं भर्त्सयित्वाऽसौ तामपृच्छन्मृगीं पुनः॥४२॥
तथाऽपि यक्षिणी प्राह इले किमनुवीक्षसे। इलेति वचनं श्रुत्वा धृतचापो हयस्थितः॥४३॥

कुपितो दर्शयामास त्रैलोक्यविजयी धनुः।
पुनः सा प्राह नृपतिं महात्मानमिले स्वयम्॥४४॥
प्रेक्षस्व पश्चान्मां ब्रूहि असत्यां सत्यवादिनीम्।
तदा चाऽऽलोकयद्राजा स्तनौ तुङ्गौ भुजान्तरे॥४५॥
किमिदं मम संजातमित्येवं चकितोऽभवत्॥४६॥

ब्रह्मा कहते हैं—इलराज ने जब 'इले' स्त्रीवाचक सम्बोधन स्वयं के लिये सुना, तब वह क्रोधित सा हो गया और यक्षिणी को बुरा-भला कहने लगा। उसने तदनन्तर यक्षिणी से उस मृगी का पता पूछा, लेकिन यक्षिणी ने तब भी राजा से कहा कि "हे इले! तुम क्या देख रही हो?" राजा अपने लिये पुनः 'इले' सम्बोधन सुनकर कुपित हो गया और उसने धनुष सन्धान यक्षिणी की ओर करना चाहा। तब पुनः यक्षिणी ने उससे कहा—"हे इले! पहले तुम स्वयं अपनी ओर देखो, तब मुझे झूठा अथवा सच्चा कहना।" यक्षिणी का वचन सुनकर राजा ने जब अपनी ओर दृष्टिनिक्षेप किया, तब वह देखता है कि भुजाओं के पश्चात् उसके दो ऊंचे स्थूल स्तन निकल आये हैं। तब राजा विस्मयान्वित हो गया कि यह क्या?।।४२-४६।।

इलोवाच

किमिदं मम संजातं जानीते भवती स्फुटम्।
वद सर्वं यथातथ्यं त्वं का वा वद सुव्रते॥४७॥

इला कहती है—हे सुव्रते! तुमको मेरी इस स्थिति के सम्बन्ध में सब कुछ पता है कि यह क्या तथा कैसे हो गया? सब वृत्तान्त बतलाओ। यह भी कहो कि तुम कौन हो?।।४७।।

यक्षिण्युवाच

हिमवत्कंदरश्रेष्ठे सुमन्युर्वसते पतिः। यक्षाणामधिपः श्रीमांस्तद्भार्याऽहं तु यक्षिणी॥४८॥
यत्कंदरे भवान्राजा तूपविष्टः सुशीतले। यस्य यक्षा हता मोहात्त्वया हि संगरं विना॥४९॥
ततोऽहं निर्गमार्थं ते मृगी भूत्वा उमावनम्। प्रविष्टा त्वं प्रविष्टोऽसि पुरा प्राह महेश्वरः॥५०॥
यस्त्वत्र प्रविशेन्मन्दः पुमान्स्त्रीत्वमवाप्स्यति।
तस्मात्स्त्रीत्वमवाप्तोऽसि न त्वं दुःखितुमर्हसि।
प्रौढोऽपि कोऽत्र जानाति विचित्रभवितव्यताम्॥५१॥

यक्षिणी कहती है—हे इले! हिमालय की सुन्दर कन्दरा में मेरा पति यक्षराज सुमन्यु रहता है। मैं उसकी पत्नी यक्षिणी हूं। हे राजन्! जिस शीतल कन्दरा में आपने स्थान ग्रहण किया था तथा जहां आपने अनेक यक्षों का विना युद्ध वध किया था, वह कन्दरा भी हम लोगों की है। आपके उस आचरण के कारण ही मैंने मृगीरूपेण उमावन में प्रवेश किया। आपने भी पीछा करते उस वन में प्रवेश कर लिया। पूर्वकाल में महेश्वर ने इस वन के सम्बन्ध में कहा था कि जो कोई भी मन्दबुद्धि पुरुष यहां प्रवेश करेगा, उसे नारी देह प्राप्त होगी। तभी आप स्त्री हो गये। परन्तु इसके लिये आप दुःखी न हों। भवितव्यता की विचित्र गति कोई भी नहीं जान सकता!।।४८-५१।।

ब्रह्मोवाच

यक्षिणीवचनं श्रुत्वा हयारूढस्तदाऽपतत्।
तमाश्वास्य पुनः सैव यक्षिणी वाक्यमब्रवीत्॥५२॥

ब्रह्मा कहते हैं—अश्वारूढ़ राजा यक्षिणी का कथन सुनकर अश्व से नीचे गिर पड़ा। तब यक्षिणी ने उसे आश्वासन देते कहा—॥५२॥

यक्षिण्युवाच

स्त्रीत्वं जातं जातमेव न पुंस्त्वं कर्तुमर्हसि।
गृहाण विद्यां स्त्रीयोग्यां नृत्यं गीतमलंकृतिम्।
स्त्रीलालित्यं स्त्रीविलासं स्त्रीकृत्यं सर्वमेव तत्॥५३॥

यक्षिणी कहती है—हे राजन्! स्त्रीत्व तो हो गया है। यह जाने वाला नहीं है। कोई भी आपको पुरुष नहीं कर सकता, अतः स्त्रीजनोचित गीत, नृत्य, हाव-भाव, अलंकार ग्रहण करिये। स्त्रियों का लालित्व, विलास तथा स्त्री कर्त्तव्यादि का सहारा लीजिये। यह सब तो मैं सिखला सकूंगी।।५३।।

ब्रह्मोवाच

इला सर्वमथावाप्य यक्षिणीं वाक्यमब्रवीत्॥५४॥

ब्रह्मा कहते हैं—इला ने इन सब विधि तथा कला को यक्षिणी से जब सीख लिया, तब इला ने यक्षिणी से कहा—।।५४।।

इलोवाच

को वा भर्ता किं तु कृत्यं पुनः पुंस्त्वं कथं भवेत्।
एतद्वदस्व कल्याणी दुःखार्ताया विशेषतः।
आर्तानामार्तिशमनाच्छ्रेयो नाभ्यधिकं क्वचित्॥५५॥

इला कहती है—मेरा पति कौन होगा? मेरा क्या कर्त्तव्य रहेगा, मैं पुनः कैसे पुरुषत्व लाभ करूंगी? हे कल्याणी! मैं दुःखी तथा आर्त्त हूं। इन सबका समाधान क्या है, वह कहो। विशेषतः आर्त्त लोगों की आर्त्ति दूर करने से बढ़ कर जगत् में कुछ नहीं है।।५५।।

यक्षिण्युवाच

बुधः सोमसुतो नाम वनादस्माच्च पूर्वतः। आश्रमस्तस्य सुभगे पितरं नित्यमेष्यति॥५६॥
अनेनैव पथा सोमं पितरं स बुधो ग्रहः। द्रष्टुं याति ततो नित्यं नमस्कर्तुं तथैव च॥५७॥
यदा याति बुधः शान्तस्तदाऽऽत्मानं च दर्शय्।
तं दृष्ट्वा त्वं तु सुभगे सर्वकामानवाप्स्यसि॥५८॥

यक्षिणी कहती है—हे सुभगे! यहां से पूर्व दिक् की ओर चन्द्रमा के पुत्र बुध का आश्रम है। वे इस

मार्ग से जाकर नित्य पिता का दर्शन तथा नमस्कार करने शान्तभाव से जाते हैं। तुम उस समय अपना प्रदर्शन उनको करो। हे सुभगे! उन बुध का दर्शन प्राप्त करने से तुम्हारी कामना पूरी होगी।।५६-५८।।

ब्रह्मोवाच

तामाश्वास्य ततः सुभ्रूर्यक्षिण्यन्तरधीयत।
यक्षिणी सा तमाचष्ट यक्षोऽपि सुखमाप्तवान्॥५९॥
इलसैन्यं च तत्राऽऽसीत्तद्गतं च यथासुखम्।
उमावनस्थिता चेला गायन्ती नृत्यन्ती पुनः॥६०॥
स्त्रीभावमनुचेष्टन्ती स्मरन्ती कर्मणो गतिम्।
कदाचित्क्रियमाणे तु इलया नृत्यकर्मणि॥६१॥
तामपश्यद्बुधो धीमान्पितरं गन्तुमुद्यतः।
इलां दृष्ट्वा गतिं त्यक्त्वा तामागत्याब्रवीद् बुधः॥६२॥

ब्रह्मा कहते हैं—वह सुन्दरी यक्षिणी इस प्रकार से इला को आश्वस्त करने के उपरान्त अन्तर्ध्यान हो गई। वह यहां से अपने घर गई और उसने यक्षराज से सभी वृत्तान्त कहा। इससे यक्षराज सुखी हो गया। इल राजा का जो सब सैन्य-वाहन वन में था, वह सभी यथेच्छ स्थान में चला गया। इधर इला भी उस उमावन में निवास करते हुये यथासुख नृत्य-गीत करते धर्म की गति का स्मरण करती और स्त्रीजनोचित चेष्टा करती रहती थी। एक बार इला नृत्यरत थी। तभी पिता के पास जाते-जाते बुध ने उसे देखा। वे इला को देखकर रुक गये तथा उन्होंने इला से पूछा—।।५९-६२।।

बुध उवाच

भार्या भव मम स्वस्था सर्वाभ्यस्त्वं प्रिय भव॥६३॥

बुध कहते हैं—तुम अब स्वस्थ चित्त से मेरी पत्नी हो जाओ। तुम मेरी सबसे अधिक प्रेयसी रहोगी।।६३।।

ब्रह्मोवाच

बुधवाक्यमिला भक्त्या त्वभिनन्द्य तथाऽकरोत्।
स्मृत्वा च यक्षिणीवाक्यं ततस्तुष्टाऽऽभवन्मुने॥६४॥
बुधो रेमे तया प्रीत्या नीत्वा स्वस्थानमुत्तमम्।
सा चापि सर्वभावेन तोषयामास तं पतिम्।
ततो बहुतिथे काले बुधस्तुष्टोऽवदत्प्रियाम्॥६५॥

बुध उवाच

किं ते देयं मया भद्रे प्रियं यन्मनसि स्थितम्॥६६॥

ब्रह्मा कहते हैं—इला ने बुध के प्रस्ताव का आन्तरिकता के साथ अभिनन्दन किया तथा वह यक्षिणी का कथन स्मरण करके अत्यन्त सन्तुष्ट हो गई। बाद में बुध उसे अपने स्थान ले गये और अत्यन्त प्रेम के साथ उससे रमण करने लगे। इला ने भी प्राणपन से पति बुध को सन्तुष्ट किया था। दीर्घकाल व्यतीत होने पर बुध ने एक बार प्रसन्नता पूर्वक प्रियतमा इला से कहा—"तुम क्या चाहती हो? मैं तुमको क्या प्रदान करूं"?।।६४-६६।।

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्यसमकालं तु पुत्रं देहीत्यभाषत। इला बुधं सोमसुतं प्रीतिमन्तं प्रियं तथा॥६७॥

ब्रह्मा कहते हैं—बुध के यह कहते ही इला ने तत्काल कहा—'मुझे एक प्रिय पुत्र प्रदान करिये'।।६७।।

बुध उवाच

अमोघमेतन्मद्वीर्यं तथा प्रीतिसमुद्भवम्। पुत्रस्ते भविता तस्मात्क्षत्रियो लोकविश्रुतः॥६८॥
सोमवंशकरः श्रीमानादित्य इव तेजसा। बुद्ध्या बृहस्पतिसमः क्षमया पृथिवीसमः॥६९॥
वीर्येणाऽऽजौ हरिरिव कोपेन हुतभुग्यथा॥७०॥

बुध कहते हैं—मेरा वीर्य अमोघ है। साथ ही यह अत्यन्त प्रेम के साथ बहिर्गत् हुआ है। अतः इससे एक लोकविश्रुत क्षत्रिय पुत्र की उत्पत्ति होगी। यह सोमवंश का उत्पत्तिकर्ता आदित्य के समान तेजस्वी, बृहस्पति जैसा बुद्धिमान्, पृथिवी जैसा क्षमाशील, विष्णु जैसा वीर्यशाली, क्रोध में अग्नितुल्य होगा।।६८-७०।।

ब्रह्मोवाच

तस्मिन्नुत्पद्यमाने तु बुधपुत्रे महात्मनि। जयशब्दश्च सर्वत्र त्वासीच्च सुरवेश्मनि॥७१॥
बुधपुत्रे समुत्पन्ने तत्राऽऽजग्मुः सुरेश्वराः। अहमप्यागमं तत्र मुदा युक्तो महामते॥७२॥
जातमात्रः सुतो रावमकरोत्स पृथुस्वरम्। तेन सर्वेऽप्यवोचन्वै संगता ऋषयः सुराः॥७३॥
यस्मात्पुरूरवोऽस्येति तस्मादेष पुरूरवाः।
स्यादित्येवं नाम चक्रुः सर्वे संतुष्टमानसाः॥७४॥
स शीघ्रं वृद्धिमगमच्छुक्लपक्षे सुतं शुभाम्।
धनुर्वेदं सप्रयोगं बुधः प्रादात्तदाऽऽत्मजे॥७५॥
स शीघ्रं वृद्धिमगमच्छुक्लपक्षे यथा शशी।
स मातरं दुःखयुतां समीक्ष्येलां महामतिः।
नमस्याथ विनीतात्मा इलामैलोऽब्रवीदिदम्॥७६॥

ब्रह्मदेव कहते हैं—महात्मा बुधपुत्र के जन्म लेते ही देवलोक में जय-जयकार होने लगा। श्रेष्ठ देवता वहां उपस्थित हो गये। हे महामति नारद! प्रेम के कारण मैं भी वहां आ गया। वह बुधपुत्र जन्म लेते ही उच्च स्वर में शब्द कर रहा था। इसे देख कर सभी देवता तथा ऋषिगण ने मत व्यक्त किया कि यह पुरू गंभीर रव (ध्वनि) कर रहा है, इसलिये इसका नाम पुंरूरवा होगा। देवता तथा ऋषिगण द्वारा सन्तोष पूर्वक यह नामकरण

किया गया। स्वयं बुध ने उसे क्षात्र विद्या का अध्ययन कराया था। बुध ने उसे रहस्यों के साथ धनुर्वेद प्रदान किया। वह बालक शुक्लपक्षीय चन्द्र जैसा दिनोंदिन बढ़ने लगा था। एक बार महामति पुरूरवा ने माता को दुःखी देख कर उन्हें प्रणामोपरान्त विनीत स्वर में कहा—।।७१-७६।।

ऐल उवाच

बुधो मातर्मम पिता तव भर्ता प्रियस्तथा।
अहं च पुत्रः कर्मण्यः कस्मात्ते मानसो ज्वरः।।७७।।

ऐल (पुरूरवा) कहता है—माता! मेरे पिता बुध आपके प्रिय पति हैं। मैं आपका योग्य पुत्र हूं। तब आपको दुःख-ताप क्यों है?।।७७।।

इलोवाच

सत्यं पुत्र बुधो भर्ता त्वं च पुत्रो गुणाकरः।
भर्तृपुत्रकृता चिन्ता न ममास्ति कदाचन।।७८।।
तथाऽपि पूर्वजं किंचिद्दुःखं स्मृत्वा पुनः पुनः। चिन्तयेयं महाबुद्धे ततो मातरमब्रवीत्।।७९।।

माता इला कहती है—यद्यपि बुध मेरे पति हैं तथा तुम्हारे जैसा मेरा पुत्र है, यह सत्य है। मुझे पुत्र तथा पतिजनित कोई दुःख नहीं है। तथापि मैं पूर्व दुःख को बारम्बार याद करके चिन्तायुक्त रहती हूं। यह सुनकर ऐल (पुरूरवा) ने माता से कहा—।।७८-७९।।

ऐल उवाच

निवेदयस्व मे मातस्तदेव प्रथमं मम।।८०।।

ऐल कहता है—हे माता! मुझसे वह प्रसंग कहिये।।८०।।

ब्रह्मोवाच

इला चैनमुवाचेदं रहोवाचं कथं वदे।
तथाऽऽपि पुत्र ते वच्मि पित्रोः पुत्रो यतो गतिः।
मग्नानां दुःखपाथोऽब्धौ पुत्रः प्रवहणं परम्।।८१।।

ब्रह्मा ने कहा—तब इला कहती हैं—हे वत्स! यह अत्यन्त गुप्त बात है। मैं तुमसे कैसे कहूं? जब पुत्र ही माता-पिता की गति होता है, तब तुमसे वह कहना मेरा कर्त्तव्य है। वास्तव में दुःख में मग्न माता-पिता हेतु पुत्र ही एकमात्र दुःख से पार कराने वाला होता है।।८१।।

ब्रह्मोवाच

तन्मातृवचनं श्रुत्वा विनीतः प्राह मातरम्। पादयोः पतितश्चापि वद मातर्यथा तथा।।८२।।

ब्रह्मा कहते हैं—पुरूरवा माता का यह कथन सुनकर विनीत भाव से माता के चरणों पर गिर पड़े।।८२।।

ब्रह्मोवाच

सा पुरूरवसं प्राह इक्ष्वाकूणां तथा कुलम्।
तत्रोत्पत्तिं स्वस्य नाम राज्यप्राप्तिं प्रियान्सुतान्॥८३॥
पुरोधसं वसिष्ठं च प्रियां भार्यां स्वकं पदम्। वननिर्याणमेवाथ अमात्यानां पुरोधसः॥८४॥
प्रेषणं च नगर्यां तां मृगयासक्तिमेव च। हिमवत्कन्दरगतिं यक्षेश्वगृहे गतिम्॥८५॥
उमावनप्रवेशं च स्त्रीत्वप्राप्तिमशेषतः। महेश्वराज्ञया तत्र चाप्रवेशं नरस्य तु॥८६॥
यक्षिणीवाक्यमप्यस्य वरदानं तथैव च। बुधप्राप्तिं तथा प्रीतिं पुत्रोत्पत्त्याद्यशेषतः॥८७॥
कथयामास तत्सर्वं श्रुत्वा मातरमब्रवीत्।
पुरूरवाः किं करोमि किं कृत्वा सुकृतं भवेत्॥८८॥
एवतावता ते तृप्तिश्चेदलमेतेन चाम्बिके। यदप्यन्यन्मनोवर्ति तदप्याज्ञापयस्व मे॥८९॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब पुरूरवा ने माता से कहा—"हे माता! यथायथ वृत्तान्त कहिये। तब इला ने पुरूरवा से आद्योपान्त समस्त वृत्तान्त कह दिया। इक्ष्वाकु वंश का विवरण, उसमें अपनी उत्पत्ति, राज्यलाभ, प्रियतर पुत्र लाभ, वसिष्ठ का पौरोहित्य, अपनी प्रिय पत्नी तथा पदमर्यादा, मृगया के लिये वन जाना, अमात्य तथा पुरोहित को वन से राजधानी में भेजना, अपनी मृगया के प्रति आसक्ति, हिमालय में यक्षगुफा में जाना, उमावन में प्रवेश, स्वयं की स्त्रीत्व प्राप्ति, उमावन में पुरुषों के प्रवेश का निषेध, यक्षिणी वार्त्ता, बुध से मिलन, पुत्रोत्पत्ति इत्यादि समस्त घटनाक्रम उन्होंने पुत्र से कहा। यह सुन कर पुत्र पुरूरवा ने जननी से कहा कि "हे माता! मैं इस सम्बन्ध में क्या करूं जिससे कल्याण हो। हे माता! यदि इसी अवस्था में स्त्रीत्व से तृप्ति होती हो, तब स्त्री रूप परिवर्तन की चेष्टा व्यर्थ है। लेकिन आप अन्य कुछ चाहें, तब वह करने का आदेश दीजिये।।८३-८९।।

इलोवाच

इच्छेयं पुंसत्वमुत्कृष्टमिच्छेयं राज्यमुत्तमम्।
अभिषेकं च पुत्राणां तव चापि विशेषतः॥९०॥
दानं दातुं च यष्टुं च मुक्तिमार्गस्य वीक्षणम्।
सर्वं च कर्तुमिच्छामि तव पुत्र प्रसादतः॥९१॥

इला कहती है—पुत्र! मैं अपना पहले वाला पुरुषत्व लाभ, विपुल राज्य तथा पूर्व पुत्रों तथा तुम्हारा राजतिलक करना चाहती हूं। हे वत्स! मैं तुम्हारे द्वारा तुम्हारे अनुकूल किया गया दान, यज्ञ सम्पादन तथा मुक्तिमार्ग भी देखना चाहती हूं।।९०-९१।।

पुत्र उवाच

उपायं त्वा तु पृच्छामि येन पुंस्त्वमवाप्स्यसि।
तपसो वाऽन्यतो वाऽपि वदस्व मम तत्त्वतः॥९२॥

पुत्र कहता है—जिस उपाय से आप अपना पुरुषत्व पा सकें, वह उपाय आपसे पूछता हूं। तप अथवा अन्य कोई उपाय द्वारा यदि यह मिले, तब वह आप प्रकट रूप से कहिये।।९२।।

इलोवाच

बुधं त्वं पितरं पृच्छ गत्वा पुत्र यथार्थवत्।
स तु सर्वं तु जानाति उपदेक्ष्यति ते हितम्॥९३॥

इला कहती हैं—हे पुत्र! तुम पिता बुध के यहां जाओ। उनसे पूछो। वे सर्वज्ञ हैं। वे ही तुमसे हित का उपदेश करेंगे।।९३।।

ब्रह्मोवाच

तन्मातृवचनादैलो गत्वा पितरमञ्जसा। उवाच प्रणतो भूत्वा मातुः कृत्यं तथाऽऽत्मनः॥९४॥

ब्रह्मा कहते हैं—माता के कथनानुसार इलापुत्र पुरूरवा पिता के पास गये। उन्होंने उनको प्रणाम करके अपने तथा अपनी माता के कर्त्तव्य को पूछा।।९४।।

बुध उवाच

इलं जाने महाप्राज्ञ इलां जातां पुनस्तथा। उमावनप्रवेशं च शंभोराज्ञां तथैव च॥९५॥
तस्माच्छम्भुप्रसादेन उमायाश्च प्रसादतः।
विशापो भविता पुत्र तावाराध्य न चान्यथा॥९६॥

बुध ने कहा—हे महाप्राज्ञ! मैं इल राजा को जानता हूं। यह भी मुझे अज्ञात नहीं है कि इल राजा कैसे इला हो गये। पुरुष का उमावन में प्रवेश निषेध, इस सम्बन्ध में शंभु का आदेश, वह सब मैं जानता हूं। हे पुत्र! शंभु-उमा की आराधना द्वारा तथा उनकी कृपा से इला की शापमुक्ति हो सकेगी अन्यथा अन्य उपाय है ही नहीं।।९५-९६।।

पुरूरवा उवाच

पश्येयं तं कथं देवं कथं वा मातरं शिवाम्।
तीर्थाद्वा तपसो वाऽपि तत्पितः प्रथमं वद॥९७॥

पुरूरवा कहते हैं—मैं चराचर स्वामी, चराचर पिता-माता शिव-शिवा का दर्शन करूंगा। किस तीर्थ में, कहां तप करने से उनका दर्शन होगा? हे पिता! स्पष्ट कहिये।।९७।।

बुध उवाच

गौतमीं गच्छ पुत्र त्वं तत्राऽऽस्ते सर्वदा शिवः।
उमया सहितः श्रीमाञ्शापहन्ता वरप्रदः॥९८॥

बुध कहते हैं—हे वत्स! गौतमीगंगा पर जाओ। वहां शिव सदा उमा माता के साथ रहते हैं। वे श्रीमान्, पापहन्ता, वरदाता हैं।।९८।।

ब्रह्मोवाच

पुरूरवाः पितुर्वाक्यं श्रुत्वा तु मुदिताऽभवत्।
गौतमीं तपसे धीमान्गङ्गां त्रैलोक्यपावनीम्॥९९॥
पुंस्त्वमिच्छंस्तथा मातुर्जगाम तपसे त्वरन्।
हिमवन्तं गिरिं नत्वा मातरं पितरं गुरुम्॥१००॥
गच्छन्तमन्वगात्पुत्रमिला सोमसुतस्तथा।
ते सर्वे गौतमीं प्राप्ता हिमवत्पर्वतोत्तमात्॥१०१॥
तत्र स्नात्वा तपः किंचित्कृत्वा चक्रुः स्तुतिं पराम्।
भवस्य देवदेवस्य स्तुतिक्रममिमं शृणु॥१०२॥
बुधस्तुष्टाव प्रथममिला च तदनन्तरम्। ततः पुरूरवाः पुत्रो गौरीं देवीं च शंकरम्॥१०३॥

ब्रह्मा कहते हैं—पिता का वाक्य सुनकर पुरूरवा मुदित हो गये। वे माता को पुरुषत्व प्रदान कराने हेतु शीघ्रता से तपस्यार्थ त्रिलोकपावनी गौतमी-गंगा गये। पहले धीमान् पुरूरवा ने गिरिवर हिमवान् तथा गुरुवर माता-पिता को प्रणाम निवेदन किया। तदनन्तर वे गौतमीगंगा तट पर गये। इला तथा बुध भी अपने इन पुत्र का अनुगमन कर रहे थे। कुछ कालोपरान्त वे हिमालय से उतरते हुये गौतमीगंगा तक आये। वहां स्नानोपरान्त उन्होंने किंचित् तप किया। तदनन्तर वे देवाधिदेव शिव की स्तुति करने लगे। हे नारद! वह स्तुति सुनो। सबसे पहले बुध, तत्पश्चात् इला, तदनन्तर पुत्र पुरूरवा ने शिवगौरी का स्तव किया।।९९-१०३।।

बुध उवाच

यौ कुङ्कुमेन स्वशरीरजेन, स्वभावहेमप्रतिमौ सरूपौ।
यावर्चितौ स्कन्दगणेश्वराभ्यां, तौ मे शरण्यौ शरणं भवेताम्॥१०४॥

बुध कहते हैं—जो स्वतः स्वर्णगौर, सुन्दर स्वरूप तथा स्कन्द-गणेश के अंगलिप्त कुंकुम से पूजित होते रहते हैं, ऐसे जगत्शरण्य शिव-शिवा मेरे शरणदाता हों।।१०४।।

इलोवाच

संसारतापत्रयदावदग्धाः, शरीरिणो यौ परिचिन्तयन्तः।
सद्यः परां निर्वृतिमाप्नुवन्ति, तौ शंकरौ मे शरणं भवेताम्॥१०५॥
आर्ता ह्यहं पीडितमानसा ते, क्लेशादिगोप्ता न परोऽस्ति कश्चित्।
देव त्वदीयौ चरणौ सुपुण्यौ, तौ मे शरण्यौ शरणं भवेताम्॥१०६॥

इला कहती हैं—देहीगण संसार के तापत्रय की दावाग्नि में दग्ध होकर जिनका चिन्तन करते हैं तथा तत्काल परम निवृत्ति लाभ करते हैं, वे प्रभु शंकर तथा देवी शंकरी हमारे शरणदाता हों। मैं आर्त्त हूं। मेरा मन अत्यन्त पीड़ित है। हे देव! संसार को क्लेशादि से रक्षा करने वाला आपके अतिरिक्त कौन है? आपका पुण्यमय शरण्य पादद्वय मेरा शरणस्थल हो।।१०५-१०६।।

पुरूरवा उवाच

ययोः सकाशादिदमभ्युदेति, प्रयाति चान्ते लयमेव सर्वम्।
जगच्छरण्यौ जगदात्मकौ तु, गौरीहरौ मे शरणं भवेताम्॥१०७॥
यौ देववृन्देषु महोत्सवे तु, पादौ गृहाणेश (ति) गिरीशपुत्र्याः।
प्रोक्तं धृतौ प्रीतिवशाच्छिवेन, तौ मे शरण्यौ शरणं भवेताम्॥१०८॥

पुरूरवा कहते हैं—जिनके प्रभाव से यह विश्व संसार आविर्भूत होता है, अन्त में जिनमें सब विलीन हो जाता है, वे विश्व को शरण देने वाले विश्वात्मक हर-गौरी हमारे शरण्य हों। पूर्वकाल में विवाहोत्सव के अवसर पर देवसमाज में गिरिपुत्री के जिन चरणद्वय को ग्रहण करने हेतु सभी ने अनुरोध किया था, शिव ने प्रीतिवशात् जिसे धारण किया था, वे चरण कमलद्वय मेरे लिये शरणस्थल हो जायें।।१०७-१०८।।

श्रीदेव्युवाच

किमभीष्टं प्रदास्यामि युष्मभ्यं तद्वदन्तु मे।
कृतकृत्याः स्थ भद्रं वो देवानामपि दुष्करम्॥१०९॥

श्रीदेवी कहती हैं—हे भद्र! तुम लोग कृतार्थ हो गये हो। तुम सबका मंगल हो। जो देवताओं हेतु भी दुष्कर है, ऐसा कोई भी वर यदि तुम लोग चाहो, तब उसे कहो—।।१०९।।

पुरूरवा उवाच

इलो राजा तवाज्ञात्वा वनं प्राविशदम्बिके।
तत्क्षमस्व सुरेशानि पुंस्त्वं दातुं त्वमर्हसि॥११०॥

पुरूरवा कहते हैं—हे अम्बिके! राजा इल अनजाने में आपके वन में आ गये थे। आप उनको क्षमा करें। हे सुरेश्वरी! उनको आप पुनः पुरुषत्व प्रदान करिये।।११०।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युवाच तान्सर्वान्भवस्य तु मते स्थिता। ततः स भगवानाह देवीवाक्यरतः सदा॥१११॥

ब्रह्मा कहते हैं—पार्वती सदा शंकर से आदेश लेकर कार्य करती हैं। उनकी सहमति से भगवती ने कहा—"ऐसा ही हो"। तब सदा देवी में तल्लीन शंकर ने कहा—॥१११।।

शिव उवाच

अत्राभिषेकमात्रेण पुंस्त्वं प्राप्नोत्वयं नृपः॥११२॥

शिव कहते हैं—वहां अभिषेक करने मात्र से राजा इल को पुरुषत्व मिलेगा।।११२।।

ब्रह्मोवाच

स्नाताया बुधभार्यायाः शरीराद्वारि सस्त्रुवे।
नृत्यं गीतं च लावण्यं यक्षिण्या यदुपार्जितम्॥११३॥

तत्सर्वं वारिधाराभिर्गङ्गाम्भसि समाविशत्।
नृत्यं गीता च सौभाग्या इमा नद्यो बभूविरे॥११४॥
ताश्चापि संगता गङ्गां ते पुण्याः संगमास्त्रयः। तेषु स्नानं च दानं च सुरराज्यफलप्रदम्॥११५॥

ब्रह्मा कहते हैं—बुधपत्नी इला ने तत्काल गौतमी के जल में स्नान किया। स्नान करने से उसके शरीर से जो जल गिरा, यक्षिणी से उसने जो नृत्य, गीत, सौन्दर्यादि जो कुछ पाया था, वह सब उस जल के साथ गौतमीगंगा के जल में विलीन हो गया। उससे नृत्या, गीता तथा सौभाग्या तीन नारियां उत्पन्न हो गयीं। ये तीनों पुण्या नदियां गौतमीगंगा के जल में मिल गयीं। वहां तीन पुण्यसंगम तीर्थ प्रकट हो गये। इस संगम में स्नान, दान करने से स्वर्ग मिलता है।।११३-११५।।

इला पुंस्त्वमवाप्याथ गौरीशंभोः प्रसादतः। महाभ्युदयसिद्ध्यर्थं वाजिमेधमथाकरोत्॥११६॥
पुरोधसं वसिष्ठं च भार्यां पुत्रांस्तथैव च।
अमात्यांश्च बलं कोशमानीय स नृपोत्तमः॥११७॥
चतुरङ्गं बलं राज्यं दण्डकेऽस्थापयत्तदा।
इलस्य नाम्ना विख्यातं तत्र तत्पुरमुच्यते॥११८॥
पूर्वजातानथो पुत्रान्सूर्यवंशक्रमागते। राज्येभिषिच्य पश्चात्तमैलं स्नेहादसिञ्चयत्॥११९॥

तदनन्तर गौरी तथा शंभु की कृपा से इला ने पुरुषत्व लाभ किया तथा उसने महा अभ्युदय प्राप्ति हेतु एक अश्वमेध यज्ञानुष्ठान किया। इस यज्ञ के उपलक्ष्य में पुरोहित वसिष्ठ, राजा इल की पत्नी, पुत्र, आमात्य, सेना तथा कोषागार वहां राजा की आज्ञा से लाया गया। राजा ने दण्डकारण्य में चतुरंगिणी सेना युक्त एक राज्य स्थापित किया। इसकी राजधानी इल नाम से प्रसिद्ध हो गयी। पूर्व के राज्य में उन्होंने पहले उत्पन्न हुये पुत्रों को राज्याभिषिक्त कर दिया। इस नये वाले राज्य पर राजा इल ने स्नेह पूर्वक सोमवंश के संस्थापक के रूप में ऐल (पुरूरवा) का राज्याभिषेक कर दिया।।११६-११९।।

सोमवंशकरः श्रीमानयं राजा भवेदिति।
सर्वेभ्यो मतिमानेभ्यो ज्येष्ठःश्रेष्ठोऽभवन्मुने॥१२०॥
यत्र च क्रतवो इलस्य नृपतेः शुभाः।
यत्र पुंस्त्वमवाप्याथ यत्र पुत्राः समागताः॥१२१॥
यक्षिणीदत्तनृत्यादिगीतसौभाग्यमङ्गलाः। नद्यो भूत्वा यत्र गङ्गां संगतास्तानि नारद॥१२२॥
तीर्थानि शुभदान्यासन्सहस्राण्यथ षोडश। उभयोस्तीरयोस्तात तत्र शंभुरिलेश्वरः।
तेषु स्नानं च दानं च सर्वक्रतुफलप्रदम्॥१२३॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंम्भृषिसंवादे तीर्थमाहात्म्ये
बुधेलापुरूरवोवसिष्ठनृत्यगीतसौभाग्येलेश्वरादिषोडशसहस्रतीर्थवर्णनं नामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः।।१०८।।
गौतमीमाहात्म्ये एकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।।३९।।



पुरूरवा उनके सभी पुत्रों से अधिक बुद्धिशाली, गुणों में ज्येष्ठ, श्रेष्ठ थे। इल राजा ने जहां यज्ञ किया था, जहां पुत्रलाभ किया था, जहां उनके पुत्रगण मिले, जहां पुरुषत्व मिला था, जहां यक्षिणी प्रदत्त नृत्य, गीत, सौभाग्य गंगा में मिले थे, हे नारद! वह सब पुण्यतीर्थ स्थान हो गया। वहां गौतमी के दोनों तट पर मंगलमय सोलह हजार तीर्थ भी प्रतिष्ठापित हो गये थे। वहां इलेश्वर शिवलिंग सदा विराजित रहता है। वहां उन तीर्थों में स्नान-दान करने से सर्वयज्ञ फल लाभ होता है।।१२०-१२३।।

।।अष्टाधिकशततम अध्याय समाप्त।।



अथ नवाधिकशततमोऽध्यायः

चक्रतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

चक्रतीर्थमिति ख्यातं ब्रह्महत्यादिनाशनम्। यत्र चक्रेश्वरो देवश्चक्रमाप यतो हरिः॥१॥
यत्र विष्णुः स्वयं स्थित्वा चक्रार्थं शङ्करं प्रभुः। पूजयामास तत्तीर्थं चक्रतीर्थमुदाहृतम्॥२॥
यस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते। दक्षक्रतौ प्रवृत्ते तु देवानां च समागमे॥३॥
दक्षेण दूषिते देवे शिवे शर्वे महेश्वरे। अनाह्वाने सुरेशस्य दक्षचित्ते मलीमसे॥४॥
दाक्षायण्या श्रुते वाक्ये अनाह्वानस्य कारणे।
अहल्यायां चोक्तवत्यां कुपिताऽभूत्सुरेश्वरी॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—विख्यात चक्रतीर्थ ब्रह्महत्यादि पाप नाशक है। इस तीर्थ में चक्रेश्वर श्रीहरि ने अपना प्रसिद्ध चक्र पाया था। स्वयं विष्णु ने यहां रहकर चक्रलाभार्थ शंकराराधन किया था, अतः इसे चक्रतीर्थ कहा गया है। इस तीर्थ का नाम सुनने से पापमुक्ति होती है। पूर्वकाल में दक्षयज्ञ आरम्भ के समय देवता उस यज्ञ में आये थे। इस यज्ञ में दक्ष ने शिव को दोषी मानते हुये नहीं बुलाया था। उनका चित्त कलुषित हो गया था। दक्षकन्या सती ने अहल्या से वह कारण सुना, जिस कारण से शंकर को यज्ञ में नहीं बुलाया गया था। इस कारण वे कुपिता हो गईं। उन्होंने पिता द्वारा अपने पति शिव के विरुद्ध प्रयुक्त कटु वाक्यों को सुना था।।१-५।।

पितरं नाशये पापं क्षमेयं न कथंचन। शृण्वती दोषवाक्यानि पित्रा चोक्तानि भर्तरि॥६॥
पत्युःशृण्वन्ति या निन्दां तासां पापावधिः कुतः।
यादृशस्तादृशो वाऽपि पतिः स्त्रीणां परा गतिः॥७॥
किं पुनः सकलाधीशो महादेवो जगद्गुरुः। श्रुतं तन्निन्दनं तर्हि धारयामि न देहकम्॥८॥
तस्मात्त्यक्ष्य इमं देहमित्युक्त्वा सा महासती। कोपेन महताऽऽविष्टा प्रजज्वाल सुरेश्वरी॥९॥

शिवैकचेतना देहं बलाद्योगाच्च तत्यजे। महेश्वरोऽपि सकलं वृत्तमाकर्ण्य नारदात्॥१०॥

सती ने कहा—"मैं पिता का नाश करूंगी। मैं इस पापी को कदापि क्षमा नहीं करूंगी। जो स्त्री पतिनिन्दा सुनती है, उसके पाप की सीमा नहीं होती। पति चाहे जैसा हो, वह स्त्रियों की परम गति है। तब चराचरगुरु लोकपति महेश्वर की तो बात ही क्या? मैंने महेश्वर की निन्दा सुनी है। अब मेरा यह देह धारण किये रहना उचित नहीं है। अतः मैं अपने इस शरीर का त्याग करूंगी।" यह कह कर महामति देवेशी महाकोप से आविष्ट होकर जलने लगीं। शिवैक्यप्राणा सती ने योगबल से देहत्याग कर दिया। महेश्वर ने यह सब वृत्तान्त नारद से सुना।।६-१०।।

दृष्ट्वा चुकोप पप्रच्छ जयां च विजयां तथा। ते ऊचतुरुभे देवं दक्षक्रतुविनाशनम्॥११॥
दाक्षायण्या इति श्रुत्वा मखं प्रयान्महेश्वरः। भीमैर्गणैः परिवृतो भूतनाथैः समं ययौ॥१२॥
मखस्तैर्वेष्टितः सर्वो देवब्रह्मपुरस्कृतः। दक्षेण यजमानेन शुद्धभावेन रक्षितः॥१३॥
वसिष्ठादिभिरत्युग्रैर्मुनिभिः परिवारितः। इन्द्रादित्याद्यैर्वसुभिः सर्वतः परिपालितः॥१४॥

ऋग्यजुः सामवेदैश्च स्वाहा शब्दैरलंकृतः।
श्रद्धा पुष्टिस्तथा तुष्टिः शान्तिर्लज्जा सरस्वती॥१५॥
भूमिर्द्यौः शर्वरी क्षान्तिरुषा आशा जया मतिः।
एताभिश्च तथाऽन्याभिः सर्वतः समलङ्कृतः॥१६॥

तदनन्तर उन्होंने क्रोधित होकर जया-विजया से पूछा। उन दोनों ने दाक्षायणी सती के प्राण त्याग का समाचार महादेव से कह दिया। तदनन्तर महेश्वर भयंकर भूतगण के साथ दक्षयज्ञस्थल में गये। उन्होंने वहां अपने अनुचरों के साथ पहुंचकर दक्ष के यज्ञस्थल को घेर लिया। दक्षयज्ञ में देवता, ब्रह्मा, ऋषिगण उपस्थित थे। वह स्थल यजमान दक्ष से पवित्रता के साथ रक्षित था। वसिष्ठ आदि अनेक उग्र तपस्वी ऋषिगण उस यज्ञ में विराजित थे। उस यज्ञ की रक्षा में चतुर्दिक् इन्द्रादि देवता तथा वसुगण नियुक्त थे। ऋक्, यजुः, सामवेदों के शब्द तथा स्वाहा शब्द से यज्ञभूमि गूंज रही थी। श्रद्धा, पुष्टि, तुष्टि, शान्ति, लज्जा, सरस्वती, भूमि, द्यौ, शर्वरी, क्षान्ति, ऊषा, आशा, जया, मति आदि से वह यज्ञभूमि अलंकृत थी।।११-१६।।

त्वष्ट्रा महात्मना चापि कारितो विश्वकर्मणा।
सुरभिर्नन्दिनी धेनुः कामधुक्कामदोहिनी॥१७॥
एताभिः कामवर्षाभिः सर्वकामसमृद्धिमान्।
कल्पवृक्षः पारिजातो लताः कल्पलतादिकाः॥१८॥

यद्यदिष्टतमं किंचित्तत्र तस्मिन्मखे स्थितम्। स्वयं मघवता पूष्णा हरिणा परिरक्षितः॥१९॥

महात्मा विश्वकर्मा ने इस यज्ञमण्डप को प्रस्तुत किया था। सुरभिनन्दिनी, कामदुधा, कामवर्षिणी आदि धेनुगण से यह यज्ञक्षेत्र सभी ओर से समृद्धियुक्त था। कल्पवृक्ष, पारिजात तथा कल्पलता तथा अन्य जितनी इष्टतम वस्तु थी, सभी इस यज्ञ में उपस्थित थी। स्वयं इन्द्र, पूषा तथा विष्णु से वह यज्ञ रक्षित था।।१७-१९।।

दीयतां भुज्यतां वाऽपि क्रियतां स्थीयतां सुखम्।
एतैश्च सर्वतो वाक्यैर्दक्षस्य पूजितं मखम्॥२०॥
आदौ तु वीरभद्रोऽसौ भद्रकाल्या युतो ययौ। शोककोपपरीतात्मा पश्चाच्छूलपिनाकधृक्॥२१॥
अभ्याययौ महादेवो महाभूतैरलंकृतः। तानि भूतानि परितो मखे वेष्टय महेश्वरम्॥२२॥
क्रतुं विध्वंसयामासुस्तत्र क्षोभो महानभूत्।
पलायन्त ततः केचित्केचिद्गत्वा ततः शिवम्॥२३॥
केचित्स्तुवन्ति देवेशं केचित्कुप्यन्ति शंकरम्।
एवं विध्वंसितं यज्ञं दृष्ट्वा पूषा समभ्यगात्॥२४॥

इस यज्ञ में दीजिये, भोजन ग्रहण करिये आदि स्वर उठ रहे थे। प्रारम्भ में यज्ञ में वीरभद्र तथा भद्रकाली गये। उसके पश्चात् स्वयं पिनाकधारी महेश्वर आये। महादेव महाभूतगण से घिरे थे। इस प्रकार वे दक्षयज्ञ में आये। उनके साथ ही जो भूतवृन्द आये थे, उन सबने दक्षयज्ञ ध्वन्स कर दिया। उस समय वहां महान् क्षोभ उपस्थित हो गया। कोई वहां से भाग गये। कोई शिव के सामने आकर उनका स्तव करने लगे। कोई शंकर पर क्रोध करने लगा। इस प्रकार यज्ञ विध्वंस हो जाने पर पूषा क्रोध में भर कर शिव की ओर दौड़ पड़े।।२०-२४।।

पूष्णो दन्तानथोत्पाट्य इन्द्रं व्यद्रावयत्क्षणात्।
भगस्य चक्षुषी विप्र वीरभद्रो व्यपाटयत्॥२५॥
दिवाकरं पुनर्दोर्भ्यां परिभ्राम्य समाक्षिपत्। ततः सुरगणाः सर्वे विष्णुं ते शरणं ययुः॥२६॥

परन्तु भगवान् ने पूषा का दांत उखाड़ लिया। इन्द्र मार कर भगा दिये गये। वीरभद्र ने भगदेव के नेत्र उखाड़ लिये। उन्होंने दिवाकर देव के दोनों हाथ पकड़ कर घुमाया तथा अन्त में दूर फेंक दिया। यह देख कर सभी देवगण विष्णु की शरण में गये।।२५-२६।।

देवा ऊचुः

त्राहि त्राहि गदापाणे भूतनाथकृताद्भयात्। महेश्वरगणः कश्चित्प्रमथानां तु नायकः।
तेन दग्धो मखः सर्वो वैष्णवः पश्यतो हरेः॥२७॥

देवता कहते हैं—हे गदापाणि! आप भूतनाथ के इस भय से हमारी रक्षा करिये। प्रमथों के नायक एक महेश्वरगण ने इन्द्र के सामने ही समस्त वैष्णव यज्ञ का ध्वंस कर दिया है।।२७।।

ब्रह्मोवाच

हरिणा चक्रमुत्सृष्टं भूतनाथवधं प्रति। भूतनाथोऽपि तच्चक्रमापतच्च तदाऽग्रसत्॥२८॥
ग्रस्ते चक्रे ततो विष्णोर्लोकपाला भयाद्ययुः।
तथा स्थितानवेक्ष्याथ दक्षो यज्ञं सुरानपि।
तुष्टाव शंकरं देवं दक्षो भक्त्या प्रजापतिः॥२९॥

ब्रह्मा कहते हैं—श्रीहरि ने यह सुनते ही भूतनाथ के वधार्थ चक्र छोड़ा। भूतनाथ ने उस चक्र को आते देखते ही उसे निगल लिया। विष्णु के परास्त होते ही लोकपाल वहां से भाग गये। जब दक्ष ने देवगण की ऐसी स्थिति देखा, तब वह भगवान् शंभु का स्तव करने लगे।।२८-२९।।

दक्ष उवाच

जय शंकर सोमेश जय सर्वज्ञ शंभवे।
जय कल्याणभृच्छंभो जय कालात्मने नमः॥३०॥
आदिकर्तर्नमस्तेऽस्तु नीलकण्ठ नमोऽस्तु ते।
ब्रह्मप्रिय नमस्तेऽस्तु ब्रह्मरूप नमोऽस्तु ते॥३१॥
त्रिमूर्तये नमो देव त्रिधाम परमेश्वर। सर्वमूर्ते नमस्तेऽस्तु त्रैलोक्याधार कामद॥३२॥
नमो वेदान्तवेद्याय नमस्ते परमात्मने। यज्ञरूप नमस्तेऽस्तु यज्ञधाम नमोऽस्तु ते॥३३॥
यज्ञदान नमस्तेऽस्तु हव्यवाह नमोऽस्तु ते। यज्ञहर्त्रे नमस्तेऽस्तु फलदाय नमोऽस्तु ते॥३४॥
त्राहि त्राहि जगन्नाथ शरणागतवत्सल। भक्तानामप्यभक्तानां त्वमेव शरणं प्रभो॥३५॥

दक्ष कहते हैं—हे शंकर! सोमेश, सर्वज्ञ! आपकी जय हो! आप कल्याण करने वाले, कालात्मा हैं। आपको नमस्कार! हे नीलकण्ठ! आप आदिकर्त्ता हैं, हे ब्रह्मप्रिय! आप ब्रह्मरूप हैं, हे त्रिधाम! परमेश्वर, त्रिमूर्ति देव! आप समस्त त्रिलोकी को धारण करते हैं! हे कामप्रद, वेदान्तवेद्य! आप ही परमात्मा, यज्ञरूप, यज्ञधाम, यज्ञदान, हव्यवाह, यज्ञहर्त्ता, फल देने वाले हैं। आपको नमस्कार! हे शरणागतवत्सल, जगन्नाथ! रक्षा करिये! हे प्रभो! आप भक्तों तथा अभक्तों को भी शरण देते हैं।।३०-३५।।

ब्रह्मोवाच

एवं तु स्तुवतस्तस्य प्रसन्नोऽभून्महेश्वरः।
किं ददामीति तं प्राह क्रतुः पूर्णोऽस्तु मे प्रभो॥३६॥
तथेत्युवाच भगवान्देवदेवो महेश्वरः। शङ्करः सर्वभूतात्मा करुणावरुणालयः॥३७॥
क्रतुं कृत्वा ततः पूर्णं तस्य दक्षस्य वै मुने। एवमुक्त्वा स भगवान्भूतैरन्तरधीयत॥३८॥
यथागतं सुरा जग्मुः स्वमेव सदनं प्रति। ततः कदाचिद्देवानां दैत्यानां विग्रहो महान्॥३९॥

ब्रह्मा कहते हैं—दक्ष के इस प्रकार स्तव करने पर महेश्वर देव प्रसन्न हो गये तथा उन्होंने कहा—"हे दक्ष! क्या प्रदान करूं?" दक्ष ने कहा—"हे प्रभो! मेरा यज्ञ पूर्ण हो जाये।" परम कारुणिक सर्वभूतात्मा मंगलनिधान शंकर ने दक्ष की प्रार्थना सुनकर "ऐसा ही हो" कहा। इस प्रकार देवाधिदेव दक्ष को वर द्वारा सन्तुष्ट करके तथा उनका यज्ञ पूर्ण करके अपने भूतों के साथ वहां से अन्तर्हित् हो गये। देवता भी वहां से प्रस्थान कर गये। तत्पश्चात् कभी देवता तथा दैत्यगण के बीच महान् युद्ध छिड़ गया।।३६-३९।।

बभूव तत्र दैत्येभ्यो भीता देवाः श्रियः पतिम्।
तुष्टुवुः सर्वभावेन वचोभिस्तं जनार्दनम्॥४०॥

इससे देवता लोग भयभीत होकर श्रीपति विष्णु के यहां गये। उन्होंने सर्वतोभावेन श्रीपति जनार्दन का स्तव किया। श्रीपति के समक्ष देवता कहने लगे।।४०।।

देवा ऊचुः

शक्रादयोऽपि त्रिदशाः कटाक्षमवेक्ष्य यस्यास्तप आचरन्ति।
सा चापि यत्पादरता च लक्ष्मीस्तं ब्रह्मभूतं शरणं प्रपद्ये॥४१॥
यस्मात्त्रिलोक्यां न परः समानो, न चाधिकस्ताक्ष्यर्यस्थान्नृसिंहात्।
स देवदेवोऽवतु नः समस्तान्महाभयेभ्यः कृपया प्रपन्नान्॥४२॥

देवगण कहते हैं—इन्द्रादि देवता जिनके कृपाकटाक्ष को पाने हेतु तपःश्चरण करते हैं, वे लक्ष्मी देवी जिनके चरणकमलों की सेवा में निरत रहती हैं, उन ब्रह्मभूत जनार्दन के शरण की हम सब प्रार्थना करते हैं। इस त्रैलोक्य में जिन गरुड़ वाहन नृसिंह देव से श्रेष्ठ कोई नहीं है, जिनके समान तथा जिनके परे कोई नहीं है, वे देवदेव कृपा करके हम शरणागतों की सभी महाभय से रक्षा करें।।४१-४२।।

ब्रह्मोवाच

ततः प्रसन्नो भगवाञ्शङ्खचक्रगदाधरः। किमर्थमागताः सर्वे तत्कर्ताऽस्मीत्युवाच तान्॥४३॥

ब्रह्मा कहते हैं—तदनन्तर श्रीहरि प्रसन्न होकर वहां आये। देवगण से कहा कि "तुम लोग किसलिये आये हो? मैं तुम लोगों का वह कार्य सम्पन्न कर दूंगा"।।४३।।

देवा ऊचुः

भयं च तीव्रं दैत्येभ्यो देवानां मधुसूदन। ततस्त्राणाय देवानां मतिं कुरु जनार्दन॥४४॥

देवता कहते हैं—हे जनार्दन! मधुसूदन! आप हमारी इस तीव्र दैत्यभय से रक्षा करने का उपाय करिये।।४४।।

ब्रह्मोवाच

तानागतान्हरिः प्राह ग्रस्तं चक्रं हरेण मे।
किं करोमि गतं चक्रं भवन्तश्चार्तिमागताः॥४५॥
यान्तु सर्वे देवगणा रक्षा वः क्रियते मया॥४६॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब श्रीहरि ने समागत देवताओं से कहा—"मैं क्या कर सकता हूं, मेरे पास चक्र नहीं है। महादेव ने उसे निगल लिया था। तुम लोगों को दैत्यों से पीड़ित होना पड़ेगा। अच्छा! अभी तुम सब लोग जाओ। मैं तुम लोगों की रक्षा करूंगा।।४५-४६।।

ब्रह्मोवाच

ततो गतेषु देवेषु विष्णुश्चक्रार्थमुद्यतः। गोदावरीं ततो गत्वा शंभोः पूजां प्रचक्रमे॥४७॥
सुवर्णकमलैर्दिव्यैः सुगन्धैर्दशभिः शतैः। भक्तितो नित्यवत्पूजां चक्रे विष्णुरुमापतेः॥४८॥

एवं संपूज्यमाने तु तयोस्तत्त्वमिदं शृणं। कमलानां सहस्रे तु यदेकं नैव पूर्यते॥४९॥
तदाऽसुरारिः स्वं नेत्रमुत्पाट्यार्घ्यमकल्पयत्।
अर्घ्यपात्रं करे गृह्य सहस्रकमलान्वितम्।
ध्यात्वा शंभुं ददावर्घ्यमनन्यशरणो हरिः॥५०॥

ब्रह्मा कहते हैं—जब सभी देवता चले गये, तब नारायण चक्र लाने हेतु कृत प्रयत्न होकर गोदावरीतट पर जाकर शंभु की पूजा करने लगे। वे भक्तिभाव से एक सहस्र सुगन्धित कमलों से नित्य पूजा विधान से शंभु की पूजा करते रहते थे। तभी इस पूजाकाल में शंभुदेव तथा विष्णु के बीच में जो रहस्यमयी घटना घटित हो गयी थी, उसे श्रवण करो। एक बार पूजा काल में एक हजार कमलों में से एक कम हो गया था। वह मिला ही नहीं। कहीं से भी न मिल सका। तब कमलनयन हरि ने कोई उपाय न देख कर अपना एक नेत्र उखाड़ा तथा अर्घ्य हेतु असुर निकन्दन हरि ने उसे अर्घ्य में लेकर ध्यानान्त में शंभु को अर्पित करते कहा—॥४७-५०॥

विष्णुरुवाच

त्वमेव देव जानीषे भावमन्तर्गतं नृणाम्।
त्वमेव शरणोऽधीशोऽत्र का भवेद्विचारणा॥५१॥

श्रीहरि कहते हैं—हे देव! आप मनुष्यों के हृदय के अन्दर के भावों के भी ज्ञाता हैं। आप ही सबके शरण तथा सबके रचयिता भी हैं। इस सम्बन्ध में कोई सन्देह ही नहीं है॥५१॥

ब्रह्मोवाच

वदन्नुदश्रुनयनो निलिल्येऽसावितीश्वरे। भवानीसहितः शंभुः पुरस्तादभवत्तदा॥५२॥
गाढमालिङ्ग्य विविधैर्वरैरापूरयद्धरिम्। तदेव चक्रमभवन्नेत्रं चापि यथा पुरा॥५३॥
ततः सुरगणा सर्वे तुष्टुवुर्हरिशङ्करौ। गङ्गां चापि सरिच्छ्रेष्ठां देवं च वृषभध्वजम्॥५४॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं चक्रतीर्थमिति स्मृतम्। यस्यानुश्रवणेनैव मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥५५॥
तत्र स्नानं च दानं च यः कुर्यात्पितृतर्पणम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः पितृभिः स्वर्गभाग्भवेत्॥५६॥
तत्तु चक्राङ्कितं तीर्थमद्यापि परिदृश्यते॥५७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे चक्रतीर्थवर्णनं नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः॥१०९॥

गौतमीमाहात्म्ये चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥४०॥

ब्रह्मा कहते हैं—श्रीहरि इस प्रकार अर्चना तथा प्रार्थना करते महेश्वर के प्रति तल्लीन हो गये। तब शम्भुदेव ने भवानी के साथ उनके समक्ष आविर्भूत होकर हरि का गाढ़ आलिंगन करते हुये उनको वरदान देकर

संतुष्ट किया। तब पूर्ववत् चक्र तथा उखाड़ कर चढ़ाया गया नेत्र विष्णु के पास यथास्थान आ गया। उस समय समस्त देवगण ने हरि, हर तथा श्रेष्ठतम नदी गौतमीगंगा की स्तुति किया। उसी समय से यह तीर्थ चक्रतीर्थ के नाम से विख्यात हो गया। इसका माहात्म्य सुनने मात्र से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। वह पितरों के साथ स्वर्गलाभ करता है। यह चक्रांकित तीर्थ आज भी चक्र से चिह्नित लक्षित होता है।।५२-५७।।

।।नवाधिकशततम अध्याय समाप्त।।



अथ दशाधिकशततमोऽध्यायः

पिप्पलेश्वरतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

पिप्पलं तीर्थमाख्यातं चक्रतीर्थादनन्तरम्। यत्र चक्रेश्वरो देवश्चक्रमाप यतो हरिः॥१॥

यत्र विष्णुः स्वयं स्थित्वा चक्रार्थं शंकरं विभुम्।
पूजयामास तत्तीर्थं चक्रतीर्थमुदाहृतम्॥२॥
यत्र प्रीतोऽभवद्विष्णोः शंभुस्तत्पिप्पलं विदुः।
महिमानं यस्य वक्तुं न क्षमोऽप्यहिनायकः॥३॥

चक्रेश्वरो पिप्पलेशो नामधेयस्य कारणम्। शृणु नारद तद्भक्त्या साक्षाद्वेदीदितं मया॥४॥

दधीचिरिति विख्यातो मुनिरासीद्गुणान्वितः।
तस्य भार्या महाप्राज्ञा कुलीना च पतिव्रता॥५॥
लोपामुद्रेति या ख्याता स्वसा तस्या गभस्तिनी।
इति नाम्ना च विख्याता वडवेति प्रकीर्तिता॥६॥

दधीचेः सा प्रिया नित्यं तपस्तेपे तया महत्। दधीचिरग्निमान्नित्यं गृहधर्मपरायणः॥७॥

ब्रह्मा कहते हैं—चक्रतीर्थ के उपरान्त प्रसिद्ध पिप्पल तीर्थ है। चक्रेश्वर हरि ने यहीं अपना चक्रलाभ किया था। विष्णु ने स्वयं यहां विराजमान होकर चक्र के लिये शंकराराधन किया था। इसीलिये उसे चक्रतीर्थ नाम से अभिहित किया गया है। स्वयं अनन्त देव भी (सहस्र मुख से) इसकी महिमा व्यक्त नहीं कर सकते। शंभु जहां विष्णु पर प्रसन्न हो गये थे, वह स्थान पिप्पल तीर्थ है। हे नारद! चक्रेश्वर एवं पिप्पलेश्वर नाम पड़ने का कारण सुनो। पूर्वकाल में दधीचि नामक गुणी मुनि थे। उनकी पत्नी थीं लोपामुद्रा की बहन गभस्तिनी। लोगों ने उनका नाम बड़वा भी रखा था। दधीचि मुनि गृहकर्म में लगे रहकर नित्य अग्नि परिचर्या किया करते थे। वे अपनी प्रिया भार्या सहित इस प्रकार से नित्य कठोर तप किया करते थे।।१-७।।

भागीरथीं समाश्रित्य देवातिथिपरायणः। स्वकलत्ररतः शान्तः कुम्भयोनिरिवापरः॥८॥

तस्य प्रभावात्तं देशं नारयो दैत्यदानवाः।
आजग्मुर्मुनिशार्दूल यत्रागस्त्यस्य चाऽऽश्रमः॥९॥
तत्र देवाः समाजग्मू रुद्रादित्यास्तथाऽश्विनौ।
इन्द्रो विष्णुर्यमोऽग्निश्च जित्वा दैत्यानुपागतान्॥१०॥

जयेन जातसंहर्षाः स्तुताश्चैव मरुद्गणैः। दधीचिं मुनिशार्दूलं दृष्ट्वा नेमुः सुरेश्वराः॥११॥
दधीचिर्जातसंहर्षः सुरान्पूज्य पृथक्पृथक्। गृहकृत्यं ततश्चक्रे सुरेभ्यो भार्यया सह॥१२॥

ऋषि दधीचि का आश्रम पवित्र भागीरथी तट पर था। वे देवता तथा अतिथि सेवा में लगे रहते थे। वे अपनी पत्नी में रत, शान्त तथा साक्षात् महर्षि अगत्स्य के समान थे। उनके प्रभाववशात् उस देश तथा ऋषि आश्रम में कोई विरोधी तथा दैत्य-दानव नहीं आ पाते थे। हे मुनिप्रवर! इन महर्षि के तप के कारण वहां अगत्स्याश्रम तक में दैत्य-दानवादि को आने का साहस नहीं था। एक बार रुद्र, सूर्य, अश्विनीकुमारद्वय, इन्द्र, विष्णु, यम तथा अग्नि आदि प्रधान देवतागण ने संग्राम में दैत्यों को परास्त किया था। वे हर्षित तथा पुलकित होकर और मरुद्गणों से स्तुत होकर मुनिप्रवर दधीचि के आश्रम में आये तथा महर्षि दधीचि को प्रणाम किया। दधीचि ने प्रसन्न होकर पत्नी के साथ मिलकर देवगण का पृथक्-पृथक् सत्कार किया।।८-१२।।

पृष्टाश्च कुशलं तेन कथाश्चक्रुः सुरा अपि। दधीचिमब्रुवन्देवा भार्यया सुखितं पुनः॥१३॥

आसीनं हृष्टमनस ऋषिं नत्वा पुनः पुनः॥१४॥

दधीचि मुनि ने जब देव अतिथिगण को देखा था तभी से वे अत्यन्त हर्षित थे। तदनन्तर उन्होंने देवगण से कुशल प्रश्न पूछा। देवताओं ने कुशल वार्त्ता कहने के उपरान्त ऋषि को पुनः-पुनः प्रणिपात करके कहा—।।१३-१४।।

देवा ऊचुः

किमद्य दुर्लभं लोके ऋषेऽस्माकं भविष्यति।
त्वादृशः सकृपो येषु मुनिर्भूकल्पपादपः॥१५॥

एतदेव फलं पुंसां जीवतां मुनिसत्तम। तीर्थाप्लुतिर्भूतदया दर्शनं च भवादृशाम्॥१६॥
यत्स्नेहादुच्यतेस्माभिरवधारय तन्मुने। जित्वा दैत्यानिह प्राप्ता हत्वा राक्षसपुङ्गवान्॥१७॥

देवगण कहते हैं—हे ऋषिगण! आपके समान मृत्युलोक के कल्पवृक्षरूप मुनि ने हम पर दयालु रहकर कृपा किया है, तब जगत् में हमारे लिये क्या दुर्लभ है? हे मुनिश्रेष्ठ! इस जगत् में तीर्थस्नान, भूतगण (प्राणियों) पर दया तथा आप जैसे महापुरुषों का दर्शन मिलना ही देहधारियों के लिये परम फल है। हे मुनिवर! आपने स्नेह पूर्वक पूछा था, तभी हम कहते हैं। सुनिये। हमने दैत्यों पर जय पाकर तथा प्रबल राक्षसों का वध करके यहां आगमन किया है।।१५-१७।।

वयं च सुखिनो ब्रह्मंस्त्वयि दृष्टे विशेषतः।
नाऽऽयुधैः फलमस्माकं वोढुं नैव क्षमा वयम्॥१८॥

स्थाप्यदेशं न पश्याम आयुधानां मुनीश्वर।
स्वर्गे सुरद्विषो ज्ञात्वा स्थापितानि हरन्ति च॥१९॥
नयेयुरायुधानीति तथैव च रसातले। तस्मात्तवाश्रमे पुये स्थाप्यन्तेऽस्त्राणि मानद॥२०॥
नैवात्र किंचिद्भयमस्ति विप्र, न दानवेभ्यो राक्षसेभ्यश्च घोरम्।
त्वदाज्ञया रक्षितपुण्यदेशो, न विद्यते तपसा ते समानः॥२१॥
जितारयो ब्रह्मविदां वरिष्ठं, वयं च पूर्वं निहता दैत्यसंघाः।
अस्त्रैरलं भारभूतैः कृतार्थैः, स्थाप्यं स्थानं ते समीपे मुनीश॥२२॥

हे ब्रह्मन्! आपका साक्षात् दर्शन पाकर हम यथेष्ट सन्तुष्ट हैं। विशेष करके अभी हमें अस्त्र-शस्त्र की कोई आवश्यकता नहीं है। हम उसे ढोने में अक्षम हैं। हम ऐसा प्रदेश भी नहीं देख रहे हैं, जहां हम इन आयुधों को सुरक्षित रख सकें। यदि उनको हम स्वर्ग में रखते हैं, तब देवशत्रुगण उनका हरण वहां से कर सकते हैं। यदि हम इनको रसातल में रखते हैं, तब वे वहां से भी इन्हें ले जायेंगे। हे मानद! तभी हम आपके पुण्याश्रम में अपने अस्त्र-शस्त्र रख कर जा रहे हैं। हे विप्र! यहां पर हमें दानव किंवा राक्षस जनित किसी विषम भय की संभावना नहीं है। आपके प्रभाव से इस पुण्यस्थल की स्थिति पूर्ण सुरक्षित है। वस्तुतः आप ऐसा तपःशील कोई भी नहीं है। हे ब्राह्मणों के वरेण्य! हमने शत्रुओं को जीत लिया है। बहुत पहले ही दैत्यों का वध कर दिया है। अतएव इस भारभूत कृतार्थ अस्त्रों द्वारा हमें इस समय कोई प्रयोजन ही नहीं है। तभी इनको आपके यहां रखना चाहते हैं।।१८-२२।।

दिव्यान्भोगान्कामिनीभिः समेतान्देवोद्याने नन्दने संभजामः।
ततो यामः कृतकार्याः सहेन्द्राः, स्वं स्वं स्थानं चाऽऽत्युधानां च रक्षा॥२३॥
त्वया कृता जायतां तत्प्रशाधि समर्थस्त्वं रक्षणे धारणे च॥२४॥

हमं अब देवोद्यान नन्दनकानन जाकर वहां कामिनियों के साथ दिव्य भोगों का उपभोग करेंगे। तत्पश्चात् कृतकार्य होकर इन्द्र के साथ हम स्वस्थान चले जायेंगे। हमारे आयुधगण की रक्षा आप ही कर सकते हैं। आप ही इनका रक्षण धारण कार्य कर सकते हैं।।२३-२४।।

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्यमाकर्ण्य दधीचिरेवं, वाक्यं जगौ विबुधानेवमस्तु।
निवार्यमाणः प्रियशीलया स्त्रिया, किं देवकार्येण विरुद्धकारिणा॥२५॥
ये ज्ञातशास्त्राः परमार्थनिष्ठाः, संसारचेष्टासु गतानुरागः।
तेषां परार्थव्यसनेन किं मुने, येनात्र वाऽमुत्र सुखं न किंचित्॥२६॥

ब्रह्मा कहते हैं—देवगण की प्रार्थना सुनकर दधीचि ऋषि ने कहा—"ऐसा ही हो"। उनकी प्रियशील पत्नी ने ऋषि को बारम्बार निवारित करते हुये कहा—"ऐसे देवकार्य से वैमनस्य उत्पन्न करने के अतिरिक्त क्या होगा? इसे आप अपने हाथों में क्यों ले रहे हैं? शास्त्रज्ञाता, परमार्थनिष्ठ, सांसारिक गतिविधियों से

अनुराग न रखने वाले व्यक्ति को ऐसे कार्य से क्या लाभ, जो लौकिक तथा पारलौकिक सुख से रहित सा है।।२५-२६।।

देवद्विषो द्वेषमनुप्रयान्ति, दत्ते स्थाने विप्रवर्य शृणुष्व।
नष्टे हृते चाऽऽयुधानां मुनीश, कुप्यन्ति देवा रिपवस्ते भवन्ति॥२७॥
तस्मान्नेदं वेदविदां वरिष्ठ, युक्तं द्रव्ये परकीये ममत्वम्।
तावच्च मैत्री द्रव्यभावश्च तावन्नष्टे हृते रिपवस्ते भवन्ति॥२८॥

हे विप्रप्रवर! इस कार्य से देवताओं के विरोधी (दैत्य आदि) आपसे द्वेष करेंगे। हे विप्रवर! इन शस्त्रों को अपने यहां रखने पर यदि वे नष्ट हों अथवा हर लिये जायें, तब देवगण आपसे द्वेष करेंगे। उनकी आपसे शत्रुता हो जायेगी। हे वेदज्ञों में वरिष्ठ! पराये द्रव्य की रक्षा का भार लेकर उसके प्रति ममत्व रखना अनुचित है। तभी तक मैत्री बनी रहेगी, जब तक उनकी धरोहर सुरक्षित है। परन्तु धरोहर हरण होने किंवा नष्ट होने पर वे ही आपके शत्रु हो जायेंगे।।२७-२८।।

चेदस्ति शक्तिर्द्रव्यदाने ततस्ते, दातव्यमेवार्थिने किं विचार्यम्।
नो चेत्सन्तः परकार्याणि कुर्युर्वाग्भिर्मनोभिः कृतिभिस्तथैव॥२९॥
परस्वसंधारणमेतदेव, सद्भिर्निरस्तं त्यज कान्त सद्यः॥३०॥

नियम यह है कि यदि व्यक्ति में दान देने की शक्ति है, तब याचकों को दान देना उचित है। वहां पूर्वापर विचार करना ही नहीं चाहिये। यदि दान देने की शक्ति न हो, तब मन एवं कर्म से परोपकार करे। अर्थात् धन से यदि परोपकार न कर सके, तब मन एवं कर्म से करे। हे कान्त! साधु लोग कदापि पराये धरोहर की रक्षा का भार ग्रहण नहीं करते। आप ऐसी चेष्टा का त्याग करें। पराई सम्पत्ति को अपने यहां रखना सज्जनों ने उचित नहीं माना है।।२९-३०।।

ब्रह्मोवाच

एवं प्रियाया वचनं स विप्रो, निशम्य भार्यामिदमाह सुभ्रूम्॥३१॥

ब्रह्मा कहते हैं—दधीचि ऋषि ने पत्नी का यह वचन सुनकर कहा—।।३१।।

दधीचिरुवाच

पुरा सुराणामनुमान्य भद्रे, नेतीति वाणी न सुखं ममैति॥३२॥

ऋषि दधीचि कहते हैं—हे भद्रे! पहले मैंने देवताओं के प्रस्ताव पर "हां" कह दिया है। अब "ना" शब्द कहना अनुचित लग रहा है। वह वाणी को सुखप्रद नहीं लग रहा है।।३२।।

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वेरितं पत्युरिति प्रियायां, दैवं विनाऽन्यत्र नृणां समर्थम्।
तूर्ष्णीं स्थितायां सुरसत्तमास्ते, संस्थाप्य चास्त्राण्यतिदीप्तिमन्ति॥३३॥
नत्वा मुनीन्द्रं ययुरेव लोकान्दैत्यद्विषो न्यस्तशस्त्राः कृतार्थाः।
गतेषु देवेषु मुनिप्रवर्यो हृष्टोऽवसद्भार्यया धर्मयुक्तः॥३४॥

गते च काले ह्यतिविप्रयुक्ते, दैवे वर्षे संख्यया वै सहस्रे।
न ते सुरा आयुधानां मुनीश, वाचं मनश्चापि तथैव चक्रुः॥३५॥

ब्रह्मा कहते हैं—मुनिपत्नी ने पति का यह कथन सुनकर दैव को बली मानकर मौन धारण कर लिया। इधर वे देवता लोग अपने अत्युज्वल अस्त्र-शस्त्र वहां रख कर तथा मुनि को प्रणामोपरान्त कृतार्थ होकर वहां से चले गये। देवताओं के चले जाने के पश्चात् मुनिप्रवर दधीचि पत्नी के साथ धर्माचरण में निरत रह कर काल व्यतीत करने लगे। तदनन्तर इस घटना को एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये। इस दीर्घकाल के अन्तराल में भी देवगण ने अपने आयुधों हेतु आगमन नहीं किया। उन्होंने उनके सम्बन्ध में कभी कुछ पूछा तक नहीं, ले जाने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठा।।३३-३५।।

दधीचिरप्याह गभस्तिमोजसा, देवारयो मां द्विषतीह भद्रे।
न ते सुरा नेतुकामा भवन्ति, संस्थापितान्यत्र वदस्व युक्तम्॥३६॥

यह देख कर महर्षि दधीचि ने एक दिन अपनी पत्नी गभस्तिनी से कहा—"हे भद्रे! मैं देखता हूं कि देवशत्रु असुरगण मुझसे द्वेष रखते हैं। अभी तक देवता अपने अस्त्र-शस्त्र लेने नहीं आये। अब हमारा कर्त्तव्य क्या होना चाहिये? उचित परामर्श दो"।।३६।।

सा चाऽऽह कान्तं विनयादुक्तमेव, त्वं जानीषे नाथ यदत्र युक्तम्।
दैत्या हरिष्यन्ति महाप्रवृद्धास्तपोयुक्ता बलिनः स्वायुधानि॥३७॥
तदस्त्ररक्षार्थमिदं स चक्रे, मन्त्रैस्तु संक्षाल्य जलैश्च पुण्यैः।
तद्वारि सर्वास्त्रमयं सुपुण्यं, तेजोयुक्तं तच्च पपौ दधीचिः॥३८॥

गभस्तिनी ने विनीत भाव से उत्तर दिया—"हे प्रभो! इस सम्बन्ध में जो कुछ उचित कर्त्तव्य है, वह आपको तो स्वयं ज्ञात है। दैत्य लोग तपःशील तथा बली हैं। वे महासमृद्धि सम्पन्न लोग आपसे बलात् अस्त्र-शस्त्र हरण करके शीघ्र ले जा सकते हैं।" यह सुनकर ऋषि दधीचि ने सभी अस्त्रों के रक्षार्थ मन्त्रपूत पवित्र जल से सभी अस्त्रों को धोकर उस तेजपूर्ण पवित्र तथा समस्त आयुधों की शक्ति से युक्त जल का पान कर लिया!।।३७-३८।।

निर्वीर्यरूपाणि तदायुधानि, क्षयं जग्मुः क्रमशः कालयोगात्।
सुराः समागत्य दधीचिमूचुर्महाभयं ह्यागतं शात्रवं नः॥३९॥
ददस्व चास्त्राणि मुनिप्रवीर, यानि त्वदन्ते निहितानि देवैः।
दधीचिरप्याह सुरारिभीत्या, अनागत्या भवतां चाचिरेण॥४०॥
अस्त्राणि पीतानि शरीरसंस्थान्युक्तानि युक्तं मम तद्वदन्तु।
श्रुत्वा तदुक्तं वचनं तु देवाः, प्रोचुस्तमित्थं विनयावनम्राः॥४१॥
अस्त्राणि देहीति च वक्तुमेतच्छक्यं न वाऽन्यत्प्रतिवक्तुं मुनीन्द्र।
विना च तैः परिभूयेम नित्यं, पुष्टारयः क्व प्रयामो मुनीश॥४२॥

न मर्त्यलोके न तले न नाके, वासः सुराणां भविताऽद्य तात।
त्वं विप्रवर्यस्तपसा चैव युक्तो, नान्यद्वक्तुं युज्यते ते पुरस्तात्॥४३॥

तदनन्तर वे निर्जीव तेजोहीन आयुध समूह काल क्रमेण क्षयीभूत हो गये। तभी एक दिन देवगण ने आगमन करके विनम्रता से उन ऋषि से कहा कि "हे मुनिप्रवर! शत्रुओं द्वारा महाभय उपस्थित किया जा रहा है। अतः आपके यहां हमने जो सब आयुध रख दिया था, वह वापस करने की कृपा करिये।" तव ऋषि ने उनसे कहा—"आप लोग दीर्घकाल पर्यन्त अस्त्र वापस लेने नहीं आये। यह देख कर दैत्यों के भय के कारण उन सभी अस्त्र-शस्त्र को पान कर लिया। वह शरीरस्थ हो गये हैं। अब मुझे क्या करना है, वह कहिये।" ऋषि का कथन सुनकर उन देवगण ने नम्रता के साथ कहा—"हम इसके अतिरिक्त और क्या कह सकते हैं कि आप वे अस्त्र हमें दीजिये! हे मुनीन्द्र! उन अस्त्रों के अभाव में हम निश्चित रूप से पराजित हो जायेंगे। शत्रुदल दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। हम कहां जायें! हे तात! मृत्युलोक, पाताल, स्वर्ग कहीं भी हमें निवास का अधिकार नहीं रहेगा। आप तपस्वीगण में प्रधान हैं। आपसे अधिक कहना उचित भी नहीं है"।।३९-४३।।

विप्रस्तदोवाच मदस्थिसंस्थान्यस्त्राणि गृह्णन्तु न संशयोऽत्र।
देवास्तमप्याहुरनेन किं नो, ह्यस्त्रैर्हीनाः स्त्रीत्वमाप्ताः सुरेन्द्राः॥४४॥

ऋषि दधीचि कहते हैं—"आप लोगों के आयुध मेरी हड्डियों में स्थित हैं। अतः उसे ग्रहण करिये।" यह सुनकर देवगण ने कहा—"आपकी अस्थि में स्थित अस्त्रों से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? हम सब अस्त्रों के अभाव में स्त्री जैसे हो रहे हैं"।।४४।।

पुनस्तदा चाऽह मुनिप्रवीरस्त्यक्ष्ये जीवान्दैहिकान्योगयुक्तः।
अस्त्राणि कुर्वन्तु मदस्थिभूतान्यनुत्तमान्युत्तमरूपवन्ति॥४५॥
कुरुष्व चेत्याहुरदीनसत्त्वं, दधीचिमित्युत्तरमग्निकल्पम्।
तदा तु तस्य प्रियमीरयन्ती, न सांनिध्ये प्रातिथेयी मुनीश॥४६॥
ते चापि देवास्तामदृष्ट्वैव शीघ्रं, तस्या भीता विप्रमूचुः कुरुष्व।
तत्याज जीवान्दुस्त्यजान्प्रीतियुक्तो यथासुखं देहमिमं जुषध्वम्॥४७॥
मदस्थिभिः प्रीतिमन्तो भवन्तु, सुराः सर्वे किन्नु देहेन कार्यम्॥४८॥

ऋषि दधीचि ने पुनः कहा—"मैं योगबल से देहत्याग करूंगा। आप लोग मेरी अस्थियों से उत्तम, सुन्दर अस्त्र निर्माण करिये।" तब उन अग्नि के समान परम पुरुषार्थी, तेजस्वी ऋषि से देवगण ने कहा—"अच्छा! तब यही करिये।" उस समय वहां पर महर्षि दधीचि की प्रियवादिनी, अतिथि सेवा तत्परा पत्नी वहां उपस्थित नहीं थी। देवता उसके भय से भीत थे। उनको वहां न देखकर देवगण ने ऋषि से कहा—"आप यह कार्य शीघ्र करें।" तब दधीचि ने सन्तुष्ट मन से अत्यन्त कष्ट से त्यागने योग्य प्राणों को त्याग दिया। उस समय महर्षि ने कहा—मेरे देह का वांछित उपयोग करिये। समस्त देवता मेरी अस्थियों से प्रसन्न हों। मैं इस देह का और क्या करूंगा? (परोपकार ही इससे साधित हो)।।४५-४८।।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वाऽसौ बद्धपद्मासनस्थो, नासाग्रदत्ताक्षिप्रकाशप्रसन्नः।
वायु सवह्निं मध्यमोद्घाटयोगान्नीत्वा शनैर्दहराकाशगर्भम्॥४९॥
यदप्रमेयं परमं पदं यद्यद्ब्रह्मरूपं यदुपासितव्यम्।
तत्रैव विन्यस्य धियं महात्मा, सायुज्यतां ब्रह्मणोऽसौ जगाम॥५०॥
निर्जीवतां प्राप्तमभीक्ष्य देवाः, कलेवरं तस्य सुराश्च सम्यक्।
त्वष्टारमप्यूचुरतित्वरन्तः, कुरुष्व चास्त्राणि बहूनि सद्यः॥५१॥
स चापि तानाह कथं नु कार्यं, कलेवरं ब्राह्मणस्येह देवाः।
बिभेमि कर्तुं दारुणं चाक्षमोऽहं, विदारितान्यायुधान्युत्तमानि॥५२॥
तदस्थिभूतानि करोमि सद्यस्ततो देवा गाः समूचुस्त्वरन्तः॥५३॥

ब्रह्मा कहते हैं—दधीचि मुनि ने यह कहने के साथ ही पद्मासनासीन होकर नासाग्र पर दृष्टि को एकाग्र किया। उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक योगबल से योग से मध्य को उद्घाटित किया (मध्यमार्ग सुषुम्ना में प्रवेश किया)। उन्होंने वायु तथा अग्नि को दीप्त करके शनैः-शनैः हृदयाकाश गर्भ में उन्नीत किया। जो अप्रमेय उपासितव्य ब्रह्मरूप परमपद है, उसमें बुद्धि स्थापित करके महात्मा दधीचि ने ब्रह्मसायुज्य लाभ किया। तब देवताओं ने उनके शरीर को प्राणरहित देखकर विश्वकर्मा से कहा—"हे त्वष्टा! (विश्वकर्मा) आप इनकी अस्थियों से प्रभूत अस्त्रों का निर्माण करिये।" तब विश्वकर्मा ने कहा—"मैं ब्राह्मण का शरीर कैसे विदीर्ण करूं? कैसे अस्थि अलग करके उत्तम अस्त्र निर्माण करूं? इस दारुण कर्म को करने में मुझे भय प्रतीत हो रहा है। यह मेरी क्षमता के परे है। हां! यदि मुझे अस्थि अलग से मिले, तभी मैं शीघ्र अस्त्र बना सकूंगा।" यह सुनकर देवगण ने गौओं से कहा—॥४९-५३॥

देवा ऊचुः

वज्रं मुखं वः क्रियते हितार्थं, गावो देवैरायुधार्थं क्षणेन।
दधीचिदेहं तु विदार्य यूयमस्थीनि शुद्धानि प्रयच्छताद्य॥५४॥

ब्रह्मोवाच

ता देववाक्याच्च तथैव चक्रुः, संलिह्य चास्थीनि ददुः सुराणाम्।
सुरास्त्वरा जग्मुरदीनसत्त्वाः, स्वमालयं चापि तथैव गावः॥५५॥

देवता कहते हैं—हे गौओं! हम आज देवहितार्थ तथा तुम लोगों के हितार्थ तुम सबका वज्रमुख बना रहे हैं। तुम सब दधीचि की देह अति त्वरित रूप से विदीर्ण करके अस्थियों को शुद्ध कर दो (मांस से पृथक् कर दो)। इससे देवार्थ अस्त्र-शस्त्र बन सकें।॥५४-५५॥

कृत्वा तथाऽस्त्राणि च देवतानां, त्वष्टा जगामाथ सुराज्ञया तदा।
ततश्चिराच्छीलवती सुभद्रा, भर्तुःप्रिया बालगर्भा त्वरन्ती॥५६॥

करे गृहीत्वा कलशं वारिपूर्णमुमां नत्वा फलपुष्पैः समेत्य।
अग्निं च भर्तारमथाऽऽश्रमं च, संद्रष्टुकामा ह्याजगामाथ शीघ्रम्॥५७॥

ब्रह्मा कहते हैं—देवगण के कथनानुरूप गौओं ने दधीचि के शरीर को चाट कर अस्थियों को साफ करके देवताओं को प्रदान किया। कार्य सम्पन्न हो जाने पर देवगण त्वरितरूपेण स्वस्थान चले गये। गौयें भी अपने गन्तव्य पर चली गईं। त्वष्टा शीघ्रता से देवगण के अस्त्र निर्मित करके उनकी आज्ञा पाकर चले गये। इस घटना के पश्चात् सुशीला तथा गर्भवती दधीचि पत्नी विलम्ब से उमा देवी का पूजन सम्पन्न करके हाथों में जलकलश तथा फल-पुष्प लिये वहां आ गई। वे अग्नि, आश्रम तथा पति की दर्शन कामना से पूर्ण हृदय के साथ शीघ्रता पूर्वक वहां आईं।।५६-५७।।

आगच्छन्तीं तां प्रातिथेयीं तदानीं, निवारयामास तदोल्कपातः।
सा संभ्रमादागता चाऽऽश्रमं स्वं, नैवापश्यत्तत्र भर्तारमग्रे॥५८॥
क्व वा गतश्चेति सविस्मया सा, पप्रच्छ चाग्निं प्रातिथेयी तदानीम्।
अग्निस्तदोवाच सविस्तरं तां, देवागमं याचनं वै शरीरे॥५९॥
अस्थ्नामुपादानमथ प्रयाणं, श्रुत्वा सर्वं दुःखिता सा बभूव।
दुःखोद्वेगात्सा पपाताथ पृथ्व्यां, मन्दं मन्दं वह्निनाऽऽश्वासिता च॥६०॥

जब वे अतिथि सेवा परायण ऋषिपत्नी आ रही थीं, तब उनको आने से रोकने हेतु उल्कापात भी हुआ। इससे उनके मन में आशंका हो गई कि अपशकुन हो गया है। वे दौड़ती हुई आश्रम पहुंचीं! उनके मन में इन अपशकुन से और अधिक आशंका हो रही थी। लेकिन आश्रम आने पर उन्होंने अपने पति को नहीं देखा। पति को न देखकर विस्मय के साथ उन अतिथिसेवा तत्पर रहने वाली गभस्तिनी ने अग्नि से उनके सम्बन्ध में प्रश्न किया। उसके उत्तर में अग्निदेव ने देवगण का आगमन, उन देवों की प्रार्थना, अस्थिसंग्रह तथा अस्थि के साथ प्रयाण इत्यादि सब कुछ घटनाक्रम का वर्णन कर दिया। यह सुनकर ऋषिपत्नी अतीव दुःखी हो गयीं। दुःख के आवेगवशात् वे भूपतित हो गयीं। अग्नि उनको शनैः-शनैः आश्वस्त कर रहे थे।।५८-६०।।

प्रातिथेय्युवाच

शापेऽमराणां तु नाहं समर्था, अग्निं प्राप्स्ये किं नु कार्यं भवेन्मे॥६१॥

प्रातिथेयी (ऋषिपत्नी गभस्तिनी) कहती हैं—मैं देवताओं को शाप देना उचित नहीं मानती। अतः अग्नि में प्रवेश करूंगी। इसके अतिरिक्त मेरे लिये क्या कर्त्तव्य शेष है?।।६१।।

ब्रह्मोवाच

कोपं च दुखं च नियम्य साध्वी, तदाऽवादीद्धर्मयुक्तं च भर्तुः॥६२॥

ब्रह्मा कहते हैं—साध्वी प्रातिथेयी ने यह कहने के अनन्तर अति कष्ट तथा कोपमिश्रित दुःख पूर्वक तथा दुःख पर संयम करते पति के लिये यह धर्मसंगत बातें कहना प्रारम्भ किया।।६२।।

प्रातिथेय्युवाच

उत्पद्यते यत्तु विनाशि सर्वं, न शोच्यमस्तीति मनुष्यलोके।
गोविप्रदेवार्थमिह त्यजन्ति, प्राणान्प्रियान्पुण्यभाजो मनुष्याः॥६३॥

संसारचक्रे परिवर्तमाने देहं समर्थं धर्मयुक्तं त्ववाप्य।
प्रियान्प्राणान्देवविप्रार्थहेतोस्ते वै धन्याः प्राणिनो ये त्यजन्ति॥६४॥
प्राणाः सर्वेऽस्यापि देहान्वितस्य, यातारो वै नात्र संदेहलेशः।
एवं ज्ञात्वा विप्रगोदेवदीनाद्यर्थं चैनानुत्सृजन्तीश्वरास्ते॥६५॥
निवार्यमाणोऽपि मया प्रपन्नया, चकार देवास्त्रपरिग्रहं सः।
मनोगतं वेत्त्यथवा विधातुः, को मर्त्यलोकातिगचेष्टितस्य॥६६॥

प्रातिथेयी कहती हैं—जगत् में जो कुछ उत्पन्न होता है, वह सब नश्वर है। अतः कुछ भी शोक का विषय नहीं है। पुण्यात्मा लोग ही गौ, विप्र तथा देवता के लिये अपना प्राण त्याग करते हैं। इस परिवर्त्तनात्मक संसार में धर्ममय समर्थ देह लाभ करके जो देवता तथा विप्र हेतु अपने प्रिय प्राणों का त्याग करते हैं, वही यथार्थतः धन्य हैं। सभी देहधारियों का प्राण एक न एक दिन देह से निकल जाता है। यह जानकर जो गौ-विप्र तथा देवार्थ प्राणोत्सर्ग कर देते हैं, वे ही प्रकृत रूप से ईश्वरवत् हैं। अहो! मैंने तो पति को रोका था। तथापि मेरे स्वामी ने देवगण के अस्त्र की धरोहर रख लिया! अथवा विधाता की क्या इच्छा है? कौन जान सकता है?।।६३-६६।।

ब्रह्मोवाच

इत्येवमुक्त्वाऽऽपूज्य चाग्नीन्यथावद्भर्तुस्त्वचालोमभिः सा विवेश।
गर्भस्थितं बालकं प्रातिथेयी, कुक्षिं विदार्याथ करे गृहीत्वा॥६७॥
नत्वा च गङ्गां भुवमाश्रमं च, वनस्पतीनोषधीराश्रमस्थान्॥६८॥

प्रातिथेय्युवाच

पित्रा हीनो बन्धुभिर्गोत्रजैश्च, मात्रा हीनो बालकः सर्व एव।
रक्षन्तु सर्वेऽपि च भूतसंघास्तथौषध्यो बालकं लोकपालाः॥६९॥
ये बालकं मातृपितृप्रहीणं, सनिर्विशेषं स्वतनुप्ररूढैः।
पश्यन्ति रक्षन्ति त एव नूनं, ब्रह्मादिकानामपि वन्दनीयाः॥७०॥

ब्रह्मा कहते हैं—प्रातिथेयी ने यह कहा और यथाविधि अग्नि में पति की त्वचा तथा रोम आदि लेकर प्रविष्ट हो गईं, लेकिन उन्होंने अग्नि प्रवेश के पूर्व ही कोख को विदीर्ण करके गर्भस्थ बालक को हाथ पर रक्खा। वहां उन्होंने आश्रमस्थ वनस्पति, औषधि, पृथिवी, गंगा का आह्वान करके कहा—"इस पिता-माता, ज्ञाति-बन्धु रहित बालक की भूतगण, औषधिगण, लोकपालगण रक्षा करें। जो मातृ-पितृहीन बालक का पालन अपने स्वयं के पुत्र की तरह करते हैं, वे सौभाग्यशाली जन ब्रह्मादि देवों द्वारा भी वन्दनीय हैं।।६७-७०।।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा चात्यजद्बालं भर्तृचित्तपरायणा।
पिप्पलानां समीपे तु न्यस्य बालं नमस्य च॥७१॥

अग्निं प्रदक्षिणीकृत्य यज्ञपात्रसमन्विता। विवेशाग्निं प्रातिथेयी भर्त्रा सह दिवं ययौ॥७२॥
रुरुदुश्चाऽऽश्रमस्था ये वृक्षाश्च वनवासिनः।
पुत्रवत्पोषिता येन ऋषिणा च दधीचिना॥७३॥
विना तेन न जीवामस्तया मात्रा विना तथा।
मृगाश्च पक्षिणः सर्वे वृक्षाः प्रोचुः परस्परम्॥७४॥

ब्रह्मा कहते हैं—पतिगतप्राणा प्रातिथेयी ने यह कहकर अपने बालक को पीपल वृक्ष के नीचे रख दिया। तदनन्तर यज्ञपात्र हाथों में धारण करके अग्नि प्रदक्षिणा तथा प्रणति निवेदनोपरान्त अग्नि में प्रवेश करके पति के साथ स्वर्गगामी हो गईं। तब आश्रमस्थ वृक्षादि एवं वन्य जन्तुगण जो दधीचि मुनि द्वारा पुत्रवत् पालित थे, रुदन करते कहने लगे कि "अब हम ऐसे माता-पिता बिना कैसे जीवन धारण करें?"।।७१-७४।।

वृक्षा ऊचुः

स्वर्गमासेदुषोः पित्रोस्तदपत्येष्वकृत्रिमम्। ये कुर्वन्त्यनिशं स्नेहं त एव कृतिनो नराः॥७५॥
दधीचिः प्रातिथेयी वा वीक्षतेऽस्मान्यथा पुरा।
तथा पिता न माता वा धिगस्मान्पापिनो वयम्॥७६॥
अस्माकमपि सर्वेषामतः प्रभृति निश्चितम्।
बालो दधीचिः प्रातिथेयी बालो धर्मः सनातनः॥७७॥

तत्पश्चात् वे मृगजन्तु, पक्षी, वृक्षादि परस्परतः कहने लगे—"जो प्राणी माता-पिता के स्वर्गगामी हो जाने पर उनकी सन्तान के प्रति अकृत्रिम स्नेह व्यवहार करते हैं, वे ही यथार्थ भाग्यवान् हैं। कोई माता-पिता भी स्व-सन्तान के प्रति वह भाव नहीं रख सकते, जो पिता दधीचि तथा माता प्रातिथेयी हमारे प्रति रखते थे। हमारा ऐसे माता-पिता से वियोग हो गया। वस्तुतः हम पातकी हैं। हम शपथ लेते हैं कि आज से हम सभी इस बालक का पालन इस धारणा से करेंगे कि यह वही प्रातिथेयी एवं दधीचि ही हैं। यही हमारा धर्म है।।७५-७७।।

ब्रह्मोवाच

एवमुक्त्वा तदौषध्यो वनस्पतिसमन्विताः। सोमं राजानमभ्येत्य याचिरेऽमृतमुत्तमम्॥७८॥
स चापि दत्तवांस्तेभ्यः सोमोऽमृतमनुत्तमम्। ददुर्बालाय ते चापि अमृतं सुरवल्लभम्॥७९॥
स तेन तृप्तो ववृधे शुक्लपक्षे यथा शशी।
पिप्पलैः पालितो यस्मात्पिप्पलादः स बालकः।
प्रवृद्धः पिप्पलानेवमुवाच त्वतिविस्मितः॥८०॥

ब्रह्मा कहते हैं—वहां वनजन्तु, वनस्पतियों के साथ औषधियों ने यह कहा तथा वे वनस्पति अपने राजा सोम के पास जाकर अमृत हेतु प्रार्थना करने लगे। सोम (चन्द्रमा) ने उनको अमृत प्रदान किया, जिसे लाकर उन्होंने उस देवप्रिय अमृत को मुनिबालक को पिला दिया। वह बालक अमृतपान से सन्तुष्ट होकर

शुक्लपक्ष के चन्द्रवत् बढ़ने लगा। पीपल के वृक्षों ने उसकी रक्षा तथा पालन किया था। अतः उसे पिप्पलाद नाम प्रदान किया गया। जब वह कुछ बड़ा हो गया, तब उसने विस्मय के साथ पीपल वृक्षों से कहा—।।७८-८०।।

पिप्पलाद उवाच

मानुषेभ्यो मानुषास्तु जायन्ते पक्षिभिः खगाः।
बीजेभ्यो वीरुधो लोके वैषम्यं नैव दृश्यते।
वार्क्षस्त्वहं कथं जातो हस्तपादादिजीववान्॥८१॥

बालक पिप्पलाद कहता है—मनुष्य से मनुष्य, पक्षी से पक्षी, बीज से वृक्षादि उत्पन्न होते हैं। जगत् में इसमें विपरीत स्थिति परिलक्षित नहीं होती। तथापि मैं हाथ-पैर युक्त जीव वृक्षों से कैसे उत्पन्न हो गया?।।८१।।

ब्रह्मोवाच

वृक्षास्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वमूचुर्यथाक्रमम्। दधीचेर्मरणं साध्व्यास्तथा चाग्निप्रवेशनम्॥८२॥
अस्थ्नां संहरणं देवैरेतत्सर्वं सविस्तरम्। श्रुत्वा दुःखसमाविष्टो निपपात तदा भुवि॥८३॥
आश्वासितः पुनर्वृक्षैर्वाक्यैर्धर्मार्थसंहितैः। आश्वस्तः स पुनः प्राह तदौषधिवनस्पतीन्॥८४॥

ब्रह्मा कहते हैं—वृक्षों ने यह सुनकर समस्त घटनाक्रम यथावत् पिप्पलाद से कह दिया। दधीचिमरण, पतिव्रता माता का अग्निप्रवेश, देवताओं द्वारा दधीचि की अस्थि का संग्रह—यह सब पुत्र पिप्पलाद से कह दिया। यह सुनकर बालक दुःख से अभिभूत मूर्च्छित सा भूपतित हो गया। तब वृक्षों ने उससे धर्मार्थपूर्ण उपदेश देकर आश्वस्त किया, जिससे उसने कुछ स्वस्थ होकर पुनः औषधियों तथा वनस्पतियों से कहा—।।८२-८४।।

पिप्पलाद उवाच

पितृहन्तॄन्हनिष्येऽहं नान्यथा जीवितुं क्षमः। पितुर्मित्राणि शत्रूंश्च तथा पुत्रोऽनुवर्तते॥८५॥
स एव पुत्रो योऽन्यस्तु पुत्ररूपो रिपुः स्मृतः। वदन्ति पितृमित्राणि तारयन्त्यहितानपि॥८६॥

पिप्पलाद कहता है—मैं पिता के हत्यारों का नाश करूंगा। अन्यथा मेरा जीना व्यर्थ है। पुत्र को पिता के शत्रु से शत्रुवत् तथा पिता के मित्र के साथ मित्रवत् व्यवहार करना चाहिये। इस बात पर अडिग रहकर इसे सिद्ध करने वाला ही पुत्र कहलाने योग्य है अन्यथा वह तो पुत्ररूपी शत्रु है। जो इसे सिद्ध करता है (यथार्थतः वैसा करता है) वही पितरों का उद्धारक है। यह नीतिज्ञों का मत है।।८५-८६।।

ब्रह्मोवाच

वृक्षास्तं बालमादाय सोमान्तिकमथाऽऽययुः।
बालवाक्यं तु ते वृक्षाः सोमायाथ न्यवेदयन्।
श्रुत्वा सोमोऽपि तं बालं पिप्पलादमभाषत॥८७॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब वृक्षगण बालक को सोम के यहां ले गये। उन्होंने बालक की प्रतिज्ञा सोम से निवेदित किया। तब सोमदेव बालक से कहने लगे।।८७।।

सोम उवाच

गृहाण विद्यां विधिवत्समग्रां, तपःसमृद्धिं च शुभां च वाचम्।
शौर्यं च रूपं च बलं च बुद्धिं, संप्राप्स्यसे पुत्र मदाज्ञया त्वम्॥८८॥

सोम कहते हैं—हे पिप्पलाद! पहले तुम सविधि विद्या, शिक्षा, समस्त तपःसमृद्धि, कल्याणी वाणी, शौर्य, रूप, बल, बुद्धि अर्जित करो। मेरी आज्ञा से यह सब तुमको प्राप्त होंगी।।८८।।

ब्रह्मोवाच

पिप्पलादस्तमप्याह ओषधीशं विनीतवत्॥८९॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब पिप्पलाद ने औषधिपति से विनीत भाव से कहा—।।८९।।

पिप्पलाद उवाच

सर्वमेतद्वृथा मन्ये पितृहन्तृविनिष्कृतिम्। न करोम्यत्र यावच्च तस्मात्तत्प्रथमं वद॥९०॥
यस्मिन्देशे यत्र काले यस्मिन्देवे च मन्त्रके।
यत्र तीर्थे च सिध्येत मत्संकल्पः सुरोत्तम॥९१॥

पिप्पलाद कहते हैं—हे सुरप्रवर! जब तक मैं अपने पिता की हत्या का बदला नहीं लेता, तब तक उस कार्य में कोई सहायक न होने वाला यह वर मेरे लिये वृथा ही है। मैं इसे स्वीकार भी नहीं कर सकता। सर्वाग्र में आप यह कहिये कि किस देश में, कहां, किस तीर्थ में जाकर किस मन्त्र तथा देवता की आराधना द्वारा मेरा संकल्प सिद्ध होगा, वह कहिये।।९०-९१।।

ब्रह्मोवाच

चन्द्रः प्राह चिरं ध्यात्वा भुक्तिर्वा मुक्तिरेव वा।
सर्वं महेश्वराद्देवाज्जायते नात्र संशयः॥९२॥
स सोमं पुनरप्याह कथं द्रक्ष्ये महेश्वरम्। बालोऽहं बालबुद्धिश्च न सामर्थ्यं तपस्तथा॥९३॥

ब्रह्मा कहते हैं—चन्द्रमा ने कुछ समय तक ध्यान करके कहा—"यह निःसन्दिग्ध है कि भुक्ति-मुक्ति सब केवल महेश्वर के ही पास है। तब बालक ने पुनः चन्द्रमा से पूछा—"मैं तो बालक एवं बालबुद्धि एवं तप करने में असमर्थ, शक्ति रहित हूं। ऐसी स्थिति में मुझे महेश्वर दर्शन कैसे मिलेगा"?।।९२-९३।।

चन्द्र उवाच

गौतमीं गच्छ भद्र त्वं स्तुहि चक्रेश्वरं हरम्। प्रसन्नस्तु तवेशानो ह्यल्पायासेन वत्सक॥९४॥
प्रीतो भवेन्महादेवः साक्षात्कारुणिकः शिवः।
आस्ते साक्षात्कृतः शंभुर्विष्णुना प्रभविष्णुना॥९५॥

वरं च दत्तवान्विष्णोश्चक्रं च त्रिदशार्चितम्।
गच्छ तत्र महाबुद्धे दण्डके गौतमीं नदीम्॥९६॥
चक्रेश्वरं नाम तीर्थं जानन्त्योषधयस्तु तत्। तं गत्वा स्तुहि देवेशं सर्वभावेन शंकरम्।
स ते प्रीतमनास्तात सर्वान्कामान्प्रदास्यति॥९७॥

चन्द्रमा कहते हैं—हे भद्र! तुम गौतमीतट पर जाओ तथा वहां चक्रेश्वर शिव का स्तव करो। हे वत्स! वे ईशान देव अल्प प्रयास में सिद्ध हो जायेंगे। वे परम कारुणिक प्रभु महादेव शिव भक्त के प्रति प्रतिमान होकर वहां सदा विराजमान रहते हैं। प्रभविष्णु विष्णु ने उनका वहां साक्षात्कार किया था। शंभु ने वहां विष्णु को देवपूजित सुदर्शन चक्र प्रदानरूप वर दिया था। हे महाबुद्धिमान्! दण्डकारण्य में से गौतमी प्रवाहित होती है। तुम वहां प्रस्थान करो। वहां जो चक्रतीर्थ है, वह औषधियों को भी ज्ञात है। तुम वहां सर्व प्रकार शंकराराधन करो। स्तव करो। हे तात! प्रभु महेश्वर प्रसन्न होकर तुमको सभी वांछित प्रदान करेंगे।।९४-९७।।

ब्रह्मोवाच

तद्राजवचनाद्ब्रह्मन्पिप्पलादो महामुनिः। आजगाम जगन्नाथो यत्र रुद्रः स चक्रदः॥९८॥
तं बालं कृपयाऽऽविष्टाः पिप्पलाः स्वाश्रमान्ययुः।
गोदावर्यां ततः स्नात्वा नत्वा त्रिभुवनेश्वरम्।
तुष्टाव सर्वभावेन पिप्पलादः शिवं शुचिः॥९९॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे महामुनि नारद! वनौषधियों के राजा सोम के कथनानुरूप महामुनि पिप्पलाद वहां गये, जहां जगत्पति रुद्र चक्रेश्वररूपी होकर विराजित हैं। बालक को वहां तक ले जाकर सभी पीपल वृक्ष अपने आश्रम (स्थान पर) वापस चले आये। पिप्पलाद ने गोदावरी तट पर गोदावरी जल से स्नान किया। उन्होंने वहां त्रिभुवनपति को प्रणाम करके पवित्र मन-देह के साथ एकाग्रता से शिव स्तव किया।।९८-९९।।

पिप्पलाद उवाच

सर्वाणि कर्माणि विहाय धीरास्त्यक्तैषणा निर्जितचित्तवाताः।
यं यान्ति मुक्त्यै शरणं प्रयत्नात्तमादिदेवं प्रणमामि शम्भुम्॥१००॥

पिप्पलाद कहते हैं—धीरबुद्धि साधुवृन्द प्राण-मन जय करके निखिल वासना त्याग कर तथा सर्वकर्म परित्याग पूर्वक मुक्तिलाभार्थ एकान्तिक भाव से जिनकी शरण लेकर रहते हैं, मैं उन आदिदेव शम्भु को प्रणाम करता हूं!॥१००।।

यः सर्वसाक्षी सकलान्तरात्मा, सर्वेश्वरः सर्वकलानिधानम्।
विज्ञाय मच्चित्तगतं समस्तं, स मे स्मरारिः करुणां करोतु॥१०१॥

जो सर्वसाक्षी, सबके अन्तरात्मा, सबके ईश्वर तथा सभी कलाओं के कोशरूप हैं, उन कामदेव नाशक मेरे मन की अभिलाषा को जानकर उसके प्रति तथा मेरे प्रति करुणा करें (अर्थात् अभिलाषा पूर्ण करें)।।१०१।।

दिगीश्वराञ्जित्य सुरार्चितस्य, कैलासमान्दोलयतः पुरारेः।
अङ्गुष्ठकृत्यैव रसातलादधोगतस्य तस्यैव दशाननस्य॥१०२॥

आलूनकायस्य गिरं निशम्य, विहस्य देव्या सह दत्तमिष्टम्।
तस्मै प्रसन्नः कुपितोऽपि तद्वदयुक्तदाताऽसि महेश्वर त्वम्॥१०३॥

हे महेश्वर! दिक्पालगण को जीतकर जिस रावण ने सुरपूज्य त्रिपुरारि की कैलासपुरी को हिला दिया था, उस दैत्य को जिन्होंने मात्र अपने अंगूठे के भार से ही दबा कर रसातलगत कर दिया था, तथापि उस भग्नदेह रावण की कातर प्रार्थना सुनकर आप क्रोधित होने पर भी भगवती पार्वती सहित उसके प्रति प्रसन्न हो गये तथा आपने उसे वांछित वर भी दे दिया। आप तो औढ़रदानी तभी कहे जाते हैं।।१०२-१०३।।

सौत्रामणीमृद्धिमधः स चक्रे, योऽर्चां हरौ (रे) नित्यमतीव कृत्वा।
बाणः प्रशस्यः कृतवानुच्चपूजां, रम्यां मनोज्ञां शशिखण्डमौलेः॥१०४॥

जो बाणासुर नित्य शिवपूजा करता था, वह शशिशेखर शिव की पूजा करके अपनी सम्पदा से इन्द्र के ऐश्वर्य को भी अपनी तुलना में न्यून कर चुका था। उसने इस पूजा के प्रभाव से सौत्रामणि यज्ञ की सिद्धि को भी अल्प साबित कर दिया था।।१०४।।

जित्वा रिपून्देवगणान्प्रपूज्य, गुरुं नमस्कर्तुमगाद्विशाखः।
चुकोप दृष्ट्वा गणनाथमूढमङ्के तमारोप्य जहास सोमः॥१०५॥
ईशाङ्करूढोऽपि शिशुस्वभावान्न मातुरङ्कं प्रमुमोच बालः।
क्रुद्धं सुतं बोधितुमप्यशक्तस्ततोऽर्धनारित्वमवाप सोमः॥१०६॥

एक बार भगवान् कार्त्तिकेय ने शत्रुगण पर विजय पाकर देवगण को आप्यायित किया था। तब जब वे अपने पिता को प्रणाम करने गये, तब उनकी गोद में गणेश को बैठा देखकर कुपित हो गये थे। तब शम्भु ने उनको भी गोद में ले लिया और हंसने लगे। बालक कार्त्तिकेय ने अपने बाल स्वभाववशात् ईशान देव की गोद में आसीन माता की गोद को नहीं छोड़ा था। जब आप किसी उपाय से अपने पुत्र को समझा नहीं सके, तब आपने इस सम्बन्ध में स्वयं को निरूपाय देख कर पार्वती सहित अर्द्धनारीश्वर रूप ग्रहण किया था।।१०५-१०६।।

ब्रह्मोवाच

ततः स्वयंभूः सुप्रीतः पिप्पलादमभाषत॥१०७॥

ब्रह्मा कहते हैं—भगवान् प्रसन्न होकर पिप्पलाद से कहने लगे।।१०७।।

शिव उवाच

वरं वरय भद्रं ते पिप्पलाद यथेप्सितम्॥१०८॥

भगवान् ईशानदेव कहते हैं—हे पिप्पलाद! मंगल हो। तुम वांछित वर ग्रहण करो।।१०८।।

पिप्पलाद उवाच

हतो देवैर्महादेव पिता मम महायशाः। अदाम्भिकः सत्यवादी तथा माता पतिव्रता॥१०९॥
देवेभ्यश्च तयोर्नाशं श्रुत्वा नाथ सविस्तरम्। दुःखकोपसमाविष्टो नाहं जीवितुमुत्सहे॥११०॥

तस्मान्मे देहि सामर्थ्यं नाशयेयं सुरान्यथा।
अवध्यसेव्यस्त्रैलोक्ये त्वमेव शशिशेखर॥१११॥

पिप्पलाद कहते हैं—हे महादेव! देवताओं ने मेरे महायशस्वी पिता को नष्ट कर दिया। वे अदाम्भिक तथा सत्यवक्ता थे। मेरी माता पतिव्रता थीं। हे नाथ! उन दोनों की विनाश स्थिति देवताओं के हाथों सुनकर मैं दुःख तथा क्रोध से अभिभूत हूं। मेरी अब जीने की इच्छा नहीं है। हे देव! आप मुझे ऐसा सामर्थ्य प्रदान करिये, जिसके द्वारा मैं देवताओं का नाश कर सकूं। हे शशिशेखर! आप त्रैलोक्य में देवगण से सेवित हैं। आप ही अवश्य एवं सेवा योग्य हैं।।१०९-१११।।

ईश्वर उवाच

तृतीयं नयनं द्रष्टुं यदि शक्नोषि मेऽनघ।
ततः समर्थो भविता देवांश्छेदयितुं भवान्॥११२॥

ईश्वर कहते हैं—हे निष्पाप! यदि तुम मेरे तृतीय नयन का दर्शन कर सको, तब तुम देव विनाश कर सकोगे।।११२।।

ब्रह्मोवाच

ततो द्रष्टुं मनश्चक्रे तृतीयं लोचनं विभोः।
न शशाक तदोवाच न शक्तोऽस्मीति शंकरम्॥११३॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब पिप्पलाद ने महादेव के तीसरे नेत्र को देखने का प्रयत्न किया, तथापि वे देख नहीं सके। तब उन्होंने शंकर से कहा—"मैं उसका दर्शन नहीं कर पा रहा हूं।" तब शिव ने कहा—।।११३।।

ईश्वर उवाच

किंचित्कुरु तपो बाल यदा द्रक्ष्यसि लोचनम्।
तृतीयं त्वं तदाऽभीष्टं प्राप्स्यसे नात्र संशयः॥११४॥

ईश्वर कहते हैं—हे बालक! तुम कुछ समय तप करो। उससे तुम मेरा तृतीय नेत्र देख सकोगे तथा तब तुमको निश्चित रूप से समस्त वांछित लाभ होगा।।११४।।

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वेशानवाक्यं तपसे कृतनिश्चयः। दधीचिसूनुर्धर्मात्मा तत्रैव बहुलाः समाः॥११५॥

शिवध्यानैकनिरतो बालोऽपि बलवानिव।
प्रत्यहं प्रातरुत्थाय स्नात्वा नत्वा गुरून्क्रमात्॥११६॥
सुखासीनो मनः कृत्वा सुषुम्नायामनन्यधीः।
हस्तस्वस्तिकमारोप्य नाभौ विस्मृतसंसृतिः॥११७॥
स्थानात्स्थानान्तरोत्कर्षविन्दध्यौ शांभवं महः।
ददर्श चक्षुर्देवस्य तृतीयं पिप्पलाशनः।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विनीत इदमब्रवीत्॥११८॥

ब्रह्मा कहते हैं—पिप्पलाद ने ईश्वर की ऐसी वाणी सुनकर तप का दृढ़ निश्चय किया। दधीचि के पुत्र धर्मात्मा पिप्पलाद ने बालक होने पर भी सबल की तरह शिवध्यान में लगकर अनन्यभावेन वहां अनेक वर्ष निकाल दिया। वे नित्य प्रातः उठ कर स्नान एवं गुरुगण को नमस्कार करके सुखासनासीन होकर सुषुम्ना नामक नाड़ी में मन को धारण करके अनन्यचित्तता पूर्वक अनन्य मन से अपने नाभिदेश में मन स्थापित करने के पश्चात् वहां पर नाभि में हस्तस्वस्तिक लगाकर (अर्थात् नाभि के पास नीचे स्वस्तिक मुद्रा में हाथ रखकर) तथा समस्त संसारभाव विस्मृत करके एकमात्र शांभव ज्योति का ध्यान करने लगे। तदनन्तर स्थान-माहात्म्य से देवदेव का तृतीय नेत्र उनको दृष्टिगोचर हो गया। अब हाथ जोड़ कर पिप्पलाद ने कहा—॥११५-११८॥

पिप्पलाद उवाच

शंभुना देवदेवेन वरो दत्तः पुरा मम। तार्तीयचक्षुषो ज्योतिर्यदा पश्यसि तत्क्षणात्॥११९॥

सर्वं ते प्रार्थितं सिध्येदित्याह त्रिदशेश्वरः।
तस्माद्रिपुविनाशाय हेतुभूतां प्रयच्छ मे॥१२०॥

पिप्पलाद कहते हैं—हे देवाधिदेव शंभु! पहले आपने मुझे यह वर प्रदान किया था कि जब आपके तृतीय नेत्र को सहन करते देख सकोगे, तब आप मुझे इच्छित सिद्धि प्रदान करेंगे। अब तो वह संभव हो गया। अतः आप शत्रुविनाश के लिये मुझे शक्ति-सामर्थ्य प्रदान करिये।।११९-१२०।।

तदैव पिप्पलाः प्रोचुर्वडवाऽपि महाद्युते। माता तव प्रातिथेयी वदन्त्येवं दिवं गता॥१२१॥

पराभिद्रोहनिरता विस्मृतात्महिता नराः। इतस्ततो भ्रान्तचित्ताः पतन्ति नरकावटै॥१२२॥

तभी पिप्पलाद से वृक्षगण बड़वा ने कहा—"हे महाद्युति! तुम्हारी माता दधीचिपत्नी प्रातिथेयी यह कहते स्वर्गगामी हुई थी कि अन्य के अपकार में जो लगे रहते हैं, जो अपना हितसाधन भूल जाते हैं, ऐसे इतःस्ततः भ्रान्तचित्त व्यक्ति नरकगर्त्त में जा गिरते हैं"।।१२१-१२२।।

तन्मातृवचनं श्रुत्वा कुपितः पिप्पलाशनः।
अभिमाने ज्वलत्यन्तः साधुवादो निरर्थकः॥१२३॥
देहि देहीति तं प्राह कृत्या नेत्रविनिर्गता।
वडवेति स्मरन्विप्रः कृत्याऽपि वडवाकृतिः॥१२४॥

सर्वसत्त्वविनाशाय प्रभूताऽनलगर्भिणी। गभस्तिनी बालगर्भा या माता पिप्पलाशिनः॥१२५॥

तद्ध्यानयोगात्तु जाता कृत्या साऽनलगर्भिणी।
उत्पन्ना सा महारौद्रा मृत्युजिह्वेव भीषणा॥१२६॥
अवोचत्पिप्पलादं तं किं कृत्यं मे वदस्व तत्।
पिप्पलादोऽपि तां प्राह देवान्खाद रिपून्मम॥१२७॥
जग्राह सा तथेत्युक्त्वा पिप्पलादं पुरस्थितम्।
स प्राह किमिदं कृत्ये सा चाप्याह त्वयोदितम्॥१२८॥

देवैश्च निर्मितं देहं ततो भीतः शिवं ययौ।
तुष्टाव देवं स मुनिः कृत्यां प्राह तदा शिवः॥१२९॥

पिप्पलाद मातृवाक्य सुनकर क्रोधित होकर अन्तःकरण में अभिमान की अग्नि से जलने लगे। माता का साधुवाक्य उनके लिये निरर्थक हो गया। वे बारम्बार महादेव से "दीजिये-दीजिये" कहने लगे। तब उस तृतीय नेत्र से एक कृत्या निर्गत हो गई। वह तो मृत्युजिह्वा जैसी भीषण महातेजस्वी थी। देखने में अतीव भयानक थी। उसने जन्म लेते ही पिप्पलाद से कहा—"कहो! मैं क्या करूं?" पिप्पलाद ने कहा—"तुम मेरे शत्रु देवताओं को खा जाओ।" कृत्या ने 'तथास्तु' कह कर पहले पिप्पलाद को ही पकड़ा। पिप्पलाद ने कहा—"हे कृत्या! यह क्या कर रही हो?" कृत्या ने कहा—तुम्हारे कथनानुरूप मैं देवनिर्मित देह खा रही हूं।" तब पिप्पलाद ने भयभीत होकर शिव के निकट जाकर उनको स्तव से प्रसन्न किया। तब भगवान् शिव कृत्या से कहने लगे।।१२३-१२९।।

शिव उवाच

योजनान्तः स्थिताञ्जीवान्न गृहाण मदाज्ञया।
तस्माद्याहि ततो दूरं कृत्ये कृत्यं ततः कुरु॥१३०॥

भगवान् महेश्वर कहते हैं—हे कृत्या! तुम मेरी आज्ञा से यहां एक योजन के अन्तर्गत् रहने वाले जीवों को ग्रहण मत करना। यहां से दूर जाकर कार्य करो।।१३०।।

ब्रह्मोवाच

तीर्थात्तु पिप्पलात्पूर्वं यावद्योजनसंख्यया।
प्रातिष्ठद्वडवारूपा कृत्या सा ऋषिनिर्मिता॥१३१॥
तस्यां जातो महानग्निर्लोकसंहरणक्षमः।
तं दृष्ट्वा विबुधाः सर्वे त्रस्ताः शंभुमुपागमन्॥१३२॥
चक्रेश्वरं पिप्पलेशं पिप्पलादेन तोषितम्। स्तुवन्तो भीतमनसः शंभुमूचुर्दिवौकसः॥१३३॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब ऋषिनिर्मित यह बड़वाकृति कृत्या पिप्पलतीर्थ के पूर्व एक योजन आगे चली गई। उससे एक लोकक्षयकारी भीषण अग्नि उत्पन्न हो गई। यह देख कर देवता त्रस्त होकर शंभु के यहां गये तथा पिप्पलाद द्वारा सन्तुष्ट चक्रेश्वर, पिप्पलेश्वर लिंग का अभिवादन करके भय शंकित मन से स्तव करने लगे।।१३१-१३३।।

देवा ऊचुः

रक्षस्व शम्भो कृत्याऽस्मान्बाधते तद्भवानलः। शरणं भव सर्वेश भीतानामभयप्रद॥१३४॥
सर्वतः परिभूतानामार्तानां श्रान्तचेतसाम्। सर्वेषामेव जन्तूनां त्वमेव शरणं शिव॥१३५॥
ऋषिणाऽभ्यर्थिता कृत्या त्वच्चक्षुर्वह्निनिर्गता।
सा जिघांसति लोकांस्त्रींस्त्वं नस्त्राता न चेतरः॥१३६॥

देवता कहते हैं—हे शंभु! हमारी रक्षा करिये। आपसे उत्पन्न अग्निवत् कृत्या हमें उत्पीड़ित कर रही है। हे भयभीत जनों को अभय देने वाले! सर्वेश! हमारी रक्षा करें। हे शिव! जो सर्वत्र पराजित, आर्त्त तथा श्रान्तचित्त हो जाते हैं, ऐसे सभी लोगों के आप एकमात्र रक्षक हैं। आप ही उनके आश्रय हैं। ऋषि की प्रार्थना से यह कृत्या आपकी नेत्राग्नि से निकल कर त्रैलोक्य जला देने हेतु उद्यत है! इस विपत्ति से आप ही बचाने वाले हैं। अन्य कोई नहीं है।।१३४-१३६।।

ब्रह्मोवाच

तानब्रवीज्जगन्नाथो योजनान्तर्निवासिनः। न बाधते त्वसौ कृत्या तस्माद्यूयमहर्निशम्॥१३७॥
इहैवाऽऽसध्वममरास्तस्या वो न भयं भवेत्॥॥१३८॥

ब्रह्मा कहते हैं—जगत्पति ने देवताओं को उत्तर दिया—"यह कृत्या एक योजन परिमित प्राणियों को पीड़ित नहीं करेगी। तुम लोग अहर्निश यहीं निवास करो। उसका भय यहां नहीं होगा।।१३७-१३८।।

ब्रह्मोवाच

पुनरूचुः सुरेशानं त्वया दत्तं त्रिविष्टपम्।
तत्त्यक्त्वाऽन्न कथं नाथ वत्स्यामस्त्रिदशार्चित॥१३९॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब देवगण ने शिव से कहा—आपके द्वारा ही हमने स्वर्ग पाया है। हे नाथ! देवपूज्य! हम स्वर्ग न रहकर यहां कैसे रहेंगे?।।१३९।।

ब्रह्मोवाच

देवानां वचनं श्रुत्वा शिवो वाक्यमथाब्रवीत्॥१४०॥

ब्रह्मा कहते हैं—देवताओं का कथन सुनकर शिव ने कहा—।।१४०।।

शिव उवाच

देवोऽसौ विश्वतश्चक्षुर्यो देवे विश्वतोमुखः।
यो रश्मिभिस्तु धमते नित्यं यो जनको मतः॥१४१॥
स सूर्य एक एवात्र साक्षाद्रूपेण सर्वदा।
स्थितिं करोतु तन्मूर्तौ भविष्यन्त्यखिलाः स्थिताः॥१४२॥

शिव कहते हैं—ये दिवाकर विश्वचक्षु तथा विश्वमुख हैं। ये अपनी रश्मियों से समस्त जगत् को ताप प्रदान करते हैं। ये जगत् के जीवनदाता भी हैं। ये साक्षात् सूर्य यहां एकाकी सर्वदा स्थित रहेंगे। इनकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित होने मात्र से समस्त देवताओं की प्रतिष्ठा कही जायेगी।।१४१-१४२।।

ब्रह्मोवाच

तथेति शम्भुवचनात्पारिजाततरोस्तदा। देवा दिवाकरं चक्रुस्त्वष्टा भास्करमब्रवीत्॥१४३॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब देवताओं ने कहा—'ऐसा ही हो।' उन देवगण ने वहां दिवाकर की स्थापना भी कर दिया। उस समय विश्वकर्मा त्वष्टा ने भास्कर से कहा—।।१४३।।

त्वष्टोवाच

इहैवाऽऽस्व जगत्स्वामिन्रक्षेमान्विबुधान्स्वयम्।
स्वांशैश्च वयमप्यत्र तिष्ठामः शम्भुसन्निधौ॥१४४॥
चक्रेश्वरस्य परितो यावद्योजनसंख्यया। गङ्गाया उभयं तीरमासाद्याऽऽसन्सुरोत्तमाः॥१४५॥
अङ्गुल्यर्धार्धमात्रं तु गङ्गातीरं समाश्रिताः।
तिस्रः कोट्यस्तथा पञ्च शतानि मुनिसत्तम।
तीर्थानां तत्र व्युष्टिं च कः शृणोति ब्रवीति वा॥१४६॥

त्वष्टा कहते हैं—"हे जगत्प्रभु! आप यहां निवास करिये। साथ ही आप देवगण की रक्षा करिये। मैं भी तथा अन्य देवता भी यहां अपने-अपने अंश से शंकर के निकट रहेंगे।" एवंविध चक्रेश्वरतीर्थ के योजन परिमित चतुर्दिक् के स्थान पर गंगा के उत्तर तट का सहारा लेकर सभी देवता अपने-अपने अंश से रहने लगे। वे लोग एक उंगली के चौथाई स्थान पर ही स्थित रहते गंगातट पर विराजित हो गये। उस समय से वहां तीस करोड़ पांच सौ देवगण रहने लगे। उन तीर्थ के फल को कौन कहने में तथा कौन सुनने में सक्षम है?।।१४४-१४६।।

ब्रह्मोवाच

ततः सुरगणाः सर्वे विनीताः शिवमब्रुवन्॥१४७॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब समस्त देवताओं ने विनीत होकर महेश्वर से कहा—॥१४७।।

देवा ऊचुः

पिप्पलादं सुरेशान शमं नय जगन्मय॥१४८॥

देवता कहते हैं—हे सुरेश! जगन्मय आप पिप्पलाद को शान्त करें।।१४८।।

ब्रह्मोवाच

ओमित्युक्त्वा जगन्नाथः पिप्पलादमवोचत॥१४९॥

ब्रह्मा कहते हैं—भगवान् शिव ने यह स्वीकार करते पिप्पलाद से कहा—॥१४९।।

शिव उवाच

नाशितेष्वपि देवेषु पिता ते नाऽऽगमिष्यति।
दत्ताः पित्रा तव प्राणा देवानां कार्यसिद्धये॥१५०॥
दीनार्तकरुणाबन्धुः को हि तादृग्भवे भवेत्।
तथा याता दिवं तात तव माता पतिव्रता॥१५१॥
समा काऽप्यत्र न तया लोपामुद्राऽप्यरुन्धती।
यदस्थिभिः सुराः सर्वे जयिनः सुखिनः सदा॥१५२॥

तेनावाप्तं यशः स्फीतं तव मात्राऽक्षयं कृतम्।
त्वया पुत्रेण सर्वत्र नातः परतरं कृतम्॥१५३॥
त्वत्प्रतापभयात्स्वर्गाच्च्युतांस्त्वं पातुमर्हसि। कांदिशीकांस्तव भयादमरांस्त्रातुमर्हसि।
नाऽऽर्तत्राणादभ्यधिकं सुकृतं क्वापि विद्यते॥१५४॥

भगवान् महेश्वर शिव कहते हैं—हे वत्स! देवगण का विनाश कर देने पर भी तुम्हारे पिता वापस नहीं आ सकते। देवकार्य सिद्धि हेतु ही तुम्हारे पिता ने प्राण न्योछावर किया था। वस्तुतः तुम्हारे पिता के समान दीनों तथा आर्त्तों पर करुणावर्षा करने वाला बन्धु संसार में और कौन है? तुम्हारी माता पतिव्रता थीं। उन्होंने भी स्वर्गगमन किया है। उन माता के समान और कौन स्त्री है? क्या कहूं? अगत्स्य पत्नी लोपामुद्रा तथा वसिष्ठ पत्नी अरुन्धती तक तुम्हारी गुणगौरवशालिनी माता के समान यशस्विनी नहीं ठहरतीं। देवता जिनकी अस्थि लेकर जयी तथा सुखी हो गये हैं, उन तुम्हारे पिता ने विपुल यशलाभ किया है तथा तुम्हारी माता भी तुम्हारे समान पुत्र पाकर सर्वत्र अक्षय यश वाली हो गई हैं। इससे अधिक और तुमसे कुछ नहीं कहना है। तुम्हारे प्रताप के भय से देवता किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर स्वर्ग से च्युत होकर भटक रहे हैं। तुम इनकी रक्षा करो। आर्त्तजन की रक्षा करने से बढ़कर अत्यधिक धर्म, अत्यधिक पुण्य और कुछ नहीं है।।१५०-१५४।।

यावद्यशः (स्फुरत) चारु मनुष्यलोक अहानि तावन्ति दिवं गतस्य।
दिने दिने वर्षसंख्या (ख्यं) परस्मिंल्लोको वासो जायते निर्विकारः॥१५५॥
मृतास्त एवात्र यशो न येषामन्धास्त एव श्रुतवर्जिता ये।
ये दानशीला न नपुंसकास्ते, ये धर्मशीला न त एव शोच्याः॥१५६॥

मनुष्य लोक में जिसका यश जितने दिन फैला रहता है, तब तक वह स्वर्ग में निवास करता है। परलोक में वह तब तक निर्विकार निवास करता है। जो यशस्वी नहीं हैं, जो शास्त्रज्ञान रहित हैं, वे जीते जी मृत हैं तथा अन्धे हैं। जो दानी नहीं है, वह नपुंसक है। जो धार्मिक नहीं है, वह दया का पात्र है। वह शोचनीय है।।१५५-१५६।।

ब्रह्मोवाच

भाषितं देवदेवस्य श्रुत्वा शान्तोऽभवन्मुनिः।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा नत्वा नाथमथाब्रवीत्॥१५७॥

ब्रह्मा कहते हैं—देवाधिदेव का कथन सुनकर पिप्पलाद शान्त हो गये। उन्होंने हाथ जोड़कर शंकर को प्रणाम किया तथा सविनय कहने लगे।।१५७।।

पिप्पलाद उवाच

वाग्भिर्मनोभिः कृतिभिः कदाचिन्ममोपकुर्वन्ति हिते रता ये।
तेभ्यो हितार्थं त्विह चापरेषां, सोमं नमस्यामि सुरादिपूज्यम्॥१५८॥
संरक्षितो यैरभिवर्धितश्च, समानगोत्रश्च समानधर्मा।
तेषामभीष्टानि शिवः करोतु, बालेन्दुमौलिं प्रणतोऽस्मि नित्यम्॥१५९॥

पिप्पलाद कहते हैं—जो मन-वाणी-कर्म से किसी समय मेरे हित में निरत रहे हैं, उनके तथा अन्य सभी के हितार्थ मैं देवाधिदेव शिव कों प्रणाम करता हूं! जिन्होंने मुझे संरक्षित किया है तथा पाला-पोसा है, जो मेरे सगोत्र वाले और समानधर्मी हैं, शिव उनकी अभीष्ट सिद्धि करें। मैं बालेन्दुमौलि चन्द्रशेखर को नित्य प्रणाम करता हूं!।।१५८-१५९।।

यैरहं वर्धितो नित्यं मातृवत्पितृवत्प्रभो। तन्नाम्ना जायतां तीर्थं देवदेव जगत्त्रये॥१६०॥

यशस्तु तेषां भविता तेभ्योऽहमनृणस्ततः।
यानि क्षेत्राणि देवानां यानि तीर्थानि भूतले॥१६१॥

तेभ्यो यदिदमधिकमनुमन्यन्तु देवताः। ततः क्षमेऽहं देवानामपराधं निरञ्जनः॥१६२॥

जिन्होंने माता-पिता के समान पालन-पोषण द्वारा मुझे प्रतिपालित किया है, उनके नामानुसार यह तीर्थ प्रख्यात हो जाये। इससे उनके यश की वृद्धि हो। यह होने पर मैं उन सबके ऋण से उऋण हो सकूंगा। पृथिवी पर जितने देवक्षेत्र तथा तीर्थ हैं, उनकी तुलना में यह अत्यधिक माहात्म्य वाला हो जाये। देवगण मेरे प्रस्ताव का अनुमोदन करें। इसी से मैं देवताओं के अपराध को क्षमा कर सकूंगा।।१६०-१६२।।

ब्रह्मोवाच

ततः समक्षं सुरसाक्षरां गिरं, सहस्रचक्षुः प्रमुखांस्तथाऽग्रतः।
उवाच देवा अपि मेनिरे वचो, दधीचिपुत्रोदितमादरेण॥१६३॥
बालस्य बुद्धिं विनयं च विद्यां, शौर्यं बलं साहसं सत्यवाचम्।
पित्रोर्भक्तिं भावशुद्धिं विदित्वा, तदाऽवादीच्छंकरः पिप्पलादम्॥१६४॥

ब्रह्मा कहते हैं—तदनन्तर जब इन्द्रादि प्रमुख देवगण से दधीचिपुत्र पिप्पलाद ने मधुराक्षरों में यह कहा, तब देवताओं ने सादर इसका अनुमोदन कर दिया। उस समय शंकर ने बालक पिप्पलाद की बुद्धि, विद्या, विनय, शौर्य, बल, साहस, सत्यवाक्य, पितृ-मातृभक्ति एवं भावशुद्धि जानकर उनसे कहा—।।१६३-१६४।।

शंकर उवाच

वत्स यद्वै प्रियं कामं यच्चापि सुरवल्लभम्।
प्राप्स्यसे वद कल्याणं नान्यथा त्वं मनः कृथाः॥१६५॥

शंकर कहते हैं—हे वत्स! जो देवदुर्लभ प्रिय काम्य वस्तु है, वह तुमको प्राप्त होगी। जो कल्याणकारी है, वह तुम मांगो। मेरे वचन को अन्यथा मत समझो।।१६५।।

पिप्पलाद उवाच

ये गङ्गायामाप्लुता धर्मनिष्ठाः, संपश्यन्ति त्वत्पदाब्जं महेश।
सर्वान्कामानाप्नुवन्तु प्रसह्य, देहान्ते ते पदमायान्तु शैवम्॥१६६॥
तातः प्राप्तस्त्वत्पदं चाम्बिका मे, नाथ प्राप्ता पिप्पलश्चामराश्च।
सुखं प्राप्ता नाथनाथं विलोक्य, त्वां पश्येयुस्त्वत्पदं ते प्रयान्तु॥१६७॥

पिप्पलाद कहते हैं—हे महेश! जो धर्मिष्ठ लोग गौमतीगंगा में डुबकी लगाकर तब आपके चरणकमल का दर्शन करें, वे सभी कामना पूर्ण करके देहान्त होने पर शैवपद प्राप्त करें। मेरे पिता-माता तथा पीपल आदि बन्धुगण आपका पद पाकर अमर हो गये हैं। वे परमप्रभु आपका दर्शन पाकर परमसुख लाभ कर चुके हैं। चिर दिन वे लोग आपका दर्शन करें तथा आपके पद को प्राप्त हो जायें।।१६६-१६७।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा पिप्पलादं देवदेवो महेश्वरः।
अभिनन्द्य च तं देवैः सार्धं वाक्यमथाब्रवीत्॥१६८॥
देवा अपि मुदा युक्ता निर्भयास्तत्कृताद्भयात्।
इदमूचुः सर्व एव दाधीचं शिवसन्निधौ॥१६९॥

ब्रह्मा कहते हैं—देवाधिदेव महेश्वर ने पिप्पलाद से कहा—"ऐसा ही हो"। तदनन्तर भगवान् ने तथा देवगण ने एक साथ उनकी प्रशंसा किया। देवता लोग पिप्पलाद द्वारा प्रवर्त्तित भय से मुक्त होकर प्रीति पूर्वक शिव के समक्ष दधीचितनय से कहा—।।१६८-१६९।।

देवा ऊचुः

सुराणां यदभीष्टं च त्वया कृतमसंशयम्।
पालिता देवदेवस्य आज्ञा त्रैलोक्यमण्डनी॥१७०॥
याचितं च त्वया पूर्वं परार्थं नाऽऽत्मने द्विज।
तस्मादन्यतमं ब्रूहि किंचिद्दास्यामहे वयम्॥१७१॥

देवता कहते हैं—हे द्विज! तुम्हारे द्वारा देवगण का अभिप्राय सिद्ध हो गया है। तुमने देवताओं की त्रैलोक्यवन्दित आज्ञा का पालन किया है। तुमने अपने लिये कुछ भी नहीं मांगा। तुमने पूर्व में ही परार्थ हेतु वर लिया है। अतः हम तुमको कुछ प्रदान करना चाहते हैं। तुम अन्य वर मांगो।।१७०-१७१।।

ब्रह्मोवाच

पुनः पुनस्तदेवोचुः सुरसङ्घा द्विजोत्तमम्। कृताञ्जलिपुटः पूर्वं नत्वा शम्भुसुरानिदम्।
उवाच पिप्पलादश्च उमां नत्वा च पिप्पलान्॥१७२॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब देवताओं ने पिप्पलाद से पुनः-पुनः वर मांगने का आग्रह किया, लेकिन उन्होंने हाथ जोड़कर उनको प्रणाम करके शम्भु आदि प्रमुख देवता, उमादेवी तथा पीपल वृक्षों को प्रणाम करके कहा—।।१७२।।

पिप्पलाद उवाच

पितरौ द्रष्टुकामोऽस्मि सदा मे शब्दगोचरौ।
ते धन्याः प्राणिनो लोके मातापित्रोर्वशे स्थिताः॥१७३॥

शुश्रूषणपरा नित्यं तत्पादाज्ञाप्रतीक्षकाः।
इन्द्रियाणि शरीरं च कुलं शक्तिं धियं वपुः॥१७४॥
परिलभ्य तयोः कृत्ये कृतकृत्यो भवेत्स्वयम्।
पशूनां पक्षिणां चापि सुलभं मातृदर्शनम्॥१७५॥
दुर्लभं मम तच्चापि पृच्छे पापफलं नु किम्।
दुर्लभं च तथा चेत्स्यात्सर्वेषां यस्य कस्यचित्॥१७६॥
नोपपद्येत सुलभं मत्तो नान्योऽस्ति पापकृत्।
तयोर्दर्शनमात्रं च यदि प्राप्स्ये सुरोत्तमाः॥१७७॥
मनोवाक्कायकर्मभ्यः फलं प्राप्तं भविष्यति।
पितरौ ये न पश्यन्ति समुत्पन्ना न (स्तु) संसृतौ।
तेषां महापातकानां कः संख्यां कर्तुमीश्वरः॥१७८॥

पिप्पलाद कहते हैं—जिन अपने माता-पिता का नाम सुनता रहा हूं, उनका दर्शन करना चाहता हूं। जो लोग माता-पिता के वश में हैं, जो नित्य उनकी सेवा के परायण हैं, उनके चरणकमलों में बैठ कर उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा करते रहते हैं, वे ही जगत् में धन्य हैं। जो मानव इन्द्रियों, शरीर, कुल, शक्ति तथा बुद्धिलाभ करके पिता-माता के कार्य में लगा रहता है, वही कृतकृत्य है। पशु-पक्षी को भी मातृदर्शन सुलभ है, तथापि मेरे लिये वह दुर्लभ क्यों है? यह मेरे किस पाप का फल है, यह मैं आप सबसे पूछता हूं। यदि सबके लिये माता-पिता का दर्शन दुर्लभ होता, तब मेरे लिये दुर्लभ होने पर मुझे कोई क्षोभ न हो सकता था। तथापि सबके लिये माता-पिता का दर्शन सुलभ है, ऐसी स्थिति में मुझ जैसा पापी और कोई नहीं हो सकता। हे देवप्रवरगण! यदि मैं उनका दर्शन लाभ कर सका, तभी मेरा मन, मेरी वाणी तथा काय को और कर्म को अपना फल मिल गया, यह समझूंगा। जो जन्म लेकर माता-पिता का दर्शन नहीं पाते, उन महापापीगण के पापों की गणना कौन कर सकेगा?।।१७३-१७८।।

ब्रह्मोवाच

तदृषेर्वचनं श्रुत्वा मिथः संमन्त्र्य ते सुराः। विमानवरमारूढौ पितरौ दंपती शुभौ॥१७९॥
तव संदर्शनाकाङ्क्षौ द्रक्ष्यसे वाऽद्य निश्चितम्।
विषादं लोभमोहौ च त्यक्त्वा चित्तं शमं नय॥१८०॥
पश्य पश्येति तं प्राहुर्दधीचं सुरसत्तमाः। विमानवरमारूढौ स्वर्गिणौ स्वर्णभूषणौ॥१८१॥
तव संदर्शनाकाङ्क्षौ पितरौ दंपती शुभौ।
वीज्यमानौ सुरस्त्रीभिः स्तूयमानौ च किन्नरैः॥१८२॥
दृष्ट्वा स मातापितरौ ननाम शिवसन्निधौ। हर्षवाष्पाश्रुनयनौ स कथंचिदुवाच तौ॥१८३॥

ब्रह्मा कहते हैं—देवताओं ने इन ऋषि का कथन सुनकर परस्पर मन्त्रणा करके कहा—"तुम्हारे माता-

पिता विमानारूढ़ होकर तुम्हारे दर्शनार्थ अपेक्षा कर रहे हैं। तुम अभी उनका दर्शन पा सकोगे। लोभ, मोह तथा विषाद त्यागो। चित्त शान्त करो।" तदनन्तर उन प्रधान देवगण ने कहा—"यह देखो! स्वर्णभूषण विमान पर आसीन तुम्हारे माता-पिता तुम्हारी दर्शनाकांक्षा से उत्सुक हैं। तुमको वे अपना दर्शन देना चाहते हैं। वे आ रहे हैं। देवस्त्रीगण उनको पंखा-चंवर झल रही हैं। किन्नरवृन्द उनकी स्तुति का गायन कर रहे हैं।" तब पिप्पलाद ने अपने माता-पिता को शिव के निकट देखा तथा उनको प्रणाम किया! पिप्पलाद के नेत्रों से आनन्दाश्रु छलकने लगे। तब येन केन प्रकारेण संयत होकर पिप्पलाद कहने लगे।।१७९-१८३।।

पुत्र उवाच

तारयन्त्येव पितरावन्ये पुत्राः कुलोद्वहाः। अहं तु मातुरुदरे केवलं भेदकारणम्।
एवं भूतोऽपि तौ मोहात्पश्येयमतिदुर्मतिः॥१८४॥

पुत्र पिप्पलाद कहते हैं—अन्य कुल-प्रदीप पुत्रगण माता-पिता का उद्धार करते हैं, किन्तु मैं केवल माता को कष्ट देने हेतु उनके गर्भ में आया था। अत्यन्त दुर्लभ होने पर भी मैंने उनका दर्शन पा लिया।।१८४।।

ब्रह्मोवाच

तावालोक्य ततो दुःखाद्वक्तुं नैव शशाक सः।
देवाश्च मातापितरौ पिप्पलादमथाब्रुवन्॥१८५॥

ब्रह्मा कहते हैं—पिप्पलाद माता-पिता को देखकर दुःखित होने के कारण कुछ भी नहीं कह सके। तब देवताओं ने उनसे कहा—।।१८५।।

देवा ऊचुः

धन्यस्त्वं पुत्र लोकेषु यस्य कीर्तिर्गता दिवम्।
साक्षात्कृतस्त्वया त्र्यक्षो देवाश्चाऽऽश्वासितास्त्वया।
त्वया पुत्रेण सल्लोका न क्षीयन्ते कदाचन॥१८६॥

देवता कहते हैं—हे वत्स! इस जगत् में तुम धन्य हो। तुम्हारी कीर्त्ति स्वर्ग पर्यन्त छा गई है। तुमने त्रिलोचन का साक्षात्कार किया है तथा देवगण को आश्वस्त भी किया है। तुम्हारे ऐसा पुत्र पाकर ही उत्तम लोक क्षयीभूत नहीं होते।।१८६।।

ब्रह्मोवाच

पुष्पवृष्टिस्तदा स्वर्गात्पपात तस्य मूर्धनि। जयशब्दः सुरैरुक्तः प्रादुर्भूतो महामुने॥१८७॥
आशिषं तु सुते दत्त्वा दधीचिः सह भार्यया।
शंभुं गङ्गां सुरान्नत्वा पुत्रं वाक्यमथाब्रवीत्॥१८८॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे महामुनि नारद! उस समय पिप्पलाद के मस्तक पर स्वर्ग से पुष्पवर्षा होने लगी। देवगण उनकी जयजयकार करने लगे। उस समय दधीचि तथा उनकी पत्नी ने पुत्र को आशीर्वाद देकर शंभु, गंगा तथा देवगण को प्रणाम करके कहा—।।१८७-१८८।।

दधीचिरुवाच

प्राप्य भार्यां शिवे भक्तिं कुरु गङ्गां च सेवय।
पुत्रानुत्पाद्य विधिवद्यज्ञानिष्ट्वा सदक्षिणान्।
कृतकृत्यस्ततो वत्स आक्रमस्व चिरं दिवम्॥१८९॥

दधीचि मुनि कहते हैं—हे पुत्र! तुम विवाह करो। शिव-गंगा की यथाशक्ति सेवा करना तथा पुत्र उत्पन्न करके दक्षिणायुक्त यज्ञ भी सम्पन्न करना। तब कृतकृत्य होकर चिरकाल तक स्वर्ग में निवास करना।।१८९।।

ब्रह्मोवाच

करोम्येवमिति प्राह दधीचिं पिप्पलाशनः।
दधीचिः पुत्रमाश्वास्य भार्यया च पुनः पुनः॥१९०॥
अनुज्ञातः सुरगणैः पुनः स दिवमाक्रमत्।
देवा अप्यूचिरे सर्वे पिप्पलादं ससंभ्रमाः॥१९१॥

ब्रह्मा कहते हैं—पिप्पलाद ने कहा—"मैं आज्ञा पालन करूंगा।" इस प्रकार उन्होंने पिता को वचन दे दिया। दधीचि ने पुत्र को पुनः-पुनः आश्वासन देकर पत्नी के साथ देवगण से अनुमति लिया तथा स्वर्ग चले गये। तब देवगण ने सहसा पिप्पलाद से निवेदन किया।।१९०-१९१।।

देवा ऊचुः

कृत्यां शमय भद्रं ते तदुत्पन्नं महानलम्॥१९२॥

देवता कहते हैं—अब तुम कृत्या तथा उसके साथ प्रादुर्भूत इस महान् अग्नि का निवारण करो।।१९२।।

ब्रह्मोवाच

पिप्पलादस्तु तानाह न शक्तोऽहं निवारणे।
असत्यं नैव वक्ताऽहं यूयं कृत्यां तु ब्रूत ताम्॥१९३॥
मां दृष्ट्वा सा महारौद्रा विपरीतं करिष्यति।
तामेव गत्वा विबुधाः प्रोचुस्ते शान्तिकारणम्॥१९४॥
अनलं च यथाप्रीति ते उभे नेत्यवोचताम्।
सर्वेषां भक्षणायैव सृष्टा चाहं द्विजन्मना॥१९५॥
तथा च मत्प्रसूतोऽग्निरन्यथा तत्कथं भवेत्।
महाभूतानि पञ्चापि स्थावरं जङ्गमं तथा॥१९६॥
सर्वमस्मन्मुखे विद्याद्वक्तव्यं नावशिष्यते। मया संमन्त्र्य ते देवाः पुनरूचुरुभावपि॥१९७॥
भक्षयेतामुभौ सर्वं यथानुक्रमतस्तथा। वडवाऽपि सुरानेवमुवाच शृणु नारद॥१९८॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब पिप्पलाद ने कहा—"मैं इसका निवारण नहीं कर सकता। मैं झूठ नहीं कहूंगा।

आप ही लोग उससे कहिये। मुझे देखते ही यह कृत्या विपरीत कार्य करेगी।'' यह सुनकर देवगण कृत्या के पास गये तथा उससे एवं अग्नि से अनुरोध किया कि शान्त हो जायें। तथापि दोनों ही इस प्रस्ताव से असहमत होकर कहने लगे। कृत्या ने कहा कि मुझसे यह अग्नि सर्व प्राणीगण के भक्षणार्थ उत्पन्न है। अतः यह अन्यथा कैसे होगा? पञ्च महाभूत के साथ समस्त स्थावर-जंगम जो कुछ है, वह हमारे मुख में प्रविष्ट होगा। अब इस सम्बन्ध में कुछ भी कहना-सुनना शेष नहीं है। तब देवगण ने मुझसे मन्त्रणा करके कृत्या तथा अग्नि से कहा— ''तुम दोनों उस स्थिति में सब कुछ क्रमशः खाओ।'' हे नारद! तब कृत्या बड़वा ने देवगण से कहा— ॥१९३-१९८॥

वडवोवाच

भवतामिच्छया सर्वं भक्ष्यं मे सुरसत्तमाः॥१९९॥

बड़वा ने कहा—''हे सुरसत्तमवृन्द! आपकी इच्छा से सब कुछ मेरा भक्ष्य हो''॥१९९॥

ब्रह्मोवाच

वडवा सा नदी जाता गङ्गया संगता मुने। तद्भवस्तु महानग्निर्य आसीदतिभीषणः।
तमाहुरमरा वह्निं भूतानामादितो विदुः॥२००॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब वह बड़वा (बड़वाग्नि) नदी बन कर गौमतीगंगा में मिल गया। तत्पश्चात् वह महान् अग्नि अतीव भीषण हो गया। उसे वेदों ने वह्नि कहा। वह आदिभूत था। देवताओं ने उस अग्नि से कहा—॥२००॥

सुरा ऊचुः

आपो ज्येष्ठतमा ज्ञेयास्तथैव प्रथमं भवान्।
तत्राप्यपांपतिं ज्येष्ठं समुद्र (तिर्ज्येष्ठस्तस्य त्व) मशनं कुरु।
अथैव तु वयं ब्रूमो गच्छ भुङ्क्ष्व यथासुखम्॥२०१॥

देवता कहते हैं—जल ज्येष्ठतम है तथा तुम भी आदि हो। जल में समुद्र ज्येष्ठ है। अतः तुम उसी का भक्षण करो। हम जैसा कह रहे हैं, तदनुरूप तुम जाकर यथासुख उसका भक्षण करो॥२०१॥

ब्रह्मोवाच

अनलस्त्वमरानाह आपस्तत्र कथं त्वहम्।
व्रजेयं यदि मां तत्र प्रापयन्त्युदकं महत्॥२०२॥
भवन्त एव तेऽप्याहुः कथं तेऽग्ने गतिर्भवेत्।
अग्निरप्याह तान्देवान्कन्या मां गुणशालिनी॥२०३॥
हिरण्यकलशे स्थाप्य नयेद्यत्र गतिर्मम। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कन्यामूचुः सरस्वतीम्॥२०४॥

ब्रह्मा कहते हैं—बड़वा (अग्नि) ने देवगण से कहा—''जहां जल है, वहां मैं कैसे अवस्थान करूंगा? आप सब मुझे उस अगाध जल तक ले जायें, तभी जा सकूंगा।'' तब देवगण ने कहा—''हे अग्नि! तुम कैसे

वहां जा सकोगे?'' तब अग्नि ने कहा—''यदि गुणान्वित ब्रह्मकन्या सरस्वती स्वर्ण कलश में वहां मुझे ले चलें, तब मैं गतिशील हो जाऊंगा।'' यह सुनकर देवों ने मेरी पुत्री सरस्वती से कहा—॥२०२-२०४॥

देवा ऊचुः

नयैनमनलं शीघ्रं शिरसा वरुणालयम्॥२०५॥

देवगण कहते हैं—आप इस बाड़वाग्नि को शीघ्र शिर पर रख कर समुद्र में ले जाईये॥२०५॥

ब्रह्मोवाच

सरस्वती सुरानाह नैका शक्ता च धारणे।
युक्ता चतसृभिः शीघ्रं वहेयं वरुणालयम्॥२०६॥
सरस्वत्या वचः श्रुत्वा गङ्गां च यमुनां तथा।
नर्मदां तपतीं चैव सुराः प्रोचुः पृथक्पृथक्॥२०७॥
ताभिः समन्वितोवाह हिरण्यकलशेऽनलम्।
संस्थाप्य शिरसाऽऽधार्य ता जग्मुर्वरुणालयम्॥२०८॥
संस्थाप्य यत्र देवेशः सोमनाथो जगत्पतिः।
अभ्यास्ते विबुधैः सार्धं प्रभासे शशिभूषणः॥२०९॥
प्रापयामासुरनलं पञ्चनद्यः सरस्वति।
अध्यास्ते च महानग्निः पिबन्वारि शनैः शनैः॥२१०॥
ततः सुरगणाः सर्वे शिवमूचुः सुरोत्तमम्॥२११॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब सरस्वती ने कहा—''मैं अकेले इनको धारण नहीं कर सकूंगी। अतः और चार लोग मिल कर ले चलें, तब शीघ्र वरुणालय समुद्र तक इनको ले जा सकती हूं।'' सरस्वती की बात सुनकर देवताओं ने गंगा, यमुना, नर्मदा तथा ताप्ती से यह अनुरोध किया। अन्ततः सरस्वती ने उन सहयोगिनियों के साथ स्वर्णकलशस्थ अग्नि को मस्तक पर रखा तथा समुद्र की ओर चल पड़ीं। वे उस प्रभास क्षेत्र तक इस प्रकार अग्नि को ले आईं, जहां जगत्पति सोमनाथ शशिभूषण महेश्वर अवस्थान करते हैं। सरस्वती आदि पंच नदियों ने उस महाअग्नि को समुद्र में रख दिया जहां वह जल को शनैः-शनैः जलाता है। तदनन्तर देवगण ने देवश्रेष्ठ सुरोत्तम शिव से कहा—॥२०६-२११॥

देवा ऊचुः

अस्थ्नां च पावनं ब्रूहि अस्माकं च गवां तथा॥२१२॥

देवता कहते हैं—हे देव! दधीचि की अस्थियां, गौयें (जिन्होंने दधीचि का शरीर चाट कर अस्थि निकाला था), तथा हम सब कैसे पवित्र हो सकते हैं? वह कहें॥२१२॥

ब्रह्मोवाच

शिवः प्राह तदा सर्वान्गङ्गामाप्लुत्य यत्नतः।
देवाश्च गावस्तत्पापान्मुच्यन्ते नात्र संशयः॥२१३॥

प्रक्षालितानि चास्थीनि ऋषिदेहभवान्यथ।
तानि प्रक्षालनादेव तत्र प्राप्तानि पूतताम्॥२१४॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब शिव ने उन लोगों से कहा—"गौयें तथा देवता गौमतीगंगा में स्नान द्वारा पापमुक्त होंगे। वे अस्थियां ऋषियों द्वारा इस गौमतीगंगा में धोई जायें। वे पवित्र हो जायेंगी"।।२१३-२१४।।

यत्र देवा मुक्तपापास्तत्तीर्थं पापनाशनम्।
तत्र स्नानं च दानं च ब्रह्महत्याविनाशनम्॥२१५॥
गवां च पावनं यत्र गोतीर्थं तदुदाहृतम्।
तत्र स्नानान्महाबुद्धिर्गोमेधफलमाप्नुयात्॥२१६॥
यत्र तद्ब्राह्मणास्थीनि आसन्पुण्यानि नारद।
पितृतीर्थं तु वै ज्ञेयं पितृणां प्रीतिवर्द्धनम्॥२१७॥
भास्मास्थिनखरोमाणि प्राणिनो यस्य कस्यचित्।
तत्र तीर्थे सङ्क्रमेरन्यावच्चन्द्रार्कतारकम्॥२१८॥
स्वर्गे वासो भवेत्तस्य अपि दुष्कृतकर्मणः।
तथा चक्रेश्वरात्तीर्थात्त्रीणि तीर्थानि नारद।
ततः पूताः सुरगणा गावः शम्भुमथाब्रुवन्॥२१९॥

"हे नारद! जहां देवगण ने पापों से छुटकारा पाया था, वह है पापनाशन तीर्थ। वहां स्नान दान से ब्रह्महत्या तक का पाप नष्ट हो जाता है। जहां गौओं को पवित्रता मिली, वह है गोतीर्थ। हे नारद! जहां धोने से दधीचि की अस्थियां पावन हो गयीं, वह है पितृतीर्थ। यह तीर्थ पितरों की प्रसन्नता बढ़ाने वाला है। इस तीर्थ में यदि मृत प्राणी की भस्म, नख अथवा रोमादि छोड़ दिया जाये, तब वह प्राणी जब तक सूर्य-चन्द्र की सत्ता रहेगी, वह स्वर्ग में निवास करेगा। अत्यन्त दुष्कृति होने पर भी उसे स्वर्ग मिलेगा। यह निश्चित है। हे नारद! चक्रेश्वर तीर्थ से प्रारम्भ करके इन तीन तीर्थों में यही सब फल मिलता है।" तदनन्तर देवता एवं गोगण शंभु से पवित्र होकर कहने लगे।।२१५-२१९।।

गोसुरा ऊचुः

यामः स्वं स्वमधिष्ठानमत्र सूर्यः प्रतिष्ठितः।
अस्मिन्स्थिते दिनकरे सुषाः सर्वे प्रतिष्ठिताः॥२२०॥
भवेयुर्जगतामीश तदनुज्ञातुमर्हसि। सूर्यो ह्यात्माऽस्य जगतस्तस्थुषश्च सनातनः॥२२१॥
दिवाकरो देवमयस्तत्रास्माभिः प्रतिष्ठितः।
यत्र गङ्गा जगद्धात्री यत्र वै त्र्यम्बकः स्वयम्।
सुरवासं प्रतिष्ठानं भवेद्यत्र च त्र्यम्बकम्॥२२२॥

गौयें तथा देवता कहते हैं—यहां सूर्य प्रतिष्ठित हो गये। अब हम अपने-अपने स्थान जा रहे हैं। यहां

सूर्य की प्रतिष्ठा हो जाने का अर्थ है कि यहां समस्त देवता प्रतिष्ठापित हैं। हे ईश्वर! हमें अब आप जाने की आज्ञा प्रदान करें। सूर्य ही जगत् की सनातन आत्मा हैं। दिवाकर सर्वदेवोपम हैं। उनको हमने यहां पर स्थापित कर दिया। जहां स्वयं जगद्धात्री गौमतीगंगा तथा त्रिलोचन विराजित हैं, वह तो सभी देवगण का अधिष्ठान ही है।।२२०-२२२।।

ब्रह्मोवाच

आपृच्छ्य पिप्पलादं तं सुराः स्वं सदनं ययुः।
पिप्पलाः कालपर्यायें स्वर्गं जग्मुरथाक्षयम्॥२२३॥
पादपानां पदं विप्रः पिप्पलादः प्रतापवान्।
क्षेत्राधिपत्ये संस्थाप्य पूजयामास शङ्करम्॥२२४॥
दधीचिसूनुर्मुनिरुग्रतेजा, अवाप्य भार्यां गौतमस्याऽऽत्मजां च।
पुत्रानथावाप्य श्रियं यशाश्च, सुहृज्जनैः स्वर्गमवाप धीरः॥२२५॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं पिप्पलेश्वरमुच्यते।
सर्वक्रतुफलं पुण्यं स्मरणादघनाशनम्॥२२६॥
किं पुनः स्नानदानाभ्यामादित्यस्य तु दर्शनात्।
चक्रेश्वरः पिप्पलेशो देवदेवस्य नामनी॥२२७॥
सरहस्यं विदित्वा तु सर्वकामानवाप्नुयात्। सूर्यस्य च प्रतिष्ठानात्सुरवासे प्रतिष्ठिते।
प्रतिष्ठानं तु तत्क्षेत्रं सुराणामपि वल्लभम्॥२२८॥
इतीदमाख्यानमतीव पुण्यं, पठेत वा यः शृणुयात्स्मरेद्वा।
स दीर्घजीवी धनवान्धर्मयुक्तश्चान्ते स्मरञ्शंभुमुपैति नित्यम्॥२२९॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे चक्रेश्वरपिप्पलेश्वरपापप्रणाशनगोतीर्थपितृतीर्थसूर्यप्रतिष्ठानकोट्यादितीर्थवर्णनं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः॥११०॥

गौतमीमाहात्म्ये एकचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥४१॥



ब्रह्मा कहते हैं—अब पिप्पलाद मुनि से पूछ कर देवगण अपने धाम चले गये। कालक्रमेण उन सभी पीपल वृक्षों ने अक्षय स्वर्गलाभ किया। उधर प्रतापी पिप्पलाद मुनि भी उस स्थान पर एक पादप प्रधान पीपल वृक्ष को स्थापित करके शंकर की आराधना करने लगे। महातेजवान् दधीचिनन्दन ने गौतम पुत्री से विवाह किया। उन्होंने पुत्र-स्त्री तथा यश अर्जित किया था। अन्त में वे सुहृदों के साथ स्वर्ग चले गये। तब से यह तीर्थ पिप्पलेश्वर के नाम से प्रख्यात हो गया। इस तीर्थ के स्मरण मात्र से यज्ञफल मिलता है। समस्त पाप दूर हो जाते हैं। यहां तीर्थदर्शन, स्नान-दानादि से कितना फल मिलेगा, उसे कैसे कहा जा सकता है? पिप्पलेश, चक्रेश, देवदेव का ही नाम है। जिनको रहस्य के साथ यह वृत्तान्त ज्ञात है, उसकी समस्त

कामनायें सफल हो जाती हैं। यहां सूर्य स्थापित होने के कारण यह समस्त देवाधिष्ठान हो गया। अतः यह देवप्रिय स्थल है। यह उपाख्यान महान् पुण्यदायक है। इसको पढ़ने, सुनने तथा स्मरण करने वाला मनुष्य दीर्घजीवी, धनिक तथा धार्मिक जीवन व्यतीत करके, अन्ततः शिव स्मरण करते-करते देहत्यागोपरान्त नित्यपद लाभ करता है।।२२३-२२९।।

।।दशाधिक शततम अध्याय समाप्त।।



अथैकादशाधिकशततमोऽध्यायः

नागतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

नागतीर्थमिति ख्यातं सर्वकामप्रदं शुभम्। यत्र नागेश्वरो देवः शृणु तस्यापि विस्तरम्॥१॥
प्रतिष्ठानपुरे राजा शूरसेन इति श्रुतः। सोमवंशभवः श्रीमान्मतिमान्गुणसागरः॥२॥
पुत्रार्थं स महायत्नमकरोत्प्रियया सह। तस्य पुत्रश्चिरादासीत्सर्पो वै भीषणाकृतिः॥३॥
पुत्रं तं गोपयामास शूरसेनो महीपतिः। राज्ञः पुत्रः सर्व इति न कश्चिद्विन्दते जनः॥४॥
अन्तर्वर्ती परो वापि मातरं पितरं विना। धात्रेय्यपि न जानाति नामात्यो न पुरोहितः॥५॥
तं दृष्ट्वा भीषणं सर्पं सभार्यो नृपसत्तमः। संतापं नित्यमाप्नोति सर्पाद्वरमपुत्रता॥६॥
एतदस्ति महासर्पो वक्ति नित्यं मनुष्यवत्। स सर्पः पितरं प्राह कुरु चूड़ामपि क्रियाम्॥७॥
तथोपनयनं चापि वेदाध्ययनमेव च। यावद्वेदं च चाधीते तावच्छूद्रसमो द्विजः॥८॥

ब्रह्मा कहते हैं—विख्यात शुभ नागतीर्थ सभी कामनाओं का प्रदाता है। यहां स्वयं भगवान् नागेश्वर अवस्थित हैं। हे नारद! इस स्थान का विवरण सुनो। सुना गया है कि पूर्वकाल में प्रतिष्ठानपुरी में शूरसेन नामक चन्द्रवंशी राजा राज्य करते थे। ये गुणी, श्रीमान् तथा मतिमान् थे। इन्होंने पुत्रलाभार्थ पत्नी के साथ अनेक यज्ञ सम्पन्न किया था। तदनन्तर एक भीषणाकृति सर्प इनका पुत्र होकर जन्मा। शूरसेन ने इस पुत्र को छिपा कर रखा था। इन पिता-माता के अतिरिक्त इस रहस्य को कोई अन्तःपुर निवासी भी नहीं जान सका। अमात्य, पुरोहित, धात्री तक इस संवाद को नहीं जान सके। राजा इस भीषण सर्प को देख कर सदा पत्नी सहित सन्तप्त रहा करता था। वह मन ही मन सोचता रहता था कि इस सर्प सन्तान से तो यही अच्छा था कि मैं पुत्रहीन ही रह जाता। यह महासर्प मनुष्यों की भाषा बोला करता था। उसने सत्यता पूर्वक पिता से एक बार कहा कि "आप मेरा चूड़ाकरण, उपनयन तथा वेदाध्ययन आयोजित करें। जब तक द्विजों को वेदाध्ययन नहीं कराया जाता, वे शूद्र रहते हैं"।।१-८।।

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा पुत्रवचः शूरसेनोऽतिदुःखितः।
ब्राह्मणं कंचनाऽऽनीय संस्कारादि तदाऽकरोत्।
अधीतवेदः सर्पोऽपि पितरं चाब्रवीदिदम्।।९।।

ब्रह्मा कहते हैं—राजा ने पुत्र की यह बात सुना तथा अत्यन्त दुःखी हो गये। उन्होंने एक ब्राह्मण को बुला कर सर्प का संस्कारादि करा दिया। सर्प ने वेदाध्ययन सम्पन्न करके पिता से कहा—।।९।।

सर्प उवाच

विवाहं कुरु मे राजन्स्त्रीकामोऽहं नृपोत्तम।
अन्यथाऽपि च कृत्यं ते न सिध्येदिति मे मतिः।।१०।।
जनयित्वाऽऽत्मजान्वेदविधिनाऽखिलसंस्कृतीः ।
न कुर्याद्यः पिता तस्य नरकान्नास्ति निष्कृतिः।।११।।

सर्प कहता है—हे नृपोत्तम! मेरा विवाह कर दीजिये। मुझे स्त्री की कामना हो रही है। पुत्र का विवाह हुये बिना पिता का कार्य (तर्पण-पिण्डदानादि) सिद्ध नहीं होता। यही मेरी धारणा है। जो पिता पुत्रोत्पत्ति करके सर्वदा वेदविधि के अनुरूप संस्कारों को सम्पन्न नहीं कर लेता, वह नरक से छुटकारा नहीं पा सकता।।१०-११।।

ब्रह्मोवाच

विस्मितः स पिता प्राह सुतं तमुरगाकृतिम्।।१२।।

ब्रह्मा कहते हैं—तब पिता शूरसेन ने विस्मित होकर अपने सर्पाकार पुत्र से कहा—।।१२।।

शूरसेन उवाच

यस्य शब्दादपि त्रासं यान्ति शूराश्च पूरुषाः।
तस्मै कन्यां तु को दद्याद्वद पुत्र करोमि किम्।।१३।।

राजा शूरसेन कहते हैं—जिसके फूत्कार शब्द से वीर पुरुष भी त्रस्त हो जाते हैं, उसे कौन व्यक्ति कन्या प्रदान करेगा? हे पुत्र! मैं क्या करूं? तुम ही कहो।।१३।।

ब्रह्मोवाच

तत्पितुर्वचनं श्रुत्वा सर्पः प्राह विचक्षणः।।१४।।

ब्रह्मा कहते हैं—पिता का कथन सुनकर उस विचक्षण सर्प ने कहा—।।१४।।

सर्प उवाच

विवाहा बहवो राजन्राज्ञां सन्ति जनेश्वर। प्रसह्याऽऽहरणं चापि शस्त्रैर्वैवाह एव च।।१५।।
जाते विवाहे पुत्रस्य पिताऽसौ कृतकृद्भवेत्।
नो चेदत्रैव गङ्गायां मरिष्ये नात्र संशयः।।१६।।

सर्प कहता है—हे राजन्! राजाओं का विवाह अनेक प्रकार का होता है। उनमें से शस्त्रबल द्वारा बलात् कन्या हरण करके लाना भी एक प्रकार का विवाह ही है। पुत्र का विवाह करके पिता कृतार्थ हो जाते हैं। यदि मेरा विवाह नहीं होगा, तब मैं निश्चित रूप से गंगाजल में डूब कर प्राणत्याग करूंगा। यह निःसंशय है।।१५-१६।।

ब्रह्मोवाच

तत्पुत्रनिश्चयं ज्ञात्वा अपुत्रो नृपसत्तमः। विवाहार्थममात्यास्तानाहूयेदं वचोऽब्रवीत्॥१७॥

ब्रह्मा कहते हैं—राजा ने पुत्र का यह निश्चय जान कर अमात्यों को बुला कर कहा—॥१७।।

शूरसेन उवाच

नागेश्वरो मम सुतो युवराजो गुणाकरः। गुणवान्मतिमाञ्शूरो दुर्जयः शत्रुतापनः॥१८॥
रथे नागे स धनुषि पृथिव्यां नोपमीयते। विवाहस्तस्य कर्तव्यो ह्यहं वृद्धास्तथैव च॥१९॥
राज्यभारं सुते न्यस्य निश्चिन्तोऽहं भवाम्यतः।
न दारसङ्ग्रहो यावत्तावत्पुत्रो मम प्रियः॥२०॥
बालभावं नो जहाति तस्मात्सर्वेऽनुमन्य च।
विवाहायाथ कुर्वन्तु यत्नं मम हिते रताः॥२१॥
न मे काचित्तदा चिन्ता कृतोद्वाहो यदाऽऽत्मजः।
सुते न्यस्तभरा यान्ति कृतिनस्तपसे वनम्॥२२॥

राजा शूरसेन कहते हैं—मेरा पुत्र नागेश्वर युवराज पद पर स्थित हो गया है। वह गुणी, मतिमान्, शूर, दुर्जय तथा शत्रुतापन है। रथ, हाथी तथा धनुष संचालन में उसके समान धरती पर कोई नहीं है। मैं वृद्ध हो गया। अब इस पुत्र का विवाह करना कर्त्तव्य है। मैं पुत्र पर राज्यभार देकर निश्चिन्त होना चाहता हूं। जब तक उसका विवाह नहीं हो जाता, तब तक मेरे पुत्र की बाल्यचपलता नहीं जायेगी। अतः आप सब मेरे हितैषी मन्त्री लोग मेरे पुत्र के विवाह का प्रयत्न करिये। पुत्र के विवाहित हो जाने पर मेरी कोई चिन्ता बाकी नहीं रहेगी। कृती लोग पुत्र पर राज्यभार देकर तपार्थ वन जाते हैं।।१८-२२।।

ब्रह्मोवाच

अमात्या राजवचनं श्रुत्वा सर्वे विनीतवत्।
ऊचुः प्राञ्जलयो हर्षाद्राजानं भूरितेजसम्॥२३॥

अमात्या ऊचुः

तव पुत्रो गुणज्येष्ठस्त्वं च सर्वत्र विश्रुतः।
विवाहे तव पुत्रस्य किं मन्त्र्यं किन्तु चिन्त्यते॥२४॥

ब्रह्मा कहते हैं—अमात्यों ने राजा का कथन सुनकर हाथ जोड़ते हुये विनीत भाव से हर्षान्वित होकर

कहा—"हे राजन्! आप सर्वत्र विश्रुत हैं। आपका पुत्र निश्चत रूप से गुणयुक्त होगा। अतः उसके विवाहार्थ इतना चिन्तित होना आवश्यक नहीं है"।।२३-२४।।

ब्रह्मोवाच

अमात्येषु तथोक्तेषु गम्भीरो नृपसत्तमः।
पुत्रं सर्पं त्वमात्यानां च चाऽऽख्याति न ते विदुः॥२५॥
राजा पुनस्तानुवाच का स्यात्कन्या गुणाधिका।
महावंशभवः श्रीमान्को राजा स्याद्गुणाश्रयः॥२६॥
संबन्धयोग्यः शूरश्च यत्सम्बन्धः प्रशस्यते।
तद्राजवचनं श्रुत्वा अमात्यानां महामतिः॥२७॥
कुलीनः साधुरत्यन्तं राजकार्यहिते रतः।
राज्ञो मतिं विदित्वा तु इङ्गितज्ञोऽब्रवीदिदम्॥२८॥

ब्रह्मा कहते हैं—अमात्यों के यह कहने पर भी राजा गंभीर बने रहे। उन्होंने अमात्यों से नहीं कहा कि उनका पुत्र सर्प है। अमात्यगण इस विषय में तनिक नहीं जानते थे। राजा ने इस बात को गुप्त रखते हुये पुनः अमात्यों से कहा कि ऐसी कौन गुणी कन्या है, जिससे सम्बन्ध करने पर वंशगौरव की हानि न हो। वह उत्तम वंश में जन्मी हो, जिसमें श्री, भाग्य, शौर्य तथा गुण हो। ऐसे कौन राजा हैं, जिनके कुल से मैं सम्बन्ध स्थापित करूं? राजा का यह कथन सुनकर उन अमात्यों में से एक महामति, कुलीन, साधु, अत्यन्त राजकार्य हित में तत्पर इंगित मात्र से राजा का अभिप्राय जान सकने में सक्षम मन्त्री कहने लगा।।२५-२८।।

अमात्य उवाच

पूर्वदेशे महाराज विजयो नाम भूपतिः। वाजिवारणरत्नानां यस्य संख्या न विद्यते॥२९॥
अष्टौ पुत्रा महेष्वासा महाराजस्य धीमतः।
तेषां स्वासा भोगवती साक्षाल्लमीरिवापरा।
तव पुत्रस्य योग्या सा भार्या राजन्मयोदिता॥३०॥

अमात्य कहता है—हे राजन्! पूर्व देश का शासक राजा विजय असंख्य अश्व, हस्ति, रत्न का स्वामी है, जिसकी गणना नहीं हो सकती। उस श्रीमान् नरपति के धनुर्विद्या निष्णात आठ पुत्र तथा भोगवती नामक कन्या साक्षात लक्ष्मी जैसी है। मेरे मत से वह आपके पुत्र के योग्य है।।२९-३०।।

ब्रह्मोवाच

वृद्धामात्यवचः श्रुत्वा राजा तं प्रत्यभाषत॥३१॥

ब्रह्मा कहते हैं—वृद्ध मन्त्री का कथन सुनकर राजा ने उत्तर देते कहा—।।३१।।

राजोवाच

सुता तस्य कथं मेऽस्य सुतस्य स्याद्वदस्व तत्॥३२॥

राजा कहते हैं—वह उपाय कहिये कि किस प्रकार से राजा विजय की कन्या मेरी पुत्रवधू हो सकेगी?।।३२।।

वृद्धामात्य उवाच

लक्षितोऽसि महाराज यत्ते मनसि वर्तते। यच्छूरसेन कृत्यं स्यादनुजानीहि मां ततः।।३३।।

वृद्ध अमात्य कहते हैं—आपने मन ही मन जो सोचा है, उसे मैं समझ गया। अब आप मुझे कर्त्तव्य साधनार्थ सहमति दीजिये।।३३।।

ब्रह्मोवाच

वृद्धामात्यवचः श्रुत्वा भूषणाच्छादनोक्तिभिः।
सम्पूज्य प्रेषयामास महत्या सेनया सह।।३४।।
स पूर्वदेशमागत्य महाराजं समेत्य च। सम्पूज्य विविधैर्वाक्यैरुपायैर्नीतिसंभवैः।।३५।।
महाराजसुतायाश्च भोगवत्या महामतिः। शूरसेनस्य नृपतेः सूनोर्नागस्य धीमतः।।३६।।
विवाहायाकरोत्सन्धिं मिथ्यामिथ्यावचोक्तिभिः।
पूजयामास नृपतिं भूषणाच्छादनादिभिः।।३७।।
अवाप्य पूजां नृपतिर्ददामीत्यवदत्तदा। तत आगत्य राज्ञेऽसौ वृद्धामात्यो महामतिः।।३८।।
शूरसेनाय तद्वृत्तं वैवाहिकमवेदयत्। ततो बहुतिथे काले वृद्धामात्यो महामतिः।।३९।।
पुनर्बलेन महता वस्त्रालङ्कारभूषितः। जगाम तरसा सर्वैरन्यैश्च सचिवैर्वृतः।।४०।।
विवाहाय महामात्यो महाराजाय बुद्धिमान्।
सर्वं प्रोवाच वृद्धोऽसावमात्यः सचिवैर्वृतः।।४१।।

ब्रह्मा कहते हैं—वृद्ध अमात्य का प्रस्ताव सुनकर राजा ने भूषण, आच्छादन तथा वचन से उस मन्त्री को सम्मानित करके उसे विपुल सेना के साथ भेजा। वह मन्त्री पूर्व देश में आकर राजा विजय से मिला तथा विविध नीतिगर्भित वाक्यों एवं उपाय से महाराज विजय की संवर्द्धना करके उनकी कन्या भोगवती से राजा शूरसेन के पुत्र नागेश्वर का विवाह सम्बन्ध निश्चित कर लिया। उसने भूषण, आच्छादन एवं प्रचुर असत्य उक्तियों तथा नीतियों का आश्रय लेकर राजा विजय की अभ्यर्थना किया। राजा ने प्रसन्न होकर कन्यादानार्थ स्वीकृति प्रदान कर दिया। तब महामति वह अमात्य वापस लौटा तथा उसने राजा शूरसेन से समस्त वृत्तान्त आद्योपान्त कह दिया। तदनन्तर दीर्घकालोपरान्त वह अमात्य कई मन्त्री, वस्त्रालंकार एवं महती सेना के साथ विवाह प्रस्ताव लेकर महाराज विजय के यहां गया। वह वृद्ध अमात्य वहां पहुंचकर राजा विजय से कहने लगा।।३७-४१।।

वृद्धामात्य उवाच

अत्राऽऽगन्तुं न चाऽऽया (चेच्छ) ति शूरसेनस्य भूपतेः।
पुत्रो नाग इति ख्यातो बुद्धिमान्गुणसागरः।।४२।।

क्षत्रियाणां विवाहाश्च भवेयुर्बहुधा नृप। तस्माच्छस्त्रैरलंकारैर्विवाहः स्यान्महामते॥४३॥
क्षत्रिया ब्राह्मणाश्चैव सत्यां वाचं वदन्ति हि। तस्माच्छस्त्रैरलङ्कारैर्विवाहस्त्वनुमन्यताम्॥४४॥

वृद्ध अमात्य कहता है—शूरसेन का पुत्र बुद्धिमान गुणी नाग नामक है। वह यहां नहीं आना चाहता। हे नृप! क्षत्रिय विवाह अनेक प्रकार से कर लेते हैं। हे महामति! शस्त्र एवं अलंकार के साथ भी विवाह हो सकता है। अतः क्षत्रिय एवं ब्राह्मण सदा सत्य बोलते हैं। यह जानकर आप शस्त्र एवं अलंकार से अपनी कन्या का विवाह कर दीजिये।।४२-४४।।

ब्रह्मोवाच

वृद्धामात्यवचः श्रुत्वा विजयो राजसत्तमः। मेने वाक्यं तथा सत्यममात्यं भूपतिं तदा॥४५॥
विवाहमकरोद्राजा भोगवत्याः सविस्तरम्।
शस्त्रेण च यथाशास्त्रं प्रेषयामास तां पुनः॥४६॥
स्वानमात्यांस्तथा गाश्च हिरण्यतुरगादिकम्।
बहु दत्त्वाऽथ विजयो हर्षेण महता युतः॥४७॥
तामादायाश्च सचिवा वृद्धामात्यपुरोगमाः।
प्रतिष्ठानमथाभ्येत्य शूरसेनाय तां स्नुषाम्॥४८॥
न्यवेदयंस्तथोचुस्ते विजयस्य वचो बहु।
भूषणानि विचित्राणि दास्यो वस्त्रादिकं च यत्॥४९॥
निवेद्य शूरसेनाय कृतकृत्या बभूविरे।
विजयस्य तु येऽमात्या भोगवत्या सहाऽऽगताः॥५०॥
तान्पूजयित्वा राजाऽसौ बहुमानपुरःसरम्।
विजयाय यथा प्रीतिस्तथा कृत्वा व्यसर्जयत्॥५१॥

ब्रह्मा कहते हैं—वृद्ध अमात्य का वाक्य सुनकर राजा विजय ने उसकी बातों को सत्य माना तथा अस्त्र के साथ कन्या भोगवती का विवाह कर दिया। तदनन्तर राजा विजय ने अपनी कन्या भोगवती को विवाहोपरान्त वृद्ध अमात्य के साथ पतिगृह भेज दिया। विजय ने कन्या के साथ अपने मन्त्रियों, गौ, स्वर्ण, अश्वादि प्रचुर दहेज भी प्रसन्नता के साथ भेज दिया। वृद्ध अमात्य आदि वरपक्ष वाले लोग उस नववधू के साथ प्रतिष्ठानपुर लौटे तथा वहां आकर शूरसेन को समस्त वृत्तान्त निवेदन किया तथा जो कुछ संवाद विजय राजा ने कहा था, वह भी राजा शूरसेन से कह दिया। उस वृद्ध मन्त्री ने दहेज में मिले विचित्र आभूषण, दास-दासी तथा वस्त्रादि को राजा के समीप रख कर कृतकृत्यता का अनुभव किया। कन्या भोगवती के साथ राजा विजय के जो सभी मन्त्री आये थे, राजा शूरसेन ने उनको अत्यन्त सम्मान के साथ वस्त्राभूषण से सत्कृत करके विदा कर दिया। जिस प्रकार से राजा विजय प्रसन्न हों, उस व्यवस्था से अमात्यगण का राजा शूरसेन ने सत्कार तथा विदा कार्य किया था।।४५-५१।।

विजयस्य सुता बाला रूपयौवनशालिनी। श्वश्रूश्वशुरयोर्नित्यं शुश्रूषन्ती सुमध्यमा॥५२॥
भोगवत्याश्च यो भर्ता महासर्पोऽतिभीषणः। एकान्तदेशे विजने गृहे रत्नसुशोभिते॥५३॥
सुगन्धकुसुमाकीर्णे तत्राऽऽस्ते सुखशीतले। स सर्पो मातरं प्राह पितरं च पुनः पुनः॥५४॥
मम भार्या राजपुत्री किं मां नैवोपसर्पति। तत्पुत्रवचनं श्रुत्वा सर्पमातेदमब्रवीत्॥५५॥

रूपयौवन सम्पन्ना विजयपुत्री भोगवती स्वामीगृह में रहकर सदैव श्वसुर-सास की सेवा करने लगी। भोगवती का पति भीषण सर्प था। वह महासर्प गृह में एक रत्नमंडित सुगन्ध-पुष्पमय शीतल निर्जन स्थान में रहता था। वह सर्प नित्य माता से कहता—"हे माता! मेरी पत्नी राजपुत्री मेरे पास क्यों नहीं आती।" पुत्र की बात सुनकर सर्पमाता ने धात्री से कहा—।।५२-५५।।

राजपत्न्युवाच

धात्रिके गच्छ सुभगे शीघ्रं भोगवतीं वद।
तव भर्ता सर्प इति ततः सा किं वदिष्यति॥५६॥

राजपत्नी कहती है—हे सुभगे! तुम जाकर भोगवती से कहो कि तुम्हारा पति एक सर्प है। यह संवाद सुनकर वह क्या उत्तर देती है, वह बतलाना।।५६।।

ब्रह्मोवाच

धात्रिका च तथेत्युक्त्वा गत्वा भोगवतीं तदा। रहोगता उवाचेदं विनीतवदपूर्ववत्॥५७॥

ब्रह्मा कहते हैं—धात्री ने भोगवती के पास जाकर विनीत स्वर में एकान्त में उससे कहा—।।५७।।

धात्रिकोवाच

जानेऽहं सुभगे भद्रे भर्तारं तव दैवतम्।
न चाऽऽख्येयं त्वया क्वापि सर्पो न पुरुषो ध्रुवम्॥५८॥

धात्री कहती है—हे भद्रे! मुझे ज्ञात है कि तुम्हारा पति मनुष्य न होकर देवता है, तथापि वह सर्पाकृति है।।५८।।

ब्रह्मोवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा भोगवत्यब्रवीदिदम्॥५९॥

ब्रह्मा कहते हैं—धात्री का कथन सुनकर भोगवती ने उसका उत्तर दिया।।५९।।

भोगवत्युवाच

मानुषीणां मनुष्यो हि भर्ता सामान्यतो भवेत्।
किं पुनर्देवजातिस्तु भर्ता पुण्येन लभ्यते॥६०॥

भोगवती कहती है—सामान्यतया मानुषी का पति मनुष्य ही होता है, तथापि पुण्य के कारण देवयोनि पति स्त्री को मिलता है।।६०।।

ब्रह्मोवाच

भोगवत्यास्तु तद्वाक्यं सा च सर्वं न्यवेद।
सर्पाय सर्पमात्रे च राज्ञे चैव यथाक्रमम्॥६१॥
रुरोद राजा तद्वाक्यात्स्मृत्वा तां कर्मणो गतिम्।
भोगवत्यपि तां प्राह उक्तपूर्वां पुनःसखीम्॥६२॥

ब्रह्मा कहते हैं—उस धात्री ने सर्प के माता-पिता से भोगवती का यह कथन कहा। तथापि सर्प पिता शूरसेन राजा इसे कर्मगति जान कर रोने लगे। इधर भोगवती ने एक दिन पूर्व परिचिता धात्री-सखी से कहा—॥६१-६२॥

भोगवत्युवाच

कान्तं दर्शय भद्रं ते वृथा याति वयो मम॥६३॥

भोगवती कहती है—हे भद्रे! मेरी आयु व्यर्थ व्यतीत हो रही है। मेरे पति का मुझे दर्शन कराओ। इससे तुम्हारा कल्याण होगा॥६३॥

ब्रह्मोवाच

ततः सा दर्शयामास सर्पं तमतिभीषणम्। सुगन्धकुसुमाकीर्णे शयने सा रहोगता॥६४॥
तं दृष्ट्वा भीषणं सर्पं भर्तारं रत्नभूषितम्। कृताञ्जलिपुटा वाक्यमवदत्कान्तमञ्जसा॥६५॥

ब्रह्मा कहते हैं—तदनन्तर उस धात्री सखी ने उसे उस भीषण सर्पपति का दर्शन कराया। भोगवती ने निर्जन में स्थित सुगन्ध पुष्पों से भरी शय्या पर रत्नों से अलंकृत भीषण सर्पपति का दर्शन किया तथा विनीत भाव से हाथ जोड़ कर पति सर्प से कहने लगी॥६४-६५॥

भोगवत्युवाच

धन्याऽस्म्यनुगृहीताऽस्मि यस्या मे दैवतं पतिः॥६६॥

भोगवती कहती है—मैंने देवता पति पाया है। अतः मैं धन्य तथा कृतार्थ हूं॥६६॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा शयने स्थित्वा तं सर्पं सर्पभावनैः।
खेलयामास तन्वङ्गी गीतैश्चैवाङ्गसंगमैः॥६७॥
सुगन्धकुसुमैः पानैस्तोषयामास तं पतिम्। तस्याश्चैव प्रसादेन सर्पस्याभूत्स्मृतिर्मुने।
स्मृत्वा सर्वं दैवकृतं रात्रौ सर्पोऽब्रवीत्प्रियाम्॥६८॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह कहकर भोगवती स्वयं शय्या पर चली गयी। उसने सर्प के साथ उस सर्प के मन को रुचिकर लगने वाले गीत, वाद्य, अंगसंगम से उसके साथ क्रीड़ा किया। राजकुमारी ने सुगन्धपुष्पों एवं पेय आदि प्रदान करके पति को तृप्त किया। तब भोगवती के पुण्य प्रभाव तथा कृपा के कारण उस सर्प को

पूर्वजन्म की स्मृति जाग्रत हो गयी। तब सर्प ने रात में दैवकृत समस्त वृत्तान्त को याद करके पत्नी से कहा—॥६७-६८॥

राजकन्याऽपि मां दृष्ट्वा न भीताऽसि कथं प्रिये।
सोवाच दैवविहितं कोऽतिक्रमितुमीश्वरः।
पतिरेव गतिः स्त्रीणां सर्वदैव विशेषतः॥६९॥

सर्प कहता है—"हे प्रिये! तुम राजकन्या होकर भी मुझे देख कर क्यों नहीं डरी?" राजकन्या ने कहा—"दैव द्वारा निश्चित की गई घटना को कौन बदल सकता है? विशेषतः पति ही सर्वदा स्त्री की गति है॥६९॥

ब्रह्मोवाच

श्रुत्वेति हृष्टस्तामाह नागः प्रहसिताननः॥७०॥

ब्रह्मा कहते हैं—नाग ने भोगवती का यह कथन सुनकर सहास्य कहा—॥७०॥

सर्प उवाच

तुष्टोऽस्मि तव भक्त्याऽहं किं ददामि तवेप्सितम्।
तव प्रसादाच्चार्वङ्गि सर्वस्मृतिरभूदियम्॥७१॥
शप्तोऽहं देवदेवेन कुपितेन पिनाकिना। महेश्वरकरे नागः शेषपुत्रो महाबलः॥७२॥
सोऽहं पतिस्त्वं च भार्या नाम्ना भोगवती पुरा।
उमावाक्याज्जहासोच्चैः शंभुः प्रीतो रहोगतः॥७३॥
ममापि चाऽऽगतं भद्रे हास्यं तद्देवसंनिधौ।
ततस्तु कुपितः शंभुः प्रादाच्छापं ममेदृशम्॥७४॥

सर्प कहता है—मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हो गया। मैं तुमको क्या प्रदान करूं, वह मांगो। हे उत्तम अंगों वाली! तुम्हारी कृपा से मेरी पूर्वजन्म स्मृति जाग्रत हो गयी। पूर्वकाल में देवाधिदेव शिव ने मुझे शाप दिया था। मैं शेषनाग पुत्र महाबली नाग हूं। मैं पूर्वकाल में शंकर के हाथों पर लिपटा रहता था। उस जन्म में भी तुम मेरी पत्नी थी। एक बार उमा देवी का कथन सुनकर शंभु ने प्रसन्नता के कारण अत्यन्त उच्च हास्य किया था। हे भद्रे! तब मैं भी देवाधिदेव के पास रहने के कारण हंसने लगा। इससे शंभु क्रोधित हो गये तथा उन्होंने मुझे शाप दे दिया॥७१-७४॥

शिव उवाच

मनुष्ययोनौ त्वं सर्पो भविता ज्ञानवानिति॥७५॥

शंभुदेव ने कहा—तुम मनुष्य के यहां सर्पयोनि में जन्म लो। तुम ज्ञानी सर्प होगे॥७५॥

सर्प उवाच

ततः प्रसादितः शम्भुस्त्वया भद्रे मया सह। ततश्चोक्तं तेन भद्रे गौतम्यां मम पूजनम्॥७६॥

कुर्वतो ज्ञानमाधास्ये यदा सर्पाकृतेस्तव।
तदा विशापो भविता भोगवत्याः प्रसादतः॥७७॥
तस्मादिदं ममाऽऽपन्नं तव चापि शुभानने।
तस्मान्नीत्वा गौतमीं मां पूजां कुरु मया सह॥७८॥
ततो विशापो भविता आवां यावः शिवं पुनः।
सर्वेषां सर्वदाऽऽर्तानां शिव एव परा गतिः॥७९॥

सर्प कहता है—हे भद्रे! तब उस जन्म में मैंने तुम्हारे साथ प्रयत्न करके भगवान् को प्रसन्न किया था। तब भगवान् महेश्वर ने कहा था कि "जब तुम पत्नी के साथ उस जन्म में गौतमीगंगा के तट पर जाकर मेरी अर्चना करोगे, तब तुम अपनी पत्नी भोगवती की कृपा से शापरहित हो जाओगे। हे शुभानने! इसीलिये मुझे सर्पाकृति मिली है। अब तुम मुझे गौतमीतट पर ले जाकर मेरे साथ महेश्वर अर्चना करो। यही करने से मुझे शाप से मुक्ति मिल जायेगी। तदनन्तर हम दोनों को शिवपद की प्राप्ति होगी। हे प्रिये! संसार में सबके लिये शिव ही एकमात्र गति हैं।।७६-७९।।

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा भर्तृवचनं सा भर्त्रा गौतमीं ययौ।
ततः स्नात्वा तु गौतम्यां पूजां चक्रे शिवस्य तु॥८०॥
ततः प्रसन्नो भगवान्दिव्यरूपं ददौ मुने। आपृच्छ्य पितरौ सर्पो भार्यया गन्तुमुद्यतः।
शिवलोकं ततो ज्ञात्वा पिता प्राह महामतिः॥८१॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह प्रसंग सुनकर भोगवती उस सर्पपति को लेकर गौतमीतट पर गयी। वहां दोनों ने गौतमीजल में स्नानोपरान्त शिवार्चन सम्पन्न किया। इससे प्रसन्न होकर भगवान् शंभु ने सर्प को दिव्य रूप प्रदान किया। वह अब दिव्य रूपी होकर माता-पिता के पास जाकर उनको प्रणाम करने के उपरान्त शिवलोक जाने की अनुमति मांगने लगा। यह जान कर पिता महामति शूरसेन ने कहा—।।८०-८१।।

पितोवाच

युवराज्यधरो ज्येष्ठः पुत्र एको भवानिति। तस्माद्राज्यमशेषेण कृत्वोत्पाद्य सुतान्बहून्।
याते मयि परं धाम ततो याहि शिवं पुरम्॥८२॥

पिता कहते हैं—हे पुत्र! तुम ही मेरे प्रधान पुत्र हो। यहां के युवराज हो। सर्व प्रकार राज्यभोग करके अनेक पुत्रोत्पत्ति के अनन्तर मेरी मृत्यु के उपरान्त तुम शिवधाम जाना।।८२।।

ब्रह्मोवाच

एतच्छ्रुत्वा पितृवचस्तथेत्याह स नागराट्। कामरूपमवाप्याथ भार्यया सह सुव्रतः॥८३॥
पित्रा मात्रा तथा पुत्रै राज्यं कृत्वा सुविस्तरम्।
याते पितरि स्वर्लोकं पुत्रान्स्थाप्य स्वके पदे॥८४॥

भार्यामात्यादिसहितस्ततः शिवपुरं ययौ। ततः प्रभृति तत्तीर्थं नागतीर्थमिति श्रुतम्॥८५॥
यत्र नागेश्वरो देवो भोगवत्या प्रतिष्ठितः। तत्र स्नानं च दानं च सर्वक्रतुफलप्रदम्॥८६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये नागतीर्थवर्णनं नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः॥१११॥
गौतमीमाहात्म्ये द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥४२॥



ब्रह्मा कहते हैं—नागराज ने पिता की आज्ञा से सहमत होकर तथा कमनीय रूपी हो जाने पर पिता-माता पुत्रों के साथ विशाल राज्य का उपभोग किया। पिता के परलोक गमन के उपरान्त राज्यपद पर पुत्रों को अभिषिक्त करके अपनी स्त्री तथा अमात्यों के साथ वह शिवधाम चला गया। तभी से यहां तीर्थ में भोगवती द्वारा स्थापित नागेश्वर देव विराजमान हैं। यहां स्नान-दान द्वारा व्यक्ति सर्व यज्ञफल प्राप्त करता है।।८३-८६।।

।।एकादशाधिकशततम अध्याय समाप्त।।



अथ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

मातृतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

मातृतीर्थमिति ख्यातं सर्वसिद्धिकरं नृणाम्। आधिभिर्मुच्यते जन्तुस्तत्तीर्थस्मरणादपि॥१॥
देवानामसुराणां च सङ्गरोऽभूत्सुदारुणः। नाशक्नुवंस्तदा जेतुं देवा दानवसंगरम्॥२॥
तदाऽहमगमं देवैस्तिष्ठन्तं शूलपाणिनम्।
अस्तवं विविधैर्वाक्यैः कृताञ्जलिपुटः शनैः॥३॥

ब्रह्मा कहते हैं—प्रसिद्ध मातृतीर्थ मनुष्यों हेतु सर्वसिद्धि देने वाला है। इसके स्मरण से ही प्राणीगण के मन का दुःख दूरीभूत हो जाता है। पूर्वकाल में भीषण देवासुर युद्ध छिड़ा था। उसमें देवता लोग दानवों को परास्त नहीं कर सके। तब मैं भी देवताओं के साथ प्रभु शूलपाणि के यहां गया तथा हाथ जोड़कर अनेक वाक्यों से उनका स्तव भी किया।।१-३।।

संमन्त्र्य देवैरसुरैश्च सर्वैर्यदाऽऽहृतं सम्माथितुं समुद्रम्।
यत्कालकूटं समभून्महेश, तत्त्वां विना को ग्रसितुं समर्थः॥४॥
पुष्पप्रहारेण जगत्त्रयं यः; स्वाधीनमापादयितुं समर्थः।
मारो हरेऽप्यन्यसुरादिवन्द्यो, वितायमानो विलयं प्रयातः॥५॥

विमथ्य वारीशमनङ्गशत्रो, यदुत्तमं तत्तु दिवौकसेभ्यः।
दत्त्वा विषं संहरनीलकण्ठ, को वा धर्तुं त्वामृते वै समर्थः॥६॥
ततश्च तुष्टो भगवानादिकर्ता त्रिलोचनः॥७॥

मैंने उस समय कहा—"हे महेश! देवता एवं असुरगण आपसी मन्त्रणा करके जब समुद्र मन्थन में प्रवृत्त हो गये, तब उसमें से जो कालकूट विष निकला था, आपके अतिरिक्त कौन उससे जगत् को त्राण दिला सकता था? जो कामदेव पुष्पधनु तथा पुष्पबाणों से त्रैलोक्य को वशीभूत कर सकने में सक्षम है, जब उसने सुर-असुरों द्वारा वन्दनीय आप पर बाण फेंकने को उद्यत था, तभी वह विलीन हो गया। हे कामशत्रु! समुद्र मन्थन से जो भी उत्तम वस्तु निकली, उसे आपने देवगण को दे दिया। लेकिन उसमें से निकले हलाहल का आपने हे नीलकण्ठ! पान कर लिया। आपके अतिरिक्त उसे धारण कर सकने में कौन समर्थ था।" इस स्तुति से भगवान् आदिकर्ता हर प्रसन्न हो गये।।४-७।।

शिव उवाच

दास्येऽहं यदभीष्टं वो ब्रुवन्तु सुरसत्तमाः॥८॥

शिव कहते हैं—हे देवप्रवरगण! अपनी इच्छा कहो। मैं अवश्य प्रदान करूंगा।।८।।

देवा ऊचुः

दानवेभ्यो भयं घोरं तत्रैहि वृषभध्वज। जहि शत्रून्सुरान्पाहि नाथवन्तस्त्वया प्रभो॥९॥
निष्कारणः सुहृच्छंभो नाभविष्यद्भवान्यदि। तदाऽकरिष्यन्किमिव दुःखार्ताः सर्वदेहिनः॥१०॥

देवगण कहते हैं—हे वृषवाहन! दानवों से हमें विषम भय उत्पन्न हो गया है। अतः आप आकर शत्रुओं पर जय पाकर हमारी रक्षा करिये। हे प्रभो! आपके ही द्वारा हम सनाथ हैं। हे शंभु! यदि आप हमारे रक्षक न होते, तब हम तथा देहधारी दुःखार्त्त होकर क्या कर पाते।।९-१०।।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तस्तत्क्षणात्प्रायाद्यत्र ते देवशत्रवः। तत्र तद्युद्धमभवच्छंकरेण सुरद्विषाम्॥११॥
ततस्त्रिलोचनः श्रान्तस्तमोरूपधरः शिवः।
ललाटाद्व्यपतंस्तस्य युद्ध्यतः स्वेदबिन्दवः॥१२॥
स संहरन्दैत्यगणांस्तामसीं मूर्तिमाश्रितः। तां मूर्तिमसुरा दृष्ट्वा मेरुपृष्ठाद्ध्रुवं ययुः॥१३॥
स संहरन्सर्वदैत्यांस्तदाऽगच्छद्ध्रुवं हरः। इतश्चेतश्च भीतास्तेऽधावन्सर्वां महीमिमाम्॥१४॥
तथैव कोपाद्रुद्रोऽपि शत्रूंस्ताननुधावति। तथैव युध्यतः शंभोः पतिताः स्वेदबिन्दवः॥१५॥
यत्र यत्र भुवं प्राप्तो बिन्दुर्महेश्वरो मुने। तत्र तत्र शिवाकारा मातरो जज्ञिरे ततः॥१६॥
प्रोचुर्महेश्वरं सर्वाः खादामस्त्वसुरानिति। ततः प्रोवाच भगवान्सर्वैः सुरगणैर्वृतः॥१७॥

ब्रह्मा कहते हैं—देवताओं के यह कहने पर शिव तत्क्षण वहां गये, जहां देवशत्रुदल विराजित था। वहां देवशत्रुओं से शंकर का घोर युद्ध छिड़ गया। तब युद्ध में श्रान्त होकर महेश्वर ने तमःरूप धारण किया।

युद्धकाल में उनके ललाट से स्वेदविन्दु गिरे थे। उन सबने तामसी रूप धारण किया तथा वे सभी तामसी रूप वाले दैत्यसंहार करने लगे। असुरगण उस भीषण मूर्त्ति को देख कर मेरुपर्वत से पृथिवी पर भाग आये। लेकिन भीषण मूर्त्ति ने भी दैत्यों का पीछा तथा संहार करते भूतल पर आगमन किया। दैत्यदल भयभीत होकर पृथिवी मण्डल में सर्वत्र भागने लगा था। शंभु भी क्रोध में भर कर दैत्यों का पीछा करते जा रहे थे। हे नारद! युद्धकाल में शंभु के शरीर से जो स्वेद की बूंदें गिर रही थीं, वहां-वहां से पृथिवी पर शिवाकृति मातृकायें प्रादुर्भूत होती जा रहीं थीं। उन मातृगण ने भगवान् से कहा—"हम असुरों का भक्षण करेंगी।" यह सुनकर महेश्वर ने देववृन्दों के समक्ष मातृकाओं से कहा—॥११-१७॥

शिव उवाच

स्वर्गाद्भुवमनुप्राप्ता राक्षसास्ते रसातलम्। अनुप्राप्तास्ततः सर्वाः शृण्वन्तु मम भाषितम्॥१८॥
यत्र यत्र द्विषो यान्ति तत्र गच्छन्तु मातरः। रसातलमनुप्राप्ता इदानीं मद्भयाद्द्विषः।
भवत्योऽप्यनुगच्छन्तु रसातलमनु द्विषः॥१९॥

भगवान् शंभु कहते हैं—राक्षस स्वर्ग से भूतल पर तथा भूतल से रसातल भाग गये हैं। हे मातृगण! तुम लोग शत्रुओं के पीछे वहां जाओ, जहां वे गये हैं। मेरे भय से वे रसातल गये हैं। तुम लोग भी रसातल में उनका पीछा करो॥१८-१९॥

ब्रह्मोवाच

ताश्च जग्मुर्भुवं भित्त्वा यत्र ते दैत्यदानवाः। तान्हत्वा मातरः सर्वान्देवारीनतिभीषणान्॥२०॥
पुनर्देवानुपाजग्मुः पथा तेनैव मातरः। गताश्च मातरो यावद्यावच्च पुनरागताः॥२१॥
तावद्देवाः स्थिता आसन्गौतमीतीरमाश्रिताः। प्रस्थानात्तत्र मातॄणां सुराणां च प्रतिष्ठितेः॥२२॥
प्रतिष्ठानं तु तत्क्षेत्रं पुण्यं विजयवर्धनम्। मातॄणां यत्र चोत्पत्तिर्मातृतीर्थं पृथक्पृथक्॥२३॥
तत्र तत्र बिलान्यासन्रसातलगतानि च। सुरास्ताभ्यो वरान्प्रोचुर्लोके पूजां यथा शिवः॥२४॥
प्राप्नोति तद्वन्मातृभ्यः पूजा भवतु सर्वदा। इत्युक्त्वाऽन्तर्दधुर्देवा आसंस्तत्रैव मातरः॥२५॥
यत्र यत्र स्थिता देव्यो मातृतीर्थं ततो विदुः।
सुराणामपि सेव्यानि किं पुनर्मानुषादिभिः॥२६॥
तेषु स्नानमथो दानं पितॄणां चैव तर्पणम्। सर्वं तदक्षयं ज्ञेयं शिवस्य वचनं यथा॥२७॥
यस्त्विदं शृणुयान्नित्यं स्मरेदपि पठेत्तथा।
आख्यानं मातृतीर्थानामायुष्मान्स सुखी भवेत्॥२८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे स्वयंभुऋषिसंवादे देवतीर्थमातृतीर्थप्रतिष्ठानवर्णनं नाम
द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः॥११२॥

गौतमीमाहात्म्ये त्रिचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥४३॥

ब्रह्मा कहते हैं—जहां दैत्य-दानव भाग कर गये थे, भूतल भेदन करके मातृगण वहां तक गयीं तथा अत्यन्त भीषण रूप से देवरिपुओं का वधकार्य किया। पुनः वे देवताओं के पास लौट आयीं। मातृगण के जाने तथा वापस आने तक देवगण गौतमीतट पर ही रुके थे। मातृगण के प्रस्थान तथा देवप्रतिष्ठा के कारण यह पुण्यक्षेत्र प्रतिष्ठान कहा गया। यहां मातृगण की उत्पत्ति होने के कारण इस विषयवर्द्धन क्षेत्र में अनेक तीर्थ कहे गये। उन सभी तीर्थों में रसातल तक पहुंचने वाले अनेक गर्त्त विद्यमान हैं। देवगण ने वहां मातृगण से यह वर प्राप्त किया था कि शिव जिस प्रकार से जगत् में पूज्य हैं, उसी प्रकार से उनको मातृगण के पास भी वही पूजा मिलेगी। देवता यह कह कर अन्तर्हित् हो गये। मातृकायें वहीं निवास करने लगीं। वे देवियां जहां-जहां अवस्थान करती हैं, वही-वही स्थान मातृतीर्थ हो गया। ये सभी देवगण द्वारा सेव्य हैं। मनुष्यों की तो बात ही क्या? इनमें स्नान-दान-पितृतर्पणादि जो कुछ किया जाता है, शिव के अनुसार वह सब अक्षय हो जाता है। जो मनुष्य इस मातृतीर्थ के वृत्तान्त को पढ़ता, स्मरण करता अथवा सुनता है, उसकी आयुवृद्धि होती है। वह सुखी हो जाता है।।२०-२८।।

।।द्वादशाधिकशततम अध्याय समाप्त।।



अथ त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

इदमप्यपरं तीर्थं देवानामपि दुर्लभम्। ब्रह्मतीर्थमिति ख्यातं भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम्।।१।।
स्थितेषु देवसैन्येषु प्रविष्टेषु रसातलम्। दैत्येषु च मुनिश्रेष्ठ तथा मातृषुताननु।।२।।
मदीयं पञ्चमं वक्त्रं गर्दभाकृति भीषणम्। तद्वक्त्रं देवसैन्येषु मयि तिष्ठत्युवाच ह।।३।।
हे दैत्याः किं पलायन्ते न भयं वोऽस्तु सत्वरम्।
आगच्छन्तु सुरान्सर्वान्भक्षयिष्ये क्षणादिति।।४।।
निवारयन्तं मामेवं भक्षणायोद्यतं तथा। तं दृष्ट्वा विबुधाः सर्वे वित्रस्ता विष्णुमब्रुवन्।।५।।

ब्रह्मा कहते हैं—यहां एक और देवदुर्लभ तीर्थ है। वह ब्रह्मतीर्थ नाम से विख्यात है। यह मनुष्यों को भोग तथा मोक्ष दोनों देने वाला है। हे मुनिवर! पूर्व वर्णित दैत्य सेना रसातल में चली गयी। उसका पीछा करने में मातृगण तथा देवसेना भी प्रवृत्त थी। तभी मेरा पंचम गर्दभ मुख मुझे देवता तथा दैत्य सेना के बीच खड़ा पाकर बोल उठा—"हे दैत्यों! तुम क्यों पलायन कर रहे हो? रुको! भय मत करो। मैं सभी देवगण को क्षणमात्र में खा लूंगा।" तब मैं इस मुख को देवताओं का भक्षण करने से रोकने लगा। यह देख कर देवता लोग त्रस्त होकर विष्णु के पास गये। उन्होंने विष्णु से कहा—।।१-५।।

त्राहि विष्णो जगन्नाथ ब्रह्मणोऽस्य मुखं लुन।
चक्रधृग्विबुधानाह च्छेद्मि चक्रेण वै शिरः॥६॥
किं तु तच्छिन्नमेवेदं संहरेत्सचराचरम्। मन्त्रं ब्रूमोऽत्र विबुधाः श्रूयतां सर्वमेव हि॥७॥
त्रिनेत्रः कशिरश्छेत्ता स च धत्ते न संशयः।
मया च शंभुः सर्वैश्च स्तुतः प्रोक्तस्तथैव च॥८॥

देवता कहते हैं—"हे विष्णु! रक्षा करिये। ब्रह्मा के इस मुख को काट दीजिये।" यह सुनकर सुदर्शन चक्रधारी विष्णु ने देवगण से कहा—"मैं चक्र से इस शिर को काट सकता हूं, तथापि काटने पर यह गर्दभमुख चराचर का संहार कर देगा। अतः मेरी युक्ति श्रवण करो। इस कार्य में मात्र त्रिनेत्र शिव सक्षम हैं। वे इसे धारण कर लेंगे।" तब मैंने एवं सभी देवगण ने शंभु की स्तुति किया।।६-८।।

यागः क्षणी दृष्टफलेऽसमर्थः, स नैव कर्तुः फलतीति मत्वा।
फलस्य दाने प्रतिभूर्जटीति, निश्चित्य लोकः प्रतिकर्म यातः॥९॥
ततः सुरेशः संतुष्टो देवानां कार्यसिद्धये। लोकानामुपकारार्थं तथेत्याह सुरान्प्रति॥१०॥
तद्वक्त्रं पापरूपं यद्भीषणं लोमहर्षणम्। निकृत्य नखशस्त्रैश्च क्व स्थाप्य चेत्यथाब्रवीत्॥११॥

"यज्ञ क्षण में सम्पन्न होने वाला तथा प्रत्यक्ष फल देने में असमर्थ है। यह कर्ता को फल नहीं देता। फलदान में शंकर ही साक्षी हैं। तब प्रत्येक कार्य में संसार प्रवृत्त होता है अर्थात् एकमात्र जटाधारी शिव ही फल देने में समर्थ हैं। उनके लिये कर्म करे।" सुरेश्वर शिव इस स्तव से सन्तुष्ट हो गये। उन्होंने देवकार्य सिद्धि तथा लोक कल्याणार्थ इस कार्य को करना स्वीकार कर लिया। लेकिन उन्होंने कहा कि "इस भीषण लोमहर्षक पापरूप मुख को नख रूपी अस्त्र से काट कर कहां रखूं, यह कहो"।९-११।।

तत्रेला विबुधानाह नाहं वोढुं शिरः क्षमा। रसातलमथो यास्ये उदधिश्चाप्यथाब्रवीत्॥१२॥
शोषं यास्ये क्षणादेव पुनश्चोचुः शिवं सुराः।
त्वयैवैतद्ब्रह्मशिरो धार्यं लोकानुकम्पया॥१३॥

तब पृथिवी ने देवगण से कहा—"मैं इस शिर को वहन नहीं कर सकती। यह शिर यदि मुझ पर गिरा तब तो मुझे रसातलगामी ही होना पड़ेगा।" तब समुद्र ने कहा—"हम भी इसे धारण नहीं कर सकते। इसके हम पर गिरते ही हम शुष्क हो जायेंगे।" देवगण ने शिव से कहा—"आप ही लोक पर कृपा करके इसे धारण करिये"।।१२-१३।।

अच्छेदे जगतां नाशश्छेदे दोषश्च तादृशः। एवं विमृश्य सोमेशो दधार कशिरस्तदा॥१४॥
तद्दृष्ट्वा दुष्करं कर्म गौतमीं प्राप्य पावनीम्।
अस्तुवञ्जगतामीशं प्रणयाद्भक्तितः सुराः॥१५॥

शिव कहते हैं—"यदि इस मस्तक का उच्छेद नहीं करता, तब संसार ध्वंस होगा। छेदन करने पर भी वैसा ही दोष होगा।" ऐसी स्थिति में उन्होंने विवेचना के अनन्तर उस ब्रह्मशिर को नखों से काट देने के उपरान्त स्वयं ही धारण कर लिया। शिव का यह दुष्कर कार्य देख कर देवता लोग पवित्र गौतमीतट पर आकर भक्ति-भाव से जगदीश्वर का स्तवगान करने लगे।।१४-१५।।

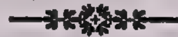
देवेष्वमित्रं कशिरोऽतिभीमं, तान्भक्षणायोपगतं निकृत्य।
नखाग्रसूच्या शकलेन्दुमौलिस्त्यागेऽपि दोषात्कृपयाऽनुधत्ते॥१६॥
तत्र ते विबुधाः सर्वे स्थिता ये ब्रह्मणोऽन्तिके।
तुष्टुवुर्विबुधेशानं कर्म दृष्ट्वाऽतिदैवतम्॥१७॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थं ब्रह्मतीर्थमिति श्रुतम्। अद्यापि ब्रह्मणो रूपं चतुर्मुखमवस्थितम्॥१८॥

देवगण कहते हैं कि "जो अति भीषण ब्रह्मशिर देवताओं का अमित्र होकर उनका भक्षण करने जा रहा था, बालचन्द्रधारी शिव ने नखाग्र सूची द्वारा उसे छेद दिया। उसे कहीं फेंकने से दोष होता, अतएव कृपा करके उसे प्रभु शिव ने स्वयं धारण कर लिया।" देवगण ने एवंविध देवहितकारी कर्म देखा तथा इस देवातीत कृत्य को देख कर सभी देवगण ने उनकी भूरि-भूरि स्तुति किया। तभी से यह तीर्थ ब्रह्मतीर्थ कहलाया, जहां चतुर्मुख ब्रह्मा अद्यतन स्थित हैं।।१६-१८।।

शिरोमात्रं तु यः पश्येत्स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम्।
यत्र स्थित्वा स्वयं रुद्रो लूनवान्ब्रह्मणः शिरः॥१९॥
रुद्रतीर्थं तदेव स्यात्तत्र साक्षाद्दिवाकरः। देवानां च स्वरूपेण स्थितो यस्मात्तदुत्तमम्॥२०॥
सौर्यं तीर्थं तदाख्यातं सर्वक्रतुफलप्रदम्। तत्र स्नात्वा रविं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥२१॥
महादेवेन यच्छिन्नं ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः।
क्षेत्रेऽविमुक्ते संस्थाप्य देवतानां हितं कृतम्॥२२॥
ब्रह्मतीर्थे शिरोमात्रं यो दृष्ट्वा गौतमी तटे।
क्षेत्रेऽविमुक्ते तस्यैव स्थापितं योऽनुपश्यति।
कपालं ब्रह्मणः पुण्यं ब्रह्महा पूततां व्रजेत्॥२३॥

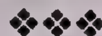
इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये ब्रह्मतीर्थब्रह्मशिरोलिङ्गशिवतीर्थसूर्यतीर्थादिषडशीतितीर्थवर्णनं नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः।।११३।।

गौतमीमाहात्म्ये चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।।४४।।



इस शिरोभाग का दर्शनकर्त्ता ब्रह्मपद लाभ करेगा। यह निश्चित है। यह स्थान ही रुद्रतीर्थ कहा गया है, जहां शंकर ने ब्रह्मशिर छेदन किया था। यहीं पर सर्वदेवमय भगवान् सूर्य स्थित हैं। अतएव दोनों तीर्थ सौर तीर्थ कहे गये हैं। ये सर्वयज्ञ फल देने वाले हैं। यहां स्नानान्त में सूर्यदर्शन करने वाले का पुनः जन्म नहीं होता। महादेव ने जिस पंचम ब्रह्मशिर का छेदन किया था, उसे अविमुक्त क्षेत्र में स्थापित करके उन्होंने देवगण का परम हित किया था। गौतमीतट स्थित ब्रह्मतीर्थ में ब्रह्मा का शिरमात्र देखने के बाद जो कोई अविमुक्त क्षेत्रस्थ शिवस्थापित ब्रह्मकपाल का दर्शन करता है, भले ही वह ब्रह्महत्याकारी हो, पवित्र हो जाता है।।१९-२३।।

।।त्रयोदशाधिकशततम अध्याय समाप्त।।



अथ चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

अविघ्नतीर्थ दर्शन का वर्णन

ब्रह्मोवाच

अविघ्नं तीर्थमाख्यातं सर्वविघ्नविनाशनम्। तत्रापि वृत्तमाख्यास्ये शृणु नारद भक्तितः॥१॥
देवसत्रे प्रवृत्ते तु गौतम्याश्चोत्तरे तटे। समाप्तिर्नैव सत्रस्य संजाता विघ्नदोषतः॥२॥
ततः सुरगणाः सर्वे मामवोचन्हरिं तदा। ततो ध्यानगतोऽहं तानवोचं वीक्ष्य कारणम्॥३॥
विनायककृतैर्विघ्नैर्नैतत्सत्रं समाप्यते। तस्मात्स्तुवन्तु ते सर्वे आदिदेवं विनायकम्॥४॥
तथेत्युक्त्वा सुरगणाः स्नात्वा ते गौतमीतटे। अस्तुवन्भक्तितो देवा आदिदेवं गणेश्वरम्॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—सर्वविघ्ननाशक अविघ्नतीर्थ अत्यन्त प्रसिद्ध है। उसका वृत्तान्त कहता हूं। हे नारद! श्रद्धापूर्ण मन से श्रवण करो। एक बार पूर्वकाल में गौतमी के उत्तरी तट पर देवगण ने यज्ञारंभ किया, जो विघ्न एवं त्रुटियों के चलते सम्पन्न नहीं हो सका। तब देवगण ने इस सम्बन्ध में मुझसे एवं विष्णु से प्रार्थना किया। मैंने ध्यानमग्न होकर योगदृष्टि द्वारा समस्त वृत्तान्त जान कर कहा कि "यह यज्ञ गणेश के विघ्नों के कारण सम्पन्न नहीं हो सका। तुम सभी देवता जाकर विनायक देव का स्तव करो।" तब सभी देवता स्नानोपरान्त गौतमीतट पर स्थित होकर भक्तिभाव से आदिदेव गणपति का स्तव करने लगे।।१-५।।

देवा ऊचुः

यः सर्वकार्येषु सदा सुराणामपीशविष्ण्वम्बुजसंभवनाम्।
पूज्यो नमस्यः परिचिन्तनीयस्तं विघ्नराजं शरणं व्रजामः॥६॥
न विघ्नराजेन समोऽस्ति कश्चिद्देवो मनोवाञ्छितसंप्रदाता।
निश्चित्य चैतत्त्रिपुरान्तकोऽपि, तं पूजयामास स वधे पुराणाम्॥७॥
करोतु सोऽस्माकमविघ्नमस्मिन्महाक्रतौ सत्वरमाम्बिकेयः।
ध्यातेन येनाखिलदेहभाजां, पूर्णा भविष्यन्ति मनोभिलाषाः॥८॥
महोत्सवोऽभूदखिलस्य देव्या, जातः सुतश्चिन्तितमात्र एव।
अतोऽवदन्सुरसंघाः कृतार्थाः, सद्योजातं विघ्नराजं नमन्तः॥९॥
यो मातुरुत्सङ्गतोऽथ मात्रा, निवार्यमाणोऽपि बलाच्च चन्द्रम्।
संगोपयामास पितुर्जटासु, गणाधिनाथस्य विनोद एषः॥१०॥
पपौ स्तनं मातुरथापि तृप्तो, यो भ्रातृमात्सर्यकषायबुद्धिः।
लम्बोदरस्त्वं भव विघ्नराजो, लम्बोदरं नाम चकार शंभुः॥११॥
संवेष्टितो देवगणैर्महेशः, प्रवर्ततां नृत्यमितीत्युवाच।
संतोषितो नूपुररावमात्राद्गणेश्वरत्वेऽभिषिषे च पुत्रम्॥१२॥

यो विघ्नपाशं च करेण बिभ्रत्स्कंधे कुठारं च तथा परेण।
अपूजितो विघ्नमथोऽपि मातुः, करोति को विघ्नपतेः समोऽन्यः॥१३॥

देवगण कहते हैं—जो समस्त कार्य के ईश्वर, विष्णु तथा ब्रह्मा आदि देवगण द्वारा सदा नमस्य, पूज्य तथा परिचिन्तनीय प्रभु हैं, उन विघ्नराज की शरण हम ग्रहण करते हैं। अन्य कोई भी देवता विघ्नराज के समान अभीष्ट फलप्रद नहीं हैं। यही जान कर त्रिपुरविनाशार्थ त्रिपुरान्तक शिव ने भी उनकी पूजा किया। वे अम्बिकानन्दन देव हमारे इस महायज्ञ को शीघ्र अविघ्न करें। जिनके ध्यान से समस्त प्राणीगण अपनी वांछित अभिलाषा पूरी कर लेते हैं, जो भगवती के चिन्तन मात्र से जन्मे थे, जिनके जन्म के उपलक्ष्य में चराचर विश्व में महोत्सव मनाया गया था, देवगण ने कृतार्थ होकर नमस्कार द्वारा जिन सद्योजात बालक को विघ्नराज नाम से प्रतिष्ठित किया था, जो माता की गोद में रहकर मना करने पर भी विनोदार्थ चन्द्र को पिता की जटा में छिपाया करते थे, जो भाई के प्रति मात्सर्य के कारण (ईर्ष्या के कारण) माता के स्तनपान से स्वयं तृप्त होने पर भी कलुषित बुद्धि (भाई के प्रति) हो जाते थे, तभी शंकर ने उनको लम्बोदर (भोजन-पान के लालची) कहा। महेश्वर ने जब देवगण से घिर कर उनको नृत्यार्थ कहा, तब शंकर को उन्होंने अपने नूपुरों की ध्वनि से प्रसन्न करके गणेश्वरत्व पर अभिषेक लाभ किया। जो हाथों में विघ्नरूपी पाश तथा दूसरे हाथ से पकड़ कर कंधे पर कुठार लिये रहते हैं, जो पूजित न होने पर माता के लिये भी विघ्नोत्पादन कर देते हैं, उन विघ्नपति के समान और कौन है?।।६-१३।।

धर्मार्थकामादिषु पूर्वपूज्यो, देवासुरैः पूज्यत एव नित्यम्।
यस्यार्चनं नैव विनाशमस्ति, तं पूर्वपूज्यं प्रथमं नमामि॥१४॥
यस्यार्चनात्प्रार्थनयाऽनुरूपां, दृष्ट्वा तु सर्वस्य फलस्य सिद्धिम्।
स्वतन्त्रसामर्थ्यकृतातिगर्वं, भ्रातृप्रियं त्वाखुरथं तमीडे॥१५॥
यो मातरं सरसैर्नृत्यगीतैस्तथाऽभिलाषैरखिलैर्विनोदैः।
संतोषयामास तदाऽतितुष्टं, तं श्रीगणेशं शरणं प्रपद्ये॥१६॥
सुरोपकारैरसुरैश्च युद्धैः, स्तोत्रैर्नमस्कारपरैश्च मन्त्रैः।
पितृप्रसादेन सदा समृद्धं, तं श्रीगणेशं शरणं प्रपद्ये॥१७॥

जो सभी कर्म, अर्थ तथा काम्यकर्मादि में सर्वपूज्य हैं, देवता-असुर सदा जिनकी पूजा करते हैं, जिनकी अर्चना कभी व्यर्थ नहीं होती, उन पूर्वपूज्य देव को सबसे पहले हम प्रणाम करते हैं! जो स्वतंत्र्य सामर्थ्य वाले, अति गर्वित तथा भातृप्रिय और मूषिक वाहन हैं, जिनकी अर्चना से प्रार्थनानुरूप सर्वफल सिद्धि मिलती है, जो माता को अपने सुन्दर नृत्य, गीत तथा बाल्यसुलभ क्रीड़ा से प्रसन्न करके उनकी प्रसन्नता से स्वयं प्रसन्नता लाभ करते हैं, उन श्रीगणेश को हम प्रणाम करते हैं! उनके हम शरणागत हैं। जो देवगण के उपकार, असुरों से युद्ध, स्तोत्र तथा नमस्कारपरक मन्त्रों द्वारा पिता शंकर की कृपा से सदैव समृद्ध हैं, उन गणेश की हम शरण ग्रहण करते हैं।।१४-१७।।

जये पुराणामकरोत्प्रतीपं, पित्राऽपि हर्षात्प्रतिपूजितो यः।
निर्विघ्नतां चापि पुनश्चकार, तस्मै गणेशाय नमस्करोमि॥१८॥

त्रिपुर पर विजय काल में जिन्होंने विघ्न कर दिया था, तब पिता शंकर ने प्रसन्नता से जिनकी पूजा किया और तब जिन्होंने विघ्न रहित होकर वह कार्य सम्पन्न होने दिया, उन गणेश को हम प्रणाम करते हैं!।।१८।।

ब्रह्मोवाच

इति स्तुतः सुरगणैर्विघ्नेशः प्राह तान्पुनः॥१९॥

ब्रह्मा कहते हैं—तत्पश्चात् देवयज्ञ समाप्त होने पर गणेश ने देवताओं से कहा—।।१९।।

गणेश उवाच

इतो निर्विघ्नता सत्रे मत्तः स्यादसुरारिणः॥२०॥

गणेश कहते हैं—हे असुररिपु! आज से आप लोगों के यज्ञ में अब कोई विघ्न नहीं होगा।।२०।।

ब्रह्मोवाच

देवसत्रे निवृत्ते तु गणेशः प्राह तान्सुरान्॥२१॥

गणेश उवाच

स्तोत्रेणानेन ये भक्त्या मां स्तोष्यन्ति यतव्रताः।
तेषां दारिद्र्यदुःखानि न भवेयुः कदाचन॥२२॥
अत्र ये भक्तितः स्नानं दानं कुर्युरतन्द्रिताः।
तेषां सर्वाणि कार्याणि भवेयुरिति मन्यताम्॥२३॥

ब्रह्मा कहते हैं—तत्पश्चात् देवयज्ञ समाप्त होने पर गणेश ने देवगण से कहा कि आप लोगों ने जिस स्तव को गाया है, उससे जो व्रती मानव सभक्तिभाव से मेरी स्तुति करेगा, उसे कदापि दरिद्रता दुःख नहीं होगा। यहां जो लोग भक्ति के साथ आलस्य रहित भाव से स्नान-दान करेंगे, उनका समस्त कार्य सिद्ध होगा।।२१-२३।।

ब्रह्मोवाच

तद्वाक्यसमकालं तु तथेत्यूचुः सुरा अपि।
निवृत्ते तु मखे तस्मिन्सुरा जग्मुः स्वमालयम्॥२४॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थमविघ्नमिति गद्यते। सर्वकामप्रदं पुंसां सर्वविघ्नविनाशनम्॥२५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्येऽविघ्नतीर्थवर्णनं नाम चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः।।११४।।
गौतमीमाहात्म्ये पञ्चचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।।४५।।

ब्रह्मा कहते हैं—उनके यह कहते ही देवताओं ने कहा—"ऐसा ही हो"। तदनन्तर यज्ञ समाप्त होने पर वे सभी अपने-अपने धाम लौट गये। तब से यह तीर्थ अविघ्नतीर्थ कहा गया। यह मानवगण हेतु सर्वकामफलप्रद तथा सर्वविघ्नहारी है।।२४-२५।।

।।चतुर्दशाधिकशततम अध्याय समाप्त।।



अथ पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

शेषतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

शेषतीर्थमिति ख्यातं सर्वकामप्रदायकम्। तस्य रूपं प्रवक्ष्यामि यन्मया परिभाषितम्॥१॥
शेषो नाम महानागो रसातलपतिः प्रभुः। सर्वनागैः परिवृतो रसातलमथाभ्यगात्॥२॥
राक्षसा दैत्यदनुजाः प्रविष्टा ये रसातलम्। तैर्निरस्तो भोगिपतिर्मामुवाचाथ विह्वलः॥३॥

ब्रह्मा कहते हैं—विख्यात शेषतीर्थ सर्वकामदायक है। इस तीर्थस्वरूप का वर्णन करता हूं। पूर्वकाल में शेष नामक महानाग समग्र रसातल के अधिपति निश्चित किये गये। उन्होंने नागों द्वारा रसातल अधिकृत कर लिया, तथापि राक्षस एवं दैत्यदानवगण ने रसातल में प्रविष्ट होकर उनको वहां से दूर कर दिया। तब नागपति विह्वल होकर मेरे पास आये थे। उन्होंने कहा—॥१-३॥

शेष उवाच

रसातलं त्वया दत्तं राक्षसानां ममापि च।
ते मे स्थानं न दास्यन्ति तस्मात्त्वां शरणं गतः॥४॥
ततोऽहमब्रवं नागं गौतमीं याहि पन्नग। तत्र स्तुत्वा महादेवं लप्स्यसे त्वं मनोरथम्॥५॥
नान्योऽस्ति लोकत्रितये मनोरथसमर्पकः। मद्वाक्यप्रेरितो नागो गङ्गामाप्लुत्य यत्नतः।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा तुष्टाव त्रिदशेश्वरम्॥६॥

शेषनाग कहते हैं—"हे देव! आपने मुझे तथा राक्षसों को रसातल प्रदान किया था। वे मुझे वह स्थान प्राप्त हो, इससे सहमत नहीं थे। अतएव आपकी शरण में आया हूं।" मैंने तब नाग से कहा—"हे नाग! तुम गौतमीतट पर जाओ। वहां जाकर महेश्वर का स्तव करने से मनोरथ प्राप्त होगा। उनके अतिरिक्त त्रैलोक्य में और कोई भी मनोरथ प्रदायक नहीं है। नागपति मेरे कथनानुरूप वहां गये तथा गौमतीगंगा में स्नानोपरान्त हाथ जोड़ कर अति यत्न पूर्वक देवाधिदेव का स्तव करने लगे।।४-६।।

शेष उवाच

नमस्त्रैलोक्यनाथाय दक्षयज्ञविभेदिने। आदिकर्त्रे नमस्तुभ्यं नमस्त्रैलोक्यरूपिणे॥७॥
नमः सहस्रशिरसे नमः संहारकारिणे। सोमसूर्याग्निरूपाय जलरूपाय ते नमः॥८॥
सर्वदा सर्वरूपाय कालरूपाय ते नमः। पाहि शंकर सर्वेश पाहि सोमेश सर्वग।
जगन्नाथ नमस्तुभ्यं देहि मे मनसेप्सितम्॥९॥

शेषनाग कहते हैं—हे देव! आप त्रैलोक्यनाथ, दक्षयज्ञ के उच्छेदक, सबके आदि कारण हैं। त्रैलोक्य आपकी ही मूर्त्ति है। आप सहस्र शिर वाले, सर्व संहारक, सोम-सूर्य, अग्नि तथा जलमूर्त्ति हैं। आप सर्वरूप,

कालरूप तथा सर्वेश्वर हैं। मैं आपको पुनः-पुनः प्रणाम करता हूं! हे शंकर! हे सर्वेश! मेरी रक्षा करिये। हे जगन्नाथ! आपको प्रणाम! मेरा वांछित प्रदान करिये।।७-९।।

ब्रह्मोवाच

ततो महेश्वरः प्रीतः प्रादान्नागेप्सितान्वरान्। विनाशाय सुरारीणां दैत्यदानवरक्षसाम्॥१०॥

शेषाय प्रददौ शूलं जह्यनेनारिपुङ्गवान्।

ततः प्रोक्तः शिवेनासौ शेषः शूलेन भोगिभिः॥११॥

रसातलमथो गत्वा निजघान रिपून्रणे। निहत्य नागः शूलेन दैत्यदानवराक्षसान्॥१२॥

न्यवर्तत पुनर्देवो यत्र शेषेश्वरो हरः। पथा येन समायातो देवं द्रष्टुं स नागराट्॥१३॥

रसातलाद्यत्र देवो बिलं तत्र व्यजायत। तस्माद्बिलतलाद्यातं गाङ्गं वार्यतिपुण्यदम्॥१४॥

तद्वारि गङ्गामगमद्गङ्गायाः संगमस्ततः। देवस्य पुरतश्चापि कुण्डं तत्र सुविस्तरम्॥१५॥

नागस्तत्राकरोद्धोमं यत्र चाग्निः सदा स्थितः।

सोष्णं तदभवद्वारि गङ्गायास्तत्र संगमः॥१६॥

ब्रह्मा कहते हैं—महेश्वर ने प्रसन्न होकर नागपति को देवशत्रु, दैत्य, दानव, राक्षसों के नाशार्थ वांछित वर प्रदान किया तथा एक त्रिशूल देकर कहा कि "तुम इसके द्वारा अपने शत्रुकुल का संहार करो।" शेषनाग शिव से वरदान तथा त्रिशूल पाकर अन्य सर्पों के साथ रसातल में गये तथा युद्ध में शत्रुओं का संहार कर दिया। शूल प्रहार से दैत्य, दानव तथा राक्षसों का वध करके तदनन्तर पुनः वे शेषेश्वर शिव के पास आये। वे नागराज रसातल से जिस मार्ग से देवाधिदेव शंभु के दर्शनार्थ बाहर आये थे, वहां एक अत्यन्त गहरा गर्त्त बन गया। इस गर्त्त के भीतर का गौतमीगंगाजल अतीव पुण्यप्रद है। यह गर्त्तजल गंगा के साथ मिलकर एक संगमतीर्थ बन गया। इन शेषेश्वर देव के सामने एक अति विस्तृत कुण्ड है। नागराज ने उसमें होम किया था। इस कुण्ड में अग्नि सदा विराजित रहता है। इसी कारण उस संगम का जल सर्वदा उष्ण हो गया।।१०-१६।।

देवदेवं समाराध्य नागः प्रीतो महायशाः। रसातलं ततोऽभीष्टं शिवात्प्राप्य तलं ययौ॥१७॥

ततः प्रभृति तत्तीर्थं नागतीर्थमुदाहृतम्। सर्वकामप्रदं पुण्यं रोगदारिद्र्यनाशनम्॥१८॥

आयुर्लक्ष्मीकरं पुण्यं स्नानदानाच्च मुक्तिदम्।

शृणुयाद्वा पठेद् भक्त्या यो वाऽपि स्मरते तु तत्॥१९॥

तीर्थं शेषेश्वरो यत्र यत्र शक्तिप्रदः शिवः। एकविंशतितीर्थानामुभयोस्तत्र तीरयोः।

शतानि मुनिशार्दूल सर्वसंपत्प्रदायिनाम्॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये उभयतीरगतशेषतीर्थशेषेवरशूलेश्वराग्निकुण्डरसातल-
गङ्गासङ्गमोष्णतीर्थद्येकविंशतिशततीर्थवर्णनं नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः।।११५।।

गौतमीमाहात्म्ये षट्चत्वारिंशोऽध्यायः।।४६।।

महायशस्वी नागराज ने प्रसन्न होकर देवाधिदेव की आराधना के अन्त में उनकी कृपा से अभीष्ट रसातल राज्य पाया। जहां उन नागराज ने प्रस्थान कर दिया। तभी से इसे नागतीर्थ कहते हैं। यह तीर्थ सर्वकामप्रद, पवित्र तथा रोग एवं दारिद्र्यहारी है। यहां स्नान दान से आयु, लक्ष्मी तथा पुष्टिवृद्धि होती है। जो व्यक्ति भक्तिभाव से इस वृत्तान्त को सुनता है, पाठ किंवा स्मरण करता है, उसे अन्त में मुक्तिलाभ होता है। जहां शेषेश्वर तथा शक्तिप्रद शिव विद्यमान हैं, वहीं यह तीर्थ है। वहां गौतमी नदी के दोनों तट पर सर्वसम्पत्तिप्रद इक्कीस सौ तीर्थ विराजमान हैं।।१७-२०।।

।।पञ्चदशाधिकशततम अध्याय समाप्त।।



अथ षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

बड़वादि सहस्र तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मोवाच

महानलमिति ख्यातं वडवानलमुच्यते। महानलो यत्र देवो वडवा यत्र सा नदी॥१॥
तत्तीर्थं यत्र वक्ष्यामि मृत्युदोषजरापहम्। पुराऽऽसन्नैमिषारण्ये ऋषयः सत्रकारिणः॥२॥
शमितारं च ऋषयो मृत्युं चक्रुस्तपस्विनः। वर्तमाने सत्रयागे मृत्यौ शमितरि स्थिते॥३॥
न ममार तदा कश्चिदुभयं स्थास्नु जङ्गमम्। विना पशून्मुनिश्रेष्ठ मर्त्यं चामर्त्यतां गतम्॥४॥
ततस्त्रिविष्टपे शून्ये मर्त्ये चैवातिसंभृते। मृत्युनोपेक्षिते देवा राक्षसानूचिरे तदा॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—विख्यात महाबल तीर्थ बाड़वानल नाम से अधिष्ठित है। यहां महानल नामक देवदेव का विग्रह तथा बड़वा नामक नदी स्थित है। हे पुत्र! इस तीर्थ का वृत्तान्त कहता हूं। यह मृत्यु तथा जरा का नाशक है। पूर्वकाल में नैमिषारण्य के ऋषिगण ने एक दीर्घ यज्ञ आरम्भ किया। इस यज्ञ में ऋषियों ने मृत्यु को 'शमिता' बनाया। यज्ञारम्भ होने पर सत्रयाग प्रारम्भ किया गया। मृत्यु शमिता कार्य में नियुक्त थे। तब से चराचर में पशु के अतिरिक्त कोई मृत्यु के क्रोड़ में नहीं पड़ता था। मर्त्यवासी इससे अमर होने लगे। तदनन्तर स्वर्ग शून्य हो गया तथा मर्त्यलोक अत्यन्त लोगों से समृद्ध होता गया। मृत्यु ने प्राणीहत्या पर उपेक्षा प्रदर्शन किया तथा देवता तब राक्षसों से कहने लगे।।१-५।।

देवा ऊचुः

गच्छध्वमृषिसत्रं तन्नाशयध्वं महाध्वरम्।

ब्रह्मोवाच

इति देववचः श्रुतव प्रोचुस्ते राक्षसाः सुरान्॥६॥

देवगण कहते हैं—तुम सब उस ऋषियज्ञ में जाकर उस महायज्ञ का नाश करो। ब्रह्मा कहते हैं—देवगण का आदेश सुनकर राक्षस लोगों ने कहा—।।६।।

असुरा ऊचुः

विध्वंसयामस्तं यज्ञमस्माकं किं फलं ततः।
प्रवर्तते विना हेतुं न कोऽपि क्वापि जातुचित्॥७॥

असुर कहते हैं—हमें यज्ञ ध्वन्स करने से क्या लाभ होगा? वास्तव में अकारण कौन किस कार्य को करेगा?।।७।।

ब्रह्मोवाच

देवा अप्यसुरानूचुर्यज्ञार्धं भवतामपि। भवेदेव ततो यान्तु ऋषीणां सत्रमुत्तमम्॥८॥
ते श्रुत्वा त्वरिताः सर्वे यत्र यज्ञः प्रवर्तते। जग्मुस्तत्र विनाशाय देववाक्याद्विशेषतः॥९॥
तज्ज्ञात्वा ऋषयो मृत्युमाहुः किं कुर्महे वयम्।
आगता देववचनाद्राक्षसा यज्ञनाशिनः॥१०॥
मृत्युना सह संमन्त्र्य नेमिषारण्यवासिनः।
सर्वे त्यक्त्वा स्वाश्रमं तं शमित्रा सह नारद॥११॥
अग्निमात्रमुपादाय त्यक्त्वा पात्रादिकं तु यत्।
क्रतुनिष्पत्तये जग्मुर्गौतमीं प्रति सत्वराः॥१२॥
तत्र स्नात्वा महेशानं रक्षणायोपतस्थिरे। कृताञ्जलिपुटास्ते तु तुष्टुवुस्त्रिदशेश्वरम्॥१३॥

ब्रह्मा कहते हैं—देवगण ने यह श्रवण करके असुरों से कहा—"उस यज्ञ का आधा भाग तुम लोगों का होगा। अतः तुम सभी इस ऋषियज्ञ में जाओ।" यह सुनकर त्वरित गति से यज्ञविनाशार्थ यज्ञस्थल में गये। इसे जान कर ऋषियों ने मृत्यु से कहा कि "हे मृत्यु! अब हम क्या करें? देवताओं के कहने पर राक्षस यज्ञ का ध्वंस करने आ रहे हैं।" यह कहकर नैमिषारण्यवासी ऋषियों ने मृत्यु से मन्त्रणा करके उस आश्रम को त्याग दिया। वे जाते समय यज्ञ के अन्य पात्रों को वहीं छोड़ कर मात्र अग्नि को लेकर यज्ञ सम्पादनार्थ शीघ्रता के साथ गौतमीतट चले गये। वहां स्नानान्त में यज्ञकार्य के रक्षार्थ उन्होंने महेश्वर की पूजा किया तथा हाथ जोड़कर उनका स्तव करने लगे।।८-१३।।

ऋषय ऊचुः

यो लीलया विश्वमिदं चकार, धाता विधाता भुवनत्रयस्य।
यो विश्वरूपः सदसत्परो यः, सोमेश्वरं तं शरणं व्रजामः॥१४॥

ऋषिगण कहते हैं—जो लीलाक्रमेण इस विश्व के कर्ता हैं तथा जो त्रिभुवन के धाता-विधाता हैं, जो विश्वरूप, सदसत्, परमपुरुष हैं, उन सोमेश्वर की हम शरण ग्रहण कर रहे हैं।।१४।।

मृत्युरुवाच

इच्छामात्रेण यः सर्वं हन्ति पाति करोति च। तमहं त्रिदशेशानं शरणं यामि शंकरम्॥१५॥
महानलं महाकायं महानागविभूषणम्। महामूर्तिधरं देवं शरणं यामि शंकरम्॥१६॥

मृत्यु कहते हैं—जो इच्छा से ही विश्वसंहार, विश्वपालन, विश्वसृष्टि करते हैं, हम उन देवेश शंकर की शरण लेते हैं। महान् आदिरूप, महान् देहधारी, विशाल नागगण को आभूषण की तरह धारण करने वाले महान् मूर्त्ति वाले शंकर के हम शरणागत हैं।।१५-१६।।

ब्रह्मोवाच

ततः प्रोवाच भगवान्मृत्यो का प्रीतिरस्तु ते॥१७॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब प्रभु शिव ने कहा—"हे मृत्यु! मैं कौन सा तुम्हारा इच्छित कार्य करूं?"।।१७।।

मृत्युरुवाच

राक्षसेभ्यो भयं घोरमापन्नं त्रिदशेश्वर। यज्ञमस्मांश्च रक्षस्व यावत्सत्रं समाप्यते॥१८॥

मृत्यु कहते हैं—हे देवेश्वर! राक्षसों से महाभय हो गया है। जब तक यज्ञ समाप्त नहीं होता, तब तक आप यज्ञ की तथा हमारी रक्षा करिये।।१८।।

ब्रह्मोवाच

तथा चकार भगवांस्त्रिनेत्रो वृषभध्वजः। शमित्रा मृत्युना सत्रमृषीणां पूर्णतां ययौ॥१९॥

हविषां भागधेयाय आजग्मुरमराः क्रमात्।
तानवोचन्मुनिगणाः संक्षुब्धा मृत्युना सह॥२०॥

ब्रह्मा कहते हैं—वृषध्वज त्रिनेत्रदेव ने वही किया। इस बार मृत्यु की सहायता से ऋषियों ने यज्ञ में पूर्णता लाभ किया। तब यज्ञीय हविर्भाग ग्रहणार्थ देवगण ने क्रम-क्रम से आगमन किया। मुनिगण ने क्षुब्ध होकर मृत्यु तथा उन लोगों से कहा—।।१९-२०।।

ऋषय ऊचुः

अस्मन्मखविनाशाय राक्षसाः प्रेषिता यतः।
तस्माद्भवद्भ्यः पापिष्ठा राक्षसाः सन्तु शत्रवः॥२१॥

ऋषिगण कहते हैं—हमारे यज्ञ का ध्वंस करने के लिये तुम लोगों ने राक्षसों को भेजा था। अतः हमारे शाप द्वारा अब से पापी राक्षसगण तुम्हारे शत्रु होंगे।।२१।।

ततः प्रभृति देवानां राक्षसा वैरिणोऽभवन्।
कृत्यां च वडवां तत्र देवाश्च ऋषयोऽमलाः॥२२॥
मृत्योर्भार्या भव त्वं तामित्युक्त्वा तेऽभ्यषेचयन्।
अभिषेकोदकं यत्तु सा नदी वडवाऽभवत्॥२३॥

मृत्युना स्थापितं लिङ्गं महानलमिति श्रुतम्। ततः प्रभृति तत्तीर्थं वडवासङ्गमं विदुः॥२४॥
महानलो यत्र देवस्तत्तीर्थं भुक्तिमुक्तिदम्। सहस्रं तत्र तीर्थानां सर्वाभीष्टप्रदायिनाम्।
उभयोस्तीरयोस्तत्र स्मरणादघघातिनाम्॥२५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये वडवादिसहस्रतीर्थवर्णनं नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः॥११६॥
गौतमीमाहात्म्ये सप्तचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः॥४७॥



तभी से राक्षसगण देवताओं के शत्रु हो गये। देवता तथा ऋषिगण ने तब बड़वा कृत्या से कहा—"तुम मृत्युपत्नी हो जाओ। तदनन्तर उनका अभिषेक किया। अभिषेक से बहा जल वहां बड़वा नदी हो गया। मृत्यु स्थापित लिंग 'महानला' कहा गया। तभी से इस स्थान का नाम बड़वा संगम प्रसिद्ध है। जहां भगवान् महानल विराजमान हैं, वह भुक्ति-मुक्ति देने वाला स्थान है। यहां गौतमी के उभय तट पर सर्वाभीष्टदायक एक हजार तीर्थ हैं। इनका स्मरण करने से पापों का नाश होता है।।२२-२५।।

।।षोडशाधिकशततम अध्याय समाप्त।।



अथ सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

आत्मतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

आत्मतीर्थमिति ख्यातं भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम्।
तस्य प्रभावं वक्ष्यामि यत्र ज्ञानेश्वरः शिवः॥१॥
दत्त इत्यपि विख्यातः सोऽत्रिपुत्रो हरप्रियः। दुर्वाससः प्रियो भ्राता सर्वज्ञानविशारदः।
स गत्वा पितरं प्राह विनयेन प्रणम्य च॥२॥

ब्रह्मा कहते हैं—मनुष्यों को भोग-मोक्षप्रद आत्मतीर्थ भी प्रसिद्ध है। यहां ज्ञानेश्वर शिव विद्यमान हैं। यह तीर्थ माहात्म्य कहता हूं, श्रवण करें। अत्रिपुत्र शंकर प्रिय तथा दुर्वासा के भ्राता दत्तात्रेय के नाम से प्रसिद्ध थे। वे सभी ज्ञानों के पण्डित थे। वे एक बार अपने पिता के पास जाकर प्रणामान्त में उनसे पूछने लगे।।१-२।।

दत्त उवाच

ब्रह्मज्ञानं कथं मे स्यात्कं पृच्छामि क्व यामि च॥३॥

दत्त ऋषि कहते हैं—हे ब्रह्मन्! मुझे ब्रह्मज्ञान प्राप्त कैसे होगा? मैं किससे पूछूं? कहां जाऊं?।।३।।

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वाऽत्रिः पुत्रवाक्यं ध्यात्वा वचनमब्रवीत्॥४॥

ब्रह्मा कहते हैं—अत्रि ऋषि ने पुत्र की जिज्ञासा सुनकर ध्यानोपरान्त कहा—॥४॥

अत्रिरुवाच

गौतमीं पुत्र गच्छ त्वं तत्र स्तुहि महेश्वरम्। स तु प्रीतो यदैव स्यात्तदा ज्ञानमवाप्स्यसि॥५॥

अत्रि मुनि कहते हैं—हे पुत्र! तुम गौतमी में जाकर महेश्वर का स्तव करो। वे जब प्रसन्न होंगे, तभी ज्ञानलाभ होगा॥५॥

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा तदाऽऽत्रेयो गङ्गां गत्वा शुचिर्यतः।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा भक्त्या तुष्टाव शंकरम्॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—अत्रिनन्दन इस बात से सम्मत होकर गौतमीगंगा में स्नान से पवित्र होकर हाथ जोड़ कर भक्तिभाव के साथ शंकर का स्तव करने लगे॥६॥

दत्त उवाच

संसारकूपे पतितोऽस्मि दैवान्मोहेन गुप्तो भवदुःखपङ्के।
अज्ञाननाम्ना तमसाऽऽवृतोऽहं, परं न विन्दामि सुराधिनाथ॥७॥
भिन्नस्त्रिशूलेन बलीयसाऽहं, पापेन चिन्ताक्षुरपाटितश्च।
तप्तोऽस्मि पञ्चेन्द्रियतीव्रतापैः, श्रान्तोऽस्मि सन्तारय सोमनाथ॥८॥
बद्धोऽस्मि दारिद्र्यमयैश्च बन्धैर्हतोऽस्मि रोगानलतीव्रतापैः।
क्रान्तोऽस्म्यहं मृत्युभुजङ्गमेन, भीतो भृशं किं करवाणि शम्भो॥९॥
भवाभवाभ्यामतिपीडितोऽहं, तृष्णाक्षुधाभ्यां च रजस्तमोभ्याम्।
ईदृक्षया जरया चाभिभूतः, पश्यावस्थां कृपया मेऽद्य नाथ॥१०॥
कामेन कोपेन च मत्सरेण, दम्भेन दर्पादिभिरप्यनेकैः।
एकैकशः कष्टगतोऽस्मि विद्धस्त्वं नाथवद्वारय नाथ शत्रून्॥११॥
कस्यापि कश्चित्पतितस्य पुंसो, दुःखप्रणोदी भवतीति सत्यम्।
विना भवन्तं मम सोमनाथ, कुत्रापि कारुण्यवचोऽपि नास्ति॥१२॥

दत्त ऋषि कहते हैं—हे सोमनाथ! मैं दैवात् मोहग्रस्त होकर संसाररूपी दुःख पंक-युक्त संसार रूपी इस कूप में गिरा हूं तथा हे देवाधिनाथ! मैं अज्ञान रूपी अंधकार से तमसाच्छन्न होकर श्रेय लाभ नहीं कर पा रहा हूं। मैं पाप रूपी त्रिशूल से तथा चिन्तारूपी छूरे से निरन्तर भेदा जा रहा हूं। मैं भीषण पञ्चेन्द्रियों के तीव्र ताप से तप्त तथा श्रान्त हो गया हूं। मेरा परित्राण करिये। हे शंभु! मैं दरिद्रता रूपी भीषण बन्धन में बद्ध तथा

रोगरूपी अग्नि के तीव्र ताप से पीड़ित होकर मृत्युरूप सर्प के आक्रमण से नितान्त भयभीत हूं। अब मेरा कर्त्तव्य क्या हो? हे नाथ! मैं पुनः-पुनः जन्म-मरण से नितान्त पीड़ित हूं। मैं तृष्णा, क्षुधा, जरा तथा रजः तमः गुणाभिभूत हूं। अब कृपा करके आप मेरी अवस्था का पर्यवेक्षण करिये। मैं काम, क्रोध, कोप, मात्सर्य, दम्भ, दर्पादि से अनेक बार कृच्छ्रगत एवं मर्माहत हो गया। हे नाथ! आप मेरे इन सभी शत्रु का निवारण करिये। कहीं भी जब कोई दुःख में पतित हो जाता है, तब कोई न कोई उसके दुःख का हरण करने वाला उपस्थित हो जाता है। यह कथा सत्य है। तथापि मैं अपनी करुण कथा कहीं किसी से कह भी नहीं सकूंगा।।७-१२।।

तावत्स कोपो भयमोहदुःखान्यज्ञानदारिद्र्यरुजस्तथैव।
कामादयो मृत्युरपीह यावन्नमः शिवायेति न वच्मि वाक्यम्॥१३॥
न मेऽस्ति धर्मो न च मेऽस्ति भक्तिर्नाहं विवेकी करुणा कुतो मे।
दाताऽसि तेनाऽऽशु शरण्य चित्ते, निधेहि सोमेति पदं मदीये॥१४॥
याचे न चाहं सुरभूपतित्वं, हृत्पद्ममध्ये मम सोमनाथ।
श्रीसोमपादाम्बुजसन्निधानं, याचे विचार्यैव च तत्कुरुष्व॥१५॥
यथा तवाहं विदितोऽस्मि पापस्तथाऽपि विज्ञापनमाशृणुष्व।
संश्रूयते यत्र वचः शिवेति, तत्र स्थितिः स्यान्मम सोमनाथ॥१६॥
गौरीपते शंकर सोमनाथ, विश्वेश कारुण्यनिधेऽखिलात्मन्।
संस्तूयते यत्र सदेति तत्र, केषामपि स्यात्कृतिनां निवासः॥१७॥

क्रोध, भय, मोह, दुःख, अज्ञान, दरिद्रता, व्याधि, काम आदि शत्रु तथा मृत्यु तभी तक विद्यमान रहते हैं, जब तक "ॐ नमः शिवाय" का उच्चारण नहीं किया जाता। मुझमें धर्म, भक्ति, विवेक, दया है ही नहीं। मैं सर्वदा अतीव दीन रहता हूं। हे शरण्य प्रभु! आप मेरे चित्त रूपी कमल पर अपना चरण स्थापित करिये। मैं देवगण का ऐश्वर्य नहीं चाहता। हे सुरनाथ! मैं अपने हृदयकमल में आपके चरणों का सन्निधान मात्र चाहता हूं। आप मेरी प्रार्थना पर विचार करके उसे पूर्ण करिये। हे सोमनाथ! यद्यपि मैं आपके समक्ष पापीरूप से विदित हूं, तथापि आप मेरी प्रार्थना सुनिये। जहां कहीं शिव का नाम श्रुतिगोचर हो वहीं मेरा निवास हो। यही मेरा निवेदन है। वस्तुतः जहां गौरीपति, शंकर, सोमनाथ, विश्वेश्वर, करुणानिधि, सर्वात्मा इत्यादि शब्द सदा शिवस्तव रूप सुनाई पड़े, वहां अत्यन्त अल्प लोग ही वहां निवास का अधिकार प्राप्त करते हैं।।१३-१७।।

ब्रह्मोवाच

इत्यात्रेयस्तुतिं श्रुत्वा तुतोष भगवान्हरः। वरदोऽस्मीति तं प्राह योगिनं विश्वकृद्भवः॥१८॥

ब्रह्मा कहते हैं—भगवान् विश्वस्रष्टा हर दत्त का यह स्तव सुनकर सन्तुष्ट होकर उन योगी से कहने लगे—"तुम वर मांगो"।।१८।।

आत्रेय उवाच

आत्मज्ञानं च मुक्तिं च भुक्तिं च विपुलां त्वयि।
तीर्थस्यापि च माहात्म्यं वरोऽयं त्रिदशार्चित॥१९॥

आत्रेय (दत्त मुनि) कहते हैं—हे देवगण से अर्चित प्रभु! आत्मज्ञान, भुक्ति, मुक्ति तथा आपके प्रति प्रचुर भक्ति मुझे प्राप्त हो तथा इस तीर्थ के माहात्म्य सम्बन्धित वर आप मुझे प्रदान करिये।।१९।।

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति तं शंभुरुक्त्वा चान्तरधीयत। ततः प्रभृति तत्तीर्थमात्मतीर्थं विदुर्बुधाः।
तत्र स्नानेन दानेन मुक्तिः स्यादिह नारद॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये आत्मतीर्थवर्णनं नाम सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः।।११७।।

गौतमीमाहात्म्येऽष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः।।४८।।



ब्रह्मा कहते हैं—तदनन्तर शम्भु ने उनसे 'तथास्तु' कहा। इसी के साथ वे अन्तर्हित् हो गये। तभी से सभी पण्डितगण इस तीर्थ को आत्मतीर्थ कहते हैं। हे नारद! यहां स्नान-दान द्वारा मुक्तिलाभ होता है।।२०।।

।।सप्तदशाधिकशततम अध्याय समाप्त।।



अथाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

अश्वत्थादितीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

अश्वत्थतीर्थमाख्यातं पिप्पलं च ततः परम्। उत्तरे मन्दतीर्थं तु तत्र व्युष्टिमितः शृणु॥१॥
पुरा त्वगस्त्यो भगवान्दक्षिणाशापतिः प्रभुः। देवैस्तु प्रेरितः पूर्वं विन्ध्यस्य प्रार्थनं प्रति॥२॥
स शनैर्विन्ध्यमभ्यागात्सहस्रमुनिभिर्वृतः। तमागत्य नगश्रेष्ठं बहुवृक्षसमाकुलम्॥३॥
स्पर्धिनं मेरुभानुभ्यां विन्ध्यं शृङ्गशतैर्वृतः। अत्युन्नतं नगं धीरो लोपामुद्रापतिर्मुनिः॥४॥
कृतातिथ्यो द्विजैः सार्धं प्रशस्य च नगं पुनः। इदमाह मुनिश्रेष्ठो देवकार्यार्थसिद्धये॥५॥

ब्रह्मा कहते हैं—अश्वत्थ तथा पीपल नामक दो तीर्थ प्रसिद्ध हैं। उत्तर में मन्दतीर्थ है। इस तीर्थ सम्बन्धित वर्णन सुनो। पूर्वकाल में दक्षिण दिशा के पति भगवान् लोपामुद्रा के पति अगत्स्य देवताओं द्वारा प्रेरित होकर सहस्र मुनियों के साथ विन्ध्य पर्वत के पास पहुंचे। उन्होंने वहां पहुंचकर अत्यन्त उन्नत, धीर, मेरु एवं भानु के साथ होड़ लेने वाले सैकड़ों शिखर युक्त तथा अनेक वृक्षों से समाकुल पर्वतप्रवर विन्ध्य का आतिथ्य लोपामुद्रा पति अगत्स्य ने स्वीकार करके देवकार्य सिद्धि के लिये उसकी प्रशंसा करते हुये मुनि ने विन्ध्य पर्वतप्रवर से कहा—।।१-५।।

अगस्त्य उवाच

अहं यामि नगश्रेष्ठ मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
तीर्थयात्रां करोमीति दक्षिणाशां व्रजाम्यहम्॥६॥

देहि मार्गं नगपते आतिथ्यं देहि याचते। यावदागमनं मे स्यात्स्थातव्यं तावदेव हि॥७॥
नान्यथा भवितव्यं ते तथेत्याह नगोत्तमः। आक्रामन्दक्षिणामाशां तैर्वृतो मुनिभिर्मुनिः॥८॥

शनैः स गौमतीमागात् स्त्रयागायदीक्षितः।
यावत्संवत्सरं सत्रमकरोदृषिभिर्वृतः॥९॥

अगत्स्य कहते हैं—हे पर्वतप्रवर! मैं इन सभी तत्ववेत्ता मुनिगण के साथ तीर्थपर्यटन के उद्देश्य से दक्षिण दिक् तक जा रहा हूं। हे पर्वतराज! तुम आतिथ्य हेतु मार्ग प्रदान करो तथा जब तक मैं वापस नहीं आता, तुम एवंविध झुके ही रहना। मेरी यही इच्छा है। हे पर्वतप्रवर! इसके विपरीत न हो। विन्ध्याचल ने कहा—"ऐसा ही होगा।" तब ऋषि अगत्स्य अपने साथ के मुनिगण के साथ दक्षिण दिशा स्थित गौतमीतट पर धीरे-धीरे आये। वहां उन्होंने यज्ञ दीक्षा ग्रहण करके एक वर्षव्यापी यज्ञ प्रारम्भ कर दिया।।६-९।।

कैटभस्य सुतौ पापौ राक्षसौ धर्मकण्टकौ।
अश्वत्थः पिप्पलश्चेति विख्यातौ त्रिदशालये॥१०॥

अश्वत्थोऽश्वत्थरूपेण पिप्पलो ब्रह्मरूपधृक्। तावुभावन्तरं प्रेप्सू यज्ञविध्वंसनाय तु॥११॥

कुरुतां काङ्क्षितं रूपं दानवौ पापचेतसौ।
अश्वत्थो वृक्षरूपेण पिप्पलो ब्राह्मणाकृतिः॥१२॥
उभौ तौ ब्राह्मणान्नित्यं पीडयेतां तपोधन।
आलभन्ते च येऽश्वत्थं तांस्तानश्नात्यसौ तरुः॥१३॥
पिप्पलः सामगो भूत्वा शिष्यानश्नाति राक्षसः।
तस्माद्द्यापि विप्रेषु सामगोऽतीव निष्कृपः॥१४॥

इस समय कैटभ दैत्य के दो पुत्र अश्वत्थ तथा पिप्पल नामक राक्षस जो धर्म के लिये कंटक जैसे थे, उस यज्ञ का विध्वंस करने के उद्देश्य से यज्ञ में गलती ढूंढने आये। अश्वत्थ राक्षस ने पीपल के वृक्ष का तथा पिप्पल राक्षस ने ब्राह्मण का रूप धारण किया। हे तपोधन! वे दोनों इन दो रूप के होकर नित्य वहां के ब्राह्मणों को पीड़ित करते रहते थे। जो व्यक्ति उस अश्वत्थ वृक्ष को छूता, वह राक्षस उसे खा जाता। पिप्पल राक्षस ने सामगायक ब्राह्मण का रूप धरा था। वह शिष्यों को खाया करता। इसी कारण से उसी काल से ब्राह्मणगण में सामगायी ब्राह्मण निर्दय कहे जाते हैं।।१०-१४।।

क्षीयमाणान्द्विजान्दृष्ट्वा मुनयो राक्षसाविमौ।
इति बुद्ध्वा महाप्राज्ञा दक्षिणं तीरमाश्रितम्॥१५॥

सौरिं शनैश्चरं मन्दं तपस्यन्तं धृतव्रतम्। गत्वा मुनिगणाः सर्वे रक्षःकर्म न्यवेदयन्॥१६॥

सौरिर्मुनिगणानाह पूर्णे तपसि मे द्विजाः। राक्षसौ हन्म्यपूर्णे तु तपस्यक्षम एव हि॥१७॥

तब मुनिगण ने ब्राह्मणों की संख्या क्षीण होते देख कर दोनों राक्षसों को पहचान लिया। तत्पश्चात् वे सभी लोग गौतमी के दक्षिण तट पर तपःश्चरणरत तथा व्रती सूर्यपुत्र शनि की शरण में गये। उन लोगों ने शनिदेव से प्रणामोपरान्त राक्षसों द्वारा कृत गर्हित कार्य का उनसे वर्णन किया। उस गर्हित कृत्य को सुनकर शनिदेव ने कहा—"हे ब्राह्मणवृन्द! मेरी तपस्या जब तक पूर्ण नहीं हो जाती, तब तक मैं राक्षसों का वध नहीं कर सकता। तपःश्चरण सम्पन्न होने पर ही राक्षसों का हनन कर सकूंगा"।।१५-१७।।

पुनः प्रोचुर्मुनिगणा दास्यामस्ते तपो महत्।
इत्युक्तो ब्राह्मणैः सौरिः कृतमित्याह तानपि॥१८॥

तब ऋषिगण ने पुनः कहा—"हम आपको अपनी विपुल तपस्या प्रदान कर रहे हैं।" यह सुनकर शनिदेव ने कहा कि "तब यह कार्य सम्पन्न हो गया। आप लोग ऐसा जान लीजिये"।।१८।।

सौरिर्ब्राह्मणवेषेण प्रायादश्वत्थरूपिणम्। राक्षसं ब्राह्मणो भूत्वा प्रदक्षिणमथाकरोत्॥१९॥
प्रदक्षिणं तु कुर्वाणं मेने ब्राह्मणमेव तम्। नित्यवद्राक्षसः पापो भक्षयामास मायया॥२०॥

तस्य कायं समाविश्य चक्षुषाऽन्त्राण्यपश्यत।
दृष्टः स राक्षसः पापो मन्देन रविसूनुना॥२१॥
भस्मीभूतः क्षणेनैव गिरिर्वज्रहतो यथा।
अश्वत्थं भस्मसात्कृत्वा अन्यं ब्राह्मणरूपिणम्॥२२॥

राक्षसं पापनिलयमेक एव तमभ्यगात्। अधीयानो विप्र इव शिष्यरूपो विनीतवत्॥२३॥

पिप्पलः पूर्ववच्चापि भक्षयामास भानुजम्।
स भक्षितः पूर्ववच्च कुक्षावन्त्राण्यवैक्षत॥२४॥
तेनाऽऽलोकितमात्रोऽसौ राक्षसो भस्मसादभूत्।
उभौ हत्वा भानुसूतः किं कृत्यं मे वदन्त्वथ॥२५॥

इसके पश्चात् शनिदेव ने ब्राह्मण का वेश धारण किया तथा वे पहले अश्वत्थ वृक्ष का रूप धारण करके स्थित राक्षस के पास जाकर उस वृक्ष की प्रदक्षिणा करने लगे। प्रदक्षिणा काल में उस पापी राक्षस ने शनिदेव को रोज की तरह भोज्य बन जाने वाला ब्राह्मण जैसा जानकर माया द्वारा उनका भक्षण कर लिया। रविपुत्र शनिदेव उसके उदर में गये तथा उन्होंने चक्षु खोल कर उसकी आंतों को देखा। देखते ही वह पापी राक्षस क्षणकाल में ही भस्मीभूत हो गया। रविपुत्र शनि ने एवंविध एकाकी ही अश्वत्थरूपी राक्षस का वध कर दिया था। तब वे ब्राह्मण रूपधारी पिप्पल राक्षस के पास गये। वहां उन्होंने जाकर स्वयं का प्रदर्शन विनीत, अध्ययन तत्पर ब्राह्मण शिष्य के रूप में किया। पिप्पल राक्षस ने उस शिष्य का भक्षण तो किया, परन्तु शनिदेव ने उसके उदर में जाकर जैसे ही उसकी आंतों को देखा, वह भी भस्मीभूत हो गया। इस प्रकार सूर्यपुत्र शनिदेव ने दोनों पापी राक्षसों को क्षणमात्र में भस्मीभूत कर दिया। तब सूर्यपुत्र ने कहा कि "अब मैं आपका क्या प्रिय कार्य करूं? वह कहिये"।।१९-२५।।

मुनयो जातसंहर्षाः सर्व एव तपस्विनः। ततः प्रसन्ना ह्यभवन्नृषयोऽगस्त्यपूर्वकाः॥२६॥
वरान्ददुर्यथाकामं सौरये मन्दगामिने। स प्रीतो ब्राह्मणानाह शनिः सूर्यसुतो बली॥२७॥

यह देख कर सभी तपस्वीगण आनन्दाप्लुत हो उठे। अब अगत्स्य प्रभृति ऋषि अत्यन्त प्रसन्न हो गये थे। उन सब ने मन्दगति से चले वाले सूर्यपुत्र को वांछित वर प्रदान किया। तब वे महाबली शनि भी ऋषियों से कहने लगे।।२६-२७।।

सौरिरुवाच

मद्द्वारे नियता ये च कुर्वन्त्यश्वत्थलम्भनम्।
तेषां सर्वाणि कार्याणि स्युः पीडा मद्भवा न च॥२८॥
तीर्थे चाश्वत्थसंज्ञे वै स्नानं कुर्वन्ति ये नराः। तेषां सर्वाणि कार्याणि भवेयुरपरो वरः॥२९॥
मन्दवारे तु येऽश्वत्थं प्रातरुत्थाय मानवाः। आलभन्ते च तेषां वै ग्रहपीडा व्यपोहतु॥३०॥

शनिदेव कहते हैं—जो व्यक्ति संयतात्मा होकर शनिवार को अश्वत्थतीर्थ में स्नान करेगा, उसकी समस्त कार्यसिद्धि होगी तथा उसे कभी भी मेरी (शनिग्रह जनित) पीड़ा नहीं होगी। जो मानव अश्वत्थतीर्थ में स्नान करेगा, उसके सभी कार्य साधित होंगे। जो व्यक्ति प्रातः उठकर शनिवार को अश्वत्थ तीर्थ में डुबकी लगायेगा, उसे कभी ग्रहपीड़ा नहीं सहनी होगी।।२८-३०।।

ब्रह्मोवाच

ततः प्रभृति तत्तीर्थमश्वत्थं पिप्पलं विदुः। तीर्थं शनैश्चरं तत्र तत्रागस्त्यं च सात्रिकम्॥३१॥
याज्ञिकं चापि तत्तीर्थं सामगं तीर्थमेव च। इत्याद्यष्टोत्तराण्यासन्सहस्राण्यथ षोडश।
तेषु स्नानं च दानं च सत्रयागफलप्रदम्॥३२॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे गौतमीमाहात्म्येऽश्वत्थाद्यष्टोत्तरषोडशसहस्रतीर्थवर्णनं नामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः।।११८।।

गौतमीमाहात्म्ये ऊनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।४९।।



ब्रह्मा कहते हैं—तभी से यह तीर्थ अश्वत्थतीर्थ तथा पिप्पलतीर्थ के नाम से प्रख्यात है। इसमें शनिश्चर, आगत्स्य, सात्रिक, याज्ञिक, सामग आदि चौबीस हजार तीर्थ विराजमान हैं। इन सबमें स्नान-दान से मनुष्य सत्रयज्ञ का फल लाभ करता है।।३१-३२।।

।।अष्टादशाधिकशततम अध्याय समाप्त।।



अथैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

सोमतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

सोमतीर्थमिति ख्यातं तदप्युक्तं महात्मभिः। तत्र स्नानेन दानेन सोमपानफलं लभेत्॥१॥
जगतां मातरः पूर्वमोषध्यो जीवसंमताः। ममापि मातरो देव्यः पूर्वासां पूर्ववत्तराः॥२॥
आसु प्रतिष्ठितो धर्मः स्वाध्यायो यज्ञकर्म च।
आभिरेव धृतं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥३॥
अशेषरोगोपशमो भवत्याभिरसंशयम्। अन्नमेताभिरेव स्यादशेषप्राणरक्षणम्।
अत्रौषध्यो जगद्वन्द्या मामूचुरनहंकृताः॥४॥

ब्रह्मा कहते हैं—महात्मागण कहते हैं कि सोमतीर्थ एक ऐसा तीर्थ है, जहां स्नान-दान करने मात्र से सोमपान फल लाभ होता है। पूर्व में सभी औषधियां बृहस्पति द्वारा जगत् की माता निर्णीत की गयी थीं। वे अति प्राचीन औषधियां हमारी भी माता हैं। इनमें धर्म, स्वाध्याय, यज्ञकर्म स्थित है। ये ही सचराचर तीन लोक-जगत् को धारण करती हैं। इनके द्वारा ही अशेष रोगों का उपशम होता है। जगत् में जीवन धारण का कारण एकमात्र अन्नरूप औषधियां ही हैं। इसी स्थान में अहंकार रहित जगदम्बा औषधियों ने मुझसे कहा था।।१-४।।

ओषध्य ऊचुः

अस्माकं त्वं पतिं देहि राजानं सुरसत्तम॥५॥

औषधियां कहती हैं—हे सुरश्रेष्ठ! आप कृपया हमें पति तथा राजा दीजिये।।५।।

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तासां मयोक्ता ओषधीरिदम्।
पतिं प्राप्स्यथ सर्वाश्च राजानं प्रीतिवर्धनम्॥६॥
राजानमिति तच्छ्रुत्वा मामूचुः पुनर्मुने। गन्तव्यं क्व पुनश्चोक्ता गौतमीं यान्तु मातरः॥७॥
तुष्टायामथ तस्यां वो राजा स्याल्लोकपूजितः।
ताश्च गत्वा मुनिश्रेष्ठ तुष्टुवुर्गौतमीं नदीम्॥८॥

ब्रह्मा कहते हैं—तदनन्तर मैंने उनका कथन सुनकर उनसे कहा—"तुम लोग अविलम्ब प्रीतिवर्द्धक राजा तथा पति प्राप्त करोगी।" हे नारद! तब उन्होंने पुनः प्रश्न किया "हम कहां जाकर राजा प्राप्त करें?" मैंने उनको उत्तर दिया "हे मातृगण! तुम लोगों को गौतमीगंगा जाना चाहिये। गौतमी के प्रसन्न होते ही लोकपूज्य राजा तथा पति का लाभ होगा।" हे मुनिप्रवर नारद! वे मेरे आदेशानुरूप जाकर गौतमी का स्तव करने लगीं।।६-८।।

ओषध्य ऊचुः

किं वाऽकरिष्यन्भववर्तिनो जना, नानाघसङ्घाभिभवाच्च दुःखिताः।
न चाऽऽगमिष्यद्भवती भुवं चेत्पुण्योदके गौतमि शम्भुकान्ते॥९॥
को वेत्ति भाग्यं नरदेहभाजां, महीगतानां सरितामधीशे।
एषां महापातकसंघहन्त्री, त्वमम्ब गङ्गे सुलभा सदैव॥१०॥
न ते विभूतिं ननु वेत्ति कोऽपि, त्रैलोक्यवन्द्ये जगदम्ब गङ्गे।
गौरीसमालिङ्गितविग्रहोऽपि, धत्ते स्मरारिः शिरसाऽपि यत्त्वाम्॥११॥
नमोऽस्तु ते मातरभीष्टदायिनि, नमोऽस्तु ते ब्रह्ममयेऽघनाशिनि।
नमोऽस्तु ते विष्णुपदाब्जनिःसृते, नमोऽस्तु ते शम्भुजटाविनिःसृते॥१२॥

औषधियां कहती हैं—हे गौतमी, शम्भुकान्ते! पुण्यसलिले! यदि आप पृथिवी पर अवतीर्ण न होतीं, तब सांसारिक लोग नाना दुःख परम्परा के प्रकट हो जाने पर किसकी शरण ग्रहण करते। हे सरित्प्रवरा गंगे! अम्बे! देहधारियों के इस अपूर्व भाग्य की बात कौन जान सकता है? क्योंकि साक्षात् आप महापातक राशियों से उनको त्राण दिलाकर पाप नाश करती हैं। हे त्रैलोक्यवन्दे! गंगे! आपकी विभूति कितनी अपार है, यह कौन जान सकता है? साक्षात् कामरिपु शिव गौरी से आलिंगित होकर भी मस्तक पर आपको धारण किये रहते हैं। हे अभीष्टप्रदा माता! आपको हमारा प्रणाम! हे पापनाशिनी! ब्रह्ममयी, विष्णु चरणकमल से निःसृत! शंभुजटा विनिर्गता देवी! आपको हमारा प्रणाम!॥९-१२॥

ब्रह्मोवाच

इत्येवं स्तुवतामीशा किं ददामीत्यवोच॥१३॥

ब्रह्मा कहते हैं—ब्रह्मर्षियों द्वारा इस प्रकार से स्तव करने पर ईश्वरी गौतमी ने औषधियों से कहा कि क्या प्रदान करूं?॥१३॥

ओषध्य ऊचुः

पतिं देहि जगन्माता राजानमतितेजसम्॥१४॥

औषधियां कहती हैं—हे जगन्माता! हमें पति तथा तेजस्वी राजा दीजिये॥१४॥

ब्रह्मोवाच

तदोवाच नदी गङ्गा ओषधीस्ता इदं वचः॥१५॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब नदी गंगा गौतमी ने उन औषधियों से कहा—॥१५॥

गङ्गोवाच

अहं चामृतरूपाऽस्मि ओषध्यो मातरोऽमृताः।
तादृशं चामृतात्मनं पतिं सोमं ददामि वः॥१६॥

गंगा गौतमी कहती हैं—मैं अमृतरूपा हूं। मातृगण औषधियां भी मातृरूपा हैं। अतः मैं अमृतात्मा सोम को ही पति तथा राजा रूपेण प्रदान करती हूं।।१६।।

ब्रह्मोवाच

देवाश्च ऋषयो वाक्यं मेनिरे सोम एव च।
ओषध्यश्चापि तद्वाक्यं ततो जग्मुः स्वमालयम्॥१७॥
यत्र चाऽऽपुर्महौषध्यो राजानममृतात्मकम्। सोमं समस्तसंतापपापसंघनिवारकम्॥१८॥
सोमतीर्थं तु तत्ख्यातं सोमपानफलप्रदम्। तत्र स्नानेन दानेन पितरं स्वर्गमाप्नुयुः॥१९॥
य इदं शृणुयान्नित्यं पठेद्वा भक्तितः स्मरेत्।
दीर्घमायुरवाप्नोति स पुत्री धनवान्भवेत्॥२०॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये सोमतीर्थवर्णनं नामोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।११९।।

गौतमीमाहात्म्ये पञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५०।।



ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर देवता, ऋषि, सोम एवं सभी औषधियों ने भगवती गौमतीगंगा के कथन का अनुमोदन कर दिया। तत्पश्चात् औषधियां अपने स्थान पर लौट गयीं। लौट कर उन्होंने सर्वसन्ताप तथा पापसमूह निवारक सोम को प्राप्त किया था। वे अमृतात्मक सोम ही उनके राजा हो गये। इसीलिये यह स्थान सोमपान का फल देने वाला कहा गया है। यहां स्नान-दान करने से उसके पितर स्वर्ग चले जाते हैं। जो मनुष्य इस तीर्थ माहात्म्य को भक्ति पूर्वक श्रवण अथवा पाठ करता है, वह आयुष्मान्, धनी एवं पुत्रवान् हो जाता है।।१७-२०।।

।।एकोनविंशाधिकशततम अध्याय समाप्त।।



अथ विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

धान्यतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

धान्यतीर्थमिति ख्यातं सर्वकामप्रदं नृणाम्। सुभिक्षं क्षेमदं पुंसां सर्वापद्विनिवारणम्॥१॥
ओषध्यः सोमराजानं पतिं प्राप्य मुदाऽन्विताः।
ऊचुः सर्वस्य लोकस्य गङ्गायाश्चेप्सितं वचः॥२॥

ब्रह्मा कहते हैं—धान्यतीर्थ नामक एक तीर्थ है। यह मनुष्यों हेतु सर्वकामप्रद तथा समस्त आपत्तिसमूह का निवारक भी है। यह साथ ही सुभिक्ष एवं कल्याण देने वाला भी है। औषधियों ने जब राजा सोम को पतिरूपेण पा लिया, तब वे प्रसन्न चित्त से लोकसमूह तथा गौमतीगंगा को प्रिय प्रतीत होने वाले वचन कहने लगीं।।१-२।।

ओषध्य ऊचुः

वैदिकी पुण्यगाथाऽस्ति यां वै वेदविदो विदुः।
भूमिं सस्यवतीं कश्चिन्मातरं मातृसंमिताम्॥३॥
गङ्गासमीपे यो दद्यात्सर्वकामानवाप्नुयात्। भूमिं सत्यवतीं गाश्च ओषधीश्च मुदाऽन्वितः॥४॥
विष्णुब्रह्मेशरूपाय यो दद्याद्भक्तिमान्नरः। सर्वं तदक्षयं विद्यात्सर्वकामानवाप्नुयात्॥५॥
ओषध्यः सोमराजन्याः सोमश्चाप्योषधीपतिः। इति ज्ञात्वा ब्रह्मविद ओषधीर्यः प्रदास्यति॥६॥
सर्वान्कामानवाप्नोति ब्रह्मलोके महीयते। ता एव सोमराजन्याः प्रीताः प्रोचुः पुनः पुनः॥७॥

औषधियां कहती हैं—वेदज्ञों द्वारा कीर्त्तित एक वैदिकी पुण्यगाथा है कि जो व्यक्ति गौमतीगंगा के पास मातृरूपा शस्य श्यामला भूमि दान करता है, वह सभी वांछित प्राप्त कर लेता है। जो मानव शस्यवती भूमि, गौ, औषधि प्रफुल्ल मन से विष्णु-ब्रह्मा-ईश वेषधारी देव को देता है, उसके सभी कर्म अक्षयरूप हो जाते हैं। वह सर्व अभिलषित भी प्राप्त करता है। सोमदेव औषधिगण के पति तथा राजा हैं। यह जानकर जो व्यक्ति औषधि दान करता है, उसे सभी वांछित की प्राप्ति हो जाती है तथा वह सर्वपूजित हो जाता है। उसका स्वर्ग में भी सम्मान होता है। यह सुनकर प्रेम से हर्षित होकर इस दानकथा को औषधियां पुनः-पुनः कहने लगीं।।३-७।।

ओषध्य ऊचुः

योऽस्मान्ददाति गङ्गायां तं राजन्पारयामसि। त्वमुत्तमश्चौषधीश त्वदधीनं चराचरम्॥८॥
ओषधयः संवदन्ते सोमेन सह राज्ञया। योऽस्मान्ददाति विप्रेभ्यस्तं राजन्पारयामसि॥९॥
वयं च ब्रह्मरूपिण्यः प्राणरूपिण्य एव च। योऽस्मान्ददाति विप्रेभ्यस्तं राजन्पारयामसि॥१०॥
अस्मान्ददाति यो नित्यं ब्राह्मणेभ्यो जितव्रतः।
उपास्तिरस्ति साऽस्माकं तं राजन्पारयामसि॥११॥
स्थावरं जङ्गमं किंचिदस्माभिर्व्यापृतं जगत्।
योऽस्मान्ददाति विप्रेभ्यस्तं राजन्पारयामसि॥१२॥
हव्यं कव्यं यदमृतं यत्किंचिदुपभुज्यते। यद्भरीयश्च यो दद्यात्तं राजन्पारयामसि॥१३॥
इत्येतां वैदिकीं गाथां यः शृणोति स्मरेत वा। पठते भक्तिमापन्नस्तं राजन्पारयामसि॥१४॥

औषधियां कहती हैं—"हे राजन्! जो हमें गौमतीगंगा में प्रदान करता है, उसका उद्धार आप करें। हे औषधिपति सोम! आप उत्तम रूप हैं। सचराचर जगत् आपके अधीन है।" औषधियों ने राजा सोम से परस्परतः

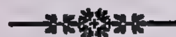
बातचीत में कहा—"हे राजन्! जो हमें विप्रों के कार्य हेतु दान करे, आप उसे भव सागर से पार करें। हम ब्रह्मरूपा तथा प्राणरूपा हैं। हमें जो ब्राह्मणों को प्रदान करेगा, हे राजन्! आप उसे संसार से पार करिये तथा जो जितव्रत व्यक्ति नित्य ब्राह्मणों हेतु हमारा दान करे, उसकी यह दानक्रिया ही हमारी अर्चना मानी जाये। जो हमारे द्वारा अधीष्ठित यह स्थावर-जंगम जगत् ब्राह्मण को दान करे, उसे भवसागर पार करें। जो उपभोग्य होने योग्य हव्य-कव्य तथा सर्वोत्तम पदार्थ दान करे, उसका हम उद्धार करें। हे राजन्! इस वैदिकी गाथा को पढ़ने, सुनने तथा स्मरण करने वाले का हम उद्धार करती हैं।।८-१४।।

ब्रह्मोवाच

यत्रैषा पठिता गाथा सोमेन सह राज्ञया। गङ्गातीरे चोषधीभिर्धान्यतीर्थं तदुच्यते॥१५॥
ततः प्रभृति तत्तीर्थमौषध्यं सौम्यमेव च। अमृतं वेदगाथं च मातृतीर्थं तथैव च॥१६॥
एषु स्नानं जपो होमो दानं च पितृतर्पणम्।
अन्नदानं तु यः कुर्यात्तदानन्त्याय कल्पते॥१७॥
षट्शताधिकसाहस्रं तीर्थानां तीरयोर्द्वयोः। सर्वपापनिहन्तॄणां सर्वसंपद्विवर्धनम्॥१८॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये धान्यतीर्थादिषट्शताधिकसहस्रतीर्थवर्णनं नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२०॥

गौतमीमाहात्म्ये एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५१॥



ब्रह्मा कहते हैं—जहां गौमतीगंगा तट पर सोम के साथ औषधियों ने इस गाथा का गान किया था, उस स्थान का नाम धान्यतीर्थ है। तभी से यही औषध्य, सोम, अमृत, वेदगाथ एवं अमृत आदि कतिपय अन्य तीर्थ भी स्थित हैं। उन सबमें स्नान, जप, होम, दान, पितृतर्पण तथा अन्नदान करने से वह सब अक्षय हो जाता है। यहीं गौतमी के उत्तरी तट पर एक हजार छः सौ तीर्थ हैं। ये सभी सर्वपापहर तथा सर्व सम्पदावर्द्धक भी हैं।।१५-१८।।

।।विंशत्यधिकशततम अध्याय समाप्त।।



अथैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

विदर्भा संगम तथा रेवती संगम वर्णन तथा अन्य तीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

विदर्भासंगमं पुण्यं रेवतीसंगमं तथा। तत्र यद्वृत्तमाख्यास्ये यत्पुराणविदो विदुः॥१॥
भरद्वाज इति ख्यात ऋषिरासीत्तपोऽधिकः। तस्य स्वसा रेवतीति कुरूपा विकृतस्वरा॥२॥

तां दृष्ट्वा विकृतां भ्राता भरद्वाजः प्रतापवान्।
चिन्तया परया युक्तो गङ्गया दक्षिणे तटे॥३॥
कस्मै दद्यामिमां कन्यां स्वसारं भीषणाकृतिम्।
न कश्चित्प्रतिगृह्णाति दातव्या च स्वसा तथा॥४॥
अहो भूयान्न कस्यापि कन्या दुःखैककारणम्।
मरणं जीवतोऽप्यस्य प्राणिनस्तु पदे पदे॥५॥
एवं विमृशतस्तस्य स्वाश्रमे चातिशोभने। द्रष्टुं मुनिवरः प्रायाद्भरद्वाजं यतव्रतम्॥६॥
द्व्यष्टवर्षः शुभवपुः शान्तो दान्तो गुणाकरः।
नाम्ना कठ इति ख्यातो भरद्वाजं ननाम सः॥७॥
विधिवत्पूज्य तं विप्रं भरद्वाजः कठं तदा। तस्याऽऽगमनकार्यं च पप्रच्छ पुरतः स्थितः॥८॥

ब्रह्मा कहते हैं—पुराणज्ञ लोग पवित्र विदर्भा संगम तथा रेवती संगम नामक दो तीर्थों का वर्णन करते हैं। उनका विवरण कहता हूं। पूर्वकाल में भरद्वाज नामक एक तपस्वी ऋषि थे। उनकी बहन थीं रेवती। वे कुरूपा तथा विकृत स्वर वाली थीं। भरद्वाज उनको विकृता देख कर गौमतीगंगा के पश्चिम तट पर बैठे अत्यन्त चिन्तित हो गये। उन्होंने विचार किया कि अपनी इस भीषण आकृति वाली बहन को मैं किसे समर्पित करूं? यदि इसे दान भी करना चाहूं, तब भी कोई इसे ग्रहण नहीं करेगा। दुःख का यही कारण है कि यह कन्या किसी की नहीं होगी। प्राणीगण को ऐसी कन्या के लिये जीवितावस्था में भी पग-पग पर मृत्यु दिखलाई देती है। यह बहन किसी को देना आवश्यक है। दुःख का यह कारण है कि कन्या किसी को उत्पन्न ही न हो। वे इस प्रकार चिन्तातुर थे तभी सामने से सोलह वर्ष के, शुभाकृति, शान्त, दान्त, गुणी कठ नामक मुनि ने वहां भरद्वाज को देख कर प्रणाम किया। भरद्वाज ने उनकी सविधि पूजा करके सामने बैठाया तथा उनके आने के कारण को पूछा।।१-८।।

कठोऽप्याह भरद्वाजं विद्यार्थ्यहमुपागतः। तथा च दर्शनाकाङ्क्षी यद्युक्तं तद्विधीयताम्॥९॥
भरद्वाजः कठं प्राह अधीष्व यदभीप्सितम्। पुराणं स्मृतयो वेदा धर्मस्थानान्यनेकशः॥१०॥
सर्वं वेद्मि महाप्राज्ञ रुचिरं वद मा चिरम्। कुलीनो धर्मनिरतो गुरुशुश्रूषणे रतः।
अभिमानी श्रुतधरः शिष्यः पुण्यैरवाप्यते॥११॥

कठ ने कहा—मैं विद्यार्थी हूं। आपके दर्शनार्थ यहां आया हूं। जो उचित हो वह करें। तब भरद्वाज ने उससे कहा—पुराण, स्मृति, वेद तथा जो कुछ अन्य धर्मग्रन्थ हैं, उनमें से जो पढ़ना चाहो, वह पढ़ो। हे महाप्राज्ञ! वह सब मैं जानता हूं। जो तुमको पढ़ने के लिये मन हो, वह अध्ययन करो। शीघ्र कहो। वास्तव में कुलीन, धार्मिक, गुरु सेवातत्पर, अभिमानी, श्रुतिधर शिष्य अत्यन्त पुण्यबल से ही प्राप्त होता है।।९-११।।

कठ उवाच

अध्यापयस्व भो ब्रह्मञ्शिष्यं मां वीतकल्मषम्। शुश्रूषणरतं भक्तं कुलीनं सत्यवादिनम्॥१२॥

कठ कहते हैं—हे ब्रह्मन्! मैं निष्पाप, सेवापरायण, भक्त, कुलीन तथा सत्यवादी शिष्य हूं। मुझे अध्यापन करायें।।१२।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा भरद्वाजः प्रादाद्विद्यामशेषतः। प्राप्तविद्यः कठः प्रीतो भरद्वाजमथाब्रवीत्।।१३।।

ब्रह्मा कहते हैं—"यही हो।" उन्होंने तब कठ को क्रमशः सभी विद्याओं का अध्ययन कराया। विद्यालाभ के उपरान्त हर्षित कठ ने भरद्वाज से कहा—।।१३।।

कठ उवाच

इच्छेयं दक्षिणां दातुं गुरो तव मनःप्रियाम्।
वदस्व दुर्लभं वाऽपि गुरो तुभ्यं नमोऽस्तु ते।।१४।।
विद्यां प्राप्यापि ये मोहात्स्वगुरोः पारितोषिकम्।
न प्रयच्छन्ति निरयं ते यान्त्याचन्द्रतारकम्।।१५।।

कठ कहता है—हे गुरु! मैं आपको अपनी इच्छित दक्षिणा देना चाहता हूं। जो दुर्लभ है। हे गुरुदेव! वह व्यक्त करिये। आपको हमारा नमस्कार! वास्तव में जो गुरु से विद्यालाभ करके मोह के कारण उनको पारितोषिक प्रदान नहीं करते, वे चन्द्रमा तथा नक्षत्रों की स्थितिकाल तक नरक में निवास करते हैं।।१४-१५।।

भरद्वाज उवाच

गृहाण कन्यां विधिवद्भार्यां कुरु मम स्वसाम्।
अस्थां प्रीत्या वर्तितव्यं याचेयं दक्षिणामिमाम्।।१६।।

भरद्वाज कहते हैं—तुम विधिवत् मेरी बहन को पत्नीरूप से ग्रहण करो। उसका तुम सविधि व्यवहार करो। यही मेरी दक्षिणा होगी।।१६।।

कठ उवाच

भ्रातृवत्पुत्रवच्चापि शिष्यः स्यात्तु गुरोः सदा।
गुरुश्च पितृवच्च स्यात्संबन्धोऽत्र कथं भवेत्।।१७।।

कठ कहते हैं—शिष्य सर्वदा गुरु हेतु भाई तथा पुत्र के समान है। गुरु तो पितृवत् हैं। अतः इस क्षेत्र में मेरा वैवाहिक सम्बन्ध कैसे होगा।।१७।।

भरद्वाज उवाच

मद्वाक्यं कुरु सत्यं त्वं ममाऽज्ञा तव दक्षिणा।
सर्वं स्मृत्वा कठाद्य त्वं रेवतीं भर तन्मनाः।।१८।।

भरद्वाज कहते हैं—मेरे वाक्य का तुम पालन करो। मेरे आदेश की रक्षा ही तुम्हारा दक्षिणा देना होगा। हे कठ! यह सब स्मरण करके तुम अभी रेवती को ग्रहण करो।।१८।।

ब्रह्मोवाच

तथेत्युक्त्वा गुरोर्वाक्यात्कठो जग्राह पाणिना।
रेवतीं विधिवद्दत्तां तां समीक्ष्य कठस्त्वथ॥१९॥
तत्रैव पूजयामास देवेशं शंकरं तदा। रेवत्या रूपसंपत्त्यै शिवप्रीत्यै च रेवती॥२०॥
सुरूपा चारुसर्वाङ्गी न रूपेणापमीयते। अभिषेकोदके तत्र रेवत्या यद्विनिसृतम्॥२१॥
साऽभवत्तत्र गङ्गायां तस्मात्तन्नामतो नदी। रेवतीति समाख्याता रूपसौभाग्यदायिनी॥२२॥

ब्रह्मा कहते हैं—कठ ने गुरुवाक्य को स्वीकार करके रेवती से पाणिग्रहण कर लिया। तब कठ यथाविधि प्रदान की गई रेवती को देखते ही शंकर की आराधना करने लगे। उनका शिवाराधन का उद्देश्य था शंकर की प्रीति प्राप्त करना तथा रेवती को रूपवती बनाना। कठ की आराधना द्वारा रेवती सुरूपा, सुन्दर अंगों वाली तथा अनुपम सुन्दरता युक्त हो गई। वहां रेवती का अभिषेक करने से जो जल गिरा, वह गंगा में मिलकर एक प्रसिद्ध नदी हो गया। वह रूप सौभाग्यप्रदा रेवती नदी कही गई।।१९-२२।।

पुनर्दर्भैश्च विविधैरभिषेकं चकार सः। पुण्यरूपत्वसंसिद्ध्यै विदर्भा तदभून्नदी॥२३॥
श्रद्धया संगमे स्नात्वा रेवतीगङ्गयोर्नरः। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते॥२४॥

पुनः कुशजल से रेवती ने पुण्यरूपत्व सिद्धि हेतु अपनी अभिषेक क्रिया सम्पन्न किया। इस अभिषेक जल से विदर्भा नामक नदी की उत्पत्ति हो गई। जो मनुष्य रेवती तथा गंगा के संगम में श्रद्धा पूर्वक स्नान करते हैं, वे सर्वपाप मुक्त होते हैं तथा अन्त में उनको विष्णुलोक प्राप्त हो जाता है। वह वहां सम्मानित होता है।।२३-२४।।

तथा विदर्भागौतम्योः संगमे श्रद्धया मुने।
स्नानं करोत्यसौ याति भक्तिं मुक्तिं च तत्क्षणात्॥२५॥
उभयोस्तीरयोस्तत्र तीर्थानां शतमुत्तमम्। सर्वपापक्षयकरं सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥२६॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये विदर्भासङ्गमरेवतीसङ्गमादितीर्थवर्णनं नामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२१।।

गौतमीमाहात्म्ये द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५२।।



हे मुनि! विदर्भी-गौतमी संगम में जो सश्रद्ध भाव से स्नान करता है, उसे भुक्ति तथा मुक्ति, दोनों की प्राप्ति होती है। वहां संगम के दोनों तट पर सर्वपापनाशक एवं सर्वसिद्धिप्रद सौ उत्तम तीर्थ हैं।।२५-२६।।

।।एकविंशत्यधिकशततम अध्याय समाप्त।।



अथ द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

पूर्णादि तीर्थों का वर्णन

ब्रह्मोवाच

पूर्णतीर्थमिति ख्यातं गङ्गाया उत्तरे तटे।
तत्र स्नात्वा नरोऽज्ञानात्तथाऽपि शुभमाप्नुयात्॥१॥
पूर्णतीर्थस्य माहात्म्यं वर्ण्यते केन जन्तुना।
स्वयं संस्थीयते यत्र चक्रिणा च पिनाकिना॥२॥
पुरा धन्वन्तरिर्नाम कल्पादावायुषः सुतः। इष्ट्वा बहुविधैर्यज्ञैरश्वमेधपुरःसरैः॥३॥
दत्त्वा दानान्यनेकानि भुक्त्वा भोगांश्च पुष्कलान्।
विज्ञाय भोगवैषम्यं परं वैराग्यमाश्रितः॥४॥
गिरिशृङ्गेऽम्बुधेः पारे तथा गङ्गानदीतटे। शिवविष्ण्वोर्गृहे वापि विशेषात्पुण्यसंगमे॥५॥
तप्तं हुतं च जप्तं च सर्वमक्षयतां व्रजेत्। धन्वन्तरिरिति ज्ञात्वा तत्र तेपे तपो महत्॥६॥
ज्ञानवैराग्यसम्पन्नो भीमेशचरणाश्रयः। तपश्चकार विपुलं गङ्गासागरसंगमे॥७॥

ब्रह्मा कहते हैं—गंगा के उत्तर तट पर पूर्णतीर्थ नामक प्रसिद्ध तीर्थ है। मानव वहां यदि अनजाने में भी स्नान कर लेता है, तब वह पापों से मुक्त हो जाता है। वहां स्वयं भगवान् चक्रपाणि एवं पिनाकपाणि सदा अवस्थान करते हैं। उस पूर्णतीर्थ की महिमा कौन शरीरधारी कह सकेगा? आदिकल्प के प्रारम्भ काल में आयु के पुत्र महाराज धन्वन्तरी अश्वमेधादि विशेष यज्ञों तथा नाना दानों के साथ प्रचुर भोगों को भोगने के उपरान्त संसार की परिणाम विरसता को समझ कर परम वैराग्यवान् हो गये। गिरिशिखर, गंगा आदि नदीतट, समुद्रतट, शिवमन्दिर, विष्णुमन्दिर इत्यादि पुण्यस्थलों पर जप-तप करने तथा होमादि करने का अक्षय फल होता है, यह उन्होंने सुना। तब वे गंगासागर संगमस्थ भीमेश्वर के चरणों का आश्रय लेकर ज्ञान-वैराग्य युक्त चित्त से महान् तप करने लगे।।१-७।।

पुरा च निकृतो राज्ञा रणं हित्वा महासुरः। सहस्रमेकं वर्षाणां समुद्रं प्राविशद्भयात्॥८॥
धन्वन्तरौ वनं प्राप्ते राज्यं प्राप्ते तु तत्सुते। विरागं च गते राज्ञि ततः प्रायादथार्णवात्॥९॥
तपस्यन्तं तमो नाम बलवानसुरो मुने। गङ्गातीरं समाश्रित्य राजा धनवन्तरिर्यतः॥१०॥
जपहोमरतो नित्यं ब्रह्मज्ञानपरायणः। तं रिपुं नाशयामीति तमः प्रायादथार्णवात्॥११॥
नाशितो बहुशोऽनेन राज्ञा बलवता त्वहम्।
तं रिपुं नाशयामीति तमः प्रायादथार्णवात्॥१२॥
मायया प्रमदारूपं कृत्वा राजानमभ्यगात्। नृत्यगीतवती सुभ्रुर्हसन्ती चारुदर्शना॥१३॥

पूर्वकाल में तम नामक एक असुर इन राजा के भय से सागर में छिप गया था। वह एक हजार वर्ष तक वहां छिपा था। जब उसने धन्वन्तरी की वैराग्य प्राप्ति तथा वनगमन और उसके पुत्र द्वारा राज्य प्राप्त करने का समाचार सुना, तब वह समुद्र से बाहर निकला। वह बली दैत्य पूर्व वैर का स्मरण करके धन्वन्तरी की हत्या करने हेतु गंगातीरस्थ धन्वन्तरी के आश्रम पर पहुंचा। उसने विचार किया, इस शत्रु ने अनेक बार मुझे पराजित किया था। अब यह ब्रह्मज्ञान परायण तथा जप परायण है। अतः कैसे इसका संहार करूं? यह सोचते-सोचते उसने एक चारुदर्शना स्त्री का रूप माया से धारण किया और कटाक्ष करते, हंसते हुये तथा नाचते-गाते वह राजा के सामने आया।।८-१३।।

तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं बहुकालं नयान्विताम्।
शान्तामनुव्रतां भक्तां कृपया चाब्रवीन्नृपः॥१४॥

उस सौम्य आकृति वाली, विनयी, सुन्दर भौंओं से सम्पन्न, हास्यरत, भक्त एवं व्रती लगने वाली नारी को राजा ने बहुधा देखा। अंततः राजा ने भक्ति पूर्वक उस स्त्री से प्रश्न किया।।१४।।

नृप उवाच

काऽसि त्वं कस्य हेतोर्वा वर्तसे गहने वने।
कं दृष्ट्वा हर्षसीव त्वं वद कल्याणि पृच्छते॥१५॥

राजा कहते हैं—हे सुन्दरी! तुम इस गहन वन में विचरने वाली कौन हो? हे कल्याणी! किसे देखते प्रसन्नता प्रकट कर रही हो? मेरे प्रश्न का उत्तर दो।।१५।।

ब्रह्मोवाच

प्रमदा चापि तद्वाक्यं श्रुत्वा राजानमब्रवीत्॥१६॥

ब्रह्मा कहते हैं—उस नारी ने राजा का कथन सुनकर उत्तर दिया—।।१६।।

प्रमदोवाच

त्वयि तिष्ठति को लोके हेतुर्हर्षस्य मे भवेत्।
अहमिन्द्रस्य या लक्ष्मीस्त्वां दृष्ट्वा कामसंभृतम्॥१७॥
हर्षाच्चरामि पुरतो राजंस्तव पुनः पुनः। अगण्यपुण्यविरहादहं सर्वस्य दुर्लभा॥१८॥

नारी कहती है—हे राजन्! तुम्हारे विद्यमान रहते जगत् में और कौन मेरे हर्ष का कारण हो सकता है? जो इन्द्र की लक्ष्मी है, वही मैं हूं। आपको मैं काम में संभूत देखकर प्रसन्नता के कारण मैं बारम्बार आपके समक्ष विचरण कर रही हूं। मैं तो अगणित पुण्य रहित व्यक्ति के लिये सदा दुर्लभ रहती हूं।।१७-१८।।

ब्रह्मोवाच

एतद्वचो निशम्याऽऽशु तपस्त्यक्त्वा सुदुष्करम्। तामेव मनसा ध्यायंस्तन्निष्ठस्तत्परायणः॥१९॥
तदेकशरणो राजा बभूव स यदा तमः। अन्तर्धानं गतो ब्रह्मन्नाशयित्वा तपो बृहत्॥२०॥

एतस्मिन्नन्तरेऽहं वै वरान्दातुं समभ्यगाम्। तं दृष्ट्वा विह्वलीभूतं तपोभ्रष्टं यथामृतम्॥२१॥
तामश्वास्याथ विविधैर्हेतुभिर्नृपसत्तमम्। तव शत्रुस्तमो नाम कृत्वा तां तपसश्च्युतिम्॥२२॥
चरितार्थो गतो राजन्न त्वं शोचितुमर्हसि। आनन्दयन्ति प्रमदास्तापयन्ति च मानवम्॥२३॥
सर्वा एव विशेषेण किमु मायामयी तु सा। ततः कृताञ्जली राजा मामाह विगतभ्रमः॥२४॥

ब्रह्मा कहते हैं—राजा ने यह सुनकर अविलम्ब अपना दुष्कर तप छोड़ दिया। वह उस मायां नारी के प्रति निष्ठावान तथा अनुरक्त होकर सदा मन ही मन उसका ध्यान करते उसकी ही शरण में चला गया। इस प्रकार उस दैत्य तम ने राजा की महान् तपस्या का विनाश किया तथा वहां से अन्तर्हित् हो गया। तभी मैं भी राजा को वर देने के लिये वहां आया। मैंने राजा को तपोभ्रष्ट, विह्वल, मृतवत् देख कर उसे अनेक युक्तियों द्वारा आश्वस्त करके उस राजप्रवर से कहा—"तुम्हारा ही शत्रु तम नामक दैत्य तुम्हारी तपस्या को नाश करने स्त्री रूप में आया था। वह सफल होकर चला गया। अब शोक करना उचित ही नहीं है। सभी स्त्रियां मनुष्यों को आनन्दित तो करती ही हैं, साथ ही अनुतप्त भी कर देती हैं। यदि वह नारी मायामयी हो, तब उसकी बात ही क्या?" यह सुनकर राजा भ्रमरहित हो गया। उसने हाथ जोड़कर मुझसे कहा—॥१९-२४॥

राजोवाच

किं करोमि कथं ब्रह्मंस्तपसः पारमाप्नुयाम्॥२५॥

राजा कहते हैं—हे ब्रह्मन्! क्या करूं? क्या करूं, जिससे तपसिद्धि हो जाये॥२५॥

ब्रह्मोवाच

ततस्तस्योत्तरं प्रादां देवदेवं जनार्दनम्। स्तुहि सर्वप्रयत्नेन ततः सिद्धिमवाप्स्यसि॥२६॥
स ह्योशेषजगत्स्त्रष्टा वेदवेद्यः पुरातनः। सर्वार्थसिद्धिदः पुंसां नान्योऽस्ति भुवनत्रये॥२७॥
स जगाम नगश्रेष्ठं हिमवन्तं नृपोत्तमः। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विष्णुं तुष्टाव भक्तितः॥२८॥

ब्रह्मा कहते हैं—मैंने राजा से कहा—"तुम सर्व प्रयत्न पूर्वक देव जनार्दन की स्तुति करो। इससे सिद्धि लाभ होगा। वे ही समस्त जगत् के स्रष्टा, वेद से ही ज्ञात होने वाले तथा पुरातन हैं। वे भिन्न-भिन्न सभी प्रकार के लोगों को सर्वार्थ देने वाले हैं। ऐसा तीनों लोक में कोई नहीं है।" यह सुनकर राजा पर्वतप्रवर हिमालय पर जाकर भक्तिभाव के साथ हाथ जोड़कर विष्णुस्तव करने लगे॥२६-२८॥

धन्वन्तरिरुवाच

जय विष्णो जयाचिन्त्य जय जिष्णो जयाच्युत।
जय गोपाल लक्ष्मीश जय कृष्ण जगन्मय॥२९॥

जय भूतपते नाथ जय पन्नगशायिने। जय सर्वग गोविन्द जय विश्वकृते नमः॥३०॥
जय विश्वभुजे देव जय विश्वधृते नमः। जयेश सदसत्त्वं वै जय माधव धर्मिणे॥३१॥
जय कामद काम त्वं जय राम गुणार्णव। जय पुष्टिद पुष्टीश जय कल्याणदायिने॥३२॥
जय भूतप भूतेश जय मानविधायिने। जय कर्मद कर्म त्वं जय पीताम्बरच्छद॥३३॥

जय सर्वेश सर्वस्त्वं जय मङ्गलरूपिणे। जय सत्त्वाधिनाथाय जय वेदविदे नमः॥३४॥

धन्वन्तरी कहते हैं—हे अचिन्त्य! विष्णु, जिष्णु, अच्युत, गोपाल, लक्ष्मीपति, जगन्मय, कृष्ण, भूतपति, सर्वग, गोविन्द, नाथ! आपकी जय हो! हे सर्प शय्या पर शयन करने वाले विश्वकर्त्ता! आपको नमस्कार! आपही देव विश्वभुक् हैं। आपको प्रणाम! हे विश्व को धारण करने वाले! आपकी जय हो! आपको नमस्कार! जय ईश, माधव, सदसदात्मक, धर्मरूपी कामप्रद! आपको नमस्कार! आप ही काम, राम, गुणार्थ, पुष्टिप्रद, पुष्टीश, भूतेश, मान विधान कर्त्ता हैं। आपको नमस्कार! जय कर्दम, भर्त्ता, पीताम्बरधारी, सर्वेश, सर्व, मंगलरूप, सत्वाधिनाथ वेदविद्! आपकी जय हो! आपको प्रणाम!।।२९-३४।।

जय जन्मद जन्मिस्थ परमात्मन्नमोऽस्तु ते।
जय मुक्तिद मुक्तिस्त्वं जय भुक्तिद केशव॥३५॥

जय लोकद लोकेश जय पापविनाशन। जय वत्सल भक्तानां जय चक्रधृते नमः॥३६॥
जय मानद मानस्त्वं जय लोकनमस्कृत। जय धर्मद धर्मस्त्वं जय संसारपारग॥३७॥
जय अन्नद अन्नं त्वं जय वाचस्पते नमः। जय शक्तिद शक्तिस्त्वं जय जैत्रवरप्रद॥३८॥
जय यज्ञद यज्ञस्त्वं जय पद्मदलेक्षण। जय दानद दानं त्वं जय कैटभसूदन॥३९॥

जय कीर्तिद कीर्तिस्त्वं जय मूर्तिद मूर्तिधृक्।
जय सौख्यद सौख्यात्मञ्जय पावनपावन॥४०॥
जय शान्तिद शान्तिस्त्वं जय शङ्करसम्भव।
जय पानद पानस्त्वं जय ज्योतिःस्वरूपिणे॥४१॥

जय वामन वित्तेश जय धूमपताकिने। जय सर्वस्य जगतो दातृमूर्ते नमोऽस्तु ते॥४२॥

त्वमेव लोकत्रयवर्तिजीवनिकायसंक्लेशविनाशदक्ष।
श्रीपुण्डरीकाक्ष कृपानिधे त्वं, निधेहि पाणिं मम मूर्ध्नि विष्णो॥४३॥

जय जन्मप्रद, जन्मिस्थ, परमात्मा, मुक्ति देने वाले, मुक्तिरूप, भक्तिप्रद, केशव, लोकद, लोकेश, पापनाशक, भक्तवत्सल, चक्रधारी, मानद, मान, लोकनमस्कृत, धर्मप्रद, धर्म! आपकी जय हो! आपको नमस्कार! संसार से पार करने वाले, अन्नदाता, अन्न, वाचस्पति, शान्तिप्रद, शान्ति, सर्वजय वर प्रदाता आप हैं। आपकी सदा जय हो! आपको नमस्कार! जय यज्ञदाता, यज्ञ, पद्मदलेक्षण, दानदाता, दानरूप, कैटभसूदन, कीर्त्तिप्रद, कीर्त्ति, मूर्त्तिप्रद, मूर्त्तिधारी, सौख्यप्रद, सौख्यात्मा, पावन-पावन, शास्ति देने वाले, शास्ति आपकी जय हो! आपको नमस्कार! हे शंकरसंभव! पानद, पानरूप, ज्योतिरूप, वामन, वित्तेश, धूमपताकी आपकी जय हो। आपको नमस्कार! आप समस्त संसार को दान देने वाले मूर्त्ति रूप हैं। आपकी जय हो! आपको नमस्कार! हे पुण्डरीकाक्ष! लोकत्रय के निवासी जनों के क्लेशनाशार्थ आप समर्थ हैं। हे कृपानिधि विष्णु! मेरे मस्तक पर आप अपना हाथ रखिये।।३५-४३।।

ब्रह्मोवाच

एवं स्तुवन्तं भगवाञ्शङ्खचक्रगदाधरः। वरेण च्छन्दयामास सर्वकामसमृद्धिदः॥४४॥

धन्वन्तरिः प्रीतमना वरदानेन चक्रिणः। वरदानाय देवेशं गोविन्दं संस्थितं पुरः॥४५॥

तमाह नृपतिः प्रह्वः सुरराज्यं ममेप्सितम्।
तच्च दत्तं त्वया विष्णो प्राप्तोऽस्मि कृतकृत्यताम्॥४६॥

ब्रह्मा कहते हैं—इस स्तव के करने से सर्वकामसमृद्ध भगवान् शंख-चक्र-गदाधारी उनको वर देने हेतु उद्यत हो गया। धन्वन्तरी ने चक्रपाणि देव को वर देने के लिये जब उद्यत देखा, तब वे प्रसन्न मन से सामने स्थित उन देवेश गोविन्द से उन्होंने देवताओं का राज्य मांगा। भगवान् ने उनको देवराज्य प्रदान कर दिया। तब राजा धन्वन्तरि ने कहा—"हे विष्णु! मैं देवराज्य पाकर कृतार्थ हो गया।।४४-४६।।

स्तुतः संपूजितो विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत। तथैव त्रिदशेशत्वमवाप नृपतिः क्रमात्॥४७॥
प्रागर्जितानेककर्मपरिपाकवशात्ततः। त्रिःकृत्वो नाशमगमत्सहस्राक्षः स्वकात्पदात्॥४८॥
नहुषाद्वृत्रहत्यायाः सिन्धुसेनवधात्ततः। अहल्यायां च गमनाद्येन केन च हेतुना॥४९॥
स्मारं स्मारं तत्तदिन्द्रश्चिन्तासंतापदुर्मनाः। ततः सुरपतिः प्राह वाचस्पतिमिदं वचः॥५०॥

भगवान् विष्णु राजा द्वारा पूजित तथा स्तुत होकर अन्तर्हित् हो गये। क्रमशः राजा ने देवराज का पद प्राप्त कर लिया। तथापि पूर्वजन्म के कृत कर्मों के कारण वे सहस्राक्ष होकर भी तीन बार अपने पद से च्युत किये गये। प्रथम बार वृत्रासुर की हत्या के कारण नहुष द्वारा, द्वितीय बार सिन्धुसेन वध करने के कारण तथा तृतीय बार अहल्या से अनुचित समागम के कारण पदभ्रष्ट हुये। वे इन्द्र उन पतन वाली स्थितियों तथा उनके कारणों का चिन्तन करने के कारण चिन्ता संताप के कारण दुर्मना हो गये, तब उन सुरपति ने बृहस्पति से प्रश्न किया।।४७-५०।।

इन्द्र उवाच

हेतुना केन वागीश भ्रष्टराज्यो भवाम्यहम्।
मध्ये मध्ये पदभ्रंशाद्वरं निःश्रीकता नृणाम्॥५१॥

गहनां कर्मणां जीवगतिं को वेत्ति तत्त्वतः। रहस्यं सर्वभावनां ज्ञातुं नान्यः प्रगल्भते॥५२॥

इन्द्र कहते हैं—हे वागीश! मैं किस कारण से राज्यभ्रष्ट हो गया? बार-बार पदच्युत होने से तो अच्छा है कि चिर दरिद्र ही रहना। हे बृहस्पति! कर्मसमूह की गति कौन जानता है? आपके अतिरिक्त इस सर्वभाव के रहस्य को सम्यक्तः और कौन जान सकता है?।।५१-५२।।

ब्रह्मोवाच

बृहस्पतिर्हरिं प्राह ब्रह्माणं पृच्छ गच्छ तम्।
स तु जानाति यद्भूतं भविष्यच्चापि वर्तनम्॥५३॥

स तु वक्ष्यति येनेदं जातं तच्च महामते। तावागत्य महाप्राज्ञौ नमस्कृत्य ममन्तिकम्।
कृताञ्जलिपुटौ भूत्वा मामूचतुरिदं वच॥५४॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब बृहस्पति ने इन्द्र से कहा—"तुम ब्रह्मा के पास जाओ। उनसे प्रश्न करो। वे

समस्त भूत-वर्त्तमान-भविष्य के ज्ञाता हैं। तुम्हारी यह दशा जिस कारण से हो गयी है, वे ही तुमसे कहेंगे।" तब वे दोनों महाप्राज्ञ मेरे पास आये तथा मुझे प्रणाम करके हाथ जोड़ कर उन्होंने अपना वृत्तान्त कहना प्रारम्भ कर दिया।।५३-५४।।

इन्द्रबृहस्पती ऊचतुः

भगवन्केन दोषेण शचीभर्ता उदारधीः। राज्यात्प्रभ्रश्यते नाथ संशयं छेत्तुमर्हसि॥५५॥

इन्द्र तथा बृहस्पति ने कहा—हे प्रभो! उदारबुद्धि शचीपति इन्द्र किस दोष से राज्यभ्रष्ट हुये? हे नाथ! हमारे संशय का उच्छेद करिये।।५५।।

ब्रह्मोवाच

तदाऽहमब्रवं ब्रह्मंश्चिरं ध्यात्वा बृहस्पतिम्। खण्डधर्माख्यदोषेण तेन राज्यपदाच्च्युतः॥५६॥
देशकालादिदोषेण श्रद्धामन्त्रविपर्ययात्। यथावद्दक्षिणादानादसद्द्रव्यप्रदानतः॥५७॥
देवभूदेवतावज्ञापातकाच्च विशेषतः। यत्खण्डत्वं स्वधर्मस्य देहिनामुपजायते॥५८॥
तेनातिमानसस्तापः पदहानिश्च दुस्त्यजा। कृतोऽपि धर्मोऽनिष्टाय जायते क्षुब्धचेतसा॥५९॥
कार्यस्य न भवेत्सिद्ध्यै तस्मादव्याकुलाय च।
असंपूर्णे स्वधर्मे हि किमनिष्टं न जायते॥६०॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे ब्रह्मन्! तब मैंने कुछ चिन्तन करके उनसे कहा—"इसका कारण है खण्डधर्म। इनको देश-काल के दोष से राज्यच्युति हो गई है। श्रद्धा-मन्त्रादि का विपर्यय, यथायोग्य दक्षिणा न देना, असत् द्रव्य का दान, देवता-ब्राह्मण का अपमान, इससे मनुष्य का धर्म खण्डित हो जाता है। अन्य विशेष-विशेष पातकों के कारण मानव के प्रारब्ध कार्य से जो खण्डत्व होता है, उसी के कारण घोर मनःस्ताप तथा दुर्निवार्य पद हानि होती है। क्षुब्ध चित्त से धर्मकार्य अनुष्ठित होने से भी इष्टसिद्धि नहीं होती, अपितु अनिष्ट होता है। इसीलिये धर्म-कर्म अव्याकुलभाव से करना चाहिये। स्वधर्म जब असम्पूर्ण रह जाता है, तब कैसा अनिष्ट नहीं होता।।५६-६०।।

ताभ्यां यत्पूर्ववृत्तान्तं तदप्युक्तं मयाऽनघ।
आयुषस्तु सुतःश्रीमान्धन्वन्तरिरुदारधीः॥६१॥
तमसा च कृतं विघ्नं विष्णुना तच्च नाशितम्।
पूर्वजन्मसु वृत्तान्तमित्यादि परिकीर्तितम्॥६२॥
तच्छ्रुत्वा विस्मतौ चोभौ मामेव पुनरूचतुः॥६३॥

हे निष्पाप! उनसे मैंने धन्वन्तरि इन्द्र का पूर्व-वृत्तान्त भी कहा था। आयु के पुत्र श्रीमान् उदारचेता धन्वन्तरी का तम नामक दैत्य द्वारा जिस प्रकार से विघ्न किये जाने के कारण कार्य खण्डित हुआ था तथा विष्णु ने उनको पुनः वर देकर उनको स्वस्थ किया था, उस पूर्व विवरण को सुनकर विस्मित होकर उन्होंने पुनः मुझसे कहा—।।६१-६३।।

इन्द्रबृहस्पती ऊचतुः

तद्दोषप्रतिबन्धस्तु केन स्यात्सुरसत्तम॥६४॥

इन्द्र-बृहस्पति कहते हैं—हे देवप्रवर! यह दोष कैसे निवृत्त होगा? वह कहिये।।६४।।

ब्रह्मोवाच

पुनर्ध्यात्वा तावववदं श्रूयतां दोषका (हा) रकम्।
कारणं सर्वसिद्धानां दुःखसंसारतारणम्॥६५॥
शरणं तप्तचित्तानां निर्वाणं जीवतामपि। गत्वा तु गौतमीं देवीं स्तूयेतां हरिशंकरौ॥६६॥
नोपायोऽन्योऽस्ति संशुद्ध्यै तौ तां हित्वा जगत्त्रये।
तदैव जग्मतुरुभौ गौतमीं मुनिसत्तम।
स्नातौ कृतक्षणौ चोभौ देवौ तुष्टुवतुर्मुदा॥६७॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब मैंने किंचित् ध्यानोपरान्त उनसे कहा—"अब तुम लोग दोषनाशक उपाय सुनो। तुम लोग गौमतीतट पर जाकर तत्त्ववेत्तागण के एकमात्र शरण्य तथा जीवन में निर्वाण सुख देने वाले हरि तथा प्रभु शंभु का स्तव करो। गौमतीगंगा, हरि तथा शंकर इनके अतिरिक्त त्रैलोक्य में अन्य कोई भी उपाय इसके लिये नहीं है। उसी से दोषशुद्धि होगी।" हे मुनिप्रवर नारद! तब वे दोनों गौमतीतट पर गये। वहां स्नानादि सम्पन्न करके उन्होंने आनन्दमय मन से हरि तथा शंकर का स्तव प्रारम्भ किया। वे हरि एवं शंकर को प्रसन्न करने लगे।।६५-६७।।

इन्द्र उवाच

नमो मत्स्याय कूर्माय वराहाय नमो नमः। नरसिंहाय देवाय वामनाय नमो नमः॥६८॥
नमोऽस्तु हयरूपाय त्रिविक्रम नमोऽस्तु ते।
नमोऽस्तु बुद्धरूपाय रामरूपाय कल्किने॥६९॥
अनन्तायाच्युतायेश जामदग्न्याय ते नमः। वरुणेन्द्रस्वरूपाय यमरूपाय ते नमः॥७०॥
परमेशाय देवाय नमस्त्रैलोक्यरूपिणे।
बिभ्रत्सरस्वतीं वक्त्रे सर्वज्ञोऽसि नमोऽस्तु ते॥७१॥
लक्ष्मीवानस्यतो लक्ष्मीं बिभ्रद्वक्षसि चानघ। बहुबाहूरूपादस्त्वं बहुकर्णाक्षिशीर्षकः।
त्वामेव सुखिनं प्राप्य बहवः सुखिनोऽभवन्॥७२॥
तावन्निःश्रीकता पुंसां मालिन्यं दैन्यमेव वा।
यावन्न यान्ति शरणं हरे त्वां करुणार्णवम्॥७३॥

इन्द्र कहते हैं—प्रभु मत्स्यदेव को प्रणाम! कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन देव को प्रणाम! मैं हयग्रीव को प्रणाम करता हूं! हे त्रिविक्रम! आपने तीन पग से सम्पूर्ण भुवनों को नापा है। आपको प्रणाम! बुद्धरूप, राम

तथा कल्कि रूप में अवतरित होने वाले हैं। आपको प्रणाम! हे ईश्वर! आप अनन्त, अच्युत, परशुराम, वरुण, इन्द्र एवं यम रूप हैं। आपको प्रणाम! आप त्रैलोक्यरूप परमेश्वर हैं, आप सर्वज्ञ हैं, आपके मुख में सरस्वती का निवास है। आपको प्रणाम! आपके वक्ष में लक्ष्मी का निवास है। हे निष्पाप! तभी आप लक्ष्मीवान् हैं। आप अनेक बाहु, उरु तथा पैरों वाले, अनेक कान, आंख, शिर वाले हैं। आप ही सुखी हैं। आपको पाकर बहुत से लोग सुखी हो गये हैं। हे देव! लोग जब तक आप करुणार्णव की शरण ग्रहण नहीं करते, तभी तक उनमें दरिद्रता, मलीनता तथा दीनता रहती है।।६८-७३।।

बृहस्पतिरुवाच

सूक्ष्मं परं जो (ज्यो) तिरनन्तरूपमोंकारमात्रं प्रकृतेः परं यत्।
चिद्रूपमानन्दमयं समस्तमेवं वदन्तीश मुमुक्षवस्त्वाम्॥७४॥
आराधयन्त्यत्र भवन्तमीशं, महामखैः पञ्चभिरप्यकामाः।
संसारसिन्धोः परमाप्तकामा, विशन्ति दिव्यं भुवनं वपुस्ते॥७५॥

बृहस्पति कहते हैं—हे ईश्वर! मुमुक्षु लोग आपको सूक्ष्म, अनन्त, ओंकारात्मक, प्रकृति से परे, चिद्रूप, आनन्दमय, अथच यह समग्र जगत्प्रपञ्चरूपी कहते हैं। जगत् में निष्काम, कामनारहित होकर भी वे ईश्वर को अपनी पंचविध महायज्ञ अर्चना से कृतार्थ करते हैं। ईश्वर उनको उस संसार सिन्धु से दिव्य भुवन में प्रवेश करा देते हैं। वह दिव्य भुवन उनका ही शरीर है।।७४-७५।।

सर्वेषु सत्त्वेषु समत्वबुद्ध्या, संवीक्ष्य षट्सूर्मिषु शान्तभावाः।
ज्ञानेन ते कर्मफलानि हित्वा, ध्यानेन ते त्वां प्रविशन्ति शम्भो॥७६॥
न जातिधर्माणि न वेदशास्त्रं, न ध्यानयोगो न समाधिधर्मः।
रुद्रं शिवं शङ्करं शान्तचित्तं, भक्त्त्या देवं सोममहं नमस्ये॥७७॥
मूर्खोऽपि शम्भो तव पादभक्त्त्या, समाप्नुयान्मुक्तिमयीं तनुं ते।
ज्ञानेषु यज्ञेषु तपःसु चैव, ध्यानेषु होमेषु महाफलेषु॥७८॥

हे शंभु! सबमें सम बुद्धि रखने वाले, षड्विध संसार उर्मि में भी, (भूख, प्यास, लोभ, मोह, ग्रीष्म, शीत) इस अज्ञानात्मक चित्त विकार में भी अविचलित चित्त होकर ज्ञान प्रभाव से कर्मफल को त्याग कर ध्यान द्वारा आपमें प्रविष्ट हो जाते हैं। आपको पाने के लिये जातिधर्म, वेद-शास्त्रज्ञान, ध्यान-योग बल समाधि धर्म मुझमें लेशमात्र भी नहीं हैं। इनमें से किसी से भी आपको नहीं पाया जा सकता। इसलिये मैं भक्ति के साथ जगत् के मंगल को करने वाले सोममूर्त्ति रुद्र को प्रणाम करता हूं! हे शंभु! आपके चरणों में भक्ति करके मूर्ख भी मुक्तिमयी मूर्त्ति को पा जाता है। नाना ज्ञान-यज्ञ-तप-ध्यान-होमादि जो कुछ महाफलप्रद कार्य हैं, अहर्निश सोमेश्वर की भक्ति प्राप्त हो जाना ही उनका उत्तम फल है।।७६-७८।।

सम्पन्नमेतत्फलमुत्तमं यत्सोमेश्वरे भक्तिरहर्निशं यत्।
स्वर्गस्य जीवस्य सदा प्रियस्य, फलस्य दृष्टस्य तथा श्रुतस्य॥७९॥

स्वर्गस्य मोक्षस्य जगन्निवास, सोपानपङ्क्तिस्तव भक्तिरेषा।
त्वत्पादसम्प्राप्तिफलाप्तये तु, सोपानपङ्क्तिं न वदन्ति धीराः॥८०॥
तस्माद्दयालो मम भक्तिरस्तु, नैवास्त्युपायस्तव रूपसेवा।
आत्मीयमालोक्य महत्त्वमीश, पापेषु चास्मासु कुरु प्रसादम्॥८१॥

हे जगन्निवास! सभी प्राणियों द्वारा सतत् प्रार्थित जो कुछ देखा गया तथा सुना गया फल है, वह स्वर्ग एवं मोक्षात्मक फल पाने हेतु आपके प्रति की गई भक्ति ही सोपान रूप है। तथापि धीर बुद्धि वालों ने आपके चरणाश्रय रूपी फल पाने के लिये किसी भी सोपानपंक्ति (सीढ़ियों) का निर्देश नहीं किया है। सचराचर जगत् के जो अन्तरात्मा हैं, जो कर्त्ता, हर्त्ता तथा परिपोषक हैं, ऐसे आपको, आपकी ही माया से मोहित चित्त होने के कारण मन्दबुद्धि लोग नहीं जान पाते। हे दयालु! आपके प्रति मेरी भक्ति सतत् बनी रहती है। आपकी रूप सेवा के अतिरिक्त मेरे पास अन्य उपाय है ही नहीं। हे ईश्वर! आप स्वयं अपने महत्व का स्मरण रखते हुये मुझ जैसे पापी के प्रति कृपा करिये।।७९-८१।।

स्थूलं च सूक्ष्मं त्वमनादि नित्यं, पिता च माता यदसच्च सच्च।
एवं स्तुतो यः श्रुतिभिः पुराणैर्नमामि सोमेश्वरमीशितारम्॥८२॥

हे प्रभो! आप स्थूल-सूक्ष्म, अनादि, नित्य, जगत् के पिता-माता, सत्-असत्, जो कुछ भी है, वह सब आप ही हैं। पुराने मुनिगण जिनका स्तव स्तुतिवाक्य द्वारा सदा करते हैं, उन सोमेश्वर ईश्वर को प्रणाम करता हूं!।।८२।।

ब्रह्मोवाच

ततः प्रीतौ हरिहरावूचतुस्त्रिदशेश्वरौ॥८३॥

ब्रह्मा कहते हैं—इस स्तुति से हरि एवं हर ने प्रसन्न होकर इन्द्र तथा बृहस्पति से कहा—।।८३।।

हरिहरावूचतुः

व्रियतां यन्मनोभीष्टं यद्वरं चातिदुर्लभम्॥८४॥

प्रसन्न होकर हरि-हर कहते हैं—तुम लोग अपना वर मांगो। अति दुर्लभ हो, तब भी मांग लो।।८४।।

ब्रह्मोवाच

इन्द्र प्राह सुरेशानं मद्राज्यं तु पुनः पुनः। जायते भ्रश्यते चैव तत्पापमुपशाम्यताम्॥८५॥
यथा स्थिरोऽहं राज्ये स्यां सर्वं स्यान्निश्चलं मम।
सुप्रीतौ यदि देवेशौ सर्वं स्यान्निश्चलं सदा॥८६॥
तथेति हरिवाक्यं तावभिन्नद्धेदमूचतुः। परं प्रसादमापन्नौ तावालोक्य स्मिताननौ॥८७॥
निरपायनिराधारनिर्विकारस्वरूपिणौ। शरण्यौ सर्वलोकानां भुक्तिमुक्तिप्रदावुभौ॥८८॥

ब्रह्मा कहते हैं—इन्द्र ने महेश्वर से कहा—"जिस पूर्व पाप के कारण बारम्बार राज्य मिलकर भी मुझसे छीन लिया जाता है, उस पाप को शान्त करें। जिस प्रकार मैं अपना राज्य स्थिर रख सकूं, जिससे मेरा सभी

राज्य-ऐश्वर्य स्थिर हो जाये, अधिकार भी अचल हो, वह वर प्रदान करिये।" यह सुनकर विष्णु ने कहा—"यही हो" यह वाणी सुनकर बृहस्पति तथा इन्द्र ने उन देवद्वय को प्रणाम किया तथा कहने लगे "आप अविनाशी, निराधार, निर्विकार, सर्वलोकरक्षक, भोग-मोक्षप्रदायक हैं। आप दोनों को प्रसन्न देखकर हम उभय अतीव आनन्दित भी हैं।।८५-८८।।

हरिहरावूचतुः

त्रिदैवत्यं महातीर्थं गौतमी वाञ्छितप्रदा। तस्यामनेन मन्त्रेण कुरुतां स्नानमादरात्।।८९।।
अभिषेकं महेन्द्रस्य मङ्गलाय बृहस्पतिः। करोतु संस्मरन्नावां संपदां स्थैर्यसिद्धये।।९०।।
इह जन्मनि पूर्वस्मिन्यत्किंचित्सुकृतं कृतम्। तत्सर्वं पूर्णतामेतु गोदावरि नमोऽस्तु ते।।९१।।
एवं स्मृत्वा तु यः कश्चिद्गौतम्यां स्नानमाचरेत्।
आवाभ्यां तु प्रसादेन धर्मः संपूर्णतामियात्।
पूर्वजन्मकृताद्दोषात्स मुक्तः पुण्यवान्भवेत्।।९२।।

हरि-हर कहते हैं—गौमतीनदी त्रिदैवत्य हैं। यह महातीर्थ वांछित फलप्रद है। उस नदी में भक्ति के साथ स्नान करो। बृहस्पति इन्द्र के मंगलार्थ सम्पत्ति की स्थिरता हेतु हम दोनों का स्मरण करके अभिषेक करें। "हे गोदावरी! मैंने इस जन्म में अथवा जन्मान्तर में जो कुछ सुकृत किया हो, वह सब पूर्णता लाभ करे। आपको नमस्कार!" यह मन्त्र पढ़ कर जो कोई गौतमी में स्नान करेगा, हम लोगों की कृपा से उसके द्वारा किया असम्पूर्ण धर्म भी सम्पूर्णता लाभ करेगा। जो लोग पूर्वजन्मकृत पशुधर्म दोषयुक्त रहे हों, वे भी पुण्यमय हो जाते हैं।।८९-९२।।

ब्रह्मोवाच

तथेति चक्रतुः प्रीतौ सुरेन्द्रधिषणौ ततः। महाभिषेकमिन्द्रस्य चकार द्युसदां गुरुः।।९३।।

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर देवराज तथा बृहस्पति ने उसे करने की स्वीकृति देकर प्रसन्न चित्त से वहां से प्रस्थान किया। देवगुरु ने इन्द्र का महाभिषेक कर दिया।।९३।।

तेनाभूद्या नदी पुण्या मङ्गलेत्युदिता तु सा।
तया च संगमः पुण्यो गङ्गायाः शुभदस्त्वसौ।।९४।।
इन्द्रेण संस्तुतौ विष्णुः प्रत्यक्षोऽभूज्जगन्मयः।
त्रिलोकसंमितां शक्रो भूमिं लेभे जगत्पतेः।।९५।।
तन्नाम्ना चापि विख्यातो गोविन्दो इति तत्र च।
त्रिलोकसंमिता लब्धा तेन गौर्वज्रधारिणा।।९६।।
दत्ता च हरिणा तत्र गोविन्दस्तदभूद्धरिः।
त्रैलोक्यराज्यं यत्प्राप्तं हरिणा च हरेर्मुने।।९७।।

निश्चलं येन (तच्च) संजातं देवदेवान्महेश्वरात्। बृहस्पतिर्देवगुरुर्यत्रास्तौषीन्महेश्वरम्।।९८।।

राज्यस्य स्थिरभावाय देवेन्द्रस्य महात्मनः।
सिद्धेश्वरस्तत्र देवो लिङ्गं तु त्रिदशार्चितम्॥९९॥

उस अभिषेक जल से एक पुण्या नदी उत्पन्न हो गयी। उसका नाम पड़ा मंगला। जहां गौमतीगंगा से उस नदी का संगम हुआ, वह पुण्यमय स्थान है। इन्द्र के स्तव से प्रसन्न होकर जगन्मय प्रभु विष्णु वहां स्वयं आविर्भूत हो गये थे। उन जगत्पति की कृपा से इन्द्र ने त्रैलोक्यराज्य लाभ किया था। भगवान् वहां गोविन्द नाम से प्रसिद्ध हैं। हे मुनिवर नारद! वज्रधारी इन्द्र ने वहां त्रैलोक्यवन्द्या गौ (धरती) प्राप्त किया था। हरि ने यहां इन्द्र को गौ दिया था। तभी हरि ही गोविन्द हो गये। इन्द्र ने हरि से त्रैलोक्यराजत्व लाभ किया। उसे देवदेव महेश्वर ने अचल कर दिया। देवगुरु बृहस्पति ने महात्मा देवेन्द्र के राज्य की स्थिरता के लिये जहां महेश्वर का स्तव किया था, वहीं पर देवदेव महेश्वर देवपूजित सिद्धेश्वर लिंग रूप में तथा इसी नाम से विराजमान हैं।।९४-९९।।

ततः प्रभृति तत्तीर्थं गोविन्दमिति विश्रुतम्।
मङ्गलासंगमं चैव पूर्णतीर्थं ततः परम्॥१००॥
इन्द्रतीर्थमिति ख्यातं बार्हस्पत्यं च विश्रुतम्।
यत्र सिद्धेश्वरो देवो विष्णुर्गोविन्द एव च॥१०१॥

तेषु स्नानं च दानं च यत्किंचित्सुकृतार्जनम्। सर्वं तदक्षयं विद्यात्पितृणामतिवल्लभम्॥१०२॥
शृणोति यश्चापि पठेद्यश्च स्मरति नित्यशः। तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं भ्रष्टराज्यप्रदायकम्॥१०३॥
सप्तत्रिंशत्सहस्राणि तीर्थानां तीरयोर्द्वयोः। उभयोर्मुनिशार्दूल सर्वसिद्धिप्रदायिनाम्॥१०४॥
न पूर्णतीर्थसदृशं तीर्थमस्ति महाफलम्। निष्फलं तस्य जन्मादि यो न सेवेत तन्नरः॥१०५॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये उभयोस्तीरयोः पूर्णतीर्थमङ्गलासङ्गमगोविन्द-
सिद्धेश्वरादिसप्तत्रिंशत्सहस्रतीर्थवर्णनं नाम द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।।१२२।।

गौतमीमाहात्म्ये त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।।५३।।



इसके पश्चात् काल से यह तीर्थ गोविन्द नाम से विख्यात हो गया। मंगला संगम, पूर्णतीर्थ, इन्द्रतीर्थ, विश्रुत बार्हस्पत्य तीर्थ तथा जहां सिद्धेश्वर देव और गोविन्द देव विद्यमान हैं, वहां स्नान-दानादि जो कुछ सुकृत किया जाता है, वह सब अक्षय हो जाता है। ये स्थान पितृगण को अत्यन्त प्रिय हैं। इस तीर्थ का माहात्म्य जो मनुष्य निरन्तर श्रवण करता है, पाठ करता है अथवा स्मरण करता है, उसे तीर्थफल की प्राप्ति होती है। उसे राज्य की भी प्राप्ति होती है। गौतमी नदी के दोनों ओर ऐसे सैंतीस हजार तीर्थ स्थित हैं। ये सभी सर्वसिद्धिदायक हैं। पूर्णतीर्थ ऐसा महाफल उत्पन्न करने वाला अन्य तीर्थ कोई नहीं है। जो इस तीर्थ की सेवा नहीं करता, उसका जन्म निष्फल ही है।।१००-१०५।।

।।द्वाविंशत्यधिकशततम अध्याय समाप्त।।



अथ त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

रामतीर्थ वर्णन

ब्रह्मोवाच

रामतीर्थमिति ख्यातं भ्रूणहत्याविनाशनम्। तस्य श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते॥१॥
इक्ष्वाकुवंशप्रभवः क्षत्रियो लोकविश्रुतः। बलवान्मतिमाञ्शूरो यथा शक्रः पुरन्दरः॥२॥
पितृपैतामहं राज्यं कुर्वन्नास्ते यथा बलिः। तस्य तिस्रो महिष्यः स्यू राज्ञो दशरथस्य हि॥३॥
कौशल्या च सुमित्रा च कैकेयी च महामते। एताः कुलीनाः सुभगा रूपलक्षणसंयुताः॥४॥
तस्मिन्राजनि राज्ये तु स्थितेऽयोध्यापतौ मुने। वसिष्ठे ब्रह्मविच्छ्रेष्ठे पुरोधसि विशेषतः॥५॥
न च व्याधिर्न दुर्भिक्षं न चावृष्टिर्न चाऽऽधयः।
ब्रह्मक्षत्रविशां नित्यं शूद्राणां च विशेषतः॥६॥

ब्रह्मा कहते हैं—भ्रूणहत्या पापनाशक रामतीर्थ नामक तीर्थ का नाम सुनने मात्र से मानव सर्वपाप रहित हो जाता है। इक्ष्वाकु वंश में क्षत्रिय राजा दशरथ थे, जो विद्वान्, प्रसिद्ध, बली तथा इन्द्र के समान एवं मतिमान थे। उन्होंने बलिराज के समान अपने पिता-पितामह के राज्य का पालन किया था। हे महामति! पत्नियां कौशल्या, सुमित्रा तथा कैकेयी कुलीन, रूपलावण्यमयी, सुभगा थीं। हे मुनिवर! अयोध्यापति दशरथ के शासनकाल में ब्रह्मविदों में श्रेष्ठ महर्षि वसिष्ठ उनके पुरोहित थे। अतः उनके राज्य शासन काल में चारों वर्ण वालों को कभी भी आधि-व्याधि, अकाल, अनावृष्टि प्रभृति का कष्ट कदापि नहीं होता था।।१-६।।

आश्रमाणां तु सर्वेषामानन्दोऽभूत्पृथक्पृथक्। तस्मिञ्शासति राजेन्द्र इक्ष्वाकूणां कुलोद्वहे॥७॥
देवानां दानवानां तु राज्यार्थे विग्रहोऽभवत्। क्वापि तत्र जयं प्रापुर्देवाः क्वापि तथेतरे॥८॥

उन इक्ष्वाकुकुल का यश वर्द्धन करने वाले राजा के राज्यत्व में चारों वर्ण वाले पृथक्-पृथक् आनन्दित रहते थे तथा सभी आश्रम वाले भी (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम) आनन्दित रहते थे। इनके शासन काल में देवता तथा दैत्यों का राज्य सम्बन्धित विवाद छिड़ जाने के कारण उनमें युद्ध होने लगा। युद्ध में कभी देवगण को तो कभी दैत्यों को विजयश्री मिलती।।७-८।।

एवं प्रवर्तमानो तु त्रैलोक्यमतिपीडितम्। अभून्नारद तत्राहमवदं दैत्यदानवान्॥९॥
देवांश्चापि विशेषेण न कृतं तैर्मदीरितम्। पुनश्च सङ्गरस्तेषां बभूव सुमहान्मिथः॥१०॥
विष्णुं गत्वा सुराः प्रोचुस्तथेशानं जगन्मयम्। तावूचतुरुभौ देवानसुरान्दैत्यदानवान्॥११॥

हे नारद! इस युद्ध से त्रैलोक्य पीड़ित हो उठा। तब मैंने दैत्यों तथा दानवों से विशेष रूप से कहा कि युद्ध से निवृत्त हो जाओ, तथापि वे रणदुर्मद उस आदेश को मानने से विरत ही रहे। उलटे उनमें और भी घनघोर युद्ध होने लगा। इस पर देवगण जगद्गुरु शंकर तथा विष्णु के पास गये तथा उनसे सब प्रसंग निवेदित किया। उन देवद्वय ने देवताओं तथा दैत्यों को बुलाया।।९-११।।

तपसा बलिनो यान्तु पुनः कुर्वन्तु संगरम्। तथेत्याहुर्ययुः सर्वे तपसे नियतव्रताः॥१२॥
ययुस्तु राक्षसान्देवाः पुनस्ते मत्सरान्विताः। देवानां दानवानां च सङ्गरोऽभूत्सुदारुणः॥१३॥
न तत्र देवा जेतारो नैव दैत्याश्च दानवाः। संधुगे वर्तमाने तु वागुवाचाशरीरिणी॥१४॥

उनसे इन देवद्वय ने कहा कि पहले तुम लोग तप करके बली बनो, तदनन्तर युद्ध करना। यह सुनकर देवता लोग एवं दैत्य लोग तपःश्चरण करने चले गये। तथापि पारस्परिक ईर्ष्या के कारण दोनों पक्ष पुनः युद्धरत हो गये। इस युद्ध में दोनों पक्ष में कोई एक पक्ष विजयी नहीं हो सका। तभी युद्ध के समय आकाशवाणी सुनाई पड़ी।।१२-१४।।

आकाशवागुवाच

येषां दशरथो राजा ते जेतारो न चेतरे॥१५॥

आकाशवाणी ने कहा—राजा दशरथ जिस पक्ष के साथ रहेंगे, उसे ही विजय मिलेगी।।१५।।

ब्रह्मोवाच

इति श्रुत्वा जयायोभौ जग्मतुर्देवदानवौ। तत्र वायुस्त्वरन्प्रान्तो राजानमवदत्तदा॥१६॥

आकाशवाणी सुनकर देवता तथा दैत्य दोनों पक्ष वाले दशरथ से मिलने चल पड़े। तब वायु तीव्र गति से राजा दशरथ के पास पहुंचकर कहने लगे।।१६।।

वायुरुवाच

आगन्तव्यं त्वया राजन्देवदानवसङ्गरे। यत्र राजा दशरथो जयस्तत्रेति विश्रुतम्॥१७॥
तस्मात्त्वं देवपक्षे स्या भवेयुर्जयिनः सुरा॥१८॥

वायु कहते हैं—"हे राजन्! राजा दशरथ जिस पक्ष की ओर रहेंगे, उसकी ही विजय होगी।" यह आकाशवाणी सुनकर मैं आपके यहां आया हूं। आप इस युद्ध में देवपक्ष के साथ रहिये। तभी देवताओं की विजय होगी।।१७-१८।।

ब्रह्मोवाच

तद्वायुवचनं श्रुत्वा राजा दशरथो नृपः।
आगम्यते मया सत्यं गच्छ वायो यथासुखम्॥१९॥
गते वायौ तदा दैत्या आजग्मुर्भूपतिं प्रति। तेऽप्यूचुर्भगवन्नस्मत्साहाय्यं कर्तुमर्हसि॥२०॥
राजन्दशरथ श्रीमन्विजयस्त्वयि संस्थितः।
तस्मात्त्वं वै दैत्यपतेः साहाय्यं कर्तुमर्हसि॥२१॥

ब्रह्मा कहते हैं—राजा दशरथ ने वायु से कहा—"आप यथासुख प्रस्थान करिये। मैं आपके पक्ष में ही रहूंगा। यह मैंने सत्य वचन कहा है।" जब वायु प्रस्थान कर गये, तब दशरथ के पास दैत्यगण ने आकर कहा—"हे प्रभो! आप हमारी सहायता करिये। श्रीमान्! राजा दशरथ! विजय आपके हाथों में है। आप दैत्यराज की ही सहायता करिये"।।१९-२१।।

ततः प्रोवाच नृपतिर्वायुना प्रार्थितः पुराः।
प्रतिज्ञातं मया तच्च यान्तु दैत्याश्च दानवाः॥२२॥

राजा दशरथ ने यह सुनकर दैत्यों से कहा कि "हे दैत्य-दानवों! आप लोगों के आने के पहले ही मैंने वायु की प्रार्थना पर देवपक्ष की सहायता का वचन दे दिया। अतः अब आप लोग जायें"।।२२।।

स तु राजा तथा चक्रे गत्वा चैव त्रिविष्टपम्।
युद्धं चक्रे तथा दैत्यैर्दानवैः सह राक्षसैः॥२३॥
पश्यत्सु देवसंघेषु नमुचेर्भ्रातरस्तदा। विविधुर्निशितैर्बाणैरथाक्षं नृपतेस्तथा॥२४॥
भिन्नाक्षं तं रथं राजा न जानाति स संभ्रमात्।
राजान्तिके स्थिता सुभ्रूः कैकेय्याऽज्ञायि नारद॥२५॥
न ज्ञापितं तया राज्ञे स्वयमालोक्य सुव्रता।
भग्नमक्षं समालक्ष्य चक्रं हस्तं तदा स्वकम्॥२६॥
अक्षवन्मुनिशार्दूल तदेतन्महदद्भुतम्। रथेन रथिना श्रेष्ठस्तया दत्तकरेण च॥२७॥
जितवान्दैत्यदनुजान् देवः प्राप्य वरान्बहून्। ततो देवैरनुज्ञातस्त्वयोध्यां पुनरभ्यगात्॥२८॥

तदनन्तर राजा ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कार्य किया। उन्होंने स्वर्ग जाकर देवपक्ष की सहायता करते हुये दैत्यों-दानवों तथा राक्षसगण से युद्ध किया। इस युद्ध में दानव नमुचि के भ्राताओं ने राजा दशरथ के रथ की धुरी को अपने तीक्ष्ण बाणों से तोड़ दिया। युद्धरत राजा इस घटना को नहीं जान सके तथापि रथ पर बैठी रानी कैकेयी ने इसे जान लिया। हे नारद! उस सुभ्रु सुव्रता ने यह दुर्घटना राजा से नहीं कहा। उसने अपनी कलाई उस धुरी में लगाकर यह अत्यद्भुद् कर्म किया था। उधर श्रेष्ठतम रथी राजा दशरथ ने उसी रथ पर आरूढ़ स्थिति में दैत्य-दानवों को परास्त कर दिया। इससे प्रसन्न होकर उनको देवगण द्वारा अनेक वरदान भी मिला था। तदनन्तर देवगण की आज्ञा लेकर राजा दशरथ अयोध्या वापस आ गये।।२३-२८।।

स तु मध्ये महाराजे मार्गे वीक्ष्य तदा प्रियाम्।
कैकेय्याः कर्म तद्दृष्ट्वा विस्मयं परमं गतः॥२९॥
ततस्तस्यै वरान्प्रादात्त्रींस्तु नारद सा अपि।
अनुमान्य नृपप्रोक्तं कैकेयी वाक्यमब्रवीत्॥३०॥

तभी मार्ग में राजा ने अपनी पत्नी कैकेयी की ओर देखा, तब उनको कैकेयी के उस परम साहसिक कर्म का जब भान हुआ, वे आश्चर्यान्वित हो गये। इस पर राजा दशरथ ने रानी कैकेयी को तीन वरदान देने का वचन दिया। रानी ने तीनों वर लेना भविष्य पर छोड़ते हुये, वरों को स्वीकार करते राजा से कहा—।।२९-३०।।

कैकेय्युवाच

त्वयि तिष्ठन्तु राजेन्द्र त्वया दत्ता वरा अमी॥३१॥

रानी कैकेयी कहती हैं—हे राजेन्द्र! आप द्वारा प्रदत्त तीनों वर आपके पास सुरक्षित रहें (मैं समयानुकूल उनको ग्रहण कर लूंगी)।।३१।।

ब्रह्मोवाच

विभूषणानि राजेन्द्रो दत्त्वा स प्रियया सह। रथेन विजयी राजा ययौ स्वनगरं सुखी।।३२।।
योषितां किमदेयं हि प्रियाणामुचितागमे। स कदाचिद्दशरथो मृगयाशीलिभिर्वृतः।।३३।।
अटन्नरण्ये शर्वर्यां वारिबन्धमथाकरोत्। सप्तव्यसनहीनेन भवितव्यं तु भूभुजा।।३४।।
इति जानन्नपि च तच्चकार तु विधेर्वशात्।
गर्तं प्रविश्य पानार्थमागतान्निशितैः शरैः।।३५।।
मृगान्हन्ति महाबाहुः शृणु कालविपर्ययम्। गर्तं प्रविष्टे नृपतौ तस्मिन्नेव नगोत्तमे।।३६।।
वृद्धो वैश्रवणो नाम न शृणोति न पश्यति।
तस्य भार्या तथाभूता तावब्रूतां तदा सुतम्।।३७।।

ब्रह्मा कहते हैं—वे विजयी राजा कैकेयी को अनेक अलंकार प्रदान करके उसी रथ पर सुख पूर्वक अयोध्या आये। समुचित समय पर प्रिया स्त्री को देने के लिये अदेय क्या है? एक बार राजा दशरथ मृगया हेतु अनुचरों के साथ वन में भ्रमण कर रहे थे। रात्रि में राजा ने वहां के जलाशय का जल बांध कर रोकवा दिया। यह उक्ति है कि "राजा को सात प्रकार के व्यसनों से दूर रहना चाहिये (उनमें शिकार भी एक है)।" यह जान कर भी राजा ने जलावरोध करा दिया। वहां जल पीने के लिये आगत जन्तुओं का वध करने वह राजा वहीं एक गढ़े में छिप गया था। वहां से अपने तीक्ष्ण बाणों द्वारा वन्य जीवों का वध करने लगा। हे नारद! अब तुम कालविपर्यय का वर्णन सुनो। जिस पर्वत के गढ़े में छिप कर राजा प्राणीवध कर रहा था, उसी पर एक वृद्ध का निवास था, जो अन्ध-बधिर था। उसकी पत्नी भी अन्ध-बधिर थी। उन दम्पति ने तब अपने पुत्र से कहा—।।३२-३७।।

मातापितरावूचतुः

आवां तृषार्तौ रात्रिश्च कृष्णा चापि प्रवर्तते।
वृद्धानां जीवितं कृत्स्नं बालस्त्वमसि पुत्रक।।३८।।
अन्धानां बधिराणां च वृद्धानां धिक्च जीवितम्।
जराजर्जरदेहानां धिग्धिक्पुत्रक जीवितम्।।३९।।
तावत्पुंभिर्जीवितव्यं यावल्लक्ष्मीर्दृढं वपुः। यावदाज्ञाऽप्रतिहता तीर्थादावन्यथा मृतिः।।४०।।

माता-पिता कहते हैं—हे पुत्र! हमें प्यास लगी है। रात्रि भी अब अधिक अंधेरी हो गई है। तुम बालक हो। अतः हम बूढ़ों का जीवन धारण करना कठिन लग रहा है। अन्धे, बहरे वृद्ध का जीवन धिक्कार योग्य है। हे पुत्र! जराजर्जर वृद्ध के जीवन को पुनः-पुनः धिक्कार। जब तक शरीर श्रीयुक्त तथा दृढ़ हो, उसकी आज्ञा का अप्रतिहत पालन होता रहे, तभी तक जीवित रहे। उसके बाद भी यदि जीवन बचे, तब तीर्थादि जाकर प्राण त्याग कर देना ही उचित है।।३८-४०।।

ब्रह्मोवाच

इत्त्येतद्वचनं श्रुत्वा वृद्धयोर्गुरुवत्सलः। पुत्रः प्रोवाच तद्दुःखं गिरा मधुरया हरन्॥४१॥

ब्रह्मा कहते हैं—उस पितृवत्सल सन्तान ने वृद्ध माता-पिता का यह वचन सुनकर दुःखित मन से मधुर शब्दों में उत्तर दिया।।४१।।

पुत्र उवाच

मयि जीवति किं नाम युवयोर्दुःखमीदृशम्। न हरत्यात्मजः पित्रोर्यश्चरित्रैर्मनोरुजम्॥४२॥
तेन किं तनुजेनेह कुलोद्वेगविधायिना॥४३॥

पुत्र कहता है—मेरे जीवित रहते आप इतने दुःखी क्यों हैं? जो पुत्र अपने कर्मों से माता-पिता के मन की पीड़ा का हरण नहीं करता, ऐसे कुल के उद्वेगजनक पुत्र का क्या प्रयोजन?।।४२-४३।।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा पितरौ नत्वा तावाश्वास्य महामनाः।
तरुस्कन्धे समारोप्य वृद्धौ च पितरौ तदा॥४४॥
हस्ते गृहीत्वा कलशं जगाम ऋषिपुत्रकः। स ऋषिर्नतु राजानं जानाति नृपतिर्द्विजम्॥४५॥
उभौ सरभसौ तत्र द्विजा वारि समाविशत्। सत्वरं कलशे न्युब्जे वारि गृह्णन्तमाशुगैः॥४६॥
द्विजं राजा द्विपं मत्वा विव्याध निशितैः शरैः।
वनद्विपोऽपि भूपानामवध्यस्तद्विदन्नपि॥४७॥
विव्याध तं नृपः कुर्यान्न किं किं विधिवञ्चितः।
स विद्धो मर्मदेशे तु दुःखितो वाक्यमब्रवीत्॥४८॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह कहकर उस बालक ने एक कलश उठाया तथा माता-पिता को कंधे पर बैठाकर जल लेने के लिये चल पड़ा। ऋषिकुमार क्रमशः उस जलाशय में उतरा। वहां राजा दशरथ भी छिपे थे। ऋषिपुत्र को मृगया में रत राजा का कोई सन्धान नहीं था तथा न ही राजा को इन द्विज का कोई पता था। दोनों अपने-अपने कार्य में व्यग्रता से तत्पर थे। ऋषि बालक जैसे ही कलस को झुकाते हुये जल भर रहा था, तभी राजा ने उसे हाथी समझकर अपने तीखे बाण से उसे विद्ध कर दिया। वनैला हाथी राजाओं द्वारा अवध्य होता है। यह जानते हुये भी राजा दशरथ ने यह कार्य किया था। विधाता से वंचित व्यक्ति भला क्या नहीं करता! वह बाण ऋषिबालक को मर्म में लगा था। वह व्यथित होकर कहने लगा।।४४-४८।।

द्विज उवाच

केनेदं दुःखदं कर्म कृतं सद्ब्राह्मणस्य मे।
मैत्रो ब्राह्मण इत्युक्तो नापराधोऽस्ति कश्चन॥४९॥

ब्राह्मण बालक कहता है—किसने यह दुःखप्रद कार्य किया? मैं तो सद्ब्राह्मण हूं। ब्राह्मण सभी प्राणीगण का मित्र कहा गया है। मेरा कोई अपराध नहीं था।।४९।।

ब्रह्मोवाच

तदेतद्वचनं श्रुत्वा मुनेरार्तस्य भूपतिः। निश्चेष्टश्च निरुत्साहो शनैस्तं देशमभ्यगात्॥५०॥
तं तु दृष्ट्वा द्विजवरं ज्वलन्तमिव तेजसा। असावप्यभवत्तत्र सशल्य इव मूर्च्छितः॥५१॥
आत्मानमात्मना कृत्वा स्थिरं राजाऽब्रवीदिदम्॥५२॥

ब्रह्मा कहते हैं—राजा उस आर्त्त मुनिबालक का कथन सुनकर स्तब्ध हो गये। वे उसे निश्चेष्ट होता देख कर निरुत्साह पूर्वक धीरे-धीरे उसकी ओर गये। उस द्विजवर को जो तेज से प्रदीप्त था, ऐसी अवस्थां में देख कर राजा भी वैसे ही मूर्छित हो गये, मानों उनको भी बाण लगा हो। क्रमशः उन्होंने बुद्धि द्वारा स्वयं को स्थिर करके कहा—॥५०-५२॥

राजोवाच

को भवान्द्विजशार्दूल किमर्थमिह चाऽऽगतः।
वद पापकृते मह्यं वद मे निष्कृतिं पराम्॥५३॥
ब्रह्महा वर्णिभिः किंतु श्वपचैरपि जातुचित्।
न स्प्रष्टव्यो महाबुद्धे द्रष्टव्यो न कदाचन॥५४॥

राजा कहते हैं—हे द्विजशार्दूल! आप कौन हैं? यहां आपका आगमन कैसे हुआ? इस पापी से वह सब कहिये। आप इस महापाप से छुटकारे का उपाय भी कहिये। हे महाबुद्धि! ब्रह्मघाती का दर्शन-स्पर्श करना तो चाण्डाल के लिये भी मना है। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य की तो बात ही क्या।।५३-५४।।

ब्रह्मोवाच

तद्राजवचनं श्रुत्वा मुनिपुत्रोऽब्रवीद्वचः॥५५॥

ब्रह्मा कहते हैं—राजा का वाक्य सुनकर मुनिपुत्र ने कहा—।।५५।।

मुनिपुत्र उवाच

उत्क्रमिष्यन्ति मे प्राणा अतो वक्ष्यामि किंचन।
स्वच्छन्दवृत्तिताज्ञाने विद्धि पाकं च कर्मणाम्॥५६॥
आत्मार्थं तु न शोचामि वृद्धौ तु पितरौ मम।
तयो शुश्रूषकः कः स्यादन्धयोरेकपुत्रयोः॥५७॥
विना मया महारण्ये कथं तौ जीवयिष्यतः।
ममाभाग्यमहो कीदृक्पितृशुश्रूषणे क्षतिः॥५८॥
जाता मेऽद्य विना प्राणैर्हा विधे किं कृतं त्वया।
तथाऽपि गच्छ तत्र त्वं गृहीतकलशस्त्वरन्॥५९॥
ताभ्यां देह्युदपानं त्वं यथा तौ न मरिष्यतः॥६०॥

ब्राह्मण बालक कहता है—मेरे प्राण तो निकल रहे हैं। अतः कुछ कहता हूं। स्वेच्छाचार, अज्ञता तथा प्रारब्ध कर्म का परिणाम कैसा होता है, इसकी विवेचना करिये। मैं अपने जीवन हेतु शोक नहीं करता। मेरे माता-पिता अन्ध-बधिर-वृद्ध हैं। मैं उनका एकमात्र पुत्र हूं। अब उनकी सेवा-सुश्रूषा कौन करेगा? मेरे बिना इस महाअरण्य में वे किस प्रकार जीवन धारण कर सकेंगे? मेरा कैसा दुर्भाग्य है। मेरे प्राणों के न रहने पर पिता-माता की सेवा में व्याघात हो गया। हे विधाता! आपने यह क्या किया? जो भी हो, आप इस कलश का जल लेकर शीघ्र वहां जायें। उनको जल पिलायें, जिससे जलाभाव में उनकी मृत्यु न हो।।५६-६०।।

ब्रह्मोवाच

इत्येवं ब्रुवतस्तस्य गताः प्राणा महावने। विसृज्य सशरं चापमादाय कलशं नृपः॥६१॥
तत्रागात्स तु वेगेन यत्र वृद्धौ महावने।
वृद्धौ चापि तदा रात्रौ तावन्योग्यं समूचतुः॥६२॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह कहते-कहते उस बालक के प्राण निकल गये। राजा ने धनुष बाण वहीं फेंका तथा वे जल-कलश लेकर वेग पूर्वक वहां गये, जहां उस महावन में वे वृद्ध दम्पति थे। उस रात्रि में वे वृद्ध दम्पति परस्पर यह बात कर रहे थे।।६१-६२।।

वृद्धावूचतुः

उद्विग्नः कुपितो वा स्यादथवा भक्षितः कथम्।
न प्राप्तश्चाऽऽवयोर्यष्टिः किं कुर्मः का गतिर्भवेत्॥६३॥
न कोऽपि तादृशः पुत्रो विद्यते सचराचरे।
यः पित्रोरन्यथा वाक्यं न करोत्यपि निन्दितः॥६४॥
वज्रादपि कठोरं वा जीवितं तमपश्यतोः।
शीघ्रं न यान्ति यत्प्राणास्तदेकायत्तजीवयोः॥६५॥

वृद्ध दम्पति कहते हैं—हमारी बुढ़ापे की लाठी के समान पुत्र अभी तक क्यों नहीं आया? क्या वह डर गया अथवा कुपित हो गया अथवा किसी वन जन्तु ने उसे खा लिया? क्या गति हुई है? ऐसा पुत्र चराचर में नहीं है। वह निन्दा करने पर भी माता-पिता की आज्ञा की अवहेलना नहीं करता। हमारे प्राण तो वज्र से भी कठोर हैं, अन्यथा उसको न देख कर उसी के सहारे जीने वाले हमारे प्राण भी शीघ्र क्यों नहीं निकल जाते?।।६३-६५।।

ब्रह्मोवाच

एवं बहुविधा वाचो वृद्धयोर्वदतोर्वने। तदा दशरथो राजा शनैस्तं देशमभ्यगात्॥६६॥
पादसंचारशब्देन मेनाते सुतमागतम्॥६७॥

ब्रह्मा कहते हैं—वे दम्पति एवंविध विविध वार्त्तालाप कर रहे थे, तभी राजा दशरथ क्रमशः वहां धीरे-धीरे पहुंच गये। उनके पैरों की आहट से वृद्ध दम्पति ने यह समझा कि पुत्र वापस आ गया।।६६-६७।।

वृद्धावूचतुः

कुतो वत्स चिरात्प्राप्तस्त्वं दृष्टिस्त्वं परायणम्।
न ब्रूषे किन्तु रुष्टोऽसि वृद्धयोरन्धयोः सुतः॥६८॥

वृद्ध दम्पति कहते हैं—हे पुत्र! इतना विलम्ब क्यों किया? तुम ही हमारे नेत्र रूपी हो। तुम ही एकमात्र सहारा हो। कुछ बोलते क्यों नहीं? क्या तुम बूढ़े-अन्धे माता-पिता से रुष्ट हो?।।६८।।

ब्रह्मोवाच

सशल्य इव दुःखार्तः शोचन्दुष्कृतमात्मनः। स भीत इव राजेन्द्रस्तावुवाचाथ नारद॥६९॥
उदपानं च कुरुतां तच्छ्रुत्वा नृपभाषितम्।
नायं वक्ता सुतोऽस्माकं को भवांस्तत्पुरा वद॥७०॥
पश्चात्पिबावः पानीयं ततो राजाऽब्रवीच्च तौ॥७१॥

ब्रह्मा कहते हैं—हे नारद! यह सुनकर राजा दशरथ मानों बाणों से आहत हो गये हों, यह अनुभव कर रहे थे। वे अपने दुष्कर्म पर पछताते हुये उन्होंने भयभीत चित्त से उन लोगों से कहा—"आप जल ग्रहण करिये।" राजा का शब्द सुन कर दम्पति ने कहा—"यह बोलने वाला हमारा पुत्र कदापि नहीं है। पहले यह कहो, तुम कौन हो, तब हम जल ग्रहण कर सकेंगे।।६९-७१।।

राजोवाच

तत्र तिष्ठति वां पुत्रो यत्र वारिसमाश्रयः॥७२॥

राजा कहते हैं—आपका पुत्र जलाशय पर है।।७२।।

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वोचतुरार्तौ तौ सत्यं ब्रूहि न चान्यथा। आचचक्षे ततो राजा सर्वमेव यथातथम्॥७३॥
ततस्तु पतितौ वृद्धौ तत्राऽऽवां नय मा स्पृश। ब्रह्मघ्नस्पर्शनं पापं न कदाचिद्विनश्यति॥७४॥
निन्ये स वै श्रवणं वृद्धं सभार्यं नृपसत्तमः। यत्रासौ पतितः पुत्रस्तं स्पृष्ट्वा तौ विलेपतुः॥७५॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर दम्पति ने आर्त्त स्वर में कहा—"सत्य कहो, मिथ्या मत कहना।" तदनन्तर राजा ने उनसे समस्त घटना व्यक्त किया। यह सुनते ही वे दम्पति मूर्च्छित होकर भूपतित हो गये। उन्होंने राजा से कहा—"हमें वहां ले चलो। तथापि हमारा स्पर्श मत करना, क्योंकि ब्रह्महत्यारे को छूने से जो पाप होता है, वह कदापि नष्ट नहीं होता।" तब राजा उन वृद्ध दम्पति को वहां ले गये, जहां उनका प्रिय पुत्र श्रवण शवरूपेण पड़ा था। वे दम्पति उसका स्पर्श करके रोने लगे।।७३-७५।।

वृद्धावूचतुः

यथा पुत्रवियोगेन मृत्युर्नो विहितस्तथा। त्वं चापि पाप पुत्रस्य वियोगान्मृत्युमाप्स्यसि॥७६॥

वृद्ध दम्पति कहते हैं—जिस प्रकार पुत्र वियोग से हमारी मृत्यु हो रही है, हे पापी! तुम भी इसी प्रकार पुत्र वियोग से मृत हो जाओगे।।७७।।

ब्रह्मोवाच

एवं तु जल्पतोर्ब्रह्मन्गताः प्राणास्ततो नृपः। अग्निना योजयामास वृद्धौ च ऋषिपुत्रकम्॥७७॥
ततो जगाम नगरं दुःखितो नृपतिर्मुने। वसिष्ठाय च तत्सर्वं न्यवेदयदशेषतः॥७८॥
नृपाणां सूर्यवंश्यानां वसिष्ठो हि परा गतिः।
वसिष्ठोऽपि द्विजश्रेष्ठैः संमन्त्र्याऽऽह च निष्कृतिम्॥७९॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह कहते ही उन दम्पति के प्राण बहिर्गत् हो गये। राजा ने उन दम्पति का उनके पुत्र के सहित दाह-संस्कार सम्पन्न किया। हे मुनिवर! तब राजा दुःखी मन से नगर में वापस आये तथा उन्होंने महर्षि वसिष्ठ से समस्त वृत्तान्त कह दिया। सूर्यवंश के राजाओं की एकमात्र गति महर्षि वसिष्ठ ही थे। महर्षि ने भी अन्य ब्राह्मणों से मन्त्रणा करके इस पाप निवृत्ति का विधान किया।।७७-७९।।

वसिष्ठ उवाच

गालवं वामदेवं च जाबालिमथ कश्यपम्। एतानन्यान्समाहूय हयमेधाय यत्नतः॥८०॥
यजस्व हयमेधैश्च बहुभिर्बहुदक्षिणैः॥८१॥

ऋषि वसिष्ठ कहते हैं—अश्वमेध यज्ञानुष्ठानार्थ गालव, वामदेव, जाबालि तथा कश्यप को अन्य विशिष्ट ब्राह्मणों सहित बुलायें तथा प्रभूत दक्षिणान्वित एक उत्तम यज्ञ करिये।।८०-८१।।

ब्रह्मोवाच

अकरोद्धयमेधांश्च राजा दशरथो द्विजैः। एतस्मिन्नन्तरे तत्र वागुवाचाशरीरिणी॥८२॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब राजा दशरथ ने ब्राह्मणों के साथ अश्वमेध किया। उस समय वहां आकाशवाणी सुनाई पड़ी।।८२।।

आकाशवाण्युवाच

पूतं शरीरमभवद्राज्ञो दशरथस्य हि। व्यवहार्यश्च भविता भविष्यन्ति तथा सुताः।
ज्येष्ठपुत्रप्रसादेन राजाऽपापो भविष्यति॥८३॥

आकाशवाणी ने कहा—राजा दशरथ का शरीर पवित्र हो गया। अब इनके साथ सामाजिक व्यवहार विहित है। अब इनको पुत्रोत्पत्ति होगी, जिसमें ज्येष्ठपुत्र के पुण्य प्रासाद से राजा पूर्ण निष्पाप होंगे।।८३।।

ब्रह्मोवाच

ततो बहुतिथे काले ऋष्यशृङ्गान्मुनीश्वरात्। देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं सुता आसन्सुरोपमाः॥८४॥
कौशल्यायां तथा रामः सुमित्रायां च लक्ष्मणः। शत्रुघ्नश्चापि कैकेय्यां भरतो मतिमत्तरः॥८५॥
ते सर्वे मतिमन्तश्च प्रिया राज्ञो वशे स्थिताः। तं राजानमृषिः प्राप्य विश्वामित्रः प्रजापतिः॥८६॥
रामं च लक्ष्मणं चापि अयाचत महामते। यज्ञसंरक्षणार्थाय ज्ञाततन्महिमा मुनिः॥८७॥
चिरप्राप्तसुतो वृद्धो राजा नैवेत्यभाषत॥८८॥

ब्रह्मा कहते हैं—तत्पश्चात् दीर्घकाल व्यतीत होने पर ऋष्यशृङ्ग ऋषि की कृपा से तथा देवकार्य सिद्धि हेतु दशरथ को चार देवोपम पुत्र जन्मे। कौशल्या से राम, सुमित्रा से लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न और कैकेयी से भरत ने जन्म लिया। वे सभी राजा के प्रिय तथा वश में रहते थे। एक बार ऋषि विश्वामित्र मुनि ने राम की तथा लक्ष्मण की महिमा से अवगत होकर अपने यज्ञ की रक्षा हेतु आकर दशरथ से प्रार्थना किया कि मेरे साथ यज्ञरक्षार्थ राम-लक्ष्मण को भेजिये। परन्तु राजा ने वृद्धावस्था में पुत्रलाभ किया था, अतः स्नेहाधिक्य के कारण वे असहमत हो गये।।८४-८८।।

राजोवाच

महता दैवयोगेन कथंचिद्वार्धके मुने। जातावानन्दसंदोहदायकौ मम बालकौ॥८९॥
सशरीरमिदं राज्यं दास्ये नैव सुताविमौ॥९०॥

राजा दशरथ कहते हैं—हे मुनिवर! महान् भाग्ययोग से वृद्धावस्था में किसी प्रकार आनन्द-सन्दोहप्रद ये बालक जन्मे हैं। मैं अपना शरीर तथा राज्य दे सकता हूं, किन्तु इन दो पुत्रों को नहीं दे सकूंगा।।८९-९०।।

ब्रह्मोवाच

वसिष्ठेन तदा प्रोक्तो राजा दशरथस्त्विति॥९१॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब वसिष्ठ मुनि ने राजा से कहा—।।९१।।

वसिष्ठ उवाच

रघवः प्रार्थनाभङ्गं न राजन्क्वापि शिक्षिताः॥९२॥

वसिष्ठ कहते हैं—हे राजन्! रघुवंशी राजाओं ने कभी भी प्रार्थना भंग की शिक्षा ग्रहण नहीं किया।।९२।।

ब्रह्मोवाच

रामं च लक्ष्मणं चैव कथञ्चिदवदन्नृपः॥९३॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब राजा दशरथ ने अतीव कष्ट के साथ राम-लक्ष्मण से कहा—।।९३।।

राजोवाच

विश्वामित्रस्य ब्रह्मर्षे कुरुतां (तं) यज्ञरक्षणम्॥९४॥

राजा दशरथ कहते हैं—तुम लोग ब्रह्मर्षि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करो।।९४।।

ब्रह्मोवाच

वदन्निति सुतौ सोष्णं निश्वसन् ग्लपिताधरः।
पुत्रौ समर्पयामास विश्वामित्रस्य शास्त्रकृत्॥९५॥
तथेत्युक्त्वा दशरथं नमस्य च पुनः पुनः। जग्मतू रक्षणार्थाय विश्वामित्रेण तौ मुदा॥९६॥
ततः प्रहृष्टः स मुनिर्मुदा प्रादात्तदोभयोः। माहेश्वरीं महाविद्यां धनुर्विद्यापुरःसराम्॥९७॥

शास्त्रीमास्त्रीं लौकिकीं च रथविद्यां गजोद्भवाम्।
अश्वविद्यां गदाविद्यां मन्त्राह्वानविसर्जने॥९८॥

ब्रह्मा कहते हैं—उस समय शास्त्रज्ञ राजा ने गर्म श्वास छोड़ते हुये कम्पित अधरों से यह कह कर दोनों पुत्रों को विश्वामित्र के हाथों सौंप दिया। इससे प्रसन्न होकर मुनि विश्वामित्र ने दोनों बालकों को धनुर्विद्या के साथ माहेश्वरी महाविद्या, आह्वान-विसर्जन मन्त्रमयी शस्त्रविद्या, अस्त्रविद्या, लौकिकी विद्या, रथ-विद्या, हस्ति-अश्व विद्या एवं गदाविद्या प्रदान किया।।९५-९८।।

सर्वविद्यामथावाप्य उभौ तौ रामलक्ष्मणौ। वनौकसां हितार्थाय जघ्नतुस्ताटकां वने॥९९॥

तब राम-लक्ष्मण ने इन सब विद्या को गुरु विश्वामित्र से पाकर यज्ञरक्षार्थ तथा वनवासी मुनिगण के हितार्थ वन में ताड़का का वध कर दिया।।९९।।

अहल्यां शापनिर्मुक्तां पादस्पर्शाच्च चक्रतुः।
यज्ञविध्वंसनायातांञ्जघ्नतुस्तत्र राक्षसान्॥१००॥

कृतविद्यौ धनुष्पाणी चक्रतुर्यज्ञरक्षणम्। ततो महामखे वृत्ते विश्वामित्रो मुनीश्वरः॥१०१॥

तत्पश्चात् उन्होंने मार्ग में पाषाणरूपधारी अहल्या को चरण स्पर्श मात्र से शापमुक्त कर दिया तथा यज्ञस्थल में जाकर विद्यायुक्त दोनों भाईयों ने यज्ञ में विघ्न करने आये राक्षसों का वध करके विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा किया।।१००-१०१।।

पुत्राभ्यां सहितो राज्ञो जनकं द्रष्टुमभ्यगात्। चित्रामदर्शयत्तत्र राजमध्ये नृपात्मजः॥१०२॥

रामः सौमित्रिसहितो धनुर्विद्यां गुरोर्मताम्।
तत्प्रीतो जनकः प्रादात्सीतां लक्ष्मीमयोनिजाम्॥१०३॥

तथैव लक्ष्मणस्यापि भरतस्यानुजस्य च। शत्रुघ्नभरतादीनां वसिष्ठादिमते स्थितः॥१०४॥
राजा दशरथः श्रीमान्विवाहमकरोन्मुने। ततो बहुतिथे काले राज्यं तस्य प्रयच्छति॥१०५॥
नृपतौ सर्वलोकानामनुमत्या गुरोरपि। मन्थरात्मकदुर्दैवप्रेरिता मत्सराकुला॥१०६॥

उन धनुर्धर भ्रातागण ने यज्ञ की रक्षा किया। जब सविधि यज्ञ सम्पन्न हो गया, तब वे महामुनि विश्वामित्र राम-लक्ष्मण के साथ राजा जनक के दर्शनार्थ मिथिला गये। वहां राजमण्डली में राम तथा लक्ष्मण ने विचित्र धनुर्विद्या का प्रदर्शन किया। इससे राजा जनक ने प्रसन्न होकर राम को साक्षात् लक्ष्मीरूपा अयोनिजा सीता नामक कन्या प्रदान किया। राजा दशरथ ने वसिष्ठ आदि के मतानुरूप लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न का भी वहीं विवाह कर दिया। तत्पश्चात् दीर्घकालोपरान्त राजा ने समस्त प्रजा एवं गुरु के मतानुरूप राम को राज्य देने का निश्चय किया, तथापि दैव प्रेरणा से उस समय कैकेयी ईर्ष्या ग्रस्त हो गई।।१०२-१०६।।

कैकेयी विघ्नमातस्थे वनप्रव्राजनं तथा।
भरतस्य च तद्राज्यं राजा नैव च दत्तवान्॥१०७॥
पितरं सत्यवाक्यं तं कुर्वन्रामो महावनम्।
विवेश सीतया सार्धं तथा सौमित्रिणा सह॥१०८॥

सतां च मानसं शुद्धं स विवेश स्वकैर्गुणः।
तस्मिन्विनिर्गते रामे वनवासाय दीक्षिते॥१०९॥
समं लक्ष्मणसीताभ्यां राज्यतृष्णाविवर्जिते।
तं रामं चापि सोमित्रिं सीतां च गुणशालिनीम्॥११०॥
दुःखेन महताऽऽविष्टो ब्रह्मशापं च संस्मरन्।
तदा दशरथो राजा प्राणांस्तत्याज दुःखितः॥१११॥
कृतकर्मविपाकेन राजा नीतो यमानुगैः। तस्मै राज्ञे महाप्राज्ञ यावत्स्थावरजङ्गमे॥११२॥
यमसद्मन्यनेकानि तामिस्रादीनि नारद। नरकाण्यथ घोराणि भीषणानि बहूनि च॥११३॥
तत्र क्षिप्तस्तदा राजा नरकेषु पृथक्पृथक्।
पच्यते छिद्यते राजा पिष्यते चूर्ण्यते तथा॥११४॥
शोष्यते दश्यते भूयो दह्यते च निमज्ज्यते। एवमादिषु घोरेषु नरकेषू च पच्यते॥११५॥

तब कैकेयी ने इस कार्य में अवरोध उत्पन्न करते हुये राजा से वर मांगा कि राम वन जायें तथा राज्य भरत को मिले। तथापि राजा ने ऐसा नहीं किया। पितृभक्त राम इससे सहमत नहीं थे। उन्होंने पिता के प्रण को सत्य करने हेतु सीता तथा सौमित्र लक्ष्मण के साथ वनगमन किया। एवंविध श्रीराम अपने उन्नत गुणों के कारण सज्जनों के पवित्र मन में बस गये। राज्यलोभ से पूर्णतः रहित रामचन्द्र वनवास हेतु दृढ़ चित्त होकर सीता-लक्ष्मण के साथ निकल पड़े। उधर राजा दशरथ महादुःखी होकर राम-लक्ष्मण तथा गुणमयी सीता एवं ब्राह्मण के शाप के विषय में चिन्तन करते-करते दुःख के आवेग के कारण स्वर्गवासी हो गये। उनको उनके कृत कर्म के विपाक के कारण यमदूत यमलोक ले गये। वहां घोराकृति, भयप्रद, तामिस्त्र आदि अनेक नरक हैं। हे नारद! राजा को उनमें पृथक्-पृथक् क्रमशः छोड़ा गया था। उनको अग्निदग्ध किया गया, यन्त्रों में पीस कर चूर्ण किया गया। शोषित किया गया, काट कर पुनः जलाया गया। तदनन्तर जलाप्लुत किया गया। इस प्रकार अनेक घोरतर नरकों में उनको यंत्रणाग्रस्त किया गया।।१०७-११५।।

रामोऽपि गच्छन्नध्वानं चित्रकूटमथागतम्।
तत्रैव त्रीणि वर्षाणि व्यतीतानि महामते॥११६॥
पुनः स दक्षिणामाशामाक्रमद्दण्डकं वनम्।
विख्यातं त्रिशु लोकेषु देशानां तद्धि पुण्यदम्॥११७॥
प्राविशत्तन्महारण्यं भीषणं दैत्यसेवितम्।
तद्भयादृषिभिस्त्यक्तं हत्वा दैत्यांस्तु राक्षसान्॥११८॥
विचरन्दण्डकारण्ये ऋषिसेव्यमथाकरोत्। तत्रेदं वृत्तमाख्यास्ये शृणु नारद यत्नतः॥११९॥
तावच्छनैस्त्वगाद्रामो यावद्योजनपञ्चकम्।
गौतमीं समनुप्राप्तो राजाऽपि नरके स्थितः॥१२०॥

यमः स्वकिंकरानाह रामो दशरथात्मजः।
गौतमीमभितो याति पितरं तस्य धीमतः॥१२१॥
आकर्षन्त्वथ राजानं नरकान्नात्र संशयः। उत्तीर्य गौतमीं यास्रति यावद्योजनपञ्चकम्॥१२२॥
रामस्तावत्तस्य पिता नरके नैव पच्यताम्। यदेतन्मद्वचः पुण्यं न कुर्युर्यदि दूतकाः॥१२३॥
ततश्च नरके घोरे यूयं सर्वे निमज्जथ।
या काऽप्युक्ता परा शक्तिः शिवस्य समवायिनी॥१२४॥
तामेव गौतमीं सन्तो वदन्त्यम्भःस्वरूपिणीम्।
हरिब्रह्ममहेशानां मान्या वन्द्या च सैव यत्॥१२५॥
निस्तीर्यते न केनापि तदतिक्रमजं त्वघम्।
पापिनोऽप्यात्मजः कश्चिद्यश्च (स्य) गङ्गामनुस्मरेत्॥१२६॥
सोऽनेकदुर्गनिरयान्निर्गतो मुक्ततां व्रजेत्। किं पुनस्तादृशः पुत्रो गौतमीनिकटे स्थितः॥१२७॥
यस्यासौ नरके पक्तुं न कैरपि हि शक्यते।
दक्षिणाशापतेर्वाक्यं निशम्य यमकिंकराः॥१२८॥
नरके पच्यमानं तमयोध्याधिपतिं नृपम्। उत्तार्य घोरनरकाद्वचनं चेदमब्रुवन्॥१२९॥

इधर रामचन्द्र भी चलते-चलते चित्रकूट पहुंचे। हे महामति! वहां उन्होंने तीन वर्ष व्यतीत किया। तदनन्तर वे लोकप्रसिद्ध दण्डक वन पहुंचे। वह त्रैलोक्य प्रसिद्ध तथा अत्यधिक पुण्यप्रद था। उस दैत्यराक्षस समन्वित महावन में वे उन दुरात्मागण का वध करते विचरते थे। वह वन तब दैत्यों तथा राक्षसों के भय से ऋषियों ने छोड़ रखा था। वह पुनः अब उन ऋषिगण के निवास योग्य हो गया। हे नारद! वहां की एक घटना यत्नतः श्रवण करो। इसी प्रकार राम इसी तरह पांच योजन पार करते हुये एक बार गौतमी नदी तक पहुंचे। इधर राजा दशरथ भी नरक में पड़े थे। तब यम ने अपने गणों से कहा कि "राजा दशरथ के पुत्र राम गौतमी नदी की ओर जा रहे हैं। जब तक वे पांच योजन पार करके गौतमी तक नहीं पहुंचते, उससे पहले ही तुम लोग धीमान् दशरथ को नरक से निकालो। अब उनको नरक में रखना उचित नहीं है। इसमें तुम लोग अब कोई दुविधा मत करना। मेरा जो यह पुण्य आदेश है, यदि इसका पालन नहीं करोगे, तब तुम लोग भी नरक में जा पड़ोगे। शिवस्वरूप ईश्वर की जो एक नित्या पराशक्ति हैं, साधुगण उनको ही जलाकार में परिणता गौतमीरूपा कहते हैं। यह नदी हरि-हर तथा ब्रह्मा द्वारा भी वन्दनीया एवं मान्या है। अतः इनकी अवज्ञाजनित दोषराशि से कोई बच नहीं सकेगा। किसी कितने पापी मानव का चाहे जैसा पुत्र क्यों न हो, यदि वह गौतमीगंगा का स्मरण करे, तब वह अथवा उसके पिता चाहे कैसे दुर्गम नरक में क्यों न पड़े हों, वहां से छूट जाते हैं। तब जिनका राम के समान पुत्र गौतमी जा रहे हों, उस पिता को नरक में रोके रहने की शक्ति किसी में नहीं है। दक्षिण दिक् के अधिपति प्रभु यम का आदेश सुनकर यमदूतों ने नरकपतित अयोध्यापति को घोर नरकों से बहिर्गत् करके कहा—॥११६-१२९॥

यमकिंकरा ऊचुः

धन्योऽसि नृपशार्दूल यस्य पुत्रः स तादृशः।
इह चामुत्र विश्रान्तिः सुपुत्रः केन लभ्यते॥१३०॥

यमदूतगण कहते हैं—हे राजन्! जिसके राम ऐसे पुत्र हैं, वे आप धन्य हैं। इहलोक तथा परलोक दोनों में विश्रान्ति साधन करने वाला सुपुत्र किसे मिलता है?।।१३०।।

ब्रह्मोवाच

स विश्रान्तः शनै राजा किंकरान्वाक्यमब्रवीत्॥१३१॥

ब्रह्मा कहते हैं—शनैः-शनैः विश्रान्त होकर राजा ने यमदूतगण से कहा—।।१३१।।

राजोवाच

नरकेष्वथ घोरेषु पच्यमानः पुनः पुनः। कथं त्वाकर्षितः शीघ्रं तन्मे वक्तुमिहार्हथ॥१३२॥

राजा कहते हैं—मैं बारम्बार नरक यातना सहने को विवश हो रहा था। तुम लोगों के द्वारा मैं कैसे मुक्त किया गया? शीघ्र कहो।।१३२।।

ब्रह्मोवाच

तत्र कश्चिच्छान्तमना राजानमिदमब्रवीत्॥१३३॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब किसी शान्त मन वाले यमदूत ने राजा से कहा—।।१३३।।

यमदूत उवाच

वेदशास्त्रपुराणादावेतद्गोप्यं प्रयत्नतः। प्रकाश्यते तदपि ते सामर्थ्यं पुत्रतीर्थयोः॥१३४॥
रामस्तव सुतः श्रीमान्गौतमीतीरमागतः। तस्मात्त्वं नरकाद्घोरादाकृष्टोऽसि नरोत्तम॥१३५॥
यदि त्वां तत्र गौतम्यां स्मरेद्रामः सलक्ष्मणः।
स्नानं कृत्वाऽथ पिण्डादि ते दद्यात्स नृपोत्तम।
ततस्त्वंतं सर्वपापेभ्यो मुक्तो यासि त्रिविष्टपम्॥१३६॥

यमदूत कहता है—यद्यपि वेद-पुराण तथा शास्त्रों में यह तत्व गुप्त है, तथापि मैं आपके पुत्र तथा तीर्थ का सामर्थ्य व्यक्त करता हूं। हे नरोत्तम! आपके पुत्र श्रीराम गौमतीतट पर आये हैं। इसी कारण आपको घोर नरक से छुटकारा मिल गया। हे नरोत्तम! यदि राम-लक्ष्मण के साथ इस गौमती में आपका स्मरण करके स्नान एवं पिण्ड आदि प्रदान करेंगे, तब आप सर्वपाप रहित होकर स्वर्ग गमन करेंगे।।१३४-१३६।।

राजोवाच

तत्र गत्वा भवद्वाक्यमाख्यास्ये स्वसुतौ प्रति। भवन्त एव शरणमनुज्ञां दातुमर्हथ॥१३७॥

राजा कहते हैं—मैं आपका शरणागत हूं। आप आज्ञा दीजिये। मैं वहां जाकर आपका वाक्य अपने पुत्रद्वय से कह सकूं।।१३७।।

ब्रह्मोवाच

तद्राजवचनं श्रुत्वा कृपया यमकिंकराः। आज्ञां च प्रददुस्तस्मै राजा प्रागात्सुतौ प्रति॥१३८॥
भीषणं यातनादेहमापन्नो निःश्वसन्मुहुः। निरीक्ष्य स्वयं लज्जमानः कृतं कर्म च संस्मरन्॥१३९॥
स्वेच्छया विहरन्गङ्गामाससाद च राघवः।
गौतम्यास्तटमाश्रित्य रामो लक्ष्मण एव च॥१४०॥
सीतया सह वैदेह्या सस्नौ चैव यथाविधि। नैव तत्राभवद्भोज्यं भक्ष्यं वा गौतमीतटे॥१४१॥
तद्दिने तत्र वसतां गौतमीतीरवासिनाम्। तद्दृष्ट्वा दुःखितो भ्राता लक्ष्मणो राममब्रवीत्॥१४२॥

ब्रह्मा कहते हैं—राजा का वाक्य सुनकर यमदूतगणों ने उनको जाने की अनुमति उन पर कृपा करके प्रदान कर दिया। राजा का वह यातना देह भयानक था। वह दीर्घ निःश्वास ले रहा था। वह देह पूर्ववत् कर्मों को याद करके तथा अपनी इस दशा से लज्जित था। अन्ततः उस यातना देह के साथ राजा की जीवात्मा ने वहां से प्रस्थान किया। इधर राम, लक्ष्मण, वैदेही सीता सहित घूमते-फिरते गौमतीगंगा के पास आये। वहां उन सब ने सविधि स्नान किया। दैवात् उस दिन गौमती तट निवासियों के पास तनिक भी आहार नहीं था। यह देखकर दुःखी लक्ष्मण ने भाई राम से कहा—॥१३८-१४२॥

लक्ष्मण उवाच

पुत्रौ दशरथस्याऽऽवां तवापि बलमीदृशम्।
नास्ति भोज्यमथास्माकं गङ्गातीरनिवासिनाम्॥१४३॥

लक्ष्मण कहते हैं—हम उभय ही राजा दशरथ की सन्तान हैं। आप ऐसे बली हैं। तथापि इन गौमतीगंगा के तट पर रहने वालों के पास खाद्य द्रव्य नहीं है। हमारे रहते ऐसा हो रहा है।॥१४३॥

राम उवाच

भ्रातर्यद्विहितं कर्म नैव तच्चान्यथा भवेत्। पृथिव्यामन्नपूर्णायां वयमन्नाभिलाषिणः॥१४४॥
सौमित्रे नूनमस्माभिर्न ब्राह्मणमुखे हुतम्।
अवज्ञया महीदेवांस्तर्पयन्त्यर्चयन्ति न॥१४५॥
ते ये लक्ष्मण जायन्ते सर्वदैव बुभुक्षिताः।
स्नात्वा देवानथाभ्यर्च्य होतव्यश्च हुताशनः।
ततः स्वसमये देवो विधास्यत्यशनं तु नौ॥१४६॥

राम कहते हैं—हे भाई! जो कृत कर्म हैं, वे विधि के विधान के अन्तर्गत् हैं। वे अन्यथा नहीं होते। इस शस्यपूर्ण पृथिवी पर हम अन्नार्थ चिन्तित हैं। निश्चित रूप से हमने ब्राह्मणों के मुख में अन्न नहीं दिया है। जो ब्राह्मणों की अवज्ञा करके उनकी अर्चना नहीं करते, उनको तृप्त नहीं करते, वे सर्वदा भूखे रहते हैं। स्नानोपरान्त देवार्चन तथा अग्नि में होम अवश्य करे। इससे योग्य काल में पितृगण देवगण हमारे लिये अवश्य खाद्य विधान करेंगे।॥१४४-१४६॥

ब्रह्मोवाच

भ्रात्रोः संजल्पतोरेवं पश्यतोः कर्मणो गतिम्। शनैर्दशरथो राजा तं देशमुपजग्मिवान्॥१४७॥
तं दृष्ट्वा लक्ष्मणः शीघ्रं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत्।
धनुराकृष्य कोपेन रक्षस्त्वं दानवोऽथवा॥१४८॥
आसन्नं च पुनर्दृष्ट्वा याहि यात्य (ह्य) त्र पुण्यभाक्।
रामो दाशरथी राजा धर्मभाक्पश्य पर्वते॥१४९॥
गुरुभक्तः सत्यसंधो देवब्राह्मणसेवकः। त्रैलोक्यरक्षादक्षोऽसौ वर्तते यत्र राघवः॥१५०॥
न तत्र त्वादृशामस्ति प्रवेशः पापकर्मणाम्। यदि प्रविशसे पाप ततो वधमवाप्स्यसि॥१५१॥

ब्रह्मा कहते हैं—जब ये दोनों भाई आपस में वार्त्ता तथा कर्म की गहन गति का वर्णन कर रहे थे, तभी राजा दशरथ वहां धीरे से आ गये। लक्ष्मण ने उनकी विकट आकृति देख कर क्रोध से धनुष खींचा और कहा—"रुको! तुम राक्षस अथवा दानव जो कोई हो, रुक जाओ।" तथापि दशरथ आगे बढ़ते ही रहे। तब लक्ष्मण ने उनको भयंकर रूप में निकट आते देख कर कहा—"देखो, यहां धर्मात्मा पुण्यकर्त्ता राजा राम हैं। यहां गुरुभक्त, सत्य प्रतिज्ञा वाले, देवता एवं ब्राह्मणों की सेवा करने वाले, त्रैलोक्य रक्षा तत्पर राम का निवास है। यहां तुम्हारे समान पापी का प्रवेश वर्जित है। प्रवेश करते ही मैं वध कर दूंगा।।१४७-१५१।।

तत्पुत्रवचनं श्रुत्वा शनैराहूय वाचया।
उवाचाधोमुखो भूत्वा स्नुषां पुत्रौ कृताञ्जलिः।
मुहुरन्तर्विनिध्यायन्गातिं दुष्कृतकर्मणः॥१५२॥

अपने पुत्र का यह वचन सुनकर राजा मन ही मन अपने दुष्कर्म पर शोक करते हुये दोनों पुत्रों तथा पुत्रवधू से मन्द स्वर में अधोमुख होकर कहने लगे।।१५२।।

राजोवाच

अहं दशरथो राजा पुत्रौ मे शृणुतं वचः। तिसृभिर्ब्रह्महत्याभिर्वृतोऽहं दुःखभागतः।
छिन्नं पश्यत मे देहं नरकेषु च पातितम्॥१५३॥

राजा दशरथ कहते हैं—मैं राजा दशरथ हूं। हे पुत्रों! मेरा वचन सुनो। मैं तीन ब्रह्महत्याओं के पाप से घिर कर अतीव दुःखी हूं। मेरी देह छिन्न है। मैं नरक में पड़ा हूं।।१५३।।

ब्रह्मोवाच

ततः कृताञ्जली रामः सीतया लक्ष्मणेन च।
भूमौ प्रणेमुस्ते सर्वे वचनं चैतदब्रुवन्॥१५४॥

ब्रह्मा कहते हैं—तदनन्तर सीता, राम एवं लक्ष्मण ने उनको हाथ जोड़ा तथा भूमि पर लेट कर साष्टांग प्रणाम किया! तदनन्तर वे लोग कहने लगे।।१५४।।

सीतारामलक्ष्मणा ऊचुः

कस्येदं कर्मणस्तात फलं नृपतिसत्तम॥१५५॥

सीता-राम-लक्ष्मण कहते हैं—हे नृपश्रेष्ठ! यह आपके किस कर्म का फल है?।।१५५।।

ब्रह्मोवाच

स च प्राह यथावृत्तं ब्रह्महत्यात्रयं तथा॥१५६॥

ब्रह्मा ने कहा—तब महान् दुःख से आवृत राजा ने कहा कि यह तीन ब्रह्महत्या का दुष्परिणाम है।।१५६।।

राजोवाच

निष्कृतिर्ब्रह्महन्तॄणां पुत्रौ क्वापि न विद्यते॥१५७॥

राजा कहते हैं—हे पुत्रगण! ब्रह्महत्यारे के पाप का छुटकारा कहीं नहीं है।।१५७।।

ब्रह्मोवाच

ततो दुःखेन महताऽऽवृताः सर्वे भुवं गताः। राजानं वनवासं च मातरं पितरं तथा॥१५८॥
दुःखागमं कर्मगतिं नरके पातनं तथा। एवमाद्यथ संस्मृत्य मुमोह नृपते सुतः।
विसंज्ञं नृपतिं दृष्ट्वा सीता वाक्यमथाब्रवीत्॥१५९॥

यह सुनकर महान् दुःखावेग से ये दोनों सन्तान तथा पुत्रवधू मूर्च्छित होकर भूपतित हो गये। तब राम भी राजा की स्थिति, अपना वनवास, माता-पिता के महत् दुःख, कर्म की भीषण गति तथा पिता का नरक गमन स्मरण करते संज्ञारहित हो गये। उनकी हालत देख कर सीता कहने लगीं।।१५८-१५९।।

सीतोवाच

न शोचन्ति महात्मानस्त्वादृशा व्यसनागमे।
चिन्तयन्ति प्रतीकारं दैत्यमप्यथ मानुषम्॥१६०॥
शोचद्भिर्युगसाहस्रं विपत्तिर्नैव तीर्यते।
व्यामोहमाप्नुवन्तीह न कदाचिद्विचक्षणाः॥१६१॥
किमनेनात्र दुःखेन निष्फलेन जनेश्वर। देहि हत्यां प्रथमतो या जाता ह्यतिभीषणा॥१६२॥
पितृभक्तः पुण्यशीलो वेदवेदाङ्गपारगः। अनागा यो हतो विप्रस्तत्पापस्यात्र निष्कृतिम्॥१६३॥
आचरामि यथाशास्त्रं मा शोकं कुरुतं युवाम्।
द्वितीयां लक्ष्मणो हत्यां गृह्णातु त्वपरां भवान्॥१६४॥

सीता कहती हैं—आप ऐसे महात्मागण आपत्तिजनित दुःख शोक नहीं करते। विपत्ति दैवकृत हो अथवा मनुष्य द्वारा कृत हो, उसका प्रतिकार सोचना चाहिये। सहस्र युगों तक शोक करने से भी विपत्ति से छुटकारा नहीं होता। विचक्षण लोग कभी इससे मोहग्रस्त नहीं होते। हे राजन्! इस समय निष्फल दुःख

निप्रयोज्य है। आप ब्रह्महत्या पातक मुझे दे दीजिये। पितृभक्त, पुण्यात्मा, वेदवेदांग ज्ञाता जो ब्राह्मण बिना अपराध मारा गया, वह पाप मुझे दीजिये। द्वितीय ब्रह्महत्या को लक्ष्मण ग्रहण करे। तीसरी ब्रह्महत्या आप ले लीजिये।।१६०-१६४।।

ब्रह्मोवाच

एतद्धर्मयुतं वाक्यं सीतया भाषितं दृढम्।
तथेति चाऽऽहतुरुभौ ततो दशरथोऽब्रवीत्॥१६५॥

ब्रह्मा कहते हैं—सीता कथित इस धर्मसमन्वित दृढ़ वचन को सुनकर राम-लक्ष्मण ने कहा—"ऐसा ही हो।" यह सुनकर राजा दशरथ कहने लगे।।१६५।।

दशरथ उवाच

त्वं हि ब्रह्मविदः कन्या जनकस्य त्वयोनिजा। भार्या रामस्य किं चित्रं यद्युक्तमनुभाषसे॥१६६॥
न कोऽपि भवतां किंतु श्रमः स्वल्पोऽपि विद्यते।
गौतम्यां स्नानदानेन पिण्डनिर्वपणेन च॥१६७॥
तिसृभिर्ब्रह्महत्याभिर्मुक्तो यामि त्रिविष्टपम्।
त्वया जनकसंभूते स्वकुलोचितमीरितम्॥१६८॥
प्रापयन्ति परं पारं भवाब्धेः कुलयोषितः।
गोदावर्याः प्रसादेन किं नामास्त्यत्र दुर्लभम्॥१६९॥

राजा दशरथ कहते हैं—तुम ब्रह्मज्ञ जनक की कन्या हो, विशेषतः अयोनिसंभवा हो, ऊपर से राम की पत्नी हो। अतः तुमने जो यह युक्तिमय बात कहा, इसमें क्या आश्चर्य? लेकिन इस कार्य में तुम लोगों को तनिक भी श्रम नहीं करना है। गौतमी में स्नान-दान तथा पिण्ड प्रदान करने से ही मैं ब्रह्महत्या पातक से मुक्त होकर स्वर्ग चला जाऊंगा। हे जनकनन्दिनी! तुमने अपने कुल के अनुरूप ही सब कहा है। कुल नारीगण संसाररूपी नदी को पार करा देती हैं। गौमती की कृपा से इस संसार में क्या बाकी रह कर अप्राप्त रहता है?।।१६६-१६९।।

ब्रह्मोवाच

तथेति क्रियमाणे तु पिण्डदानाय शत्रुहा।
नैवापश्यद्भक्ष्यभोज्यं ततो लक्ष्मणमब्रवीत्॥१७०॥
लक्ष्मणः प्राह विनयादिङ्गुद्याश्च फलानि च।
सन्ति तेषां च पिण्याकमानीतं तत्क्षणादिव॥१७१॥
पिण्याकेनाथ गङ्गायां पिण्डं दातुं तथा पितुः।
मनः कुर्वंस्ततो रामो मन्दोऽभूद्दुःखितस्तदा॥१७२॥

दैवी वागभवत्तत्र दुःखं त्यज नृपात्मज।
राज्यभ्रष्टो वनं प्राप्तं किं वै निष्किञ्चनो भवान्॥१७३॥
अशठो धर्मनिरतो न शोचितुमिहार्हसि।
वित्तशाठ्येन यो धर्मं करोति स तु पातकी॥१७४॥
श्रूयते सर्वशास्त्रेषु यद्राम शृणु यत्नतः। यदन्नः पुरुषो राजंस्तदन्नास्तस्य देवताः॥१७५॥

ब्रह्मा कहते हैं—शत्रुहन्ता राम पिता के आदेशानुरूप जब पिण्ड देने हेतु उद्यत हो गये, तब राम को पिण्ड प्रदानार्थ कोई भी भक्ष्य-भोज्य पदार्थ नहीं मिला, उन्होंने तब लक्ष्मण से कहा। लक्ष्मण ने सविनय कहा—"इंगूदी के फल हैं।" उन्होंने तत्काल इंगुदी को पीस कर आटा ला दिया। राम ने जब इंगुदी चूर्ण से पिता को पिण्ड देना चाहा, तब वे कुछ दुःखी से हो गये। तभी आकाशवाणी श्रुतिगोचर हो गई—"हे राजपुत्र! शोक त्यागो। अभी तुम राज्य रहित एवं द्रव्य से भी रहित हो। तुम धर्मात्मा एवं उदार हो। शोक मत करो। जो धनी होकर भी कंजूसी से धर्मकृत्य करता है, वह पातकी है। हे राम! धर्मशास्त्र का वचन एकाग्रता से श्रवण करो। हे राजन्! जैसा अन्न पुरुष को मिलता है अथवा भक्षण करता है, उस व्यक्ति के देवगण भी वही चाहते हैं तथा वे उसी के पात्र होते हैं।।१७०-१७५।।

पिण्डे निपतिते भूमौ नापश्यत्पितरं तदा। शवं च पतितं यत्र शवतीर्थमनुत्तमम्॥१७६॥
महापातकसंघातविघातकृदनुस्मृतिः। तत्राऽऽगच्छँल्लोकपाला रुद्रादित्यास्तथाऽश्विनौ॥१७७॥
स्वं स्वं विमानमारूढास्तेषां मध्येऽतिदीप्तिमान्।
विमानवरमारूढः स्तूयमानश्च किन्नरैः॥१७८॥
आदित्यसदृशाकारस्तेषां मध्ये बभौ पिता।
तमदृष्ट्वा स्वपितरं देवान्दृष्ट्वा विमानिनः॥१७९॥
कृताञ्जलिपुटो रामः पिता मे क्वेत्यभाषत।
इति (ततो) दिव्याऽभवद्वाणी रामं संबोध्य सीतया॥१८०॥
तिसृभिर्ब्रह्महत्याभिर्मुक्तो दशरथो नृपः।
वृतं पश्य सुरैस्तात देवा अप्यूचिरे च तम्॥१८१॥

तदनन्तर जैसे ही राम ने श्राद्ध किया तथा पिण्ड भूतल पर छोड़ा, वे पुनः पिता को नहीं देख सके। परन्तु देखते हैं कि वहां पिता का शव ही है। वह स्थान अब शवतीर्थ हो गया। इसके स्मरण से ही महापातक तत्काल नष्ट हो जाते हैं। तत्पश्चात् वहां लोकपाल, रुद्र, आदित्यगण, दोनों अश्विनीकुमार पहुंचे। रामचन्द्र देखते हैं कि उनके पिता अतीव दीप्तिमान देह से युक्त होकर देवताओं के विमानों के बीच एक विमान पर आसीन हैं। किन्नरगण उनकी स्तुति कर रहे हैं। देवगण के मध्य आदित्य के समान स्थित अपने पिता को राम पहचान नहीं सके। उन्होंने हाथ जोड़कर विमान पर बैठे देवगण से प्रश्न किया कि मेरे पिता कहां हैं? तभी सीता-राम को सम्बोधन करके आकाशवाणी ने कहा—"हे तात! राजा दशरथ तीनों ब्रह्महत्या से अब मुक्त हैं। इनको देवों से घिरा देखो।" तब उन राम से देवता कहने लगे।।१७६-१८१।।

देवा ऊचुः

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि राम स्वर्गं गतः पिता।
नानानिरयसङ्घातात्पूर्वजानुद्धरेत्तु यः॥१८२॥
स धन्योऽलंकृतं तेन कृतिना भुवनत्रयम्। एनं पश्य महाबाहो मुक्तपापं रविप्रभम्॥१८३॥
सर्वसंपत्तियुक्तोऽपि पापी दग्धद्रुमोपम। निष्किंचनोऽपि सुकृतीं दृश्यते चन्द्रमौलिवत्॥१८४॥

देवता कहते हैं—हे राम! तुम कृतार्थ हो गये। तुम धन्य हो। तुम्हारे पिता स्वर्ग गये। जो मानव पूर्वजों का उद्धार नरक से करता है, वह धन्य है। ऐसे कृती से तीनों लोक अलंकृत हो जाते हैं। इन सूर्य के समान पुरुष को देखो। पूर्व में यह सर्व सम्पदा युक्त होकर भी पापात्मा तथा दग्ध वृक्ष जैसे थे। अब यह सुकृती तथा शिव जैसे कान्तिमान् हो गये।।१८२-१८४।।

ब्रह्मोवाच

दृष्ट्वाब्रवीत्सुतं राजा आशीर्भिरभिनन्द्य च॥१८५॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब दशरथ ने पुत्र को आशीर्वाद देकर उनकी प्रशंसा करते कहा—॥१८५।।

राजोवाच

कृतकृत्योऽसि भद्रं ते तारितोऽहं त्वयाऽनघ।
धन्यः स पुत्रो लोकेऽस्मिन्पितृणां यस्तु तारकः॥१८६॥

राजा कहते हैं—तुम कृतार्थ हो गये। तुम्हारा शुभ हो। हे निष्पाप! मैं तुम्हारे द्वारा तार दिया गया। लोक में वही पुत्र धन्य है, जो पिता-माता का त्राण करता है।।१८६।।

ब्रह्मोवाच

ततः सुरगणाः प्रोचुर्देवानां कार्यसिद्धये। रामं च पुरुषश्रेष्ठं गच्छ तात यथासुखम्।
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा रामस्तानब्रवीत्सुरान्॥१८७॥

ब्रह्मा कहते हैं—तब देवगण ने अपनी कार्यसिद्धि हेतु पुरुषप्रवर राम से कहा—"तात! सुख पूर्वक जाओ।" तब राम ने उनसे पूछा।।१८७।।

राम उवाच

गुरौ पितरि मे देवाः किं कृत्यमवशिष्यते॥१८८॥

राम कहते हैं—हे देवताओं! सम्मानित पिता के सम्बन्ध में मुझे और क्या करना है?।।१८८।।

देवा ऊचुः

नदी न गङ्गया तुल्या न त्वया सदृशः सुतः।
न शिवेन समो देवो न तारेण समो मनुः॥१८९॥

त्वया राम गुरूणां च कार्यं सर्वमनुष्ठितम्।
तारिताः पितरो राम त्वया पुत्रेण मानद।
गच्छन्तु सर्वे स्वस्थानं त्वं च गच्छ यथासुखम्॥१९०॥

देवता कहते हैं—गंगा जैसी नदी, तुम्हारे समान पुत्र, शिव समान देवता और ओंकार के समान मन्त्र है ही नहीं। हे राम! तुमने पिता सम्बन्धित सर्व कार्य निष्पन्न कर दिया। पितरों का उद्धार सम्पन्न कर दिया। अब सब स्वस्थान गमन करें। तुम भी यथासुख प्रस्थान करो।।१८९-१९०।।

ब्रह्मोवाच

तद्देववचनाद्धृष्टः सीतया लक्ष्मणाग्रजः।
तद्दृष्ट्वा गङ्गामाहात्म्यं विस्मितो वाक्यमब्रवीत्॥१९१॥

ब्रह्मा कहते हैं—यह सुनकर सीता, लक्ष्मण तथा उनके अग्रज राम प्रसन्न हो गये। उन्होंने गौतमीगंगा की महान् महिमा देख कर कहा—।।१९१।।

राम उवाच

अहो गङ्गाप्रभावोऽयं त्रैलोक्ये नोपमीयते।
वयं धन्या यतो गङ्गा दृष्टाऽस्माभिस्त्रिपावनी॥१९२॥

राम कहते हैं—इस गंगा की तुलना त्रैलोक्य में कहीं नहीं हो सकती। हमारा जीवन धन्य है। हमने त्रिभुवन को पावन करने वाली इस नदी का दर्शन पा लिया।।१९२।।

ब्रह्मोवाच

हर्षेण महता युक्तो देवं स्थाप्य महेश्वरम्। तं षोडशभिरीशानमुपचारैः प्रयत्नतः॥१९३॥
संपूज्याऽऽवरणैर्युक्तं षट्त्रिंशत्कलमीश्वरम्।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा रामस्तुष्टाव शङ्करम्॥१९४॥

ब्रह्मा कहते हैं—वहां राम द्वारा आनन्द पूर्वक महेश्वर की स्थापना सम्पन्न की गयी। राम ने यत्नतः उनका १६ उपचारों से पूजन किया। ३६ कला वाले महेश्वराराधन एवं अर्चन सम्पन्न करने के अनन्तर राम उनकी स्तुति करबद्ध होकर करने लगे।।१९३-१९४।।

राम उवाच

नमामि शंभुं पुरुषं पुराणं, नमामि सर्वज्ञमपारभावम्।
नमामि रुद्रं प्रभुमक्षयं तं, नमामि शर्वं शिरसा नमामि॥१९५॥
नमामि देवं परमव्ययं तमुमापतिं लोकगुरुं नमामि।
नमामि दारिद्र्यविदारणं तं, नमामि रोगापहरं नमामि॥१९६॥
नमामि कल्याणमचिन्त्यरूपं, नमामि विश्वोद्भवबीजरूपम्।
नमामि विश्वस्थितिकारणं तं, नमामि संहारकरं नमामि॥१९७॥

नमामि गौरीप्रियमव्ययं तं, नमामि नित्यं क्षरमक्षरं तम्।
नमामि चिद्रूपममेयभावं, त्रिलोचनं तं शिरसा नमामि॥१९८॥
नमामि कारुण्यकरं भवस्य, भयंकरं वाऽपि सदा नमामि।
नमामि दातारमभीप्सितानां, नमामि सोमेशमुमेशमादौ॥१९९॥
नमामि वेदत्रयलोचनं तं, नमामि मूर्तित्रयवर्जितं तम्।
नमामि पुण्यं सदसद्व्यतीतं, नमामि तं पापहरं नमामि॥२००॥

राम कहते हैं—पुराणपुरुष शंभु को प्रणाम! मैं सर्वज्ञ, अपार भाव, अक्षय प्रभु रुद्र, सर्व को शिर नत करके प्रणाम करता हूं! मैं अव्यय परमदेव, लोकगुरु, उमापति, दरिद्रता विदारक, रोग हरण करने वाले, अचिन्त्य कल्याणरूप, विश्ववृक्ष के बीज, विश्वस्थिति हेतु, संहारकारण, अपक्षय रहित, गौरी प्रिय को प्रणाम करता हूं! क्षराक्षर, चिद्रूप, अमेयभाव, त्रिलोचन, संसार पर करुणा करने वाले, तथापि भयंकर शंकर को सदा प्रणाम! अभीप्सित सब कुछ देने वाले, सोमेश, उमेश, वेदत्रय नेत्र रूपी, मूर्त्तित्रय रहित, सद्-असत् से अतीत, पापहारी, हर को प्रणाम!॥१९५-२००॥

नमामि विश्वस्य हिते रतं तं, नमामि रूपाणि बहूनि धत्ते।
यो विश्वगोप्ता सदसत्प्रणेता, नमामि तं विश्वपतिं नमामि॥२०१॥
यज्ञेश्वरं संप्रति हव्यकव्यं, तथा गतिं लोकसदाशिवो यः।
आराधितो यश्च ददाति सर्वं, नमामि दानप्रियमिष्टदेवम्॥२०२॥
नमामि सोमेश्वरमस्वतन्त्रमुमापतिं तं विजयं नमामि।
नमामि विघ्नेश्वरनन्दिनाथं, पुत्रप्रियं तं शिरसा नमामि॥२०३॥
नमामि देवं भवदुःखशोकविनाशनं चन्द्रधरं नमामि।
नमामि गङ्गाधरमीशमीड्यमुमाधवं देववरं नमामि॥२०४॥
नमाम्यजादीशपुरंदरादिसुरासुरैरर्चितपादपद्मम् ।
नमामि देवीमुखवादनानामीक्षार्थमक्षित्रियं य ऐच्छत्॥२०५॥

आप विश्वहितरत, विश्वगोप्ता, सदा सत् प्रणेता, बहुरूपी, विश्वपति, यज्ञस्थरूप, हव्य-कव्य रूप, मेरी गति, लोकहितकारी शिव हैं। आपको प्रणाम! जो आराधित होकर सर्व ईप्सित प्रदान करते हैं, उन दानप्रिय इष्टदेव शर्व को प्रणाम! हे सोमेश्वर! अस्वतन्त्र (भक्ताधीन), उमापति, विजय, विघ्नेश्वर, नन्दिनाथ, पुत्रप्रेमी, संसार दुःख-शोक नाशक को शिर नत करके मेरा प्रणाम! चन्द्रधारी, पूज्य, गंगाधर, महादेव, देवप्रवर, उमापति को प्रणाम! जिनके चरणों की अर्चना विष्णु, ब्रह्मा, प्रभु इन्द्रादि देवता, राक्षस तक करते हैं, उनको प्रणाम! इन पर देवता को प्रणाम! जिन्होंने देवी के मुखाभिवादन काल में उनके दर्शनार्थ तीन नेत्र की कामना किया था, उन देवाधिदेव को प्रणाम! (एक बार गौरी जब शिवपूजा के अन्त में मुख, कक्ष तथा हथेली से वाद्य कर रही थीं, तब उन कुमारी को देखने की इच्छा से भगवान् की तृतीय नेत्रोत्पत्ति हो गई। देखें—देवी भागवत)॥२०१-२०५॥

पञ्चामृतैर्गन्धसुधूपदीपैर्विचित्रपुष्पैर्विविधैश्च मन्त्रैः।
अन्नप्रकारैः सकलोपचारैः, संपूजितं सोममहं नमामि॥२०६॥

पञ्चामृत, सुगन्धद्रव्य, धूप, दीप, नाना प्रकार के पुष्प, विविध मन्त्र, अनेक भोज्यों से जिनका पूजन होता है, उन सोम को प्रणाम करता हूं!॥२०६॥

ब्रह्मोवाच

ततः स भगवानाह रामं शंभुः सलक्ष्मणम्।
वरान्वृणीष्व भद्रं ते रामः प्राह वृषध्वजम्॥२०७॥

ब्रह्मा कहते हैं—राम के स्तव से सन्तुष्ट होकर प्रभु महेश्वर ने लक्ष्मण सहित राम से कहा—"वर ग्रहण करो। तुम सबका कल्याण हो।" तब राम ने कहा—॥२०७॥

राम उवाच

स्तोत्रेणानेन ये भक्त्या तोष्यन्ति त्वां सुरोत्तम।
तेषां सर्वाणि कार्याणि सिद्धिं यान्तु महेश्वर॥२०८॥
येषां च पितरः शम्भो पतिता नरकार्णवे।
तेषां पिण्डादिदानेन पूता यान्तु त्रिविष्टिपम्॥२०९॥
जन्मप्रभृति पापानि (यच्चापि) मनोवाक्कायिकं त्वघम्।
अत्र तु स्नानमात्रेण तत्सद्यो नाशमाप्नुयात्॥२१०॥
अत्र ये भक्तितः शम्भो ददत्यर्थिभ्य अण्वपि।
सर्वं तदक्षयं शम्भो दातॄणां फलकृद्भवेत्॥२११॥

राम कहते हैं—हे सुरोत्तम! जो भक्ति पूर्वक इस स्तोत्र द्वारा भक्तिभाव से आपको सन्तुष्ट करें, हे महेश्वर! उनका सर्व कार्य सिद्ध हो जाये। हे शंभु! जिनके पितृगण नरक में पड़े हों, वह यहां यह पाठ करके यद्रि पिण्डदान करे, तब वे पितृगण पवित्र होकर त्रितापवर्जित स्वर्गगमन करें। यहां स्नान मात्र से ही मन-वाणी-काया से जन्मावधि कृत पापों का सद्यः नाश हो। हे प्रभो! यहां जो कोई अर्थीगण को यदि अणु प्रमाण भी दान करे, तब हे मंगलधाम! वह दाता के लिये अक्षय फलदायक हो जाये।॥२०८-२११॥

ब्रह्मोवाच

एवमस्त्विति तं रामं शङ्करो हृषितोऽब्रवीत्।
गते तस्मिन्सुरश्रेष्ठे रामोऽप्यनुचरैः सह॥२१२॥

गौतमी यत्र चोत्पन्ना शनैस्तं देशमभ्यगात्। ततः प्रभृति तत्तीर्थं रामतीर्थमुदाहृतम्॥२१३॥
दयालोरपतत्त (द्य) त्र लक्ष्मणस्य कराच्छरः। तद्बाणतीर्थमभवत्सर्वापद्विनिवारणम्॥२१४॥
यत्र सौमित्रिणा स्नानं शंकरस्यार्चनं कृतम्। तत्तीर्थं लक्ष्मणं जातं तथा सीतासमुद्भवम्॥२१५॥

नानाविधाशेषपापसङ्घनिर्मूलनक्षमम्। यदङ्घ्रिसङ्गादभवद्गङ्गा त्रैलोक्यपावनी॥२१६॥
स यत्र स्नानमकरोत्तद्वैशिष्ट्यं किमुच्यते। तद्रामतीर्थसदृशं तीर्थं क्वापि न विद्यते॥२१७॥

इति श्रीमहापुराणे आदिब्राह्मे तीर्थमाहात्म्ये रामतीर्थादितीर्थवर्णनं नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥१२३॥

गौतमीमाहात्म्ये चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५४॥



ब्रह्मा कहते हैं—देवाधिदेव शंकर ने कहा—"यही हो" और वहां से चले गये। तब राम भी अनुचरों के साथ क्रमशः उस दिशा में गये, जहां से गौतमी का आविर्भाव हुआ था। पथ में जहां दयावश लक्ष्मण के हाथ से बाण गिर गया था, वह लक्ष्मणतीर्थ कहा गया। वहीं अनेक अखिल पापों का नाशक सीतातीर्थ भी है। जिन विष्णु के चरणस्पर्श के कारण गंगा त्रिभुवन पावनी है, उन विष्णुमय राम ने जहां स्नान किया था, वहां की विशेषता का वर्णन कैसे सम्भव है। रामतीर्थ जैसा कोई तीर्थ ही नहीं है॥२१२-२१७॥

॥त्रयोविंशत्यधिकशततम अध्याय समाप्त॥



पूर्व भाग समाप्त

***



Also can be had from : **Chowkhamba Krishnadas Academy, Varanasi.**

ISBN : 978-81-7080-467-3 (पूर्वभाग)

₹ 975.00